पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

मनुष्य में देवत्व का उदय

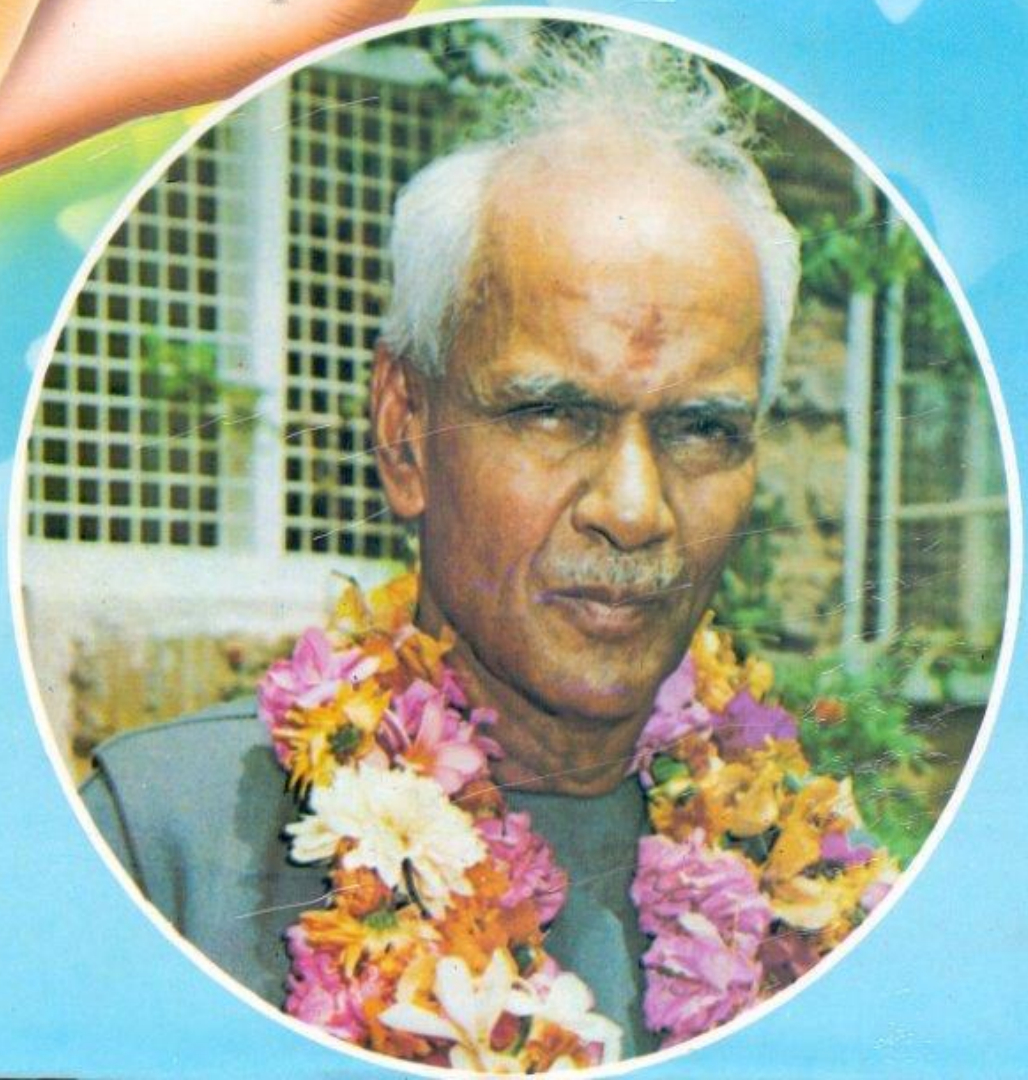

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

मनुष्य में देवत्व का उदय

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❐
प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा-२८१ ००३

❐
© सर्वाधिकार सुरक्षित

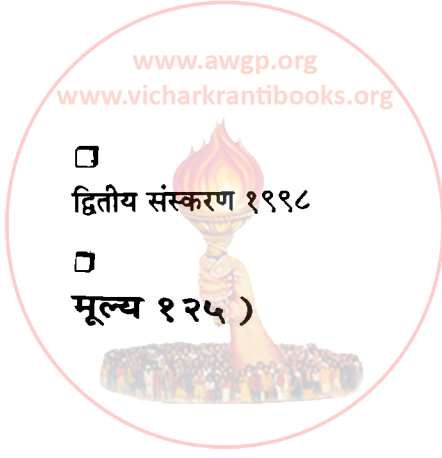

❐
द्वितीय संस्करण १९९८
❐
मूल्य १२५)

❐
मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा ब्रनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आप-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्बाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा झीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर- घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आग गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत:स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दु:खी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्राय: पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलथाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चलें गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोंपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९४ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ·❑❑❑

भूमिका

मनुष्य सर्वसमर्थ परमात्मा की संतान है। परमात्मा ने अपनी संतान को उन सभी विशेषताओं, विशिष्ट सामर्थ्यों से अलंकृत कर दुनिया में भेजा है। जो विभूतियाँ स्वयं उसमें सन्निहित हैं, उसने मनुष्य में बीज रूप में वे सारी विशेषताएँ भर दी हैं। जिनके द्वारा इच्छाशक्ति की प्रचंड समर्थता के आधार पर शारीरिक, मानसिक और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया सम्पन्न कर ले। वह अपने विकास के लिए न परिस्थितियों पर निर्भर है और न बाह्य साधनों पर अवलम्बित। अपनी इच्छाशक्ति और पुरुषार्थ के आधार पर वह स्वयं का इच्छित विकास करने और अभीष्ट उपलब्धियों को अर्जित करने में सर्वत: स्वतंत्र, स्वनिर्भर है। इस तथ्य को समझ लेने पर हर कोई देवत्व के विकासक्रम की पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है।

धर्म एवं अध्यात्म विद्या का उद्देश्य मनुष्य प्राणी की अन्त:चेतना को पिघलाकर श्रेष्ठ एवं उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालना है। आत्मा का कल्याण उस तम प्रवृत्ति में, आसुरी प्रवृत्ति में पड़े रहने से नहीं हो सकता, जिसमें माया-मोहित अगणित जीव पाशबद्ध स्थिंति में पड़े रहते हैं। इन बंधनों को काटे बिना कल्याण का और कोई मार्ग नहीं। आत्मा की पुकार **''तमसो मा ज्योतिर्गमय''** की है। वह अन्धकार से प्रकाश की ओर जाना चाहती है, देवत्व की ओर विकसित होना चाहती है किन्तु, हमारे अन्त:प्रदेश में निरन्तर चल रहे देवासुर संग्राम में तमोगुण का असुर हावी रहता है और हमें माया में फँसाए रहता है। हमारा अन्त:करण ही वह धर्मक्षेत्र है। जिसमें आसुरी और दैवी प्रवृत्तियों के मध्य सदा संघर्ष चलता रहता है। गीता में जिस महाभारत का वर्णन है और अर्जुन को जिसमें लड़ाया गया है, वह वस्तुत: आध्यात्मिक युद्ध ही है। अध्यात्म की भाषा में इसे ही 'साधना समर' कहते हैं। इस समर में विजयी होने वाले व्यक्ति महामानव, ऋषि एवं देवदूत बनकर पूर्णता के लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। साधना से ही मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है।

युग निर्माण योजना का अभ्युदय एवं विशाल गायत्री परिवार का गठन जिस लक्ष्य को लेकर हुआ है- वह है 'मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण' । परमपूज्य गुरुदेव ने युग परिवर्तन की संभावना के साथ जिस उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की साकार होने की घोषणा की है, उसमें मनुष्य में देवत्व का उदय प्रमुख आधार है। इस तथ्य को उनने अपने जीवन में प्रत्यक्ष कर दिखाया है कि मनुष्य का समग्र विकास देवता के रूप में होना चाहिए। यह उत्कर्ष की चरम सीमा है। 'देवत्व' ही वह वैभव है जिसकी परिणति अनेकानेक ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में प्रकट-परिलक्षित होती है। देवत्व को अमृत, पारस, कल्पवृक्ष, ब्रह्मास्त्र आदि नामों से पुकारा जाता है। देवत्व के उदय के बाद मनुष्य अन्य मानवों से ऊपर उठ जाता है और असाधारण विशेषताओं तथा क्षमताओं से संपन्न बन जाता है। इन्हें ही विज्ञानवेत्ता 'सुपर मैन' व अध्यात्मवेत्ता 'अति मानव', महामानव, सिद्धपुरुष, नर के रूप में नारायण आदि नामों से विभूषित करते हैं। पवित्रता एवं प्रखरता सम्पन्न ऐसे व्यक्तित्व जिस भी अवांछनीयता पर टूट पड़ते हैं, उसे निस्सार करके रख देते हैं। कभी ऐसे ही समुन्नत व्यक्तित्वों का बाहुल्य अपने भारतवर्ष में था। वे देवमानव-महामानव कहे जाते थे और उनकी गणना तेतीस कोटि देवताओं के रूप में की जाती थी। संसार में उनकी प्रतिष्ठा जगत्गुरु, चक्रवर्ती, महाप्राज्ञ एवं स्रजेता-प्रणेता के रूप में होती थी। उनने ही अपने निवास भूमि को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

''स्वर्गादपिगरीयसी'' बनाया था। निश्चय ही किसी समाज की, समय की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि महामानवों, देवमानवों को उत्पन्न करने की दृष्टि से उसे सराहा और स्मरण रखा जाय। देवमानवों का बाहुल्य समूची मानव जाति के लिए वरदान है।

व्यक्तित्व के परिष्कार एवं देवत्व के उदय को अध्यात्म जगत का परम पुरुषार्थ माना गया है। विकासवाद की यह चरम सीमा है। यही वास्तविक मानवी प्रगति का स्वरूप है। यों तो इस संबंध में पाश्चात्य विचारकों, दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकों ने अपने-अपने चिंतन के अनुसार अलग-अलग स्वरूप बनाया है। परिस्थितियों के दबाव को प्रमुखता देने वाले नीत्से, व्यक्ति की निरंकुश सत्ता का प्रतिपादन करने वाले एनार्किस्ट, 'ब्रेनवाशिंग' को ही प्रमुख उपाय मानने वाले साम्यवादी, रसायन, औषधियों और वैद्युतीय प्रभाव से मस्तिष्क को प्रभावित करने में आस्था रखने वाले आयुर्वैज्ञानिक, कृत्रिम संसर्ग या नियोग पद्धति द्वारा उच्चवंश की उत्पत्ति का प्रतिपादन करने वाले दार्शनिक, जेनेटिक इंजीनियरिंग के माध्यम से मनुष्य की नयी कलम लगाकर उच्च विकसित 'सुपरमैन' की वकालत करने वाले विज्ञानवेत्ताओं आदि के अपने-अपने पक्ष और प्रयोग हैं। वे सभी अपने उपाय-उपचारों से मनुष्य को अधिक सामर्थ्यवान बनाना चाहते हैं किन्तु, अध्यात्मवेत्ता इससे भिन्न प्रकार के उपाय बताते हैं। परमपूज्य गुरुदेव ने मनुष्य में देवत्व की संभावना को विचार विज्ञान एवं ब्रह्म विद्या की परिधि में लिया है और मनःस्थिति को प्रधानता दी है। इसी को विविध साधनात्मक उपाय उपचारों से परिष्कृत कर देवोपम परिस्थितियाँ बनाई जा सकती हैं।

देवत्व हर व्यक्ति के अन्तःकरण में पर्याप्त मात्रा में मौजूद है, पर वह प्रसुप्त और बिखरा पड़ा है, उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं। लंका लाँघने से पहले हनुमान को और महाभारत के युद्ध को जीतने से पहले अर्जुन को जिस तरह अपने ऊपर विश्वास नहीं था, पर जब उन्हें आवश्यक ज्ञान और प्रोत्साहन दिया गया तो दोनों ही अपने उद्देश्य में सफल हो गये। इसी तरह जनमानस का परिष्कार और सत्प्रवृत्ति-संवर्धन में निरत प्रज्ञा-अभियान के माध्यम से परमपूज्य गुरुदेव ने मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का जो सपना देखा है, उसी का दिग्दर्शन वाङ्मय के इस खण्ड में पाठकगण करेंगे।

–ब्रह्मवर्चस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
मनुष्य महान है	१.१
जीवन : ईश्वर का एक अनुपम अनुदान	१.१
जीवन अनबूझ पहेली नहीं है	१.३
बीज जैसी जीवन की तीन गतियाँ	१.५
अपना स्वरूप और दायित्व समझें	१.५
आदमी को आदमी बनना होगा	१.७
दिशा तो हमें ही चुननी पड़ेगी	१.९
विकास या विनाश में से किसी एक का चयन	१.१०
व्यक्तित्व-विकास को सर्वोपरि महत्त्व देना होगा	१.१२
उद्धरेदात्मनाऽत्मानम्	१.१५
बाह्यजगत अन्तर्जगत का प्रतिबिम्ब	१.१५
प्रतिकूलताएँ कभी बाधक नहीं बनतीं	१.१६
मानवता के लक्षण	१.१८
जीवितों में मृतक और मृतकों में जीवित	१.१९
क्या हम जीवित हैं ? क्या हम जीवितों जैसे काम करते हैं ?	१.२०
जीवन सम्पदा के अपव्यय का पश्चात्ताप	१.२२
भूल को सुधारने का ठीक यही समय	१.२५
मनुष्य को कृमि-कीटकों से ऊँचा तो होना ही चाहिए	१.२६
समस्त शक्तियों का भण्डार–हमारा मन	१.२८
मन को बालक्रीड़ाओं में भटकने न दें	१.३०
मृग मरीचिका में भटकती हमारी भ्रान्त मन:स्थिति	१.३२
भ्रान्तियों से उबरें, प्रगति पथ प्रशस्त करें	१.३२
सिद्ध जैसा अभिनय करिये	१.३४
आत्म-शिक्षण की अनिवार्य आवश्यकता	१.३४
विचार-धन का अक्षयकोष	१.३५
बौद्धिक पूँजी की श्रेष्ठता	१.३५
स्वाध्याय और सत्संग	१.३५
धर्म और अध्यात्म का वास्तविक स्वरूप	१.३६
मानसिक शुद्धता का आधार	१.३६
मनोभूमि का सुधार और विकास	१.३६
मनोमयकोश का परिष्कार	१.३७
ऊर्ध्व-गमन का सत्प्रयत्न	१.३७
ज्ञान-मन्दिर एक पुनीत सेवा-केन्द्र	१.३७
छोटा किन्तु महान कदम	१.३८
सेवा ही सच्ची भगवद् भक्ति है	१.३८
संघशक्ति का महत्त्व समझें	१.३९
ठोस एवं सुनिश्चित प्रगति का राजमार्ग	१.४१
जड़ें गहरी और मजबूत हों	१.४२
विचारशीलता का परिमार्जन	१.४३
विचार बदलें, तो माहौल बदले	१.४४
संसार में मात्र प्रतिकूलता ही नहीं है	१.४६
हजार तालों की एक चाबी	१.४७
दृष्टिकोण का परिवर्तन ही व्यक्तित्व परिवर्तन	१.४८
दृष्टिकोण का परिष्कार	१.४९
असुर और राक्षस कौन ?	१.५१
देवासुर संग्राम हमारे दैनिक जीवन में	१.५३
अपने भाग्य का विधाता मनुष्य स्वयं	१.५७
हीरो बनें या कोयला यह अपनी मर्जी की बात है	१.५८
हम अपना भविष्य और चरित्र स्वयं बनाते हैं	१.५९
ऊँचा उठने की आकांक्षा और उसकी पूर्ति	१.६२
उत्कृष्टता का वरण–एक महान पुरुषार्थ	१.६४
चरित्रनिष्ठा–सर्वोपरि शक्ति	१.६६
उत्कृष्ट जीवन के लिए विशेष मनोबल चाहिए	१.७०
व्यक्ति को ही नहीं, वातावरण को भी बदलना चाहिए	१.७२
प्रत्यक्ष जगत पर अदृश्य जगत का प्रभाव	१.७३
वातावरण आदतें भी बदल सकता है	१.७६
मनुष्य पर्यावरण से जुड़े तो व्यक्तित्व का बिखराव रुके	१.७७
काल को पाटी से बाँधें, सफल बनें	१.७९
प्रतिभा, जागरूकता और तत्परता की परिणति	१.८१
जो दीपक की तरह जलने को तैयार हों	१.८३
महान कार्यों के लिए महान व्यक्तित्वों की आवश्यकता	१.८४
व्यक्तित्व का शृंगार-सद्गुण	१.८४
समस्त दुर्गुणों का मूल कारण अहंकार	१.८६
बिना मोल की अमूल्य सम्पत्ति–शालीनता	१.८८
अहंकार बनाम स्वाभिमान	१.८९
खरे व्यक्तित्व की कसौटी	१.९०
परिष्कृत व्यक्तित्व के तीन महत्त्वपूर्ण अंग	१.९१
सृजनात्मक चिन्तन सुख-सन्तोष का आधार	१.९२
समत्वं योग उच्यते	१.९३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
महानता का प्रगति-पथ	१.९५
जीवन-सन्ध्या की साधना	१.९६
बड़प्पन चुनें या महानता	१.९७
महानता बड़प्पन के प्रदर्शन में नहीं	१.९८
बड़प्पन के सही मानदण्ड	१.९९
दृष्टा नहीं सृष्टा बनना श्रेयस्कर है	१.१०१
जीवन को सफल बनाने वाला व्यावहारिक अध्यात्म	१.१०३
सामूहिकता से सुसम्बद्ध आत्म-चेतना	१.१०४
संगति का प्रभाव-परिणाम	१.१०५
ऊँचा उठें-आगे बढ़ें	१.१०५
हर कदम आगे की ओर	१.१०७
केवल सत्य ही जीतता है	१.१०८
सच्चा स्वार्थ पहचानना और अपनाना ही बुद्धिमत्ता है	१.११०
गहरे पानी पैठ, जिन खोजा तिन पाइयाँ	१.१११
व्यक्ति निर्माण के लिए यह करना होगा	१.११४
विश्व मानव की अखण्ड अन्तरात्मा	१.११७
विवेकवान् अपना जीवन दर्शन बदलें	१.११८
व्यक्तित्व निर्माण के निमित्त विज्ञान के प्रयोग	**२.१**
मनुष्य में नई कलम लगने में देर नहीं	२.१
मानवी व्यक्तित्व के सूक्ष्मतम सूत्राधार	२.३
सुसंतति के सम्बन्ध में वैज्ञानिक प्रयोग	२.४
समुन्नत व्यक्तित्व बनाने के लिए 'जेनेटिक इन्जीनियरिंग' का उपयोग	२.६
मानवी नस्ल सुधारने में 'जेनेटिक्स' का प्रयोग	२.८
प्रतिभाओं की खेती रक्त-बीज तैयार करेगी	२.१०
न विकासवाद, न आनुवंशिकतावाद केवल अपवाद	२.१२
संतति की उत्कृष्टता के लिए जन्मदाता उत्तरदायी	२.१३
वंशानुक्रम की उत्कृष्टता सुप्रजनन का मूल आधार	२.१५
वंशानुक्रम निर्धारण हेतु उत्तरदायी अविज्ञात चेतन शक्ति	२.१७
भविष्य निर्माण के लिए सुप्रजनन भी आवश्यक	२.१८
महामानवों की नई पीढ़ी परिष्कृत बीजकोषों से जन्मेगी	२.२०
हम सुधरें तो बच्चे सुधरें-वैज्ञानिक दृष्टि	२.२३

विषय	पृष्ठ
व्यक्तित्व विकास के कुछ नये-पुराने तरीके	२.२४
व्यक्तित्व मात्र वंश-परम्परा से नहीं बनता	२.२६
यह खतरनाक खेल मानवी विशिष्टताओं को नष्ट कर देगा	२.२७
इकलौती संतान प्रतिभाशाली होती है	२.२८
विलासिता हमें अपंग करके छोड़ेगी	२.३०
क्या हम भविष्य में अति कुरूप हो जायेंगे ?	२.३२
व्यक्तित्व की प्रखरता के लिए तदनुकूल वातावरण की आवश्यकता	२.३३
व्यक्ति निर्माण-उत्कृष्ट वातावरण पर निर्भर	२.३५
परिवेश मनुष्य को भी बदल देता है	२.३६
वातावरण हमें स्वयं ही बनाना होगा	२.३८
नरपशु नहीं, देवमानवों की पीढ़ी जन्मे	२.३९
गर्भस्थ शिशु का इच्छानुवर्ती निर्माण	२.४०
कलमी आदमी नहीं बन सकते	२.४२
क्या मनुष्य 'ब्रह्मा' बन सकता है ?	२.४३
आनुवंशिकी प्रगति में आत्मबल का प्रयोग करना होगा	२.४४
देवमानव का सृजन निकट भविष्य में होगा	२.४७
कोशाओं की अंतरंग शक्ति का परिष्कार	२.४९
व्यक्तित्व परिष्कार हेतु गहराई तक प्रवेश करना होगा	२.५२
सुसन्तति प्राप्ति के उपहासास्पद प्रयत्न	२.५३
व्यक्तित्व के विकास में आनुवंशिकी स्तर स्पर्श करना होगा	२.५६
यान्त्रिकी और मान्त्रिकी का सुव्यवस्थित सुनियोजन	२.५८
अन्नमय कोश को जाग्रत करें और व्यक्तित्ववान बनें	२.६०
कैसा होगा भविष्य का मानव ?	२.६२
समुन्नत नई पीढ़ी के लिये अध्यात्मवादी भी प्रयत्न करें	२.६४
कोरी कल्पना नहीं है अमैथुनी सृष्टि	२.६५
अमैथुनी सृष्टि भी उत्पन्न होती है, हो सकती है	२.६८
विकासवाद को सही परिप्रेक्ष्य में समझा जाय	२.७२
विकासवादी अवधारणा चेतनात्मक हो	**३.१**
गिरा हुआ देवता या उठा हुआ पशु ?	३.१
आनुवंशिकता या इच्छाशक्ति	३.२

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
'अमीबा' से नहीं, मनुष्य ईश्वर की इच्छा से बना है	३.४
विकास या पतन अपनी इच्छा से	३.६
मानवी सत्ता चिरपुरातन है	३.९
मनुष्य अपनी मौलिक विशेषताएँ लेकर ही आया	३.११
मनुष्य आदिमकाल में भी बुद्धिमान था	३.१३
जीवन विकास का चक्र क्रम	३.१५
इच्छित दिशा में जीवधारियों का विकास	३.१७
मानवी व्यक्तित्व में अन्तर्निहित समग्रता	३.१९
क्या मानवी सभ्यता मात्र आठ हजार वर्ष पुरानी है ?	३.२१
अधिकार और अनुशासन	३.२२
मानवी विकास के प्रारम्भिक सोपान	३.२३
पूर्वाग्रहों से उबरें	३.२५
विकासवाद–अधूरी और एकांगी मान्यता	३.२७
विकासवाद बनाम ८४ लाख	३.२९
अस्तित्व की खोज	३.२९
विकासवाद की अवधारणा मात्र चेतनात्मक ही	३.३२
विज्ञान, विकासवाद और भारतीय अध्यात्म	३.३४
प्रयास यांत्रिक नहीं, चेतनात्मक उत्कर्ष की दिशा में चले	३.३६
सृष्टि संरचना की जड़ में है चेतना का निरन्तर विकास	३.३८
विकास जड़ का नहीं, चेतना के स्फुल्लिंगों का	३.३९
क्या चेतन जड़ से उत्पन्न हुआ ?	३.४०
चेतना का अस्तित्व और अनुभूति	३.४१
हम प्रगति पथ पर आगे ही बढ़ते चलें	३.४३
चेतना की प्रगति का महत्त्व समझा जाय	३.४६
चेतना का उदात्तीकरण	३.४९
आध्यात्मिक विकासवाद एवं जीवन–मुक्ति तत्वदर्शन	३.५१
विभूतिवान बनाने वाली विद्या–आत्मिकी	**४.१**
आत्मिकी का स्वरूप और प्रयोजन	४.१
आत्मिकी : ऐश्वर्यवान बनाने वाली विद्या	४.३
आत्मिकी : चेतना को परिष्कृत–प्रखर बनाने वाली फलदायी विधा	४.५
आत्म–विस्मृति की विडम्बना	४.७
अज्ञ रहना अन्धकार में भटकना है	४.९
जीवन की सर्वश्रेष्ठ विभूति–ज्ञान	४.११
ज्ञान शक्ति की गौरव गरिमा	४.१२
श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं	४.१३
'मैं' के जानने में ही ज्ञान की पूर्णता है	४.१५
क्या 'मैं' शरीर ही हूँ–उससे भिन्न नहीं?	४.१६
छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा मैं हूँ	४.१८
आत्म–कल्याण का उपाय–उपचार	४.२१
आध्यात्मिक शक्ति और मानव	४.२२
आरोह तमसो ज्योतिः	४.२४
अंधकार अस्थिर, प्रकाश शाश्वत्	४.२६
स्वार्थ सिद्धि बनाम परमार्थ परायणता	४.२७
वसुधैव कुटुम्बकम् उदात्त भावना विकसित हो	४.२९
जीवन बहुमूल्य है–इसे व्यर्थ न गँवायें	४.३०
इस दिव्य अनुदान को व्यर्थ न जाने दें	४.३१
आत्मिक और भौतिक प्रगति का संतुलन	४.३३
तमसो मा ज्योतिर्गमय	४.३६
प्रकाश भरा आनन्द हमारी ही मुट्ठी में है	४.३८
सत्यं–शिवं–सुन्दरम् और उनकी विवेचना	४.३९
सत्यमेव जयते नानृतम्	४.४०
हम विराट विश्वात्मा के एक घटक मात्र हैं	४.४१
सान्निध्य की सार्थकता अनुशासन में	४.४३
हम सब एक महान् शृंखला के घटक भर हैं	४.४५
समस्त जड़–चेतन पर उच्चस्तरीय सत्ता का अनुशासन	४.४७
प्रगति का मूल मंत्र–आत्मोत्कर्ष	४.४९
सिद्ध न होना ही चेतना का प्रमाण	४.५०
आत्मा की समीपता की ओर कदम	४.५३
शरीर का ही नहीं–आत्मा का भी ध्यान रखें	४.५४
आत्मा को जानिए	४.५६
आत्म–सत्ता और उसकी महान् महत्ता	४.५८
आत्मा का अस्तित्व विवेक की कसौटी पर	४.५९
आत्म–सत्ता का अस्तित्व	४.६१
आत्मा का अस्तित्व–सत्य और तथ्य	४.६१
आत्मसत्ता की तथ्यसम्मत प्रामाणिकता	४.६३
आत्मा का अस्तित्व इन्कारा नहीं जा सकता	४.६६
क्या हम सचमुच ही मर जायेंगे ?	४.६९
आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करना ही पड़ेगा	४.७२
सर्वव्यापी आत्मा की सर्वज्ञता	४.७३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
आत्मा की अमरता कल्पना मात्र नहीं	४.७५
आत्मा शरीर से भिन्न है और स्वतन्त्र भी	४.७७
आत्मा और शरीर की भिन्नता जानें ही नहीं, मानें भी	४.७९
आत्मा किसी लिंग विशेष में रहने के लिए बाधित नहीं	४.८१
दीप्तिमान आत्मसूर्य की विलक्षण सामर्थ्य	४.८२
आत्म-सत्ता की गौरव-गरिमा	४.८४
सच्चे हृदय से आत्मा का उद्‌बोधन करें	४.८६
आत्मा को देखें, खोजें और समझें	४.८७
आत्मा की पुकार सुनें और उसे सार्थक करें	४.८९
आत्म-सत्ता का अस्तित्व और वैभव	४.९३
आत्मा और शरीर का वास्तविक हित-साधन	४.९३
आत्म-बल जीवन की महानतम् सम्पदा	४.९४
शति के स्रोत आत्मा को मानिए	४.९७
आत्मा असीम शक्तियों का केन्द्र-बिन्दु	४.९९
आत्म-शक्ति का उचित उपयोग	४.१०१
परमात्मा की प्रतीक प्रतिनिधि-आत्मसत्ता	४.१०२
आत्मज्ञान-मनुष्य की सर्वोपरि उपलब्धि	४.१०४
आत्मसत्ता में ईश्वर का अवतरण	४.१०६
देवत्व का विकास	**५.१**
तथ्यान्वेषियों की दृष्टि में मानव का स्वरूप	५.१
मनुष्य कितना स्वतन्त्र ? कितना परतन्त्र ?	५.३
मनुष्य ! तू महान है	५.४
स्रष्टा का उत्तराधिकारी महान बनकर रहे	५.६
मनुष्य ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति	५.७
मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं	५.९
मानवोत्कर्ष का मूलमंत्र-जिज्ञासा	५.११
महानता की ओर बढने का साधन-सतोगुण	५.१२
महानता के मननीय एवं वरणीय सिद्धान्त	५.१४
मानवी गरिमा से जुड़ी सभ्यता-सुसंस्कारिता	५.१६
मानवी विकास परम्परा के आधारभूत कारण	५.१८
व्यक्तित्व की संरचना एवं विकास सोपान	५.२०
व्यक्तित्व के विकास हेतु निजी प्रयास	५.२१
व्यक्तित्व विकास हेतु संस्कार आयोजन	५.२३
व्यक्तित्व की अनगढ़ता मिटाते हैं-अध्यात्म उपचार	५.२४

विषय	पृष्ठ
व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास अध्यात्म द्वारा ही सम्भव	५.२६
परिष्कृत कल्याणकारी विचार ही बनते हैं संस्कार	५.२७
आत्मोत्कर्ष की अवांछनीय उपेक्षा	५.२८
मूर्छा से जाग्रति-आत्मिक प्रगति	५.३०
क्रान्ति निज के अंतराल से आरम्भ होगी	५.३२
अचेतन में मानवी गरिमा का उद्‌गम स्रोत	५.३३
मनस-एक कल्पवृक्ष	५.३५
व्यक्तित्व रूपी सिक्के के दो पहलू	५.३६
व्यक्तित्व विकास का शुभारम्भ आचरण से	५.३७
व्यक्तित्व परिष्कार का मूलभूत आधार	५.३८
भावनात्मक परिष्कार ही एकमात्र समाधान	५.३९
व्यक्तित्व का सर्वांगपूर्ण जादुई कायाकल्प	५.४१
परिपक्व और परिष्कृत व्यक्तित्व के सूत्र	५.४२
वृत्तियों का परिमार्जन, व्यक्तित्व का उदात्तीकरण	५.४४
हीनाचार परीतात्मा	५.४६
आत्मिक प्रगति के चार सोपान	५.४७
वैचारिक क्रान्ति बनाम आत्मोन्नति	५.४९
जीवन लक्ष्य की प्राप्ति दूरदर्शी दृष्टिकोण से	५.५०
भाव-चेतना को प्रभावित करे ऐसी विधा की खोज हो	५.५१
प्रज्ञा के अवलम्बन से महानता के पथ पर अग्रगमन	५.५४
सम्पदा एवं महानता में से एक का चयन	५.५६
समझदारों की दिग्भ्रान्त प्रज्ञा	५.५७
सम्पन्नता नहीं, महानता का वरण करें	५.५९
सर्वांगीण गति का एक ही मार्ग	५.६१
बुद्धि नहीं भावना प्रधान	५.६३
भाव सम्वेदना ही एकमात्र विकल्प	५.६४
भाव संवेदना की चमत्कारी शक्ति	५.६५
तृप्ति-तुष्टि-शान्ति	५.६७
हमारा अन्तःकरण पवित्र बने	५.६९
सामर्थ्य-सम्पदा से भरा-पूरा मानवी अन्तराल	५.७१
अन्तराल के उच्चस्तर का विकास	५.७३
अन्तःकरण का विकास और उज्ज्वल भविष्य	५.७५
महानता भीतर से उभरती है, ऊपर से नहीं टपकती	५.७७
ज्ञान का आदि स्रोत-जिज्ञासा	५.७९

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विषय	पृष्ठ
सत्य को खोजें और उसे ही प्राप्त करें	५.८०
सत्य ही हमें स्वर्ग तक पहुँचाता है	५.८२
आनन्द और उसका उद्गम स्थान	५.८३
चेतन सत्ता का अवतरण : व्यक्तित्व में परिवर्तन	५.८४
ब्रह्माण्ड का पंचकोशी शरीर	५.८५
प्राणशक्ति का उदात्तीकरण	५.८५
चेतना को अन्तर्मुखी बनाएँ	५.८६
मानवीय चेतना की रहस्यमय परतें	५.८७
सप्तआयामीय चेतन सत्ता	५.८९
चेतनात्मक परिष्कार की दैवी प्रक्रिया	५.९१
विकसित चेतना की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ	५.९२
चेतना का सर्वोच्च आयाम एवं उसकी प्राप्ति	५.९४
मानवीय मन में निहित सुपरचेतन	५.९६
हम दर्शक नहीं, दृष्टा बनें	५.९८
देवमानव बनने का आह्वान	५.९९
शेष मंजिल पूरी करने का नया उपक्रम	५.१०१
हम महान् ईश्वर के महान् पुत्र हैं	५.१०३
दिव्य अनुकम्पा का मखौल तो न हो	५.१०५
महामानवों की टकसाल ऐसे बनेगी	५.१०७
कैसे होते हैं व्यक्तित्वसम्पन्न महामानव ?	५.१०८
नीतिशास्त्रियों की दृष्टि में विकसित व्यक्तित्व	५.१०९
देवत्व है अंतिम लक्ष्य जिसका, वह है मनुष्य	५.१११
आस्तिकता बढ़े तो देवत्व विकसित हो सके	५.११४
नर से नारायण बनने की दिशा पकड़ें	५.११६
परिमार्जित व्यक्तित्व बनाम साधना सिद्धि	५.११८
'तमेव विद्वान न विभाय मृत्यो'	५.११९
देवत्व का विकास एवं योग सिद्धि	५.१२१
देवत्व के लिए प्रयत्न	५.१२२
पूर्णता की ओर अग्रसर हम सब	५.१२३
प्रगति और पूर्णता का लक्ष्य बिन्दु 'देवत्व'	५.१२३
कैसे हो मानव में देवत्व का उदय ?	५.१२५
धरती देवताओं की क्रीड़ाभूमि	५.१२८
मानवीय सभ्यता का नवोन्मेष सुनिश्चित	५.१२९
योगी अरविन्द का अतिमानस और धरती पर स्वर्ग	५.१३१
मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण	५.१३३
स्वर्ग क्या ? मुक्ति कैसे ?	५.१३५
त्याग से जीवन-मुक्ति	५.१३६
सही अर्थों में जीवन-मुक्ति की परिभाषा	५.१३७
विवेक के अवलम्बन से बंधनमुक्ति	५.१३९
भवबन्धनों से मुक्ति, मोक्षसिद्धि	५.१४०
सच्चिदानन्द की आस्था और अनुभूति	५.१४२
आत्मा में परमात्मा का अवतरण	५.१४४
जीवात्मा, महात्मा, देवात्मा और परमात्मा	५.१४६
आत्मा, महात्मा और परमात्मा का विकास क्रम	५.१४८
सत्, चित्त और आनन्द	५.१४९

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य महान् है

जीवन : ईश्वर का एक अनुपम अनुदान

आत्मबोध का वास्तविक अर्थ है, स्थूल शरीर और आत्मा की भिन्नता अनुभव करना । आमतौर से चेतना शरीर के साथ इतनी गहराई तक गुँथ जाती है कि अपना अस्तित्त्व और सर्वस्व उसी को समझने लगती है । उसी की सुख-सुविधाओं का ताना-बाना बुनती है और अहर्निश उसी को अधिकाधिक प्रसन्न एवं सम्पन्न बनाने के लिए श्रम करती रहती है । अपना आपा काया के साथ इतना अधिक घुल जाता है कि उससे पृथक अपनी सत्ता का कोई भान ही नहीं होता ।

'आत्मा' शब्द कहने-सुनने में तो नित्य ही आता है पर यह अनुभव नहीं होता कि वह शरीर से भिन्न है और दोनों के स्वार्थों में जमीन-आसमान जितना अन्तर है । दोनों की आवश्यकता और इच्छा ऐसी है जिनमें परस्पर तालमेल बहुत ही कम खाता है । शरीर की इच्छा सर्वविदित है । वासना, तृष्णा और अहंता में काया को रस आता है । इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों को नित नया और असीम मात्रा में चाहती हैं । यों उनकी उपभोग शक्ति सीमित है । उसकी पूर्ति भी थोड़े में ही हो जाती है, पर चिन्तन निरन्तर उन्हीं का चलता रहता है । धन आदमी को इतना चाहिए जितने में औसत भारतीय स्तर का गुजारा होता चले । उसे न तो अधिक मात्रा में एक जगह जमा होना चाहिए और न उसका अपव्यय होना चाहिए । संग्रह और अपव्यय से अनेकानेक समस्यायें उत्पन्न होती हैं । श्रम-उपार्जन से न्याय और ईमानदारी की कसौटी पर खरा उतरने वाला धन सीमित ही कमाया जा सकता है ।

सामान्यतया शरीर की इच्छाएँ सीमित ही हैं । किन्हीं-किन्हीं में ये अधिक चित्र-विचित्र रूप में प्रकट होने लगती हैं एवं उनकी पूर्ति के लिए निरन्तर चिन्तित एवं व्यस्त रहना पड़ता है । इन बंधनों के ढीले हुए बिना ऐसा कुछ नहीं बन पड़ता कि आत्मा की तुष्टि एवं प्रगति के लिए कुछ किया जा सके । चिन्तन तंत्र काया-कलेवर में ही इतना उलझा रहता है कि आत्मा के लिए कुछ करना तो दूर, सोचते भी नहीं बन पड़ता ।

कोई यह नहीं चाहेगा कि शरीर की उपेक्षा की जाय । उसकी स्वस्थता, बलिष्ठता एवं क्षमता में कमी आये; क्योंकि वह आत्मा का वाहन है । आत्मा उसी पर सवार होकर अपनी विभिन्न योजनाओं को पूरा करने की आशा करती है । सामान्य बुद्धि के व्यक्ति भी अपने वाहनों को सही और साफ-सुथरा रखते हैं, पर ऐसा अन्धेर कहीं नहीं होता कि सवार अपना खाना, पीना, सोना, जागना, कमाना, पढ़ना आदि भूलकर निरन्तर मात्र उस सवारी के शृंगार में ही लगा रहे । अपने वर्तमान या भविष्य की चिन्ता ही न करे । यह भी ध्यान न रखे कि सवारी आखिर किस काम के लिए प्राप्त की गई थी और उन कामों को सम्पन्न करने की योजना भी सामने है क्या ?

आत्मा की अपनी आवश्यकताएँ और जिम्मेदारियाँ हैं । चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के उपरान्त एक बार यह अवसर मिला है कि भव-बंधनों से छुटकारा पाया जा सके, पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचा जा सके । भगवान ने इस मानवी काया की अजस्र सम्पदा सौंपते हुए उससे जो आशा रखी है, उसकी पूर्ति के लिए जो आवश्यक है, उसे किया जाय । मनुष्य-जन्म का अनुदान प्राप्त करने के उपरान्त कई और कक्षाएँ हैं, जिन्हें उत्तीर्ण किया जाना है और उसके फलस्वरूप अगली सीढ़ियों पर चढ़ते हुए महामानव, सिद्ध पुरुष, ऋषि एवं देवात्मा बनना है । उन समस्त दायित्वों की उपेक्षा कर भविष्य अंधकारमय बना लेना तो अदूरदर्शिता ही कही जाएगी ।

सवार भूखा, चिथड़ा पहने बीमार रहे और घोड़े पर इत्र मलने का, अशर्फियाँ निछावर करने का उपक्रम चले, तो समझना चाहिए कि नासमझी की चरम सीमा है । ऐसा जो कर रहा हो, उसे अर्द्धविक्षिप्त या पूर्णपागल कहना चाहिए । हममें से अधिकांश व्यक्ति इसी स्थिति में रह रहे हैं ।

दृश्य आकर्षण देखकर न दीख पड़ने वाली हानि को भुला देना ऐसा ही है, जैसा नशेबाज क्षणिक उत्तेजना के वशीभूत होकर अपनी सम्पदा, प्रतिष्ठा, सन्तान, सेहत आदि सब कुछ गँवा बैठते हैं । शरीर को गुदगुदाने भर के लिए मन की ललक को सींचने के लिए जो सब कुछ गँवा बैठते हैं, उनमें हममें से अधिकांश की गिनती होती है ।

जितना उपयोग में आ सके, उसे उपलब्ध करना एक बात है, किन्तु सदुपयोग की सीमा से अधिक संचय करना और उस भार से लद मरना दूसरी । शरीर की आवश्यकता अति सीमित है । उसे आधा सेर अन्न, छह गज कपड़ा, चारपाई और विस्तर भर चाहिए । इसके अतिरिक्त जितनी मात्रा समेटी गई है वह अनर्थ ही पैदा करती है । दूसरे उसे लूटते हैं । इन्द्रिय भोगों की अति की जायगी तो रुग्णता और दुर्बलता के चाँटे दोनों गालों पर तड़ातड़ पड़ने लगेंगे । ऐसी फजीयत में फँसने के लिए बहुमूल्य जीवन सम्पदा को बर्बाद कर देना मानवोचित बुद्धिमानी नहीं है ।

जिस पेड़ की जड़ें जितनी गहरी जमीन में जाती हैं, वह उतना ही बड़ा और टिकाऊ होता है । जड़ें छोटी और उथली हों तो उसका जीवन काल तो थोड़ा रहेगा ही, फैलाव भी अधिक न हो सकेगा । मनुष्य की जड़ें उसकी अन्त:

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतना के स्तर में सन्निहित हैं । वे यदि उथली होंगी तो व्यक्तित्व उथला रहेगा, घटिया सोचते और घटिया करते ही बन पड़ेगा । किन्तु यदि अन्तर की क्षमता आदर्श पर टिकी हुई है, मानवोचित गरिमा के उपयुक्त गुण, कर्म, स्वभाव संचय हो सके हैं तो फिर बाहर की कठिनाइयों और अभावों के रहते उसकी प्रगति रुकने वाली नहीं है । वह अपना स्वरूप हर परिस्थिति को चीरती हुई निखार लेती है । इसके प्रमाण ढूँढ़ने हों तो महामानवों की जीवन-गाथाएँ पढ़नी चाहिए । वे स्पष्ट करेंगी कि कोई आदर्श व्यक्ति परिस्थितियों ने नहीं गढ़ा है, वरन् अपने निज के पराक्रम ने ही उसे महान बनाया है ।

अपनी महानता एवं क्षमता को उच्च प्रयोजनों के लिए सुरक्षित रखने के लिए यह आवश्यक है कि शरीरगत वासनाओं और मनोगत तृष्णाओं को घटाया जाय । उन्हें औसत भारतीय स्तर से आगे न बढ़ने दिया जाय ।

लोग मोह-ममता बढ़ाने को ही प्यार समझते हैं वह हर दृष्टि से दु:खदायी है । राजा चन्द्रकेतु का पुत्र मर गया । वे इतना दु:खी हुए कि शोक से सूख-सूख कर स्वयं काँटा हो गये और मरणासन्न स्थिति तक पहुँच गये । महर्षि भृगु एक दिन वहाँ पधारे । राजा की व्यथा सुनी । उनने कहा ''स्वर्गस्थ आत्मा से यहाँ बैठे-बैठे आपकी बातें कराये देता हूँ । वह चाहेगा तो आपके परिवार में उसे नया जन्म दिलाने का प्रयत्न करेंगे ।''

वार्त्तालाप हुआ । मृत बालक की आत्मा ने कहा-''यहाँ आने पर सौ जन्मों की स्मृतियाँ मुझे हो गई हैं । सौ पिता मेरी आँखों के सामने हैं । आप उनमें से कौन से हैं, बतायें ? मेरी इनमें से किसी के साथ भी कोई आसक्ति नहीं है । अपने कर्म बन्धनों से निपटने मात्र में ही मेरी रुचि है । मेरी किसी पिता में कोई दिलचस्पी नहीं । वे शोक करते हैं तो मात्र अपने मोह का दंड भर पाते हैं । उससे मेरी कोई लाभ-हानि नहीं ।''

वह कथा प्रसिद्ध है कि एक राजा को मरकर कीड़े में जन्म मिला और वह महल के बगीचे में ही पेड़ पर छिपा बैठा था । शोकाकुल रानियों को एक दिव्यदर्शी महर्षि ने भेंट कराई और पूछा रानियों के संबंध में आपका मन कैसा है । उनने कहा—''उन सब को मैं भुला चुका । अब तो यह कीड़े का शरीर ही मुझे परमप्रिय है ।''

'रघुवंश' में दशरथ की रानियों का शोक घटाने के लिए महर्षि वशिष्ठ ने तत्वज्ञान की चर्चा की है और उदाहरण देते हुए कहा कि ''जैसे बहती नदी में लकड़ी के लट्ठे भी चले आते हैं और कभी वे एक साथ हो जाते हैं और कभी लहरों के दबाव से अलग-अलग बहने लगते हैं । यह प्रकृति का नियम है । इसमें शोक करने जैसी अनोखी बात नहीं है । तुम ममतावश अपने को व्यर्थ शोकाकुल न करो । कोई प्राणी किसी के साथ संबंधों के रिश्ते में तभी तक बँधा है जब तक जीवित है, अन्यथा सभी प्राणियों की स्वतंत्र सत्ता है । मरने के बाद भी वह उसी रूप में नहीं बनी रहती । इसीलिए अज्ञानमूलक शोक से विवेक का आश्रय लेकर पार होना ही श्रेयस्कर है ।''

गर्भोपनिषद् में बताया गया है कि गर्भावस्था में जीव के अन्त:करण में पूर्वजन्मों की स्मृतियाँ जागृत होती हैं और वह कहता है ''हजारों बार मेरा जन्म हो चुका है, विविध प्रकार के आहार मैं खा चुका हूँ, हजारों माताओं का दूध मैं पी चुका हूँ, बार-बार पैदा हुआ हूँ बार-बार मरा हूँ । पर वे तो आज साथ हैं ही नहीं । साथ हैं मेरे कर्म ही । उनका ही फल मुझे मिल रहा है ।''

इस आलंकारिक वर्णन से आशय यही है कि मनुष्य सदैव मृत्यु को याद रखे, कायसत्ता को नहीं, आत्मसत्ता को महत्त्व दे, तो कभी लोभ-मोह के बंधन उसे आबद्ध नहीं कर पायेंगे ।

जीवन की महानता को जीवन्त बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपनी काया का क्षणभंगुर होना याद रखे । मौत—बच्चे, जवान, बूढ़े किसी को भी किसी समय निगल सकती है । जो जीवन काल मिला हुआ है, उसके बारे में क्या पता कि अगले ही क्षण समाप्त हो जाये । ऐसी दशा में मिला हुआ सुयोग लाखों वर्ष तक चौरासी के परिभ्रमण में चला गया ही समझना चाहिए ।

अजर अमर की तरह विलासी, संग्रही और अहंकारी बने रहना और इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों के लिए अपना सर्वस्व निछावर करते रहना किसी भी प्रकार उचित नहीं । लिप्साओं को पूरा करने का अवसर तो न्यूनाधिक मात्रा में हर योनि में—हर जन्म में मिल जाता है, पर सद्गति सम्पादन के लिए तो मात्र यह मानव-जन्म ही है । इसकी भी कोई अवधि निश्चित नहीं । श्मशान साक्षी है कि बूढ़ा होकर मरना भी निश्चित नहीं । उनसे अधिक संख्या में जवानों की चिताएँ आये दिन जलती रहती हैं ।

जीवन काल की अनिश्चितता और करने योग्य कामों की सूची सामने रखते हुए संगति मिलाई जाय, तो विवेक का एक ही निर्णय होगा—बाल क्रीड़ाओं में समय सम्पदा का एक क्षण भी बर्बाद न किया जाय । उस विधि व्यवस्था को अविलम्ब अपनाया जाय, जिससे आत्मा की प्रगति होती हो और परमात्मा को संतोष मिलता हो । इसके लिए उचित समय की प्रतीक्षा किये बिना तुरन्त ही स्वयं को नियोजित कर देना चाहिए ।

पूर्व संचित संस्कारों का दबाव अन्य जन्मों में तो ज्यों का त्यों बना रहता है । मात्र मनुष्य जन्म ही ऐसा है जिसमें आन्तरिक कायाकल्प किया जा सकता है और उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण हो सकता है । यह अवसर चूकने का नहीं है । जो चूकते हैं, वे पछताते हैं । अंतिम समय में इस छटपटाहट को प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है । वह समय कभी भी आ सकता है, यह भाव मन में रखते हुए क्यों न जीवन-सम्पदा का भरपूर सदुपयोग किया जाय । देवमानव-सा जीवन जी कर धरित्री पर आना सार्थक किया जाय ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन अनबूझ पहेली नहीं है

विकास क्रम में मनुष्य ने जितना ज्ञान अर्जित किया है, वह असीम सम्भावनाओं के सामने अत्यल्प है । जो जानकारियाँ उपलब्ध हुईं वे भी अपने में परिपूर्ण नहीं । उनके आधार पर बनी मान्यताओं में हेर-फेर की पूरी-पूरी गुंजायश है । समय की सर्वोच्च महत्ता प्राप्त ज्ञान की शाखा विज्ञान द्वारा दी गयी संसार विषयक परिभाषाओं तथा उनकी व्याख्याओं से किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना प्राय: कठिन हो गया है । पदार्थ के नगण्य से घटक परमाणु के यथार्थ स्वरूप की तो ठीक-ठीक जानकारी भी अब तक भौतिकविदों को मिल नहीं सकी है । अन्वेषणक्रम में उसके सन्दर्भ में अगणित मान्यताएँ समय-समय पर बनीं और कालान्तर में उलटती चली गयीं । आज भी पदार्थ सत्ता का जो स्वरूप विज्ञान क्षेत्र में मान्यता प्राप्त है, संदिग्ध है ।

उलझे प्रश्नों में अगणित ऐसे हैं, जिनका समाधान विज्ञान नहीं दे सका है । जिनमें से एक है-जीवन मृत्यु सम्बन्धी व्याख्या-विवेचना । जीवन क्या है और मृत्यु का यथार्थ स्वरूप क्या है, इन प्रश्नों का सही उत्तर अभी तक विज्ञान द्वारा नहीं मिल सका है । जीवित कौन है और निर्जीव किसे कहा जाय, ये प्रश्न अत्यन्त उलझे हुए हैं, जिनका उत्तर ढूँढने के लिए वैज्ञानिकों को सदियों से माथा-पच्ची करनी पड़ी है और वर्त्तमान में करनी पड़ रही है । जड़ और चेतन के बीच, जीवित और निर्जीव के बीच एक निश्चित सीमा-रेखा खींची नहीं जा सकी है ।

यों तो सामान्य ज्ञान की दृष्टि से सजीव एवं निर्जीव के बीच एक मोटा विभाजन किया जा सकता है, पर गहराई में प्रविष्ट करके, खोज करने पर वह विभाजन रेखा टूटती दिखायी पड़ती है । इस रोचक विषय पर खोज करने वाले कोलम्बिया विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर सर गेराल्ड फेनवर्ग का कहना है कि "मोटा वर्गीकरण सजीव निर्जीव के बीच यह है कि मनुष्य, जीव-जगत, पेड़-पादप तथा जीवाणु सहज ही पत्थर, बालू, मिट्टी आदि पदार्थों से भिन्न दीखते तथा प्रतिक्रियाएँ दिखाते पाये जाते हैं ।" पर उपर्युक्त वर्गीकरण में दोष तब ज्ञात होता है जब निर्जीव समझे जाने वाले पदार्थों में भी जीवन जैसी आकस्मिक हलचलें दृष्टिगोचर होती हैं ।

साइन्स डाइजेस्ट (मार्च ८३) पत्रिका में प्रकाशित एक लेख के अनुसार एक वैज्ञानिक ने समुद्र तल का 'टाइम लैप्स' फोटोग्राफी विधि से फोटो लेकर अध्ययन किया । जिसका आश्चर्यजनक परिणाम सामने आया । पत्थर जैसी एक निर्जीव वस्तु तीन माह तक तल से चिपकी रही, अचानक एक दिन अपने आप उठी तथा एक फुट की ऊँचाई तक जाकर स्थिर हो गयी । पुन: कुछ घण्टे बाद वह नीचे जाकर अपने पूर्व स्वरूप में जम गयी । एक दूसरे पत्थर में एक भुजा जैसी संरचना अंकुरित हुई—१२ घण्टे तक लहराती रही तथा इसके बाद छ: माह तक गतिहीन बनी रही ।

प्रोफेसर गेराल्ड फेनवर्ग ने एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत किया है—टार्डिग्रेड समुदाय के जीवों का । ये नग्न आँखों से छोटे कीड़े की आकृति जैसे दिखायी पड़ते हैं पर इन्हें बोतल में कई वर्षों तक सुखाकर सुरक्षित रखा जा सकता है । इतने समय बाद भी यदि उसमें जल मिलाया जाय तो वह निर्जीव दिखायी पड़ने वाला जीव अपनी सामान्य स्थिति के रूप में हलचल करने लगता है । यह क्रिप्टोबायोसिस—गुप्त जीवन का जीता-जागता एक ऐसा उदाहरण है जो वैज्ञानिकों के लिए आज भी रहस्यमय बना हुआ है । कौन जीवित है, कौन निर्जीव यह एक विवादास्पद प्रश्न है, जिसका कोई सुनिश्चित हल अब तक नहीं निकल सका है ।

टार्डिग्रेड वर्ग की तरह ही अन्य कई वाइरस पाउडर अवस्था में वर्षों तक सुरक्षित रह सकते हैं । वे जल के प्रभाव से अपनी क्षमता को हासिल तो नहीं कर सकते पर परजीवी कोशों की सहायता से पुन: अपनी जीवन प्रक्रिया आरम्भ कर सकते तथा प्रजनन कार्य में भी संलग्न हो सकते है ।

उपर्युक्त की तरह अनेकों ऐसी संरचनाएँ हैं जिनके विषय में निश्चित रूप से यह कहना मुश्किल है कि उन्हें जीवित की श्रेणी में रखा जाय अथवा निर्जीव की ।

जीव विज्ञानियों ने उन्हें सजीव माना है, जिनमें न्यूक्लिक एसिड तथा प्रोटीन जैसे यौगिक हों । पर कुछ वैज्ञानिकों ने इस परिभाषा को अपूर्ण मानते हुए यह कहा है कि यह जरूरी नहीं कि जीवन के जो आवश्यक घटक पृथ्वी की परिस्थितियों के लिए अनिवार्य हैं, दूसरे ग्रहों के लिए भी हों । सम्भव है वहाँ जीवन का कोई और स्वरूप हो । यह भी हो सकता है कि अन्यान्य ग्रहों पर जीवन की खोज-बीन करने वाले वैज्ञानिकों की मूलभूत दिशाधारा ही गलत हो । कारण कि उन पर किसी और रूप में जीवन क्रीड़ा-कल्लोल कर रहा हो और मनुष्य अपनी सीमित जानकारियों के कारण उन्हें देखने-समझने में असमर्थ सिद्ध हो रहा हो । इस तथ्य को और भी अच्छी प्रकार एक उदाहरण से स्पष्ट करते हुए प्रो. गेराल्ड लिखते हैं—"हम एक ऐसे शहर की कल्पना करें जहाँ मात्र पीले रंग की कारें ही चलती हैं, इस शहर के लिए कार की पहचान पीला रंग ही हो सकता है पर अन्य शहरों के लिए भी यह निर्धारण सही साबित हो, यह आवश्यक नहीं । जीव विज्ञान द्वारा प्रतिपादित जीवन का स्वरूप महत्त्वपूर्ण होते हुए भी परिपूर्ण तथा सर्वसम्मत परिभाषा नहीं बन सकता ।

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि हमारा जीवन सम्बन्धी निर्धारण इतना संकुचित न हो कि भू-क्षेत्र के अतिरिक्त जीवन की परिकल्पना ही न की जा सके, न ही इतना अतिवादी हो कि वह निरर्थक जान पड़े । उदाहरणार्थ मात्र गति के आधार पर किसी पदार्थ को जीवित मान लेना उचित नहीं । हलचल तो परमाणु में भी होती रहती है । इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी गति करते हैं । इससे समूचा ब्रह्माण्ड ही सजीव की परिभाषा में आ जाता है पर यह मान्यता भी उपयुक्त नहीं लगती ।

कुछ वैज्ञानिकों ने जीवन का सम्बन्ध शरीर रचना तथा उसकी हलचलों से जोड़ा है । उनके अनुसार सजीव वह है जो गति, विकास, प्रजनन तथा उत्तेजना जैसी क्रियाएँ सम्पन्न कर सकता हो, पर अन्यान्य ग्रहों पर जीवन का अस्तित्व मानने तथा उसके भिन्न रूप की कल्पना करने वाले विशेषज्ञों ने इस परिभाषा को संकुचित माना तथा कहा है कि गति विकास एवं उत्तेजना की क्रियाएँ तो जलती अग्नि में भी दिखायी पड़ती हैं । ईंधन डालने पर वे भभक उठती हैं, आँधी तथा तूफान में उसकी लपटें और भी तेज हो जाती हैं, पर मात्र इन विशेषताओं के आधार पर उसे सजीव कैसे कहा जा सकता है ।

वैज्ञानिकों का एक समुदाय जीवन को जीव मण्डल की क्रियाशीलता के रूप में स्वीकारता है तथा मानता है कि जीवमण्डल पदार्थ व ऊर्जा की समन्वित व सुव्यवस्थित प्रणाली है—जो अपना सन्तुलन वातावरण में एक ऊर्जा चक्र द्वारा बनाए रखता है । पर मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि प्रकृति में ऐसे जीवित प्राणियों का, आत्माओं का भी अस्तित्व है जो अशरीरी हैं किन्तु समय-समय पर विभिन्न रूपों में अपना प्रमाण परिचय देती रहती हैं । अतएव जीवन को जीवमण्डल की क्रियाशीलता तक मानना एक अपूर्ण तथा अधूरी मान्यता होगी ।

जीवन की तरह मृत्यु का यथार्थ स्वरूप अब तक नहीं प्रस्तुत किया जा सका है । एक अनबूझ पहेली के रूप में वह विज्ञान के समक्ष चुनौती बना हुआ है । प्रश्न के उलझने तथा सम्बद्ध विषय पर विवाद के बढ़ने का कारण वे घटनाएँ रही हैं, जिनमें कितने ही व्यक्ति हृदय की धड़कन बन्द होने, श्वास गति रुकने अथवा मस्तिष्क के ठप्प हो जाने के आधार पर मृत घोषित किये गये पर बाद में चिता अथवा श्मशान से जीवित उठ बैठे । ऐसी घटनाएँ भी प्रकाश में आयी हैं जिनमें कितने ही व्यक्ति कई दिनों बाद भी मृत्यु से वापस लौट आये तथा पूर्ववत् जीवन जीने लगे । रेमण्ड मूडी की 'लाइफ आफ्टर लाइफ', श्रीमती रेनारुथ की 'रिइनकार्नेशन एण्ड साइन्स' तथा इस विषय पर लिखी अन्यान्य पुस्तकों में ऐसी अगणित घटनाओं का विस्तृत उल्लेख है ।

'साइन्स' अगस्त १९८० पत्रिका में प्रकाशित एक लेख "पैनल आस्क्सह्वेन इज ए परसन डेड" में विभिन्न देशों के मूर्धन्य वैज्ञानिकों, चिकित्सकों बायोमेडिकल विशेषज्ञों, पुरोहित-पादरियों की सम्पन्न हुई एक संयुक्त बैठक की चर्चाओं का सार संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा यह बताता है कि वर्त्तमान समय में भी मृत्यु विषयक धारणाएँ अत्यन्त उलझी हुई हैं । विशेषज्ञों के परस्पर विरोधी मत मृत्यु की एक निश्चित परिभाषा देने में अक्षम सिद्ध हो रहे हैं ।

इस विषय पर वाशिंगटन में सम्पन्न हुई गोष्ठी में विस्तृत चर्चा हुई तथा अनेकों प्रकार के मत सामने आये । चिकित्सा विज्ञान के अनुसार मस्तिष्कीय क्रिया-कलापों का पूर्णतः ठप्प पड़ जाना, हृदय की धड़कन का बन्द हो जाना तथा श्वसन तन्त्र की गतिविधि का रुक जाना किसी भी मृत्यु का चिह्न माना जाता है, पर परिचर्चा में सम्मिलित हुए विशेषज्ञों ने इस परिभाषा को परिपूर्ण नहीं माना । अमेरिका के विभिन्न प्रान्तों में भी मृत्यु विषयक निर्धारणों में अन्तर है । पच्चीस प्रान्तों में मान्यता है कि मस्तिष्कीय क्रियाशीलता का बन्द होना मृत्यु का लक्षण है जबकि पच्चीस अन्य प्रान्तों में हृदय गति तथा श्वसन तन्त्र की गति का पूर्णतः बन्द हो जाने को मृत्यु माना गया है । कानून द्वारा भी यह निर्धारण मान्यता प्राप्त है । तीन अन्य प्रान्तों में कानूनी तौर पर ब्रेन डेथ को मृत्यु की संज्ञा दी गयी है ।

पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय के कानून अध्यापक तथा 'ब्रेन डेथ इशू' के विशेषज्ञ एलेक्जेण्डर क्रेपन, जो गणित मृत्यु आयोग के अध्यक्ष भी हैं, ने अपना अभिमत व्यक्त करते हुए कहा है कि "मृत्यु का सर्वमान्य निर्धारण होना चाहिए जिसमें ब्रेन डेथ, हृदय का बन्द होना आदि की समन्वित प्रक्रिया सम्मिलित हो ।"

मूर्धन्य वैज्ञानिक तथा विचारक रूबी जे. डेविड ने कहा है कि "ब्रेन डेथ को मृत्यु मानकर चिकित्सा उपक्रम बन्द करा देना एक अमानवीय प्रक्रिया होगी । यह एक प्रकार की मानव हत्या है । चेतना की संज्ञा शून्यता को मृत्यु मानना एक भारी भूल होगी । कारण कि चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में ऐसे असंख्यों प्रमाण मौजूद हैं जिसमें कितने ही व्यक्ति संज्ञा शून्यता अथवा ब्रेन डेथ की स्थिति में भी जीवित बने रहे । साथ ही ऐसे रहस्यमय योगियों का भी उदाहरण मिलता है जो अपनी शारीरिक हलचलों, मस्तिष्क, हृदय, श्वसन आदि तन्त्रों के क्रिया-कलापों को स्वेच्छापूर्वक रोकने में समर्थ होते हैं । भौतिक प्रयोग परीक्षणों के आधार पर भी ऐसे प्रमाण मिल चुके हैं ।

उटाह विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक मोसेस टेलर का कहना है कि किसी को मृत घोषित करने के पूर्व सभी लक्षणों का सूक्ष्म अध्ययन करना आवश्यक है, तभी किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव है । प्रचलित मृत्यु की परिभाषा अपने आप में अपूर्ण है । उसका कोई सुनिश्चित निर्धारण नहीं है । उदाहरणार्थ ई. ई. जी. यन्त्र ब्रेन हलचलों के मापन हेतु सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, पर मूर्च्छना आदि की स्थिति में उसकी रिपोर्ट गलत भी हो सकती है ।

अध्यात्म दर्शन जीवन मरण को एक अविच्छिन्न चेतना प्रवाह की दो भिन्न स्थिति भर मानता है तथा कहता है कि मरण तो शरीर परिवर्त्तन की एक सामान्य प्रक्रिया मात्र है । मूलतः जीवन सत्ता कभी नहीं मरती उसका अस्तित्व सदा बना रहता है । अभ्यास क्रम में न होने के कारण ही वह अटपटा, असामान्य तथा भयानक प्रतीत होता है । उसी तरह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस प्रकार कि अनजाना सफर । मृत्यु जीवनयात्रा का एक पड़ाव मात्र है । जीवन का अस्तित्व शाश्वत है । उसके प्रवाह में मृत्यु तो एक मोड़ मात्र है ।

इतना जानने के उपरान्त इस बहुमूल्य जीवन का उपयोग उसी प्रकार किया जाना चाहिए, जिस संदर्भ में इसके सदुपयोग का निर्देश तत्वज्ञानी ऋषियों ने दिया है । चरम लक्ष्य की प्राप्ति तभी संभव है । इससे कम में नहीं ।

बीज जैसी जीवन की तीन गतियाँ

बीज की तीन गति हैं—जमीन में गढ़े—गलकर उगे और पौधा बने, पौधे के बाद वृक्ष बने । वृक्ष पर फल लगें और उनसे अनेक बीज निकलें और वंश परम्परा चलायें इसे बहादुरी कहते हैं ।

दूसरी गति यह है कि किसी गृहस्थ के हाथ पड़े, पिसकर आटा बने । आटे की रोटी बने । उसे कोई खाये और अन्त में उसकी मल के रूप में परिणति हो । यह विवशता की गति है ।

तीसरी गति है—कृपणता की । दाना अपने आपको सब झंझटों से बचाकर कहीं लुका छिपा रहे और कीड़े-मकोड़ों की खुराक बनकर सड़ गल जाय ।

मनुष्य जीवन की भी तीन गति हैं । वह जिसमें पुण्य परमार्थ के निमित्त अपने को लगाया जाय । ऐसे काम में अपने पराक्रम पुरुषार्थ को—सत्ता को, अस्तित्व को खपाया जाय, जिससे इस समय तो अपनी सत्ता किसी श्रेष्ठ काम में खपा दी जाय पर उस पराक्रम का प्रतिफल ऐसा मिले जिससे लोक मंगल के उपयोगी कार्य बने । पीछे की एक परम्परा बने । अनेक लोग स्मरण किया करें ।

दूसरी गति विवशता में अपने को किसी के हवाले होने दिया जाय । सामर्थ्य और वीरता के अभाव में अपने को बचाया भी नहीं जा सकता । कोई न कोई पकड़ ही लेता है । पकड़ने वाला अपना स्वार्थ सिद्ध करता है । भावना के अभाव में हर किसी की यही गति होती है । जो कमजोर हैं उन्हें किसी न किसी के चंगुल में फँसना पड़ता है । इसके उपरान्त मल के रूप में उनकी दुर्गति होती है । कोई उनकी चर्चा नहीं करता ।

तीसरी गति मनुष्य जीवन की संकुचित स्वार्थियों की है । कायरों और कृपणों की है । वे अपने आपको छिपाते बचाते रहते हैं । छिपते लुकते रहते हैं । किसी के काम नहीं आते । किसी के चंगुलों में नहीं फँसते । चाहते हैं कि कोई उनसे किसी के काम में आने की न कहे । कहे तो अपने को छिपा लें । ऐसे लोग सड़ते घुनते हैं । किसी के काम नहीं आते । बचते लुकते रहने पर भी अन्ततः किसी न किसी के कुचक्र में फँसते ही हैं । कीड़े-मकोड़े उन्हें खाने लगते हैं और ऐसी धूलि बन जाते हैं जिसे झाड़-बुहार कर कूड़े-करकट के ढेर में फेंक दिया जाता है ।

हर किसी का जीवन इन तीन में से एक गति का भागीदार होता है ।

पुण्यात्मा लोग बीज बनकर अपने को गलाते हैं । अंकुर के रूप में फूटते और पौधों के रूप में हरियाली से खेत की शोभा बढ़ाते हैं । कितने ही लोग उनके बढ़ने की आशा लगाये रहते हैं । खाद पानी देते हैं । रखवाली करते हैं और जीव पेड़ के रूप में बड़े बनकर फलते फूलते हैं तो अपनी तथा लगाने वाले की कीर्ति बढ़ाते हैं । जो छाया में बैठते हैं सो प्रसन्न । जो फल खाते हैं सो प्रमुदित । फलों में से बीज निकलते हैं और वह एक बीज जो गला था, उसकी वंशवृद्धि होती चली जाती है । एक के स्थान पर सैकड़ों बीज उत्पन्न होते हैं और वंश परम्परा को हर साल बढ़ाते रहते हैं । सराहनीय जीवन यही है ।

आलसी, अकर्मण्य, भावना रहित लोग भी प्रकृति क्रम के अनुसार किसी न किसी के चंगुल में फसेंगे ही कोई न कोई उनसे अपना स्वार्थ सिद्ध करेगा ही और अन्त में मल के रूप में किसी निरर्थक स्थान पर फेंक देंगे । वे दुर्गन्ध बनकर अपने भाग्य को कोसते रहेंगे ।

सबसे अभागे वे हैं जो अपनी जान बचाते रहते हैं पर वह भी बचती नहीं । कीड़े मकोड़ों की खुराक बनकर हर दृष्टि से निरर्थक बन जाते हैं । ऐसा जीवन हर दृष्टि से निन्दनीय और निरर्थक ही है ।

अपना स्वरूप और दायित्व समझें

गीताकार ने एक ऐसा रहस्योद्घाटन किया है जिस पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देने से मनुष्य सारी विपत्तियों से छुटकारा पा सकता है और सारी सम्पत्तियों से अपना आँचल भर सकता है । सभी जानते हैं कि शत्रुओं के द्वारा मुसीबतें धकेली जाती हैं और सन्मित्र अपनी सहायता देकर सुखों का सम्बर्धन करते हैं । इसलिए शत्रुओं से पीछा छुड़ाने और मित्रों का सहयोग बढ़ाने के लिए हर बुद्धिमानशील को प्रयत्नरत रहना चाहिए ।

यह मित्र और शत्रु कौन हैं जो निरन्तर साथ रहते हैं और बिना विश्राम लिए अपना काम करते रहते हैं । निश्चित रूप से यह बाहर वाले नहीं हो सकते । बाहर वालों के अपने भी तो कुछ निजी काम रहते हैं उन्हें छोड़कर सदा सर्वदा साथ कैसे रहें ? फिर उनका निवास भी तो हमारे घर में नहीं होता । कहीं दूर रहते होंगे । ऐसी दशा में इतनी दूरियाँ रहते हुये, अपना समय बर्बाद करते हुये हमारे साथ-साथ कैसे रहें ? फिर हमें लाभ हानि पहुँचाने में उन लोगों को कुछ कमीशन भी तो नहीं मिलता । ऐसी दशा में उनका निरन्तर साथ रहना और हमारे लिए ही मरते खपते रहना एक प्रकार से असम्भव ही है । ऐसी दशा में वे मित्र शत्रु कौन हैं ? जो निरन्तर साथ रहते हुए हमारे वर्त्तमान और भविष्य को बनाने बिगाड़ने में निरन्तर लगे रहें ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गीताकार का कथन है कि **''आत्मैवह्यात्मनो मित्र आत्मैव रिपुरात्मन''** अर्थात्—अपना आपा ही अपना मित्र और शत्रु है । जिसने अपने आप को कुसंस्कारी बना लिया वह पहले सिरे का शत्रु है और जिसने उसे सुसंस्कारी बनाया वह सच्चा सुहृदय है । अपने ही दोष-दुर्गुण—कषाय-कल्मष हमें कुमार्ग के गर्त्त में धकेलते हैं और नाना प्रकार के त्रास सहने को विवश करते हैं । साथ ही यह भी निश्चित है कि अपना आपा यदि सुसंस्कारी है, सद्गुणों से अभ्यस्त हैं तो उसी के बलबूते उस मार्ग पर चला जायेगा जिसमें पग-पग पर सुख-शान्ति के शोभायान सुगन्धित फूल खिले हुये हैं ।

मनुष्य क्या है ? काया की दृष्टि से हाड़-माँस का पुतला और आत्मा की दृष्टि से चेतना का पुंज । यह चेतना ही काया को जिधर-तिधर घसीटती फिरती है । उसकी मान्यता, भावना-आकांक्षा और विचारणा जैसी भी होती है, शरीर को उसके अनुरूप अपनी गतिविधियों का निर्माण करना पड़ता है । चोर और सन्त की काया में कोई विशेष अन्तर नहीं होता, दोनों ही एक ढाँचे में ढले होते हैं । अन्तर मनोभूमि का होता है । दोनों के मिलने से एक समग्र व्यक्तित्व बनता है । गुण, कर्म, स्वभाव दिखते तो शरीर पर आच्छादित हैं पर वस्तुतः वे मन के अनुरूप अपनी प्रेरणायें फेंकते हैं और उसी स्तर की जीवनचर्या का उपक्रम बना लेते हैं । कहना न होगा कि जिस स्तर का चिन्तन और चरित्र होता है, उसी के अनुरूप परिस्थितियाँ घिर आती हैं । जैसे ही लोगों से सम्पर्क साधता है वैसी ही मण्डली बनती है । वैसे ही साधन जुटते हैं । वैसे ही काम बन पड़ते हैं । यही है मनुष्य का समग्र स्वरूप जो अनुरूप प्रतिफल खींच बुलाता है । मनःस्थिति से परिस्थितियाँ बनती हैं और फिर उनका प्रतिफल प्रकृति की सुनिश्चित व्यवस्था के अनुरूप मिलना आरम्भ हो जाता है । कर्म और फल का गुँथा हुआ चक्र है । कुकृत्यों के करने लगने पर जीवन का स्वरूप हेय बन जाता है । हर ओर से घृणा भर्त्सना बरसती है । परिचित जनों का सहयोग हटता और घटता जाता है । प्रतिकूलतायें बनती हैं और समस्याओं का जंजाल एवं विपत्तियों का घटाटोप घिरना आरम्भ हो जाता है । इसके लिए किसी दूसरे को दोष देना व्यर्थ है । दूसरे अपने ही कामों में व्यस्त हैं उन्हें इतनी फुर्सत कहाँ है जो अपना काम हर्ज करके दूसरों के मामलों में टाँग अड़ाते चलें ।

अपने ही कृत्य हैं जो स्तर का प्रतिफल स्वयं ही विनिर्मित करते रहते हैं । ग्रह दशा, देवी, देवता, भाग्य विधाता, सभी निर्दोष हैं । वे किसी से राग, किसी से द्वेष क्यों करेंगे? किसी को दुःख देने, किसी पर सुख उंडेलने के व्यर्थ कार्य का बोझा कोई क्यों ढोयेगा और अकारण क्यों किसी से निन्दा, किसी से प्रशंसा सुनता फिरेगा । सम्बद्ध जनों के सम्बन्ध में भी यही बात है । वे किसी के अनुकूल किसी के प्रतिकूल होते हैं तो उसका भी कुछ कारण होता है । वातावरण दौड़कर हमारे पास नहीं आता वरन् अपनी रुचि के अनुरूप हमीं उसे तलाश करते और उसके साथ गुँथते हैं । उद्यानों में भौंरे भी रहते हैं और गुबरीले भी । भौंरे फूलों पर बैठते और मकरन्द पान करते हैं । इसके विपरीत उसी क्षेत्र में पड़ी हुई गन्दगी तलाश करने गुबरीले निकलते हैं तो उन्हें सड़े-गोबर के ढेर भी जहाँ-तहाँ मिल जाते हैं । एक अपने सौभाग्य को सराहता है दूसरा सिर धुनता और दुर्भाग्य को कोसता है । इसमें निमित्त कारण वह स्वयं ही है कोई और नहीं ।

एक जैसी परिस्थिति में जन्मे, पले और बड़े लोगों में से एक महापुरुषों का श्रेय सम्मान पाता है । दूसरा गयी-गुजरी स्थिति में दिन गुजारता है या ऐसा बन जाता है जिसकी हर कोई निन्दा करे । विरोध करे और त्रास दे । इस अन्तर की वास्तविकता तलाश की जाय तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि उन दोनों ने भिन्न-भिन्न दिशायें चुनीं और तदनुरूप अवगति और प्रगति के भाजन बने ।

चाहने को हर व्यक्ति अच्छी परिस्थितियाँ चाहता है और प्रगतिशील बनना चाहता है । पर उस कार्य में सफल सहयोग किससे मिल सकता है । यह भूल जाता है । गीताकार ने इस सन्दर्भ में कहा है—**'उद्धरेत् आत्मनात्मानं नात्मानं अवसादयेत्'**—अर्थात् अपना उद्धार आप करें । अपने आप को गिरायें नहीं । दिशा का चयन और निर्धारण स्वयं करना पड़ता है । उस राह पर अपने पैरों आप चलना पड़ता है । इसके उपरान्त तदनुरूप साथी सहयोगी मिलते चले जाते हैं । इस संसार में किसी बात की कमी नहीं । हम जिधर भी चलेंगे उधर ही सहयोगी मिलते चले जायेंगे । चोर-उचक्कों को वैसे ही मित्र और अवसर मिलते जाते हैं जो कमी रह जाती है वह जेलखाने पहुँचने पर अनेकानेक प्रवीण पारंगतों द्वारा उसकी पूर्ति हो जाती है । यदि सन्त सज्जन, कलाकार विद्वान बनना है तो उसकी राह बताने वाले और खोजने पर सहायता देने वाले अपने उसी क्षेत्र में मिल जाते हैं । संसार का इतिहास इन्हीं उदाहरणों से भरा पड़ा है ।

अपनी आँखें सही हैं तो संसार के सभी दृश्य दीखेंगे यदि वे न रहें तो अन्धे के लिए सूर्य और चन्द्रमा तक बुझ जाते हैं और सारी दुनिया सदा सर्वदा के लिए काली चादर से ढक जाती है । अपने कान सही हैं तो एक से एक मधुर और ज्ञानवर्धक शब्द सुने जा सकते हैं पर यदि वे खराब हो जायें तो सारी दुनिया मौन हो जायेगी । केवल साँय-साँय की ध्वनि ही कान की झिल्ली में टकराती रहेगी । अपना दिमाग सही हो तो दुनिया में समझदारी की कमी नहीं पर यदि दिमाग खराब हो जाय तो यह सारा संसार पागलों से भरा दिखाई पड़ेगा और जो भी गतिविधियाँ हो रही होगीं वे अस्त-व्यस्त एवं खीज उत्पन्न करने वाली प्रतीत होंगी । घर की खिड़कियाँ बन्द कर ली जायँ तो बाहर उगा हुआ सूरज प्रकाश की एक किरण भी न भेज सकेगा । चलता हुआ पवन बाहर ही घूमता रहेगा । घर की सीलन तक न सुखा सकेगा । सूर्य उन्हीं के लिए है जिनकी आँखें हैं । गीत

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्हीं के लिए है जिनके कान हैं । समझदारी उन्हीं के लिए है जिनकी अपनी समझ सही है ।

प्रकृति के संकेतों पर चलने वाले सृष्टि के सभी जीव-जन्तु निरोग रहते हैं । समयानुसार जन्मते मरते तो हैं पर बीमार नहीं पड़ते । संसार में एक ही मूर्ख जानवर है जो बीमारियों को न्योंत-न्योंत कर बुलाता है—वह है मनुष्य । इन्द्रिय असंयम में अति बरतने के कारण उसका पेट खराब हो जाता है और अपच से अनेकानेक बीमारियों का सिलसिला चल पड़ता है । ब्रह्मचर्य की मर्यादाओं का उल्लंघन करने पर खोखला हुआ दिमाग पग-पग पर अशक्ति का—मनोबल के अभाव का अनुभव करता है । इससे भिन्न प्रकृति के दूसरे लोग हैं जो संयम बरतते हैं और जीवन के हर क्षेत्र में सफल, सुखी एवं परिपुष्ट रहते हैं । यह सब कुछ अपने ही चयन निर्धारण पर निर्भर है ।

बुद्धिमानों का कथन है—कि अपने को, अपनी क्षमता एवं गरिमा को जानो और उसका सदुपयोग करो । उपनिषद् का बीज मन्त्र है—**''आत्मा वा अरे ज्ञातव्य''** अपने आपको जानो और उसे सम्भालो । जिसने यह जान लिया, समझना चाहिए कि संसार में जो कुछ जानने योग्य था, सब कुछ जान लिया । योग का स्वरूप है—अन्तर्मुखी होना अपने स्वरूप और बल को समझना । समझकर वह मार्ग अपनाना जिससे आत्म-कल्याण का मार्ग खुलता हो और आमन्त्रित विपत्तियों की धमा चौकड़ी वाला द्वार बन्द होता हो ।

बुद्ध राजमहल छोड़कर आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए सघन वन में तप करने गये । अन्तर्मुखी होकर अपने भीतर छिपी हुई महान सत्ता और महत्ता के दर्शन किये । इतना होते ही वे राजकुमार से बदलकर भगवान हो गये । जिस वट वृक्ष के नीचे उन्हें बोध हुआ था । उसका नाम बोधि वृक्ष पड़ा । उसकी टहनियाँ काट-काटकर संसार भर के बुद्ध भक्त ले गये और उन टहनियों द्वारा अपने-अपने देशों में बोधि वृक्ष लगाये जिनका सम्मान बुद्ध के प्रतिनिधि जैसा हुआ ।

अपना सही स्वरूप न समझ पाने के कारण ही लोग हेय जीवन जीते, और निकृष्ट दुष्प्रवृत्तियों में लिपटे हुये नरक भोगते रहते हैं । अपने को ईश्वर का युवराज समझने की मान्यता यदि जग पड़े तो फिर यह निश्चित है कि पिता के सौंपे हुये उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में मनुष्य प्रमाद न करेगा । अपना व्यक्तित्व देवोपम गढ़ेगा और पशु-पक्षियों की तरह पेट प्रजनन तक सीमित न रहकर विश्व उद्यान को समुन्नत एवं सुसंस्कृत बनाने में संलग्न होगा । जिसके भी कदम इस मार्ग पर उठे, उसका निश्चित रूप से काया-कल्प हुआ । तुच्छ से महान, लघु से विभु और नर से नारायण बना । नर पशुओं की वासना, तृष्णा और अहंता की मदिरा पीकर उन्मुक्त जैसी स्थिति में उद्धत कर्म करते देखा जाता है । आत्म विस्मृति की स्थिति में उन्हें लज्जा, भय, संकोच भी नहीं होता और कुकर्मों में निरत रहने लगते हैं । यह स्थिति आत्म-बोध के अभाव में ही बनती है । जैसे हेय स्तर का जन समाज इन दिनों है उसी को देखते-देखते उसी में घुल जाता है और वैसे ही आचरण करने लगता है ।

मनुष्य का यह सर्वोपरि सौभाग्य है कि वह अपने स्वरूप को समझे । सोऽहम् की ध्वनि उच्चारे और अपने गौरव के अनुरूप जीवन का स्वरूप बदल डाले । कहना न होगा कि यह स्वरूप महामानवों, देवात्माओं, ऋषियों और मार्गदर्शकों जैसा ही हो सकता है उसमें अपने गुण, कर्म, स्वभाव को अनुकरणीय, अभिनन्दनीय, बनने की ऐसी उमंग उठ रही होगी जो चरितार्थ हुये बिना चैन ही न लेने दे । भगवान ने मनुष्य को छै इंच का पेट और छै फुट के हाथ दिये हैं । औसत भारतीय स्तर का निर्वाह वह दो घण्टे नित्य के परिश्रम से भी कर सकता है । परिवार का दायित्व ऊपर हो तो उन सदस्यों को स्वावलम्बी, स्वाभिमानी बनाकर इस योग्य बनाया जा सकता है कि वे किसी के गले का भार न रहें और परिवार संस्था को सींचते पोसते हुए उसी खेत की शोभा भी बढ़ाते रह सकते हैं और घास से अपना निर्वाह भी करते रह सकते हैं । लालच, तृष्णा, ममता का उन्माद यदि लाद लिया जाय तो दुर्व्यसनी जीवन के लिए तो जो भी कमाया जाय कम पड़ेगा । किन्तु 'औसत भारतीय' शब्द यदि याद रहे तो बहुत सरलतापूर्वक कम समय में गुजारे की व्यवस्था चलती रहती है ।

इसके बाद जो समय बचता है उसे समय की महती समस्याओं के समाधान में लगाया जाना चाहिए । पतन और पराभव से जूझने में एक वाणधारी योद्धा की तरह जुट जाना चाहिए । कोटि-कोटि मानवों की विपन्नता को दूर करने के लिए यदि अपने आप को बीज की तरह गला देने की उमंगें उठें तो उस महाकाल की पुकार को पूरा करने में छोटी से छोटी स्थिति का आदमी महती भूमिका सम्पन्न कर सकता है । लोक-मानस का परिष्कार और सत्प्रवृत्ति सम्बर्द्धन के दो कार्यों की इतनी शाखा प्रशाखायें हैं जिन्हें सम्पन्न करने के लिए अपनी क्षमता एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप कार्यक्रम चुनने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए ।

अपना सुधार, संसार की सबसे बड़ी सेवा है । जिसने अपने को जीता, उसने सारा संसार जीत लिया । संसार का सुधार अपने सुधार से ही आरम्भ होगा । हम बदलें तो सम्बद्ध वातावरण का आश्चर्यजनक ढंग से बदल जाना सुनिश्चित है । समय की यह चुनौतियाँ प्रत्येक विचारवान् को झकझोरती हैं कि वह अपने स्वरूप एवं उत्तरदायित्व को समझें और उसके अनुरूप गतिविधियों को बदलने में देर न करें ।

आदमी को आदमी बनना होगा

जीवन का यदि कोई दर्शन न हो, उसके साथ कुछ आस्थाएँ, मान्यताएँ जुड़ी न हों, किन्हीं सिद्धान्तों का समावेश न हो तो आदमी, आदमी न रहकर एक प्राणी मात्र रह जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । गुजारे भर का लक्ष्य लेकर चलने वाले अपनी योग्यता और तत्परता के अनुसार सुविधा साधन तो न्यूनाधिक मात्रा में उपार्जित कर लेते हैं किन्तु कोई ऊँचा लक्ष्य सामने न रहने पर अन्तरात्मा में जीवन्त उत्साह नहीं सँजो पाते । यों सामान्य उत्साह तो भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं की आतुर लालसा से भी उत्पन्न हो सकता है पर उसके नैतिक बने रहने में सन्देह ही बना रहेगा । भौतिक लाभों की अपेक्षा यदि किन्हीं आदर्शों की पूर्ति को लक्ष्य बनाकर चला जाय तो उत्साह भरी सक्रियता के अतिरिक्त उसके साथ उत्कृष्टतावादी तत्व भी जुड़े रहेंगे और उन प्रयासों से आत्मिक उन्नति का लाभ होता रहेगा भले ही भौतिक लाभ उतना न हो । लोकहित की ऐसी महत्त्वाकांक्षाएँ जिनमें अपने पुरुषार्थ का प्रकटीकरण ही नहीं आदर्शवादी होने का भी परिचय मिलता हो, निश्चित रूप से उस महत्त्वाकांक्षी के व्यक्तित्व को सम्मानास्पद बनाती हैं । इस उपलब्धि के सहारे मनुष्य उस स्थिति में पहुँच जाता है जिसमें जन सहयोग के सहारे वैसा कुछ प्राप्त किया जा सके जो धन सम्पदा से भी अधिक मूल्यवान है ।

मानवी प्रगति की व्याख्या करते हुए हमें उसके दृष्टिकोण और चरित्र के स्तर का भी मूल्यांकन करना चाहिए । भौतिक दृष्टि से सुखी सम्पन्न बन जाने पर भी यदि मनुष्य उद्देश्य विहीन और आदर्श रहित बना रहे तो वह अपने लिए सन्तोष एवं गौरव प्राप्त न कर सकेगा । समाज में उसे न तो उपयोगी माना जायेगा और न उसे सम्मान दिया जायेगा ।

नोबेल पुरस्कार विजेता फ्रान्सीसी वैज्ञानिक अलोक्सिस करेल ने कहा है—हम बहुत कुछ खोज चुके और अगले दिनों इससे भी अधिक रहस्यपूर्ण प्रकृति गत रहस्यों को खोजने जा रहे हैं, किन्तु अभी भी ''मनुष्य'' पहले की तरह ही अविज्ञात बना हुआ है । सच तो यह है कि वह इस प्रकार खोता चला जा रहा है कि अगले दिनों उसे खोज निकालना कठिन हो जायेगा । मनुष्य की ज्ञान सम्पदा आश्चर्यजनक गति से बढ़ी है, पर अपने सम्बन्ध में वह अभी भी असीम अज्ञान से जकड़ा हुआ है ।

विद्वानों की संख्या बढ़ती देखकर प्रसन्नता होती है पर खेद इस बात का है कि 'ज्ञानी' तेजी से समाप्त होते चले जा रहे हैं । विद्वान और ज्ञानी का अन्तर बताते हुए चीनी दार्शनिक लाओत्से कहते थे—जो अपने को जानता है वह ज्ञानी और जो दूसरों को जानता है वह विद्वान है, अपने सम्बन्ध में बढ़ता हुआ अनाड़ीपन ही मनुष्य को जटिल उलझनों में और समाज को कठिन समस्याओं में जकड़ता चला जा रहा है ।

'मैन दी अननोन' ग्रन्थ के लेखक विज्ञानी अलेक्सिस ने लिखा है मानवी काया का रासायनिक विश्लेषण सरल है । अवयवों की हरकतें समझने में भी सफलता मिली है । सोचने का तन्त्र मस्तिष्क किधर चलता और किस तरह करवटें बदलता है इसका पता भी लगता जा रहा है कि उसकी मूल सत्ता में विद्यमान 'मानव' की खोज खबर लेने वाले घनाघोरी दृष्टिगोचर नहीं होते । सभ्यता और सम्पत्ति का विकास हो रहा है, पर मनुष्य का पिछड़ापन बरकरार है । आदमी ने दुनिया को अपने योग्य बनाया है पर वह अपने लिए 'पराया' बन गया है । सूनेपन का दबाव बढ़ रहा है और भीड़ से अलग होकर जब वह देखता है तो लगता है न वह किसी का है और न कोई उसका । यह अपने आपे की क्षति इतनी बड़ी है जिसकी पूर्ति कदाचित प्रगति के तथाकथित सभी चरण मिलकर पूरा नहीं कर सकेंगे ।

मनुष्य के खण्ड-खण्ड का चिन्तन विश्लेषण चल रहा है । उसके अस्तित्व के एक-एक भाग को समग्र शास्त्र का रूप दिया गया है । शरीरशास्त्र, मनःशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र जैसे खण्डों की जानकारी भी है तो, उपयोगी पर समग्र मानव को समझे बिना उसकी मूल प्रकृति और प्रवृत्ति पर ध्यान दिये बिना एकांगी आंशिक समाधानों से कुछ बनेगा नहीं । एक छेद सीते-सीते दूसरे और नये फट पड़ें तो उस मरम्मत से कब तक काम चलेगा । विज्ञान की शोधें मनुष्य की कतिपय आवश्यकताओं को पूरा करने और जानकारियों को बढ़ाने के उद्देश्य से पूरी की जाती हैं किन्तु उस महाविद्या की ओर से क्यों उदासी है जिसे समग्र मानव की विवेचना—साइंस आफ मैन कह सकते हैं ।

विज्ञान के आविष्कारों में अपने आपको खपाया—श्रमिकों के स्वेदकणों ने विशाल कार्य निर्माण सम्पन्न किये हैं—इंजीनियरों की तन्मयता से निर्माण की योजनाएँ बनती हैं । कलाकार अपनी चेतना भाव-तरंगों में घुलाकर उपस्थित लोगों को मन्त्र-मुग्ध करते हैं । आत्मविज्ञानी अपने चिन्तन और कर्म का समन्वय करते हुए अपने व्यक्तित्वों को एक सफल प्रयोगशाला के रूप में प्रस्तुत कर सके तो जन-साधारण में भी उसके लिए उत्साह उत्पन्न होगा । लक्ष्य ऊँचा हो और सङ्कल्प प्रखर तो फिर मनुष्य के लिए बड़े से बड़ा उत्सर्ग कर सकना भी कुछ कठिन नहीं है । चिन्तन और व्यवहार का समन्वय करती हुई आदर्शवादी आस्थाओं की स्थापना ही अपने युग की महान क्रान्ति हो सकती है । उज्ज्वल भविष्य की आशा उसी से बँधेगी । इसका नेतृत्व करने के लिए ऐसे अग्रगामियों की आवश्यकता है जो लोक शिक्षण के लिए सबसे प्रभावशाली उपाय 'आदर्शों' के अनुरूप आत्म निर्माण अपना सकें और जलते दीपक द्वारा नये दीपकों के जलने की परम्परा स्थापित कर सकें ।

व्यक्ति, समाज का एक मूल्यवान घटक है । उसके प्रयासों का परिणाम उस अकेले तक ही सीमित नहीं रहता वरन् अनेकों की इसमें साझेदारी रहती है । समुद्र की लहरें एक दूसरे को प्रभावित करती हैं और मनुष्य एक दूसरे पर अनायास ही अपना प्रभाव छोड़ते हैं । बुरा व्यक्ति अपनी बुराई करके स्वयं दुष्परिणाम भुगत लेता तो कोई चिन्ता की बात नहीं थी, पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि उसकी प्रत्येक गतिविधि की दूसरों पर भली-बुरी प्रतिक्रिया होती है । भला मनुष्य परोक्ष रूप से भली परम्परा पैदा करके असंख्यों को किसी न किसी रूप में सुखी बनाता और ऊँचा उठाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । इसके विपरीत दुर्बुद्धि ग्रस्त व्यक्ति अपने दुष्ट चिन्तन और चरित्र से कइयों को अनुयायी बनाता है और कितनों को ही कष्ट कारक परिस्थितियों में धकेलता है । अस्तु समग्र प्रगति की सुख-शान्ति दायिनी दिशा अभीष्ट हो तो व्यक्ति के अन्तराल को परिष्कृत बनाने के लिए भी उतने ही प्रयत्न करने पड़ेंगे जितने कि भौतिक सुविधा सम्वर्धन के लिए किये जाते हैं । भीड़ को दिशा निर्देश देने का काम चलता रहे पर व्यक्तित्वों की गहरी परतें कितनी मूल्यवान हैं इसका महत्त्व आँखों से ओझल न होने पाये इसका पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए ।

दिशा तो हमें ही चुननी पड़ेगी

मनुष्य जीवन परमात्मा की असाधारण कलाकृति एवं अनुपम उपहार है । ऐसा सुयोग संसार के किसी प्राणी को नहीं मिला । न ऐसी विलक्षण शरीर संरचना, जिसे अनेक जगहों से तोड़ा-मरोड़ा जा सके और एक से एक अद्भुत कार्य किये जा सकें । न ऐसा जादू के पिटारे जैसा मस्तिष्क जिसके कण-कण में कला-कौशल, कण-कण में तत्वज्ञान और पदार्थ विज्ञान के भण्डार भरे पड़े हों । इतना सौन्दर्य और इतना कौशल अन्य किसी प्राणी में नहीं पाया जाता । यह अनुदान किसी पक्षपात या अनुग्रह के कारण नहीं मिला है वरन् सृष्टा ने बहुत सोच समझकर दिया है । इसलिए कि वह ज्येष्ठ पुत्र के नाते अपने विशिष्ट कर्त्तव्यों और दायित्वों का निर्वाह कर सके । अपनी अपूर्णता को पूर्णता में विकसित करने और सृष्टा के विश्व उद्यान को सुरम्य, समुन्नत बनाने की जिम्मेदारी को भली प्रकार वहन कर सके ।

अन्य प्राणियों के लिए उदर पूर्ति भी एक बड़ा काम है । वे सारे दिन परिश्रम करने पर अपना पेट भर पाते हैं, पर मनुष्य यदि चाहे तो दो मुट्ठी अनाज में पेट भर सकता है और उतना भर कमाने के लिए कुछ घण्टे का श्रम पर्याप्त हो सकता है । परिवार को यदि अनावश्यक रूप से बड़ा बनाकर कन्धों पर न लादा जाय तो उसे स्वावलम्बी और सुसंस्कारी बनाने के लिए थोड़े से समय से काम चल जाना चाहिए । इसके उपरान्त भी इतना समय तो बच ही जाता है कि यदि उसे आलस्य, प्रमाद या अनावश्यक स्वार्थ संचय में न गँवाया जाय तो उन कामों के लिए पर्याप्त अवसर मिल सकता है, जिनके लिए कि यह सुर दुर्लभ मनुष्य शरीर मिला है ।

विश्व के महामानवों ने एक से एक बढ़कर श्रेष्ठ काम किये हैं और अपने को अनुकरणीय अभिनन्दनीय बनाया है । साथ ही पेट भरने और परिवार की जिम्मेदारी निभाते रहे हैं । व्यस्तता और अभावग्रस्तता ऐसे दो बहाने हैं, जिनकी आड़ में व्यक्ति अपने विशिष्ट कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों से लुकता-छिपता और अपने को, दूसरे को धोखा देने वाले बहाने बनाया करता है ।

यदि कोई अपनी स्थिति का न्यायपूर्वक पर्यवेक्षण करे, तो पेट परिवार का भरण-पोषण करने के उपरान्त भी उसे उतनी सुविधा मिल सकती है जिससे अपनी पूर्णता और विश्व—वाटिका की सेवा—साधना भली प्रकार बन सके । पर जो ठाली जीते हुए भी व्यस्तता का बहाना करे और औसत भारतीय स्तर की सुविधाएँ रहते हुए भी अभावग्रस्तता का रोना रोये, तो उस प्रवंचना के लिए कोई क्या करे ?

प्रकृति की अद्भुत संरचना है—मनुष्य । यों उसने विभिन्न प्रकार के ग्रह-गोलक, जीव-जन्तु, खनिज, पर्वत, जलाशय आदि बनाये हैं, पर मनुष्य उन सब में अनौखा है । ब्रह्माण्डीय चेतना, और पदार्थ सत्ता में जो कुछ विशेषताएँ हैं, वे सभी बीज रूप में मनुष्य के शरीर और मानस में इस प्रकार समाहित की गयी हैं कि वह चाहे जितनी भी मात्रा में जब चाहे विकसित कर सकता है । प्रकृति के रहस्यों की जानकारी प्राप्त करके उसने अनेकानेक आविष्कार किये हैं, जो चेतना की अगम्य परतों को उखाड़ कर अपने आप को देवोपम समर्थताओं से सम्पन्न करने की क्षमता उसे प्रदान करते हैं । इतने महत्त्वपूर्ण अनुदान इसे अकारण नहीं मिले हैं । न व्यर्थ गँवाने के लिए, न दुरुपयोग के लिए ।

देखना यह है कि वह उनका श्रेष्ठतम् सदुपयोग करके अपनी बुद्धिमत्ता और गरिमा का किस प्रकार परिचय देता है । वह चाहे तो अपनी विशेषताओं का दुरुपयोग करके इस धरती को नरक तुल्य बना सकता है । चाहे तो अपने में देवत्व का उदय करके इसी धरती पर स्वर्ग का अवतरण कर सकता है । प्रश्न एक ही है कि वह अपनी समर्थता का सुनियोजन किस प्रकार करता है । इसके लिए कई राहें खुली हुई हैं । वह चाहे तो अपनी सामर्थ्य का दुरुपयोग करके संसार में क्लेश, द्वेष, ध्वंस का संकट खड़ा कर दे । वह चाहे तो उनका श्रेष्ठ उपयोग करके संसार में सुख, शान्ति, प्रगति और समृद्धि का वातावरण उत्पन्न करे । वह चाहे तो उन्हें व्यर्थ गँवाये, प्रमाद अपनाये और अपना तथा विश्व का वर्तमान और भविष्य गुड़ गोबर करके रख दे । विशेषता एक और भी है कि मनुष्य स्वयं गिरता है तो असंख्यों को अपने साथ गिराता है उठता है तो उत्कर्ष का वातावरण दशों दिशाओं में बना देता है ।

इस विवेचन की साक्षी अनेक रूपों में हमारे सामने है । पिछले दिनों उसने मानवी गरिमा से नीचे उतर कर पशुवत् हेय भूमिका निभाई और इसमें भी आगे पिशाच स्तर के कुकृत्य करके सर्वत्र हाहाकार मचा दिया । क्या उसके लिए यही योग्य था ? क्या यही करना चाहिए था? क्या यही करता रहेगा ? इन प्रश्नों का उत्तर यों सामुदायिक रूप से माँगा गया है, पर देना हममें से प्रत्येक को एकाकी चाहिए । क्योंकि हम सब एक-दूसरे के साथ जुड़े और बँधे हुए हैं । अन्धड़ जिस ओर चलता है अपने साथ भली-बुरी वस्तुएँ सभी उड़ाता ले जाता है । अग्रगामी, दुस्साहसी जिधर भी चलता है उधर अनुयायियों की कमी नहीं रहती । वह जिधर बढ़ता है मार्ग के अवरोधों को ठुकराता चला जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । समष्टि का मूल्यांकन तो बहुत होता है । पर बिखरा तो कूड़ा-करकट ही रहता है । जो वरिष्ठ हैं, वे रेल के इन्जन की तरह आगे बढ़ते हैं और टनों बोझ लदे हुए डिब्बों को अपने साथ घसीटते चलते हैं ।

उत्तर पाने के लिए बहुत समय तक ठहरा नहीं जा सकता । क्योंकि परिस्थिति इस सीमा तक जा पहुँची है कि जीवन और मरण में से एक को चुनना पड़ेगा । सामूहिक रूप में जीवित रहना या सह मरण का आयोजन करना यह फैसला अब देर तक रुका नहीं रह सकता । दोनों में से एक को चुनना होगा । पतन का गर्त पसन्द हो तो गहरे और दुर्गन्ध भरे दल-दल में फँसकर आत्मघात करना होगा । यों अभी गुञ्जाइश इस बात की भी है कि वह उबरना चाहे तो ऊँची छलांग लगाये और तुरन्त अनेक सहकारी कदम अपने साथ उठते हुए देखे ।

कहा यह जा रहा है कि जीवन की महत्ता पर दूरदर्शी विवेकशीलता के साथ विचार करना चाहिए । प्रमाद की सड़न एकत्र न होने देकर ऐसे उत्कर्ष का विनियोग करना चाहिए, जिससे स्वयं उबरें और अपने सहचरों या अनुगामियों को नव जीवन का सन्देश प्रदान करें । श्रेष्ठता के चयन में ही मानव का कल्याण है ।

अनुकरण नर-पशु की तरह जीने वाले मृतकों का नहीं करना चाहिए । उनकी नियति तो बर्बादी है । हमें महानता के अनुसरण की बात सोचनी चाहिए ताकि भीतर से महानता और बाहर से सुसम्पन्न प्रगतिशीलता उभरे । जीवन का महत्त्व न समझा जा सके तो उसे अर्द्धमृतकों—अर्द्ध मूर्च्छितों की तरह अपंग जैसी भारभूत स्थिति में बिताना पड़ेगा । पेट और प्रजनन के अतिरिक्त और कुछ सूझ न पड़ेगा । तृष्णा और वासना के अतिरिक्त और कहीं रस न मिलेगा । उद्दण्डता उभरी तो अन्यान्यों का विनाश करते हुए अपना भी मरण आमन्त्रित करना पड़ेगा ।

अपने जीवन का महत्त्व समझें । उसे भटकावों में न बितायें । गर्त में न गिरायें और निर्जीवों की तरह अपने को दुर्गन्ध भरी सड़न के रूप में परिणत न करें । इसकी पूरी-पूरी गुञ्जायश है कि महामानवों का ही-अनुसरण किया जाय । उनके ही पद-चिन्हों पर चला जाय और वह कर गुजारा जाय जिनसे अपनी गणना मनस्वी, यशस्वी वर्ग में हो सके और विनाश के वातावरण का आमूल-चूल परिवर्तन हो सके ।

विकास या विनाश में से किसी एक का चयन

ध्वंस भयावह और विनाशकारी होने के कारण विचलित तो अवश्य करता है पर है सरल । माचिस की एक जलती तीली किसी छप्पर से अग्निकाण्ड आरम्भ करके समूचे गाँव को कुछ ही घण्टों में भस्म कर सकती है । इसमें असाधारण क्षति भी होती है । इतने पर भी वह कृत्य ऐसा है जिसे एक अनाड़ी बालक भी कर दिखा सकता है । इसी गाँव को यदि नये सिरे से बनाया जाय और हो चुकी क्षति को पूरा किया जाय तो इसमें ढेरों समय, ढेरों साधन और ढेरों श्रम कौशल लगाने की आवश्यकता पड़ेगी । जिसे जुटाना कितना कष्ट साध्य हो सकता है इसका अनुमान लगा सकना कुछ कठिन नहीं होना चाहिए ।

कुछ बुलडोजर और तोपखाने मिलकर अनेकों शहर कस्बे चन्द दिनों में धराशायी कर सकते हैं । पर उन सबको उसी रूप में खड़ा कर सकना टेड़ीखीर है । इतिहास के पृष्ठों पर कितने ही नृशंस शासकों द्वारा बड़े-बड़े क्षेत्रों का कत्लेआम कराने का उल्लेख है जिसमें अगणित प्रजाजन गाजर-मूली की तरह काट डाले गये । यह कार्य कुछेक शस्त्रधारियों द्वारा पूरा कर लिया गया । अस्तु, कोई चाहे कि उतने ही भले चंगे मनुष्यों को फिर जीवित या स्थानापन्न बन सकने की स्थिति में बनाकर खड़ा कर दिया जाये तो यह प्राय: कठिन जैसा काम है । इसी शताब्दी में दो विश्व युद्ध हुए हैं । जापान पर अणु बम गिरे हैं । इसके बाद छुटपुट युद्ध सतत् चलते रहे हैं । इनके कारण जो धन-जन की हानि हुई उसकी पूर्ति कैसे हो ? कौन करे ? करने वालों ने यह कृत्य कुछ ही उपकरणों, वाहनों की सहायता से कर डाले । पर अब कोई माई का लाल छाती ठोककर इसके लिए आगे नहीं आता कि उस विनाश की क्षतिपूर्ति कौन करेगा ? मार डालने के लिए तो एक जहर की गोली या छोटी सी छुरी पर्याप्त है पर उसी स्तर का कोई जीवित व्यक्ति बनाकर खड़ा कर सकने की चुनौती सामने हो तो यही कहना पड़ेगा कि यह तो विधाता ही कर सकता है । सहस्रों वर्षों के शोध अन्वेषण से बहुमूल्य पुस्तकालय सँजोये गये थे । जलाने वालों ने उन्हें एक कौतूहल की तरह जला दिया । पर अब उस लुप्त ज्ञान को नई पीढ़ी के सामने प्रस्तुत करना पड़े तो कितने मनीषियों को कितने जीवन उस गँवाये गये को यथास्थान लाने के लिए खपाने की आवश्यकता होगी ? इस तथ्य पर गंभीरता पूर्वक विचार किया जाय तो प्रतीत होता है कि विनाश है तो भयावह और रोमाञ्च खड़े करने वाला पर उसे कर गुजरने में कुछ ही व्यक्तियों की मूर्खता एवं उद्दंडता पर्याप्त हो सकती है । विध्वंस की तुलना में सृजेता का कौशल असंख्य गुना होना चाहिए । यमराज अपने जाल में देखते-देखते सहस्रों को बटोर ले जाता है पर प्रयत्न उस विधाता का ही सराहा जाता है जिसने जड़-चेतन सृष्टि के हर घटक को अद्भुत एवं अनुपम बनाकर अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया । वधिक एक दिन में असंख्य प्राणियों को मार सकते हैं पर उनके लिए नये सिरे से एक मानव बना सकना भी संभव नहीं होता । शक्ति का परिचय ध्वंस कृत्यों को देखकर नहीं वरन् यह अनुमान लगाते हुए करना चाहिए कि किसने कितने बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य कर दिखाये और पिछड़े बिगाड़ को सुधारते हुए उस स्थान पर सृजन प्रयोजन के लिए कितने बड़े चमत्कार कर दिखाये ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ट्यूबवैल अपने समीपवर्ती क्षेत्र को हरीतिमा से भरा पूरा बनाने और सम्पर्क में आने वाले के कोठे धन-धान्य से भरते हैं । पशुओं के लिए चारे और पक्षियों के लिए दाने की भी कमी नहीं रहने देते । जेनरेटर बिजली उत्पन्न करते हैं, जितनी उनकी क्षमता है उतने उत्पादन मोटरों की, पंखों, हीटर, कूलरों की सुविधा उत्पन्न करते हैं । इंजीनियर पुल, बाँध, सड़कं, रेल आदि की योजना बनाते और उपयोगी भव्य भवन खड़े करते हैं । शक्तिवान उन्हें आँका जाता है । ध्वंस तो नहर का तट बंध काटकर एक रात एक फावड़ा चला कर कर सकते हैं जो मीलों तक़ खेत खलिहान और झोपड़ों को पानी में डुबो सकता है । फिर भी उस क्षेत्र को बसाने और हरा-भरा करने वाले लोग ही स्मरण किये जाते हैं । तटबंध को काटकर बाढ़ बुला देने वाले दस्यु दैत्य पर तो भीतर बाहर से असीम भर्त्सना ही बरसेगी । उसे छिपाते फिरना सफल न हो सकेगा और पकड़ा गया तो फिर उस स्तर की प्रताड़ना सहनी पड़ेगी, जिसकी चर्चा सुनकर उसके वंशजों को मिलने जुलने में मुँह नीचा करना पड़े । डाकुओं के गिरोह कितनों को त्रास देते हैं पर वे आतंकित करने और जान बचाते फिरने के अतिरिक्त और क्या हस्तगत करते हैं ?

पतन के मार्ग पर चलना और दूसरों को धकेलना कुछ कठिन नहीं है । ऊपर से नीचे गिराने में तो पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति ही सदा अपना चमत्कार दिखाने के लिए कटिबद्ध रहती है । ढलान की ओर पानी अपने आप ही बहने लगता है । पतन के गर्त में गिराने के लिए किसी कौतुकी का एक इशारा या धक्का लगा देना ही पर्याप्त है । व्यभिचारी, जुआरी, नशेबाज, व्यसनी, कुकर्मी अपने जैसे साथी सहयोगी बड़ी संख्या में ढूँढ और बना लेते हैं । इसके लिए उन्हें कोई सभा संगठन खड़ा करने और प्रचार व्यवस्था जुटाने की आवश्यकता नहीं पड़ती । चोरी, उठाईगीरी सीखने-सिखाने के लिए कहीं कोई स्कूल कालेज नहीं चलते । यौनाचार की विद्या तो क्षुद्र प्राणी भी जन्मजात संस्कारों के रूप में साथ लेकर आते हैं । उनमें से किसी को भी कोई पाठ्य पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती । महामारियाँ जब चाहती है तभी दनदनाती हुई किसी भी क्षेत्र पर हावी हो जाती हैं । दुष्टता और उद्दंडता के खरपतवार किसी भी खेत में पेड़-पौधों के उगने बढ़ने से पूर्व ही अपने बलबूते इच्छित जगह घेर लेते हैं । इस विस्तार क्रम को देखते हुए किसी की सत्ता और महत्ता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है । बरसात में देखते-देखते मक्खी मच्छरों की बाढ़ आ जाती है । उस अभिवर्धन में उन्हें कभी-कभी कहीं से कितने 'स्वर्णपदक' प्राप्त होते हैं ।

भौतिक विज्ञान के आविष्कारों का अम्बार देखते-देखते प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र में उतरा और इतनी सुविधाएँ उत्पन्न कर दीं कि पूर्वज कहीं इसे लौटकर देखते तो इन दिनों के संसार को कोई जादुई लोक कहकर भयभीत होते हुए उल्टे पैरों वापस लौट जाते । रेल, तार, बिजली, वायुयान, रेडियो, टेलीविजन, स्वसंचालित विशाल कारखाने, नकली आँख, नकली दाँत, अंग परिवर्तन की सर्जरी आदि अनेकानेक विद्याएँ ऐसी हैं जिसने आदमी की सुविधाओं में असंभव को संभव बनाने के स्तर की सुविधाओं की धकापेल कर दी है । यह जादुई चमत्कार सच्चे मन से सराहा भी गया होता यदि उसमें स्थिरता के तत्व विद्यमान रहते । पैट्रोल, डीजल, कोयला आदि ईंधन का उत्खनन जिस तेजी से हो रहा है उसे देखते हुए अब प्रतीत होता है कि एक काल के बाद वे भी कम पड़ जाएँगे और धरती के यह चिरस्रोत समाप्त हो जायेंगे और बैलगाड़ी के युग में वापस लौटना पड़ेगा । कारखानों का उत्पादन इतना बढ़ जायेगा और प्रतिस्पर्द्धा में मुफ्त बाँटने तक की सोचेगा । तब फिर कुटीर उद्योगों का क्या होगा ? लोग रोजी-रोटी के लिए किस का आश्रय लेंगे । सुविधाओं के अभ्यस्त लोग एयर कंडीशन कमरों के बाहर कैसे निकलेंगे । मोटरों से नीचे जमीन पर कदम कैसे रखेंगे ? स्पष्ट है कि सुविधाएँ आदमी को आलसी और प्रमादी बनाती हैं । इस प्रकार दीन दुर्बल बना हुआ मनुष्य साहस की कमी से ही वैज्ञानिक प्रगति की जय-जयकार कर सकता है । बाद में जब दुष्परिणाम सामने आने लगेंगे तो जी भर कर उस छलावे को कोसने के अतिरिक्त और कुछ शेष न रहेगा । कीटनाशकों और रासायनिक खाद की भरमार से गुँथी हुई धरती अपनी उर्वरता गँवा चुकी होगी और जो उत्पन्न करेगी उसमें विषाक्तता ही घुली होगी, जो भूखे मर जाने की तुलना में कहीं अधिक कष्ट देकर प्राणों का हरण करेगी । दूषित वायु में साँस लेते हुए दम घुटेगा । विषैला पानी पीकर कोई कितने दिन जीवित रहेगा । शहरों की बढ़ती आबादी उनके स्वास्थ्य और सुव्यवस्था को मटियामेट करके रहेगी । यह सब अभी तो आशंका कल्पित संभावना कह कर झुठलाया भी जा सकता है पर वह विज्ञजनों की दूरदृष्टि में यह समस्त विभीषिकाएँ अपने खूनी पंजे बढ़ाती हुई मनुष्य के पास खाली किन्तु भयावह मुँह फाड़ते हुए बढ़ती ही चली आ रही है । ऐसी ही विपत्तियों में फँसकर संभवतः आदिम काल के महाराज, महासरीसृप, महाव्याघ्र और महागरुण अपने पर्वताकार कलेवरों के रहते हुए भी नियति के ग्रास बनकर अपने अस्तित्व से हाथ धो बैठे होंगे । विज्ञान की असंतुलित विकास एवं उत्पादन निहित स्वार्थों के हाथों में जाकर उन्हीं को कुबेर इन्द्र बनाने में जुटा हुआ है । सर्व साधारण के सामने इस विकास विस्तार का क्या दुष्परिणाम हो रहा है और क्या कुछ होने जा रहा है ? इसकी ओर से हम सबको शिकारी को पीछे आते देखकर बालू में मुँह छुपा लेने वाले शुतुरमुर्ग की नीति अपना लेने की बात ही अधिक सरल और सुहावनी लगी है ।

भौतिक विज्ञान की बढ़ोत्तरी ने समाज के प्रचलनों को इस प्रकार गड़बड़ा दिया है कि सुविधा संवर्द्धन की ललक में कहीं कुछ भी हो सकता है । यदि उसे आसमान में उड़ना छोड़कर जमीन पर चलना न सिखाया गया तो आज न सही कल परसों इसके ऐसे दुष्परिणाम सामने होंगे जिसमें प्रगति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का वादा तो खोखला सिद्ध होगा ही, सर्वजनीन जीवन तक दूभर हो जाएगा ।

इससे भी बढ़कर विज्ञान का वह पक्ष है जो प्रत्यक्षवाद के तात्कालिक लाभ के संकीर्ण स्वार्थों से आगे की कुछ बात न सोचने देने पर उतारू हो गया है । उसने ऐसे तर्क, तथ्य, प्रमाण उदाहरण गढ़े हैं जिनसे सामान्य बुद्धि को उसी प्रतिपादन में यथार्थता व्यावहारिकता लगती है । प्रचलन का प्रवाह उन मान्यताओं को और भी बल प्रदान करता है । इस चक्रव्यूह में फँसा हुआ लोकमानस कुछ ऐसा भ्रमग्रस्त हो गया है कि उसे थल में जल और जल में थल दीख पड़ने लगा है । मृगतृष्णा में भटकते और कस्तूरी की तलाश में मारे-मारे फिरने वाले हिरन की सनक बताया जाया करता था । पर अब लगता है कि मानवी चिन्तन उसी व्यामोह में और भी अधिक उलझ गया है । भूल-भुलैया का भटकाव उसे अखरता भी तो नहीं, आश्चर्य इसी बात का है ।

आदर्शवादी मान्यताओं को नकारने के बाद मनुष्य अपनी उपलब्धियों का अनुचित स्वार्थ साधने और समाज व्यवस्था को अस्तव्यस्त करने में जुटेगा । आक्रामक उद्दण्डता ही उसका प्रधान अवलम्बन होगी । जिससे जंगली कानून को प्रश्रय मिलेगा । "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली अनियंत्रित अराजकता चल पड़े तो फिर सभ्यता और सुसंस्कारिता के उन मानवी मूल्यों को बचा सकना संभव न होगा जिनके कारण उसे धरती का देवता और शान्ति सुव्यवस्था का अग्रदूत के रूप में स्मरण किया जाता रहा है । यही उसकी गौरव गरिमा है । इसी के रहते उज्ज्वल भविष्य का निर्माण होता चला आया है और भविष्य में अधिक सुखद संभावनाओं की आशा अपेक्षा की जाती है । यही सतयुगी पुण्य परम्परा है । इसी के साथ देव संस्कृति की गौरव गरिमा आवश्यक रूप से जुड़ी हुई है ।

इसे गँवा बैठने के बाद हम मणिविहीन सर्प की तरह चलती फिरती रस्सी भर रह जाते हैं । डार्विन कहते थे कि बन्दर से आदमी बनता है । अब नया प्रतिपादन गढ़ा जाता दीखता है कि आदमी ने बन्दर बनने की ठान ली है और आदिम युग के वनमानुषों की तरह अपने आप तक सीमित रहने का निश्चय किया है । यह दुःखद संभावना कल्पना क्षेत्र तक को झकझोर कर रख देती है । पर उसे नकारा भी कैसे जाय ?

वैज्ञानिक बुद्धिवाद जो न कहे, वही कम है । वह पत्नी और पुत्री के बीच अन्तर करने को अमान्य ठहरा सकता है । बूढ़े बैलों की तरह अशक्त अपने माता-पिता को भी कसाईघर भेज सकता है । अपना मोद मनाने के लिए वह पशु पक्षियों को ही नहीं, अपने सजातियों संबंधियों से भी छुटकारा पाने की सोच सकता है तो यह तथाकथित प्रगति जिसकी पहले चर्चा की जाती रही है, इसे यथावत् बढ़ने दिया जाय या रोक-थाम का उपाय सोचा जाय, यह निर्णय करना आज की युग मनीषा का सर्वोपरि कर्तव्य है ।

व्यक्तित्व-विकास को सर्वोपरि महत्त्व देना होगा

सृष्टा की महिमा इसलिए भूरि-भूरि प्रशंसा के योग्य मानी जाती है कि उसमें व्यवस्था क्रम का आश्चर्यजनक सुनियोजन हुआ है । उसमें कमी या गड़बड़ी रहती, तो अनियंत्रित स्वेच्छाचार के कारण ग्रह-गोलक आपस में टकराते और टूट-फूट कर नष्ट होते रहते । प्राणियों और वनस्पतियों के संबंध में भी यही बात है । वे इसीलिए एक व्यवस्था के अनुरूप उगते, बढ़ते और सारगर्भित होते रहते हैं, यहाँ तक कि खुली आँखों से न दीख पड़ने वाले अणु-परमाणु तक अपने छोटे कलेवर में विशाल सौर-मंडल जैसी गतिविधियों के अनुकरण का उदाहरण प्रस्तुत करते रहे हैं । यदि इस विशाल ब्रह्मांड-व्यवस्था में कहीं भी असंतुलन रहा होता, तो यह समूचा पसारा कूड़े-कबाड़े की तरह दीख पड़ता और उस अव्यवस्था के बीच टूट-फूट का, अस्तव्यस्तता का परिचय मिलता रहता, किसी भी वस्तु को अपना काम कर सकना असंभव हो जाता । सृष्टा की अनेक महिमाओं में उसके सुनियोजन का कौशल नितान्त प्रत्यक्ष और सर्वत्र आश्चर्य भरा दीख पड़ता है । सृष्टि का सौंदर्य और उपयोग इसी व्यवस्था-कौशल के आधार पर गतिशील हो रहा है ।

शरीरों की संरचना और मन:संस्थान की बनावट में भी चकित करने वाला तालमेल देखा जाता है । जहाँ भी गड़बडी खड़ी हुई, वहाँ विग्रह-विद्रोह खड़ा हो जाता है और आधि-व्याधियों का दौर लद पड़ता है । परिवार तंत्र जीवित प्राणियों का एक छोटा-सा तंत्र है । यदि उसके सभी नियमोपनियम ठीक तरह पलते रहे, तो समझना चाहिए कि अपने छोटे घर-घरौंदों के आँगन में स्वर्ग जैसा आनन्द मचलता-इठलाता देखा जा सकेगा । यदि परिपाटी, व्यवहार, और क्रम-व्यवस्था में अनियमितता घुस पड़े, तो समझना चाहिए कि यहाँ देवासुर संग्राम का उदय हुआ । एक दूसरे को संग खींचने का सिलसिला शुरू हुआ और वह समूचा परिकर नरक रूप में परिणत हुआ । इन परस्पर विरोधी परिस्थितियों के उत्पन्न होने का एकमात्र कारण यह है कि व्यवस्था बुद्धि अपनी जगह पर से हट गई और मनमानी उच्छृंखलता ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया ।

व्यवसाय पूरी तरह व्यवस्था-बुद्धि की अपेक्षा करता है । उसमें गड़बड़ी रहे, तो पड़ोसी जिस काम में अच्छा खासा लाभ उठाते हैं, वहाँ लापरवाही और गैर जिम्मेदारी के बीच चलने वाले व्यवसाय घाटा उठाते और अन्ततः दिवालिया बनते देखे गये हैं । यही बात प्रगति के हर क्षेत्र पर लागू होती है । व्यवस्था की पल-पल पर, पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है । इसमें जहाँ जितनी कमी या विद्रूपता पायी गई, वहाँ उतना ही असंतोष छाया मिलेगा । गड़बड़ियों का दोष साझेदार एक दूसरे पर मढ़ रहा होगा । कुल मिलाकर वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तंत्र लड़खड़ा जायेगा और उपहास, लांछन तथा भर्त्सना का भाजन बनेगा ।

जीवन-क्रम को योजनाबद्ध रीति से जी सकना अपने ढंग का अति महत्त्वपूर्ण कला-कौशल है । जिन्हें यह आता है, वे गई-गुजरी परिस्थितियों और कठिनाइयों के बीच रहते हुए भी प्रगति का मार्ग ढूँढ़ निकालते हैं और उस पर समझदारी के साथ चलते हुए उन्नति के उस शिखर तक जा पहुँचते हैं, जिसमें सफलता, संपन्नता और प्रतिष्ठा का आनन्द भरा-पूरा रहता है ।

बुद्धिमत्ता की जाँच-परख के अनेक आधार हैं । उसके आधार पर अपने-अपने काम में सभी लोग सफलता पाते और लाभ उठाते हैं, किन्तु उन सभी संदर्भों में सबसे प्रमुख गिनी जाने योग्य विभूति सुव्यवस्था की ही है । जो इस संबंध में कुशल है, समझना चाहिए कि उसके लिए पग-पग पर श्रेय प्राप्त करते चलना कुछ कठिन नहीं रह गया । इसके विपरीत जो जितना अस्तव्यस्त, लापरवाह, गैरजिम्मेदार है, उसे उतना ही निकम्मा समझा जायेगा, भले ही उसके पास संपदा, शिक्षा, सुन्दरता जैसी विभूतियाँ कितनी ही क्यों न हों । अकेली सुव्यवस्था ही है, जो अनेक गुत्थियों को सुलझाती है और अवरोधों के भँवरों से नाव को बाहर निकाल ले जाती है ।

अधिकारीगणों में सभी की उपयोगिता और प्रतिभा है, किन्तु यदि उन सब में सर्वोपरि दायित्व का पद देखा जाय, तो वह व्यवस्थापक का ही मिलेगा । सरकारी तंत्र में इसे मैनेजर, कण्ट्रोलर, सुपरवाइजर आदि नामों से जाना जाता है, क्योंकि उसी की समझदारी और नासमझी के आधार पर काम बनते-बिगड़ते रहते हैं । जो मार्गदर्शन कर सकता है, जिसमें किसी कार्य के साथ जुड़े हुए अनेकानेक प्रश्नों को समय रहते समझ लेने और उसका समाधान निकाल लेने की क्षमता हो, समझना चाहिए कि वही अपने उपक्रम का मेरुदंड है । ऐसे व्यक्ति जहाँ भी दायित्व सँभालते हैं, वहीं सफलता के चार चाँद लगा देते हैं, साथियों की तुलना में दस कदम आगे ही रहते हैं । ऐसे ही लोगों को सेना का सेनापति और कारोबार का मैनेजर बनाया जाता है । यदि उसकी समझदारी, अनुभवों पर सही आकलन कर सकने की क्षमता पर आधारित रही तो समझना चाहिए कि सफलता की आधी मंजिल पार हो गई । महत्त्वपूर्ण कार्य कर गुजरने वालों में से प्रत्येक को दूरदर्शिता, व्यवहार कुशलता और प्रबंध शक्ति का परिचय देना पड़ता है । इसके बिना भटकने, खीजने, घाटा उठाने और अपयश बटोरने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता । जिस भी तंत्र को सुसंचालन का सौभाग्य उपलब्ध नहीं हुआ, वह किसी प्रकार लँगड़ाते, गिरते पड़ते चलता तो रहेगा, पर दबाव बढ़ जाने पर जो हाथ में है, वह भी गँवा बैठेगा और सर्वसाधारण की दृष्टि में अयोग्य, अनाड़ी या उपहासास्पद ही बन कर रहेगा ।

संस्थाएँ इसी आधार पर चलती हैं । कुशल संयोजन उन्हें उन्नति के शिखर पर पहुँचा देता है, जबकि अयोग्य के उस स्थान पर जा विराजने पर पतन का सिलसिला चल पड़ता है और किये कराये को चौपट करके रख देता है । सद्गुणों में, यदि प्रमुखता देने योग्य किसी को गिना जाय, तो प्रथम स्थान व्यवस्था-बुद्धि को ही देना पड़ेगा । वह विभिन्न प्रकृति के लोगों को एक धागे में बाँध कर सफल होती है । वही संकट की पूर्व सूचना देती है और साथ ही यह काम भी उसी का है कि समय रहते ऐसे उपाय खोजे, जिसमें आशंकाएँ निरस्त होती चलें और सुसंभावना समय-समय पर सामने आती रहें । सूत्र-संचालन के कार्य व्यवस्था, बुद्धि वालों के हाथ जाकर ही श्रेय प्राप्त करते और दूसरों के लिए उदाहरण बनते हैं ।

प्रश्न यह उठता है कि क्या हर किसी के लिए इस महान् विभूति का संपादन कर सकना संभव है ? इसके उत्तर में एक ही बात कही जा सकती है । मानसिक संरचना की दृष्टि से प्रायः सभी मनुष्य समान स्थिति के होते हैं । जन्मजात रूप से विशेष प्रतिभा का चमत्कार तो जब कभी ही अपवाद रूप से देखा जाता है । प्रगतिशीलता किसी भी स्तर की क्यों न हो, वह अपने ही लगन भरे प्रयत्नों से अर्जित करनी पड़ती है । जन्म से कोई डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर, इन्जीनियर आदि की विशेषता साथ लिए हुए पैदा नहीं होता । इन्हें अर्जित करने के लिए सिखाने वाले विद्यालयों में भर्ती होना और व्यावहारिक अनुभव सिखाने वाले मार्गदर्शक से तब तक अनुभव अर्जित करना पड़ता है, जब तक कि उस विषय में कुशलता उपलब्ध न कर ली जाय । इसमें सिखाने वालों का जितना श्रेय है, उससे अधिक सीखने वालों की दिलचस्पी, लगन एवम् मेहनत का है । यदि ऐसा न होता, तो एक ही विद्यालय के, एक ही शिक्षणक्रम के अंतर्गत रहने वाले छात्रों में से कुछ उत्तीर्ण और कुछ अनुत्तीर्ण क्यों हो जाते । प्रतिस्पर्द्धाओं में प्रायः वे ही उत्तीर्ण होते हैं, जो निर्धारित विषय की परिपूर्ण तैयारी में जुटे रहते हैं । नकल, टीप के आधार पर, धमकी, रिश्वत आदि के सहारे जो किसी प्रकार उत्तीर्ण भी हो जाते हैं, उन्हें तब भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जब वे सौंपे हुए कार्य को ठीक तरह पूरा नहीं कर पाते और अनौचित्य के अपराध में पदोन्नति की दिशा में बढ़ ही नहीं पाते ।

मस्तिष्कीय संरचना ऐसी है, जिसे काम देने और उत्साह एवं साहस के आधार पर विकसित होने का अवसर दिया जाय, तो वह आशातीत गति से बढ़ती है, पर यदि उसका उपयोग न किया जाय, तो सीलन में पड़े रहने वाले चाकू की तरह उसकी धार भोंथरी हो जाती है और जंग चढ़ कर निकम्मे स्तर का बना देती है । इच्छा-शक्ति की महिमा गाने वाले मनोवैज्ञानिक थकते नहीं । संकल्प को प्रगति का मूलभूत आधार माना गया है । दिलचस्पी लेने वाले संपर्क परिकर से ही इतना कुछ सीख लेते हैं, जितना कि उपेक्षा दृष्टि वाले हजार कोशिश करने पर भी सीख नहीं पाते ।

संसार में असंख्यों व्यक्ति ऐसे हुए हैं, जिन्हें किसी प्रकार सांगोपांग प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सहायता करने वालों का भी कोई संयोग न बैठ सका, पर अपनी प्रबल उत्कंठा के बल पर उपलब्ध साधनों का टूटा-फूटा आश्रय लेकर ही आगे बढ़ते रहे । उत्कंठा का चुम्बकत्व अभीष्ट स्तर का आकर्षण बनाये रहता है और जहाँ-तहाँ से अपनी बिरादरी के बिखरे कणों को समेट-बटोर कर अपने ज्ञान-भंडार को भर लेता है । वैज्ञानिक आविष्कारकों में से कितने ही ऐसे हुए हैं, जिनने अपनी लगन, दिलचस्पी और मेहनत के आधार पर अनेक प्रयोगों को बार-बार किया और अनेक बार असफलताएँ प्राप्त करने के उपरान्त भी निराश न होने तथा सतत् प्रयास करते-करते अंतत: आविष्कार करने में सफलता पायी । जेल के एक कैदी से, परमपूज्य गुरुदेव को यह जानने का अवसर मिला कि उसने बचे हुए समय का उपयोग लोहे के तसले को सिलेट बनाकर कंकड़ों से पेन्सिल का काम लेते हुए साथियों में से जो कुछ जानते थे, वे उनसे पूछ-पूछ कर अँग्रेजी पढ़ना-लिखना सीख लिया । एक पुराना अखबार कहीं से हाथ लग जाने पर उसी से पाठ्य-पुस्तक का प्रयोजन पूरा कर लिया । विदेशों में दिन भर मजूरी करने वाले श्रमिकों में से कितने ही होते हैं, जो रात्रि पाठशालाओं में दो घंटे समय लगाते हुए धीरे-धीरे इच्छित विषय के विद्वान पदवीधारी बन जाते हैं । कोई प्रयत्नशील प्रकृति का व्यक्ति यह शिकायत करते नहीं सुना गया कि उसे इसलिए पिछड़ना पड़ा कि परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थीं, उदारचेताओं ने आगे बढ़कर उस पर अनुदान नहीं बरसाये । स्मरण रखने योग्य यह तथ्य है कि मनुष्य को परावलंबी स्तर का प्रकृति ने बनाया नहीं है । उसके पास एक ऐसा व्यक्तित्व जन्मजात रूप से विद्यमान रहता है, जो यदि चाहे तो अपने सामर्थ्य, साहस और श्रम के बलबूते ऐसे काम कर सकता है, जिनके संबंध में साधन संपन्नों को भी आश्चर्यचकित होकर रह जाना पड़ता है । वर्ल्ड रिकार्ड की गिनीज बुक में ऐसे अनेक उदाहरण अंकित हैं, जिनने सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में भी अपने सीमित साधनों के सहारे चकित कर देने वाली सफलताएँ अर्जित कर दिखाईं । छोटे से बड़े बनने वालों में से प्राय: प्रत्येक को ही अपनी प्रचण्ड इच्छाशक्ति के सहारे आगे बढ़ने का साहस उभारना पड़ा है । साहस ने शक्ति दी है और उसे सुनियोजित करके सामान्यों को असामान्य बनने का अवसर मिला है ।

प्रबंध कर सकने की क्षमता अर्जित कर लेना भी संभावित प्रगति उपक्रम से भिन्न नहीं है । सतर्कतापूर्वक ध्यान देने, बारीकी से समस्याओं को समझने और अवसर मिलते ही अभ्यास करने लगने से कितने ही व्यक्ति उन कामों को सफलतापूर्वक करने लगे, जिनके लिए वे आरंभ में नौकरी करते थे और परिश्रम के बदले सीमित पैसे प्राप्त करते थे । सभी जीवन भर मजूरी ही करते रहे, पर जिन्होंने बारीकी से दृष्टि गड़ाई और सीखने में इच्छा-शक्ति नियोजित की, उनकी क्षमता सहज ही बढ़ती चली गई और एक दिन ऐसा आया कि वे उस रास्ते चलते सीखे हुए कार्य को कुशलतापूर्वक संपन्न करने में सक्षम बन गये । मजदूर स्तर के वे व्यक्ति फलता-फूलता व्यवसाय चला सकने में समर्थ हुए । पिछड़ेपन के साथ आजीवन लगे रहने वालों में से अधिकांश ऐसे होते हैं, जो यथास्थिति में संतुष्ट रहते और आगे बढ़ने की उमंग को विकसित ही नहीं होने देते । प्रबंध शक्ति का विकास भी इसका अपवाद नहीं है । कोई यदि उस संदर्भ में दिलचस्पी ही न ले, उत्सुकता ही प्रकट न करे, चिन्तन-मनन के तंत्र को प्रसुप्त स्थिति में ही पड़ा रहने दे, आस-पास की परिस्थितियों पर नजर ही न डाले और उनसे कुछ अनुभव ही संचित न करे, तो फिर मस्तिष्कीय क्षमता का विकास अपने आप कहाँ विकसित होने वाला है ।

मनुष्यों में से अनेक ऐसे होते हैं, जो देखने में चलते-फिरते, काम करते और बोलते-चालते दीखते हैं, उन्हें साधारणतया जाग्रत ही कहा जायेगा, पर वस्तुत: उनकी सूक्ष्म दृष्टि सोयी रहती है । वे घटनाओं को देखते तो हैं, पर उनके साथ जुड़े हुए कारणों को समझने पर ध्यान नहीं देते । ऐसे लोग जिस-तिस प्रकार जिन्दगी के दिन ही पूरे कर पाते हैं । व्यक्तित्व का विकास न होने से, सूक्ष्म दृष्टि में उभार न आने से वे नर, वानरों की तरह पेट और प्रजनन के कोल्हू में ही पिलते रहते हैं, प्रगति उन्हें देखकर मुँह मोड़ लेती है ।

इर्द-गिर्द के वातावरण का भी जनसाधारण पर असाधारण प्रभाव पड़ता है । अनुकरणप्रिय प्रवृत्ति होने के कारण मनुष्य वही सीखता है, जो उसके समीपवर्ती वातावरण में होता देखा जाता है । बच्चे परिवार में बोली जाने वाली भाषा को अनायास ही सीख लेते और आहार-विहार की तथा आचार-विचार की वही शैली अपना लेते हैं, जो उनके निकटवर्ती लोगों द्वारा प्रयुक्त की जाती है । चूँकि लम्बे समय से हम लोग सामन्तशाही के उत्पीड़न में रहते-रहते न केवल आर्थिक सामाजिक त्रास सहते रहे हैं, वरन् चिन्तन और चरित्र की उत्कृष्टता भी गँवा बैठे हैं और फूहड़पन की रीति-नीति अपनाये रहने के अभ्यस्त हो गये हैं । ऐसा कुछ प्रकाश पुंज समीप में उगता नहीं, जो शालीनता और जागरूकता के समानान्तर शिक्षा देकर प्रगतिशीलता अपनाने के लिए प्रेरित कर सके । ऐसी दशा में ऐसी पुस्तकों का सहारा लेना अनिवार्य हो जाता है, जो मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने की दिशा में आगे बढ़ा सकें ।

स्वाध्याय प्रयोजन के अतिरिक्त लोकशिक्षण की और जो विधाएँ जहाँ उपलब्ध हों, वहाँ उनका प्रयोग करना चाहिए । लोगों को एकत्रित करने के लिए ऐसे आयोजन किये जा सकते हैं, जो चलती-फिरती व्यक्तित्व-विकास की आवश्यकता पूरी करती रह सकें । कुछ आयोजन परम्परागत रूप से भी संपन्न होते रहते हैं, जिनमें जनसमुदाय अपनी मान्यताओं के अनुरूप स्वत: ही एकजुट हो स्थान विशेष पर अनायास ही पूर्व प्रचलन के अनुसार एकत्रित होता रहता है । ऐसे अवसरों को चूका नहीं जाना चाहिए । उनमें मात्र मनोरंजन या परम्परागत चिह्न-पूजा ही नहीं चलती रहनी चाहिए, वरन् व्यक्तित्व-विकास की अति महत्त्वपूर्ण

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकता को पूरा कर सकने वाले लोकशिक्षण को चलाने के लिए नये सिरे से नया प्रयत्न करना चाहिए ।

उद्धरेदात्मनाऽत्मानम्

अपना उद्धार करना संसार का उद्धार करने का प्रथम चरण है । समाज या संसार कोई अलग वस्तु नहीं, व्यक्तियों का समूह ही समाज या संसार कहलाता है । यदि हम संसार का उद्धार या कल्याण करना चाहते हैं तो वह कार्य अपने आप से आरम्भ करना चाहिए । क्योंकि अपना आपा ही सबसे निकट है । अपने को सुधारना सबसे अधिक सरल एवं संभव हो सकता है । दूसरे लोग कहना मानें या न मानें, बताये हुए रास्ते पर चलें या न चलें यह संदिग्ध है, पर अपने ऊपर तो अपना नियन्त्रण है ही । अपने को तो अपनी मर्जी के अनुसार बना या चला सकते ही हैं । इसीलिए विश्व-कल्याण का कार्य सबसे प्रथम आत्म-कल्याण का कार्य हाथ लेते हुए ही आरम्भ करना चाहिए ।

संसार का एक अंश हम भी हैं । अपना जितना ही सुधार हम कर लेते हैं, उतने ही अंशों में संसार सुधर जाता है । अपनी सेवा भी संसार की ही सेवा है । एक बुरा व्यक्ति अनेक तक अपनी बुराई का प्रभाव फैलाता है और लोगों के पाप तापों एवं शोक-सन्तापों में अभिवृद्धि करता है । इसी प्रकार एक अच्छा व्यक्ति अपनी अच्छाई से स्वयं ही लाभान्वित नहीं होता वरन् दूसरे अनेक लोगों की सुख-शान्ति बढ़ाने में सहायक होता है । सामाजिक होने के कारण मनुष्य स्वभावत: अपना प्रभाव दूसरों पर छोड़ता है । फिर जो जितना ही मनस्वी होगा वह अपनी अच्छाई या बुराई का भला-बुरा प्रभाव भी उसी अनुपात से संसार में फैलावेगा । इस प्रकार मनुष्य अपना सुधार करने में लग जाय तो वह संसार का बहुत भारी सुधार कर सकता है । अपनी सच्ची सेवा भी विश्व सेवा का ही एक अंग मानी जा सकती है । संकुचित भौतिक स्वार्थों की इसीलिए ऋषियों ने निंदा की है कि उनमें ग्रस्त होकर मनुष्य अपने धर्म कर्तव्यों की उपेक्षा करने लगता है ।

दूरदर्शितापूर्ण स्वार्थ भी परमार्थ ही होता है । आत्मा का स्वार्थ जिन विचारों और कार्यों द्वारा सिद्ध होगा उन्हीं के माध्यम से संसार का हित साधन भी बनेगा । उत्कृष्ट स्तर का स्वार्थ वस्तुत: परमार्थ ही बन जाता है । अपना आत्म-सन्तोष, आत्म-सुख, आत्म-कल्याण, सद्भावनाओं के अपनाने एवं सत्कर्म करने से ही संभव होता है । यही प्रक्रिया लोकहित का माध्यम बन जाती है । सत्कर्म स्वत: ही परोपकार होते हैं । आत्म-कल्याण उन्हीं गतिविधियों को अपनाने से सम्भव है जिनसे जन-साधारण का हित साधन होता हो ।

मानव-जीवन का सदुपयोग परमार्थ से है । परमार्थ का तात्पर्य है, सच्चे स्वार्थ की साधना । झूठा स्वार्थ वासनाओं और तृष्णा से ग्रसित होकर अकर्म या कुकर्म करने से माना गया है । ऐसे मार्ग पर चलने वाला क्षणिक लाभ भले ही प्राप्त कर ले अन्तत: उसे लोकनिन्दा, अविश्वास, घृणा, असन्तोष, राजदण्ड, आत्म-प्रतारणा, विक्षोभ, असंतोष, नरक एवं पतन के रूप में ही भोगना पड़ता है । इसलिए मनीषियों ने उसे निन्दित एवं हेय ठहराया है । परमार्थ की प्रशंसा इसलिए की है कि वह प्रारम्भ में थोड़ा कष्टसाध्य भले ही हो, वासना और तृष्णा की सीमित पूर्ति ही उससे भले होती हो पर अन्तत: सब प्रकार की प्रगति के द्वार उसी से खुलते हैं । परमार्थी व्यक्ति अपनी सच्चरित्रता, कर्तव्यपरायणता एवं उदारता के कारण दूसरों के हृदय में अपने लिए स्थान बनाता है और उनका सद्भाव, सहयोग पाकर लौकिक दृष्टि से भी लाभ में रहता है और आध्यात्मिक दृष्टि से तो आत्मसन्तोष का सुख हमें निरन्तर मिलता ही रहता है ।

अपने जीवन को सार्थक बनाने की दृष्टि से भी और विश्व-हित साधन का पुण्य-परमार्थ करने की दृष्टि से भी हमें सबसे पहले यह प्रयत्न करना चाहिए कि अपना व्यक्तित्व सेवा करने का व्रत लेने वाले प्रत्येक परमार्थी को अपने आपकी सेवा करने का व्रत लेकर विश्व मानव की उतने अंश में सेवा करने को तत्पर होना चाहिए जितने का कि उत्तरदायित्व अपने ऊपर है । समस्त संसार की सेवा कर सकना कठिन है । अपनी सेवा तो आप कर ही सकते हैं । समस्त संसार को सुखी बनाना और सन्मार्ग पर चलाना यदि अपने लिए कठिन हो तो अपने को सुखी-सन्तुलित एवं सन्मार्गगामी तो बना ही सकते हैं । दूसरों का उद्धार कर सकना उसी के लिये सम्भव होता है जो अपना उद्धार आप कर सकने में समर्थ होता है ।

बाह्यजगत अन्तर्जगत का प्रतिबिम्ब

जल की यह विशेषता है कि जिस भी बर्तन में रखा जाय वैसा ही आकार ग्रहण कर लेता है । लोटे में रखने पर लोटे जैसा और बाल्टी में बाल्टी जैसा बन जाता है । नदी की धारा में मिलकर तरंगों के रूप में परिवर्तित हो जाता है । वस्तुत: उसका अपना कोई स्वरूप नहीं है । विभिन्न प्रकार के पात्र ही अपने अनुरूप जल का स्वरूप गढ़ते हैं । भासित होने वाला स्वरूप पात्रों का होता है न कि जल का । पात्र बदल देने से उसका स्वरूप भी बदल जाता है । दिखाई पड़ने वाले स्वरूप को ही यथार्थ मान बैठना भूल है ।

संसार के विषय में भी यही बात लागू होती है । जो कुछ भी अच्छा बुरा दिखाई पड़ता है वह आन्तरिक कल्पनाओं, मान्यताओं का प्रतिबिम्ब मात्र है । दर्पण वस्तुओं के स्वरूप को प्रतिबिम्बत करता है । अपनी मान्यताएँ ही अपने अनुरूप संसार को गढ़ती तथा दर्पण के बिम्ब के समान दिखाई पड़ती हैं । मन जैसी कल्पना करता है । वे कल्पनाएँ ही भले बुरे संसार को गढ़ती तथा सुख-दु:ख का कारण बनती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना आपा श्रेष्ठ हो तो श्रेष्ठताओं का दिग्दर्शन होता है । अन्दर का आनन्द संसार में भी छलकता हुआ दिखाई पड़ता है । दृष्टिकोण परिष्कृत हो तो काँटों में पुष्प का सौन्दर्य ही परिलक्षित होता है अन्यथा विकृत दृष्टि तो पुष्पों के सौन्दर्य सुरभित गंध को एक किनारे रखकर काँटों को ही देखती है । एक ही वस्तु, एक ही परिस्थिति किसी के दुःख एवं किसी के सुख का कारण बन जाती है । कारण स्पष्ट है अपनी मान्यताएँ, कल्पनाएँ एवं विचारणाएँ एक ही स्थिति के दो व्यक्तियों को ही परस्पर विरोधी प्रकार की अनुभूतियों का कारण होती हैं ।

हँसने वाले व्यक्ति को संसार हँसता हुआ तथा रुदन करने वाले को रोता हुआ दिखाई पड़ता है । सामान्यतया इस तथ्य को उल्टे रूप में ही समझा जाता है । संसार की प्रसन्नता एवं दुःख को अपनी प्रसन्नता एवं दुःख का कारण माना जाता है । जबकि संसार रूपी दर्पण में अपना आन्तरिक स्वरूप ही प्रतिबिम्बित होता है । तीव्रगति से चलती हुई गाड़ी में बैठे यात्री को मार्ग की सभी वस्तुएँ गति करती जान पड़ती हैं, जबकि वह स्वयं ही गाड़ी की गति के साथ गतिशील है । ट्रेन से सम्बद्ध यात्री की गतिशीलता स्थिर वस्तुओं को भी गतिशील देखती है ।

मान्यताओं, कल्पनाओं एवं चिन्तन का आधार बदल जाने पर बाह्य स्वरूप भी परिवर्तित हो जाता है । सुख-दुःख, भले-बुरे के बीच अन्तर परिस्थितियों का नहीं वरन् चिन्तन के स्तर का है ।

शास्त्रकारों ने इसी कारण मन को निर्लिप्त बनाने की प्रेरणा दी है । बाह्य जगत अपने अन्तःजगत का प्रतिबिम्ब मात्र है । अन्तःसंसार में परिवर्तन करके जैसा उसी रूप में संसार को गढ़ा एवं उसके अनुरूप सुख दुःख का अनुभव किया जा सकता है । मन चेतना की विशेषताओं एवं उसके अजस्र आनन्द की अनुभूति कर सके तो उसे बाहर भी आनन्द का निर्झर बहता दिखाई पड़ता है । विषमताओं को भी जीवन का एक आवश्यक अंग मान कर उसमें भी आनन्द की अनुभूति की जा सकती है । परिस्थितियों में आमूल-चूल परिवर्तन कर सकना सम्भव नहीं है । किन्तु अपने दृष्टिकोण एवं चिन्तन में परिवर्तन करके प्रतिकूलताओं में भी दर्शन किया जा सकता है ।

बाह्य परिस्थितियों एवम् संसार से प्रभावित होने, उन्हें सुख-दुःख का कारण मानने के स्थान पर आवश्यकता इस बात की है कि अपने चिन्तन को ऊर्ध्वगामी बनाया जाय । मान्यताओं में परिवर्तन किया जाय । यह संसार को आन्तरिक विचारों का प्रतिबिम्ब मानने से ही सम्भव हो सकता है । इस तथ्य को समझने एवं अनुभव करने से ही मन को सन्तुलित रखा एवं प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्नचित्त रहा जा सकता है ।

प्रतिकूलताएँ कभी बाधक नहीं बनतीं

अल्फ्रेड एडलर के अनुसार मानवी व्यक्तित्व के विकास में कठिनाइयों प्रतिकूल परिस्थितियों का होना भी आवश्यक है । अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ह्वाट लाइफ शुड मीन टू यू' में उन्होंने लिखा है कि "यदि हम किसी एक ऐसे व्यक्ति अथवा मानव समाज के विषय में यह कल्पना करें कि वे इस स्थिति में पहुँच गये हैं जहाँ अब कोई कठिनाइयाँ नहीं रहीं तो हमारे विचार से ऐसे वातावरण में मनुष्य का विकास रुक जायेगा और जीवन आकर्षणहीन रह जायेगा । ऐसी स्थिति में भविष्य में प्रतीक्षा योग्य उत्साहवर्धक कोई बात नहीं रह जायगी । सब कुछ पूर्व निश्चित होने से तत्परता का, प्रयास का स्थान जड़ता ले लेगी । ऐसी दशा में न तो ज्ञान का विकास होगा और न ही विज्ञान का । कला और धर्म जो अप्राप्य ध्येयों की कल्पना हमारे सामने रखकर हमें प्रफुल्लित रखते हैं, सब अर्थहीन हो जायेंगे । वस्तुतः हम सौभाग्यशाली हैं कि हमारा जीवन कष्ट-कठिनाइयों से भरा है, उतना सरल नहीं है ।"

बहुत से लोग कठिनाइयों से बचने के लिए दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करने और अपना काम बनाने के अनेकानेक तरीके अपनाते हैं । पर प्रायः देखा यही जाता है कि अंततः उन्हें निराशा ही हाथ लगती है । प्रख्यात मनोवैज्ञानिक ग्रीनवी ने अपनी पुस्तक—'सुपर पर्सनालिटी' में लिखा है कि "यह मान्यता सही नहीं है कि लोगों को प्रभावित करने के लिए आकर्षक शरीर संरचना, बढ़ी-चढ़ी विद्वता, प्रचुर सम्पदा, ठाठ बाट की साज-सज्जा या किसी विशेष प्रकार की कला-कुशलता अनिवार्य रूप से आवश्यक है । यह विशेषताएँ दूसरों का ध्यान भर आकर्षित करती हैं, बहुत हुआ तो कोई इनसे किसी प्रकार लाभान्वित होने के लिए पीछे लग सकता है । पर जब वैसा कुछ हाथ लगते दीखता नहीं तो निराश होते ही मुँह मोड़ लिया जाता है । वैभव से अपना ही स्वार्थ सिद्ध हो सकता है । दूसरे जिन्हें उनसे कोई लाभ मिलने वाला नहीं है, देर तक आकर्षित नहीं रह सकते ।"

वस्तुतः जिनका दूसरों पर प्रभाव पड़ता है, वे सद्गुणों एवं सत्प्रवृत्तियों से युक्त विभूतियाँ होती हैं । उन्हें जहाँ भी पाया जाता है उनके प्रति अन्तःकरण में सहज श्रद्धा उमड़ पड़ती है । सज्जनता, नम्रता, उदारता और शिष्टता का अर्थ है—परिपक्व व्यक्तित्व । खिला हुआ फूल अपनी सुन्दरता और सुगंध से दर्शकों को सहज प्रसन्नता प्रदान करता है । सद्गुणों की विभूतियों से भरेपूरे व्यक्ति भी इसी प्रकार सहज श्रद्धा के पात्र बनते हैं । सही तरीके से प्राप्त की गई सफलता सर्वत्र सराही जाती है क्योंकि इनसे प्राप्त करने वाले की लगन और तत्परता का परिचय मिलता है । इनकी शालीनता देखकर भी यही अनुमान लगता है कि यहाँ आत्मपरिष्कार के लिए दूरदर्शिता से भरीपूरी सतत् साधना की गई है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभिन्न स्तर की सफलताओं में सर्वोपरि है— सामान्य स्तर के अनगढ़ व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बना सकना । मूर्तिकार पत्थर को गढ़ते और प्रतिमा बनाते हैं । चित्रकार कागज और कलम की सहायता से हृदयग्राही चित्र विनिर्मित करते हैं । वादक बंसरी से राग-रागनियों की स्वर लहरी बहाते हैं । कलाकारिता के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रभावोत्पादक कला है—पेट, प्रजनन भर में व्यतीत होते रहने वाले जीवन को उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श गतिविधियों का अभ्यस्त कर लेना । इस सफलता के श्रेयाधिकारियों को जन-जन का सहज सम्मान मिलना ही चाहिए ।

पेड़ की शीतल छाया और सुषमा में बैठने वालों को ही नहीं, उसे देखने वालों को भी प्रसन्नता होती है और शान्ति मिलती है । इसी प्रकार सहृदयता, नीतिमत्ता, साहसिकता, सज्जनता, नम्रता, उदारता, सुरुचि, सुव्यवस्था जैसे सद्गुणों का जहाँ भी विस्तार दीखता है, वहाँ सम्पर्क में आने वाले हर किसी की सहज श्रद्धा उमगने लगती है ।

एल. एच. स्नीडर अपने ग्रन्थ 'बिहेवियरल साइकॉलाजी' में लिखते हैं कि ''विचारों और कार्यों का स्तर सुनिश्चित होना चाहिए । तभी उन्हें निजी पुरुषार्थ का, उपलब्ध साधनों का परिपोषण मिलेगा और सफलता का द्वार खुलेगा । दूसरों का समर्थन सहयोग भी प्राय: उन्हीं को मिलता है, जिन्हें दृढ़ निश्चयी और प्रयास में समग्र तत्परता जुटा सकने वाला समझा जाता है ।''

चंचल, उथले और अधूरे मन से किये जाने वाले काम ही प्राय: असफल होते हैं । ऐसा क्यों होता है ? अस्थिरता का कारण क्या है ? यह खोजने पर प्रतीत होता है कि सैद्धान्तिक अपरिपक्वता ही चंचलता का प्रमुख कारण है । दृढ़ता उन निर्णयों में नहीं हो सकती जो उथली स्वार्थ पूर्ति पर अवलम्बित हैं । लाभ की न्यूनाधिकता का प्रसंग सामने आते ही मन डगमगाने लगता है और एक काम को छोड़कर दूसरे को अपनाने लगता है ।

आदर्शवादिता का आधार लोभ या लाभ नहीं, आत्म-संतोष एवं आत्म-कल्याण होता है । ऐसी दशा में एक बार पकड़े हुए काम को इसलिए छोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती कि उसे हटाकर दूसरा करने लगे तो अधिक लाभ मिलेगा । कोई काम न तो छोटा है न बड़ा । हर कार्य की गरिमा उसके पीछे काम करने वाली निष्ठा के साथ जुड़ी होती है । इस प्रकार छोटे दीखने वाले काम भी सन्निहित सदाशयता को सुविस्तृत करने में सहायक हो सकते हैं और बड़े दीखने वाले काम भी अन्त:क्षेत्र की निकृष्टता से प्रेरित होने पर सदाशयता के संवर्द्धन में सर्वथा निष्फल रह सकते हैं । उच्चस्तरीय सिद्धान्त अपनाकर किसी काम में हाथ डालने पर उसमें आत्म-संतोष का रसास्वादन होता है । फिर प्रतिक्रिया में शिथिलता रहने पर भी उत्साह गिरने या मनोयोग घटने जैसी कोई बात नहीं होती ।

आत्म-विश्वास और आत्मानुशासन ही उच्चस्तरीय कामों में अन्त तक निष्ठा बनाये रहने में समर्थ होते हैं । आत्मविश्वास श्रेष्ठ कामों की सफलता में ही सुनिश्चित रह सकता है । ओछे और खोटे काम अन्त:करण में ऐसे विश्वास जगने ही नहीं देते कि कार्य की सफलता एवं उपयोगिता मिल ही जायेगी या मिलने पर सराही ही जायेगी । यही कारण है कि ओछे मनोरथों से प्रेरित कार्य सदा कर्ता को अविश्वासी बनाये रहते हैं । उस अस्थिरता में पूरे मनोयोग से काम नहीं हो पाना न केवल सफलता संदिग्ध रहती है वरन् उसमें उदासी, निराशा एवं ऊब तक उत्पन्न हो सकती है । आये दिन काम बदलते रहने वालों में अधिकांश आदर्शविहीन ही होते हैं । जिन्हें परिस्थितियों ने काम बदलने के लिए विवश बाधित कर दिया हो, ऐसे अपवाद तो कम ही देखने को मिलते हैं ।

दरबारी बगीचों में लगे कोमल पौधे तनिक सी गर्मी सर्दी पाते ही हिचकियाँ भरने लगते और दम तोड़ने लगते हैं । छुई-मुई किसी के अँगुली छू जाने से ही सकुचाती, सिकुड़ती और मुरझाई दीखती है । किन्तु पर्वतों और रेगिस्तानों में उगने वाले पौधे ऋतु प्रभावों की कठोरता को धैर्यपूर्वक सहन करते हुए अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे रहते हैं ।

इसके विपरीत जिन्हें अभावों, प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ता है, वे अपने भीतर ऐसी क्षमता विकसित करते हैं जो आगत कठिनाइयों का सामना करते हुए अस्तित्व की रक्षा कर सकने में समर्थ हो सकें । हिमाच्छादित पर्वतों पर उगने वाले पेड़ों को उस तरह पाला नहीं मारता जैसे कि मध्यम ताप वाले प्रदेशों में तनिक सी ठंड बढ़ते ही उनका सिकुड़ना-सूखना आरम्भ हो जाता है । रेगिस्तानी सूखे इलाकों की तपती बालू और पानी की कमी में भी कैक्टस आदि पौधे भली प्रकार हरे-भरे बने रहते हैं । उत्तरी ध्रुव पर रहने वाले 'एस्किमो' बर्फ की मोटी परतों पर ही समूचा जीवन-यापन करते हैं । कठोर श्रम से आहार प्राप्त करने वाले वनवासी स्थिति के अनुरूप सुदृढ़ भी रहते हैं और अभ्यस्त तथा प्रसन्न भी ।

पूरे प्रतिपादन का निष्कर्ष यही है कि कठिनाइयों से, प्रतिकूलताओं से घिरे होने पर भी जीवन का वास्तविक प्रयोजन समझने वाले व्यक्ति कभी निराश नहीं होते । वे हर प्रकार की परिस्थितियों में अपने लक्ष्य से ही प्रेरणा प्राप्त करते तथा श्रेष्ठता के पथ पर क्रमश: आगे बढ़ते जाते हैं ।

मानवता के लक्षण

तनूं तन्वन्नजसो भानुमन्विहि,
ज्योतिष्मत: पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो,
मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥

ऋक्. १०/५३/६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"हे अग्ने ! हमारे यज्ञ को बढ़ाते हुए सूर्यमंडल (प्रकाश) में पहुँचो ! जिन ज्योतिर्मय मार्गों को श्रेष्ठ कर्मों द्वारा पाया जाता है, उनकी रक्षा करो, देवताओं को यज्ञ में बुलाओ और उपस्थित विघ्नों को दूर करो अथवा विघ्नरहित कार्यों का विस्तार करो । (मनुर्भव) मनुष्य बनो और (दैव्यं) देव हितकारी (जनम्) जन-संतान को उत्पन्न करो ।"

वेदों की सबसे बड़ी विशेषता, जिसे भारतीय और विदेशी, दोनों प्रकार के विद्वानों ने स्वीकार किया है, यही है कि उसमें कहीं सम्प्रदायवाद का चिह्न नहीं मिलता । उसमें जितने उपदेश दिये गये हैं, वह मनुष्य मात्र के लिये हैं । उसमें न तो कहीं किसी दूसरे धर्म का नाम आया है और न किसी की निन्दा और अपनी प्रशंसा की गई है । उसमें तो केवल ऐसे कर्त्तव्य और मार्गों का निर्देश किया गया है जिससे मनुष्य अपना और दूसरों का कल्याण कर सके । यह एक बहुत बड़ा अन्तर है, जो वेद को संसार के समस्त धर्म ग्रन्थों से उच्च ठहराता है । अन्य सब ग्रन्थों में किसी एक मत की प्रशंसा की गई है उसी को सत्य बताकर ग्रहणीय ठहराया है और उसके सिवा अन्य सबको मिथ्या अथवा भ्रमपूर्ण बताया है । इससे एक तो यह बात सिद्ध होती है कि वेद वास्तव में सर्वाधिक प्राचीन हैं जबकि संसार में किसी अन्य मतमतान्तर का अस्तित्व न था । अगर उस समय कोई अन्य धर्म होता तो वेद में उसकी आलोचना की गई होती, उसकी भलाई-बुराई दिखाई गई होती अथवा कम से कम अपने अनुयायियों को उससे दूर रहने की चेतावनी दी होती । पर जब ऐसी कोई बात कहीं नहीं मिलती तो हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि वेद वास्तव में मानवीय सभ्यता के आदि में प्रकट हुये और उनमें जो कुछ कहा गया है वह मनुष्यों के स्वाभाविक कर्त्तव्य और अधिकारों को दृष्टिगोचर रखकर ही कहा गया है ।

उपर्युक्त मन्त्रदृष्टा ऋषि ने मनुष्य को उस मार्ग पर चलने की प्रेरणा की है जिससे वह स्वयं देव बनकर संसार में दैवी प्रकृति के व्यक्तियों के निर्माण में सहायक हो सके । मानव-समाज अभी विकास की अवस्था में है और प्रकृति के तीनों गुणों में से मनुष्यों पर रज और तम का प्रभाव विशेष रूप से देखने में आता है । ऐसे मनुष्य समाज पर अपना प्रभाव जमाने अथवा स्वार्थ-साधन के उद्देश्य से प्राय: धर्म-विरुद्ध, नीति विरुद्ध कार्यों पर उतारू हो जाते हैं । यह देव प्रकृति के सात्विक पुरुषों का ही काम है कि वे उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित करके समाज को निम्नगामी होने से बचावें और उसे उच्च स्थिति की तरफ ले जायें । इसलिये भावी-संतान को नीति, चरित्र, कर्तव्य की ऐसी व्यावहारिक शिक्षा देना कि वह महान् उत्तरदायित्व का पालन कर सके, समाज की सबसे बड़ी सेवा है ।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वेद ने पहला साधन यह बतलाया है कि **"तन्तु तत्वन् रजसो भानु मिन्विहि"** अर्थात् "तुम सांसारिक कार्यों को करते हुए सदैव प्रकाश (ज्ञान) का आश्रय लो ।" जो कार्य ज्ञानपूर्वक किया जायगा उसका परिणाम कभी अशुभ नहीं हो सकता, उसका शुभ फल देर में या शीघ्र अवश्य मिलेगा । मनुष्य का पहला लक्षण 'ज्ञान' ही है और मनुष्य तथा पशु में मुख्य अन्तर यही है कि पशु को ज्ञान, विवेक, बुद्धि नहीं होती । जो मनुष्य ज्ञान से काम नहीं लेता अथवा अज्ञान में रहना ही पसन्द करता है, उसे मनुष्य की बजाय पशु कहना ही अधिक उपयुक्त है ।

मनुष्यता को सार्थक करने के लिये दूसरा आदेश वेद ने यह दिया कि **"ज्योतिष्मत: पथो रक्ष धियाकृतान्"** अर्थात् जिन ज्योतिर्मय (ज्ञान अथवा प्रकाश) मार्गों से हम श्रेष्ठ कर्म करने में समर्थ हो सकते हैं, उनकी रक्षा की जाय । मनुष्य का काम केवल अकेले ही ज्ञान सम्पादन करने से नहीं चल सकता, वरन् उसको संसार में सर्वत्र ज्ञान प्रसार की चेष्टा करनी चाहिए। यदि बहुसंख्यक लोग अज्ञानी ही बने रहे तो उनके उल्टे सीधे कामों से ज्ञानियों को भी अवश्य कठिनाई में पड़ना होगा । मनुष्य केवल अपने कृतकर्मों का ही परिणाम नहीं भोगता, वरन् जिस समाज में वह रहता है उसके सामूहिक कर्मों का प्रभाव भी उस पर अवश्य पड़ता है । मनुष्य स्वयं चाहे जैसी स्वच्छता से रहे अगर उसके आस-पास के अधिकांश व्यक्ति गन्दे रहते हैं, दूषित पदार्थों का उपयोग कर वातावरण को बिगाड़ते हैं तो उसका कुप्रभाव न्यूनाधिक परिमाण में उस स्वच्छता वाले व्यक्ति को भी सहन करना पड़ेगा । इसीलिये वेद ने आज्ञा दी है कि प्रकाश (ज्ञान) के मार्गों की इस प्रकार रक्षा की जाय कि जिससे सभी लोग उनका उपयोग करके श्रेष्ठ कार्य करने में समर्थ हो सकें ।

ज्ञान के पश्चात् कर्म का नम्बर आता है । ज्ञान की आवश्यकता इसीलिये है कि मनुष्य जो कर्म करता है वह उचित और लाभदायक ढंग से किये जायें । अगर हम ज्ञान की बातों को केवल सुनते और कहते ही रहें और कर्म के रूप में उनका उपयोग न करें तो हमारा वह ज्ञान "मिथ्या" अथवा व्यर्थ ही है । इसी बात को लक्ष्य में रखकर उपर्युक्त मन्त्र में **"अनुल्वणं वयत जोगुवामय:"** का उपदेश दिया गया है कि "कार्य में उपस्थित होने वाले विघ्नों को दूर करो अथवा ऐसी ज्ञानयुक्त विधि से काम करो जिससे कार्य में विघ्न अथवा कठिनाइयाँ उत्पन्न न हों । मनुष्य जन्म लेकर कर्म तो करना ही पड़ेगा, उससे तो मनुष्य किसी दशा में छूट ही नहीं सकता । पर एक मनुष्य कार्य को ऐसे ढंग से करता है कि उससे उसको और दूसरों को भी लाभ होता है और कुछ ऐसे भी काम करने वाले हैं जो दूसरों का ही नहीं अपना भी अहित कर डालते हैं । संसार में "अपने पैरों पर आप ही कुल्हाड़ी मारने" वालों अथवा "जिस पर चढ़े हैं उसी को काटने" वालों की कमी नहीं है । ऐसे ही अज्ञानी जन समाज में अव्यवस्था उत्पन्न होने के कारण बनते हैं और सार्वजनिक हित को हानि पहुँचाते हैं । मनुष्यत्व के सच्चे अभिलाषी व्यक्ति का परम कर्तव्य है कि वह स्वयं ऐसे समाज विरोधी कार्यों से बचे और दूसरों को भी उनसे दूर रखने की बराबर चेष्टा करता रहे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो मनुष्य इस वेदोपदेश को हृदयङ्गम करके ज्ञान-मार्ग पर चलें, उसी के अनुकूल कर्म करें, दूसरे लोगों में भी ज्ञान का प्रचार करें और तदनुकूल जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दें, वे ही मनुष्य नाम के अधिकारी हो सकते हैं । मनुष्य का सर्वोच्च कर्त्तव्य और लक्षण 'परोपकार' बतलाया गया है और उसके लिये सम्यक ज्ञान का होना अनिवार्य है । जो मनुष्य नियमपूर्वक लगातार इस मार्ग पर चलता रहेगा और अपनी शक्ति तथा सामर्थ का उपयोग अपने साथ ही अपने सम्पर्क में आने वाले समस्त लोगों के हितार्थ करता रहेगा तो वह समय आने पर 'मनुष्य' से उठकर 'देवत्व' के दर्जे में पहुँच जायगा । इस प्रकार का 'देवत्व' किसी के कहने-सुनने अथवा उपाधि प्रदान करने से नहीं मिल सकता, वरन् उसका साधन सतत सत्य-मार्ग का अनुयायी बना रहना और परोपकार का पूर्ण ध्यान रखना ही है । ऐसे ही देवत्व को प्राप्त मनुष्य अपने आचरण, मनोबल और शुभ संकल्पों के प्रभाव से अपनी सन्तान को अपने से भी अधिक शुभ गुण सम्पन्न बनाकर, जनता के लिये मार्ग-दर्शक 'देवों' का निर्माण करने में समर्थ हो सकते हैं ।

जीवितों में मृतक और मृतकों में जीवित

महत्वाकांक्षा प्राणी की एक विशेषता है । जीव विकास विज्ञान के अनुसार एककोषीय जीव से बढ़ते-बढ़ते इसी कारण प्राणियों ने अपनी-अपनी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित शरीर संरचना चिन्तन में प्रगति की है और परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाया है । विभिन्न प्राणियों, क्षेत्रों, साधनों और परिस्थितियों में अधिक समुन्नत स्थिति की संरचना का श्रेय इसी प्रवृत्ति को है । जिनमें यह उत्साह जितना कम विकसित हुआ है वे अभी भी उसी पुरातन स्थिति में रह रहे हैं । फूल के सम्पर्क में आकर तितली ने अपनी काया बदल ली । हिंस्र जन्तुओं ने रात्रि के समय अपनी घात अच्छी तरह लगने के कारण प्रकृति को निशाचर स्तर का बना लिया । नेत्रों की ज्योति भी उनकी उसी के उपयुक्त बन गई । आत्मरक्षा से लेकर सुविधा सामग्री जुटाने में जीवों का क्रमिक विकास अग्रगामी ही होता चला गया ।

मनुष्य के शारीरिक परिवर्तन के विकास का इतिहास तो संदिग्ध है, पर इतना स्पष्ट है कि उसकी महत्त्वाकांक्षा आरंभ से ही बढ़ी-चढ़ी है । इस कारण अन्य अवयवों की तुलना में उसका चिन्तन तंत्र अपेक्षाकृत अधिक विकसित हुआ है । प्रकृति की सम्पदा का अधिक भाग उसने अपने अनुकूल बनाने में कुछ उठा नहीं रखा है । इसलिए भोजन, वस्त्र, निवास, परिवार, आजीविका आदि के क्षेत्र में वह सृष्टि के समस्त प्राणियों की तुलना में कहीं अधिक अच्छी स्थिति में है । दूसरे प्राणी जबकि प्रकृति प्रकोपों के सामने अपनी सत्ता गँवा बैठते हैं तब मनुष्य ही एक ऐसा दिखाई पड़ता है जो प्रतिकूलताओं के बीच भी अनुकूलता तलाश लेता है । कृषि, पशुपालन, वाहन, पाक-शास्त्र, आच्छादन की बातें तो पुरानी हो गईं । नई उपलब्धियों में उसने विद्युतशक्ति को अपना दास बना लिया है और प्रकृति की इस महती शक्ति से वह नौकरानी जैसा काम ले रहा है । अपनी स्वाभाविक चाल की तुलना में वह जल, थल और नभ में द्रुतगामी चाल से चलने लगा । अनेकानेक यंत्रों और साधनों का निर्माण करने के लिए उसे महत्त्वाकांक्षाओं ने ही आगे बढ़ाया और एक-से-एक बढ़कर विभूतियाँ उपलब्ध कर सकने में सफल बनाया ।

यह उसके मौलिक पक्ष का उत्कर्ष है । सुविधा साधनों के सहारे जो प्रसन्नता होती है, उपलब्धियों में जो उत्साह मिलता है उस प्रत्यक्ष लाभ ने उसे अधिकाधिक सम्पन्न और समर्थ बनाने में सहायता की है । किन्तु इसके उपरान्त एक दूसरा पक्ष भी रह जाता है, जिसे आत्मा कह सकते हैं । इसका प्रमाण यह है कि जब तक चेतना रहती है तभी तक शरीर काम करता है, अन्यथा वह किशोर, युवा या प्रौढ़ होते हुए भी निर्जीव हो जाता है और किसी न किसी उपाय से अपने कलेवर का अन्त कर लेता है ।

आत्मा के संबंध में अब तक बहुत कुछ कहा, सुना, सोचा और खोजा जाता रहा है पर इस क्षेत्र की गहराई में प्रवेश करने पर आत्मा के स्वरूप और लक्ष्य के संबंध में जो निष्कर्ष निकाले जा सके हैं, उसे एक शब्द में 'मानवी गरिमा' कहा जा सकता है । अब तक उसकी अनेकों व्याख्याएँ हो चुकी हैं और अनेक रूप समझाये गये हैं । पर उनमें अधिक उपयुक्त और गौरवशाली अर्थ यही है । जब मानवी गरिमा मर गई और वह दुष्ट, भ्रष्ट और निकृष्ट बन गयी तो समझा जाना चाहिए कि आत्महनन हो गया, चाहे व्यक्ति की साँस भले ही चलती हो । साँस तो लुहार की धौंकनी भी लेती छोड़ती रहती है और जीवित तो सड़े तालाब में पाये जाने वाले कीड़े भी होते हैं, पर उनके जीवित रहने या मृतक कहलाने में कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

सड़कों पर वाहनों के नीचे कुचल कर असंख्यों मरते रहते हैं । बीमारियों के मुँह में आये दिन अगणित लोग चले जाते हैं, पर इनकी कोई महत्त्वपूर्ण चर्चा नहीं होती । शरीर में हलचल रहने और अन्न को टट्टी बनाने वाले लोगों को जीवित मृतक कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी । क्रूर और नृशंस लोगों में आत्मा का अस्तित्व माना जाय या नहीं, यह विवाद का विषय है ।

आत्मा—जिसे सच्चे अर्थों में 'आत्मा' कहा जाय, आदर्शों के साथ जुड़ती है । उसमें संयम का भाव होता है और साथ ही उदारता एवं सेवा का भी । जिन्हें यह ध्यान रहता है कि मानवी गरिमा को गिरने न दिया जाय, दुष्ट या भ्रष्ट समझे जाने का अवसर न आये, वही मानवी काया को सार्थक करते हैं, अन्यथा प्रेत-पिशाच भी ऐसे ही मिलते जुलते काय-कलेवर में छिपे स्वयं जलते और दूसरों को जलाते रहते हैं । स्वयं डरते और दूसरों को डराते रहते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पवित्रता और प्रखरता मनुष्य के गुण हैं । जो निजी जीवन में सज्जनोचित सदाशयता से भरे रहते हैं और जो आदर्शों की रक्षा के लिए साहस दिखाते एवं बलिदान स्तर तक का शौर्य-प्रकट करने को तैयार रहते हैं, उनके संबंध में कहा जाता है कि वे प्राणवान और जीवन्त मनुष्य हैं अन्यथा ऐसी ही आकृति वाले खिलौने कुम्हारों के अवों में आये दिन पकते और काले पीले रंगों में रंगे जाते रहते हैं । आत्मा हलचल का नाम है, पर वह तो मशीनों के पहिये भी करते रहते हैं । हाँड़ी में भी खिचड़ी की उछल-कूद देखने को मिलती रहती है । हवा के साथ पत्ते भी उड़ते रहते हैं । इन्हें न तो जीवित कहा जा सकता है, न मनुष्य, न आत्मा ।

आत्मा में उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्श चरित्र और सज्जनोचित व्यवहार का समावेश होता है । यह जिनके साथ रहा हो वे शरीर न रहने पर भी अविनाशी आत्मा हैं । अन्य सड़ाँध में दिन काटने वाले और दूसरों को कष्ट देने वाले प्राणी भी ऐसे होते हैं, जिन्हें कोई चाहे तो जीवनधारियों में गिन सकता है ।

आततायी सोचता है कि किसी प्रकार अपना स्वार्थ सिद्ध होना चाहिए । अपनी वासना और तृष्णा की जिस सीमा तक संभव हो, हविश पूरी होनी चाहिए । इसके लिए उसे दूसरों को किसी भी सीमा तक उत्पीड़न देने में संकोच नहीं होता । अपने अतिरिक्त और सब माटी या मोम के बने प्रतीत होते हैं, जिन्हें पीड़ा पहुँचाते हुए अपने ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । न दया आती है, न उचित-अनुचित का भाव जगता है । अनर्थ और कुकर्म करते हुए अपने अहंकार का अनुभव करते हैं और नृशंसता का पराक्रम के रूप में सिर ऊँचा करके बखान करते हैं । उन्हें अपने को कोल्हू के सदृश मानते हुए गर्व होता है, जिसका एक ही काम है—तेल निचोड़ लेना और खली को पशुओं के सामने बखेर देना । जो ध्वंस और विनाश की ही योजनाएँ बनाते और इसी स्तर के कुकर्म करते हुए अपने शौर्य को बखानते हैं, उन्हें इसी स्तर का गतिशील किन्तु जघन्य कहना चाहिए । पर नर पशु और नर पिशाच अलग आकृति के नहीं होते हैं । उनकी चमड़ी भी इसी स्तर की होती है । किन्तु प्रकृति ऐसी मिली होती है, जिसे नर पशु या नर पिशाच से भी गया-बीता कहा जा सके ।

इसी समुदाय में एक कायर वर्ग भी होता है, जो विनाश का दुस्साहस तो इसलिये नहीं कर पाता कि बदले में उलटकर अपनी भी हानि हो सकती है, कायरता दूसरों का शोषण भी कर सकती है, पर उनमें इतना साहस नहीं होता कि प्रतिकार को सहन करने के लिये दूसरे की चुनौती स्वीकार कर सकें । उचक्के और लफंगे इसी प्रकार की ठगी और विडम्बनाएँ रचते रहते हैं । सामना पड़ने पर शेर का चमड़ा उतार कर उन्हें बकरी के असली रूप में भी प्रकट होते देर नहीं लगती । ऐसे ही लोगों को नर पामर कहा गया है । उन्हें कृमि-कीटकों से भी गयी-गुजरी स्थिति में गिना जाता है । हमें देखना है कि हम क्या हैं, क्या बनना चाहते है व औरों से भिन्न जीवन की रीति-नीति किस प्रकार बनायें ?

क्या हम जीवित हैं ? क्या हम जीवितों जैसे काम करते हैं ?

तत्ववेत्ता 'सेन्टपाल' ने कहा था—हम जीवित हैं । जीवितों जैसे कार्य करते हैं । हमारा जीवन ईश्वर के लिए है । सचमुच वैसा ही है भी । मात्र हलचल करने वाली वस्तुओं से हम भिन्न, नदी, पर्वत, बादल, वृक्ष, वनस्पति आदि हलचल भर करते हैं । उन्हें अपनेपन का ज्ञान नहीं । आत्मबोध के अभाव में वे जड़ कहलाते हैं । यों जड़ कोई भी वस्तु इस धरती पर नहीं है, जीवन का न्यूनतम अंश कण-कण में विद्यमान है । यदि ऐसा न हो तो उसे व्यवस्थित रूप से अपनी गतिविधियों को चला सकना कठिन हो जाता ।

हम जिन्दा हैं वे जानते हैं । मनुष्य अपने आपको जीवित अनुभव करता है । अपनी सत्ता से परिचित है । स्वयं के लिए बहुत कुछ सोचता और बहुत कुछ करता है । जो विचारपूर्वक कार्य करता है उसी को कार्यकर्ता कहा जा सकता है अन्यथा प्रकृति स्वयं गतिशील है और प्रभाव क्षेत्र में हर किसी को गतिशील रखती है । न वह चैन से बैठती है और न किसी को बैठने देती है । यहाँ किसी को विश्राम नहीं, किसी को चैन नहीं । हरकत किये बिना कोई अपने अस्तित्व का परिचय ही नहीं दे सकता, अपने स्वरूप को बनाए भी नहीं रह सकता । पूर्ण स्थिरता और प्रलय एक ही बात है । जिस क्षण हृदय का, कोशिकाओं का, ज्ञान तन्तुओं का कार्य रुकेगा, उसी क्षण हम मृत्यु की गोदी में शयन कर रहे होंगे ।

कार्य करने से मतलब है विचारपूर्वक कार्य । किसी प्रयोजन के लिए, किसी आकांक्षा की पूर्ती के लिए काम करना, स्वसंचालित रक्त संचार, श्वास-प्रश्वास, आकुंचन-प्रकुंचन जैसी शरीर की अन्तरंग क्रिया-प्रक्रिया के अतिरिक्त और सब कुछ विचारपूर्वक ही किया जाता है । इसलिए उसे कर्म कहा जाता है । कर्म वह है जिसका फल भोगने के लिऐ विवश होना पड़े ।

हम अपने आपको जानते हैं, अपने अस्तित्व से परिचित हैं इसलिए जीवित हैं । विचार, इच्छा और बुद्धि का उपयोग करके परिणाम को ध्यान में रखते हुए काम करते हैं । इसलिए 'कर्मरत' भी हैं । कार्य भी करते हैं । भले ही तात्कालिक और दूरगामी परिणामों का विभेद करने वाली विवेक बुद्धि का जागरण न हुआ हो तो भी जो कुछ किया जाता है उसमें समझ-बूझ की भली-बुरी मात्रा रहती है । यह कर्तृत्व का चिह्न है । इसमें कर्मपरायणता छिपी हुई है । निःसंदेह हम जीवित ही नहीं कर्मरत भी हैं । काम भी करते है ।

सेन्टपाल की उक्ति का तीसरा चरण जीवन ईश्वर के लिए है । थोड़ी गहराई से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है कि हम अपनी अलग अहंता और अलग स्वार्थपरता में मानसिक दृष्टि से उलझे भर भले ही रहें पर वस्तुतः सृष्टि क्रम सुसंचालित शृंखला का अविच्छिन्न अंग मात्र बनकर रहना पड़ रहा है । स्वार्थ की चिन्तनात्मक शृंखला कितनी ही छोटी या घटिया क्यों नहीं वस्तुतः हम ईश्वर की इच्छानुसार चलने के लिए उसकी सृष्टि संचालन प्रक्रिया का एक घटक भर रहने के लिए बलात् बाध्य हैं ।

अन्न का उत्पादन, उसका उपयोग और उसकी पुनः खाद के रूप में परणिति सृष्टि की क्रम शृंखला है । हम उस ईश्वर इच्छा में व्यवधान उत्पन्न कर ही नहीं सकते । अन्न अथवा अन्य जीवनोपयोगी उत्पादन स्वयं करने अथवा उस कार्य में लगे लोगों के सहायक बनने के लिए हम विवश हैं । हमारी आजीविका उपार्जन इसके अतिरिक्त और किस काम के लिए है ? अन्न-वस्त्र आदि जीवनोपयोगी सुविधाएँ कमाने के लिए और उनकी सहायता सुविधा जुटाने में ही प्रकारान्तर से हमारी कमाई खर्च हो जाती है । प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उत्पादन वृद्धि में संलग्न रहना ही पड़ेगा । आजीविका कमानी ही होगी और जो भी उपार्जन क्रम होगा वह उत्पादन की धुरी पर घूम रहा होगा और उस उत्पादन का प्रयोग अन्ततः जीवधारियों की जीवन यात्रा में ही हो रहा होगा । क्या कोई इस ईश्वरेच्छा का उल्लंघन करने में समर्थ है ? घोर स्वार्थी और समाज विरोधी को भी इस प्रकृति शृंखला का उल्लंघन कर सकने की छूट नहीं है ।

उत्पादन का उपयोग करने के लिए हम बाध्य हैं । भूमि अन्न खाद्य पदार्थ उगाती है । हम उसका उपभोग किए बिना रह ही नहीं सकते । वृक्षों से ऑक्सीजन उपजती है उसे साँस में ग्रहण किये बिना किसी प्रकार गुजारा नहीं । यदि मनुष्य साँस से कार्बन डाई ऑक्साइड गैस न छोड़े तो पेड़-पौधों को खुराक न मिले । पेड़-पौधे ऑक्सीजन न उगलें तो मनुष्य जीवित न रहें । ईश्वर की सृष्टि को चलाने के लिए वृक्षों और मनुष्यों के लिए यह अनिवार्य है कि वे परस्पर पूरक स्तर की वायु छोड़ें और ग्रहण करें । इनमें से कोई भी इस नियति का उल्लंघन नहीं कर सकता ।

उत्पादन का हर प्राणी उतना ही उपभोग करे जितना कि उसके लिए नियत निर्धारित है, यह सृष्टि क्रम है । मनुष्य चार रोटियाँ ही खा सकता है । कुछ ग्राम अन्न ही उसके हिस्से में आया है । कोई भी ऐसा नहीं कर सकता कि मानवी खुराक से सौ पचास गुना अधिक आहार कर सके । शरीर पर वस्त्र धारण की सीमित मर्यादा है । सौ गज कपड़े का कुर्ता कौन पहन सकेगा ? धन तथा सुविधा-सामग्री की कोई बर्बादी तो कर सकता है पर उपभोग के लिए एक नियत क्रम व्यवस्था की मर्यादाओं में बँधकर ही उसे रहना पड़ेगा ।

आहार करके धरती का जो स्वत्व उपयोग में लाया गया है उसे खाद रूप में पृथ्वी को वापिस करना जरूरी है । इसलिए मल त्याग किये बिना कोई चारा नहीं । शरीर में प्रयुक्त पंचतत्व अपना कार्य पूरा करने पर पुनः अपने विशाल सागर में मिल जाते हैं । मृतकाया को सड़गल कर नष्ट होना ही पड़ता है और प्रकृति को पञ्चतत्व व्यवस्था में अपने ढंग से काम करने देना होता है । कौन है जो ईश्वर के लिए बने शरीर और कर्म में व्यवधान उत्पन्न कर सके ।

प्राणी बाध्य है सृष्टि क्रम से अपना उत्तरदायित्व निवाहने के लिए विवश रखा गया है । पेट की भूख, इन्द्रियलिप्सा, उन्नति की महत्वाकांक्षा, यौनाकर्षण, सन्तान के प्रति वात्सल्य की क्षुधाएँ ऐसी हैं जो मनुष्य को जंजीरों में बाँध कर उस दिशा में घसीटती चली जाती हैं जिसके लिए ईश्वर ने उसे नियत किया है । गंभीरता से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि हमारी शारीरिक और मानसिक परिस्थिति जिस स्तर की बनाई गई है उसी के अनुरूप जाने के लिए, काम करने के लिए हमें विवश होना पड़ता है । अर्थात् ईश्वर के लिए उसकी सृष्टि व्यवस्था चलाने के लिए हम बाध्य हैं । प्रत्येक प्राणी बाध्य है । वन प्रदेश को अत्यन्त सघन होने देने के लिए वन पशुओं का अस्तित्व, वन पशुओं की बाढ़ रोकने के लिए हिंस्र जन्तुओं का सृजन । हिंस्र जन्तुओं की स्वल्प प्रजनन शक्ति तथा परस्पर द्वेष विग्रह की प्रवृत्ति के कारण संख्या वृद्धि पर नियन्त्रण । यह क्रम शृङ्खला बताती है कि यहाँ जो कुछ हो रहा है ईश्वरीय इच्छा के अनुरूप, ईश्वर की सृष्टि को संचालित रखने के लिए हो रहा है इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए तत्वदर्शी यह कहते रहे हैं कि जो कुछ हो रहा है ईश्वर की इच्छा से हो रहा है ।

यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या मनुष्य कृत दुष्टता, स्वार्थपरता भी ईश्वर की इच्छानुसार है ? क्या मनुष्यों द्वारा बरती जाने वाली दुर्भावनाएँ और दुष्प्रवृत्तियाँ भी ईश्वरेच्छा की प्रतीक हैं ?

हमें एक स्वर से कहना चाहिए—नहीं-नहीं । प्रत्येक मनुष्य के अन्तःकरण में एक धीमी आवाज उठती रहती है जो उसे मानवी गरिमा के अनुरूप सद्भाव अपनाने एवं सत्कर्म करने के लिए निरन्तर प्रेरणा देती रहती है । दुष्कर्म करते ही आत्मग्लानि की इतनी प्रबल प्रतिक्रिया होती है कि उसे सहन करना साधारणतया असह्य हो जाता है । उस आत्म-प्रताड़ना से बचने के लिए ही आमतौर से कुमार्गगामी लोग नशा पीकर 'गम गलत' करने की दुहरी बिडम्बना करते रहते हैं । सत्कर्म करने पर एक दिव्य संतोष भीतर ही भीतर अनुभव होता है । इसी लाभ को प्राप्त करने के लिए संत, तपस्वी, योगी, ज्ञानी, परोपकारी, महामानव इतना कष्ट उठाते और आदर्शवादी अनुकरणीय गतिविधियों की कष्टसाध्य प्रक्रिया अपनाते हैं ।

ईश्वर ने मनुष्य को सोचने और करने की स्वतंत्रता दी है । इसलिए कि उसे उत्तरदायित्व समझने वाला माना गया है । इस अपेक्षा की हमें रक्षा करनी ही चाहिए । यदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं करते तो उस दुर्गति के भागी बनते हैं जो नियति क्रम में अवरोध उत्पन्न करने की होती रहती है । भोजन तो किया जाय पर मल त्याग को रोक दिया जाय, साँस ली तो जाय पर छोड़ी न जाय तो इस अवरोध का दुस्साहसकर्ता बेतरह मारा जायगा । ठीक इसी प्रकार हर मनुष्य का जीवन ईश्वर के लिए है, उसके प्रयोजनों के लिए है—के तथ्य से विमुख होकर कोई व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थपरता के अवरोध उत्पन्न करेगा तो वह बेहिसाब पिटेगा । बुरी तरह घायल होगा रुदन करेगा और बेमौत मरेगा । आज यही हो रहा है । ईश्वरीय विशेष प्रयोजन के लिए मानव जीवन है, उसे इतना अधिक समुन्नत और सुविधासम्पन्न अकारण ही नहीं बनाया गया है । इस संरचना के पीछे सृष्टि को अधिक समुन्नत, सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाने की ईश्वरीय आकांक्षा जुड़ी हुई है । जो इस प्रयोजन की उपेक्षा करेगा वह दुहरे घाटे में रहेगा । न तो स्वार्थ साधन से सुध प्राप्ति का मनोरथ पूरा कर सकेगा और न ईश्वर के निमित्त जीने के राजमार्ग पर चलते हुए जो आनन्द उठाया जा सकता था उसे उठाया जा सकेगा । इसलिए दूरदर्शिता इसी में है कि हम जीवन को ईश्वर के लिए जियें ।

तत्ववेत्ता सेन्टपाल की दिव्य दृष्टि ने व्यक्ति और विश्व के पारस्परिक संबन्धों पर गहराई से विचार विवेचन करते हुए यह निष्कर्ष सहज ही निकाला है कि हम जीवित हैं; जीवितों जैसे कार्य करते हैं । हमारा जीवन ईश्वर के लिए है । प्रकृति हमसे यह सारा क्रिया-कलाप बहिरंग जीवन में अनिवार्य रूप से करा रही है । प्रश्न केवल अन्तरंग जीवन का है । अपनी स्वतंत्र चिन्तन और स्वतंत्र कर्तृत्व की क्षमता को भी यदि हम इस दिशा में नियोजित करते तो सच्चे अर्थों में यह कहा जा सकेगा कि हम जीवित हैं । जीवितों जैसे काम करते हैं और जीवन ईश्वर के लिए जीते हैं ।

जीवन सम्पदा के अपव्यय का पश्चाताप

चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद, लाखों, करोड़ों वर्ष पश्चात् यह सुरदुर्लभ मनुष्य शरीर मिलता है । इतना सुविधा सम्पन्न काय कलेवर किसी भी जीव को नहीं मिला । मनुष्य को यह विशेष अनुदान भगवान ने विशेष प्रयोजन के लिये दिया है । अपना जीवन उत्कृष्ट बनाते हुए आत्मबल का अभिवर्द्धन, आत्मशान्ति का रसास्वादन, उदारता और सेवा भावना द्वारा लोकमंगल में योगदान यही मानव जीवन का प्रधान उद्देश्य है ।

दुःख और दुर्भाग्य की बात ही है कि—जीवन लक्ष्य को पूर्णतया विस्मरण करके मनुष्य जैसा बुद्धिमान प्राणी पेट और प्रजनन को ही प्रधान माने और उन्हीं पशु प्रवृतियों में जीवन रत्न को गँवाने की मूर्खता का परिचय दे ।

यह भूल नये खून, नये जोश में प्रतीत नहीं होती तब महत्वाकांक्षाओं का नशा सवार रहता है । हजारों, लाखों वर्ष जीना है ऐसा लगता है, पर जब वृद्धावस्था आ जाती है—अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, मौत सामने खड़ी दीखती है । आकांक्षाएँ अतृप्त रहती हैं, कुटुम्बी, सहयोगी निरर्थक मानकर अवज्ञा करने लगते हैं तब प्रतीत होता है कि जीवन का दुरुपयोग करके भारी भूल की गई । तब केवल पश्चाताप से हाथ मलना ही शेष रह जाता है । उस दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण करते हुए शास्त्रकारों ने उद्‌बोधन दिया है कि पश्चाताप की घड़ी आने से पूर्व ही सजग हो सका जाय और कर्तव्य पथ का अवलम्बन ग्रहण कर लिया जाय तो अधिक उत्तम है ।

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवतं ।
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ॥
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्चनोत्पद्यते ।
पीत्वा मोहमयी प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥

—भर्तृहरि

सूर्य के उदय और अस्त होने के साथ-साथ आयु भी दिन-दिन घटती जाती है तथा व्यापारादि से चित्त नहीं भरता और जन्म, वृद्धापन तथा मृत्यु होते हुए देखकर भी मनुष्यों को चेत नहीं होता । इससे मालूम होता है कि संसार प्रमाद-रूपी मदिरा पीकर मस्त हो रहा है ।

योग वाशिष्ठ में जीवन के अन्तिम चरण का दुःख चित्रण इस प्रकार किया है—

शत्रवश्चेन्द्रियाण्येव सत्यं यातमसत्यताम् ।
प्रहरत्यात्मनैवात्मा मनसैव मनो रिपुः ॥

अपनी इन्द्रियाँ ही अपनी शत्रु बन रही हैं । सत्य को असत्यता प्राप्त हो गयी है । आत्मा ही आत्मा को खाये जा रही है । मन ही मन का बैरी बना हुआ है ।

वस्त्ववस्तुतया ज्ञातं दत्तं चित्तमहंकृतौ ।
अभाववेधिना भावा भावान्तो नाधिगम्यते ॥

वस्तुएँ कुछ की कुछ दीखती हैं । अहंकार में मन रम गया है । जो पर्याप्त है उसका अभाव दीखता है । जो है उसका प्रयोजन क्या है, कुछ सूझ नहीं पड़ता ।

पातःपक्वफलस्यैव मरणं दुर्निवारणम् ।
आयुर्गलत्यविरलं जलं करतलादिवम् ॥
शैलनद्यारय इव संप्रयात्येव यौवनम् ।
इन्द्रजालमिवासत्यं जीवनं जीर्णसंस्थितिः ॥
बुद्बुदः प्रावृषीवाप्सु शरीरं क्षणभंगुरम् ।
रम्भागर्भ इवासारो व्यवहारो विचारगः ॥

पका फल जिस तरह पेड़ से गिर ही पड़ता है उसी तरह शरीर का मरण निश्चित है । हथेली पर रखा पानी जैसे ढुलक जाता है वैसे ही आयु घटती चली जा रही है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहाड़ी नाले के पानी की तरह यौवन भागता चला जा रहा है । यह बाजीगर के इन्द्रजाल जैसी माया सब ओर फैली पड़ी है ।

पानी के बबूले की तरह यह जीवन अब तब फूटने ही वाला है । केले के खम्भे में लगे पत्तों की तरह यहाँ सब कुछ असार ही दीख पड़ता है ।

दृष्टदैन्यो हतस्वान्तो हतौजा याति नीचताम् ।
मुह्यते रौति पतति तृष्णयाभिहतो जनः ॥

तृष्णा द्वारा पटक-पटक कर मारा हुआ मनुष्य दीन, हृदय हीन, निस्तेज हो जाता है । मोहग्रस्त होकर रोता है, और पतन के गर्त में गिर जाता है ।

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः :
क्षीयते जीयते सर्व तृष्णैका हि न जीर्यते ॥

वृद्ध होने पर मनुष्य के केश, दाँत समेत सारी काया जीर्ण हो जाती है, पर तृष्णा तो भी तरुण ही बनी रहती है ।

घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि ।
कदलीस्तम्भनिःसारे संसारे सारमार्गणय ॥
यः करोति स सम्मूढो जलबुद्बुदसन्निभे ।

—मनु

निरन्तर घात करने वालों से घिरा हुआ यह घोर संसार केले के खम्भे के समान निस्सार है । पानी के बबूले की तरह पोला और क्षणिक है । जो इसमें सार ढूँढ़ता है वह महामूर्ख है ।

शेषे कलत्रचिन्ताऽऽर्तः किं करोति नराधमः ।
सतोऽसता स्थिता मूर्ध्नि रम्याणां मूर्ध्न्यरक्षयता ।
सुखानां मूर्ध्नि दुःखानि किमेकं सम्रयाम्यहम् ॥

—महोपनिषद्

बचपन अज्ञान से घिरा रहता है, युवावस्था में वासना, तृष्णा के आकर्षण बाँधे रहते हैं । बुढ़ापे में परिवार की चिन्ता सताती है । ऐसा चिन्ताग्रस्त अधम जीव अपना क्या उपकार करेगा ? सत के ऊपर असत् का शासन है । शोभा पर कुरूपता चढ़ी बैठी है । सुख के ऊपर दुःख घिर रहा है । अब किसकी शरण जाया जाय ?

शिव गीता में यह वर्णन इस प्रकार आता है—

नीयते मृत्युना जन्तुः परिष्वक्तोऽपि बन्धुभिः ।
सागरान्तर्जलगतो गरुडेनेव पन्नगः ॥

बन्धुओं से घिरे हुए प्राणी को मृत्यु ले जाती है जिस प्रकार समुद्र में प्राप्त हुए सर्प को गरुड़ ले जाता है ।

हा कान्ते हा धनं पुत्राः क्रन्दमानः सुदारुणम् ।
मण्डूक इव सर्पेण मृत्युना नीयते नरः ॥

हा प्रिये ! हा धन ! हा पुत्रो ! इस प्रकार दारुण विलाप करते हुए इस पुरुष को मृत्यु इस प्रकार ले जाती है जैसे सर्प मेंढ़क को ले जाता है ।

संजायतेऽस्ति विपरिणमते वर्धते तथा ।
क्षीयते नश्यतीत्येते षड्भावा वपुषः स्मृताः ॥

अब शरीर की अवस्था वर्णन करते इसकी निस्सारता प्रतिपादन करते हैं । उत्पत्ति (होना), अस्ति, परिपक्वता, वृद्धि, क्षय और नाश यह छः अवस्था इस शरीर की हैं ।

देहेऽस्मिन्नभिमानेन न महोपायबुद्धयः ।
अहंकारेण पापेन क्रियन्ते हंत साम्प्रतम् ॥

इस देह को प्राप्त होकर पाप बुद्धि पुरुष महाअभिमान करते हैं और अहंकार-रूप पाप से मुख्यानन्द मोक्ष का कुछ भी उपाय नहीं करते, यह महा शोच की बात है ।

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहारकर्मसु ।
अतृप्ताः प्राणिनस्सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च ॥

—चाणक्य नीति

धनों में, जीवन में, स्त्रियों में और भोजन में अतृप्त होकर सब प्राणी गये, जायेंगे और जाते हैं ।

अच्छा हो, समय से पूर्व चेता जाय, अपनी गतिविधियाँ बदली जायें और पश्चाताप का अवसर न आने दिया जाय ।

जिन क्रिया-कलापों, गतिविधियों में मनुष्य व्यस्त रहता है—जिन तृष्णा वासनाओं में निरन्तर निमग्न रहता है वे कितनी व्यर्थ और निरर्थक हैं उसका पता विवेक के सहारे भी लग जाता है । दूसरों की दुर्दशा देखकर भी वस्तुस्थिति को समझा जा सकता है । यह जीवन पर्यवेक्षण यदि गम्भीरतापूर्वक किया जाय तो विवेक की आँख खुल सकती है और मोह की मदान्ध स्थिति से छुटकारा पाकर उस मार्ग पर चल सकता है जिससे जीवनोद्देश्य की पूर्ति सम्भव होती है । मोहान्ध व्यक्ति यदि आत्मनिरीक्षण करें तो उन्हें प्रतीत होगा कि—

शरीरमिदं मैथुनादेवोद्भूतं संविध्ययेतं निरय एवं मूत्रद्वारेण निष्क्रान्तमस्थिभिश्चतं मांसेनानुलिप्तं चर्मणाववद्धं विण्मूत्रवातपित्तकफमज्जामेदोवसाभिरन्यैश्च मलैर्बहुभिः परिपूर्णम् । एताद्दशे शरीरे वर्तमानस्य भगवंस्त्वं नो गतिरिति ॥

—मैत्रेय्युपनिषत्

मैथुन जैसे घृणित कर्म से उत्पन्न हुआ यह घृणित शरीर मूत्र द्वार से निकला है । हड्डियों से चिना गया है । माँस से लपेटा गया है । चमड़े से मढ़ा गया है । विष्ठा, मूत्र, कफ, मज्जा आदि मलिन पदार्थ इसमें भरे हैं । ऐसी अपवित्र देह यदि ज्ञानरहित होकर जिये तो फिर साक्षात् नरक ही मानना चाहिए ।

इति मे दोषदावाग्निदग्धे संपति चेतसि ।
स्फुरन्ति हि न भोगाशा मृगतृष्णासरः स्वपि ॥

—महोपनिषद्

मेरे चित्त की सम्पदा दोष रूपी दावानल में जल रही है । मृगतृष्णा की तरह लालसाओं में भटकता हुआ मैं कुछ भी पा नहीं सका ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग वाशिष्ठ में इस मोहान्ध स्थिति की और भी स्पष्ट विवेचना की है । उन पर विचार किया जाय तो सहज ही वैराग्य भाव उत्पन्न होता है ।

आपदः सम्पदः सर्वाः सुखं दुःखाय केवलम् ।
जीवित मरणायैव बत माया विजृम्भितम् ॥

सम्पदा आपदा के लिये, सुख केवल दुःख के लिये, जीवन मरण के लिये, माया तेरी यह कैसी विचित्र विडम्बना है ।

न केनचिच्च विक्रीता विक्रीता इव संस्थिताः ।
बत मूढ़ा वयं सर्वे जानाना अपि शाम्बरम् ॥

किसी ने हमें बेचा नहीं है । तो भी हम बिके हुओं की तरह माया के दास होकर मूढ़ता का जीवन जी रहे हैं ।

इयं संसारसरणिर्वहत्यज्ञप्रमादतः ।
अज्ञस्योग्राणि दुःखानि सुखान्यपि दृढ़ानि च ॥

—योग वाशिष्ठ

मूर्खता के कारण ही लोग इस माया चक्र में नाचते हैं । अज्ञानी ही दुःख भोगते हैं ।

संसारविषवृक्षोऽयमे कमास्पदमापदाम् ।
अज्ञं संमोहयेन्नित्यं मौर्ख्यं यत्नेन नाशयेत् ॥

अज्ञानी के लिये ही यह संसार विष वृक्ष है । उसी पर आपत्तियाँ आती हैं और वही दुख पाता है ।

आगमापायिनो भावा भावना भवबन्धनी ।
नीयते केवलं क्वापि नित्यं भूतपरम्परा ॥

विषय वासना ने सबको बुरी तरह जकड़ रखा है । कोई न जाने कहाँ इन सबको बाँधकर घसीटे लिये जा रहा है ।

सर्व एव नरा मोहाद्दुराशापाशपाशिनः ।
दोषगुल्मकसारंगा विशीर्णा जन्मजंगले ॥

—योग वाशिष्ठ

लोग मोह और तृष्णा की फाँसी पर टँगे हुए, दोष रूपी झाड़ियों में उलझे हुए, इस जीवन जंगल में मृगों के समान नष्ट हो रहे हैं ।

तृष्णालताकाननचारिणोऽमी शाखाशतं काममहीरुहेषु
परिभ्रमन्तः क्षपयन्ति कालं मनोमृगा नो
फलमाप्नुवन्ति ।

मन रूपी मृग तृष्णाओं की लताओं में भटकता है । मरकट की तरह वह काम रूपी वृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं पर उछल-कूद करता है पर फल कहीं नहीं पाता ।

पर्णानि जीर्णानि यथा तरूणां समेत्य-
जन्माशु लयं प्रयान्ति ।
तथैव लोकाःस्वविवेकहीनाः समेत्य-
गच्छन्ति कुतोऽप्यहोभिः ॥

जिस प्रकार वृक्षों पर लगे पत्ते पककर झड़ जाते हैं । उसी प्रकार विवेकहीन लोग यहाँ आते हैं, जन्मते और मर जाते हैं ।

सतोऽसत्ता स्थिता मूर्ध्नि मूर्ध्नि रम्येश्वरम्यता ।
सुखेषु मूर्ध्नि दुःखानि किमेकं संश्रयाम्यहम् ॥

सुन्दर दीखने वाले पदार्थों के सिर पर कुरूपता सवार है । सुखों की आड़ में दुःख छिपे बैठे हैं । मैं किसकी शरण में कहाँ जाऊँ ?

आपातमधुरारम्भा भंगुरा भवहेतवः ।
अचिरेण विकारिण्यो भीषणा भोगभूमयः ॥

आरम्भ में मधुर दीखने वाले ये भोग क्षण भर भी तो नहीं ठहरते । देखते-देखते दारुण दुख देकर विदा हो जाते हैं ।

उपर्युक्त चिन्तन अप्रिय और भयानक लग सकता है । पर यही वह वास्तविकता है जिसे समय रहते समझ लिया जाय तो वह अवसर ही न आवेगा जिसमें अप्रियता और भयानकता अनुभव करनी पड़े ।

जरामरणदुःखानामेका रत्नसमुद्भिका ।
आधिव्याधिविलासानां नित्यं मता विलासिनी ॥
दृष्टिदैन्यो हतस्वान्तो हतौजा याति नीचताम् ।
मुह्यते रौति पतति तृष्णयाभिहतो जनः ॥
जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
क्षीयते जीयते सर्वं तृष्णैवैका न जीर्यते ॥

—योग वाशिष्ठ

तृष्णा से ही मनुष्य जराजीर्ण, दुखी और रोगी होता है । अगणित आधि-व्याधि तृष्णाग्रस्त, को ही घेरती हैं । तृष्णा का मारा मनुष्य दीन-हीन, कृपण, दुर्बल, निस्तेज होकर दुर्गति के गर्त में गिरता है । हर समय रोता, चिल्लाता है और पग-पग पतित होता है । शरीर बूढ़ा हो जाने पर भी यह पापिन तृष्णा जवान ही बनी रहती है ।

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वाऽस्य न वा कृतम् ।
क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसम् ॥
वृकीवारेणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।
न कालस्य प्रियः कश्चिद्द्वेष्यश्चास्य न विद्यते ॥
आयुध्ये कर्मणि दीक्षे प्रसह्य हरते जनम् ॥

—अग्नि पुराण

मृत्यु यह नहीं देखती कि उसने अपने काम पूरे कर लिये या नहीं । यह धर्म कृत्य में लगा है या प्रपंच के जाल जंजालों में । भेड़िये के से पेटवाली इस मृत्यु को किसी पर भी दया नहीं आती । वह चाहे जिस को चाहे जब उठाकर चल देती है । आयु और कर्म समाप्त हो जाने पर मनुष्य मृत्यु के मुख में बलात् घसीटे हुए घुसते चले जाते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न श्रीः सुखाय भगवन्दुःखायैव हि वर्धते ।
गुप्ता विनाशनं धत्ते मृति विषलता यथा ॥
मनोरमा कर्षति चित्तवृत्ति कदर्थसाध्या क्षणभंगुरा च ।
व्यालावलीगात्रविवृत्तदेहाश्चभ्रोत्थिता
पुष्पलतेवलक्ष्मी ॥

—योग वाशिष्ठ

पैसे की बढ़ोत्तरी सुख के लिये नहीं, केवल दुःख के लिये ही होती है । पाली-पोषी विषलता जिस तरह मृत्यु का कारण बनती है, वैसे ही जमा की हुई सम्पदा भी विनाश ही उत्पन्न करती है ।

कुलटा स्त्री के समान यह दौलत भी मोहक रूप बना कर चित्त को भ्रमाती है । दुष्ट कर्मों में प्रवृत्त कराती है और स्वयं भग जाती है । सर्पिणी की तरह यह चमकती दीखती है पर इसका विष नहीं दीखता । कुएँ में उत्पन्न फूलों की बेल की ओर जो आकर्षित होता है वह गर्त में ही गिरता है ।

न तदस्तीह यदयं कालः सकलघस्मरः ।
ग्रसते तज्जगज्जातं प्रोल्वाग्निमिव वाडवः ॥
किं श्रिया किं च राज्येन किं देहेन किमीहितैः ।
दिनैः कतिपयैरेव कालः सर्वं निकृन्तति ॥
ग्रसतेऽविरतं भूतजालं सर्प इवानिलम् ।
कृतान्तः कर्कशाचारो जरां नीत्वाऽजरं वपुः ॥

—योग वाशिष्ठ

प्रलय की अग्नि जैसे समुद्र को जला डालती है वैसे ही यह सर्वभक्षी महाकाल सबको खा जाता है । लक्ष्मी से क्या ? सत्ता से क्या ? रूप यौवन से क्या ? तृष्णाओं से क्या ? थोड़े समय में काल इन सबको जड़ मूल से उखाड़ कर रख देगा । यह महाक्रूर काल तरुण शरीरों को बुढ़ापे से पका पकाकर स्वादपूर्वक खाया करता है ।

भूल को सुधारने का ठीक यही समय

समय की गति आमतौर से धीमी पवन की तरह मंद गति से चलती है । पर कभी-कभी आवेश की स्थिति में वह आँधी, तूफान, चक्रवात की तरह अतिशय तीव्र होती हुई भी देखी गयी है । उस तीव्रता में न जाने कितना-कितना उलट-पुलट हो जाता है । नदियों के प्रवाह की सामान्य गति रहने पर उन्हें तैर कर पार किया जा सकता है, पर जब वे उफान पर होती हैं तो भयंकर भँवर पड़ते हैं और वे नावों जहाजों को अपने कुचक्र में फँसाकर डुबा देते हैं । आदमी साधारणतया एक घंटे में चार मील की चाल से चलता है पर वायुयान जैसे वाहन मिल जाने पर घंटे में छहे सौ मील की दूरी पार कर लेता है । आवेश में साधारण स्थिति का मनुष्य भी कई गुनी तेजी अपना लेता है और आश्चर्यजनक दौड़ लगाता है । इसी को यदि चाहें तो समय की चाल चलना बढ़ना भी कह सकते हैं । औसत क्रम से बीज को पेड़ बनने में समय लगता है पर यदि गहराई तक खोदकर अन्यत्र गड्ढे में लगा दिया जाय तो दूसरे ही दिन नये स्थान पर नया पेड़ इस प्रकार खड़ा हो जाता है, मानो वह कई वर्ष पुराना हो । इसे भी समय की चाल में गिना जा सकता है ।

पिछली दो सहस्राब्दियों ने इतनी गति पकड़ी है जितनी कि लाखों वर्षों में नहीं बन पड़ी थी । विज्ञान के आविष्कारों को देखकर लगता है किसी बाजीगर ने अपना भानुमती का पिटारा खोलकर उसमें भरी सारी करामातों को कुछ ही क्षणों में सर्वत्र बिखेर दिया हो । आदिमकाल से लेकर लाखों वर्षों में मनुष्य जो कुछ हस्तगत कर सका था उसकी तुलना में इन दो शताब्दियों में उसने कम नहीं अधिक ही कर दिखाया है । ज्ञान की इतने क्षेत्रों में इतनी शाखाएँ अभी-अभी विकसित हुई हैं, जिन्हें देखकर लगता है कि जानकारियों के क्षेत्र में मनुष्य ने सारे संसार को, प्रकृति के रहस्यों को और दर्शन के गूढ़ तथ्यों को कुछ ही दिनों में अविज्ञात से ज्ञात बना दिया है ।

पारसी, यहूदी, बौद्ध, ईसाई और मुस्लिम धर्मों ने अपना विस्तार इतनी तेजी से किया है जितना कि पुरानी धार्मिकता लाखों वर्षों में यत्किंचित ही प्रगति कर सकी हो । बारूद का आविष्कार होने पर युद्धों का धरातल ही बदल गया । अब बिजली, रोशनी, गर्मी, ठंडक कुछ भी देने में समर्थ है । वह पंखा झलाती है । रेडियो के माध्यम से धरती के एक कोने का संवाद दूसरे कोने तक पहुँचाने में कुछ ही सेकिण्ड लगते हैं । उसे कुओं से पानी खींचते और भारी भरकम कारखाने चलाते हुए देखा जाता है । पूर्वकाल में इसकी किसी को कल्पना तक न थी ।

रीति-रिवाजों में, परम्पराओं में असाधारण परिवर्तन हुआ है । पुरातन वेशभूषा का स्थान पश्चिमी फैशन ने ले लिया है । राजतन्त्र की जड़ें उखड़ गयीं और उस स्थान पर प्रजातन्त्र आ खड़ा हुआ । सामंत, जमींदार, साहूकारों की कभी तूती बोलती थी, पर वे अब ऐतिहासिक प्राणी मात्र बनकर रह गये हैं । पर्दा प्रथा अब अपना अस्तित्व समेटती जाती है । जाति-पाँति, ऊँच-नीच, नर और नारी के बीच चलने वाला अन्तर अब अपनी आखिरी साँसें गिन रहा है । साम्यवादी विचारधारा ने संसार के दोतिहाई लोगों को अपनी चपेट में ले लिया है । अणु आविष्कार ने प्रकृति की महत्त्वपूर्ण शक्ति को हस्तगत कर लिया है । ग्रह-उपग्रहों पर मनुष्य को भेजकर राकेट महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ संग्रह करने में लगे हैं । रोबोट मनुष्य की प्रतिद्वन्द्विता कर रहे हैं । कम्प्यूटरों ने मानवी मस्तिष्क के अधिकांश कार्य अपनी मुट्ठी में ले लिये हैं । परिवार नियोजन, शल्य चिकित्सा आदि के क्षेत्र में न जाने स्थिति कहाँ जा पहुँची है और भी न जाने कहाँ क्या-क्या हो रहा है जिन्हें देखकर हतप्रभ रह जाते हैं । प्राणियों की संकर प्रजातियों, वनस्पतियों के वर्णसंकर स्वरूपों को देखकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगता है कि पदार्थ सम्पदा की भाँति मनुष्य प्राणिजगत का भी भाग्य-विधाता बनकर रहेगा । यह सब काम इतनी तेजी से हुए हैं, जिन्हें देखते हुए लगता है कि अपना समय अत्यन्त द्रुतगामिता की चाल अपना रहा है ।

जाने अनजाने ज्ञान को मनुष्य आमतौर से भूलता नहीं । द्रुतगामिता अब अपनी नियति बन गयी है । वाहनों की दौड़ को देखते हुए इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है । तथ्यों को देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचना किसी के लिए भी कठिन नहीं होना चाहिए कि अगले समय में भी ऐसा ही कुछ चलता रहेगा जो पिछले प्रचलन के स्थान पर नवीनता को स्थानापन्न करते हुए अपनी गतिशीलता को धीमी न पड़ने दें वरन् उसे और भी अधिक आगे बढ़ा दें ।

घड़ी का पेण्डुलम एक सीमा तक ही आगे बढ़ता है । प्रकृति के नियम इसके बाद उसे वापस लौटने के लिए बाधित कर देते हैं ।

पिछले दिनों की द्रुतगामिता ने अनेकों उपलब्धियाँ भी अर्जित की हैं । साथ ही ऐसी भूलें भी कम नहीं हुई हैं जिनके कारण सदा सर्वदा पछताना पड़ेगा और उन्हें सुधारने के लिए उससे अधिक प्रयत्न करना पड़ेगा जितना कि अत्यधिक पाने की दौड़ में समेटने-बटोरने में अत्युत्साह दिखाया गया है । कारखानों द्वारा अत्यधिक उत्पादन करने की दौड़ में चिमनियों से निकलने वाला प्रदूषण इतना अधिक संचित हो गया है कि दम घुटने की बारी आ गयी है । कारखानों और शहरों का बेशुमार कचरा पड़ते रहने से नदियों का जल विषैला, अपेय होता जा रहा है । ऊर्जा के अधिक प्रयोग से वातावरण इतना गरम हो जाता है जिसे देखते हुए ध्रुवों की बर्फ पिघल जाने और समुद्रों में बाढ़ आने की विभीषिका दिल दहलाने लगती है । आकाश की ओजोन परत फटने पर पृथ्वी पर ब्रह्माण्डीय किरणें बेधड़क बरस सकती हैं और धरती के पदार्थों को चना-चबेना की तरह भूनकर रख सकती हैं । अणु शक्ति का प्रयोग परीक्षण तेजी से चल रहा है, पर यह सूझ नहीं पड़ता कि इन भट्टियों से निकली खतरनाक राख को कहाँ रखकर विकरण से प्राण छुड़ाये जा सकेंगे ।

जनसंख्या खेल-खेल में बढ़ती जा रही है पर उसके लिए निर्वाह के साधन जुटाना दूभर हो रहा है । यह विज्ञान का अभिशाप है जिसके कारण मनुष्य की जीवनीशक्ति बेतरह क्षीण होती जा रही है और वह अशक्त-अपंग स्तर का बनकर रहने लगा है । कमजोरी और बीमारी सहज स्वभाव में सम्मिलित हो गयी हैं । शरीर में काम करने की और मस्तिष्क में सोचने की दूरदर्शिता दिन-दिन क्षीण होती जाती है । लगता है कि कुछ समय उपरान्त मनुष्य अपनी मौलिक क्षमताएँ गँवाकर परावलम्बी स्तर का जीवनयापन करने लगेगा ।

वैज्ञानिक दुरुपयोग से भी बढ़कर एक अनर्थ यह हुआ है कि मनुष्य ने अपनी मौलिक गरिमा शालीनता से बुरी तरह मुँह मोड़ना आरम्भ कर दिया है । मर्यादाओं के पालन और वर्जनाओं को मानने में आस्था घटती जाती है । चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में घुसता जा रहा प्रदूषण इतना भयावह है कि उनके कारण उत्पन्न होने वाली विकृतियों और समस्याओं का कोई अन्त ही नहीं है । इस बेचैनी की हालत में स्थिति ऐसी नहीं रह जाती कि अपने समग्र चिन्तन, अपनी रीति-नीति, दिशाधारा के संबंध में कोई सुनिश्चित निर्णय किया जा सके । अनिश्चय की स्थिति में नीरसता और निष्ठुरता की मनोभूमि बनती है, जो मरघट में रहने वाले प्रेत-पिशाचों की तरह डराने और व्यथित कर देने के लिए बाधित करती है ।

औसत मनुष्य की ऐसी ही विपन्न परिस्थिति है, जिसमें जीना और मरना दोनों ही कठिन हो रहा है । आलस्य, प्रमाद, उपेक्षा, अनुशासन की अवमानना, नीरसता, निरुद्देश्य जीवनयापन का सम्मिलित माहौल ऐसा बनता जा रहा है, जिसमें किसी प्रकार का घुटन भरा जीवन ही जिया जा सकता है ।

मनःस्थिति में विषाक्तता भर जाने पर परिस्थितियाँ विभीषिकाओं से भरीपूरी होना नितान्त स्वाभाविक है । अपराधों और छद्मों की बाढ़ इसी कारण आती है । विषैले तालाब में मछली किस प्रकार जियें ? घुटन भरे वातावरण में मनुष्य किस प्रकार शान्तिपूर्वक जिये ?

पदार्थ विज्ञान और प्रत्यक्षवादी बुद्धिवाद ने एक हाथ से जो कुछ दिया है उसे दूसरे हाथ से दुष्प्रवृत्ति ने बढ़कर छीन भी तो लिया है । ऐसी दशा में अपनी स्थिति पर सोचने वाले मनुष्य यही निष्कर्ष निकालते हैं कि उनने प्रगति के नाम पर अनीति को ही अपनाया । बुद्धिमानी के अहंकार में उसने झाड़-झंखाड़ भरी भूल-भुलैया का विस्तार ही अपनाया है । ऐसी स्थिति में चैन कहाँ ? शान्ति कैसी ?

गिनती गिनना भूल जाने पर फिर दुबारा से उसे गिनना पड़ता है । रास्ता भटक जाने पर फिर वापस लौटना पड़ता है । गलती को सुधारना पड़ता है । इसके बिना और कोई चारा नहीं । जिस तेजी से हम आगे बढ़े हैं उसी तेजी से वापस भी लौटना पड़ेगा । जो परिस्थितियाँ आज सामने हैं उन्हें सुधारने के लिए उतनी ही तेजी अपनानी पड़ेगी । भूल को सुधारने का ठीक यही समय है, अन्यथा जिस अवांछनीयता को पिछले दिनों अपनाया गया था, उसी पर और भी आगे चलते रहा गया तो स्थिति ऐसी आ जायेगी जिसका कि प्रायश्चित बन पड़ना भी संभव नहीं होगा ।

मनुष्य को कृमि-कीटकों से ऊँचा तो होना ही चाहिए

उपभोग की इच्छा, कृमि-कीटकों, पशु-पक्षियों और अविकसित प्राणियों में भरी रहती है, उसी से प्रेरित होकर वे अपने विविध क्रिया-कलाप चलाते हैं । पेट की भूख को पूरा करने के लिए जीव-जन्तु अहर्निशि भागते, दौड़ते देखे जाते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । प्रौढ़ावस्था में उन्हें प्रजनन की उत्तेजना व्यग्र करती है उसकी तृप्ति के लिए वे जोड़ा मिलाते हैं और भिन्न लिंग वाले प्राणी के साथ दोस्ती गाँठते हैं । मादा को प्रकृति ने एक और भावनात्मक विशेषता दी है—वात्सल्य । इस प्रेरणा से उसे घोंसला बनाने, अण्डे सेने और बच्चे पालने का भी झंझट सहन करना पड़ता है । यदि उस जाति के प्राणी में नर-मादा के साथ रहने का प्रचलन रहा तो फिर उसे भी पत्नी को शिशु-पालन में सहारा देना पड़ता है । इतनी ही छोटी सीमा में अविकसित पशु-पक्षियों और प्राणियों की जीवनचर्या का आरम्भ और अन्त होता है । शरीर की दो ही भूख हैं पेट और प्रजनन । निकृष्ट स्तर के प्राणी इन दो की तृप्ति के अतिरिक्त और कुछ न तो सोचते हैं और न करते हैं ।

अविकसित मनुष्य भी इसी परिधि में घूमते हैं । उनके सोचने और करने का घेरा इतना ही सीमित होता है । स्वादेन्द्रिय से लेकर जननेन्द्रिय तक की लिप्साएँ-लालसाएँ मन में विविध प्रकार के विक्षोभ उत्पन्न करती हैं और उन उद्वेगों के समाधान के लिए कई तरह की गतिविधियाँ अपनानी पड़ती हैं । स्वादिष्ट भोजन पाने-पकाने के लिए रसोईघर का, पाक विद्या का विस्तार होता है । एक के बाद दूसरे स्वाद और शक्ल के व्यञ्जन बनाये, तलाशे जाते हैं । घर में सन्तोष नहीं होता तो हाट, बाजार और होटलों में पत्ते चाटे जाते हैं । स्पष्ट है कि यह चटोरापन ही स्वास्थ्य सम्पदा का सत्यानाश करता है । रुग्णता और अकाल मृत्यु का ग्रास बनाता है फिर भी स्वाद तो स्वाद ही ठहरा । विकसित कहे जाने वाले अविकसित स्तर के नर-पशु के लिए स्वाद की महिमा बहुत बढ़ी-चढ़ी हो गई । अन्य प्राणी भूख की तृप्ति के लिए व्याकुल रहते हैं । मनुष्य की विकासोन्मुख विशेषता स्वादेन्द्रिय के चटोरेपन तक बढ़ गई । मूल बात खाने और पेट भरने तक ही सीमित बनकर रह गई ।

शरीर की अगली भूख कामचेष्टा है । अन्य प्राणी साथी की तलाश और यौन प्रयोजन पूरा करके उस क्षुधा की तृप्ति कर लेते हैं । मनुष्य ने कामचेष्टा का बौद्धिक विस्तार किया है और विवाह उसी का नाम है । नर-नारी साथ-साथ रहे तो यौन-कर्म के प्रतिफल प्रजनन को भी व्यवस्थित करना पड़ा । नारी को प्रसव और नर को शिशु-पालन के आवश्यक साधन जुटाना भी आवश्यक हो गया । बात यौन-कर्म भर की थी, पर उसी की प्रतिक्रिया बच्चे-कच्चो के रूप में सामने आ खड़ी हुई तो समाज व्यवस्था के अनुसार वह उत्तरदायित्व भी वहन करना पड़ा । समीप और साथ रहने के कारण बालकों की कोमलता एवं सुषमा भी सुहाने लगी अतः बन्धन और भी कड़े हुए और घर-परिवार बन गया ।

अन्य प्राणी भी यौन-कर्म की ऐसी ही क्रिया-प्रतिक्रिया में व्यस्त पाये जाते हैं । मनुष्य ने भी अपने स्तर के अनुरूप इन्हीं दो पशु प्रवृत्तियों का विकास किया है । पेट भरने की साधन-सुविधा, तन ढकने विलास विन्यास के साधन जुटाने की अन्य कई दिशाओं में विस्तृत हो गई ।

थोड़ा और बौद्धिक विकास हुआ तो एक नई मस्तिष्कीय भूख जगती है—जिसे अहंकार की तृप्ति कहते हैं । दूसरों की तुलना में अपना बड़प्पन चाहना—इसे अहंता कहा गया है । अहंकार की पूर्ति के लिए मनुष्य ऐसे काम करते हैं जिससे उन्हें दूसरों की तुलना में अधिक सफल और अधिक सम्पन्न कहा जा सके । चूँकि आज धनवान को अधिक सम्मान प्राप्त है इसलिए चेष्टा अधिकाधिक धनी बनने की होती है । इसमें सम्मान के अतिरिक्त अधिक मात्रा में अधिक सुविधाजनक वस्तुओं को प्राप्त करने का अवसर रहता है । धनी व्यक्ति निर्धनों पर अपनी गरिमा की छाप तो डालते ही हैं, परिवार समेत इसी धन संपदा के आधार पर अधिक सुखोपभोग किया जा सकता है । अस्तु, धन संग्रह की एक अतिरिक्त आकांक्षा भी मनुष्य में बढ़ी-चढ़ी मात्रा में पाई जाती है जिसे 'तृष्णा' कहते हैं ।

वैभव का प्रदर्शन करने के लिए तरह-तरह के ठाट-बाट बनाये जाते हैं । शृंगारों, साज-सज्जा का यही प्रयोजन है कि निर्धन और अभावग्रस्त लोग उस वैभव का आतंक मानें और धनवान को अपने से ऊँचे स्तर का समझ कर सम्मान प्रदान करें । कई बार तो गुण्डागर्दी और आतंकवाद का भी उद्देश्य यह अहंकार प्रदर्शन ही होता है । प्राचीनकाल में तो युद्ध भी इसी अहंता की सनक पूरी करने के लिए लड़े जाते थे । लूट-खसोट से लेकर रोष-प्रतिशोध भी उन दिनों युद्ध प्रवृत्ति को भड़काते थे, पर मूल कारण आतंकवादी, अहंकार का प्रदर्शन ही रहता था । अब भी लोग इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर करने न करने योग्य, कृत्य-कुकृत्य करते रहते हैं । कई बार तो धर्माडम्बरों के खर्चीले और कष्टसाध्य प्रदर्शन भी इसी निमित्त किये जाते हैं ।

वैभव सचय और अहंकार प्रदर्शन की संयुक्त महत्वाकांक्षा को 'तृष्णा' नाम दिया जाता रहा है । शरीर तृप्ति को प्रवृत्ति की वासना और मानसिक लिप्सा की पूर्ति को तृष्णा कहते हैं । देखा जाता है कि ओछे स्तर का मनुष्य समाज अपनी समस्त क्षमता को इन्हीं दो कार्यों में जुटाये रहता है । खाने और पीने की अभिलाषा ही उसके समस्त क्रियाकलापों का केन्द्रबिन्दु होता है । इसे पशु प्रवृत्ति से एक कदम भी ऊँचा स्तर नहीं कहा जा सकता है । पशु शारीरिक और मानसिक क्षमताओं की दृष्टि से पिछड़ा होता है, इसलिए उसके प्रयास भी उतने ही छोटे और क्षणिक होते हैं । मनुष्य चूँकि विकसित स्तर का है इसलिए उसने न केवल शारीरिक सुखोपभोग के दो आधार पेट और प्रजनन का विकास विस्तार किया है, वरन् अहंता की मानसिक क्षुधा विकसित करके तृष्णा पूर्ति के साधन जुटाये हैं । यों यह तृष्णा, अहंता अन्य प्राणियों में भी पाई जाती है । मधुमक्खियाँ और चींटियाँ संग्रह करना जानती हैं और सर्प, सिंह आदि को अहंकारी आक्रोश प्रकट करते सदा ही देखा जाता है । दहाड़ते, चिंघाड़ते नर वर्ग के प्रौढ़ प्राणी प्रायः अपना अहंकार ही व्यक्त करते हैं । कई बार तो वे इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर मल्लयुद्ध की चुनौती भी देते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सृष्टि के अन्य प्राणियों से मनुष्य को जो विशिष्टता प्रदान की गई है वह उसकी शारीरिक बौद्धिक गरिमा नहीं वरन् भावनात्मक महानता है । शरीर की दृष्टि से मनुष्य कितने ही प्राणियों से पिछड़ा है । उसमें जलचरों और नभचरों जैसी डूबने, तैरने या उड़ने की विशेषता कहाँ है । थलचरों में भी घोड़े जैसे दौड़ने वाले, हाथी जैसे विशालकाय और सिंह जैसे पराक्रमी कितने ही प्राणी हैं जो मनुष्य की शारीरिक क्षमता को सहज ही चुनौती दे सकते हैं । मानसिक दृष्टि से, इन्द्रिय उत्कृष्टता की दृष्टि से छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े तक मनुष्य से कहीं आगे हैं । गन्ध का आश्रय लेकर छोटे कीड़े अपनी जीवनचर्या चलाते हैं । कुत्ते की घ्राण क्षमता से सभी परिचित हैं । चमगादड़, मकड़ी, मधुमक्खी, चींटी, दीमक जैसे तुच्छ प्राणियों की मानसिक विशेषताएँ देखकर दंग रह जाना पड़ता है । इनमें से कितनों को तो वर्षा, सूखा ऋतु परिवर्तन से लेकर भूकम्प आदि का भी पूर्वाभास रहता है । इन विशेषताओं का लेखा-जोखा लिया जाय तो मनुष्य को इन प्राणियों की तुलना में पिछड़ा हुआ ही पाया जायगा । वह बन्दर की तरह न तो पेड़ों पर रहकर जीवनयापन कर सकता है और न चूहे की तरह बिलों में ही उसका गुजारा है । बर्फ में रहने वाले सफेद भालू, पेनगुइन पक्षी जितनी क्षमता भी तो उसमें नहीं है । बिना दिशायन्त्र या घड़ी की सहायता के हजारों मील लम्बी यात्रा करने और अपने स्थानों को लौट आने वाले पक्षियों जैसी विशेषताएँ उसमें कहाँ हैं ?

मनुष्य की अपनी महानता और विशेषता एक ही है भावनात्मक उत्कृष्टता । वह खाने में नहीं खिलाने में रस लेता है और उसी से अपनी महानता को सन्तुष्ट, परिपुष्ट करता है । दूसरों को दुःख पाते देखकर स्वयं दुःखी हो उठना और पिछड़े हुओं की, पीड़ितों की सहायता के लिए हाथ बढ़ाना जिसके लिए अनिवार्य और अपरिहार्य हो जाय उसे ही मानवी विशेषता से सम्पन्न कहना चाहिए । 'करुणा' को मानवी उत्कृष्टता का अविच्छिन्न अंग कह सकते हैं । हिमालय के उच्च शिखर पर जमा हुआ बर्फ पिघलकर निचले क्षेत्र की जल आवश्यकता को पूरा करने के लिए नदी निर्झरों के रूप में बहता है । इस बहाव में प्रकृति की करुणा को बहता हुआ देखा जा सकता है । बादलों में से ऊपर से जल राशि के रूप में यह करुणा ही बहती है । वृक्षों में से पत्र, पुष्प और फलों के उत्पादन को अभावग्रस्त आवश्यकता की पूर्ति के लिए करुणा का विकास ही कह सकते हैं । घास इसी उद्देश्य को लेकर उगती और जीवित रहती है कि उससे प्राणियों की क्षुधा पूर्ति का साधन बन सके ।

आत्मा का गुण है—आत्मीयता । आत्मीयता का अर्थ है—अपनी विशेषताओं और परिस्थितियों से दूसरों को सजाने, सँजोने की प्रवृत्ति । हमें जो वैभव मिला है उसे मिल-बाँटकर खाने के लिए यह आत्मीयता ही प्रेरित करती है । अपना आपा शरीर तक सीमित न रहकर जब अधिकाधिक क्षेत्र में विकसित होता है तो उसे आत्म विस्तार कहते हैं । आत्म-विकास ही मानव जीवन का लक्ष्य है । अपूर्णता का अर्थ है सीमाबद्धता और पूर्णता का तात्पर्य है सीमा का अधिकाधिक विस्तार । शरीर और परिवार तक सीमाबद्ध रहना उतने ही क्षेत्र के सुख-दुःख में दिलचस्पी रखना यह बताता है कि चेतना को स्वार्थ भरी संकीर्णता ने भव-बन्धनों में अवरुद्ध करके रखा है । आत्म-विस्तार जिस क्रम से जितना होगा उतनी ही आत्मीयता की परिधि बढ़ती जायगी । जो आत्मीय होते हैं उनके दुःख बँटाने और सुख बढ़ाने की आकांक्षा स्वभावतः उमँगती है । जिसके अन्तःकरण में असंख्यों को अपना मानने की भाव चेतना जग पड़े समझना चाहिए कि आत्मीयता की महान आध्यात्मिक विभूति का वरदान इसे उपलब्ध होने लगा ।

आत्मा को परमात्मा का पद तब प्राप्त होता है जब वह अपनी लघुता को महानता में विसर्जित करता है और स्वार्थ को परमार्थ की सीमा तक बढ़ाता है । जिसे परमार्थ ही स्वार्थ प्रतीत होने लगे समझना चाहिए उसे आत्मविस्तार का अध्यात्म अनुदान मिलना आरम्भ हो गया । नर को नारायण, पुरुष को पुरुषोत्तम बनने के लिए आत्म-विकास की मञ्जिल पूरी करनी पड़ती है । सीमित से असीम बनना पड़ता है । "अपने में सबको और सब में अपने को" देखने का दृष्टिकोण ही तत्वज्ञान है । इसी को ब्रह्म-विद्या एवं आध्यात्मिकता का सार कह सकते हैं । पेट प्रजनन की और अहंता की परिधि से ऊँचे उठकर जब संसार के पिछड़ेपन को हटाने के लिए अपने समस्त साधनों को नियोजित करने की करुणा जगे तो समझना चाहिए कि महान मानवता का प्रकाश अन्तःकरण में उठा । जब शरीर और परिवार से आगे बढ़कर समस्त संसार को समुन्नत बनाने के लिए सक्रिय सद्भावना उमगे तो कहना चाहिए मानवी गरिमा का उत्कर्ष हो चला । यही है मानव जीवन का लक्ष्य—जिसे पाये बिना किसी का भी अन्तरात्मा सुखी सन्तुष्ट नहीं हो सकता ।

समस्त शक्तियों का भंडार—हमारा मन

हमारा मन एक उपजाऊ खेत है, जिससे जो वस्तु चाहो सीधे रास्ते से पैदा कर सकते हो । जो इसका उचित उपयोग करेगा वह लाभ पायेगा । जैसा बोयेगा वैसा काटेगा ।

किन्तु मन की यह क्षेत्रता प्राकृतिक नहीं है । इसे बनाना पड़ता है । जिस प्रकार उर्वरता का गुण होने पर भी हर भूमि में खेती नहीं होती, उसे खेत का रूप देने के लिए उपाय करने पड़ते हैं । उसी प्रकार मन में भी क्षेत्रता उत्पन्न करती है । तभी वह मनोवांछित फल प्रदान करता है अन्यथा अनिर्मित मन भी वन-भूमि की तरह ही घास-पात, कुश-कंटक और अनुपयोगी वनस्पति ही पैदा करता रहता है ।

मन का निर्माण है उसका परिमार्जन और उसकी उर्वरता है एकाग्रता । मन को एकाग्र-स्थिति में लाए बिना उसकी शक्तियों का लाभ नहीं उठाया जा सकता ।

जीवन में किसी भी सफलता का समावेश करने के लिए मानसिक शक्तियों का अपिरहार्य महत्व है । प्राप्तियों,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपलब्धियों और सफलताओं का आधार है मनुष्य की क्रियाशीलता और इस क्रियाशीलता का सारा संचालन मन द्वारा ही होता है । जितना अधिक मानसिक शक्तियों का सहयोग मिलता जाएगा क्रियाशीलता उतनी ही तीव्र, प्रखर होती जाएगी । मन की शक्ति एकाग्रता में सन्निहित है । जीवन-विकास के लिए एकाग्रता की साधना करते ही रहना चाहिए । मनुष्य का एकाग्र मन उसकी उन्नति का एकमात्र आधार माना गया है । जो मनुष्य अपने मन को एकाग्र कर लेता है, वह किसी भी कार्य में उसकी सारी शक्तियों का एक साथ प्रयोग कर सकता है । जिस प्रकार एक आतशी शीशा सूर्य की किरणों को एकाग्र कर किसी को जला देने की शक्ति संपादित कर लेता है, उसी प्रकार एकाग्र मन अपनी एकत्र शक्तियों द्वारा कोई भी प्रयोजन सिद्ध कर सकता है ।

आज तक संसार में जितने व्यक्ति भी उन्नति के शिखर पर चढ़ सकने में सफल हो चुके हैं, उनमें से कोई भी ऐसा नहीं है जो सहसा ही उस स्थिति पर पहुँच गया हो । उन्नति कोई आकस्मिक घटना नहीं है । वह क्रमिक विकास और प्रगति की अविरल प्रक्रिया का परिणाम है । जिसको एकाग्रतापूर्वक ही पूरा किया जा सकता है । चंचल मन और बिखरी वृत्तियों द्वारा उसका पूरा कर सकना संभव नहीं । मानसिक चंचलता मनुष्य की सारी क्षमताएँ बिखेर कर उन्हें निर्बल एवं निरर्थक बना देती है ।

मन को किसी एक निश्चित लक्ष्य पर केन्द्रित करना ही उसकी एकाग्रता है । सूर्य की किरणों में बड़ी भयानक आग होती है । किन्तु सारे संसार पर फैली होकर भी वे किसी चीज को गरम तो कर देती हैं पर जला नहीं पातीं । इसका कारण यही है कि वे सूर्य की अग्नि का थोड़ा-थोड़ा अंश लेकर अलग-अलग छितरी रहती हैं । किन्तु जब ये किसी उपाय द्वारा एकाग्र करके प्रयोग की जाती हैं, तो तुरन्त ही भयानक अग्नि का रूप धारण कर लेती हैं । वैज्ञानिकों का कथन है कि यदि किसी उपाय से सूर्य की बिखरी किरणों को किसी साधन द्वारा एक स्थान पर एकत्र कर उनको जिस दिशा में भी संधान कर दिया जाए तो वे उस दिशा की सारी वस्तुओं को खाक बना सकती हैं । किन्हीं शक्तियों का एकत्रीकरण ही उनकी एकाग्रता है जिससे कोई भी प्रयोजन सिद्ध किया जा सकता है ।

यह बात सही है कि मन स्वभावतः बड़ा ही चंचल और प्रमथनशील होता है । कठिनता से वशीभूत है । तथापि इसका एकाग्र करना असंभव कदापि नहीं । कतिपय उपायों द्वारा इसे वश में करके एकाग्र बनाया जा सकता है । इसका सरल-सा उपाय यह है कि इसको बहुमुखी न रखकर एकमुखी बनाया जाए । मनुष्य अपने मन को संसार की न जाने कितनी छोटी-मोटी बातों में उलझाए रहता है । उनमें से अधिकांश बातें ऐसी ही होती हैं, जिनसे न तो कोई प्रयोजन होता है और न उनका जीवन के लिए उपयोग । मनुष्य को चाहिए कि वह संसार की तमाम निरर्थक और निरुपयोगी बातों को छोड़कर अपने मन को किसी एक निश्चित लक्ष्य, प्रयोजन अथवा ध्येय में लगाए । मन एक ही होता है । वह किसी एक ही प्रयोजन में पूरी तरह लगाया जा सकता है । वह एक बार में एक ही काम कर सकता है । जिस एक काम पर मन को संपूर्ण रूप से नियोजित रक्खा जाएगा, वह कार्य निश्चित रूप से सफल होगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं ।

एकाग्रता सिद्ध करने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि अपने मन को संसार की ऐसी बातों से दूर रखा जाए जिससे बेकार की उलझनें और समस्याएँ पैदा हों । उसे केवल ऐसी बातों और विचारों तक ही सीमित रखा जाए जिनसे अपने निश्चित लक्ष्य का सीधा सम्बन्ध हो । प्रायः लोगों का स्वभाव होता है कि वे घर, परिवार, मुहल्ले, समाज, देश, राष्ट्र आदि की उन बातों में अपने को व्यस्त बनाए रहते हैं जिनसे उनके मुख्य प्रयोजन का कोई सरोकार नहीं होता । इस स्वभाव का जन्म निरर्थक उत्सुकता द्वारा ही होता है ।

इस निरर्थक उत्सुक-वृत्ति से बचने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी विचारधारा को क्रिंखल अथवा विशीर्ण न होने दे । सारी विचारधारा अपने ध्येय के चिन्तन में ही लगानी चाहिए । जो लोग अपने ध्येय से अलग अपनी विचारधारा को बहने देते हैं, उनका मन अस्त-व्यस्त और चंचल ही बना रहता है । वह छिन्न-भिन्न होकर यहाँ-वहाँ भटकता रहता है जिससे उसकी वह शक्ति विकसित नहीं हो पाती जो जीवन की सफलता के लिए आवश्यक होती है ।

विचारधारा का प्रकार संगति और साहित्य से निर्मित होता है । आदमी जिस तरह के लोगों के साथ रहता है और जिस प्रकार का साहित्य पढ़ता है उसकी विचारधारा उसी तरह की हो जाती है । बातून, वाचाल और गप्पी लोगों का संग करने वाले भी बहुधा उसी प्रकार के हो जाते हैं । जासूसी कहानियाँ, उपन्यास अथवा कामोत्तेजक साहित्य पढ़ने वाले लोगों का मन एकाग्र नहीं हो पाता । बहुत से लोग अखबारों में छपने वाले सनसनीखेज और विचित्र समाचारों को पढ़ने में ही रुचि लेते हैं । ऐसे लोग भी अपना मन एकाग्र करने में सफल नहीं हो सकते । मन की एकाग्रता के लिए गम्भीर, शालीन और उच्च-कोटि के लोगों का ही साथ करना चाहिए और वैसा ही साहित्य पढ़ना चाहिए । सस्ता साहित्य और सस्ती संगति मनुष्य को स्वभावतः चंचल और हल्का बना देती है । जो विचार अथवा कार्य मन में उद्वेग या हलचल पैदा करने वाले होते हैं उनसे एकाग्रता के उद्देश्य को हानि पहुँचती है ।

मन की एकाग्रता का दूसरा अर्थ है विचारों की एकाग्रता । विचार व्यर्थ की चीज नहीं हैं । बहुत से लोग इस बात की चिन्ता नहीं करते कि उनके मन-मस्तिष्क में किस प्रकार के विचार आते-जाते रहते हैं । गन्दे और निरुपयोगी विचार आने पर भी वे उनमें तृण की तरह बहते रहते हैं । वे नहीं समझ पाते हैं कि इससे उन्हें क्या और कितनी हानि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

होती है ? विचार एक शक्ति है, अमोघ शक्ति । वे मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन पर अपना स्थायी प्रभाव डालते हैं अपने अनुरूप उसे हानि-लाभ की ओर ले जाया करते हैं ।

जिनका मन-मस्तिष्क उत्साह और आशापूर्ण विचारधारा से परिवित रहता है, जिनके विचार ऊँचे और आदर्श होते हैं, जो सदैव आगे बढ़ने, ऊँचे उठने और जीवन में कोई बड़ा काम करने की बात ही सोचते रहते हैं निश्चय ही वे एक दिन अपने इस उद्देश्य में सफल हो जाते हैं । जिस प्रकार निरर्थक, निरुद्देश्य और विविधतापूर्ण विचार मनुष्य को चंचल और उसके मन की शक्तियों को छिन्न-भिन्न कर देते हैं, उसी प्रकार उसके ऊँचे, उद्देश्यपूर्ण और आदर्शवादी विचार उसमें गम्भीरता और एकाग्रता उत्पन्न कर देते हैं । विद्वान मनोवेत्ता सालोमन ने एक स्थान पर लिखा है—मनुष्य चुपचाप मन में जैसे विचार लिए फिरता है वैसा ही वह बन जाता है, परन्तु बड़ी-बड़ी बातें करते रहने से कुछ नहीं होता । हमारे कथन में हमारे संकल्प का सत्य होना चाहिए । जिन विचारों में पूरी सच्चाई, दृढ़ता और आस्था होगी, उन्हीं विचारों के पीछे सृजन की शक्ति निवास करती है ।

विचारों की उच्चता और गम्भीरता पर मानसिक एकाग्रता की साधना का बहुत-सा रहस्य निर्भर है । संसार के सारे महापुरुष उच्च और गम्भीर विचार वाले व्यक्ति रहे हैं । इसलिये उनमें चंचलता अथवा विशृंखला का दोष देखने को नहीं मिलता, गम्भीर विचारों की गहराई स्वयं ही मनुष्य को अपने में डुबाए रहती है । मनुष्य ज्यों-ज्यों विचारों की गहराई में डूबता जाता है । स्वभावतः वह अधिकाधिक एकाग्र और एकनिष्ठ बनता जाता है । उसकी सारी बाह्य चंचलता, वाचालता और विविधता नष्ट हो जाती है । वह दिन-दिन गम्भीर, गुरुतापूर्ण और एकाग्र होता जाता है । लोगों से बेकार में मिलना-जुलना, बात करना और घूमना-फिरना उसके स्वभाव से निकल जाता है । वह तो सारे समय अपने लक्ष्य और तत्सम्बन्धी विचारधारा में ही तल्लीन बना रहता है । ऐसे लोगों की मानसिक शक्तियाँ प्रबुद्ध होकर उनका साथ देती चलती है । ओछे-हल्के और निरुद्देश्य विचारों वाले लोगों की मानसिक शक्तियाँ क्षय होती रहती हैं और बिना किसी सार्थकता के नष्ट हो जाती हैं ।

जीवन में सफलता पाने के लिए मनुष्य का चिन्तक और विचारशील होना नितान्त आवश्यक है । किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि चाहे जिस तरह के विचार आ जाएँ, उनका ही चिन्तन-मनन करते रहा जाए । अपने मन और मस्तिष्क में आने वाले विचारों को सम्पादित करते रहना चाहिए । मनुष्य के मस्तिष्क में नित्य ही हजारों विचार आते-जाते रहते हैं, किन्तु वे सबके सब ही उपयोगी और सार्थक हों यह आवश्यक नहीं । मस्तिष्क में प्रतिक्षण आने वाले विचारों को देखते-परखते रहना चाहिए और जो विचार अपने उद्देश्य और प्रयोजन के लिए आवश्यक और उपयोगी दीखें उन्हें तो रहने दिया जाए और बाकी के सारे बेकार विचारों को निकाल कर फेंक देना चाहिए ।

यद्यपि विचारों को रोकने और निकाल फेंकने में थोड़ी कठिनाई जरूर होती है तथापि थोड़े-से अभ्यास द्वारा यह सरल बनाया जा सकता है । कुछ समय सावधान तथा सक्रिय रहने के बाद मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा बन जाएगा कि उसकी चिन्तनधारा में अनावश्यक विचार प्रवेश ही न करने पायेंगे । इस प्रकार जब मन में शुद्ध तथा सुन्दर विचार दृढ़ होने लगेंगे तो वे स्वयं भी अपने से विरोधी विचारों को अपने क्षेत्र में नहीं ठहरने देंगे । विचार विचारों को स्वयं भी बुलाते और भगाते रहते हैं ।

जीवन की सफलता के लिए मानसिक एकाग्रता की नितान्त आवश्यकता है । इससे मानसिक शक्तियों का जागरण तथा परिवर्द्धन होता है । किन्तु इसकी सिद्धि सम्भव तभी है जब मनुष्य की विचारधारा शुद्ध, प्रबुद्ध एवं उपयोगी हो । विचारों की यह विशेषता तभी प्राप्त होती है जब मनुष्य सच्चाई के साथ जीवन का कोई लक्ष्य लेकर चलता है । इस प्रकार सबसे पहले अपने जीवन का एक निश्चित लक्ष्य निर्धारित किया जाए ! उसी के अनुरूप विचार, चिन्तन और मनन करते रहा जाए ! इससे हृदय में एक गम्भीरता का समावेश होगा ! बाहर की सारी चंचलताएँ और अन्दर की सारी चंचलताएँ नष्ट होती चलेंगी और तब मन में एकाग्रता का भाव आने लगेगा ।

मन की एकाग्रता की उपलब्धि होते ही मनुष्य के अन्दर सोई सारी शक्तियाँ जाग उठेंगी जिनके बल पर वह असम्भव दीखने वाले कामों को भी सम्भव कर सकता है । बिखरे मन और विशृंखल शक्ति से संसार में कोई भी बड़ा काम नहीं किया जा सकता । अपनी शक्तियों का नियोजित उपयोग ही वह उपाय है, जिससे किसी भी कार्य की सिद्धि प्राप्त की जाती है किन्तु इस उपाय का प्रयोग एकमात्र एकाग्र मन पर ही निर्भर है । अस्तु, मनुष्य को अभ्यास अथवा साधना द्वारा मानसिक एकाग्रता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

मन को बालक्रीड़ाओं में भटकने न दें

बादलों का पानी जमीन पर गिरता है । जमीन से ढलान पर बहने वाली नदियों में जाता है और नदियाँ समुद्र के गहरे गर्त में जा गिरती हैं । पतन का यही स्वाभाविक क्रम है । मन को यदि रोका न जाय तो वह भी इसी दिशा में स्वभावतः चल पड़ेगा । इसलिए वर्षा के पानी को समुद्र के गर्त में से बचाकर किसी उपयोगी कार्य में लगाना या दिशा विशेष में बहाना हो तो उस पर भी रोकथाम लगानी होगी । पशुओं को खूँटे से बाँध कर ही निर्धारित कामों में लगाया जा सकता है अन्यथा वे छुट्टल छोड़ देने पर जिस-तिस का खेत उजाड़ेंगे । निरर्थक घूमेंगे और आपस में लड़ेंगे । इसलिए उन्हें अनुशासन में रखने के लिए मर्यादाओं का घेरा डालना और बंधन बाँधना पड़ेगा । मजबूत और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऊँचा बाँध बनाकर ही नदियों से सिंचाई के काम की नहरें निकाली जाती हैं ।

मन को चिन्तन पक्ष में प्रशिक्षित करने के लिए उसे संयम के अनुबन्ध अपनाने के लिए प्रशिक्षित करना पड़ेगा । इन अनुबंधों को संयम कहते हैं । इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम सीख लें तो समझना चाहिए कि अबोध मन वयस्क हो गया और उसने नहाने, कपड़ा धोने, दाँत माँजने, बिस्तर उठाने, बुहारी लगाने जैसे उपक्रम अपनाकर साफ-सुथरा रहना सीख लिया । उन्हें न अपनाने पर कल्पनाएँ और इच्छाएँ ऐसा नटखटपन करती रहेंगी जैसा अबोध बालक करते हैं । वे चन्दा मामा से लेकर तारागणों की गेंदे बनाने के लिए मचल सकते हैं । इन अभिलाषाओं को, माँगों को कोई पूरा नहीं कर सकता । तृष्णा की खाई इतनी गहरी है कि उसके लिए अनेक जन्मों का परिश्रम खपाया जाय तो भी उसको पाटा नहीं जा सकता । अन्ततः अब या फिर कभी उन विडम्बनाओं में से कल्पनाओं को उबारना पड़ेगा तो उसके लिए चिन्तन पर अंकुश लगाने, इच्छाओं पर अंकुश लगाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग मिलेगा नहीं ।

चिन्तन के उपरान्त मनुष्य की बड़ी शक्ति है—प्रयास, श्रम एवं समय का सुनियोजन । जीवन का तात्पर्य वर्षों की लम्बाई नहीं, वरन् यह है कि उसके समय घटकों का किस प्रकार, किस निमित्त उपयोग किया गया । अनेक थोड़े दिन जीते हैं, किन्तु अभिमन्यु और भगतसिंह की तरह, विवेकानन्द और रामतीर्थ की तरह अल्प आयु में ही अपने को, अपने समाज को कृत-कृत्य कर जाते हैं । कितने ही ऐसे होते हैं जो परम अवधि सौ वर्ष तक जी लेते हैं, पर रहते दूसरों पर भार बनकर ही हैं । ऐसे दीर्घजीवन से क्या अपना और क्या दूसरों का लाभ ?

देखना यह है कि जीवन सम्पदा को किस निमित्त लगाया जाय ? इसके लिए प्रचलन देखने की आवश्यकता है । मछलियों में बड़ी छोटी को निगल जाती है और उस बड़ी को मछुए के जाल में अपना प्राण गँवाना पड़ता है । प्रचलन ऐसा ही है । बहुमत ऐसे ही निरर्थक काम करता रहता है । समस्त पृथ्वी पर जितने मनुष्य रहते हैं, उतने दृश्य और अदृश्य कृमि कीटक एक मील की परिधि में रहा करते हैं । पर उनकी उपयोगिता क्या ? पेट प्रजनन के कुचक्र में इधर से उधर भटकते रहते हैं । इसी स्तर का जीवन अधिकांश मनुष्य जीते हैं । उनकी नकल क्या करनी ? वनमानुषों, नर पशुओं का अनुकरण भी कोई करने लायक बात है ।

बहुसंख्यक लोगों का क्रिया-कलाप ही प्रचलन कहाता है । बहुसंख्यक तो अपनी आत्मसत्ता के अस्तित्व तक को भुला बैठे हैं । उन्हें अपना आपा काया मात्र के रूप में परिलक्षित होता है । अपनापन उन्हें शरीर तक सीमित प्रतीत होता है इसलिए उसी की सुख-सुविधा साधने में जीवन को रुचिपूर्वक खपाते रहते हैं । पेट की भूख, जननेन्द्रिय की तरंग, धन की ललक, बड़प्पन की, बड़ाई की सनक । बस इसी सीमा में उनके क्रिया-कलाप बनते हैं । बच्चे जनने और उन्हें पालने में तो चुहिया भी प्रवीण होती है । वह तीन सप्ताह में प्रौढ़ हो जाती है और एक बार में आठ दस बच्चे जनती है । यह प्रजनन वर्ष में प्रायः चार बार होता है । इस प्रकार तीस-चालीस बच्चों की जननी वह एक वर्ष में ही बन जाती है । हर बार पति बदलने पड़ते हैं इस प्रकार ढेरों की वह पर्यंकशायिनी बन लेती है । इसमें कौन-सा व कैसा बड़प्पन ? क्या गौरव, क्या महत्व ? मनुष्य भी किशोरावस्था में ही प्रजनन कर्म में लगता है और बच्चे पैदा करने के अतिरिक्त उन्हें पालता भी है । यही जाल-जंजाल इतना बड़ा है जिसका कि ताना-बाना बुनते बुढ़ापा आ धमकता है और मौत अपने थैले में चना चबैना की तरह समेट ले जाती है ।

किसी विचारवान की दृष्टि से देखा जाय तो इस प्रकार जिया जाना कृमि-कीटकों से, पशु-पक्षियों से ऊँचे स्तर का तनिक भी नहीं है । सभी जीवधारी ऐसा ही करते एवं इसी मार्ग पर चलते रहते हैं । भवन बनाने में दीमक और दाने जमा करने में, श्रम करने में चींटी की मेहनत को सराहा ही जा सकता है । जमाखोरी के लिए खटने वालों में मधुमक्खी का जीवन इसी गोरख-धन्धे में बीतता है । दिन भर श्रम वह करती है और उस संचय का लाभ कोई दूसरे उठाते हैं । मनुष्य भी अपनी क्षमताओं का उपयोग इन्हीं प्रयोजनों के लिए करते रहते हैं । सब ओर जो होता दीखता है उसी की नकल वे स्वयं भी करने लगते हैं । मस्तिष्क में समझ तो बहुत होती है । शिक्षा और चतुरता तो बहुत अर्जित करली जाती है । पर उनका उपयोग भी इन्हीं तुच्छ प्रयोजनों के लिए होता रहता है । इसी कोल्हू में चलते पिलते वह दिन आ खड़ा होता है जिसके उपरान्त और कुछ करने को शेष नहीं रह जाता ।

मन को समझाया जाना चाहिए कि जिस प्रकार एकाकी स्वार्थ चिन्तन में अपनी बुद्धि लगाई जाती है, उसी प्रकार यह भी देखा जाना चाहिए कि जीवन सम्पदा का उपयोग मानवोचित रीति से हुआ या नहीं ? मनुष्य को अतिरिक्त बुद्धिमत्ता, अतिरिक्त क्षमता और प्रतिभाओं से भरा-पूरा जीवन दिया गया है । वह शरीर यात्रा भर के लिए खर्च नहीं हो जाना चाहिए जिस प्रकार कीड़े-मकोड़ों का होता है । अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए मोर नाचता है, जुगनूँ चमकता है, भौंरा गूँजता है, पर इस विडम्बना से क्या तो उन्हें मिलता है और क्या कोई और कुछ पाता या सीखता है । वैभव बढ़ाकर ठाट-बाट रोपने में हमें भी मिथ्या अभिमान के अतिरिक्त और क्या मिल पाता है । उपभोग की एक सीमा है । उसके बाद जो बचता है, उसे दूसरे मुफ्तखोर ही हड़प जाते और हराम की कमाई को फुलझड़ी की तरह जलाते हैं । हो सकता है यह मुफ्तखोर तथाकथित कुटुम्बी सम्बन्धी ही क्यों न हों ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वासनाओं की पूर्ति क्षण भर के लिए होती है दूसरे ही क्षण दूने वेग से फिर उभर आती है । उसकी पूर्ति में प्रसन्नता अनुभव करना ऐसा ही है जैसे कुत्ता सूखी हड्डी चबाते हुए अपना ही जबड़ा घायल कर लेता है और उससे टपकने वाले खून को सूखी हड्डी का रस मानता है । चटोरेपन और कामुकता की ललक को पूरी करने का प्रयत्न ठीक इस भूखे कुत्ते के समान है जो अपना ही जबड़ा घायल करता जाता है और लाभ कमाने की बात सोचता है । दाद खुजाकर अपने को लहू-लुहान कर लेने की तरह ही विषयासक्ति है । उससे मनुष्य अपनी ही जीवनीशक्ति को निचोड़ता और खोखला होकर बेमौत मरता है ।

लोभ, मोह और अहंकार, वासना, तृष्णा और बड़प्पन यही विडम्बनाएँ आदि से अन्त तक मनुष्य के सिर पर भूत-पलीत की तरह चढ़ी रहती हैं और गहरे नशे की तरह विचारशीलता को कुंठित किये रहती हैं ।

मन को समझाया जाना चाहिए कि जीवन सृष्टा की सर्वोपरि कलाकृति है । वह अमानत के रूप में किसी महान प्रयोजन के लिए मिला है । इसे इस उपहासास्पद ढंग से न गँवाया जाय, जिससे समय निकल जाने पर पश्चाताप ही शेष रहे । शरीर की वास्तविक आवश्यकताएँ थोड़े से श्रम व समय में पूरी की जा सकती हैं फिर उन्हीं को बढ़ाते रहने और न पूरी हो सकने वाली विडम्बनाएँ रचने से क्या लाभ ?

मृग मरीचिका में भटकती हमारी भ्रान्त मनःस्थिति

जो कुछ हम देखते और समझते हैं वह सब सही ही नहीं होता । उसमें भ्रम का भी एक बहुत बड़ा अंश जुड़ा रहता है । इसलिए मोटे रूप से जो कुछ समझते हैं उसी में यथार्थता नहीं मान लेना चाहिए वरन् वस्तुस्थिति जानने के लिए गहराई तक प्रवेश करना चाहिए ।

मृग मरीचिका की बात प्रसिद्ध है । सूखे रेगिस्तानों में खार की परतें रेत के ऊपर उभरी होती हैं । रात को चन्द्रमा की चाँदनी में वे स्वच्छ जल से भरे तालाब जैसी दीखती हैं । प्यासे हिरन वहाँ अपनी प्यास बुझाने को आते हैं पर मिलता कुछ नहीं । दूसरी ओर नजर उठाकर देखते हैं तो वैसे ही जल दृश्य फिर देखते हैं, वे उधर दौड़ते हैं पर मिलता वहाँ भी कुछ नहीं । इस प्रकार के भ्रम जंजाल में फँसे प्यास बुझाने के स्थान पर दौड़-धूप के अतिरिक्त थकान से ग्रसित होते जाते हैं ।

कस्तूरी हिरन के बारे में भी ऐसी बात है । अपनी नाभि में से निकलने वाली सुगन्ध को वह अन्यत्र समझता है और उसका आनन्द लेने के लिए दिशा-दिशा में दौड़ता है परन्तु अन्त तक असफल ही बना रहता है ।

पतंगे दीपक पर उसका रूप दर्शन करने के लिए दौड़ते हैं और पंखों को जला बैठते हैं । चकोरी की चन्द्रमा का प्रतीक समझकर अंगार को खाने और अपनी चोंच जला लेने की किम्बदन्ती प्रसिद्ध है । कुत्ता सूखी हड्डी चबाते समय अपने जबड़े से निकलने वाले रक्त को हड्डी का रस समझता है और अपने शोषण को बाहर की उपलब्धि मानता है । ऐसे असंख्य उदाहरण अल्पविकसित पिछड़े प्राणियों के हैं ।

भूत-प्रेतों की मान्यता के दिनों इस अजूबे का समाधान सरल था पर अब इस विज्ञानवादी युग में हर बात की यथार्थता जानने का प्रयत्न किया जाता है । विशाल जल राशि के भूतल गर्भ में कई बार छुटपुट विस्फोट होते रहते हैं उसमें गैसें ही नहीं कितने ही विचित्र तथा दूसरे पदार्थ भी मिले रहते हैं । यह उछलकर जल की सतह के ऊपर आते हैं, तो सूर्य की किरणें—वायु चक्र तथा विशिष्ट विद्युत तरंगों का एक असाधारण कुहरा बन जाता है । इसके छतराते हुए मेघ खण्ड आँखों को भ्रम में डालते हैं । उस उथल-पुथल में ऐसा आभास होता है मानो कोई जीवधारी आकृतियाँ एवं भवन उद्यान जैसी रचनाएँ आकाश में तैर रही हैं । वायुयानों में टेलीविजन यन्त्रों में से वस्तुस्थिति मालूम की गई तो यह सत्य सिद्ध हुए, यह दृश्य मृगमरीचिका भर उनका वैसा अस्तित्व वही जैसा कि आँखों को दीख पड़ता है ।

तृष्णाग्रस्त होकर सम्पत्ति के संग्रह में उचित अनुचित का भेद छोड़कर निरन्तर संलग्न रहना लगता तो अच्छा है पर उसमें सार कुछ नहीं । निर्वाह के लिए जितना आवश्यक है उतने का ही उपयोग किया जा सकता है शेष तो जहाँ का तहाँ ही पड़ा रहता है । बालू में से तेल निकालने की भ्रान्ति उपहासास्पद मानी जाती है । पर जब वासना और तृष्णा में से आनन्द और संतोष पाने का प्रयत्न करते हैं, तो वस्तुतः यह मृगमरीचिका जैसी भ्रान्तिग्रस्त मनःस्थिति का ही परिणाम है ।

भ्रान्तियों से उबरें, प्रगति पथ प्रशस्त करें

मनुष्य में प्रतिभा, क्षमता, योग्यता बीज रूप में पूरी तरह विद्यमान हैं । इन सबके विकास की अनेकानेक सम्भावनाएँ भी समाई हैं । यही कारण है कि मानव समुदाय में से विश्व को चमत्कृत कर देने वाले व्यक्तित्व उपजते आए हैं । शारीरिक स्तर पर इन क्षमताओं के जागरण से कुशल जिम्नास्टिक, एथिलीट, पहलवान बनते देखे जाते हैं मानसिक स्तर पर कल्पनाशीलता का जागरण व्यक्तित्व को कालिदास, गेटे, टेनीसन, वड्र्सवर्थ, आईंस्टीन, काण्ट, इब्नेसिना जैसे दर्शनशास्त्री व वैज्ञानिक के रूप में गढ़ने वाला होता है । भावनात्मक स्तर पर जाग्रत प्रतिभा व योग्यता व्यक्ति को महात्मा गाँधी, तिलक, विवेकानन्द जैसा सन्त, समाजसेवी बनाने वाली होती है ।

प्रत्येक में प्रतिभा के इन बीजों के बावजूद कल्पनाहीन कुण्ठित बुद्धि, भावनाहीन, संकीर्ण स्वार्थरत मनुष्यों की भरमार ही चारों ओर दिखाई देती है । जो मनुष्य अपने विकास की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्भावनाओं को पहचानकर उन्हें उपयोग में लाकर न केवल स्वयं समर्थ और सशक्त बन सकता था, वरन् दूसरों का आश्रयदाता सिद्ध हो सकता था, आज दुःखी, पीड़ित, उदास, निराश, हैरान, परेशान की स्थिति में जिस-तिस तरह की जिन्दगी गुजार रहा है, सेवा-सहायता की बात तो दूर अपना जीवन ही उससे ढोते नहीं बनता ।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने मानव की वर्तमान स्थिति का गहराई से अध्ययन करने का प्रयास किया है । उनके अध्ययन का केन्द्रबिन्दु यही रहा है, क्षमता के बीजों के रहते अक्षम रहने का कारण क्या है ? मनोविद् बी. एम. फॉस ने अपनी कृति 'न्यू हॉरिजन्स ऑफ साइकोलाजी' में इस कारण को स्पष्ट करने की चेष्टा की है । उनका कहना है कि वर्तमान की सारी दुर्बलताओं, परेशानियों का कारण मानवी मन की स्वयं के स्वरूप के बारे में भ्रमात्मक धारणा है । अधिकांशतया लोग या तो आत्महीनता से पीड़ित हैं अथवा उद्धत अहंकार को लादे हुए हैं । आत्महीनता से ग्रसित व्यक्ति अपने को निरा दीन-हीन समझता है । उसे हमेशा यही भान होता रहता है कि मेरी उन्नति सम्भव नहीं, जबकि अहंकारी अपने को पूर्णतया विकसित मानता है । दोनों ही दशाओं में विकास की सम्भावनाओं के द्वार बन्द हो जाते हैं ।

अमेरिकन मनोवैज्ञानिक डॉ. मैक्सवेल माल्ट्ज अपने अध्ययन 'द मैजिक पावर ऑफ सेल्फ इमेज साइकोलाजी' में स्पष्ट करते हैं कि खुद के बारे में दृष्टिकोण को सुधारा जा सके तो योग्य सक्षम बन सकना असम्भव नहीं है । इसके लिए न तो कोई छोटा है और न बड़ा । सभी समान रूप से नूतन, रचनात्मक, सृजनशील सफल जीवन की लक्ष्य प्राप्ति के इस प्रयोग में संलग्न हो सकते हैं ।

माल्ट्ज अपनी इसी कृति में बताते हैं कि मनोविज्ञान के क्षेत्र में कुछ दशक पूर्व यह माना जाता था कि पॉजिटिव थिंकिंग अथवा पोषक विचारों के द्वारा स्वयं की योग्यताएँ उभारी जा सकती हैं । किन्तु नूतन शोध अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि यदि अपने बारे में धारणाएँ भ्रामक बनी रहें तो पोषक विचार पूर्ण प्रभावी नहीं होते हैं । यदि अपने बारे में हेय और निकृष्ट होने की मान्यता जड़ जमाए बैठी है तो बाह्य परिस्थितियों के बारे में पोषक विचारों को स्थान दे पाना सम्भव नहीं बन पड़ता है ।

स्वयं के नवीन व उत्कृष्ट स्वरूप गढ़ने की आवश्यकता पर बल देते हुए प्रेस्काट लेकी ने अपनी रचना 'सेल्फ कन्सिसटेन्सी ए थ्योरी ऑफ पर्सनालिटी' में तकनीकी को स्पष्ट किया है । उनके अनुसार व्यक्तित्व को ढालने के लिए एक ऐसा साँचा आवश्यक है जो अपने में आदर्शों, योग्यताओं एवम् क्षमताओं का समुच्चय हो । साथ ही मानव के मूलतः दिव्य होने की मान्यता को सार्वभौमिक स्थान दिया जाय । लेकी के अनुसार इन दोनों आस्थाओं को जगाकर जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन सम्भव है । जब खुद के मूलतः दिव्य होने पर विश्वास जमता है तो निकृष्टता, हीनता, विजातीयता समझ में आने लगती है । इससे जैसे-तैसे पीछा छुड़ाने में ही भलाई सूझती है । इसके साथ ही जब जीवन के आदर्श स्वरूप का ऐसा साँचा सामने होता है जो क्षमताओं एवम् आदर्शों का समुच्चय हो तो स्वयं को वैसा ही गठित करने में कोई कठिनाई नहीं होगी ।

प्रेस्कॉट द्वारा बताए गए उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों की स्थापना भारतीय चिन्तन में स्पष्ट रूप से मिलती है । उपनिषद् साफ़ शब्दों में मानव मात्र को "अमृतस्य पुत्रा" का सम्बोधन देते हैं जो मनुष्य को मूलतः दिव्य सिद्ध करता है । इसके साथ ईश्वर सम्बन्धी मान्यता के पीछे उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक रहस्य झाँकता है । इस मान्यता के द्वारा जीवन को तदनुरूप आदर्शयुक्त, सुयोग्य व सक्षम गठित करने का ही भाव है । इस भाव को ठीक-ठीक समझ लेने पर वर्तमान पूरी तरह रूपान्तरित होने लगता है ।

मनःशास्त्री एनी रो ने साइंटिफिक अमेरिकन के वाल्यूम ८७ में प्रकाशित शोध निबन्ध 'ए साइकोलाजिस्ट एग्जामिन्स सिक्सटी फोर इमिनेन्ट पर्सन्स' में उपर्युक्त तथ्यों का समर्थन किया है । उनका यह शोध पत्र चौंसठ विशिष्ट प्रतिभाशालियों के मनोविश्लेषण की रिपोर्ट है । रो लिखती हैं कि प्रखर प्रतिभावानों के मन, बुद्धि, व्यक्तित्व किसी विशेष तत्व से गठित नहीं होते । जन्म से प्रतिभावान होना अपवाद है, नियम नहीं । सभी प्रतिभाशाली लोगों में विशेष तत्व एक ही है कि वह अपने में निहित सम्भावनाओं को पहचानते हैं और उन्हें विकसित करने का प्रयास करते हैं ।

रो के अनुसार अपने को मूलतः दिव्य समझते हुए आवश्यक है स्वयं का सम्यक निरीक्षण किया जाय । इस सम्यक् निरीक्षण के द्वारा यह पता चलता है कि किस स्तर पर कौन-सी योग्यताएँ निखर सकती हैं । हर व्यक्ति की अपनी मौलिक विशेषताएँ होती हैं । उदाहरण के लिए मार्क ट्वेन की मौलिक विशेषता एक साहित्यकार की थी । इसको न समझ पाने के कारण जब वह व्यवसाय के क्षेत्र में उतरे तो पूरी तरह असफल हुए । बाद में भूल सुधार लेने पर उनकी गणना चोटी के साहित्यकारों में होने लगी । अतएव अपनी मौलिक विशेषता को जाना जाय ।

इसके साथ यह भी जरूरी है कि अपनी कमियों व दोषों को पूरी तरह विजातीय माना जाय, ऐसी धारणा इनसे सहज छुटकारा दिला देती है । प्रतिभा सम्बर्द्धन में एक अन्य अवरोध है बिना जाँच परखे खुद को सर्वोत्कृष्ट मान लेना । ऐसी दशा में अहम् की इतनी मोटी दीवार खड़ी हो जाती है कि विकास का द्वार ही अवरुद्ध हो जाता है । अतएव जरूरी है कि स्थित का सही-सही आकलन किया जाय ।

स्थिति के आकलन के पश्चात् अगला चरण है प्रयास । प्रयास का तात्पर्य है साँचे के अनुसार अपने को ढालना । आदर्शों के समुच्चय के अनुरूप अपने मूलतः दिव्य जीवन को शनैः-शनैः विकसित करना । अपने स्वरूप को मूलतः दिव्य मानने तथा आदर्शों की स्पष्ट धारणा होने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन में चमत्कारी रूप से परिवर्तन होने लगता है । इस तरह मानवी अन्तराल में समाए कालिदास, नेटे, गाँधी, तिलक, काण्ट, शंकराचार्य एक-एक करके प्रकट होने लगते हैं । आवश्यक है कि प्रतिभा सम्बर्द्धन के इस रहस्य को समझकर प्रयत्नशील हुआ जाय ।

सिद्ध जैसा अभिनय करिये

लोग अपने कष्टों को दूसरों को सुनाकर उनकी सहानुभूति प्राप्त करना चाहते हैं । देखा गया है कि लोग अपनी बीमारी, गरीबी, असफलता, दुर्भाग्य, तिरस्कार, हानि, विपत्ति आदि के विवरण सविस्तार दूसरों को सुनाने में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं और कभी-कभी उसमें नमक-मिर्च मिलाकर बढ़ा-चढ़ा भी देते हैं । ऐसे लोग यह आशा करते कि सुनने वाला उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करेगा, दुखी होगा, दया करेगा और दुखिया समझकर उनके लिये सहायता या स्नेह के भाव रखेगा ।

परन्तु यह आशा आमतौर से मिथ्या साबित होती है इस दुनिया में ऐसा कायदा है कि जो सुखी, स्वस्थ, समृद्ध, सम्पन्न, सफल, सौभाग्यशाली तथा समर्थ होते हैं उन्हें ही दूसरों की सहानुभूति और सद्भावना प्राप्त होती है । सब कोई पहले अपने स्वार्थ को प्रधानता देते हैं पीछे दूसरे की ओर देखते हैं । अभागे की राम कहानी सुनकर, सुनने वाला सोचता है, इस पर दैव का कोप है, पापों का फल भोग रहा है, आलसी या अयोग्य है, ऐसे आदमी से दूर रहना ही भला । यदि इसके साथ रहेंगे तो किसी न किसी प्रकार छीजना पड़ेगा, हानि उठानी पड़ेगी ऐसे मित्रों के रखने से समाज में मेरी प्रतिष्ठा घटेगी । इस सब बातों को सोचता हुआ, सुनने वाला उस वक्त शिष्टाचार की तरह चार शब्द भले ही कह दे या टूटी फूटी सहायता का टुकड़ा भले फेंक दे पर मन ही मन वह खिंचने लगता है, रूखापन और उदासीनता प्रकट करने लगता है । इस प्रकार वह आशा मिथ्या साबित होती है जिससे प्रेरित होकर आदमी अपने कष्टों को दूसरों को सुनाता है ।

उचित यह है कि हम अपनी असफलताओं और दीनता, हीनताओं को ध्यान में लावें । उन्हें दूसरों को सुनाने में तो बहुत ही सावधानी रखनी चाहिए क्योंकि अपने को असफल, अभागा घोषित करने का स्पष्ट परिणाम अपनी प्रतिष्ठा को खो देना है । इस दुनिया में इतनी फुरसत किसी को नहीं है कि आपका रोना सुनकर अपने को दुखी बनावे । हर एक को अपनी कठिनाइयाँ ही काफी हैं, आपकी मुसीबतों को सुनकर अपना दिल भारी बनाने की कोई इच्छा नहीं करता ।

यदि आप अपने को सफल, समृद्ध तथा सौभाग्यशाली घोषित करेंगे तो उससे कई लाभ होंगे लोग समझेंगे कि आप सुयोग्य, बुद्धिमान, चतुर, अनुभवी, गुणवान तथा क्रियाकुशल हैं तभी तो अपने मार्ग में सदा सफल होते हैं । ऐसे गुणवान और चतुर लोगों से अपनी मित्रता सब कोई चाहते हैं ताकि वक्त जरूरत पर उनको कुछ सहारा मिल सके । सुयोग्य मनुष्य से मित्रता होना भी एक योग्यता और प्रतिष्ठा की बात है यह अनुभव करके बहुत से लोग अनायास ही सौभाग्यशालियों के मित्र बन जाते हैं । इसलिए दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करने का तरीका यह नहीं है कि अपनी असफलताओं का रोना रोया जाय वरन् यह है कि अपनी सफलताओं और समृद्धियों को बताया जाय ।

अपनी असफलताओं का बार-बार स्मरण करने या वर्णन करने से अपना हौसला टूटता है और मन पर अयोग्यता की छाप बैठती है । यदि एक आदमी को बार-बार 'पागल' कहा जाय तो वह कुछ दिन में सचमुच ही आधा पागल बन जायगा । कारण यह है कि सुप्त मन आदेशों को ग्रहण करके उन्हें अपने अन्दर धारण करता है और फिर जीवन क्रम को उसी ढाँचे में ढालने लगता है । यदि मन में यह बात जमाई जाय कि हम अभागे हैं, दीन दुःखी हैं तो अन्तःमन उसी सूचना को स्वीकार कर लेगा और जीवन क्रम का निर्माण इस प्रकार करेगा कि सचमुच ही जीवन दुर्भाग्यों से भर जायगा ।

यदि आप सौभाग्यशाली बनना चाहते हैं, सुनहरे भविष्य की आशा करते हैं तो स्मरण रखिये आपको सिद्ध जैसा अभिनय करना होगा ।

आत्म-शिक्षण की अनिवार्य आवश्यकता

हाड़, माँस के शरीर की दृष्टि से मनुष्य अत्यन्त ही तुच्छ है । उसके अन्दर जो कुछ विशेषता है वह उनकी आन्तरिक चेतना ही है । विचार और विवेक की पूँजी के बल पर ही उसे सृष्टि का सर्वोत्तम जीव कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । इस पूँजी को जिसने जितनी अधिक मात्रा में एकत्रित कर लिया वह उतनी ही अधिक मात्रा में महानता उपलब्ध करता है ।

विचारों के अभाव में अविकसित मस्तिष्क के लोग निम्न-स्तर का जीवन-यापन करते हैं । अनेक व्यक्ति पशुओं की तरह दीन-हीन स्थिति में पड़े हुए मौत के दिन पूरे करते रहते हैं । पशुओं जैसा कोई ढर्रा उनके जीवन का भी चल पड़ता है और वे उसी चरखे को चलाते-चलाते किसी प्रकार जिन्दगी काट लेते हैं । गिरी हुई स्थिति के लोगों का यदि ध्यानपूर्वक विश्लेषण किया जाय तो उनमें प्रगतिशील मनुष्यों की अपेक्षा शारीरिक दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं होता, बहुत बार तो उनकी देह उच्चस्तर के लोगों की अपेक्षा भी अधिक सुदृढ़ और सक्षम होती है । पर वे मानसिक विकास के अभाव में उस देह का पशुओं जैसा परिश्रम करते रहने के अतिरिक्त और कोई लाभ नही उठा पाते ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचार-धन का अक्षयकोष

कई लोगों में मानसिक प्रतिभा जन्मजात भी होती है, पर अधिकांश में उसका विकास अपने प्रयत्नों पर ही निर्भर है । जो लोग आज उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त करके उच्च स्थानों पर बैठे हुए हैं—निर्माण, शासन, नेतृत्व, अन्वेषण, शिक्षण, चिकित्सा आदि महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं, वे जन्म से ही ऐसे पैदा नहीं हुए वरन् उनने अपनी प्रतिभा का क्रमिक विकास किया है । आरम्भ में उनका बौद्धिक स्तर भी सामान्य बालकों जैसा ही था, पर निरन्तर शिक्षा प्राप्त करने का कार्यक्रम बनाकर, वे दिन-दिन अधिक बुद्धिमान बनते गये और आज अपने उस बुद्धि-बल का समुचित लाभ उठा रहे हैं । दूसरी ओर वे लोग हैं जिनने इस दिशा में कुछ भी प्रयत्न नहीं किया—जहाँ थे वहीं बने रहे । बौद्धिक विकास का न उनने महत्व समझा और न उसके लिए प्रयत्न किया । यदि उनकी आकांक्षा इस दिशा में जगती तो निश्चय ही रास्ता भी मिलता, साधन भी जुटते और सहायक भी मिल जाते, पर जब इच्छा ही जाग्रत नहीं हुई, बुद्धिबल का महात्म्य ही समझ में न आया तो यह सब संभव भी कैसे होता ।

धनी और अमीरों तक के अनेक बालक उजड्ड रह जाते देखे गये हैं । उनके पास साधन सब होते हैं पर बौद्धिक विकास का महत्व उनकी समझ में नहीं आता, फलस्वरूप वे शौक-मौज में, क्रीड़ा विनोद में, आलस्य-प्रमाद में लगे रहते हैं । शिक्षा की प्रचुर सुविधा होते हुए भी वे उससे लाभ नहीं उठाते और गँवार के गँवार रह जाते हैं । इसके विपरीत अत्यन्त निर्धन स्थिति में उत्पन्न हुए बालक भी अपनी आकांक्षा को पूरा करने के लिए कुछ प्रयत्न करते हैं तो उन्हें उन्नति के साधन भी मिल जाते हैं और कष्टसाध्य परिस्थितियों को पार करते हुए धीरे-धीरे वे उन्नति के उच्च शिखर तक भी जा पहुँचते हैं ।

बौद्धिक पूँजी की श्रेष्ठता

हममें से हर एक को यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि मानव-जीवन की सबसे बड़ी सम्पदा उसकी 'बौद्धिक पूँजी' ही है । रुपया-पैसा, सोना-चाँदी, जमीन-जायदाद, व्यापार-उद्योग आदि सभी बड़े दुर्बल साधन हैं । इनसे रोटी की समस्या भले ही हल हो जाय पर और कोई महत्व इनसे मिलने वाला नहीं है । फिर इनका आर्थिक स्थायित्व भी तो बहुत स्वल्प है । कोई मूर्ख उत्तराधिकारी अपने पूर्वजों की संचित विशाल सम्पत्ति को भी थोड़े दिन की बेवकूफियों में ही स्वाहा कर सकता है । फिर कोई दैवी प्रकोप या आकस्मिक दुर्घटना भी उस सबको एक-दो झटकों में ही समाप्त कर सकती है । दौलत को चंचला कहते हैं, आज है तो कल भी बनी ही रहेगी इसका कोई निश्चय नहीं । स्थिर वस्तु तो 'बौद्धिक पूँजी' ही है जो इस जन्म में भी उन्नति के उच्च-शिखर तक ले जाती है और संस्कार रूप से जीव के साथ अगले जन्म में भी जाती है जिसके बल पर वह आसानी से वहाँ भी पर्याप्त बुद्धिबल प्राप्त कर लेता है ।

लौकिक जीवन में सुख-सम्पत्ति उपलब्ध करने के लिए समृद्धि और सफलता प्राप्त करने के लिए शिक्षा का महत्व एक स्वर से स्वीकार किया जाता है । कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य उन्हीं के कंधों पर आता है जो सुशिक्षित हैं । बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े हुए, अशिक्षित लोग, शारीरिक श्रम के सहारे ही पेट पालने और अपनी स्थिति बनाये रखने में समर्थ होते हैं । इसलिए कोई भी विचारशील व्यक्ति जब लौकिक जीवन को सुसम्पन्न बनाने की बात सोचता है तब उसे शिक्षा की आवश्यकता अनिवार्यत: प्रतीत होती है । चाहे स्कूली शिक्षा हो, चाहे शिल्प व्यापार आदि की, उसकी हर हालत में आवश्यकता होती ही है । बिना ज्ञान वृद्धि किये भला कोई किस प्रकार कुछ उन्नति कर सकेगा ?

स्वाध्याय और सत्संग

अध्यात्म मार्ग में भी बिलकुल यही समस्या रहती है । स्वाध्याय और सत्संग, चिन्तन और मनन, इन चार आधारों पर मानसिक दुर्बलता को हटाना और आत्मबल बढ़ाना निर्भर रहता है । इसके बिना न मन की जड़ता जाती है और न संकीर्णता, गंदगी, मूढ़ता, विषयासक्ति आदि से छुटकारा मिलता है । शास्त्रों में सत्संग की बड़ी महिमा गाई गई है । उसकी तुलना पारसमणि से हुई है । स्वाध्याय को एक अनिवार्य दैनिक धर्म, कर्त्तव्य माना गया है और लिखा है कि—"जिस दिन स्वाध्याय नहीं किया जाता उस दिन मनुष्य चाण्डाल तुल्य अपवित्र हो जाता है ।" चिन्तन और मनन को तो एक प्रकार से योग साधना में ही सम्मिलित कर लिया गया है । कहा गया है कि— "मनन और चिन्तन के बिना न आत्मसाक्षात्कार होता है और न ईश्वर ही मिलता है ।" ठीक भी है, जिसकी मनोभूमि जड़ता से जकड़ी हुई है उसमें आत्मा और परमात्मा का चैतन्य-तत्व प्रवेश भी कैसे करेगा?

आत्म-कल्याण के लिए भजन, ध्यान, जप, तप, कथा, कीर्तन, व्रत, दान, तीर्थ, पूजा, पाठ आदि की आवश्यकता मानी जाती है । इन्हीं के आधार, पर लोग स्वर्ग और मुक्ति की आशा करते हैं । पर इनमें सबसे अधिक महत्व की साधना 'आत्म-शिक्षण' की है । उसके अभाव में सारे धर्म-कृत्य एक रूढ़ि मात्र रह जाते हैं और उनका फल आशा की अपेक्षा बहुत ही स्वल्पमात्रा में उपलब्ध होता है ।

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि मनुष्य जिस प्रकार के विचारों में डूबा रहता है उसी ढाँचे में उसकी चेतना ढलने लगती है । यदि विचारधारा पलट जाय तो मनुष्य की जीवन-दिशा भी पलट जाती है । कोई भी सत्कर्म या दुष्कर्म शरीर द्वारा अनायास ही नहीं बन पड़ता, वरन् उस प्रकार के विचार बहुत पहले से मस्तिष्क में घूमते रहते हैं और जब वे पूर्णत: परिपुष्ट हो जाते हैं तभी वह स्थिति आती है जिसमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई भला बुरा काम बन पड़े । जिसे अपने जीवन को आध्यात्मिक बनाना हो उसे सबसे पहले अपने मस्तिष्क में काफी गहराई तक उसी प्रकार के विचारों की जड़ें जमानी पड़ती हैं ।

धर्म और अध्यात्म का वास्तविक स्वरूप

इस दृष्टि से स्वाध्याय और सत्संग प्रत्येक श्रेयार्थी के लिए अनिवार्य माना गया है, सत्संगों की समस्या आजकल बड़ी विकट है । धर्म और अध्यात्म का वास्तविक स्वरूप आज लगभग लुप्त हो चुका है । पुरुषार्थहीन, कर्तव्यघाती, भाग्यवादी, आलसी बनाने वाली शिक्षा ही आज धर्म और अध्यात्म के नाम पर जहाँ-तहाँ दी जाती है । ऐसे ही सत्संगों की दुकानें जहाँ-तहाँ लगी दीखती हैं, जहाँ किसी न किसी बहाने लोगों की जेबें तो खाली करा ली जाती हैं पर बदले में ऐसे रद्दी विचार गले मढ़ दिये जाते हैं, जिन्हें अपनाने से उलझनें सुलझने की अपेक्षा और अधिक बढ़ जाती हैं । उत्थान के स्थान पर पतन पल्ले पड़ता है । ऐसे सत्संग लाभ की अपेक्षा हानिकर ही अधिक सिद्ध होते हैं । उनमें जाना समय गँवाना ही नहीं, सड़े गले विषैले भोजन की तरह एक निकम्मी चीज अपने पल्ले बाँध लेना भी है ।

संसार में ऐसी आत्माएँ भी हैं जिनके सान्निध्य से, सत्संग से अपना बहुत भला हो सकता है । पर ऐसे लोग अपने पास ही हों यह आवश्यक नहीं । फिर व्यवस्थित व्यक्तियों के पास समय का अभाव भी रहता है । रोज ही घंटों अपने विचार हमें हमारी सुविधा के समय और स्थान पर सुनाने आ सकें यह भी संभव नहीं । फिर उनका अपने यहाँ आना तथा अपना उनके दूरस्थ स्थानों पर नित्य जाना भी कठिन है । इसलिए चुने हुए, सुलझे हुए व्यक्तियों का सत्संग कभी यदा-कदा ही मिल जाय तो उसे पर्याप्त मान कर स्वाध्याय को ही सत्संग भी मान लेना चाहिए और उसी को सुव्यवस्थित बनाना चाहिए ।

मानसिक शुद्धता का आधार

पूजा, स्नान और भोजन आदि की तरह स्वाध्याय भी हमारा नित्यकर्म होना चाहिए । अपने चारों ओर फैले हुए विषाक्त वातावरण का दूषित प्रभाव रोज ही हमारे मन पर पड़ता है । उसकी सफाई करने के लिए नित्य ही स्वाध्याय आवश्यक है । बर्तन अपने आप ही धूलि, हवा और ऋतु के प्रभाव से मैले होते रहते हैं, उन्हें रोज ही माँजना पड़ता है । कमरे में रोज ही धूलि जम जाती है उसे रोज ही बुहारना पड़ता है । दाँत रोज मैले होते हैं सो रोज ही मंजन की जरूरत होती है । त्वचा से पसीना निकलकर रोज ही शरीर तथा कपड़ों में मलीनता उत्पन्न करता है सो रोज ही उन्हें धोया जाता है । यह सब काम रोज करने के हैं । जितने दिन इन्हें न किया जायेगा उतनी ही गन्दगी बढ़ती जायेगी । मन का भी यही हाल है । उसे स्वाध्याय द्वारा रोज ही न माँजा धोया, गया तो वह दिन-दिन अधिक गन्दा और मलीन होता जायेगा और अन्त में वह इतना दूषित हो जायेगा कि थोड़ा सा पूजा भजन भी वहाँ कुछ शुद्ध वातावरण पैदा न कर सकेगा । इसलिए स्वाध्याय की उपेक्षा कदापि न की जानी चाहिए । दैनिक नित्यकर्म में उसके लिए अनिवार्य रूप से स्थान रखना चाहिए ।

मनोभूमि का सुधार और विकास

स्वाध्याय का उद्देश्य हमारी मानसिक स्थिति का सुधार, निर्माण और विकास करना है । इसके लिए ऐसा साहित्य चाहिए जो उपर्युक्त आवश्यकता को भली प्रकार पूर्ण कर सके । इसके लिए ऐसे साहित्य का चुनाव करना नितान्त आवश्यक है जिसमें हमारी आत्मिक समस्याओं का आज की स्थिति को ध्यान में रखते हुए सही सुलझाव प्रस्तुत किया गया हो । स्वाध्याय सत्संग के नाम पर कोई भी प्राचीनकाल में लिखी हुई मोटी किताब तोता रटंत की तरह रोज-रोज पाठ करते रहने से कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा । कई लोग स्वाध्याय का अर्थ यही समझते हैं कि संस्कृत भाषा की या किसी संत महात्मा की लिखी हुई कोई प्राचीन पुस्तक पढ़ लेने मात्र से पाठ या स्वाध्याय का पुण्य मिल जायेगा । यह मान्यता भ्रम मात्र है । तोता रटंत जैसे पाठ मात्र से स्वाध्याय का उद्देश्य किसी भी प्रकार पूर्ण नहीं होता । इसके लिए वही चुनी हुई पुस्तकें चाहिए जो हमारी जीवन की विविध समस्याओं को आध्यात्मिक दृष्टि से सुलझाने में व्यावहारिक मार्गदर्शन करें और हमारी सर्वांगीण प्रगति को उचित प्रेरणा देकर अग्रगामी बनावें ।

आत्मिक-विकास के लिए आत्म-शिक्षण आवश्यक है । इसके लिए स्वाध्याय और सत्संग ही दो मार्ग हैं । इनमें से आज की परिस्थितियों में हमारे लिए स्वाध्याय ही सरल और सम्भव है । उसी के द्वारा दूरस्थ, स्वर्गवासी या दुर्लभ महापुरुषों का सत्संग किसी भी स्थान पर कितनी ही देर तक और अपनी सुविधा के किसी भी समय प्राप्त किया जा सकता है । उच्चकोटि के विचारों की पूँजी अधिकाधिक मात्रा में जमा किये बिना हम न तो अन्तःकरण को शुद्ध कर सकते हैं और न उच्च मार्ग पर अग्रसर होने के लिए आवश्यक प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं । इसलिए इसे साधना का एक अनिवार्य अंग मानकर स्वाध्याय को अपने आवश्यक नित्य कर्मों में स्थान देना ही चाहिए ।

मनोमयकोश का परिष्कार

अन्नमयकोश के बाद आत्मा का दूसरा आवरण मनोमयकोश है । मन को शुद्ध बनाने के लिए सद्विचारों की नियमित धारणा ही एकमात्र उपाय है । इसे शिक्षित लोग पुस्तकें पढ़कर और अशिक्षित लोग दूसरों से सुनकर पूरा कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते हैं । जिस प्रकार शरीर की शुद्धि स्नान से होती है, उसी प्रकार मन की शुद्धि सद्विचारों में निमग्न रहने से होती है । यह स्थिति अशिक्षित लोगों को सत्संग से और शिक्षितों को स्वाध्याय से, पढ़ने से आसानी से प्राप्त हो सकती है । पढ़कर या सुनकर, नेत्र मार्ग से या कान मार्ग से जैसे भी बन पड़े, सद्विचारों को अपनी मनोभूमि में प्रवेश करते रहने का नियमित कार्य-क्रम बनाना ही चाहिए । आत्मोन्नति के मार्ग में यह आत्मशिक्षण का, मानसिक परिष्कार का, स्वाध्याय साधन नितान्त आवश्यक है । मनोमयकोश का प्रधान आधार यही है । गुरु की शरण में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जाने का विधान शास्त्रकारों ने किया है ।

भौतिक विचारों ने हमारे मस्तिष्क में बुरी तरह अड्डा जमाया हुआ होता है । सारी विचारधारा प्रायः उन्हीं के कब्जे में रहती है । मन में जब भी कुछ विचार उठें उनमें भौतिक आकांक्षाएँ एवं योजनाएँ ही भरी मिलेंगी । शरीर मन का दास है । मन जैसा कुछ सोचेगा शरीर वैसा ही करेगा, यदि हमारा शरीर निरंतर भौतिक कार्यों में ही लगा रहता है, आध्यात्मिक कार्यों में रुचि नहीं लेता या अवकाश नहीं पाता तो उसका एक ही कारण है कि मन में अध्यात्म भावना को बहुत ही स्वल्प स्थान मिला है । यदि मस्तिष्क में भौतिक समस्याओं की भाँति, आध्यात्मिक समस्याओं को भी स्थान और महत्व मिला होता तो निश्चय ही हमारी क्रियाएँ और चेष्टाएँ भी आध्यात्मिक दिशा में प्रभावपूर्ण मात्रा में रही होतीं और आज हम जहाँ हैं उसकी अपेक्षा कहीं अधिक ऊँचे आध्यात्मिक स्तर पर पहुँच चुके होते ।

ऊर्ध्वगमन का सत्प्रयत्न

आज मन पर पूरी तरह भौतिक आकांक्षाओं का अधिकार है । उसे कम करना है और वहाँ आध्यात्मिक अभिरुचि को भी स्थान दिलाना है । तभी तो शरीर और बुद्धि की चेष्टाएँ आत्मोन्नति की ओर झुकेंगी । भौतिक विचारधाराएँ तो संसार में सर्वत्र भरी पड़ी हैं, हमारे सब संगी साथी भी उसी में आकंठ डूबे पड़े हैं, इन्द्रियाँ भी उसी में रुचि लेती हैं, इसलिए उस दिशा में मन तो स्वतः ही खिंचा रहता है । नीचे की दिशा में तो पानी अपने आप ही बिना किसी चेष्टा के बहने लगता है, कठिनाई उसे ऊपर पहुँचाने में होती है । मन का स्तर ऊर्ध्वगामी हो इसके लिए जिन विचारधाराओं की आवश्यकता है वे संसार में स्वाभाविक रूप से सरलतापूर्वक नहीं मिलतीं वरन् उन्हें प्राप्त करने के लिए दो विशेष प्रयत्न करने होते हैं । वे प्रयत्न हैं—स्वाध्याय और सत्संग ।

शिक्षा और कुछ आर्थिक दृष्टि से जिन्हें थोड़ी अनुकूलता प्राप्त है, वे स्वाध्याय आसानी से कर सकते हैं । अच्छा साहित्य वे पुस्तकालयों से लेकर या खरीद कर अपनी इस आध्यात्मिक आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं । पर अशिक्षित लोगों के लिए, स्त्री बच्चों के लिए यह कठिन है और उनके लिए भी कठिन है जिनका मन पढ़ने में लगता ही नहीं । ऐसे लोगों के लिये सत्संग ही एकमात्र उपाय रह जाता है । पर भारी कठिनाई यह है कि आज सर्वत्र नकली अध्यात्म का बोलवाला है । उसी के सत्संग भी जहाँ तहाँ देखे-सुने जाते हैं । उनसे मनुष्य की कर्तव्यनिष्ठा घटती और मूढ़ता बढ़ती है । इसलिए असली अध्यात्म के सत्संग का अभाव दूर करना उन लोगों का परम पवित्र कर्त्तव्य है जिन्हें सत्य की शिक्षा में उन्मुख होने का असली अध्यात्म को समझने का अवसर मिला है । उस लाभ से उन लोगों को लाभान्वित करना जो स्वाध्याय का लाभ नहीं उठा पाते एक अत्यन्त ही उच्चकोटि का पुण्य है । इस ज्ञानयज्ञ के बराबर शुभ कार्य इस संसार में और कुछ हो नहीं सकता ।

ज्ञान-मन्दिर एक पुनीत सेवा-केन्द्र

एक छोटा आध्यात्मिक पुस्तकालय ज्ञान मंदिर हममें से हर एक बड़ी आसानी से अपने घर में चला सकता है । हमें अपने स्वाध्याय के लिए कुछ साहित्य इकट्ठा करना ही पड़ेगा । उसे ही व्यवस्थित एवं सुसज्जित पुस्तकालय का रूप देकर घर की एक अलमारी में रखा जा सकता है और कम से कम पाँच व्यक्ति ऐसे आसानी से तलाश किये जा सकते हैं जो उस पुस्तकालय के निःशुल्क सदस्य हों । आप प्रयत्न-पूर्वक उन्हें पढ़ने की प्रेरणा दें । कभी-कभी उनके घर जाकर अपनी पुस्तकें पढ़ने के लिए देने और यदि वे वापिस न लावें तो लेने के लिए भी उनके घर पर जाया करें । साथ ही उस पुस्तक को आधार मानकर कुछ ज्ञान चर्चा भी छेड़ दिया करें । इस प्रकार एक छोटा स्वाध्याय मंडल बनाकर थोड़े ही प्रयत्न में नन्हा-सा किन्तु बहुत ही महत्त्वपूर्ण ज्ञानयज्ञ चलाया जा सकता है ।

गायत्री परिवार की शाखाओं के लिए साप्ताहिक सत्संग चलाना एक आवश्यक कर्त्तव्य बताया गया था । क्योंकि विचारों का विस्तार एवं पोषण इसी आधार पर संभव हो सकता है । जो शाखाएँ साप्ताहिक हवन करने का प्रबंध नहीं कर सकतीं वे दीपक, धूपबत्ती को यज्ञ का प्रतीक मानकर कीर्तन और भजन से शुभारम्भ करके सत्संग चला सकती हैं । ऐसी व्यवस्थाएँ सामूहिक रूप से जहाँ हो रही हैं वहाँ हममें से प्रत्येक को उसमें भाग लेकर तथा अन्य लोगों को उनमें बुलाकर ले जाने की चेष्टा से उस व्यवस्था को बढ़ाना चाहिए । जहाँ ऐसी पूर्व व्यवस्था नहीं चल रही है वहाँ रामायण कथा आदि का नियमित कार्यक्रम चलाकर उसके माध्यम से ज्ञान चर्चा या सत्संग का आयोजन हममें से कोई भी कर सकता है । कुछ सुनने वाले तो आने ही लगेंगे । प्रयत्न करने से उनकी संख्या बढ़ती भी रह सकती है । अपने घर के सदस्यों को रात के समय इकट्ठे करके कथा कहानी सुनाने के माध्यम से उन्हें रुचिकर सत्संग का लाभ दिया जा सकता है, अखण्ड ज्योति में इस दृष्टि से संक्षिप्त कथा प्रसंग अब छपते भी हैं । उन्हें रोचक ढंग से बढ़ाकर घर के लोगों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को रोज एक-दो कथा सुनाने का क्रम बना लिया जाय तो वह अपने परिवार के लिए एक अच्छा सत्संग आयोजन हो सकता है और उसका प्रभाव दूसरों को उच्च मार्ग में प्रेरणा देने की दृष्टि से तथा अपने विचारों की पुष्टि की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है । थोड़ा सा आलस्य त्याग कर यदि हम प्रयत्न करें तो अपने एक छोटे से क्षेत्र में ज्ञानयज्ञ का आयोजन कर सकते हैं । स्वाध्याय और सत्संग का लाभ दूसरों को दे सकते हैं ।

छोटा किन्तु महान कदम

पंच कोशी साधना क्रम में आत्मशिक्षण की महत्त्वपूर्ण स्थिति है । अन्नमय कोश की शुद्धि के साथ-साथ मनोमयकोश का भी उत्कर्ष करना है । उसके लिए मन में से भौतिकवादी विचारधारा कम करने और आध्यात्मिक भावनाएँ भरने को ही एकमात्र उपाय बताया गया है । इसके लिए स्वाध्याय और सत्संग दो प्रमुख आधार हैं । उपर्युक्त योजना के अनुसार हम अपने लिए इस आवश्यकता की पूर्ति करें और दूसरों के लिए उच्चकोटि की सेवा के रूप में भी इसे अपनायें । इसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों का महत्त्वपूर्ण समन्वय है ।

अन्नदान से ब्रह्मदान का पुण्य सौ गुना अधिक माना गया है । किसी को धन देकर उसकी उतनी भलाई नहीं की जा सकती जितनी उसे सन्मार्ग पर चला देने से होती है । अपने आपको सन्मार्ग और दूसरों को सत्संग पर चला सकने के लिए आवश्यक ज्ञान साधन प्रस्तुत करना निश्चित रूप से ब्रह्मकर्म है । इस ब्रह्मकर्म में सम्पूर्ण जीवन लगाये रहने के कारण प्राचीनकाल में ब्राह्मण पूज्य और श्रेष्ठ माने जाते थे । भौतिकवादी शिक्षा के लिए राजकीय प्रयत्न विशाल पैमाने पर चल रहे हैं । आध्यात्मिक शिक्षा का ब्रह्मकर्म हमें स्वयं ही आयोजित करना होगा । इसकी उपेक्षा करने से न व्यक्ति का कल्याण होगा न राष्ट्र का । इसलिए भले ही छोटे पैमाने पर ही, पर ज्ञान की मशाल जलाने के लिए हमें भी एक कदम आगे उठाना ही पड़ेगा ।

सेवा ही सच्ची भगवद् भक्ति है

विद्वानों ने जनसेवा तथा परोपकार को जो भगवद्भक्ति कहा है वह ठीक ही है । जिस मनुष्य के हृदय में जन-जन के लिये प्रेम का प्रवाह बह रहा होगा वही जनसेवा में प्रवृत्त होगा । उसके हृदय में निवास करने वाला यह प्रेम ही परमात्मा रूप है । जन-सेवा के माध्यम से मनुष्य इसी हृदयस्थ प्रेम को परितृप्त करता है और इस प्रकार वह परमात्मा की ही भक्ति करता है ।

इसके अतिरिक्त जन-जन परमात्मा-रूप है । संसार में मात्र मनुष्य ही क्या सारे जड़-चेतन उसी एक का रूप हैं । किसी की सेवा करने वाला व्यक्ति वास्तव में हाड़ माँस से बने किसी के शरीर की सेवा नहीं करता बल्कि देह के माध्यम से उसकी उस आत्मा को ही परितृप्त करता है जो परमात्मा का प्रतिनिधि स्वरूप है । अपने प्रेम और दूसरे की आत्मा को तुष्ट करके मनुष्य एक प्रकार से परमात्मा की दुहरी उपासना ही करता है, दुहरा पुण्य प्राप्त करता है ।

सेवा करने का अपना महत्व है किन्तु सेवा के स्वरूप का भी महत्व कम नहीं है । कौन सी सेवा, जनता जनार्दन के माध्यम से, परमात्मा की वास्तविक सेवा है और कौन सी नहीं ? वह सेवा जिसमें मनुष्य का कोई स्वार्थ निहित होता है, चाहे वह स्वार्थ स्थूल हो अथवा सूक्ष्म, प्रत्यक्ष हो अथवा परोक्ष सेवा की उस कोटि में नहीं आता जिसे भगवद्भक्ति कहा जाता है ।

यदि प्रत्येक सेवा को भगवद्भक्ति की संज्ञा दी जाती है तो स्वामी सेवा, सरकारी सेवा, भय लोभ अथवा दबाव जन्य सारी सेवाएँ भगवद्भक्ति ही मानी जायेंगी । किन्तु ऐसा नहीं है । एकमात्र निःस्वार्थ, निष्कपट और अहेतुक सेवा ही भगवद्भक्ति की कोटि की मानी जायेगी ।

बहुत सी ऐसी सेवाएँ भी हो सकती हैं जो उपर्युक्त विकारों से मुक्त होने पर भी भगवद्भक्ति की कोटि में नहीं आतीं । जैसे किसी की सेवा करते समय विषमता का भाव होना, घृणा अथवा जुगुप्सा की गंध होना, अपने को अपदस्थ अथवा तुच्छ समझना । सेवा कर्म पर यह कतिपय आरोपण भी सेवा-सत्कर्म को उसकी पुण्यवती स्थिति से भिन्न कर देते हैं । सेवा कर्म में निःस्वार्थता ही नहीं निर्मोहता की भी आवश्यकता है । सेवा का यह शाश्वत स्वरूप है, जो त्रिकाल में अपनी महान पुण्य-पदवी पर प्रतिष्ठित रहता है ।

इसी क्षेत्र में सेवा की विविध श्रेणियाँ हैं । प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय । प्रथम श्रेणी की सेवा वह है जिससे किसी को स्थायी सुख लाभ हो । द्वितीय श्रेणी की सेवा वह है जिससे किसी का दीर्घजीवी दुःख दूर हो और तृतीय श्रेणी की सेवा वह है जिससे किसी की सामयिक आवश्यकता अथवा आपत्ति दूर हो ।

इन श्रेणियों में ज्ञान दान की सेवा प्रथम श्रेणी की है, क्योंकि ज्ञानालोकित किया हुआ मनुष्य संसार के समस्त दुःखों से छूट जाता है । न उसे शारीरिक कष्ट सताता है, न मानसिक और न आर्थिक । वह सारे कष्ट-क्लेशों से एक साथ ही मुक्त होकर चिदानन्दमय हो जाता है । ऐसी ज्ञान मूलक सर्वांगीण सेवा का श्रेय उन ऋषि, मुनियों और संत महात्माओं को सबसे अधिक प्राप्त हुआ, जिन्होंने अज्ञानान्धकार में भटकती हुई मानवता को प्रकाश का पथ दिखाया । इन महात्माओं में वे संत और भी शाश्वत श्रेय और चिरन्तन पुण्य के अधिकारी हुए जिन्होंने मानवता को सही रास्ता दिखलाने में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया और मनुष्यों द्वारा मारे जाते समय भी उन्हीं के कल्याण की कामना की और आशीर्वाद दिया ।

ज्ञान दान में भी मनुष्य को परमात्मा की ओर अधिकाधिक उन्मुख करना ही श्रेयस्कर सेवा है । जो व्यक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जितने व्यक्तियों को उस प्रभु की ओर अग्रसर करता है वह मानो उतनी ही संख्या में, उतने ही रूपों के एक साथ परमात्मा की सेवा करता है । परमात्मा की ओर उन्मुख व्यक्ति अपने इस कर्तव्य का जो पुण्य पाते हैं वह तो पाते ही हैं, इसके अतिरिक्त प्रेरणा देने वाला प्रेरितों की संख्या के अनुसार ही एक अकेले ही उतने पुण्य फलों का भागी बनता है । अस्तु, परमात्मा की ओर ले जाने वाला ज्ञान दान करना सर्वोपरि सेवा है, सर्वश्रेष्ठ भगवद्भक्ति है । द्वितीय श्रेणी की सेवा के अन्तर्गत वे सेवाएँ आती हैं । जिनसे किसी का दीर्घ जीवी दुःख दूर हो । सहानुभूति तथा सहृदयता द्वारा किसी का शोक हरना, किसी निराश को उत्साहित करना, किसी की बिगड़ती हुई स्थिति सँभालने में सहायता करना, किसी निरपराध की रक्षा करना, किन्हीं दो की शत्रुता मिटाना और वैमनस्य दूर करना तथा किन्हीं अनाथ अथवा निराश्रितों को आश्रय देना आदि इस प्रकार की सेवाओं से एक दीर्घकाल तक कष्ट पाने वाला जीवन भी प्रकाश की किरण पा लेगा, जिससे उसकी आत्मा आजीवन उपकारी को शुभाशीष देती रहेगी ।

इस प्रकार की सेवाओं में जहाँ वैयक्तिक हित होता है, वहाँ एक प्रकार से समाज का भी हित साधन होता है । सहायता, सौहार्द एवं सहानुभूति के आधार पर जिन व्यक्तियों का दुःख दूर किया जायेगा उनमें मानवतापूर्ण सामाजिकता की चेतना आयेगी, वे परस्पर सहायता एवं सहयोग आदि मानवीय गुणों का महत्व समझेंगे, जिससे उनका मानसिक विकास होगा और वे दूसरों की सेवा में भी प्रवृत्त होंगे । इस प्रकार अच्छे नागरिकों की वृद्धि से सामाजिक वातावरण में एकात्मकता का सन्निवेश होगा ।

किसी को अन्धकार से निकाल कर जीवन के प्रकाश पथ पर लाना और हृदय में सहृदयता तथा सहानुभूति के भाव पैदा करना भी भगवद्भक्ति ही है । अपने अथवा किसी दूसरे के सद्गुण उत्पन्न करना भी एक आध्यात्मिक कार्य है । सद्गुण उत्पन्न करना भी एक प्रकार से परमात्मा की ओर ही उन्मुख होना है । ऐसी सेवाओं को द्वितीय श्रेणी में इसलिए लेना होगा कि जीवन प्रकाश पाकर लोग सांसारिकता तक ही सीमित रह सकते हैं । सम्भव है कि उनका दृष्टिकोण विशुद्ध आध्यात्मिक और पारमार्थिक न हो ।

आवश्यकता आ पड़ने पर किसी की आर्थिक सहायता करना, किसी रोगी के उपचार का प्रबंध कर देना, किसी विद्यार्थी की फीस दे देना, किसी को छोटा-मोटा काम करा देना, स्मारक रूप में विद्यालय, धर्मशाला, गौशाला, अनाथालय आदि बनवा देना तृतीय श्रेणी की सेवाएँ हैं । इस प्रकार से किसी की सामाजिक आवश्यकता तो पूर्ण हो सकती है, तात्कालिक असुविधा दूर हो सकती है, किन्तु कोई स्थायी आत्मिक अथवा मानसिक विकास नहीं होता ।

इस प्रकार की सेवाओं की पृष्ठभूमि में किसी सक्षम व्यक्ति की उदारता, दया अथवा सहानुभूति रह सकती है, किन्तु वह भी स्थायी नहीं आकस्मिक अथवा तात्कालिक । संस्थाओं अथवा सुविधा व आश्रय भवनों के निर्माण में तो बहुधा लोगों की दिखाने की वृत्ति, लोकेषणा अथवा अहंकार का भाव ही रहता है ।

यद्यपि इस प्रकार की भावना के साथ कोई भी सेवा बहुत सराहनीय अथवा श्रेयस्कर नहीं है तथापि सामाजिक दृष्टि से इनका भी अपना महत्व है । अनुकरण करके अन्य लोग भी इस प्रकार के कार्य करने के लिए उत्साहित हो सकते हैं । सुविधा पाने वाले व्यक्तियों को समाज के प्रति आस्था एवं श्रद्धा हो सकती है । शिक्षा-संस्थाओं द्वारा विद्या का प्रचार होता है और विद्यार्थियों में से किसी भी अच्छे और ऊँचे महात्मा के निकल आने की सम्भावना रह सकती है । विशुद्ध भगवद्भक्ति न होने पर भी इस प्रकार की सामाजिक एवं सार्वजनिक सेवाओं का भी अपना मूल्य और महत्व है । सम्भव है इनसे लोग आध्यात्मिकता की ओर अधिक न बढ़ें किन्तु सामाजिकता की ओर बढ़ने की प्रेरणा तो पा ही सकते हैं ।

सभी प्रकार की सेवाओं का महत्व तथा आवश्यकता है । प्रत्येक व्यक्ति को अपने क्षेत्र, अपनी सीमा तथा क्षमता के अनुसार कुछ न कुछ सेवा कार्य अवश्य करना चाहिए । सेवा के हजारों प्रकार हो सकते हैं । वह प्रत्येक कार्य सेवा ही है जिससे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष किसी भी रूप में संसार का दुःख-दर्द दूर हो और हितकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न हों । यदि व्यापक दृष्टि से विचार किया जावे तो संसार में क्या समर्थ और क्या असमर्थ सभी को एक दूसरे की सेवा की आवश्यकता है । संसार में जो कुछ भी व्यापार व व्यवहार हो रहा है वह सब एक दूसरे की सहायता से चल रहा है । सेवा का एक अर्थ पारस्परिकता भी हो सकता है । यदि नित्य प्रति के सामान्य व्यापार तथा व्यवहार से स्वार्थ, संकोच, छल, कपट निकाल दिया जाये तो यह माना जायेगा कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति मानवता की निष्काम सेवा ही करता है ।

संघशक्ति का महत्व समझें

मनुष्य समेत समस्त प्राणियों को प्रगति का अवसर साथी-सहायकों की संख्या बढ़ने पर ही संभव हो पाता है । संगठित रहने पर सुरक्षा का भी लाभ मिलता है और पारस्परिक सहकार के आधार पर मनोबल ऊँचा रहने से लेकर सुविधा सम्पन्न जीवनयापन का अपेक्षाकृत अधिक अवसर मिलता है । संघर्ष या उपेक्षा की नीति अपनाने पर तो सर्वनाश या पिछड़ापन ही हाथ लगता है । छोटी बुद्धि वाले प्राणी भी किस प्रकार पारस्परिक सहयोग का लाभ उठाते हैं, इसे सभी जानते हैं । मिलजुल कर रहने और सहयोग के आदान-प्रदान की आदत ही मानवी प्रगति का प्रमुख आधार है । तालमेल बिठा लेने और एक दूसरे की सहायता करने वाले कभी घाटे में नहीं रहते ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पिटर्सवर्ग के प्रख्यात प्राणिवेत्ता प्रोफेसर केसलर का कहना है कि डार्विन व हर्बर्ट स्पेन्सर जैसे विकासवादियों की यह मान्यता सही नहीं है कि प्रत्येक प्राणी को अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए अपने ही वर्ग के सदस्यों से संघर्षरत रहना पड़ता है । सृष्टि में इस तरह के कुछ अपवाद मिल सकते हैं, किन्तु व्यापक रूप से सहयोग-सहकार का ही नियम दिखाई देता है । जीवन संग्राम की सफलता और प्रगतिशील विकास के लिए यह नियम कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है । साथ-साथ रहने वाले प्राणियों का अध्ययन करने पर इस तथ्य को अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि एक ही प्रजाति के जीवों में पारस्परिक समर्थन, सहयोग और सुसंगठित, आत्मरक्षा के भाव कितने प्रगाढ़ रूप से विद्यमान रहते हैं । साथ-साथ मिलजुलकर रहना और एक दूसरे की सहायता करना प्रकृति का एक ऐसा उच्चस्तरीय अटल नियम है, जिसके समक्ष विकासवादियों के संघर्षपरक नियम को अपवादों की निम्न श्रेणी में ही रखना उचित होगा । हर्बर्ट स्पेन्सर के योग्यतम् कौन है ? के उत्तर में निश्चयात्मक रूप से यही कहा जायेगा कि आपस में संघर्ष करने वालों की अपेक्षा वे अधिक श्रेष्ठ हैं जो परस्पर सहायता करते हैं । जिनका स्वभाव आपस में सहकारिता अपनाने और साथियों के विकास में सहयोग देने का होता है, वही समुदाय जीवित रहता और प्रगति करता है । जीवन संघर्ष में विजय भी ऐसों को ही मिल पाती है जिनका स्वभाव दूसरों की मदद करने, पिछड़ों को ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने का बन गया है । उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचने और कम से कम शक्ति खर्च करके अधिक से अधिक जीवन का सुख प्राप्त करने में सहयोगी प्रवृत्ति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है । चींटियों का सहयोग विख्यात है । वे मिलजुलकर अपना परिवार बसाती हैं । लोहे की जंजीर की तरह आपस में एक दूसरे से जुड़ कर गोलाकार छल्ले बनाकर बड़ी-बड़ी नदियों तक को पार कर लेती हैं । इसी तरह दीमक भी इसीलिए अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं कि उनका सारा काम सम्मिलित रूप से चलता है । मधुमक्खियाँ इसी नीति को अपनाकर छत्ता बनातीं और यश पाती हैं । बर्फीले तूफानों से बचने तथा नदियों को पार करने के लिए हिरनों के झुंड के झुंड एकत्र होते और एक दूसरे का साहस उभारते हुए आसानी से उस संकट को पार कर जाते हैं । जंगली घोड़ों, भैंसों, नील गायों, हाथियों आदि का झुंड बनाकर रहना उनके लिए लाभदायक ही रहता है । हिंस्र पशुओं से अपनी सामूहिक रक्षा करने में इसी प्रवृत्ति के कारण ये सफल होते और अपनी-अपनी जाति भावना का अस्तित्व बनाये रखते हैं । यह सहकारिता की भावना ही है जो समस्त जीवधारियों के उत्पत्ति, रक्षण और भावी विकास का मूल आधार खड़ा करती है ।

जर्मनी के प्रख्यात तत्ववेत्ता गेटे का कहना है कि मोटी दृष्टि में वंशवृद्धि करने से लेकर जातीय सुरक्षा तक की भावना ही प्राणियों को एक दूसरे की सहायता करने को बाध्य करती दिखाई देती है, परन्तु गंभीरतापूर्वक निरीक्षण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके पीछे पारस्परिक सहयोग की नैसर्गिक प्रवृत्ति ही क्रियाशील रहती है । उनकी रचनाओं में इस तरह के अगणित उदाहरण भरे पड़े हैं जो हिलमिलकर रहने और मिलबाँटकर खाने की सद्प्रेरणाएँ उभारते हैं । एक घटना का उल्लेख करते हुए वह लिखते हैं कि सन् १८२७ में उनके मित्र जीव विज्ञानी एकरमैन की पालतू चिड़िया के दो बच्चे एक दिन उड़कर कहीं चले गये । बहुत खोजबीन करने पर दूसरे दिन उन्हें एक अन्य जाति के परिन्दे के घोंसले में पाया गया । देखा गया कि वह पक्षी अपने बच्चों के साथ-साथ उन दोनों को भी खिला रहा था । इस घटना से उन्हें अपने इस विचार को समर्थन मिला कि "ईश्वर सर्वव्यापी है ।" उन्होंने कहा—"यदि प्रकृति के इस सार्वभौम नियम का हम सभी पालन करने लगें और एक दूसरे अपरिचित प्राणी को भी खिलापिलाकर बड़ा करने लगें, उनके विकास में सहयोग करने लगें तो संसार की बहुत सारी जटिल समस्याएँ हल हो जायें ।"

जब तुच्छ समझे जाने वाले पशु-पक्षी एवं कीड़े-मकोड़े तक सहयोग तथा संगठन शक्ति का महत्व समझते और परस्पर मिल – जुल कर रह लेते हैं, तो कोई कारण नहीं कि विकसित एवं बुद्धिमान कहा जाने वाला मनुष्य साथ-साथ न रह सके और एक-दूसरे के सुख-दु:ख में भागीदार न बने । वस्तुत: स्वार्थपरता की वह संकीर्ण रेखा ही है जो हमें जाति, वंश, वर्ग, सम्प्रदाय या ऊँच-नीच में विभाजित करती और हमें एक दूसरे से अलग करती है । यही कारण है कि मानव समुदाय अभी तक समग्र प्रगति से वंचित बना रहा है । इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध प्राणिशास्त्री साइवर्ट सोफ उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि शिकरा नामक बाज पक्षी की एक प्रजाति शिकार करते समय तो आदर्श संगठन प्रस्तुत करती है किन्तु कुछ ही क्षणों में परस्पर छीन-झपट मचाती और एक दूसरे को लहू-लुहान करने लगती है । संसार में इनकी संख्या भी अब घटती जा रही है । किन्तु उन्हीं की कुछ किस्में ऐसी भी हैं जो आपस में एक दूसरे की मदद करतीं और फलती-फूलती जा रही हैं । इसी तरह बतख पक्षी का उदाहरण देते हुए उन्होंने उसे सामाजिक पक्षी कहा है । बतखों के संगठन और पारस्परिक सहयोग को देखते ही बनता है । अपने इसी गुण के कारण ये संसार भर में सर्वत्र बहुतायत में पाई जाती हैं ।

मनुष्य की वास्तविक प्रगति का आधार उसकी सहकारी प्रवृत्ति है । इसी शक्ति का उपयोग कर छोटे से छोटे जीवधारी तक अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं । बुद्धिहीन समझे जाने वाले इन जीवों में मिलजुल कर काम करने की अद्भुत क्षमता होती है । प्राणि विशेषज्ञ ग्लेडिश ने इस तथ्य की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए अनेकों प्रयोग किये । एक प्रयोग में उन्होंने दो लकड़ियों के मध्य एक मृत पक्षी तथा डंडे के सहारे एक मेढ़क को लटका दिया । देखा गया कि थोड़ी ही देर में छोटे-छोटे प्राणियों ने मिलजुलकर बड़ी कुशलतापूर्वक उन दोनों को गायब कर दिया । उन्होंने निष्कर्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रस्तुत करते हुए कहा है कि जिन जीवधारियों में अच्छा संगठन नहीं होता, उनमें भी अपनी जाति के प्रति सहानुभूति होती है । केकड़े जैसे असंगठित प्राणी भी समुद्री किनारों पर एक साथ संतति-वृद्धि के लिए जाते हैं । उनका यह प्रवास एकता, सहयोग और पारस्परिक सहायता के बिना संभव नहीं हो सकता । आवश्यकता पड़ने पर केकड़े अपने साथी की कितनी अधिक सहायता करते हैं, इस संबंध में एक घटना का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि एक तालाब के किनारे एक केकड़ा उलटा पड़ा था । प्रयत्न करने पर भी सीधे खड़े होना नहीं बन पड़ रहा था । एक लकड़ी उसके मार्ग को अवरुद्ध किये हुए थी । देखते-देखते उसके कई साथी सहायता को आ पहुँचे । कुछ ने अवरोध बनी लकड़ी को हटाया तो कुछ ने उसे सहारा देकर सीधे खड़े होने में मदद की । सम्मिलित प्रयास से कठिन से कठिन कार्य भी सरल बन जाते हैं ।

वैज्ञानिक मनीषी ब्रेहम का कहना है कि मानव का विकास उसके सहयोगात्मक जीवन पर निर्भर है । इसके अभाव में व्यक्ति न तो अपने को संरक्षित अनुभव करता है और न जीवन का सच्चा सुख ही उठा पाता है । सारस एवं तोते जैसे पक्षियों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि किस प्रकार ये मानवेतर प्राणी अपने सजातियों एवं अन्य परिन्दों के साथ मिल जुल कर रहते हैं कि उनकी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता को देखते ही बनता है । वे जिसके भी सम्पर्क में आते हैं, उसी को अपना बना लेते हैं । पकड़े जाने पर मनुष्य से भी उनकी अच्छी दोस्ती हो जाती है जिसे वह सदैव प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते हैं । सारस तो अपनी दूरदर्शिता के आगे किसी को भी अपना शत्रु नहीं बनने देता और दीर्घजीवन का आनन्द उठाता है । यह सब उसकी सहकारी प्रवृत्ति की देन है । मनुष्य इनसे बहुत कुछ सीख सकता है ।

हिलमिलकर रहने और एक-दूसरे के सुख-दुख में साथी रहकर ही मानवी कुटुम्ब फलते-फूलते हैं । इस रीति-नीति को अपनाकर सभी सुख पाते और निश्चिन्त रहते हैं । सामाजिक विकास में इस प्रवृत्ति की महत्ता सर्वोपरि है । अगले ही दिनों सहयोग-सहकार की यह भावना पारिवारिक सीमाओं को लाँघकर वसुधैव कुटुम्बकम् स्तर तक विकसित-विस्तृत होगी । सभी को एक दूसरे की उन्नति में सहज भागीदारी निभाते हुए देखा जा सकेगा । उज्ज्वल भविष्य की संरचना भी तभी साकार होगी ।

ठोस एवं सुनिश्चित प्रगति का राजमार्ग

साधनों के सहारे सफलता प्राप्त होने की बात पर सभी विश्वास करते हैं पर यह भूल जाते हैं कि मनुष्य की अपनी निजी सत्ता में भी ऐसी विभूतियाँ पड़ी हैं जो विपुल साधनों की तुलना में किसी भी प्रकार ओछी नहीं पड़तीं । उन्हें यदि समझा और उभारा जा सके तो साधनों का अभाव किसी प्रकार खलने नहीं देतीं । उनके सहारे व्यक्ति प्रगति के विपुल साधन समय-समय पर पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करता रह सकता है ।

आवश्यक नहीं कि व्यक्ति के पास निजी संग्रह सम्पदा ही बड़ी मात्रा में हो । दूसरों के सहयोग से भी पूँजी के अभाव की पूर्ति हो सकती है । कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं जिनके पास पर्याप्त धन है, वे दूसरों को उधार देकर उसके माध्यम से ब्याज या मुनाफा कमाना चाहते हैं किन्तु सहयोग देने से पूर्व यह भली-भाँति जाँच-पड़ताल करते हैं कि जिसके हाथ में पैसा दिया जाय वह वापस करेगा या नहीं? ब्याज या लाभ अर्जित कर सकेगा या नहीं ? ऐसे प्रसंगों में उस व्यक्ति का व्यक्तित्व अनेक रीति से यहाँ जाँचा परखा जाता है कि जिसे सहयोग दिया जाता है वह इसका पात्र भी है या नहीं । पात्रता और प्रामाणिकता की कसौटी पर खरा सिद्ध होने के उपरान्त व्यक्ति को अनेक सहयोगी ऐसे मिल जाते हैं जो आर्थिक उपार्जन करा सकते हैं । उनकी चतुरता काम नहीं आती वरन् भलमनसाहत काम देती है । इसके लिए वाणी में आत्मीयता और सज्जनता का समावेश होना चाहिए । बहुत बोलना, लच्छेदार बातें करना आवश्यक नहीं । इसमें तो धूर्तता, बनावट और ठगी की गंध होती है । संक्षेप में सीधी किन्तु सही बात कहने पर उससे कहीं अधिक प्रयोजन सिद्ध होता है, जितना कि चतुरतापूर्ण लच्छेदार बातों से । ऐसा कथन रोचक, आकर्षक तो लगता है किन्तु साथ ही यह भय भी बना रहता है कि वाक्जाल में फँसाकर कहीं ठगा तो नहीं जा रहा है ।

वाणी में नम्रता होनी चाहिए । साथ ही मिठास भी । दूसरों को अपना बनाने के लिए आत्मीयता का वचन में ही नहीं व्यवहार में भी समावेश होना चाहिए । आत्मीयता स्वाभाविक होती है । उसमें उदारता सम्मिश्रित रहती है । सज्जनता ऐसी विधा है जो वचन से तो कम किन्तु व्यवहार से अधिक परखी जाती है । मीठे वचन बोलने की कला में कई चापलूस और ठग भी बहुत प्रवीण होते हैं पर यह कौशल हर किसी पर प्रभावी नहीं होता । जादू के खेल देखकर छोटे बच्चे ही चमत्कृत होते हैं किन्तु जो बड़े एवं समझदार हैं वे समझते हैं कि यह सब हाथ की सफाई मात्र है । इसी प्रकार व्यवहार का समग्र परिचय प्राप्त किये बिना यह नहीं जाना जा सकता कि किसकी सज्जनता वास्तविक है किसकी अवास्तविक ? इसकी जाँच-पड़ताल करने के लिए किसी की पिछली जीवनचर्या खोजनी पड़ती है और देखना यह भी पड़ता है कि इन दिनों उसका व्यवहार अपने परिवार, पड़ौस एवं सम्पर्क क्षेत्र में किस स्तर का है । जिस प्रकार कोई व्यक्ति मुखौटा पहनकर अपनी मुखाकृति को स्थायी रूप से नहीं बदल सकता । इसी प्रकार व्यवहारकुशलता में चापलूसी भर लेने मात्र से कोई व्यक्ति सज्जन नहीं बन सकता ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जिसमें मूलत: सज्जनता का गुण नहीं है, वह बनावटी चापलूसी को देर तक छिपाये नहीं रह सकता । प्रकट होने पर परिचयकर्ता को दुहरा क्षोभ होता है । अवांछनीय व्यक्ति अपने दुर्गुणों को अनायास ही प्रकट करते रहते हैं । उसके दुर्गुण सहज स्वभाव में प्रकट होते रहते हैं । हर कोई उसका स्तर जान लेता है और खतरे से सावधान रहता है । इसके विपरीत जो अपनी दुर्जनता को मुखौटे के नीचे छिपाकर कुछ के बदले कुछ दीखने का प्रयास करता है उसकी कलई खुलने पर दुष्टता और धूर्तता का दुहरा आरोप लगता है । ऐसे व्यक्ति से लोग सहज ही सतर्क हो जाते हैं और उसका भरोसा सामान्य बातों में भी नहीं करते । फिर सहयोग देने जैसा प्रश्न तो उठता ही नहीं । ऐसे व्यक्ति दरिद्र रहने पर सदा वैसे ही बने रहते हैं, उन्हें दूसरे समर्थ व्यक्तियों का ऐसा सहयोग नहीं मिलता जिसके सहारे वे अपने अभावों की पूर्ति कर सकें । निजी साधनों के अभाव में दूसरों के साधनों से अपना काम चला सकें ।

यह संसार पारस्परिक सहयोग के आधार पर खड़ा है । व्यापार, परिवार, समाज, राजनीति, धर्म, कला आदि के क्षेत्र में कोई भी व्यक्ति एकाकी प्रवीण-पारंगत या सफल नहीं बनता । उसे अन्य अनेक की सहायता अपेक्षित होती है । जिसे इस सन्दर्भ में जितने सहयोग का सुयोग मिल जाता है वह उसी अनुपात से प्रगति करता एवं सफल होता है । जिसे इस सन्दर्भ में जितनी कमी रहती है वह उतना ही पिछड़ जाता है और उसी अनुपात में असफल रहता है ।

संसार में ऐसे अगणित व्यक्तियों के उदाहरण हैं जो गई बीती परिस्थितियों में जन्मे । पारिवारिक स्थिति गई गुजरी थी । निजी साधनों का सर्वथा अभाव रहा फिर भी वे ऊँचे उठे और समयानुसार उन्नति के उच्चशिखर पर पहुँचे । ऐसा चमत्कार कैसे हो सका ? इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार करने पर एक ही कारण उभरकर सामने आता है कि उन्होंने अपने सामान्य कार्यक्षेत्र में असाधारण श्रमशीलता, प्रामाणिकता और वफादारी का परिचय दिया । फूल खिलता है तो उसकी महक दूर-दूर तक फैलती है । उसकी शोभा बढ़ाने यश गाने के लिए तितली, भौंरे, मधु-मक्खी तथा गुजरने वाले दर्शक मोहित होते और बखान करते रहते हैं । यह उभरती प्रतिभा दूर-दूर तक पहुँचती है । व्यक्ति के साथ लिपटी रहने के कारण जहाँ भी पहुँचना होता है, वहीं विश्वास का वातावरण उत्पन्न करती है । फल यह होता है कि सद्गुणों से विश्वास और विश्वास से सहयोग मिलने लगता है । दूसरों का सहयोग भी निजी साधनों के समान ही उपयोगी सिद्ध होता है और प्रगति प्रयोजनों में असाधारण रूप से कारगर सिद्ध होता है ।

जो पिछड़ी परिस्थितियों में जन्मने, पलने के उपरान्त आजीवन वैसी ही गई-गुजरी परिस्थितियों में फँसे रहे उनका कारण एक ही है कि आरम्भिक पिछड़ापन स्वभाव, चिन्तन और चरित्र व्यवहार का अंग बनकर उसी घटिया स्तर को बनाए रहा । सुधार का कोई प्रयत्न न बन पड़ा । परिष्कार का कोई प्रयत्न न हुआ । फलत: जहाँ भी सम्पर्क सधा वहाँ घृणा, उपेक्षा और अवमानना ही प्रतिक्रिया बनकर प्रकट हुई । दयावश किसी ने कभी कोई टुकड़ा फेंक दिया हो तो वह दूसरी बात है किन्तु ठोस और महत्त्वपूर्ण सहयोग करने के लिए कोई विचारशील तैयार नहीं होता क्योंकि बुद्धिमत्ता द्वारा यह सहज ही समझ लिया जाता है कि दलदल में डाली गई कोई वस्तु उसी में फँसकर रह जाती है । न वह स्वयं उबरती है और न दूसरों को उबारती है ।

व्यक्तित्व एक चुम्बक है जो अपने स्तर की वस्तुओं को खींचता और इर्द-गिर्द जमा करता है, चिन्तन, चरित्र, व्यवहार और स्वभाव विनिर्मित करना मनुष्य के अपने हाथ की बात है । जो अपने व्यक्तित्व को निखार सकता है, उसे दूसरों का विश्वास अर्जित करने में देर नहीं लगती है । विश्वासी को सहयोग मिलता ही है । सहयोग एक पूँजी है जो अपने निज की सम्पदा की तरह काम आती है । बैंक से ऋण लेकर भी अपना उद्योग चलाया जा सकता है । दूसरे समर्थजनों के स्नेह, परामर्श एवं सहयोग से भी प्रगति पर बढ़ चलने का अवसर मिल सकता है । छोटी स्थिति से ऊँचे बढ़ सकने में जो सफल हुए हैं, उन्होंने अपने स्तर को उठाया और समर्थों का सहयोग पाया है । यह मार्ग हर किसी के लिए खुला हुआ है ।

जड़ें गहरी और मजबूत हों

जिनकी जड़ें सड़ गईं उन खोखले पेड़ों को, आँधी का एक झोंका उखाड़ फेंकने के लिए पर्याप्त है । जब वे गिरते हैं तब ओंधे मुँह गिरते हैं और फिर उठने का अवसर कभी भी प्राप्त नहीं करते । इसके विपरीत जिनकी जड़ें गहरी और मजबूत हैं वे तूफानों का सहज ही सामना करते रहते हैं । आँधी प्रचण्ड हो तो भी उनकी कुछ शाखाएँ ही टूटती हैं, तना फिर भी अप्रभावित ही रहता है । वह भी टूट जाय तो जड़ें फिर नये अंकुर देती हैं और टूटे हुए वृक्ष जैसा ही एक नया वृक्ष चन्द दिनों में फिर बनकर खड़ा हो जाता है । टूटा हुआ तना यदि थोड़ा भी जुड़ा रहा तो उसमें भी नई डालियाँ लहलहाने लगती हैं । यह सारे चमत्कार मजबूत जड़ों के हैं । पेड़ की जिन्दगी, सुरक्षा और प्रगति एवं शोभा उन्हीं पर निर्भर रहती है ।

मनुष्य की जड़ें उसकी मनोवृत्तियाँ हैं । हिम्मत, निष्ठा, लगन, श्रमशीलता, स्फूर्ति जैसी अन्त:प्रवृत्तियों को जड़ों की संज्ञा दी जा सकती है । वे मजबूत होंगी तो जीवन संग्राम में आये दिन आते रहने वाले आँधी-तूफानों का आसानी से सामना किया जा सकेगा । यदि विपरीत परिस्थितियों ने कुछ अवरोध या व्यवधान उपस्थित किये तो उस आगत विपत्ति को भी सहन कर लिया जायेगा । क्षति पूर्ति का भी मार्ग निकाल लिया जायेगा । मनस्वी व्यक्तियों को भी अन्यान्य व्यक्तियों की तरह कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है पर वे उन्हें हँसी-खेल समझकर निबटते रहते हैं और मन पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उदासी की छाप नहीं पड़ने देते जबकि दुर्बल मन वाले व्यक्ति तनिक-सी कठिनाई को देखकर भयभीत हो उठते हैं । आगत विपत्ति से पूर्व, मात्र आशंका ही उनके धैर्य को तोड़ देती है ।

शरीर से परिपुष्ट दीखने से ही कोई व्यक्ति बलिष्ठ नहीं हो जाता । शक्तिवान वे हैं जिनमें मनोबल की अभीष्ट मात्रा मौजूद है । दुर्बल काया लेकर कर्मक्षेत्र में उतरे ऐसे महापुरुषों की संख्या अगणित है, जिन्होंने अपने मनोबल के कारण अपने को ऊँचा उठाया और अगणित लोगों के भविष्य का निर्माण किया । गाँधी जी जैसे दुर्बलकाय किन्तु मनोबल के धनी व्यक्ति कितने महत्वपूर्ण काम कर सकने में समर्थ हुए हैं ऐसे उदाहरणों से इतिहास के पन्ने भरे हुए पड़े हैं । आद्य शंकराचार्य जैसे भयानक भगंदर व्रण से रुग्ण व्यक्ति भी अपने छोटे से जीवन में चकित कर देने वाली सफलताएँ प्राप्त करते रहे हैं । शरीर-बल की नहीं मनोबल की महत्ता को ही यह उदाहरण प्रतिपादित करते हैं । शरीर-बल और मनोबल की तुलना करनी हो तो विशालकाय हाथी और मनस्वी सिंह के मल्लयुद्ध का प्रतिफल हमें सहज ही वस्तु स्थिति समझा सकता है ।

हमें जीवन की जड़ों को मजबूत बनाना चाहिए और उन्हें सींचने में दत्त-चित्त रहना चाहिए । शरीर को मजबूत और नीरोग बनाने के लिए जितना ध्यान रखा जाता है, साधन जुटाया जाता है उससे अधिक प्रयत्न यह रहना चाहिए कि हमारी मनःस्थिति की दृढ़ता बढ़ती चली जाय । हिम्मत कम न पड़े, परिश्रम में उदासी न आये, आशा की ज्योति धूमिल न पड़े । कठिनाइयाँ सामने आने पर उनसे लड़ने की बहादुरी इतनी अधिक बनी रहे कि संघर्षों से निबटना एक मनोरंजक खेल भर बनकर रह जाय ।

अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति में हमारी आशा और चेष्टा इतनी बलवती होनी चाहिए कि परीक्षा के लिए समय-समय पर आते रहने वाले आँधी-तूफान अपना कुछ बिगाड़ न सकें । जड़ें जितनी गहरी होंगी सफल जीवन की अभिव्यंजना का उतना सुखद रसास्वादन उपलब्ध रहेगा ।

विचारशीलता का परिमार्जन

खेतों में अनाज, शाक, फूल आदि की मूल्यवान फसलें उगाने के लिए उनकी जुताई करनी पड़ती है । नमी और खाद की आवश्यकता पूरी करनी पड़ती है । समय-समय पर निराई-गुड़ाई की व्यवस्था करनी पड़ती है । कृमि-कीटक लग जाने पर उन्हें दवा छिड़ककर मारना होता है । साथ ही ध्यान रखना होता है कि पौधों की हरियाली पर जानवर टूट न पड़ें । जब उनके पकने का समय आता है, दाना पड़ता है, तो पक्षियों के झुण्ड चढ़ दौड़ते हैं । इन सबसे बचाव करना होता है । जो यह सब कर पाते हैं वे किसान ही धन-धान्य से कोठे भरते हैं ।

श्रेष्ठ विचार भी पुष्पोद्यान की तरह लगाने और बढ़ाने पड़ते हैं । उनकी रखवाली का भी समुचित ध्यान रखना पड़ता है । जो इस संदर्भ में असावधानी बरतते हैं, उन्हें वह लाभ नहीं मिलता जो इस सम्पदा के बढ़ने पर मिलता और निहाल करता है ।

खरपतवार बिना किसी प्रयास के उग आते हैं । उन्हें पानी भी नहीं लगाना पड़ता और न देखभाल की आवश्यकता पड़ती है । जंगलों में अनायास ही झाड़ियाँ उग आती हैं । आक, ढाक के पौधे बिना किसी संरक्षण के उगते और फैलते रहते हैं । बेशरम बेल के बीज भी हवा के साथ उड़ते चले आते हैं और जहाँ भी जगह पाते हैं वहीं उगने, बढ़ने और फैलने लगते हैं । जलाशयों पर काई अनायास ही छा जाती है । तालाबों में जलकुम्भी इतनी जल्दी फैलती है कि पूरे क्षेत्र को घेर कर बैठ जाती है । कुविचारों को जलकुम्भी की बिरादरी का समझना चाहिए । वे न जाने कहाँ से आ जाते हैं और सहज ही फैलने, जड़ जमाने लगते हैं ।

मनुष्य अनेक क्षुद्रयोनियों को पार करते हुए इस जन्म का सुयोग प्राप्त कर सका है । पिछली हेय योनियों में जिस प्रकार का जीवन-यापन करना पड़ा है, जिस प्रकार स्वभाव रहा है । वे कुसंस्कार बीज रूप में मनुष्य योनियों में भी कहीं छिपे पड़े रहते हैं । तनिक-सा अवसर पाते ही वे उगने और बढ़ने लगते हैं ।

समाज में सर्वत्र कुविचारों और कुकर्मों का प्रचलन है । अनगढ़ व्यक्तियों की कमी नहीं वे स्वेच्छाचार बरतते हैं । मर्यादाओं के पालन का भी ध्यान नहीं रखते । अनुशासनहीन, उच्छृंखल, उद्दण्ड स्तर का जीवन-यापन करते असंख्यों को देखा जा सकता है । उसका विस्तार विषाणुओं की तरह होता रहता है । चेचक, हैजा जैसी बीमारियाँ एक से दूसरे को छूत बनकर लगती हैं । कुविचार भी इसी प्रकार अपना विस्तार करते हैं ।

किन्तु सद्विचारों को उगाने में पूरे परिश्रम के साथ जुटना पड़ता है और पोषण की सभी सुविधाओं को एकत्रित करना पड़ता है । बबूल चाहे जहाँ उग आते हैं पर संतरे उगाने के लिए पूरी सतर्कता से काम लेना होता है । सद्विचारों की कृषि करना ही मूल्यवान खेती उगाने की तरह है । जो उसमें सफल होते हैं वे समृद्ध, सम्पन्न और सुसंस्कृत बनते हैं । सत्प्रयोजनों में प्रगति के लिए सुविकसित व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है । सद्गुणों की विभूतियाँ ही अनेक प्रकार की सफलताओं का सुयोग बिठाती हैं । प्रतिभावान और प्रामाणिक व्यक्ति ही दूसरों पर अपनी छाप छोड़ते हैं, सम्मान और सहयोग अर्जित करते हैं । इन्हें सत्परामर्श भी मिलता है और उपयुक्त सहकार भी । इस प्रकार अपनी योग्यता, तत्परता और दूसरों की सहकारिता दोनों मिलकर अभीष्ट प्रगति के लिए आवश्यक वातावरण बनाती हैं । इसी क्रम में आगे बढ़ने का, सफल होने का सुयोग बनता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिभावान व्यक्तित्व सद्विचारों का ही प्रतिफल है । विचार मनःक्षेत्र में छाये रहते हैं । आकांक्षा उभारते हैं । योजना बनाते और जिस लक्ष्य तक पहुँचाना है उसकी रूप-रेखा गढ़ते हैं । इसी आधार पर यह सूझ पड़ता है कि प्रगति के लिए किन साधनों की आवश्यकता पड़ेगी, किन का परामर्श, मार्गदर्शन, सहयोग अभीष्ट होगा ? इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपाय खोजे जाते हैं, तालमेल बिठाये जाते हैं और अन्ततः सफल होकर रहा जाता है । बुरे विचार भी इसी प्रकार फलित होते हैं और सद्विचारों का विस्तार भी इसी क्रम में होता है । विचार बीज है और स्वभाव उसका प्रस्फुटित अंकुर । व्यक्तित्व के रूप में वे ही वृक्ष बनते हैं, परिपक्व होने पर उन्हीं पर बीज के अनुरूप फल आते हैं ।

कुविचार व्यक्ति को असभ्य, अनगढ़ बनाते हैं । अनेक बुरी आदतें भी साथ ही खरपतवार की तरह उग पड़ती हैं । दुर्व्यसनों की एक शृंखला साथ चलती है । कुकर्मी सहयोगी हर जगह आसानी से मिल जाते हैं । ऐसी दशा में आये दिन कुकर्म ही बन पड़ते हैं । परिणाम दुर्गति के रूप में सामने आता है । हेय आचरण अपनाने वाले भर्त्सना, प्रताड़ना सहते और पतन, पराभव के गर्त में गिरते हैं । एक की छूत दूसरे को लगती है और देखते-देखते चाण्डाल चौकड़ी गठित हो जाती है । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए शरीर को स्वस्थ और सुन्दर बनाने के लिए जितना प्रयत्न किया जाता है उससे भी बढ़कर विचारों के संशोधन का, परिमार्जन परिष्कार का प्रयत्न करना चाहिए ।

स्वास्थ्य प्रधानतया आहार और व्यायाम पर निर्भर है । ठीक उसी प्रकार मानसिक परिमार्जन के लिए स्वाध्याय और सत्संग का आश्रय लिया जाना चाहिए । पुस्तकें पढ़ते रहना स्वाध्याय नहीं है, वरन् इस प्रयोजन के लिए मात्र उसी साहित्य की जरूरत पड़ती है जो जीवन की प्रस्तुत गुत्थियों का समय के अनुरूप समाधान प्रस्तुत कर सके । यह लिखा हुआ भी युग मनीषियों द्वारा ही चाहिए क्योंकि वे बदलती हुई परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए व्यावहारिक समाधान सुझाते हैं । पुरातन कथा-गाथाओं को पढ़ते-दुहराते रहना निरर्थक है क्योंकि वे उस समय को ध्यान में रखकर लिखी गयी होती हैं जो अब से बहुत पीछे रह गया और उन दिनों का चिन्तन आज के लिए किसी प्रकार उपयोगी नहीं रहा । यही बात सत्संग के सम्बन्ध में भी है । जो समय के अनुरूप है, जिनमें सामयिक समाधान है, उन्हीं को सत्संग में सम्मिलित करने योग्य विचारधारा मानना चाहिए । इन दोनों आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए युग धर्म और व्यावहारिकता का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए । ऐसे योग्य साहित्य और व्यक्ति कठिनाई से ही मिलते हैं । फिर भी ढूँढ़ने पर वे किसी न किसी प्रकार कहीं न कहीं से मिल ही जाते हैं । प्रश्रय उन्हीं का लिया जाना चाहिए ।

मनन और चिन्तन भी प्रकारान्तर से स्वाध्याय और सत्संग की आंशिक आवश्यकता पूरी करते हैं । अपनी तर्क बुद्धि विकसित की जानी चाहिए और सामने प्रस्तुत समस्याओं में से प्रत्येक पर पक्ष हो या विपक्ष दोनों को आधार मानकर विचार करना चाहिए । इस प्रकार अपनाया गया जीवनक्रम विचारशीलता को परिमार्जित करता है ।

विचार बदलें, तो माहौल बदले

आँखों पर पट्टी बँधी होने की स्थिति में व्यक्ति कुछ वस्तुओं का परिचय टटोलकर ही कर पाता है । उसे न तो दूर-दूर के दृश्य दीखते हैं और न विशाल संसार में, विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली अनेकानेक हलचलों की छवि निरख पाता है । यही बात अशिक्षितों के सम्बन्ध में भी लागू होती है । संसार में बहुत कुछ जानने-समझने योग्य है, पर उसे देखा-समझा साहित्य के माध्यम से ही जा सकता है । अशिक्षितों की दुनिया उतनी ही छोटी रहती है, जितनी कि उनकी आँखों से दीख पड़ती है । उनके लिए ज्ञान का संचय समुदाय उतना ही बड़ा है जितना कि उनके कान सुन पाते हैं । शेष जो व्यापक और महत्त्वपूर्ण है, उससे तो वे वंचित ही बने रहते हैं ।

इस बौद्धिक पिछड़ेपन से बचने के लिए शिक्षित होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है । पेट रोटी से भरता है । बौद्धिक भूख बुझाने, मानसिक विकास करने एवं बहुमुखी प्रगति का द्वार खोलने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित हो । इसके बिना अनपढ़ लोग अनगढ़ स्थिति में पड़े रहते हैं । सुधार और उद्धार के कार्यों में प्राथमिकता देने योग्य बात यह है कि अशिक्षा के निवारण के लिए हर कोई अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुरूप भरसक प्रयास करे ।

सर्वविदित है कि शिक्षा का आरम्भ साक्षरता से होता है । स्कूलों की प्राथमिक कक्षाओं में यही अभ्यास कराया जाता है । इसके उपरान्त वह स्थिति बनती है कि व्यक्ति और समाज की अनेकानेक समस्याओं का समाधान खोजने, प्रगति सोपान में प्रवेश करने का शुभारम्भ हो सके ।

साक्षरता उपलब्ध करते ही दूसरी आवश्यकता यह पड़ती है कि जीवन साहित्य को नियमित रूप से पढ़ने का अवसर मिलने लगे । जीवन आज उतना छोटा नहीं रह गया है । ज्ञान अब उतना सीमित नहीं रहा कि कुछेक बातें पढ़ या सुन लेने भर से काम चल सके । ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से व्यक्ति और समाज के अनेकानेक पक्ष सामने आ रहे हैं । उन सबकी सामान्य जानकारी प्राप्त किए बिना न कोई समय की गति को समझ सकता है और न प्रस्तुत उलझनों को सुलझाने में सफल हो सकता है । इसलिए साक्षरता उपलब्ध होते ही दूसरी आवश्यकता यह उभर पड़ती है कि उपयोगी ज्ञान के विविध आयामों को समझने का अवसर मिले । यह कार्य जीवन साहित्य के बिना और किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सद्ज्ञान साहित्य का इन दिनों एक प्रकार से अभाव ही है । वह बहुत खोजने पर ही किन्हीं सिद्धान्तवादी बुकसेलरों के पास छुट-पुट रूप में ही मिल पाता है । अधिकांश लेखक, प्रकाशक, बुकसेलर तो कुसंस्कारी और निरर्थक साहित्य ही बेचते हैं । मनचले लोग उसी को खरीदकर अपना मनोरंजन करते रहते हैं । फिर आवश्यक पाठ्य सामग्री कहाँ से आए ? स्वाध्याय के लिए प्राणवान साहित्य कहाँ से मिले ? इसका एक ही उत्तर है कि पाठशालाओं की तरह पुस्तकालयों की स्थापना और संचालन व्यवस्था हाथ में ली जाय । चुन-चुनकर प्राणवान साहित्य उनमें संग्रह किया जाय और ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि उस क्षेत्र के सभी शिक्षितों को नियमित रूप से निरन्तर सत्साहित्य पढ़ने को मिलता रहे । ऐसी व्यवस्था अपने पैसे से नित्य साहित्य खरीदकर पूरी करते रहने में तो कोई बिरले ही समर्थ हो सकते हैं । पर यह शक्य और सरल है कि हर जगह सद् ज्ञान साहित्य उपलब्ध कराते रहने वाले पुस्तकालय स्थापित किए जायें । आरम्भ में इन्हें निःशुल्क ही होना चाहिए । क्योंकि आम लोगों में सत्साहित्य पढ़ने की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती । शिक्षित भी इस दिशा में उत्साह नहीं दिखाते । ऐसी दशा में प्रथम कार्य दिलचस्पी पैदा करना ही सामने आता है । इसके लिए शिक्षितों से सम्पर्क बनाकर उनको घर बैठे, बिना मूल्य, आग्रहपूर्वक साहित्य पहुँचाने का कार्य भी इन पुस्तकालयों को ही करना होगा । साक्षरता इससे कम में सार्थक होती ही नहीं ।

विचार क्रान्ति को व्यापक बनाने के लिए साक्षरता प्रसार और इसके साथ सत्साहित्य के पठन की सुविधा उत्पन्न करने के लिए पुस्तकालय व्यवस्था जोड़कर रखी जानी चाहिए । दोनों को मिलाकर ही एक काम पूर्ण होता है । एकांगी रहने पर तो दोनों ही निरर्थक हो जाते हैं । पुस्तकालय हो पर शिक्षित न हों तो उसकी क्या उपयोगिता ? इसी प्रकार शिक्षितों की बड़ी संख्या हो पर उन्हें सत्साहित्य से सम्पर्क का अवसर न मिले तो भी यही समझना चाहिए कि बात अधूरी ही रह गयी । ऊँची कक्षाओं की पढ़ाई पढ़ लेने पर भी वह उद्देश्य पूरा नहीं हुआ, जिसके लिए शिक्षा प्राप्त करने का श्रम किया और खर्च उठाया जाता है ।

विद्यालय और पुस्तकालय का एक युग्म है । इसे तो अनिवार्य और आवश्यक मानकर ही चलना चाहिए । क्योंकि आवश्यक जानकारी मिलने के उपरान्त ही उत्कृष्टता और प्रगतिशीलता की दिशा में तर्क, तथ्य, प्रमाण और उदाहरण आदि के आधार पर कुछ करते-धरते बन पड़ता है । इन दोनों को आँख-कान की उपस्थिति के समान एक बड़ी अपूर्णता की पूर्ति मानकर चलना चाहिए ।

इतने पर भी यह नहीं मान लिया जाना चाहिए कि व्यक्तित्वों की प्रखरता और समाज की सुसंस्कारिता के लिए जो किया जाना था वह पूरा हो गया । दृष्टिकोण के परिमार्जन के लिए । आदर्शवादिता को जीवन में समाविष्ट करने के लिए इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ करना शेष रह जाता है । इसके लिए उपयुक्त वातावरण बनाने और अन्तःचेतना की गहराई तक उतर सकने वाले माध्यमों को भी जुटाने की आवश्यकता पड़ती है । इसके अभाव में सद्ज्ञान भी सामान्य ज्ञान में एक कड़ी जुड़ने जैसा ही बनकर रह जाता है ।

पानी का स्वभाव नीचे की ओर ढलना है । मनुष्य के संचित कुसंस्कार भी पशु प्रवृत्तियों की ओर ही घसीट ले जाते हैं । सभी जानते हैं कि ऊपर से नीचे गिरना या गिराना नितान्त सरल है । पर यदि कुएँ से पानी ऊपर खींचना हो, जमीन से उठाकर छत पर पहुँचाना हो तो इसके लिए कई प्रकार के साधन जुटाने अनिवार्य हो जाते हैं । न तो कुएँ का पानी उछलकर ऊपर आता है और न जमीन पर बैठा व्यक्ति ऊँची छत पर उछलकर पहुँच पाता है । ऐसे कार्यों के लिये समर्थ साधन जुटाने होते हैं और पर्याप्त प्रयास करने, श्रम लगाने की आवश्यकता होती है । यही सब इन दिनों इसलिए करना पड़ेगा कि लोक-चिन्तन में निकृष्टता के तत्व बड़ी मात्रा में भर गये हैं । जनसाधारण के लिए संकीर्ण स्वार्थपरता ही सब कुछ बनकर रह गई है । तात्कालिक लाभ उठाने के लिये लोग धर्म, नीति, सदाचार और कर्तव्य की पूरी तरह उपेक्षा करने लगे हैं । मानवीय गरिमा और मर्यादा का उल्लंघन करने, उच्छृंखलता बरतने की परिपाटी इसलिये चल पड़ी है कि हर किसी को तुरन्त का लाभ ही सब कुछ प्रतीत होता है । दूरगामी परिणामों की बात कोई सोचता तक नहीं । बच्चों को साँप का चिकना, चमकीला स्वरूप बड़ा ही मोहक लगता है । पर उसको पकड़ने पर मृत्यु का सामना करना पड़ सकता है, यह उनकी अविकसित बुद्धि को सूझता ही नहीं । आतिशबाजी का मनोरंजन कितनों को अपंग करके रख देता है । इसे न तो पटाखा खरीदने वाले सोचते हैं और न बेचने वाले । इन दिनों ऐसी ही अदूरदर्शिता जन साधारण पर हावी हो रही है । उसका दुष्परिणाम भी सामने है । व्यक्ति और समाज के सामने असंख्यों समस्याएँ, उलझनें, विपत्तियाँ और कठिनाइयाँ अपनी भयानक विभीषिकाओं समेत सामने खड़ी हैं । हर क्षेत्र में अपने-अपने ढंग के संकट छिपे हुए हैं । वे भी ऐसे जो सामान्य उपाय-उपचारों से टलने का नाम नहीं लेते ।

अनैतिकता, मूढ़ मान्यता, कुरीतियाँ, अन्धविश्वास आदि ऐसे पिशाच हैं कि वे प्रत्यक्ष आँखों से तो दिखाई नहीं पड़ते पर उनके कारण अहित इतना होता है जिसका कोई शुमार नहीं । मनःस्थिति के अनुरूप ही परिस्थितियाँ बनती हैं । विचार ही कार्यों को जन्म देते हैं । इसलिए मनीषी सदा यही कहते और बताते रहे हैं कि लोकमानस का परिष्कार इतना अधिक आवश्यक है जितना पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक उन्नति एवं शिक्षा चिकित्सा आदि द्वारा किया जाने वाला सुविधा संवर्द्धन । सच कहा जाय तो विचार क्रान्ति को और भी अधिक आवश्यक महत्वपूर्ण एवं प्राथमिकता देने योग्य कहा जा सकता है । क्योंकि कुमार्गगामिता से बचकर सत्कर्म अपनाने के लिये जन-जन को तैयार करना उसी माध्यम से सम्भव है । अपराधी पुलिस के माध्यम से समाप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं हो सकते । आँकड़े बताते हैं कि पुलिस दल की संख्या बढ़ती जाती है । साथ ही अपराध उससे भी अधिक वेग से बढ़ रहे हैं । चिकित्सकों की संख्या में भारी अभिवृद्धि हो रही है । अस्पतालों, दवाखानों की बाढ़ आ रही है । औषधियाँ भी नित नयी आविष्कृत हो रही हैं फिर भी रोगों का तूफान घटने का नाम नहीं लेता, वरन् दिन-दूना, रात-चौगुना अधिक गति पकड़ता जा रहा है । आर्थिक उन्नति के सरकारी और गैर सरकारी प्रयास बढ़ रहे हैं, पर बढ़ती हुई कमाई नशे जैसे दुर्व्यसनों में, विलास उपक्रमों में इतनी तेजी से उड़ रही है कि बढ़ी आमदनी का पता भी नहीं चलता कि वह कहाँ चली गयी । अभावग्रस्तता दिनों-दिन बढ़ती ही जाती है । दरिद्रता का शिकंजा और अधिक कसता जा रहा है ।

फूटे घड़े में पानी भर देने पर वह ठहरता कहाँ है ? इसी प्रकार आर्थिक उन्नति के क्षेत्र में यदि प्रगति हो भी तो नशेबाजी, फैशनपरस्ती, ठाठबाट, विलास, अपव्यय आदि के रहते उस प्रगति का कहीं अता-पता भी नहीं चलेगा और अभावों की अखरने वाली स्थिति जहाँ की तहाँ बनी रहेगी । कुरीतियों को ही लें तो वे भी कम भयंकर नहीं हैं । विवाह-शादियों की धूमधाम और दान-दहेज में जो खर्च पड़ता है उसे कम नहीं आँका जाना चाहिए । वह अरबों-खरबों तक पहुँचता है । तीर्थयात्रा के नाम पर जितना खर्च होता है उतने से नवसृजन का प्रयोजन पूरा करने वाले बीसियों विश्वविद्यालय खुल सकते हैं । नशेबाजी वाले खर्च को यदि बचाया जा सके तो उतने भर से समाचार पत्र प्रकाशन और प्रगतिशील फिल्म उद्योग का एक ऐसा समर्थ तन्त्र खड़ा हो सकता है जो विचार क्रान्ति की महती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि बना सकता है । आमदनी बढ़ना जितना आवश्यक है, अनुचित खर्चों को बचाना भी उससे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है ।

सही सोचने का तरीका जन-जन को सीखना और सिखाया जाना है । इसी आधार पर सन्मार्ग का अवलम्बन बन पड़ेगा । जो सही सोचेंगे, जो सही करेंगे वे सही सत्परिणाम भी उपलब्ध करेंगे । बहिरंग और अन्तरंग जीवन को, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परिस्थितियों को, सम्भालना-सुधारना यही है शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य । इसी को विद्या कहा गया है । श्रुति कहती है—"विद्या ही अमृत है । विद्या ही बन्धनों से मुक्त करती है ।"

शिक्षा का प्रारम्भिक चरण साक्षरता संवर्धन और पुस्तकालय स्थापना के रूप में होना चाहिए । किन्तु बात इतने भर से ही समाप्त हुई नहीं मानी जानी चाहिए । उच्चस्तरीय विद्या का स्वरूप होना चाहिए सही ढंग से सोचना । उत्कृष्ट आदर्शवादिता से भाव संवेदनाओं को ओत-प्रोत करना । इसके लिये पठन-पाठन है तो आवश्यक पर इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ करना पड़ेगा, जिससे चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में सद्भावना का, शालीनता का समुचित समावेश हो सके ।

संसार में मात्र प्रतिकूलता ही नहीं है

यह संसार जिन तत्वों से बना है । उनमें भलाई, बुराई, नेकी-बदी, कुरूपता—सुन्दरता, अनुकूलता-प्रतिकूलता के परस्पर विरोधी स्तरों का समावेश है । इन दोनों ही परिस्थितियों से कोई बच नहीं सकता । समुद्र की बनावट ही ऐसी है कि उसमें ज्वार-भाटे आते रहते और हर वस्तु हिलती रहती है । परमाणुओं से लेकर सौर मण्डल और ब्रह्माण्ड में कहीं स्थिरता नहीं । सर्वत्र हलचल की धूम है । इतना ही नहीं, उसके साथ ही प्रिय-अप्रिय भी जुड़ा है । यदि अपने चिन्तन को मात्र अप्रिय निषेधात्मक पक्ष के साथ जोड़ा जाय तो दुःखदायी घटनाएँ ही स्मरण रहेंगी और उन्हीं का स्मरण बाद में भी बना रहेगा । जो प्रिय एवं अनुकूल है वह सरसरी नजर से देखने पर आँखों के आगे से निकल जायेगा । उसकी विशेषता और स्थिति भी अनुभव में न आ सकेगी । निषेधात्मक चिन्तन के कारण जो श्रेष्ठ है वह भी निकृष्ट प्रतीत होगा । रंगीन काँच का चश्मा पहन लेने पर सभी वस्तुएँ उसी रंग में रंगी हुई दिखाई पड़ती हैं ।

यदि अपना चुनाव अशुभ के पक्ष में हो तो असंख्य लोगों में असंख्यों प्रकार की बुराइयाँ दीख पड़ेंगी । अपने साथ किसने क्या और कैसा दुर्व्यवहार किया है यदि इसकी स्मृति दौड़ाई जाय तो प्रतीत होगा कि संसार में दानव स्तर के लोग ही रहते हैं और अनीतिपूर्ण अनाचार करने में ही निरत रहते हैं । अपने को कब कितने दुःख भुगतने पड़े और दूसरों में से किस को कितने दुःख दिये इसकी गणना करने पर प्रतीत होता है कि यह संसार सचमुच ही नरक है, भवसागर है । यहाँ से जितनी जल्दी जिस प्रकार भी सम्भव हो छुटकारा पाना चाहिए । ऐसी मनःस्थिति में जीवन भार रूप बन जाता है और उसका प्रभाव उद्विग्न, अशान्त बने रहने के रूप में ही सामने आता है । यहाँ तक कि इस ऊबड़-खाबड़ दुनिया को बनाने वाले के प्रति भी आक्रोश उत्पन्न होता और भरपेट गाली देने को मन करता है । प्रतिकूलताएँ ही सर्वत्र छाई देखकर मनुष्य नास्तिक स्तर का बन जाता है । उसे कोई भी विश्वसनीय नहीं जँचता । सबके प्रति अविश्वास रहता है ।

इसके विपरीत एक दूसरा दृष्टिकोण भी है । उसके अनुरूप अपनी दृष्टि बदल लेने पर समूचा दृश्य ही बदल जाता है और सुन्दरता, सज्जनता एवं सदाशयता का माहौल इतना बड़ा दीखता है जिसे देखते हुए लगता है कि भलाई की भी कहीं कमी नहीं । ईश्वर ने ऐसी अद्भुत विशेषताओं वाला शरीर दिया, साथ ही जादू की पिटारी जैसा मनःसंस्थान भी । अभिभावकों और कुटुम्बियों की दुलार भरी उदारता की एक घटना का स्मरण किया जाय तो प्रतीत होगा कि वे औरों के लिए कैसे भी क्यों न हो, अपने लिए तो देवता तुल्य ही रहे हैं । मित्र, सहपाठियों का स्नेह-सौजन्य,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्यापकों का ज्ञानदान ऐसे पक्ष हैं, जिनकी उपलब्धि बिना वह स्थिति न आ पाती जो आज है ।

पत्नी का सौजन्य और सेवा-भाव आदि उदार दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि वह किसी भी प्रकार ऐसा नहीं है जिसे देवोपम न माना जाय । घर को खुशी और किलकारियों से भर देने वाले बच्चों को परिवार के अन्यान्य आश्रितजन सभी की सद्भावना मिलती है । समाज का ऐसा सुगठन है जिसमें आजीविका के साधन सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं । दैनिक उपयोग की इतनी, इतने प्रकार की वस्तुएँ मिलती रहती हैं, जिनके सहारे प्रसन्नता और तृप्ति ही मिलती रहती है ।

प्रकृति की ओर दृष्टि उठाकर देखा जाय तो चलते-फिरते खिलौनों जैसे पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, सरिता-सरोवर, पहाड़, वन, सूर्य, चन्द्र और तारागण, बादलों वाला आकाश, वृक्ष-वनस्पतियों सभी कुछ ऐसा है, जिसका मनोरम सौन्दर्य देखते-देखते मन नहीं भरता ।

सत्प्रयोजनों में संलग्न, चरित्रवान, उदारमना मनीषियों की खोज की जाय तो उनकी गाथाओं से इतिहास भरा पड़ा मिलेगा । आज भी उनकी कमी नहीं है । संख्या भले ही कम हो और वे निकट नहीं दूर रहते हों, किन्तु उनका अस्तित्व इतना अवश्य है कि प्रसन्नता व्यक्त की जा सके और सन्तोष की साँस ली जा सके ।

तथ्य एक ही है कि अपना दृष्टिकोण किस स्तर का है । उद्यान में भौंरे को सुगन्ध की मस्ती और मधुमक्खियों को शहद की मंजूषाएँ लटकती दीखती हैं, पर गुबरीला कीड़ा पौधों की जड़ों में लगे हुए सड़े गोबर तक जा पहुँचता है और सर्वत्र दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध पाता है । एक बार गुरु ने दुर्योधन और युधिष्ठिर को एक ही गाँव में भले और बुरे लोगों की सूची बना लेने के लिए भेजा । दुर्योधन को सभी दुष्ट और युधिष्ठिर को सभी सज्जन दीखे । वहाँ थे दोनों ही प्रकार के लोग, पर अपने दृष्टिकोण के अनुरूप उन्होंने उसी नजर से देखा तो उन्हें बहुलता अपनी खोजबीन के अनुरूप ही दिखाई दी ।

संसार में बुराइयाँ न हों सो बात नहीं है । पर वे ऐसी हैं कि उन्हें सुधारने के माध्यम से हम अपना पुरुषार्थ जगा सकें, प्रगतिशीलता का परिचय दे सकें । और परिवर्तन ला सकने का श्रेय प्राप्त कर सकें अनीति न हो तो संघर्ष किससे किया जाय ? शौर्य साहस प्रकट कर सकने का अवसर किस प्रकार आये ?

दुष्टता की उपेक्षा की जाय या उसे सहते रहा जाय, बढ़ने दिया जाय, यह कोई नहीं कहता । उन्हें सुधारने-बदलने के लिए भी भरपूर प्रयास करना चाहिए, पर इसमें खीजने की, असन्तुलित होने की आवश्यकता नहीं है । डाक्टर को सारे दिन उन्हीं के बीच रहना पड़ता है जिन्होंने असंयम बरतकर अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ लिया है । वे उनके घाव धोते, मरहम लगाते और आवश्यकतानुसार चीर-फाड़ भी करते हैं । वे रोग को मारते और रोगी को बचाते हैं । इस रीति-नीति को अपनाकर कुरूपता को सुन्दरता में और दुष्टता को सज्जनता में बदला जा सकता है । प्रेम-सौजन्य से काम न चलता हो तो आवश्यकतानुसार दण्ड नीति भी अपनाई जा सकती है और प्रताड़ना का प्रयोग भी किया जा सकता है, पर इसमें भी अपनी सुधार परायण सज्जनता की भाव सम्वेदना का ही अनुभव प्रयुक्त किया जा सकता है ।

फिर अपनी निज की सद्भावना ही अपने लिए कम आनन्ददायक नहीं होती । वस्तुतः मनुष्य उद्विग्न अपने दृष्टिकोण के कारण ही होता है । ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, छिद्रान्वेषण, असन्तोष, असंयम आदि के कारण ही ऐसी मनःस्थिति बनती है । जिसमें खीज, खिन्नता और विद्वेष से मन भरा रहता है । कभी स्वल्प कारण होने पर भी तिल का ताड़ बनता है और चिन्ता, भय, निराशा, आशंका, अविश्वास आदि मनोविकारों का समूह चढ़ दौड़ता है और स्थिति ऐसी पैदा कर देता है जिसमें चैन से रहना और सम्पर्क वालों को चैन से रहने देना बन ही नहीं पड़ता ।

स्मरण रखने योग्य यह है कि अन्धकार कितना ही विस्तृत क्यों न हो, पर वह प्रकाश से अधिक मात्रा में नहीं हो सकता । संसार में अशुभ कितना ही क्यों न हो, पर वह शुभ से अधिक नहीं है । गन्दगी और स्वच्छता का अनुपात लगाया जाय तो स्वच्छता ही अधिक मिलेगी । यदि ऐसा न होता तो आत्मा इस संसार में आने और रहने की इच्छा न करती । कठिनाई अपना दृष्टिकोण उलझा लेने भर की है और वह ऐसा नहीं है जिसे सुधारा बदला न जा सके ।

हजार तालों की एक चाबी

मनःस्थिति के अनुरूप परिस्थितियाँ उत्पन्न होतीं तदनुरूप सुख या दुःख सामने आते हैं । विचार ही कर्म के उत्पादक हैं और उन्हीं के आधार पर भले-बुरे परिणाम सामने आते रहते हैं । विचारों को यदि संयमित और परिष्कृत बनाया जा सके तो समझना चाहिए कि उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ निश्चित रूप से बन गईं ।

पराचेतना और जीव सत्ता के मध्य चलने वाले प्रवाह का माध्यम विचार ही है । उसे असुरता के साथ भी जोड़ा जा सकता है और देवत्व के साथ घुलमिलकर तदनुरूप वर्तमान एवं भविष्य का निर्माण निर्धारण भी बन पड़ता है । चूँकि विचारों का स्तर इच्छानुरूप बन पड़ना मनुष्य की अपनी इच्छा और चेष्टा पर निर्भर है, इसलिए उसे अपने भाग्य का निर्माता आप होने वाली बात को सर्वत्र मान्यता मिली है ।

हेय विचारों से बुरी आदतें विकसित होती हैं । बुरे स्तर की इच्छा आकांक्षाएँ उभरती हैं, तदनुरूप मनुष्य कर्म करने लगता है । आज के कर्म ही कल के भाग्य बनकर सामने आते हैं । इस तथ्य से अवगत दूरदर्शी अपने विचारों पर कड़ा नियंत्रण करते हैं, उन्हें सुधारते, परिष्कृत करते और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानवी गरिमा के साथ जुड़े हुए आदर्शों के अनुरूप बनाते हैं किन्तु जो इस केन्द्रबिन्दु पर चौकड़ी चूक जाते हैं और वासना, तृष्णा, अहमन्यता एवं पतन-पराभव का स्तर अपना लेते हैं, उनकी विचारणा ही उन्हें नारकीय परिस्थितियों में धकेल देती है । असंतोष, आक्रोश, अनिष्ठा, विग्रह जैसी आशंकाओं से खिन्न-विपन्न बनाये रहती हैं । उतावली और लिप्सा से मतिभ्रम अपनाकर तात्कालिक लाभ को सब कुछ समझते हुए संलग्न तो अनाचार में भी हुआ जा सकता है, पर उनके दुष्परिणामों से बच सकना किसी भी प्रकार संभव नहीं होता । उदात्त दृष्टिकोण और शालीनतायुक्त चरित्र व्यवहार अपनाकर ही लोग महापुरुषों जैसी उत्कृष्टता प्राप्त करते हैं, ऊँचे उठते और साथियों को प्रोत्साहन, समर्थन देकर ऊँचा उठाते हैं । श्रेय और सम्मान उन पर बरसता है । आत्मसंतोष का असाधारण लाभ मिलता है, सो अलग है ।

इन दिनों की उलझनों को तत्वदृष्टि से देखा जाय, तो उनका सब के मूल में एक ही आधारभूत कारण दीख पड़ता है 'विचार विपर्यय', अर्थात् आस्था संकट, चिन्तन क्षेत्र में अवांछनीयता का घुस पड़ना । यदि इस एक ही तथ्य पर पहुँचा जा सके और विचार परिष्कार को समस्त समस्याओं का एक हल माना जा सके तो बात इतने भर से बन जाती है । इस एक ही चाबी से उलझनों के अगणित ताले सरलतापूर्वक खुल सकते हैं ।

लोकशिक्षण और जनमानस के परिष्कार को हाथ में लिया जाय और हर किसी को यह हृदयंगम कराया जाय कि मानवी गरिमा के अनुरूप ही विचारणा को मान्यता मिलनी चाहिए । जो अनुपयुक्त एवं अवांछनीय है, उसकी जड़ विचार क्षेत्र में जमने ही न दी जाय तो फिर वे विष वृक्ष उग ही नहीं सकते, जो शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में भयंकर विग्रहों और अनर्थों के रूप में मानवी सुख, शान्ति को चुनौती देते दीख पड़ते हैं । जनमानस का परिष्कार यदि चरम लक्ष्य की तरह अपनाया जा सके तो उस विचार क्रान्ति की परिणति ऐसी सुखद हो सकती है, जिसका परिणाम इसी धरती पर स्वर्ग के अवतरण जैसा देखा जा सके ।

दृष्टिकोण का परिवर्तन ही व्यक्तित्व परिवर्तन

असुर, मनुष्य और देवता देखने में एक ही आकृति के होते हैं, अंतर उनकी प्रकृति में होता है । असुर वे हैं जो अपना छोटा स्वार्थ साधने के लिए दूसरों का बड़े से बड़ा अहित कर सकते हैं । मनुष्य वे हैं जो अपना स्वार्थ तो साधते हैं पर उचित-अनुचित का ध्यान रखते हैं । पाप से डरते हैं और नियत मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते । देव वे हैं जो अपने अधिकारों को भूलकर कर्तव्य पालन का ही स्मरण रखते हैं । अपनी शक्तियों को परमार्थ और परोपकार में अधिक व्यय करते हैं और इसी में सच्चा स्वार्थ साधन मानते हैं । असुरों के दृष्टिकोण में दुष्टता, मनुष्यों के दृष्टिकोण में मर्यादा एवं देवताओं में उदारता भरी रहती है । दृष्टिकोण के इस अंतर के कारण ही उनके बुरे-भले कार्यों की शृंखला सामने आती और उसी आधार पर वे निन्दा-प्रशंसा के पात्र बनते हैं । सद्गति और दुर्गति भी इन्हीं आधारों पर होती है ।

आज असुरता का साम्राज्य चारों ओर फैला है । सोचने का तरीका यह बनता जाता है कि अपना लाभ बढ़ाने के लिए दूसरों का कितना ही बड़ा अहित क्यों न हो उसकी परवाह न करनी चाहिए और जैसे भी बने वैसे अपना स्वार्थ साध लेना चाहिए असुर होने का यही लक्षण है । प्रस्तुत समय में जालसाजी और ठगविद्या एक प्रकार से चतुरता और बुद्धिमत्ता का अंग बनती चली जा रही है, व्यापार में धोखेबाजी का समन्वय अब एक आम बात बन रही है । कहना कुछ, दिखाना कुछ, देना कुछ यह तीन तरह का व्यवहार करना दुकानदारों की एक आम नीति है । खाद्य पदार्थों और औषधियों तक में जो घृणित प्रकार की मिलावटें होती हैं उससे उपभोक्ताओं का स्वास्थ्य चौपट होता है तो इसकी परवाह किये बिना व्यापारी निधड़क अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं । न्याय की रक्षा के लिये बने हुये न्यायालय के कर्मचारी किस प्रकार रिश्वत में अन्याय को प्रश्रय दिये हुये हैं, यह किससे छिपा है । मित्र-मित्र के बीच स्वार्थ साधन की शतरंजी चाल चली जाती रहती है । शत्रु और उदासीन को ठगना कठिन होता है, मित्र बनकर आसानी से विश्वासघात किया जा सकता है । इस दृष्टि से अब मित्रता विश्वासघात और धूर्तों की एक चाल बनती जा रही है । घर परिवार में भी यही नीति बरती जाती है । पिता-माता तभी तक अच्छे लगते हैं जब तक वे कमाते और खिलाते हैं, जब वे अशक्त हो जाते हैं, तो भार रूप लगते हैं । उनके मरने की, खर्च घटने की मनौती मानी जाती है ।

दूसरों का धन, दूसरों का शील, सतीत्व हरण करने के लिए घात लगाये बैठे रहते हैं और जब जिसे जहाँ अवसर मिलता है अपना दाव चलाने में चूकता नहीं । दूसरे की कठिनाइयों और परिस्थितियों पर सहानुभूति-पूर्वक विचार करने की क्षमता घटती जा रही है । यह सोचना लोग छोड़ते चले जा रहे हैं, कि दूसरों की परिस्थितियों में निष्ठुरता पनपे और मनुष्य पापी, अपराधी एवं दुष्ट बनता चला जाय, तो आश्चर्य की क्या बात है ?

व्यापक बुराइयों की अधिक चर्चा करने से कुछ लाभ नहीं वस्तुस्थिति को हम सब जानते ही हैं । इस चर्चा से चित्त में क्षोभ और संताप ही उत्पन्न होता है । यों भले मनुष्यों का भी अभाव नहीं है वे प्रत्येक क्षेत्र में बदनाम क्षेत्रों में भी मौजूद रहते हैं पर उनकी संख्या नगण्य है । असुरता का व्यापक विस्तार अपने जैसे कड़ुए और विषैले प्रतिफल उत्पन्न कर रहा है सो सामने प्रस्तुत ही है । सर्वत्र अशांति, असंतोष, विक्षोभ, संताप, द्वेष, क्लेश, रोग, शोक, दैन्य, अभाव एवं संघर्ष का उद्वेग भरा वातावरण मौजूद है । कहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी शांति नहीं, किधर भी चैन नहीं, जो प्रगति हम करते जाते हैं, वही विपत्ति बनकर गले में फाँसी के फंदे की तरह जकड़ती चली जाती है । विज्ञान की उन्नति ने एटम युग में लाकर हमें खड़ा कर दिया है जहाँ मानव सभ्यता सर्वनाश के आधार पर खड़ी-खड़ी त्राहि-त्राहि पुकार रही है ।

प्रश्न यह है कि क्या इस बढ़ती हुई असुरता को इसी रूप में बढ़ने दिया जाय और सर्वनाश की घड़ी के लिए निष्क्रिय रूप से प्रतीक्षा करते रहा जाय? अथवा स्थिति को सुधारने के लिये कुछ प्रयत्न किया जाय ? विवेक, कर्तव्य, धर्म और पुरुषार्थ की चुनौती यह है कि निष्क्रियता उचित नहीं । शांति का संतुलन बनाये रखने के लिये धर्म और कल्याण की रक्षा के लिये हमें कुछ करना ही चाहिए ।

असुरता का व्यापक साम्राज्यवाद अब इतना ही चाहिए । देवत्व की ओर बढ़ने के लिये हमें मानवता को तो अपनाना ही पड़ेगा । दृष्टिकोण में इतना परिवर्तन होना तो आवश्यक ही है कि हमारे स्वार्थों की सीमा अत्यंत संकुचित न रहकर उनका क्षेत्र कुछ बढ़े और विस्तृत हो । हम तृष्णा और वासना के, लोभ और मोह के, काम और क्रोध के ही बंधनों में जकड़े न पड़े रहें वरन् धर्म और कर्तव्य का, आध्यात्मिक स्वतंत्रता का भी कुछ आस्वादन करें । बंधन से मुक्ति की ओर बढ़ने का एक ही मार्ग तो है कि संकुचित स्वार्थों की संकीर्णता की कीचड़ से अपने आपको निकालने का प्रयत्न करें । मानवता की निर्मल सुरसरि में अपने मल आवरण और विक्षेपों को धोवें और उस दिशा में कदम बढ़ायें जिधर देवत्व का मंगलमयी मलय-मारुत प्रवाहित होता है । असुरता से मानवीय चेतना को विमुख करके देवत्व की ओर उन्मुख करना यही आज के युग की महती आवश्यकता है, इसी को जीवन विद्या अथवा देवत्व की ओर बढ़ना कह सकते हैं ।

दृष्टिकोण का परिवर्तन ही व्यक्ति परिवर्तन कहा जाता है । बाहरी कामों, व्यवस्थाओं, गतिविधियों को, परिस्थितियों को तो बलपूर्वक भी बदला जा सकता है । भय-दंड या प्रलोभन के वशीभूत होकर लोग वह कार्य करते हैं जो वस्तुतः उन्हें करने नहीं होते । दिखावट, ढोंग, लोकलाज या दबाव से कितने ही कार्य संसार में अनिच्छापूर्वक भी होते रहते हैं पर उनमें कोई स्थायित्व नहीं होता । सरकारी कानून, सामाजिक प्रतिबंधों का, भावुकता को उभारकर जोश आवेश में बुराइयों की रोकथाम की जा सकती है । किन्तु होती वह अस्थायी ही है । बाहरी-दबाव जैसे ही कम हुआ वे दुष्प्रवृत्तियाँ उसी या वैसे ही अन्य किसी रूप में पुनः उभर आती हैं । वास्तविक उन्मूलन तो तभी संभव है जब अन्तःकरण बदले, हृदय परिवर्तन हो और दृष्टिकोण में सुधार हो । इसी में स्थिरता भी सन्निहित है और वास्तविकता भी ।

आत्मा शुद्ध स्फटिक मणि के समान है, दर्पण के सामने जो भी वस्तु आती है उसमें वैसी ही छाया दिखने लगती है । स्फटिक मणि के सामने जिस रंग की वस्तुएँ रखी होंगी वह उसी रंग की दीखने लगेंगी । आज असुरता की परिस्थितियाँ फल-फूल रहीं हैं तो मानव का स्वरूप दुष्ट, दुराचारी, अज्ञानी और असुर जैसा दीख रहा है । पर जैसे ही स्थिति में परिवर्तन होगा परिस्थितियाँ मानवता, नैतिकता, धार्मिकता एवं सज्जनता के अनुकूल बनती जायेंगी । दुष्कर्म का स्थान सत्कर्म ग्रहण करेंगे, दुर्भावनाओं के स्थान पर सद्भावनाओं की स्थिति दिखाई देगी । इन्हीं परिस्थितियों में वह मानव प्राणी जो आज असुर दिखाई देता है, मानवता के उच्च आदर्शों में ओत-प्रोत होकर देवत्व की ओर तेजी से बढ़ता हुआ दिखाई देगा ।

दृष्टिकोण का परिवर्तन ही सबसे बड़ा परिवर्तन है । अपनी सीमा के संकीर्ण दायरे को बढ़ाकर विशाल क्षेत्र तक विकसित करने का नाम ही विकास है । वासना और तृष्णा की क्षुद्रता की मोह-निद्रा की उपेक्षा करते हुए कर्तव्य-पालन और परमार्थ की आकांक्षाएँ जाग्रत करना जागरण है । कुविचारों और दुर्भावनाओं के काम, क्रोध, लोभ, मोह के बंधनों को तोड़ डालना इसी का नाम मुक्ति है । संतोष, संयम और सच्चाई, सज्जनता और शांति की संतुलित मनोभूमि बनाये रखना यही स्वर्ग है । यह अपनी धरती स्वर्ग से श्रेष्ठ है, यह अपना मानव शरीर देवताओं से उत्तम है । यह मनुष्य जन्म ईश्वर का हमें सबसे बड़ा अनुग्रह और वरदान है । इस अलभ्य अवसर का, इस परम सौभाग्य का समुचित सदुपयोग करते हुए, वह करना चाहिए जो करने योग्य है, वह सोचना चाहिए जो सोचने योग्य है, वह चाहना चाहिए, जो चाहने योग्य है, उस मार्ग पर चलना चाहिए, जो चलने योग्य है ।

हमें अपनी असुरता को देवत्व में परिणत करने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि नारकीय अंतर्द्वन्द्वों और शोक-संतापों से छुटकारा पाकर शांति एवं संतोष का स्वर्गोपम सुख निरंतर उपलब्ध करते रह सकना संभव हो सके । दृष्टिकोण बदलने से जीवन बदल जाता है । असुरता देवत्व में बदल सकती है । नरक को स्वर्ग में परिणत किया जा सकता है, यदि हमारा दृष्टिकोण बदले ।

दृष्टिकोण का परिष्कार

जैसा कुछ दीख पड़ता है या समझ में आता है वह सदा सही ही नहीं होता । उसमें कभी-कभी असाधारण भ्रान्तियों का भी समावेश होता है । पानी की लहरों पर अनेक सूर्य या चन्द्रमा दीख पड़ते हैं । वस्तुतः उतने होते नहीं । दूरबीन से बहुत दूर की वस्तुएँ निकट दीखती हैं । रंगीन चश्मे में जिस रंग के काँच होते हैं उसी रंग में रंगे हुए सारे पदार्थ दीखते हैं । लहरदार काँच ऐसे भी आते हैं जिसमें अपना चेहरा असाधारण रूप से लम्बा या चौड़ा दीख पड़ता है । नशा पीकर उन्मत्त हुआ दुर्बल व्यक्ति भी अपने को पहलवान समझने और बड़े-बड़ों को पछाड़ देने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चुनौती देने लगता है । यह वस्तुस्थिति का गलत मूल्यांकन है । इसे दृष्टिकोण ही कहा जा सकता है ।

शरीर पर रंगीन कपड़े पहन लेने या चेहरे पर मुखौटा बाँध लेने पर अपना स्वरूप दर्पण में भी विचित्र दीखने लगता है । पर वस्तुत: होता नहीं । विवेक बुद्धि अपनाने से ही यह जान पड़ता है कि दर्पण धोखा दे रहा है । मात्र आवरण को वस्तुस्थिति बता रहा है । रंगमंच पर सामान्य मनुष्य चित्र-विचित्र पोशाकें बदल-बदलकर आते रहते हैं । दर्शकों की आँखें धोखा खाती रहती हैं । कभी वही व्यक्ति ऋषि बन जाता है, कभी राजा । कभी भिक्षुक बन जाता है, कभी दानी । कभी पुरुष बन जाता है कभी नारी । विदूषक बहुरूपिये इस प्रकार की कला में और भी प्रवीण होते हैं ।

इन प्रसंगों में दर्शक ही धोखा खाते हैं । जिसने आवरण पहने हैं वह स्वयं तो अपने को जैसा है वैसा ही समझता रहता है । वह दृष्टि दोष और यथार्थता के मध्य रहने वाले अन्तर को समझता रहता है । रामलीला में बने देवता या राक्षस अपने बारे में धोखा नहीं खाते । वे अपने को वही समझते रहते हैं जैसे कि वस्तुत: हैं । रावण के दस सिर भी नकली होते हैं और हनुमान की पूँछ भी । बच्चे ही इस विनोद में रस लेते हैं । समझदारों से वह बनावट छिपी नहीं रहती ।

पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य वस्तुत: धोखा खाता है । सिनेमा के पर्दे पर चलती-फिरती तस्वीरें वस्तुत: स्थिर होती हैं । रील को घुमाने वाली मशीनें इस तेजी से घूमती हैं कि एक सैकिण्ड में १६ चित्र आँखों के आगे से गुजर जायें । बस चलता-फिरता सिनेमा दीखता है । लाउडस्पीकर अलग से बोलता है पर प्रतीत ऐसा होता है कि पात्र के मुँह में से ही आवाज आ रही है । यह बेजान मशीन द्वारा जानदार आदमी को दिया हुआ धोखा है । जो वास्तविकता को जानते हैं वे भी दृश्यों से इतने प्रभावित होते हैं कि कभी हँसने लगते हैं कभी रोने । कभी बेचैन हो जाते और कभी सन्तोष की अनुभूति में तल्लीन रहते हैं ।

हिप्नोटिज्म के खेलों में भी ऐसा ही होता है प्रभावित व्यक्ति कुछ का कुछ देखता और कुछ का कुछ अनुभव करता है । ऐसे ही एक जादू क्षेत्र के बीच फँसे हुए हम भी भूल-भुलैयों में घूमते रहते हैं और तिलस्म जैसे सपने देखते हैं ।

मेलों में मदारी पेट से बाँस और कागज का बना घोड़ा बाँध लेते हैं । अपना आधा धड़ उसके पेट में फँसा देते हैं । अपने पैरों से नाचते-कूदते हैं । दर्शकों को प्रतीत होता है कि वह व्यक्ति घोड़े पर चढ़ा सवारी का मजा ले रहा है किन्तु वास्तविकता दूसरी ही होती है । घोड़े की आकृति का लकड़-जंजाल उसके ऊपर लदा होता है । वह स्वयं अपने पैरों से नाचता है साथ ही उस लकड़ जंजाल को भी उठाये-उठाये फिरता है । यह खेल तमाशा है । पर तब उसे बावला कहेंगे जब उस घोड़े का मोल भाव करने लगे या उसके सहारे लम्बी मंजिल आराम के साथ पार करने की बात सोचे ।

हम सब ऐसे ही दृष्टिकोण में फँसे हैं । शरीर हमारे ऊपर एक लकड़-जंजाल की तरह लदा है और हम माया के दृष्टिकोण में बँधे हुए उसी को अपना वास्तविक रूप समझते हैं । उसकी मन:स्थिति ही हमें अपनी वास्तविक परिस्थितियाँ प्रतीत होती हैं ।

मनुष्य चार मुट्ठी अन्न और छह गज कपड़े को लपेटे रहने का अधिकारी है । छह फुट की चारपाई और ओढ़ने बिछाने का आच्छादन यही हम सबकी नियति है । इतना ही उपभोग हर किसी के लिए सम्भव है । सीमित आहार ही पचाने में हर किसी का पेट समर्थ है और नियत घण्टे ही नींद आती है । इस दृष्टि से सभी की स्थिति एक जैसी हुई । किन्तु देखते हैं कि कोई अपने को अमीर और गरीब मानता है और इसी आधार पर खिन्न रहता या इठलाता है । धनी के पास कितना ही वैभव क्यों न हो उसके उपयोग की सीमा निर्धारित है । उससे अधिक पर अधिकार जताया जा सकता है पर जमाया नहीं जा सकता है । जिस जमीन पर, जिस धन पर आज अपना अधिकार है । उस पर इससे पहले भी कितने ही अपना स्वामित्व बताते रहे हैं और हमारे न रहने के उपरान्त भी कितने ही उसे अपनी कहते रहेंगे पर वस्तुस्थिति यह है कि सृष्टि के आरम्भ में जितना धन वैभव इस धरती पर था, उतना ही बना रहेगा । उस पर अधिकार जताने वाले ही बदलते रहे हैं यह हो सकता है कि कोई अपनी कुशलता का समावेश करके आकृति में हेर-फेर कर दे । स्वामित्व की मान्यता अवास्तविक है । पर किसी से इस तथ्य को स्वीकारने के लिए कहा जाय तो वह लड़ने मरने को उद्यत होगा ।

शरीर पंचतत्वों के संयोग-वियोग का जादू है । अभी शुक्राणु था, अभी भ्रूण बना, अभी शिशु का जन्म, अभी किशोर युवक, प्रौढ़ और वृद्ध बना और मरण के साथ ही इसी मिट्टी में मिल गया । अहन्ता जन्म से पूर्व भी हवा में थी और मरण के उपरान्त भी हवा में उड़ गई । किन्तु उस पर जिसका स्वामित्व था । वह अपने आप को ही भूला रहा और आवरण में इतना रम गया कि शिल्पी और उपकरण का मध्यवर्ती अन्तर तक समझ सकना कठिन हो गया । 'अहम्' कहने की अधिकारिणी आत्मा को अपनी सत्ता ही विस्मृत हो गई ।

इन्द्रिय भोगों में अपने-अपने रसों का आस्वादन होता है पर मजा अपने ही पैसे से खरीदी हुई फुलझड़ी के जलने का है इसमें लाभ कहाँ? अपनी ही समर्थता को जताने भर का खेल है । होली जलते देखकर उछलने जैसा । कुत्ता सूखी हड्डी ले आता है चबाता है । जबड़े छिल जाते हैं । घाव से बहने वाले रक्त को चाटकर वह समझता है कि हड्डी का रसास्वादन हो रहा है । पर वस्तुत: वह अपने ही जबड़े का रक्त होता है । उसी के बारे में सूखी हड्डी से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रस टपकने जैसी अनुभूति होती है । कामुकता के रसास्वादन में वह पाता कुछ नहीं, गिरह का गँवाता ही गँवाता है पर उसमें असाधारण रसानुभूति मानने वालों को क्या कहा जाय? जिह्वा और पदार्थ की अनुभूति ही स्वाद बनती है । वस्तुतः स्वाद कहीं कुछ है नहीं । यदि नीम कड़ुआ होता तो ऊँट को क्यों सुहाता । हमारे अपने स्राव और ताप ही जीभ के स्वाद बनकर लुभाते हैं । वस्तुतः बाह्यजगत में घास ही घास है । उसी का पशु, पक्षी अपने ढंग से और मनुष्य अपने ढंग से स्वाद लेते हैं । आकाश में भ्रमण करने वाले ताप, ध्वनि और प्रकाश की तरंगें ही मस्तिष्क से, काय-कलेवर से टकराकर चित्र-विचित्र दृश्यों और अनुभवों का बोध कराती हैं । पर हेय है जो इस तिलस्म में अपना आपा खो बैठते हैं और तमाशे में इतने तन्मय हो जाते हैं कि अपने स्वरूप, गन्तव्य एवं उद्देश्य तक को स्मरण नहीं रख पाते ।

जीवन की यथार्थता क्या है ? एक अग्नि परीक्षा! एक धरोहर ! एक अमूल्य अवसर ! जिसका यदि सही उपयोग बन पड़े तो उसका प्रतिफल ऐसा उभरे जिस पर इस जड़-जंजाल की सारी उपलब्धियों को निछावर किया जा सके । पर किया क्या जाय ? कोई छलावा अमृत को छीनकर हमें चटपटी चटनी भर चखा जाता है और उस अलभ्य से वंचित कर जाता है जिसकी प्यास में जीव को मृग-तृष्णा की भाँति, कस्तूरी के हिरन की भाँति जहाँ-तहाँ भटकना पड़ता है ।

प्रदर्शन के लिए हम लालायित फिरते हैं पर जिन्हें दिखाना और जिनसे प्रशंसा कराना चाहते हैं वे अपने कामों में इतने व्यस्त हैं कि अपने प्रयोजनों के अतिरिक्त किसी दूसरे की ओर देखने की फुरसत ही नहीं । देखते हैं तो तिरछी नजर से मन ही मन ढोंगी की उपाधि देकर मुस्करा भर देते हैं ।

यश लूटने की ललक रहती तो है, पर यह भूल जाते हैं कि शरीर के साथ ही वह दर्प ही तिरोहित हो जाता है । अगले जन्म में कोई राजा था, इस जन्म में रंक है । तो पिछली बार का यशस्वी होना आज हमारे क्या काम आ रहा है । आज हमारी विद्वान, धनवान के रूप में ख्याति है पर अगले जन्म में गधा बनने पर वह ख्याति अपने किस काम आई । दूसरे कोई भले ही उस दिवंगत का ढोल पीटते रहें । धन बहुत कमाया था पर वह सब तो उत्तराधिकारियों के कब्जे में चला गया या दुर्व्यसनों में लुट गया । वह सम्पन्नता किस काम आई जिसके लिए जीवन भर कोल्हू में बैल की तरह पिलना पड़ा और कुकर्मों की बोझिल चट्टान सिर पर लादकर इतनी दूर जाना पड़ा जिसे ढोते-ढोते कचूमर ही निकल जाय ।

यह सारी प्रवंचना क्या है ? मात्र आत्मविस्मृति की विडम्बना । अपने आप को भूलकर हम वह सब कुछ भूल जाते हैं जो हर घड़ी स्मरण रखा जाना चाहिए । साथ ही उस चिन्ता, आकांक्षा, अभिलाषा, वितृष्णा में डूबे रहते हैं जिसमें सार कुछ नहीं । बाजीगरी की खिलवाड़ भर है । हम बलिष्ठ, समर्थ, यशस्वी, सम्पन्न विद्वान बने तो ही वह दौड़ एक छोटी सीमा तक हो सकती है । इस संसार में इतने बड़े मगरमच्छ बैठे हैं जिनकी तुलना में हमारी सम्पदा, विभूति, चतुरता और सफलता रत्ती के कण जितनी गिनी जा सकती है । फिर इस नक्कार खाने में तूती की आवाज कौन सुनने वाला है । अपने अहंकार का स्वयं ही परिपोषण करते रहा जा सकता है । दूसरों से इसकी आशा करनी हो तो उसे महँगे मोल पर नौकर ही रखना पड़ेगा ।

हम काँच के बदले हीरा गँवाते हैं । शरीर को चटाने, सजाने और बड़े बनने के लिए न जाने कैसा ताना-बाना बुनते रहते हैं जो प्रतीत तो कोई यक्ष गन्धर्व स्तर की कलाकारिता प्रतीत होती है पर झाड़ू वाले की एक ही झड़प में उस अहंता को बटोर लेती है जो कभी सोने के पर्वत जैसी सुहावनी लगती थी ।

मूर्खता को रचने, कहने, सुनने और विचारने की अपेक्षा यह क्या बुरा है कि हम अपने को, अपने आत्मिक स्तर को समझें और जो करें उसके लिए करें । शरीर के लिए जितना करना पड़ता है इससे सौ गुने कम प्रयत्न परिश्रम में इतना पाया जा सकता है जो बाल-विनोद की तुलना में सहस्र गुना अधिक महत्त्वपूर्ण, मूल्यवान और चिरस्थायी कहा जा सके ।

स्वाद वैभव और दर्प की तुलना में पुण्य-परमार्थ का मार्ग इतना सरल और श्रेयस्कर है कि उसकी उपलब्धि न सही, कल्पना भर से ही आत्म-सन्तोष एवं आनन्द-उल्लास में निमग्न रहा जा सकता है । उपास्य देवता है, प्रेत पिशाच नहीं । हमें आत्म-कल्याण के लिए सोचना और करना चाहिए । उस शरीर के लिए जो मल-मूत्र की गठरी की तरह हमारे सिर पर लदी है और जिसका स्थायित्व का तनिक भी भरोसा नहीं । अमर आत्मा को परमात्मा स्तर तक बैठा ले जाने में पुरुषार्थ है उसमें नहीं जिसे करते हुए हर समय डरना और डराना पड़ता है । जलना और जलाना पड़ता है ।

आत्मा को देखें, समझें और उसी को प्राप्त करें । क्योंकि वही हमारा सच्चा साथी और शुभचिन्तक है । आत्मा की प्राप्ति सरल है अन्तर में पवित्रता और बहिरंग में परमार्थ परायणता का समावेश कठिन इसलिए लगता है क्योंकि जरूरी है कि उसका हम अभ्यास करें, ऐसी रीति-नीति अपनायें, जिसे महामानव ऋषि और देवात्मा भी पाते रहें । उस मार्ग पर न चलें जो कँटीली झाड़ियों में उलझता और खाई खंदकों में धकेलता चलता है ।

असुर और राक्षस कौन ?

दुर्गुण जब स्वभाव की गहराई तक प्रवेश कर जाता है, तब उसे व्यवहार करने में न तो लाज आती है न आत्म-ग्लानि होती है । दूसरे की दृष्टि और लोक-भलाई की दृष्टि से वह बात अत्यधिक घृणित होती है, पर करने वाला उसे अपनी विशेषता, अपना गुण समझता है, इसलिये उसे चिन्ता भी नहीं होती है कि कोई उसे निन्दित करेगा या दण्ड देगा । यदि ऐसे अनेक दुर्गुणों का सामूहिक प्रसार हो जाय तो स्थिति बिल्कुल ही विपरीत हो जाती है । दुर्गुण-सद्गुण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और सुखद जान पड़ने लगते हैं और सद्गुणों तथा सत्कर्मों का कोई महत्व नहीं रह जाता । बुरा, भला बन जाता है और भला, बुरा । आज की स्थिति ठीक ऐसी है, जिसमें से देवत्व और असुरत्व को अलग-अलग ढूँढ़ लेना कोई साधारण बात नहीं रही ।

हर वर्ग, हर जाति, हर क्षेत्र में बुराइयाँ भर गई हैं, पर वे इतनी स्वाभाविक हो गई हैं कि लोग उनको करते हुए भी यह मान रहे हैं कि वे शुद्ध और निष्कलंक हैं । कहीं-कहीं तो देवताओं के गुणों से तुलना करके उसे मानवजाति का विशेषाधिकार ही माना जाने लगा है । छल, कपट, व्यभिचार, निन्दा, चोरी, परद्रोह, स्वार्थ, माँसाहार, जुआ, नशाखोरी आदि बुराइयाँ आज के जमाने में सभ्य और शिक्षित व्यक्तियों में, असभ्य और अशिक्षितों की अपेक्षा अधिक मात्रा में बढ़ गई हैं, तो भी उन्हें समाज में किसी प्रकार की निन्दा या अपमान का सामना नहीं करना पड़ता और न ही इससे उनके सम्मान में किंचित कमी आती है । यह स्थिति निस्सन्देह अवांछनीय और खेदजनक है ।

प्रतिवर्ष रावण, मेघनाथ, कुम्भकर्ण, सुबाहु, कंस आदि के पुतले जलाये जाते हैं और असुर, राक्षस आदि कहकर उनकी निन्दा की जाती है, उन्हें अपमानित किया जाता है । पर यदि बारीकी से देखा जाय और रावण-कुम्भकर्ण के स्वभाव का विश्लेषण किया जाय तो मालूम पड़ेगा कि वे भी आज के मनुष्यों के समान उच्च-कुलों में उत्पन्न हुए थे, पर दुर्गुणी होने के कारण उन्हें निशाचर कहा गया । आज के समाज में यदि दुर्गुणों का अत्यधिक प्रसार हो रहा हो तो लोगों को क्या कहा जा सकता है ? यह अब प्रत्येक व्यक्ति को एकान्त में विचार करना चाहिए ।

रामचरित-मानस में एक बार निशाचरों की आकृति को लेकर सती-पार्वती को भी शंका हुई तो उन्होंने भगवान शंकर से समाधान कराया । शिवजी बोले—

शुभ आचरन कतहुँ नहि होई ।
देव विप्र गुरु मान न कोई ॥
नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना ।
सपनेहूँ सुनिअ न बेद पुराना ॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा ।
जे लम्पट परधन परदारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा ।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्हके यह आचरन भवानी ।
ते जानहु निसिचर सब प्रानी ॥

हे पार्वती जी ! जो लोग अच्छा आचरण नहीं रखते, देव, ब्राह्मण और गुरुजनों का सम्मान नहीं करते, ईश्वर भक्ति, यज्ञ, तप और ज्ञान से विमुख, स्वाध्याय में जिनकी अभिरुचि नहीं, चोर, जुआरी, लम्पट, व्यभिचारी तथा माता-पिता का अपमान करने वाले, सन्त-पुरुषों को कष्ट देने वाले सब व्यक्ति जिनके ऐसे आचरण हों, निशाचर कहे जाते हैं ।

बालकाण्ड में ही तुलसीदासजी ने इस व्याख्या को और भी विस्तृत करते हुए लिखा है—

सुनहु असन्तन्ह केर सुभाऊ ।
भूलेहु संगति करिअ न काऊ ॥

दुष्ट व्यक्तियों के स्वभाव इस तरह होते हैं, उनकी संगति भूलकर भी नहीं करनी चाहिए—

खलन्ह हृदय अति ताप विसेषी ।
जरहिं सदा पर सम्पति देखी ॥
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई ।
हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥
काम क्रोध मद लोभ परायन ।
निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
बैर अकारन सब काहू सों ।
जो कर हित अनहित ताहू सों ॥
झूठइ लेना झूठइ देना ।
झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा ।
खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥
परद्रोही परदार रत, परधन पर अपवाद ।
ते नर पाँवर पापमय, देह धरे मनुजाद ॥

दुष्ट व्यक्तियों के हृदय में जलन रहती है, ईर्ष्यालु होते हैं, दूसरे की निन्दा से बड़े प्रसन्न होते हैं । काम, क्रोध, मद एवं लोभ में आकंठ डूबे हुए, निर्दयी, कपटी, कुटिल मलिन वृत्ति के लोग सभी से अकारण ही बैर करते हैं । जो हित करता है, ये उसका भी अनहित करने से नहीं चूकते । आहार से लेकर रहन-सहन और प्रत्येक व्यवहार में केवल झूठ को ही आश्रय देने वाले, वाणी से मधुर, पर हृदय से कठोर, द्रोही, व्यभिचारी—यह सब मनुष्य शरीर होते हुए भी नीच निशाचर ही हैं ।

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन ।
सिस्नोदर पर जमपुर त्रासन ॥
काहू की जो सुनहिं बड़ाई ।
श्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥
जब काहू कै देखहिं विपती ।
सुखी भये मानहु जग नृपती ॥
स्वारथ रत परिवार विरोधी ।
लम्पट काम लोभ अति क्रोधी ॥
मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं ।
आपु गये अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा ।
सन्त-संग हरि-कथा न भावा ॥
अवगुन सिन्धु मन्दमति कामी ।
वेद विदूषक परधन स्वामी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अत्यन्त लोभी, शिश्नोदर परायण, दूसरे की प्रशंसा सुनकर दुःखी होने वाले, दूसरों के कष्ट सुनकर हार्दिक प्रसन्नता अनुभव करने वाले, परिवार विरोधी, कामी, क्रोधी, सत्संग और ईश्वर उपासना से विमुख, अवगुणी, अबुद्धि, कामी तथा वेद का उपहास करने वाले व्यक्ति ही निंदनीय हैं । इनके कार्यों की सदैव निंदा की जानी चाहिए ।

वर्ग विशेष के कर्त्तव्यों का बोध कराते हुए अयोध्याकाण्ड में मानसकार ने बड़ा सुन्दर प्रसंग प्रस्तुत किया है । युवराज भरत अपने पिता सम्राट दशरथ की मृत्यु पर शोक करते हैं । गुरु वशिष्ठ ने शोकातुर भरत को अपने पास बुलाकर कहा—भरत ! इस संसार में जीवात्मा पुण्यार्जन के लिए विविध रूपों में प्रकट होती है । जो अपने जीवन-लक्ष्य को पूरा करते हुए इस संसार से विदा होते हैं, उनकी मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिए । शोचनीय तो वे लोग होते हैं, जिन्होंने अपने धर्म का, अपने कर्तव्यों का पालन नहीं किया होता । इसी प्रसंग में महर्षि वशिष्ठ समझाते हैं—

सोचिय विप्र जो वेद विहीना ।
तजि निज धरम विषय लवलीना ॥
सोचिय नृपति जो नीति न जाना ।
जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥
सोचिअ वयसु कृपन धनवानू ।
जो न अतिथि शिव भगति सुजानू ॥
सोचिय पुनि पति वंचक नारी ।
कुटिल कलह-प्रिय इच्छा चारी ॥

देवताओं और असुरों की आकृति में नहीं, प्रकृति में अन्तर होता है । जिनकी प्रकृति में दुष्टता, दुराचार, स्वार्थपरता, संकीर्णता आदि दुर्गुणों का बाहुल्य है, वे असुर हैं । असुरता की जितनी निंदा और भर्त्सना की जाय, उतनी ही कम है । इस दृष्टि से रामायण आदि ग्रन्थों में असुरों के प्रति घृणा भावों की अभिव्यक्ति हुई है । रामलीला में प्रति वर्ष रावण, मेघनाद, कंस आदि के रूप में यह असुरता ही सार्वजनिक रूप से जलाई जाती है ।

आत्म-निरीक्षण करके हमें अपने भीतर की छिपी असुरता को ढूँढ़ निकालना चाहिए और उसका उसी तरह दमन करना चाहिए, जैसा कि भगवान राम ने किया था । इसी रीति-नीति को अपनाकर हम मनुष्यता को सार्थक कर सकेंगे और देवत्व की ओर बढ़ते हुए परम लक्ष्य तक पहुँच सकेंगे ।

देवासुर संग्राम हमारे दैनिक जीवन में

पुराणों में आधे से अधिक कथा-प्रसंग देवासुर संग्राम के हैं । असुरों का देवताओं से तगड़े बैठना, आक्रमण करके देवताओं को हरा देना, हारे हुए देवताओं का भगवान की शरण में जाना, उनकी विशेष सहायता प्राप्त करना, फिर नये सिरे से युद्ध आरम्भ करना, अन्तिम बार असुरों को परास्त करके फिर अपना पद प्राप्त करना इसी एक कथानक को अनेक नाम, रूप एवं घटनाओं के साथ भिन्न-भिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न ढंग से कहा गया है ।

इस वर्णन के मूल में आसुरी और दैवी शक्तियों के संघर्ष की अलंकारिक चर्चा है । यह सर्वत्र दिखाई देता है । कोई क्षेत्र ऐसा बचा हुआ नहीं है जहाँ यह संघर्ष चलता न हो ।

यह संसार सत और तम से मिलकर बना है । तम अर्थात् जड़, चेतन अर्थात् सत । जड़ यों निर्जीव दीखता भर है, पर उसका आकर्षण कम नहीं । यदि वह अनाकर्षक, असुन्दर, अनुपयोगी रहा होता तो चेतन को उसके प्रति रुचि ही क्या होती और क्यों होती ? सत और तम का संयोग यथावत् बना रहे । चेतन की सहायता से जड़ को अधिक सुव्यवस्थित विकसित होने का अवसर मिले और जड़ के सम्पर्क से चेतन की सरस संवेदनाएँ उपलब्ध होती रहें । इस दृष्टि से नियति ने दोनों को परस्पर जोड़ दिया है । प्राणी का शरीर जड़ पंच तत्वों से बना है और उसमें प्राणसत्ता चेतना रूप में विद्यमान है । यह जड़-चेतन का संयोग ही तो है जिसके कारण दोनों परस्पर मिल-जुल कर रहते और जीवन रथ को आगे चलाते हैं ! दोनों को दोनों के प्रति आकर्षण और दोनों का दोनों से सहयोग । यह सहयोग की सौम्य अवस्था हुई ।

प्रकृति की सुन्दरता और उपयोगिता सर्वविदित है । तारों से जगमगाता नील आकाश, सूर्य-चन्द्र का उदय-अस्त, शीतल वायु, ऋतु परिवर्तन प्रातः सायंकाल की रंग-बिरंगी झाँकी, बादल, वर्षा, बिजली आदि के कारण अपना ऊर्ध्वलोक कितना सुन्दर प्रतीत होता है । धरती पर पर्वत, वन, नदी, सरोवर, समुद्र, हरितमा, पुष्प, उद्यान आदि कितने सुन्दर लगते हैं । पशु-पक्षियों की आकृति कितनी सुहावनी लगती है । धान्य, खनिज आदि की प्रकृति सम्पदा कितनी उपयोगी है । क्या धरती क्या आकाश सर्वत्र सुन्दरता और उपयोगिता प्रचुर परिमाण में भरी होने से ही प्राणी इस संसार में रहता और क्रीड़ा-कल्लोल करता है । यदि यहाँ कुछ भी आकर्षण न होता तो सम्भवतः जीवधारी को जीवन से कुछ भी प्यार न रहा होता ।

नियति की इच्छा है कि जड़-चेतन, परस्पर सहयोग पूर्वक रहें और एक दूसरे के लिए उपयोगी सिद्ध हों । नर और मादा के बीच काम आकर्षण की एक ऐसी सरस शृंखला जुड़ी हुई है जिसके कारण वे निकट आते और घनिष्टता के सूत्र में बँधते हैं । यदि यह सरसता सूत्र न रहा होता तो नर और मादा के बीच न तो आकर्षण रहता और न सन्तानोत्पादन का अतीव झंझट भरा उत्तरदायित्व वहन करने के लिए कोई तैयार होता । जड़ और चेतन के बीच में सुन्दरता, उपयोगिता एवं स्पर्शजन्य सरसता के ऐसे ही सूत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जुड़े हुए हैं जैसे नर और मादा के बीच । नियति चक्र इसी तरह घूम रहा है जैसे ग्रह-नक्षत्रों की पारस्परिक आकर्षण शक्ति से खिंचे, बँधे समस्त आकाशीय पिण्ड अपनी-अपनी कक्षाओं में परिभ्रमण कर रहे हैं ।

सृष्टि की इस औचित्य प्रक्रिया से किसी को कोई शिकायत नहीं हो सकती । यदि सन्तुलन बना रहे तो गड़बड़ी का कोई कारण नहीं । अव्यवस्था तो असन्तुलन से फैलती है । प्राणी के दृष्टिकोण में जब विकृति आती है तो औचित्य एवं उपयोग का तथ्य भूल जाता है और अतिवाद की नीति अपनाने लगता है । संग्रह, आधिपत्य और उपभोग को मर्यादा के अन्तर्गत रखा जाय तो जड़-चेतन का पारस्परिक संयोग हर दृष्टि से हर किसी के लिए सुखद हो सकता है । अमर्यादित मात्रा में चाहने से साम्य वितरण में गड़बड़ी फैलती है । एक जगह अधिक संग्रह दूसरी जगह अभाव की स्थिति उत्पन्न करेगा । यह प्रक्रिया अवांछनीय है । प्रकृति इसको संतुलित करने की प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है । इसी का नाम देवासुर संग्राम है ।

अनगढ़ मनुष्य प्रकृति के साधनों पर व्यक्तिगत रूप से अनावश्यक मात्रा में आधिपत्य जमाता है । परिग्रही, संग्रही, अमीर बनकर अपने अहंकार एवं बड़प्पन का आतंक दूसरों पर छोड़ना चाहता है । इस ललक का नाम तृष्णा है । अमीर बनने, बड़ा कहलाने में जहाँ अधिक सुविधा-साधनों के उपभोग की सम्भावना बढ़ती है वहाँ अहंकार भी तुष्ट होता है, तृष्णा इसी स्थिति का नाम है, दूरदर्शिता से रहित व्यक्ति इसी तृष्णा में बेतरह बँधते है और बेतुके ढंगों, अनावश्यक, अनुपयोगी कामों में संलग्न रहकर जीवन-सम्पदा को नष्ट करने वाली बालक्रीड़ाओं में लगे रहते हैं ।

दूसरा आकर्षण शरीरगत है । शरीर में कुछ संवेदन अवयव ऐसे बने हैं जिन्हें प्रकृति की अमुक स्थिति के साथ सम्पर्क बनाने में अमुक प्रकार की सरस संवेदना अनुभव होती है । जीभ को खट्टे, मीठे, नमकीन, चरपरे पदार्थ विशेष रूप से सुहाते हैं । जननेन्द्रिय को रति कर्म में असाधारण रस आता है । कान को अमुक प्रकार के शब्द, आँख को अमुक स्तर के दृश्य, नाक को अमुक प्रकार की गन्ध और त्वचा को अमुक स्तर के स्पर्श बहुत सुहाते हैं । अनगढ़ मनुष्य इनकी असीम मात्रा चाहता है और मर्यादाएँ तोड़कर शहद पर टूट पड़ने वाली मक्खी की तरह उसी में लिपटकर संकटग्रस्त होता है ।

सीमित, संतुलित और विवेकपूर्ण स्थिति में औचित्य का ध्यान रखते हुए इन्द्रिय सुखों का संतुलित उपभोग लाभदायक सिद्ध होता है और उत्साह बढ़ाता है । शरीर से बाहर की वस्तुओं का सम्पर्क भी अमुक प्रयोजन के लिए अमुक मात्रा में उत्पादन एवं उपभोग किया जा सकता है । किन्तु जब संतुलन बिगड़ता है और अतिवाद अपनाया जाता है तो उसकी हानिकारक प्रतिक्रिया को ध्यान में रखते हुए विश्व-पुरुष उस असंतुलन की भर्त्सना करते हैं । वस्तुओं के अनावश्यक संग्रह को, तृष्णा और इन्द्रिय भोगों की लिप्सा को वासना कहते हैं । इन दोनों से ही व्यक्ति और समाज की हानि होती है इसलिए उन्हें दूरदर्शियों ने हेय एवं निन्दनीय, अवांछनीय एवं त्याज्य ठहराया है । वासना और तृष्णा के अतिवाद को अपना कर विकृत हुआ स्तर व्यक्तिवाद कहलाता है । संकीर्ण स्वार्थपरता के रूप में उसे व्यवहृत होते देखा जाता है । इसी को असुरता कहा गया है । दैत्य-दानव इसी दुष्प्रवृत्ति के प्रतीक प्रतिनिधि होते हैं ।

अवांछनीयताओं से भरे वातावरण में रहने वाले इस अनीति को अपनाते हैं और फिर नशे की तरह उसके अभ्यस्त हो जाते हैं । पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों का अपना आकर्षण और अपना दबाव है । पानी गिरते ही नीचे की ओर बहने लगता है । उसे किसी घेरे में बन्द करके रखा जाय तो ही शान्ति पूर्वक रोककर यथास्थान रखा जा सकता है अन्यथा उसे फैलने, नीचे बहने में देर न लगेगी । यही हाल मानवीया चेतना का है । अनेक योनियों में संग्रह किये निकृष्ट स्तर के कुसंस्कार बड़ी मात्रा में जुड़े रहते हैं । मनुष्य के लिए उपयुक्त उच्चस्तरीय चेतना उत्पन्न करने के लिए द्विजत्व जैसे विशिष्ट प्रयत्न करने पड़ते हैं अन्यथा निम्न योनियों के संग्रहीत कुसंस्कार अवांछनीय वातावरण में और भी अधिक फलने-फूलने लगते हैं और अनगढ़ मनुष्य चिन्तन एवं कर्तृत्व की दृष्टि से घटिया स्तर का रह जाता है । इस घटियापन को ही व्यक्तिवाद, संकीर्ण स्वार्थपरता, अनैतिकता, असुरता आदि नामों से पुकारते हैं । इस मनःस्थिति का मनुष्य अपने छोटे-छोटे स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए दूसरों को बड़ी से बड़ी हानि पहुँचाने में नहीं चूकता । अनेकानेक नाम रूपों के अनाचार, भ्रष्टाचार, दुष्कर्म, अपराध करने में उसे कोई हिचक नहीं होती वरन् उन क्रूर कर्मों को करने पर अपने को दुस्साहसी, शूरवीर, आतंकवादी आदि विशेषताओं से युक्त मानकर गौरवान्वित अनुभव करता है । इन्हीं प्रवृत्तियों को असुरता कहते हैं, इनमें जो जितना ग्रसित है वह उतने ही स्तर का असुर कहलाता है ।

असुरता आक्रमणकारी और आतंकवादी होती है । वह अपने विस्तार के लिए प्रयत्न करती है और आग की तरह जो भी उसकी पकड़ में आता है उसे आकार विस्तार के लिए जकड़ लेती है । असुरता से अतिरिक्त जो बचता है—वह देव है । सत और तम के, जड़ और चेतन के समन्वय से ही यह संसार बना है । रजोगुण तो इन दोनों का वैसा ही समन्वय है जैसे रात्रि और दिन के समन्वय से बना संध्याकाल । वस्तुतः संध्याकाल का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं । रात और दिन ही प्रधान हैं । समन्वय से तीसरी चीज बन जाने की रासायनिक क्रिया से ही रजोगुण उत्पन्न हुआ है । उसकी कोई स्वतन्त्र दार्शनिक विवेचना नहीं हो सकती ।

असुरता का आक्रमण देवत्व पर ही होता है । असुरता की वृद्धि के लिए देवत्व ही ईंधन हो सकता है । रात, दिन को खाकर विकसित होती है और दिन, रात को परास्त करके

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना वर्चस्व जमाता है । असुरता की वृद्धि देवत्व को उदरस्थ करने से ही सम्भव हो सकती है । यही असुरों को देवताओं पर आक्रमण करने पुराण वर्णित अलंकारिक कथा-गाथाओं की पृष्ठभूमि है ।

देवता आत्म-रक्षा के लिए लड़ते तो हैं, पर वे उपयुक्त पोषण प्राप्त न कर सकने के कारण दुर्बल बने रहते हैं । प्राथमिक आक्रमण में वे हारते हैं । स्वभावतः देवत्व दुर्बल नहीं है । पर वह असुरता की तुलना में बहुधा दुर्बल पड़ता है । इसके दो कारण हैं असुरता के संस्कार जीव के साथ निम्न योनियों से जुड़े आते हैं और वर्तमान वातावरण में भी उन्हीं का बाहुल्य छाया होता है । दैनिक अभ्यास में भी वे ही प्रवृत्तियाँ काम आती हैं । अस्तु, पर्याप्त खाद, पानी पाकर वे परिपुष्ट होती रहती हैं और अपनी क्षुधा बुझाने के लिए देवत्व पर, मानवी मर्यादाओं पर ही हमला बोलती हैं । आग को बढ़ने के लिए ईंधन तो चाहिए ही । इसके लिए उस दावानल को वनप्रदेश में उगी हुई सूखी गीली वनस्पति को ही अपनी लपेट में लेना पड़ता है । असुरता को बढ़ना है तो उसे देवत्व को ईंधन की तरह प्रयुक्त करना होता है । यही असुरता का देवसत्ता पर आक्रमण होता है ।

देवत्व भी चुपचाप उदरस्थ नहीं हो जाता । आत्मरक्षा की लड़ाई उसे भी लड़नी पड़ती है । आदर्शवाद भी जीवित रहना चाहता है । अस्तु विरोध, विद्रोह तो वह भी करता है । कम से कम मनुष्य की अन्तः भूमिका में अन्तर्द्वन्द्व के रूप में तो उसका रोष-आक्रोश एवं संघर्ष दृष्टिगोचर होता ही है । असुरता के सम्मुख नितान्त निष्क्रिय आत्म-समर्पण नहीं हो सकता । देवत्व हारता तो है, पर उसका प्रतिरोध किसी न किसी रूप में बना ही रहता है । आत्म-चेतना के साथ जुड़े हुए मानवीय आदर्श सर्वथा नष्ट नहीं हो सकते । यदि उन्हें भी जीवन प्रक्रिया में प्राचीन भारत जैसी उत्कृष्ट परिस्थितियों का पोषण मिला होता, तो उनकी बलिष्ठता असुरता से बढ़कर रही होती और हारने का कोई प्रश्न ही न उठता । खाद, पानी जिसे भी मिलेगा वह परिपुष्ट होगा । वातावरण एवं अभ्यास प्रयोग का अवसर जब असुरता का मिल रहा है तो परिपुष्टि उसे ही होना है । यदि वैसा ही पोषण देवत्व को मिला होता तो निश्चित रूप से सतयुगी, स्वर्गीय परिस्थितियाँ सामने रही होतीं और देवत्व की विजय-पताका फहराती दिखाई पड़ती ।

देवत्व का स्वरूप है व्यापकता । एक को बहुत में देखने की सद्भाव भरी सत्प्रवृत्ति । वासनात्मक अतिवाद के कारण होने वाले शारीरिक और मानसिक विनाश की अपरिमित क्षति देवचक्षुओं से स्पष्ट दीख पड़ती है । इसी प्रकार तृष्णाग्रस्त होकर अधिक संचय एवं उपभोग से अपनी अहंकारता एवं विलासिता का बढ़ना और दूसरों का उस परिकर से वंचित रहना उसे काँटे की तरह चुभता है । देव-मानस सोचता है कि अपने श्रम, समय, मनोयोग, प्रभाव, वर्चस्व एवं धन का लाभ यदि संकीर्ण स्वार्थपरता के क्षेत्र से बाहर तक जाने दिया जाय तो उससे कितने बड़े परिमाण में प्रयोजन पूरे हो सकते हैं । यह तुलनात्मक विचार करते ही देव-मानव को यही सूझ सूझती है कि जीवन के साथ जुड़ी हुई उपलब्धियों का उपयोग, जीवन-क्रम को आदर्श एवं अनुकरणीय बनाने में किया जाय । शरीर और परिवार के लिए सुविधाएँ संचित करते रहने का लोभ, मोहग्रसित क्षुद्रता से ऊपर उठा जाय और क्षमताओं तथा सम्पदाओं के रूप में जो कुछ उपलब्ध है, व्यापक क्षेत्र में सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के लिए लगाया जाय । देवमान्यता यही है । देवत्व इसी स्तर की गतिविधियाँ अपनाने के लिए उत्कंठित रहता है । ऐसे चिन्तन में ही उसे रस आता है और ऐसे कर्तृत्व में ही उसे सन्तोष मिलता है ।

असुरत्व और देवत्व में निरन्तर संघर्ष इसलिए होता रहा है कि जीवन-सम्पदा पर अधिकार जमाने के लिए दोनों की ही प्रबल चेष्टा रहती है । देवत्व की माँग यह है कि दिव्य-जीवन जिया जाय । अपने आचरण अनुकरणीय रहें । असुरता तात्कालिक वासना और तृष्णा की तृप्ति चाहती है । अधिकाधिक इन्द्रिय उपभोग की वासनात्मक लिप्सा हर घड़ी छाई रहती है । उसी की उधेड़-बुन का ताना-बाना चलता रहता है । तरह-तरह के व्यंजन, काम-क्रीड़ा के प्रयोग एवं दृश्य, श्रव्य, स्पर्शजन्य, विलास प्रयोजन कैसे पूरे हों इसके सपने सँजोये और घरोंदे बनाये जाते हैं । इससे थोड़ी फुरसत मिलती है तो धन कमाने, अमीरी का दर्प दिखाने वाले ठाट-बाट बढ़ाने के लिए प्रयत्न चल पड़ते हैं । जीवन-सम्पदा इन्हीं लोभ और मोह के, वासना, तृष्णा के प्रयोजनों में खर्च हो जाय यह असुरता की परिधि और प्रेरणा है ।

देवत्व ऐसी क्षुद्रता की बालक्रीड़ा में सीमाबद्ध नहीं रहना चाहता, उसे बड़े प्रयोजन पूरे करने की आकांक्षा बेचैन किये रहती है । यही अन्तर्द्वन्द्व देवासुर संग्राम है, जो प्रत्येक विचार और प्रत्येक कार्य में अपने-अपने पक्ष में समर्थन में निरत रहते हैं । भोजन करते समय यह खींच-तान देखी जा सकती है । एक ओर स्वादिष्ट किन्तु गरिष्ठ हानिकारक पदार्थ और दूसरी ओर कम स्वाद के किन्तु सात्विक पदार्थ सामने होते हैं । दोनों ही थाली में सामने रखे हैं किसे ग्रहण किया जाय ? किसे छोड़ा जाय ? इसमें भीतर ही भीतर अन्तर्द्वन्द्व चलता है । यही देवासुर संग्राम है । जिस पक्ष की प्रबलता होगी उसी की बात चलेगी । जो दुर्बल होगा वह कल्पना-जल्पना करता रह जायगा । थाली के मोर्चे पर देव जीते या दैत्य इसका निर्णय आसानी से किया जा सकता है ।

धन उपार्जन में नीति-अनीति के, कर्म में श्रमशीलता और आलस्य प्रमाद के, चिन्तन में विकारी एवं आदर्शवादी विचारों की, उपभोग में संयम-असंयम की, आचरण में आदर्शवादिता एवं भ्रष्टता की, दर्शन में आस्तिकता-नास्तिकता की आकांक्षाएँ हर घड़ी, हर क्षण मल्ल-युद्ध करती हैं । यही देवासुर संग्राम है । परस्पर विरोधी दिशा में चल रही खींच-तान में से कब किसकी विजय हुई, यह आत्म-निरीक्षण यदि सतर्कतापूर्वक जारी रखा जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्तर्द्वन्द्व के महाभारत में किस पक्ष की सेना हारती और किसकी जीतती है ?

व्यक्तिगत जीवन की विचारणा एवं क्रियाशीलता के क्षेत्र से आगे बढ़कर परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व के व्यापक क्षेत्र में भी यह देवासुर संग्राम चलता है । गरम युद्ध और शीत युद्ध के मोर्चे हर क्षेत्र में गढ़े होते हैं । इन्हें मूक-दर्शक की तरह तो कोई जीवित मृतक ही देखते रह सकते हैं । जीवन्त चेतना को किसी का पक्षधर बनना पड़ता है । जो नीति का पोषण नहीं करता वह परोक्ष रूप से अनीति का समर्थक है । निष्क्रियता भी किसी न किसी पक्ष को सबल या दुर्बल बनाती है । नीति के पक्षधर अनीति से जूझते हैं । जोखिम भरा कठोर संघर्ष न कर सके तो भी विरोध एवं असहयोग तो जारी ही रखते हैं । इतने से भी अनीति का मोर्चा कमजोर होता है । सत्प्रवृत्तियों का समर्थन एवं सहयोग करना प्रत्यक्षत: देव पक्ष को विजयी बनाने का योगदान है । इसी प्रकार असुरता को सहन करने, उसके विरोध में मुँह तक न खोलने से भी प्रकारान्तर से असुर पक्ष का समर्थन बन जाता है और दुष्प्रवृत्तियों को खुलकर खेलने की छूट मिल जाती है । इस प्रकार हर व्यक्ति अपने हर चिन्तन एवं कर्म में प्रकारान्तर से देवता एवं असुरों की सेना का सैनिक एवं समर्थक बनकर दोनों में से किसी न किसी को सफल एवं असफल बनाने का प्रयत्न कर रहा होता है । देवासुर संग्राम मल्लयुद्ध की तरह अथवा तीर, तलवारों से तो कभी-कभी ही देखने में आता है, पर वह सत्प्रवृत्तियों और दुष्प्रवृत्तियों में टकराव की तरह सर्वत्र होता रहता है । पुराणों में इसी सूक्ष्म स्थिति को विभिन्न कथानकों के रूप में चित्रित किया है । देवताओं और असुरों के नामों की तथा घटना-क्रमों की भिन्नता के रूप में व्यापक क्षेत्र में फैली हुई प्रवृत्तियों के बीच होते रहने वाले संघर्ष की ही चर्चा है ।

लोकप्रवाह में आसुरी तत्वों का बाहुल्य रहने से बहुत मोर्चों पर दैत्य ही जीतता है । देवत्व दुर्बल पड़ता और हारता है, पर यह जीत-हार अस्वाभाविक है । आत्मचेतना का ईश्वरीय अंश मूलत: अति समर्थ है । सत् में हजार हाथियों के बराबर बल बताया जाता रहा है । सामान्य विवेक सहज ही देवत्व का पक्षधर होता है । चोरों के झुण्ड से पूछा जाय कि चोरी अच्छी होती है या ईमानदारी तो उनमें से प्रत्येक ईमानदारी के पक्ष में ही अपना मत देगा । वह ईमानदार दुकान से सौदा खरीदता है, ईमानदार नौकर तलाश करता है और ईमानदारी से ही व्यवहार करने का इच्छुक रहता है । चोर होते हुए भी ईमानदारी का यह सहज सरल समर्थन बताता है कि देव पक्ष कितना प्रबल है जो विपक्षी के मुँह से भी अपना समर्थन करा लेता है । व्यभिचारी भी अपनी पत्नी या बेटी को उस मार्ग पर नहीं चलने देना चाहता । अपने घर में सदाचारियों को ही प्रवेश देते हैं । स्वयं व्यभिचाररत व्यक्ति भी जब सदाचार का समर्थन करता है तो स्पष्ट हो जाता है कि शक्ति किसकी प्रबल है ! सारा संसार व्यवहारत: असत्यवादी हो जाय तो भी बिना समर्थन का सत्य भी अपनी वरिष्ठता का विजय ध्वजा फहरा रहा होगा और असत्यवादियों के मुँह से भी सत्य की गरिमा गाई जा रही होगी । यह तथ्य बताते हैं कि देवत्व की मूल शक्ति कितनी प्रबल और प्रचण्ड है ? अस्तु, देवताओं की पराजय अस्थायी ही होती है, उसका निराकरण जल्दी ही हो जाता है । देवासुर संग्राम के कथानकों में असुरों की विजय कभी भी स्थायी नहीं हुई है, उन्हें फिर पराजित होना पड़ा है और देवताओं ने अपना पूर्व पद फिर से प्राप्त कर लिया ।

पराजय को विजय में परिणत करने का आधार इन कथानकों में ईश्वरीय विशिष्ट सहायता ही रही है । इसे हम सत्साहस के रूप में अवतरित हुआ देख सकते हैं । व्यक्ति के जीवन में जब देवत्व के पक्ष में समर्थन की अदम्य अभिलाषा जग पड़े और वह अवांछनीयताओं से लड़ पड़ने का आक्रोश बनकर सत्प्रवृत्तियों को मूर्त रूप देने में जुट पड़े तो समझना चाहिए कि यह मन:स्थिति प्रत्यक्ष ही ईश्वरीय अवतरण और देव वरदान है । यही बात किसी सत्समर्थन में उभरे हुए प्रचण्ड आन्दोलन के सम्बन्ध में कही जा सकती है । अपने-अपने समय की विकृतियों का निराकरण करने का नेतृत्व, श्रेय किन्हीं विशेष व्यक्तियों को ही मिलता है पर यथार्थता यह है कि लोकमानस में उठती हुई संतुलन की वृत्ति के रूप में अवतार सत्ता का दिव्य अवतरण होता है । उसमें नीति के प्रति आग्रह होता है । किस समय, कहाँ, किस प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न हुईं और उनका निवारण करने के लिए किस प्रकार की प्रतिक्रिया उभरी ? यही घटनाक्रम प्राय: नवीनता युक्त होता है । पिछले घटनाक्रम एक जैसे नहीं दुहराये जाते तो भी तथ्य एक ही रहता है । अधर्म का, अवांछनीयता का निराकरण और धर्म का, औचित्य का संस्थापन । रामायण काल और महाभारत काल की अनीति का स्वरूप और उनके निवारण का उपक्रम एक जैसा नहीं था । घटनाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार से घटीं तो भी तथ्य यथास्थान रहे । भगवान के अवतरण का स्वरूप सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप होता है । लोकमानस में अभीष्ट परिवर्तन के लिए भारी आवेश भरा होता है, उसी आधार का नेतृत्व प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति तथा घटनाक्रम दृश्यमान होते हैं । इन्हीं को अवतार की लीला कहा जा सकता है । श्रेय किन्हें मिला किन्हें नहीं इससे कुछ अन्तर नहीं आता है । लंका विजय का श्रेय राम, लक्ष्मण, अंगद, हनुमान या नल, नील में से किसको दिया जाय, इस पर विवाद करना व्यर्थ है । महाभारत की भूमिका में कृष्ण या अर्जुन में से किसे श्रेय मिले इस झंझट में पड़ने से कोई लाभ नहीं । नियति के उभार किसी को भी अपना वाहन बना सकते हैं । ईश्वर व्यक्ति नहीं शक्ति है वह दिव्य चेतना का उभार बनकर व्यष्टि अथवा समष्टि में अवतरित होता है । समय की विकृतियों का समाधान और सुकृतियों का अभिवर्द्धन करके संतुलन सही करना ही उसका लक्ष्य होता है । भगवान की अवतार लीलाएँ इसी प्रयोजन के लिए उभरती और लीला करती दिखाई पड़ती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवताओं के ईश्वर के शरीर में जाने का तात्पर्य है अन्तर्जगत की दिव्य चेतना को आवेशपूर्वक अपनाया जाना । पिचकारी का भीतरी भाग जितना बड़ा होता है उसमें जितनी पोल होती है उसी क्रम से उतनी ही मात्रा में खींचने की क्रिया आरम्भ होते ही पानी ऊपर खिंचता चला आता है । ईश्वर की शरण में जाने एवं उसका विशेष अनुग्रह पाने के लिए उसकी शरण में जाना आवश्यक माना गया है । शरण का तात्पर्य यह रोना गाना नहीं है, प्रचण्ड उत्कण्ठा उभारना है । जीव चेतना का आन्तरिक चुम्बकत्व ही सूक्ष्म जगत की सत्ताओं को अपने भीतर धारण करता है । पिचकारी दूध भी खींच सकती है और विष भी । आन्तरिक आकर्षण से आसुरी तत्व भी अपने भीतर भरते हैं और जब देवत्व की आवश्यकता होती है तो वह भी उसी प्रकार भीतर भरता आता है । ईश्वर साक्षी और दृष्टा है वह विश्व जीवन का क्रम भर चलाता है ।

सामयिक उथल-पुथल लोगों के वैयक्तिक अथवा सामूहिक हल-चलों के फलस्वरूप बनती-बिगड़ती रहती हैं । ऊपर के दबाव से ज्वार-भाटे उठते रहते हैं । समुद्र की मूलसत्ता शान्त है । परब्रह्म की स्थिति सामयिक भली-बुरी उथल-पुथल से ऊपर है । इसे तो लोकचेतना ही अपने प्रवाह को आगे-पीछे करके बिगाड़ती-सुधारती रहती है । भगवान का अवतार इस चेतनात्मक उभार को ही कह सकते हैं, जो व्यक्ति के भीतर, भक्तों के मन:क्षेत्र में व्यक्तिगत रूप से आदर्शवादी उत्कण्ठा के रूप में प्रकट होता है और वही समष्टि क्षेत्र में लोकचेतना के रूप में आँधी-तूफान की तरह उभरता है और क्रान्तिकारी परिवर्तन करके अपने लीलाकृत्य को पूर्ण कर देता है ।

आसुरी और दैवी शक्तियों के संघर्ष में हमें किसका पक्षधर बनना है इसका निर्णय स्वयं ही करना पड़ता है । अदूरदर्शिता तात्कालिक लाभ भर देखती है और असुरता के आवेश में फँसकर नरक को आमन्त्रित करती है और सर्वनाश के गर्त में फँसती है । विवेकशीलता उज्ज्वल भविष्य को देख सकती है और उस फसल को उगाने के लिए धैर्यबद्ध किसान की तरह कष्टसाध्य श्रम करने में उत्साह बनाये रहती है । फलस्वरूप स्वर्ग सामने आ खड़ा होता है और जीवात्मा को, महात्मा-देवात्मा एवं परमात्मा बनने का अवसर मिलता है । देवत्व और असुरत्व तो रस्साकसी में हर किसी के पक्षधर बन सकते हैं । अनवरत चल रहे देवासुर संग्राम के हम मूकदर्शक नहीं रह सकते । इच्छा या अनिच्छा से किसी का समर्थन सहकार तो करना ही होता है । फैसला गम्भीरता और सजगतापूर्वक किया जाय इसी में बुद्धिमानी है ।

असुरता के कुचक्र में फँस जाने पर यदि नारकीय पीड़ाएँ अधिक दु:ख दे रहीं हैं और स्थिति असह्य बन रही हो तो भलाई इसी में है कि ईश्वर की शरण में जायँ अर्थात् औचित्य को अपनाने के लिए जिस आदर्शवादी दुस्साहस की आवश्यकता पड़ती है उसे आवेशपूर्वक अपनाया जाय और चल रहे अवांछनीय ढर्रे को बदलकर विवेकसम्मत रीति-नीति अपनाने के लिए चिन्तन और कर्तव्य में काया-कल्प जैसा क्रान्तिकारी परिवर्तन किया जाय । यही है ईश्वर की तात्विक शरणागति । इस शरणागति नीति को अपनाने के बाद देवत्व निश्चित रूप से जीतता है और अपना खोया वर्चस्व पुन: प्राप्त करता है ।

देवासुर संग्राम के पुराण वर्णित कथाक्रम ऐतिहासिक हैं या नहीं, इसमें माथा-पच्ची करना व्यर्थ है । उनमें यह शाश्वत तथ्य सुनिश्चित रूप से भरा पड़ा है कि दैवी और आसुरी प्रकृति के आकर्षण प्राणी को खींचते हैं । इनमें से देवत्व का पक्षधर बनने और ईश्वर की शरण में जाना ही श्रेयस्कर है ।

अपने भाग्य का विधाता मनुष्य स्वयं

आत्मा और परमात्मा के बीच स्नेह सघनता का अनुग्रह, अनुकम्पा का एक ही आधार है कि उसकी नियम व्यवस्था में चला जाय । अनुशासन, अनुबंध का पालन किया जाय । इससे कम में बात नहीं बनती । व्यवहार में उद्दंडता उच्छृंखलता बरती जाय, मर्यादाओं का उल्लंघन और वर्जनाओं का व्यतिरेक किया जाता रहे और यह आशा की जाती रहे कि परमात्मा की कृपा, अनुकम्पा को किसी दूसरे पगडंडी-मार्ग से हथियाया जा सकता है, तो इस मान्यता को अनधिकार चेष्टा ही समझा जाना चाहिए । ऐसी चेष्टा जिसकी पूर्ति की आशा किसी को भी नहीं करनी चाहिए ।

इस सृष्टि में सर्वत्र व्यवस्था का अनुशासन है । ग्रह, नक्षत्रों से लेकर, प्राणि, पदार्थ, वनस्पति, ऋतु चक्र, जन्म-मरण जैसे उपक्रम अपने ढंग से चलते हैं, अपनी धुरी पर घूमते हैं । पराक्रमी, संयमी उपार्जन करते और आलसी, व्यसनी जो हस्तगत है उसे भी गँवाते चले जाते हैं । समुन्नत स्तर के महापुरुषों ने इसी आधार पर भौतिक अभ्युदय और आध्यात्मिक उत्कर्ष का लाभ कमाया है । जिनकी अवगति, दुर्गति हुई है उसका कारण भी यही रहा है कि वे अपनी जागरूकता, श्रमशीलता को सक्रिय रखने में उपेक्षा बरतते रहे । फलत: अवगति के गर्त में गिरे । ईश्वर किसी के साथ पक्षपात या विद्वेष नहीं बरतता । उसके लिए सभी आत्माएँ समान हैं, पुत्रवत् हैं । यदि प्यार है तो सभी से फिर द्वेष हो तो सभी से होना चाहिए । एक न्यायशील पिता जब अपने सभी बच्चों को समान स्नेह, सहयोग, प्रदान करता है तो भगवान जैसे परम न्यायकारी से यह कैसे बन पड़ेगा कि किसी को उन्नति के अवसर प्रदान करता जाय और दूसरे के लिए अवगति की परिस्थिति बनाकर रख दे ।

भगवान की चर्चा करने वाले अक्सर विधाता द्वारा लिखी गई कमरिखाओं की चर्चा करते हैं । ज्योतिषी इस संदर्भ में ग्रह नक्षत्रों का श्रेय या दोष बताते रहते हैं, पर यह दोनों ही प्रतिपादन तर्क और तथ्य की कसौटी पर खरे नहीं उतरते । ब्रह्मा को क्या पड़ी कि किसी का भाग्य खोटा लिखे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और किसी का खरा । यदि वह अपनी मनमर्जी से ऐसी सनक अपनाये । जिससे किसी को असाधारण लाभ मिलता रहे और किसी को बिना किसी दोष के कष्ट मिले, असफलता हाथ लगे और दु:खी होना पड़े । यदि ब्रह्माजी ऐसी बेतुकी खिलवाड़ करते हैं तो फिर मनुष्य का उन्नति, अवगति का श्रेय या दोष उन्हीं को दिया जाना चाहिए । इस अव्यवस्था का इल्जाम उन्हीं पर लगना चाहिए ।

ग्रह-नक्षत्रों के अनूकूल-प्रतिकूल होने की बात और भी बेतुकी है । पृथ्वी से लाखों-करोड़ों मील दूर रहने वाले निर्जीव ग्रह पिण्ड भला पृथ्वी के निवासी मनुष्यों को कहाँ-कहाँ ढूँढ़ते फिरेंगे । कैसे पता लगावेंगे कि कौन कब पैदा हुआ था । फिर किसी समय विशेष पर पैदा होना कोई ऐसा जुर्म नहीं है जिससे किसी को आजीवन दु:ख सहने पड़ें या कोई सदा मजा उड़ाता रहे । जब मनुष्य ने ग्रहों का कोई उपकार-अपकार नहीं किया तो फिर उन्हें ही क्या पड़ी जो किसी को गिराने, किसी को उठाने का कौतुक अकारण ही करते रहें । एक ही समय में हजारों व्यक्ति हर दिन पैदा होते हैं । पर उनमें से सभी एक जैसी स्थिति में नहीं रहते । कोई उन्नत, कोई माध्यम कोई गई-गुजरी स्थिति में रहते हैं । यदि ग्रह प्रभाव ही सब कुछ रहा होता तो एक समय में जन्मे सभी मनुष्यों की एक जैसी स्थिति में रहना चाहिए था । पर ऐसा होता कहाँ है ? सभी अपने-अपने ढंग से आगे बढ़ते या पीछे हटते हैं । यदि ग्रहों का ही अधिकार रहा होता तो वे विचारशील होने पर न्याय बरतते और यदि अविचारी, सनकी होते तो उन्हें ऐसा श्रेय नहीं मिलना चाहिए था कि उनका ग्रह गणित किया जाता, महत्व दिया जाता या पूजा-उपचार के झंझट में पड़ जाता । वस्तुत: ग्रह-नक्षत्र निर्जीव पिण्ड हैं वे अपनी-अपनी परिधि में गतिशील रहते हैं । अपने लिए निर्धारित क्रिया चक्र को पूरा करते हैं । उनका प्रभाव यदि हो सकता है तो समूची पृथ्वी या उसके किसी क्षेत्र विशेष पर एक जैसा पड़ना चाहिए । यह कैसे हो सकता है कि मनुष्यों में से विभिन्न समयों में जन्मे लोगों के वे पीछे लगे रहें और उपहार बाँटें या हैरान करें ?

जन्म-कुण्डलियों में कोई अशुभ संकेत बताये जाने पर अनेक अपने को भाग्यहीन समझते रहते और अपना मनोबल गिराते रहते हैं । मंगली बता दिये जाने पर कई लड़के या लड़कियाँ अपने को अभागा मान बैठते हैं और दाम्पत्य सुख न पा सकने की आशंका से खिन्न रहते हैं । यही बात मूल नक्षत्रों में जन्मे बालकों के सम्बन्ध में भी है । उन पर अभिभावकों की घृणा और अकृपा बरसती रहती है । यह ग्रह गोचर किसी को कदाचित् ही उत्साहवर्द्धक संकेत देते हों । हर किसी को किसी न किसी अनिष्ट की आशंका से चिन्तित करते रहते हैं । इससे ज्योतिषियों की बन आती है । वे ग्रह शान्ति के बहाने, भोले भावुकों को बुरी तरह ठगते रहते हैं ।

वस्तुत: मनुष्य का निजी प्रयत्न पुरुषार्थ ही उसके उत्थान, पतन का मूलभूत कारण है । जो समय और श्रम का मूल्य समझते हैं, कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहते हैं, अपनी सामर्थ्य को तोलते हुए कदम बढ़ाते हैं, व्यवहार में सज्जनता, मधुरता और सहयोग की भावना का समुचित समावेश किये रहते हैं उन्हें प्रगति के अनेकानेक अवसर निरन्तर मिलते रहते हैं । किन्तु जो अव्यवस्थित, अस्त-व्यस्त और उद्धत जीवन जीते हैं, वे हारते और गिरते जाते हैं ।

कभी-कभी इसके अपवाद भी देखे जाते हैं । कभी अंधे के हाथ बटेर लग जाती है तो कभी सुव्यवस्थित लोग भी मात खा जाते हैं । इसमें प्रधान कारण संयोग ही होता है । परिस्थितियों और क्रियाओं का तालमेल कुछ ऐसा बैठ जाता है जिसमें सहज स्वाभाविक प्रतिफल के स्थान पर उलटे परिणाम सामने आते हैं । अप्रत्याशित लाभ मिल गया तो उसे संयोग ही कहना चाहिए और यदि घाटा हुआ तो उसे अपने क्रिया-कलापों में कहीं भूल रहना अथवा परिस्थितियों का उलटा-सीधा मोड़ ले लेना भी कारण समझा जा सकता है । प्रकृति की प्रतिकूलता भी अकाल, बाढ़, सूखा, महामारी आदि के रूप में टूट सकती है । इस प्रकृति प्रतिकूलता के पीछे भी मनुष्यों द्वारा अपनाई गई दुष्प्रवृत्तियाँ ही प्रधान कारण हो सकती हैं ।

जिनका समाधान अपने कर्तृत्व के साथ नहीं जुड़ता उन यदा-कदा आ धमकने वाले अपवादों के सम्बन्ध में यह समझा जा सकता है कि यह अपने किसी पूर्व जन्मों के किये गये कृत्यों का परिणाम हो सकता है । आमतौर से दूध जिस दिन दुहा जाता है उसी दिन उसका उपयोग हो जाता है । पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बच जाने पर उसे जमा देते हैं । दूसरे दिन उसका नाम, रूप, स्वाद, गुण सभी बदल जाता है । पूर्व संचित कर्म इस जन्म में प्रारब्ध होकर प्रकट हो सकते हैं । वे अप्रत्याशित होते हैं और तात्कालिक क्रिया-कलाप के साथ उनकी संगति नहीं बैठती । ऐसी दशा में यह कहा जा सकता है कि किसी पूर्वकृत कर्म का उदय हुआ है । इसमें भी श्रेय या दोष अपना ही होता है, क्योंकि संचित कर्म भी तो अपने ही किये हुए थे ।

मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है । इस उक्ति में कुछ अपवादों को छोड़कर ९९ प्रतिशत सच्चाई है । यदि हम अपने आपको सुव्यवस्थित रखें और सही मार्ग अपनायें तो प्रगति का द्वार खुला ही मिलेगा । अपने भाग्य और भविष्य का निर्माण हम अपने वर्तमान का सदुपयोग करके स्वयं ही करते हैं ।

हीरा बनें या कोयला यह अपनी मर्जी की बात है

एक ही पदार्थ विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार का बन जाता है । मूलतत्व में विशेष अन्तर न होने पर भी परिस्थितियाँ ऐसा कुछ कर देती हैं जिससे उसके स्वरूप, गुण एवं मूल्य में जमीन-आसमान जितना अन्तर उत्पन्न हो जाय ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्बन को ही लें । वही अमुक तापमान पर हीरा बन जाता है और बहुमूल्य होता है । पर यदि वैसी परिस्थितियाँ न मिलें तो सामान्य स्तर में ही बना पड़ा रहने के कारण उसकी उपयोगिता जलाऊ कोयले के रूप में नगण्य ही रह जाती है । काजल भी उसी का एक रूप है । इसे थोड़ा अच्छी स्थिति में रहना पड़े तो हीरे जैसा उपयोग न सही, कोयले की अपेक्षा कहीं अधिक उपयोगी और मूल्यवान बन जाता है ।

हीरा कार्बन का सर्वोत्तम शुद्ध रूप है । ग्रेफाइट उसका निखरा रूप है फिर कोयला इसके बाद काजल कोयले भी कई तरह के होते हैं । लकड़ी के मुलायम कोयले जो चौका-चूल्हे की हलकी-फुलकी आवश्यकता पूरी करते हैं । पत्थर के कोयले जो कल-कारखाने और भट्टियों के काम आते हैं । हड्डी का कोयला जो गन्ने के रस का मैल साफ करने जैसे रासायनिक काम में आते हैं ।

ग्रेफाइट कार्बन का दूसरा स्फटिकीय स्वरूप है । यह नरम, हल्का, रबादार और चमकीला होता है । सीलोन, कनाडा, साइबेरिया आदि देशों में यह पाया जाता है । सीसे की पैन्सिलें बनाने, चिकनी मिट्टी की प्याली बनाने, मशीनों को चिकना करने में इसका प्रयोग किया जाता है । बिजली के कुछ उपकरणों में भी यह काम में आता है ।

कोयलों की चर्चा ऊपर की जा चुकी है । काजल उन पदार्थों को जलाने से बनता है जिनमें कार्बन की अधिकता होती है । तारपीन का तेल, पिच, पैट्रोलियम, कपूर तेल, कोयला आदि जलाने से काजल बनता है और उसका उपयोग काले रंग के रूप में विविध संमिश्रणों के साथ किया जाता है ।

सभी मनुष्य यों एक ही स्तर के हैं । उनकी शरीर संरचना एक ही प्रकार की है । चमड़ी के रंग एवं आकृति में जलवायु के भेद से अन्तर पड़ता है पर प्रकृति का निर्धारण एक ही स्तर का हुआ है । इतने पर भी उनके गुण, कर्म स्वभाव में जमीन आसमान जितना अन्तर पाया जाता है । कोई कीट-पतंगों जैसा तुच्छ और पशुओं जैसा पिछड़ा जीवन जीते हैं और कितनों की गरिमा इतनी बढ़ी-चढ़ी होती है कि अपने प्रभाव से वातावरण में भारी हेर-फेर परिवर्तन कर सकें । सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों में अपने ही समान स्थिति में घसीट ले जाने की क्षमता कितनों में ही होती है, वे स्वयं ही नहीं गिरते उठते वरन् अपने साथियों को भी अपनी ही तरह गिराते, उठाते हैं ।

मनुष्य-मनुष्य के बीच पाया जाने वाला यह अन्तर न तो अकस्मात होता है, न जन्मजात ही है और न उसमें भाग्य, भगवान का कोई हस्तक्षेप है । परिस्थितियाँ मनुष्य को बनाती बिगाड़ती हैं, गिराती, उठाती हैं । उन परिस्थितियों का सृजन हर व्यक्ति अपनी उत्कंठा, आकांक्षा और रीति-नीति के आधार पर कर सकता है, करता है ।

हम चाहें तो यथास्थिति स्वीकार करके कार्बन के उपेक्षणीय स्तर पर पड़े रहें । कोयला बनकर जलते रहें अथवा काजल की तरह अपनी कालिमा से दूसरों को भी काला बनायें । प्रगतिशील मनुष्य ग्रेफाइट की तरह अपने कर्म कौशल का परिचय देते हैं और उन्नति की उपलब्धियों से स्वयं लाभान्वित होते हैं दूसरों के काम आते हैं । सबसे श्रेष्ठ वे हैं जिन्होंने ऊँचा तापमान स्वीकार किया, तप साधना से अपने को हीरे की तरह बहुमूल्य बनाया और जहाँ रहे वहाँ का यश-गौरव बढ़ाया । अपनी पसंदगी की ऐसी ही कोई स्थिति लोग जान-अनजान में स्वयं ही चुनते हैं । तदनुरूप वैसे ही उठते गिरते हैं ।

हम अपना भविष्य और चरित्र स्वयं बनाते हैं

मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है । निज का उत्थान-पतन उसके वश की बात है । यह तथ्य जितना सच है उतना ही यह भी सही है कि वातावरण का प्रभाव अपने ऊपर भी पड़ता है और अपने व्यक्तित्व से परिवार एवं समाज का वातावरण भी प्रभावित होता है । बुरे वातावरण में रहकर कदाचित् ही कोई अपनी विशिष्टता बना सका हो । साथ ही यह भी सच है कि वातावरण का प्रभाव भी पड़े बिना नहीं रहता ।

अधिक लोगों के, समर्थ लोगों के क्रियाकलाप ही वातावरण बनाते हैं । बहुसंख्यक होने पर और एक प्रकार की गतिविधियाँ अपना लेने पर दुर्बल स्थिति के लोग भी अपना एक विशेष प्रकार का माहौल बना लेते हैं । व्यसनी, अनाचारियों का समुदाय भी ऐसा प्रभाव उत्पन्न करता है जिससे सामान्य स्तर के लोग प्रभावित होने लगें । इसलिए अच्छे वातावरण में रहना और बुरे वातावरण से बचना भी उसी प्रकार आवश्यक है जैसे स्वच्छ हवा में रहने और दुर्गन्ध से बचने का प्रयत्न किया जाता है । वह कहानी प्रसिद्ध है जिसमें एक ही घोंसले से पकड़े गये दो तोते के बच्चे दो भिन्न प्रकार के व्यवसायियों ने पाले । वहाँ की स्थिति के अनुसार ही वे बोलना सीख गये । संत के यहाँ पाला तोता "सीताराम-राधेश्याम" कहता था और चोर के यहाँ पला "लूटो-खसोटो, मारो-काटो" की रट लगाता था, क्योंकि उन्हें यही दिनभर सुनने को मिलता था । मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही बात है वह जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसी परिस्थितियों में रहता है, जो कुछ समीपवर्ती लोगों को करते देखता है, उसी के अनुसार अपना स्वभाव भी ढाल लेता है । वह बन्दर की तरह अनुकरणप्रिय जो है ।

ऐसा भी देखा गया है कि मनस्वी लोग अपनी आदर्शवादिता पर सुदृढ़ रहकर अनेक का ध्यान अपनी ओर खींचते हैं । कितनों को ही अनुकरण की प्रेरणा देते हैं । अपने औचित्य के कारण उस मार्ग पर चलने के लिए अनेक को आकर्षित करते हैं । आवश्यक नहीं कि वह मार्ग सरल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

या परम्परागत ही हो, नवीन विचार भी अपने औचित्य के कारण प्रतिभाशाली लोगों द्वारा अपनाये जाने पर एक मार्ग बन जाते हैं । सर्वसाधारण को तो परम्पराएँ ही सब कुछ प्रतीत होती हैं । पर विचारवान लोग औचित्य को देखते-परखते हैं उसे ही चुनते-अपनाते हैं । काँच के मोती गरीब लोग भी खरीदते और पहनते हैं, पर असली बहुमूल्य मोतियों का कोई पारखी खरीददार न हो, ऐसी बात भी नहीं । बुद्ध और गाँधी का मार्ग सर्वथा नया था, पर उनके प्रामाणिक और औचित्य भरे प्रतिपादन का परिणाम था कि असंख्यों व्यक्ति उनके अनुयायी बने और एक नवीन वातावरण बना देने में सफल हुए, पर ऐसा होता तभी है जब प्रतिभावान अग्रगामी बनकर किसी उपयुक्त मार्ग को अपनायें और अपनी बात को तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण समेत समझाएँ, स्वयं उस मार्ग पर सुदृढ़ रहकर अन्यान्यों में मनोबल उत्पन्न करें ।

यह सही है कि मनुष्य बुद्धिमान प्राणी है । उसके पास समझने सोचने की शक्ति है । दैनिक व्यवसाय इसी आधार पर चलता है । इतने पर भी वह परोक्ष रूप में प्रथा परम्पराओं के अनुरूप अपने को भी उसी ढर्रे पर चलाता है । जिस पर समीपवर्ती लोग चलते हैं । उसी को वातावरण कहते हैं । यह बुरा भी होता है और भला भी । जिस भी प्रवाह में बहने लगा जाय अपना व्यक्तित्व या स्तर भी प्रायः उसी ढाँचे में ढल जाता है । वातावरण बनाने वाले तो कोई बिरले ही होते हैं । अधिकांश ऐसे पाये जाते हैं जो प्रवाह में बहते हैं और जो कुछ हो रहा है उसी का अनुगमन करने लगते हैं । परिणिति तो क्रिया के अनुरूप ही होती है । मूढ़ मान्यताओं और अवांछनीयताओं के प्रवाह में बहकर मनुष्य ऐसी स्थिति में जा पहुँचता है जिसमें व्यस्त होने का उसका अपना कोई पूर्व निश्चय नहीं था । इसलिए जहाँ तक अपने भविष्य निर्माण का सम्बन्ध है वहाँ अपने पुरुषार्थ और दिशा निर्धारण का महत्व है वहाँ यह भी कम प्रभावशाली तथ्य नहीं कि किस समुदाय के साथ चल पड़ने का अवसर मिला ? किन लोगों की गतिविधियाँ उसे किस सीमा तक प्रभावित करती रहीं ?

अपना समाज ऐसे लोगों से भरा है जिसमें भले लोगों की तरह बुरे भी भरे पड़े हैं । जहाँ आदर्शवादिता और सेवा भावना के अनेक उदाहरण देखे जाते हैं । वहाँ दुर्व्यसनी, अपराधी और अनगढ़ स्तर के लोगों की भी कमी नहीं । दो प्रवृत्तियाँ आस-पास भी रहती हैं और घुली-मिली भी । इसलिए वातावरण के बीच भी यह पाया जाता है कि दूरदर्शी विवेकवान अपनी रुचि के अनुरूप चयन कर लेते हैं । जिनका मनोबल या स्वतन्त्र चिन्तन काम नहीं करता वे ही हवा के झोंके के साथ उड़ने वाले तिनके, पत्ते का उदाहरण बनते हैं । सामान्यजनों को वातावरण ही घसीटे-घसीटे फिरता और उस प्रभाव से प्रभावित होकर वे अनिश्चित भवतव्यता के चंगुल में फँसते हैं । इसलिए वातावरण की प्रबलता को स्वीकार करते हुए भी यह मानना पड़ता है कि मानवी विवेक और मनोबल सर्वोपरि है । वह वातावरण के प्रभाव को ग्रहण तो करता ही है पर यह भी संभव है कि वह उसे अस्वीकार कर दे और जो उचित है उसे करे । यह स्वतन्त्र चिन्तन ही वस्तुतः भाग्य का निर्माता है अन्यथा जिस नियति को सामान्यजनों द्वारा अपनाया जाता है वही अपने गले भी बँधती है ।

आमतौर से लोग परम्परागत प्रवाह में ही बहते हैं और उसी परिणाम को भुगतते हैं जो उन सबके द्वारा भुगता जाता है । चिरपुरातन काल से सामयिक परिस्थितियों के अनुसार भारी हेर-फेर प्रचलनों में होते रहे हैं । उनके ध्वंसावशेष अभी भी विद्यमान हैं । यद्यपि वे खण्डहर हो जाने के कारण उपयोगी नहीं रहे । व्यर्थ ही जमीन घेरे पड़े हैं । उनको देखने और नमन करने तो जाया जा सकता है पर उनमें रहा नहीं जा सकता । रहने के लिए ऐसा स्थान, मकान चाहिए जो आज की परिस्थितियों के अनुकूल ही अपने काम करने के स्थान से निकट पड़ता हो ।

प्रथा-परम्पराओं में से अधिकांश ऐसी हैं जो आज की स्थिति के अनुरूप नहीं रहीं । भले ही वे किसी जमाने में अपने समय के अनुरूप भूमिका निभाती रही हों । समय गतिशील है वह आगे बढ़ता है, पीछे नहीं लौटता । चरण सदा आगे बढ़ते हैं यदि कोई पीछे की तरफ उलटी गति से चलना आरम्भ करे तो विचित्र लगेगा । धीमे चलेगा । काँटे चुभने जैसे संकट में भी फँसेगा । फिर वापस लौटने में हाथ भी क्या लगेगा ? उसमें समय की बर्बादी ही पल्ले पड़ेगी । आदिमकाल से लोग जिस रहन-सहन को अपनाने के लिए विवश थे वह उस समय की सही सूझबूझ हो सकती है पर अब न हम गुफाओं में घर बनाकर रह सकते हैं और न पत्ते लपेटकर ऋतु प्रभाव से बच सकते हैं । निर्वाह के लिए चिर पूर्वज जिन साधनों पर निर्भर थे उन्हें अब इस प्रगतिशीलता के समय में कोई भी अपनाने के लिए तैयार न होगा । फिर भी हम पुरातन की दुहाई देते हैं और उन्हीं प्रचलनों की सराहना करते हैं जो कभी परिस्थितिवश अपनाये जाते रहे हैं ।

जिस प्रकार जराजीर्ण मनुष्य की आँखों में मोतियाबिन्द का परदा चढ़ जाता है और धुँधला दिखाई पड़ने लगता है उसी प्रकार पुरातन काल के प्रचलन की स्थिति में अन्धपरम्परा या मूढ़ विश्वास भी बन सकते हैं । अस्तु, पुरातन प्रचलनों को अपनाने का आग्रह करके हम अन्धविश्वासी या दुराग्रही कहलाने का जोखिम सहन नहीं कर सकते साथ ही यह भी तथ्य है कि आज जो कुछ हो रहा है जो बहुमत द्वारा अपनाया जा रहा है उसे भी यथावत् स्वीकार नहीं किया जा सकता । नशेबाजी जैसे कुप्रचलनों की इन दिनों भी कमी नहीं । दूसरों की देखा-देखी उन व्यसनों को अपना लिया जाय तो इससे हित साधन न होगा । अपने भाग्य के निर्माता आप बनने के लिए हमें न प्रचलनों पर निर्भर रहना चाहिए और न हवा के झोंकों के साथ उड़ना चाहिए । अपना रास्ता आप ही चुनना चाहिए । चुनाव इसलिए करना पड़ता है कि एक ही जंकशन से अनेक दिशाओं में गाड़ियाँ जाती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्टेशन पर उनकी पटरियाँ पास-पास ही होती हैं पर कुछ ही आगे अनेक मोड़ होते हैं । जिन पर तनिक-सा हटते ही दिशा बदल जाती है और रेलगाड़ियों के गन्तव्य में सैकड़ों मील का अन्तर पड़ जाता है यदि पास-पास स्टेशन पर खड़ी गाड़ियों में से बिना अपने अभीष्ट का चुनाव किये किसी भी डिब्बे में जा बैठे तो फिर कहीं भी पहुँचा जा सकता है । भाग्य निर्माण के लिए अपने चिन्तन और चरित्र का स्तर ऊँचा उठाना पड़ेगा । उन लोगों से बचना पड़ेगा जो कुमार्ग अपना चुके हैं और किसी गर्त में गिरने जा रहे हैं । उचित और अनुचित, भले और बुरे में जो अपने को अभीष्ट हो पहचानना और अपनाना होगा । 'मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है' इस कथन का अभिप्राय यह भी है कि अच्छे की तरह बुरा भविष्य भी बनाया जा सकता है । इसके लिए इच्छा या कल्पना मात्र ही पर्याप्त नहीं । मार्ग निर्धारण करने से लेकर कर्म का निर्धारण और उसमें जुट जाने का साहस भी स्वयं ही करना होगा । जो इतना कर गुजरते हैं उनके लिए यह तथ्य मूर्तिमान होकर प्रकट होता है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है ।

संसार में ऐसे अनेकानेक उदाहरण मौजूद हैं जिनमें कितने ही लोग ऊँचे उठे आगे बढ़े और महामानव स्तर तक जा पहुँचे हैं । इसके विपरीत ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं कि साधन और सुविधा होते हुए भी उनका सदुपयोग न कर सके, कुमार्ग पर चले । बुरे लोगों के साथ रहे । बुरे वातावरण में फँसे और ऐसी परिस्थितियों में फँसे जिनमें अन्त खेदजनक एवं निन्दा-तिरस्कार भरा ही होता है । दोनों में से किसका चयन किया जाय यह अपनी विवेक-बुद्धि के ऊपर अवलम्बित है ।

परमेश्वर की इस सृष्टि में हर प्रकार के अवसर मौजूद हैं यहाँ पैरों में चुभने वाले काँटे भी बहुत हैं और सुगन्ध-सुषमा से भरेपूरे फूलों की भी कमी नहीं । हम किसके निकट पहुँचते हैं । यह निर्धारण करने का संकल्प प्रयास और अधिकार पूरी तरह अपने हाथ है । माना कि बुराइयाँ बहुत हैं, बुरे लोगों का भी बाहुल्य है पर उनमें से इतनी शक्ति किसी में भी नहीं कि जो इच्छा के विपरीत किसी को अपनी ओर खींच सके और बलात् बाधित या विवश कर सके । किसी के आमन्त्रण को स्वीकार करना न करना अपने मन की बात है । परिस्थितियाँ लदती किसी के ऊपर भी नहीं उन्हें बुलाने और स्वीकार करने में अपनी ही प्रत्यक्ष या परोक्ष सहमति होती है । जिस दिशा में कदम उठते हैं । उस गन्तव्य तक देर सबेर में पहुँचा ही जाया जाता है । जिसको अस्वीकृत कर दिया जाता है वह खींचतान भले ही करता रहे पर यह संभव नहीं कि साहसपूर्वक विरोध करने वाले को कोई दबा या झुका सके ।

कई व्यक्ति इस तलाश में रहते हैं कि कोई दूसरा कंधे पर बिठाकर इच्छित स्थान तक पहुँचाये, यह कठिन है । नदी पार करने में नाव का सहारा सहायक होता है पर साथ ही यह भी ठीक है कि घर से चलकर नाव तक पहुँचने का परिश्रम स्वयं ही करना पड़ता है । समय पड़ने पर छोटे बच्चों या अपंगों को कंधे पर बिठाया, पीठ पर लादा भी जाता है पर यह सुविधा कुछ ही देर तक पायी जा सकती है । ऐसा नहीं हो सकता कि जिन्दगी पूरी तरह दूसरों के सहारे ही कट जाय । सहायकों की सराहना की जा सकती है पर यह नहीं हो सकता कि पूरी तरह उन्हीं की कृपा पर निर्भर रहा जा सके । कोई भोजन भरी थाली परोस दे तो भी ग्रास को तोड़ने, चबाने का काम स्वयं ही करना पड़ेगा । पचावेगा उसे अपना पेट ही । दूसरों के खाये पचाये भोजन से अपनी आवश्यकता पूरी नहीं की जा सकती । मनुष्य जिस दिशा में, जिस मार्ग पर आगे बढ़ता है उस पर आगे चलने वाले और पीछे आने वाले पथिक साथी-सहयोगी बनते रहते हैं । यह सुविधा हर प्रयत्नशील को मिलती रहती है पर चयन और आरम्भ अपने को ही करना पड़ता है । आत्म-विश्वास और आत्मावलम्बन के लिए तत्पर हो जाने के उपरान्त यह आशा की जा सकती कि उस मार्ग पर चलने वालों का परामर्श, साथ-सहयोग समयानुसार मिलता रहेगा । चोर उचक्कों के गिरोह इसी आधार पर बनते हैं और सन्तों की मंडलियाँ भी इसी सिद्धान्त के अनुरूप गठित होती हैं । यह कथन आंशिक ही सही कि वातावरण हमें अपनी ओर खींचता है । यह कथन दुर्बल मनःस्थिति वालों पर ही लागू होता है । अधिक सही यह है कि हम अपने संकल्प एवं व्यक्तित्व को एक शक्तिशाली चुम्बक की तरह प्रयुक्त करते हैं । अपने स्तर के लोगों को प्रत्यक्ष या परोक्ष आमंत्रण द्वारा अपने निकट खींच बुलाते हैं । भले और बुरे सर्वत्र मौजूद हैं । उनमें से किन्हें चुनें, किनके साथ घनिष्टता बनायें यह पूरी तरह अपनी मर्जी पर अवलम्बित है । जड़ पदार्थों को बटोरकर ले जाया जा सकता है । जानवरों को भी लाठी से हाँककर ले जाया जा सकता है पर मनुष्य के लिए यह संभव नहीं कि उसे कोई दूसरा उठा या गिरा सके । इसमें व्यक्ति का निजी रुझान, अभिमत एवं सहयोग का सम्मिलित होना आवश्यक है । सशक्त रावण को मारीचि, कालनेमि, खरदूषण जैसे अपने स्तर के सहयोगी भी मिल गये थे । पर वह अपने सगे भाई विभीषण को अपने क्रिया-कलाप में सहयोगी बनाना तो दूर समर्थन तक प्राप्त न कर सका । हम जैसे कुछ स्वयं होते हैं वैसे ही साधन उपलब्ध होने लगते हैं । समर्थन एवं परामर्श मिलने लगते हैं । इसलिए किसी को भी यह नहीं सोचना चाहिए कि हमारी प्रगति या अवगति के लिए दूसरे उत्तरदायी हैं । किसी को भी यह नहीं कहना चाहिए कि हमें परिस्थितियों से, व्यक्तियों से विवश होकर यह करना पड़ा । वातावरण का प्रभाव अवश्य पड़ता है पर वह इतना प्रबल नहीं कि साहसी को बाधित कर सके । आदर्शों को तोड़ने-मोड़ने में समर्थ हो सके । अन्ततः यह निष्कर्ष अपनी यथार्थता सिद्ध करता है कि मनुष्य अपने भाग्य और भविष्य का निर्माता स्वयं है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऊँचा उठने की आकांक्षा और उसकी पूर्ति

ऊँचा उठना, आगे बढ़ना जीव का स्वभाव है । उसका प्रगतिक्रम इसी आधार पर चला है । पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचाने में यही प्रवृत्ति प्रेरणा बनकर काम करती और क्रमशः आगे-आगे धकेलती है । एककोशीय जीवाणु से लेकर विशालकाय और बुद्धिमान प्राणियों तक की प्रगति यात्रा में जहाँ प्रकृति-प्रक्रिया सहायक रही है वहाँ चेतना के साथ जुड़ी हुई अग्रगामी प्रवृत्ति का योगदान भी कम नहीं रहा है ।

अग्रगमन की यह मूल प्रवृत्ति न तो त्याज्य है और न हेय । गड़बड़ी तब पड़ती है, जब उस असन्तोष को पूरा करने के मार्ग और प्रकार के चुनाव में भूल होती है । भटका हुआ पथिक सारे दिन चलते रहने पर भी थकान के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं करता, कई बार तो वह इस दिग्भ्रान्ति के कारण आगे बढ़ने की अपेक्षा और पीछे चला जाता है । भूल-भुलैयों में उलझा हुआ मनुष्य अपने परिश्रम को सार्थक कहाँ कर पाता है और जहाँ पहुँचना था, उधर प्रगति कहाँ हो पाती है ?

महत्त्वपूर्ण प्रश्न उस चुनाव का है जिसके आधार पर आगे बढ़ने और ऊँचे उठने में से एक को प्रधान और दूसरे को गौण मानकर चलना होता है । आमतौर से मानवी चेतना का व्यवहार भौतिक पदार्थों से पड़ता है । इन्द्रियाँ उन्हीं में उलझी रहती हैं और शरीर को पदार्थों के उपभोग और व्यक्तियों के सहयोग से ही अपनी गाड़ी आगे चलानी पड़ती है । अस्तु, उसका अपना आपा इसी बहिरङ्ग में रङ्ग और खप जाता है । वह अपने आप को भी पदार्थ मानने लगता है और सोचता है कि असन्तोष की तृप्ति के लिए भौतिक साधन-सामग्री को अधिक मात्रा में जुटाने की आवश्यकता है । यहाँ मात्रा के साथ-साथ स्तर बढ़ाने की भी आवश्यकता अनुभव होती है । कारण कि उससे दूसरों की तुलना में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का अवसर मिलता है । दूसरे लोग सस्ता कपड़ा पहनते हैं उनकी तुलना में यदि अपनी स्थिति महँगे वस्त्र पहनने की है तो उसका प्रदर्शन करने से मन को बड़प्पन का आभास होगा, फलतः अग्रगमन की अनुभूति से उतनी तृप्ति मिलेगी । अमीरी के प्रदर्शन इसीलिए होते हैं । ठाट-बाट इसीलिए रोपे जाते हैं । सस्ते में गुजर हो सकना सम्भव और सरल है, पर लोग उपयोगिता की दृष्टि से नहीं अहंता की पूर्ति के लिए महँगे सरंजाम इकट्ठे करते हैं । उनकी मात्रा का अधिक होना, अधिक धनी होने का चिह्न है । इस मान्यता के कारण अमीरी का प्रदर्शन करने के लिए अनेक तरह की पोशाकें रखी और बदली जाती हैं । आभूषण, शृंगार, साधन आदि की साज-सज्जा में उपयोगिता का नहीं अहंता के परिपोषण का ही भाव रहता है ।

विलासी, अपव्यय का अर्थशास्त्र की दृष्टि से कोई समर्थन नहीं हो सकता । स्पष्ट है कि शृंगार-सज्जा एवं ठाट-बाट रोपने में जो धन खर्च होता है उससे स्वास्थ्य को कदाचित् ही कोई लाभ पहुँचता हो । फिर भी लोग उस पर अनाप-शनाप खर्च करते रहते हैं । विवेक सहज ही यह निर्णय देगा कि इस अपव्यय को रोककर उस धन का ऐसा सदुपयोग हो सकता है जिससे अपनी, अपने सम्बन्धित व्यक्तियों की वे आवश्यकता पूरी की जा सकती हैं, जो व्यक्तित्वों की सर्वतोमुखी प्रगति के लिए आवश्यक हैं । किन्तु आमतौर से विवेक दबा रहता है और अहंता के उभार खर्चीले ठाट-बाट इकट्ठे करने की प्रेरणा देते रहते हैं । संग्रह की वृत्ति के मूल में भी यही कारण काम करता है । आवश्यकता पड़ने पर संग्रह से सहज ही सुविधाएँ पाई जा सकती हैं, यह पक्ष संग्रह का समर्थन करता है, पर उससे प्रेरित होकर नहीं, अमीरी इसलिए बढ़ाई जाती है कि दूसरों की तुलना में अपनी अधिक सफलता का प्रदर्शन करके, साथियों पर छाप डालने और अपनी अहंता को सन्तोष देने का अवसर मिले ।

मनुष्य अपने को शरीर भाव में अत्यधिक गहराई से ओत-प्रोत कर लेता है, इसलिए उसके अग्रगमन की दिशा भी पदार्थों के संग्रह एवं उपभोग को बढ़ाती जाती है । वासना और तृष्णा के रूप में ही यह आकांक्षा उभरी रहती है । उसी के लिए सिर तोड़ परिश्रम किया जाता है । स्थिति के अनुरूप सफलता भी मिलती है, पर कठिनाई एक ही है कि उससे तृप्ति नहीं मिलती । आग पर ईंधन पड़ते जाने से लपटें और भी अधिक तीव्र होती हैं, इसी प्रकार गरीबी से अमीरी की ओर बढ़ते चलने पर भी राहत नहीं मिलती । अतृप्ति और बेचैनी का समाधान होना तो दूर और उल्टे सफलताओं के साथ-साथ अतृप्ति का दौर बढ़ता चला जाता है । गरीबों से अधिक असन्तुष्ट अमीर पाये जाते हैं ।

उपयोगिता का जहाँ तक सम्बन्ध है वहाँ हर व्यक्ति के उपयोग की एक सीमा है । अन्न, वस्त्र आदि दैनिक उपयोग की एक छोटी-सी सीमा है, उससे अधिक मात्रा का प्रयोग भी नहीं हो सकता । संग्रह पड़ा रहता है और बढ़ता रहता है । उसे देखकर अपनी सफलता पर गर्व तो किया जा सकता है, पर उपभोग नहीं हो सकता । उसे उत्तराधिकारी मुफ्त की लूट की तरह प्राप्त करते हैं । स्पष्ट है कि जिसे कठोर परिश्रमपूर्वक कमाया नहीं गया है उसके उपभोग का सही तरीका भी विदित नहीं होता । हराम की कमाई दुर्व्यसनों में ही नष्ट होती देखी गई है । यही कारण है कि अमीरों की सन्तानें आमतौर से अपव्ययी होती हैं और उत्तराधिकार में मिले प्रचुर धन को अपव्यय में नष्ट करने के साथ-साथ अपने व्यक्तित्व को भी नष्ट करती पाई जाती हैं ।

जब तक नैतिक मर्यादाओं में भौतिक बड़प्पन बना रहता है तब तक उसे स्वार्थ-परता तो कहा जा सकता है, पर उससे कोई बड़ा विग्रह उत्पन्न नहीं होता । व्यक्ति स्वयं कमाता, खाता और इतराता, इठलाता रहता है । किन्तु जब यह ललक आतुरता बन जाती है और सामाजिक मर्यादाओं को चुनौती देने लगती है तब यह अपराधों का रूप धारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करती है । लोभ के लिए छल से लेकर हत्या तक के कुकर्म किये जाने लगते हैं । इन्द्रिय भोग के लिए नैतिक और सामाजिक मर्यादाओं को उठाकर ताक पर रख दिया जाता है तथा अहंता प्रदर्शन के लिए उद्दण्डता, उत्पीड़न अनेक आततायी कृत्य किये जाने लगते हैं । नर-पशु से भी नीचे उतरकर नर-पिशाच के रूप में मनुष्य को अनर्थरत होते ऐसी ही स्थिति में देखा जाता है ।

यह भी उन्नति का क्रम है, पर दिशा उसकी पतनोन्मुख है । इसकी प्रतिक्रिया आत्म-प्रताड़ना से लेकर सामाजिक दण्ड भुगतने और सम्पर्क क्षेत्र में अविश्वस्त, घृणित समझे जाने के रूप में सामने आती है । ऐसी उन्नति को अवनति या पतन कह सकते हैं । गिरने की भी एक दिशा है । चला तो उस पर भी जा सकता है, पर उससे वह लाभ नहीं मिल सकता जिसे प्राप्त करने के लिए अन्त:करण में अग्रगामी और गौरवशाली बनने की ललक उठती है । यदि सीमा में रहकर भी भौतिक उन्नति करते रहा जाय तो उससे मात्र शरीर सुख मिल सकता है । मन की, अहंता की आंशिक पूर्ति हो सकती है अथवा सम्पर्क क्षेत्र के लोगों को मुफ्त की सम्पत्ति मिलने का लाभ मिल सकता है । जहाँ तक जीवात्मा की मूलसत्ता को परिष्कृत बनने का प्रश्न है वहाँ तक उस सारे प्रयास से कोई परिणाम नहीं निकलता । सुरदुर्लभ कहा जाने वाला मनुष्य जीवन व्यर्थ की विडम्बनाओं में भटकते हुए ऐसे ही नष्ट हो जाता है । क्या खोया ? क्या पाया का हिसाब लगाने पर जीवन के अन्तकाल में यही पश्चाताप रहता है कि जीवन-लक्ष्य की पूर्ति का स्वर्णिम अवसर ऐसे ही हाथ से निकल गया ।

फिर जीवात्मा की वह मूल-भूत प्रवृत्ति किस प्रकार चरितार्थ एवं सार्थक हो जिसे पूरा करने के लिए अन्त:क्षेत्र में अनवरत रूप से उत्कण्ठा उठती रहती है । इसका उत्तर प्राप्त करने से पूर्व अपनी स्थिति पर विचार करना होगा और 'स्व' को शरीर नहीं आत्मा के रूप में देखना होगा । शरीर सुख से आत्मिक आनन्द को भिन्न माना जा सके तो वह दिशा मिलेगी जिस पर चलते हुए आत्मोत्कर्ष का प्रकाश मिलता है । शरीर उपकरण एवं वाहन है । उसकी सुरक्षा और समर्थता के लिए जितने साधनों की आवश्यकता है उतने जुटाने में भौतिक उपार्जन को सीमाबद्ध किया जाय और बची हुई क्षमता का उपयोग अन्तरात्मा का स्तर ऊँचा उठाने में किया जाय तो बात बने । जीवन नीति में इस प्रकार सुधार परिवर्तन करने से दृष्टिकोण परिष्कृत होता है और उस आधार पर वह सूझ-बूझ विकसित होती है जो आत्मिक प्रगति के लिए आवश्यक है । उस स्थिति में अमीरी नहीं महानता जीवन लक्ष्य बन जाती है और उसी के लिए किये गये प्रयासों की सार्थकता प्रतीत होती है ।

'आगे बढ़ना' भौतिक प्रगति के अर्थ में समझा जा सकता है और ऊँचा उठना आत्मिक उन्नति के अर्थ में प्रयुक्त होना चाहिए । शरीर को वस्तुएँ चाहिए । अनुकूल व्यक्तियों का सम्पर्क तथा सुविधाजनक परिस्थितियाँ चाहिए । यह सब सुयोग मिलते रहना और उनका स्थिर बने रहना सम्भव नहीं । संसार चक्र अपने ढंग से चलता है । उसमें इस बात का कोई निश्चय नहीं कि व्यक्ति की मन:स्थिति के अनुकूल ही परिस्थितियाँ बनी रहेंगी । प्रतिकूलताओं और सफलताओं के अवसर भी प्राय: उतने ही बने रहते हैं जितने अनुकूलताओं और सफलताओं के । ऐसी दशा में प्रसन्नता एवं तुष्टि भौतिक सम्पन्नता को आधार मानकर चलने पर न तो सम्भव हो सकती है और न स्थिर रह सकती है । फिर एक कठिनाई यह भी है कि जितने सुख-साधन मिलते हैं, वे क्रमश: अपर्याप्त लगने लगते हैं और अधिक मात्रा तथा अधिक ऊँचे स्तर की ललक उठने लगती है और असन्तोष घटने की अपेक्षा उलटा बढ़ता ही चला जाता है । उपलब्धियाँ एवं सफलताएँ कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न हों तो भी तृष्णा की तुलना में कम ही रहेंगी और व्यक्ति सदा अपने को अभावग्रस्त ही अनुभव करता रहेगा ।

शरीर को सुविधा, मन को अहंता चाहिए । इनका उचित रीति से परिपोषण आत्मिक उत्कृष्टताओं के लिए प्रयत्नशील रहने पर भी सम्भव हो सकता है । महामानव न तो भूखे-नंगे रहे हैं और न उन्हें श्रेय, सम्मान की कमी रही है । लोलुप और मोहग्रस्त व्यक्ति जितना श्रेय, संतोष उपलब्ध कर पाते हैं उसकी तुलना में आत्मिक प्रगति की दिशा में बढ़ने वाले व्यक्ति घाटे में नहीं, लाभ में ही रहते हैं ।

आत्मा चेतन है, उसकी प्रगति सम्वेदनाओं, सद्भावनाओं एवं शुभेच्छाओं के रूप में ही सम्भव हो सकती है । आत्मिक सम्पदा है, इसी को प्राप्त करके व्यक्ति की मूलसत्ता परिष्कृत और सन्तुष्ट होती है । गुण, कर्म, स्वभाव में श्रेष्ठता के सतोगुणी तत्व जितने बढ़ते जाते हैं उसी अनुपात से आत्मिक प्रगति का मूल्यांकन किया जा सकता है ।

धन उपार्जन, इन्द्रिय उपभोग एवं अहंता प्रदर्शन में जितनी शक्ति लगाई जाती है, इससे आधी भी यदि अपने चिन्तन और क्रिया-कलाप में समाये हुए कुसंस्कारों के उन्मूलन तथा सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्द्धन में लगाई जाय तो वह आत्म-निर्माण का प्रयास तथा व्यक्तित्व में काया-कल्प प्रस्तुत कर सकने वाली चमत्कारी सिद्ध हो सकती है । आत्मिक विभूतियों को बढ़ाने के लिए ऐसे कर्म करने पड़ते हैं जिन्हें परमार्थ एवं जन-कल्याण के नाम से जाना जाता है । ऐसे कार्यों में रुचि लेने, समय, श्रम एवं चिन्तन लगाने से लगता है कि यह घाटे की दिशा है । आरम्भ में ऐसा हो भी सकता है, पर कुछ ही समय में प्रतीत होने लगता है कि यह घाटा उच्चस्तरीय लाभ प्राप्त करने की भूमिका भर था । बीज के गलने में आरम्भिक घाटा भर है, कुछ ही समय में वह अंकुर, पौधा और वृक्ष बनकर जब फलता-फूलता है तो उसके विशाल आकार एवं वैभव को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि यह आरम्भिक त्याग भावी उत्कर्ष का आधार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिद्ध हुआ और इसका आयोजन दूरदर्शी बुद्धिमत्ता सिद्ध हुआ ।

आत्मोत्कर्ष के लिए विशिष्ट उपचार रूप में किन्हीं योगाभ्यासों की आवश्यकता हो सकती है और जीवन-क्रम में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने के लिए उन्हें भारी उलटपुलट के लिए उपयोगी कहा जा सकता है, पर मात्र इतने भर से ही काम नहीं चल सकता । करना यह होता है कि सामान्य जीवन-क्रम के प्रत्येक क्रिया-कलाप में उत्कृष्ट आदर्शवादी सिद्धान्तों का समावेश किया जाता रहे । दैनिक जीवन में निर्वाह एवं कौटुम्बिक उत्तरदायित्वों के लिए लोगों को जो करना पड़ता है उसे योग-साधना माना जाय और इसी क्रिया-कलाप में उत्कृष्ट आदर्शवादिता को सँजोये रखने का अभ्यास किया जाय । आरम्भ में यह अभ्यास कुछ कठिन, जटिल और असुविधा उत्पन्न करने वाला लगता है, पर जब उसकी आदत पड़ जाती है तो प्रतीत होता है कि आदर्शवादी जीवन कितना सरल और कितना सुखद है ।

उत्कर्ष की मूलभूत प्रवृत्ति शारीरिक नहीं आत्मिक है । उसे भौतिक साधनों से नहीं आन्तरिक सद्भावनाओं के सम्बर्द्धन से पूरा किया जा सकता है । इसका मार्ग-दर्शन दिव्य आलोक के सहारे ही सम्भव हो सकता है । चारों ओर घिरे हुए पशु-प्रवृत्तियों के वातावरण की धुन्ध में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का कुछ बोध ही नहीं हो पाता । आदर्शवादिता कल्पना-लोक की ऐसी उड़ान भर लगती है, जिसका कहना-सुनना भर पर्याप्त है, उसे कार्यान्वित किया जा सकना शक्य नहीं । यही वह भ्रान्ति है जिसके कारण अध्यात्म की उत्कृष्टता को व्यावहारिक जीवन में उतारते नहीं बनता । इसके लिए ऐसे स्वाध्याय की आवश्यकता पड़ती है जो जीवन-क्रम में उत्कृष्टता के समावेश का क्रान्तिकारी आधार खड़ा कर सके । दुर्भाग्य से अध्यात्म और धर्म-क्षेत्र में भी शास्त्रों के नाम पर ऐसा जाल-जंजाल भी उपलब्ध होता है जो स्पष्ट दिशा निर्देश करने की अपेक्षा उलटे भ्रान्तियों में उलझा देता है । इसी प्रकार सत्संग के नाम पर होती रहने वाली बकवास को प्रगतिशीलता के स्थान पर प्रतिगामिता के पत्थर गले से बँध जाते हैं । इतने पर भी यदि जाँच-परख की कसौटी हाथ में हो तो साहित्य अथवा व्यक्तियों के माध्यम से ऐसा परामर्श मार्ग-दर्शन मिल सकता है जो जीवन समस्याओं को सुलझाने और उत्कृष्टता की दिशा में सही रीति से बढ़ चलने का उपयुक्त मार्ग-दर्शन कर सके ।

आदर्श और व्यवहार में रहने वाले अन्तर की खाई पाटने के लिए एकान्त में शान्त-चित्त से मनन, चिन्तन किया जाना चाहिए । यह आत्म-निरीक्षण जितना गहरा होगा उतने ही ऐसे तथ्य उभरकर आवेंगे, जिन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है । परिशोधन की आवश्यकता समझी जा सके और उसके सत्परिणामों का मूल्यांकन किया जा सके तो पुरानी अभ्यस्त अवांछनीयताओं के विरुद्ध संघर्ष करने की साहसिकता जाग सकती है । इस प्रकार के देवासुर संग्राम को आत्मोत्कर्ष का प्रथम चरण माना गया है । गीता में जिस महाभारत का वर्णन किया गया है और अर्जुन को जिस युद्ध में प्रवृत्त किया गया है वह वस्तुतः अन्तःक्षेत्र में घुसी हुई अवांछनीयताओं के उन्मूलन में प्रवृत्त शौर्य, साहस ही कहा जा सकता है । यह स्थिति बन पड़े तो समझना चाहिए कि अवरोधों को चीर कर ऊँचाई की ओर अग्रसर हो सकने का आधार उपलब्ध हो गया ।

जीवन निर्वाह के क्रिया-कलाप प्रायः सामान्य ही होते हैं । ऐतिहासिक महत्व की घटनाएँ तो कभी-कभी किसी-किसी के ही सम्मुख आती हैं । उनकी प्रतीक्षा में बैठे रहने अथवा चौंकाने वाले उद्धत कर्म करने की आवश्यकता नहीं समझी जानी चाहिए । सामान्य जीवन, अनैतिक कृत्यों में तो संलग्न नहीं है, इतना ही ध्यान रखना पर्याप्त है । फिर परिस्थिति-वश जिस प्रकार का जीवनयापन करना पड़ रहा है उसी के कृत्यों में आदर्शवादी, चिन्तन एवं व्यवहार का पुट लगाते चलने से बात बन जाती है । सामान्य कामों को कर्मयोग बनाया जा सकता है यदि उनमें उद्देश्य, स्वरूप, चिन्तन एवं व्यवहार का उच्चस्तरीय समावेश किया जाय । महत्व क्रिया का नहीं, उसके पीछे काम करने वाली मनोवृत्ति एवं विचारणा का है । यदि सदुद्देश्य रखकर शालीनतापूर्वक सामान्य समझे जाने वाले कृत्यों में भी संलग्न रहा जाय तो आत्मोत्कर्ष का द्वार खुला रह सकता है और उस पर चलते हुए चरम लक्ष्य तक पहुँच सकना सम्भव हो सकता है ।

सदुद्देश्य और सत्कर्मों के समन्वय से जो भावनात्मक प्रतिक्रिया होती है, उसे सुसंस्कार कहते हैं । यह सुसंस्कार ही वह सम्पत्ति है जिन्हें उपार्जित करने पर अन्तरात्मा को अपना वैभव और वर्चस्व बढ़ता हुआ प्रतीत होता है । आत्मोत्कर्ष का यही सरल और सीधा मार्ग है, इस पर चलते हुए उस महानता का वरण किया जा सकता है जिससे ऊँचा उठने के साथ-साथ आगे बढ़ने का भी रसास्वादन हर घड़ी मिलते रहना सम्भव हो सके ।

उत्कृष्टता का वरण—एक महान पुरुषार्थ

महानता की ओर बढ़ने और निम्नता की ओर गिरने की एक प्रक्रिया है, जिसको अपनाकर लोग ऊँचे उठते हैं और नीचे गिरते हैं । वह प्रक्रिया क्या है, आन्तरिक देवासुर संग्राम । मनुष्य के हृदय में दैवी और आसुरी दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं । जो व्यक्ति अपने प्रयत्न एवं पुरुषार्थ द्वारा आसुरी वृत्तियों का शमनकर दैवी वृत्तियों का विकास कर लेता है, उन्हें पुष्ट और प्रबल बना लेता है, वह महानता की ओर उठ जाता है और जो व्यक्ति प्रमादवश ऐसा नहीं करते उनकी आसुरी प्रवृत्तियाँ प्रबल हो जाती हैं । इस प्रकार का आसुर्य प्रभावित व्यक्ति पतन के गर्त में गिर जाता है ।

देवत्व का उत्थान ही उच्चता अथवा महानता है और असुरत्व की प्रबलता ही पतन है । एक सन्त अथवा जनसेवक जिसके पास न धन है और न पद है और न कोई सत्ता,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेकिन अपनी सेवाओं, दया, करुणा, प्रेम, सहानुभूति आदि गुणों के कारण महान है । जबकि बड़ी-बड़ी विजय करने वाला, साम्राज्य स्थापित करने वाला, शासनतन्त्र संचालित करने वाला उच्च पद पर प्रतिष्ठित, सम्पत्ति, सत्ता और शक्ति सम्पन्न होते हुए भी अपने अत्याचार, अनीति, अन्याय, शोषण, उत्पीड़न की वृत्ति के कारण पतित है, निम्नकोटि का है । महानता अथवा निम्नता का भाव, स्थिति में नहीं बल्कि आन्तरिक गुण, अवगुणों में रहता है ।

महानता का शुभारम्भ अन्तर से होता है, बाह्य से नहीं । अन्तर को महान बनाये बिना वास्तविक रूप में कोई महान नहीं बन सकता । यदि कोई अधोअन्तर वाला संयोग, चातुर्य अथवा परिस्थितियों द्वारा किसी उच्च पदवी और प्रतिष्ठा पर पहुँच भी जाता है तो बहुत दिन तक वह अपने उस ऐश्वर्य को सुरक्षित नहीं रख सकता । उसकी आन्तरिक विकृतियाँ उसे निकृष्ट कार्य और विचार जाल में फँसाकर शीघ्र ही धूल में गिरा देती हैं । संसार में रावण, कुम्भकरण, कंस, दुर्योधन आदि न जाने कितने अधोअन्तर वाले व्यक्ति उच्च पद पर पहुँच-पहुँच कर ऐसे पतित हुए कि आज तक घृणित कहे जाते हैं । आज भी आये दिन किन्हीं कारणों से पूजा और प्रतिष्ठा के स्तर तक पहुँचकर न जाने कितने तथाकथित साधु, सन्त, महात्मा, नेता और सत्ताधारी अपनी अधो-मनोवृत्ति की प्रताड़ना से अधोगति को प्राप्त होते रहते हैं ।

इसके विपरीत संसार में ऐसे महानुभावों की कमी नहीं है और न रही है, जो पतित अवस्था से, आन्तरिक सुधार के आधार पर पूजा और प्रतिष्ठा के पद तक पहुँचे हैं । ऐसे महान् व्यक्तियों में वाल्मीकि, अंगुलीमाल, सूर, तुलसी आदि न जाने कितने महात्मा और अशोक आदि राजा गिनाये जा सकते हैं । महानता का आधार अन्तर है, बाह्य परिस्थितियाँ नहीं । महानता के वास्तव में ऐसे फल हैं, जो अन्तर की डाली पर लगा करते हैं । यदि आन्तरिक डाली मजबूत और उपयुक्त नहीं है तो निश्चय ही उस पर लग जाने वाले महानता के फल स्वयं तो नष्ट हो ही जायेंगे, व्यक्ति का अस्तित्व भी उसी प्रकार नष्ट कर देंगे जैसे फलों के भार से वृक्ष की कमजोर डाली फट पड़ती है और शीघ्र ही ईंधन बनकर स्वाहा हो जाती है ।

संसार में सभी को महानता-वाछनीय है । उसे प्राप्त करने का प्रयत्न भी करना चाहिए । क्योंकि मानव-जीवन की सार्थकता इसी में है । तथापि धन-सम्पत्ति और पद-प्रतिष्ठा के लिए यों ही सहसा दौड़ पड़ने से पूर्व आवश्यक है कि उसका विकास पहले अपने हृदय में, अपने चरित्र में कर लिया जाय ।

आन्तरिक औदार्य और चारित्रिक महानता पा लेने वाला धन, दौलत, पूजा प्रतिष्ठा के अभाव में भी अपने में एक आध्यात्मिक शांति, नैसर्गिक संतोष और आनन्ददायक पूर्णता का अनुभव किया करता है । अस्तु, बाहर की किसी महानता के लिए दौड़ पड़ने से पूर्व आन्तरिक और चारित्रिक पूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । महानता की ओर बढ़ने का यही साधु मार्ग है और यही उपयुक्त नीति है ।

उच्च और निम्न बनने के दोनों अवसर होते हुए ऐसा कौन होगा, जो महान न बनकर निम्न बनना चाहेगा । महान बनने के लिए आन्तरिक द्वन्द्व, देवासुर संग्राम लड़ना ही पड़ेगा । इस संग्राम में देवतत्वों की विजय के आधार पर ही महानता प्राप्त हो सकेगी । इस संग्राम को प्रारम्भ करने की रीति यही है कि पहले यह देखा जाय कि मेरे भीतर कौन से आसुरी तत्व अधिक प्रबल हैं । उन पर निरन्तर कठोर प्रहार करते रहना चाहिए और अन्यों के साथ असहयोग । किन्तु यह अपूर्ण मोर्चा होगा । मोर्चा पूरा करने के लिए दैवी वृत्तियों को पोषित और प्रोत्साहित करना होगा ।

इस विधि से युद्ध चलाने पर आसुरी तत्व निर्बल और देवतत्व प्रबल हो उठेंगे । एक बार पूर्णतया प्रबल हो जाने पर देवतत्व असुर तत्वों को पूरी तरह दबाकर उन्हें नष्ट कर देंगे । मन, बुद्धि और शरीर को अपने अधीन कर लेंगे और तब उस संग्राम में आपकी पूर्ण विजय हो जायेगी । इस विजय के साथ ही आप स्वभावतः महानता की ओर अग्रसर हो चलेंगे ।

आसुरी तत्वों की निर्बलता और सुरतत्वों की प्रबलता और प्रोत्साहन का अमोघ उपाय है श्रेष्ठता का अवगाहन। संसार की सारी श्रेष्ठताएँ ईश्वरीय तत्व हैं उनका आश्रय लेते ही शरीर में, मन और मस्तिष्क में शक्ति के रूप में ईश्वरीय अनुकम्पा का प्रवेश होने लगेगा । जिसको यह अनुकम्पा मिल जाये, उसकी विजय को कौन रोक सकता है ? हाथ में जो भी कर्तव्य लिया जाय उसे सम्पूर्ण श्रेष्ठता के साथ पूरा किया जाय । जिस विचार को भी स्थान दिया जाय, वह श्रेष्ठ हो । जिस आकांक्षा एवं कल्पना को जन्म दिया जाये, वह शुद्ध और सार्थक हो । इस प्रकार सब ओर सब प्रकार श्रेष्ठता को आश्रित करने से असुरता को परास्त और देवत्व को प्रबल होते देर न लगेगी ।

इस देव अभियान के साथ कभी-कभी असुरता का भी प्रबल आक्रमण होगा । क्यों न होगा ? असुरतत्व यों ही शीघ्रता से अपनी पराजय मान भी कैसे लेंगे । वे भी अपनी करनी में कसर नहीं छोड़ेंगे । जब भी अवसर पायेंगे, निराशा, निरुत्साह, आलस्य, प्रमाद, प्रशमन, स्वार्थ, लोभ, काम, क्रोध, अहंकार आदि के रूप में आक्रमण करेंगे । आसुरी तत्वों का यह आक्रमण प्रबल होता है । इसे रोकने और विफल करने में ही पुरुष के पुरुषार्थ का पता चलता है । यह आक्रमण ऐसे प्रबल सम्मोहन से आवृत होता है कि अच्छे-अच्छे बुद्धिमान भ्रम में फँस जाते हैं ।

यह असुर संग्राम जीतने के लिए आत्मनिष्ठा एक प्रबल संबल है और आत्मविश्वास एक अमोघ अस्त्र । आत्मा के रूप में मनुष्य के भीतर एक ऐसी चमत्कारी शक्तियों का भण्डार भरा है, जिसको जाने बिना कल्पना तक नहीं की जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है । आत्म-निष्ठा में उतरते ही मनुष्य में एक दिव्य तेज का समावेश हो जाता है । उसका विवेक शक्तिशाली होकर प्रधान सेनापति की भूमिका प्रदान करता है ।

इस प्रकार अन्तर के देवासुर संग्राम में विजय पाकर मनुष्य को बाह्य मान्यताओं के लिये अग्रसर होना चाहिए । ऐसे समर्थ पुरुष को संसार का कोई भी इष्ट दुर्लभ नहीं । असुरजयी देव पुरुष स्वयं ही अपने कल्पतरु हुआ करते हैं । वे जिस समय जो सिद्धि चाहते हैं, उन्हें मिल जाती है । आन्तरिक आभा से दीप्त मुख-मण्डल और विश्वस्त व्यवहार को लेकर वे जिस ओर निकल जायेंगे समाज उनकी अभ्यर्थना में खड़ा हो जायेगा और चाहेगा कि वह उनका नेतृत्व करे, पथ प्रदर्शन करे । जिससे कि वे भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों के योग्य बन सकें ।

हर मनुष्य में एक जन्मजात महापुरुष छिपा होता है । लेकिन वह आसुरी तत्वों के कारागार में बन्द होता है । मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह उसे देवतत्वों की सहायता से मुक्त करे और महान् कृत्यों द्वारा महानता की ओर बढ़े ।

चरित्रनिष्ठा—सर्वोपरि शक्ति

चरित्र एक ऐसा शब्द है जो मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का उद्‌बोधन करता है । व्यक्तिगत जीवन में कर्तव्य-परायणता, सत्यनिष्ठा, पारिवारिक जीवन में स्नेह, सद्‌भाव, सामाजिक जीवन में शिष्टता, नागरिकता आदि आदर्शों के प्रति जिस व्यक्ति में अगाध निष्ठा है और जो प्रतिपल इन आदर्शों को अपने जीवन में आत्मसात् रखता है उसे चरित्रवान कहा जा सकता है । किसी भी राष्ट्र या समाज की उन्नति का आधार वहाँ के भौतिक साधन, खनिज सम्पदा या उर्वर भूमि नहीं होते वरन् किसी देश का उत्कर्ष उसके चरित्रवान नागरिकों पर निर्भर करता है ।

एशिया के एक छोटे से देश जापान ने दो-दो महायुद्धों में पूरी तरह तहस-नहस हो जाने के बाद भी आज विश्व इतिहास में दीप्तिमान स्थान प्राप्त कर लिया । उसका एक ही कारण है वहाँ के चरित्रवान नागरिक, देशभक्त और ईमानदार नागरिक ।

पहले विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों द्वारा पूरी तरह कुचल दिये जाने के बाद कुछ ही वर्षों में जापान ने चमत्कारी उन्नति कर दिखाई, वह दुनिया भर के देशों में मिशाल के तौर पर कही सुनी जाती है । विजेता राष्ट्र विजय का उपहार लेकर भी युद्ध में हुई क्षति को पूरा नहीं कर पाये थे कि पराजित जापान ने हार के बावजूद अपने यहाँ अर्थतन्त्र की रीढ़ को पुनः मजबूत बना लिया । कारण एक ही था वहाँ के निवासियों की देशभक्ति, जिन दिनों जापान में बनी चीजें दूसरे देशों के बाजारों में बहुत ही सस्ती बेची जाती थीं, उन दिनों जापानवासी स्वयं उन्हीं वस्तुओं का उपयोग करने के लिए महँगी कीमत चुकाते थे । विदेशी बाजार में अपनी वस्तुओं की धाक जमाने के लिए तब जापानी लागत से भी कम दाम पर उनका विक्रय करते थे । स्पष्ट ही घाटा होता और इस घाटे को वे स्वयं महँगे दाम देकर पूरा करते थे ।

देशभक्ति या राष्ट्र प्रेम व्यक्ति के चरित्र का एक अनिवार्य अंग है और जिन देशवासियों में अपने राष्ट्र के प्रति जितनी गाढ़ी भक्ति होगी उसमें सुव्यवस्था, शान्ति और समुन्नति के आधार उतने ही पुष्ट होते चले जायेंगे । राष्ट्र का अर्थ—अपना समाज, देश परिवार ही है और ऐसे व्यक्ति जनहित के लिए कोई भी उत्सर्ग करने के लिए हँसते-खेलते तैयार हो जाते हों । कहा जाता है कि—एक बार अमेरिका में किन्हीं रोगों के उपचार का प्रयोग करने के लिए जीवित मनुष्यों के शरीर की चीर-फाड़ आवश्यक अनुभव की गई । वैज्ञानिक जीवित मनुष्य की देह चीरकर कुछ प्रयोग करना चाहते थे अतः समाचार पत्रों में विज्ञापन दिये गये कि जो व्यक्ति इसके लिए स्वयं को प्रस्तुत करेंगे उनके परिवार को पर्याप्त धन दिया जायेगा । राष्ट्रीयता और जनहित की भावना से प्रेरित होकर सैकड़ों व्यक्तियों ने स्वयं को प्रस्तुत किया और इस उत्सर्ग की परम्परा का महत्व रुपयों के बदले कम नहीं होने दिया । परिणामस्वरूप कई असाध्य रोगों की चिकित्सा के उपाय खोजे जा सके ।

चरित्रवान व्यक्ति के लिए अपना स्वार्थ नहीं दूसरों का समाज का हित मुख्य रहता है । इसी कारण वे सामूहिक हितों या परमार्थ प्रयोजनों के लिए अपने स्वार्थ का ही नहीं अपने अस्तित्व का भी परित्याग कर देते हैं । घटना पेरिस में हुई राज्य क्रान्ति के समय की है । तब क्रान्तिकारियों का दमन कर दिया गया था और उन्हें जेल में बन्द किया जा चुका था । उन्मत्त विपक्षी सैनिकों ने एक कैदखाने में घुसकर उसमें कैद बन्दियों को गाजर मूली की तरह काटना शुरू कर दिया । विद्रोही सैनिकों ने उनमें से एक बन्दी को पहचाना जिसका नाम था आवी सिफॉर्ड । आवी सिफॉर्ड एक पादरी था । सैनिकों ने सहज श्रद्धावश उसे निकल जाने को कहा तब आवी सिफॉर्ड ने कहा—यदि तुम लोग मेरे बदले उस तरुण स्त्री को जाने दो जो गर्भवती है तो मुझे मरकर भी प्रसन्नता होगी । माना कि हम लोगों ने राजनियम भंग किया है । किन्तु उस स्त्री के गर्भ में पल रहे मासूम जीव को तो उसकी निर्दोषिता का पुरस्कार मिलना ही चाहिए । दमनकारियों ने पादरी का प्रस्ताव माना या नहीं यह और बात है परन्तु पादरी ने जिस करुणा और दयार्द्रता का परिचय दिया—उसने आवी सिफॉर्ड को इतिहास में अमर कर दिया ।

जन्म लेने के कारण मृत्यु का होना तो निश्चित है । सामान्य व्यक्ति के लिए मृत्यु एक दुखदायी घटना है किन्तु चरित्रवान आदर्शों के प्रति निष्ठा रखने वाले व्यक्ति मरण को भी त्यौहार बना लेते हैं । युद्ध में बुरी तरह घायल होकर कराहने वाले फिलिपसिडनी को कौन भुलायेगा जिन्होंने एक घायल सिपाही की प्यास को अपने जीवन से भी अधिक महत्व दिया । घटना तो विख्यात है कि सिडनी को बड़े जोर की प्यास लगी थी और पानी के लिए कराहने पर एक प्याला जल लाया गया । इतने में एक और घायल सिपाही को वहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाया गया । उसकी अतृप्त दृष्टि सिडनी के लिए लाये गये पानी के प्याले पर पड़ी, सिडनी ने यह देखकर पानी का वह प्याला सिपाही को देने का आग्रह किया और कहा—मेरी अपेक्षा उसे पानी की ज्यादा जरूरत है । इसके पश्चात् ही उनके प्राणपखेरू उड़ गये । सम्भव है यदि उन्हें पानी पीने को मिल जाता तो वे कुछ घण्टों और जी जाते किन्तु तब शायद ही किसी को मालूम होता कि सर फिलिपसिडनी नामक कोई सैनिक अधिकारी भी हुए थे ।

चरित्रवान व्यक्ति स्वयं अपना जीवन तो धन्य बना ही लेते हैं समाज में भी एक ऐसी स्वस्थ परिपाटी आरम्भ कर जाते हैं कि उसका लाभ समाज को लम्बे समय तक मिलता रहता है । रूसी राज्यक्रान्ति के समय, जब वहाँ के नागरिकों ने अत्याचारी और अन्यायी शासन तन्त्र को उखाड़ फेंका था । तब क्रान्ति की तैयारियाँ चल ही रहीं थीं । मास्को के एक पादरी रेवरैण्ड मुलन वर्ग ने अचानक ही अपनी जीवन दिशा बदल दी । जो आजीवन लोगों को शांति, क्षमा और ईसा की उस शिक्षा का उपदेश देता रहता था जिसमें कहा गया था कि यदि कोई तुम्हारे बायें गाल पर तमाचा मारे तो तुम दूसरा भी उसके आगे कर दो—वह क्रान्ति की बात करने लगा । मास्को की एक धर्मसभा में रेवरैण्ड मुलैन वर्ग ने कहा—हर एक चीज का एक समय होता है । धर्मोपदेश और प्रार्थना का भी एक समय होता है । पर अब वह समय नहीं है । समय बदल गया है और अब समय लड़ने का है, संघर्ष करने का है । हमें अन्याय से संघर्ष करना चाहिए । यह कहकर उसने अपनी धार्मिक वेशभूषा उतार दी और क्रान्तिकारी का वेश पहनकर धर्मसभा में आ गया । उसके इस कथन का लोगों पर इतना प्रभाव पड़ा कि कुछ ही समय में उसके साथ क्रान्तिकारियों का एक बड़ा दल हो गया । रेवरैण्ड मुलन वर्ग ने पहले क्रान्ति में और फिर विश्वयुद्ध के समय जर्मन सेनाओं का मुकाबला करने में इतनी वीरता दर्शायी कि उसे मेजर जनरल की उपाधि से विभूषित किया गया ।

आदर्शों के प्रति निष्ठा—सामाजिक हितों के लिए उत्सर्ग का साहस व्यक्तित्व को इतना तेजस्वी बना देता है कि अनायास ही उस व्यक्ति के प्रति लोकश्रद्धा का उफान उमड़ने लगता है । जब किसी समाज या राष्ट्र पर संकटों के बादल घिर आते हैं तो जनसमुदाय ऐसे चरित्रवान, उत्साही और साहसी व्यक्तियों से ही मार्गदर्शन की अपेक्षा करता है और उसे अपना नेतृत्व सौंपता है । जब रोमन साम्राज्य पर संकट आया था तो शासन सभा के सदस्यों ने एक ऐसे व्यक्ति को व्यवस्थापिका का सूत्रसंचालन सौंपा था जो सक्रिय राजनीति से संन्यास लेकर सामान्य जीवन व्यतीत कर रहा था । नाम था उसका सिनसिनेट्स । सिनसिनेट्स अपने तेजस्वी व्यक्तित्व और आदर्श चरित्र के बल पर एक बार पहले भी राजप्रमुख के पद पर पहुँच चुका था और वर्षों तक अपने राष्ट्र का नेतृत्व करता रहा था । जब संकट की घड़ियाँ आयीं तो एक बार फिर सभासद् उसके पास पहुँचे । उस समय सिनसिनेट्स अपने खेत में काम कर रहा था । सभासदों ने उसके सम्मुख समस्त परिस्थितियों का विश्लेषण किया और उसे असीमित अधिकार दिये । राष्ट्रीय संकट की इन घड़ियों में देश की जनता ने उसके प्रति जो विश्वास व्यक्त किया, सिनसिनेट्स ने उस विश्वास को न केवल कायम रखा वरन् उसे और भी पुष्ट बनाया । देश जब संकट के दौर को पार कर चुका सिनसिनेट्स ने उत्तराधिकारियों को वापस अपने अधिकार सौंप दिये और स्वयं शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा ।

सर्वविदित है कि अब से दो सौ वर्ष पूर्व अमेरिका ने जार्ज वाशिंगटन के नेतृत्व में स्वतन्त्रता प्राप्त की थी । स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद वर्षों तक वाशिंगटन ने अमेरिका का शासनसूत्र सम्हाला और बाद में राजनीति से विरत होकर शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे । स्वाधीनता प्राप्ति के बाद अमेरिका और फ्रांस में युद्ध छिड़ा । उस विषम बेला में लोगों ने एक बार फिर वाशिंगटन को याद किया । अपने शासनकाल में जार्ज वाशिंगटन ने अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा, सूझ-बूझ और चारित्रिक गुणों की ऐसी धाक जमा ली थी कि तत्कालीन प्रेसीडेण्ड मि. एडम्स ने उन्हें देश की बागडोर सम्हालने के लिए कहा । उस समय के एक प्रमुख नेता ने उन्हें पत्र में लिखा था कि—"अमेरिका की समस्त जनता का आप पर पूरा विश्वास है । यूरोप का एक भी राज्य सिंहासन ऐसा नहीं है जो वाशिंगटन के चरित्र बल के सामने टिक सके ।"

चरित्रवान व्यक्तियों की प्रामाणिकता पर हर कोई विश्वास करता है तथा उन्हें सम्मान देता है । यही नहीं उनके प्रति श्रद्धा भी लोगों के हृदय में उमड़ती रहती है । यह श्रद्धा ही उनकी मूल्यवान सामाजिक सम्पत्ति होती है । स्वामी विवेकानन्द ने एक स्थान पर कहा है कि—संसार का इतिहास उन थोड़े से व्यक्तियों द्वारा बनाया गया है जिनके पास चरित्रबल का उत्कृष्ट भण्डार था । यों कई योद्धा और विजेता हुये हैं, बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट हुए हैं । किन्तु इतिहास ने केवल उन्हीं व्यक्तियों को अपने हृदय में स्थान दिया है जिनका व्यक्तित्व समाज के लिए एक प्रकाश स्तम्भ का काम कर सका है ।

वस्तुतः इतिहास ने उन महापुरुषों का ही गुणगान किया है, जिन्होंने अपने समाज को नये जीवन मूल्य, चरित्र के नये मानदण्ड दिये और आदर्शों की समयानुकूल परिभाषा अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व के माध्यम से की है । चरित्र—मानवीय गुणों के उस समुच्चय का नाम है जो व्यक्ति के समग्र जीवन को आच्छादित करते हैं और जीवन तथा व्यवहार के सभी क्षेत्रों में उसे प्रामाणिक सिद्ध करते हैं । इन दिनों अपने देश-समाज में स्वार्थपरता, बेईमानी, बदनीयती और भ्रष्टाचार व्याप्त है तो उसका मात्र यही कारण है कि जनमानस में चारित्रिक मूल्यों के प्रति आस्था नहीं है और उनकी अवहेलना की जाने लगी है । यह अवहेलना-उपेक्षा ही व्यक्तिगत प्रगति और राष्ट्र की उन्नति में दीवार बनकर खड़ी है जब तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति उस दीवार को तोड़ने का प्रयत्न नहीं करता हमारे राष्ट्र की प्रगतिधारा मन्द और अवरुद्ध ही रहेगी ।

इस दिशा में शुभारम्भ यहाँ से करना चाहिए कि अगर व्यक्ति महापुरुष नहीं बन सकता तो न बने किन्तु चारित्रिक मूल्यों का अपने जीवन में समावेश करना तो आरम्भ करे । माना कि प्रत्येक व्यक्ति हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी नहीं बन सकता किन्तु अकारण बोले जाने वाले झूठ से तो बच सकता है । दधीचि की तरह अपनी अस्थियाँ परोपकार में लगाना प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव न हो परन्तु दूसरों का बुरा करने से तो बचा जा सकता है और भलाई का कोई न कोई छोटा मोटा काम भी करते रहा जा सकता है । ईमानदारी, कर्तव्यपालन, उदारता, सद्व्यवहार, परदु:खकातरता आदि ऐसे गुण हैं जिनका अभ्यास छोटे रूप में आरम्भ किया जा सकता है और चरित्र साधना के क्षेत्र में क्रमश: आगे बढ़ते रहा जा सकता है ।

प्राय: समझा जाता है कि जैसे-जैसे साधन संपदा बढ़ती जायगी वैसे-वैसे मनुष्य अपने आपको नैतिक दृष्टि से भी उच्च और सद्गुण संपन्न बनाता चला जायेगा । इस मान्यता का कारण यह है कि लोग समझते हैं कि मनुष्य परिस्थितियों के हाथ में खेलने बाला बेवस पुतला है । परिस्थितियाँ ही उसे अच्छा या बुरा बनाती हैं । यह सोचना गलत है । न तो मनुष्य परिस्थितियाँ अच्छी होने पर स्वत: अच्छा बनता है और न ही परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने पर बुरा । गरीब से गरीब व्यक्ति भी यदि उसमें नैतिक गुणों के प्रति आस्था है तो परिस्थितियाँ लाख प्रतिकूल हों पतन की ओर नहीं बढ़ता और व्यक्ति कितना ही साधन सम्पन्न हो नैतिक दृष्टि से वह दुर्बल है तो कितनी ही अनुकूल परिस्थितियाँ हों वह पतन के गर्त में जाने से नहीं रुकता ।

इस तरह की असंख्य घटनाएँ हैं जिन्हें देखकर यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के सामने ऐसी परिस्थितियाँ थीं कि वह अपराध कर भी डालता तो उसके परिवेश को देखते हुए यह अस्वाभाविक नहीं था । लेकिन फिर भी वह विचलित नहीं हुआ । क्योंकि नैतिक दृष्टि से वह समर्थ और बलवान आत्मा का स्वामी था जिसने प्रतिकूल परिस्थितियों में उसे बुरे मार्ग पर चल पड़ने से बचा लिया । इसके विपरीत साधन सम्पन्न और बड़े लोग भी बड़ी-बड़ी चोरियाँ और बेईमानियाँ कर लेते हैं । जबकि उनके पास इतनी साधन सम्पदा थी कि वे चाहते तो बिना बेईमानी किये भी उपलब्ध साधनों में मौज मजे की जिन्दगी गुजर कर सकते थे, लेकिन ऐसा नहीं रह सका ।

यह तथ्य उस कथ्य को असत्य ही सिद्ध करता है कि मनुष्य परिस्थितियों का दास है और परिस्थितियों के वशीभूत होकर ही, व्यक्ति पतन के मार्ग पर चलने के लिए विवश होता है । सर्वविदित और प्रख्यात मिसाल है कि राजा हरिश्चन्द्र राजपाट खो जाने के बाद भी वचन के प्रति निष्ठावान और कर्तव्य परायण रहे । अपने परिवार तक के लिए उन्हें कर्तव्य मर्यादा को एक पग लाँघना स्वीकार नहीं हुआ । राणा प्रताप राज सिंहासन खोकर जंगलों में मारे-मारे फिरे वे चाहते तो केवल मौखिक रूप से ही अकबर की अधीनता स्वीकार कर अपने लिए तमाम सुख-सुविधाएँ जुटा सकते थे । पर कथनी और करनी को एक समझने वाले राणा प्रताप का यह कहना मात्र भी स्वाभिमान के खिलाफ लगा और उन्होंने अपने आदर्श के लिए आजीवन घास की रोटियाँ खायीं ।

नैतिक आदर्शों के प्रति दृढ़ आस्था रखने और प्रतिकूल से प्रतिकूलतम परिस्थितियों में भी आदर्शों की राह न छोड़ने के असंख्यों उदाहरण हैं । वहीं साधन सम्पन्न होने के बावजूद भी अपनी महत्वाकांक्षाओं को अवांछनीय ढंग से पूरा करने के लिए प्रयत्नशील रहने वाले लोगों के भी कई एक उदाहरण हैं । राज्य-लिप्सा, धन-लिप्सा, सम्मान-लिप्सा, कीर्ति-आकांक्षा आदि कितनी ही इच्छायें हैं, जिनसे प्रेरित और आकर्षित होकर व्यक्ति जिस-जिस ढंग से भी सम्भव हो उन्हें पाने के लिए लालायित रहता है ।

संपन्नता आनी चाहिए, साधन भी बढ़ने चाहिए भौतिक प्रगति का एकमात्र आधार भी यही है और विशुद्ध आध्यात्मिकता मनुष्य के भौतिक जीवन को पंगु नहीं बनाती वरन् जीवन के उस पक्ष को भी सबल और सुदृढ़ बनाती है । भौतिक प्रगति को नकारकर, उसे झुठलाकर वास्तविक प्रगति सम्भव है भी नहीं । क्योंकि जीवन न एकांगी भौतिकता का नाम है और न शुष्क आध्यात्मिकता का, वरन् वह भौतिक और आत्मिक जीवन की समुच्चय प्रगति का जोड़ है । धर्म की परिभाषा इसीलिए शंकराचार्य ने इस प्रकार की है—**यतो अभ्युदय: नि: श्रेयस कारावुभौ** । जो लौकिक जीवन में कल्याण और (अभ्युदय) आध्यात्मिक जीवन में परम उत्कर्ष की उपलब्धि करा दे वही धर्म है ।

अत: साधन सम्पन्नता बढ़ने के साथ-साथ व्यक्ति की चेतना का स्तर भी उन्नत और परिष्कृत होते जाना चाहिए । चेतना के परिष्कार की ओर यदि ध्यान नहीं दिया गया तो व्यक्ति की साधन सम्पन्नता ही उसे अध:पतित बना डालेगी । यह सोचना निरभ्रान्ति ही है कि परिस्थितियों पर मनुष्य की चेतना की दिशा निर्भर है । परिस्थितियाँ अच्छी हों तो व्यक्ति नैतिक दृष्टि से सुघड़ और सुथरा होगा तथा परिस्थितियाँ यदि प्रतिकूल हुईं तो व्यक्ति की नैतिकता डाँवाडोल होगी । प्रतिकूल परिस्थितियों में भी व्यक्ति अपने आदर्शों पर किस प्रकार दृढ़ रह सकता है इसका प्रमाण राजा हरिश्चंद्र और राणाप्रताप जैसे पौराणिक तथा ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन में देखा जा सकता है और दुर्बल चेतना साधन-सम्पन्न स्थिति में भी किस तरह लड़खड़ा जाती है यह हम आज के वैज्ञानिक युग में, जबकि साधनों का काफी विकास हो गया है, देख सकते हैं ।

पश्चिमी देशों में व्यापार व्यवसाय के लिए कम्प्यूटर एक उपयोगी और आवश्यक उपकरण बन गया है । हिसाब किताब रखने, रिकॉर्ड रखने, पूछने पर सही-सही जानकारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देने वाले इस उपकरण ने व्यावसायिक संस्थानों के काम को बड़ा ही आसान कर दिया है और कई व्यक्तियों के श्रम को बचाने में मदद की है । इस उपकरण के कारण लोग अन्य उपयोगी कार्यों में लग सके और विज्ञान की मदद से विकसित अन्य उपायों साधनों द्वारा पहिले की अपेक्षा अधिक उपार्जन करने लगे । अर्थात् विज्ञान के सहयोग से लोग पहले की अपेक्षा समृद्ध हुए हैं । परन्तु समृद्ध होने के बावजूद भी लोगों में अपराधवृत्ति आश्चर्यजनक रूप से बढ़ी है । सर्वाधिक सम्पन्न और धनवान देश अमेरिका में सबसे ज्यादा चोरियाँ, डाकेजनी, लूटमार, अपहरण और बलात्कार तथा हत्यायें जैसे अपराध होते हैं । हाल ही में एक हिन्दी पत्रिका ने कम्प्यूटर द्वारा चोरियों का रोचक विवरण प्रकाशित किया था ।

कम्प्यूटर से चोरियाँ किस प्रकार होती हैं इसके चार तरीके बताये गये । पहला तरीका था कम्प्यूटर को सीधे गबन का आदेश देना, दूसरी रीति झूठी जानकारी देने की बतायी गयी है । तीसरी रीति के अनुसार बाहर का व्यक्ति भी चोरी कर सकता है और चौथा प्रकार चोरी के लिए जानकारी एकत्र करने के रूप में बताया गया है । स्टैनफर्ड रिसर्च इंस्टीट्यूट के डा. वो. पार्कन ने बड़ी खोजबीन के द्वारा यह पता लगाया है कि कम्प्यूटरों द्वारा इस समय अमेरिका में ३० करोड़ डालर प्रति-वर्ष चुराये जाते हैं । अर्थात् २॥ अरब रुपयों के लगभग । स्मरणीय है यह अनुमान केवल पकड़ी गयी चोरियों के सम्बन्ध में ही लगाया गया है अन्यथा न पकड़े जाने वाली अज्ञात चोरियों की संख्या तो और अधिक है ।

कम्प्यूटरों द्वारा चोरी करने के तरीके भी बड़े विचित्र हैं । बताया जाता है कि एक बार कैलिफोर्निया के एक एकाउण्टेण्ट ने अपनी कम्पनी के कम्प्यूटर को आदेश दिया कि कम्पनी द्वारा खरीदे जाने वाले कच्चे माल का दाम असली मूल्य से बढ़ाकर नोट करे । उसके बाद उक्त एकाउण्टेंट ने एक फर्जी कम्पनी बनायी और कम्प्यूटर में उसका खाता खोल दिया तदुपरान्त कम्प्यूटर को आदेश दिया गया कि खरीद की बढ़ाई हुई रकम उस फर्जी कम्पनी के खाते में जमा की जाय । मशीन सो मशीन, उसने अपने चालक के आदेश का पालन किया और लगभग दस लाख डालर उसी फर्जी कम्पनी के नाम से गबन कर लिया गया ।

इसी प्रकार १९७२ में अमरीका की एक ईक्विटी फण्ड कम्पनी ने ३३ हजार पालिसियाँ बेचीं पर प्रबन्धक ने कम्पनी के कम्प्यूटर को यही झूठी सूचना दी कि ९७ हजार पालिसियाँ बेंची गयी हैं । फलस्वरूप कम्पनी के शेयरों की कीमत अन्धाधुन्ध बढ़ गयी और प्रबन्धक ने काफी माल बनाया । सन् ७४ में ही कम्प्यूटर के माध्यम से बाहर के व्यक्ति द्वारा चोरी करने का एक रोचक विवरण प्रकाश में आया था । वहाँ की एक कम्पनी के कर्मचारी ने नौकरी छोड़ने से पहले ऐजेन्सी के कम्प्यूटर को अपने घर के फोन से सम्बद्ध कर लिया और नौकरी छोड़ने के बाद इस प्रकार गुप्त सूचनाएँ एकत्रित करने लगा तथा उन सूचनाओं को प्राप्त कर दूसरों को बेचता रहा । इस चोरी का रहस्योद्घाटन भी कम्प्यूटर ने किया । वह इस प्रकार कि इस प्रकार का संदेह होते ही मालिकों ने पूछा कि तुम गुप्त सूचनाओं की जानकारी किन-किन लोगों को देते हो तो कम्प्यूटर ने भूतपूर्व कर्मचारी का फोन नम्बर भी बता दिया ।

इस तरह की चोरियों में ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये अपराध न छोटे-मोटे पेशेवर चोरों ने किये तथा न ही कम पढ़े-लिखे लोगों ने वरन् इस तरह की चोरियों में प्राय: उन्हीं लोगों का हाथ रहा जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे, शैक्षणिक दृष्टि से उच्च शिक्षा प्राप्त तथा पेशे की दृष्टि से सम्पन्न संस्थानों में अच्छे पद और ऊँचे वेतन पर कार्यरत थे । अमरीका ने एक बैंक के कम्प्यूटर में इस प्रकार की व्यवस्था की जिससे वह आधे सेण्ट तक की गणना करने लगा । फिर कम्प्यूटर को यह आदेश दिया गया कि वह आधा सेण्ट ग्राहकों को चुकाने के स्थान पर एक अलग खाते में जमा होता रहे । वह खाता जो कि फर्जी रूप से खोला गया था । उस अधिकारी का अपना ही खाता था । बैंक में तो हजारों ग्राहक प्रतिदिन आते हैं । आधा सेन्ट नहीं चुकाया जाता और बैंक के उनके खातों से भी निकल जाता । इस प्रकार वह अधिकारी कम्प्यूटर की मदद से लाखों सेण्ट प्रतिवर्ष अपने खाते में जमा करवाता रहा ।

एक कर्मचारी ने कम्प्यूटर को अपने वेतन का चेक रोजाना छापने का आदेश दिया और इस तरह दो सौ चेक प्राप्त कर लिए । संयोगवश ही इस काण्ड का पता चल सका । एक अन्य कर्मचारी ने अपने कम्पनी कम्प्यूटर को यह आदेश दिया कि मेरे वेतन की रकम सौ गुना करके मेरे खाते में जमा करते जाना कम्प्यूटर वैसा ही करता रहा । लेकिन जब कम्पनी के प्रबन्धक ने कम्प्यूटर से यह पूछा कि कर्मचारियों ने अपने व्यक्तिगत खातों के सम्बन्ध में क्या आदेश दिये हैं तो कम्प्यूटर ने यह बात भी बता दी ।

अकेले कम्प्यूटर द्वारा ३० करोड़ डॉलर की प्रतिवर्ष चोरी-विज्ञान की सहायता से मनुष्य करने लगा । यह तो केवल कम्प्यूटर की बात हुई । टैप रिकार्डर, बिजली की चोरी, वैज्ञानिक प्रयोगों के द्वारा तैयार किये गये फार्मूले तथा विषैली दवाएँ आदि अनेकानेक तरीके हैं । जिनका विवरण जानकर ही बुद्धि चकरा जाती है । इतना हीं नहीं परमाणु बम, हाइड्रोजन बम, कीटाणु बम, मौसम को बदल देने के उपाय जैसे कई एक आविष्कार हैं, जिनके द्वारा मानव समाज सामूहिक आत्मघात की तैयारी कर रहा है ।

वस्तुत: तो विज्ञान ही क्यों प्रत्येक साधन को हम तेजधार वाले चाकू के रूप में देख सकते हैं जिससे अपने दैनिक कार्यों में सहायता लेकर उनका लाभदायक उपयोग भी कर सकते हैं और उनसे किसी दूसरे की हत्या तथा आत्मघात जैसे जघन्य कर्म भी कर सकते हैं । साधनों और सम्पदाओं की वृद्धि अनावश्यक नहीं है पर यह तथ्य भी स्मरण रखा जाना चाहिए कि अपना भौतिक स्तर उठाये बिना उन्हें अर्जित किये जाते रहना कोई सुख-शान्ति की स्थापना नहीं कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता । बल्कि वे एक ऐसे हथियार के रूप में भी प्रयोग किये जा सकते हैं जिनके द्वारा मनुष्य पशुता से भी पतित हो क्रूर दानव के स्तर तक जा गिरेगा

कहने का अर्थ यह नहीं है कि परिस्थितियाँ नहीं बदलनी चाहिए और मनुष्य को वहीं तक सीमित रहना चाहिए जहाँ कि वह पहले था । बल्कि तात्पर्य यह है कि परिस्थितियाँ बदलने के साथ-साथ मन:स्थिति बदलने पर भी बराबर ध्यान देना चाहिए । परिस्थितियाँ नहीं, अपनी मन:स्थिति, मान्यतायें, आदर्श, भावनाएँ और प्रवृत्तियाँ ही मनुष्य को अच्छा या बुरा बनाती हैं । अत: साधनों के विकास के प्रयासों के साथ-साथ चेतना का परिष्कार और मान्यताओं में परिवर्तन आवश्यक है । तभी भौतिक दृष्टि से सम्पन्न और आत्मिक दृष्टि से सुख-शान्ति पूर्ण सुव्यवस्थित समाज की संरचना हो सकती है ।

उत्कृष्ट जीवन के लिये विशेष मनोबल चाहिए

उत्कृष्टता अन्तत: लाभदायक होती है, निकृष्टता हानिकारक । इस तथ्य को वैचारिक स्तर पर स्वीकार तो सभी करते हैं किन्तु आचरण में उतारते, व्यवहार का अंग बनाते कम ही लोग दिखाई पड़ते हैं तो यह सोचना पड़ता है कि वे कौन से कारण हैं जो श्रेष्ठ जीवनक्रम अपनाने में बाधक सिद्ध होते हैं ? जीवन क्षेत्र में प्रविष्ट करने के पूर्व एक युवक भविष्य के ताने-बाने बुनता है । त्याग बलिदान की, समाज सेवा की, सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने की उमंगें भी उठती हैं । दुष्प्रवृत्तियों से जूझने के विचार भी आते हैं किन्तु अधिकांश की कल्पनाएँ यों ही धरी रह जाती हैं उल्टे वे भी निकृष्ट वातावरण के प्रवाह में बहते-चलते वही मार्ग अपना लेते हैं जिनसे संघर्ष करने को कभी विचार उठते थे ।

ढूँढ़ने पर कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा जिसके मन में कभी न कभी उत्कृष्ट जीवन के प्रति श्रद्धा न उठी हो । चोर, उठाईगीरे और डाकू भी कभी न कभी अपने कुकृत्यों पर विचार कर पश्चाताप करते हैं और उसे छोड़ने की बात सोचते हैं । पर ये विचार तिनके के समान हवा के झोंके के साथ दूर फेंक दिए जाते हैं । लाभ का अवसर आते ही पुन: उसी ढर्रे पर चलने लगते और अपने पुराने अभ्यास में रंग जाते हैं । यह तो समाज एवं प्रशासन द्वारा घोषित अवांछनीय अपराधकर्मियों की बात हुई । संकीर्ण स्वार्थों से घिरे कुकृत्यों में लिपटे व्यक्तियों के मन में भी श्रेष्ठता के प्रति कभी न कभी उमंग अवश्य उठती है । कितने तो उसका प्रतिपादन करते हुए भी देखे जाते हैं किन्तु उनके जीवनक्रम पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि कथनी और करनी में कोई सामन्जस्य नहीं है । इस विडम्बनापूर्ण स्थिति को देखकर सहज ही यह जिज्ञासा होती है कि उत्कृष्टता के मार्ग में अवरोधक तत्व कौन-कौन से हैं ? आचरण में न उतरने के क्या कारण हैं ? मनुष्य आदर्शों एवं सिद्धान्तों के प्रति निष्ठावान क्यों नहीं बना रह पाता ? निकृष्टताजन्य परिस्थितियाँ क्यों कर हावी हो जाती हैं ? उनसे बचाव के क्या उपाय हो सकते हैं ?

विचार करने पर चार कारण सामने आते हैं—(१) मौलिक चिन्तन का अभाव (२) श्रेष्ठता के अभ्यास का अभाव (३) श्रेष्ठ वातावरण का अभाव (४) मनोबल का अभाव । यही चार प्रमुख कारण हैं जिनके रहते श्रेष्ठता आचरण में नहीं उतर पाती है ।

समाज में रहने वाले व्यक्तियों का एक बड़ा वर्ग ऐसा है जिसका अपना स्वयं का कोई चिन्तन नहीं होता है । जन प्रवाह ही उनका प्रेरणा केन्द्र होता है । भीड़ की गतिविधियाँ उन्हें प्रभावित करती तथा चिन्तन का आधार बनती हैं । भीड़ की होड़ तो अपना स्वार्थ साधने एवं तुरन्त का लाभ कमाने की चलती है । उसमें इतना धैर्य कहाँ कि नीति के दूरगामी सत्परिणामों पर विचार करे तथा अपनाये । इस मनोवैज्ञानिक प्रवाह में अधिकांशत: व्यक्ति बहते हुए चले जाते हैं । साथ ही यह अनुभव भी करते हैं कि मूढ़ मान्यताओं का अनुकरण करना उचित नहीं है । अनुचित मानते हुए भी उसी अनुपयुक्त ढर्रे को अपनाये रहना आश्चर्यजनक है ।

उत्कृष्टता वैचारिक धरातल से आचरण में नहीं उतर पाती इसका दूसरा कारण है अभ्यास का अभाव । लम्बे अभ्यास के उपरान्त ही कोई-कोई विचार स्वभाव का अंग बनता है । कालान्तर में उसकी परिणति संस्कारों के रूप में होती है । विचारों को संस्कारों का रूप देने में लम्बे अभ्यास की आवश्यकता होती है । निकृष्टता तो प्रकृतिप्रदत्त है । उसमें अभ्यास की आवश्यकता नहीं होती । पानी का प्रवाह नीचे की ओर अपने आप बहता है । उसे ऊँचे चढ़ाने के लिए विविध सरंजाम जुटाने पड़ते हैं । अवांछनीयता अपनाना सरल है । उसके लिए किसी प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है मनुष्य के स्वभाव में पशुवत संस्कार घुले-मिले हैं, जो सतत वैसी ही प्रेरणाएँ देते हैं । फलत: पतन की ओर मनुष्य सहज की खिंचता चला जाता है । उन्हें हटाने-निष्कासित करने के लिए तथा सुसंस्कारों की स्थापना के लिए सत्प्रवृत्तियों का सतत अभ्यास करना होता है । इस अभ्यास का नाम ही साधना है—सत्प्रवृत्ति को साध लेना, व्यवहार का अंग बना लेना । इसमें आरम्भ में कठिनाई होती है । जड़ जमाये संस्कार अभ्यास में बने होने के कारण उछल-उछल कर सामने आते और अवरोध खड़ा करते हैं । साधना के मार्ग में कठिनाइयाँ, विक्षोभ आते हैं ये वस्तुत: बाह्य नहीं अपने आन्तरिक कुसंस्कार ही हैं जो पैर पकड़कर पीछे खींचते हैं । उत्कृष्टता आचरण में उतर जाय, संस्कारों में घुल जाय इसके लिए पर्याप्त धैर्य एवं सतत अभ्यास करना होता है । अनभ्यस्त होने एवं तुरन्त का लाभ न दिखाई पड़ने के कारण आरम्भ में मन को रुचता नहीं है । वह अपने पुराने ढर्रे पर ही बना रहना चाहता है । संयम अपनाने में इन्द्रियों पर नियंत्रण करना होता है । भोगों के क्षणिक आनन्द से मुँह फेरना पड़ता है । ईमानदारी अपनाने, सद्मार्ग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर चलने में भौतिक उपलब्धियों से वंचित रहना पड़ता है । दूरगामी सत्परिणामों के प्रति आस्था एवं धैर्य न हो तो सद्मार्ग पर चलना कठिन है । अनभ्यस्त को अभ्यास में उतारने में की गई साधना ही कालान्तर में स्वभाव का अंग बन जाती और संस्कारों का रूप लेती है । उस समय स्वत: ही उत्कृष्ट जीवनक्रम में आनन्द आने लगता है ।

श्रेष्ठता को आचरण में उतरने में तीसरा अवरोधक तत्व है श्रेष्ठ वातावरण का अभाव । सर्वविदित है कि आज के वातावरण में अवांछनीयता का समावेश अधिक है । मनुष्य को उदात्त बनाने वाले श्रेष्ठता की ओर खींच ले चलने वाले तत्वों की कमी है । इतने पर भी सर्वथा अभाव नहीं है । ऐसे उत्कृष्ट व्यक्तियों का सम्पर्क ढूँढ़ना एवं उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते रहना भी सद्मार्ग पर चलने में सहायक सिद्ध हो सकता है । सत्पुरुषों से सम्पर्क का अपना लाभ है । उनके चिन्तन एवं प्रेरणाएँ असामान्य रूप से प्रभावित करते हैं । सम्पर्क में आने वाला उन्हीं के अनुरूप ढलने बदलने लगता है ।

व्यक्तित्वसम्पन्न ऐसे व्यक्तियों को ढूँढ़ा जाना चाहिए । समीपवर्ती क्षेत्र में अभाव हो तो दूरवर्ती ऐसे किसी समर्थ व्यक्ति से मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है । अतीत में परम्परा थी कि मनुष्य वर्ष के कुछ माह तीर्थाटन आदि में व्यतीत करता था । इसका उद्देश्य तीर्थस्थलियों का दर्शन मात्र नहीं था । वरन् उन स्थानों पर रहने वाले संत, महात्माओं, ऋषियों के सम्पर्क से प्रेरणाएँ, मनोबल प्राप्त करना था जिससे सद्मार्ग पर बढ़ा जा सके । सद्गुरुओं के सान्निध्य से भी इस आवश्यकता की पूर्ति होती थी । इन दिनों तीर्थ स्थलों पर भी ऐसे मार्गदर्शकों का अभाव पड़ गया । किन्तु जहाँ चाह वहाँ राह की उक्ति भी निरर्थक नहीं हो सकती । ढूँढ़ने पर गिने-चुने ऋषि परम्परा के प्रतीक ऐसे महापुरुष मिल सकते है । समय-समय पर कुछ समय निकालकर उनसे सम्पर्क करने एवं सान्निध्य का लाभ उठाने का भी प्रयत्न करना चाहिए । उस वातावरण में समय-समय पर पहुँचते रहने से प्राप्त प्रेरणाओं से भी उत्कृष्ट जीवन की दिशा में बढ़ने के लिए अभीष्ट सामर्थ्य मिलती है ।

वातावरण का अपना अलग प्रभाव होता है । स्वयं का मनोबल न हो तो अच्छे व्यक्ति भी बुरे वातावरण में पड़कर वैसे ही बन जाते हैं तथा आचरण करने लगते हैं । बुरे व्यक्ति भी उदात्त वातावरण में आकर तदनुरूप चिन्तन करते तथा सतत् सम्पर्क में बने रहने पर श्रेष्ठ बन जाते हैं । स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में प्रत्येक युवा के मन में त्याग और बलिदान की उमंगें उठती थीं । व्यक्तिगत सुखों को तिलांजलि देकर कष्ट का साहस भरा मार्ग अपना लेना वस्तुत: वातावरण का ही प्रभाव था । जिसके कारण असंख्यों व्यक्ति स्वतंत्रता की बलिवेदी पर चढ़ने के लिए खिंचते हुए चले गये । युद्ध छिड़ने पर देश के प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक ही आकांक्षा रहती है—राष्ट्र की सुरक्षा । छोटे-छोटे मतभेदों के कारण आपस में टकराने वाली राजनैतिक पार्टियाँ भी एकगुट होकर आपत्तिकालीन स्थिति का सामना करती हैं । युवा, वृद्ध, बच्चे सब में एक विचित्र आवेश छाया रहता है । डरपोक एवं कायरों में भी साहस परिलक्षित होता है । ऐसे अवसरों पर एक से बढ़कर एक त्याग एवं बलिदान के आदर्श उपस्थित होते हैं ।

समूहगत चिन्तन एवं व्यवहार व्यक्ति को असामान्य रूप से प्रभावित करते हैं । मेले-ठेले में व्यक्ति उसी के रंग में रंग जाता है । मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर में जाने पर पवित्र विचारों का संचार स्वत: होने लगता है । भीड़ में मन उचटता तथा उद्वेग पैदा होता है । बूचड़खाने और मदिरालय से होकर गुजरने पर उद्विग्नता उत्पन्न होती है । कीर्तन-भजन आदि में सम्मिलित होने पर भावनाएँ उमड़ने लगती हैं । साधु-बाबाओं की जमात में पहुँचने पर व्यक्ति उन्हीं के रंग में रंग जाता है । स्पष्ट है कि सामान्य व्यक्ति भले-बुरे वातावरण में असामान्य रूप से प्रभावित होता है । व्यक्तियों एवं घटनाओं के सतत् सम्पर्क से संस्कार बनते हैं । दूसरों के क्रिया-कलाप को देखने एवं वातावरण के सम्पर्क में आते रहने से वैसा ही स्वभाव बन जाता है । श्रेष्ठता व्यवहार में उतरे, स्वभाव का अंग बने, इसके लिए आवश्यक है अभीष्ट वातावरण एवं उपयुक्त व्यक्तियों के सम्पर्क में सतत् रहा जाय, अवांछनीय व्यक्तियों एवं वातावरण से दूर रहने का प्रयास किया जाय ।

महानता के आचरण में उतरने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व है स्वयं का मनोबल—असामान्य व्यक्ति वातावरण एवं व्यक्तियों की परवाह न करते हुए अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करते हैं । मछली के समान नदी की धारा के विपरीत चलते हुए अवांछनीय प्रवाह को चीरते हुए वे आगे बढ़ जाते हैं । वस्तुत: श्रेष्ठता प्रकृति से नहीं आती वरन् स्वयं के भीतर से पैदा होती है । निकृष्टता प्रकृतिजन्य है । मनोबल के बलबूते निकृष्ट वातावरण के विरुद्ध चलने वाला व्यक्ति श्रेष्ठता के शिखर पर जा पहुँचता है । यह तो असामान्य व्यक्तियों की बात हुई जो अपवाद हैं । सामान्य व्यक्ति बाह्य शिक्षण एवं वातावरण से ही प्रेरणाएँ ग्रहण करते हैं । उनमें मनोबल की वृद्धि श्रेष्ठ व्यक्तियों एवं वातावरण के संपर्क से होती है सर्वविदित है कि श्रेष्ठ पुरुषों के सम्पर्क में आने से सत्प्रवृत्तियों के प्रति उमंग उठने लगती है । यह मनोबल की वृद्धि का ही परिचायक है । उदार एवं उदात्त व्यक्तियों के जीवन चरित्र को पढ़ने से भी इस प्रकार की उमंगें उठती हैं । ऐसे व्यक्तियों से सम्पर्क करते रहने से वह शक्ति मिलती है, जिससे सत्प्रवृत्तियों के प्रति निष्ठावान रहा जा सके ।

श्रेष्ठ चिन्तन, अनुकूल वातावरण, अभ्यास एवं मनोबल का अभाव ये चार कारण हैं जिनके अभाव में उत्कृष्टता आचरण में नहीं उतर पाती । श्रेष्ठ वातावरण एवं व्यक्तियों का सतत् सम्पर्क बना रहे तो उत्कृष्टता मात्र विचारों तक सीमित न रहकर व्यवहार में परिलक्षित होने लगती है । उत्कृष्टता के अभ्यास से मिलने वाले आत्मसंतोष से मनोबल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की वृद्धि होती है । जिन्हें श्रेष्ठ जीवनक्रम अभीष्ट हो, उन्हें इन चारों का अवलम्बन लेना आवश्यक है । इस प्रक्रिया द्वारा ही आचरण के श्रेष्ठ एवं उसके दूरगामी सत्परिणामों से लाभान्वित हुआ जा सकता है ।

व्यक्ति को ही नहीं, वातावरण को भी बदलना होगा

बिरले ही होते हैं जो हर प्रकार की परिस्थितियों में एक जैसे बने रहते और भली-बुरी दोनों ही स्थिति में अपनी मन:स्थिति सन्तुलित रख पाते हैं अन्यथा अधिकांश अपने इर्द-गिर्द के परिवेश से प्रभावित होते और अच्छे-बुरे प्रभावों को ग्रहण करते हैं । वातावरण को उत्कृष्ट बनाने पर इसलिए भी अधिक महत्व दिया जाता है ताकि उस परिसर में रहने वाले उत्कृष्टता के तत्वों को जाने-अनजाने ग्रहण करें और शिष्टता, शालीनता से लेकर परस्पर एक-दूसरे के प्रति स्नेह सौहार्द्र की सत्प्रवृत्तियों का अपने आचरण में क्रमश: समावेश करते चलें । वैयक्तिक एवं सामाजिक सुख-शान्ति इसी तथ्य पर अवलम्बित है ।

वातावरण यदि चिन्ता-आशंका जैसे निराशावादी तत्वों से भरा हो तो उसमें रहने वाले व्यक्तियों की मन:स्थिति बुरी तरह प्रभावित होती है । जीवन-यापन के लिए अनिवार्य साधन उपलब्ध होते हुए भी मन असन्तुलित रहता है । मानसिक व्यग्रता, विक्षोभ, भय अनेकानेक मनोरोगों को जन्म देते और कितने ही विक्षिप्त बनते, पागलपन से ग्रस्त होते देखे जाते हैं । मनोवैज्ञानिकों के इस निष्कर्ष का एक प्रत्यक्ष उदाहरण अभी हाल में ईरान में कैद अमेरिकी बन्धकों के अध्ययन में देखने को मिला ।

अँग्रेजी पत्र इन्डियन एक्सप्रेस १४ सितम्बर १९८१ में प्रकाशित वाशिंगटन पोस्ट से प्राप्त समाचार के अनुसार नौ माह पूर्व ईरानी कैद से रिहा हुए ५२ बन्धकों में से अधिकांश मानसिक विकारों से ग्रस्त हो गये हैं । कितने ही विक्षिप्तों और पागलों जैसा आचरण कर रहे हैं । अपने घरों में पहुँचने के बाद भी वे अपने स्वाभाविक पूर्व के जीवनक्रम में नहीं आ सके हैं । अपने विचित्र आचरण से वे परिवार के सदस्यों, पत्नी एवं बच्चों के लिए एक समस्या बने हैं । उक्त पत्र के संवाददाता ने बन्धकों में से अधिकांश से भेंटवार्ता की जिसके निष्कर्ष भले-बुरे वातावरण के प्रभाव की असाधारण महत्ता पर प्रकाश डालते हैं ।

एक कैदी ४४४ दिनों तक ईरानी कैद में रहा । इस अवधि में उसके पास पहनने के लिए सिवाय एक जोड़ा अंडरवियर के और कुछ नहीं था । पेट भरने के लिए भोजन तो मिलता रहा पर वस्त्र का अभाव बना रहा । घर पहुँचने पर उसकी पत्नी ने उसके लिए चार आलमारियों में पहनने योग्य कपड़े की व्यवस्था कर दी । पर उसकी स्थिति विचित्र है । वह मात्र एक ही वस्त्र अन्डरवियर की माँग करता है । अन्य कपड़ों के प्रति उसकी बिल्कुल ही अभिरुचि नहीं है । सैकड़ों की संख्या में पत्नी ने उसकी माँग पर अन्डर वीयर खरीद कर दिए हैं पर उसे संतोष नहीं है । अपने कमरे में चारों ओर उसने इन्हीं को टाँग रखा है तथा मात्र उन्हीं की रट लगाये हुए है । मन:चिकित्सक तथा घर के सदस्य अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी उसके अवचेतन में छिपे इस भय को निकालने में असमर्थ रहे हैं कि वह अब घर पर है ईरान की कैद में नहीं तथा उसके लिए कपड़ों की कमी नहीं है ।

'डोनाल्ड आर. होरमेन' आर्मी सर्जन रह चुके हैं । न्यू आर्लियेन्स, मार्डीगास में उनका निवास है । घर आने के बाद वे विक्षिप्त हो गये हैं । भीड़ में जाने पर भयभीत हो जाते हैं । इन्सोमेनिया रोग (अनिद्रा) से ग्रसित हैं । बैठे-बैठे वे अकारण फूट-फूट कर रोने लगते हैं । नौ माह से उनकी यह स्थिति बनी हुई है । मन:चिकित्सकों का उपचार चल रहा है पर कोई सुधार नहीं है । पत्नी बच्चे सभी उनकी इस विचित्र हालत से परेशान हैं ।

सात कैदियों ने विवाह-विच्छेद करा लिया । तलाक का कारण था पत्नी के साथ समायोजन का अभाव । प्राप्त समाचार के अनुसार इन कैदियों का अपनी पत्नियों पर विश्वास नहीं था । वे हर बात को सन्देह की दृष्टि से देखते थे । उन्हें ऐसा भ्रम हो गया था कि पत्नियाँ पुन: ईरान भेजने की साजिश कर रही हैं । इस सन्देह के कारण प्रतिदिन वाद-विवाद बढ़ता गया और अन्तत: उसने झगड़े का रूप ले लिया । फलत: कोर्ट से तलाक लेना पड़ा । इनके अतिरिक्त भी तलाक के लिए अनेक ने कोर्ट में प्रार्थना पत्र दिए हैं ।

दो कैदियों के पागलपन भरे व्यवहार से तंग आकर उनकी पत्नियों ने आत्महत्या करने का प्रयास किया किन्तु वे अपने प्रयत्न में असफल रहीं हैं । एक साक्षात्कार में उन्होंने बताया कि कैदियों के विचित्र व्यवहार ने उनके मानसिक सन्तुलन को भी डगमगा दिया है । नौ माह से उन्हें इस स्थिति का सामना करना पड़ रहा है पर अब धैर्य का बाँध टूट गया है ।

कैद से छूटा माल्कीन के. काल्प नामक व्यक्ति रात को सोते समय किसी अविज्ञात भय से अचानक उठकर चिल्लाने लगता है । पूछने पर उसने बताया कि सपने में उसे सदा कैद का ही दृश्य दिखायी पड़ता है और ऐसा लगता है जैसे कुछ सैनिक हाथ में हन्टर लिए उसे मारने के लिए आ रहे हों । मन:चिकित्सकों का उपचार चल रहा है ।

दर्जनों कैदी ऐसे हैं जिन्हें कितनी ही नयी प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक आधि-व्याधियों ने धर दबोचा है, वे हाईब्लडप्रेसर, अल्सर, चर्मरोग, टी.एम.सिण्ड्रोम (सदा दाँत किचकिचाते रहना तथा जबड़े में खिंचाव रहना) जैसे शारीरिक तथा अनिद्रा, दु:खस्वप्न, अर्धविक्षिप्तता जैसे मानसिक रोगों से ग्रस्त हैं । उनमें पहले जैसी कार्यक्षमता, स्फूर्ति, उत्साह एवं उमंग का अभाव है । भविष्य के प्रति जीवन के प्रति हताश

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एवं निराश रहने की प्रवृत्ति तो लगभग कैद से लौटे सभी व्यक्तियों में पायी गई है ।

अमेरिकी मन:चिकित्सकों एवं मनोवैज्ञानिकों का मत है कि उत्पीड़न, भय एवं चिन्ता से युक्त वातावरण में लम्बे समय तक कैद में रहने के कारण इन कैदियों के अचेतन मन में भय स्थायी रूप से बैठ गया है । वे आत्म-विश्वास गँवा बैठे हैं । घर वापिस आने के बाद भी उनके मन मस्तिष्क में कैद की घुटन एवं निराशा भरा वातावरण होता है । जो शारीरिक एवं मानसिक रोगों के रूप में प्रकट हो रहा है ।

ये उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि वातावरण मनुष्य के ऊपर असाधारण प्रभाव डालता है । जिस भी परिवार एवं समाज का वातावरण घुटन, चिन्ता, आशंका, भय एवं निराशा से भरा होगा वहाँ भी कैद जैसी स्थिति होगी । फलत: उसमें रहने वाले सदस्यों की मन:स्थिति भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगी । सुख-शान्ति के लिए मात्र जीवन-यापन के साधन ही जरूरी नहीं हैं वरन् यह भी आवश्यक है कि जिस परिसर में मनुष्य निवास करता है वह उत्कृष्टता के तत्वों से भरा-पूरा हो । जहाँ भी विक्षोभ, भय उत्पन्न करने वाले तत्वों की बहुलता होगी, देर-सवेर उसकी प्रतिक्रिया मनुष्यों में आधि-व्याधियों के रूप में तथा समाज में विघटनकारी असन्तुलनों के रूप में प्रकट होगी । अस्तु, हर व्यक्ति का यह नैतिक दायित्व होता है कि अपने इर्द-गिर्द के वातावरण को अधिकाधिक श्रेष्ठ बनाने के लिए भी प्रयत्न करता रहे । व्यक्ति एवं समाज दोनों ही की सुख-शान्ति इस तथ्य के क्रियान्वयन से ही अक्षुण बनी रह सकती है । यह तथ्य आज के परिप्रेक्ष्य में और भी अधिक लागू होता है । हम चारों ओर सामाजिक परिवेश से घिरे हैं । इस वातावरण का प्रभाव हमारे पारिवारिक जीवन पर विकसित हो रहे बालकों के मन मस्तिष्क पर भी पड़ता है । इसे सुधारना, आदर्शवादी उत्कृष्टताओं का समावेश करना सबका सामूहिक कर्त्तव्य है । यदि छप्पर में आग लगेगी तो आस-पास के घर भी जलेंगे । इसे स्मरण रख सबको अपनी ही नहीं अपने आस-पास के परिसर को सँवारने उत्कृष्ट बनाने की बात भी बिचारनी चाहिए ।

प्रत्यक्ष जगत पर अदृश्य जगत का प्रभाव

वर्तमान युग की समस्याओं के उत्पन्न होने के कारण बाहरी लगते हैं, परन्तु उनके मूल कारण बहुत गहरे हैं । पेड़ जितना बड़ा होता है उसकी जड़ें उतनी ही गहरी भी होती हैं । इन जड़ों से ही पेड़ के तने, शाखा और पल्लवों को खुराक मिलती है । वृक्ष पर लगे फल फूल बाहर वृक्ष के माथे पर दीखते हैं लेकिन ये कहीं बाहर से आये या उतरे नहीं होते । वृक्ष का अस्तित्व, वैभव और विस्तार जड़ों के कारण ही बाहर बना फैला रहता है और जड़ों को आँखों द्वारा प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता, क्योंकि वे जमीन के अन्दर होती हैं ।

भगवान कृष्ण ने गीता में इस जगत को ऊर्ध्वमूल अध: शाखा वाला वृक्ष कहा है । जिसका अर्थ जड़ें ऊपर और पेड़ की शाखाएँ नीचे होती हैं । यह उक्ति विचित्र पहेली सी लगती है, पर विचारपूर्वक इसका विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि उक्ति यथार्थ है । बादल ऊपर से बरसते और जमीन पर नमी तथा शीतलता बनाये रहते हैं । प्रतीत होता है कि जल धरती की सम्पदा है, पर वास्तव में वह आकाश का ही अनुदान होता है । सृष्टि के आरम्भ में धरती आग का जलता हुआ प्रचंड गोला था । उस पर आच्छादित रही गैसें मिलकर पानी बनीं और बरसीं उसी से समुद्र बना तथा समुद्र का पानी भाप बनकर बादल बनने का सिलसिला चल पड़ा । पृथ्वी पर पाया जाने वाला यह जल ही प्रकारान्तर से प्राणियों के जीवन का आधार है । वह मिलता तो धरती पर ही है पर वास्तव में वह सृष्टि के आरम्भ से ही आकाश का वैभव था और अन्त तक भी उसी का अनुदान बना रहेगा ।

सूरज की सन्तुलित गर्मी पहुँचने से पृथ्वी पर जीवन का विकास आरम्भ हुआ । यह गरमी ऊपर सूरज से उतरती है और उसी से पृथ्वी धधकती रहती है, छूने पर भी गरम लगती है । चूँकि पृथ्वी गरम लगती है अत: सामान्य बुद्धि गर्मी और प्रकाश को पृथ्वी की सम्पदा कह सकती है लेकिन वास्तविकता यह है कि व्याप्त ऊष्मा और ऊर्जा का स्रोत सूर्य हीं है । उसी के अनुदान से पृथ्वी पर वनस्पति के रूप में जीवन उगता और प्राणियों के रूप में चलता-फिरता दिखाई देता है । सूर्य किरणें यदि असन्तुलित हो उठें तो यह धरती अग्निपिण्ड या शीतपिण्ड बनकर पूरी तरह निर्जीव स्थिति में जा पहुँचेगी ।

पृथ्वी पर प्राप्त होने वाली अगणित प्रकार की सम्पदा क्षमता और विशेषताएँ उसकी अपनी ही प्रतीत होती हैं लेकिन विशेषज्ञों का निष्कर्ष है कि यह सब दूसरे ग्रहों से मिला हुआ अनुदान है जो ध्रुवों के चुम्बकत्व से अर्जित और संग्रहित किया जाता रहता है । यदि पृथ्वी को अन्तर्ग्रही अनुदान न मिले होते तो वह अन्य निर्जीव ग्रहों की भाँति इस वैभव से शून्य और निस्तेज स्थिति में पड़ी रहती ।

फसल उगाने और वनस्पति के रूप में खाद्य पदार्थों का उपयोग करने की प्रक्रिया धरती की कृपा से ही संपन्न की गई लगती है । लेकिन सच्चाई कुछ और ही है । अन्न और जल से भी अधिक प्राणियों को जीवन निर्वाह के लिए वायु की आवश्यकता रहती है । अन्न और जल के बिना तो फिर भी कुछ समय तक जीवित रहा जा सकता है लेकिन हवा के बिना एक क्षण भी गुजारा नहीं । प्राणियों को खुराक के द्वारा जितना पोषण मिलता है उससे हजार गुना अधिक पोषण हवा से प्राप्त होता है । आँखों से हवा की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकता और महत्ता न दिखाई दे तो क्या हुआ वस्तुस्थिति तो यथावत् बनी ही रहती है ।

पिण्ड ब्राह्माण्ड का छोटा रूप है और परमाणु के अन्त: क्षेत्र में काम करने वाले घटकों के रूप में सौरमंडल की झाँकी देखी जा सकती है । ब्रह्माण्ड में भरी चेतना परब्रह्म कही जाती है, जीव उसी का छोटा घटक है । जीव और ब्रह्म के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान का क्रम जितना निर्बाध चलता रहता है, उसी अनुपात से जीवधारी को समर्थ और शक्तिसम्पन्न पाया जा सकता है इसी शृंखला पर जीव का प्रगतिक्रम अवलम्बित है । इसलिए जीव और ईश्वर के बीच आदान-प्रदान का द्वार खोल लेना, उस मार्ग के अवरोधों को हटा देना परम पुरुषार्थ माना गया है । यही कारण है कि इस दिशा में किये गये साधनात्मक प्रयासों को सर्वोच्च माना गया है । उद्योग, व्यवसाय, शिल्पकला, साहित्य, शोध आदि के प्रयास नि:संदेह महत्त्वपूर्ण हैं पर आत्मा और परमात्मा के मध्य प्रभावी विनियोग स्थापित करने के प्रयोगों को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता रहा है । ऊर्ध्वमूल अध: शाखा वाले अश्वास्थ का यही रहस्य है जिसे देखने-जानने वाले समझते और मानते थे तथा न देखने वाले अमान्य ठहराते हैं ।

पृथ्वी की सतह पर अपार वैभव बिखरा है और उसकी परतों में अकूत सम्पदा बिखरी पड़ी है लेकिन अन्तरिक्ष में संव्याप्त अदृश्य जगत की सम्पन्नता और गरिमा के आगे उसकी कोई तुलना नहीं की जा सकती । पृथ्वी पर पदार्थ और ऊर्जा यही दो घटक प्रधान हैं । इसी प्रकार अन्तरिक्ष में संव्याप्त समृद्धि को वायुमंडल और वातावरण इन दो रहस्यों में बाँटा जा सकता है । वायुमंडल प्रकृति प्रधान है और वातावरण चेतनात्मक । वायुमंडल से वस्तुओं की मात्रा और स्तर की स्थिति का सम्बन्ध है तो वातावरण से मनुष्य की आकांक्षा और विचारणा प्रभावित होती है ।

मनुष्य को एक सीमा तक स्वतंत्र माना गया है । उसकी अपनी पुरुषार्थ परायणता ही उसे स्वतन्त्र बनाती और सिद्ध करती है, लेकिन वातावरण का दबाव आँधी-तूफान की तरह पड़ता है और उसके आवेग से जनमानस अमुक दिशा में दौड़ता उड़ता दिखाई देता है । अंधड़ के साथ तिनके और पत्ते अपने आप उड़ते चले जाते हैं, पानी की धारा में हलका भारी सब कुछ बहने लगता है । उसी प्रकार अन्तरिक्ष में व्याप्त वातावरण का चेतनात्मक प्रवाह जनमानस को किसी दिशा विशेष में अनायास ही धकेलता और घसीटता चलता है ।

वातावरण के चेतनात्मक प्रभाव की तरह वायुमंडल के उतार-चढ़ावों को भी विश्व की सम्पत्ति और परिस्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों के रूप में आये दिन देखा जा सकता है । वायुमण्डल की असन्तुलित हलचलों के कारण ही उत्पन्न हुई अतिवृष्टि और अनावृष्टि से समस्त प्राणी जगत बुरी तरह प्रभावित होता रहता है । मौसम यदि प्रतिकूल हो तो उसका दुष्प्रभाव स्वास्थ्य पर भी पड़ता है । उस स्थिति में दुर्बलता और रुग्णता का ऐसा दौर आता है कि स्वास्थ्य सम्भाले नहीं सम्भलता । मलेरिया, कालरा, मस्तिष्क ज्वर आदि का ऐसा दौर चलता है कि रोके नहीं रुकता । लू लगने और निमोनिया होने जैसी बीमारियों में मनुष्य का कम दोष होता है मौसम की प्रतिकूलता अपेक्ष तथा अधिक कारण बनती है ।

प्रकृति की सहायता वायुमण्डल की अनुकूलता के रूप में प्राप्त होती है । कहा जाता है कि सतयुग में प्रकृति अनुकूल रहती थी और मनुष्य की आवश्यकता के अनुरूप वस्तुओं में कभी कोई कमी-बेशी नहीं पड़ती थी । उस समय मौसम सन्तुलित रहता था, इससे प्रचुर मात्रा में आवश्यक पदार्थ उत्पन्न होते थे । खाद्य पदार्थों में पोषक तत्व प्रचुर परिमाण में भरे रहते थे । वर्षा सन्तुलित होती थी, न अतिवृष्टि का डर था, न अनावृष्टि की आशंका रहती थी । शीत और आतप में भी असन्तुलन नहीं होता था । श्वास द्वारा ग्रहण की जाने वाली वायु में पोषक तत्वों का परिमाण और स्तर बढ़ा-चढ़ा रहता था । ऐसी ऐसी अनेकानेक अनुकूलताएँ रहने के कारण प्राणि स्वस्थ, हृष्ट पुष्ट, प्रखर और तेजस्वी रहते थे । यह समर्थता शरीर तक ही सीमित नहीं रहती थी वरन् उसके अन्तराल में रहने वाले मन-मस्तिष्क को भी प्रभावित करती थी । कहा भी गया है स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास रहता है । शरीर रोगी और व्याधिग्रस्त हो तो मन:क्षेत्र में भी रुग्णता और दुर्बलता आयेगी ही ।

वायुमंडल का स्वास्थ्य पर कितना अनुकूल और कितना प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, यह एक तथ्य से और अच्छी तरह समझा जा सकता है । संसार के विभिन्न भागों में बसे हुए मनुष्य तथा प्राणी स्वास्थ्य की दृष्टि से कहीं बहुत अच्छी तो कहीं बहुत बुरी दशा में रहते हैं । इसमें प्राणियों के पुरुषार्थ को श्रेय या दोष कम ही दिया जा सकता है, वायुमंडल का प्रभाव ही इसमें अधिक जिम्मेदार है । भारत में पंजाब और बंगाल के निवासियों का यदि स्वास्थ्य सर्वेक्षण किया जाय तो आकाश-पाताल जितना अन्तर दिखाई देगा । उसके लिए इन क्षेत्रों के निवासी उतने अधिक दोषी या श्रेय भागी नहीं हैं जितना कि प्रकृति का प्रभाव उन्हें इन परिस्थितियों में रहने के लिए विवश करता है । आहार-विहार में थोड़ा बहुत अन्तर तो सर्वत्र पाया जाता है किन्तु किसी क्षेत्र का प्रखर और किसी क्षेत्र का दुर्बल होना दैवयोग ही कहा जायेगा ।

रूस के एक प्रान्त उजवेकिस्तान में संसार में सबसे अधिक आयु तक जीवित रहने वाले व्यक्ति रहते हैं । इन दिनों वहाँ के निवासियों की औसत आयु सौ वर्ष से अधिक है । बहुत से लोग तो डेढ़ सौ वर्ष की आयु को पारकर चुके हैं और अभी स्वस्थ हालत में हैं । कितनों के ही पुत्र- पौत्रों और प्रपोत्रों की संख्या उनके जीवन काल में ही एक-सौ से अधिक जा पहुँचती है । उनके आहार-विहार में क्या विशेषता है, जिसके कारण दीर्घायुष्य का यह सुअवसर उन्हें सामूहिक रूप से प्राप्त हुआ है । इस तथ्य की गहराई से खोजबीन करने पर भी ऐसी कोई बात सामने नहीं आई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिससे इसे चमत्कार का कारण कहा जा सके । वहाँ रहने वाले लोग भी अन्यत्र निवास करने वालों की तरह ही सामान्य जीवनयापन करते हैं । अन्य क्षेत्र के निवासियों जैसा ही उनका आहार-विहार है । नशेबाजी जैसे दोष उनमें भी मौजूद हैं । ऐसी दशा में पुरुषार्थ संयम आदि की गरिमा स्वीकार करते हुए भी मात्र उन्हें ही स्वास्थ्य उपलब्धि का एकमात्र कारण नहीं ठहराया जा सकता । समाधान के रूप में यही तथ्य सामने आता है कि प्रकृति का अनुदान ही कारण है । विभिन्न क्षेत्रों में पाया जाने वाला वायुमण्डल ही उस क्षेत्र के सामूहिक स्वास्थ्य को निर्धारित करता है । भारत में बिहार, बंगाल और उड़ीसा प्रान्त के निवासियों की स्वास्थ्य स्थिति अन्य क्षेत्रों में निवास करने वालों की अपेक्षा बुरी है । इस भिन्नता के कारण में वायुमण्डल की भिन्नता स्वीकार करनी ही पड़ती है । बड़े लोग अक्सर पहाड़ी या उपयुक्त स्थानों पर वायुसेवन के लिए जाते और ठहरते हैं । उसके कारण स्वास्थ्य पर पड़ने वाला प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।

वायुमण्डल के अलावा मानवीय काया पर सामूहिक रूप से वातावरण का क्या प्रभाव पड़ता है, इसका अनुसन्धान करने पर और भी चौंकाने वाले निष्कर्ष सामने आते हैं । सतयुग में मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों के शरीर विशालकाय भी होते थे और बलिष्ठ भी । पीछे उनमें गिरावट आती चली गई । इसका क्या कारण रहा ? परिवर्तन के दिनों में प्राणियों ने क्या अच्छाई अपनाई और क्या बुराई बढ़ाई ? इसका अध्ययन करने पर प्रत्यक्ष तथ्यों की सहायता अत्यन्त स्वल्प मात्रा में ही मिलती है । दोष या श्रेय किसी को भी दिया जा सकता है, पर तथ्य यह है कि प्रकृतिक्रम के नियोजित चक्र के सामने प्राणी असहाय ही प्रतीत होते हैं । लगता है उन्होंने भला-बुरा उगाया नहीं, प्रकृतितः उन पर शाप व वरदान अनायास ही लदते-बरसते रहे हैं ।

वस्तुस्थिति का विश्लेषण सूक्ष्मदर्शियों द्वारा ही सम्भव है । वे मानवीय पुरुषार्थ का महत्व स्वीकारते हैं, फिर भी अन्ततः इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वायुमण्डल का प्रभाव प्राणिजगत की प्रगति एवं अवगति के लिए बड़ी सीमा तक उत्तरदायी रहा है । प्राणिजगत की बलिष्ठता ही नहीं, वृक्ष वनस्पतियों, खनिज पदार्थों के आकार, स्तर एवं गुण-धर्म पर भी वायुमण्डल के परिवर्तन का प्रभाव पड़ा है । प्रागैतिहासिक काल में जो स्थिति थी वह पीछे नहीं रही । बीच-बीच में उत्थान-पतन के दौर भी आते रहे । इसमें पदार्थों को, वनस्पतियों को, जीवधारियों को निजी रूप से दोषी नहीं माना जा सकता है । परिस्थितियाँ ही कारण रही हैं और परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव में व्यापक प्रभाव उत्पन्न करने वाले अविज्ञात कारण ही मदारी की तरह अँगुली हिलाते और कठपुतली नचाते रहे थे ।

यही बात वातावरण के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है । प्राचीनकाल में मानवी चिंतन का स्तर उच्चस्तरीय था । उनकी कामनाएँ, रुचियाँ और महत्वाकांक्षाएँ उच्चस्तरीय थीं । उस समय के लोग ऊँचा सोचते और ऊँचा चाहते थे । फलतः उनके क्रिया-कलापों में भी पग-पग पर आदर्शों का पुट परिलक्षित होता था । ऐसे व्यक्तियों के स्वभाव में शालीनता, चरित्र में सज्जनता और व्यवहार में उदारता का घुला रहना स्वाभाविक है । इसी स्तर के लोग धरती के देवता कहे जाते हैं । सम्भवतः ऐसे ही महामानवों की, देवताओं की परिकल्पना दिव्य-लोकवासी देवताओं के रूप में की गई होगी और पीछे इन्हीं देव मान्यताओं का दर्शन एक स्वतन्त्र शास्त्र बन गया होगा ।

जो भी हो, यह मानने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि भावना और आस्था की दृष्टि से सतयुग के मनुष्य अब की अपेक्षा कई गुनी उत्कृष्टता से सुसम्पन्न थे । इसी कारण उनका स्वभाव, पारस्परिक व्यवहार और सामान्य क्रिया-कलाप ऐसा होता था कि उससे सर्वत्र सौजन्य और सौमनस्य भरा-पूरा बना रहा । इसी कारण भारत को देवभूमि कहा जाता रहा तथा उसे **''स्वर्गादपि गरीयसी''** बताया जाता रहा है । इस देश के निवासियों का उच्चस्तरीय व्यक्तित्व, चरित्र-चिन्तन एवं क्रिया-कलाप ही इस देश को इस गौरव गरिमा के स्तर तक पहुँचाने में समर्थ रहा । प्राचीन भारत के देवमानवों ने अपने आदर्श कर्तृत्व और उत्कृष्ट चिन्तन से न केवल अपने देश को समृद्ध, समर्थ और सुसंस्कृत बनाया वरन् अपने अनुदानों से विश्व के कोने-कोने में बसे मनुष्यों को भी नव-जीवन प्रदान किया । प्राचीनकाल की सुखद परिस्थितियों का कारण उस समय के लोगों की उत्कृष्ट मनःस्थिति ही कही जानी चाहिए ।

इस सन्दर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस ऐतिहासिक गौरव-गरिमा का श्रेय तो उस समय के हर नागरिक को दिया जा सकता है, पर सच्चाई यह है कि उन दिनों समष्टिगत वातावरण ही कुछ ऐसा था जिसके प्रवाह में ऊँचा सोचने और ऊँचा करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था । प्रवाह चीरकर उल्टा चलना कठिन होता है । आज निकृष्टता के प्रवाह में व्यक्ति विशेष को अपने निजी मनोबल के सहारे उत्कृष्टता अपनाना और उसे अन्त तक मजबूती के साथ पकड़े रहना अति कठिन पड़ता है । ऐसा पौरुष कोई अपवाद ही दिखा पाते हैं । ठीक इसी प्रकार प्राचीनकाल में भी भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण के लिए असाधारण दुस्साहस ही करना होता होगा, अन्यथा वातावरण के दबाव में सहज ही वैसा कुछ कर सकना सहज नहीं, अतीव दुष्कर ही था ।

इन दिनों आकांक्षाओं और विचारणाओं का प्रवाह मानवीय आदर्शों की विपरीत दिशा में उद्दण्ड, दिशाहीन अन्धड़ की तरह बह रहा है । इससे अनेकानेक परिष्कृत मस्तिष्क भी प्रभावित हो रहे हैं । अनुकरण के रूप में हिप्पीकट बाल और नट-नटनियों की-सी वेशभूषा लोकप्रिय हो रही है । नई पीढ़ी उसी फैशन को आँखें मूँदकर अपना रही है । आततायी उद्दण्डता को शौर्य, साहस का परिचायक माना जाने लगा है । मर्यादाएँ तोड़ने, नीतिनियमों को भंग करने, आतंक फैलाने और विग्रह के लिए उकसाने वाले लोग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रातों-रात नेता बन जाते हैं । मात्र लेखनी और वाणी से ही दुष्प्रवृत्तियों का विरोध हो रहा है, व्यवहार में तो उनकी बढ़ोत्तरी ही होती जाती है । यह सब क्यों है ? इसके लिए किन-किन को दोषी ठहराया जाय ? यह गणना करने का जिन्हें अवकाश हो वे वैसा कर भी सकते हैं, पर वास्तविकता जाननी हो तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि चिन्तन की दिशाधारा को प्रभावित करने वाला अदृश्य वातावरण ही कुछ विचित्र है और उसी से निष्कृष्टता को बहुत कुछ परिपोषण मिल रहा है ।

इन विपन्नताओं के लिए वायुमण्डल को और विभीषिकाओं के लिए वातावरण में बढ़ते जाने वाले अवांछनीय तत्वों को कारण माना जाय और उसके निवारण का ठोस उपाय सोचा जाय, सही मार्ग निकाला जाय, तभी परिस्थितियों में बदलाव सम्भव हो सकेगा । अन्य और किसी उपाय से समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है ।

वातावरण आदतें भी बदल सकता है

मनुष्य को क्रोध क्यों आता है ? क्या यह उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है अथवा वातावरण और परिवेश उसे ऐसा बना देता है । यदि ऐसी बात है, तो इससे त्राण पाने का उपाय क्या हो ? क्योंकि शरीर-शास्त्री बताते हैं कि उसका शरीर पर बुरा असर पड़ता है और व्यक्ति यदि इस पर नियंत्रण प्राप्त नहीं करें, तो वह तरह-तरह की असामान्य व्याधियों का शिकार बन जाता है ।

इस संदर्भ में लम्बे काल के शोध निष्कर्ष के आधार पर मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि गुस्सा मनुष्य का नैसर्गिक गुण नहीं है, वरन् परिस्थितियाँ उसे ऐसा बना देती हैं । जिस प्रकार रोगी को प्रतिकूल वातावरण से अनुकूल सेनीटोरियमों में रखकर स्वास्थ्य लाभ कराया जाता है, वही बात यहाँ भी लागू होती है । यदि आरंभ से व्यक्ति को दिव्य वातावरण में रखकर सुसंस्कारी बनाने का प्रयास किया जाय, तो कोई कारण नहीं कि उसे आक्रामक पशुओं की भाँति साधा और शोधा न जा सके । मनोविज्ञान का कहना है कि महामानव और महापुरुष हर प्रकार की परिस्थितियों का सामना शान्तिपूर्वक करते हैं । कठिन से कठिन परिस्थिति और अभद्र से अभद्र व्यवहार भी उन्हें विचलित नहीं कर पाते । वे प्रत्येक अवस्था में एक-रस बने रहते हैं । यह भी इसी बात की पुष्टि करता है कि मनुष्य स्वभावतः गुस्सैल नहीं है । वातावरण उसे ऐसा बनने के लिये बाधित करता है ।

इंग्लैण्ड के लिवरपुल यूनिवर्सिटी के शोधकर्मियों ने इस सम्बन्ध में मनुष्य और पशुओं पर कई प्रयोग किये । उनने जब बिल्ली के मस्तिष्क के हाइपोथैलमस वाले भाग को विद्युत का हल्का झटका दिया, तो बिल्ली तुरन्त आक्रामक हो गयी और गुर्राते हुए प्रयोक्ता को लाल-लाल आँखों से घूरने लगी, किन्तु जब यही प्रयोग मनुष्य पर किया गया तो, परिणाम सर्वथा विपरीत पाया गया, अर्थात् मनुष्य के हाइपोथैलमस को उत्तेजित करने पर भी उसके व्यवहार में कोई प्रतिकूल परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ा । इसका कारण शरीरशास्त्री यह बताते हैं कि मानव के मामले में हाइपोथैलमस पर सेरेब्रल कॉर्टेक्स का नियंत्रण रहता है, अतः जब तक वहाँ से उसे इस प्रकार का कोई संदेश प्राप्त नहीं होता, तब तक वह शान्त व स्वाभाविक बना रहता है । वैज्ञानिक बताते हैं कि सेरेब्रल कार्टेक्स भी बड़ी सोच-विचार कर हाइपोथैलमस को यह सूचना भेजता है कि वह क्रोध प्रदर्शित करे या न करे । अपने अनुसंधान के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि व्यक्ति के सम्मुख जब बहुत विषम, विकट और प्राणलेवा परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, तभी सेरेबल कॉर्टेक्स, हाइपोथैलमस को आत्मरक्षा के लिये गुस्सा करने और आक्रामक रुख अपनाने की अनुमति प्रदान करता है अन्यथा मनुष्य प्रकृतितः शांत स्वभाव का प्राणी है ।

साँप की कई प्रजातियाँ बिल्कुल विषहीन होती हैं, किन्तु जब उन्हें कोई बार-बार छेड़ने और मारने का प्रयास करता है, तो विवश होकर जीवन रक्षा के लिये वह भी फुंकार लगाने और क्रोध प्रदर्शित कर छेड़ने वाले को डराने का उपक्रम करते देखे जाते हैं । यही बात अनेक अन्य शान्त प्रकृति वाले जन्तुओं में देखी जाती है । मानव के मामले में भी सच्चाई यही है । क्रोध करना उसकी प्रकृति नहीं प्रवृत्ति है ।

आज जो व्यतिरेक उसके स्वभाव में दिखाई पड़ता है, मनोविज्ञानी और विज्ञानी उसके दो प्रमुख कारण बताते हैं । प्रथम है सीखने-सिखाने की प्रक्रिया । उनके अनुसार मनुष्य जिस वातावरण में रहता है, तदनुरूप बनता-ढलता चला जाता है । गीताकार ने भी मनोवैज्ञानिकों की इस मान्यता का यह कहकर समर्थन किया है कि जो जैसा सोचता है, वैसा ही बनता चला जाता है । मनोवैज्ञानिकों के इस सिद्धान्त में बल भी नजर आता है, क्योंकि पिछले दिनों अनेक ऐसे उदाहरण व प्रमाण प्रकाश में आये हैं, जो उपर्युक्त बात की ही पुष्टि करते हैं । 'रामू' भेड़ियों के झुण्ड में पलकर वैसा ही व्यवहार करने लगा था । देखा गया है कि शेर शावक बिछुड़कर जब मेमनों के झुण्ड में आ मिलता है, तो वह अपनी हिंसक प्रवृत्त भूलकर अहिंसक मेमनों जैसा बर्ताव करने लगता है । यही बात तब भी देखी जाती है, जब उसे पालतू बना लिया जाता है, मनुष्य के संग रहकर वह अपनी हिंसक प्रवृत्ति भूल जाता है । यह सब सान्निध्य और सम्पर्क का प्रभाव है ।

मनुष्य के वर्तमान क्रोधी स्वरूप का दूसरा कारण वैज्ञानिक आनुवंशिकता को मानते हैं । इस संबंध में तनिक गहराई में उतर कर चिन्तन किया जाय तो ज्ञात होगा कि इसके अनेक कारणों में से एक प्रधान कारण वातावरण और परिवेश का प्रभाव भी है । उक्त परिस्थिति में रहकर मनुष्य में जब एक विशेष प्रवृत्ति पनप जाती है, तो वही प्रवृत्ति उसकी संतति सीखती चली जाती है, इस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह प्रवृत्ति चलते-चलते एक ऐसा समय आता है, जब वह उसके 'जीन' में समाकर उसकी प्रकृति बन जाती है । इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार इसमें भी वातावरण का ही प्रच्छन्न हाथ दिखाई पड़ता है, जो किसी प्रवृत्ति को मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति बना देता है ।

इस संदर्भ में विकासवादियों में अग्रणी माने जाने वाले विकासवादी जी. डी. लेमार्क ने 'यूज एण्ड डिसयूज' का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किया है । एक उदाहरण देकर वे इसे समझाते हैं कि किस प्रकार एक विशेष प्रवृत्ति परिस्थितिवश जीन में समाकर जन्तु के स्वभाव का अंग बन जाती है । प्रमाण के रूप में और अपने सिद्धान्त के समर्थन में वे अफ्रीका में पाये जाने वाले जन्तु जिर्राफ का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं । कहते हैं कि जिर्राफ की गर्दन पहले सामान्य जन्तुओं जैसी छोटी थी, किन्तु ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से पत्तियाँ खाते रहने के प्रयास में धीरे-धीरे उनकी गर्दन लम्बी होती चली गयी ।

नर मानवों में आरंभ में पूँछ और स्तन दोनों पाये जाते थे—ऐसा विकासवादियों का मत है, किन्तु समयानुसार जब उनकी उपयोगिता न रही, तो धीरे-धीरे जीन में उक्त गुणों को धारण करने वाले नाइट्रोजन बेस में न्यूक्लियोटाइडों की शृखला परिवर्तित होती चली गयी और अब उन गुणों का प्रतिनिधित्व करने वाले न्यूक्लियोटाइडों का वह क्रम लगभग बदल चुका है, अस्तु नर-मनुष्यों में अब स्तन और पूँछ के अवशेषांग मात्र रह गये हैं । कालक्रम में वह भी समाप्त हो जायेंगे ।

इस तरह यहाँ यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि क्रोध मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति नहीं है, अपितु परिस्थितिजन्य उपजा हुआ खर-पतवार है । इसे प्रयासपूर्वक हटाया-मिटाया भी जा सकता है । इसके लिये उपचार क्या हो ? इस संबंध में आप्त वचन है कि अध्यात्म-उपचार से बढ़कर इससे मुक्ति पाने का और कोई उपाय नहीं । जब अंगुलिमाल, रत्नाकर (वाल्मीकि) जैसे कुख्यात दस्यु इसके अवलम्बन द्वारा महामानव बन गये, तो कोई कारण नहीं कि हम अपनी छोटी-मोटी कमजोरियों और त्रुटियों को इसके माध्यम से घटा-मिटा नहीं सकें ।

मनुष्य पर्यावरण से जुड़े तो व्यक्तित्व का बिखराव रुके

मानव जीवन की प्रगति यात्रा का अवलोकन करें तो हम पाते हैं कि यह त्रिविध आधारों पर अवलम्बित है—भौतिक, जैविक, और मानसिक । भौतिक एवं जैविक पक्षों पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है । मानव के यह दोनों ही पक्ष विलक्षण-शरीरशास्त्रियों के लिए शोध का विषय बने हुए हैं । किन्तु मनीषियों-दार्शनिकों ने मानवीय श्रेष्ठता, उसके व्यक्तित्व की सहजता का एकमात्र आधार मानसिक माना है व कहा है कि इसी धुरी के चारों और वैयक्तिक , सामाजिक जीवन गतिशील होता है । इसी को केन्द्र मानकर हमारे पारस्परिक सम्बंध मधुर तथा गतिशील होते हैं ।

जो विशिष्टता इस केन्द्र को सर्वाधिक आकर्षित करती है—वह हमारा अपना परिवेश-पर्यावरण है । इस परिवेश में नदी, निर्झर, उपवन, वृक्ष, वनस्पतियाँ पशु-पक्षी, विराटब्रह्माण्ड सभी आ जाते हैं । मनोवैज्ञानिकों ने मन तथा परिवेश के पारस्परिक भावनाशील संबंधों को अपनी भाषा में "साइकिक रिलेशन बिटविनन मैन एण्ड द इनवायरनमेण्ट" कह कर निरूपित किया है ।

इसी मानसिक स्तर में चेतना के ऊपरी धरातल पर आरोहण और विकास की असीम सम्भावनाएँ समायी हुई हैं । इसकी परिपक्वता और दृढ़ता तथा ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्ति सिद्ध होने पर ही इन सम्भावनाओं को मूर्त होना ही पड़ता है । इसी प्रक्रिया में बिखराव आने पर, मणि माला के सूत्र टूट जाने पर उर्धवगमन की संभावनाएँ समाप्त हो जाती हैं ।

आज मनुष्य ऐसी ही बिखराव की स्थिति में जी रहा है । कुछ अपने व्यक्तित्व की मणियों को बिखेर चुके हैं, कुछ बिखेर रहे हैं और कुछ बिखरने वाले हैं । इस बिखराव को मन:चिकित्साविदों ने "मनोव्यथा" का नाम दिया है ।

विकास तथा वैज्ञानिकता की प्रगति की प्रक्रिया के साथ ही मानव अपनी इन अमूल्य मणियों को खोकर मनोशारीरिक रोगों, मनोविकारों से ग्रसित होता जा रहा है ।

मानसिक स्तर पर बढ़ता बिखराव मन:चिकित्सकों को ही नहीं, विश्व मनीषा के लिए चिन्ता का विषय है । इटली में ट्रिस्टे के 'ओस्पेडेले साइकियाट्रिको' में कार्यरत मनोअध्येता-फ्रांको बासाज्लिया तथा गौस्ताद साइकियाट्रिक हास्पिटल ओस्लो के मनोचिकित्सक स्वेन हौग्सग्जर्ड ने अपने विस्तृत अध्ययन तथा विभिन्न भूभागों के मनोरोगियों के सर्वेक्षण के आधार पर स्पष्ट किया है "इस तरह रोगियों की बढ़ती जा रही दर का कारण परिवेश में, पर्यावरण में उत्पन्न की गयी विकृतियाँ हैं । परिवेश की इस परिधि में समाज एवम् वातावरण दोनों ही समाहित हैं ।"

मनोविद् डोरोथी हॉफमैन 'वर्ल्ड हेल्थ आर्गनाइजेशन' की पत्रिका 'वर्ल्ड हेल्थ' के अप्रैल १९८८ में प्रकाशित अपने निबन्ध 'हेल्दी माइण्ड-हेल्दी बाडी' में स्पष्ट करती है कि मानसिक स्तर का स्वस्थ व सुगठित रहना इस बात पर निर्भर है कि पर्यावरण के साथ इसका समन्वयात्मक सामंजस्य रहे । वे कहती हैं कि "मानसिक गड़बड़ियाँ इसी कारण बढ़ रही हैं कि हम अपने आपसी रिश्ते तोड़ते जा रहे हैं ।" येले विश्वविद्यालय अमेरिका के प्रोफेसर डा. बेरनी सेशेल ने भी उपरोक्त मत का समर्थन करते हुए कहा है कि "पनप रही संकीर्णता के कारण भावनात्मक सम्बन्धों का टूटना ही आज की समस्याओं का एकमात्र कारण है ।"

मानसिक स्तर में बिखराव के प्रमुख कारक ये घटक कौन से हैं ? इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए रशियन चिन्तक एण्टोली गोरेलोव व अलेक्जैंडर शातालोप अपने विचारपूर्ण लेख "मैन एण्ड इन्वायरनमेण्ट मेथॉडोलॉजिकल आस्पेक्टस आफ प्रॉब्लम" में स्पष्ट करते हैं कि "मनुष्य के जैविक आयाम, सामाजिक आयाम के साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही एक और इकालाजिक आयाम भी है । ''इन तीनों के साथ उसका एक सा भावनात्मक सम्बन्ध है । इनमें से किसी के भी टूटने से गड़बड़ी का होना स्वाभाविक ही बन पड़ता है । इन त्रिविध आयामों के सम्बन्धों का तात्पर्य है—''जिस तरह मनुष्य अपने शरीर के साथ जुड़ा हुआ है, उसी तरह अन्य दोनों के साथ भी । शरीर की तरह अन्य दो के प्रति भी उसके उतने ही दायित्व हैं ।''

इन चिन्तकों का उपरोक्त कथन कुछ अस्वाभाविक सा प्रतीत होने पर भी पूर्णतया यथार्थ है । अभी तक प्राय: रिश्ते नाते की बात मानवीय प्रगति तक समझकर ही सन्तोष कर लिया जाता रहा है । इन्हीं के साथ भावपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की बात भी सोची गई है । किन्तु गम्भीर स्तर पर विचार करने पर पर्यावरण के साथ भी उतने ही भावनात्मक स्तर की बात समझ में आने लगती है ।

यों तो मैक्स प्लांक, थ्रोडिंजर, हेनरी स्टैप के द्वारा की गई परमाणु जगत की खोजों तथा आइन्सटीन के सापेक्षिकता के सिद्धान्त ने सम्पूर्ण विश्व के साथ एकता का वैज्ञानिक व प्रायोगिक प्रतिपादन सुस्पष्ट रूप से किया है । किन्तु पर्यावरण के साथ भावनात्मक सम्बन्धों की बात अब मनोवैज्ञानिक सुस्पष्ट रूप से स्वीकारने लगे हैं । यह सम्बन्ध एकतरफा नहीं है । पर्यावरण के विविध घटक मानव समाज से उससे भी कहीं अधिक लगाव रखते हैं ।

मनीषीगण कहते हैं कि मानव समाज जिस तरह अपने दैनन्दिन जीवन में, पारस्परिक व्यवहार में सामाजिक नीति-नियमों का पालन करता है, उसी तरह पर्यावरण नीति का भी पालन किया जाना चाहिए । इन अध्येताओं ने स्पष्ट किया है कि पर्यावरण नीति को विस्मृत करने के कारण उत्पन्न विकृत मानसिकता ने सामाजिक नीति को भी विस्मृत करना प्रारम्भ ही नहीं, अपनाना शुरू कर दिया है ।

नीति को विस्मरणीय मान बैठने का परिणाम येले विश्वविद्यालय, अमेरिका के प्राध्यापक ख्याति प्राप्त मनोविद् 'एरिक फ्राम' अपनी कृति 'मैन ऑन हिम सेल्फ एन इन्क्वारी इन टू द साइकोलॉजी आफ इथिक्स' में बताते हैं कि आज के मनोरोग इसी मान्यता की उपलब्धि हैं । उन्होंने पुस्तक की भूमिका में ही स्पष्ट किया है कि मनोव्यथा इस बात का लक्षण है कि कहीं नैतिक मूल्यों को अस्वीकारा गया है । आज के परिप्रेक्ष्य में सबसे बड़ा अस्वीकरण है पर्यावरण नीति का उच्छृंखलतापूर्वक उल्लंघन ।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा. लेबी उपर्युक्त तथ्यों को स्वीकार करते हुए 'अण्डर स्टैण्डिंग मेण्टल इलनेस' में कहते हैं कि ''मनोव्याधि एक रहस्य है जिसका उद्घाटन और निवारण तभी सम्भव है जबकि मानव और पर्यावरण के मध्य के मानसिक संबंध उद्घाटित और स्थापित हों ।''

इसके बिना मनोरोगों की बाढ़ का रुकना पूर्णतया असम्भव बताते हुए ब्रिटिश रायल कालेज आफ साइकिएट्रा के संस्थापक अध्यक्ष प्रो. सर मार्टिन रुथ 'साइकियाट्री एण्ड इट्सक्रिटिक्स' में कहते हैं—''प्रचलित मनोचिकित्सा के विरोध में एक आन्दोलन चलाने की आवश्यकता है क्योंकि यह उद्देश्यविहीन और अवैज्ञानिक है ।''

डा. डेविड लेवी यह भी स्पष्ट करते हैं कि—''पर्यावरण के घटकों के साथ भावनात्मक सम्बन्धों की बात कहने भर से काम न चलेगा । इसके लिए एक ऐसी बिहेवियर थेरेपी स्पष्टतया समझानी होगी, जिसके द्वारा मानव स्वयं अपनी प्रजाति तथा पर्यावरण के साथ बिगड़े सम्बन्धों को मधुर बना सके ।''

मानसिक बिखराव के इस बढ़ते स्तर तथा प्रचलित चिकित्सा उपायों की असफलता के आँकलन से मानवीय कृति की विकृति प्रमाणित हो जाती है । स्वस्थ, समुन्नत और सुदृढ़ जीवन का सहज अर्थ है—इसके सभी आयाम सुगठित हों । शारीरिक विकृति जहाँ मानव विशेष के अस्तित्व को विनष्ट करती है वहीं सामाजिक विकृति पूरे समाज को नष्ट कर देती है । पर्यावरण की विकृति का क्षेत्र तो और भी अधिक विस्तृत है ।

पर्यावरण के साथ मानवीय भावनात्मकता भी अधिक है । हारवर्ड विश्वविद्यालय के डॉ. जेम्स डी. वेनरिस 'टुवार्ड ए सोशियोबायोलाजिक थ्योरी आफ द इमोशन्स' में कहते हैं—पर्यावरणीय अनुकूलता या प्रतिकूलता हमारी भावनाओं में अनुकूल या प्रतिकूल परिवर्तन लाने वाली होती है । उदाहरणार्थ—किसी सूखे पीड़ित क्षेत्र में, जहाँ का इकोसिस्टम ध्वस्त हो चुका है, जाने पर मन सहज ही क्षुब्ध हो जाएगा । किन्तु किसी सुरम्यघाटी में, जिसका इकोसिस्टम समृद्ध है, में जाने पर क्षुब्ध मन भी सहज प्रसन्न हो जायेगा । इसी मनोवैज्ञानिक घनिष्टता के कारण ही हिमालय को, उत्तराखण्ड को धरती के स्वर्ग के नाम से जाना जाता रहा है । डॉ. वैनरिच के अनुसार सूखे वन-जल विहीन जगह पर जाने पर जो अवसाद होता है, वह लगभग किसी मित्र की मृत्यु जैसा ही है ।

यदि यह घनिष्टता इतनी अधिक है तो सम्बन्धों की मधुरता कैसे नष्ट हुई ? इस विचारणीय प्रश्न का हल पोस्ट ग्रेजुएट सेण्टर फार मेण्टल हेल्थ न्यूयार्क के सह निदेशक हेनरी केलर मैन 'इमोशन्स एण्ड परसनाल्टी स्ट्रक्चर' में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि बौद्धीकरण ही वह विष है जिससे भावनाओं में जहर-घुला और मधुरता विषाक्त हुई ।

यह हलाहल कैसे मिटे, कैसे दुर्गति को उलटकर सही मार्ग पर आया जाय, इसके लिए पश्चिमी मनीषी मनोविज्ञान के इस क्षेत्र में भी चिन्तन का आधार भारतीय वाङ्मय में पाने का प्रयत्न कर रहे हैं । मिल हिस्ट्री आफ इण्डिया के खण्ड २ के पृष्ठ ४७ में एच.डब्लू. विल्सन के अध्ययन को उन्हीं के शब्दों में कहते हैं कि ''भारतीय ऋषि गहन चिन्तक थे, उन्हें पादपों व अन्य पारिस्थितिकी घटकों तथा स्वयं के बीच मानसिक सम्बन्धों का परिपूर्ण ज्ञान था ।'' इसकी साक्षी स्वरूप वैदिक ऋषि श्वेताश्वेतर तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुण्डक उपनिषद (२:१:३), प्रश्न उपनिषद (६:९), छान्दोग्य (८:१४) में आकाश को जीवनरक्षक बताते हुए उससे मन की उन्नति का कारण मानता है ।

इसी तरह ऋग्वेद का ऋषि प्रथम मण्डल के २३वें सूक्त के २०वें मंत्र में जल को तृषा की तृप्ति के साथ मानसिक सुख एवम् शांति का प्रदाता भी बताता है । यही नहीं इसी के ६वें मण्डल ५०वें सूक्त के ७वें मंत्र में स्पष्ट करता है कि "हे जल ! तुम मनुष्यों के घनिष्ट मित्र हो, उन्हें जीवन रक्षा के साथ मानसिक शान्ति भी प्रदान करते हो ।"

जल के साथ मानसिक शान्ति की अभिन्नता बताते हुए अथर्ववेद का ऋषि १९वें मण्डल के दूसरे सूक्त के प्रथम व द्वितीय मंत्र में कहता है—"हे मनुष्य! सुन्दर पहाड़ों से निकलता जल तुझे शान्ति प्रदाता सिद्ध हो, झरने तुझे मन: शान्ति की गहराई में ले जाएँ, बरसात में बरसता पानी तेरे लिए मन के सारे उद्वेगों को शांत करने वाला हो ।"

जल की तरह वायु के बारे में भी ऋषि कहता है—"हे वायु ! तुम अपने प्रवाह के साथ स्वास्थ्य देने तथा मन: सन्ताप हरने वाले हो ।"

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण के प्रति ऐसे ही उदात्त भाव स्थान-स्थान पर बिखरे हैं । इन्हीं भावों को वर्तमान की सर्वाधिक अनिवार्यता बताते हुए डा. राबर्ट डिश 'द इकोलॉजिक कानसिएन्स वैल्यू फार सरवाइवल' में कहा है—"मानसिक स्तर के विकास तथा सारी व्यथाओं से मुक्त होने के लिए इन्हीं भावों से युक्त 'इकोलॉजिकल साइंस' जिसे व्यवहार विज्ञान की भाषा में 'डेप्थ इकॉलॉजी' कहा जा सकता है—विकसित करने की भारी आवश्यकता है ।

निस्सन्देह पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ रही है एवं उसके आध्यात्मिक पक्ष को समझते हुए व्यक्ति ने यह अनुभव किया है कि आज के युग में शांति लानी है, भावी महाविनाश को रोकना है, उन्मादग्रस्त मन:स्थिति की विडम्बना से मुक्ति पानी है तो उन मधुर संबंधों को पुन: स्थापित करना होगा जो मानवीय अंत:करण मानव शरीर को उसके चहुँओर के पयावरण से जोड़ते हैं । इन सूत्रों के जुड़ जाने से व्यक्तित्व का बिखराव रुकेगा तथा एक तनाव रहित, प्रगतिशील मानवजाति विकसित होगी जिसका लक्ष्य होगा—"वसुधैव कुटुम्बकम् ।"

काल को पाटी से बाँधें, सफल बनें

रावण भी अन्यान्य साधारण मनुष्यों की तरह ही था, पर उसने कौशल इतने अधिक प्रकार के उपलब्ध कर लिए थे कि उसे दस सिर वाला कहा जाता था । दस सिर वाला कोई मनुष्य आज तक न जन्मा है और न भविष्य में जन्म सकेगा, यह मानवीकाय विज्ञान के विपरीत है । दशानन उसका अलंकारिक नाम था, जिससे एक ही संदेश समझा जा सकता है कि उसकी बौद्धिक क्षमता अन्यान्यजनों की तुलना में दस गुनी अधिक थी । उसी के आधार पर वह बलिष्ठता, सम्पदा, पराक्रम, कूटनीति आदि की अनेकानेक विशिष्टताएँ उपार्जित और हस्तगत कर सका था । सर्वविदित है कि मानसिक विशिष्टता ही अनेकानेक शक्ति सम्पदाओं को अर्जित करने में समर्थ होती है । रावण का बुद्धि कौशल असाधारण रूप से बढ़ा-चढ़ा था । इसी तथ्य का प्रतिपादन उसे दशानन नाम देकर किया गया है ।

पुलस्त्य ऋषि के साधनरहित तपोवन में उत्पन्न होने पर भी रावण किस प्रकार इतने प्रकार की सिद्धि-सफलताएँ अर्जित कर सका, यह एक टेढ़ा प्रश्न है । आज के समय में तो सामाजिक ढाँचा भी ऐसा है कि उसमें एक दूसरे की सहायता से ही प्रगति पथ पर तेज़ी से आगे बढ़ा सका जा सकता है । इन दिनों अर्थतंत्र और विज्ञान विद्या भी पहले की अपेक्षा अनेक गुनी बढ़ी-चढ़ी है । ऐसी दशा में यदि कोई मनुष्य किन्हीं क्षेत्रों में असाधारण प्रगति कर सके, अधिक समर्थ-सम्पन्न बन सके तो इसमें कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है । प्रगतिशीलों की विधि-व्यवस्था, रीति-नीति को बारीकी से समझने पर उसका अनुकरण भी किया जा सकता है, पर पुराने समय में तो ऐसा भी कुछ नहीं था । सुदूर क्षेत्रों में जहाँ-तहाँ छोटे-छोटे गाँव बसे थे । यातायात के कार, वाहन के साधन भी नहीं थे । प्रेस पुस्तकों की अब जैसी सुविधा भी नहीं थी । विशेषज्ञता प्राप्त कराने वाले महाविद्यालय भी कहाँ थे ? ऐसी परिस्थितियों में पूजा उपासना के क्षेत्र में तो कोई व्यक्ति अपनी गतिविधियाँ चलाता और आत्मिक प्रगति करता रह सकता था, पर भौतिक क्षेत्र में वैसी प्रगति कैसे संभव हो सकती थी जैसी कि रावण ने की । उन दिनों ऐसे उदाहरण भी जहाँ-तहाँ सुदूर क्षेत्रों में ही देखने को मिलते थे, जिनसे प्रेरणा और प्रकाश ग्रहण करके कोई अपने लिए विशेष मार्ग निर्धारित करता ।

प्रश्न उठता है कि जब उन दिनों ऐसी ही परिस्थितियाँ थीं और भौतिक प्रगति के कोई बड़े आधार अवलम्बन सामने नहीं थे तो फिर वैसी चमत्कारी प्रगति रावण से कैसे बन पड़ी जिससे कि वह अपनी सुरक्षित राजधानी समुद्र के बीच घिरे हुए एक टापू पर बना सका । सोने के महल बना सका और इतनी साधन-सामग्री जुटा सका जो उन दिनों की परिस्थितियों को देखते हुए अभूतपूर्व ही कही जा सकती है ।

रावण की प्रगति का केन्द्रबिन्दु था उसका समय के एक-एक क्षण का तत्परता और तन्मयता भरा उपयोग । इसी का पुराणों में इस प्रकार उल्लेख है कि उसने काल को पाटी से बाँध रखा था । स्थूल दृष्टि से यह कथन भी अविश्वस्त लगता है । 'काल' अर्थात् समय तो एक प्रगति क्रम की विधा है, जिसे घड़ी जैसे यंत्रों के माध्यम से नापा जाता है रस्सी से तो निकटवर्ती प्रत्यक्ष वस्तुएँ ही बाँधी जा सकती हैं । जानवरों को खूँटे से बाँधा जा सकता है । पर काल को, समय को कोई किस प्रकार बाँधे ? वह तो अनवरत क्रम से प्रवाहवान ही रहता है । उसे अवरुद्ध कर सकना किसी के वश की बात नहीं । हवा रोशनी को किसी प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रोका भी जा सकता है, पर समय को अवरुद्ध कर रखना किसी के वश की बात नहीं । सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि की गति को कोई किस प्रकार रोक सकेगा ? यदि यह संभव नहीं तो काल को रावण भी चारपाई की पाटी से कसकर बाँध सका होगा ? यह बात समझ से बाहर की ही रहेगी ? वस्तुत: काल को पाटी से बाँधे रखने का अभिप्राय है, समय के साथ जीवनक्रम का इस प्रकार तालमेल बिठाना जिसमें एक क्षण भी व्यतिरेक न होने देना । यही है विधा, जिसे काल को पाटी से बाँध कर रखना जैसा अलंकारिक प्रतिपादन करना कहा जा सकता है ।

लोग दृश्यमान वस्तुओं का ही मूल्यांकन कर सकने में समर्थ होते हैं । सोना, चाँदी, वस्त्र, आभूषण, जमीन, घर, पशु आदि दृश्यमान वस्तुओं की ही कीमत आँकी जाती है प्रियजनों, परिचितों के संबंध में भी चर्चा होती रहती है । व्यवसाय निर्माण में चर्चा होती रहती है । पर कोई यह नहीं सोचता कि उनकी अनमोल जीवन सम्पदा का किस प्रकार व्यतिरेक हो रहा है । जीवनीशक्ति किस प्रकार निरर्थक कामों के कुचक्र में पड़कर चुकती चली जा रही है ।

न किसी को आत्म-सम्पदा के उत्थान-पतन का ज्ञान है और न विचारों की प्रचंड शक्ति का आभास । ये अप्रत्यक्ष रहने वाली महान क्षमताएँ निरर्थक प्रयोजनों में उलझी रहती हैं और अपनी पूँजी समाप्त करती रहती हैं । फलत: लम्बे समय जीने वाला मनुष्य भी कोल्हू के बैल की तरह जिन्दगी के दिन ही किसी प्रकार पूरे कर पाता है । होश तब आता है जब जोश-आवेश समाप्त हो जाता है । मरणबेला के निकट पहुँचने पर जब पीछे की ओर मुड़कर देखा जाता है तब प्रतीत होता है कि बहुत कुछ कर सकने की सामर्थ्य हाथ में थी, पर वह उपेक्षित पड़ी रही । आलस्य-प्रमाद में, लोभ-मोह में वह सम्पदा चुक गई, जो परमेश्वर की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति थी और जिसके सदुपयोग बन पड़ने पर कुछ से कुछ बन सकना संभव हो सकता था ।

पुरुषार्थ की प्राय: सराहना होती रहती है, पर यह तथ्य विरलों को ही विदित है कि आखिर पुरुषार्थ है क्या ? उसकी विवेचना इसी रूप में हो सकती है कि समय को योजनाबद्ध रूप से तन्मयता और तत्परतापूर्वक प्रयोग किया जाय । जिसने इस रहस्य को समझ लिया और अपनी क्षमताओं का अभीष्ट प्रयोजन के लिए नियोजन सीख लिया, समझना चाहिए कि उसने काल को पाटी से बाँध लिया ।

रावण ने जो असाधारण क्षमताएँ, कुशलताएँ अर्जित कीं उसके पीछे एक ही रहस्य था कि समय के हर क्षण का निर्धारित प्रयोजन के लिए नियोजित किये रहना । सम्पूर्ण विचारशक्ति और श्रमशक्ति को एक ही केन्द्र पर केन्द्रीभूत किये रहना । इतना कर सकने वाले हर व्यक्ति को अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकने में असाधारण सफलता मिलकर रहती है ।

संसार में कितने ही महापुरुष हुए हैं जो तीस वर्ष जितनी आयु में ही कूच कर गये । ऐसे लोगों में विवेकानंद, रामतीर्थ, मिल्टन, आद्यशंकराचार्य, ईसा आदि के नाम ही ऐसे हैं जो अधेड़ बनने से पहले ही इस संसार से चले गये । किन्तु इतने ही दिनों में उतने काम कर लिए जितने कि परिश्रमी लोग भी सौ वर्ष की अवधि में नहीं कर सकते । इसके विपरीत जो लम्बी जिन्दगी जिये वे भी कुछ न कर पाये और जिन्दगी गँवा बैठने की शिकायत करते रहे । इसका कारण एक ही है कि उन्होंने समय का मूल्य नहीं समझा और उसे योजनाबद्ध रूप से अभीष्ट प्रयोजनों में निरत करते रहने का क्रम न बन पड़ा । समय की बरबादी प्रकारान्तर में जीवन की बरबादी ही है ।

काम में मन न लगने की शिकायत वे ही लोग करते देखे गये हैं जो समय का दैनिक क्रम-चक्र बनाने पर ध्यान नहीं देते । जिन्होंने अपनी दिनचर्या विवेकपूर्वक बनाई और उसे सतर्कतापूर्वक कार्यान्वित करने में तत्परता बरती, उनके लिए यह सरल संभव हो गया कि निर्धारित मार्ग पर अनवरत चलते रहने में मन लगे । रस आने लगे । कार्य की बारीकियों में प्रवेश करने और उसे सर्वोत्तम ढंग से कर सकने के लिए उत्साह उभरे ।

इतना बन पड़ने पर प्रगति का अवरुद्ध मार्ग खुल जाता है और सफलता की दिशा में द्रुतगति से आगे बढ़ सकना सहज संभव होता है ।

विश्व इतिहास के चमकदार व्यक्तित्वों पर दृष्टिपात किया जाय और यह जाँचा जाय कि वे सामान्य एवं कठिन परिस्थितियों के बीच भी किस प्रकार अपने लिए अग्रगमन का मार्ग बना सके तो एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि उन्होंने समय का श्रेष्ठतम उपयोग किया है । एक क्षण भी निरर्थक बातों में नष्ट न होने दिया । नींद के घण्टों को छोड़कर वे अपनी नियत क्रियापद्धति में तत्परतापूर्वक संलग्न रहे । हाथ में लिए काम को भली प्रकार पूरा करना उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाया । उसमें इतना रस लिया कि समूची इच्छाशक्ति उसी पर केन्द्रीभूत हो गई । काम न रहने पर उन्हें ऐसा लगता रहा मानो जीवनाधार का कोई महत्त्वपूर्ण अंश हाथ से छिन गया ।

मन न लगने का, चित्त उचटने का, आवारागर्दी में समय काटने का अवसर तब आता है जबकि कोई लक्ष्य सामने नहीं होता । किसी योजना के साथ अपने आप को कसकर बाँधा नहीं गया होता । महत्वाकांक्षाएँ तब बुरी होती हैं जब वे किसी निकृष्ट प्रयोजन के लिए मचलें । यदि उपयोगिता की कसौटी पर खरी उतरने वाली गतिविधियों में संलग्न रहकर ऊँचा उठने, आगे बढ़ने और उच्चस्तरीय सफलता के शिखर पर पहुँचने की आकांक्षा हो तो उसे सराहा ही जायेगा । ऐसे सराहे जाने योग्य व्यक्तियों ने सबसे पहला काम यह किया है कि समय का मूल्य समझा, उसके सुनियोजन के प्रतिफल पर विचार किया और अन्तत: इसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्णय पर पहुँचे कि समय के एक-एक क्षण को मणि-मुक्तकों से भी अधिक मूल्यवान समझकर उसका परिपूर्ण तत्परता के साथ श्रेष्ठतम् सदुपयोग किया जाय ।

चर्चा रावण की प्रगति से आरंभ हुई थी और बताया गया था कि उसने काल को पाटी से बाँध रखा था । इसी कारण उसे अभीष्ट मनोरथ पूरे करने का अवसर मिला । यह तथ्य हर किसी के लिए समझने योग्य है । साथ ही यह भी ध्यान रखने योग्य है कि हेय प्रयोजनों के साथ अपने आपको न जोड़ा जाय अन्यथा उपलब्ध हुई प्रगति विनाशकारी परिणाम उत्पन्न करेगी । रावण से यही भूल हुई कि वह शक्ति के मद में अपना होश गँवा बैठा और उस कुमार्ग पर चल-पड़ा, जिस पर चलने वाले पतन के गहरे गर्त में गिरते और अपना-पराया सर्वनाश करते हैं । यदि उसने यह भूल न की होती तो वह संसार के श्रेयाधिकारी महामानवों में से एक होता । क्षमता—गाँधी, बुद्ध जैसे महामानवों में भी सामान्य ही थी, उन्होंने उसका श्रेष्ठतम् सदुपयोग किया और वह कर दिखाया जिससे समूची मानवता कृतकृत्य हो गई । सम्राट अशोक ने अपने साधनों को, कौशलों को धर्म चक्र प्रवर्तन के निमित्त लगाया था । उसका प्रतिफल यह हुआ कि समूचे संसार में श्रेष्ठता की पक्षधर एक महाक्रांति प्रस्तुत हो गई । जो हैं, जिन्होंने भी इस संसार में कुछ कहने योग्य कार्य किये हैं, उन्होंने समय का श्रेष्ठतम सदुपयोग किया है । यही हमें भी करना चाहिए ।

प्रतिभा, जागरूकता और तत्परता की परिणति

नीतिशास्त्रियों के अनुसार व्यक्तित्व के निर्माण में मनोनुकूलता (एप्टीट्यूड) का भी योगदान होता है । व्यक्तित्व के विकास एवम् निर्धारण में सन्तुष्ट मन की असाधारण भूमिका होती है । सर्वविदित है कि श्रेष्ठ कलाकार, संगीतकार, साहित्यकार, वैज्ञानिक अपनी साधना में इतनी तत्परता व मनोयोग से निरत रहते हैं कि उन्हें बाह्य दुनिया की उतनी परख नहीं रहती जितनी कि अपनी आन्तरिक आकांक्षा को पूर्ण करने की । तन्मय बने रहने से बाह्य व्यवधानों एवं आकर्षणों का प्रभाव भी उतना नहीं पड़ता । एक निश्चित दिशा में अपने चिन्तन एवं क्रिया-कलाप को लगाये रखने पर भटकाव की भी गुंजाइश नहीं रहती । मनोनुकूलता श्रेष्ठ व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक सिद्ध होती है ।

किसी कार्य विशेष में शीघ्रातिशीघ्र दक्ष हो जाना इस बात का परिचायक है कि उस विषय में उस व्यक्ति की मनोनुकूलता है । मनोनुकूलता और जन्मजात क्षमता में अन्तर है । तीव्र बुद्धि और मनोनुकूलता से कोई सम्बन्ध नहीं है । यह आवश्यक नहीं कि जिस व्यक्ति की बुद्धि तीव्र अधिक है वह कार्य में निपुणता एवं सफलता प्राप्त कर ही ले ।

मनोनुकूलता और रुचि में भी अन्तर होता है । सम्भव है कोई व्यक्ति संगीत में रुचि रखता हो पर उसमें मनोनुकूलता न हो । वस्तुतः यह एक मानसिक प्रवृत्ति है जो किसी काम विशेष में व्यक्ति को पूरी तरह तत्पर रहने के लिए प्रेरित करती है और सफलता के लक्ष्य तक पहुँचाकर रहती है ।

जेम्स मैकेन्जी कहते हैं—"प्रगति के लिए जहाँ जानकारी, परिस्थिति, प्रतिभा, सुविधा आदि की आवश्यकता है, वहाँ मनोनुकूलता की और भी अधिक है । इच्छा करते रहने या मान्यता बना लेने मात्र से काम नहीं चलता वरन् मन को अभीष्ट लक्ष्य में समुचित रस लेने लगने के लिए भी प्रशिक्षित, अभ्यस्त किया जाना चाहिए । यही है वह मनोनुकूलता जो समग्र तत्परता के साथ अभीष्ट प्रयोजन में जुटाने और सफल बनाने में प्रमुख भूमिका निभाती है ।"

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षाविद् हरवार्ट महोदय ने चारित्रिक विकास के लिये 'श्रेष्ठ नैतिक विचारों' को बहुत महत्त्वपूर्ण बताया है । वे सद्विचारों के निरन्तर सम्पर्क में रहने और स्वाध्याय के साधन जुटाने पर बल देते हुए कहते हैं कि जब सद्विचारों के फलस्वरूप उनमें रस आने लगता है जो आचरण में आने पर चरित्र का निर्माण करते हैं । उनका कहना है कि मनुष्य के आचरण और चरित्र के विकास के लिए उसका उत्कृष्ट एवम् भले विचारों के सम्पर्क में रहना आवश्यक है । व्यक्ति के भले-बुरे कार्यों के हेतु उसके श्रेष्ठ-निकृष्ट विचार ही होते हैं । सद्विचारों से व्यक्ति की पाशविक वासनाएँ विवेकपूर्ण भावनाओं, इच्छाओं में बदलती चली जाती हैं और व्यक्ति देवोपम बन जाता है ।

"मानवीय मस्तिष्क कोरे कागज के समान है, उस पर कुछ भी लिखा जा सकता है । भीतर से तो प्रेरणाएँ भर उठती हैं । उन्हें दिशा देने तथा व्यवहार में उतारने का ताना-बाना विचारतन्त्र द्वारा ही बुना जाता है । इसकी व्यवस्था न की जाय तो व्यक्ति भटकता ही रहेगा और यह न समझ सकेगा कि आज की परिस्थितियों में सत्प्रेरणाओं को क्रियान्वित करने के लिए उसे क्या और कैसे करना चाहिए ।"

विचार विस्तार इन दिनों एक कंटकाकीर्ण जंगल की तरह उग पड़ा है । अनैतिक और अवांछनीय विचारों की बाढ़ तूफानी गति से आई है । साहित्य, चित्रकला के क्षेत्र में तो हानिकारक उत्पादन हुआ ही है । प्रचलन में भी ऐसे ही विचार व्यवहृत होते देखे जाते हैं जिन्हें अनैतिकता, कुरुचि की सड़ी-गली संरचना कहा जा सके ।

समय का प्रवाह नीति-निष्ठा के पक्ष में नहीं है । जो हवाएँ बह रही हैं, वे नमी को सुखाने वाली और छत्त-छप्परों को उड़ा ले जाने वाली ही सिद्ध हो रही हैं । ऐसे समय में मानवीय गरिमा को बना सकने में एक ही उपाय कारगर हो सकता है कि आदर्शवादिता के पक्षधर विचारों का न केवल उत्पादन किया जाय वरन् उन्हें जन-जन के मन-मन तक पहुँचाने का व्यापक एवं समर्थ प्रयास क्रम भी अपनाया जाय ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन तो भगवान का दिया हुआ है पर उसे दिशा देने और किसी परिणाम पर पहुँचने की पूरी-पूरी जिम्मेदारी चिन्तन चेतना की है । उसी के अनुरूप व्यक्ति बनते, बढ़ते और बदलते हैं । पेट की भूख बुझाने में जो स्थान आहार का है वही मानसिक एवम् भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति में विचार सम्पदा का । अभक्ष्य खाने पर रुग्णता एवं अकाल मृत्यु का संकट सामने आ खड़ा होता है । अचिन्त्य चिन्तन को उत्साहित करने वाले कुविचार भी प्राय: ऐसा ही संकट उत्पन्न करते और पतन-पराभव के गर्त में धकेलते देखे जाते हैं ।

कार्लजुंग ने उच्च लक्ष्य की ओर चलने वालों को अपना गन्तव्य सुनिश्चित कर लेने पर बहुत जोर दिया है । उनका कथन है—

"अधिकांश व्यक्तियों का कोई लक्ष्य नहीं होता । वे हवा के रुख में उड़ने वाले तिनके पत्तों की तरह कभी इधर कभी उधर उड़ते-भटकते देखे जाते हैं । अनेकानेक आकर्षण अनेकानेक परामर्श सामने आते रहते हैं इनमें से किन्हें अपनाया जाय ? किन्हें छोड़ा जाय इसका निर्भीक निर्धारण न होने से कभी एक ओर बढ़ना, कभी मुड़ना, उलटकर चलने लगने जैसी विक्षिप्त विचित्रता कार्यान्वित होती रहती है । ऐसे लोग बढ़ तो किसी भी दिशा में नहीं पाते । भटकावजन्य थकान और खाली हाथ रहने की निराशा मन को खिन्न उद्विग्न किये रहती है ।"

"विडम्बना के कुचक्र में उलझे रहने की अपेक्षा यह उत्तम है कि जीवन का लक्ष्य निश्चित किया जाय और फिर उसकी पूर्ति के लिए अपनी योग्यता के अनुरूप छोटे शुभारम्भ से प्रयास आरम्भ कर दिया जाय ।"

"एक रास्ते पर चलने वाले ही व्यवहार क्षेत्र की प्रगति में सफलता पाते हैं । विद्वान, पहलवान, कलाकार स्तर की कहने योग्य सफलताएँ उन्हीं को मिली हैं जिन्होंने एक लक्ष्य स्थिर किया और बिना मन डुलाये निर्धारित मार्ग पर चलता रहा उसे हर काम में अभीष्ट सफलता मिली है । छोटे आकार वाली चींटी भी लक्ष्य के प्रति उत्साह और प्रयास में मनोयोग सँजोये रहने पर ऊँचे पर्वत शिखर पर जा पहुँचती है ।"

"लक्ष्य के अनुरूप चिन्तन, चिन्तन के अनुरूप पुरुषार्थ, पुरुषार्थ के अनुरूप सहयोग एवं साधनों का एकत्रीकरण तदुपरान्त सफलता का श्रेय । इसी प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए सामान्य स्तर के लोग आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त करते रहे हैं ।"

"व्यक्तित्व की श्रेष्ठतापरक प्रगति को महत्व देने वाले आधी अधूरी कल्पना नहीं करते रहते वरन् लक्ष्य तक पहुँचने का संकल्प करते हैं और उस पर व्रतशील होकर जुट जाते हैं । जिसने अपने में इतनी साहसिकता जगा ली उसकी सफलता की आधी मंजिल पूरी हो गई । अवरोधों और अभावों से जूझना, परिश्रम और मनोयोग को अधिकाधिक प्रखर करना यों प्रत्यक्षत: सफलता के निमित्त कारण-समझे जाते हैं किन्तु इससे भी बड़ी बात है लक्ष्य का निर्धारण । आदर्शवादी प्रगति के लिए तो इस प्रकार की व्रतशीलता नितान्त आवश्यक है । इस प्रकार का निश्चय यदि जीवन के आरम्भिक दिनों में किया जा सके तो प्रगति के लिए पर्याप्त अवसर मिल जाता है । वैसे इस प्रकार के निर्धारण जब भी किये जा सकें तभी सराहनीय श्रेयस्कर परिणाम उत्पन्न करने आरम्भ कर देंगे ।"

लार्क एल हाल ने अपने ग्रन्थ 'प्रिंसिपल्स ऑफ बिहेवियर' में नीतिनिष्ठा की गरिमा बताते हुए लिखा है—"आचरण की सर्वोत्तम अवस्था वह मानी गई है जिसमें मनुष्य विवेकपूर्ण कार्यों को ही करता है । विवेक उसका मार्गदर्शक होता है । नैतिक दृष्टि से विकसित आचरण वाला व्यक्ति औचित्य, अनौचित्य का निर्णय अपने स्वतन्त्र विचार से करता है । उसको समाज के अनेक विरोधी रीति-रिवाजों और नियमों में से सर्वोत्तम का तात्कालिक परिस्थितियों के अनुसार चुनाव करना होता है । उच्चस्तर का आचरण उन्हीं का माना जाता है जिनमें स्वतन्त्र विचार करने की क्षमता एवं तदनुरूप कार्य करने की योग्यता होती है । नैतिक सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करना सर्वश्रेष्ठ साहस माना गया है । संसार के महामानव अपने स्वतन्त्र चिन्तन, नीति निर्णय एवं आदर्शवादी कार्य पद्धति के बल पर ही आगे बढ़े हैं ।"

"सदाचार समर्थक विचारों को पढ़ना उस प्रकार के उपदेशों को रुचिपूर्वक सुनना एक सराहनीय अभिरुचि है । पर इतने भर से काम कुछ नहीं बनता । आदर्शों को अपनाने, उन्हें व्यवहार में उतारने के लिए एक विशेष प्रकार के साहस की आवश्यकता पड़ती है जो भौतिक क्षेत्र के साहसियों से भिन्न प्रकार का होता है । कठिन कार्यों में धैर्य, साहस, उत्साह दिखाने वाले और अवरोधों की चिन्ता किये बिना हाथ में लिये काम को पूरा करने में निरत व्यक्ति साहसी कहलाते हैं । यह लौकिक प्रयोजनों को पूरा करने वाली शूरवीर स्तर की साहसिकता हुई । अपनी त्रुटियों को समझना, समझने के उपरान्त उनसे लड़ पड़ना, सम्पर्क क्षेत्र में छाये हुए अनुपयुक्त वातावरण के दबाव को अस्वीकार करना, साथ ही जो आदर्श युक्त हैं उसे अपनाते समय सामने आने वाली आन्तरिक आनाकानी और स्वभाव अभ्यास की मनमानी को उलटकर रख देना—ऐसा साहस है जिसकी परिणति महामानवों को उपलब्ध होने वाली गरिमा सफलता बनकर सामने आती है ।"

सी. स्पीयर मैन की 'इनडिवीजुअल बिहेवियर' के एक अध्याय का सार संक्षेप इस प्रकार है—

"असावधानी बाहर से छोटी-सी भूल भर मानी जाती है पर वस्तुत: उसके द्वारा उत्पन्न हुई हानियाँ किसी बाहरी आक्रमण से कम नहीं होतीं । अन्तर इतना ही है कि कुल्हाड़ी से लकड़ी को तत्काल काट दिया जाता है और वह कृत्य प्रत्यक्ष दीखता है । इसके विपरीत घुन इसी कार्य को गुपचुप करता और अपेक्षाकृत देरी लगा लेता है । असावधानी के कारण होने वाली हानियों का लेखा-जोखा तैयार किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जायगा कि घाटा देने वाली समस्त मदें उतने संकट उत्पन्न नहीं करतीं जितनी अकेली असावधानी करती रहती है । अच्छे खासे लाभदायक धन्धे करने वालों में से कितने ही लोग इसी एक बुद्धि के कारण दिवालिये बनते देखे गये हैं ।''

''असावधानी जीवन के हर क्षेत्र में अप्रत्याशित संकट उत्पन्न करती और अपने यजमान को पग-पग पर नीचा दिखाती, धूलि चटाती रहती है । जीवन विकास के क्षेत्र में इसका प्रभाव और भी अधिक होता है । अपने दोष-दुर्गुणों के प्रति उनके कारण होने वाली हानियों के प्रति उपेक्षा बरतने वाले लोग अन्तत: ऐसे संकट में जा फँसते हैं जिससे निकलने की न सूरत बचती है और न हिम्मत रहती है । नशेबाजी की तरह ही असावधानी भी एक प्रकार की धीमी आत्महत्या है जिससे विनाश क्रम रहता तो धीमा है पर होता है निश्चित रूप से ।''

''प्रगति के लिए किन सद्गुणों को अपनाना आवश्यक है ? अवगति से निकलने के लिए किन दुर्गुणों को हटाना अनिवार्य है ? इसे न देखा सोचा जाय । जैसा कुछ भी ढर्रा चल रहा है वैसा ही चलने दिया जाय तो प्रगति की आशा रखना तो दूर, वर्तमान दुर्गति से उबरना भी सम्भव न हो सकेगा ।''

''जागरूकता उस सत्प्रवृत्ति का नाम है जो प्रगतिशीलों से प्रेरणा लेकर, विकास पथ पर चलने की उमंग उत्पन्न करती है । उसके लिए आत्म-विश्वास, साहस और पुरुषार्थ जगाती है । इतना ही नहीं उत्कर्ष पथ पर चलने में स्वभावत: आते रहने वाले अवरोधों से जूझने का शूरवीरों जैसे अविचल धैर्य और सन्तुलन भी प्रदान करती है । जागरूक भूत से सीखते हैं, भविष्य की सोचते हैं और तदनुरूप जो आवश्यक है उसे करने के लिए न केवल दूरगामी निर्धारण करते हैं वरन् बिना समय गँवाये उन निर्धारणों को क्रियान्वित करने में जुट भी पड़ते हैं ।''

नैतिक विकास हेतु जागरूकता अनिवार्य रूप से आवश्यक है । यह जागरूकता इस स्तर की होनी चाहिए जिसे न तो अवांछनीयता सहन हो और न सुधार के लिए पराक्रम बरतने में विलम्ब करने वाली आना-कानी ।

जो दीपक की तरह जलने को तैयार हों

महाप्रभु ईसा अपने शिष्यों से कहते थे—''तुम मुझे प्रभु कहते हो, मुझे प्यार करते हो, मुझे श्रेष्ठ मानते हो और मेरे लिए सब कुछ समर्पण करना चाहते हो । सो ठीक है । परमार्थ बुद्धि से जो कुछ भी किया जाता है, जिस किसी के लिए भी किया जाता है वह लौटकर उस करने वाले के पास ही पहुँचता है । तुम्हारी यह आकांक्षा वस्तुत: अपने आपको प्यार करने, श्रेष्ठ मानने और आत्मा के सामने आत्मसमर्पण करने के रूप में ही विकसित होगी । दर्पण में सुन्दर छवि देखने की प्रसन्नता, वस्तुत: अपनी ही सुसज्जा की अभिव्यक्ति है । दूसरों के सामने अपनी श्रेष्ठता प्रकट करना उसी के लिए सम्भव है जो भीतर से श्रेष्ठ है । प्रभु की राह पर बढ़ाया गया हर कदम अपनी आत्मिक प्रगति के लिए किया गया प्रयास ही है । जो कुछ औरों के लिए किया जाता है वस्तुत: वह अपने लिए किया हुआ कर्म ही है । दूसरों के साथ अन्याय करना अपने साथ ही अन्याय करना है । हम अपने अतिरिक्त और किसी को नहीं ठग सकते । दूसरों के प्रति असज्जनता बरतकर अपने आपके साथ ही दुष्ट-दुर्व्यवहार किया जाता है ।''

''दूसरों को प्रसन्न करना अपने आपको प्रसन्न करने का ही क्रिया-कलाप है । गेंद को उछालना अपनी माँसपेशियों को बलिष्ठ बनाने के अतिरिक्त और क्या है ? गेंद को उछालकर हम उस पर कोई एहसान नहीं करते । इसके बिना उसका कुछ हर्ज नहीं होगा । यदि खेलना बन्द कर दिया जाय तो उन क्रीड़ा उपकरणों की क्या क्षति हो सकती है ? अपने को ही बलिष्ठता के आनन्द से वंचित रहना पड़ेगा ।''

''ईश्वर रूठा हुआ नहीं है कि उसे मनाने की मनुहार करनी पड़े । रूठा तो अपना स्वभाव और कर्म है । मनाना उसी को चाहिए । अपने आपसे ही प्रार्थना करें कि कुचाल छोड़ें । मन को मना लिया, आत्मा को उठा लिया तो समझना चाहिए ईश्वर की प्रार्थना सफल हो गई और उसका अनुग्रह उपलब्ध हो गया ।''

''गिरे हुओं को उठाना, पिछड़े हुओं को आगे बढ़ाना, भूले को राह बताना और जो अशान्त हो रहा है, उसे शान्तिदायक स्थान पर पहुँचा देना । यह वस्तुत: ईश्वर की सेवा ही है । जब हम दु:ख और दरिद्र को देखकर व्यथित होते हैं और मलीनता को स्वच्छता में बदलने के लिए बढ़ते हैं तो समझना चाहिए यह कृत्य ईश्वर के लिए, उसकी प्रसन्नता के लिए ही किये जा रहे हैं । दूसरों की सेवा सहायता अपनी ही सेवा सहायता है ।''

''प्रार्थना उसी की सार्थक है जो आत्मा को परमात्मा में घुला देने के लिए व्याकुलता लिए हुए हो । जो अपने को परमात्मा जैसा महान बनाने के लिए तड़पता है—जो प्रभु को जीवन के कण-कण में घुला लेने के लिए बेचैन है । जो उसी का होकर जीना चाहता है उसी को भक्त कहना चाहिए । दूसरे तो विदूषक हैं । लेने के लिए किया हुआ भजन वस्तुत: प्रभु प्रेम का निर्मम उपहास है । भक्ति में तो आत्म-समर्पण के अतिरिक्त और कुछ होता ही नहीं । वहाँ देने की ही बात सूझती है लेने की इच्छा ही कहाँ रहती है ?''

''ईश्वर का विश्वास, सत्कर्मों की कसौटी पर ही परखा जा सकता है । जो भगवान पर भरोसा करेगा वह उसके विधान और निर्देश को भी अंगीकार करेगा भक्ति और अवज्ञा का ताल-मेल बैठता कहाँ है ?''

''हम अपने आपको प्यार करें ताकि ईश्वर से प्यार कर सकने योग्य बन सकें । हम अपने कर्त्तव्यों का पालन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करें ताकि ईश्वर के निकट बैठ सकने की पात्रता प्राप्त कर सकें । जिसने अपने अन्त:करण को प्यार से ओत-प्रोत कर लिया, जिसके चिन्तन और कर्तृत्व में प्यार बिखरा पड़ा है ईश्वर का प्यार केवल उसी को मिलेगा, जो दीपक की तरह जलकर प्रकाश उत्पन्न करने को तैयार है, प्रभु की ज्योति का अवतरण उसी पर होगा ।''

महान् कार्यों के लिए महान् व्यक्तित्वों की आवश्यकता

बड़ी योजनाएँ बनाने और बड़े काम करने से पूर्व यह देखा जाना चाहिए कि उसके लिए उपयुक्त साधन जुटाये जा सकेंगे या नहीं और वे उपयुक्त रीति से संग्रह हो सकेंगे या नहीं ?

बात केवल साधनों की ही नहीं दूरदर्शिता, अनुभव, और प्रवीणता की भी है । उसके अभाव में ईमानदार व्यक्ति भी अनजाने में ऐसे काम कर बैठते हैं जिनमें पीछे पछताना पड़े । फिर बड़े कामों के साथ बड़ी ईमानदारी और बड़ी जिम्मेदारी का अनुभव करने वाले साथी-सहकारी भी चाहिए अन्यथा हाथी की अम्बारी गधे की पीठ पर लाद देने में हाथी जैसी शोभायात्रा तो नहीं निकलेगी, उलटे गधे की पीठ टूटेगी और मालिक को उस थोड़ी आजीविका से भी हाथ धोना पड़ेगा, जो बेचारा गधा अपनी सामर्थ्य भर धीरे-धीरे उपार्जित करता रहता था । यदि बड़े कामों को, बड़ी योजनाओं को चला सकने की परिस्थिति न हो तो यही अच्छा है कि कार्य छोटे रूप में किया जाय और दायित्वों का विकेन्द्रीकरण किया जाय ।

यहाँ भी बात वही आती है कि कार्य छोटा हो या बड़ा, उसके पाये मजबूत होने चाहिए । मजबूत नींव पर ही भव्य भवन खड़े किये जाते हैं । उथली नींव पर जल्दी और किफायत की बात सोचते हुए यदि दुर्बल चरित्र और व्यक्तित्व के लोगों को निर्माण का काम सौंपा जायेगा तो वे अपने तात्कालिक लाभ और आलस्य की बुरी आदतों को ही आगे रखेंगे और इतनी हानि करेंगे जितनी कि बड़ा काम हाथ में न लिये जाने पर हो सकती है ।

महत्व साधनों का माना जाता है । साधनों को एकत्रित करना बुद्धिमत्ता समझी जाती है और समझा जाता है कि इनका उपयोग जहाँ भी किया जायेगा वहीं प्रगति के दृश्य उपस्थित होंगे । पर यह मान्यता तथ्यों और उदाहरणों की कसौटी पर खरी उतरती है ।

समझने के लिए मोटा सिद्धान्त यह है कि बिचौलिये कमीशन खाते हैं इसलिए उपभोक्ता की वस्तुएँ महँगी पड़ती हैं । वे मिलावट भी करते हैं । इसलिए उन्हें हटा दिया जाय और सरकारी क्षेत्रों में वे सब काम कराये जायें ताकि लाभांश सरकार को अर्थात् जनता को मिले । अफसरों को भरपूर वेतन और महँगाई भत्ता मिलता है । बुढ़ापे के लिये पेन्शन, ग्रेच्युटी, फण्ड आदि भी । इसलिये उन्हें आर्थिक तंगी की आशंका से बेईमानी न करनी पड़ेगी । सिद्धान्तत: यह प्रतिपादन सर्वथा सही है । पर व्यवहार में कुछ और ही देखा जाता है । जितने व्यवसाय सरकारी नियन्त्रण में चल रहे हैं उनमें से अधिकांश घाटा देते देखे जाते हैं । बाजार की तुलना में घटिया भी बैठते है और महँगे भी पड़ते हैं । इसका कारण समझने के लिए हमें तनिक गहराई में उतरना पड़ेगा और देखना पड़ेगा कि दायित्व सौंपने से पहले व्यक्तियों को कामों में प्रवीण-पारंगत बनाया गया है या नहीं, उनकी ईमानदारी को असंदिग्ध बनाया गया है या नहीं, उनकी प्रतिभा का समुचित विकास हो सका है या नहीं ? यही वह मूल केन्द्र है जिसमें दुर्बलता रहने के कारण शानदार योजनाएँ भी कागजी घोड़े बनकर रह जाती हैं । असफल होतीं, घाटा देतीं और शिकायतें उत्पन्न करती हैं । वस्तुत: यह दोष योजनाओं का नहीं, साधनों की कमी का नहीं वरन् उस उपेक्षा का है जिसके कारण कार्यकर्त्ताओं को सुयोग्य और ईमानदार बनाने की ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना कि दिया जाना चाहिए । भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों पर यह बात समान रूप से लागू होती है ।

व्यक्तित्व का शृंगार—सद्गुण

व्यक्तित्व एक दर्पण है । जैसे हम हैं शीशे में हमें अपनी शक्ल वैसी ही दिखाई देगी । इसी तरह मनुष्य के भावभंगिमा रूपी शीशे को देखकर उसके आन्तरिक मनोभावों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है । किसी भी व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व से ही पहचाना जाता है । बीज की भाँति मनुष्य के अन्तराल में सारी चीजें छिपी रहती हैं । जिस चीज का बीज होगा उसमें वैसा ही वृक्ष निकलेगा । आम का बीज है तो बबूल का वृक्ष कहाँ से निकल सकता है । उसी तरह से मनुष्य का चिन्तन जैसा होगा वैसा ही उसका चरित्र होगा, उसी दिशा में वह बढ़ेगा, उन्नति करेगा वैसा ही उसका जीवन बनेगा, मनुष्य जीवन की मूल, जड़ उसका चिन्तन है क्योंकि व्यक्तित्व रूपी साँचे में ढलकर ही मनुष्य जीवन बनता है । अत: यदि जीवन को उच्च बनाना है तो आवश्यक है कि हम पहले व्यक्तित्व को श्रेष्ठ बनायें । श्रेष्ठ व्यक्तित्व ही दिव्य जीवन की निशानी है ।

मनुष्य की चारित्रिक विशेषताएँ उसके व्यक्तित्व को प्रगट करती हैं अर्थात् व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव से उसके व्यक्तित्व की जाँच की जा सकती है । गुण, कर्म, स्वभाव इन तीनों में परिष्कार लाने से ही व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरता है और निखरा हुआ व्यक्तित्व ही आकर्षक प्रतीत होता है ।

अन्तर और बाह्य दोनों स्तरों के सम्मिश्रण से पूर्ण व्यक्तित्व बनता है । आन्तरिक सुधार के साथ-साथ यह आवश्यक है कि भौतिक जीवन के दैनिक कार्यक्रमों में भी उत्कृष्टता बनाये रखें ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहनावे-उढ़ावे से भी व्यक्ति का व्यक्तित्व पता चलता है । वस्त्रों का प्रभाव दूसरों की अपेक्षा हमारे ऊपर अधिक पड़ता है । इसका प्रभाव हमारी भौतिक स्थिति पर ही नहीं चरित्र पर भी पड़ता है । जैसे साफ अन्त:करण व्यक्ति को ऊँचा उठाता है, वैसे ही साफ कपड़े नैतिक साहस को बढ़ाते हैं । कपड़े गन्दे हैं तो उससे व्यक्ति का फूहड़पन प्रकट है, उसकी अकर्मण्यता का बोध होता है किन्तु साफ-सुथरे कपड़ों से यह पता चलता है कि व्यक्ति सभ्य एवं सुसंस्कृत है । चेहरे की खूबसूरती से ही व्यक्तित्व आकर्षक नहीं बनता है । आकर्षक व्यक्तित्व की कुंजी तो बाह्य और आन्तरिक सुन्दरता में निहित है ।

मनुष्य की सफलता इसी में निहित है कि उसका व्यक्तित्व कितना श्रेष्ठ है । व्यक्तित्व अच्छा होगा तो लोग भी उसकी सहायता करेंगे, स्वत: ही उसकी ओर झुकेंगे उसकी उन्नति का द्वार खुलता जायेगा । व्यक्ति को कितनी सफलता मिली इसका श्रेय इस बात पर निर्भर हुआ है कि उसके कितने मित्र हैं । यदि व्यक्ति जीवन में सफलता एवम् सहयोग चाहते हैं तो उन्हें व्यक्तित्व के परिष्कार को महत्व देना चाहिए । डाकू भी अगर अपने व्यक्तित्व एवम् चरित्र को सुधार ले तो वह कल सज्जन बन सकता है ।

आकर्षक व्यक्तित्व के लिए यह आवश्यक है कि वह नीरस नहीं सरसता लिए हुए हो । यह सरसता अपने अन्दर धारण करने से उत्पन्न होती है । प्रसन्नमुख रहने वाले व्यक्ति की ओर सभी आकर्षित होते हैं जो रोनी सूरत बनाये रहता है उसके पास कोई फटकना पसन्द नहीं करता । नीरस व्यक्ति के मुख का सौन्दर्य भी विकृत हो उठता है । हँसना एक गुण है जिसका व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं चरित्र पर प्रभाव पड़ता है ।

मनुष्य अपने अन्त:करण का प्रतिबिम्ब है । प्रसन्नता से पता चलता है कि व्यक्ति का मानस स्वस्थ है । स्वाभाविक मुस्कान से मन का भार हल्का हो जाता है । दु:ख की स्थिति में भी मुस्कराने वाला व्यक्ति अपने मन को शुभ भावनाओं एवं सद्विचारों से आच्छादित रखता है । हँसना सब जीवों में मनुष्य जाति की ही एक बड़ी विशेषता है । यह ईश्वर द्वारा मनुष्य को इसलिए दी गयी है कि वह क्षण भर में अपने दु:ख-दर्द से मुक्ति पा सके ।

हँसने से मनुष्य शान्त चित्त रहता है । इससे उसका जीवन भी सरलता से उच्चकोटि का बनता चला जाता है । इससे न केवल व्यक्ति का व्यक्तित्व उच्च बनता है वरन् उसका स्वास्थ्य भी ठीक-ठीक रहता है । मुस्कान एक ऐसी औषधि है जिससे व्यक्ति के शरीर में स्फूर्ति एवं शक्ति आती है । कार्य में उत्साह उत्पन्न होता है, जो हमारे व्यक्तित्व के गठन में सहायक है । गम्भीरता व्यक्ति के लिए आवश्यक है किन्तु इससे भी अधिक आवश्यक प्रसन्नता है । प्रसन्नता एवं गम्भीरता के मिश्रण से ही व्यक्तित्व पूर्ण मुखरित होता है ।

अभावग्रस्त व्यक्ति भी सदैव मुस्कराते रहने का गुण अपनाकर जीवन को स्वस्थ एवम् सुखमय बना लेते हैं । महापुरुषों ने प्रसन्न रहकर ही जीवन में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों को झेला है । उनका दमकता हुआ प्रखर व्यक्तित्व लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना । प्रसन्नता मनुष्य जीवन को हल्का-फुल्का बनाती है ।

व्यक्तित्व को प्रसन्नता से ओत-प्रोत रखने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति क्रोध, कटुवचन, ईर्ष्या, निन्दा, चिन्ता, दुर्भावना, उदासीनता, असहिष्णुता आदि से दूर रहे, यह व्यक्तित्व एवं चरित्र के विकास में बाधक है । व्यक्तित्व को बनाने के लिए हमें अपने अन्दर गुणों को धारण करना चाहिए अवगुणों को नहीं ।

प्रकृति के अणु-अणु में प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती है । खिले हुए फूल कितने सुन्दर दिखाई देते हैं । वायु मन्द गति से चलती है । झरने और नदियाँ कल-कल स्वर से प्रसन्नता व्यक्त करती हुई अनवरत बहती जाती हैं । प्रात:काल पक्षियों का मधुर स्वर में कोलाहल करने से यह प्रतीत होता है कि प्रकृति हमें सदैव प्रसन्न रहने की शिक्षा देती है । हँसी व्यक्ति में प्राण-शक्ति का संचार करती है जो व्यक्ति को गतिशील एवं उन्नतिशील बनाती है ।

मुस्कान व्यक्ति को अनेक समस्याओं से छुटकारा दिलाती है । स्वास्थ्य भी ठीक रहता है । हँसने से माँस-पेशियों का व्यायाम हो जाता है । सारे शरीर में खून का संचार होता है, गतिशीलता बनी रहती है । जीवन को मधुमय, नीरोगी, सुखी एवम् व्यक्तित्व को आदर्श बनाना हो तो प्रसन्नता को अपना सच्चा मित्र बनाना चाहिए ।

प्रसन्नता के साथ-साथ अन्य महत्त्वपूर्ण गुणों को अपने में विकसित करना चाहिए जिससे व्यक्तित्व सौन्दर्यपूर्ण हो । गुणों का विकास ही व्यक्तित्व के आकर्षण का केन्द्रबिन्दु है । हमारे गुण, कर्म, स्वभाव जितने उच्चकोटि के होंगे उसी के अनुरूप हमारा व्यक्तित्व बनता चला जायेगा । हममें नम्रता और सौम्यता होनी चाहिए । इससे भी दूसरों पर प्रभाव पड़ता है । इससे अनेक दुर्गुणों से बचे रहते हैं । इसका अभिप्राय यह नहीं कि अनीति या गलत बात के सम्मुख भी हमें अपने स्वभावानुकूल झुक जाना चाहिए, नम्रता वह गुण है जिसके सहारे हम दूसरों को अपने में घुला-मिला सकते हैं और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने को वर्तमान स्थिति के अनुकूल बना सकते हैं किन्तु अकड़ वाला जिद्दी व्यक्ति दूसरे की उपेक्षा एवम् घृणा ही प्राप्त करता है । लोग उससे बात करना पसन्द नहीं करते, उसको किसी की सहानुभूति प्राप्त नहीं होती है फलत: उसका किसी क्षेत्र में समुचित विकास नहीं हो पाता है ।

व्यक्तित्व के विकास के लिए दृढ़ता एवं लगन का होना भी आवश्यक है । दृढ़ता एवं स्थिरता चरित्र की बहुत बड़ी विशेषता है । व्यक्ति किसी कार्य को एकाग्रचित्त एवं दृढ़ता से करता है तो वह कार्य इतना सुन्दर बन जाता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जितनी कि आशा भी न थी । इसी मनोवृत्ति के सहारे महापुरुषों ने बड़े-बड़े काम किये जिनसे संसार अचम्भित है । किन्तु जिनकी कर्त्तव्य के प्रति लगन एवं दृढ़ता नहीं होती उन्हें किसी कार्य में सफलता नहीं मिलती । सभी प्रयास अधूरे पड़े रहते हैं । सोचने का ढंग भी मनुष्य के चरित्र विकास का महत्त्वपूर्ण अंग है । मनुष्य के प्रत्येक कार्य के पीछे उसके विचारों की ही प्रेरणा होती है । विचारों के अनुसार ही व्यक्ति के बोलने-चालने, देखने का ढंग भी होता है । मनुष्य जीवन का प्रत्येक भाग उसके मस्तिष्क में उठने वाले विचारों से प्रभावित होता है । विचार ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को विनिर्मित करते हैं । जैसे विचार होंगे वैसा ही चरित्र बनेगा और जैसा चरित्र होगा वैसा ही व्यक्तित्व बनेगा ।

मानवीय विकास का अगला चरण है अन्तःकरण को भाव संवेदनाओं से अभिपूरित करना । इसके लिए दूसरों की सहानुभूति अर्जित करनी पड़ती है । सहानुभूति मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों में से एक है । सहानुभूति मनुष्य के हृदय में निवास करने वाली वह कोमलता है जिसका निर्माण संवेदना, दया, प्रेम और करुणा के सम्मिश्रण से होता है । वह आत्मा की निःस्वार्थ भाषा है, जिस की वाणी मूक है किन्तु हर हृदयवान उसे समझ लेता है । जीवन में मानसिक, शारीरिक या अन्य उथल-पुथल पैदा होने का कारण ही यही है कि हम उपर्युक्त शक्तियों को सत्यतापूर्वक न अपनाकर उनका निरादर भी करते हैं ।

विधाता की बनाई अद्भुत कृति, मनुष्य, एक ऐसा प्राणी है जो बगैर दया, प्रेम या करुणा के जीवन को ज्यादा समय तक नहीं चला सकता फिर सहानुभूति तो इन सबका सम्मिश्रण है उसके अभाव में तो निश्चित कुछ खोया-खोया सा लगेगा ।

प्रेम, दया एवम् करुणा ऐसे मानवीय गुण हैं कि इनके अभाव में एक पल चलना भी भारी हो जाता है । किन्तु आज का विचारवान मनुष्य इन पर गहन रूप से ध्यान नहीं देता है । प्रेम के अभाव में जीवन वीरान हो सकता है, करुणा, दया, सहयोग के अभाव में समाज या परिवार ढाँचा भी नहीं बन सकता ।

एकान्त मनुष्य को पागल बना देता है । मनुष्य स्वभाव एकान्त में रह नहीं सकता । एकाकी मनुष्य की शक्ति भी बड़ी सीमित और स्वल्प होती है । इसलिये मनुष्य से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह केवल अपनी ही सोचे या बात करे बल्कि असमर्थ को समर्थवान बना दे यह अपेक्षित है । यही महानता का द्योतक है जो गिरों को उठा, लेता है उठे हुओं को उठाना उतना कठिन नहीं है ।

हर मनुष्य सहानुभूति का भूखा होता है दुःख में संवेदना दया किसी कीमती दवा से कम नहीं है । इसीलिए मनोवैज्ञानिकों ने इस पर शोध कार्य करने भी शुरू कर दिये हैं । दया, करुणा, ममता, प्रेम आदि का हमारे मन एवं स्वास्थ्य पर असर पड़ता है । आपत्ति के समय प्रेम के, सांत्वना के दो शब्द शांति देते हैं । इसका अनुभव हर व्यक्ति को होगा । इतना आभास या विश्वास कि किसी की सहानुभूति मेरे से है, यह अनुभव मात्र मनुष्य को साहस प्रदान करता है चाहे शारीरिक, आर्थिक या भौतिक रूप में वह सहानुभूति प्रगट हुई हो या नही । कई प्रसंग ऐसे आते हैं जब हम यह कहते हुए पाये जाते हैं कि अरे आप के आने से एकदम वातावरण में महक आ गई । आपके शब्दों से शांति मिली, साहस मिला । यह प्रसंग बताते हैं कि सहानुभूति, प्रेम, दया की मूक भाषायें मन और मस्तिष्क पर गहन असर डालती हैं । जिनका हमारे स्वास्थ्य से भी गहरा सम्बन्ध है । दुःख में हमारी भूख मर जाती है, खुशी के समय हम दो रोटी ज्यादा खाते हैं, यह सिद्ध करता है कि इन महान विचारों और गुणों का शरीर पर, मन पर कितना गहन असर पड़ता है ।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है सहानुभूति लेने और देने वाले दोनों की उम्र बढ़ती है । वह हृदय को शक्ति और भावनाओं को विशालता प्रदान करती है । कुत्तों और बिल्लियों पर प्रयोग किये गये, उनसे यह सिद्ध हुआ कि सहानुभूति का स्पर्श होते ही फेफड़े गर्म हो जाते हैं, धमनियाँ अपने स्वाभाविक ताप पर स्थिर होने लगती हैं । रक्त का रंग निखरने लगता है ।

कन्फ्यूशियस, फ्रान्सिस बेकन तथा माओत्से तुंग आदि ने प्रारम्भ में सहानुभूति को ठगा जाने वाला तत्व माना था किन्तु बाद में जब जीवन के तत्वों और सत्यों की गहराई में उतरे तो पता चला कि मनुष्य केवल सहानुभूति के कारण जिन्दा है ।

सहानुभूति के बारे में ऐला काक्स ने लिखा है कि जब दूसरों की तरफ देखो तो नम्रता से काम लो । पर जब अपनी तरफ देखो तो सख्ती से काम लो । फ्रेन्स मनोविद्या विशारद गोवानियां लिखते हैं कि सहानुभूति की भावना मानसिक उत्थान की बड़ी प्रेरक शक्ति है, मानसिक रोगों की बड़ी भारी दवा है ।

सहानुभूति प्रेम से भी बड़ी चीज है । प्रेम प्रतिदान माँगता है । सहानुभूति उससे भी की जा सकती है जो हम से नहीं करते । संसार में कष्टों से पीड़ित वर्ग सहानुभूति के मरहम से प्रगति कर रहा है । आत्मसन्तोष एवं प्रेम पाने के लिये सहानुभूति सबसे अचूक उपाय है । जिस हृदय में सहानुभूति होती है वह महान है और जो प्रदान करता है वह उससे भी महान है ।

समस्त दुर्गुणों का मूल कारण अहंकार

इस संसार की हर वस्तु में अच्छाई के साथ-साथ कुछ बुराई भी मिलती रहती है । कोई व्यक्ति या वस्तु यहाँ ऐसी नहीं बनी जिसमें न्यूनाधिक मात्रा में गुण-दोष का समावेश न हो । प्रत्येक अच्छाई अपने साथ कुछ बुराई छिपाये रहती है और प्रत्येक बुराई के पीछे कुछ अच्छाई का भी तत्व छिपा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहता है । सफलता और असफलता के बारे में यही बात लागू होती है । यों आमतौर से हर आदमी सफलता चाहता है और उसे प्राप्त कर प्रसन्न होता है । असफलता में हानि एवं खिन्नता अनुभव होती है । यह स्वाभाविक है । क्योंकि इच्छापूर्ति में सुख और उसमें पड़ी हुई बाधा को दुःख माना गया है ।

इतना होते हुए भी सफलता में कुछ हानि और असफलता में कुछ लाभ भी होता है । असफलता हमें भूलों पर विचार करने का मौका देती है और यह सिखाती है कि हम जहाँ गलती करते रहे हैं, वहाँ अधिक ध्यान दें और उसमें सुधार करें । असावधानी बरतने और अधूरे मन से काम करने पर आमतौर से काम बिगड़ते हैं । श्रम से जी चुराने, आलस में पड़े रहने, समय-कुसमय का ध्यान न रखने से भी असफलता की सम्भावना बढ़ जाती है । कटु स्वभाव और अशिष्ट व्यवहार से भी दूसरे लोग चिढ़ते हैं और असहयोगी बनते हैं, ऐसी दशा में भी अपनी इच्छा-पूर्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है । असफलता मिलने पर आमतौर से मनुष्य दूसरे पर उसका उत्तरदायित्व डालकर स्वयं निर्दोष बनना चाहता है पर बुद्धिमत्ता का अंश जब जाग्रत रहता है तब वह यह भी सोचता है कि मेरी भूल कहाँ-कहाँ रही और उसे कैसे सुधारा जाय ?

जिस प्रकार ऊधम मचाने और बताये हुए काम न करने पर बच्चे को धमका देने पर वह रुकता, सोचता और बदलता है, उसी प्रकार असफलता रूप दैवी फटकार पड़ने पर मनुष्य को यह भी सोचना पड़ता है कि उसके लिए क्या करना उचित और क्या करना अनुचित था । अपनी गतिविधियों को सुधार लेने पर जहाँ बिगड़े काम के बनने की सम्भावना बढ़ जाती है, वहाँ सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि मनुष्य को अपनी आदतों और गतिविधियों में सुधार करने का अवसर मिलता है । यह सुधार उस बिगड़े काम को बनाने में ही सहायक नहीं होता वरन् भविष्य के लिए सफलताओं का एक व्यवस्थित शिक्षण देकर प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त करके देता है ।

सफलता की अच्छाई सर्वविदित है ही । उससे अभीष्ट लाभ प्राप्त होता है, दूसरे प्रशंसा करते हैं, अपना हौसला बढ़ता है आदि लाभों को हम सब भली-भाँति जानते हैं और इसलिए उसे चाहते तथा पसन्द भी करते हैं । पर उसमें एक छोटी बुराई भी छिपी रहती है, यदि उसकी ओर से असावधान रहा जाय तो वह हानिकारक भी सिद्ध होती है । इस बुराई का नाम है मद या अहंकार । सफलता पाकर मनुष्य इतराने लगता है, वह अपनी औकात भूल जाता है । एक सफलता को पाकर वह यह सोचने लगता है—मुझसे बड़ा बुद्धिमान, चतुर और पुरुषार्थी कोई नहीं, मैं हर दशा में चुटकी बजाते सफलता प्राप्त कर सकता हूँ ।

आत्म-विश्वास होना अलग बात है वह एक आध्यात्मिक गुण है पर अहंकार तो उससे सर्वथा भिन्न वस्तु है । मोटे रूप में आत्म-विश्वास तथा अहंकार एक से दीखते हैं पर उनमें जमीन-आसमान जैसा अन्तर रहता है । कायरता और अहिंसा बाहर से दीखने में एक सरीखी लगती हैं पर उनकी मनोदशा में दिन-रात जैसा भेद रहता है । आत्म-विश्वासी आत्मा की महत्ता मानते हुए भी सावधानी, परिश्रम, अध्यवसाय, परिस्थितियाँ, दूसरों का सहयोग, जागरूकता आदि बातों पर ही सफलता को अवलम्बित समझता है और सफलता-असफलता की परवाह न करके अपने सुनिश्चित पथ पर मजबूती से पैर बढ़ाता हुआ चला जाता है ।

आत्म-विश्वास का अर्थ है अपने कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ रहना और कठिनाइयों से तनिक भी विचलित न होना । अहंकार इससे भिन्न वस्तु है । इसे 'मद' इसलिये कहा गया है कि नशीली चीजें खाकर जिस प्रकार उन्मत्तता आ जाती है, उसी प्रकार एक छोटी सफलता पाकर मनुष्य सोचने लगता है कि मैं ही सब कुछ हूँ, मुझ में कोई त्रुटि नहीं, मेरी बुद्धि सारी दुनिया से बढ़कर है । मैं जो चाहूँ सो चुटकी बजाते पूरा कर सकता हूँ । छोटी स्थिति के आदमी जिनके दिल और दिमाग छोटे होते हैं—कोई मामूली-सा लाभप्रद, श्रेय या महत्व पाकर इतराने और बौराने लगते हैं । उनकी अकड उद्दण्डता और अशिष्टता के रूप में चेहरे पर झलकती रहती है । सरकारी अफसरों, रईसों और तथाकथित बड़े आदमियों में से कितने ही ऐसे होते हैं जिनकी अकड़ और उद्दण्डता देखकर यही सोचना पड़ता है कि छोटी सफलता पाकर उन्होंने सज्जनता का मार्ग छोड़ दिया और उद्दण्डता को अपना लिया है ।

उद्दण्डता सारी मनुष्य जाति का, सृष्टि की विधि व्यवस्था का, सज्जनता का अपमान है । यह किसी से भी बर्दाश्त नहीं होती है । मानव की आत्मा इसके प्रति विद्रोह करती है । जिन्हें कोई व्यक्तिगत स्वार्थ हो उनकी बात दूसरी है । वैसे साधारणतया सभी को अहंकार बुरा लगता है । भले ही उसका कोई तुरन्त विरोध न करे पर जब भी अवसर आता है, अहंकारी व्यक्ति देखता है कि उसका एक भी सच्चा मित्र इस संसार में नहीं है । चापलूस और खुशामदी लोग जो अपने मतलब के लिए नाक का बाल बने हुए थे, अवसर पाते ही गिरे में लात लगाने का प्रयत्न करते हैं ।

भगवान को मनुष्य के दुर्गुणों में सबसे अप्रिय अहंकार है । ईश्वर का अंश होने से जीव महान है पर यह सारी महानता ईश्वर की है । अपनी सत्ता की दृष्टि से मनुष्य अत्यन्त तुच्छ है, वह कितनी ही बातों में पशु-पक्षियों से भी पिछड़ा हुआ है । दूसरों की सहायता के बिना उसका काम ही नहीं चलता है । जो कुछ भी लाभ या सुख प्राप्त होता है उसमें उसकी निज की योग्यता का जितना महत्व है उसकी अपेक्षा दूसरों के सहयोग और अनुग्रह का सहस्रों गुना अधिक श्रेय सम्मिलित रहता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अहंकारी के मन के सब सद्गुण उसी प्रकार विदा होने लगते हैं जैसे तालाब का पानी सूखने पर उसके तट पर रहने वाले पक्षी अन्यत्र चले जाते हैं । अहंकार में अन्य दुर्गुणों का पोषण होता है और घमण्डी आदमी में वे सब बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं जो गुण्डों या असुरों में होती हैं । असुर या गुण्डों का अहंकार ही आरम्भ में विकृत होता है, इसके पश्चात् वे दूसरों को तुच्छ समझते हुए उनकी हर क्रिया में अपना अपमान देखने लगते हैं और उसका प्रतिशोध लेने के लिए जहरीले साँप की तरह अनर्थ करने पर उतारू हो जाते हैं ।

अहंकार की उद्धतता मनुष्य के ओछेपन का चिह्न है । बड़प्पन में हर व्यक्ति झुकता और नम्र बनता है । उन्नति और सुधार उसी का सम्भव है जो अपनी त्रुटियों और दुर्बलताओं को जानता है । जो अपने को सर्वोपरि माने बैठा है, उसे सुधार की बात सोचने का अवसर ही कहाँ है ? ऐसे मनुष्य हवा भरे हुए पानी के बबूले की तरह अन्त में उपहास के पात्र बनते हुए नष्ट ही हो जाते हैं । इसलिए विज्ञजन अहंकार को बहुत ही हेय मानते रहे हैं । हर सफलता प्राप्त करते समय हमें यह आत्म-निरीक्षण करते रहना चाहिए कि कहीं इससे हमारा अहंकार तो नहीं बढ़ा ? यदि बढ़ा हो तो सोचना चाहिए कि लाभ की अपेक्षा हमारी हानि ही अधिक हुई है । अहंकार को एक भारी हानि ही नहीं विपत्ति भी मानना चाहिए ।

बिना मोल की अमूल्य सम्पत्ति—शालीनता

शारीरिक रुग्णता तो सभी को स्पष्ट दीख जाती है, उसके निदान एवं उपचार का प्रयास भी किया जाता है, पर मानसिक रुग्णता जब तक असामान्य न हो उठे, तब तक व्यक्ति उधर ध्यान नहीं देता । अधिकांश लोग अपना अधिकतर समय उद्वेग और चिन्ता से बोझिल मनःस्थिति के साथ ही गुजारते हैं और उन्हें यह ध्यान में नहीं आता कि ऐसा करके वे मन पर लगातार बोझ लाद रहे हैं और उसे क्लांत, कुन्द और कमजोर बना रहे हैं । प्रसन्नता के जो क्षण उनके जीवन में आये होते हैं, उनकी स्मृति उन्हें पुलकित तो करती है, उस समय में आये हलकेपन का आह्लाद उन्हें बार-बार आकर्षित भी करता रहता है, पर वे यह नहीं जान पाते कि प्रसन्नता की इस मनःस्थिति को अधिकाधिक समय तक और सदैव भी बनाए रखना उनके अपने ही हाथ में है । वे प्रसन्नता की प्रतीक्षा तो बड़ी अधीरता और उत्कण्ठा से करते रहते हैं, पर वह उनके ही अन्तःकरणरूपी घर के एक कमरे में किसी विनम्र परिचारिका की तरह बैठी है और सेवा का अवसर दिये जाने की प्रतीक्षा ही कर रही है, यह वे नहीं जानते ।

उदासी, चिन्ता और खीज का सम्बन्ध परिस्थितियों की प्रतिकूलताओं से उतना नहीं होता, जितना चिन्तन की विकृतियों से । यदि बाह्य परिस्थितियाँ ही प्रसन्नता का कारण रही होतीं तो सम्पन्न व्यक्तियों को सदैव प्रसन्न और विपन्नों को सदैव उदास ही दिखाई देना चाहिए था । पर ऐसा देखने में नहीं आता । आघातों-अभावों के तीक्ष्ण प्रहार व्यक्तियों को तिलमिलाते तो हैं किन्तु प्रसन्न प्रकृति के व्यक्ति उन प्रहारों के चिह्न ही शीघ्र नहीं धो-पोंछ देते, उनसे बचे रहने के उपाय भी अधिक तत्परता से निकालते हैं । इसके विपरीत हताश, उद्विग्न व्यक्ति अधिकाधिक झंझटों में फँसते जाते हैं और सदा छटपटाते ही रहते हैं ।

झंझटों से पूरी तरह मुक्त हो जाने के बाद ही जो प्रसन्न, निश्चिन्त रहने की योजना मन में गढ़ते रहते हैं, उन्हें विफलता ही हाथ लगती है । दुनिया में ऐसी स्थिति किसी भी व्यक्ति के जीवन में कभी नहीं आती, जब उसके सामने कोई भी उलझन शेष ही न रहे । प्रतिकूलताएँ-परेशानियाँ दुनिया का एक अनिवार्य अंग हैं । यह अपने ऊपर है कि उन पर खीझते-झुँझलाते रहें या कि चुनौतियों का मस्ती के साथ मुकाबला करें । मस्ती कोई परिस्थितिजन्य घटना नहीं है । वह मन की एक प्रवृत्ति है । सतत् अभ्यास ने इस प्रवृत्ति को भी प्रबल और प्रगाढ़ बनाया जा सकता है । साहसी, पुरुषार्थी व्यक्ति ऐसे ही होते हैं । वे अपना आन्तरिक उल्लास सदैव बनाए रखते हैं ।

प्रखर क्रान्तिकारी भगतसिंह की जीवनी के उस अद्वितीय प्रसंग से सभी परिचित हैं, कि फाँसी की सजा सुनाए जाने के दिन से उनका वजन बढ़ने लगा था और मृत्युदण्ड के दिन तक कई पौंड बढ़ गया था । अनेकों क्रान्तिकारियों में यह मस्ती भरपूर थी और भयानक से भयानक प्रतिकूलताएँ भी उनकी प्रसन्नता को छीन नहीं सकीं । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने वाले सभी महापुरुषों के जीवन में यह मस्ती देखी जाती है । यद्यपि सुख-सुविधा के साधन उनके पास अत्यल्प होते हैं ।

वस्तुतः प्रसन्नता और धैर्य परस्पर घनिष्टता से सम्बन्धित हैं । धैर्य के अभाव में व्यक्ति परिस्थितियों के आरोह-अवरोह से उत्तेजित ही होता रहता है । अति भावुक लोग सदैव उद्विग्न, अशान्त रहे आते हैं । भावनात्मक कोमलता की मधुर अनुभूतियों का स्वाद भी वे गहराई से नहीं ले पाते, क्योंकि काल्पनिक शोक-सन्ताप उन्हें क्षण-क्षण में डराते-सताते रहते हैं । उनका उत्साह भी वैसा ही अस्थायी होता है । वह उत्साह कम उतावली अधिक होता है । उतावली के आवेग से वे किसी भी कार्य के सभी पहलुओं को न तो देख पाते, न ही समस्त क्रमों का निर्वाह कर पाते हैं । ऐसे में असफलता स्वाभाविक है और असफलता से उद्विग्नता और अधिक बढ़ जाती है ।

यदि अपनी भावनात्मक तीव्रता को प्रयत्नपूर्वक धैर्य के साथ सम्बद्ध कर दिया जाय, तो परिणाम विस्मयकारी हो जाता है । सफलता की सम्भावना तो बढ़ ही जाती है, गतिशीलता से उत्पन्न स्वाभाविक सरसता व्यक्तित्व को एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अलग ही आनन्द से परिचित करा देती है । प्रसन्नता भीतर से फूट-फूट पड़ती है ।

निष्कर्ष यही निकलता है कि प्रसन्नता, धैर्य और गतिशीलता की संगिनी है । परिणाम के प्रति आतुरता रखे बिना धैर्यपूर्वक कार्यरत रहने में जिसे रस मिलने लगा, प्रसन्नता उसके भीतर सतत् प्रवाहित होती रहती है । कुशल खिलाड़ी क्रीड़ा का रस लेना जानते हैं । सफलता के लिए वे सतर्क-सन्नद्ध तो रहते हैं, पर जय-पराजय, दोनों का ही वे हल्की मुस्कराहट के साथ स्वागत करते हैं और अपना अधिक ध्यान अगले क्रीड़ा-क्रम की ओर ही लगाते हैं तथा उसी में उत्साह के साथ प्रवृत्त हो जाते हैं ।

प्रत्येक कार्य को खिलाड़ी की भावना से और तत्परता के साथ सम्पन्न करने की जिसने आदत डाल ली है, उसकी मनोभूमि सदैव हाइड्रोजन एवं हीलियम जैसी हलकी-फुलकी और प्रसन्न-प्रफुल्ल रही है । कर्मपथ पर सोल्लास अग्रसर व्यक्ति यदि अन्तिम परिणाम तक न भी पहुँचे, तो कर्मरुचि से शून्य व्यक्ति जैसी उदासी उसे कभी नहीं घेरती । उसका कर्म-कौशल में व्यतीत समय तो उल्लास-प्रसन्नता से भरपूर होता ही है, प्रयत्नों में ही कमी रह जाने से उत्पन्न पछतावे का विक्षोभ भी उससे दूर ही रहता है । इसके विपरीत आलसी-प्रमादी व्यक्ति सदा खीजते कुढ़ते ही देखे जाते हैं । थकान और खीझ उनकी चिर-संगिनी होती है, विफलता और दुःख उनके सगे-सम्बन्धी हुआ करते हैं ।

तो क्या प्रसन्नता सक्रियता में ही निहित है । इसका उत्तर तो 'हाँ' ही है । पर यदि और सूक्ष्मता से देखा जाय तो उस क्रियाशीलता के काल में बनी रहने वाली उत्फुल्लता का निरन्तर अभ्यास ही प्रसन्नता को स्वभाव का अंग बना देता है । प्रसन्नता या उदासी मन का एक अभ्यास मात्र है । जिसका अन्तःकरण उत्कृष्टताओं से जुड़ा है, उसमें उदासी जैसी अवांछनीयता के अभ्यास के प्रति स्वाभाविक अरुचि होती है । सतत् अभ्यास से प्रसन्नता स्वभाव बन जाती है ।

अहंकार बनाम स्वाभिमान

स्वाभिमान और अहंकार देखने में एक जैसे लगते हैं, पर उसकी प्रकृति और परिणति में जमीन आसमान जैसा अन्तर है । अहंकार भौतिक पदार्थों या परिस्थितियों का होता है । धनबल, सौन्दर्यबल, साधन, शिक्षा, कला-कौशल आदि के बलबूते अपने को दूसरों से बड़ा मान बैठता, दर्प दिखाना और पिछड़ों का तिरस्कार, उपहास करना अहंकार है ।

स्वाभिमान आत्मगौरव के संरक्षण एवं अभ्युदय का प्रयास है । इसमें आन्तरिक उत्कृष्टता को अक्षुण्ण रखने का साहस होता है । दबाव या प्रलोभन पर फिसल न जाना और औचित्य से विचलित न होना स्वाभिमान है । इसकी रक्षा करने में बहुधा कष्ट-कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है और दुर्जनों का विरोध भी सहना पड़ता है ।

मनीषियों का कहना है कि अहंकार मनुष्य को गिराता है । उसे उद्दण्ड और परपीड़क बनाता है । उसे साथियों को पीछे धकेलने, किसी के अनुग्रह की चर्चा न करने, दूसरों के प्रयासों को हड़प जाने के लिए अहंकार ही प्रेरित करता है ताकि जिस श्रेय की स्वयं कीमत नहीं चुकाई गई है उसका भी लाभ उठा लिया जाय । ऐसे लोग आमतौर से कृतघ्न होते हैं और अपनी विशेषताओं और सफलताओं का उल्लेख बढ़-चढ़कर बार-बार करते हैं । नम्रता, विनयशीलता का अभाव होता जाता है और अन्यों को छोटा गिनाने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है । इस कारण ऐसा व्यक्ति दूसरों की नजरों में निरन्तर गिरता जाता है । घृणास्पद बनता है और इसी कारण कई बार ईर्ष्या, विद्वेष आदि का शिकार बनता है । शत्रुओं की संख्या बढ़ाता है और अन्ततः घाटे में रहता है । आत्म-सम्मान की रक्षा करनी हो तो अहंकार से बचना ही चाहिए ।

जब अहंकार बढ़ने लगता है तो व्यक्ति की संवेदनशीलता, सरसता जैसे सद्गुणों का ह्रास होने लगता है । इस मनोविकृति के भार से ही मनुष्य बोझिल बनता है और उसका विकास अवरुद्ध होता है । शास्त्रों का कथन है कि 'अहंकार' ने ही आत्मा को पृथ्वी की खूँटी से बाँध रखा है । आत्मा इसी विकार के कारण व्यर्थ के देहानुशासन से आबद्ध है और इसीलिए वह परमतत्व से वंचित है ।

तत्ववेत्ता मनीषियों का कहना है कि प्रायः घरद्वार छोड़ने और वैराग्य की चादर ओढ़ लेने पर भी अहंकार नहीं छूटता, वरन् और भी बढ़ता है कि मैंने बहुत बड़ा त्याग किया है । इसी तरह धन छोड़ देने या दान कर देने की भी अहम्वृत्ति बनी रहती है । तथाकथित मोहमुक्तों का भी स्त्री-बच्चों के प्रति लगाव कहाँ छूटता है ? बड़े-बड़े ओहदे, पद-प्रतिष्ठा को छोड़ देने वाले भी इस अहंभाव से ग्रस्त पाये जाते हैं कि हमने अमुक पद को ठोकर मार दी । वस्त्र छोड़ने पर नग्नता का, वैराग्य का अहंकार बना रहता है ।

अध्यात्मवेत्ताओं के अनुसार अहंकार से बचने का केवल एक ही उपाय है कि उसे खोजा जाय कि वह अन्तर की किन गहराइयों में डेरा डाले पड़ा है । उनने अहं को गलाने और स्वाभिमान को जगाने का सर्वोत्तम उपाय लोक आराधना को बताया है और कहा है कि यह पूजा-उपासना से कम महत्व की साधना नहीं है । साधना-उपासना से जो प्रगति मनुष्य के व्यक्तित्व में होनी चाहिए वह सच्चे लोकसेवी में भी विकसित होती देखी जा सकती है । उसका भी अहंकार नष्ट होकर भावनाएँ उदात्त हो जाती हैं । उसकी अपनी कोई आकांक्षा नहीं होती । वह मात्र विश्वमानव के कल्याण की बातें सोचता और ईर्ष्या, द्वेष, ऊँच-नीच के भेदभाव के रहित जीवन जीता है । धीरे-धीरे वह प्राणि मात्र की सेवा के लिए अपने को समर्पित करता जाता है । वसुधैव कुटुम्बकम् की भावनाओं से ओतप्रोत जाति-वंश आदि की संकीर्ण वृत्तियों से परे उसका चिन्तन रहता है । उसकी दृष्टि में मानव मात्र एक समान है । **'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया'** की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावना ही उसके जीवन का मूल उद्देश्य बन जाती है । कालान्तर में ऐसे व्यक्ति का व्यवहार मधुर एवं संतुलित हो जाता है । क्रोध व घृणा से उसका दूर का भी वास्ता नहीं रह जाता है ।

उपर्युक्त गुणों के संवर्द्धन के साथ ही आत्मबल का संवर्द्धन भी होने लगता है और वह लोकसेवी ढोंग-ढकोसले से भी मुक्ति पा लेता है । उदात्त चिन्तन से परिचालित एवं परहित कामना के कर्मरत व्यक्ति का अहंभाव क्रमशः विनष्ट होता जाता है और विराट् सत्ता से सम्बन्धित हो जाता है । विराट परमात्म सत्ता ही तब उसका मार्गदर्शन करने लगती है । साधना-उपासना का, भजन-पूजन का भी यही उद्देश्य है कि सद्गुणों में, दैवी सम्पदा में अभिवृद्धि हो, सत्कर्मरत रहा जाय और अन्ततोगत्वा क्षुद्र अहं का विराट् सत्ता में विलीन होकर सब कुछ उसका हो जाय । जड़-चेतन में समायी परमसत्ता ही मार्गदर्शिका बन जाय । अहं विसर्जन की फलश्रुति भी यही है ।

खरे व्यक्तित्व की कसौटी

व्यक्तित्ववान से तात्पर्य रंग रूप की सुन्दरता, कपड़ों की सज-धज, घुँघराले केश या साज-सज्जा के सामान से नहीं लगाया जाना चाहिए । यह विशेषताएँ तो रंगमंच के नट नटियों में भी हो सकती हैं । पर इसके कारण उन्हें आकर्षक मात्र समझा जा सकता है । उन्हें व्यक्तित्ववान नहीं कहा जा सकता । ऐसे लोगों के प्रति न किसी को श्रद्धा होती है न सम्मान । उन्हें कोई उत्तरदायित्व पूर्ण काम भी नहीं सौंपे जा सकते और न उनसे यह आशा की जा सकती है कि ने जीवन में कोई महत्त्वपूर्ण काम कर सकेंगे ।

व्यक्तित्व से तात्पर्य शालीनता से है । जो सद्गुणों के उत्तम स्वभाव से सज्जनता से और मानवी गरिमा के अनुरूप अपनी वाणी, शैली, दिशाधारा एवं विधि-व्यवस्था अपनाने में है । यह सद्गुण स्वभाव के अंग होने चाहिए और चरित्र तथा व्यवहार से उनका समावेश गहराई तक होना चाहिए अन्यथा दूसरों को फँसाने वाले ठग भी कुछ समय के लिए अपने को विनीत एवं सभ्य प्रदर्शित करते हैं । कोई जब उनके जाल में फँस जाता है तो अपने असली रूप में प्रकट होते हैं । धोखे में डालकर बुरी तरह ठग लेते हैं । विश्वासघात करके उसकी बुरी तरह जेब काटते हैं । कोई आदमी वस्तुतः कैसा है इसे थोड़ी देर में नहीं समझा जा सकता । उसकी पिछली जीवनचर्या देखकर वर्तमान संगति एवं मित्र-मण्डली पर दृष्टिपात करके समझा जा सकता है कि उसका चरित्र कैसा है । यह चरित्र ही व्यक्तित्व की परख का प्रधान अंग है ।

इसके अतिरिक्त शिक्षा एवं विचार पद्धति भी देखने योग्य है । कुछ समय के वार्त्तालाप में मनुष्य की शिक्षा एवं आस्था का पता चल जाता है । चिन्तन वाणी में प्रकट होता है । ठग आदर्शवादी वार्तालाप कर सकने में देर तक सफल नहीं हो सकते । वे किसी को जाल में फँसाने के लिए ऐसी बातें करते हैं मानो उसके हितैषी हों और उसे अनायास ही कृपापूर्वक कोई बड़ा लाभ कराना चाहते हैं । नीतिवान् ऐसी बातें नहीं करते, वे अनायास ही उदारता नहीं दिखाते और न अनुकम्पा करते हैं । न ऐसा रास्ता बताते हैं जिसमें नीति गँवाकर कमाई करने का दाँव बताया जा रहा है । व्यक्तित्ववान स्वयं नीति की रक्षा करते हैं भले ही इसमें उन्हें घाटा उठाना पड़ता हो । यही नीति उनकी दूसरों के सम्बन्ध में होती है । जब भी, जिसे भी ये परामर्श देंगे वह ऐसा होगा जिसमें चरित्र पर आँच न आती हो, भले ही सामान्य स्तर का बना रहना पड़े ।

शालीनता उपार्जित करने के लिए शिक्षा की भी जरूरत पड़ती है । अशिक्षित आमतौर से गँवार या मूर्ख होते हैं । उनके व्यवहार में दूसरों को हानि पहुँचाकर अपना लाभ कमा लेने की नीति का समावेश होता है । ऐसा ही वे स्वयं करते हैं और ऐसा ही कर गुजरने के लिए वे दूसरों को परामर्श देते हैं । कारण कि उनका ज्ञान समीपवर्ती, साधारण लोगों तक ही सीमित होता है और औसत आदमी सफल बनने के लिए ऐसे ही तरीके अपनाता है । उनमें से अपवाद रूप में ही भलमनसाहत पाई जाती है । जिस पर इस समुदाय का प्रभाव है वे यही समझते हैं कि दुनिया का रीति-रिवाज यही है और इसी रीति-नीति को अपनाने में कोई हर्ज नहीं है । सुशिक्षित-स्वाध्यायशील व्यक्तियों के सामने ही आदर्शवादियों को कार्य पद्धति होती है । इतिहास में ही ऐसे श्रेष्ठ पुरुष खोजे जा सकते हैं । वे कभी-कभी और कहीं-कहीं ही होते हैं । उन्हें आदरपूर्वक पढ़ने, सुनने और समझने से ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि कितने ही लोगों ने प्रत्यक्ष घाटा उठाते हुए भी आदर्शों का परिपालन किया है और सर्वसाधरण के सामने अनुकरणीय पथ-प्रदर्शन प्रस्तुत किया है । ऐसे लोग यदि भावनाशील हुए और आदर्शों को अपनाने से किस प्रकार महान बना जा सकता है यह समझ सके तो फिर अपने को उस ढाँचे में ढालते हैं और समय-समय पर दूसरों को भी वैसी ही सलाह देते हैं । इसी परख पर यह जाना जा सकता है कि यह व्यक्तित्ववान है या नहीं । उसकी शालीनता परिपक्व स्तर की है या नहीं ।

व्यक्तित्ववान दूसरों का विश्वास अर्जित करते हैं, साथ ही सम्मान एवं सहयोग भी । ऐसे लोगों को बड़े उत्तरदायित्व सौंपे जाते हैं और वे उन्हें उठाने में प्रसन्न भी होते हैं । क्योंकि महत्त्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करने में, अनेक लोगों का विश्वास और सहयोग अर्जित करने में ऐसे ही लोग सफल होते हैं । निश्चित है कि महत्त्वपूर्ण कामों को पूरा करने में सद्गुणी साथी अनिवार्य रूप से आवश्यक होते हैं और वे हर किसी का साथ नहीं देते । कारण कि उन्हें यह देखना पड़ता है कि कहीं ओछे लोगों की मंडली में शामिल होकर हमें भी बदनामी न ओढ़नी पड़े ।

व्यक्तित्ववानों की परख का एक और भी तरीका है कि उन्होंने अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ न्यायोचित व्यवहार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का निर्वाह किया या नहीं । जिनके साथ निरन्तर रहना पड़ता है उन्हीं के साथ आदमी की असलियत खुलती है । बाहर के लोगों के साथ तो बनावटी सज्जनता भी दिखाई जा सकती है, पर मुखौटा पहनकर दिनचर्या का निर्वाह नहीं हो सकता । चकमे में डालने की कला कभी-कभी ही काम देती है और वह प्राय: अजनबी लोगों पर ही सफल होती है । जिनसे लगातार वास्ता पड़ता है उनसे किसी के स्वभाव या चरित्र की वस्तुस्थिति छिपी नहीं रहती ।

व्यक्तित्ववानों को सदा अपनी गरिमा का ध्यान रहता है । स्वाभिमान गँवाने वाले कामों में वे हाथ नहीं डालते । ऐसी दशा में चतुर लोग उनसे उदास रहते हैं और घनिष्टता स्थापित नहीं करते । किसकी घनिष्टता किन से है, यह देखकर सहज ही जाना जा सकता है कि इस व्यक्ति का स्तर क्या होना चाहिए ? इसी प्रकार यदि पिछले दिनों के कार्यों पर दृष्टि डाली जाय और यह देखा जाय कि वे किस स्तर के थे तो भी समझा जा सकता है कि इसका व्यक्तित्व क्या है । इस स्तर की प्रतिभा अर्जित करने के लिए उच्चस्तरीय स्वाध्याय-सत्संग आवश्यक है । जिसे बाहरी स्थिति ऐसी मिलेगी वही चिन्तन और मनन भी ऊँचे स्तर का कर सकेगा । उसके द्वारा अन्यान्यों को भी ऊँचे स्तर का परामर्श एवं सहयोग मिलेगा । इन्हीं कसौटियों पर कसकर यह देखा जा सकता है कि किसका व्यक्तित्व किस स्तर का है ।

व्यक्तित्व सच्चे अर्थों में मनुष्य की महती और चिरस्थायी सम्पदा है । इसी के सहारे वह अपना और दूसरों का भला कर सकता है । किन्हीं पर उपयोगी प्रभाव डालने में भी ऐसे ही लोग सफल होते हैं अन्यथा जिनकी कथनी और करनी में अन्तर होता है । वे सर्वत्र सन्देह की दृष्टि से देखे जाते हैं और पोल खुलने पर उपहासास्पद बनते हैं ।

ऊँचे उठने, सफल बनने एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए जिस सौभाग्य को सराहा जाता है वह वस्तुत: खरा व्यक्तित्व ही है । सोने की जब कसौटी और अँगीठी पर परख हो जाती है तो उसकी उपयुक्त कीमत मिलती है । यह बात व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भी है, वह जब खरा होने की स्थिति तक पहुँच जाता है तो मनुष्य को ऐसा सौभाग्यशाली बनाता है । जिसकी चिरकाल तक सराहना होती रहे ।

परिष्कृत व्यक्तित्व के तीन महत्त्वपूर्ण अंग

प्रसन्नता-प्रफुल्लता—प्रसन्नता को सहज स्वभाव का अंग बनाना चाहिए । सामान्य कार्य करते हुए भी मुस्कान होठों पर खिलती रहे । प्रसन्नता की अभिव्यक्ति ऐसी सशक्त हो कि उसके आगे खीझ, थकान जैसे लक्षण प्रकट न हो सकें । प्रतिकूलताएँ, परेशानियाँ, उलझनें, समस्याएँ तो हर किसी के सामने थोड़ी बहुत बनी ही रहती हैं । उसका समाधान करने के लिए मानसिक संतुलन आवश्यक है अन्यथा मानसिक तनाव, खीज एक और नयी व्याधि बनकर सिर पर चढ़ दौड़ती है । जो शक्ति समाधान में लगनी चाहिए वह इन्हीं उद्विग्नताओं में नष्ट हो जाती है । ऐसी स्थिति से उबरने के लिए जो कुछ करना संभव था वह भी नहीं होने पाता ।

प्रसन्नता का स्वभाव बना लेना, उत्साह, संतुलन और साहस का अभ्यास बढ़ा लेने जैसा है । यह एक मानसिक टॉनिक है, जिससे निरंतर नयी शक्ति उभरती रहती है । ऐसे स्वभाव वाले सदा अधिक मात्रा में अधिक अच्छे स्तर का काम करने और सफलताएँ अर्जित करने में प्रथम रहते हैं ।

प्रसन्नता की अभिव्यक्ति चेहरे पर खिले गुलाब के पुष्प जैसी दीखती है, जिससे कुरूप शकल-सूरत वाला व्यक्ति भी सुन्दर लगता है । मुँह लटकाए खीझते व्यक्ति को देखकर सभी उससे बचने का प्रयत्न करते हैं । प्रसन्नता को सफलता का सूचक माना जाता है । निराशा की, अयोग्यता की असलियत का दूसरे लोग किसी के संबंध में अपनी मान्यता इसी आधार पर पक्की करते हैं । उन्हें इतनी फुरसत तो होती नहीं कि उसकी परिस्थितियों को गंभीरतापूर्वक समझें । एक नजर में उदास, हताश व्यक्ति अयोग्य, अभागा समझ लिया जाता है और उससे संबंध साधकर अपनी प्रसन्नता गँवाने के लिए कोई तैयार नहीं होता । इसलिए दर्पण को बार-बार देखकर अपनी मुखमुद्रा को प्रसन्नता भरी बनाए रहने का अभ्यास करते रहना चाहिए । कुछ समय के प्रयत्न से वह एक अच्छी आदत के रूप में स्वभाव का अंग बन जाती है । व्यक्तित्व की प्रखरता के चार चाँद लग जाते हैं ।

हँसता व्यक्ति दूसरे को हँसाते रहने में समर्थ होता है । सुंगधित वस्तुओं की समीपवर्ती वस्तुएँ भी सुंगधित हो जाती हैं । आग की गर्मी अपने आस-पास के पदार्थों को भी प्रभावित करती है । ठीक उसी प्रकार निराशा, खीझ, उदासीनता जहाँ दूसरों को दूर रहने के लिए धकेलती है । उसी प्रकार प्रसन्नता की अभिव्यक्ति करने वाले छोटे से छोटे कार्य भी अपना उत्साहवर्द्धक प्रभाव छोड़ते हैं । प्रसन्न किए गए व्यक्ति का संचित मनोमालिन्य नष्ट हो जाता है । कभी कोई बुरी मान्यता बन गयी तो वह भी बाद में समाप्त हो जाती है । सुरभित वातावरण बनाने का सही और सीधा तरीका यह है कि प्रसन्नता, सन्तोष, उत्साह और उल्लास की मन:स्थिति बनाए रहने का परिपूर्ण प्रयत्न किया जाए । इस प्रसाद को उन सब में भी बाँटा जाय जो अच्छे हों । उनकी चर्चा करके अगले दिनों और भी प्रगतिशील कदम उठाने के लिए प्रोत्साहित किया जाय । भविष्य के आशाजनक होने की संभावना व्यक्त करते हुए नई आशा और उमंग जगाने का प्रयत्न किया जाय । हँसते रहने की आदत अपने आप को अधिक सुन्दर, आकर्षक एवं समर्थ सिद्ध करने की अच्छी प्रक्रिया है । इसे अपनाने वाले अधिक कार्यरत रहने, आगे बढ़ने, ऊँचे उठने का अवसर प्राप्त करते हैं । दूसरों को भी वे अपने साथ आगे घसीट ले जाते हैं । उसके विपरीत उदास रहने वाले, बूढ़ों जैसी उदासी लादे रहने वाले, सदैव अनाकर्षक, उपेक्षित और असफल प्रतीत होते रहते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को अक्षुण बनाये रहने के लिए, मुस्कराते रहने की आदत एक अच्छे खासे टॉनिक का काम देती है । ऐसे बिना कीमत खर्च किए मिलने वाली रसायन का लाभ उठाना चाहिए ।

संघर्ष-पराक्रम—स्काउटिंग मनोवृत्ति का दूसरा चरण है—फाइट-संघर्ष । यह प्रक्रिया अपने आप से आरंम्भ करनी चाहिए । देखना चाहिए कि अपनी आदतों में कौन दुर्गुण किस मात्रा में सम्मिलित हो गया है । आलस्य, प्रमाद की कुटेव में किस हद तक सुधार करने में सफलता पायी है । व्यसनों की बढ़ोत्तरी तो नहीं हो रही है ? कटु भाषण का अभ्यास तो नहीं हो गया ? निराशा, भय, चिन्ता, उदासी आदि की घुटन, मनःक्षेत्र को हैरान तो नहीं करने लगी है ? गंदगी से समझौता करके अपने व्यक्तित्व एवं वातावरण को फूहड़ बनाने की प्रक्रिया तो नहीं चल रही है ? यदि ऐसा कुछ अनुचित अवांछनीय अपने साथ जुड़ गया हो या जुड़ता जा रहा हो, तो उसे घटाने, हटाने और साहसपूर्वक उखाड़ फेंकने की मोर्चेबन्दी करनी चाहिए ।

इर्द-गिर्द घटित होने वाले वातावरण में भी बहुत कुछ अवांछनीय होता है और वह अनायास ही प्रभावित करता रहता है । स्वभाव में भी ऐसी दुर्बलता छिपी रहती है कि अवकाश पाते ही कुकल्पनाएँ करने, दोष, दुर्गुणों, निन्दा, ईर्ष्या आदि का क्रीड़ा विनोद चल पड़े । मित्रों, स्वजनों में भी ऐसी कितनी ही त्रुटियाँ होती हैं जो आत्मीयता सघन होने के साथ-साथ अपने आचरण में सम्मिलित होने के लिए मचलती रहती है । इस पतन-पराभव के अनर्थ से सतर्कता पूर्वक न निपटते रहा जाय, तो उसका प्रकोप धीमी गति से चलते रहने पर भी कुछ समय में मनुष्य की गई-गुजरी स्थिति का बना देता है । प्रगति के लिए आवश्यक प्रतिभा को अपहरण कर लेता है । अपनी निज की तथा दूसरों की दृष्टि में गिर जाने का घाटा उठाता है । यह स्थिति बनने न पाए इसके लिए व्यक्तित्व के हर पक्ष को बुहारने का प्रयत्न करते रहना चाहिए । सद्गुणों के समावेश एवं विकास के लिए यह आवश्यक है ।

आत्म-समीक्षा करने और जहाँ भी खोट दिखाई पड़े उसे सुधारने में समग्र तत्परता बरतने के शौर्य-पराक्रम के आधार पर ही जीवन संग्राम जीता जाता है । यह आत्म-परिष्कार की प्रक्रिया नित्य कर्म में सम्मिलित रहनी चाहिए । शरीर, वस्त्र, घर, उपकरण आदि की सफाई की तरह व्यक्तित्व के किसी भी भाग में किसी भी मात्रा में घुलती-मिलती जा रही अवांछनीयता का हाथों-हाथ निराकरण करना चाहिए । यह वस्तुतः वह महाभारत है, जिसमें निरन्तर लड़ते रहने के लिए गीताकार ने अर्जुन को, आवश्यक तर्क-तथ्य प्रमाण और आधार प्रस्तुत करते हुए, संघर्षशील होने के लिए सहमत किया था ।

बाह्य क्षेत्र में भी बुराइयों की कमी नहीं है । श्रेष्ठता की अपेक्षा निकृष्टता अधिक मात्रा में पाई जाती है । उसकी दर गुजर करते न रहा जाय, तो विष बेल की तरह उसे फलने-फूलने का शुभ अवसर मिल जाता है । अवांछनीयता से यदि जूझा न जाय, तो वह और भी गर्वीली, हठीली एवं आक्रामक होती जाती है । संसार में बुराइयों की जो बेल फैलती दीखती है उसमें दुर्जनों का दुस्साहस ही एकमात्र कारण नहीं है, इससे भी बड़ा कारण है, सज्जनों का संगठित और संघर्ष-शील न होना ।

क्षमा और उदारता के नाम पर अनाचार को रोकने में कृपणता दिखाना एक प्रकार की आत्मप्रवंचना है । अनीति के विरुद्ध जुझारू रुख अपनाए रहने पर ही सज्जनता की सत्प्रवृत्तियों को जीवन्त रखा जा सकता है । इन दिनों कुरीतियाँ, अन्धविश्वास, अनाचार और अवांछनीयता दिन-दिन अधिक बढ़ती जा रही हैं । इसमें दोषी वे लोग भी हैं जो प्रतिरोध की उपेक्षा करते हैं, उस ओर कदम बढ़ाने से डरते हैं । यह लांछन किसी को लगने नहीं देना चाहिए ।

सतत् शिक्षण—फन व फाइट के बाद परिष्कृत व्यक्तित्व का तीसरा चरण है—'फीड' अर्थात् प्रशिक्षण—अधिक जानने, अधिक सीखने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना । योग्यता, क्षमता, विशेषता, वरिष्ठता के बीजांकुर तो सभी में होते हैं, पर उन्हें सुविकसित करने के लिए हर किसी को बढ़ी-चढ़ी प्रयत्नशीलता का परिचय देना पड़ता है । मनुष्य आरम्भ से शिक्षार्थी रहता है और उसे अन्तिम साँस तक सीखने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए जो उपयोगी एवं आवश्यक है । ज्ञान सम्पदा का संचय ही वस्तुतः सच्चे अर्थों में सुसम्पन्न सुयोग्य बनाता है । सुसंस्कृत भी इसी रीति-नीति को अपनाने पर बन जाता है । सीखने में असमर्थ रहने पर व्यक्ति कूप मण्डूक के स्तर का संकीर्ण-सीमाबद्ध ही बनकर रह जाता है । इस जोखिम को नहीं ही उठाना चाहिए । अनाड़ियों को ही अभावग्रस्त रहना पड़ता है और वे ही अशक्त, दुर्बल, अयोग्य समझे जाते हैं इस अभिशाप से मुक्ति पाने और दिलाने के लिए सद्ज्ञान की उपासना आवश्यक है ।

सृजनात्मक चिन्तन सुख सन्तोष का आधार

सुखी और प्रसन्न दिखाई पड़ने वाले मनुष्यों का यदि आन्तरिक विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि साधनों, सफलताओं या परिस्थितियों के कारण नहीं वे अपनी सुखद कल्पनाओं के आधार पर उत्साह और आनन्द से भरे रहते हैं ।

सुखद साधनों की उपलब्धि के साथ जिनने अपनी प्रसन्नता को जोड़ा होगा वे सदा खिन्न एवं असन्तुष्ट ही दिखाई पड़ेंगे क्योंकि मनचाही परिस्थितियाँ किसी को भी प्राप्त नहीं होतीं । आकांक्षाओं की सीमा नहीं, चाहना कितनी बढ़ी-चढ़ी हो सकती है उस पर कोई अंकुश नहीं । पर सफलताएँ तो व्यक्तित्व के निर्माण और पुरुषार्थ के नियोजन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर निर्भर रहती हैं अस्तु, वे आकांक्षाओं की तुलना में सदा कम ही रहेंगी । इस कारण को लेकर भी कोई कितना ही दुखी और असंतुष्ट रह सकता है ।

अभीष्ट वस्तुएँ, अभीष्ट परिस्थितियाँ, अभीष्ट सफलताएँ—तभी तक रुचिकर लगती हैं जब तक वे मिल नहीं जातीं । प्रतीक्षा में ही रस रहता है । मिल जाने पर उसकी सरसता अनायास ही विदा हो जाती है । परीक्षा में उत्तीर्ण होने, मुकदमों में जीतने, पुत्र होने, मकान बनाने आदि की अभिलाषाएँ जब तक पूरी नहीं होतीं तभी तक वे आकर्षक लगती हैं, जब वे पूरी हो जाती हैं तो उनमें कुछ भी आनन्द शेष नहीं रह जाता । तब वे भार मात्र एवं नीरस बन जाती हैं । अतृप्ति जब तक रहती है तब तक ही आशा भरा उत्साह रहता है । कन्या के लिए उपयुक्त घर वर मिलने और विवाह आयोजन ठीक प्रकार सम्पन्न होने की चिन्ता तथा व्यवस्था में जो दौड़ रहती थी उसका विवाह होने के उपरान्त सहज ही उसका अन्त हो जाता है । तब ऐसी शिथिलता आती है मानो कुछ करने के लिए ही शेष न रह गया हो ।

आनन्द की अनुभूति का सारा आधार मनःस्थिति पर निर्भर है । जो उपलब्ध है उसे निरख-परख कर देखें और उनके साथ अपनी तुलना करें जिन्हें इतना भी मिला हुआ नहीं है तो प्रतीत होगा कि अपनी स्थिति ऐसी है जिस पर सन्तोष ही नहीं गर्व भी किया जा सके । किन्तु इसके विपरीत आकांक्षाओं की तुलना में जो अभाव प्रतीत होते हैं उन्हीं पर ध्यान केन्द्रित रहे और सुसम्पन्नों की तुलना करते हुए अपनी स्थिति को हेय समझते रहा जाय तो असन्तोष एवं विक्षोभ के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगेगा ।

भविष्य की आशापूर्ण सम्भावनाओं का चिन्तन करते रहने से सुखद स्वप्न आँखों के आगे तैरते रहते हैं और कई बार वे इतने मधुर होते हैं कि सुसम्पन्न लोगों की तुलना में अधिक उल्लास उमगता रहता है ।

माना कि भावी सुसंभावनाएँ निश्चित नहीं हैं । पर यही क्यों मान लिया जाय कि कुकल्पनाएँ ही सही सिद्ध होंगी । सौभाग्य संदिग्ध हो सकता है पर दुर्भाग्य ही कहाँ निश्चित है । दो अनिश्चितों में से यदि किसी को कल्पना क्षेत्र में बिठाना ही पड़े तो चुनाव सुसम्भावनाओं का ही करना चाहिए । भूतकाल की जो उपलब्धियाँ अब हाथ नहीं रहीं, उनके बारे में सोचते रहने से यही प्रतीत होगा कि जो हाथ था वह चला गया और सम्पदा लुट गई । पर यदि भावी सम्भावनाओं और सफलताओं के ताने-बाने बुनने की आदत डाल ली जाय और आगत उपलब्धियों के लिए प्रयास, स्वागत का ठाठ-बाट खड़ा किया जाय तो लगेगा कि अगले दिनों आनन्द और उल्लास की घड़ियाँ द्रुत गति से दौड़ती हुई निकट चली आ रही हैं ।

सोचने की आदत निषेधात्मक, निराशाजनक, हानि संबद्ध एवं विपत्ति चिन्तन की पड़ जाय तो पग-पग पर दुःख दुर्भाग्य के घेरे में अपने को घिरा हुआ अनुभव किया जायेगा । पर यदि सृजनात्मक एवं सुसम्भावनाओं के चिन्तन की दिशा मिल जाय तो हर किसी को अपने को हर घड़ी सुखी, संतुष्ट एवं आशा-उत्साह भरे स्वर्गीय वातावरण में रहने की अनुभूति होती रहेगी ।

समत्वं योग उच्यते

संतुलन को समत्व भी कहते हैं । इस प्रकार मानसिक संतुलन प्रकारांतर से गीता में बतलायी समत्व की ही भावना है । सांसारिक पदार्थों में प्रवृत्ति की हममें जितनी शक्ति होती है, उतनी ही जब उनसे निवृत्त होने की भी शक्ति होती है, तो उस अवस्था को संतुलित और समत्व की अवस्था कह सकते हैं ।

इस समत्व को आचरण में उतारने के लिए केवल विरागी अथवा रागहीन होने से ही कार्य न चलेगा । संतुलित अवस्था तो तब होगी, जब रागहीन होने के साथ-साथ द्वेषहीन भी हुआ जाय । अपने देश के तथाकथित साधुओं ने यहीं भूल की । वे होने के लिए तो विरागी हो गये, पर साथ-साथ अद्वेष्टा न हुए । राग से बचने की धुन में उन्होंने द्वेष को अपना लिया । संसार के सुख-दुःख से सम्बद्ध न होने की चाह में उन्होंने संसार से अपना संबंध विच्छेद कर लिया और उसकी सेवाओं से अपना मुख मोड़ लिया ।

जब दो गुण ऐसे होते हैं, जो परस्पर विपरीत दिशाओं में प्रवृत्त करते हैं, तो उनके पारस्परिक संयोग से चित्त की जो अवस्था होती है, उसे भी संतुलित अवस्था कहते हैं । दया मनुष्य को दूसरों का दुःख दूर कराने में प्रवृत्त कराती है, पर निर्मोह या निर्ममत्व मनुष्य को दूसरों के सुख-दुःख से संबंधित होने से पीछे हटाता है । अतएव दया और निर्ममत्व दोनों के एक बराबर होने से चित्त संतुलित होता है । जहाँ दया मनुष्य को अनुरक्त करती है, वहाँ निर्ममता विरक्त । दया में प्रवृत्तात्मक और निर्ममता में निवृत्तात्मक शक्ति है । उसी तरह संतोष और श्रमशीलता एक-दूसरे को संतुलित करते हैं । परिश्रमशीलता में प्रवृत्तात्मक और संतोष में निवृत्तात्मक शक्ति है । उसी तरह सत्यता और मृदुभाषिता, सरलता और दृढ़ता, विनय और निर्भीकता, नम्रता और तेज, सेवा और अनासक्ति, शुचिता और घृणा, स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व, तितिक्षा और आत्मरक्षा, दीर्घसूत्रता और आलस्यहीनता, अपरिग्रह और परिग्रह, परस्पर एक दूसरे को संतुलित करते हैं । इन युग्मों में से यदि केवल एक का ही विकास हो और दूसरे के विकास की ओर ध्यान न दिया जाय, तो मनुष्य का व्यक्तित्व असंतुलित एवं एकांगी हो जायेगा । श्रद्धालु व्यक्ति में श्रद्धेय के अनुगमन करने तथा उसके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति होती है । स्वतंत्रता प्राप्त व्यक्ति पर अंकुश न होने से उसमें निरंकुशता और उच्छृंखलता बढ़ सकती है । दृढ़ प्रकृति व्यक्ति में हठ करने की प्रवृत्ति हो सकती है । प्रभुत्वशाली व्यक्ति में अभिमान बढ़ सकता है, इत्यादि । अतः जब तक इन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तियों में क्रमशः आत्म-निर्भरता, उत्तरदायित्व, हठहीनता, और निराभिमानता का विकास न होगा, तब तक पूर्वोक्त गुण अपनी-अपनी सीमा के भीतर न रहेंगे । अस्तु, उपर्युक्त युग्मों में से प्रत्येक गुण एक-दूसरे को मर्यादित करता है और एक-दूसरे का पूरक है ।

इसी बात को कवि दिनकर ने दूसरे ढंग से यों कहा है—

क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास
गरल हो ।
उसको क्या ? जो दंतहीन, विषरहित, विनीत
सरल हो ।

परोक्ष रूप में उन्होंने भी यही स्वीकारा है कि दो विपरीत गुण साथ-साथ होने चाहिए । पराक्रम के साथ व्यक्ति में दयालुता, क्षमाशीलता के गुण न हों, तो वह अत्याचार ही बरतेगा । इसके विपरीत शालीन-सज्जनों में साहसिकता का अभाव हो, तो वह कायर कहलायेगा और बलवानों की यंत्रणा का शिकार बनेगा । पराक्रम सदा क्षमाशीलता के कारण शोभा पाता है जबकि साहसिकता की प्रशंसा शालीनता में निहित है ।

जब मनुष्य में दंड देने की सामर्थ्य रहते हुए भी अपमान सहन करने की क्षमता होती है, जब वह अहिंसा व्रत पालते हुए भी अपराधियों को अधिकाधिक उच्छृंखल, उद्धत, अभिमानी और निष्ठुर नहीं बनने देता, जब वह सेवाव्रती होते हुए भी सेव्यजनों को आलसी, परमुखापेक्षी और अकर्मण्य नहीं होने देता, जब वह क्रोध में होते हुए भी अनुशासन और नियंत्रण बनाए रखना जानता है, जब उसमें भक्ति और उत्साह होते हुए भी दास-वृत्ति और उतावलापन नहीं होता, जब वह सफलता में विश्वास रखते हुए भी कार्य करने में लापरवाही नहीं करता, जब वह मान-सम्मान की परवाह न करते हुए भी लोककल्याण करने वाले शुभ कर्मों के करने में पूर्ण उत्साही होता है, जब वह अपमान से दुखी न होते हुए भी अपमानजनक कार्य न करने का संयमी एवं आत्मनिग्रही होता है, जब वह किसी कार्य में प्रवृत्त होने के साथ-साथ उससे निवृत्त भी हो सकता है, तब उसके चरित्र और गुणावलियों में संतुलन आता है ।

जब दो विचारधाराएँ मनुष्य से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्य कराती हैं, तब उनके समन्वय से जो स्थिति होती है, उसे संतुलित विचारधारा कहते हैं । आत्मसुख की भावना बहुधा मनुष्य को स्वार्थमय कर्मों में प्रवृत्त करती है और लोकसुख की भावना लोककल्याण के कार्यों में । अतएव आत्म-सुख और लोक-सुख दो विभिन्न दृष्टिकोण हुए । इनके समन्वय से जो मध्यम स्थिति उत्पन्न होती है, वही संतुलित विचार पद्धति है । उसी प्रकार जिसकी विचारधारा में पूर्व और पश्चिम के आदर्शों का समन्वय, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय, आदर्श और यथार्थ का समन्वय हुआ है और जो मध्यम मार्ग को अपनाये हुए है, उसी की विचारधारा संतुलित है ।

जब हम किसी एक ही कार्य के पीछे पड़े जाते हैं, अथवा जब हम किसी कार्य में अति करने के कारण दूसरे करणीय कार्यों को भूल जाते हैं, तब हमारी कार्यपद्धति असंतुलित होती है । यदि हम एकदम धन कमाने के पीछे पड़े जायँ अथवा यदि हम केवल पढ़ने-पढ़ाने में ही अपना सारा समय बिताने लगें, तो हमारी कार्यपद्धति असंतुलित होगी । यदि कोई विद्यार्थी अपने हस्तलेखन की केवल गति ही बढ़ाने पर ध्यान दे और अक्षरों की सुन्दरता पर विचार न करे, तो उसके प्रयास पर तरस ही आयेगा । उसी प्रकार यदि किसी देश में कोई ऐसा आयोजन हो कि केवल शिक्षा की गुणवत्ता या उसकी उत्कृष्टता पर ही एकमात्र लक्ष्य हो और इस बात का ध्यान न हो कि शिक्षा अधिक-से-अधिक संख्या के लोगों को उपलब्ध हो सके, तो उस देश के शिक्षा-शास्त्रियों की कार्यपद्धति असंतुलित ही कही जायेगी । यही बात मानव-जीवन पर भी घटित होती है । हमें केवल एक ही दिशा में घुड़दौड़ नहीं मचानी चाहिए, वरन् सब दिशाओं में समुचित विकास करते हुए मानसिक संतुलन को बनाये रखना चाहिए, तभी हम एक संतुलित दृष्टि से विकसित समाज का दिग्दर्शन कर सकेंगे ।

हमारे प्राचीन-शास्त्रकारों तथा नीतिकारों ने जगह-जगह इस बात पर जोर दिया है कि किसी भी काम में 'अति' नहीं करनी चाहिए । यह नियम बुरी बातों पर ही नहीं अनेक अच्छी बातों पर भी लागू होता है । जैसे कहा गया है कि अति दानवृत्ति के कारण बलि को पाताल में बँधना पड़ा । संभव है कि कुछ विशिष्ट आत्माओं के लिए, जो किसी असाधारण उद्देश्य की पूर्ति के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण होती हैं, यह नियम आवश्यक न माना जाय, पर सर्वसाधारण के लिए सदैव मध्यम मार्ग, संतुलित जीवन का नियम ही उचित सिद्ध होता है ।

भगवान बुद्ध ने 'मज्झम मग्ग' का मध्यम मार्ग का आचरण करने के लिए सर्वसाधारण को उपदेश किया है । बहुत तेज दौड़ने वाले जल्दी थक जाते हैं और बहुत धीरे चलने वाले अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचने में पिछड़ जाते हैं । जो मध्यम गति से चलता है, वह बिना थके, बिना पिछड़े उचित समय पर अपने गंतव्य स्थान तक पहुँच जाता है ।

मन के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है । उसमें भी मध्यम स्थिति, संतुलित अवस्था का सदा ध्यान रखना पड़ता है, तभी व्यक्तित्व की साम्यावस्था प्राप्त की जा सकती है । मानसिक क्रियाओं को प्रायः तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) भावना (२) विचार (३) क्रिया । ऐसे बहुत कम व्यक्ति हैं, जिनमें उपर्युक्त तीनों क्रियाओं का पूर्ण सामंजस्य, पूर्ण संतुलन हो । किसी में भावना का अंश अधिक है तो वह भावुकता से भरा है, आवेशों का विचार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहता है । उसकी कमजोरी अतिसंवेदनशीलता है । वह जरा सी भावना को तिल का ताड़ बनाकर देखता है ।

विचार प्रधान व्यक्ति दर्शन की गूढ़ गुत्थियों में ही डूबते-उतरते रहते हैं । नाना कल्पनाएँ उनके मानस क्षितिज पर उदित और अस्त होती रहती हैं, योजनाएँ बनाने का काम तो वे खूब करते हैं, पर असली काम के नाम पर वे शून्य हैं ।

तीसरे प्रकार के व्यक्ति सोचते कम हैं, भावना में नहीं बहते, पर काम खूब करते रहते हैं । इन कार्यों में कुछ ऐसे भी काम वे कर डालते हैं, जिनकी आवश्यकता नहीं होती तथा जिनके बिना भी उनका काम चल सकता है ।

पूर्ण संतुलित वही व्यक्ति है, जिसमें भावना, विचार तथा कार्य—इन तीनों ही तत्वों का पूर्ण सामंजस्य हो । ऐसा व्यक्ति मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ माना जाता है ।

हमें चाहिए कि हम 'अति' से अपनी रक्षा करें और इस प्रकार असंतुलन से बचे रहें । तात्पर्य यह कि अतिभावुकता में आकर ऐसा कुछ न कह डालें, ऐसे वायदे न कर बैठें, जिन्हें बाद में पूर्ण न कर सकें । इतने विचार प्रधान भी न बन जायँ कि संपूर्ण समय सोचते-विचारते, चिन्तन करते-करते ही व्यतीत हो जाय । विचार करना उचित है, किन्तु विचारों ही में निरंतर डूबे रहना और कार्य न करना, हमें मानसिक रूप से आलसी बना डालेगा । इसी प्रकार दो विरोधी गुणों में से किसी एक को जीवन में इतना प्रश्रय न दिया जाय कि व्यक्तित्व एकमुखी और एकांगी बन जाय । यह भी असंतुलन दर्शाता है । संतुलित अवस्था वह है, जिसमें दोनों गुणों का पूर्ण विकास हो ।

महानता का प्रगति-पथ

छोटे से छोटे परमाणु में शक्ति का इतना विशाल भण्डार भी होगा, यह कौन सोच सकता है ? पर अकल्पनीय-सी लगने वाली यह बात शत-प्रतिशत सच है । शक्ति का यह भण्डार अनेकानेक शहरों का नामोनिशान मिटा सकता है । इसका सृजनात्मक उपयोग न जाने कितने शहरों को विद्युत प्रदान कर सकता है ।

मनुष्य के अपने जीवन में भी यही स्थिति है । उसके द्वारा किए जाने वाले छोटे-छोटे काम उसे महानता की ओर ले जाने अथवा पतन के गहरे गर्त में गिराने का सोपान बनते हैं । आत्मनिरीक्षण करके निरन्तर प्रगति करता हुआ साधारण बालक गंगाधर लोकमान्य तिलक बन जाता है । सामान्य और मन्द बुद्धि समझा जाने वाला बालक महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन बन जाता है ।

समय की छोटी से छोटी इकाई क्षण बीतते-बीतते दिन, महीनों तथा वर्षों गुजर जाते हैं । जो अपने जीवन में इन छोटे-छोटे क्षणों का सही समुचित सदुपयोग कर सके, उन्हीं ने जीवन में महान कार्य सम्पादित किया ।

महानता का आधार लघुता ही रहा है । जिसने इसे समझा और लघुता को अपनाया वह महान बनता गया । एक ही छलाँग में पहाड़ की चोटी पर जा पहुँचने की बात कभी चरितार्थ नहीं होती । इसके लिए तो छोटे-छोटे कदमों के सहारे बढ़कर ही शीर्ष स्थान पर पहुँचा जाता है ।

जिस किसी ने लघु समझी जाने वाली बातों का महत्व समझ लिया, उसे बड़ी उपलब्धियाँ हासिल करते देर नहीं लगी । महापुरुषों के जीवन में महानता का कारण यही रहा है । उन्होंने अपने प्रत्येक छोटे और साधारण नजर में उपेक्षित समझे जाने वाले क्रिया-कलापों को औचित्य व विवेक की कसौटी पर जाँचा परखा । जो सही था उसे अंगीकार किया । इसी नीति ने उन्हें महानता के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया ।

जो छोटे-छोटे सेवा कार्य हम कर सकते हैं, वे नहीं करते । जो नन्हीं-नन्हीं भूलें हम रोज दुहराते हैं, उन्हें दूर नहीं करते, जो लघु सद्गुण हम अपना सकते हैं, उन्हें नहीं अपनाते, तो समझना चाहिए कि हम स्वयं के उत्कर्ष के प्रति उदासीन तथा मानवीय गरिमा के अर्जन के लिए प्रयत्नशील नहीं हैं ।

छोटे समझे जाने वाले लोगों की सम्मिलित शक्ति ने व्यापक और प्रबल आन्दोलन का स्वरूप लिया है । इन्हीं लोगों के सामूहिक प्रयासों ने समाज का स्वरूप बदला है । इसे अँधेरे और कँटीले वर्तमान से निकाल कर उज्ज्वल भविष्य में ला सके हैं । जिन ईसा के मत में आधी दुनिया दीक्षित है, वह अपने निजी जीवन में बहुत छोटे आदमी थे ।

छोटे होने का यह मतलब नहीं है, वह कुछ कर नहीं पाता । एक गरीब, कुरूप, तिरस्कृत ब्राह्मण चाणक्य में भारत के टूटते, बिखरते, नष्ट होते स्वरूप को देखकर संवेदना जागी । अपने अपमान के विष को तो वह पचा गया था । पर सामान्यजन की छटपटाहट उससे देखी न गई, मातृभूमि का दर्द सहा न गया । बस उभरती कर्मठता, सुनियोजित बौद्धिक क्षमता ने 'बृहत्तर भारत' को जन्म दिया ।

भारी भरकम दिखने वाले शरीर में प्राण का स्वरूप अत्यन्त लघु है । जिसका कोई भार नहीं है । किन्तु इसके निकलते ही शरीर निष्प्राण हो जाता है । इसे इतना बेकार समझा जाता है कि जलाने, गाढ़ने में ही भलाई सूझती है । महत्ता लघु प्राणों की है, वृहत् शरीर की नहीं ।

छोटे-छोटे आदमी आज यह संकल्प लें कि इस भारी भरकम दिखने वाली अनैतिकता, स्वार्थपरता, संकीर्णता, दोष, दुष्प्रवृत्तियों, कुरीतियों, मूढ़-मान्यताओं से जूझकर नवसृजन का नव विहान इस धरती पर लायेंगे तो देखते ही देखते यह निविड़ अन्धकार मिट जाएगा । नवयुग के नवप्रभात की रश्मियाँ हमारे वैयक्तिक, पारिवारिक व सामाजिक जीवन में प्रकाश उड़ेलती नजर आयेंगी । अपने सामने खड़े उत्तुंग शिखर की ओर टकटकी लगाने और भयभीत, निराश होने की बजाय अपने छोटे-छोटे पाँवों की क्षमता को पहचानें जो उस पर विजय पाने के लिए मचल रहे हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन-सन्ध्या की साधना

उपनिषदों के ऋषि कहते हैं कि "भगवान ने हमारे मस्तिष्क में बाहर जाने वाली, बाहर देखने वाली, बाहर की दुनिया का ध्यान रखने वाली इन्द्रियाँ कर दी हैं, इसलिए मनुष्य बाहर ही देखता है, अन्तर्मुख नहीं होता, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं । कोई बिरला बुद्धिमान मनुष्य ही अन्तर्मुख होकर अपनी अन्तरात्मा की ओर झाँकता है और बाहर की दुनिया की ओर से क्रमशः आँखें फेर लेता है, क्योंकि उसमें अमृत स्थिति की अभिलाषा रहती है ।"

यह अमृत स्थिति क्या है ? मुत्यु से बचना, दीर्घायु प्राप्त करना, बुढ़ापे की कमजोरी टालना, क्या यही है अमृतत्व ? यह तो देवों के राजा इन्द्र के यहाँ अमृतप्राशन करने से प्राप्त होगा । जीवन के उच्चतम तत्वज्ञान के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता । अनुभव कहता है कि इस संसार में जितने मनुष्य पैदा हुए हैं, सब मरणाधीन हैं । पुराणों के अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य और परशुराम चिरञ्जीव माने जाते हैं, पर वस्तुतः वे भी इस मृत्युलोक से चले गये । इसलिए मृत्यु को टालना या दीर्घायु प्राप्त करना यह कोई अमृतत्व की साधना नहीं है ।

उपनिषदों के ऋषि कहते हैं कि बाहरी दुनिया के पीछे पड़ना छोड़ दो अथवा कम करो और अन्तर्मुख होकर जीवन के अनुभव का सार निकालो । ऐसा करते हुए जो आत्म-तत्व मिलेगा, उसको पूरी शक्ति लगाकर पकड़ लो । जीवन की सब प्रवृत्तियों के केन्द्र में आत्मतत्व को ही रखो । तब आज का निःसार जीवन सारयुक्त होगा । जीवन का रहस्य पाने पर ही जीवन कृतार्थ होगा । वही है मुक्ति, वही है अमृतत्व । जीवन को कृतार्थ करने वाली ऐसी मोक्ष-साधना का स्वरूप क्या होगा ।

अनुभव कहता है कि बाहरी दुनिया और आन्तरिक दुनिया दोनों में से एक की भी उपेक्षा हम नहीं कर सकते । हम इस संसार में आये, यह कोई भूल नहीं हुई है । इसे पहचानना ही है । लेकिन केवल दुनिया का परिचय पर्याप्त नहीं है । शुरू में इन्द्रियों की मदद से बाहरी दुनिया का यथार्थ परिचय पा लेंगे । यह साधना अगर अन्धी या एकांगी न रही, तो वही साधना हमें आन्तरिक जगत की खोज में ले जायगी । फिर तो दोनों साधना ये एक साथ चलेंगी, एक दूसरे की मदद करेंगी । "पश्चिम जड़वादी है, हम अध्यात्मवादी हैं ।" ऐसी डींग हाँकना छोड़कर हम कबूल करें कि दोनों एकांगी हैं और जीवन रहस्य तभी प्राप्त होगा, जब हम एकांगिता को छोड़कर सर्वाङ्गी बनेंगे ।

प्रकृति की रचना भी ऐसी है कि प्रथम मनुष्य की इन्द्रियों का विकास होता है । साथ-साथ बुद्धि का, हृदय का और सङ्कल्प शक्ति का विकास भी धीरे-धीरे होता जाता है । जब मनुष्य इस तरह अनुभव समृद्ध होता है, जब उसका पुरुषार्थ दोनों दिशाओं में बढ़ता जाता है । केवल ज्ञान की खोज से, शास्त्र पठन से नहीं किन्तु ज्ञानयुक्त अनासक्त कर्म की सहायता से जब पुरुषार्थ बढ़ता है, तभी मनुष्य जीवन-रहस्य को समझ पाता है । उसी को सर्वाङ्ग, सम्पूर्ण साक्षात्कार कहते हैं । ऐसे पुरुषार्थी जीवन को सफल करने के बाद जब जीवन-सन्ध्या उपस्थित होती है, तब जीवन भर प्राप्त जीवन रहस्य को हजम करने के लिए जीवन की साधना बदलनी पड़ती है । 'बाह्य प्रवृत्ति कम करना, अन्तर्मुख होकर चिन्तन को बढ़ाना, जीवन साधना के द्वारा आत्मतत्व का जो परिचय अथवा साक्षात्कार हुआ हो, उसी को परिपक्व और दृढ़ करते जाना' यह है जीवन के सान्ध्य काल की साधना ।

इस साधना में बाहरी दुनिया का परिचय बढ़ाने की आवश्यकता कम होती है, जो अनुभव हो चुका है, उसकी जुगाली करना अधिक महत्त्वपूर्ण होता है । इसीलिए प्रकृति माता की रचना है कि इस अवस्था में इन्द्रियों की धारणा शक्ति क्रमशः क्षीण होती जाती है और बुद्धि शक्ति और अनुभव का सार निकालने की दोहन-शक्ति बढ़ती जाती है, जो कि स्वाभाविक है ।

जिन लोगों ने इन्द्रियों के वश होकर उन्हीं का अधिकार मान लिया, आयु का दुरुपयोग किया और जीवन को विकृत होने दिया, उनकी बुद्धि शक्ति शीघ्र क्षीण होगी, यह बात स्पष्ट है । परन्तु यह प्रकृति का नियम नहीं है । इसे हम प्रकृति द्वारा दिया जाने वाला दण्ड कह सकते हैं ।

जिनका जीवन-क्रम प्रकृति के अनुकूल है और जिनका समग्र जीवन, जीवन की सब ऋतुओं के प्रति निष्ठावान रहा है, उनके लिए इन्द्रियों की शक्ति का यथासमय क्षीण होना उचित मालूम होता है । देखने का देख लिया, सुनने का सुन लिया, चखने का चख लिया, प्रवृत्तियों का विस्तार किया, सेवा ली और सेवा की तथा जीवन को क्रमशः समृद्ध होने दिया । अब सारे जीवन की जुगाली करने के लिये जीवन को काफी हद तक निवृत्त करना आवश्यक है । ऐसे समय इन्द्रियों को यथोचित आराम देना ही अच्छा है इसलिए जब कान कम सुनते हैं, आँखों की शक्ति क्षीण हो जाती है, हाथ-पाँव काम करते-करते जल्दी थक जाते हैं, तब ऐसी अवस्था को शाप रूप न समझकर निवृत्ति की अनुकूलता समझना चाहिए और शान्ति, सन्तोष तथा प्रसन्नता को बढ़ाकर आत्म-चिन्तन करते-करते जीवन समस्या का रहस्य पाना चाहिए ।

और ऐसे ध्यान, चिन्तन, मनन और दोहन के फलस्वरूप जो कुछ भी सार हम पा लेते हैं, उसी को भविष्य की दुनिया के लिए एकत्र करके दे देना, यह सबसे बड़ा कर्तव्य, पुरुषार्थ हो जाता है । शान्ति, समाधान, सन्तोष, प्रसन्नता और सर्वतोभद्रता यही होना चाहिए उस अवस्था का वायु-मण्डल । ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर जीवन स्वामी जगदीश्वर के प्रति कृतज्ञता का भाव हृदय में उदय होता है और ऐसी कृतज्ञता के कारण प्रसन्नता बढ़ती है तथा पाया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुआ जीवन का सार-सर्वस्व घनिष्ट होता है । इस संसार से विदा होने की यह कितनी सुन्दर तैयारी है ।

बड़प्पन चुनें या महानता ?

उचित निर्वाह की साधन-सामग्री सहज ही उपार्जित की जा सकती है । इसके विपरीत संकीर्ण स्वार्थपरता में निमग्न व्यक्ति प्राय: अनुदार, असामाजिक और कई बार अपराधी प्रवृत्ति के भी होते हैं । ऐसे लोगों का मूल्य सर्वसाधारण की दृष्टि में गिर जाता है । फलत: वे दूसरों की सहानुभूति, सहायता एवं आत्मीयता से वंचित रहने पर उपार्जन, उपभोग भी एक सीमा तक ही कर पाते हैं । उसकी छीन-झपट का एक नया सिलसिला चल पड़ता है, फलत: कडुए-मीठे आक्रमण करने वाले अपने-विरानों से चमड़ी बचाना तक कठिन हो जाता है । ऐसे लोगों की सुरक्षा के अनेक प्रत्यक्ष एवं परोक्ष उपाय सोचने पड़ते हैं । ऐसे चिन्तन एवं प्रयास में जो सुरक्षात्मक दीवार बनानी पड़ती है, वह सफल भी एक सीमा तक ही होती है, साथ ही अनेकों अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करने के कारण महँगी बहुत पड़ती है । यह कठिनाई उत्कृष्टता की पक्षधर सज्जनता अपनाने में तनिक भी नहीं आती ।

आदर्शवादी विचारणा और कार्यपद्धति अपनाने पर इतना हर्ज तो अवश्य होता है कि समस्त क्षमताएँ स्वार्थ साधन में ही नियोजित नहीं की जातीं और इन क्षमताओं का उपयोग आत्मकल्याण एवं लोककल्याण के निमित्त भी होने लगता है । इस विभाजन से सम्पदा उतनी एकत्रित नहीं की जा सकती जितनी कि मात्र स्वार्थपरता में ही डूबे रहने पर हो सकती थी । इतने पर भी एक बड़ा लाभ यह है कि असामान्य मात्रा में संग्रह करने के लिए जो असाधारण प्रयास करने पड़ते हैं, वे भारी भी पड़ते हैं, आदतें भी बिगाड़ते हैं और उद्धत अपव्यय की लत लगाकर अनेकानेक विग्रहों, संकटों का पथ प्रशस्त करते हैं । लालची लोग सदा असंतुष्ट, खिन्न, उद्विग्न पाये जाते हैं । असीम इच्छा की पूर्ति में जो भी व्यवधान आते हैं, वे अत्यधिक कष्टकारक लगते हैं । 'जितनी आतुरता उतनी खीज' का मनोविज्ञान ऐसे लोगों की स्थिति को देखते हुए अक्षरश: सच पाया जाता है ।

गुण-अवगुणों को कतिपय कसौटियों पर कसने के उपरान्त इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होता है कि एकांगी समृद्धि चमकीले साँप की तरह लगती तो आकर्षक है, पर अपने विष-दंश से असीम क्षति पहुँचाती है । इसके विपरीत व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बनाने का लक्ष्य निर्धारित करने पर घाटा तो इतना ही हो सकता है कि निर्वाह के अनिवार्य साधनों से संतुष्ट रहना पड़ेगा और ठाट-बाट में धनवानों जैसा सरंजाम न जुट सकेगा । इतने पर भी इस मार्ग पर चलते हुए जो संतोष और सम्मान मिलता है, उसका वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्य कुछ कम नहीं है । यह मूल्य इतना है जितना किसी भी स्तर की भौतिक सफलता की तुलना में कहीं अधिक भारी पाया जा सकता है । आरम्भ में सम्पदा के सम्बन्ध में सन्तोष रखने पर तथाकथित मित्र-स्वजनों का उपहास सहना पड़ सकता है । इतने पर भी कितने ही व्यक्ति दूसरे हाथ से आदर्शवादी निष्ठा पर अपनी भाव श्रद्धांजलि भी चढ़ाते देखे जाते हैं । जबकि तथाकथित धनाध्यक्षों को अपने मित्र-कुटुम्बियों के दाँव-घातों का ही पग-पग पर शिकार बनना पड़ता है ।

प्रगति के दो मार्ग हैं—एक बड़प्पन का, दूसरा महानता का । दोनों के अपने-अपने आकर्षण हैं । देखना यह है कि चयन का विवेक इनमें से किसका चुनाव करता है । मार्ग चुनने और उस पर चल पड़ने की हर किसी को छूट है । मनुष्य अपनी रुचि के कृत्य करता रह सकता है । उस पर विश्व व्यवस्था की रोक-थाम नहीं लगती । कोई स्वार्थी हो या परमार्थी इस पर दूसरे कुछ कहते-सुनते भले ही पाये जायें पर विवशता उत्पन्न करने वाला दबाव नहीं डाल सकते हैं । आखिर मानवी स्वतंत्रता भी तो कोई वस्तु है । उसके मौलिक अधिकारों का भी तो कोई मूल्य है । उनका उपयोग हर कोई प्रसन्नतापूर्वक करता है । समाज या शासन द्वारा रोकथाम तब की जाती है जब आचरण दूसरों के साथ टकराने लगे एवं सर्वजनीन व्यवस्थाक्रम में बाधा पहुँचाये । ऐसा न हो तो फिर बाहरी दबाव पड़ने जैसी कोई बात नहीं है । परामर्श, अनुरोध आग्रह जैसा ही कुछ सम्बन्धियों की ओर से मिलता रहता है । इतने पर भी अन्तिम निर्णय मनुष्य का अपना ही होता है । अपनी इच्छा ही दिशा बनाती और प्रयाण के साधन जुटाती है ।

बड़प्पन या महानता के दो रास्तों में से किसे चुना जाय ? किसे प्रगति माना जाय ? इसका उपयुक्त निष्कर्ष निकालने के लिए कुछ कसौटियाँ निर्धारित करनी पड़ेंगी और प्रमाण उदाहरणों का आश्रय लेना होगा । तुलनात्मक दृष्टि रखकर दोनों के गुण-दोष देखने पड़ेंगे । न्यायाधीश यही करते हैं । वे वादी-प्रतिवादी के दोनों पक्षों को ध्यानपूर्वक सुनते समझते हैं । इसके उपरान्त तथ्यों का वर्गीकरण करके यह देखते हैं कि किस पक्ष के साथ कितना औचित्य-अनौचित्य है । इस नीर-क्षीर विवेक के उपरान्त ही वे अपना फैसला लिखते और घोषित करते हैं । महत्त्वपूर्ण प्रसंगों पर कोई मत बनाने से पूर्व उनके सम्बन्ध में गुण-दोषपरक मंथन और विश्लेषण किया जाना चाहिए ।

सम्पन्नता और महानता दोनों में से कोई भी हेय नहीं है । दोनों की ही अपने-अपने स्थान पर उपयोगिता है । शरीर पंचतत्वों का बना होने से उसकी आवश्यकताएँ पदार्थपरक हैं । साधन-सामग्री को ही सम्पन्नता कहते हैं । शरीर में निर्वाह और विनोद की माँग करने वाले अवयव लगे हैं । आहार, निद्रा, सफाई जैसे कृत्य निर्वाहपरक माने जाते हैं और जीभ, जननेन्द्रिय नेत्र, कान आदि इन्द्रियों के सहारे मन को विनोद करने के लिए भी कई साधनों की आवश्यकता अनुभव होती है । दोनों को मिलाकर उन्हें शरीरगत आवश्यकता कहा जा सकता है । इनकी उपयोगी पूर्ति के लिए सीमित साधनों से काम चल सकता है और उन्हें जुटाने के लिए थोड़ी-सी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्पन्नता से काम चल सकता है । इससे अधिक संचय या उपभोग की बात सोची जाय तो उसमें आरम्भिक आकर्षण तो लगेगा किन्तु यह विवेक न रहेगा कि उनकी कितनी मात्रा का औचित्य है और उसका उपभोग-उपयोग किन प्रसंगों में किस सीमा तक किया जाना चाहिए । आमतौर से अनौचित्य अपनाया जाता है और उससे विग्रह खड़ा होता है । स्वादवश अधिक खा जाने पर पेट में अपचजन्य अनेक विकृतियाँ उठ खड़ी होती हैं । इन्द्रिय लिप्सा भी एक सीमा तक ही हजम हो सकती है अन्यथा अति विलास के फलस्वरूप इन्द्रियाँ स्वयं ही नष्ट होने लगती हैं और समूची स्वास्थ्य व्यवस्था के लिए संकट खड़ा करती है । विलासी की अतिवादिता किस प्रकार दुर्बलता, रुग्णता और अकाल मृत्यु का सरंजाम खड़ा करती है । इसके उदाहरण पग-पग पर प्रस्तुत मिलते हैं ।

उपभोग एक सीमा तक ही संभव है । सम्पन्नता के क्षेत्र में कितनी ही प्रगति क्यों न कर ली जाय, उस संग्रह का उपभोग उसी सीमा तक किया जा सकता है जितना कि औसत मनुष्य करता । पेट में रोटी उतनी ही ठूँसी जा सकती है, कपड़े उतने ही पर्याप्त होते हैं जितने कि आमतौर से उपयोग में आते हैं । यदि इन पर अधिक खर्च करना हो तो परिमाण तो बढ़ नहीं सकेगा, अपव्यय पर उतारू होकर उन्हें अधिक खर्चीला भर बनाया जा सकता है । उपभोग सामग्री महँगी होने पर प्रयोक्ता के लिए कोई विशेष उपयोगी तो होती नहीं, मात्र दूसरों की ही आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करती है । देखना यह है कि क्या यह चकाचौंध उत्पन्न करना लाभदायक है भी या नहीं ?

वे दिन बहुत पीछे रह गये जब सम्पन्नताजन्य ठाट-बाट के अपव्यय को देखकर लोग अमीरों को ईश्वर का प्यारा, भाग्यवान, बुद्धिमान मानते और नतमस्तक होते थे । अब मूल्यांकन की कसौटियों में जमीन-आसमान जितना अन्तर आ गया है । इन दिनों समाजवादी, साम्यवादी चिन्तन व्यवहार में भले ही न उतर पाया हो, अर्थदर्शन के रूप में पूरी तरह लोकसमर्थन प्राप्त कर रहा है । उस मान्यता के अनुरूप अधिक संग्रही, अधिक विलासी-अपव्ययी लोग नीतिवान नहीं समझे जाते ।

ऐसे लोग बहुत ही कम मिलेंगे जिन्हें सम्पदा के साथ सदुपयोग की सद्भावना भी मिली है । जिन्हें मिली होगी उन्हें बड़े आदमी नहीं महामानव एवं सच्चे अर्थों में प्रगतिशीलतासम्पन्न व्यक्ति कहा जायेगा । उनमें सम्पन्नता को महत्व नहीं मिलेगा, वरन् शालीनता की गरिमा को सराहा जायगा और कहा जायगा कि अमुक श्रेष्ठ पुरुष ने अपने वैभव का सुदपयोग कर दिखाया । ऐसा सम्पन्नता के कारण नहीं, वरन् सज्जनता के कारण ही बन पड़ता है । व्यक्तित्व का मूल्यांकन सम्पन्नता से नहीं वरन् सज्जनता से होना चाहिए ।

महानता बड़प्पन के प्रदर्शन में नहीं

कोई स्वयं को कितना ही बड़ा क्यों न मान ले, उसके साधन कितने ही बढ़े-चढ़े क्यों न हों, उसका वह बड़प्पन अपने तक ही सीमित रहेगा । दूसरे अपने कामों में व्यस्त हैं । किसी का बड़प्पन नापने-तौलने और उससे प्रभावित होने की किसी को फुर्सत नहीं, इस तथ्य को यदि लोग समझ लें, तो कम-से-कम प्रदर्शन और ठाट-बाट के नाम पर जो धन, समय एवं चिन्तन नष्ट होता रहता है, उसकी सहज ही बचत हो सकती है और उस क्षमता को शान-शौकत की, बड़प्पन-प्रदर्शन की मूर्खता से बचाकर किसी उपयोगी काम में लगाया जा सकता है ।

अपने सौरमंडल के प्रायः सभी ग्रह हमें दिखाई देते हैं । सूर्य को छोड़कर वे छोटे-छोटे खद्योत से दीखते हैं । यद्यपि वे पृथ्वी से भी बहुत बड़े हैं । उनकी विशालता देखने को न तो हमारे पास समय है न अवकाश । वे अपनी जगह बड़े या छोटे जैसे भी हों, बने रहें, हम अपने कार्यों में व्यस्त रहे, अपनी समस्याओं को सुलझाते रहें, अपने कर्तव्यों को पालते रहें । उनके बड़प्पन को देखने, जानने पर भी हमें क्योंकर उससे प्रभावित होना चाहिए ? क्योंकर उसका अनुकरण करना चाहिए ?

बृहस्पति सौरमंडल का सबसे बड़ा ग्रह है, इतना बड़ा कि सभी आठ ग्रह उस अकेले में समा जायें । वह पृथ्वी से १६०० गुना बड़ा है और उससे ६० करोड़ मील दूर है । इस दूरी की तुलना में बेचारा चन्द्रमा जो सिर्फ २ लाख मील दूर है, पार्श्व में बैठा हुआ प्रतीत होगा ।

बृहस्पति की आकर्षण शक्ति इतनी है कि धरती पर रहने वाला कोई डेढ़ मन वजन का मनुष्य वहाँ जाकर ४ मन भारी हो जाय । वह अपनी धुरी पर अत्यन्त द्रुतगति से घूमता है । यह चाल अन्य सब ग्रहों से अधिक है । वहाँ पाँच घंटे का दिन और पाँच घंटे की रात होती है । यदि अंतरिक्ष यानों के माध्यम से वहाँ अन्वेषण का क्रम कभी चल पड़ा तो सबसे पहले यान और यात्री उसके प्रमुख चन्द्रमा 'सीरस' पर सवारी गाँठेंगे और वहीं से खोजबीन आरंभ करेंगे । जब आवश्यक जानकारियाँ उपलब्ध हो जायेंगी, तभी बृहस्पति पर उतरेंगे ।

बृहस्पति का विस्तार अत्यन्त विशाल है, व्यास ८८ हजार मील है । उस पर हजारों मील मोटी गैस के बादलों की पर्त छाई हुई है । सूर्य से ४८ करोड़ ३० लाख मील दूर होने के कारण वहाँ गर्मी पहुँचाने वाली किरणें बहुत स्वल्प मात्रा में पहुँचती हैं, इसलिए वह अत्यधिक ठंडा है । अन्य ग्रह सूर्य के समीप हैं । हमारी पृथ्वी सवा नौ करोड़ मील दूर है । मंगल पौने १५ करोड़ मील, शुक्र पौने ६ करोड़ मील और बुध साढ़े ३ करोड़ मील है । अत्यधिक दूरी होने के कारण सूर्य-साम्राज्य में रहते हुए भी बहुत बातों में आत्मनिर्भर है । उसे पूरा औपनिवेशिक स्वराज्य मिला हुआ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । सौर परिवार कामनवेल्थ का वह सम्मानित सदस्य होते हुए भी अपने बलबूते पर ही अपना क्रियाकलाप चलाता है ।

गैस के बादलों की मोटी परत के नीचे बृहस्पति पर बर्फ की मोटी पर्त जमी है । उस पर कभी-कभी ३० हजार मील लम्बे और ७ हजार मील चौड़े लाल धब्बे दिखाई पड़ते हैं । अनुमान यह है कि उसमें ज्वालामुखी फटते रहने और उनके लावा उगलने के कारण दिखाई पड़ते हैं ।

बृहस्पति के अनेक छोटे-बड़े चन्द्रमा हैं । इनमें से अभी १२ देखे-जाने जा सके हैं । सोचा जा रहा है कि जब सौर-मंडल की यात्रा पर निकला हुआ मनुष्य बृहस्पति की खोज पर जायेगा, तब पहले उसे इन्हीं में से किसी चन्द्रमा पर रुककर अपनी खोज आरंभ करनी होगी और वस्तुस्थिति का पता लगाने के बाद उस धरती पर पैर रखने की हिम्मत करनी होगी । अन्य ग्रहों में से शनि के ९, यूरेनस के ५, नेपच्यून के २, पृथ्वी का १ चन्द्रमा है । २० खरब ७२९ करोड़ मील की यात्रा का साधन जुटाकर जब सौरमंडलीय यात्रा आरंभ होगी, तब ये चन्द्रमा ही मूलग्रहों पर उतरने के प्रथम सोपान होंगे । उस यात्रा का सबसे अन्तिम ग्रह प्लूटो होगा । वह आकार में तो पृथ्वी के ही बराबर है, पर सूर्य से इतनी अधिक दूर है कि वहाँ से उसका प्रकाश टिमटिमाती मोमबत्ती जितना ही दिखाई देगा । हमारी पृथ्वी का जीवन प्राण सूर्य, प्लूटो को अपने अस्तित्व भर की जानकारी देने वाला एक छोटा-सा दीपक भर लगेगा ।

ऊपर की पंक्तियों में बृहस्पति की विशालता की लेशमात्र जानकारी भर है । यह जानकारी उसके विशाल कलेवर की दृष्टि से इतनी न्यून है, जिसे नगण्य माना जा सके । उसके बारे में अभी और भी अनेकों गुनी बड़ी और विस्तृत जानकारी अर्जित करनी शेष है, जो उसके विस्तार-वैभव को सही-सही प्रकट कर सके !

यदि हमारी ही तरह ओछी बुद्धि का बृहस्पति ग्रह होगा, तो यह सोच कर गद्‌गद् हुआ करेगा कि सौर परिवार के सारे ग्रह उसकी धाक मानेंगे और पृथ्वी आदि पिण्डों पर रहने वाले प्राणी निरन्तर उसका नमन-वन्दन करेंगे पर ऐसा होता कहाँ है ? हमें किसी के बड़प्पन से क्या लेना-देना ! हमारी अपने बड़प्पन की समस्याएँ ही क्या कम हैं, जो अन्य अनेक का लेखा-जोखा लेने में माथापच्ची करें । माथापच्ची सफल और सार्थक तभी मानी जा सकती है, जब इससे अपना अथवा और का हित-साधन होता हो, किन्तु जहाँ दोनों में से कुछ भी हाथ न लगे, वहाँ इसे समयक्षेप करने वाली नासमझी ही तो कही जायेगी ।

कीट्स ने अपनी कविता 'फ्रॉम स्टेचर टु सब्लिमेशन' अर्थात् 'महिमा से महानता की ओर' में ठीक ही कहा कि जब मनुष्य अपनी ही महिमा का गुणानुवाद अपने मुख से करने लगे, तो समझना चाहिए कि वह उस महानता से दूर हटता जा रहा है, जो उसे सहज में उपलब्ध हो सकती थी । क्षुद्र स्तर के लोग ऐसी ही चर्चा में संलग्न रहते और अपना एवं दूसरों का समय बरबाद करते हैं । महानता यत्र-तत्र उल्लेख कर लेने भर से व्यक्तित्व में नहीं आ जाती, न ही यह विज्ञापन का विषय है । वस्तुतः यह एक ऐसी विभूति है, जो बिना कहे हुए भी सामने वाले को बहुत कुछ कहती-बताती रहती है । फूलों को अपनी सुगंध की चर्चा करने की कहाँ आवश्यकता पड़ती है ! वह काम तो उनकी अद्‌भुत सुवास ही अनायास करती रहती है और अनेकानेक भौंरों को मदमस्त करती हुई खींच बुलाती है । हिमालय अपने गुणों का बखान करने लगे, तो जिस दिन ऐसा हुआ, उसी दिन उसकी आध्यात्मिकता, उसकी दिव्यता समाप्त हो जायेगी और लोग न सिर्फ उसका सान्निध्य-लाभ लेने से कतरायेंगे वरन उल्लेख करने में भी कोताही बरतते पाये जायेंगे ।

जॉन रोजवुड अपनी कृति 'डिविनिटी ऑफ दि मैन' में लिखते हैं कि महानता बताने की वस्तु नहीं, वरन् करने योग्य कार्य है । वे कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति किसी नुक्कड़ पर दिन-रात यह चीखता रहे कि वह महान है, लोगों को उसका सम्मान करना चाहिए, तो उलटे वह अपमान और उपहास का पात्र साबित होगा । इसके विपरीत यदि लोगों की भलाई के लिए वह छोटा-सा भी कार्य कर दे, तो जनश्रद्धा उसके प्रति सहज ही उमड़ पड़ेगी । श्रद्धा से सम्मान और सम्मान से महान बनने की ओर उसका मार्ग प्रशस्त हो जायेगा ।

स्पष्ट है महानता बड़प्पन प्रदर्शन में नहीं, अपितु अपनी तुलना में अनेक लोगों का अनेक गुना हित-साधन में है । इसके अभाव में वैभव विस्तार सिवाय विज्ञापनबाजी के और कुछ नहीं रह जाता । बृहस्पति का विशाल विस्तार जनमानस में थोड़े समय के लिए कौतूहल तो पैदा करता है, पर पानी के बबूले की तरह उसकी क्षणभंगुरता देर तक टिकती कहाँ है ? ऐसे पसारे तो हम प्रतिदिन अनन्त आकाश में देखते ही रहते हैं किन्तु उतने भर से समाज का भला क्या लाभ हो सकता है । ऐसे ही कोई व्यक्ति धन-वैभव का खर्चीला ठाट-बाट अपनाये और सोचे कि देखने वाले उसकी चकाचौंध देखकर अवाक् रह जायेंगे, तो इस प्रकार का चिन्तन ओछेपन और बचकानेपन का ही परिचायक होगा । लोग अपने कर्तव्यों में व्यस्त रहें और स्वयं हम अपनी शक्ति वैसे कार्यों में नियोजित करें, जो आडम्बर का प्रपंच रचकर लोगों को दिग्भ्रान्त करने और साधन का अपव्यय करने में न लगती हो ।

बड़प्पन के सही मानदण्ड

बड़प्पन के शिखरों की मोहकता की ओर प्रायः सभी ललचाई नजरों से देखते हैं । सभी उस पर आसीन होना चाहते हैं, परन्तु कैसे ? मार्ग नहीं सूझ पड़ता । विचारपूर्ण दृष्टि से देखें, तो अणु से विभु, लघु से महान, बनने की चाहत बुरी नहीं है । अपूर्णता को हटाते हुए पूर्णता की ओर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ते कदम अन्तरतम की उच्चस्तर अभीप्सा के द्योतक हैं । बड़ा कहलाने, बड़ा बनने, विकसित होने, प्रगति करने की अभिलाषा से प्रेरित होकर व्यक्ति नाना विधि प्रयत्न करता है । शारीरिक क्षुधा की पूर्ति के अतिरिक्त अधिकांश लोगों की शेष सभी क्रियाएँ प्राय: इसी को उपलब्ध करने के उद्देश्य से होती हैं ।

किन्तु अभीप्सा के बाद भी अभीप्सित का न मिलना यह सिद्ध करता है कि क्रियापद्धति में कहीं न कहीं गड़बड़ी हुई, मार्ग तय करने में कहीं भटक गए, कोई न कोई भूल-भुलैया आ पड़ी. आमतौर से सोचा यह जाता है कि जिसका ठाट-बाट जितना बड़ा है, वह उसी अनुपात मे बड़ा है । मोटर, कोठी, सोना, जायदाद, कारबार. सत्ता. पद आदि के अनुसार किसी को बड़ा मानने का प्राय: सामान्य रिवाज चल पड़ा है । इससे प्रतीत होता है कि लोग मनुष्य के व्यक्तित्व को नहीं, उसकी दौलत को बड़ा मानते हैं । यदि ऐसा ही है, तो पहाड़ों को बड़ा माना जाना चाहिए, जिनके पास किसी बड़े जमींदार से अधिक जमीन और किसी बड़े किले से अधिक पत्थर होता है । धातुओं की खान भी बहुत अधिक मूल्यवान होती है. फिर उसे ही क्यों न महान मान लिया जाय ? धनी होना कोई बुरी बात नहीं है । उससे कई सुविधाएँ मिलती हैं, प्रसन्नता देने वाली परिस्थितियाँ प्राप्त होती हैं, परन्तु बड़प्पन की प्रामाणिकता इतने भर से नहीं सिद्ध हो जाती । इसका वास्तविक सम्बन्ध व्यक्तित्व से है । गरीब घरों में उत्पन्न हुए लोग भी बड़े होते हैं । धन का अभाव किसी की महत्ता को कुण्ठित नहीं कर सकता । स्वेच्छापूर्वक गरीबी वरण करने वाले महावीर, पुरुषोत्तमदास टण्डन, महात्मा बुद्ध को क्या तुच्छ समझा जायेगा ?

मन:शास्त्री पिकानस जॉस्टिन 'साइकोलॉजी ऑफ ह्यूमन डेवलपमेण्ट' में इसे व्यक्तित्व विकास की एक अवस्था बतलाते हैं । उनके अनुसार उदारता और दूरदर्शिता का नाम ही बड़प्पन है । जो जितना उदार है, वह उतना ही बड़ा माना जाएगा । जिसकी भावना, आकांक्षा और विचारधारा ऊँची होगी, जो आदर्शवाद के प्रति जितनी गहरी आस्था रखता होगा, उसकी कृतियाँ श्रेष्ठ पुरुषों जैसी होंगी । सज्जन व्यक्ति ऊँचे काम करते और ऊँचे स्तर की बात सोचते हैं, जिससे मानवता कलंकित न हो । जिससे व्यक्तित्व का मूल्य घटे, ऐसे काम वे कितना ही कष्ट आने या दूसरों के द्वारा कितने ही परेशान किए जाने पर भी करने को तैयार नहीं होते । यों सुविधा के समय हर कोई बड़ी-बड़ी बातें कर सकता है, पर परीक्षा की घड़ी आने पर ही यह पता चलता है कि कौन उदार, कौन अनुदार है, कौन छोटा, कौन बड़ा है !

मानव मन के मर्मज्ञ सी. जेम्स कोलमैन ने 'पर्सनालिटी डायनामिक्स एण्ड इफेक्टिव बिहेवियर' में इसकी कसौटी प्रभावी व्यवहार को माना है । बच्चों का व्यवहार विचित्र अव्यवस्थित रहने पर प्राय: उपेक्षणीय ही रहता है । इसका कारण उनकी नासमझी को माना जाता है । उनके इस व्यवहार पर अभिभावक खिन्न होने, क्षोभ व्यक्त करने की जगह उन्हें शिष्टशालीन व्यवहार के लिए प्रशिक्षित करते है । बड़े आदमी वे, जिनके दिल और दिमाग दोनों बड़े है । ये ओछे लोगों की छोटी हरकतों से उद्विग्न नहीं होते । गलती को सुधारने का प्रयत्न करते हुए भी उनका मानसिक सन्तुलन नहीं बिगड़ता । ऐसों का प्रमुख चिन्ह यह है कि घटनाओं और व्यक्तियों में किसी से भी उद्विग्न न होना । धीरज उसके हाथ से छूटता नहीं । शोक संताप की घड़ियों में भी वह अविचलित बना रहता है ।

व्यक्तित्व की इस अवस्था को पाने के लिए आवश्यक है अपने भीतर की हलचलो. बाहर की गतिविधियो को बारीकी से देखा जाय एव उसका समुचित विवेचन-विश्लेषण किया जाय, पर ऐसा कर पाना तभी सम्भव है, जब हमारे बड़प्पन का मानदण्ड सस्ती वाहवाही पाना न हो, वरन् स्वयं ऊँचा उठना और दूसरों को आगे बढ़ाना हो । माप तौल के पैमानों, बाटों के गलत रहने पर किसी वस्तु की यथार्थता नहीं परखी जा सकती । कसौटी ही यदि त्रुटि-पूर्ण हो तो वास्तविकता से अवगत हो सकना भला कैसे सम्भव बन पड़ेगा । ऐसी स्थिति में प्रथम और अनिवार्य आवश्यकता है कि तत्सम्बन्धी मानको को एक बार फिर परखा जाय. गल्तियाँ सुधारी जायँ । मन में यह बात गहराई से जमायी जाय कि बड़प्पन बाहर नहीं, भीतर की वस्तु है । इसकी प्राप्ति बाहरी ठाट-बाट से नहीं, वरन् दिल और दिमाग को थोड़ा उदार, सेवाभावी, परोपकारी बनाकर ही की जा सकती है ।

ऐसी समझ जग पड़ने पर स्वयं की कमियाँ न केवल दिखेंगी. वरन् खटकेंगी भी । बार-बार मन कचोटेगा कि इन्हें जल्दी से जल्दी कैसे दूर करें । फिर व्यक्तित्व का भौड़ापन न प्रिय लगेगा, न उपयुक्त । इस तरह आत्मविश्लेषण, आत्मसुधार की सींकों से बनी बुहारी लेकर व्यक्तित्व के परिसर झाड़-पोछ कर फेकने मे ही भलाई सूझेगी ।

सामान्य स्थिति में इस तरह की सफाइ का कार्य श्रमसाध्य और दुष्करप्राय है । काफी कष्ट सहने के बाद भी अधूरापन बना ही रहता है, पर मानवीय इतिहास में कभी-कभी ऐसे अद्भुत क्षण आते हैं जब सुधार की आँधी उमड़ पड़ती है और उड़ा ले जाती है, दुर्गुणों की दुर्गन्ध और बुराइयों के कूड़े कचरे को। इन क्षणों में करना सिर्फ इतना होता है कि स्वयं को उस आन्दोलन के तूफान में झोक दें और कठपुतले की भाँति सब कुछ करते चले जायें, जिसको प्रकाश-प्रेरणा दी जा रही है । इससे आगे का कार्य बाजीगर अथवा सूत्रधार का होता है वह अपनी जिम्मेदारी समझते हुए उसे वह सब कुछ प्रदान करता है, जिसके कारण नरेन्द्र नामक सामान्य सा युवक विवेकानन्द बन सका, मूलशंकर दयानन्द बन सका वास्तविक बड़प्पन इसी में है ।

एक लम्बे अर्से के बाद मानव को आज इन्हीं सौभाग्यशाली क्षणों में जीने का अवसर मिला है । ठीक वही अलभ्य मौका, जिसे पहचानकर अनेक सामान्यजन बुद्ध के साथ चलकर असामान्य, असाधारण महामानव बन सके थे । इस स्वर्णिम अवसर को यों ही न निकलने दें ! स्वयं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असमजस अथवा ऊहापोह में न रखकर आ मिलें प्रस्तुत सृजन के तूफान मे, जो मानवीय जीवन को, समाज को और युग को एक बार पुन: गरिमामयी बनाने के लिए प्रतिबद्ध है । यदि हम ऐसा करने के लिए कटिबद्ध हो सकें, तो बड़प्पन का सच्चा उपहार मिले बिना न रहेगा ।

प्रभो मुझे प्रेम के बीज बोने दो । भगवान दया करके मुझे वह शक्ति दे कि किसी को मेरी सांत्वना की आवश्यकता ही न पड़े । लोग मुझे समझें, इसके बजाय मैं ही उनको समझूँ । लोग मुझे प्यार करें, इसके पहले मैं ही उन्हें प्यार करने लग जाऊँ । हमें वही मिलता है जो दिया जाता है । क्षमा करने से ही मनुष्य क्षमा का पात्र बनता है । अपने को उत्सर्ग करने से ही नित्य जीवन मिलता है ।

'मुझे प्रेम का बीज बोने दो'—शीर्षक से विख्यात सन्त फ्रांसिस की इस प्रार्थना में न केवल ईसाई धर्म का, वरन् समग्र धर्म और अध्यात्म का सार निहित है । इसी ग्रन्थ में एक और प्रार्थना इस प्रकार है--

हे प्रभु मुझे अपनी शान्ति का यंत्र बना ।
जहाँ घृणा है वहाँ मैं प्रेम ला सकूँ ।।
जहाँ आक्रमण है वहाँ मैं क्षमा ला सकूँ ।
जहाँ मतभेद हैं वहाँ मैं मेल-मिलाप ला सकूँ ।।
जहाँ भूल है वहाँ मैं सच्चाई ला सकूँ ।
जहाँ सन्देह है वहाँ मैं विश्वास ला सकूँ ।।
जहाँ निराशा है वहाँ मैं आशा ला सकूँ ।
जहाँ अन्धकार है वहाँ मैं उजाला ला सकूँ ।।
जहाँ उदासी है वहाँ मैं प्रसन्नता ला सकूँ ।

यहाँ प्रभु से, ईश्वर से जो चाहा गया है वह सच्चे समर्पण की कुंजी है । यही प्रार्थना आदर्शों के प्रति अपने को सच्चा भक्त बनाती है और अपनी जीवनचर्या से अन्य अनेक का मार्गदर्शन करती है । हमारे अन्तराल में भी प्रार्थना के यही भाव गुंजायमान हों ।

दृष्टा नहीं सृष्टा बनना श्रेयस्कर है

मन:स्थिति की दृष्टि से मनुष्यों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है । एक सृष्टा दूसरे दृष्टा ।

सृष्टा वे हैं जो कुछ बनने और बनाने की योजना लेकर चलते है और अपनी शारीरिक, मानसिक एवं भौतिक शक्तियों को योजनाबद्ध रूप से व्यवस्थापूर्वक नियोजित करते है ।

दृष्टा वे हैं जो दुनिया की हलचलों, मन की हरकतों और शरीर की गतिविधियों को देखते भर रहते है और उनमें से अनुकूलता, प्रतिकूलता के आधार पर प्रिय-अप्रिय का, सुख-दु:ख का अनुभव करते रहते है । देखते रहना ही उन्हें पर्याप्त होता है । इतने में ही उनका सन्तोष समाधान हो जाता है । प्रिय दर्शन की इच्छा से ही वे इधर-उधर, आते-जाते और कुछ करते-धरते दीखते है । निर्माण में उनकी रुचि नहीं होती ।

सृष्टा होने की प्रतिभा कम ही लोगों में पाई जाती है । यद्यपि वह होती सभी में है और अनुकूल परिस्थितियों में विकसित भी की जा सकती है, पर इस सृजन क्षमता का उपयोग कोई-कोई ही करते हैं । आमतौर से दृष्टा बनना सरल पड़ता है उसके लिये कोई उत्तरदायित्व नहीं उठाना पड़ता और न कर्तव्य निर्धारित करना पड़ता है । जो हो रहा है उसी से सम्पर्क बनाने से काम चल जाता है । मनोरंजन की परिस्थितियाँ भी इस संसार में कम नहीं है । उन्हें पास ले आना या उनके पास पहुँच जाना कुछ बहुत कठिन नहीं है । यों उसमें भी विनोद के पास खिसक जाना सरल पड़ता है । उसे अपने पास बुलाने में तो भी झंझट उठाना पड़ता है और प्रयत्न करना पड़ता है ।

कितने ही व्यक्ति अपने अवकाश का समय सिनेमा, नाटक, नाच, गाने, खेलकूद, सैर-सपाटे, गपशप, ताश, शतरंज जैसे कार्यों में व्यतीत करते हैं । कुछ नहीं हुआ तो रेडियो से हलके-फुलके गाने सुनते रहते हैं । इस कार्य में एकाकी रहने में मजा नहीं आता—साथियों के संग अच्छा रंग जमता है इसलिये ऐसे लोग अपनी ही प्रकृति के और लोग भी तलाश करते रहते हैं । पास नहीं मिलता तो दूर जाते है अथवा ऐसा प्रयत्न करते हैं कि अपने पास-पड़ौस में ही अपनी जैसी मनमौजी प्रकृति के दूसरे लोग ढाले बनाये जायें । इसके लिये वे तरह-तरह के प्रयत्न करते हैं । दोस्ती गाँठते है, सज्जनता बरतते हैं, दरवाजों पर चक्कर लगाते है, गाँठ से भी खर्च करते है और तब तक उस प्रयास में लगे ही रहते हैं जब तक कि 'शिकार' भी उन्हीं जैसा मनचला नहीं बन जाता । इस प्रकार यह प्रवृत्ति छूत की बीमारी की तरह यारवासी के साथ-साथ बढ़ती रहती है ।

ऐसे लोगों के सामने कोई उद्देश्य नहीं होता, भविष्य की उन्हें कुछ चिन्ता नहीं होती, पारिवारिक तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों की ओर उनका कोई ध्यान नहीं जाता, प्रगति और उन्नति की कभी-कभी कल्पना तो करते है पर उत्कंठा उसकी भी नहीं होती । हलकी-फुलकी दिनचर्या बनाकर बिना बोझ और उत्तरदायित्व का मनमौजी ढर्रा ही उनके अभ्यास में जुड़ जाता है।

ऐसे हलके-फुलके ढर्रे पर चलने वाले, उसमें रस लेने वाले लोग या तो ओछे स्तर के होते हैं या बन जाते हैं । क्योंकि प्रतिभासम्पन्न और प्रगतिशील लोग सदा अपने कामों मे व्यस्त रहते है । जिनके सामने कुछ बड़ी बात नहीं वे ही इस मटरगश्ती में मस्त रहते हैं । धीरे-धीरे उनमें दोष पनपते हैं और ऐसे वातावरण में दोष-दुर्गुण ही भर जाते है । मनोरंजन के वातावरण में वे लोग भी घुस पड़ते हैं जो इन अस्त-व्यस्त लोगों से लाभ उठायें । नशा, जुआ, चोरी, व्यभिचार जैसी कितनी ही बुराइयाँ स्वभावत: ऐसे वातावरण में पलती और पनपती हैं । मनमौजी लोगों को उनमें फँस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाना सरल भी है और स्वाभाविक भी । अस्तु, बात शुद्ध मनोरंजन तक सीमित नहीं रहती । इस स्तर के लोग जब अगला कदम बढ़ाते हैं तो वह अनैतिकता और अवाँछनीयता का ही होता है । इस प्रकार दृष्टा की आरम्भ में हलकी-फुलकी जिन्दगी क्रमशः भारी और जटिल होती चली जाती है । अपराधों की और दोष-दुर्गुणों की शृंखला सीमित नहीं रहती, उसमें एक के बाद दूसरी कड़ी जुड़ती ही चली जाती है ।

कल्पना—उठती उमर, ऐसे ही अल्हड़पन को लेकर आती है । नया उत्साह होता है और दुनिया के प्रति नया कौतूहल । तब कुछ करने या बनने की अपने कुछ देखने और कुछ चखने की उत्कंठा प्रबल होती है । उस उभार को दिशा देने का उपयुक्त साधन न हो तो फिर पानी नीचे की ओर ही बहता है । तब मनमौजी बनने का और ऐसी ही चौकड़ी में फँस जाने का ही द्वार खुलता है । समय कटता जाता है और पूँजी चुकती जाती है । तन, मन और धन का जो कोष पास में था वह क्रमशः घटता ही चला जाता है और जब आँख खुलती है तब जिम्मेदारियों का बोझ इतना भारी हो जाता है कि उसे ढोते हुए किसी महत्त्वपूर्ण दिशा में प्रगति कर सकना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है ।

सृष्टा के सामने लक्ष्य रहता है और वह एक दिशा और कार्यपद्धति निर्धारित करता है । उसी सन्दर्भ में सोचता है और सहयोग दे सकने वालों से सम्पर्क बढ़ाता है । इस दुनिया में ऐसी सुन्दर व्यवस्था है कि सहयोगी हर क्षेत्र में मिल जाते हैं । नशेबाज, जुआरी, व्यसनी, चोर, व्यभिचारी ही हर जगह फैले नहीं पड़े हैं । सज्जनों और सद्गुणों की भी कमी नहीं । अपना मन हो तो वे भी मिल जाते हैं और सहयोग उस क्षेत्र में भी सम्भव हो जाता है । एक-एक कदम बढ़ाते चलने से लम्बी यात्रा पूरी की जा सकती है । एक-एक बूँद संग्रह करने से घड़ा भर जाता है । लक्ष्य और प्रयत्न यदि जुड़े रहें तो प्रगति निश्चित रूप से होगी भले ही वह परिस्थितिवश धीमी और कष्टसाध्य क्यों न बनी रहे ।

मनमौजी लोग प्रगतिशील लोगों के साथ जब अपनी तुलना करते हैं तो उन्हें जमीन-आसमान जितना अन्तर दीखता है । स्कूल में साथ पढ़ने वाले फिसड्डी और गरीब लड़के अब कहाँ पहुँच गये, कितने आगे बढ़ गये जबकि अपने पास सुविधा-साधन रहने पर भी कुछ बन नहीं सका । उठना तो दूर उलटे नीचे ही खिसकते चले गये और स्थिति में इतना अन्तर पड़ गया जिसे देखकर आश्चर्य होता है ।

इस अन्तर की ठीक से समीक्षा न कर सकने वाले लोग सरल या समाधान भाग्यवाद को ढूँढ़ लेते हैं । वे प्रशंसा या निन्दा भाग्य की करते हैं और उसे ही इस उतार-चढ़ाव का कारण मानते हैं । पर वास्तविकता ऐसी है नहीं । मनुष्य के सृष्टा और दृष्टा क्षेत्र में से एक की पसन्दगी ही वह आधार है जिसे अपनाने पर ऊँचे चढ़ना या नीचे गिरना संभव होता है ।

दृष्टा मनोरंजन के स्थान और अवसर ढूँढ़ने के लिये मारा-मारा फिरता है । नवीनता जब तक रहती है तब तक मौज अच्छी लगती है । पुरानी होने पर वही बात नीरस और अप्रिय लगने लगती है । हर रोज एक ही सिनेमा देखना, एक ही मिठाई खाना, एक ही गाना सुनना कौन पसन्द करता है । नवीन के बिना मनोरंजन में रस ही नहीं रहता । नये अवसर कहाँ तक आयें, नई विनोद सामग्री कहाँ तक मिले ? मन में अतृप्ति ही बनी रहती है । समय, श्रम, मनोयोग, धन की प्रचुर मात्रा खर्च करते रहने पर भी अभाव, असन्तोष और अतृप्ति का ही अनुभव होता है । उतने साधनों का सदुपयोग करके जो कहने लायक प्रगति हो सकती थी उसका घाटा तो प्रत्यक्ष ही है । दृष्टा प्रवृत्ति जिस प्रसन्नता और तृप्ति को लक्ष्य मानकर मुखरित हुई थी उससे सदा उसे वंचित ही रहना पड़ता है । जो मिलता है वह आकांक्षा की तुलना में अति स्वल्प ही ठहरता है और असन्तोष ही बना रहता है ।

सृष्टा का मनोरंजन उसका कार्य, प्रयत्न, पुरुषार्थ, साहस और लक्ष्य स्वयं ही बन जाता है । उसे अपनी चेष्टा में स्वयं ही रस आता है । उज्ज्वल भविष्य के सपने उत्साह भरते हैं और उसी जैसे अन्य प्रगतिशील साथियों का सम्पर्क सहयोग नया प्रकाश देता रहता है। सृष्टा देखता है कि उसने न केवल स्वयं ही प्रगति की वरन् अपने सम्पर्क और प्रभाव में आने वाले लोगों को प्रगतिशीलता के लिये प्रकाश और प्रोत्साहन भी प्रदान किया, यह संतोष उतना गहरा और स्थायी होता है कि उसकी सुगन्ध देर तक बनी रहती है और ऊँचे दर्जे का संतोष समाधान मिलता रहता है ।

यह सोचना सही नहीं कि प्रगतिशील और कार्य व्यस्त लोग मनोविनोद से वंचित रह जाते हैं और रूखा और नीरस जीवन जीते हैं । यदि ऐसा होता तो वे अपना काम लम्बे समय तक तन्मयता के साथ कर ही नहीं सकते थे । मनोवैज्ञानिक तथ्य यह है कि अरुचिकर कार्य देर तक नहीं किया जा सकता, उसमें जल्दी ही थकान आती है, जी ऊबता है और सफलता का स्तर गया-गुजरा रहता है । जिसमें रस न आए ऐसा काम छोड़ते ही बनता है । कोई लम्बे समय से, तत्परता और रुचिपूर्वक किसी काम को कर रहा है इसका तात्पर्य निश्चित रूप से यह है कि उसे उसमें मनोरंजन के तत्व मिल गये ।

काम का वर्गीकरण करके कुछ-कुछ देर बाद उस प्रक्रिया में थोड़ा हेर-फेर करते रहने की पद्धति सभी कार्यनिष्ठ लोग जानते हैं फलतः उन्हें न थकान की शिकायत होती है, न मनोरंजन की कमी अखरती है ।

मनोरंजन के साधन बाहर तलाश करने के लिये मारे-मारे फिरना दृष्टा वर्ग को ही पसन्द आता है। सृष्टा मनोरंजन के पीछे नहीं भागता वरन् उसे अपने क्रिया-कलाप में से स्वयं ही उत्पन्न करता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सृष्टा और दृष्टा के वर्गीकृत क्षेत्रों में से अपने लिये कौन-सा उपयुक्त पड़ेगा इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए और यदि सृष्टा पक्ष भारी लगता है तो सारी हिम्मत बटोरकर अपने मानसिक क्रिया-कलाप को उसी ढाँचे में ढालने के लिये उठ खड़ा होना चाहिए ।

जीवन को सफल बनाने वाला व्यावहारिक अध्यात्म

सांसारिक सफलताओं में जितना सहायक मानसिक संतुलन होता है उतना संभवत: संसार का अन्य कोई साधन कदाचित् ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है ।

मानसिक आवेश या अवसाद दोनों ही ऐसे हैं जो कदाचित् ही किसी की सूझबूझ को व्यवहारकुशल रहने देते हैं और उसे इस निष्कर्ष पर कदाचित् ही पहुँचने देते हों कि वर्तमान क्षमताओं और परिस्थितियों का तालमेल बिठाते हुए क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ।

मनुष्य के सामने परिस्थितियों की प्रतिकूलता सें जूझने और अनुकूलता को बनाने के लिए अनेक विकल्प रहते हैं । उनमें से कुछ अनाड़ीपन से भरे होते हैं और कुछ समझदारी के । इनमें से किसका चुनाव किया जाय इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए ऐसी मन:स्थिति चाहिए जो हर पक्ष के गुण-दोष ढूँढ सके और जो सरल एवं सही हैं, उन्हें अपना सके । आवेशग्रस्तता ऐसा सुझाती है जो आक्रामक हो, आतुर हो । इसके विपरीत डरपोक व्यक्ति किसी प्रकार गाड़ी धकेलना और समय चुकाना चाहता है । ऐसा कुछ नहीं करना चाहता जिसमें झंझट दीख पड़े, जिसमें अतिरिक्त शक्ति लगानी पड़े । यह दोनों ही स्थितियाँ अतिवाद के दो सिरे हैं । इनमें से एक भी ऐसा नहीं है जो दूरदर्शिता को सही रहने दे और ऐसा चुनाव करने दे जो प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण भी रखे और सफलता को समीप भी ला दे ।

संतुलित मन वाला ही सज्जनोचित विनम्र व्यवहार कर सकता है । उसी में वह विशेषता होती है जो मैत्री को बढ़ाने और कटुता को घटाने में सहायक सिद्ध हो सके । शिष्टाचार की सामान्य-सी भूल भी दूसरों को अखर जाती है और वे उसे अशिष्टता, अवमानना मान बैठते हैं । फलत: मित्र को कम और विरोधी को वह उपेक्षा अप्रिय लगती है जो वस्तुत: कर्ता के मन में भी नहीं थी । मात्र मन की अस्त-व्यस्त स्थिति में ही संयोगवश बन पड़ी थी ।

स्मरण रखने योग्य बात यह है कि जिसके मित्र, शुभ-चिन्तक, समर्थक, प्रशंसक अधिक होते हैं वह आगे बढ़ता और समीपता के निकट अपेक्षाकृत जल्दी पहुँचता है । जिसके निन्दक, विरोधी अधिक होते हैं, जिसे उपेक्षा, असहयोग का सामना करना पड़ता है, वह अपने सरल कामों में भी विलम्ब होते और अड़चन आते देखता है । सौजन्य ही वह कला है जो मित्र बढ़ाती और विरोधी घटाती है । सज्जनता किसी के ऊपर अहसान करना नहीं वरन् अपने ही व्यक्तिगत सम्मान तथा सहयोग का क्षेत्र विस्तृत करना है । इस बिना खर्च की विशिष्टता को अर्जित करने में एक ही प्रधान कठिनाई है, मस्तिष्क को असामान्य स्थिति में उबलता हुआ या गया गुजरा अनगढ़ स्तर का रखना ।

बुद्धिमत्ता की अनेक परीक्षाएँ हैं । पर सबसे सरल और कारगर यह है कि अपने स्वभाव को उदार और सहनशील बनाकर रखा जाय । यह तभी हो सकता है जब दूसरों की भूलों को सामान्य मानकर चला जाय और उसके पीछे दुर्भावना न ढूँढकर व्यवहार की भूल-चूक मानकर चला जाय । साथ ही अपनी सज्जनता को किसी भी स्थिति में मर्यादा से बाहर न जाने दिया जाय । सज्जनता ऐसी विशेषता है जिसे किसी भी स्थिति में अपने स्थान पर अक्षुण्ण बनाये रखा जाय । वह अपने व्यक्तित्व के साथ इतनी घुली-मिली होनी चाहिए जिसे कोई अनगढ़ व्यक्ति भी हाथ से छीन न सके ।

जिसको अपने कार्य व्यवहार में जनसम्पर्क साधना पड़ता है, उसे व्यंग्य, उपहास, तिरस्कार की आदत छोड़ ही देनी चाहिए । इसके लिए शिष्टाचार की किसी पाठशाला में पढ़ने जाने की आवश्यकता नहीं है । मस्तिष्क को शान्त संतुलित बनाये रखने की विधा से यह सहज स्वभाव बन जाता है । जो अपने सेवक, स्वामी, मित्र, कुटुम्बी, पड़ौसी आदि के प्रति अपनी ओर से शिष्टाचार बरतता रहता है उसके प्रति अन्यान्यों की उपेक्षा, अवमानना टिक नहीं सकती । फलत: वह अन्तत: नफे में ही रहता है ।

शान्त चित्त वाला व्यक्ति ही इस तथ्य पर पहुँच सकता है कि पूरा काम करना, सही काम करना, समय पर काम करना कितना लाभदायक है । लापरवाही गैर जिम्मेदारी की स्थिति में बेगार भुगत देने से समय बच सकता है, पर उसमें प्रतिष्ठा निश्चित रूप से चली जाती है, जिसे अप्रामाणिक, बेईमान समझ लिया जाता है, उससे दुबारा काम कराने की इच्छा नहीं होती फलत: उपेक्षितों जैसी स्थिति बन जाती है । यह निश्चित है कि एक बार किसी को खराब माल चपेक देने, ज्यादा पैसे ले लेने जैसी बेईमानी में सम्मिलित किये जा सकने लायक व्यक्तियों का सहकार स्थायी रूप से गुम जाता है । लोग मनोभावों को अपने तक ही सीमित नहीं रख पाते वरन् एक दूसरे से दूसरा तीसरे से कहता रहता है । इस प्रकार बात फैलती और प्रतिष्ठा गिरती जाती है । असफलता के प्रमुख कारणों में एक है ईमानदारी के दूरगामी सत्परिणामों को न समझना और जल्दी-जल्दी अधिक मात्रा में लाभ या यश कमा लेने के लिए आतुरता बरतना । यह अपनी स्थायी प्रतिष्ठा को गिराने और भविष्य में मिल सकने वाले लाभों की जड़ काट देने के समान है ।

जो अपने आप को प्रसन्न रख सकता है उसी से दूसरे भी प्रसन्न रह सकते हैं । मुसकान यह कहती है कि यह व्यक्ति अपनी स्थिति से संतुष्ट और अपने कामों में सफल है । साथ ही यह भी प्रकट होता कि दूसरे के मिलन आगमन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर प्रसन्नता हुई है । यह सभी बातें ऐसी हैं जो आत्म-विज्ञापन के अन्य सभी तरीकों की तुलना में अधिक सस्ती और अधिक कारगर हैं । चेहरे पर मुसकराहट का बनाये रहना एक अच्छा अभ्यास है जो कुछ ही दिनों में सीखा और अपनाया जा सकता है । पर इसका बाह्य स्वरूप बन पड़ना तभी संभव है जब मन निर्द्वन्द्व हो । यदि भीतर खीज, झल्लाहट या असंतोष भरा होगा तो उसे ऊपरी आवरणों में दबाया नहीं जा सकता । वह किसी न किसी रूप में, किसी न किसी अवसर पर फूट पड़ता है और असलियत तथा बनावट के भेद को खोल देता है ।

जो गलतियाँ हो चुकी हैं, उन्हीं पर सदा सोचते रहने से मन अपने आपको अपराधी की स्थिति में गिनने लगता है और आत्म-विश्वास खो बैठता है । ऐसी दशा में उचित यही है कि जिन भूलों का जिस रूप में परिमार्जन-प्रायश्चित हो सकता हो उसे करे और नये जीवन की नई पहल करने और नई योजना बनाकर नई सफलता की दिशा में अग्रसर हो । भूत के साथ उलझे रहने की अपेक्षा यह उत्तम है कि उज्ज्वल भविष्य की बात सोचे और तदनुरूप वर्तमान को बनाने का प्रयास करे । पिछली असफलताएँ यही बताती हैं कि जितनी सतर्कता और दूरदर्शिता बरती जानी चाहिए थी उसमें कमी रह गई । ठोकर खाते ही शिक्षा यही ग्रहण की जानी चाहिए कि आगे आँख खोलकर देखें और उस असावधानी से बचें, जिसके कारण पिछली बार भूल हुई और हानि उठानी पड़ी ।

शिक्षा अनुभवी लोगों से ली जा सकती है । जो मन को अहर्निशि साथ रहने वाला फलदायी देवता मानते रहे हैं और जिन्होंने आत्मपरिष्कार के आधार पर प्रगति की है, उन्हीं से परामर्श करना उचित है । जो परावलम्बन की या अनीति अपनाने की सलाह देते हैं, उनसे बचकर रहना ही उचित है । मन को सुसंस्कृत बनाने में अपना ही आत्म-निरीक्षण और अभिनव निर्धारण सफल होता है, इस तथ्य को हमें गहराई के साथ हृदयंगम कर लेना चाहिए ।

सामूहिकता से सुसम्बद्ध आत्मचेतना

हाथ-पाँव, आँख, नाक, हृदय, मस्तिष्क आदि अंगों के समूह का नाम ही शरीर है । जीवाणुओं की सामूहिक हलचल का नाम ही जीवन है । इस समूह शृंखला से प्रथक रहकर एकाकी जी सकना किसी के लिये सम्भव नहीं । व्यक्ति समाज का एक अंग मात्र है । जब वह समूह की उपेक्षा करके व्यक्तिवादी संकीर्णता से ग्रसित होता है और क्षुद्र स्वार्थों के साधनों में लगता है तब वह ऐसे मार्ग पर भटकता है जो उसके स्वरूप और गौरव के न अनुरूप है और न अनुकूल ।

समाज से जो जितना प्रथक होता है वह उतना ही अपने को एकाकी और अभावग्रस्त अनुभव करता है । समूहगत आत्मीयता की सम्पदा से जो वंचित है उसे भावनात्मक दृष्टि से दरिद्र ही कहना चाहिए । अपने को समाज से प्रथक मानने की जिसकी जितनी मान्यता है वह उतना ही भयभीत, आशंकाग्रस्त और अनिश्चित स्थिति में अनुभव करेगा । अपने निज के सुखों के लिये सचेष्ट व्यक्ति जब सामूहिक सुखों की उपेक्षा करने के लिये, नीति और समाज की मर्यादाओं का उल्लंघन करने लगता है, तो वह उस समष्टि सहयोग से वंचित रह जाता है जो आनन्द, सन्तोष और उल्लास का प्रमुख आधार है । व्यक्तिवादी भले ही छीन झपट से कुछ आगे निकल जाय पर उसे असुरक्षा और आत्महीनता की भावना दिन-दिन अधिक ग्रसित करती चली जायगी । ऐसा व्यक्ति बाहर से सुख-साधन युक्त दीखते हुए भी भीतर उद्विग्न और अशान्त ही बना रहेगा ।

व्यक्ति वस्तुतः समूह का एक अविछिन्न घटक मात्र है । उसकी सत्ता का समुचित विकास तभी हो सकता है जब वह समाजनिष्ठ होकर रहे । घड़ी का एक पुर्जा अलग अपनी अर्हता प्रकट करे तो उसका यह उपहासास्पद प्रयास है । यदि वह घड़ी का अंग बनकर रहता है तो ही उसका कुछ महत्व हो सकता है । मछली को शान्ति अगाध जलराशि में विचरण करते हुए ही मिल सकती है यदि वह जलाशय की उपेक्षा कर स्वतन्त्र निवास की बात सोचे भी तो वह सुख की अपेक्षा दुःख के जाल-जंजाल में ही जा फँसेगी ।

मनुष्य के लिये डरने और लड़ने के लिये कोई सत्ता इस संसार में नहीं है । केवल उसकी स्वनिर्मित भ्रान्तियाँ और विकृतियाँ ही हैं जो क्षोभ, उद्वेग बनकर सामने आती हैं । दर्पण के सामने आकर चिड़िया अपने आप से ही लड़ती है । उसे लगता भर यह है कि सामने कोई दूसरा पक्षी उसे ललकार रहा है और प्रतिद्वन्द्वी चुनौती दे रहा है । पर यथार्थता यह है कि चिड़िया का अपना आपा ही शत्रु बनकर सामने खड़ा होता है । मनुष्य के सामने प्रस्तुत विपत्ति और विपन्नता उसकी निज की उपार्जित है । यदि वह यथार्थता के अनुकूल अपने को ढाल सके तो मृत्यु भी चिर विश्रान्ति के लिए प्रस्तुत शालीन शान्ति जैसी प्रिय मधुर प्रतीत हो सकती है ।

एक दिन ऐसा आवेगा ही जब मनुष्य अपनी सत्ता के स्वरूप और सृजन को समझ सकेगा तब उसे विदित होगा कि वह न तो अकेला है और न बाधित । कैदी उसे किसी ने बनाया नहीं, वह स्वयं ही बना है । वह कैद जिसमें उसे निरन्तर तड़पना पड़ रहा है, लगती भर अष्टधातु की है वस्तुतः वह ऐसे झीने पर्दे की बनी है जिसे तनिक से प्रयास में तोड़-फोड़कर फेंका जा सकता है । जिस दिन मनुष्य अपनी सर्वतन्त्र, स्वतन्त्र और अपरमित शक्ति सम्पन्नता पर विश्वास करेगा उस दिन उसे न किसी से शिकायत करने की आवश्यकता पड़ेगी और न शत्रुता ठाननी पड़ेगी । तब उसे किसी की सहायता भी अपेक्षित न होगी । आत्मबोध की किरणें उस अन्धकार को दूर कर देती हैं जिसके कारण पग-पग पर ठोकरें खाने के लिये विवश होना पड़ता है । पाने योग्य इस संसार में एक ही वस्तु है आत्मज्ञान और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उससे बढ़कर किसी को देने योग्य वस्तु भी किसी के पास और कुछ नहीं हो सकती ।

संगति का प्रभाव-परिणाम

ऐसे मनस्वी संसार में कम हैं जो अपनी उत्कृष्ट विशेषताएँ, अनुपयुक्त व्यक्तियों तथा वातावरण में भी अक्षुण्ण बनाये रह सकें । अधिकतर लोग ऐसे होते हैं जो वातावरण से प्रभावित होते हैं । दुर्बल एवं सामान्य मनःस्थिति पर सम्पर्क एवं वातावरण ही अपना प्रभाव छोड़ता है । दर्पण के सामने जो भी दृश्य उपस्थित होता है उसी का प्रतिबिम्ब दीखने लगता है । जैसे लोगों के बीच रहा जाता है सामान्य व्यक्ति उसी प्रभाव से प्रभावित होता है और हवा के साथ उड़ने लगता है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हर व्यक्ति को अपने सम्पर्क क्षेत्र के सम्बन्ध में अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए । अवांछनीय तत्वों से बचना चाहिए । सत्सम्पर्क बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । कुसंग से तो सर्प की तरह बचना चाहिए उससे सब प्रकार हानि ही हानि है । शास्त्र कहता है—

यदि संतं सेवेति यद्यसंतं तपस्विनं यदि स्तेनमेवा ।
वासो यथा रंगवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमुपैति ॥

—लिंग पुराण

मनुष्य सज्जन, असज्जन, तपस्वी या चोर जिस किसी की भी संगति में रहता है वैसा ही बन जाता है जिस प्रकार वस्त्र रंग में रंग जाता है उसी प्रकार वह मानव साथ रहने वाले मनुष्य के समान बन जाता है ।

भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै ।
अज्ञानहेतुकृतमोहमहांधकार नाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥

—भागवत

यदि भाग्य से किसी को सज्जनों की संगति प्राप्त हो जाय तो अज्ञानरूपी अन्धकार से छुटकारा मिलता है और विवेक रूपी प्रकाश का उदय होता है ।

सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ।

—नीति

सज्जनों को संगति से क्या-क्या सत्परिणाम प्राप्त नहीं होते ?

लघुर्जनः सजुनसंग संगात् करोति दुस्साध्यमपि सुसाध्यम् । पुष्पाश्रयाच्छंभुशिरोधिरूढा पिपीलिका चुम्बति चन्द्र विम्बम् ।

— नीति सुधाकर

छोटे मनुष्य भी श्रेष्ठ जनों के साथ कठिन कार्यों को सरल बना लेते हैं । चींटी फूल का सहारा लेकर देवता के अधरों का चुम्बन करती है ।

येषांत्रीण्यवदातानिविद्यायोनिश्चकर्म च ।
तान्सेवेत्तैः समास्याहि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी ॥

महा भा. वन. १-२६

"जिन महापुरुषों के विद्या, वंश और कर्म श्रेष्ठ हों उनकी सेवा में रहना चाहिए । उनके साथ उठना-बैठना शास्त्रों के स्वाध्याय से भी महत्त्वपूर्ण है ।"

निसंगता मुक्तिपदं यती नाम्
संगाद्दोषाः प्रभवन्ति दोषाः ।
आरुढ़ योगोऽपि निपात्यतेऽधः
संगेन योगी किमुताल्प सिद्धिः ॥

—स्मृति

"यतियों का संग आसक्तरहित होना मुक्ति का स्थान है । संग से ही समस्त दोष पैदा होते हैं । योगारूढ़ भी संग से अधोगति को प्राप्त होते हैं, तो फिर अल्पसिद्धि वाले अपक्व योगी की तो बात ही क्या है ।"

ऊँचा उठें, आगे बढ़ें

मानव जीवन का श्रेष्ठतम सदुपयोग मात्र दो ही विषयों में है । एक तो यह कि मानवी गरिमा के अनुरूप अपने गुण, कर्म, स्वभाव को ढाला जाय, संचित कुसंस्कारों का परिमार्जन किया जाय और उनके स्थान पर उन सत्प्रवृत्तियों को उभारने का पूरा-पूरा अवसर दिया जाय जो मनुष्य जीवन की सुरदुर्लभ विभूति को सच्चे अर्थों में सार्थक बनाती हैं । यही आत्मसुधार सच्चे अध्यात्म में प्रवेश करना है । योग और तप इसी निमित्त साधे जाते हैं । ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का आश्रय इसी निमित्त लिया जाता है । तत्वदर्शन और धर्मशास्त्र की संरचना इसी निमित्त हुई है ।

साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा की चार विधायें अपनाकर आत्मोत्कर्ष का महान प्रयोजन पूरा किया जाता है । पशु कलेवर छूट गया, यह एक उत्साहवर्धक सफलता है पर बात इतने से ही बनती नहीं । मानव गरिमा को प्रकट प्रकाशित करने के लिए भाव भरे प्रयत्न होने चाहिए । समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और सदुद्देश्यों के लिए बहादुरी बरते जाने की प्रक्रिया अभ्यास में उतरनी चाहिए । यदि इतना न बन पड़ा तो समझना चाहिए कि विडम्बना ही सिर पर लदकर रह गई । भीतर पशु प्रवृतियाँ भरी पड़ी हैं । चिन्तन, चरित्र और व्यवहार पर पशुता ही जड़ जमाये बैठी है । तृष्णा, वासना और अहंता ही इष्ट देवियाँ बनकर रह गईं तो सोचना चाहिए कि वस्तुतः पशुता का ही बोलबाला रहा । मनुष्य का तो मात्र कलेवर ही धारण किया गया । मुखौटा पहनकर, पोशाक अलंकार धारण करके अभिनेता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी वास्तविकता छिपाते और कुछ के स्थान पर कुछ दिखाने में सफल हो जाते हैं । यही स्थिति उनकी भी है जिनके चिन्तन अधोगामी हैं, चरित्र पर स्वार्थपरता छाई हुई है और व्यवहार में जिनने निकृष्टता धारण करके सेवा धर्म अपनाने की भावना ही त्याग दी है । जिनसे लिप्सा, वैभव और अहंकार प्रदर्शन करने वाली महत्वाकांक्षाओं के अतिरिक्त और कुछ बन ही नहीं पड़ता । मनुष्य कलेवर मिला है तो अंतरंग भी उसी स्तर का होना चाहिए । यदि पैर से सिर तक पशुता ही छाई रहे तो अच्छा यह था कि भीतर और बाहर एक जैसा दिखाने के लिए पशुओं जैसा मुखौटा और आच्छादन ओढ़ कर रहा जाता । अपना नाम नरपशुओं की श्रेणी में लिखाया होता साथ ही यह आशा भी रखी गई होती अपनी वर्तमान स्थिति और संभावना भी इसी स्तर की बन कर रहेगी ।

मनुष्य वानर की संतान होने की बात डार्विन कहते रहे हैं । आदर्शरहित व्यक्ति को नर वानर, नर पामर, वन मानुष, आदि की संज्ञा दी जाती रही है । आदिमकालीन मनुष्य तक का स्तर ऐसा ही बताया गया है । अभी भी कुछ वन जातियाँ लुक-छिप कर किन्हीं सघन क्षेत्रों में जानवरों जैसा जीवन-यापन करती देखी जाती हैं । इन सब के अनगढ़पन पर आश्चर्य प्रकट किया जाता है, उपहासास्पद माना जाता है और दुर्भाग्यग्रस्त माना जाता है । लगभग ऐसा ही स्तर उन लोगों का भी है जो कहे तो शिक्षित जाते हैं । रहते तो सभ्यजनों की तरह हैं । साधनसुविधाओं की भी कमी नहीं । पर उन्हें कभी इस बात का ध्यान नहीं आता कि मनुष्य जन्म जैसा उच्च पद मिलने के उपरान्त जो कर्तव्य एवं दायित्व सिर पर लदे हैं उन्हें भी समझा और पाला जाय । इस सन्दर्भ में उपेक्षा करने के उपरान्त मनुष्य का स्तर और भी अधिक गया-गुजरा बन जाता है क्योंकि साधन न होने के कारण अन्य जीवधारी पेट प्रजनन तक सीमित रहने के लिए विवश हैं पर मनुष्य तो हर दृष्टि से समर्थ और सुविकसित है । इतने पर भी यदि वह अपने मूल लक्ष्य से भटक कर भूल-भुलैया में मारा-मारा फिरता है तो इसमें दोष अन्य का नहीं वरन् अपना निज का ही है । यह ऐसा बड़ा खोट है कि जिसके बदले उसे अनन्त काल तक असाधारण तप प्रायश्चित ही करना पड़े ।

जिन वस्तुओं के साथ इन दिनों असाधारण मोह जोड़ रखा है, जिन्हें अपना मान लिया गया है, वे वस्तुतः इस विशाल संसार की ही भटक हैं, पहले से भी थीं और आगे भी रहेंगी । अपने को तो एकाकी ही आना पड़ा है और एकाकी ही जाना पड़ेगा । वस्तुओं की उपलब्धियों में एक ही बुद्धिमत्ता है कि उनका श्रेष्ठतम सदुपयोग कर लिया जाय । किसी के भी साथ इतनी आसक्ति नहीं जोड़नी चाहिए कि किसी कारणवश उनसे बिछुड़ना पड़े तो दिल टूट जाय, कलेजा बैठ जाय । समझना चाहिए कि हर पदार्थ और हर प्राणी भगवान की सम्पदा है । हमें तो उनके साथ सद्व्यवहार की ही जिम्मेदारी सौंपी गई है । इसे पूरा करते रहने तक ही अपने को सोचना है । न किसी वस्तु पर अधिकार जमाया जाना चाहिए और न किसी व्यक्ति पर । यही अनासक्ति योग है । इसी को ज्ञान दृष्टि कहते हैं । तत्वदर्शी इसी प्रकार सोचते और जल में कमलवत रहकर संसार में अपना निर्वाह क्रम जारी रखते हैं । जब तक व्यक्तियों और वस्तुओं को अपनेपन की सघन मान्यता के साथ जकड़कर रखा जायगा तब तक वे भारभूत रहेंगे और उनके कारण अकर्म करने की आशंका बनी रहेगी । पर जब उन्हें भगवान की धरोहर माना जायगा तब न तो अधिकार जमाने की इच्छा उठेगी और न उनके साथ अत्यधिक लगाव बढ़ाने पर, क्षण-क्षण में राग-द्वेष उमड़ने पर मन को अशान्त ही रहना पड़ेगा ।

मनुष्य जीवन की निजी आवश्यकताओं को सृष्टा ने न्यूनतम रखा है और तुलनात्मक दृष्टि से उसे उपार्जन की क्षमता अत्यधिक मात्रा में दी है । अन्य जीवों को उपार्जनक्षमता कम और आवश्यकताएँ अधिक दी हैं । उपार्जन क्षमता अधिक होते हुए भी देखा यह जाता है कि मनुष्य की तृष्णा का कोई अंत नहीं है । इस आधार पर तो एक व्यक्ति के लिए सारी दुनिया का वैभव कम पड़ता है । कहते हैं कि हिरण्याक्ष ने समूची पृथ्वी ही चुराकर अपने भण्डार में रख ली थी । रावण और सिकन्दर अन्त तक अपने को अभावग्रस्त ही मानते रहे । हविश को पूरा करने में उन्होंने अनाचार, अत्याचार बरतने में भी कोई कमी न रखी । इतने पर भी यह संभव न हुआ कि जो बटोर सके उस पर संतोष कर पाते ।

भगवान ने मनुष्य की आवश्यकताएँ कम और उपार्जन क्षमताएँ अधिक इस कारण रखी हैं कि वह अपने निर्वाह से कुछ ही समय में निश्चिन्त हो सके और शेष सारा समय उस प्रयोजन के लिए खर्च कर सके जिसके लिए उसे यह महान अवसर उपलब्ध हुआ है । वह उद्देश्य एक ही है कि आत्मिक दृष्टि से स्वयं ऊँचा उठना और दूसरों को उठाना । स्वयं व्यक्तित्ववान बनना और दूसरों को बनाना । सम्पत्तिवान तो चोर, डाकू, ठग, उचक्के, अनाचारी भी बन सकते हैं । पर व्यक्तित्व की दृष्टि से वे गएगुजरे ही रहते हैं । अपनी दृष्टि से अपने को गिरा हुआ पाते हैं । दूसरे भी उन्हें वैसा ही अनुभव करते हैं । वस्तुस्थिति सात पर्दों के पीछे छिपाने पर भी प्रकट होकर रहती है । हींग की गन्ध पोटली में बाँध लेने पर भी रुकती नहीं । सज्जनता एवं नम्रता तो आचरण में बिना बहु प्रचारित हुए भी रह सकती है, पर दुष्टता की दुर्गन्ध दूर-दूर तक अपनी उपस्थिति का परिचय देती है और समूचे वातावरण को प्रभावित करती है । संकीर्णतावादी स्वार्थपरायण व्यक्ति सदैव उपेक्षित, तिरस्कृत रहते हैं, उनका कोई सच्चा मित्र नहीं बनता । न किसी से सराहना करते, समर्थन जताते और सहयोग करते बन पड़ता है । ऐसे व्यक्ति एकाकी स्तर के ही बनकर रह जाते हैं । न कोई उनका बनता है न वे किसी के काम आते हैं ।

जो आदर्शों के निर्वाह के लिए, संयम निभाने, उदारता बरतने के लिए साहस न कर सके, उसके लिए यह संभव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही नहीं है कि वह व्यक्तित्ववान बने, चरित्रवान रहे । स्वयं श्रद्धास्पद बने और दूसरों के मानस में आदर्शवादी श्रद्धा संवेदना का संचार कर सके ।

संसार में प्रगति, समृद्धि और सुख-शान्ति का सुनिश्चित आधार एक ही है—चरित्रनिष्ठा, व्यक्तित्व की उत्कृष्टता । उसके अभाव में किसी के लिए भी यह संभव नही होता कि मानवी गरिमा के अनुरूप अपने व्यक्तित्व को ऊर्जा और आभा सम्पन्न बना सके । इसलिए जीवन के सदुपयोग का एक ही मार्ग रह जाता है कि निर्वाह प्रयोजन के लिए उतना ही समय, श्रम, कौशल लगायें जितना कि जीवित रहने के लिए आवश्यक है । शेष सारी बचत तो सत्प्रयोजनों के लिए ही लगनी चाहिए । अपना चिन्तन, प्रयास और व्यवहार इस स्तर का रहे जिससे अपने और दूसरों के लिए सत्प्रवृत्तियों को अपनाने और बढ़ाने की प्रेरणा मिलती रहे । उठने और उठाने का उपक्रम निर्बाध गति से चलता रहे, अग्रगामिता अपनायी जाती रहे ।

हर कदम आगे की ओर

जीव का निरन्तर विकास हो रहा है उसका अज्ञान हर घड़ी घट रहा है और ज्ञान की किरणें निरन्तर अधिक उज्ज्वल होती जा रही हैं । यहाँ आप एक कल्पना कीजिए, मान लीजिये कि एक जलता हुआ बिजली का बल्ब है उसके ऊपर कपड़े के सैकड़ों पर्त चढ़े हुये हैं, सबसे ऊपर वाले पर्त को देखने पर भीतरी बल्ब का प्रकाश नहीं के बराबर दृष्टिगोचर होगा, किन्तु यह पर्त जैसे-जैसे खुलते जाते हैं वैसे ही वैसे प्रकाश अधिक स्पष्ट होता जाता है । दो चार पर्तों का कपड़ा हटा देने पर भीतर की रोशनी हलकी-हलकी किरणों से बाहर आने लगती है । जब सारे पर्त हट जाते हैं, तो बल्ब अपने उज्ज्वल स्वरूप में निकल आता है, जीव का आरम्भिक जीवन अनेक पर्तों से लिपटी हुई प्रारम्भिक दशा में होता है । अन्त में अपने पर्तों को खोलता-खोलता ज्योतिस्वरूप हो जाता है । प्याज अनेक पर्तों से लिपटी होती है । एक के बाद एक पर्त उतारते जाइये तो प्याज की भीतरी मिंगी निकल आती है यही जीवनक्रम है । योनियों की सीढ़ियों पर अज्ञान का एक-एक पर्त उतरता जाता है और ज्ञान का प्रकाश बढ़ता आता है । आप यों समझिये कि जीवन एक पतंग की डोरी है । जीवरूपी पतंग आकाश में ऊँची चढ़ती जा रही है और लिपटी हुई जीवन का सुषुप्त डोरी खुलकर आकाश में उड़ती जा रही है । इसका एक सिरा परमात्मा रूपी बालक के हाथ में है, वह चर्खी से लिपटी हुई डोरी को निरन्तर खोलता जा रहा है और एक दिन सारी डोरी को खोलकर पतंग को मुक्ति प्रदान कर देगा ।

एक बात और ध्यान रखनी चाहिए कि विकास क्रम में शारीरिक बल की अपेक्षा मानसिक चेतना प्रधान है । भैंसे की अपेक्षा बन्दर को ऊँचे दर्जे का विद्यार्थी समझा जायगा भले ही शारीरिक बल में भैंसा अधिक हो पर बुद्धि में बन्दर प्रधान है । मनुष्य भी अन्य जीवों की अपेक्षा बल और विशालता में न्यून है पर बुद्धि का प्रकाश उसको सृष्टि का सर्व शिरोमणि प्राणी बनाये हुआ है ।

यह बात निश्चित है कि एक जन्म से दूसरा जन्म अधिक उज्ज्वल होगा । कोई भी प्राणी उलटी योनि के लिये नहीं चलता, हाँ मनुष्य योनि में ऐसे अपवाद हो सकते हैं । पर वे अपवाद कभी-कभी और कदाचित् ही होते हैं । बी. ए. का विद्यार्थी प्रायः छठवें सातवें दर्जे में नहीं उतारा जाता । यह हो सकता है कि कोई आलसी, प्रमादी या उद्दंड लड़का कई वर्ष एक ही कक्षा में पड़ा रहे और अपनी शैतानियों के लिये पिटता रहे । पर जो पुस्तक उसे अनिवार्यतः नित्य पढ़नी पड़ती है, उसे भूल जाना कठिन है । यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि कोई व्यक्ति पाप कर्म करता हुआ और कोई पुण्य कर्म करता हुआ दिखाई पड़ता है । इसका क्या कारण है ? इसका कारण यह है कि एक मनुष्य अभी-अभी ही नीच योनियों में से निकलकर ऊपर आया है । दूसरा मनुष्य कई जन्मों से मनुष्य योनि में विचरण कर रहा है । जो व्यक्ति भेड़िया, व्याघ्र सर्प, सियार, बिच्छू आदि की कक्षाओं में से अभी-अभी निकला है, वह मनुष्य योनि में प्रवेश पाकर भी अपने उन पुराने संस्कारों में जागता देखा जाता है। स्वार्थी, चोर, दुष्ट, डाकू, हिंसक ऐसे ही व्यक्ति हैं । वे अपने पुराने संस्कारों को क्रमशः छोड़ते हुए आगे चलेंगे । भारतीय धर्म-शास्त्र इसीलिए किसी से भी घृणा करने की आज्ञा नहीं देता । दसवीं कक्षा के छात्र को यह उचित नहीं कि वह तीसरे दर्जे के विद्यार्थी के अल्पज्ञान के लिए घृणा करे । एक दिन वह स्वयं ही तीसरे दर्जे में रहा होगा । आज वह दसवें दर्जे में है, तो भी एम. ए. के छात्र की दृष्टि में उतना ही छोटा होगा जैसा कि वह स्वयं आज तीसरे दर्जे वाले को छोटा समझ रहा है ।

घृणा न करने का अर्थ यह नहीं है कि सेवा और सुधार से भी मुख मोड़ लिया जाय । बालक उत्पन्न होता है । उसमें व्यावहारिक ज्ञान की कमी होती है कपड़े में टट्टी, पेशाब कर देने जैसे अप्रिय कार्य वह करता है, तो भी माता-पिता उससे घृणा नहीं करते, वरन् उसको शुद्ध करने और ज्ञान बढ़ाने की सेवा-सहायता करते हैं । अज्ञानियों, मूर्खों, और पापियों को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग पर लाने का सतत प्रयत्न करना आवश्यक है । उद्दंड बच्चे को कभी-कभी चपत लगाने की जरूरत होती है, इस दृष्टि से दुष्टों को दण्ड भी दिया जा सकता है । सेवा और सुधार के लिए साम, दाम, दंड, भेद चारों से ही काम लिया जा सकता है । सुधार के लिए हिंसा की छूट है । अर्जुन को ऐसा ही अप्रिय सुधार करना पड़ा था । घृणा मूर्खता है और सेवा कर्त्तव्य है । इसलिए दुष्टों से घृणा का नहीं वरन् उनकी उन्नति के लिए सेवा का व्यवहार उसी प्रकार करना चाहिए जैसी समय की आवश्यकता हो ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह बात यहाँ अच्छी तरह ध्यान रखने की है कि कोई जीव प्रायः नीचे की योनियों में नहीं लौटता, क्योंकि जितना-जितना ज्ञान उसने इकट्ठा कर लिया है, उसे भूल नहीं सकता और भूले बिना छोटी योग्यता के शरीरों में उस प्राणी का निवास नहीं हो सकता । दस किलो पानी पाँच किलो के बर्तन में नहीं भरा जा सकता, बी. ए. का विद्यार्थी तीसरे दर्जे में नहीं उतारा जा सकता । मनुष्य को प्रायः कुकर्मों के दंड मे नीच योनियाँ नहीं मिलतीं । अगला जन्म मनुष्य का ही होता है और विकासक्रम के अनुसार परिवार एवं वातावरण भी ऊँचा ही मिलता है, जिससे विकासक्रम न रुके । परन्तु पापों के दंडस्वरूप शारीरिक कष्ट मिलते हैं । अपवाद कभी-कभी तब उपस्थित होते हैं, जब कोई जीव बहुत ऊँचा चढ़कर अचानक बहुत नीचे की ओर खिसक पड़ता है । ऐसे प्राणियों के हथियार कुछ समय के लिए जब्त कर लिए जाते हैं और जड़ योनियों में कैद कर दिया जाता है । यह कैद इसलिए होती है कि वह उस मानव जीवन की अनुपयोगी आदतों को भूल जाय । यह दंड एक प्रकार का लम्बा बचपन है । जिसमें पढ़ने की अपेक्षा भूलने की शिक्षा दी जाती है । अहिल्या के शिला हो जाने और पर्यंक यक्ष के वृक्ष हो जाने की कथा इसी सत्य पर प्रकाश डालती है । लेकिन ऐसा बहुत ही कम होता है । जेलखाने में कैदी पहुँचते तो हैं पर साधारण जनता की अपेक्षा उनकी संख्या बहुत ही कम होती है । इसी प्रकार मानव विकास का साधारण क्रम ऊपर को उठता हुआ ही जा रहा है । कैद से छूटने के बाद मनुष्य फिर अपने पुराने अधिकारों को प्राप्त कर लेता है । अपनी पिछली कमाई हुई सम्पत्ति का अधिकारी हो जाता है । अहिल्या का शिला जीवन समाप्त होते ही वह ऋषि पत्नी बन गई । इसी प्रकार यदि मनुष्य को कोई दण्डयोनि मिलती है तो उससे छूटने के बाद वह फिर से अन्य योनियों में नहीं घूमता, वरन् सीधे अपने पिछले ज्ञान में जाग्रत होता है और जहाँ से मंजिल रुकी थी, मंजिल वहीं से आगे के लिए आरम्भ हो जाती है । पिछला ज्ञान उसको ज्यों का त्यों मिल जाता है ।

केवल सत्य ही जीतता है

व्यावहारिक जीवन मे यह सभी चाहते है कि लोग हमारे साथ सत्य बोलें, सदाचार करें और सहानुभूति प्रकट करें । आत्मा अपनी श्रेष्ठता, सत्य के द्वारा ही तो व्यक्त करती है । सत्य आत्मा का नैसर्गिक गुण है । इस विशेषता के कारण ही मनुष्य अपने समीपवर्ती लोगों से सदैव सत्य व्यवहार की ही अपेक्षा किया करते है । चोर, बदमाश, लफंगे, उठाईगीर तक भी दूसरों से झूठी बात सुनकर जल-भुन उठते है और इसका प्रतिकार लेने के लिए तुल पड़ते है । हम दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं यह दूसरी बात है पर एक बात जो प्रत्येक प्राणी में समान रूप से दिखाई देती है वह यह है कि सभी सत्य के प्रति आदर-भाव रखते हैं । इससे स्पष्ट होता है कि सत्य ही आत्मा की अभिव्यक्ति है । तत्वदर्शियों का कथन है कि "परमात्मा यदि किसी के समक्ष प्रकट होना चाहे तो उसे प्रकाश से अपना शरीर और सत्य से अपनी आत्मा को धारण करना पड़ेगा ।"

मानव-जीवन की सुव्यवस्था का आधार सत्य है । हम सभी से सत्यानुसरण की अपेक्षा रखते हैं । इसका अर्थ यही हुआ कि लोगों को प्रसन्नता, आदर-भाव, व्यवस्था, स्वस्थ चिन्तन, परिपूर्णता और सुख की प्राप्ति सत्य से होती है । जब तक लोग पारस्परिक विश्वास प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक किसी प्रकार का कारोबार चला नहीं सकते । किसी से अधिक देर तक सम्पर्क भी इस प्रकार नहीं रखा जा सकता । असत्य के अन्धकार में जब तक वस्तुस्थिति ठीक प्रकार जान नहीं पड़ती तब तक भ्रमवश कोई विश्वास भले ही प्राप्त करले किन्तु सत्य का प्रकाश उदय होते ही विद्रूप उत्पन्न हो जायेगा । घृणा और तिरस्कार, निन्दा और निरादर की परिस्थितियाँ आते देर न लगेगी । व्यवस्था ही इस बात तक है कि लोग आपस में कितना विश्वास करते हैं । जो लोग मूर्ख बनाकर धोखादेही को ही जीवन का व्यापार मानते हैं, वे बड़ी भूल कर रहे हैं । यह अपने दायित्व के प्रति अकर्त्तव्य की भावना है, इससे किसी को किसी अच्छे परिणाम की आशा नहीं करनी चाहिए । सन्त इमर्सन का कथन है—"व्यापार-जगत में विश्वास व्यवस्था का यदि लोप हो जाये तो सारे मानव-समाज का ढाँचा ही अस्तव्यस्त हो सकता है ।"

इस बात की सत्यता का अनुमान आज की परिस्थितियों से भली-भाँति लगाया जा सकता है । दुकानदार लोग दूसरे को ठगने और अधिक धन कमाने की गरज से दूध मे पानी, घी में वनस्पति, खोये मे आटा मिलाकर ग्राहक की जेब काट लेते हैं । थोड़ी देर के लिये इस पर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है, किन्तु दूसरे दिन बच्चा बीमार हो जाता है, तो डाक्टर के पास जाता है । डाक्टर भी सस्ते मूल्य की दवाएँ महँगे चार्ज लेकर उससे अनुचित मुनाफा कमाता है । डाक्टर को वकील, वकीलों को फर्नीचर वाले, फर्नीचर वालों को इनकम-टैक्स वाले, सारे के सारे एक ही जाल में बुरी तरह से जकड़े है । किसी को भी चैन नहीं मिल पाता । यह सारी अव्यवस्था इस कारण है कि लोगों में ईमानदारी की प्रवृत्ति नहीं रही और एक दूसरे को ठगने के कुचक्र में फँस कर सभी कोई घाटा उठा रहे हैं ।

लोग समझते हैं कि दूसरों को धोखा देते रहना आसान है । इसे वे अपनी सफलता का आसान तरीका मानते है, किन्तु चालाकी देर तक छिपती नहीं । असलियत का अन्त में पता चल ही जाता है । समय पर 'ढोल की पोल' खुले बिना रहती नहीं । जब सही स्थिति का पता चल जाता है, तो सभी उससे घृणा करने लगते है, दूर भागते हैं । सच्चाई और ईमानदारी का ही एक मार्ग ऐसा है कि कोई कितनी ही निरख-परख करे, कितना ही कसौटी पर कसे, किन्तु 'साँच को आँच' की कहावत के अनुसार उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता । प्रारम्भ में सत्यशील लोगों को भले ही घाटा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

उठाना पड़े, किन्तु जब लोगों की नजर मे उसका मूल्य चढ़ जाता है तो सम्मान भी मिलता है और सफलता भी । सत्य का मार्ग किसी भी प्रकार घाटे का सौदा नहीं कहा जा सकता !

सत्य की महिमा सदैव से ही गाई जाती रही है । शास्त्रकार ने लिखा है:-

अश्वमेध सहस्रञ्च सत्यञ्च तुलया धृतम् ।
अश्वमेध सहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥

"अश्वमेध-फल और सत्य को तौला गया । एक ओर हजार अश्वमेध यज्ञों के फल को रखा गया और दूसरी ओर एक सत्य के फल को तो सत्य का पलड़ा भारी रहा ।"

सत्कर्म करने की प्रेरणा इसलिए दी जाती है कि इससे लोगो का नैतिक-विकास होता है । सच्चे आदमी का नैतिक बल इतना प्रबल होता है कि उसकी तुलना दस हजार हाथियों के बल के बराबर की जाती है । बड़ी-बड़ी बौद्धिक शक्तियाँ, मशीनी-ताकतें और मानवीय संगठन भी सत्य के समक्ष परास्त होते देखे गये है । हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा के समक्ष विश्वामित्र को घुटने टेक देने पड़े, महात्मा गाँधी की वाणी में वह शक्ति थी कि 'ब्रिटिश साम्राज्य' जैसी शक्तिशाली सत्ता को भी हथियार डाल देने पड़े । गाँधीजी की वाणी सदैव सत्य से अनुप्राणित होती थी । मनुष्य की शक्ति उसका व्यक्तित्व और उसकी महानता सभी उसकी सचाई में सन्निहित है, इसीलिए उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा भी की जाती है ।

सत्य जीवन की कसौटी है । इसमें तपाया हुआ मनुष्य सोने जैसा खरा निकल आता है । परमात्मा का सान्निध्य सुख प्राप्त करने के सम्पूर्ण साधनों मे सत्य का महत्व सर्वप्रथम है । प्रसिद्ध, सगुण-भक्त कवि अब्दुर्रहीम खानखाना ने एक बड़ा ही मार्मिक दोहा प्रस्तुत किया है:—

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदय साँच है, ताके हिरदय आप ॥

अर्थात्—"परमात्मा वहीं निवास करता है, जहाँ सच्चाई होती है ।" एक झूठ की तुलना तो सौ पापों के समान की गई है

मनुष्य अपने जीवन मे जितना ही अधिक सत्यता का समावेश करता जाता है, उसे उतना ही अधिक विराट्-पुरुष की अनुभूति होने लगती है । वह शरीरो की विभिन्नता मे, योनियो की विविधता में भी एक ही प्राण, एक ही चेतन आत्मा समाविष्ट हुआ देखता है । इससे उसकी दृष्टि अन्तर्मुखी होने लगती है और आत्मिक महानताएँ विकसित होने लगती हैं । इस संसार के बाह्य प्रयोजनों को वह सुविधा के और सहायक तो मानता है किन्तु इन्हें साध्य नहीं मानता । सत्य का साध्य है विराट् पुरुष परमात्मा के दर्शन । इस भावना से वह अपनी व्यष्टि को समष्टिगत भावना में घुला देता है । इससे जीवन की दिशा ही बदल जाती है और मनुष्य दिन-दिन अधिक तेजी से अपने जीवन लक्ष्य की ओर अग्रसर होने लगता है । सत्य एक साधन है जो सरलतापूर्वक हमे परमात्मा के समीप पहुँचा देता है ।

जब ऐसे प्रकाश का अन्तःकरण मे उदय होता है तो आडम्बर का महत्व गिर जाता है । दूसरों में अपना प्रभाव पैदा करने, बड़प्पन दिखाने का भाव अब उसे तुच्छ प्रतीत होता है । सादगी ही उसका जीवन बन जाती है और विचारो मे श्रेष्ठता आने लगती है । मानवता का यह प्रधान गुण है कि मनुष्य अपने विचारों का स्तर ऊँचा उठाये और लौकिक कामनाओं को बहुत छोटा मानकर केवल उन साधनों तक ही सीमित रहे जो केवल जीवन धारण के लिए पर्याप्त हों महत्वाकाक्षाओ की विपुलता ही मनुष्य को दिखावटीपन की ओर खींचती रहती है । इससे बचने का एक ही उपाय है कि हम इस विश्व की सत्यता को हर घड़ी अनुभव किया करें ।

आकर्षण का मूल बिन्दु भी सत्य है । वाणी-सत्य के कारण अनावश्यक प्राण शक्ति का अपव्यय बचता है । ब्रह्मचर्य भी सत्य का एक अङ्ग है । इससे शरीर स्वस्थ और नीरोग रहता है । इसी प्रकार शरीर के जिस अवयव से हम प्राकृतिक उपभोग के अतिरिक्त अस्वाभाविक क्रियाओं का पालन नहीं करते तो हमारी शक्तियाँ बनी रहती हैं । शरीर मे शक्ति धारण किये रहने से ही सौन्दर्य स्थिर रहता है । यह भाव सत्य के अनुशीलन से ही हमारे अन्तःकरण में प्रादुर्भूत होता है ।

जब इस प्रकार सत्य के प्रति निष्ठा और असत्य के प्रति घृणा का भाव आता है तो मानवीय मनोभूमि प्रकृति के रहस्य जानने की दिशा मे प्रवृत्त होती है । अब वह प्रत्येक वस्तु के पैदा होने के कारण पर विचार करना प्रारम्भ करता है । रात में असख्यो तारागण, दिन में सूर्य-देवता की यात्रा, चन्द्रमा की कलाओं का रहस्यपूर्ण दृश्य, पृथ्वी, पशु, पक्षी, वृक्ष, नदी, पहाड़, समुद्र इन समस्त की रचना का सूक्ष्म विधान जानने की ओर प्रयुक्त हुआ । मन अन्ततोगत्वा, आत्मज्ञान की उच्च भूमिका में प्रवेश करता है । इससे उसमें अन्तर्मुखी दृष्टि जाग्रत होती है । ऐसी अवस्था में यदि पर्याप्त ज्ञान और बाह्य सहारा न भी मिले तो भी मनुष्य अपने जीवन मे श्रेष्ठ संस्कार तो पैदा कर ही सकता है । यह शिक्षा-पद्धति किसी आधुनिक शिक्षा-पद्धति से कम महत्वपूर्ण नहीं । जिसमें केवल सांसारिक विषयों के विवेचन की तार्किक कुशलता भरी हो, उस विद्या से आत्म-विद्या कहीं अधिक श्रेष्ठ है । इसके लिये बौद्धिक-शिक्षा की उतनी आवश्यकता नहीं जान पड़ती, जितना मानवीय अन्तःकरण में सत्य के समावेश की । श्रुति का कथन है—

सत्य स्वतन्त्र रूप से साधन भी है और लौकिक व्यवहार में तप, ब्रह्मचर्य आदि विशेषण भी उसे ही मानना पड़ता है । मन, वाणी और कर्म की एकता को सत्य के साँचे में ढालने से ही सर्वाङ्गपूर्ण सत्य का दर्शन होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुण्डकोपनिषद में ऋषि ने सत्य की महिमा इस प्रकार बताई है:—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषाः ॥

(मु. ३ । १ । ५)

"उस परमात्मा को जो सबके शरीर के भीतर हृदय में विराजमान है, जो विशुद्ध ज्ञान स्वरूप और सर्वथा निर्दोष है, उसे दोषों का शोधन करते हुये साधक जन सत्य-सम्भाषण, सत्य-तप और सत्य एवं ब्रह्मचर्य से उत्पन्न ज्ञान द्वारा ही जान सकते हैं ।"

शक्ति और सामर्थ्य इसी सूक्ष्मदर्शिता के परिणाम स्वरूप प्राप्त होती है । किसी वस्तु को सही रूप में देखने का दृष्टिकोण जब प्राप्त होता है, उसको सम्पन्न करने की क्षमता तभी उत्पन्न होती है । जब तक किसी वस्तु के प्रति हमारा अनुमान सही नहीं निकलता, तब तक हममें उसे प्राप्त करने की सामर्थ्य भी नहीं होती । असफलता की आशंका बनी रहती है । इसलिये हमें सर्वप्रथम उस असीम सत्य के प्रति आस्थावान होना पड़ता है ।

सच्चा व्यक्ति जहाँ भी जाता है अपने चरित्र और व्यक्तित्व की छाप दूसरों पर डाले बिना छोड़ता नहीं । वाक्-शक्ति के द्वारा लम्बे-चौड़े प्रवचन, कथा उपदेश दिये जा सकते हैं किन्तु जिससे लोगों को प्रभावित किया जा सके और दूसरों को भी सन्मार्ग की दिशा में गतिमान् किया जा सके, उस शक्ति का नाम है सत्य । ऐसे लोगों का सम्पर्क चाहे वह दो घड़ी का ही क्यों न हो सारे जीवन भर भूलता नहीं ।

सत्यवान् व्यक्ति कम बोलते हैं किन्तु उनकी वाणी में जो माधुर्य होता है उसका प्रभाव जादू जैसा पड़ता है । उनके व्यवहार में वह सरलता होती है, वह सम्मोहन होता है जो अनेकों दूसरों को खींचकर अपने पास बुला लेता है । सत्य के ईंट और गारे से बनी हुई जीवन की इमारत तेज तूफानों में भी सुदृढ़ खड़ी रहती है । बनावटीपन, ढोंग, छल और कपट के झोंपड़े तो थोड़ी-सी हवा चलते ही उखड़ कर दूर जा गिरते हैं । सच्चाई में ही वह बल होता है जो दूसरों को भी ऊँचा उठाता है । इस संसार में विजयी वे होते हैं जिनके जीवन सत्य से प्रकाशवान होते हैं । जीवन का प्राण और बल सत्य ही है ।

सच्चा स्वार्थ पहचानना और अपनाना ही बुद्धिमता है

पत्थर का कोयला एक विशेष स्तर पर पहुँचकर हीरा बन जाता है । यों अनगढ़ प्रयोग करने वाले उसकी अँगीठी जलाकर भी कमरे में रख लेते हैं और भोर होने से पहले ही उस विषैली गैस से मर चुके होते हैं । जबकि हीरा उपलब्ध करने वाले सुसम्पन्न भाग्यवान बनते हैं । लोहा, राँगा, सीसा जैसे सामान्य खनिजों का बाजारू मूल्य तुच्छ होता है पर उन्हें जब भस्म रसायन बना लिया जाता है तो संजीवनी बूटी का काम करते और महँगे मूल्य पर बिकते हैं । पीने का पानी भाप बनाकर जब 'डिस्टिल्ड वाटर' बना लिया जाता है तब उसकी गणना औषधियों में होती है । आदमी भी यों गली-कूचों में भीड़ लगाते और गन्दगी फैलाते रहते हैं पर जब उन्हें सुसंस्कारिता की साधना द्वारा महान बना लिया जाता है तो फिर ऋषि देवता कहाते—अपनी नाव पर चढ़ाकर असंख्यों को पार करते हैं । यह स्तर को निखारने और ऊँचा उठाने की महत्ता है कि निरुपयोगी धूलि भी इस विशेष प्रक्रिया से गुजरने के उपरान्त अणु शक्ति बनती और अपनी प्रचण्ड क्षमता का परिचय देती है ।

यहाँ चर्चा स्वार्थ के सम्बन्ध में की जा रही है । यह शब्द या प्रयोग इसलिए बदनाम हुआ है कि इसे लोग घटिया प्रयोजनों के लिए, घटिया ढंग से नियोजित करने लगे अन्यथा अपनी भलाई करने के सिद्धान्त या प्रयास में कोई ऐसी बुराई नहीं है, जिसे अपनाना अनुचित कहा जाय । शरीर को ही सब कुछ मान बैठने, उसकी उच्छृंखल लिप्साओं को पूरा करने के लिए अनैतिक उपार्जन और अवांछनीय उपयोग करने तक जब बात बढ़ जाती है तभी उस मर्यादा उल्लंघन को हेय कहा और दोष दिया जाता है । स्वार्थ के साथ घटिया दृष्टिकोण जुड़ जाने और उसके साथ अनाचार चल पड़ने से ही तहलका मचता और स्वार्थ बदनाम होता है । आक्रामक अनीति ही पाप कहलाती हो, सो बात नहीं । नैतिक कर्त्तव्यों और सामाजिक उत्तरदायित्वों की अवहेलना भी निन्दनीय और दण्डनीय मानी गई है । स्वार्थान्ध व्यक्ति सदा आक्रामक ही हो और निरन्तर अपराध ही करता रहे ऐसा भी नहीं, फिर भी इस मनोरोग से पीड़ित वह व्यक्ति इतना कृपण और अनुदार हो जाता है कि उपार्जन को बन्दरिया की तरह मरे बच्चे को भी छाती से चिपकाये फिरता है । इतना नहीं सूझता कि औसत नागरिकों की तरह सादगी का निर्वाह करके कुछ बचाया जाय और उसे उन लोगों के लिए लगाया जाय जो ऐसी सहायता की कुछ बूँदें पाने के लिए भी तरसते रहते और न मिलने पर पीड़ा एवं पतन का अभाव एवं पिछड़ेपन का त्रास सहते रहते हैं ।

मनुष्य की अपनी गरिमा और विशेषता है । इसके साथ ही उसके ऊपर वैयक्तिक चरित्रनिष्ठा और समाजगत उदार सहकारिता के उत्तरदायित्व भी जुड़े हैं । उनकी उपेक्षा, अवहेलना करने पर सुसम्पन्न और समर्थ व्यक्ति भी अनाचरण के कुमार्ग पर चल पड़ता है । उद्धत अपव्यय के साथ दुर्व्यसन जुड़ जाते हैं । फिर समर्थों से सत्प्रयोजनों की जो आशा की जाती है उसकी भी उपेक्षा होती है । ऐसी अनगढ़ मनःस्थिति से घिरे हुए व्यक्ति को यदि स्वार्थान्ध कहा जाता है और उस पर सर्वजनीन तिरस्कार बरसता है तो वह ठीक ही है । स्वार्थी अपने वैभव पर इतरा तो सकते हैं, उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहारे गुलछर्रे तो उड़ा सकते, किसी को सता या बहका भी सकते हैं । इतने पर भी अपनी या दूसरों की दृष्टि में अपनी गरिमा सिद्ध नहीं कर सकते । अनुदारताजन्य आत्म-प्रताड़ना और लोकभर्त्सना की दुहरी मार उन्हें निरन्तर सहनी पड़ती है । ऐसे व्यक्ति ठिठोली तो कर सकते हैं पर आत्मसन्तोष की साँस लेने, अन्तरंग की प्रफुल्लता अनुभव करने का कभी अवसर ही नहीं मिलता । अपराधियों की तरह उनकी आँखें नीची ही रहती हैं । यों मूँछें मरोड़ते तो दुष्ट दुरात्मा भी देखे जाते हैं, पर शान के साथ सिर उठाकर चलना और असंख्यों का श्रद्धा भाजन बनना मात्र सज्जनों के लिए सुरक्षित है । यहाँ एक बात और नोट करने की है कि सज्जनता शिष्टाचार बरतने या मधुर बोलने तक ही सीमित नहीं है उसके साथ चारित्रिक पवित्रता और सेवा साधना स्तर की उदारता का भी समावेश रखना आवश्यक होता है । ऐसी वास्तविक सज्जनता ही आत्म-सन्तोष देने और जन-साधारण से स्नेह-सहयोग खींच लेने में समर्थ होती है । संकीर्ण स्वार्थपरता में यही सबसे बड़ा दोष है कि अपने साथ उच्चस्तरीय सज्जनता के पैर ही नहीं टिकने देती । जिस पर सवार होती है उसकी नकेल पकड़कर भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण की कँटीली राह पर ही चलने के लिए विवश करती है । इस विवशता के रहते कोई न ऊँचा उठ सकता है और न आगे बढ़ सकता है । टोकरी में बन्द पड़े टमाटर की तरह स्वयं भी तेजी से गलता है और जिन्हें छूता है उन्हें भी अपने साथ-साथ ही गलाता चलता है । इस प्रकार स्वार्थ साधन प्रत्यक्षतः लाभदायक दीखते हुए परोक्षतः हानि ही हानि करता चला जाता है ।

मानवी प्रगति एकाकी प्रयत्नों से नहीं बन पड़ती । प्रगति तो दूर निर्वाह तक का हित साधन नहीं जुटता । कौन है जो जीवन की सभी आवश्यकताएँ स्वयं पूरी करले, अभीष्ट वस्तुएँ स्वयं ही उपार्जित करले । अन्न, वस्त्र, मकान, शिक्षा, चिकित्सा, वाहन जैसी दैनिक आवश्यकताएँ भी अन्य लोगों के श्रम सहयोग से ही उपलब्ध कर सकना सम्भव होता है । गृहस्थी जमाने के लिए पत्नी की आवश्यकता होती है । वह भी किसी उदारमना ने कन्यादान करके दी होती है । आजीविका उपार्जन का तारतम्य तब बैठता है जब श्रमिकों का, ग्राहकों को सहयोग मिले । कोई पूँजी या नौकरी प्रदान करे । यह सब साधन कोई जन्म से साथ लेकर नहीं आता । समाज से ही उपलब्ध करता है । अभिभावक स्वजन सज्जन उन्हें उदारतापूर्वक देते हैं और बाजार में उन्हें आदान-प्रदान के आधार पर उपलब्ध किया जाता है । जब सामान्य जीवन तक बिना जनसहयोग के नहीं चलता तो उच्चस्तरीय अभ्युदय के लिए तो उसके बिना काम नहीं चलता । महामानवों में से हर किसी को इसी राह पर चलना पड़ा है कि चरित्रनिष्ठा और सेवा साधना के आधार पर अपनी गरिमा सिद्ध करें और बदले में जनसहयोग के सहारे ऊँचे उठें । सच्चा और सार्थक जनसमर्थन ही महामानवों को उच्च पद पर प्रतिष्ठित कराता रहा है । तलवार के बल पर तो मात्र दैत्य ही आतंक जमाते और लूट-खसोट करते देखे गये है । इतने पर भी वे सद्गुणों के अभाव में न तो सुरक्षित रह पाते हैं और न उपयुक्त उपयोग कर सकने के कारण उसके सहारे कुछ सुख-चैन ही पाते हैं । इस समूची वस्तुस्थिति का पर्यवेक्षण करने पर इसी निष्कर्ष तक पहुँचना पड़ता है कि चिरस्थायी, महत्वपूर्ण और वजनदार प्रगति के लिए जनसम्मान और सहयोग अर्जित किया जाय । इस कमाई का एक ही सुनिश्चित उपचार है । अपनी प्रामाणिकता का परिचय देना । इसकी तीन कसौटियाँ हैं । एक चिन्तन की उत्कृष्टता, दूसरी चरित्रगत आदर्शवादिता, तीसरी व्यवहार में उदार आत्मीयता । इन प्रश्न-पत्रों का हल किए बिना किसी को भी इतना प्रामाणिक नहीं माना जा सकता कि जनसमुदाय उसके सम्मुख श्रद्धा से मस्तक झुकाये, भावभरी श्रद्धान्जलि चढ़ाये और कन्धों पर बिठाकर ऊँचा उठाये ।

कौशल और वैभव का चमत्कार दिखाकर चकाचौंध भर उत्पन्न किया जा सकता है । उस कौतुक कौतुहल पर लोग तालियाँ भी बजा सकते हैं । अचम्भा देखने के लिए जमघट भी लगा सकते हैं पर जब प्रश्न श्रद्धा और सहयोग का आता है तो उठकर चले जाते हैं । नाटक अभिनय और सरकस के कारीगर कलाकार अपनी नट विद्या के कारण आकर्षण के केन्द्र तो बनते हैं पर उनमें से किसी को भी उच्च पदासीन नहीं किया जाता । लालबहादुर शास्त्री जैसे प्रामाणिक व्यक्तित्व ही लोकश्रद्धा अर्जित करते और बिना धन लुटाये, षड़यन्त्र बनाये उच्चतम पद प्राप्त करते हैं । गान्धी, बुद्ध, लिंकन जैसों की व्यक्तिगत विशिष्टता ही उन्हें मूर्धन्य बनाती रही है । यह विशिष्टता और कुछ नहीं चरित्र और व्यवहार में आदर्शों का सघन समावेश रहना भर है । महान व्यक्तित्व में सत्प्रवृत्तियाँ अनिवार्य रूप से जुड़ी रहती हैं । दूरदर्शी सत्परिणामों को ध्यान में रखते हुए स्वार्थ सिद्धि की जो रूपरेखा बनाई जाती है, उसी को परमार्थ कहते हैं ।

बीज गलकर घाटे में रहा या नफे में । इसका उत्तर तात्कालिक और दूरगामी परिणामों की कसौटी पर कसकर ही दिया जा सकता है । बीज अच्छा-खासा, गोल-मटोल चमकदार, वजनदार था । बोये जाने पर वह सड़ गल गया इसमें प्रत्यक्षतः हानि ही दृष्टिगोचर होती है । किन्तु जब इस पूँजी नियोजन के दूरगामी परिणामों पर विचार किया जाता है तो दूसरे ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है । बीज राई भर आकार का था । एक सप्ताह से भी कम समय में वह कई गुने आकार वाला अंकुर बन गया । महीना पूरा भी न होने पाया था कि पत्र-पल्लवों से लदा पौधा बन गया । समय बीतते देर न लगी कि उसने आश्चर्यजनक ऊँचाई तक प्रगति करली और फल-फूलों से लद गया । एक ही फसल में सैकड़ों हजारों फल लगे और उनमें से प्रत्येक में कई-कई बीज थे । एक बीज ने गलकर यदि एक ही फसल में अपने सदृश हजारों बीज कमा लिये और हर फसल में उतनी ही उपलब्धि हस्तगत होते रहने का सिलसिला जमा लिया तो उस दूरदर्शी परिणति को देखकर यही कहा जायगा कि बीज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ने गलने की हिम्मत जुटाकर बुद्धिमता ही दिखाई । वह घाटे में नहीं रहा जैसा कि बोये जाते समय प्रतीत होता था । स्वार्थ और परमार्थ की बुराई-अच्छाई इसी आधार पर परखी जानी चाहिए । एक है जो तत्काल लाभ तो देता है, पर बदले में भविष्य को अन्धकारमय बना देता है । दूसरा है जो आरम्भ में संयम बरतने और उदार बनने की कसौटी प्रस्तुत करता है, किन्तु साथ ही सही सिद्ध होने पर खरे सोने की तरह उचित मूल्य तथा सम्मान मिलता है । कसौटी से बचने पर तो खरे-खोटे दोनों का ही गुड़-गोबर हो जाता है । काँच और हीरा एक जैसा दीखता है ।

मैत्री, श्रद्धा, प्रशंसा, आत्मीयता, सद्भावना, सहायता जैसी विभूतियों को भी यदि उपलब्धि माना जा सके और उनके बदले अनेक कष्टों से बचने और अनेक अभ्युदयों का सुयोग बनने की बात यदि समझ में आ सके तो फिर उन्हें लूटने की नहीं खरीदने की ही बात सोचनी चाहिए । लूटने के लिए प्रपंच भी रचे जा सकते हैं । इस धूर्तता के जमाने में ऐसा ही होता भी रहता है । धर्मात्मा, सदाचारी, योगी, तपस्वी, पराक्रमी, देशभक्त, सिद्ध पुरुष के रूप में दृष्टिगोचर होने के लिए लोग कई प्रकार के प्रदर्शन, पाखण्ड रचते रहते हैं । सभा सम्मेलनों में मंच पर बैठने, माला झटकने और प्रशंसा कराने और अपने को तीस मारखाँ होने की डींग हाँकने की बिडम्बना अब आम बात हो गई है । उस फिराक में कितने ही लोग रहते हैं और इस आडम्बर को खड़ा करने में कुछ तो जेब से भी खर्च करते हैं । किन्तु देखा जाता है कि इससे भी कुछ बनता नहीं । कुछ अपवादों को छोड़कर सभी में इतनी गिरह की अकल होती है कि वे छद्म को ताड़ सकें और बिडम्बना को पर्दा उठाकर देख सकें । कइयों का बहुरूपियापन अनजान लोगों के बीच कुछ समय काम भी दे जाता है किन्तु मुखौटा तो मुखौटा ठहरा पीतल के बर्तन पर चढ़ी हुई चाँदी की कलई कुछ दिन ठहरती है और असलियत प्रकट होने पर बहुत देर नहीं लगती । घटिया को बढ़िया बताने वाले कभी-कभी तो किसी-किसी पर हाथ साफ भी कर लेते हैं किन्तु भेद खुलते ही ऐसी धुनाई होती है कि सिर पर पैर रखकर भागना पड़ता है और किसी नई जगह जाल बिछाना पड़ता है । चिड़ीमार धन्धे की तरह लोकश्रद्धा बटोरने के लिए विशिष्टता की छद्म प्रवंचना इस स्तर का लाभ नहीं दे सकती जिसके सहारे कि कोई प्रगाढ़ विश्वास प्राप्त कर सके । चिरस्थायी एवं गहरा जनसम्मान और सहयोग अर्जित करने के लिए सच्चे अर्थों में सज्जनता अपनानी पड़ती है । इसका उपाय मात्र एक ही है, अपने सम्बन्ध में कड़ाई बरतना और दूसरों के साथ उदारता का परिचय देना ।

जिस चौराहे पर मनुष्य खड़ा है, उसकी सड़क दो दिशाओं में जाती है । एक शरीरगत तात्कालिक लाभों के आकर्षणों से सजी हुई जिसमें विलासिता, तृष्णा और अहन्ता की गठरी सिर पर लादकर चलना पड़ता है । अनुदार, निष्ठुरता, अपनानी और 'मतलब से मतलब' रखने की नीति अपनानी पड़ती है । उसका आरम्भ आकर्षक और अन्त भयावह है । चौराहे से दूसरी सड़क चलती है, आरम्भ में अपने को कसने के उपरान्त दूरगामी सत्परिणाम के लक्ष्य तक पहुँचाने वाली, इन्हीं में से एक को स्वार्थ या नरक कहते हैं और दूसरी को परमार्थ या स्वर्ग कहा जाता है । बात जादू के खेल जैसी है, जिसमें भ्रमवश कुछ का कुछ दीखता है । उज्ज्वल भविष्य को ध्यान में रखते हुए जब लोहा भट्टी में प्रवेश कर सकता है, जननी को प्रसव पीड़ा सहने और छाती का दूध निचोड़ने में आपत्ति नहीं होती तो जिन्हें समझदारों जैसी सूझ-बूझ उपलब्ध है, वे भी बचत करने बैंक में डालने और हर पाँच वर्ष में पूँजी दूनी करते-करते बीस-तीस वर्ष में हजार को लाख बना लेने वाली नीति अपनाते हैं । परमार्थ में थोड़ा-सा लगाकर स्वार्थ-सिद्धि का ऐसा लाभ दिलाते हैं जिस पर गर्व किया जा सके ।

बाजार में कोई वस्तु मुफ्त नहीं मिलती । सभी को कीमत चुकानी पड़ती है, यदि प्रगाढ़ मित्रता और सघन सहकारिता अर्जित करने में किसी को कमाई एवं भलाई दीखती हो, तो उसे लूटने, झपटने की चतुरता बरतने से काम न चलेगा। वरन् सही मूल्य पर ही सब वस्तु खरीदने की नीति अपनानी पड़ेगी । यह कार्य परमार्थ की पूँजी लगाकर ही सम्भव हो सकता है । स्वार्थी के पास कितनी ही सुविधाएँ क्यों न हों उससे कभी भी किसी को सघन आत्मीयता का रसास्वादन करने जैसा सुयोग मिलता नहीं । निष्ठुरता और उद्दण्डता अपनाकर जिनके लिए कमाई की गई थी वे कुटुम्बी तक उनके प्रति आन्तरिक सद्भावना नहीं रखते । मतलब सिद्ध होने में कमी पड़ने पर आँखें बदलने लगते हैं । क्योंकि वे जानते हैं कि स्वार्थपरायण वस्तुत: किसी का सगा नहीं होगा । तथाकथित अपनों का भी नहीं, मित्र, कुटुम्बियों का भी नहीं । इस निकृष्टता से अवगत रहने के कारण ऐसे लोगों को अपनों द्वारा भी बारम्बार ठगा, दबाया और सताया जाता है । उन्हें हमेशा हरेक से यही शिकायत रहती है कि दुनिया स्वार्थियों से भरी है और जेब काटने फिरती है ।

वस्तुत: ऐसा होता नहीं । यह दुनिया एक बड़ा दर्पण है जिसमें हम अपना ही स्वरूप देखते हैं । यह संसार एक पोला गुम्बज है जिसमें अपनी ही आवाज प्रतिध्वनि बनकर गूँजती रहती है । हम यदि स्वार्थी हैं तो उसी प्रकृति के लोगों से घिरे रहेंगे और उनसे जिस प्रकार के व्यवहार की सम्भावना रहती है वैसा ही कुछ भुगतते रहेंगे । परमार्थ का चुम्बकत्व सज्जनता को खींच डालता है वह अपने लिए एक ऐसे संसार, समुदाय एवं वातावरण की रचना करता है जिसके सहारे सुख-शान्ति और प्रगति प्रसन्नता का अनुभव हर घड़ी होता रहे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गहरे पानी पैठ, जिन खोजा तिन पाइयाँ

यह संसार परिस्थितियाँ और पदार्थों के रूप में बड़ी तेजी से परिवर्तित होता है । आज जो दृश्य दिखाई दे रहा है कल वह कुछ परिवर्तित रूप लिये हुए होगा । कुछ दिन के बाद तो वह सारी स्थिति इस तरह बिगड़ जाती है जैसे उनका कोई अस्तित्व ही न था । कभी वन-वृक्षों, लता-बेलों में बसन्त-बहार छा जाती है तो पतझर आ जाने पर वह समस्त सुषमा यों लुट जाती है जैसे वह कभी थी ही नहीं । पतझर की नीरवता और उसका उजाड़पन भी वर्षा की छटा में न जाने कहाँ खो जाता है । नाट्यशाला की तरह रंग और दृश्य प्रतिक्षण बदलते हैं, एक आता है दूसरा जाता है पर सब कुछ इतने स्थिर भाव से चल रहा है मानो कोई निश्चित विधान, कुशल नट कहीं एकान्त में बैठा हुआ इस परिवर्तनशील जगत् का संचालन कर रहा है। सचमुच यह संसार बड़ा रहस्यमय है और उतना ही रहस्यमय वह है जिसने इसकी रचना की है ।

यह दृश्य-परिवर्तन कभी मनुष्य को यह प्रेरणा भी देते हैं कि वह इस अनन्त रहस्य का ज्ञान प्राप्त करे अथवा इन परिवर्तनों के फलस्वरूप जो उसे भय, शोक, कातरता, विरह, असन्तोष आदि दुःख परेशान करते रहते हैं, उनसे मुक्ति पाये और एक ऐसा आनन्द उपलब्ध करे जो कभी कम न हो, कभी समाप्त न हो।

दूसरे शब्दों में इसे ही ईश्वर की प्राप्ति की अभिलाषा, स्वर्ग या मोक्ष का उत्तराधिकार मान सकते हैं । दृष्टिकोण चाहे कुछ भी हो पर उन सब का सार यही है कि मनुष्य चिर सुख प्राप्त करने का अभिलाषी है । पर यह सुख इतना सरल नहीं है जो हर किसी को यों ही मिल जाया करे । जब छोटे-छोटे सुखों की प्राप्ति के लिए बड़े प्रयत्न, बड़ी शक्ति, श्रम और साधन जुटाने पड़ते हैं तो ईश्वर जैसी अनन्त सुख प्रदायक वस्तु भला यों ही कैसे मिलने लगी । बड़ी वस्तु का मोल भी बड़ा होता है और वह मिलती भी बड़ी कठिनता से ही है । गहराई में बैठकर उसे खोजने का जो प्रयत्न करते हैं वही उसे प्राप्त कर पाते हैं । किनारे, उथले जल में गोता लगाने वाले तो अपना समय ही नष्ट करते हैं, अपने साधन ही गँवाते हैं । उन्हें न तो इस लोक के सुख ही मिल पाते हैं और न पारलौकिक आकांक्षाओं की ही तृप्ति होती है ।

यह सृष्टि मूलतः दो भागों में विभक्त है । आकार और गुण दोनों ही दृष्टियों से उनमें पृथक्ता है । (१) रूप जड़ है जो स्वयं क्रियाशील नहीं है पर है स्थूल अर्थात् सांसारिक दृष्टि से उसका अधिक महत्व है । संसार की जितनी भोग-वासनाएँ हैं वह सब जड़ पदार्थों के द्वारा ही विरचित हुई हैं । इनके मूल में (२) चैतन्य सत्ता काम कर रही है । चेतना की अभिव्यक्ति से जड़ पदार्थ भी मोहक जान पड़ते हैं पर दरअसल जड़ पदार्थ अपने आप में हमें कुछ देने की सामर्थ्य नहीं रखते ।

इस प्रकार पाँच भौतिक प्रकृति और प्राण को चेतना के द्वारा सम्पूर्ण विश्व में क्रियाशीलता दृष्टिगोचर हो रही है पर चूँकि मनुष्य भी उसका सम्मिश्रित प्रयोग है अतः वह भी प्रायः अपने विषय में विभ्रमित ही रहता है । शरीर की स्थूल पाँच भौतिक प्रकृति और प्राण की पृथक्ता उसे सहज ही समझ में नहीं आती । पर संसार के परिवर्तनों और घटना-चक्रों, जन्म-मरण, उत्पत्ति विनाश के दृश्य जब भी उसे देखने को मिलते हैं विश्व-व्यवस्था का रहस्य और सृष्टि नियन्ता का ज्ञान प्राप्त करने की उसे तीव्र अभिलाषा भी होती है । इस प्रकार की बुद्धि किसी को मिल जाये तो उसे अपने पूर्व जन्मों का संस्कार अथवा परमात्मा की कृपा ही समझनी चाहिए । जब तक यह विवेक पैदा नहीं होता सत्य को जानने की मनुष्य को बहुत कम इच्छा होती है । उसके सांसारिक विषय ही इतने अधिक होते हैं कि उसे उन्हीं कठिनाई से अवकाश मिल पाता है ।

मनुष्य विश्व चेतना का सर्वोपरि, सर्वांगपूर्ण जीव है । चौरासी लाख योनियों में ऐसा सौभाग्य किसी भी जीव को नहीं मिला । सिंह शक्तिशाली भले ही हो पर उस विचारे को विचार शक्ति कहाँ ? बन्दर पेड़ों पर चढ़कर सुन्दर फल प्राप्त कर सकते हैं पर शीत से बचने के लिए उन्हें वस्त्र तक प्राप्त नहीं हो सकते । देखने, सुनने, सूँघने, चलने-फिरने, खाने-पीने, सुखोपभोग करने के जितने अधिक अवसर और सुविधाएँ मनुष्य को मिली हैं उतनी किसी जीव को उपलब्ध नहीं । पर यह शक्तियाँ निश्चय ही उद्देश्यपूर्ण हैं किसी विशेष लक्ष्य प्राप्ति के लिए वरदान स्वरूप मिली हुई हैं । यह बात विचार क्षेत्र में उतारने और अपना जीवन उद्देश्य प्राप्त करने में ही मनुष्य का आत्म-कल्याण छिपा हुआ है ।

यह कोई कठिन बात नहीं है कि मनुष्य को ऐसी सूझ-समझ न आये । ऐसे अवसर, ऐसी घटनाएँ प्रायः हर व्यक्ति के जीवन में आती हैं, पर सामान्य श्रेणी के लोगों के लिए उनका कोई महत्व नहीं होता । सौभाग्य से यदि उन्हें ऐसे साधन उपलब्ध भी हो जायँ तो वे आत्म-कल्याण के कठिन मार्ग में देर तक टिक नहीं पाते । सांसारिक पदार्थों में गजब का आकर्षण और तीव्र मोहकता होती है । लोग साधना की कठिनाइयों से बड़ी जल्दी अपने को थका हुआ सा अनुभव करने लगते हैं और जल्दी ही प्रयत्न-च्युत होकर पुनः अपने उसी पूर्ववत् जीवनक्रम में लुढ़कने लगते हैं । साधना वस्तुतः मनुष्य जीवन को सफल बनाने वाला महत्वपूर्ण साधन है पर उस पर साहसी व्यक्ति ही अग्रसर हो सकते हैं । कायरों की वहाँ दाल नहीं गलती । पग-पग पर जिनके निश्चय और विचार बदलने वाले हों वे कठिनाइयों का संवरण देर तक नहीं कर सकते हैं और जल्दी ही उसे छोड़ बैठते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधनाएँ ब्रह्म-ज्ञान या आत्म-वैर्त के लिए अत्यावश्यक हैं । जीवात्मा पर चढ़े जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार ऐसे ही होते हैं जैसे लोहे में जंग लग जाती है । जंग छुड़ाने वाली प्रक्रिया निस्सन्देह काफी कठिन है । वह मेहनत से ही पूरी हो सकती है । लोहे को कभी कूटा जाता है, कभी उसे आग में डाल दिया जाता है, फिर पीटते हैं, फिर पानी में डुबाते हैं । चारों तरफ आघात पर आघात, तपाई पर तपाई देने के बाद वही जंग लगा लोहा सुन्दर इस्पात के रूप में निकल आता है फिर उससे किसी भी तरह का औजार, कोई भी अस्त्र-शस्त्र बनाना सरल हो जाता है । जीव को सांसारिक वासनाओं से छुड़ाकर उसको शाश्वत स्वरूप में लाने के लिए भी लोहे के तपाने जैसी क्रियाएँ अनिवार्य हैं । जो इस आग में जल सकता है, आध्यात्मिक जीवन अथवा ईश्वर उपासना का वही सच्चा और पूर्ण लाभ प्राप्त कर सकता है ।

जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने की ऐसी अभिलाषा उठते ही मन को बुद्धि के अनुशासन में ले आने की बड़ी आवश्यकता है । दरअसल मनोनिग्रह की कठिनाई ही ईश्वर-प्राप्ति की प्रमुख कठिनाई है । मन मनुष्य जीवन का संचालन और महत्तर शक्ति वाला है पर उसमें एक बुराई भी है । बिगड़े हुए घोड़ों की तरह यदि वह स्वेच्छाचारी हो जाय तो न रथ की खैर रहती है, न सारथी की । मनुष्य का मन स्वभावत: अधोगामी है । नीचे गिर जाना सरल बात है । कठिनाई तो उसे ऊँचे उठाने में आती है पर यह तभी संभव है जब मन पर बुद्धि का नियन्त्रण पहरा रहे । बुद्धि मन को ऊर्ध्वगामी बनाती है और कुसंस्कारों को नष्ट करती है । अत: साधननिष्ठ व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह मन की स्वेच्छाचारिता पर बौद्धिक विवेक का अंकुश बनाये रहे ।

मन प्राय: यह शासन मानने के लिए तैयार नहीं होता । प्रकृति उसे बार-बार भोग-वासनाओं के लिए आकर्षित करती है । वह समझता है कि इन भोगों से विमुख होने पर हमारी हानि हो रही है । यही माया, अविद्या या उसे आत्मकल्याण के मार्ग से गिरा देने वाला विचार है और उसके बचने का एक ही उपाय है, प्रकृतिजय । मानवीय दुर्बलताओं पर कठोरतापूर्वक संयम किये बिना इस अविद्या से छुटकारा पाना संभव नहीं है । जीवन-लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले प्रत्येक जिज्ञासु को यह बात निश्चित रूप से समझ लेनी चाहिए ।

कठिनाइयों से किसी प्रकार समझौता नहीं हो सकता । लोहे की जंग पानी से धोकर नहीं छुटाई जा सकती । जलती हुई आग में काबू पाने के लिए उससे अधिक मात्रा में जल की अपेक्षा होती है । मन जितना ऊधमी हो संयम की उतनी ही कठोरता आवश्यक है । पुराने संस्कारों की मलिनता के परिष्कार की गति धीमी हो तो भी काम चल सकता है पर उसमें उत्तरोत्तर दृढ़ता और कठोरता आवश्यक है । परिस्थितियों के साथ दोस्ती साधनानिष्ठ मनोबल को गिरा सकता है ।

मनुष्य जीवन जैसी अमूल्य निधि फिर मिलेगी इसकी कोई निश्चित सुविधा नहीं है । इसी जीवन में दिन रहते कुछ काम बना लिया जाय तो, इसी में बुद्धिमानी है । पचास-साठ अथवा सौ वर्ष के जीवन को भोग और कामनाओं की पूर्ति में ही लगाये रखा जाये तो उसमें मानव जीवन की क्या सफलता, शक्तियों का क्या सदुपयोग रहा । भोग वासनाएँ दु:ख का कारण मानी गई हैं । अन्य जन्मों में उनके दुष्परिणाम होते हों या न होते हों इसे चाहे कोई माने या न माने पर वासनाएँ इसी जीवन में मनुष्य को तंग करती हैं । दु:ख और मुसीबतें पैदा करती हैं अत: इन्हें कदापि उचित नहीं ठहराया जा सकता । यह मनुष्य जीवन को भ्रष्ट करने वाली हैं । यह बात बहुत गहराई तक विचार लेनी चाहिए । एक बार अवसर निकल जाने के बाद में फिर पछतावा ही शेष रहता है । परिस्थितियाँ बदल जाने के बाद बहुमूल्य वस्तुएँ भी कोई लाभ नहीं दे पातीं अत: बुद्धिमान लोग समय रहते ही अपने लक्ष्य को पूरा करने का प्रयास करते हैं ।

ईश्वर सब जगह विद्यमान है । उसे ढूँढने में कठिनाई नहीं, कठिनाई तो सिर्फ अपना अहंकार मारने में है । अपने आपको साध लिया जाय, व्रत, संयम और तत्पश्चर्या की आग में अपना अहंकार विगलित कर दिया जाय तो सर्वत्र ईश्वर ही ईश्वर दिखाई देने लगता है ।

जब तक मन में मैल है, ईश्वर का प्रकाश कैसे दिखाई देगा ? जब तक अपने स्वार्थ से ही छुटकारा नहीं मिलता तब तक परमात्मा की याद कैसे आ सकती है । इस संसार में आने के लिए पहले अपना सब कुछ खोना पड़ता है । आत्मा में ईश्वर की प्रतिष्ठा के लिए भी अपना अहंकार नष्ट करना पड़ता है । परिष्कृत आत्मा को ईश्वर प्राप्ति का सुख मिलते देर नहीं लगती । बीच में मलिनता वाली खाई को दूर कर दिया जाय तो जीवन-लक्ष्य की सिद्धि भी कोई कठिन बात नहीं है ।

व्यक्ति निर्माण के लिए यह करना होगा

हमारे आज के विचारों में जो विकृति आ गई है, उसको सुधारने और चिन्तन की दिशा परिष्कृत करने के लिए हमें नये सिरे से विचार करना होगा और अनौचित्य का स्थान औचित्य को देना होगा । पिछले अन्धकार का सबसे बड़ा अभिशाप हमारी विचार पद्धति में निकृष्टता घुस पड़ने के रूप में ही मिला है । उसी ने अवसर और अध:पतन की परिस्थितियाँ उत्पन्न की हैं । जब तक उसे समझा और सुधारा न जायगा, वर्तमान दुर्दशा से छुटकारा न मिल सकेगा ।

व्यक्तिगत जीवन में आत्म-बोध के सम्बन्ध में हमारी मान्यता यह होनी चाहिए कि हम सच्चिदानन्द परमेश्वर के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अंश एवं राजकुमार हैं । उसने अपने सहायक के रूप में—सृष्टि की सुन्दरता, शोभा, सुव्यवस्था स्थिर रखने के लिए हमें पैदा किया है । बोलने, सोचने, लिखने, पढ़ने आदि की विशेषताएँ दी हैं तथा शिक्षा, चिकित्सा, वाहन, वस्त्र, उत्पादन, परिवार, मनोरंजन आदि के विविध साधन दिये हैं वे एक प्रकार की अमानत जैसी विभूतियाँ हैं और वे इसलिये दी गई हैं कि उनका न्यूनतम अंश जीवन निर्वाह के लिये रखने के उपरान्त शेष का उपयोग लोक-मंगल के लिये, विश्व-कल्याण के लिये नियोजित किये रहें । जो कुछ हमें मिला है वह केवल उपयोग के लिये ही नहीं है, यदि ऐसा होता तो परमेश्वर, जो प्राणिमात्र को रचता है, केवल मनुष्य को ही इतनी सुविधाएँ देने के कारण पक्षपाती कहलाता । विभूतियाँ सिर्फ परमार्थ के लिये मिली हैं । यदि हम इन्हें लोभ, मोह के वशीभूत होकर वासना, तृष्णा की पूर्ति तक सीमित रखते हैं तो यह 'अमानत में खयानत' जैसा अपराध हुआ इसका दण्ड हमें नारकीय दण्डों के रूप में भुगतना पड़ेगा ।

जीवन का लक्ष्य, स्वरूप उद्देश्य यदि ठीक तरह समझ में आ जाय । उसे पूरा करने में इस अनुपम स्वर्ण अवसर की सफलता समझ ली जाय तो मनुष्य इसी अध्यात्म आस्था के आधार पर अपनी गतिविधियाँ और विचारणाएँ उत्कृष्ट प्रयोजनों की दिशा में नियोजित किये रह सकता है ।

आज का मनुष्य अपने को शरीर मात्र मानता है, शरीर सुखों में ही जीवन की सफलता देखता है । वाहवाही की लालसा, बड़प्पन का प्रदर्शन, धनी बनने की लिप्सा उसके प्रिय विषय बन गये हैं । पेट और प्रजनन के लिये सारा समय और मनोयोग लगाता है । भौतिक उपलब्धियों में ही सफलता दीखती है । परमार्थ में उतनी ही रुचि रहती है जितनी से तुरन्त वाहवाही मिल जाय । इस स्तर का व्यक्ति पशुओं जैसा शिश्नोदर प्रवृत्त जीवन ही जी सकता है । जीवन का स्वरूप ही जिसे मालूम न हो वह उसका सदुपयोग कर सकने की बात कहाँ सोच सकेगा ।

हमारी मान्यता होनी चाहिए कि ईश्वर सर्वव्यापी, न्यायकारी और सत्प्रवृत्तियों को पसन्द करने वाला है । उसकी सृष्टि में पूर्ण न्याय और व्यवस्था है । दुष्कर्म करने वाला कुमार्गगामी व्यक्ति उसके दण्ड से बच नहीं सकता । अनीति का पथ जो भी अपनायेगा उसके कोप का भागी बनेगा । उसे सद्भावसम्पन्न और सत्कर्म परायण व्यक्ति ही प्रिय हैं । ईश्वर का विशेष प्यार और अनुग्रह केवल सज्जनों के लिये सुरक्षित है । पूजा-आराधना का प्रयोजन ईश्वर को उसके द्वारा दिये हुये मानव जीवन के प्रयोजन को, मानवीय कर्तव्य-पथ को ध्यान में रखने और अपने ईश्वरीय दण्ड को ध्यान में रखते हुए सन्मार्गगामिता अपनाने वाली मनोभूमि निर्माण के लिये है । जिस पूजा के द्वारा अन्तःकरण में पवित्रता, उदारता एवं सेवावृत्ति का विकास होता हो उसी को सार्थक समझा जाना चाहिए ।

आज लोग ईश्वर को मानवीय दुर्बलताओं से भी अधिक घटिया स्तर का एक मनुष्य मात्र मान बैठे हैं। जो थोड़ी प्रशंसा, भोग प्रसाद, चन्दन पुष्प आदि से लुभाया-फुसलाया जा सकता और पात्रता न होने पर भी मनचाहे वरदान देने के लिए इसी पूजा-पत्री के आधार पर रजामन्द किया जा सकता है । लोगों की यह भी मान्यता है कि उसकी प्रतिमाओं के दर्शन करने, लीलाएँ सुनने या नदी तीर्थ नहाने मात्र से पाप कट जाते हैं और बुरे कर्मों का दण्ड नहीं भुगतना पड़ता । इस ईश्वर सम्बन्धी भ्रान्त धारणा ने लोगों को पराक्रम पुरुषार्थ के कष्टसाध्य मार्ग की उपेक्षा कर कुछ तन्त्र-मन्त्रों द्वारा मनोकामनाएँ पूरी करने की तरकीबें सोचीं और अकर्मण्य बनते चले गये । इसी प्रकार पाप का फल सस्ते कर्मकाण्डों के कारण छूट जाने की बात सूझ पड़ने से लोग पाप करने से निर्भय होते चले गये, आज का ईश्वरवाद अकर्मण्यता और अनैतिकता बढ़ाने में सहायक हो रहा है ।

ईश्वर एक नियम, व्यवस्था, विद्या एवं सर्वजनीन चेतना है । उत्कृष्ट भावनाओं के रूप में उसे हर कोई अपने अन्तःकरण में विद्यमान देख सकता है और उच्च सम्वेदनाओं को अन्तरात्मा में बनाकर ईश्वर की समीपता का आनन्द अनुभव कर सकता है । पर लोगों ने उसे खुशामदी और रिश्वतखोर जैसी हेय स्थिति का ऐसा व्यक्ति कल्पित कर लिया है जो भक्त नामधारी का हर बात में पक्षपात करने को तैयार रहता है । तथ्य यह है कि ईश्वर एक है, उपासना से, ध्यान की सुविधा की दृष्टि से, भक्तों ने उसके नाम रूप ही अलग प्रकार से कल्पित किये हैं । अनेक देवता वस्तुतः एक ईश्वर के ही लोगों द्वारा कल्पित किये गये चित्र-विचित्र नाम रूप हैं । वस्तुतः इस सृष्टि से अनेक देवताओं के अलग अस्तित्व नहीं हैं । यदि इस सृष्टि के संचालक अनेक ईश्वर, अनेक देवता होते तो उनमें भी परस्पर लड़ाई होती रहती और संसार का नियन्त्रण गड़बड़ा जाता । लोगों का अज्ञान है जिसने परस्पर विरोधी अगणित देवी-देवता रचकर खड़े कर दिये हैं और उनमें से कइयों को तो ऐसे नीचे स्तर तक गिराया है कि पशुबलि जैसे घृणित कर्म से प्रसन्न होते और उस कुकर्मी भक्त की अनैतिक मनोकामनाएँ पूरी करने में नहीं लजाते ।

धार्मिक कर्मकाण्डों, मान्यताओं एवं विधि-व्यवस्थाओं का तात्पर्य केवल इतना है कि मनुष्य सदाचारी, कर्तव्य-परायण एवं उदार सेवाभावी सज्जन प्रकृति का बन सके । पर आज तो उसे मनुष्य मनुष्य के बीच खड़ी की गई दीवार के रूप में ही देखा जा सकता है । विभिन्न धर्मानुयायी अनुभव करते हैं कि उन्हीं का मत सही है केवल वे ही धार्मिक हैं और उन्हीं का धर्म मुक्ति या शान्ति दे सकता है । 'अपना सही दूसरों का गलत' वाले पक्षपात ने नीर क्षीर विवेक की बुद्धि समाप्त कर दी और पक्षपात का भूत सवार हो गया । परिणाम यह हुआ कि लोग अन्य धर्मावलम्बियों को पापी समझकर उन्हें मारने, मिटाने में पुण्य समझने लगे । इस प्रकार धर्म के आधार पर जहाँ प्रेम, एकता और सेवा भावनाएँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़नी चाहिए थी, वहाँ घृणा, द्वेष, उत्पीड़न और अनाचार की बढ़ोत्तरी हुई । हमें ईश्वर और धर्म के इस विकृत स्वरूप को बदलना होगा और तत्सम्बन्धी मान्यताओं को प्राचीनकाल की तरह पुनः उसी स्तर की बनाना पड़ेगा जिसमें मानवीय सद्भावना, एकता, सहयोग एवं उदारता बढ़ाने में इस तत्वज्ञान का ठीक तरह उपयोग हो सके ।

आत्मा की महानता का ज्ञान हमें होना चाहिए । अपने स्तर का गौरव अक्षुण रखने की गरिमा सजीव रहनी चाहिए । हम कोई ऐसा कार्य न करें जिससे आत्मा का गौरव घटता हो, लज्जित होना पड़े, आत्मा धिक्कारे और लोग हमें ओछे स्तर का समझें । आत्म प्रतिष्ठा इसमें है कि हम उच्च आदर्श लेकर शानदार जीवन जियें, भले ही गरीबी या कठिनाई से घिरे दिन गुजारने पड़ें । प्रलोभनों के लिए पतन के गर्त में गिरना मनुष्यता को कलंकित करना है । आदमी की इज्जत इसमें है कि वह हर कीमत पर अपनी महानता, ऊँचाई और आदर्शवादिता की रक्षा किये रहे । विरोध दबाव या अभाव भी जिसे कर्तव्य पथ से विचलित न कर सकें, वही सच्चे अर्थों में मनुष्य है । मनुष्यता का गौरव बड़ी से बड़ी हानि उठाकर भी जो अक्षुण रख सके उसी को सच्चे अर्थों में नर-रत्न कहा जाना चाहिए ।

यह मान्यताएँ हमारे आस्था केन्द्र को प्रकाश प्रदान करने के लिए सजीव बनी रहनी चाहिए । प्रलोभनों के लिये ऐसा मार्ग नहीं अपनाया जाना चाहिए जिसके लिये आत्मा धिक्कारे, सज्जनों की पंक्ति में खड़े होते समय लज्जित होना पड़े और ईश्वर के दरबार में पापी की भर्त्सना सहनी पड़े यह उचित अनुचित का भेद करने वाली नीर-क्षीर विश्लेषिणी विवेक बुद्धि जिनकी जाग्रत है वस्तुतः उसी को बुद्धिमान कहना चाहिए । जो औचित्य की उपेक्षा इसलिये करती है कि अनुचित मार्ग पर चलने से जल्दी और अधिक लाभ कमाया जा सकता है उसे मस्तिष्क पिशाचिनी ही कहना चाहिए । उसे बुद्धि की संज्ञा देना असंगत है । बुद्धिमान वह नहीं जिसने अनीति अपनाई और मनुष्य जन्म जैसे सौभाग्य को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, उसे धूर्त भर कहा जा सकता है । धूर्तता को बुद्धिमत्ता की संज्ञा नहीं दी जा सकती ।

मनुष्य वह है जिसमें मानवता की सम्मानित करने वाले गुण, कर्म, स्वभाव का बाहुल्य है । ईमानदारी और सच्चाई जिसकी जीवन नीति है, जो छल-कपट से दूर रहकर सीधा-सरल और स्वच्छ जीवन जीता है, जिसे अपने पसीने की कमाई पर्याप्त और सन्तोषप्रद लगती है, जिसमें धैर्य, साहस, सन्तुलन, शौर्य और विवेक की समुचित मात्रा मौजूद है उसी को खरा व्यक्तित्व कहना चाहिए । जिसे न डरने की आदत है न डराने की । जो हँसने का अभ्यासी है और रोते को हँसाने की कला जानता है उसे मनुष्य कह सकते हैं । जिसका अन्तःकरण उदारता, सरलता, करुणा, ममता और सज्जनता से लबालब भरा रहता है, उसी में मानव जन्म के साथ-साथ मानव हृदय भी पाया समझा जाना चाहिए ।

स्वच्छता, नियमितता, व्यवस्था, स्फूर्ति, उत्साह, श्रमशीलता जैसे सद्गुण व्यक्ति की प्रतिभा को निखारते हैं । सादगी, मितव्ययता, सज्जनता, नम्रता, शिष्टाचार और भलमनसाहत जिसके स्वभाव में सम्मिलित हो जाय समझना चाहिए कि मनुष्यता की गरिमा को सार्थक बनाने की चेष्टा हो रही है । इसके विपरीत अगणित दोष-दुर्गुणों से भरे घृणित व्यक्तियों का जहाँ बाहुल्य होगा वहाँ प्रत्यक्ष नरक देखा जा सकेगा । जिनसे व्यक्ति का गौरव गिरता हो, ओछापन प्रकट होता है और कुसंस्कारी गतिविधियाँ दीख पड़ती हों, ऐसी बुरी आदतें मनुष्यता के नाम पर कलंक ही लगा सकती हैं । जिन विचारधारा और रीति-नीति के कारण व्यक्तित्वों का स्तर निम्नकोटि का बनता हो उसका विरोध और उन्मूलन ही किया जाना उचित है ।

मनुष्यता की सार्थकता इस बात में है कि उसे हर दृष्टि से हर क्षेत्र में प्रामाणिक माना जाय । जो कहे वह सच निकले, जो वायदा करे उसे निवाहे, भीतर और बाहर की, वचन और कर्म की स्थिति में अन्तर जहाँ नहीं दीख पड़े, समझना चाहिए यहीं मनुष्यता जीवित है । हमें ऐसे ही व्यक्तित्वों का निर्माण करना चाहिए ।

धन की जरूरत जीवन निर्वाह के लिए है, इस दृष्टि से उसे कमाया तो जाय पर उसके लिए इतना न ललचाया जाय कि सारा समय उसी के लिये खर्च हो जाय, जीवन लक्ष्य पूरा करने के लिये अवकाश ही न मिले । लालच ऐसा भी न हो कि नीति-अनीति का, उचित-अनुचित का भेद छोड़कर किसी भी तरीके से पैसा इकट्ठा किया जाने लगे । कुटुम्ब कम बढ़ाया जाय । जिन आश्रितों का उत्तरदायित्व कन्धों पर है उन्हें अपनी सामर्थ्य के अनुसार सुविकसित, सुसंस्कृत एवं स्वावलम्बी बनाने का प्रयत्न तो किया जाय पर यह न सोचा जाय कि इनके लिये सात पुश्त तक बैठकर खाने के साधन छोडकर मरा जाय । अपने और परिवार के उचित निर्वाह के उपरान्त बचा हुआ धन निश्चित रूप से समाज की सम्पत्ति है । उस पर पिछड़े हुए दुःखी और अज्ञानग्रस्त लोगों का हक है । समर्थ व्यक्ति असमर्थों का ध्यान रखना भूल जाए तो अमीर और गरीब की खाई कभी भर ही न पायेगी । मानवीय अन्तःकरण में रहने वाली करुणा, ममता और उदारता का तकाजा यही है कि उचित आवश्यकता पूरी करने के बाद अपनी सम्पदा एवं प्रतिभा का बड़े से बड़ा अंश उन लोगों के लिये लगाया जाय जो परिस्थितियों के प्रवाह में पिछड़ गये या भटक गये हैं । हम स्वयं ही ऊँचे उठें, सुखी रहें, सफल बनें इतना ही पर्याप्त नहीं, हमें अपने साथ-साथ दूसरों को साथ उठाने और बढ़ाने की बात नहीं भूलनी चाहिए ।

आलस्य, प्रमाद, व्यसन एवं अस्त-व्यस्त गतिविधियों में समय और शक्तियाँ खर्च करने के बजाय हमें अपने समय, श्रम और मनोयोग का उपयोग अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक शक्तियों के अभिवर्द्धन में नियोजित करना चाहिए । आमतौर से लोग पैसा कमाने, भोग भोगने, शौक-मौज,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गपबाजी, क्लेश-कलह आदि कार्यों में ही व्यस्त रहते हैं । न शरीर को नीरोग, दीर्घजीवी बनाने की बात सोचते हैं, न शिक्षा, विद्या, स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन आदि के साधन जुटाते हैं, न प्रतिभा बढ़ाते हैं न सद्गुणों का विकास करते हैं और न आत्म-बल बढ़ाने वाले परमार्थ प्रयोजनों में रुचि लेते हैं । यह नितान्त आवश्यक उपलब्धियाँ प्रायः उपेक्षित ही बनी रहती हैं और लोग केवल पैसा भर पाकर सन्तुष्ट रहते हैं, वे नहीं जानते कि व्यक्तित्व के समग्र विकास बिना मानव जीवन वस्तुतः अधूरा, अपूर्ण और अविकसित ही माना जाता है । जीवन जीने की कला हमें सीखनी चाहिए और भौतिक सम्पदाओं की तुलना में गुण, कर्म, स्वभाव पर अवलम्बित विभूतियों को प्रमुखता देनी चाहिए । महामानव बनने के लिये सद्गुणों की, सद्भावनाओं की विभूति सम्पदा चाहिए । मात्र धन-दौलत ही किसी के बड़प्पन का आधार नहीं बन सकती ।

इन्द्रियों का असंयम, लोभ का अतिक्रमण, अहंकार का आवेश, निष्ठुर और उदात्त आचरण और अविवेक का आवरण मिल-जुलकर मनुष्य का स्वरूप असुर एवं पिशाच जैसा बना देते हैं । मोह, ममता में डूबा हुआ व्यक्ति दूसरों की हानि एवं पीड़ा को भूल जाता है और अपने लिये, अपनों के लिये बुरे से बुरा कर्म करने में नहीं झिझकता, ऐसी मनोभूमि के रहते प्रकृति में मानव दीखने वाला व्यक्ति वस्तुतः दानव ही कहा जायेगा ।

जिन विचारणाओं, आदतों, मान्यताओं, परिस्थितियों अथवा परम्पराओं के कारण मनुष्यता को कलंकित करने वाले दोष-दुर्गुण बढ़ते हों उन सबका उन्मूलन किया जाना चाहिए । जो कारण इन दुष्प्रवृत्तियों को बढ़ाते हैं, उनका निराकरण किया जाना चाहिए । ऐसी विचारधारा से मानवीय चेतना को प्रभावित किया जाना चाहिए, जो व्यक्ति में देवत्व का अभिवर्द्धन कर सके । हमारे चिन्तन की दिशा इसी ओर बढ़े । बारीकी से यह ढूँढ़ा जाय कि किन कारणों से मनुष्य को निकृष्ट विचार अपनाने और कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा मिल रही है, उन सब की एक-एक करके जड़ें उखाड़ने में हम जुट पड़ें और उस रिक्तता की पूर्ति उन सत्प्रवृत्तियों से करने लगें जो नर को नारायण बनाने की ओर अग्रसर करती हैं ।

विश्व मानव की अखण्ड अन्तरात्मा

विश्व मानव की आत्मा एक और अखंड है । समस्त जड़-चेतन उसी के अन्तर्गत अवस्थित हैं । इस आत्मा में अपनी एक दिव्य आभा, स्वर्गीय ज्योति जगमगाती है । अनेक मल आवरणों ने उसे ढक रखा है । यदि वह ज्योति इन आवरणों को चीरकर अपने शुद्ध स्वरूप में जगमगाने लगे तो उसका आलोक जहाँ भी पड़े वहीं आनंद का परम आह्लादकारी दृश्य दिखाई दे सकता है । इस प्रकाश की सीमा में आने वाली हर वस्तु स्वर्गीय बन सकती है । ऐसी बहुमूल्य ज्योति हमारे अन्दर मौजूद है । स्वर्ग की सारी साज-सज्जा हमारे भीतर प्रस्तुत है, पर अविद्या के प्रतिरोधी तत्वों ने उसे भीतर ही अवरुद्ध कर रखा है । फलस्वरूप मानव प्राणी स्वयं नारकीय स्थिति में पड़ा हुआ है और वैसा ही नरकतुल्य वातावरण अपने चारों ओर बनाये बैठा है ।

आत्मा स्वार्थ की संकुचित सीमा में अवरुद्ध होकर आज खंडित हो रही है । हर व्यक्ति अपने को दूसरों से अलग खंडित देखता है, फलस्वरूप चारों ओर संघर्ष और कलह का वातावरण उत्पन्न होता है ।

वस्तुतः हम सब एक हैं, अखण्ड हैं, सब एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, एक का सुख-दुख दूसरे का सुख-दुख है । उठना है तो सब को एक साथ उठना होगा, सुख ढूँढ़ना है तो सब को उसे बाँटना होगा । खंडित व्यक्ति स्वार्थ की संकुचित सीमा में रहकर अपने शरीर के लिए कुछ भी, कितना ही इकट्ठा क्यों न करले, पर इससे उसे कोई चैन न मिलेगा । जब तक हम "अपने को सब में और सब को अपने में" न देखने लगेंगे तब तक मानव अपनी महानता से, मानवता से वंचित ही बना रहेगा ।

एक दूसरे के प्रति प्रेम, आत्मीयता, ममता, स्नेह, उदारता, क्षमा, करुणा की दृष्टि से देखें और जो कुछ अपने पास है उसका लाभ दूसरों को देने के लिए प्रस्तुत रहें तभी मनुष्य की मनुष्यता सार्थक हो सकती है । आध्यात्मिकता का संदेश है कि हम में से हर कोई अपने भीतर दृष्टि डालें, अन्तर्मुखी होकर देखें कि उसके भीतर कितनी प्रचुर मात्रा में दैवी सम्पत्ति भरी पड़ी है । यदि वह उसे जानले, देखले और उसका सदुपयोग करने लगे तो मरने के बाद नहीं, इसी जीवन में, आज ही स्वर्ग का आनंद ले सकता है । यह कथा कल्पना नहीं वरन् सुनिश्चित तथ्य है कि अपने आपको जान लेने पर मनुष्य सब कुछ जान सकता है । अपने आपको सुधार लेने पर संसार की हर बुराई सुधर सकती है । अपने को बना लेने पर बाहर के जगत में सब कुछ बन सकता है, अपने को विकसित कर लेने पर बाहर की सारी गिरावट उत्कृष्टता में परिणत हो सकती है । व्यक्ति महान बने, समाज महान बने, तथा सारी वसुधा महानता से ओत-प्रोत हो यह मिशन लेकर अखंड ज्योति जन्मी है । जब तक वह जलेगी तब तक इसी प्रयत्न में लगी रहेगी ।

दूसरे हम से भिन्न नहीं, हम दूसरों से भिन्न नहीं, इसी मान्यता में अध्यात्मवाद का सारा रहस्य सन्निहित है । दूसरों की पीड़ा जब अपनी पीड़ा लगने लगे, दूसरों को दुखी देखकर जब अपने अन्दर करुणा उपजे, दूसरों को सुखी और समृद्ध देखकर जब अपने भीतर सन्तोष और हर्ष की लहर लहराये तब समझना चाहिए कि हम आध्यात्मिकता के वास्तविक स्वरूप को पहचानने और ग्रहण करने की स्थिति में पहुँच रहे हैं । जब तक व्यक्ति अपने को समाज से भिन्न समझता है, लोकहित से अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को अधिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महत्व देता है, तब तक वह मानवीय आदर्शों से पतित ही माना जायेगा ।

आत्मा अखण्ड है । हम सब एक ही नाव के यात्री, एक ही मंजिल के राही हैं, एक ही डाल पर रहने वाले पक्षी, एक ही बिल में रहने वाले चींटी-चींटें, परस्पर एक ही सूत्र में बँधे हुए हैं । सब का सुख-दुःख एक है । यदि संसार में पाप बढ़ेगा तो उसके बुरे प्रतिफलों से पुण्यात्माओं को भी कष्ट सहना पड़ेगा । पेड़ गिर पड़े तो उस पर रहने वाले सभी पक्षी आश्रयविहीन होंगे, बिल में पानी भर जावे तो उसमें रहने वाले सभी कीड़े संकट में पड़ेंगे । मानव जाति का भाग्य एक ही लिपि में लिखा गया है । यदि उत्थान होना है, सुख मिलना है तो वह सामूहिक ही हो सकता है । चोर लोग अमीर रहना चाहें और सब गरीबी भुगतें, यह स्थिति देर तक नहीं रह सकती । चाहे साम्यवाद हो, चाहे अध्यात्मवाद, दोनों ही दृष्टिकोणों से यह गर्हित माना जायगा और इसे बदलने का प्रयत्न किया जायेगा ।

आत्मा एक व्यापक तत्व है वह अनन्त और अखण्ड है । पानी की हर लहर पर एक अलग सूरज चमकता दीखता है पर वस्तुतः असंख्यों सूर्य कहाँ होते हैं ? एक ही सूर्य की आभा तो अगणित लहरों पर स्वतन्त्र प्रतिबिम्ब जैसी दीखती है । आत्मा भी एक है उसकी अखण्ड ज्योति एक है । हम लहरों पर चमकने वाले प्रतिबिम्बों की भाँति अलग भले ही दिखाई दें पर वस्तुतः हम सब एक हैं । एक ही ज्वाला की अगणित चिनगारियाँ विभिन्न शरीरों में जलती दीखती हैं, एक ही बिजलीघर की प्रचंड धारा अनेक बल्बों में चमकती है, पर धारा का उदगम एक है ।

इस एकता को जितनी जल्दी हम समझलें उतना ही उत्तम है । वेदान्त का अद्वैत सिद्धान्त ही सत्य है । द्वैत मिथ्या है । द्वैत को मिटाकर अद्वैत की प्राप्ति के लिए ही अध्यात्म शास्त्र और साधना विज्ञान का आविर्भाव हुआ है । जीव जब अपनी सत्ता को भुला करके ईश्वर में लीन हो जाता है तब समाधि का, मुक्ति का सुख मिलता है । लौकिक जीवन में भी सुख-शान्ति का यही मार्ग है । व्यक्ति अपने संकुचित स्वार्थों की शैली में सोचना छोड़कर समाज की, समूह की बात सोचने लगे तो सर्वांगीण मुक्ति का वातावरण विनिर्मित हो सकता है । राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता आदि स्वतंत्रता के विविध आन्दोलन चलते रहते हैं । आत्मा स्वतंत्र है, वह बन्धन में नहीं रहना चाहती । जब छोटी-सी चिड़िया तक पिंजड़े में बन्द रहने की पराधीनता स्वीकार नहीं करती और अवसर मिलते ही उन्मुक्त आकाश में उड़ जाती है तो आत्मा ही क्यों पराधीन रहे ? स्वाधीनता की उसकी भूख स्वाभाविक है । यह भूख आत्मिक स्वतंत्रता में ही जाकर पूर्ण होती है । व्यक्ति छोटे से शरीर के लिए, छोटे से कुटुम्ब के लिए ही सब कुछ सोचे और सारे संसार की कठिनाई की ओर से आँखें बन्द कर ले, तो यह संकीर्णता, सीमाबद्धता, स्वार्थपरता ही कही जायगी । इसी भव बन्धन में बँधा हुआ प्राणी जन्म-मरण की फाँसी में झूलता रहता है ।

संकुचित स्वार्थों की सीमा में अवरुद्ध व्यक्ति तुच्छ है । जो अपनी ही बात सोचता है, अपने ही दुख से दुखी और अपने ही सुख से सुखी है, वह अभागा प्राणी पानी की एक बूँद की तरह है, जिसका अस्तित्व उपहासास्पद ही रहता है । समुद्र में अनेक बूँदों का समाज रहता है, इसलिए समुद्र भी महान है और उसकी हर बूँद भी धन्य है । सूर्य अपनी ज्योति को अपने घर में ही प्रकाशित नहीं रहने देता, वरन् उसकी किरणें लोक-लोकान्तरों तक निस्वार्थ भाव से बिखरी रहती हैं । इसी से सविता को देवता कहते हैं । वे मनुष्य भी देवता ही हैं जो ससीमता के बन्धन तोड़कर असीम बनने जा रहे हैं, जिनने स्वार्थ को परमार्थ में परिणत करने का निश्चय कर लिया है ।

इस संसार का भाग्य और भविष्य एक ही नाव में रखा हुआ है । विज्ञान की प्रगति ने इस एकता को और भी अधिक घनिष्ट कर दिया है । इसलिए हमें सुख और दुख की, लाभ और हानि की, उत्थान और पतन की, जीवन और मरण की समस्या पर व्यक्ति की दृष्टि से नहीं समूह की, समाज की, संसार की दृष्टि से विचार करना चाहिए । जिसमें सबकी भलाई है उसी में अपनी भलाई हो सकती है, जिससे सबका सुख और सन्तोष है उसी में हमें भी सुख-शान्ति मिल सकती है । अपने को सुखी बनाने की इच्छा करने वाले प्रत्येक को विस्तृत दृष्टि से देखना चाहिए और आत्मा की अखण्ड-ज्योति को एक सीमित क्षेत्र तक संकुचित न रखकर विस्तृत विशाल क्षेत्र में फैलने देना चाहिए । सबके सुख मे ही हमारा सुख सन्निहित है ।

विवेकवान् अपना जीवन दर्शन बदलें

भूमि की उर्वरता बीज के सहारे, पेड़-पौधे बनकर प्रकट होती है । इस तथ्य को न समझने वाले, वृक्ष के विशाल रूप को ही सब कुछ मानते रहते हैं । व्यक्ति रूपी वृक्ष और समाज रूपी उद्यान के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष चर्चा जो भी होती है, पर तथ्य इसी ओर इंगित करेंगे कि भूमि में कितनी उर्वरता रही और बीजारोपण में कितनी कुशलता बरती गई । प्राचीनकाल के उत्थान और आज के पराभव की तात्विक विवेचना कर सकना जिनके लिए सम्भव हो वे उसका कारण एक ही पायेंगे, जीवन दर्शन में परिवर्तन । जिन दिनों आस्था और आकांक्षा में शरीर निर्वाह के लिए भौतिक उपार्जन और आत्म-पोषण के लिए परमार्थ प्रयोजन पर समान रूप से ध्यान दिया जाता था, उन दिनों मनःस्थिति में उत्कृष्टता भरी रहती थी । फलतः कर्तव्य का क्रम आदर्शवादिता में भरा रहता था । ऐसी दशा में परिस्थितियाँ सुख-शान्ति से भरी पूरी रहनी चाहिए थीं, रहीं भी ।

आत्मा के प्रति उपेक्षा बरती जाय, उसे भूखों मरने के लिए छोड़ दिया जाय, तो फिर एकाकी शरीर पक्ष को मात्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुविधा ही अपेक्षित रहेगी । आदर्शों का आत्मिक अंकुश हट जाने से वह उपभोग की लिप्सा और स्वामित्व की लालसा में कुछ भी कर गुजरने के लिए स्वच्छन्दता बरतेगा और चस्का पड़ने पर उद्दन्डता अपनाने में भी नहीं चूकेगा । नीति पथ का अनुगमन छोड़ने पर जो विपतियाँ सामने आती हैं, वहीं हैं आज की विषम परिस्थितियाँ । विनाश को आमंत्रित यह विपन्नता ही करती है । आज के संव्याप्त संकट का तात्विक विवेचन इतना ही है ।

समाधान ढूँढ़ना हो तो, जड़ तक जाना होगा, रक्त शुद्धि का उपाय किये बिना फोड़े-फुन्सियों से छुटकारा पाना कठिन है । ऊपरी उपचारों से लीपा-पोती भर होती है । आवरण कमजोर होने पर एक छेद बन्द करते ही दूसरा अन्यत्र में खुल पड़ता है । समस्याओं का बाहरी उपचार कुछ क्षण के लिए ही थोड़ी रोक-थाम कर सकता है । स्थायी समाधान के लिए जड़ की गहराई तक पहुँचना पड़ेगा । विपत्तियाँ आसमान से नहीं बरसतीं, वह मनुष्य द्वारा अपनाई गई रीतिनीति की प्रतिक्रिया भर होती हैं ।

भले और बुरे परिणामों के उत्थान और पतन की पूरी-पूरी जिम्मेदारी आस्था संस्थान के स्तर पर ही निर्भर रहती है । कोई उसे समझ पाये न समझे दूसरी बात है । व्यक्ति या समाज के सामने जो भी संकट है उसके बाह्योपचार और सामयिक समाधान भी होने चाहिए । पर यह न भुला दिया जाना चाहिए कि उद्गम के छेद बन्द किये बिना फूटने वाली जलधारा इस सही मार्ग से न उसमें से ही, अपना रास्ता बनाती रहेगी ! एक समस्या को हल करने से पूर्व ही नई उलझन उठ खड़ी होगी, इन दिनों यही हो भी रहा है । प्राचीन काल की साधनहीन परिस्थितियों में स्वर्गीय वातावरण का होना और आज देव दुर्लभ उपयोग सामग्री का बाहुल्य रहते भी दुःख-दारिद्र में डूबना यही सिद्ध करता है कि उत्थान और पतन के मूल-भूत कारण बाहर नहीं भीतर हैं । विपन्नताएँ चर्म चक्षुओं से बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर दीखती हैं । किन्तु तनिक-सी गहराई में उतरते ही यह पता चल जाता है कि सारा प्रपंच दृष्टिकोण और दर्शन पर निर्भर है । ज्वालामुखी जैसे विस्फोट धरती की दरारों में से फूटते हैं । दुश्चिन्तन ही अगणित समस्याएँ उत्पन्न करता है ।

भटकन को ही प्रयत्न माना जाय और उछल-कूद में ही समाधान सोचा जाय तो बात दूसरी है, अन्यथा गहराई तक उतरना और लोकचिन्तन की दिशा मोड़ने के लिए साहस जुटाना पड़ेगा । भले ही कितना ही कष्टसाध्य, समय साध्य और श्रमसाध्य क्यों न हो । युग समस्याओं के समाधान में यही नीति अपनानी होगी, सही निदान से सही चिकित्सा बन पड़ती है और सही उपचार होने पर रोग निवृत्ति का सही आधार बनता है । आवश्यकता जीवन दर्शन में घुसे हुए विभ्रम को निरस्त करने की है । उसके स्थान पर जैसे ही दूरदर्शी विवेक की स्थापना होगी पूर्व काल जैसा स्वर्णिम युग सहज ही सामने आ खड़ा होगा ।

भारतीय जीवन दर्शन का सार तत्व इतना ही है कि शरीर पोषण जितना ही महत्व, आत्मोत्कर्ष को भी दिया जाय । इस सन्तुलन को बिगड़ने न दिया जाय । शरीर पोषण के लिये उपयोगी साधन चाहिए, उनका सीमित उपार्जन और सीमित उपयोग करने की नीति अपनाई जाय, ताकि आत्मिक प्रगति के लिए समय, श्रम और मनोयोग की कुछ मात्रा बच सके । उपभोग और संग्रह की प्रवृत्ति जब अनियन्त्रित हो जाती है तो वह वासना कहलाती है और लिप्सा बनकर उद्विग्नता, आतुरता और उच्छृंखलता का कारण बनती है । इसी प्रकार सम्बन्धित पदार्थों और व्यक्तियों के प्रति अनावश्यक ममता जोड़ लेने से स्वामित्व की अर्हता बढ़ती है । सम्पत्ति का विपुल संचय और कुटुम्बियों को धन-कुबेर बनाने का व्यामोह मिलकर एक ऐसा जाल बुनते हैं, जिससे जकड़ा हुआ मनुष्य चिन्तन और पराक्रम की दृष्टि से अपंग और प्रतिबंधित जैसा बनकर रह जाता है । उससे ऐसा कुछ सोचते-करते नहीं बन पड़ता जिससे आत्मिक प्रगति, शान्ति और शक्ति उपार्जित कर सकना सम्भव हो सके ।

अन्तःक्षेत्र की, लोकचिन्तन की यही स्थिति जब तक बनी रहेगी विपत्तियों और विपन्नताओं का ताँता टूटने वाला नहीं है । प्राचीनकाल में अन्तःक्षेत्र की सुव्यवस्था पर ध्यान दिया गया था । फलतः भौतिक दृष्टि से सुखी, और आत्मिक दृष्टि से समुन्नत बनने का दुहरा लाभ उसने उठाया था । स्वयं धन्य बने और संसार को धन्य बनाया था । आज संकीर्ण स्वार्थपरता खाये जा रही है । लोभ और मोह के प्रेतों ने चिन्तन क्षेत्र पर पूरी तरह आधिपत्य जमा लिया है । फलतः मनुष्य शरीरचर्या के अतिरिक्त और कुछ सोचता ही नहीं । आत्म सत्ता को उसकी आवश्यकता को एक प्रकार से भुला ही बैठा है । उपभोग के संचय और ममत्व के परिपोषण में ही सामर्थ्य का सारा स्रोत चुक जाता है । भीतर से खोखला और बाहर से ढकोसला बना आज का मनुष्य अपने और दूसरों के लिए समस्या बन कर रह रहा है । अन्तःस्थिति के बदले बिना विषय परिस्थितियों का बदला जाना अति कठिन है ।

भारतीय जीवन दर्शन की झाँकी एक दर्पण में करनी हो तो उसे वानप्रस्थ परम्परा में देखा जा सकता है । आधा समय, श्रम शरीर के लिए आधा, आत्मा के लिए नियोजित है । दोनों पहिये सही रहने पर गाड़ी ठीक तरह चलती है । दोनों टांगों के सहारे यात्रा सही रूप में बन पड़ती है । स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय होना ही चाहिए । मात्र परमार्थी शरीर यात्रा कैसे सँजोये । मात्र स्वार्थी को शान्ति और प्रगति का दर्शन कैसे हो ? एकाकीपन की अपूर्णता असमंजस ही खड़ा किये रहेगी । भौतिक समृद्धि और आत्मिक प्रगति का उभयपक्षीय प्रयोजन पूरा करने वाली यदि रीति-नीति अपनाई जाय तो लोक भी बनेगा और परलोक भी सुख भी मिलेगा और सन्तोष भी, इसके विपरीत यदि आदि से अन्त तक लोभ-मोह ही छाया रहे तो समझना चाहिए कि वह सुख भी मृग तृष्णा की तरह दूर ही हटता चला जायेगा, जिसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए कि इतनी व्याकुलता बरती और अवांछनीयता अपनाई गई थी ।

आम आदमी लोभ के लिए ही मरता और मोह के लिए ही खपता है फिर भी वह उनमें से एक को भी पूरा कर सकने में सफल नहीं होता । तृष्णा जहाँ की तहाँ बनी रहती है । कमाया सीमित ही जा सकता है । पर लिप्सा तो असीम है । खाई को मुट्ठीभर रेत से कैसे पाटा जाय ? आग को ईंधन से कैसे बुझाया जाय? न अतृप्ति हटती न अशान्ति मिटती है । कोल्हू का बैल कैसे थकान से बचे ? इन्द्रिय तृप्ति में दाद जैसी खुजली भर है । व्यामोह में कुछ को देना और असंख्यों से छीनना होता है, इस नीति को अपनाने वाला आत्म प्रताड़ना से कैसे बचे ?

पूर्वजों का दृष्टिकोण स्पष्ट था । शरीर से काम लेना है, इसलिए स्वास्थ्य बनाये रहने भर की साधन सामग्री जुटानी है । सम्बन्धित कुटुम्बियों को स्वावलम्बी, सुसंस्कारी भर बनाना है, इसके लिए औचित्य की सीमा के अन्तर्गत स्नेह-सहयोग देने भर से काम चल जाता है । आवश्यक नहीं कि उनके लिए वैभव जमा किया जाय या ऊँची पदवी पर पहुँचाया जाय । नागरिकों का औसत स्तर ही अपने सम्बन्धियों के लिए पर्याप्त माना जा सके तो उतनी चिन्ता न करनी पड़ेगी जितनी आज करनी पड़ती है । इसी औचित्य भरे दृष्टिकोण को सन्तोष कहते हैं । जो सन्तोषी है, वही सर्वदा सुखी रहता है ।

दुःख तो दरिद्रता का है । दरिद्रता उस पिछड़े दृष्टिकोण का नाम है जो वैभव और विलास की असीम कामना सँजोये रहती है और अतृप्ति की आग बनकर निरन्तर जलाती है । दरिद्रता वस्तुओं की कमी को नहीं, तृष्णा की ललक को कहते हैं जो आत्महीनता और अशान्ति बनकर तथाकथित सम्पन्नों पर भी छाई रहती है, यही असन्तोष उद्विग्नता बनकर उभरता और आवेशग्रस्त भूत-पिशाचों की तरह कुकृत्य करता है । यदि औसत भारतीय स्तर का निर्वाह और कुटुम्बियों का सुसंस्कारी स्वावलम्बन पर्याप्त माना जा सके तो हर किसी को आत्मिक प्रगति के लिए असीम पुरुषार्थ करने का अवसर मिल सकता है । भवबन्धन, मायापाश आदि के नाम से जिस तमिस्रा का अध्यात्म क्षेत्र में हेय वर्णन किया जाता है वह और कुछ नहीं मात्र विलास और स्वामित्व की वितृष्णा भर है । इस भार के हलका होते ही आत्मा विश्व आकाश में स्वच्छन्द पक्षी की तरह विचरने का आनन्द लेने लगता है । इसी को जीवन मुक्ति कहते हैं ।

यह न कठिन है, न असरल । जो वस्तुस्थिति को समझने और तदनुरूप जीवन नीति निर्धारित करने का साहस कर सके उसके लिए भव बन्धनों से मुक्ति पाना नितान्त सरल है । जिनने लोभ और मोह की हथकड़ी, बेड़ी कस कर जकड़ ली है उनके लिए व्यथा वेदना सहने और चिन्ता चिता में जीवित काया को जलाते रहने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं । सफलता कितनी ही बड़ी क्यों न हो, उपलब्धियाँ किसी भी स्तर की क्यों न हों, तृष्णा से कम ही पड़ेंगी और अतृप्ति को घटाने में तनिक भी सहायता न करेंगी ।

अपने महान पूर्वज इन शाश्वत तथ्यों से परिचित थे । इसलिए वे उत्कृष्टता अपनाते थे और वितृष्णा से बचते थे । फलतः उन्हें वैयक्तिक जीवन में उल्लास और उमंगों से भरे रहने का अवसर स्वल्प साधनों में ही मिल जाता था । कुटुम्बियों की अनावश्यक संख्या बढ़ाना वज्र मूर्खता का चिन्ह है । खाई खोदने और उसे पाटने का जंजाल बुने बिना जिनका काम चल सकता है वे प्रस्तुत कुटुम्ब का उत्तरदायित्व पूर्ण करना ही पर्याप्त समझते हैं । नये-नये भार लादते जाने का दुस्साहस करते हुए दुष्परिणामों का ध्यान रखते और उससे हाथ सिकोड़ते हैं । सन्तान वृद्धि कभी क्षम्य भी समझी जाती होगी पर आज की स्थिति में तो उसे अक्षम्य और अभिशाप ही कहा जा सकता है ।

प्राचीनकाल में गृहस्थ जीवन में भी थोड़ी सी अवधि ही सीमित सन्तानोत्पादन के लिए खुलती थी । शेष तीन चौथाई जीवन तो ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास में ही बीतता था । आज असीम और अनगढ़ सन्तानें किस प्रकार अपने अभिभावकों के लिए अभिशाप बनकर रहती हैं, इसे हर विवेकवान अच्छी तरह जानता है । प्राचीनकाल में यह विवेकशीलता लोकप्रथा में सम्मलित थी कि सन्तानोत्पादन का उतना ही दुस्साहस किया जाय, जितना कि उनके परिपोषण में लगने वाली सामर्थ्य से परमार्थ प्रयोजनों में घाटा न पड़ने पाये ।

उन दिनों बड़ा भाई छोटे भाई-बहिनों का उत्तरदायित्व सँभालता था और अभिभावकों की परमार्थ परायणता में जो उत्तरदायित्व बाधक बनते थे उन्हें अपने कंधों पर वहन करता था । आज तो अभिभावकों की सहायता करने की रीति ही बदल गई । उनसे जितना अधिक पाया जा सके, उसे झपटना ही प्रचलन बनकर रह गया है । देने लेने वाले उसी के अभ्यस्त हो गये हैं । फलतः कुटुम्ब अब आत्मविश्वास का अभ्यास करने के माध्यम नहीं रहे । व्यामोह और अनाचार के जेलखाने बनकर रह रहे हैं ।

उपयुक्त गुजारे भर को यदि पर्याप्त माना जा सके तो अर्थ संकट की शिकायत किसी को भी न करनी पड़ेगी घर के सब लोग श्रम करें तो किसी एक पर उपार्जन का असीम भार क्यों पड़े ? सादगी और शालीनता की मितव्ययी रीति-नीति अपनाई जाय तो वे अनावश्यक खर्च क्यों बढ़े, जिनके लिये ऋणी, चिन्तित एवं अनीतिरत रहना पड़ता है । संचय की निरर्थकता और अमीरी की दुष्परिणित को ध्यान में रखा जा सके तो हर किसी के लिए हलका-फुलका जीवन जीना और परमार्थ प्रयोजनों के लिए बहुत कुछ कर सकना सम्भव हो सकता है । आत्मिक प्रगति का अवसर वहीं मिलेगा, जहाँ इस प्रकार मनःस्थिति एवं परिस्थिति बन रही होगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कितनों का ही संचित उपार्जन इतना होता है, जिस की बैंक ब्याज भर से निर्वाहक्रम अत्यन्त सरलतापूर्वक चलता रह सकता है, फिर भी अभागा मन न लोभ छोड़ता है, न मोह । फलतः आत्मा को बलिष्ठ बनाने का वह सुअवसर मिल नहीं पाता, जिसे अपनाने वाला आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण के लिए बहुत कुछ कर सकता है और महा मानवों जैसा अभिनन्दनीय जीवन जी सकता है । महापुरुषों और नरपशुओं में मात्र इतना ही अन्तर होता है कि एक पक्ष विवेक अपनाता और आदर्शों के लिए कुछ कर सकने की व्यवस्था बनाता है । दूसरा व्यामोह की सड़ी कीचड़ में फँसा हुआ रोता कल्पता भर है, उससे उबरने का प्रयत्न नहीं करता । यही वह अन्तर है जिसमें एक जैसी स्थिति के दो व्यक्तियों में से एक महानता का गर्व-गौरव प्राप्त करता है और दूसरा क्षुद्रताजन्य प्रताड़नाएँ निरन्तर सहता है ।

यहाँ एक और विडम्बना आड़े आती है । आत्मकल्याण के लिए एक सस्ता-सा उपचार पूजा पाठ को मान लिया जाता है और सोचा जाता है कि इतने भर से भगवान को रिझाना और पक्षधर बनाना सम्भव हो सकेगा । वे वह भूल जाते हैं कि उपासना का तत्वदर्शन जीवन साधना की आस्था एवं प्रेरणा उभारने के निमित्त विनिर्मित हुआ है । भगवान खुशामद और रिश्वत की पकड़ से बहुत ऊँचा है । उपासना तो उत्कृष्टता के रूप में विद्यमान अन्तःचेतना की, की जाती है । भ्रमग्रसित एक जंजाल से निकलकर दूसरे में फँसते हैं । आत्मकल्याण के निमित्त जीवन साधना करने की आवश्यकता वे भी नहीं समझते और जिस-तिस मंत्र-तंत्र का सहारा लेकर आत्मकल्याण और ईश्वरीय अनुग्रह का दिवा-स्वप्न देखते हैं ।

पूर्व पुरुष भ्रमग्रस्त नहीं थे, वे उपासना भी करते थे और साधना भी । दोनों की सच्चाई और गहराई उनके प्रखर जीवनदर्शन में प्रकट परिलक्षित होती थी, वे निर्वाह भी करते थे, कुटुम्ब भी सम्भालते थे साथ ही परमार्थ प्रयोजनों के लिए इतना कुछ करते थे, जिसके सहारे उनका व्यक्तित्व देवोपम स्तर की भूमिकाएँ निभाने में सफल रह सके ।

सामर्थ्य किसी के पास कम नहीं, सुविधा सबको समान रूप से उपलब्ध है । समय सबके पास पर्याप्त है । शरीर की श्रमशीलता और मन की विचारशीलता की दृष्टि से कोई भी दरिद्र नहीं । अपंगों को छोड़कर सभी स्वस्थ मनुष्य प्रायः एक जैसी स्थिति में हैं । भिन्नता इतनी है कि एक का जीवन प्रवाह उत्थान की दिशा में बहता है, दूसरे को पतन रुचता है । एक को उत्कृष्टता प्रिय है, दूसरे को सड़ी कीचड़ में रहने की आदत पड़ गई है । आस्था और आकांक्षा का परिवर्तन सम्भव हो सके तो अपना यही मस्तिष्क अपनी इन्हीं परिस्थितियों में ऐसा मार्ग निकाल सकता है, जिस पर चलते हुए आज की तुलना में हजार गुने श्रेष्ठ स्तर की जीवनचर्या बन सके । कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि दृष्टिकोण बदला तो जीवन-यापन की रीति-नीति में तत्काल अन्तर पड़ेगा । यही वह अन्तर है, जिसे आन्तरिक काया-कल्प कहा जाता रहा है । भीतर का परिवर्तन बाहर की परिस्थितियों में चमत्कारी परिवर्तन करता है । यही वह चमत्कार है जो भूतकाल के देव-मानवों के जीवन-क्रम में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । उत्कृष्टता की विभूतियाँ ऋद्धियाँ कहलाती हैं और दूसरों को ऊँचा उठाने वाली क्षमताओं को सिद्धियाँ कहते हैं । पूर्व पुरुषों ने उस मार्ग को अपनाकर अपने समय को सतयुग और अपने क्षेत्र को स्वर्ग बनाया था । हमें भी उसी मार्ग पर अनुगमन करने का साहस जुटाना है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तित्व निर्माण के निमित्त विज्ञान के प्रयोग

मनुष्य में नई कलम लगने में देर नहीं

सामान्य पौधों में उच्चस्तरीय पौधों की कलम लगाकर विकसित किस्म के वृक्ष-वनस्पतियाँ उत्पन्न करने में पिछले दिनों उत्साहवर्द्धक सफलताएँ मिली हैं । एक ही पेड़ पर अनेक किस्म के फूल और अनेक किस्म के फल लगा देने जैसे चकित करने वाले प्रतिफल सामने आये हैं । देर से बढ़ने और छोटे एवं खट्टे फल देने वाले आम की कलम बनाने की विधि अब सर्वविदित है, उस आधार पर थोड़े ही समय में बड़े आकार के एवं मीठे फल उत्पन्न किये जाने लगे हैं । चीकू जैसी अनेक कलमी जातियाँ अपने अनोखेपन का परिचय दे रही हैं । फूलों में भी यह प्रयोग सफल हुआ है । गुलाब की इतनी अधिक किस्में सामने हैं कि उनकी भिन्नता और विचित्रता देखते ही बनती है । शाक और धान्य के क्षेत्र में भी क्रान्तिकारी परिणाम उपलब्ध हुए हैं । पशु और पक्षियों की कितनी ही नई विरादरी उत्पन्न कर ली गई हैं । इन प्रयोगों में घोड़े और गधे की कलम लगाकर खच्चर उत्पन्न करने का प्रयोग तो शताब्दियों पूर्व सफल हो चुका है । मुर्गे और मछलियों पर यह प्रयोग अत्यन्त उत्साह के साथ चल रहा है । गाय जैसे दुधारू पशुओं को अपने वंश परम्परा को द्रुतगति से उल्लंघन करने और नया वर्ग बना कर खड़ा कर देने में सफलता मिल चुकी है । जिन्हें कौतूहलवर्द्धक प्रयोगों में रस आता है वे प्राणियों के निर्माण में प्रजापति की भूलों को सुधारने और जीव सृष्टि को नये सिरे से गढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं । सफलताएँ उनकी हिम्मत को दिन दूना रात चौगुना बढ़ा रही हैं । कुत्तों की बिरादरी में छह इंच ऊँचाई जितने छोटे और गधे जितने ऊँचे किस्म के नये जानवर रच लिये गये हैं । यह कलम लगाकर उत्पन्न की जाने वाली विरादरियाँ अपने पूर्वजों की तुलना में शारीरिक क्षमता और स्वभाव विशेषता की दृष्टि से आश्चर्यजनक मात्रा में भिन्न किस्म की बन रही हैं । कलम पर नई कलम, नई कलम पर नई कलम चढ़ाते-चढ़ाते बात यहाँ तक पहुँची है कि आगे चलकर यह ढूँढ निकालना तक कठिन हो जाता है कि इसके मूल पूर्वज कौन थे और किस स्थिति में रह रहे थे ? इसे कलम लगाने की विद्या की चमत्कारी सफलता कहा जा सकता है ।

'मानव कलम' या जेनेटिक इन्जीनियरिंग को अब विज्ञान में एक अति महत्वपूर्ण विषय माना जा रहा है । जे. वी. एस. हैल्डेन ने जो इस शताब्दी के सर्वाधिक प्रतिभाशाली जीववैज्ञानिक माने जाते हैं, कहा था कि— ''यदि कुशलता से मानव कलम को तैयार किया जाये तो समस्त कमियों को दूर कर एक नया मानव बनाया जा सकता है'' । फ्रांसीसी जीववैज्ञानिक जीन रोसे का विचार है—''मानवी कलम का उपयोग व्यक्ति के खण्डित स्वरूप को नये स्वरूप में बदलकर उसे अमरत्व प्रदान करने के लिये किया जा सकता है ।'' इस कार्य में वरीयता प्राप्त करने वाले इस दशाब्दी के वैज्ञानिक हैं—नोबल पुरस्कार प्राप्त डॉ. जोशुआ लेडरवर्ग एवं यू. सी. एल.ए. के डॉ. एलोफ एक्सेल कार्लसन । डॉ. लेडरबर्ग का सुझाव है कि—''शरीर कोशिका दान करने वालों का उपयोग उनके युवा अंकुरों को बढ़ाने के लिये किया जा सकता है । उनके अनुसार समान जीव वाले ऐतिहासिक व्यक्तियों की कोशिकाओं को पुनर्जीवित करने के लिये मृतक की भी मानव कलम लगायी जाए ।''

अब जीवसंश्लेषण से जीवित व्यक्ति का प्रतिरूप एक प्रतिमानव एक वैज्ञानिक सत्य है । अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'इन हिज इमेज, क्लोनिंग ऑफ मैन' में डेविड रोरविक ने इसका बड़ा आश्चर्यचकित करने वाला वर्णन किया है ।

डॉ. रोरविक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सुविकसित स्तर पर मनुष्य की हू-बहू वैसी ही ब्लूप्रिन्ट कापियाँ बनाकर तैयार की जा सकेंगी । तब गाँन्धी और जवाहरलाल के न रहने से किसी क्षति की आशंका न रहेगी क्योंकि उनके जीवन काल में ही अथवा मरने के बाद हू-बहू वैसे ही व्यक्ति सैकड़ों हजारों की संख्या में प्रयोगशालाएँ उत्पन्न करके रख दिया करेंगी । एक अन्य डा. रोस्टाक ने टिश्यू कल्चर अर्थात् कोशिकाओं की खेती के अगले दिनों सामान्य बागवानी की तरह प्रयुक्त होने की भविष्यवाणी की है । कार्नेल विश्वविद्यालय के डॉ. फ्रेड्रिक सी. स्टीबर्ड द्वारा गाजर की एक कोशिका को पूरी गाजर में विकसित करने में सफलता प्राप्त करने के बाद अब यह सोचा जाने लगा है कि मनुष्यों की भी ऐसी ही अभीष्ट पीढ़ियाँ उत्पन्न करने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए ।

विचारक मालकम मेगरिज का कथन है कि सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक प्रकृति के जितने रहस्य जानने में मनुष्य को सफलता मिली थी, उसकी तुलना में कहीं अधिक ब्रह्माण्ड का रहस्योद्घाटन इस शताब्दी में हुआ है । यह क्रम आगे और भी तीव्र गति से चलेगा । इन उपलब्धियों में एक सबसे बड़ी कड़ी जुड़ेगी, अभीष्ट स्तर के मनुष्यों के उत्पादन की । अगले दिनों शरीर की दृष्टि से असह्य समझी जाने वाली परिस्थितियों में रहने वाले मनुष्य उत्पन्न किये जा सकेंगे और विद्वान, दार्शनिक, कलाकार, योद्धा, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, व्यापारी, श्रमिक आदि वर्ग न्यूनाधिक योग्यता के आवश्यकतानुसार उत्पन्न किये जा सकेंगे । तब मनुष्य सर्व शक्तिमान न सही, असीम शक्ति सम्पन्न अवश्य ही कहा जा सकेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कैलीफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी के डाक्टर विलियम जेड्रेअर ने भविष्यवाणी की है कि ऐसे निरोधक तत्वों का जीन्स में प्रवेश कराया जा सकेगा, जो पैतृक रोगों का उन्मूलन करके नयी स्वस्थ स्थापना के लिए रास्ता साफ कर सकें । यह तो निवारण की बात हुई । इसका दूसरा पक्ष स्थापना का है । जिस प्रकार किसी अच्छे खेत में इच्छानुसार बीज बोकर अभीष्ट फसल उगाई जा सकती है, उसी प्रकार परम्परागत अवरोधों को हटा सकने की सफलता के साथ एक नया अध्याय और जुड़ जाता है कि वंश तत्व में इच्छानुसार विशेषताओं के बीज बोये जा सकेंगे । अगली पीढ़ियों को वैसा ही उत्पन्न किया जा सके जैसा कि चाहा गया था ।

वस्तुतः आनुवंशिक इन्जीनियरिंग के रूप में एक नयी क्रान्ति विज्ञान जगत में हुई है । पिछले दिनों जीवविज्ञानियों एवं आनुवंशिकी के अधिकांश शोधकर्त्ताओं का ध्यान इस दिशा में विशेष रूप से नियोजित रहा । इसकी कल्पना करीब १५ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक हरमन जोसेफ मूलर ने की थी । उन्हें आनुवंशिकी के क्षेत्र मे अनुसंधान हेतु नोबुल पुरस्कार भी मिला । अपनी मृत्यु से ६ माह पूर्व शिकागो में सितम्बर ६६ में हुये मानवीय आनुवंशिकी अधिवेशन में उपस्थित वैज्ञानिक समुदाय से उन्होंने अनुरोध किया था कि एक शुक्राणु बैंक की स्थापना की जानी चाहिए जिसमें शारीरिक विकास, मानसिक प्रखरता एवं नैतिक दृष्टि से ऊँचे गुण वाले प्रख्यात महापुरुषों के शुक्राणुओं को जमा किया जा सके । स्वस्थ, सुन्दर और सच्चरित्र भावी सन्तान जन्म ले, इसके लिये उपयुक्त माताओं का चयनकर कोल्ड स्टोरेज से इन शुक्राणुओं की वितरण व्यवस्था की जानी चाहिये ।

क्रोमोसोम व जीन्स के क्षेत्र में महत्वपूर्ण शोध करने वाले नोबुल पुरस्कृत वैज्ञानिक क्रीक, जिनके नाम पर डी. एन. ए. की संरचना वाले मॉडल का नाम रखा गया है, तो तानाशाही व्यवस्था का समर्थन करते हुये इस प्रकार के प्रयोगों पर अपनी वैज्ञानिक मुहर भी लगा चुके हैं । उनका मन्तव्य है कि राष्ट्र को जैसी सन्तानों की आवश्यकता है, वैसी ही पीढ़ी वैज्ञानिक तैयार करे । इसके लिये वे सन्तानोत्पत्ति की स्वतन्त्रता अविलम्ब समाप्त करना चाहते हैं । उनके अनुसार किसी ऐसी वस्तु का आविष्कार होना चाहिए जिसे भोजन में मिला देने से ही सबकी प्रजनन शक्ति समाप्त हो जाये । इसका एण्टीडोट (विलोम) सिर्फ उन्हीं व्यक्तियों को दिया जाये जिनके बच्चों की शासन को आवश्यकता है ।

वास्तव में 'जीन्स' की विस्तृत लीला जानने के लिये जितने अधिक वैज्ञानिकों ने अपने श्रम को इसमें नियोजित किया है, वह अपने आप में एक कीर्तिमान है । जीन्स के सूक्ष्म घटक डी. एन. ए. की संरचना ज्ञात हो चुकी है । जीन्स के चित्र लिये जा चुके हैं । डी. एन. ए. द्वारा प्रोटीन संश्लेषण मे भाग लेने की सम्पूर्ण आनुवंशिक संहिता को जानकर अब सीधे उसी पर प्रयोग किये भी जा रहे हैं ।

ब्रिटेन की इन्टर नेशनल साइन्स राइटर्स एसोशिएशन के अध्यक्ष जी.आर. टेलर ने अपनी पुस्तक दी बायोलॉजिकल टाइम बम' को जीवविज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए यह बताया है कि वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य की अभीष्ट जातियाँ शाक-भाजियों की तरह उगाई जा सकेंगी और उन्हें कलम लगाकर कुछ से कुछ बनाया जा सकेगा ।

इस सन्दर्भ की नई उपलब्धियाँ ऐसी सम्भावना का द्वार खोलती हैं कि मानव भ्रूण का पालन किसी उपयुक्त प्रकृति की पशु मादा के पेट में पालन करा लिया जाय । इससे उस बच्चे में मनुष्य और पशु के सम्मिलित गुण विकसित हो जायेंगे । इन प्रयोगों से आरम्भ में थोड़े से बच्चे बनाने में ही अधिक परिश्रम पड़ेगा । पीछे तो कृत्रिम गर्भाधान विधि से वे थोड़े ही बच्चे तरुण होकर सहस्रों बच्चे पैदा कर देंगे । एक स्वस्थ साँड के द्वारा जीवन भर का संचित शुक्र ५० हजार तक बच्चे पैदा कर सकता है । विशेष रासायनिक प्रयोगों से उत्तेजित मादा डिम्बों द्वारा एक साथ ५ तक सन्तानें उत्पन्न करायी जा सकती हैं । नयी मनुष्य जाति को जल्दी बढ़ाने के लिए ऐसे ही तरीके काम में लाये जायेंगे साथ ही पुरानी पीढ़ी को समाप्त करके उन सबका वन्ध्याकरण किया जायेगा ।

ऑक्सफोर्ड युनीवर्सिटी के डा. जे. वी. गर्डन ने मेंढकों पर नई नस्ल पैदा करने के लिए कलमें लगाने का प्रयत्न किया है । इस कार्य में दो अमेरिकी वैज्ञानिक डा. ब्रिग्स और केन्ग उनके सहयोगी रहे हैं । इस प्रयास में उन्हें आशातीत सफलता मिली है । इन प्रयोगों में वे ऐसे नयी किस्म के, नई नस्ल के मेढ़क पैदा करने में समर्थ हुए जो अपने पूर्वजों की तुलना कहीं अधिक सुन्दर, बलिष्ठ, सौम्य एवं बुद्धिमान थे । वैज्ञानिक मण्डली ने इसी प्रकार के प्रयोग अन्य छोटे-छोटे जीवों पर भी किये है और उनमें से प्रायः सभी में सफलता मिली है ।

संसार भर में चल रहे प्राणियों की नस्ल सुधारने के प्रयत्नों में भारी दिलचस्पी ली जा रही है और भरपूर कोशिश की जा रही है । पेड़-पौधों पर यह प्रयोग बहुत पहले ही सफल होता रहा है । कलमी फलों की नस्लें सर्वविदित, लोकप्रिय और लाभकारी सिद्ध हो रही हैं । अब प्राणियों को भी अधिक उपयोगी बनाने के प्रयत्न उसी उत्साह से चल पड़े हैं जैसे कि कुछ समय पूर्व फूलों और शंकर जातियाँ उत्पन्न करने के लिए चले थे ।

वंशानुक्रम विज्ञान के महामनीषी राबर्ट एम. शेस्मीरे ने भविष्यवाणी की है कि अगले दस साल में मनुष्यों की कलम लगाने और आज की तुलना में अधिक समुन्नत पीढ़ी पैदा करने में सफलता मिल जायेगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानवी व्यक्तित्व के सूक्ष्मतम सूत्राधार

मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास निर्माण में आमतौर से वातावरण और प्रयत्न-पुरुषार्थ का महत्व माना जाता है । यह मान्यता एक सीमा तक ही ठीक है । क्योंकि एक जैसी परिस्थितियों में जन्मे और पले बालक आगे चलकर भारी भिन्नतायुक्त देखे गये हैं । इसका प्रमुख कारण यह है कि संतान के व्यक्तित्व का ढाँचा बनाने में जो जीवन तत्व काम करते हैं, वे न जाने कितनी पीढ़ियों से चले आते हैं । मातृकुल और पितृकुल के सूक्ष्म उत्तराधिकारों से वे बनते हैं । सम्मिश्रण की प्रक्रिया द्वारा वे परम्परागत स्थिरता ही नहीं बनाये रहते, वरन् विचित्र प्रकार से परिवर्तित होकर कुछ से कुछ बन जाते हैं ।

मनुष्य ही नहीं, वरन् पृथ्वी पर पाये जाने वाले जितने भी प्रकार के वनस्पति एवं प्राणि समुदाय के जीव पाये जाते हैं, उन सबके जीवन का आधार वैज्ञानिकों ने खोज निकाला है । इस सदी के पूर्वार्द्ध के बाद इस संबंध में इतना अधिक अनुसंधान हुआ है कि इसके लिए नित नयी रिपोर्टें तैयार होती हैं । शोध की इतनी तीव्र गति होने का श्रेय इलेक्ट्रॉन, माइक्रोस्कोपी एवं साइबरनेटिक्स जैसी विधा को है, जिसमें वैज्ञानिक यंत्रों की सहायता से विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों की जानकारियों को समग्र रूप से प्रस्तुत किया जाता है ।

छोटे से छोटे जीव अमीबा से लेकर जटिलतम् संरचना वाले मानवशरीर की रचना एक ही प्रकार के जीवन रस से हुई मानी जाती है । विभिन्न प्रकार के जीवों की शरीर रचना बनाने के सूत्र संकेत अपने में समेटे हुए, पदार्थ को वैज्ञानिकों ने डी.एन.ए. डिऑक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल नाम दिया है । यही डी.एन.ए. नामक जीवन रस वंशानुक्रम के सब रहस्यों को अपनी पिटारी में बंद किये हुए रहता है । गुणसूत्रों पर चिपके हुए इस डी.एन.ए में अनेकानेक अतिसूक्ष्म नाजुक स्प्रिंग जैसे पदार्थ इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा देखे जा सकते हैं जिन्हें की 'जीन्स' कहा जाता है । जीन्स में स्मृतिकोष होते हैं और माइक्रोस्कोपिक कम्प्यूटर में जैसे विभिन्न प्रकार के संकेत एवं विस्तृत सूचनाएँ निकलती रहती है, उसी प्रकार इनमें शरीर की रचना के बारे में जीवकोषों को निर्देश मिलते रहते हैं । जिससे शरीर के करोड़ों विभिन्न प्रकार की कोशिकाओं में परस्पर समन्वय स्थापित होता है ।

शरीर के लाल रक्त कणों एवं कुछ विषाणुओं को छोड़कर प्रत्येक जीव में डी.एन.ए. पाया जाता है । वयस्क मनुष्य के शरीर में डी. एन. ए. के ६०० अरब, उर्जा, पैकेट्स पाये जाते हैं । इन सबकी रासायनिक संरचना समान एवं आकार प्रकार एक सा होता है । केवल मनुष्य में ही नहीं, घास के पत्तों, कुत्ते, बिल्ली, चूहे आदि प्रत्येक जीवधारी की शरीर रचना में डी. एन. ए. के पैकेट्स का आकार-प्रकार एवं रासायनिक संरचना एकसी होती है । जीवों में विभिन्नता लाने के 'कोड' डी. एन. ए. में ही छिपे होते हैं, जिसके फलस्वरूप ही चिड़ियाँ, मछलियाँ, वनस्पति, कीट-पतंगों एवं विभिन्न प्राणियों की सृष्टि होती है । डॉ. हरगोविन्द खुराना नामक भारतीय वैज्ञानिक ने आर. एन. ए. राइबो न्यूक्लिक एसिड की संरचना के बारे में विशेष शोध कार्य किया जिससे उन्हें सन् १९६१ में नोबुल पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

विभिन्न प्राणियों में जाति के अनुसार क्रोमोसोम्स-गुणसूत्रों की संख्या निर्धारित हुआ करती है । सबसे अधिक गुणसूत्रों की संख्या मनुष्य में पायी जाती है । मनुष्य में इनकी संख्या ४६ अर्थात् २३ जोड़ी होती है । जीवन धारण के समय भ्रूण कलल में २३ गुणसूत्र माता से और २३ गुणसूत्र पिता से संयुक्त होते हैं । प्रत्येक मनुष्य का व्यक्तित्व, उसके स्वभाव की बनावट का आधार गुणसूत्रों की संरचना में सन्निहित होते हैं । प्रत्येक व्यक्ति के फेफड़े, हृदय, गुर्दे, रक्त का समूचा भंडार और ३५ फुट लम्बी आतों आदि की रचना का संकेत डी. एन. ए. में छिपा होता है । मानव शरीर के विभिन्न जीवकोषों की बाहरी संरचना रासायनिक रूप से एकसी होती है । शरीर के विभिन्न अंग-अवयवों को विभिन्न कार्य करने होते हैं । त्वचा, आँख, कान, नाक आदि की बनावट डी.एन.ए. के संकेत के अनुसार ही होती है । यह प्रक्रिया गर्भकाल में तो चलती ही रहती है, परन्तु मनुष्य के पूरे जीवनकाल में निरंतर जीवकोषों का रद्दोबदल होता रहता है ।

जीवकोष के केन्द्र में बैठा डी.एन.ए. पूर्व नियोजित संस्कारों के संकेत देता रहता है । उसी के फलस्वरूप पाचनक्रिया, दिल की धड़कन, विचार एवं संवेदनाएँ होती हैं । डी.एन.ए. को आधुनिक वैज्ञानिकों ने बायोकैमिकल पैरामीटरस एवं बी.एम.आर. (बेसिक मेटाबॉलिक) रेट का संतुलन करने वाला बताया है । इसकी रचना के बारे में वैज्ञानिकों ने बताया है कि सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखने पर वह सर्पिलाकार टेप जैसी सरचना वाला होता है । डी.एन.ए. का अणुभार ३ लाख से अधिक होता है और यदि उसके अणु के टेप शृंखला को खोलकर एक सीध में रखा जाय तो उसकी लम्बाई ५ फुट हो जायेगी । हमारा शरीर चूँकि कोशिकाओं की ईंटों से बना हुआ होता है और एक युवक के शरीर में यह कोशिकाएँ ६०० खरब तक होती हैं इसलिए यदि संपूर्ण शरीर के डी.एन.ए. को खींचकर रस्सी बनायी जाये तो वह इतनी बड़ी होगी, जिससे सारे ब्रह्मांड को नाप लिया जाना संभव हो जायेगा । इस संदर्भ में शिकागो यूनिवर्सिटी के मूर्द्धन्य कोशिका विज्ञानी डा. जार्ज बीडल का कहना है कि इसके अणु की संरचना इतनी लंबी इसलिए होती है कि जीवन काल की अवधि के सभी संकेत इसी के अणु इकाइयो में संग्रहीत हुआ करते हैं । डी.एन.ए. के अणु की रासायनिक संरचना में तीन प्रमुख रासायनिक पदार्थ पाये जाते हैं—सुगर, फास्फेट और नाइट्रोजन के यौगिक । इसकी रचना घुमावदार सीढ़ी जैसी होती है । सीढ़ी के एक ओर सुगर, दूसरी ओर फास्फेट और बीच में नाइट्रोजन यौगिकों की होती है । जीवन के सारे रहस्य इन नाइट्रोजन यौगिकों में छिपे हुए हैं, ऐसा वैज्ञानिकों का अनुमान है जिसके रहस्यमय संकेतों को समझने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए विशद अनुसंधान चल रहे हैं ।

सन् १९०० के आरम्भ में सुप्रसिद्ध अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ. सटन ने गुणसूत्रों (क्रोमोसोम्स) के बारे में विज्ञान जगत को बताया । उनके अनुसार हर जीवकोष में गुणसूत्र व जीन्स जोड़े बनाकर रहते हैं । प्रत्येक जोड़े का एक भाग माँ एवं एक भाग पिता से आता है । शुक्राणु में जोड़े का एक ही भाग विभाजित होकर आता है जो 'Y' (वाय) क्रोमोसोम कहलाता है । डिम्बाणु में जोड़े का दूसरा भाग होता है जिसे 'X' (एक्स) क्रोमोसोम कहते हैं । XX मिलकर मादा व XY मिलकर नर बनाते हैं । मनुष्य में २३ जोड़े क्रोमोसोम-गुणसूत्र होते हैं जिनमें २२ जोड़े (४४ कुल) 'ऑटोसोम्स' कहलाते हैं । ये शरीर रचना से संबंध रखते हैं । एक जोड़ा 'सेक्स क्रोमोसोम' कहलाते हैं । इसी से लिंग (नर या मादा) का निर्धारण होता है । मादा में XX व नर में XY का जोड़ा होता है । इन्हीं क्रोमोसोम्स में सूक्ष्म न्यूक्लियोप्रोटीन के कण होते हैं, जिन्हें 'जीन्स' कहते हैं अर्थात् जिस प्रकार एक डोरे में थोड़ी-थोड़ी दूर पर गाँठें लगा देते हैं । इन गुणसूत्रों में भी गाँठें लगी हुई होती हैं । इन गाँठों को ही 'जीन्स' कहते हैं । ये विशेष स्थानों पर स्थित होते हैं जिन्हें 'लोकस' कहते हैं और इसी आधार पर जीव की सारी विशेषताओं का निर्धारण होता है ।

एक 'जीन' हेरेडिटी अर्थात् आनुवंशिकता की रासायनिक इकाई है जो नर-मादा के संयोग से बनने वाले भ्रूण कलल में पहुँचकर उसकी मूल संरचना एवं विभाजन द्वारा प्रत्येक कोष में पहुँचकर उनकी विभिन्न विशेषताओं का स्वरूप निर्धारित करता है । गुणसूत्रों में ५०-६० प्रतिशत प्रोटीन, २५-४८ प्रतिशत डी.एन.ए. एवं शेष आर.एन.ए. नामक जीवन तत्व होते हैं । सर्वप्रथम डॉ. जेम्स वाटसन एवं डॉ. फ्रांसिस क्रिक नामक वैज्ञानिकों ने डी.एन.ए. की संरचना का मूल आधार बनाया और यह बताया कि विभिन्न गुणों का प्रतिनिधित्व किस प्रकार इसकी सर्पिल संरचना पर दर्शाया जा सकता है । विशेषज्ञों के अनुसार हर जीव डी.एन.ए. के अणु पर एक सुनिश्चित स्थान पर स्थित होता है और आनुवंशिक सूचनाएं आर.एन.ए. के अणु को पहुँचाता है । आर.एन.ए. केन्द्रक से मिलकर जीवकोष से साइटोप्लाज्म में जाता है जिससे संरचना से संबंधित संस्थानों को गुणों के विषय में निर्देश दिया जा सके ।

पैतृक गुणों के निर्वाह के लिए 'जीन्स' को ही उत्तरदायी माना जाता है । एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को गुणों का स्थानांतरण 'आनुवंशिकी' (हेरेडिटी) कहा जाता है । इसका अर्थ है—शारीरिक-शरीर कार्य प्रणाली से संबंधित एवं मानसिक गुणों का संप्रेषण चाहे वे दृश्य हों या अगोचर । इसे पीढ़ी का सतत निर्वाह या जीवनक्रम के विकास का मूल चरण माना जाता है । यद्यपि बच्चे अपने माता-पिता से मिलते-जुलते दीखते है, तथापि उनमें कुछ विभिन्नताएँ होती हैं । इन्हें विज्ञान की भाषा में 'वेरिएन्स' कहा जाता है । एक ही पिता की दो संतानों एक ही जाति के विभिन्न जीवों एवं एक ही वंश परम्परा में अलग-अलग प्रकार की भिन्नतायें पायी जाती हैं । इस विज्ञान को जिसमें इन विभिन्नताओं के कारण उत्पन्न समानताओं एवं असमानताओं के मूल कारणों का विवेचन किया जाता है तथा संतान के व्यवहार, शरीरगत विशेषताओं एवं पिता की पीढ़ी से संतान की पीढ़ी तक उनके पहुँचने की विधि-व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है—'जेनेटिक्स' कहा जाता है । पर्यावरण अर्थात्—वातावरण, अनुभव एवं अभ्यास से होने वाले परिवर्तन जेनेटिक्स से कोई मतलब नहीं रखते ।

'जेनेटिक्स' अथवा जनन विज्ञान जीवविज्ञान की एक शाखा है जिसकी उपशाखा -'यूजेनिक्स' कहलाती है । हिन्दी में इसे 'सुप्रजनन' अथवा 'नस्ल सुधार' कहते हैं । मानवी विकास के नये आधारों में इस विज्ञान का आश्रय लेने की बात अब गंभीरतापूर्वक सोची जा रही है । मनुष्यों के वर्तमान पीढ़ी की अपेक्षा उसके पूर्वज शारीरिक, मानसिक व दीर्घ जीवन की दृष्टि से बढ़े-चढ़े थे । आज के मनुष्यों की इस कमी को पूरा करने तथा 'जीन्स' के घटक डी.एन.ए. के साथ सीधे हस्तक्षेप करके नुकसान पहुँचाने वाले एवं वंश परम्परागत रोग उत्पन्न करने वाले तत्वों को हटाकर जेनेटिक इंजीनियरिंग द्वारा उनके स्थान पर लाभदायक अर्थात् शरीरगत बलिष्ठता, मानसिक कुशाग्रता बढ़ाने वाले जीन्स को बढ़ाने का अनुसंधान प्रयास चल रहा है । विशेषज्ञों के इन प्रयासों को देखकर लगता है कि व्यापक जीवन तत्व की संरचना में वांछित हेरफेर किया जा सकेगा और ऐसे मनुष्य तैयार किये जा सकेंगे जो अपने पूर्वजों से अधिक विकसित, सशक्त, समर्थ, प्रतिभाशाली एवं दीर्घजीवी होंगे । इसी संभावना को देखते हुए डॉ. जेम्स वाटसन एवं डॉ. फ्रांसिस क्रिक ने सन् १९६२ में इस क्षेत्र का सर्वोच्च सम्मान नोबुल पुरस्कार ग्रहण करते हुए कहा था—"सूत्र हाथ में आ गया है सूत्रधार नहीं. संभव है एक दिन वह भी हाथ लग जायेगा और तब आज जो मनुष्य प्रकृति के इशारे पर नाचता है, तब प्रकृति उसके इशारों पर चलने लगे ।"

सुसंतति के सम्बन्ध में वैज्ञानिक प्रयोग

मनुष्य की यह एक स्वाभाविक इच्छा रहती है कि उसकी संतति सुयोग्य और समुन्नत हो । पर इसका उपाय-उपचार प्राय: अच्छी शिक्षा एवं अच्छे वातावरण पर आश्रित समझा जाता रहा है । एक मान्यता यह भी रही है कि माता और पिता का स्वास्थ्य सौन्दर्य ही नहीं कौशल भी वंश-परम्परा पर आधारित है । इसलिए सुयोग्य जोड़ों से उत्पन्न की गई संतति ही समुन्नत हो सकती है ।

पर यह मान्यताएँ उथली ही ठहराई गई हैं, क्योंकि उपर्युक्त प्रयोग-उपचार करने पर भी संतति वैसी न बन पड़ी जैसी कि अभीष्ट थी । विज्ञान ने गहराई में उतरकर उसका आधार आनुवंशिकी में खोजा है और परम्परागत गुण-सूत्रों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को, जीन समुच्चय को इसका कारण माना है । वे कहते हैं कि बाहर से यौवन और सौंदर्य से भरपूर होते हुए भी किन्हीं दम्पत्तियों का जीन्स सम्मिश्रण ऐसा हो सकता है, जिससे संतान पिता-माता की तुलना में बदले हुए स्वभाव की हो ।

जीन्स की परम्परागत परिणति असंदिग्ध है, पर वह शरीर-संरचना तक ही सीमित है । अफ्रीका के नीग्रो अमेरिका के ठण्डे देशों में रहते हुए भी रंग-रचना की दृष्टि से काले व वैसे ही हैं जैसे कि उनके पूर्वज थे । जो गोरे लोग अफ्रीका में बसे हैं अपनी परम्परागत गोरी चमड़ी बनाए हुए हैं । अरबों का लम्बा और कांगो निवासियों का बौना होना भी देश बदल देने पर भी यथावत् बना रहता है । यही बात मंगोलियन जातियों के संबंध में भी है ।

आकृतियों से भी अधिक महत्व प्रकृति एवं बुद्धिमत्ता का है । यह परम्परा कैसे आगे बढ़े? इसके लिए पौधों में कलम लगाने के सिद्धान्त में सफलता मिलने की बात आगे सोची जाने लगी है । गधे और घोड़ी के संयोग से खच्चर जाति का एक नया प्रजनन संभव हुआ है । वैज्ञानिकों का दिमाग इन दिनों इसी दिशा में चल रहा है और वे जीन्स की समर्थता को अद्भुत मानते हुए मनुष्यों में भी कलम प्रणाली (क्रास ब्रीडिंग) का प्रचलन करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं ।

जीन्स में परम्परागत दोष-दुर्गुणों का संशोधन करना भी संभव हुआ है और उनके स्थान पर नई विशिष्टताओं का समावेश करने में भी सफलता मिली है । पेड़-पौधे में यह प्रयोग बहुत पहले ही सफल हो चुका है । विजातियों के साथ गौन संबंध स्थापित करने की प्रक्रिया को दृष्टिगत रख किसी भी नर के शुक्राणु किसी नारी के शरीर में पहुँचाये जाने के कृत्रिम गर्भाधान के प्रयास में भी सफलता मिल रही है । पूर्वकाल में यह मात्र यौन सम्पर्क से ही संभव था । तब निर्धारित पति-पत्नियों में गुण-सूत्र विपन्न हों तो कोई अन्य चारा नहीं था । यद्यपि वैदिक, पौराणिक काल में 'नियोग प्रक्रिया' के अनेक उदाहरण मिलते हैं । अब तो (१) जीन्स का परिमार्जन तथा (२) किसी शरीर में उनका बिना सहवास के भी प्रवेश बन पड़ना संभव हो गया है ।

जे. बी. एस. हैल्डेन का कहना है—"मानव कलम को कुशलता से तैयार कर वर्तमान मानव में समायी सारी खामियों को दूर किया जा सकता है, जो भावी वैज्ञानिक प्रगति में संभावित सभी प्रतिकूलताओं का सामना कर सके, जिसमें अन्तर्ग्रहीय यात्राएँ जैसे दुस्साहसपूर्ण कृत्य भी सम्मिलित है ।

कृत्रिम गर्भाधान द्वारा गर्भाशय के बाहर संतान निर्माण में ब्रिटेन के दो वैज्ञानिकों का नाम आता है । ये हैं—कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के आर.जी. एडवर्ड्स वेब्सटर एवं ऑलम जनरल अस्पताल (यू. के.) के डा. पी.सी. स्टेपोर्ट । उनने वन्ध्या नारियों को छोटे आपरेशनों के बाद संतानोत्पादन में समर्थ ही नहीं बनाया वरन् कृत्रिम गर्भाधान के सहारे समुन्नत स्तर की संतानें भी उत्पन्न करायीं । अमरीका के प्रजनन विज्ञानी डा. हैरिस ने भी इस स्तर के प्रयोग किये और परिणामों को देखते हुए भावी संभावनाओं के संबंध में उत्साहपूर्ण सफलताओं का संकेत दिया । उनका कथन है कि इक्कीसवीं सदी की पीढ़ी सशक्त, समुन्नत, बुद्धिमान हो, इसके लिए कृत्रिम प्रयोग किये जाने अत्यन्त अनिवार्य हैं ।

जैक्सन प्रयोगशाला बारबाहर्ट मैने (यू.एस.ए.) के जीव प्रजनन विभाग के विशेषज्ञ वैज्ञानिक पीटर होप के अनुसार स्तनपायी जीवों का कार्बन-कापी तैयार करना मुश्किल अवश्य है, पर असंभव नहीं ।

फ्रांसीसी जीव वैज्ञानिक जीन रोंसे की मान्यता है कि—मानव कलम का उपयोग समर्थ व गुण सम्पन्न व्यक्तित्वों के निर्माण में किया जा सकता है, साथ ही इस विधि द्वारा व्यक्ति को अमर भी बनाया जा सकता है ।

मिनिसोटा विश्वविद्यालय के जीव कोशिका विशेषज्ञ राबर्ट मैकिवेट ने निम्न जाति के जीवधारियों पर मानवी कलम लगाकर, उन्हें नर पशु या पशु नर स्तर के नये जीवधारियों की संरचना की बात सिद्धान्ततः स्वीकारी है । उनका कहना है कि यह आवश्यक नहीं कि समान जाति के बीच ही प्रजनन प्रक्रिया सीमित रहे । यह कदम मैथुन क्रिया द्वारा तो नहीं पर जीन्स आरोपण के प्रयोगों द्वारा आज न सही कल संभव हो सकता है । फिलाडेल्फिया के रॉबर्ट ब्रिग्स ने भी इस संभावना को अक्षरशः स्वीकार करते हुए इस दिशा में शोध करने पर बल दिया है ।

जर्मनी के तीन मूर्धन्य वंशानुक्रम विज्ञानी डॉ. आखेन बेवर, डॉ. आयोजिन फिशर एवं डा. फ्रिट्स लेंज ने 'ह्यूमन हैरेडिटी' नामक एक पुस्तक लिखी है । इसमें उन्होंने वासना के उभार में चल रहे अंधाधुन्ध विवाह संबंधों के कारण संतान पर होने वाले दुष्प्रभाव को मानवी भविष्य के लिए चिन्ताजनक बताते हुए कहा है कि— "अनियंत्रित विवाह के कारण पीढ़ियों के वर्तमान स्तर में बहुत गिरावट आ रही है" ।

म्यूटेशन विशेषज्ञ व ख्याति प्राप्त विज्ञानी टर्नियर का कथन है—"मानसिक अशक्तता का भी पीढ़ियों पर प्रभाव पड़ता है और इससे पीढ़ियाँ उत्तरोत्तर निम्नतर स्तर की बनती जाती हैं, जबकि मनोबल सम्पन्न एवं साहसी व्यक्ति तेजस्वी एवं गुणवान संतति पैदा करते हैं । इसलिए मानसिक रूप से कमजोर व्यक्तियों का सशक्त पीढ़ी के निर्माण हेतु बन्ध्याकरण कर देना चाहिए । "उनका समर्थन कितने व्यक्ति करेंगे, मालूम नहीं, पर हो सकता है कोई सनकी तानाशाह यही कर गुजरे ।

लेटरबर्ग, कैलिफोर्निया के नोबुल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक डॉ. जोशुला का विचार है कि संसार के मूर्द्धन्य व्यक्तित्वों के शुक्राणु संचय करने के लिए एक ऐसे बैंक की स्थापना की जानी चाहिए जो उपयुक्त स्तर की महिलाओं के माध्यम से समर्थ व गुणसम्पन्न संतानें प्राप्त करने के काम आ सके ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कैलिफोर्निया के वयोवृद्ध वैज्ञानिक रॉबर्ट के. ग्राहम ने भी पिछले दिनों एक अत्यन्त विलक्षण अभियान चलाया था । उन्होंने पाँच नोबुल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों के शुक्राणुओं को इकट्ठा कर 'शुक्राणु बैंक' की स्थापना की थी । इस अद्भुत बैंक के निर्माण का अपना उद्देश्य बताते हुए उन्होंने कहा कि इन शुक्राणुओं द्वारा तीक्ष्ण मस्तिष्क की महिलाओं की अणु कोशा को निषेचित कर असामान्य आई. क्यू. वाले बच्चे पैदा किये जा सकेंगे । अपने इस प्रयास में वे तीन महिलाओं का अभी तक कृत्रिम गर्भाधान भी करा चुके हैं । उन्हें कितनी सफलता मिली, यह समय बताएगा ।

आज-कल वैज्ञानिक 'जीन' के घटक डी.एन.ए. में आमूल-चूल परिवर्तन कर वांछित गुण सम्पन्न व्यक्तित्वों के निर्माण की बात सोच रहे हैं । इसके लिए अनेकानेक विधियाँ सुझायी गई हैं । प्रथम विधि में एक 'जीन' के डी. एन. ए. को दूसरे 'जीन' में प्रत्यारोपित करने की बात सोची गयी । दूसरी विधि में 'वायरस' या 'बैक्टरीयोफॉज' की सहायता से डी.एन.ए. का स्थानान्तरण किये जाने की बात पर बल दिया गया है । तीसरे सुझाव में डी.एन.ए. के 'न्यूकलिओटाइडों' में फेर-बदल का प्रस्ताव रखा गया है । चौथी विधि 'पार्थेनोजेनेसिस' की है । वस्तुतः आज अमेरीका के प्रायः एक सौ से भी अधिक विश्वविद्यालयों एवं निजी शोध संस्थानों में जीन्स परिवर्तन एवं प्रत्यारोपण पर विशद अनुसंधान कार्य चल रहा है । इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी एवं यू.एस. एस. आर. में भी इस दिशा में प्रयोग चल रहे हैं ।

मिनीसोटा विश्वविद्यालय में गत आठ वर्षों से चल रहे अनुसंधान कार्य के बाद वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ३५० जुड़वाँ बच्चों पर किए गए अध्ययन से ऐसा लगता है कि कार्ल मार्क्स एवं सिगमण्ड फ्रायड अपने 'नेचर' विरुद्ध 'नर्चर' सिद्धान्त के प्रतिपादन में गलत थे । मार्क्स कहते थे कि आदमी को पुनः बनाया जा सकता है जबकि ये वैज्ञानिक कहते हैं कि परम्परागत मूल्यों का परिपालन एवं आंतरिक अनुबंध विशुद्धतः जीन्स द्वारा निर्धारित होता है । डा. डेविड लाइकेन कहते हैं कि यह अध्ययन प्रमाणित करता है कि मासलेवल पर विचारणा व मान्यता परिवर्तन के प्रयास आनुवंशिकी स्तर पर होने चाहिए ।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक क्षेत्र में यह ऊहापोह चल रहा है कि विवाह से पूर्व रंग-रूप का, आर्थिक स्थिति का नहीं—गुण-सूत्रों का भी परीक्षण किया जाना चाहिए और जिस प्रकृति की संतान उत्पन्न करनी हो, उसी के अनुरूप विवाह निश्चित होना चाहिए ।

यदि यह न बन पड़े तो गुण-सूत्रों के परिवर्तन एवं उन्हें कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से उपयुक्त खेत में उपयुक्त बीज डालने का प्रयास कार्यान्वित किया जाना चाहिए । यह कार्य बिना दाम्पत्य जीवन की मर्यादा नष्ट किए होता रह सकता है ।

अभी वैज्ञानिक किसी निष्कर्ष पर पहुँचे नहीं हैं । फिर भी यदि उनका यह प्रतिपादन सही सिद्ध हुआ तो नर-नारियों को पुरातन कायाकल्प सिद्धान्तों के अनुरूप दाम्पत्य-जीवन में ही जीन्स परम्परा का परिवर्तन सरल हो जायेगा ।

समुन्नत व्यक्तित्व बनाने के लिए 'जेनेटिक इन्जीनियरिंग' का उपयोग

विश्व का भविष्य मानवी उत्कृष्टता के साथ जुड़ा होने का तथ्य यदि हृदयंगम किया जा सके तो अवांछनीय प्रजनन रोकने के लिए इन दिनों पूरे उत्साह के साथ चल रहे सन्तति नियमन आन्दोलन की तरह सुप्रजनन के लिए ऐसे ही रचनात्मक कदम उठाने की आवश्यकता पड़ेगी ।

यहाँ सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता सुयोग्य नारियों की पड़ेगी । उनका स्तर गया-गुजरा रहा तो फिर मात्र पुरुषों की उत्कृष्टता से प्रयोजन की पूर्ति हो नहीं सकेगी । बीज की भी उपयोगिता आवश्यकता तो है, पर ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि खेत की उर्वरा शक्ति किस स्तर की है । पुरुष प्रधान समाज में अब तक इस सन्दर्भ में श्रेय पुरुष को ही मिलता रहा है जबकि तथ्य ठीक इससे उलटे रहे । मदालसा, सीता, शकुन्तला आदि के विकसित व्यक्तित्व ही ऐतिहासिक सन्तानें दे सके । विनोबा, शिवाजी आदि को उनकी माताओं ने ही गढ़ा था । द्रोपदी, सुभद्रा और कुन्ती के उदाहरण प्रख्यात हैं । उच्चस्तरीय नारी व्यक्तित्व के बिना मात्र नर का पौरुष कोई चमत्कार उत्पन्न नहीं कर सकता ।

एक नर के शरीर से निःसृत शुक्राणुओं से सहस्त्रों नारियाँ गर्भाधान पा सकती हैं । परम्परागत रतिक्रिया की उपेक्षा कर दी जाय और कृत्रिम गर्भाधान के प्रयोग को अपना लिया जा तो एक सुयोग्य नर से हजारों लाखों तक सन्तानें उसी के जीवनकाल में प्राप्त हो सकती हैं । इतना ही नहीं, मरण के उपरान्त भी इस प्रक्रिया के आधार पर कोई सुयोग्य व्यक्ति सन्तानोत्पादन का क्रम जारी रखे रह सकता है ।

इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त नारियाँ न मिलने पर क्या कृत्रिम गर्भाशय में पका कर अभीष्ट सन्तानें उत्पन्न की जा सकती हैं ? इस ऊहापोह में इन दिनों 'टेस्ट ट्यूबों' का प्रयोग उत्साहपूर्वक हो रहा है । इस प्रयास में ब्रिटेन के दो वैज्ञानिकों ने भारी ख्याति अर्जित की है । (१) आर. जी. एडवर्ड्स वेब्सटर (कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय) (२) डा. पी. सी. स्टेपोर्ट (ओलडम जनरल अस्पताल यू. के.) । उन्होंने बन्ध्या नारियों को छोटे आपरेशनों के उपरान्त सन्तानोत्पादन ने समर्थ ही नहीं बनाया, कृत्रिम गर्भाधान के सहारे अधिक समुन्नत स्तर की सन्तानें उत्पन्न कराईं जो उनके विद्यमान जोड़े नहीं कर सकते थे । अमेरिका के प्रजनन विज्ञानी डॉ. हैरिस ने भी इसी स्तर के प्रयोग किए हैं और परिणामों को देखते हुए भावी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में उत्साहपूर्ण सफलताओं का संकेत दिया है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्धि और कौशल को सुविधा-सम्पन्न भर उपयोगी मानते हुए तत्वज्ञों का यह कथन दिन-दिन अधिक प्रखर होता जा रहा है कि आनुवंशिकी के आधार पर मनुष्य की समर्थता बढ़ाने को प्रमुखता दी जाय । क्योंकि चिरस्थायी विशिष्टताएँ विकसित किया जाना उसी आधार पर सम्भव हो सकता है । वे पतित प्रवृत्तियों के लोगों को बदलने में भी सुधार या प्रताड़ना वाले प्रयासों को अपर्याप्त मानते हैं और कहते हैं उनके अभ्यस्त ढाँचे को बदलने में जेनेटिक इंजीनियरिंग का उपयोग होना चाहिए । उनकी नस्ल में हेरफेर किया जाना चाहिए ।

डॉ. क्रुक शैंक ने मानवीय प्रवृत्तियों को पीढ़ियों से चला आ रहा संचय कहा है । वे मानवीय पुरुषार्थ का महत्व तो मानते हैं, पर साथ ही यह भी कहते हैं कि ''वंशानुक्रम से न केवल आकृति एवं प्रकृति का सम्बन्ध है वरन् अच्छी एवं बुरी परम्पराएँ, आदतें एवं प्रवृत्तियाँ भी शृंखलाबद्ध रूप में जुड़ी चलती हैं । व्यक्तित्व को सुधारने के लिए शिक्षण परक उपायों की उपयोगिता मानते हुए भी वे कहते हैं यदि प्रवृत्तियों की दृष्टि से भी मनुष्य को परिष्कृत बनाना हो तो यह कार्य उनके जन्मदाताओं को प्रजनन की बात सोचने से पूर्व अपने निज के सुधार परिष्कार के रूप में आरम्भ करना चाहिए । इतना ही नहीं यह प्रयास पीढ़ी दर पीढ़ी चलें तो ही बात बनेगी ।''

जातियों का बहुत कुछ सम्बन्ध प्रदेशों से भी है । वातावरण में न केवल उस क्षेत्र के प्रचलन वरन् जलवायु में घुसे हुए तत्व भी भावनात्मक प्रवाह उत्पन्न करने और परम्पराओं को दिशा देने की अदृश्य भूमिका प्रस्तुत करते देखे गये हैं ।

विभिन्न क्षेत्रों के वातावरण में ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं जिससे उस परिधि में जन्मने वालों में कुछ अन्यत्र से भिन्न प्रकार की विचित्रताएँ देखी जाती हैं । उदाहरणार्थ—हिमालय के निकट रहने वाले पहाड़ियों में अपराध की प्रवृत्ति कम पाई जाती है । सरहदी पठानों का खूँख्वारपन प्रसिद्ध है ।

जान स्टुअर्ट मिल अपनी पुस्तक 'प्रिन्सिपल्स ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमी' में लिखते हैं कि यूरोपीय देशों के मिल मालिक अपने यहाँ अँग्रेज मजदूर नहीं रखना चाहते हैं क्योंकि वे वेतन पाते ही शराब पीने में इतने मस्त हो जाते हैं कि कई दिनों तक काम पर नहीं आते ।

स्थान-स्थान पर विभिन्न जातियों एवं समुदायों में रहने वाले व्यक्तियों के स्वभाव, मान्यताओं, आकांक्षाओं एवं क्रियाकलापों में भारी अन्तर दिखाई पड़ता है । किसी स्थान के निवासी अधिक बहादुर एवं साहसी होते हैं तो कहीं के अधिक खूँख्वार । किन्हीं-किन्हीं जातियों में चरित्रनिष्ठा विलक्षण दिखाई पड़ती है । कहीं-कहीं के व्यक्ति, अत्यधिक उद्यमी होते हैं जैसे कि जापान, इस्राइल, डेनमार्क । उनकी क्रियाशीलता में वातावरण में घुले तत्वों का भी योगदान है । जूलियन हक्सले ने इस विशेषता को सांस्कृतिक विशेषता नाम दिया है तथा यह स्वीकार किया है कि सांस्कृतिक विशेषता को हर कोई उस वातावरण के सान्निध्य में रहकर प्राप्त कर सकता है ।

नोबुल पुरस्कार विजेता डॉ. जोशुला लेटरबर्ग (कैलीफोर्निया) का मत है कि संसार के वर्तमान महामानवों के शुक्राणु संचय करने के लिए एक ऐसी बैंक की स्थापना की जानी चाहिए जो उपयुक्त स्तर की महिलाओं के माध्यम से उच्चस्तरीय सन्तानें प्राप्त करने के काम आ सके ।

अमेरिका के प्राय: एक सौ से भी अधिक विश्वविद्यालय एवं दर्जनों निजी शोध संस्थान जीन के परिवर्तन एवं प्रत्यारोपण पर शोध कर रहे हैं । इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी एवं रूस ने भी इस विषय में काफी दिलचस्पी दिखाई है ।

वनस्पति जगत एवं मनुष्येत्तर प्राणियों पर जेनेटिक इन्जीनियरिंग के सफल प्रयोगों के उपरान्त अब विज्ञान जगत में चर्चा का महत्वपूर्ण विषय यह है कि क्यों न वे प्रयोग मनुष्य की नस्ल सुधारने के लिए भी किए जायें । इस सन्दर्भ में वे संसार के मूर्धन्य नर-नारियों से एक मार्मिक अपील करने जा रहे हैं कि वे अपनी प्रतिभा को भावी पीढ़ियों के लिए छोड़ जाने की बात सोचें और व्यक्तिगत असुविधा को सहन करते हुए भी प्रतिभा सम्पन्न पीढ़ियों के सृजन में सक्रिय योगदान दें ।

यद्यपि इस प्रसंग में दाम्पत्य जीवन की सघनता पर आँच आने और नैतिक मूल्यों तथा पारिवारिक उत्तरदायित्वों में व्यतिक्रम होने जैसे खतरे सोचे जाते हैं । फिर भी विज्ञजनों का कथन है कि बड़े लाभ के लिए छोटे नुकसान उठा लेने में इतना हर्ज नहीं कि उतने से अपडर के लिए एक महान सम्भावना का परित्याग किया जा सके ।

महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में 'नियोग' प्रथा की परम्परा को शास्त्रसम्मत बताया है और उसका समर्थन किया है । नियोग का अर्थ है— आवश्यकतानुसार विवाहित पति-पत्नी का अन्य किसी से सन्तानोत्पादन कर लेना । विशेष परिस्थितियों में इसे उन्होंने अनुचित नहीं माना है । साथ ही समर्थन में कई शास्त्र वचन तथा घटना उद्धरण भी दिये हैं ।

हनुमान पुत्र मकरध्वज, भीमपुत्र घटोत्कच, कुन्ती पुत्र कर्ण की कथा-गाथा प्रख्यात है । व्यासजी ने अपनी दो भावजों से नियोग करके पाण्डु, धृतराष्ट्र और उनकी दासी से नियोगकर विदुर को जन्म दिया था । पाराशर द्वारा मत्स्यगंधा के नियोग का भी पुराणों में उल्लेख है । ईसामसीह का जन्म कुमारी माता के पेट से हुआ था ।

समाजशास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य प्रो. डेलगाडो उच्चस्तरीय नर-नारियों की समुन्नत स्तर की सन्तानें पैदा करने की आवश्यकता बताते हैं और इसके लिए वीर्य बैंक की स्थापना तथा मानवी कलम लगाने का समर्थन करते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरीके क्या अपनाये जायें यह विवादास्पद है । तो भी इस निर्णय पर पहुँचने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि मानवी प्रगति के लिए व्यक्तित्वों के मूलभूत आधार वंशानुक्रम को भी ध्यान में रखा जाय । आशा की जानी चाहिए कि आज नहीं तो कल कोई ऐसा मार्ग निकल आवेगा जिसमें दाम्पत्य-जीवन की सुविधा तथा पवित्रता बनाये रखकर जीन्स स्तर पर मनुष्य को समुन्नत बना सकना सम्भव हो सके ।

मानवी नस्ल सुधारने में 'जेनेटिक्स' का प्रयोग

विकास साधनों की उपयोगिता, आवश्यकता से कोई इन्कार नहीं करता, वे अपना काम करते हैं और करना चाहिए । इतने पर भी यह असमंजस अपने स्थान पर यथावत् ही बना रहता है कि मनुष्य की अपनी निजी विशेषता एक सुनिश्चित तथ्य जैसी बनकर भारी चट्टान की तरह अड़ी बैठी रहती है और बहुत हिलाने-डुलाने, उठाने-हटाने का प्रयत्न करने पर भी उत्साहवर्धक परिणाम उपलब्ध करने के मार्ग में बाधा ही बनी बैठी रहती है । देखा गया है कि शारीरिक और मानसिक विकास में मनुष्य की निजी विशेषता का असाधारण महत्व है । सुधार प्रयत्नों से उस पर सीमित प्रभाव ही होता है और परिवर्तन भी यत्किञ्चित ही हो पाता है । प्रान्त, क्षेत्र, वातावरण आदि का प्रभाव मनुष्य की शारीरिक स्थिति पर उतना नहीं पड़ता जितना कि वंश परम्परा का । पख्तूनिस्तान के पठान बंगाल में बस जाने पर भी प्राय: वैसी ही पीढ़ियाँ बनाये रहते हैं और दुबले बंगाली पख्तूनिस्तान में बस जाने पर भी अपने वंशजों के काय-कलेवर में कोई विशेष परिवर्तन कर नहीं पाते ।

यही बात बौद्धिक संरचना के सम्बन्ध में भी है मारवाड़ी, बंगाली, द्रविण, केरली, ब्राह्मण, कायस्थ, आदिवासी जैसे वंशजों के चिन्तन, स्वभाव, कौशल, स्वर, चातुर्य आदि पर एक विशेष आवरण चढ़ा पाया जाता है । यों सुधार प्रयत्नों का कुछ लाभ तो होता ही है, पर जन्मजात विशेषता में उतना परिवर्तन नहीं होता जितना कि होना चाहिए ।

एक ही पेड़ पर रहने वाले, एक ही वातावरण में पलने वाले, एक जैसा आहार करने वाले पक्षियों की आकृति और प्रकृति का अन्तर स्पष्ट देखा जा सकता है । पशुओं, पक्षियों से लेकर कृमि-कीटकों तक के अगणित प्राणी, पास, पड़ौस में बसते और एक ही प्रकार के साधनों पर निर्भर रहते हुए भी अपनी मौलिक विशेषताएँ बनाए रहते हैं और उसे पीढ़ी-दर पीढ़ी चलाते रहते हैं । इसे वंश परम्परा कहते है ।

वंश परम्परा की चर्चा यहाँ इसलिए की जा रही है कि अगले दिनों मानवीय विकास के लिए किए जाने वाले प्रबल प्रयत्नों में यही कठिनाई सबसे अधिक आड़े आयेगी कि परम्परागत आकृति एवं प्रकृति में हेर-फेर कैसे किया जाय ? धीमी गति से यत्किंचित सुधार होते चलने की प्रतीक्षा करते रहना अब इस प्रगति युग में सम्भव नहीं । न इतना धैर्य है और न अवकाश, अवसर कि वंश परम्परा के साथ जुड़ी हुई विशेषताओं में क्रमिक परिवर्तन की आशा लगाये बैठा रहा जाय और सुधार प्रयत्नों से होने वाले अत्यन्त धीमे परिवर्तन पर सन्तोष किया जाय ?

मानवीय विकास के नये आधारों में वंशानुक्रम विज्ञान का आश्रय लेने की बात गम्भीरतापूर्वक सोची जा रही है । यह विज्ञान अभी नया है और सर्वसाधारण को उसकी उतनी जानकारी नहीं है जितनी कि होनी चाहिए । अतएव आवश्यक समझा गया कि इस सन्दर्भ में प्राथमिक जानकारी और पीढ़ी विकास के साथ उसके समावेश का आधार संक्षेप में समझा दिया जाय । इन पृष्ठों पर उसी का प्रयत्न किया जा रहा है । मानवी नस्ल को सुधारने में दिलचस्पी रखने वाले प्रत्येक विज्ञजन को इस सन्दर्भ में कामचलाऊ जानकारी तो नोट करनी ही चाहिए ।

समझा जाना चाहिए कि मनुष्य के अन्दर एक प्रकार से दो विशिष्ट आनुवंशिक व्यवस्थाएँ हैं । एक तो वह जिसके माध्यम से जीन्स तथा गुणसूत्र द्वारा पिता से सन्तान को जैविक सूचनाएँ स्थानान्तरित होती हैं । दूसरी व्यवस्था वह है जिसके माध्यम से सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता है । उदाहरणार्थ, बोलने वाले से सुनने वाले को, पाठक को अध्ययन से, दर्शक को दृश्यावलोकन से । यही हमारी सांस्कृतिक धरोहर बनाता है ।

'यूजेनिक्स' उस विज्ञान का नाम है जिसके द्वारा जीन्स को सुधारने एवं वंश परम्परा को परिष्कृत करने की बात सोची जाती है । फ्रांसिस गाल्टन ने इस शती के प्रारम्भ में इस शब्द से वैज्ञानिक समुदाय को परिचित कराया । वैसे तो इससे भी पहले 'प्लूटो' ने 'द रिपब्लिक' नामक अपनी रचना में इस प्रकार की सम्भावनाओं का वर्णन किया है । जिसमें (सलेक्टिव ब्रीडिंग) सही चयन से उत्तम नस्ल का निर्माण पक्ष उलटकर आया । उसके अनुसार केवल शारीरिक रूप से समर्थ एवं मानसिक दृष्टि से बुद्धिमत्ता युक्त जोड़ों को ही विवाह की अनुमति दी जानी चाहिए ताकि उनसे उत्पन्न सन्तान उत्तम कोटि की हो । जो इस दृष्टि से हीन या निम्नकोटि के पाये जायें उन्हें राज्य द्वारा विवाह की अनुमति ही न मिलनी चाहिए या सन्तानों को पैदा होने से पूर्व ही नष्ट कर देना चाहिए ताकि समाज पर अनावश्यक बोझ न बढ़े । यह तो प्लूटो का अतिवादी चिन्तन था, जो उस समय साकार न हो सका । पर गाल्टन ने इस तथ्य को वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में रखकर बताया कि डार्विन की 'प्राकृतिक चयन' (नेचुरल सलेक्शन) की तकनीक के बजाय समाज को बुद्धिमान प्राणी देने के लिए 'सोशल सलेक्शन' की विधि अपनाई जानी चाहिए ।

गाल्टन एवं नीत्शे के प्रतिपादनों से समर्थन पाकर जर्मनों ने 'यूजेनिक्स' का हवाला देते हुए स्वयं को 'मास्टर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रेस' घोषित कर दिया । एक जर्मन आर्यन एवं एक अनार्य के बीच विवाहों पर बन्धन लगा दिया गया । हिटलर के अनुसार लाखों व्यक्ति मात्र उसकी इस मान्यता के कारण मार दिए गए कि वे अनार्य थे, हीन नस्ल के थे एवं उनके रहने से वंश-परम्परा के विकृत होने की सम्भावना थी ।

अमेरिका में उलटा देखा गया है । इस राष्ट्र में विभिन्न देशों की, विभिन्न वंश परम्पराओं में उत्पन्न व्यक्ति ही इसके नागरिक हैं । ये सभी बाहर से आकर गत चार शताब्दियों में यहाँ बसे हैं । मूलवासी कहने को मात्र कुछ हजार 'रैड इण्डियन'' हैं । यहाँ यह पाया गया है कि बुद्धिमत्ता की दृष्टि से काले व गोरे एक से ही हैं बल्कि ऊँचे पदों पर अश्वेत नस्ल के व्यक्ति अधिक सक्षम पाये गये हैं ।

विचारकों का कहना है कि नस्ल के आधार पर विशेषताओं का निर्धारण विज्ञानसम्मत नहीं है । बुद्धि की कुशाग्रता व शरीर की बलिष्ठता किसी एक वंश की बपौती नहीं है । हाँ, यह बात जरूर है कि पौष्टिक आहार की उपलब्धि, सांस्कृतिक विकास के अवसर एवं समाज की सन्तुलित व्यवस्था से ऊँचा उठने की सम्भावनाएँ किसी एक वंश को अधिक आसानी से मिल जाने से वह अधिक श्रेष्ठ हो गयी हो ।

आनुवंशिकता अपनी जगह है एवं पर्यावरण अपनी जगह । अलग-अलग जीन्स वाले व्यक्ति उपयुक्त अनुकूल वातावरण पाकर बुद्धि की दृष्टि से सुनिश्चित विकास दशति हैं । समाज और अधिक रचनात्मक व्यक्तित्व तैयार कर सकता है, यदि इसके प्रत्येक घटक को शैक्षणिक एवं आर्थिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक विकास का परिपूर्ण अवसर दिया जाय । ऐसे विकास के अभाव में कई ऐसे व्यक्ति उभर नहीं पाते जो सम्भवत: न्यूटन, गल्टेयर, नेपोलियन, आइन्स्टीन की कोटि के जीन्स वाले थे । इस कारण दोनों ही परस्पर अन्योन्याश्रित हैं ।

'यूजेनिक्स' शब्द अपने आप में पवित्र है, यदि इसमें से वंशवाद, नस्लवाद जैसे पूर्वाग्रहयुक्त दुर्गुण निकाल दिये जायें । नेगेटिव यूजेनिक्स का अर्थ है नुकसान पहुँचाने वाले जीन्स को हटाने का प्रयास कर सन्तति को शुद्ध परिपूर्ण बनाना । पॉजिटिव यूजेनिक्स का अर्थ है लाभदायक (शरीरगत बलिष्ठता, मानसिक कुशाग्रता बढ़ाने वाले) जीन्स को सन्तति में पहुँचाने का प्रयास करना ।

'सलेक्टिव मैटिंग' अर्थात् उचित नस्ल के चुनिन्दा समूहों में परस्पर संसर्ग के लिए जो एक सुझाव सामने आया था, वह था 'वीर्य बैंक' के रूप में, जिसके प्रणेता थे—हेनरी मुलर । प्रतिभावान, प्रख्यात एवं हर दृष्टि से समग्र कुछ व्यक्तियों के वीर्य को 'डीप फ्रीज' में रखकर उसका समय आने पर विरोधी लिंग का उचित पात्र मिलने पर उपयोग हो ताकि इनके सम्पर्क से एक सर्वश्रेष्ठ सन्तति का जन्म हो, यही दृष्टि इसके पीछे थी । इसे वैज्ञानिकों ने नाम दिया 'यूटेलेजेनेसिस' । कृत्रिम गर्भाधान का इसे पर्यायवाची कह सकते हैं । 'महामानव' निर्माण हेतु तो नहीं, परन्तु नपुंसक व्यक्तियों को पिता बनाने के लिए अवश्य अमेरिका में इसका प्रतिवर्ष १० से १५ हजार बार प्रयोग होता है एवं करीब ९० प्रतिशत में सन्तति का जन्म इस विधि से सफलता पूर्वक हो जाता है ।

दूसरी विधि जो सुझायी गयी, वह है जीन्स के घटक डी.एन.ए. के साथ सीधा हस्तक्षेप । इसे 'जेनेटिक सर्जरी' नाम दिया गया । यूजेनिक्स की यह विधि लगती तो बड़ी अतिशयोक्तिपूर्ण है पर जिस द्रुतगति से आनुवंशिकविदों के प्रयास इस दिशा में चल पड़े हैं, उससे लगता है डी.एन.ए. की संरचना में वांछित रूपान्तरण करने में वैज्ञानिकों को सफलता अवश्य मिलेगी । जेनेटिक सर्जरी को कई प्रकार से प्रयुक्त किया जा रहा है ।

प्रथम विधि में एक जीन के डी.एन.ए. को पृथक कर उसे जैविक अतिक्रमण (सेल्युलर इन्सर्शन) की तकनीक द्वारा प्रयोगशाला में दूसरे जीन के डी. एन. ए. से सम्मिलित किया जाता है । १० लाख में एक जीवकोष इस विधि से पूरी तरह रूपान्तरित किया जा सकना सम्भव है । दिक्कत यह है जिन विशेषताओं को हम नये जीवकोष में चाहते हैं, उनका प्रतिनिधित्व करने वाले छोटे-छोटे घटक 'न्यूक्लियोटाइड' को पहले से कैसे पहचाना जाय ताकि चुनाव शत प्रतिशत कारगर हो ?

दूसरी विधि में 'वायरस' के कणों की मदद से डी. एन. ए. का स्थानान्तरण किया जा सकता है । ज्ञातव्य है कि वायरस में एक रहस्यपूर्ण क्षमता यह होती है कि वे जीवकोषों में प्रवेश हेतु किसी रसायन अथवा वैद्युतिक व्यवस्था को सहयोग नहीं लेने देते । उसे भी असम्भव सा ही माना जा रहा है ।

तीसरी विधि में रसायनों की सहायता से डी. एन. ए. के घटक न्यूक्लियोटाइडों में से कुछ की संरचना को आमूल-चूल बदलने की बात सोची जाती है ।

चौथी विधि जिसे पार्थिनोजेनेसिस कहा जाता है और भी विलक्षणता युक्त है । इसमें वांछित गुण सम्प्रेषित करने वाली महिलाओं की जननग्रन्थियों (आवेरी) से डिप्लाइड एग्स (अण्डे) अलग कर लेने की बात सोची जाती है, जिन्हें अभी निषेचित न किया गया हो । माता से मिली इस जेनेटिक संरचना को आनुवंशिक विशेषज्ञ प्रयोगशाला में वांछित मोड़ देकर उन गुणों की अभिवृद्धि कर सकते हैं जो सम्भवत: निषेचन के बाद उभर कर न आ पाते ।

'जीन्स की कलम' के समर्थक वैज्ञानिकों की प्रतिपादित पाँचवीं विधि में शारीरिक ऊतकों को प्रयोगशाला में भ्रूणवत् (एम्ब्रियोनिक) बना लिया जाता है । ऐसे 'क्लोन्स' या कलम उन गुणों से भरे-पूरे होते हैं जो उस व्यक्ति के क्रोमोसोम्स में परिपूर्ण मात्रा में थे, सम्भवत: निषेचन से उनमें परिवर्तन आ जाता । ऐसी कलम को उचित वातावरण व पोषण देकर कई कार्बन कापी उस व्यक्ति की तैयार की जा सकती है जिसके कि ऊतकों से कलम को तैयार किया गया था ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन क्षेत्र में आनुवंशिक रोगों को दूर करने में लगे वैज्ञानिकों को जिस सीमा तक सफलता मिली है उससे कहा जा सकता है कि वह दिन दूर नहीं, जब किसी भी भावी सन्तति के डी.एन.ए. में पूर्व निर्धारित क्रमानुसार वांछित परिवर्तन कर उसकी संरचना को मोड़ दिया जा सकता है ।

प्रतिभाओं की खेती रक्त-बीज तैयार करेगी

हमारी इस पृथ्वी पर मनुष्य जाति का अस्तित्व करीब दस लाख वर्षों से है । वैज्ञानिकों की मान्यता है कि करीब एक लाख वर्षों की कालावधि में मनुष्य के शारीरिक ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । इन दिनों जीववैज्ञानिक कुछ ऐसे प्रयोगों में निरत हैं जिनसे न केवल मनुष्य का शारीरिक ढाँचा अब की अपेक्षा काफी कुछ बदला होगा, वरन् वह अपने पूर्वजों से अधिक मेधावी, प्रतिभाशाली, बुद्धिमान और क्षमता सम्पन्न होगा । वैज्ञानिक इसके लिए मनुष्यों की नस्ल में सुधार करने के प्रयास कर रहे हैं ।

नस्ल में सुधार लाने का प्रयास अब तक पेड़-पौधों और पशुओं तक ही सीमित था किन्तु अब ये प्रयोग मनुष्यों के लिए भी किये जाने लगे हैं । सर्वविदित है कि इस तरह के प्रयासों की कल्पना सर्वप्रथम हिटलर ने की थी । उसकी मान्यता थी कि जर्मन नस्ल शुद्ध आर्य नस्ल है और वह संसार की सर्वश्रेष्ठ नस्ल है । इसी आधार पर हिटलर ने जर्मनवासियों के मन में यह धारणा बिठाई थी कि जर्मनी को समूचे संसार पर शासन करने का अधिकार है । इसके साथ ही उसने जर्मन जाति को शुद्ध बनाये रखने की आवश्यकता भी बताई थी और इसके लिए प्रयास भी किये थे । इन प्रयासों में यहूदियों को पूरी तरह नष्ट कर देने, कमजोर जर्मनों को बच्चे पैदा न करने देने और स्त्रियों को इस बात के लिए बाध्य करने के प्रयास किये थे कि वे सन्तानोत्पादन के लिए अपने पतियों पर ही निर्भर न करें वरन् बलिष्ठ और मेधावी व्यक्तियों के बच्चों की माँ बनें ।

हिटलर के चिकित्सक डा. जोसेफ मेनजेले ने तो यहाँ तक प्रयास किया था कि जर्मनी का बच्चा-बच्चा हिटलर की प्रतिकृति बने । उसकी कल्पना थी की हिटलर के शरीर से कोशिकाएँ लेकर असंख्य हिटलर पैदा कर लिए जाएँ । किन्तु दुर्भाग्य से इसीलिए हिटलर का पतन हो गया और मेनजेले का यह स्वप्न साकार न हो सका ।

हिटलर के पतन के बाद मेनजेल भाग गया और कहा जाता है कि वह अर्जेण्टाइना, पैराग्वे आदि स्थानों पर छिपता रहा । इटालेविन ने अपनी पुस्तक 'ब्यायज फ्राम ब्राजील' में लिखा है कि मेनजेले जर्मनी से भागते समय हिटलर के रक्त और उसकी चमड़ी के नमूने साथ लेता गया था । उसने पैराग्वे की अपनी प्रयोगशाला में सँजोए गये स्वप्न को साकार करने के प्रयास आरम्भ कर दिए । उसे अपने प्रयोगों में सफलता भी मिली । कहा जाता है कि मेनजेले ने हिटलर की कोशिकाओं से रेडइन्डियन जाति की ९४ औरतों के गर्भ में भ्रूण स्थापित किये, जिनसे इतने ही बच्चे पैदा हुए । ये बच्चे हू-बहू हिटलर की प्रतिलिपि बताये जाते हैं ।

हो सकता है यह बात कल्पना पर आधारित हो किन्तु वैज्ञानिकों ने सिद्धान्तत: इस बात को स्वीकार कर लिया है कि कोशिकाओं के द्वारा भी नयी सन्तानों को जन्म दिया जा सकता है । पशुओं पर तो इस तरह के सफल प्रयोग भी किये जाने लगे हैं ।

कोशिकाओं द्वारा नये बच्चों को जन्म देने की बात अभी भविष्य के गर्भ में है परन्तु अमेरिका के एक वैज्ञानिक राबर्ट ग्राहम ने शुक्राणु बैंक की स्थापना की है और फरवरी ८० में अपने एक प्रयोग की सूचना दी है । इस प्रयोग को संसार भर में गम्भीरता से लिया गया है । इस प्रयोग में अमेरिका की तीन महिलाओं में नोबुल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों से प्राप्त किये गए शुक्राणुओं से गर्भ स्थापित किया है । इन महिलाओं ने राबर्ट ग्राहम के 'सीमेन बैंक' से सन्तानोत्पादन के लिए सहायता ली । जिन वैज्ञानिकों से इस बैंक के लिए शुक्राणु प्राप्त किये गए उनमें अधिकांश अपने क्षेत्र के प्रतिष्ठित और मेधावी व्यक्ति हैं । एक वैज्ञानिक, विलियम शोकले को सन् १९५६ में भौतिकी के क्षेत्र में नोबुल पुरस्कार भी मिल चुका है ।

ऐसी बात नहीं है कि राबर्ट ग्राहम ने इस तरह के प्रयोग की पहली-पहली कल्पना की हो । इस सम्बन्ध में प्रयास तो वर्षों से किये जा रहे थे । सर फ्रांसिस गाल्टन ने इस दिशा में ठोस कार्य किया था और काफी कुछ सफलता भी प्राप्त की थी । उस सफलता से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर विज्ञान की एक नई ही शाखा अस्तित्व में आई, जिसे 'यूजेनिक्स' (सुप्रजनन विज्ञान) कहा गया ।

सर फ्रांसिस गाल्टन के बाद इस दिशा में कई वैज्ञानिकों ने प्रतिभाशाली व्यक्तियों के शुक्राणुओं से उनके समान ही प्रतिभासम्पन्न सन्तानों को जन्म देने का कार्यक्रम आगे बढ़ाया । हरमन भुल्लर ने इस विचार से इन प्रयोगों को आगे बढ़ाया कि लोग प्रतिभाशाली और मेधावी सन्तानों को जन्म दे सकें । यह तो सर्वविदित है कि मनुष्य का जन्म रज और वीर्य से होता है और अब वैज्ञानिक अनुसंधानों तथा प्रयोगों द्वारा सैकड़ों वर्षों तक वीर्य को जमाकर सुरक्षित रखने की विधि खोज निकाली गई है ।

इस तरह के प्रयोगों की, जिनसे स्त्रियाँ अपनी पसन्द की क्षमताओं वाली सन्तानों को जन्म दे सकेंगी । इन दिनों काफी चर्चा है । इन प्रयोगों के सफल होने पर, जो आज नहीं कल निश्चित रूप से सफल होगे कई प्रश्न चिह्न उभर रहे हैं ।

इन प्रयोगों को लेकर किये जाने वाले प्रश्नों और उत्पन्न होने वाले विवादों के सन्दर्भ में जानने से पूर्व यह जान लेना उचित होगा कि शुक्राणु बैंकों द्वारा किस प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मनचाहे व्यक्तित्व वाले बच्चों या मनुष्यों को उत्पन्न करने की बात सोची जा रही है । मनुष्य शरीर की एक रहस्यमय इकाई है—'जीन' । यह इकाई मनुष्य शरीर की ऐसी विशिष्ट आणविक संरचना है जिनमें समस्त जीव जगत की आनुवंशिक विशेषताएँ बीज रूप से विद्यमान हैं । सीधे शब्दों में इन्हें जैविक बीज कहा जा सकता है । इन्हीं जीनों के माध्यम से सन्तानों में माता-पिता के गुण और उनकी दैहिक विशेषताएँ सन्तानों में अवतरित होती हैं । इन जैव इकाइयों के सम्बन्ध में काफी कुछ जान लिया गया है और यह भी सम्भव हो गया है कि उनमें आवश्यक परिवर्तन किये जा सकें । अर्थात् वैज्ञानिक उपायों द्वारा जीन में परिवर्तन कर आनुवंशिक गुणों में भी परिवर्तन किया जा सकता है ।

जीन क्या है ? वैज्ञानिकों के अनुसार जीन्स डी. एन. ए. नामक एक अम्ल के, जो शरीर में रहता है, विशिष्ट घटक होते हैं । डी.एन.ए. एक विशेष प्रकार के अणु हैं जो कोशिका के 'क्रोमोसोम्स' के घटक होते हैं । प्रत्येक जीन का सम्बन्ध एक विशेष प्रकार के 'एन्जाइम प्रोटीन' से होता है । प्राणियों के आनुवंशिक विकास में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है । जब किसी कोशिका का विभाजन होता है तो उस विभाजन की प्रक्रिया में दोहरे अणु पैदा हो जाते हैं और इनमें से प्रत्येक आनुवंशिकता के सूत्रबद्ध गुणों की प्रतिकृति को दोहराता है । यदि किसी जीव में कोई नई आनुवंशिक विशेषता उत्पन्न करनी हो तो उस जीव के डी.एन.ए. अणुओं में नए गुण वाला जीन रोपित करना आवश्यक हो जाता है ।

संक्षेप में इच्छित और मनचाहे स्वभाव तथा गुणों वाली सन्तान को जन्म देने का यही आधार है । इस दिशा में जो प्रयोग अनुसंधान हो रहे हैं उन्हें आनुवंशिक इन्जीनियरी कहा जाता है । जीवविज्ञान की यह शाखा अर्थात् आनुवंशिकी इन्जीनियरी विज्ञान अब इस स्थिति पर पहुँच गया है कि उसके परिणामों को परमाणु ऊर्जा से भी अधिक सशक्त साधन समझा जा रहा है ।

इस विज्ञान के द्वारा यहाँ तक उपाय किये जा रहे हैं कि एकबारगी मनुष्य जाति यदि नष्ट भी हो जाए तो उसका पुनर्जन्म सम्भव हो सकेगा । भौतिकी के वैज्ञानिक राल्फ लैप दुनिया के तमाम वैज्ञानिकों को यह सलाह देते हैं कि अभी से ऐसा प्रबन्ध कर लेना चाहिए कि समृद्ध सीमेन बैंक स्थापित किये जाएँ । इसके कारण बताते हुए राल्फ लैप तर्क देते हैं कि इन दिनों दुनिया जिस तेजी से परमाणविक शस्त्रास्त्रों की होड़ में लगी हुई है उससे यह निश्चित है परमाणविक युद्ध होकर रहेगा । निश्चित ही इस तरह के युद्ध से भारी विनाश होगा और रेडियोधर्मी धूल के प्रभाव के कारण युद्ध के बाद भी काफी लम्बे समय तक पृथ्वी पर मानव जीवन दूभर बना रहेगा । ऐसी स्थिति में कृत्रिम गर्भाधान की पूरी जानकारी सुरक्षित कर लेना अच्छा होगा ताकि उसके आधार पर आने वाले समय में मनुष्य की नस्ल धरती पर फिर से उत्पन्न हो सकेगी ।

आनुवंशिक इंजीनियरी इससे भी आगे की बात है । कहा जा चुका है कि डी.एन.ए. अपने में सम्पूर्ण जैविक विशेषताएँ समाहित किये हुए है और प्रत्येक कोशिका अपने में सम्पूर्ण जीव इकाई के सृजन की क्षमताओं से सम्पन्न होती है । इसे जेनेटिक कोड या प्रजनन संहिता कहते हैं । कोशिकाओं पर ऐसे प्रयोग किये जा चुके हैं कि किसी भी स्त्री या पुरुष के शरीर के अंग से निकाली गई कोशिका के नाभिकीय द्रव को यदि स्त्री के गर्भाशय में स्थापित किया जाए तो वह अपने ही समान अन्य कोशिकाओं को जन्म देती चली जाएगी और उनसे शरीर के विभिन्न अंग अवयवों का निर्माण होने लगेगा, अर्थात् पूरा भ्रूण विकसित होता चलेगा ।

यह सारे प्रयोग मनुष्य को एक जीवित यन्त्र मानकर ही किये जाते हैं । इस तरह के प्रयोगों की सफलताओं के सम्बन्ध में बढ़-चढ़कर दावे करने के बाद भी वैज्ञानिकों के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है कि चेतना की दृष्टि से इन नई किस्म की सन्तानों का क्या स्तर होगा ? जैविक प्रयोगों द्वारा चाहे जैसा मनुष्य तैयार कर लिया जाय, पर उसकी क्या नैतिकता होगी ? चारित्रिक स्तर और आस्थाएँ, मान्यताएँ क्या होगी? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक मौन ही हैं । शारीरिक बल, मस्तिष्कीय तीक्ष्णता और अन्य विशेषताएँ जो शरीर से सम्बन्धित हैं, उनकी अनुकृति तो तैयार की जा सकती है, परन्तु चेतना, जिसे आत्मतत्व भी कहा जा सकता है वह तो सभी स्थूल उपकरणों से परे है । उसे भी क्या विकसित कर पाना सम्भव होगा ?

विश्व के मूर्धन्य विचारक और समाजशास्त्री इस तरह के अनेकानेक सवाल उठा रहे हैं । कई लोग इसे परमाणु सङ्कट से भी भयावह बता रहे हैं । उनका कहना है कि जब समस्त वैज्ञानिक संसाधनों पर समाज पर हावी चन्द सत्ताधीश आसानी से कब्जा कर सकते हैं तो वे पूरी मनुष्य जाति को अपने ही ढाँचे में ढालने का प्रयत्न करेंगे । ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हिटलर ने अपनी-अपनी असंख्यों प्रतिकृतियाँ बनाने का प्रयास किया था । हिटलर को तो इस प्रयास में सफलता नहीं मिली, सफलता तो उसे अणुबमों के निर्माण में भी नहीं मिली । परन्तु बाद के युग में ये दोनों सम्भावनाएँ मूर्तमान होती प्रतीत हो रही हैं ।

यदि वैज्ञानिकों ने इस दिशा में सफलता प्राप्त कर ली तो इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वतन्त्र व्यक्तित्वों का उद्भव लगभग असम्भव हो जायेगा । एक तो मनुष्य की चेतना का स्तर यन्त्र मानव से अधिक नहीं होगा, दूसरे उसमें किन्हीं अन्य औरों की विशेषताएँ तथा क्षमताएँ ही रहेंगी । अस्तु, उनके दुरुपयोग की ही सम्भावना अधिक व्यक्त की जा रही है । एक प्रकार से इन प्रयोगों की सफलता प्रकृति के कार्य में अवांछनीय हस्तक्षेप की ही परिचायक कही जायेंगी और मनुष्य अपने सम्बन्ध में किसी प्रकार का निर्णय लेने के विवेक से रहित, साँचे में ढले जीवित खिलौने के समान हलचलें करने वाला पुतला मात्र बनकर रह जाएगा । या कहना चाहिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि प्रयोग प्रकृति के पुत्रों का मूलोच्छेद कर मनुष्य निर्मित हाड़माँस के पुतलों के निर्माण का द्वार खोल चुके हैं ।

न विकासवाद, न आनुवंशिकतावाद केवल अपवाद

साँचे और छापे की तरह बनने और ढलकर व्यक्त रूप धारण करने के प्राकृतिक नियम पर संसार बना है । इसी नियम पर उसमें अन्यान्य परिवर्तन होते रहते हैं । भौतिक विज्ञान की प्रगति इस तरह के सिद्धान्तों की शोध के फलस्वरूप ही होती है । यदि सब कुछ छापेखाने की भाँति ही छप और बन रहा होता तब तो यह माना जा सकता था कि संसार में प्रकृति या पदार्थ की ही सत्ता सर्वोपरि सत्ता है पर जब ऐसी घटनाएँ भी घटित होती देखने में आती हैं जो साँचे के सिद्धान्त से भिन्न होती हैं तथा उनमें किसी न किसी प्रकार की मस्तिष्कीय व्यवस्था होती है तो यही मानना पड़ता है कि संसार में पदार्थ ही विचार की भी एक सार्वभौमिक सत्ता है जो अपनी इच्छा से विलक्षण कौतुक उपस्थित करती रहती है । इन विलक्षणताओं का कोई भौतिक आधार नहीं होता इसलिये उन्हें आध्यात्मिक ही कहना उपयुक्त लगता है । निम्न पंक्तियों में अनेक ऐसे ही उदाहरण प्रस्तुत हैं जिनका कोई भौतिक आधार नहीं वे मात्र किसी इच्छा शक्ति के ही चमत्कार प्रतीत होते हैं जो स्वतन्त्र बुद्धि के रूप में विराट विश्व में क्रियाशील होती है—उसे ही परमात्मा कह सकते हैं ।

इटली के एक ४३ वर्षीय गिवनी गैलेन्ट की आँखें उल्लू की आँखों जैसी थीं । सन् १९२८ में उसने अपने माता-पिता से मिलने हरमिन पा जाने के लिये वीसा के लिये आवेदन किया । उसे अस्वीकार करते हुये पब्लिक हैल्थ इन्स्पेक्टर ने कहा—आपको दिन के अन्धेपन का रोग है इसलिए यात्रा की अनुमति नहीं दी जा सकती । सचमुच ही वह केवल रात में ही देख सकता था दिन में उसे कुछ दिखाई नहीं देता था । इस प्रकार उसने यह अमान्य कर दिया कि देखने के लिये प्रकाश आवश्यक होता है उसने एक प्रकार से सिद्ध किया कि जीवन के सारे गुण उसकी सूक्ष्म चेतना में विद्यमान हैं इसलिए उसे ही जानना और समझना चाहिए ।

फ्रांस के टूरकुइंग नगर में मशहूर क्लेमेन्ट नाम की एक लड़की १७९३ में पैदा हुई उसने शरीर विज्ञान के सारे नियमों को तोड़ दिया उसके केवल एक ही आँख थी वह भी दोनों आँखों के बीच में ठीक दोनों भौंहों के मध्य । वह उससे बहुत अच्छा देख सकती थी । वैज्ञानिकों ने परीक्षण करके बताया कि जिस स्थान पर उसकी आँख है वह एक बहुत ही महत्व का स्थान है जिसके बारे में विज्ञान कुछ नहीं जानता । इस आँख को परमात्मा ने योग-दृष्टि और भारतीय योग विद्या के आज्ञा-चक्र के प्रमाण स्वरूप उपस्थित किया हो तो कुछ आश्चर्य नहीं ।

यह विचित्रताएँ किसी भी आनुवंशिक गुण (हेरेडिटी करेक्टर) पर आधारित नहीं होने से अधिक विस्मयपूर्ण हैं । जन्मान्ध हुआ, जन्म से एक आँख न रही हो पर बिना आँखों के जन्म हुआ हो ऐसा एक भी उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता । लेकिन फ्रांस में सबेलनासी आक्स में एक ऐसा लड़का भी जन्मा जिसके एक भी आँख नहीं थी । आँखों का स्थान सपाट था और विज्ञान को चुनौती दे रहा था कि यह किस आनुवंशिक गुण का प्रभाव है । उस लड़के के ६ और भी भाई-बहिनें हैं जिनमें से किसी में भी इस तरह का कोई चिन्ह नहीं ।

इससे भी विलक्षण था मोमिन्स का डब्लू जे. बासर्ड । अभी तक विज्ञान का यही तर्क है कि स्त्री व पुरुष के गुण सूत्र (क्रोमोसोम) मिलकर ही शरीर की विविधता का निर्माण करते हैं । यह तो सम्भव है कि माता और पिता के वंशजों में किसी में नीली या भूरी आँखें रही हों और उसके फलस्वरूप कभी नीली आँखों वाली तो कभी भूरी आँखों वाली सन्तानें पैदा होती रही हों पर बासर्ड इन सभी वैज्ञानिक मान्यताओं का अपवाद था अर्थात् उसकी एक आँख तो नीली थी और एक भूरी, ऐसा किस कारण हुआ? पता नहीं चल पाया पर इतना स्पष्ट हो गया कि जिस प्रकार कोई आदमी कापी पर अपनी इच्छा से चित्र बनाया करता है, कोई एक सार्वभौमिक विचार शक्ति है जो संसार की विचित्रताओं का नियमन और सृजन करती है ।

आँख वालों की दुनिया के कुछ और आश्चर्य भौंरे की आँखों का लेन्स ऐसा होता है कि वह पहले एक आकृति की हजार आकृतियाँ बनाकर भेजती है पर दिखाई देती है अन्त में वही एक ही एक वस्तु । मक्खियों और तितलियों की आँखें भी ऐसी ही होती हैं । इस विचित्रता में संभवत: एक शिक्षा यह है कि पंच-भौतिक पदार्थों से बनने वाले करोड़ों दृश्यों वाले इस संसार में मनुष्य को भूलना नहीं चाहिए वरन् एक और अनादि तत्व को ही पकड़ना और प्राप्त करना चाहिए । यह भी सम्भव है जब कुछ चार आँखों वाली समुद्री मछलियों के समान अपनी दृष्टि चौमुखी बनायें और आठ-आठ हाथों पावों वाली स्क्वीड मछली की तरह अपने चारों तरफ के वातावरण के अध्ययन की सक्रियता दर्शायें । आँखों की इस अनोखी दुनिया में भेड़िया व मकड़ी को भुलाया नहीं जा सकता जिसके कि आठ आँखें होती हैं । इन आठों आँखों का उपयोग वह अपने चारों तरफ के क्षेत्र की जाँच और अपने शिकार की टोह में करती है । शिकार को देखते ही वह उस पर टूट पड़ती है और खा जाती है । विवेकशील मनुष्य भी अपनी बुद्धि की आँखों से चारों तरफ देखकर निर्णय करते हैं तभी वह संसार के दैत्य और दुर्भाग्य को जीतकर सफल और समर्थ कहलाते हैं ।

आँख या शारीरिक अङ्गों का मिलना न मिलना कोई बड़े महत्व की बात नहीं । प्रसङ्ग बताते हैं कि उसने संसार के हर कण को परिपूर्ण बनाया है हमें उस मूल बिन्दु को खोजने भर की आवश्यकता है । स्कॉटलैण्ड के इनवर्नेस स्थान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में ५ फरवरी, १८६६ में एक लड़का पैदा हुआ नाम था विलियम मैकफर्सन । वह जन्मान्ध था, उसके हाथ भी नहीं थे फिर भी वह मून टाइप के उभरे हुये अक्षरों को अपनी जीभ की नोंक से पढ़ लेता था अपने इस दुर्भाग्य के बावजूद भी वह अपने आपको दुनिया का सबसे अधिक सुखी व्यक्ति कहा करता था ।

फ्रैंक फोर्ट में ग्रेटेल मेयर नामक ऐसी महिला थी जिसके दो जीभें थीं । लगता है वे पूर्व जन्मों में बहुत बोलने वाली थीं तभी उन्हें भगवान ने दो जीभें दीं पर बोल सकना उनके लिये पूँजी के धन की भाँति दो जीभों से भी सम्भव नहीं हुआ । कुमारी फैनी माइल्स अमेरिका के ओहियो प्रांत के विख्यात नगर सिनसिनाटी में १८८० में जन्मीं उनके पैर के पंजे २-२ फीट लम्बे थे जबकि शरीर सामान्य था । यह विचित्रता यह संकेत देती थी कि मनुष्य कोई स्वतन्त्र इकाई न होकर इतर प्राणियों का सजातीय है । ऐसा न होता तो यह आनुवंशिक गुण मनुष्य में कहाँ आ जाते । ऐसी घटनाएँ ही जीवन के अन्य योनियों में भ्रमण और पुनर्जन्म का भी प्रमाण है उनको ठुकराया जाना सम्भव नहीं है ।

कई बार की विचित्रताएँ तो और भी आश्चर्यजनक होती हैं और वह बताती हैं कि यह संसार किसी बहुत ही कौतुकी सत्ता का खेल है । जार्जिया के ग्रीनविले नगर में ए. एफ. डाडी नामक एक स्त्री को प्रसव के समय अण्डा देते समय लोग चौंके । कुछ दिन तक यह प्रतीक्षा की जाती रही कि अण्डा फूटेगा और बच्चा निकलेगा किन्तु जब अण्डा न हिला न डुला तो उसे फोड़ा गया, भीतर से निकला एक मूँगफली का दाना । कुछ लोग इस घटना पर हँसे पर अधिकांश यह सोचते रह गये कि यह किस विकासवाद की बला है ।

शिकागो (अमेरिका) में जान. टी. बोवर्स के वायु नली नहीं थी, स्वरतन्त्री तथा कण्ठ पिटक आदि कुछ भी नहीं थे फिर भी वह सामान्य व्यक्तियों की भाँति ही अपनी जीभ से बोलता और उच्चारण करता था । यह सारी घटनाएँ यदा-कदा और कहीं एक आध व्यक्तियों के साथ घटित होती हैं । स्पेन के करवेरा डी ब्रुट्रेगा नामक एक गाँव में सभी व्यक्तियों के हाथ तथा पैरों में कई-कई अँगुलियाँ हैं । ६ अँगुलियाँ तो सभी के हैं केवल एक बुड्ढा ही ऐसा है जिसके १०-१० अँगुलियाँ हाथ-पैरों में हैं । यह लोग संसार के सामान्य लोगों को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते हैं ।

यह विचित्रताएँ मनुष्य शरीरों तक ही सीमित नहीं अन्य जीवों में भी अपवाद भरे पड़े हैं । डेनवर (कोलम्बिया) में एक किसान के पास हरफोर्ड नामक गाय है जिसके दो स्थानों पर थन हैं-सामान्य स्थान में भी और पीठ में भी । दोनों थनों से दूध निकलता है । दो जीभों वाली गायें बहुत मिलती हैं पर थनों वाली नहीं । फिर थनों में दूध पीयूष ग्रन्थि (पिट्यूटरी ग्रन्थि) की क्रिया से बनता है इसलिये दोनों स्थानों से पीयूष ग्रन्थि का सम्बन्ध निर्विवाद है और वह यह बताता है कि भीतर ही भीतर शरीरों की गुप्त रचना करने वाली सत्ता कुछ भी कर सकने में समर्थ है । आँख फोड़वा (ग्रास हापर्स) की दो आँखें होती हैं वह एक नियम है पर एक ग्रास हापर्स वह भी होते हैं जिनके पाँच-पाँच आँखें होती हैं और पाँचों आँखें देखती भी हैं । कैलीफोर्निया के ह्विटियर में लैरी स्टोन नामक व्यक्ति ने एक बतख पाली । डैफी नामक यह बतख आधे-आधे अण्डे देती है और उन आधे अण्डों से ही पूरे और स्वस्थ बच्चे पैदा होते हैं । डैफी बतख दुनिया में अपनी तरह की अकेली बतख है और इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण भी कि संसार में एक ऐसी सत्ता अवश्य है जो संसार के सभी नियमों और व्यवस्थाओं का अपवाद तथा अपवादों से भी बढ़कर शक्तिशाली है । हम यदि उससे सम्पर्क स्थापित कर सकें तो वैसी ही विलक्षण सामर्थ्यों से अपने आपको भी परिपूर्ण बना सकते हैं ।

संतति की उत्कृष्टता के लिए जन्मदाता उत्तरदायी

सुसन्तति की उपयोगिता सभी समझते हैं, पर उसके लिए माता-पिता बनने वाले अपना स्तर ऊँचा उठाने का प्रयत्न नहीं करते ।

वैज्ञानिकों का इसके सन्दर्भ में 'जीन्स' को उत्तरदायी बताना तो ठीक है पर वे यह भूल जाते हैं कि इसका एक मात्र उपाय जन्मदाताओं का शारीरिक स्वास्थ्य सही होने से भी अधिक उनका मानसिक स्वास्थ्य सही होना अधिक आवश्यक है । क्योंकि सन्तति की उत्कृष्टता मात्र उसकी स्वास्थ्य-बलिष्ठता के आधार पर नहीं आँकी जा सकती । बौद्धिक और भावनात्मक स्तर गया-गुजरा होने पर कोई भी बलिष्ठ व्यक्ति दुष्ट, दुराचारी, विग्रही और उद्दण्ड भी हो सकता है । इसमें भी पिता की तुलना में माता को अधिक सुयोग्य और भावनाशील होना चाहिए ।

यह स्पष्ट हो गया है कि अपने वातावरण तथा अपनी चेष्टाओं द्वारा व्यक्ति जिन स्वभाव, गुणों को अर्जित करता है, वे वंशानुक्रम से प्राप्त नहीं होते और न ही कोई व्यक्ति उन अर्जित विशेषताओं को वंशानुक्रम द्वारा अपने बच्चों को प्रदान कर सकता है । उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्ति ने अनेक भाषाएँ सीखी हैं, तो वह उस भाषा-ज्ञान को अपने बच्चों को वंशानुक्रम द्वारा नहीं दे सकता । बच्चों को भी भाषा-ज्ञान की प्रचलित विधियों को ही अपनाना होगा तथा मेहनत करनी पड़ेगी । वहीं दूसरी ओर यह भी स्पष्ट हो गया है कि वंशानुक्रम का निश्चित प्रभाव सन्तान पर पड़ता है । आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) का सारा ढाँचा ही इसी आधार पर खड़ा है । यह सही है कि कोई भी व्यक्ति जंगली बेर के बीज बोकर उनसे गुलाब के फूलों की आशा नहीं कर सकता । गोरैया के अण्डों को सेकर उनमें से मोर के बच्चे कौन निकाल सकता है ? लेकिन जिन पौधों के बीज बोये जाते हैं, उनसे उन्हीं जैसे पौधे आखिर क्यों उगते हैं ? चूहों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से चूहा और बिल्ली से बिल्ली ही क्यों पैदा होता है ? इसका उत्तर है, आनुवंशिकता अर्थात् नियमित वंश परम्परा, जिनके कारण ही ऐसा होता है । जो वस्तु जिस वंश की होगी, उसका बीज डाले जाने पर वैसा ही फल होगा । आनुवंशिकता में काम करने का ढंग भी शामिल है और चीजों का कद तथा रंग भी । उदाहरण के लिए, वया पक्षी को बढ़िया लटकने वाला घोंसला बनाना किसी को सिखाना नहीं पड़ता है ।

आनुवंशिकता अपने पूर्वजों से मिलने वाली विशेषताओं का ही दूसरा नाम है । वैज्ञानिक जानते हैं कि जीवों में जो विशेषताएँ होती हैं, वे उन्हें अपने माता-पिता से अत्यन्त सूक्ष्म कणों के रूप में मिलती हैं । इन सूक्ष्म कणों को 'जीन्स' कहा जाता है । हमारा शरीर बहुत-सी कोशिकाओं से मिलकर बना है । 'जीन' कोशिका के क्रोमोसोम्स का ही एक भाग है । अगर किसी वट-वृक्ष की शाखा को कहीं उसके अनुकूल स्थान में ले जाकर बो दिया जाय तो वह भी मूल पेड़ की तरह ही फलने-फूलने लगेगी । उसकी कोशिकाओं के 'जीन्स' अपने पहले के पेड़ की भाँति होंगे । ठीक उसी तरह जिस तरह किसी स्पंज के टुकड़े में वैसे छिद्र होते हैं, जैसे उस स्पंज में थे जिसमें से कि टुकड़े को तोड़ा गया है ।

यदि कोशिका को काटकर नाभिक से अलग कर दिया जाय तो कोशिका की मृत्यु हो जायेगी पर नाभिक में स्वत: निर्माण की क्षमता होती है, हमारा आध्यात्मिक दर्शन यह कहता है कि उस नाभिक में इच्छा, आशा, संकल्प और वासना का अंश रहता है, उसी के अनुरूप वह दूसरा जन्म ग्रहण करता है । अभी पाश्चात्य विज्ञान इस सम्बन्ध में तो खोज नहीं कर पाया पर कोशिकाओं के नाभिक में पायी जाने वाली एक तरह की किरणों की जानकारी अवश्य मिली है, जो सम्भवत: एक जन्म के संचित संकल्पों को सन्तानोत्पत्ति के वंशानुक्रम विज्ञान द्वारा दूसरी पीढ़ी में ले जाने के लिये उत्तरदायी कहे जा सकते हैं । यह भी सूक्ष्मतर स्तर पर होने वाली प्रक्रिया है ।

आहार क्रम को बदलकर भी कोशिकाओं को बदला जा सकता है । भले ही यह क्रम मन्दगामी हो पर यदि एक ही प्रकार के पदार्थ खाने में लिये जायें तो उसी प्रकार की कोशिकाओं को विकसित और सतेज कर दुर्बल एवं अधोगामी योनियों में पाई जाने वाली कोशिकाओं को हटाया और कम किया जा सकता है । इसका प्रभाव यह होता है कि मनुष्य में जो पाशविक वृत्तियाँ होती हैं, वह इन कोशिकाओं की मन्द, अशुद्ध और जटिल स्थिति के कारण होती हैं, उन्हें बदल कर, शुद्ध सात्विक बनाया जा सकता है । अर्थात् जन्मदाता अपना व्यक्तित्व उच्चस्तरीय बनाये ।

वैज्ञानिकों का ध्यान जीन्स की शल्य-क्रिया करके उसमें समाये हुए अनुपयुक्त भाग को निकाल कर फेंकने की बात भर समझ में आई है । पर यह नहीं सोच पाये कि उस द्रव्य की पूर्ति कैसे की जाय जो जन्मदाताओं में तत्वत: नहीं है । वे इसका समाधान कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से हल करना चाहते हैं पर वह नैतिक और पारिवारिक, सामाजिक परम्पराओं को देखते हुए व्यावहारिक नहीं दीखता । इसमें कानूनी बाधाएँ भी हैं कि इस प्रकार जन्मे बालक का पिता किसे कहा जाय । पुरुष प्रधान समाज में यह भी एक झंझट की बात है ।

सुसन्तति प्राप्त करने का वही तरीका सर्वोत्तम है कि जनक-जननी अपने उत्तरदायित्व को समझें और अपना व्यक्तिगत जीवन उस स्तर का बनायें जिनके द्वारा उत्पादित फसल उन्हीं के अनुरूप हो ।

यह तभी सम्भव है जब गर्भाधान को काम-क्रीड़ा के कौतूहल से कहीं ऊँचा समझा जाय और उसके कारण समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का अनुमान लगाया जाय ।

कुसन्तति अपने लिए, परिवार के लिए ही सिर-दर्द नहीं बनती वरन् अपने विकृत व्यक्तित्व एवं अवांछनीय क्रिया-कृत्यों से समाज में अनेक विग्रह खड़े करती है । इस प्रकार का उत्पादन करने वाले भले ही शासकीय दण्ड व्यवस्था के अन्तर्गत न आ पाते हों, पर उन्हें आत्मा और परमात्मा के सामने तो लज्जित होना ही होगा । जबकि सुसन्तति अपने सत्कर्मों से प्रशंसनीय वातावरण बनाती है ।

सभी चाहते हैं कि उनके घर में सुसन्तति का प्रादुर्भाव हो, पर वे यह भूल जाते हैं कि खिलौना या पुर्जा बनाने से पूर्व उसका साँचा सही बनाना पड़ता है । अच्छा हो कि समाज के उत्थान और पतन की भावी योजना के लिए सुप्रजनन ही उचित माना जाय और उस अति जिम्मेदारी के काम में मात्र वे ही लोग हाथ डालें जिन्होंने अपना व्यक्तित्व इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त बना लिया हो ।

यह ठीक है कि जैसा बीज होता है वैसा ही पौधा पैदा होता है । यह भी गलत नहीं है कि उर्वर भूमि में पौधे को तेजी से बढ़ने में सहायता मिलती है । पिता को बीज और माता को भूमि कहा गया है । यह पर्याप्त नहीं कि बीज सड़ा-घुना न हो । अर्थात् पिता का व्यक्तित्व गुण, कर्म, स्वभाव एवं स्वास्थ्य गया-गुजरा न हो । इसी प्रकार यह भी उचित है कि माता को सुयोग्य, सुसंस्कारी एवं शिक्षा की दृष्टि से समुन्नत स्तर की होना चाहिए । इसके लिए स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है । इसके बिना वह सद्गुणों का महत्त्व और उन्हें विकसित करने के उपायों से अनजान ही बनी रहेगी । इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि लड़कों को नौकरी के निमित्त पढ़ाया जाता है और लड़की को पराये घर का कूड़ा समझकर हर बात में उसके प्रति उपेक्षा बरती जाती है । सुसन्तति उत्पादन की दृष्टि से यह बहुत ही अनुचित है कि लड़कियों को सुयोग्य बनाने की दिशा में उपेक्षा बरती जाय ।

बात इतने पर ही समाप्त नहीं हो जाती । पौधे को खाद-पानी और रखवाली भी चाहिए । बच्चों को घर का तथा स्कूलों का वातावरण ऐसा मिलना चाहिए जिसमें उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुसंस्कारिता उपलब्ध करने का अवसर मिले साथ ही शिक्षा भी ऐसी मिलनी चाहिए जो जीवन विकास के सर्वोपरि महत्व की आवश्यकता पूरी कर सके ।

वंशानुक्रम की उत्कृष्टता सुप्रजनन का मूल आधार

माता-पिता की शारीरिक और मानसिक संरचना के अनुरूप सन्तान का स्वास्थ्य और बुद्धि-वैभव होने की बात में बहुत बड़ी सच्चाई है । इसलिए जहाँ सुविकसित सन्तानोत्पादन का प्रश्न आता है, वहाँ इस बात का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है कि उद्गम स्रोत शुक्राणु का स्तर क्या और कैसा है ? यह बात बच्चों के शरीर और मन के निर्माण निर्धारण तक ही सीमित नहीं है वरन् उनके व्यक्तित्व, भविष्य और चरित्र की सम्भावना पर भी पूरी तरह लागू होता है ।

देखा गया है कि माता-पिता से मिलता-जुलता रंग रूप बालकों का होता है । देखा गया है कि उनका दुबला, मोटा या सुडौल होना भी इस बात पर निर्भर रहता है कि माता-पिता में से जो प्रजनन में अग्रिम भूमिका निभाता हो, उसका अथवा दोनों का शरीर कैसा था । एक या दोनों ही शरीर या मन की दृष्टि से लड़खड़ाने लगे तो सन्तान का स्तर ऊँचा होने की आशा नहीं की जा सकती । देखा गया है कि कितने ही रोग पीढ़ी दर पीढ़ी चलते हैं । दमा, मधुमेह, गठिया जैसे रोग विरासत में मिलते और उत्तराधिकारियों को हस्तान्तरित होते चले जाते हैं । उतावली, उत्तेजना, चंचलता जैसे स्वभावों, आवेशों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है । हलकी-फुलकी आदतें जो ठीक से अनुभव में नहीं आतीं वे भी पीढ़ियों तक चली जाती हैं ।

जन्मजाति का नीच-ऊँच या छूत-छात से भी सम्बन्ध नहीं है पर उसके पीछे वंशानुक्रम विशेषताओं के हस्तान्तरण की बात में बहुत कुछ सच्चाई है । इसे हम अपने इर्द-गिर्द नजर डालकर भी देख सकते हैं । एक ही क्षेत्र में, एक ही जलवायु में जन्मने और पलने वाले लोगों के रंग, रूप और गुण, स्वभाव में काफी अन्तर पाया जाता है । इसमें अन्य कारणों के अतिरिक्त वंशानुक्रम की भूमिका सर्व-प्रमुख होती है । उसी क्षेत्र के आदिवासी, हरिजन, राजपूत, व्यवसायी, आदि को उनकी आकृति भर देखने में बहुत कुछ पहचाना जा सकता है । आदतों की बात जहाँ आती है वहाँ तो यह तथ्य और भी अधिक उजागर होने लगता है । कुछ अपराधी प्रकृति की जन-जातियाँ, सुधार प्रक्रिया के दबाव में ही अपने को बहुत धीमी गति से सुधार पा रही हैं । इस कठिनाई में जहाँ उनके पारिवारिक वातावरण को कारण कहा जाता है, वहाँ वंशानुक्रम का दबाव भी कम नहीं होता । यहाँ सुधार परिवर्तन की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा रहा है और न जो है उसे पत्थर की लकीर सिद्ध किया जा रहा है । बात इतनी भर है कि वंशानुक्रम के दबाव का महत्व समझा जाय और उसके कारण पीढ़ियों के स्वरूप निर्धारण की भूमिका को नजरन्दाज न किया जाय ।

विवाह एक बात है और सन्तान का स्तर बनाना दूसरी । यों प्रत्यक्षत: दोनों के बीच घनिष्ट सम्बन्ध बन गया है तो भी तथ्य एक-दूसरे से भिन्न है । विवाह तो गृह व्यवस्था, शरीर, सुविधा, विनोद, सहयोग तक सीमित रहने वाला प्रसंग है । नर-नारी अपनी सुविधा एवं रुचि के आधार पर प्राय: इसी निमित्त विवाह करते हैं । प्रचलन यह भी है कि जब विवाह हो जाता है तो उन्हीं का पारस्परिक सान्निध्य सन्तानोत्पादन भी करने लगता है । यौन कर्म के कारण गर्भधारण प्राणि जगत का एक प्रवाह प्रचलन है । वह चलता और चलता रहेगा । पर यदि सन्तान का स्तर भी विचारणीय हो तो प्रश्न नये सिरे से विचार करना होगा और देखना होगा कि उसके निमित्त कारण 'जीन्स' का स्तर उत्पादनकर्त्ता विकसित कर पाये कि नहीं । वंश परम्परा के साथ चलने वाली आन्तरिक उत्कृष्टता का सम्पादन हो सका या नहीं । इस सन्दर्भ में स्वास्थ्य और बुद्धि कौशल ही पर्याप्त नहीं । यह दोनों ही उथली वस्तुएँ हैं । जो सन्तान के रंग, रूप, स्वभाव आदि तक ही सीमित होकर रह जाती हैं । वरिष्ठ, प्रतिभावन, व्यक्तित्वसम्पन्न एवं मनस्वी पीढ़ियाँ चाहिए तो जन्मदाताओं को न केवल अपना बहिरंग परिपुष्ट करना पड़ता है वरन् अन्तरंग को भी इतना समुन्नत बनाना होता है ताकि उसे सूक्ष्म स्तर के आधार पर उत्पादन में बीज रूप में महानता विद्यमान रहे और वह वंशानुक्रम में सम्मिलित होकर पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़े ।

दाम्पत्य जीवन और वंशानुक्रम का तालमेल ठीक बैठे तब तो हर दृष्टि से सौभाग्य की बात है और सन्तानोत्पादन को सार्थक, उत्साहवर्धक एवं श्रेयस्कर कहा जा सकता है । यदि वैसा न हो तो गृहस्थ जीवन का कामचलाऊ ढर्रा घूमते रहने पर भी किसी उत्साहवर्धक प्रजनन की आशा नहीं की जा सकती । शारीरिक या मानसिक रुग्णता यदि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बनी रहे तो फिर उन विकृतियों को भावी पीढ़ी में हस्तान्तिरत होने से रोका नहीं जा सकेगा । रुग्ण रहने वाली पत्नी, नीरोग बच्चे कैसे उत्पन्न करेगी ? विक्षिप्त मन:स्थिति का पति बुद्धिमान बच्चों का पिता नहीं कहला सकेगा । अयोग्यता की स्थिति से अच्छा यही है कि दाम्पत्य जीवन को गृह व्यवस्था तक ही सीमित रखा जाय । सहयोगपूर्वक परिवार चलाया जाय । खेलने को खिलौने चाहिए तो अन्य प्राणियों की तरह प्रकृति प्रेरणा से प्रेरित होकर जैसी भी कुछ भली-बुरी उपलब्धि हाथ लगे उसे कर्मफल या भाग्य विधान कहकर सन्तोष करना चाहिए । उच्चस्तरीय सन्तानोत्पादन का प्रश्न हो तो फिर जन्मदाताओं को अपने आप को अनेक दृष्टियों से विशिष्ट बनाना होगा और बात इतनी आगे तक ले जानी होगी, जिसमें प्रजनन के उत्तरदायी घटक शुक्राणु, डिम्बकोष, जीन्स में सुसंस्कारिता का वंशानुक्रम के रूप में परिणति हो सकने वाला वर्चस्व उदय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो सके । यह कम कठिन नहीं है । साधन साध्य है । सुप्रजनन का श्रेय प्राप्त करने के लिए इससे कम मूल्य चुकाने से बात बनती नहीं ।

कई बार पति-पत्नी दोनों ही सुप्रजनन से अभीष्ट उत्कृष्टता सम्पादित कर चुके होते हैं । ऐसी दशा में वातावरण या सुविधा-साधनों के अभाव में भी बालकों का स्तर ऊँचा होता है । लवकुश, अभिमन्यु जैसे अनेक उदाहरण इस सन्दर्भ में प्रस्तुत किये जा सकते हैं । राम और सीता दोनों की ही अन्तरंग उत्कृष्टता ऐसी थी जिसमें उनकी सन्तानें साधन-सुविधा के अभाव में भी अपने बलबूते विकसित हो सके । वनवास में साधनों का अभाव रहना स्पष्ट है । तपस्वी बाल्मीकि का संरक्षण भर था । जिस सघन सान्निध्य को वातावरण कहा जाता है वह तो अकेली सीता का ही थां । ऐसी दशा में सुविधा साधन और वातावरण के कारण सन्तान का स्तर उठाने वाली मान्यता कट जाती है और सिद्ध होता है कि वंशानुक्रम के मध्य क्रम करने वाली उत्कृष्टता ही सुप्रजनन की प्रधान भूमिका निभाती है ।

अर्जुन-सुभद्रा के सान्निद्य से जन्मे अभिमन्यु का व्यक्तित्व सर्वविदित है । सोलह वर्ष की आयु में ही वह समर्थ सेनापति की भूमिका निभाने, चक्रव्यूह में घुस पड़ा था । ऐसी प्रतिभा के विकास में अभिभावकों का स्तर ही अपनी विशिष्टता का प्रमाण प्रस्तुत करता है । सुविधा साधन, शिक्षण, वातावरण यों उसे मिला होगा, पर वैसा तो अन्यान्यों को भी मिलता है । फिर वे लोग उस स्थिति में क्यों नहीं पहुँचे ? उस स्तर के क्यों नहीं बने ?

कभी-कभी ऐसी घटनाएँ भी होती हैं कि एक पक्ष अत्यधिक प्रखर हो तो दूसरे के घटियापन से भी काम चल जाता है । अवरोध उत्पन्न करने वाली रुग्णता, विक्षिप्तता न हो तो भी विशिष्ट पक्ष अपनी वरिष्ठता का प्रभाव प्रमाण प्रस्तुत कर सकता है । मकरध्वज और घटोत्कच के उदाहरण ऐसे ही हैं । लंकादहन के उपरान्त हनुमान जब स्नान के लिए समुद्र में कूदे तो उनके कुछ घटक पानी में बह गये । कहते हैं कि उन्हें एक मछली निगल गई और उससे पिता के समान पराक्रमी मकरध्वज उत्पन्न हुआ । यहाँ मछली से अभिप्राय किसी पिछड़े स्तर की नारी से भी हो सकता है । भीम जब अज्ञातवास में थे तो किसी वनवासी पिछड़े परिवार के साथ उनकी घनिष्टता जुड़ गई । फलत: हिडिम्बा नामक किसी पिछड़े स्तर की महिला से भीम के सदृश्य बलशाली घटोत्कच का जन्म हुआ । सर्वविदित है कि महाभारत में उसने अनगढ़ होते हुए भी भीम के सदृश ही पराक्रम दिखाया था । रावण पुत्र मेघनाद की विशेषता उसके पिता द्वारा प्रदत्त थी । मन्दोदरी का वर्चस्व रहा होता तो वे बालक दैत्य न होकर सौम्य सज्जन स्तर के रहे होते ।

नर की भाँति नारी की वरिष्ठता भी अपना एकाकी चमत्कार दिखा सकती है । अनिवार्य नहीं कि पति का स्तर भी उतना ही ऊँचा हो । मदालसा और भीष्म की माता गंगा का उदाहरण ऐसा ही है । उन महान महिलाओं के पतियों का स्तर वैसा नहीं था तो भी वे अपनी एक पक्षीय प्रखरता का परिचय देते हुए ब्रह्मर्षि, राजर्षि और देवोपम अष्ट वसुओं को जन्म देने में समर्थ हुईं । शिवाजी को सुसंस्कारी बनाने वाली जीजाबाई, विनोबा-शिवोबा और बालकोबा को सृजन करने वाली उनकी माता का नाम भी ऐसे ही उदाहरण में सम्मिलित होता है ।

विशिष्ट उत्पादन की क्षमता अर्जित करने के लिए चिकित्सा उपचारों की अपेक्षा इस प्रयोजन को पूरा करने वाली तप साधनाओं की गरिमा अत्यधिक मानी गई है । राजा दिलीप सुसंतति चाहते थे पर वे उस दृष्टि से असमर्थ थे । वे वशिष्ठ आश्रम गये । लम्बे समय तक रानी समेत गौ दुग्ध कल्प करते रहे तथा साधनारत रहे । परिणामत: उन्हें एक पराक्रमी पुत्र की प्राप्ति हुई । कृष्ण ने भी जब वैसी आवश्यकता समझी तब उस स्तर की क्षमता अर्जित करने के लिए रुक्मिणी समेत बद्रीनाथ की तपस्थली में बारह वर्ष तक निवास किया । उस अवधि में मात्र जंगली बेर खाकर वे निर्वाह करते रहे । इस बेर कल्प के आधार पर ही उस क्षेत्र का नाम बदरिकाश्रम पड़ा । बद्री संस्कृत में बेर को कहते हैं । इसी आधार पर वे कृष्ण के समतुल्य समझे जाने वाले प्रद्युम्न को जन्म देने में समर्थ हुए ।

अब सुप्रजनन के सन्दर्भ में 'जेनेटिक्स इंजीनियरिंग' की एक विशेष विज्ञान शाखा ही अपने प्रयोग-परीक्षण में जुट पड़ी है । जिस प्रकार अन्यान्य क्षेत्रों में वैज्ञानिक उपलब्धियाँ अपने चमत्कार दिखा रही हैं उसी प्रकार सोचा यह भी जा रहा है कि प्रतिभाशाली महामानवों का भी उत्पादन बढ़ाया जाय । इनके बिना समाज की, विश्व की व्यवस्था एवं प्रगति का रथ रुका ही रहेगा । इस सन्दर्भ में उनकी पकड़ और पहुँच इसी परिधि में परिभ्रमण कर रही है कि उपयुक्त जोड़े मिलाकर वैसा प्रजनन सम्भव बनाया जाय । उपयुक्त से उनका तात्पर्य है स्वस्थ-समर्थ । पशु जगत में इस दृष्टि से समर्थ नर-मादाओं के जोड़े मिलाये जा रहे हैं । मादा से भी अधिक महत्व नर को दिया जा रहा है ।

कृत्रिम उपचारों की अपनी सीमा है एवं अध्यात्म अनुशासन इस सीमा तक जाने की आज्ञा भी नहीं देते । घटिया सन्तानों की संख्या बढ़ाने की अपेक्षा उचित यह है कि सुसंस्कृत सन्तति जन्म ले । बिना संयम उपचार अपनाये, कड़ी तप-तितीक्षा किए वह भी सम्भव नहीं । आज के कामुकता से भरे वातावरण में जो जनसंख्या वृद्धि हुई है, उसका मूल कारण है दाम्पत्य जीवन में बरती जाने वाली वर्जनाओं का उल्लंघन । सुसंस्कृत नागरिक तभी इस धरा पर जन्म लेंगे जब उन्हें उपयुक्त वातावरण एवं उपयुक्त पात्र मिलें । साधना-उपचारों को अपनाकर ही सुसंस्कृत पीढ़ी, सभ्य आदर्शनिष्ठ नागरिकों की संख्या बढ़ सकती है । ये ही देव-संस्कृति का उत्थान, पुनरुद्धार कर सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वंशानुक्रम निर्धारण हेतु उत्तरदायी अविज्ञात चेतना शक्ति

दृश्य रूप में मनुष्य का अस्तित्व देखने वाले यह नहीं जानते कि इस स्थिति तक आने में किसी अविज्ञात तन्त्र द्वारा कितना प्रबल पुरुषार्थ किया है । शुक्राणु के मूल में छिपी गुणसूत्र की सत्ता किसी मनुष्य की आकृति-प्रकृति-स्वभाव का निर्धारण करती है एवं शुक्राणु-डिम्बाणु के साथ-साथ शरीर की विलक्षण हलचल एवं मिलन की आकांक्षा इस प्रक्रिया में योगदान देती है, यह तथ्य अब सबको विदित है । आनुवंशिकी, प्रतिक्रिया, भ्रूण विकास सम्बन्धी तथ्यों की भली-भाँति जानकारी होते हुए भी वैज्ञानिक अभी एक तथ्य के सम्बन्ध में अन्धेरे में भटक रहे हैं । वह है एक अविज्ञात चेतन शक्ति जो गर्भाशय में उपयुक्त पर्यावरण के होते हुए भी डी. एन. ए. (डि ऑक्सी राइबो न्यूक्लीक एसिड) को प्रेरणा देती है कि वह अमुक रीति से अमुक प्रकृति के जीवकोषों को अंगों के रूप में संजोए । यह मूल प्रेरक बल क्या है ? कहीं यह वही प्रेरणा प्रवाह तो नहीं जो संस्कारों को माँ से गर्भस्थ शिशु में संप्रेषित करता है, जो गर्भकाल की परिस्थितियों का गर्भस्थ बालक की मनःस्थिति एवं संरचना पर प्रभाव डालता है?

इस सम्बन्ध में एक नयी परिकल्पना कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के बायोकैमिस्ट्री एवं सेल बायोलॉजी विभाग के निदेशक डा. रूपर्ट शेल्ड्रेक ने प्रस्तुत करके वैज्ञानिकों के समक्ष एक चुनौती रख दी है । उनका मत है कि भ्रूण का विकास गुणसूत्रों के मौलिक घटक डी.एन.ए. जो आनुवंशिकी के सन्देशवाहक एवं भ्रूण निर्माता माने जाते हैं तथा गर्भाशय के भौतिक पर्यावरण में पारस्परिक सम्बन्धों से नियन्त्रित नहीं होता । इस प्रक्रिया के मूल में एक पराभौतिक सक्रिय बल कार्य करता है जिसे उन्होंने मार्फोजिनेटिक फील्ड नाम दिया है । जिस प्रकार एक चुम्बक की उपस्थिति के कारण आस-पास एक विशेष प्रकार का ऊर्जा क्षेत्र सक्रिय हो जाता है एवं वहाँ उपस्थिति लोहे के कण परस्पर गुँथकर एक हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार रति क्रिया व भ्रूण की गर्भाशय में स्थापना के साथ ही एक चेतन प्रेरक बल गर्भाशय में सक्रिय हो जाता है जो शरीर एवं मन को वांछित रूप एवं आकार दे सकने में सक्षम होता है । इस रहस्यमय अभौतिक ऊर्जा स्रोत के बारे में अपनी परिकल्पना प्रस्तुत करते हुए वे आगे लिखते हैं कि गर्भस्थ भ्रूण तथा मार्फोजेनेटिक बल के बीच जो लयबद्धता (मार्फिक रेजोनेन्स) विकसित होती है, वही शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंगों की संरचना एवं मस्तिष्कीय बुद्धि कौशल, स्मृति तथा जन्मजात विलक्षण क्षमताओं के लिये उत्तरदायी है ।

यह परिकल्पना एक प्रकार से जीन यांत्रिकी पर कार्यरत डी. एन. ए., गुणसूत्र इत्यादि में परिवर्तन लाने हेतु संकल्पित वैज्ञानिकों के लिये एक प्रहार है क्योंकि इससे उनकी मूलभूत मान्यता पर ही कुठाराघात हो जाता है । जीन की कलमों द्वारा नये विलक्षण प्रकृति के मनुष्यों को बनाने वाले वैज्ञानिकों के लिये सन्देश देते हुए यह चालीस वर्षीय वैज्ञानिक कहता है कि मनुष्यों और पशुओं में मौलिक अन्तर है । प्रयोग पशुओं में किए जा सकते हैं व सम्भवतः नयी भिन्न-भिन्न किस्म की आकृति प्रधान नस्लें उनकी बनायी भी जा सकती हैं पर यह कार्य मनुष्य में सम्भव नहीं क्योंकि उसके कई क्रिया-कलाप अभी भी अविज्ञात एवं रहस्यमय हैं ।

अपनी मान्यता पर कुठाराघात होने से वैज्ञानिकों का सकपकाना स्वाभाविक है । यही कारण है कि एक वर्ग ने उनकी इस पुस्तक, जिसमें इस परिकल्पना को प्रस्तुत किया गया है—'ए न्यू साइन्स ऑफ लाइफ दी हाइपोथीसिस ऑफ फार्मेटिव काजेशन' की जमकर आलोचना की है । जबकि एक वर्ग जो अपेक्षाकृत अधिक उदारवादी विचारकों ने इसे एक क्रान्तिकारी कल्पना कहा है । ग्लासगो विश्वविद्यालय के दार्शनिक—वैज्ञानिक डा. स्टीफन क्लार्क ने शैल्ड्रेक की मान्यता का समर्थन करते हुए इसे पूर्वात्त दर्शन की उस मान्यता के अनुकूल बताया है जिसमें संस्कारों के माँ से बालक में गर्भकाल की अवधि में स्थानान्तरित होने का वर्णन किया जाता है । शारीरिक आकृति-प्रकृति का निर्धारण तो इस अवधि में होने वाले चिन्तन से प्रभावित होता ही है, बालक के चिन्तन, क्रिया-कौशल, प्रतिभा एवं भाव सम्वेदनाओं तक के लिये वह मार्फोजेनेटिक बल जिम्मेदार ठहराया जा सकता है जो परोक्ष रूप से माँ के गर्भाशय में चिन्तन व भावना के अनुरूप क्रियाशील रहता है, ऐसी उनकी मान्यता है । इसी प्रकार कैम्ब्रिज विद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति एवं जीव विज्ञानी सर एरिक एस्बी ने शैल्ड्रेक के प्रतिपादन को गम्भीरतापूर्वक लिया है व कहा है कि "वनस्पति एवं प्राणी विकास सम्बन्धी परम्परागत मान्यताओं की दृष्टि से यह एक चुनौती भरा रहस्योद्घाटन है । हमें मानवी विकास, उसके चिन्तन एवं व्यवहार के लिये भ्रूण विज्ञान की गहराई तक जाकर 'फार्मेटिव काजेशन' के इस सिद्धान्त पर भली-भाँति मनन-चिन्तन करना चाहिए ताकि बाद में उत्पन्न होने वाली विकृतियों के लिए कारण को मूल रूप में ढूँढ़ा जा सके ।"

शैल्ड्रेक द्वारा प्रतिपादित मार्फोजेनेटिक ऊर्जा क्षेत्र न तो रासायनिक है, न ही विद्युत्चुम्बकीय । यदि यह वास्तव में लेखक की मान्यता के अनुरूप एक पराभौतिक बल है तो यह प्रकृति में विद्यमान चार मूल बलों से नितान्त अलग एक नया ही विलक्षण बल होगा । आनुवंशिकी की थ्योरी के अनुसार परम्परागत रूप में स्थानान्तरित होने वाले गुणों के लिये शैल्ड्रेक के इस अभौतिक बल को उत्तरदायी ठहराना उचित होगा, जहाँ कोई भी कारण ऐसा नहीं मिलता जिसके लिए डी. एन. ए. को मूलभूत स्रोत माना जा सके ।

कठिनाई यह है कि भ्रूणविज्ञानियों, जीवविज्ञानियों एवं व्यवहारवैज्ञानिकों में परस्पर समन्वय नहीं बैठ पाता । जहाँ पहला वर्ग आकृति एवं स्थूल प्रक्रियाओं को ही सब कुछ मानता है, वहाँ दूसरा वर्ग विचार करने की शक्ति एवं परिधि,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानसिक दक्षता, सीखने की क्षमता एवं सम्वेदनात्मक प्रतिक्रियाओं के व्यवहार रूप को अधिक महत्व देता है । दोनों ही प्रकार की प्रक्रियाएँ आनुवंशिकी द्वारा ही माँ से पुत्र या पुत्री में आती हैं पर जहाँ आकृति के लिए माँ व पिता के क्रोमोसोम कुछ हद तक उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं, वहाँ प्रकृति एवं व्यवहार के लिये माँ का चिन्तन, भाव-सम्वेदना का स्तर, गर्भकाल में आस-पास का वातावरण अधिक उत्तरदायी है । पूर्वार्द्ध मनोविज्ञान एवं दर्शन इसी कारण गर्भकाल में माता के आहार, मानसिक स्वास्थ्य से लेकर उच्चस्तरीय भाव सम्वेदनाओं पर जोर देता रहा है । जैसा संकल्प बल इन दिनों माता के अन्दर विकसित होता है, वैसी ही सन्तति होती है । पुंसवन संस्कार के पीछे भी यही मूलभूत मान्यता है कि भ्रूण में वे संस्कार प्रविष्ट हों जो अभीष्ट हैं । गर्भस्थ भ्रूण पर इस अभौतिक बल के क्या प्रभाव पड़ सकते हैं, इसके कई उदाहरण मिलते हैं ।

मिनीसोटा विश्वविद्यालय के डा. फाउलर ने गर्भावस्था में चिन्तन के बच्चे पर प्रभाव के अध्ययन हेतु कई माताओं का अध्ययन किया । एक घटना पत्रिका 'न्यू साइन्टिस्ट' में उद्धृत करते हुए वे लिखते हैं कि एक स्त्री अपने बच्चे को बेचैन देखकर नींद लाने वाला सिरप देकर काम पर चली गयी । दुर्योगवश डोज़ कुछ अधिक हो गया, इस कारण बच्चा मर गया । लौटकर यह देखने पर उसके मन पर गहरा सदमा पहुँचा । इसी अवस्था में उसे दूसरा गर्भ ठहर गया । पहले बच्चे का दुःख तब तक बना रहा जब तक दूसरा उसकी गोद में न आ गया । यह दूसरा बच्चा मानसिक रूप से रोगी निकला । माँ का दुःख और बढ़ गया । तीसरा बच्चा जिद्दी व सनकी पैदा हुआ । चौथे बच्चे के जन्म के समय तक घर की आर्थिक स्थिति भी काफी ठीक थी व चिकित्सा की सुविधा भी उसे मिली । मनोवैज्ञानिकों ने उसका विश्लेषण कर उसे प्रसन्न रहने की सलाह दी व इसके लिये कई प्रकार के क्रियात्मक परामर्श दिये । चौथा बच्चा पूर्ण, स्वस्थ, नीरोग एवं कुशाग्र बुद्धि का पैदा हुआ । इस केस का हवाला देते हुए डा. फाउलर लिखते हैं कि ऐसे मामलों में आनुवंशिकी नहीं अपितु व्यवहार-चिन्तन को प्रधानता दी जानी चाहिए, जिसकी कि बहुधा उपेक्षा कर दी जाती है ।

ऐसी अनेक घटनाएँ मिलती हैं जिनमें जैसा पति-पत्नी ने चाहा, जैसी मनोभूमि विनिर्मित की, वैसी ही सन्तति जन्मी । एडमकोल्ट डेनमार्क का फ्रेडरिक २२ सन्तानों का पिता था । दोनों पति-पत्नी ने उन्हें गुणवान, चरित्रवान, प्रतिभाशाली बनाने हेतु कोई कसर नहीं छोड़ी व इसका अभ्यास गर्भस्थ स्थिति से ही आरम्भ कर दिया । फलतः २२ में से ४ बालक राजदूत, २ सेनाध्यक्ष, ५ राज्यमन्त्री तथा ११ राज्यपाल जैसे उच्च पदों पर आसीन हुए, उन्होंने पिता के गौरव को बढ़ाया । ट्यूक्सवरी के प्रसिद्ध चिकित्सक बेंजामिन किट्ज अपने व्यवसाय कि प्रति अत्यन्त निष्ठावान थे । उन्होंने प्रत्येक सन्तान को चिकित्सक बनाने का लक्ष्य रखा, वैसा ही वातावरण बनाया । फलतः आठों सन्तानें जन्म से ही वे विलक्षणताएँ लेकर जन्मीं जो उनके पिता ने चाही थीं । सभी चिकित्सक बने । वेल्स के लॉनपॉम्प सेण्ट के परिवार में जन्मे पाँचों बालक प्रसिद्ध सन्त बने । पाँचों सन्तों के गिरजाघर उनके नाम से बने अभी भी प्रसिद्ध हैं । पाँचों भाई—सेण्ट ग्वाइन, सेण्ड सीथो, सेण्ट सेलाइमन, सेण्ट ग्वाइनो एवं सेण्ट ग्वाईचीरो की समाधि वहाँ बनी है ।

भारत में राणा साँगा व वीर हम्मीर का इतिहास भी कुछ ऐसा ही है । अन्य भाइयों में वैसी प्रतिभा न थी पर उनके जन्मकाल के पूर्व माँ के मन में जैसा संकल्प उभरा, वैसी ही सन्तति जन्मी ।

वंशवाद की हठधर्मिता रखने वाले अँग्रेजों एवं जर्मनों में यह मान्यता जड़ जमाए बैठी है कि ये जातियाँ श्रेष्ठ वंश की हैं ।, इनमें रक्त सम्मिश्रण नहीं होना चाहिए । हिटलर इसी चिन्तन के परिणामस्वरूप विकसित हुआ था । किन्तु भौतिक दृष्टि से वंश की श्रेष्ठता पर जोर देने वाले, आनुवंशिकता को महत्व देने वाले उस मूल प्रेरक बल को भूल जाते हैं जो गर्भस्थ बालक की मनोभूमि बनाता है । सम्भवतः डा. रुपर्ट शैल्ड्रेक की मार्फोजेनेटिक फील्ड वाली मान्यता क्रमशः वैज्ञानिकों के गले उतरने लगे एवं गर्भस्थ शिशु पर चिन्तन-भावना का विचार पड़ने का प्रतिपादन उन्हें विज्ञानसम्मत लगने लगे । तब फिर आकृति पर नहीं, प्रकृति पर, पीढ़ियों की श्रेष्ठता पर जोर दिया जाने लगेगा । अध्यात्म दर्शन की इस मान्यता को मनाने पर वैज्ञानिक विवश होंगे कि जीनयांत्रिकी द्वारा श्रेष्ठ कलमें बनाने के स्थान पर उदात्त, उत्कृष्ट चिन्तन करने वाली भावनासम्पन्न सन्ततियाँ जन्म लें । इससे ह्यूमन जेनेटीक इन्जीनियरिंग की वर्तमान मान्यताओं को तो चोट पहुँचेगी किन्तु उन्हें सही दिशा मिलेगी व भावी पीढ़ी श्रेष्ठ स्तर की होगी ।

भविष्य निर्माण के लिये सुप्रजनन भी आवश्यक

जो कुछ किया जाता है वह सारे का सारा मात्र आज की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए ही नहीं होता । उसे भविष्य को ध्यान में रखते हुए भी किया जाता है । भोजन आज का बनाया आज खाया जाता है पर अन्न भण्डार इसलिए भरा जाता है कि अगले दिनों भी उसका उपयोग हो सके । महत्वपूर्ण योजनाएँ इसी दृष्टि से बनती हैं । रहने के मकान इसी दृष्टि से बनते हैं कि उनमें बुढ़ापा कट सके और सन्तान को भी उसमें रहने का अवसर मिल सके । राष्ट्रीय प्रगति की विविधि योजनाएँ न केवल आज का समाधान ध्यान रखते हुए बनती हैं, वरन् उनके पीछे उज्ज्वल भविष्य की संरचना को भी ध्यान में रखा जाता है । युगान्तरीय चेतना से अनुप्राणित प्रज्ञा अभियान भी इसी प्रयोजन के लिए है कि अगले दिनों की व्यवस्था प्रगति समृद्धि का क्रमिक विकास चल पड़े ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भविष्य निर्माण की समस्त योजनाओं में मूर्धन्य यह है कि भावी पीढ़ियों का स्तर कैसा हो ? उसी के ऊपर समस्त सम्भावनाएँ निर्भर हैं । मात्र सम्पत्ति भर की बात सोचने से काम नहीं चलेगा । साधन जुटा देना पर्याप्त नहीं । महत्त्वपूर्ण बात स्तर की है । किसी देश का क्षेत्रफल, जनसंख्या, प्राकृतिक सम्पदा, उद्योग, शस्त्र सज्जा आदि के आधार पर उसकी सही गरिमा का मूल्यांकन नहीं हो सकता । यह सभी साधन ऐसे हैं जो तनिक-सी प्रतिकूलता उत्पन्न होने पर देखते-देखते धराशायी हो सकते हैं । स्थायी और सच्चा बल वैभव सुदृढ़ व्यक्तित्वों पर निर्भर है । वे जहाँ, जितनी संख्या में, जिस स्तर के होंगे वहाँ समर्थता और सम्पदा उसी अनुपात से विकसित होती चलेगी । नागरिकों का स्तर गया-गुजरा रहे तो साधन सम्पदा भर से उज्ज्वल भविष्य की आशा नहीं की जा सकती ।

रावण की लंका में धनबल, जनबल, शस्त्रबल और कौशल की कुछ भी कमी नहीं थी किन्तु व्यक्तित्वों का स्तर निकृष्ट रहने के कारण वह समूचा वैभव नष्टभ्रष्ट हो गया । निवासियों को असीम त्रास सहने पड़े और वे अपने सम्पर्क क्षेत्र में भी अनीति, अशान्ति का महौल बनाते रहे । दूसरों को दुःखी करते रहे और स्वयं दुःखी हुए । इसे कहते हैं व्यक्तित्वों की गिरावट ।

अब से करीब साठ वर्ष पूर्व अपने देश में महान व्यक्तित्वों का बाहुल्य था । तिलक युग, गान्धी युग पर दृष्टिपात करते हैं तो भारतीय आकाश पर उज्ज्वल नक्षत्र चमकते दीखते हैं । उन दिनों महामानवों की भरमार थी । फल यह हुआ कि हजार वर्ष की गुलामी से पददलित मनोबल में नया उभार आया और लाखों सत्याग्रहियों ने इतनी बड़ी शक्ति से जूझने का जौहर वृत अपनाया । अँग्रेज चले गये । स्वाधीनता मिली । इसे योजनाओं की, साधनों की नहीं वरन् समुन्नत व्यक्तित्वों की प्रखरता का प्रतिफल कहा जायेगा ।

इन दिनों भी जापान, इस्राइल, क्यूबा जैसे छोट-छोटे देश अपने प्रबल पराक्रम का परिचय देते देखे जाते हैं । इसका कारण वहाँ की सम्पदा नहीं वरन् नागरिकों की प्रखरता है । वह जहाँ भी होगी, साधनों की कमी न रहेगी । इसके विपरीत जहाँ गये-गुजरे निकृष्ट स्तर के लोगों की भरमार होगी वहाँ नित नये कलह और संकट खड़े दृष्टिगोचर होंगे । 'नीत्से' ने अपनी व्यंग्यात्मक शैली में इन्हें ही चाण्डाल की श्रेणी में रखते हुए जड़-मूल से समाप्त करने का प्रतिपादन किया था । इससे भले ही हम सहमत न हों, व्यक्तित्व के स्तर सम्बन्धी तथ्य एवं तर्क अपने स्थान पर सही हैं ।

मनुष्य यदि सच्चे अर्थों में मनुष्य हो तो वह उतना शक्तिशाली सिद्ध होता है जिस पर विशाल शस्त्रागार और रत्न भण्डार निछावर किये जा सकें । ऐसे लोग अपने पुरुषार्थ से कठिन परिस्थितियों में भी समुचित वैभव उपार्जित कर लेते हैं । कम पड़े तो भी मितव्वाद का जो है उसी का भावभरा वितरण करके सुख-सौभाग्य का हँसता-हँसाता वातावरण बना लेते हैं । अस्तु, यदि उज्ज्वल भविष्य की संरचना वस्तुतः अभीष्ट ही हो तो इसके लिए भावी पीढ़ी के स्तर को ऊँचा उठाने की दूरगामी योजना बननी और गम्भीरतापूर्वक क्रियान्वित होनी चाहिए । इस एक ही प्रसंग की उपेक्षा किये जाने पर वे सभी दिवा-स्वप्न निरर्थक सिद्ध होंगे, जिनमें साधनों की बहुलता के आधार पर भावी समृद्धि एवं प्रगति की मनुष्य में देवत्व तथा धरती पर स्वर्ग के अवतरण की आशा की गई है । कुपात्र के जो हाथ में है उसे भी उजाड़ देते हैं और सत्पात्रों के हाथ खाली हों तो भी वे उन्हें अपना पसीना मोती बनाकर इन्द्र और कुबेर जैसी विभूतियों से भर लेते हैं ।

भावी पीढ़ियों के निर्माण के लिए क्या किया जाय ? यह विचारने से पूर्व यह सोचना होगा कि वर्तमान जनक और जननियों को क्या सिखाया और कराया जाय । जिससे वे सुप्रजनन के उत्तरदायित्वों का सही निर्वाह कर सकें । ऊसर भूमि में कुछ भी बोया जाय, कैसी ही सिंचाई सुरक्षा का प्रबन्ध किया जाय, कुछ बनेगा नहीं । क्योंकि जब भूमि ही किसी काम की नहीं और बीज ही घुना हुआ है तो उसमें उगेगा ही क्या ? और जो उगेगा उसका सन्तोषजनक परिणाम कैसे दृष्टिगोचर होगा ?

बच्चों का शारीरिक विकास आहार-विहार, जलवायु पर निर्भर रहता है । शिक्षण के आधार पर उन्हें क्रिया-कुशल सम्पन्न भी बनाया जा सकता है । सामान्यतया इतना कर पाना ही अभिभावकों के लिए सम्भव होता है । इतने पर भी व्यक्तित्वों की प्रखरता के सम्बन्ध में यह तथ्य अनिर्णीत ही रह जाता है कि उन्हें सद्गुणी एवं प्रामाणिक कैसे बनाया जाय । इस सन्दर्भ में अधिक से अधिक इतना ही कहा या किया जा सकता है कि पारिवारिक वातावरण में सज्जनता एवं सुव्यवस्था का समावेश रखा जाय ताकि उसका प्रभाव ग्रहण करके कच्ची आयु की कच्ची मिट्टी को उपयोगी ढाँचे में ढलने का अवसर मिले । अच्छे स्कूलों में भर्ती करने को अच्छे अध्यापकों का सुयोग बिठाने की बात सारगर्भित है । इन सब प्रसंगों के सम्बन्ध में बाल-विकास में रुचि रखने वाले बहुत कुछ कहते करते भी रहे हैं और उस व्यवस्था का परिणाम भी कुछ न कुछ हितकर ही होता है ।

इतने पर भी एक रहस्य जहाँ का तहाँ ही बना रहता है कि बालकों में उस जन्मजात प्रतिभा की स्थापना कैसे हो जो परिस्थितियों की परवाह न करके उलटी दिशा में भी चलती हैं । अच्छी परिस्थितियों में पले हुओं में से कितने ही न केवल दुर्गुणी वरन् मूढ़मति भी होते हैं । इसके विपरीत विपन्न परिस्थितियों में पैदा हुए बालक बुद्धि-कौशल की दृष्टि से ऊँचे उठते भी देखे जाते हैं ।

ऐसे प्रसंग भले और बुरे दोनों ही स्तर के हो सकते हैं । बुरे परिवारों में अच्छे व्यक्तित्व उभरने पर कीचड़ में कमल की उपमा दी जाती है और श्रेष्ठ घरों में हेय सन्तान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जन्मने पर "उत्तम कुल पुलिस्त कर नाती" कहे जाने वाले रावण कुम्भकरण बनते देखे गये हैं । ऐसे ही उदाहरणों में सन्त कबीर के पुत्र कमाल का भी उल्लेख होता है। "डूबा वंश कबीर का उपजे पूत कमाल" अब एक उक्ति बन गई है जिसे उपयुक्त वातावरण की अवहेलना करके सन्तानों के कुमार्गगामी होने पर प्रयुक्त किया जाता है ।

इस सम्बन्ध में विभिन्न कारणों के प्रस्तुतीकरण में अधिक वजनदार वह प्रतिपादन है जिसमें वंशानुक्रम की परिणति का महत्व बताया जाता है । पूर्वजों की अनेक पीढ़ियों का प्रभाव रज-वीर्य के साथ गुँथा रहता है । जीन्स-क्रोमोसोम आदि का ऊहापोह वैज्ञानिक क्षेत्रों में इसी सन्दर्भ में होता रहता है । आवश्यक नहीं कि माता-पिता के सदृश ही बालक हो । कई पीढ़ी पूर्व की मातृ-परम्परा या पितृ-परम्परा के साथ जुड़े हुए विशेष तथ्य अपना काम करते रहते हैं और बहुत समय तक दबे रहने पर भी जब अनुकूल परिस्थिति पाकर उभरते हैं तो उनके विशेष परिणाम भी सन्तानों में दृष्टिगोचर होते हैं । यह भले भी हो सकते हैं और बुरे भी । पर उनका बहुत कुछ आधार वंशधरों की विशिष्टता पर ही निर्भर रहता है । सामान्य स्वभाव और निर्वाह वाले व्यक्तियों की सन्तानें भी सामान्य स्तर की गुजर-बसर करती देखी गई हैं । पर जिनमें प्रतिभा होती है, उनकी पीढ़ियों में से कुछ में ऐसे असाधारण तत्व पाये जाते हैं जिनमें परिवार स्तर की अवहेलना करके ऐसी सन्तानें जन्में जिन्हें भले या बुरे स्तर की 'विशिष्टि' कहा जा सके ।

वंशानुक्रम विज्ञान पर इन दिनों बहुत गहरी खोजें हुई हैं और पाया गया है कि सुप्रजनन के लिए जन्मदाताओं का सुसंस्कारी होना आवश्यक है । जिस प्रकार माता-पिता के रंग रूप से मिलता-जुलता शरीर बालकों का होता है, उसी प्रकार उनकी प्रतिभा एवं आदत में भी ऐसा ही साम्य पाया जाता है । विशेषतया गर्भास्थापना के दिनों उनकी जैसी मनःस्थिति रही होती है उसकी छाप सन्तान पर विशेष रूप से देखी गई है ।

शारीरिक, मानसिक रोगों के बारे में यह तथ्य बहुत पहले ही स्वीकारा जा चुका है । इसके समर्थन में अगणित प्रमाण सर्वत्र देखने को मिलते हैं । श्वास, रक्त विकार, कुष्ठ, उन्माद आदि से ग्रसित अभिभावकों की सन्तानें आरम्भ में न सही बड़े होने पर उन रोगों की शिकार अकारण ही हो जाती हैं । कई परिवारों में अल्पायु या दीर्घायु होने का सिलसिला पीढ़ियों तक चलता रहता है । कइयों में दाँत जल्दी गिरने या देर तक स्थिर रहने की परम्परा चलती रहती है । अब एक कदम आगे बढ़कर इतना परिशिष्ट और भी इस प्रतिपादन में जुड़ा है कि आदतों के सम्बन्ध में भी पैतृक विशेषताएँ सन्तान को प्रभावित करती हैं । चारित्रिक गुण-दोष भी लम्बी अवधि तक पीढ़ियों में दृष्टिगोचर होते रहते हैं । स्वभाव का भी एक ढर्रा इसी आधार पर घूमता रहता है । राजपूतों में साहसिकता और ब्राह्मणों में नम्रता की विशेषता अनायास ही पाई जाती है । वैश्य परिवार में व्यवसाय बुद्धि न केवल वातावरण के प्रभाव से विकसित होती है वरन् जन्मजात रूप से वह कौशल और रुझान अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पाया जाता है ।

इन दिनों हर क्षेत्र में उत्कृष्टता सम्बर्द्धन की आवश्यकता अनुभव की जा रही है । साधन-सामग्री से लेकर चिकित्सा, सुरक्षा आदि के सभी क्षेत्र में अधिक उत्तम को जुटाया जाता है । कपड़े और फैशन में, द्रुतगामी वाहनों के उपयोग में, विनोद मनोरंजनों में अब घटिया का तिरस्कार होता है और बढ़िया की ढूँढ़-खोज चलती है, भले ही वह महँगी ही क्यों न पड़े ?

भावी पीढ़ियों को अधिक प्रतिभावान, सुयोग्य, समुन्नत बनाने में भी यह सुरुचि काम करती है । लोग अपनी-अपनी सन्तानों को सजाने में ही नहीं समुन्नत बनाने में भी रुचि लेते हैं । इसके लिए कुछ कृपणों या असमर्थों को छोड़कर प्रत्येक अभिभावक अपनी क्षमता के अनुरूप प्रयत्न भी करता है । बात बढ़कर समाज के मूर्धन्यों की दृष्टि में भी जमी है और राष्ट्रों के कर्णधार सोचते हैं कि उनके नागरिक अधिक समर्थ एवं सुयोग्य हों । उनकी प्रतिभा से सर्वतोन्मुखी प्रगति का लाभ मिले । साथ ही यह भी सोचा जाता है कि शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से असमय, अविकसितों, खण्डित व्यक्तित्वों का उत्पादन रोका जाय । बुरी आदतों और विकृत मनोभावों वाले व्यक्ति न केवल अपने लिए ही वरन् सम्बद्ध लोगों के लिए भी संकट उत्पन्न करते हैं । उनके कुकृत्यों द्वारा समूचे समाज को क्षति पहुँचती है । इसलिए जिस प्रकार अपराधियों की, आक्रमणकारी, आतंकवादियों की रोकथाम की जाती है, उसी प्रकार कुप्रजनन पर भी प्रतिबन्ध लगाया जाय । अच्छे उत्पादन के साथ ही यह भी ध्यान रखा जाय कि हेय या निकृष्ट के सम्बन्ध में प्रतिरोधात्मक प्रबन्धों की व्यवस्था की जा रही है या नहीं ।

देवमानवों का निर्माण सुगढ़ सुसंस्कारी दम्पत्ति ही कर पाते हैं । स्तर बदले बिना सुसंतति को जन्म दे पाना सम्भव नहीं । ऊपरी उपचार का, शिक्षा का, वातावरण का कुछ तो प्रभाव पड़ता ही है, पर वह इतना नहीं होता जिससे जन्मदाताओं की स्थिति में सर्वथा विपरीत प्रकार का व्यक्तित्व विनिर्मित हो सके । अच्छों के बुरे होना तो सरल है, पर बुरों के अच्छे उत्पन्न करने में असाधारण पुरुषार्थ की आवश्यकता पड़ेगी । शुभारम्भ वहीं से करना होगा जहाँ उत्पादनकर्त्ताओं का स्तर साधना पराक्रम द्वारा अभीष्ट प्रयोजन की सिद्धि में समर्थ बनाया जा सके ।

महामानवों की नई पीढ़ी परिष्कृत बीजकोषों से जन्मेगी

सामान्यतया यह समझा जाता है कि मनुष्य का शारीरिक दृष्टि से बलिष्ठ होने में आहार-विहार का और मानसिक दृष्टि से बुद्धिमान होने में शिक्षा व्यवस्था का हाथ होता है । आमतौर से दोनों प्रकार की समर्थताएँ प्राप्त करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए इसी प्रकार के उपाय भी अपनाए जाते हैं । शरीर को स्वस्थ सुदृढ़ बनाने की इच्छा होते ही पौष्टिक आहार एवं व्यायाम, संयम, ब्रह्मचर्य जैसे साधनों को जुटाया जाता है । स्वयं विद्वान बनने या स्वजन सम्बन्धियों को बुद्धिमान बनाने के लिए अध्ययन-अभ्यास का उपक्रम अपनाया जाता है । ज्ञान वृद्धि के लिए सत्संग, स्वाध्याय की और कला-कौशल की प्रवीणता के लिए अभ्यास, अनुभव का आश्रय लिया जाता है । यह उपयुक्त भी है और प्रचलित भी । इतने पर भी इस मार्ग में एक भारी असमंजस यह बना रहता है कि बहुतों की मूल प्रकृति ही कुछ विचित्र होती है और उन पर इस उत्कर्ष प्रयत्नों का कोई कारगर परिणाम प्रस्तुत नहीं होता । मन्दबुद्धि, चंचल, उद्धत, अनगढ़ प्रकृति के ऐसे कितने ही व्यक्ति पाये जाते हैं जिन पर उपयुक्त शिक्षण का प्रभाव भी नगण्य जितना ही होता है । यही बात शारीरिक विकास के सन्दर्भ में भी है । कुछ बालक ऐसे होते हैं जिनकी लम्बाई, मोटाई अपनी निजी विलक्षणताओं के साथ जुड़ी होती है । कई ठिगने, दुबले शरीर वाले ऐसे होते हैं जिन्हें कुछ भी खिलाया या कराया जाय अपनी निजी विशेषता से बहुत अधिक आगे-पीछे नहीं हटते बढ़ते । साधनों की असमर्थता वहाँ भी प्रकट होती है जहाँ दरिद्र परिवारों के व्यक्ति भी लम्ब तडंग और भारी-भरकम पाये जाते हैं जबकि साधन-सम्पन्न परिवारों में जन्मे, पले व्यक्ति भी दुबले, ठिगने एवं शारीरिक दृष्टि से असमर्थ जैसी स्थिति में बने रहते हैं ।

विकास साधनों की उपयोगिता आवश्यकता से कोई इन्कार नहीं करता । वे अपना काम करते हैं और करना चाहिए । इतने पर भी यह असमंजस अपने स्थान पर यथावत् ही बना रहता है कि मनुष्य की अपनी निजी विशेषता एक सुनिश्चित तथ्य जैसी बनकर भारी चट्टान की तरह अड़ी बैठी रहती है और बहुत हिलाने-डुलाने, उठाने-हटाने का प्रयत्न करने पर भी उत्साहवर्द्धक परिणाम उपलब्ध करने के मार्ग में बाधा ही बनी बैठी रहती है । देखा गया है कि शारीरिक और मानसिक विकास में मनुष्य की निजी विशेषता का असाधारण महत्व है । सुधार प्रयत्नों से उस पर सीमित प्रभाव ही होता है और परिवर्तन भी यत्किंचित ही हो पाता है । उदाहरण के लिए, मनुष्य के चेहरे, रंग एवं कार्यशक्ति पर दृष्टिपात किया जा सकता है । अफ्रीका के नीग्रो, योरोप के गोरे, चीन के मंगोल, अरब के तगड़े, कांगो के बौने एकत्रित करके यह जाना जा सकता है कि उनकी आकृति ही नहीं, प्रकृति में भी भारी अन्तर पाया जाता है । चेहरा, नाक, आँख, होंठ, दाँत, बाल, नाखून जैसे अंगों को देखकर यह जाना जा सकता कि यह भिन्नता उन समुदायों की निजी विशेषता है । इसका परिस्थितियों या साधनों से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है । काले नीग्रो, अमेरिका जैसे शीत प्रधान देश में गोरों के बीच बसते हुए भी अपने रंग और चेहरे को पीढ़ी-दर-पीढ़ी यथावत् बनाये रहते हैं । इसी प्रकार गोरे लोग दक्षिण अफ्रीका जैसे गर्म क्षेत्र में शताब्दियों से बसे होने पर भी काले नहीं हुए । उनकी सन्तानें गोरे रंग की तथा माँ-बाप जैसे चेहरों की ही होती हैं जबकि पड़ौस में बसे मूल निवासी अपने काले रंग, घुँघराले छोटे बाल, चौड़ी नाक, मोटे होंठ जैसी विशेषताएँ यथावत् बनाए रहते हैं । सन्तानें इसी प्रकार उत्पन्न होती रहती हैं ।

विकासवाद के अनुसार प्राणियों को आदिम काल से लेकर अर्वाचीन परिणति तक पहुँचने में लाखों वर्ष लगे हैं और उतार-चढ़ावों से होकर गुजरना पड़ा है । वह प्राणियों की मनःस्थिति और प्रकृतिगत परिस्थितियों के तालमेल का परिणाम हुआ । अब इसमें एक कड़ी प्रशिक्षण की, सुधार प्रयत्नों की और जोड़ी जा सकती है जो प्राणि-विकास के भूतकाल में नहीं जुड़ सकी । इतने पर भी प्राणियों की अपनी निजी विशेषता इतनी हठीली है कि उसे द्रुतगति से बदल जाने और समय का माँग को पूरा कर सकने के लिए सहमत करना नितान्त कठिन है । अन्य प्राणियों की आकृति-प्रकृति में अन्तर हो सकता हो तो उनके स्वयं के लिए तथा विश्व-व्यवस्था के लिए कितना उपयुक्त होगा ? उस प्रसंग को छोड़ दें तो भी मानवी प्रगति की जो आकुल-व्याकुल आवश्यकता समझी जा रही है, उसकी पूर्ति में प्रधान अवरोध वंश-परम्परा की हठवादिता ही सबसे बड़ा कारण है जिसके कारण प्रशिक्षण और साधन का प्रबन्ध करने पर भी अभीष्ट सफलता मिलती दिख नहीं रही है ।

मानवी प्रकृति के चार अंग हैं—(१) कायिक बलिष्ठता (२) मानसिक कुशाग्रता (३) मान्यताएँ एवं आदतें, (४) आकांक्षाएँ एवं सम्वेदनाएँ । सुधार प्रयत्नों से इन चारों विभूतियों में कुछ भी सुधार नहीं हो सकता ऐसा तो नहीं कहना चाहिए । तो भी इतना तो मानना ही होगा कि वंश परम्परा से चली आ रही निजी विशेषताओं में आवश्यक हेर-फेर किए बिना सुधार प्रयत्नों में सीमित प्रगति ही सम्भव हो सकेगी और उसकी गति बहुत धीमी होगी । खासतौर से तब, जबकि उपर्युक्त विशेषताओं को एक साथ विकसित करके नवयुग के अनुरूप समान व्यक्तित्वसम्पन्न, परिपूर्ण, सुविकसित, समर्थ, समुन्नत एवं सुसंस्कृत मनुष्य समाज के विनिर्मित करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही हो ।

इस सन्दर्भ में विज्ञजनों का ध्यान इस तथ्य पर गया है कि नवयुग के अनुरूप समुन्नत मनुष्य की पीढ़ियाँ विकसित करने के लिए उसकी मौलिक संरचना एवं विशेषता का द्वार खटखटाया जाय और उस मर्मस्थल में हेर-फेर करके वह मार्ग निकाला जाय जिससे व्यक्तित्व के मर्मस्थल को सुधारना और मौलिक विशेषताओं से युक्त मनुष्य का निर्माण संभव हो सकेगा । घटिया पीढ़ियाँ इन दिनों शिक्षा और स्वास्थ्य संवर्द्धन के प्रयासों को निरर्थक बना रहा है । पर यदि अगले दिनों बढ़िया व्यक्तित्व ढल सके तो भविष्य में उनकी पीढ़ियाँ समुन्नत स्तर की बनती चली जाएँगी । तब उनके लिए न तो सुधार शिक्षण के भारी प्रयत्न करने होंगे और न प्रगति प्रयासों के असफल होते रहने का रोना, रोना पड़ेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ समय पूर्व यह माना जाता था कि मनुष्य की निजी विशेषताएँ ईश्वरप्रदत्त हैं, वे भाग्य-विधान या पूर्व संचित संस्कारों के कारण पल्ले बँधी होती हैं और उन्हें बदल सकना मनुष्य के बस से बाहर है । तब इस क्षेत्र के परिवर्तन के लिए किसी दैवी शक्ति के अनुग्रह से ही गुत्थी सुलझने की आशा की जाती थीं । व्यक्ति का परिवर्तन, पीढ़ियों का समुन्नतीकरण यों अभीष्ट तो सदा से रहा है और उसके लिए यथासंभव प्रयत्न भी चला है, इतने पर भी परिणाम की दृष्टि से प्राय: निराशा जैसा ही होना पड़ा है । प्रयत्नों की असफलता को दैवी दुर्विपाक मानकर मन समझाने और संतोष करने के अतिरिक्त उन दिनों और कोई चारा था भी नहीं ।

अब परिस्थितियों में भारी अन्तर हुआ है । वंश परम्परा को विधि-विधान मानते रहने की अपेक्षा अब मनुष्य के हाथ में ऐसे सूत्र लग गए हैं जिनसे यह विश्वास बँधा है कि मानवी व्यक्तित्व के हर क्षेत्र में परिवर्तन सम्भव हो सकता है । वंश-परम्परा के उद्गम स्रोतों को ढूँढ़ निकालने में अब सफलता मिल गई है । तदनुसार यह योजना बन रही है कि भावी पीढ़ियों का इच्छित निर्माण उन मर्मस्थलों में परिवर्तन करने से सम्भव हो सकेगा जो व्यक्ति की आकृति एवं प्रकृति को गढ़ने के लिए मूलतया उत्तरदायी है ।

वंश परम्परा को अब शाप, वरदान, भाग्य या अपरिवर्तनीय तथ्य नहीं माना जाता वरन् उसे एक ऐसा प्रवाह माना जाता है जो शुक्राणुओं और डिम्बाणुओं के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी बहता चला जाता है । यह प्रवाह जटिल भी है और हठी भी । फिर भी यह गुंजाइश विद्यमान है कि उसमें प्रयत्नपूर्वक परिवर्तन किया जा सकता है और प्रवाह की पुरातन दिशाधारा को उलटकर उसे अभीष्ट दिशाधारा में बह चलने के लिए सहमत किया जा सकता है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि वंश परम्परा के कारण स्वास्थ्य, कौशल, स्वभाव आदि की शारीरिक, मानसिक एवं अन्त:करणपरक जो परिस्थितियाँ वर्तमान पीढ़ी के गले बँधी हुई हैं, उन्हें उतारा जा सकता है साथ ही उनमें ऐसा सुधार समावेश किया जा सकता है, जो भविष्य के समुन्नत मनुष्य के लिए अभीष्ट आवश्यक समझा गया है ।

प्रजनन का उत्तरदायित्व वहन करने के लिए भूतकाल में मात्र शुक्राणु और डिम्बकीट के सम्मिलन को श्रेय दिया जाता रहा है । पर अब उसके भीतरी अति सूक्ष्म, अति समर्थ घटकों का पता चला है जिन्हें 'गुणसूत्र' कहा जाता है । भूतकाल में पदार्थ की सबसे छोटी इकाई परमाणु थी । पर अब उसके अन्तराल में अनेक लघुकाय घटक ढूँढ़ निकाले गये हैं । इन्हें इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन, न्यूट्रॉन, पॉजिट्रॉन आदि नामों से जाना जाता है । ठीक इसी प्रकार अब प्रजनन घटक शुक्राणु-डिम्बाणु नहीं रहे वरन् उनके भीतर पाये जाने वाले अत्यन्त सूक्ष्म घटक 'गुणसूत्र' न केवल प्रजनन के वरन् वंश परम्परा के साथ लिपटी हुई अनेकानेक क्षमताओं एवं विशेषताओं को हस्तान्तरित करने वाले माने गये हैं ।

यों यह 'गुणसूत्र' शरीर की समस्त कोशिकाओं में निहित हैं, पर प्रजनन कृत्य को सफल बनाने में शुक्राणुओं और डिम्बाणुओं में पाये जाने वाले घटक ही तात्कालिक भूमिका का निर्वाह करते हैं । इनके अन्तराल में न केवल नई सन्तान की आकृति वरन् प्रकृति भी घुली होती है जो पीढ़ी दर पीढ़ी पानी की लहर की तरह आगे-आगे बढ़ती जाती है । इन गुणसूत्रों के साथ संरचना करने वाले रासायनिक पदार्थ तो रहते ही हैं, साथ ही एक ऐसा अदृश्य विद्युत प्रवाह भी घुला रहता है जिसमें पूर्व पीढ़ियों के अनेकानेक रहस्य सभी कायिक, मानसिक विशेषताएँ जुड़ी रहती हैं । इन गुणसूत्रों में पितृ-पक्ष और मातृ-पक्ष दोनों का सम्मिश्रण रहता है । न केवल पिता, दादा, परदादा, सरदादा आदि की वरन् माता, नानी, परनानी, सरनानी आदि कितनी ही पूर्व पीढ़ियों की विरासत सन्निहित रहती है । आवश्यक नहीं कि वे सभी विशेषताएँ एक साथ नई सन्तान में प्रकट हों वरन् अनुकूलता के अनुरूप उनमें से कुछ विशेषताएँ संतान में प्रकट होती हैं और कुछ फिर किसी उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में चुपचाप पड़ी रहती हैं । इनके प्रवाह में हर नई पीढ़ी के अनुभव, अनुदान जुड़ते चले जाते हैं । आदि मानव की तुलना में अर्वाचीन पीढ़ी में पाये जाने वाले गुणसूत्र अत्यधिक विकसित हैं । उनके साथ एक के बाद दूसरी पीढ़ी के अनुदान जुड़ते चले आते हैं और सब मिलाकर स्थिति इतनी साधन सम्पन्न बन गई है कि उनमें पाये जाने वाले पक्षों में यदि उपयोगी, अनुपयोगी का भेद एवं उपयोग करना संभव हो सके तो हर स्तर की संतति उत्पन्न कर सकना भी सरल सिद्ध हो सकता है ।

गुणसूत्रों की संरचना एवं व्याख्या-विवेचना काफी जटिल है तो भी मोटी जानकारी के रूप में वंशानुक्रम के विद्यार्थी भी सामान्य ज्ञान से सम्बन्धित कुछ जानकारियाँ प्राप्त कर लेते हैं । इस प्राथमिक परिचय में जो सिखाया जाता है उसका सारांश यह है कि—"मानव-जीवन के विधायक कुछ उत्पादक तत्व होते हैं, जिन्हें बीजकोष कहते हैं । प्रत्येक व्यक्ति के बीजकोष अपने विशिष्ट गुणों से युक्त होते हैं । इन्हीं विशिष्ट गुणों को लेकर बालक जन्म लेता है । किसी भी व्यक्ति के गुण, उसके जनक माता और पिता पर ही आधारित नहीं हैं, वरन् उसके दादा, परदादा और पूर्वजों से भी संक्रमित होकर आते हैं ।"

यह भी निर्विवाद है कि जो बोया जायेगा वही उगेगा । वृक्ष का स्वरूप और वैभव उसी स्तर का होगा जैसा कि बीज था । अतएव नवनिर्माण में उच्चस्तरीय व्यक्तियों की फसल उगाने और उससे विश्व-वसुधा का भंडार भरने की योजना बनाते समय ध्यान इस बात पर भी केन्द्रित करना होगा कि उसके लिए उपयुक्त स्तर के बीज की व्यवस्था की जाय । अच्छी फसल उगाने के लिए बीज भंडारों का दरवाजा खटखटाया जाता है । अच्छी नस्ल उत्पन्न करने के लिए परिपुष्ट नर ढूँढ़े जाते हैं । नवयुग की संरचना में अग्रगामी भूमिकाएँ प्रस्तुत कर सकने वाले महामानवों की पौध उगाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए भी उच्चस्तरीय गुणसूत्रों की तलाश करनी पड़ेगी । वे प्रस्तुत न मिलें तो फिर जो हैं उन्हीं को इस स्थिति तक परिष्कृत करना होगा कि अभीष्ट पीढ़ियों का निर्माण सम्भव हो सके ।

हम सुधरें तो बच्चे सुधरें—वैज्ञानिक दृष्टि

"बच्चा उतना प्राचीन होता है जितना उसके पूर्वज" (दि चाइल्ड कैन बी ऐज ओल्ड ऐज हिज एन्सेस्टर्स) वैज्ञानिकों के इस सिद्धान्त का सीधा अर्थ यह है कि बच्चों में दिखाई देने वाली आज की विकृतियों में अधिकांश उनके माता-पिता और पितामहों का हाथ है । इस सिद्धान्त के अनुसार बच्चे जैसे हैं उसका सीधा सम्बन्ध जातीय गुण (रेशनल हैबिट्स) से है । इसलिये उनमें ठोस सुधार भी हम अपने सुधार और परिवर्तन से ही ला सकते हैं ।

जीव-विज्ञान (बायोलाजी) के अनुसार मनुष्य शरीर का निर्माण जिन छोटे-छोटे परमाणुओं से हुआ है, उन्हें (कोश सेल) कहते हैं । पर कोश से अन्तिम सूक्ष्म कण होते हैं जिन्हें गुणसूत्र (क्रोमोसोम) कहते हैं, यह गुणसूत्र ही बच्चे की प्रारम्भिक विचार प्रणाली और संस्कार के रूप में दिखाई देते हैं । बच्चे की मानसिक रचना जिन ४८ गुणसूत्रों से होती है, उनमें एक कोश अर्थात् २४ गुणसूत्र (क्रोमोसोम) पिताप्रदत्त और २४ गुण सूत्र माता के रज से आये हुये होते हैं । इन्हीं से बाद में बच्चा अपनी मानसिक स्थिति स्वतन्त्र ढंग से विकसित करता है । इसलिये यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि बच्चे में आज का संस्कार जो भी है, वह उसके माता-पिता, बाबा-नाना, परबाबा और नाना के पिता आदि से ही कहीं न कहीं से आये हैं । अच्छे हैं या बुरे उनका बच्चे से इतना ही सम्बन्ध है कि वह यदि चाहें तो अपने आप में आकस्मिक परिवर्तन करके अपना जीवन एक नई दिशा की ओर मोड़ दें अन्यथा उनकी आज की स्थिति के लिये पूर्णतया पूर्वज ही उत्तरदायी हैं ।

मनोवैज्ञानिक भी इस तथ्य का मानसिक प्रतिपादन बड़े अच्छे ढंग से उदाहरण देकर करते हैं । कुछ बच्चे ऐसे होते हैं, जिन्हें आवश्यकता नहीं होती तो भी कोई वस्तु पेन्सिल आदि चुरा लेते हैं । मनोवैज्ञानिक इसे 'क्लैक्टोमीनिया' कहते हैं । मनोवैज्ञानिक के अनुसार यह 'क्लैक्टोमीनिया' किसी न किसी पूर्वज का ही गुण होता है, जो बच्चे में अकारण ही पनप उठता है और उसे बाग में उगे झाड़-झंखाड़ की तरह उखाड कर फेंका न जाये तो वह खतरनाक रूप से बढ़ता ही रहता है ।

जेरार्ड के एक ९ वर्षीय बच्चे को रायल कालेज में भरती किया गया । यहाँ प्राय: सभी उच्च परिवारों के होते हैं । इस बच्चे का सम्बन्ध भी एक बहुत सम्पन्न परिवार से था, पर वह प्रतिदिन किसी न किसी लड़के के कमरे में घुस कर गुड़ चुराकर खा लिया करता । उसके लिये यद्यपि गुड़ का प्रबन्ध था तो भी उसकी यह आदत नहीं छूटती थी । मनोवैज्ञानिकों ने बाद में काफी खोज की तब पता चला कि उसकी माता के पिता (बच्चे का नाना) को घर में गुड़ चुराकर खाने की आदत थी, उसका यह संस्कार ही लड़के की माँ के द्वारा बच्चे में विकसित हुआ । चोरी, दंगा-फसाद, चिड़चिड़ापन, भय, क्रोध ऐसी सभी बुराइयाँ आज के बच्चों की अपनी ही नहीं होतीं उनका सम्बन्ध हमसे अर्थात् पहले की पीढ़ियों से ही होता है ।

आज के खराब विचार कल के बच्चे में बुरे संस्कारों के रूप में आ सकते हैं, तो अच्छे विचार और आचरण आने वाली सन्तानों को अच्छे संस्कार भी दे सकते हैं । पैसाडोना जेल में एक विचित्र घटना देखने में आई । एक ही परिवार की तीन पीढ़ी के लोगों में लगातार अपराधी मनोवृत्ति पाई गई । उस परिवार में जन्म लेने वाले प्राय: सभी को किसी न किसी अपराध में जेल जाना पड़ा, किन्तु तीसरी पीढ़ी का एक लड़का बड़ा संयमी और गोल्फ का खिलाड़ी निकला । मनोवैज्ञानिकों ने जाँच करके बताया कि उस लड़के के बाबा की बड़ी इच्छा रहती थी कि वह गोल्फ खिलाड़ी बने । जहाँ कहीं भी गोल्फ होता वह देखने अवश्य जाता । घोड़ा न होने से वह खेल तो नहीं पाया पर आजीवन उसी के स्वप्न देखता रहा । वैज्ञानिकों की राय में वही संस्कार इस बच्चे में दिखाई दिये ।

संस्कारों की शक्ति इतनी बलवान् होती है कि वह आने वाली पीढ़ी के मन ही नहीं शरीरों को भी प्रभावित कर सकती है । फरवरी १९६२ के मासिक कादम्बिनी अंक में—'मत्स्य कन्यायें' शीर्षक से डा. विश्वनाथ राय ने अपनी एक निजी घटना का विवरण देते हुये बताया है कि—"१९५५ में मैंने एक रोगिणी का प्रसव कराया । प्रसव में मैंने देखा कि पैर के बदले एक पुच्छाकार माँस पिण्ड बाहर आया और फिर देह, सिर अन्त में फूल (प्लेसेंटा) प्रसव हुआ । बालक के नाभि के ऊपर का अंश तो मनुष्याकृति से मेल खाते थे नीचे के नहीं । प्रसव के बाद ही बालक मर गया । विकलांग शिशु का एक्सरे करके मैंने देखा कि उसके ऊपरी भाग की सभी हड्डियाँ सही गठित हुई हैं । परन्तु कटि प्रदेश में कोई हड्डियाँ न थीं । अस्थि-चिह्न मात्र प्रकट होकर रह गये थे ।"

लेखक ने इस विचित्र प्रसव के लिये गर्भिणी की मानसिक स्थिति को दोषी बताया है । इसके लिये आपने डा. कुलिगा की खोजों का हवाला देते हुए बताया है कि जच्चा की मानसिक उत्तेजनाओं के कारण ऐसी विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं ।

यह घटनाएँ और वैज्ञानिक शोधें दोनों इस बात में एकमत हैं कि आज के बच्चे कल के पूर्वजों की ही मानसिक स्थिति और आचरण के अनुरूप हैं । हमारे सोचने करने की प्रणाली भली हो, उदात्त हो तो आने वाली सन्तान भी महान् हो सकती है । लूले-लँगड़े विचार भद्दे-भोंडे आचरण से तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैसी ही अस्त-व्यस्त सन्तानें हो सकती हैं, जैसी आज दिखाई दे रही हैं ।

व्यक्तित्व विकास के कुछ नये पुराने तरीके

आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य की चेतना का महत्व तो समझा है पर उसे खोपड़ी में भरे हुए लिबलिबे पदार्थ तक सीमित माना है । ऐसी दशा में चेतना विकास के लिए उनके प्रयत्न इसी परिधि तक सीमित रहे हैं कि किस प्रकार इस क्षेत्र की हलचलों में हेर-फर किया जा सके ।

मस्तिष्कीय क्षमता को ही व्यक्तित्व का विकास समझने वाले वैज्ञानिकों ने इन दिनों इस संदर्भ में कई दृष्टियों से विचार किया और कई उपाय सोचे हैं । वे यह भी मानते हैं कि परिवार एवं समाज के वातावरण का मनुष्य के चिन्तन एवं स्वभाव पर असर पड़ता है इसलिए शिक्षा तथा परम्परा के क्षेत्र में कुछ ऐसा समावेश होना चाहिए, जिसके प्रभाव से आज का मनुष्य कल अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमान. साहसी और सद्गुणी हो सके ।

इसके अतिरिक्त उनका विशेष ध्यान इस बात पर है कि 'ब्रेन वाशिंग' के कोई कारगर उपाय ढूँढ़ निकाले जायँ । इस सन्दर्भ में कम्युनिष्ट देश सबसे आगे हैं । उन्होंने अपने विरोधियों का सफाया करके सिरदर्द से छुटकारा पाने के उपायों में अत्यधिक उत्साह दिखाया है, वहाँ हलका-फुलका यह प्रयोग भी किया है कि प्रति-पक्षी मान्यता वालों पर ऐसे मनोवैज्ञानिक दबाव डाले जायँ ताकि वे अपनी पूर्व-मान्यता को छोड़कर नये निर्देशों को हृदयंगम करने के लिए स्वेच्छापूर्वक सहमत हो जायँ । इस प्रयास में समझाने-बुझाने, अभीष्ट वातावरण में रहने, भय-प्रताड़ना से आतंकित करने, विवशता का बोध कराने, लालच दिखाने जैसे उपायों के सहारे असहमत को सहमत बताने का प्रयत्न किया जाये । यही 'ब्रेन वाशिंग' की प्रक्रिया है, जो उन देशों में उत्साहदर्द्धक चली और एक सीमा तक सफल भी हुई है । परिस्थितियाँ मनुष्य के स्वभाव, रुझान एवं निर्धारण को बदलने के लिए बाधित करती रही हैं ।

परिस्थितियों से प्रभावित करने वाले तरीकों में लोक शिक्षण का एक सौम्य एवं सर्वविदित तरीका है । शिक्षा में स्कूली पाठ्यक्रम के साथ जुड़ी हुई दिशाधारा तो प्रमुख है ही । इसके अतिरिक्त सर्वसाधारण द्वारा पढ़ा जाने वाला साहित्य भी ऐसा है जो यदि उद्देश्यपूर्ण हो तो अपने पाठकों को प्रभावित किये बिना नहीं रहता । मनोरंजन एवं जानकारियाँ बढ़ाने के उद्देश्य से लिखा गया साहित्य हर दिशा में बहुत छपता और बहुत पढ़ा जाता है । समाचार पत्र और विचार प्रधान पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, विक्रय एक अच्छा खासा उद्योग है । कथा-साहित्य एवं उपन्यास संसार भर में बहुत पढ़े जाते हैं । भिन्न-भिन्न विषयों की गम्भीर जानकारियाँ देने वाला समीक्षा प्रधान साहित्य भी विचारशील लोगों की बौद्धिक भूख बुझाता है । धर्म, अध्यात्म, दर्शन, विवरण तथ्यों को लेकर कितने ही छोटे-बड़े ग्रन्थ छपते रहते हैं । संगीत अभिनय, नाटक आदि दृश्य एवं श्रव्य प्रधान साधन भी एक प्रकार से साहित्य की ही आवश्यकता पूर्ण करते हैं । रेडियो, टेलीविजन के सरकारी तन्त्र भी प्रकारान्तर से लोकमानस को प्रभावित करने की भूमिका निभाते हैं । साहित्यकार, कलाकार, चित्रकार, मूर्तिकार, गायक, वक्ता मिलजुल कर लोकमानस का निर्माण ही करते हैं, यह दूसरी बात है कि विचारणा को प्रभावित करने वाली यह साहित्य शक्ति किस दिशा में प्रवाहित होती है और क्या परिणाम उत्पन्न करती है । हर हालत में उसकी बौद्धिक चेतना को प्रभावित करने वाली क्षमता को बिना किसी ननुनच के स्वीकार करना ही होगा ।

आमतौर से यह साहित्य तन्त्र इन दिनों मात्र विनोद और जानकारी बढ़ाने भर के काम आता है । यदि इसे दिशाबद्ध किया जा सके तो लोकमानस को दिशा विशेष में ढालने के लिए भी कारगर उपाय की तरह काम आ सकता है । इसका प्रयोग कम्युनिस्ट देशों में तत्परतापूर्वक हुआ है । इस समूची ज्ञान क्षमता को उन्होंने सरकारी नियन्त्रण से लेकर इस प्रकार ढाला है कि उसके परिपक्व और अपरिपक्व दोनों ही स्तर के लोग उस मान्यता को सर्वोपरि स्वयं सत्य की तरह मानने, अपनाने के लिए अनायास ही बाधित होते चले जायँ । रूस, चीन और उनके प्रभाव क्षेत्र वाले देशों में सामान्य नागरिकों की मानसिक स्थिति ऐसी ही है जिसे सम्मोहनग्रस्त कहा जाय तो कुछ भी अत्युक्ति न होगी । इससे पूर्व द्वितीय महायुद्ध से पूर्व ऐसी स्थिति जर्मनी, इटली आदि में तत्कालीन अधिनायकवादी शासन तन्त्र ने उत्पन्न की थी । नाजीवाद का पक्षधर लोकमानस बनाने में हिटलर, मुसोलिनी आदि ने अपने देशों के समूचे बौद्धिक तन्त्र को जुटा दिया था ।

इन दिनों जन-तन्त्र के नाम पर मनुष्य के मौलिक अधिकारों को दुहाई देकर कुछ भी लिखा, छापा जा रहा है और उससे जनसाधारण की मानसिक स्थिति विचित्र एवं विकृत बनाई जा रही है । फिर भी यह आशा रखी जा सकती है कि यदि कभी मूर्धन्य लोगों ने साहित्य और कला को अस्त-व्यस्त, दिशाविहीन न होने देने की बात सोची और प्रयत्नपूर्वक उसे निकृष्टता के समर्थन से विरत बनाकर सत्प्रवृत्ति सम्बर्द्धन में लगाया तो निश्चय ही देवमानव ढालने, देवमानव निर्मित करने में आशाजनक सफलता मिलेगी ।

नये युग की आवश्यकता पूर्ण कर सकने में समर्थ व्यक्तित्व वाले जनसमुदाय ढालने में मनीषियों का निश्चित मत है कि परिवारों की आचार-संहिता, कार्य-पद्धति, विधि-व्यवस्था, परम्परा एवं रीति-नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की आवश्यकता है । आज परिवारों को बनाने, बढ़ाने एवं चलाने में बुरी तरह स्वेच्छाचार घुस पड़ा है । कुटुम्ब के निर्वाह साधन जुटाने और सदस्यों की फरमाइशें पूरी करने में ही समय तथा साधन चुक जाते हैं जो उस परिवार के बौद्धिक एवं चारित्रिक विकास की असाधारण भूमिका निभा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते थे । सभी जानते हैं कि परिवारों की प्रयोगशाला में ही गुण, कर्म, स्वभाव का ढाँचा गढ़ा जाता है । उस तन्त्र को उद्देश्यपूर्ण आदर्श समर्थक बनाकर ही यह आशा की जा सकती है कि विश्व के समुदाय को उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर किया जा सकेगा ।

मनुष्य को अधिक समर्थ, समुन्नत बनाने के टेड़े-तिरछे एवं शार्टकट उपाय ढूँढ़ने वालों ने रसायनों का प्रयोग करने तथा विद्युत प्रवाहों से प्रभावित करने के तरीके ढूँढ़े हैं और उन्हें छोटे जानवरों पर प्रयोग करके यह पाया है कि यह प्रयोग मनुष्यों को अभीष्ट स्तर का बनाने में भी कारगर हो सकते हैं ।

उदाहरणार्थ, अठारहवीं शताब्दी के अन्त में पेनफील्ड ने 'ब्रेन सेण्टर्स' को जानने के लिये जो प्रयोग आरम्भ किये, उनकी शृंखला अभी चल ही रही है । मस्तिष्कीय विज्ञानी कहते हैं कि स्थूल मस्तिष्क के दो भाग होते हैं—एक पुराना एनीमल ब्रेन (पाशविक संचित कुसंस्कारों एवं अन्तःप्रवृत्तियों से युक्त) एवं दूसरा ऊँचे स्तर का नया मस्तिष्क जो मात्र मनुष्यों को ही मिला है । पहले में दर्द, भय, भूल, यौन-इच्छा, थकान, आक्रमण आदि के केन्द्र होते हैं जो मुख्यतः जीवन को बनाये रखने एवं नस्ल को जीवित रखने के लिये जरूरी हैं । जो दूसरा नया मस्तिष्क है उसमें और भी अधिक विकसित प्रिफ्रण्टल लोब होते हैं जिनका कार्यक्षेत्र विशुद्धतः बौद्धिक है । तर्क बुद्धि, सिविक सेन्स, आपसी व्यवहार, योजनाबद्ध कार्यक्रम का निर्धारण आदि यहीं निश्चित किये जाते हैं । भावनात्मक आवेगों पर नियन्त्रण यहीं से होता है ।

उदाहरणार्थ, प्रयोगशाला में विद्युतीय इलेक्ट्रोडों के माध्यम से बिल्ली की मानसिक स्थिति ऐसी बना दी गई है कि वह चूहे पर आक्रमण का स्वभाव भूलकर उनसे डरने लगी । खरगोश और शेर की कुश्ती करादी गई तो शेर दुम दबाकर एक कोने में जा बैठा और खरगोश ने इस प्रकार हमला बोला मानो उसे अपनी बहादुरी का, जीत का पूरा पक्का विश्वास हो । आमतौर से पशु अपने सजातियों से ही यौन सम्बन्ध स्थापित करते हैं, पर इलेक्ट्रोडों से प्रभावित जीवों ने अन्य जाति वालों के साथ यौन सम्बन्ध स्वीकारने में उत्साह दिखाया । इसी प्रकार वे अपने अभ्यस्त आहार को छोड़कर अन्य प्रकार का आहार अपनाने लगे । अधिक नींद लाने या बिना सोये ही बहुत समय तक स्वेच्छापूर्वक कार्यरत रहने में भी सफलता मिल गई ।

विद्युतीय उपचारों के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के प्रयोग भी पिछले दिनों चलते रहे हैं । इनमें से एक है प्राण प्रहार—हिप्नोटिज्म । दूसरा है रासायनिक उपचार । मस्तिष्क को एक सीमा तक इन दोनों साधनों से प्रभावित करने में सफलता बहुत दिनों से मिलती आ रही है । अब उन साधनों को नये ढंग से, नये प्रयोजन के लिये प्रयुक्त करने की बात सोची गई है । हिप्नोटिज्म से प्रभावित व्यक्ति अपनी स्वाभाविक मनःस्थिति को भूल जाते और प्रयोक्ता के सन्देशों को शिरोधार्य करते हुए वैसा ही सोचते, वैसा ही करते हैं । शराब, भाँग, गाँजा, अफीम आदि का नशा करने के बाद मस्तिष्क की स्थिति असामान्य हो जाती है और मनुष्य कुछ का कुछ करने लगता है । अपने ऊपर से अपना नियन्त्रण हट जाने और रसायनों का प्रभाव प्रमुख बनने की बात को यदि अचेतन के परिवर्तन में प्रयुक्त किया जाय तो सफलता कहाँ तक मिल सकती है, इसकी जाँच-पड़ताल इन दिनों चल रही है ।

जड़ी-बूटियों के प्रभाव से वृद्धावस्था को नवयौवन में बदल देने की प्रक्रिया प्राचीनकाल में 'काया-कल्प' के नाम से प्रयुक्त होती थी । वयोवृद्ध च्यवन ऋषि की आश्वनी कुमारों ने ऐसे ही प्रयोग के आधार पर नवयौवन प्रदान करने की कथा है । ययाति को उसके पुत्र का प्रत्यारोपण करके जराजीर्ण स्थिति से नव यौवन दिया गया था । अमृत के सम्बन्ध में ऐसी ही मान्यता है । चिकित्सक अपनी औषधियों के सम्बन्ध में ऐसे ही दावे करते रहते हैं । शोध का यह भी एक विषय है कि काया सचेतन की तरह अचेतन को प्रभावित करने का भी कोई रासायनिक उपचार खोजा जाय । ब्राह्मी, सर्पगंधा, शंखपुष्पी जैसी बूटियों का मस्तिष्कीय उपचार में अभी भी कारगर प्रयोग होता है । इस दिशा में अभी और आगे बढ़ने की गुंजाइश है ।

रसायनों के प्रभाव से मस्तिष्क को उत्तेजित, अति सामर्थ्यवान एवं दब्बू, भयभीत भी बनाया जा सकता है । इन रसायनों में सिरोटोनिन, नार एड्रिनेलिन एवं डोपामीन प्रमुख हैं । मस्तिष्कीय जैवरासायनिक प्रतिक्रियाओं में इनकी प्रमुख भूमिका है । पिछले दिनों केलिफोर्निया के डा. स्नाइडर ने एनकेफेलिन नामक रस स्रावों की मस्तिष्क में उपस्थिति बतायी है । इन्हें कृत्रिम विधि (औषधियाँ, हिप्नोसिस, बायोफीड बैक, इलेक्ट्रोड उत्तेजन) से प्रभावित कर व्यक्ति को मानसिक दृष्टि से अति सामर्थ्यवान बनाया जा सकना सम्भव है ।

मानवी चेतना को प्रभावित करने वाले उपरोक्त उपचारों में से कुछ पुराने और कुछ नये हैं । इनका प्रयोग चलता रहा है और चलेगा किन्तु परिणामों को देखते हुए इतना ही निष्कर्ष निकलता है और इतना ही विश्वास होता है कि थोपे गये उपचार कुछ समय तक अपना प्रभाव दिखा कर अन्धड़ चक्रवातों की तरह अपनी जादुई कारगुजारी समाप्त करके विस्मृति के गर्त में चले जाते हैं । पानी के बबूले का आयुष्य ही कितना होता है । चिरस्थायी उपाय उपचार ढूँढ़ने हों तो मानवी सत्ता के आधारभूत केन्द्र स्थल अन्तःकरण की गहराई तक प्रवेश करके वहाँ कुछ उथल-पुथल उत्पन्न करने का चिरस्थायी प्रयास करना होगा । इसके लिए ब्रह्म विद्या पर आधारित तत्वदर्शन को हृदयंगम करके और तप साधना की सहायता से संचित संस्कारों को उखाड़ने के अतिरिक्त और कोई मार्ग है नहीं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तित्व मात्र वंश-परम्परा से नहीं बनता

शरीर के बाहरी अवयव तो जाने-पहचाने हैं । पर उनके भीतर छोटे-छोटे अरबों-खरबों जीवकोशों की शृंखला विद्यमान है । ये सभी अपने-अपने निर्धारित कार्यों में लगे रहते हैं । सतत् मरते और जन्मते रहते हैं । इन कोशाओं के भीतर एक विशाल भण्डार विद्यमान है, जिसमें अनेक रसायनों के अतिरिक्त अति सूक्ष्म इकाइयाँ हैं 'जीन्स' । इनके भीतर गुणसूत्रों के ऐसे घटक रहते हैं जो प्रजनन प्रक्रिया में काम आते हैं । नर-नारी दोनों में ही यह घटक रहते हैं । नारी डिम्ब और नर शुक्र के अन्तःकलेवर में इन्हीं की प्रधानता रहती है । निषेचन के समय दोनों पक्ष के गुणसूत्र आपस में गुँथ जाते हैं और एक नई सृष्टि का आरंभ करते हैं । भ्रूण की स्थापना इसी आधार पर होती है । वैज्ञानिकों के अनुसार शिशुओं का जन्म और उनकी विशेषता इन्हीं छोटे-छोटे इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से देखे जाने वाले घटकों की विकसित प्रक्रिया पर निर्भर है ।

इस प्राथमिक जानकारी का प्राप्त होना बाल बोध की तरह आवश्यक है पर आनुवंशिकी का उतना महत्व नहीं है, जितना कि दिया जाता है । उनका प्रभाव आरंभिक भूमिका निर्वाह के काम तो आता है, पर शिशु मे वही सब गुण धर्म हों, यह आवश्यक नहीं । माता और पिता के स्वास्थ्य और मन की थोड़ी छाप शिशु में भी पाई जाती है किन्तु यह सोचना गलत है कि नवजात बालक का समूचा व्यक्तित्व, इन डिम्ब और शुक्रकीटकों की ही समन्वित अनुकृति है ।

बच्चे के साथ पूर्व जन्मों के संचित संस्कार भी रहते हैं । जिन लोगों के बीच में उसे जीवन-यापन करना पड़ता है, उनके वातावरण की छाप भी उस पर रहती है । शिक्षा अपना प्रभाव छोड़ती है । इसके अतिरिक्त प्राणी का निज का रुझान, चिन्तन, दृष्टिकोण भी अपनी प्रतिक्रिया सम्मिलित करता है । भौतिक क्षेत्र की इतनी विशेषताएँ मिलकर तब वह रसायन विनिर्मित होता है, जिससे व्यक्तित्व की समग्र रूपरेखा गढ़ी जाती है ।

आनुवंशिकी विज्ञान के मूर्धन्य 'जीन्स' की संरचना पर इसलिए बहुत ध्यान दे रहे हैं कि उनकी भीतरी हलचलों और विधि-व्यवस्थाओं की समुचित जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त इच्छित स्तर के बच्चे जन्माये और श्रेष्ठ कोटि के मनुष्य बनाये जा सकें । इस प्रयोजन के लिए वे प्रौढ़ परिपक्व नर-नारियों को ही प्रजनन क्षेत्र में प्रवेश करने की छूट देते हैं और कहते हैं कि जिन युग्मों में अभीष्ट परिपक्वता न हो, उन्हें गर्भ धारण करने कराने का दायित्व वहन नहीं करना चाहिए । साधारण मनोविनोद ही दाम्पत्य जीवन का आनन्द है । यह मान्यता रखते हुए मैत्री भर निबाहनी चाहिए । मानवी समाज संरचना के अंग बनने वाले ऐसे नागरिक उत्पन्न नहीं करना चाहिए जो अपने लिए तथा अन्यान्यों के लिए संकट उत्पन्न करें ।

किन्तु यह प्रतिपादन भी अधूरा, एकांगी ही है । नर-नारी के स्थूल घटक ही पूरी तरह शिशु के शरीर एवं स्वभाव का निर्माण नहीं करते । यदि ऐसा होता तो सुयोग्य संतानों का कार्य मात्र कुछ बलिष्ठ स्त्री पुरुषों के लिए रह जाता । समग्रता के लिए बलिष्ठता के साथ-साथ बुद्धि, वैभव भी होना चाहिए । उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी उच्चस्तरीय होने चाहिए । जबकि ऐसा कभी सुनिश्चित नहीं होता । शरीर के रसायन काय कलेवर पर ही अपनी छाप छोड़ सकते हैं किन्तु उन गुणों को उत्तराधिकार में प्रदान नहीं कर सकते, जिनका उन्हें स्वयं अभ्यास नहीं । इस आधार पर तो यह मान्यता बनती है कि अशिक्षित जोड़े से उत्पन्न उनकी सन्तानें मूर्ख स्तर की बनी रहेंगी । न उनमें विद्या के प्रति रुचि होगी और न उनका मस्तिष्क बुद्धि की प्रखरता, शान दिखा सकने के योग्य बन सकेगा । इस प्रतिपादन के समर्थन में असंख्यों उदाहरण मौजूद हैं, जिनमें अभिभावकों की तुलना में संतान में भिन्न प्रकार के गुण पाये गये । आवश्यक नहीं कि संगीतकार का बेटा संगीतकार ही हो । साहित्यकार का बेटा साहित्यकार ही हो । इसके अतिरिक्त सामान्य परिवारों में विशिष्ट योग्यताओं वाले वरिष्ठ व्यक्तियों को उत्पन्न ही कैसे किया जाय ? इस प्रतिपादन के विपरीत अनेकानेक प्रमाण और उदाहरण विपुल संख्या में देखने को मिलते हैं ।

अतएव नर-नारी की शारीरिक बलिष्ठता, सुन्दरता को महत्व देते हुए भी उनके समूचे व्यक्तित्व के परिष्कृत होने की आशा और संभावना इतने छोटे आधार में सीमित नहीं की जा सकती है । यदि ऐसा कुछ है भी तो उसे उतने समय तक के लिये ही सीमित समझा जा सकता है, जब तक कि बालक पूर्णतया अभिभावकों पर ही निर्भर रहता है और उन्हीं द्वारा प्रदत्त मार्ग-दर्शन का अनुसरण करता है । पर यह स्थिति देर तक नहीं रहती । किशोर को जब स्कूल जाने में समाज सम्पर्क बनाने का अवसर मिलता है तो देखने सुनने को ऐसा बहुत कुछ मिलता है जो ज्ञान अनुभव अभिभावकों के पास नहीं था । ऐसी दशा में समाज सम्पर्क की प्रभाव क्षमता ही किशोरावस्था में अपनी विशेषताओं का अनुभव कराने लगती है । ऐसी स्थिति में आनुवंशिकी को उतना महत्व नहीं दिया जाना चाहिए, जितना कि इन दिनों दिया जा रहा है ।

मनुष्य न तो पशु है और न पेड़, जिसके बीजों की जाँच-पड़ताल करके अच्छी नस्ल पैदा की जाय । कलमें पेड़ों में लगाई जा सकती हैं । ग्राफ्टिंग के प्रयोगों से नई-नई किस्म के खूबसूरत पौधे बनाने मे मदद मिली है । क्रास ब्रीडिंग के प्रयोगों से पशु वर्ग पर भी अपवाद जितना ही प्रतिफल मिल सका है । गधे और घोड़ी के संयोग से खच्चर तो उत्पन्न हुए पर वे सभी रहे नपुंसक ही । उनमें अपना वंश चलाने की क्षमता नहीं पायी गयी । शरीरगत जीन शृंखला के आधार पर ही हम नई पीढ़ी का सृजन स्वरूप निर्धारित करेंगे तो वह मनोरथ पूरा न हो सकेगा । जो मनुष्य की मौलिक विशिष्टताओं में सामान्य प्रयासों से कोई बड़ा प्रयोजन-परिवर्तन पूरा कर सके ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्थ भावी पीढ़ियों के निर्माण में अध्यात्म उपचारों का आश्रय लेना होगा और उस क्षेत्र में उच्चस्तरीय भाव चिन्तन का समावेश करना होगा । आदर्शों और सिद्धान्तों को यदि चेतना की गहरी परतों तक प्रविष्ट कराया जा सके तो उस भावनात्मक विशेषता का समावेश उनमें करके नई पीढ़ियों में अभीष्ट विशिष्टताएँ पैदा की जा सकती हैं । प्राचीनकाल के गुरुकुलों में महामानवों की ढलाई होती थी । वहाँ मात्र शिक्षा का ही प्रबन्ध न था वरन् उनके रहन-सहन, चिन्तन और संवेदना को ऐसे तत्वज्ञान में ढाला जाता था जिससे बालक वंश परम्परा में चले आ रहे कुंसस्कारों का परिमार्जन कर सकें और गुरु-परम्परा की विशेषताओं को आत्मसात कर सकें । इस सन्दर्भ में अभिभावकों का उत्कृष्ट चिन्तन और उदाहरण जैसा आदर्श चरित्र भी एक बड़ी भूमिका निभा सकती है ।

यह खतरनाक खेल मानवी विशिष्टताओं को नष्ट कर देगा

भावी पीढ़ी कैसी हो ? इस सम्बन्ध में गत कुछ दशाब्दियों से मनीषी-वैज्ञानिक वर्ग में अच्छा-खासा मंथन चलता आ रहा है । एक और पदार्थ विज्ञानी है जिनका चिन्तन स्थूल धरातल पर चला एवं ऐसे ही निष्कर्ष उन्होंने निकाले भी हैं । बायोटेक्नॉलाजी आज की एक विकसित वैज्ञानिक विधा है, जिसमें नित नए अनुसंधान हो रहे हैं । पादप-वनस्पति एवं जीवजन्तु वर्ग से आरम्भ हुआ यह शोध-क्रम अब मानव को भी एक स्थूल संसाधन मानते हुए उसे बदलने की, आने वाली पीढ़ी को बलिष्ठ बनाने की दिशा में अग्रसर हो रहा है । दूसरी ओर अध्यात्म के सौम्य प्रतिपादनों के पक्षधर मनीषीगण हैं, जो वंशानुक्रम विज्ञान का पूरा सम्मान करते हुए भावी पीढ़ी में संस्कारों के समावेश द्वारा पीढ़ी परिवर्तन की चर्चा करते हैं । वे मानवी नस्ल के साथ पशुओं की तरह प्रयोग किए जाने का समर्थन नहीं करते, अपितु विचार-संस्कार-स्वभाव को बदले जाने की आवश्यकता पर बल देते हैं ।

कृत्रिम जीवकोशों के आधार पर क्या कुछ परिवर्तन मानव जाति में किए जा सकते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में ब्रिटेन के जीवविज्ञानी जेम्स डैनियल ने कहा है कि अगले दिनों कृत्रिम जीवकोश बनाने में सफलता मिलने के बाद निकट भविष्य में ही यह संभव हो जाएगा कि मनुष्य की डिजाइन की हुई मानव आकृतियाँ सृजी जा सकें । वे यह संभावना भी व्यक्त करते हैं कि अब ऐसे मनुष्यों को ढालना भी संभव हो जाएगा जो अन्य ग्रहों में जीवनयापन कर सकें । उनका कहना है कि इस बायोतकनीकी प्रक्रिया में न तो रतिक्रिया आवश्यक है और न कृत्रिम गर्भाधान का आश्रय लेना ही । मनुष्य शरीर की हर कोशिका में वे तत्त्व मौजूद हैं जो गर्भस्थापन के लिए उत्तरदायी हैं । यदि इस कोशिका द्रव्य को सही स्थान पर पहुँचाया जा सके तो गर्भ स्थापना का उद्देश्य पूरा हो सकेगा । पर एक बात वे और कहते हैं कि यंत्र मानवों की तरह मानव आकृति तैयार की जा सकती है, पर प्रकृति पर विज्ञान का कोई नियंत्रण नहीं है । हो सकता है, वे मात्र रोबोट हों अथवा विनाश की ओर ले जाने वाले रक्तबीज से उपजे असुर ।

इसमें कोई सन्देह नहीं की बायोइंजीनियरिंग के जीन यांत्रिकी प्रयोग, जानवरों एवं पादपों की नयी-नयी किस्में उपलब्ध कराने में सफल रहे हैं । डी. एन. ए. केमिस्ट्री में परिवर्तन के द्वारा मॉलीक्युलर बायोलॉजी के इन प्रयोगों से 'जीन्स' की कलमें बनाने (क्लोनिंग) में वैज्ञानिकों को अभूतपूर्व सफलता मिली है । एक और बड़ी उपलब्धि जो वैज्ञानिक हासिल कर सके हैं, वह है एक जीव के ग्रोथ हारमोन के लिए उत्तरदायी जीन्स का दूसरे के डी. एन. ए. के साथ प्रत्यारोपण । इस प्रयोग को मानव पर जब लागू किया गया तो इस रिकाम्बीनेन्ट डी. एन. ए. टेक्नालॉजी द्वारा मधुमेह के रोगियों में इंसुलीन पैदा करने वाले जीन्स आरोपित करने में सफलता मिली । यद्यपि ये प्रयोग सीमित स्तर पर हुए हैं, पर इनसे लगता है कि अगले दिनों जब यह प्रयोग अधिक सस्ता एवं व्यापक स्तर पर होने लगेगा तो संभवत: मधुमेह जैसी और भी जटिल आनुवंशिकीय व्याधियों से मनुष्य को मुक्ति मिल जाय । कार्य कठिन है । समयसाध्य भी, पर इस रोग से ग्रसित व्यक्तियों के लिए आशा की एक किरण भी जागी है । इस जीन प्रत्यारोपण के प्रयोग को छोड़कर अन्यान्य प्रयोग असफल रहे हैं । देखा यह गया है कि जब बेहतर नस्लों के उत्पादन हेतु 'क्रास बीडिंग' अथवा अमीनो एसिड प्रत्यारोपण के प्रयोग किए गये तो नई नस्लें तो विकसित हुईं, पर इनकी जीवनीशक्ति, रोगों से जूझने की सामर्थ्य एवं गुणवत्ता अत्यन्त घटिया पाई गई । भारत में गाय पर किए गए प्रयोगों एवं अमेरिका जैसे माँसाहार प्रधान देश में सुअरों पर किए गए प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला कि इससे कमजोर प्रकृति की नस्लें जन्मती हैं, उनमें मूलभूत विशेषताएँ विद्यमान नहीं पाई जातीं ।

अब ये प्रयोग मनुष्य की विभिन्न व्याधियों के निवारणार्थ, जो मूलत: आनुवंशिकीय हैं, के प्रयास किए जा रहे हैं । साथ ही 'वैस्ट मेटिरियल' से प्रोटीन या उच्च कोटि के खाद्य पदार्थ पैदा करने के प्रयोग भी हो रहे हैं पर विडम्बना यह है कि इन्हें किया तृतीय विश्व के देशों में जा रहा है । संभावना यह उठती है कि मानव पर किए गए इन प्रयोगों से हो सकता है नई असाध्य व्याधियाँ जन्मने लगें अथवा जीवनीशक्ति की दृष्टि से कमजोर व घटिया पीढ़ियाँ पैदा हों अथवा कोई ऐसा पदार्थ जन्म लेने लगे जो घातक सिद्ध हो । कृषि चिकित्सा विज्ञान एवं इंडस्ट्रीज के क्षेत्र में ऐसे प्रयोग एक सीमा में किये जायँ तो ही मानव जाति के लिए कोई लाभप्रद निष्कर्ष निकल सकते हैं । कुछ प्रयास जो इस दिशा में किए गए व जन-साधारण की जानकारी में लाए गए वे तो डराते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसा ही एक मामला पिछले दिनों प्रकाश में आया है जिसमें 'सरोगेट मदर' के रूप में प्रख्यात न्यूजर्सी (अमेरिका) की मेरीबेथ व्हाइटहेड नामक महिला ने नौ माह तक कृत्रिम गर्भाधान द्वारा एक डाक्टर दम्पत्ति के भ्रूण को अपने गर्भ में पालकर एक लड़की को जन्म देकर उसे मूल माता-पिता को देने से मना कर दिया । वह चूँकि मामला कोर्ट में चला गया है एक बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह सबके सामने लग गया है कि बेबी एम. नाम से प्रख्यात इस बालिका को किराये की माँ के रूप में जन्म देकर श्रीमती व्हाइटहेड ने क्या गलत काम किया है ? दूसरी ओर डा. विलियम स्टर्न जो कि एक बायोकेमीस्ट व उनकी पत्नी एलिजाबेथ शिशु रोग विशेषज्ञ हैं, कहाँ तक सही है जो १० हजार डालर की कीमत पर कृत्रिम गर्भाधान द्वारा दूसरी महिला के गर्भाशय को किराये पर लेकर उससे जन्मी बच्ची पर अपना अधिकार जता रहे हैं । बच्ची 'सारा' (बेबी एम.) को जन्म देने के बाद पहले से ही २ बच्चों की माँ २९ वर्षीय मेरीबेथ व्हाइटहेड रो पड़ी, जब उनसे बच्ची लेने स्टर्न दम्पत्ति गए । उसकी भाव विह्वलता देख उन्होंने उसे दो हफ्ते अपने पास रखने का आश्वासन दिया पर पुनः पहुँचने पर उसे जिस स्थिति में पाया उससे लगा कि उसका ९ माह तक गर्भ में रही बालिका से जो भावनात्मक लगाव है, उस नाते वह बच्ची को देना नहीं चाहती, बदले में सारी राशि उसने लौटा दी । स्टर्न दम्पत्ति तो बच्ची चाहते थे, अतः उन्होंने पुलिस की मदद ली एवं जब वे बच्ची लेने पहुँचे तो उसे लेकर व्हाइटहेड दम्पत्ति पिछले दरवाजे से भाग चुके थे । उन्हें फ्लोरिडा में गिरफ्तार कर मुकदमा चलाया गया जो अभी सुनवाई के लिए न्यू जर्सी के सुपीरियर कोर्ट जज हार्वे साकेवि के पास पहुँचा है । तब तक बेबी एम. स्टर्न दम्पत्ति के पास रहेगी, मात्र सप्ताह में दो बार दो-दो घण्टों के लिए उसे श्रीमती व्हाइटहेड अपने पास रख सकेंगी ।

इस विवाद ने कई मुद्दों पर विचार करने के लिए इस प्रगतिशील कहे जाने वाले देश के मनीषियों को विवश कर दिया है । 'टाइम' पत्रिका (१९ जनवरी १९८७) में 'बायोएथीक्स' का मुद्दा उठाते हुए रिचार्ड लेकायो, एंगर फ्रेंकलीन एवं रसेल लेविट लिखते हैं कि क्या इस प्रक्रिया को प्रश्रय देकर हम माँ व बच्चे के मध्य स्नेह संबंधों से खिलवाड़ नहीं कर रहे ? इसे एक बेबी इंडस्ट्री नाम देते हुए उन्होंने कहा कि गर्भावस्था की तोहमत से बचने के लिए धनिकों द्वारा क्या यह निर्धनों का शोषण नहीं है ? मिशिगन के नार्मन रॉबिन्स लिखते हैं कि नवजात शिशु को 'सामान' या 'सम्पत्ति' नहीं माना जाना चाहिए । इससे तो गरीबों में 'प्रोफेशनल ब्रीडर' बनने की ललक जागेगी एवं इससे मानवी गरिमा को बड़ी ठेस पहुँचेगी । उनका अन्दाज है कि ठेके के आधार पर गर्भाशय किराये पर लेने की प्रक्रिया १९७६ के आस-पास आरम्भ हुई । तब से अभी तक मात्र अमेरिका में ऐसे ५०० बच्चे जन्म ले चुके हैं । ऐसे एक दर्जन केन्द्र अमेरिका में काम कर रहे हैं जो संतानहीन दम्पत्तियों को किराये की महिलाओं से मिलाते व गर्भाशय में कृत्रिम गर्भाधान की सुविधा उपलब्ध कराते हैं । वे कहते हैं कि तकनीकी प्रगति ने हमें किस स्थिति में पहुँचा दिया है कि हम संवेदनहीन बच्चा पैदा होने की प्रक्रिया को मशीनीकरण के समकक्ष मानने लगे हैं ।

वैज्ञानिक जैवयांत्रिकी एवं कृत्रिम गर्भाधान के इन प्रयोगों के समय यह भूल जाते हैं कि दाम्पत्य जीवन की सरसता ही उन्हें एक दूसरे के लिए वफादार बनाती है और परस्पर सघन सहयोग की मनःस्थिति उत्पन्न करती है । यदि बच्चे गाजर मूली की तरह किसी भी दुकान से खरीदे जा सकें तो दाम्पत्य जीवन की नींव हिल जाएगी और बच्चों में पूर्वजों के प्रति श्रद्धा या कर्त्तव्यपालन का कोई भाव शेष न रहेगा ।

इस से भी बड़ी बात है—सृष्टि में भिन्नता की विलक्षणता । जिससे परस्पर प्रतिस्पर्धा की, आगे बढ़ने की भावना जन्म लेती है । सन्त चोर को लज्जित करता है और चोर सन्त से अपने परिवर्तन की प्रेरणा प्राप्त करता है । जब सभी एक जैसी प्रकृति के होंगे तो पीढ़ियाँ बलिष्ठ या सुन्दर भले ही हों वे विलक्षणताएँ जीवित न रहेंगी जो मानव जाति के वर्चस्व को बढ़ाती हैं ।

इसलिए इन प्रयासों को भी अणु विस्फोट की तरह खतरनाक मानकर उन्हें प्रतिबंधित किया जाना चाहिए । प्रयोगशाला की सीमा तक ही यह प्रयास सीमित रखना हो तो परिणाम अन्य पशु-पक्षियों पर प्रयोग करके देखे जा सकते हैं ।

इकलौती संतान प्रतिभाशाली होती है

परिवार के आकार के संदर्भ में आध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनाये जाने के लिए यह अध्ययन आवश्यक हो गया था कि इकलौती संतान फिसड्डी होती है अथवा प्रतिभाशाली, क्योंकि कुछ वैज्ञानिकों ने प्रथम संतान की प्रतिभा पर प्रश्न-चिह्न लगा दिया था, किन्तु बाद के शोध निष्कर्षों से जो परिणाम सामने आया है, वह सर्वथा इसके विपरीत है ।

इस संदर्भ में आस्ट्रिया के जीवविज्ञानी फ्रैंक सलोवे ने विज्ञान-जगत में तब तहलका मचा दिया, जब उन्होंने अपनी एक अध्ययन-रिपोर्ट 'अमेरिकन एसोसियेशन फॉर दि एडवांसमेण्ट ऑफ साइंस' नामक प्रसिद्ध अमेरिकी संस्थान के समक्ष प्रकाशनार्थ भेजी । अपने अध्ययन में उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि प्रथम संतान प्रतिभाहीन होती है और बाद की प्रतिभाशाली । ज्ञातव्य है कि सलोवे के उपरान्त इस संबंध में महत्त्वपूर्ण अध्ययन पिछले चार वर्षों में विश्व के कई वैज्ञानिक संस्थानों ने किये, किन्तु कुछ अपवादों को छोड़कर परिणाम सलोवे के विपरीत ही गया । अब से बारह वर्ष पूर्व स्वीडेन के दो मनोवैज्ञानिकों सीसाइल आर्नेस्ट तथा जुलियस संगस्ट ने कई वर्षों के अध्ययन के बाद एक पुस्तक लिखी—'बर्थ आर्डर' अर्थात् जन्म-क्रम । इसमें उन्होंने इस बात का स्पष्ट खण्डन किया कि जन्म-क्रम का प्रतिभा से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई संबंध है, परन्तु अपने अनुसंधान में उन्होंने एक महत्वपूर्ण बात अवश्य देखी कि यदि संतान इकलौती हो, तो उसकी बुद्धि और प्रतिभा सामान्य से कुछ ऊपर जरूर होती है । लगभग ऐसा ही निष्कर्ष कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय की मूर्धन्य समाजविज्ञानी ज्यूडिथ ब्लैक ने निकाला है । ब्लैक को सलोवे के 'जन्म-क्रम' सिद्धान्त का प्रबल विरोधी माना जाता है, पर ऐसी बात नहीं है कि वे इसके एक मात्र प्रतिपक्षी हैं । वैज्ञानिकों का एक बड़ा समुदाय भी उनके साथ है । ब्लैक अपने शोध निष्कर्ष में लिखती हैं—

"जन्म-क्रम सिद्धान्त बाह्य दृष्टि से भले ही लुभावना लगता हो, पर तथ्य की दृष्टि से यह सारहीन है । इसमें उस सच्चाई का सर्वथा अभाव है, जिसका दावा सलोवे महोदय ने अपने विस्तृत अध्ययन में प्रस्तुत किया है ।" उनकी यह टिप्पणी गहन पर्यवेक्षण पर आधारित निष्कर्ष है । उन्होंने इसके लिए विभिन्न क्षेत्रों की एक लाख से ऊपर प्रतिभाओं से सम्पर्क साधा । साक्षात्कार से जो तथ्य सामने आया, वह चौंकाने वाला था । सर्वेक्षण के दौरान ७० प्रतिशत लोग ऐसे पाये गये, जो अपने माता-पिता की इकलौती संतान थे, जबकि ३० प्रतिशत लोग ऐसे थे, जिनके कई भाई-बहिन थे । इस अध्ययन से एक और महत्त्वपूर्ण बात सामने आयी, वह यह कि ७० प्रतिशत प्रतिभासम्पन्नों में नारियों का अनुपात पुरुषों से अधिक था । इस प्रकार ब्लैक के सर्वेक्षण से दो बातें उभरकर सामने आयीं प्रथम यह कि लड़कियाँ लड़कों से प्रतिभा में किसी भी प्रकार कम नहीं होतीं और दूसरा, इकलौती संतान चाहे लड़का हो या लड़की उसकी बुद्धि-लब्धि (आई. क्यू.) औसत से अधिक होती है । उन्होंने अपने शोध-निष्कर्ष में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि व्यक्तित्व विकास में परिवार के आर्थिक स्तर का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता है । वे कहती हैं कि यदि परिवार निर्धन और बड़ा हुआ, तो इससे सदस्यों की प्रतिभाएँ प्रभावित हो सकती हैं और उनके स्वतंत्र विकास के स्थान पर वह कुंठित बनी रह सकती है । उनका कहना कि संभवत: यही कारण रहा हो कि अध्ययन किये गये प्रतिभासम्पन्नों में आधे से अधिक इकलौती संतानें थीं, क्योंकि इस स्थिति में उनकी शिक्षा-दीक्षा और व्यक्तित्व विकास परिवार छोटा होने के कारण बिना किसी दबाव के स्वतंत्रतापूर्वक सम्पन्न हो सका और वे विकास की ऊँचाइयों तक पहुँच सकीं ।

इसी आशय का मन्तव्य प्रकट करते हुए प्रसिद्ध मनोविज्ञानी अब्राहम मैस्लो कहते हैं कि परिवार विशृंखलित बड़ा और दयनीय आर्थिक स्थिति वाला हुआ, तो वह क्षमताओं के विकास में बाधक सिद्ध हो सकता है । ऐसे परिवार में प्रतिभाओं के विकास की संभावना न्यून बनी रहती है और व्यक्ति अपनी क्षमताओं को विकसित कर परिष्कृत प्रतिभा की वह स्थिति प्राप्त नहीं कर सकता, जिसे उन्होंने 'सेल्फ एक्चुअलाइजेशन' के नाम से पुकारा है । प्रकारान्तर से उनका 'सेल्फ एक्चुअलाइजेशन' प्रतिभा परिष्कार का ही दूसरा नाम है ।"

लिवरपुल यूनिवर्सिटी के समाजशास्त्री के.फोर्स्टर का कहना है कि छोटे परिवार में प्रतिभाओं के विकास की जितनी संभावना होती है, बड़े परिवार के साथ वह उतना ही न्यून बनती जाती है । इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि बड़े परिवारों में माता-पिता के बाद चूँकि बड़ा सदस्य परिवार की सबसे बड़ी संतान होता है, अत: माता-पिता के साथ अपने छोटे भाई-बहिनों के पालन-पोषण की जिम्मेदारी उसके कंधों पर भी आ पड़ती है और दुर्भाग्यवश यदि बचपन में ही माता-पिता काल-कवलित हो गये, तो फिर मुश्किलों का अंत नहीं । ऐसी स्थिति में वे अपनी क्षमताओं का विकास तो क्या, बड़ी मुश्किल से जीवन की गाड़ी घसीट पाते हैं और ज्यों-त्यों करके जिन्दगी गुजारते हैं । इसके विपरीत इकलौती संतान परिवार की एकमात्र संतान होने के कारण अपनी क्षमताओं का उन्नयन-विकास बड़े परिवारों की तुलना में कहीं अच्छी प्रकार कर लेती है, पर दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं कि सभी इकलौती संतानें प्रतिभासम्पन्न होती हैं ऐसी भी बात नहीं है, किन्तु उनके सर्वेक्षण के ८० प्रतिशत मामलों में वे असाधारण पायी गयीं । शेष २० प्रतिशत सामान्य बुद्धि वाले बच्चों के संबंध में उनका विचार है कि माता-पिता के अतिशय लाड़-प्यार ने ही उन्हें बिगाड़ दिया, अन्यथा वे भी किसी न किसी क्षेत्र में असाधारण बन सकते थे, क्योंकि उनके अनुसार असाधारणता उनकी अतिरिक्त विशेषता होती है ।

हाल ही में कोलेरेडो यूनिवर्सिटी के समाजशास्त्रियों के एक अध्ययन दल ने इकलौती संतान को सदा औसत से ऊँचे दर्जे के होने की बात कही है । इस संबंध में वे एक सर्वथा नवीन तर्क प्रस्तुत करते हैं । उनका कहना है कि खेत में जब प्रथम बार कोई फसल लगायी जाती है, तो उपज बहुत अच्छी होती है और दाने भी पुष्ट होते हैं, किन्तु बाद के फसलों की उपज और गुणवत्ता क्रमश: घटती जाती है और इसी के साथ जमीन की उर्वरता भी । वे कहते हैं कि कुछ ऐसी ही संभावना प्रथम व एकल संतति के संस्कार और क्षमताओं के संबंध में भी हो सकती है ।

यहाँ यह प्रतिपादन अध्यात्म विज्ञान से काफी कुछ साम्य रखता है । अध्यात्म भी इस बात को स्वीकारता है कि प्राण शक्ति के क्षरण के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक क्षमताओं का ह्रास होता जाता है और यह सर्वविदित तथ्य है कि जननेंद्रियों से प्राणशक्ति का जितना अधिक क्षरण होता है, उतना शायद ही और किसी मार्ग से नहीं । अस्तु, प्रथम संतान की उत्पत्ति के समय माता-पिता में जो शारीरिक-मानसिक क्षमता विद्यमान थी, उसे सिद्धान्तत: संतति में भी जानी चाहिए और यदि यह सही है, तो शोधकर्ताओं की इस बात में भी उतनी ही सच्चाई होनी चाहिए कि प्रथम संतान अधिक क्षमतावान होती है ।

इतिहास के पृष्ठों को पलटने पर इस बात के अनेकानेक प्रमाण भी मिलते हैं, जो हमें यह विश्वास करने पर विवश करते हैं कि इकलौती संतान असाधारण प्रतिभायुक्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती है । अष्टावक्र कहोड़ मुनि और सुजाता के एकमेव संतान थे, इसलिए प्रतिभाशाली भी । सुभद्रा से उत्पन्न अभिमन्यु इकलौते बेटे थे, इस कारण गर्भस्थ स्थिति में भी वे चक्रव्यूह भेदन की कला सीख सके । चाणक्य अपने माता-पिता के एकल पुत्र थे । किसी साधारण व्यक्ति को राजसिंहासन पर बैठा देना और किसी राजा को देखते-देखते पदच्युत कर देना उनके बायें हाथ का खेल था । आद्यशंकराचार्य, अपने माँ-बाप के अकेले पुत्र थे । अध्यात्म की जिन ऊँचाइयों को वे छू सके, यह किसी से छुपा नहीं है । राजनीति क्षेत्र में जवाहर लाल नेहरू, इन्दिरा गाँधी, रूजवेल्ट आदि भी अपने जन्मदाता की एकाकी संतति थे । साहित्य क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और इंग्लैण्ड के रस्किन प्रथम संतान थे । एक को खड़ी बोली का जनक, तो दूसरे को १९वीं शताब्दी का महान् साहित्यकार माना जाता है । विज्ञान के विकास में आइंस्टीन के सापेक्षवाद, न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त और पुनर्जागरण काल में पारा सेल्सस का कितना बड़ा योगदान रहा है, यह उल्लेखनीय है, किन्तु मजे की बात यह है कि यह भी अपने जनक-जननी की इकलौती संतान थे ।

इस प्रकार के कितने ही उदाहरणों से विश्व इतिहास भरा पड़ा है, जो यह सिद्ध करता है कि इकलौती संतान की क्षमता सामान्य स्तर से ऊँची होती है । इसे माता-पिता की प्रतिभा का हस्तान्तरण कहें अथवा एकल संतति होने के कारण उनकी निजी क्षमताओं के अत्यधिक विकास की सुविधाजनक स्थिति कुछ भी कह लें, पर अब यह लगभग निर्विवाद है कि इकलौती संतान प्रतिभा के क्षेत्र में औसत से ऊँचे स्तर की होती है ।

विलासिता हमें अपंग करके छोड़ेगी

मानव का आदि वंश पाश्चात्य वैज्ञानिक पिथेकेण्ट्रोपस, सिनैण्ट्रोपस और निण्डरथाल को मानते हैं । इनकी आकृति से आज के मानव से तुलना करने में बड़ा अन्तर दिखाई देता है । क्रोमेग्नन की तुलना मे तो अब का मनुष्य पहचाना भी नहीं जा सकता । पाश्चात्यों की बात पाश्चात्य जानें पर हम अपने आपको जिस अपौरुषेय पूर्ण विकसित मनुष्य से वंश उत्पत्ति की बात मानते हैं, उनकी शक्ति शारीरिक रचना और सामर्थ्य की दृष्टि से आज के मनुष्य को तौलते हैं तो वह बिल्कुल भिन्न और दीन-दुर्बल दिखाई देता है । इसका कारण उसकी अपनी भूलें हैं, जो उसने बिना विचारे की हैं, कर रहा है ।

जीववैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रक्रिया सृष्टि से सब जीव प्रभावित होते हैं । उदाहरणार्थ, आज का घोड़ा आरम्भ में लोमड़ी की शकल का था । तब सम्भवतः उसकी प्रकृति भी माँसाहारी थी । वह जंगलों में छिपा पड़ा रहता था । धीरे-धीरे उसने स्वभाव बदला घास खाने लगा । हिंसक प्रकृति के कारण पहले उसमें स्वाभाविक भय रहता था, उसे छोड कर वह निर्भय मैदानों में रहने लगा । चिन्ताएँ छोड़ देने से जिस प्रकार दुर्बल लोगों के स्वास्थ्य भी बुलन्द हो जाते हैं, उसी प्रकार वह भी अपने डीलडौल को सुडौल बनाता चला आया । धीरे-धीरे मनुष्य उसे प्यार करने लगा और उससे अस्तबलों की शोभा बढ़ने लगी । आज उसी लोमड़ी जैसे घोड़े की सुन्दरता साधारण व्यक्तियों से लेकर राजाओं महाराजाओं को भी आकर्षित करती है, उसकी शक्ति की तुलना मशीनों से की जाती है ।

इसके विपरीत लुप्त जन्तु-शास्त्र (मिसिंग लिंक) के अध्ययन से पता चलता है कि पहले किसी समय पृथ्वी पर कई सुडौल और चरम सीमा तक विकसित जीव पाये जाते थे । किन्तु इन जन्तुओं ने अपने रहने-सहने में हद दर्जे की कृत्रिमता उत्पन्न की और आद्यावधि ही नष्ट हो गये । आज मनुष्य जो उत्तरोत्तर विलासी जीवन की ओर अग्रसर होता जा रहा है तथा जनसंख्या अनियन्त्रित रूप मे बढ़ाता जा रहा है, उसे देखकर कुछ जीव-शास्त्रियों का यह भी मत है कि मनुष्य को सम्भवतः कार्टूनी युग तक पहुँचने का अवसर ही न मिले अर्थात् वह बीच में ही समाप्त हो जाये ।

एक ओर जहाँ परिश्रम के अभाव और प्राकृतिक दबाव के कारण मनुष्य बिल्कुल क्षीणकाय हो जायेगा, वहाँ मानवीय शरीर और स्वभाव के विपरीत माँसाहार, मद्यपान आदि के कारण कुछ लोग ऐसे दैत्याकार भी हो सकते हैं, जिस तरह एक समय भूमध्य सागरीय टापुओं और चीन में भीमकाय मानव पैदा हो चुके हैं । यह लोग बड़े स्वेच्छाचारी और निर्द्वन्द्व विचरण करने वाले थे । पशु-पक्षियों को मार कर कच्चा ही खा जाते थे । कालान्तर में इन दैत्यों की चर्बी और मोटापे की बीमारी अनियन्त्रित हो गई और वे कुछ ही दिनों में अपने आप नष्ट हो गये । इस प्रकार की दैत्याकृतियाँ भी सामने आ सकती हैं ।

१९२४ में प्रोफेसर इलियट स्मिथ ने मिश्र की ३०००० ममी (मिश्र में एक विशेष प्रकार के मशाले में शवों को सुरक्षित रखने की परम्परा है, इन शवों को ही ममी कहते हैं) का परीक्षण किया । उच्च वर्ग वाले शवों को छोड़कर अन्य लोगों के दाँत का क्षय बहुत कम मिला । कुछ आर्थराइटिस, किडनी के स्टोन के तीन और एक गाल के स्टोन का रोगी मिला । रिकेट्स और कैन्सर रोग के एक भी लक्षण किसी भी ममी में नहीं मिले । उस समय मिश्र के लोग भी अकृत्रिम और प्राकृतिक भोजन करते थे, वे लगभग पूर्ण शाकाहारी थे, तब ऐसी स्थिति थी, किन्तु स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है, पर अकेले कैंसर में ही हजारों रोगी हैं, इससे रोगों की बढ़ोत्तरी और स्वास्थ्य में अवांछित परिवर्तन का पता चलता है । कुछ हजार वर्ष बाद तो सम्भवतः एक भी बच्चा शुद्ध जन्म नहीं लेगा, उनमें से अधिकांश कोई न कोई रोग लेकर जन्मेंगे कई तो ऐसे भी होंगे, जो आज के वीर्य रोगों से रोगी मनुष्य की क्रमागत संतान होने के कारण नपुंसक और लिंगहीन भी होंगे । आज की बीमारियों के सारे लक्षण संस्कार रूप में पहुँचने की बात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विज्ञान पुष्ट ही कर चुका है, इसलिये कोई सन्देह नहीं, जो आने वाली कार्टूनी पीढ़ी अपने अनेक अंग ही खो दे । पैर की अँगुलियों और बालों के बारे में तो जीव-शास्त्री आशंका व्यक्त ही करते हैं कि हाथों में केवल एक-एक अँगुली होगी और सारे के सारे बालों से पुरुषों को ही नहीं, स्त्रियों को भी मुक्ति मिल जायेगी ।

इसका कारण है, मानवीय मस्तिष्क के घनक्षेत्र का निरन्तर विस्तार । अब मनुष्य चलता बहुत अधिक है पर बैठे-बैठे चलता है । रेलें, मोटरें, ताँगे और रिक्शे चलाते हैं, अब मनुष्य खाता बहुत है पर भूख नहीं, जीभ खिलाती है, अब मनुष्य सुनता बहुत है पर स्वाभाविक इच्छा के अनुरूप नहीं मोटरें, रेलगाड़ियाँ, जहाज, मिलों-कारखानों के भौंपू, मशीनों की गड़गड़ाहट सुननी पड़ती है, अब मनुष्य देखता बहुत है पर आत्मा को बलवान् और सौन्दर्यवान् बनाने वाले प्राकृतिक दृश्य, हरियाली और पुष्प, पौधों की शोभा नहीं, सिनेमा के दृश्य, कृत्रिम पेन्सिलों से रंगे हुए चित्र वह भी दूषित भाव पैदा करने वाले । पहले लोग पदयात्रायें करते थे, एकान्तवास रखा करते थे, प्राकृतिक दृश्यों के बीच रहा करते थे, संगीत और लोकगीतों का आनन्द लिया करते थे, इससे सूक्ष्म मनोजगत् को प्रफुल्लित और आत्मा को शान्ति देने वाले 'हारमोन्स' का स्राव होता रहता था और मनुष्य स्वस्थ और सुडौल बना रहता था । स्वाभाविक प्रक्रियायें दब कर मस्तिष्क की भूख बन गई हैं । सोचने-विचारने की प्रक्रिया से सम्बन्ध रखने वाले केन्द्रों, स्नायु-कोषों और नस-तंतुओं में निवास होता जा रहा है, बढ़ी हुई जनसंख्या को तो भोजन चाहिए, चाहे वह भीख माँग कर अमेरिका से मिले या समुद्र की मछलियों और अन्य जीवों को मारकर मिले । मस्तिष्क के अवयव बढ़ेंगे तो उन्हें भी चारा चाहिए । उन्हें प्रकृति ने जितना नियत किया है, उससे अधिक मिल नहीं सकता, फलस्वरूप वे भी हिंसा करते हैं, अर्थात् आँख की, कान, नाक और पेट की शक्ति चूसते हैं, इससे होगा यह कि और अंग कमजोर होते चले जायेंगे । विचार-शक्ति प्रौढ़ होती चली जायेगी और इन्द्रियों की क्षमता गिरती चली जायेगी । अर्थात् यह कार्टून की आकृति वाले लोगों में शरीर ही क्षीण न होगा वरन् वे बहरे भी हो सकते हैं, गूँगे भी, आँखों से कम दीखने और एक फर्लांग चलकर थक जाने की बीमारियाँ जोर पकड़ लेंगी । इनसे बचने के लिए तब श्रवण यन्त्रों, अणुवीक्षण, दूरवीक्षण यन्त्रों को लोग उसी तरह शरीर से लटकाये घूमा करेंगे, जैसे स्त्रियाँ तरह-तरह के जेवरों से जकड़ी रहती हैं । मनुष्य और कम्प्यूटर में तब कोई विशेष अन्तर न रह जायेगा ।

मनुष्य को प्रकृति ने जो दाँत दिये हैं, वह शाकाहार के लिये उपयुक्त है, माँसाहारी जन्तुओं के दाँत बड़े और नुकीले (कैनाइन टीथ) होते हैं । उनके पंजों के नाखून भी मुड़े हुए और तीखे होते हैं, क्योंकि माँस नोचने में उनसे सहायता मिलती है, मनुष्य का पिछला इतिहास बताता है कि उनका मुख आगे निकला हुआ और जबड़े लम्बे होते थे, क्योंकि तब उसे अधिकाधिक कच्चा खाना पड़ता था, यदि मनुष्य माँसभक्षी हुआ तो उसके दाँत और अंगुलियों के नाखून भालुओं, चीतों जैसे हो सकते हैं या फिर कच्चे और दाँतों से चबा-चबाकर खाने वाले खाने के कम उपयोग से उसका मुख भीतर को धँसता चला जायगा । मुख ऐसा लगेगा, जैसे किसी गुफा में घुसने के लिए 'होल' (छेद) बनाया गया हो ।

जीववैज्ञानिकों का यह भी मत है, आगे आने वाले लोगों के पंजे और पीठें छोटी हो जायेंगी । पीठ की माँसपेशियों का सम्बन्ध हाथ से है, हाथ से बोझा उठाने इनको ऊपर-नीचे, दाँये-बायें मोड़ते रहने से पीठ में हलचल होती रहती है, इसलिये वह बढ़ती और स्वस्थ भी बनी रहती है पर हाथों से परिश्रम का काम न लेने व पैरों को पूरी तरह धरती से टिकाकर न चलने के कारण पीठ और पाँव की अँगुलियों में अस्वाभाविकता आ जायेगी । अधिकतर बैठे रहने के फलस्वरूप मनुष्य कमर से झुका हुआ भी हो सकता है । उसके जोड़ों में प्रायः दर्द बना रह सकता है, यह बुराइयाँ तो अभी दिखाई देने लगी हैं, परिश्रम और सारे शरीर को हलचल में रखने के अभाव के कारण मनुष्य दुर्बल ही न होगा, टेढ़ा-मेढ़ा भी होगा, उससे वह और भी विचित्र लगा करेगा । यद्यपि होगा यह सब आज से कई पीढ़ियों बाद, पर यह लक्षण धीरे-धीरे हर अंगली आने वाली पीढ़ी में उभरते चले जायेंगे, इस पाप के लिये पूरे तौर पर दोषी आज की पीढ़ी होगी, जो कृत्रिमता और यन्त्रीकरण को आभूषण समझकर गले लगाती चली जा रही है ।

अस्वाभाविक जीवन और सम्भावित विकृतियों के लिये हमारा आचरण दोषी होगा पर आचरण चूँकि विचारों से पोषण पाते हैं, इसलिये हम यह मानते हैं कि सारा दोष हमारे सोचने की पद्धति का है । गलत निर्णय हमें पतन के गड्ढे में गिराते हैं, गलत इच्छाएँ हमारे जीवन के प्राकृतिक आनन्द को नष्ट करती हैं । इच्छाओं की विकृति ही शारीरिक विकृति बनकर परिलक्षित होगी ।

उदाहरण के लिये प्राचीनकाल में अफ्रीका में पाये जाने वाले जिराफों की गर्दन और पैर छोटे ही थे । उनको ऊँचे पेड़ों की पत्तियाँ खाने की आवश्यकता नहीं थी, जमीन की घास से काम चल जाता था, एक समय ऐसा (ग्लैशियल पीरियड) आया कि सारी पृथ्वी बर्फ से ढक गई । तब पृथ्वी में घास न रही इसलिये जिराफ झाड़ियों के पत्तों को लपकने लगे । इसके लिये उन्हें गर्दन खींचनी पड़ती थी । आगे के पैरों को ऊँचा उठाना पड़ता था । फिर जब झाड़ियों की पत्तियाँ न रहीं तो और बड़े पेड़ों की पत्तियाँ प्राप्त करने के लिये उन्होंने अपने शरीर को और खींचा । परिणामतः उनकी गर्दन और आगे के पैर ऊँचे हो गये और वही जिराफ आज के भिन्न आकृति वाले जिराफ में बदल गया ।

न चाहते हुए भी वातावरण के परिवर्तन प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करते हैं । सबको आवश्यकतानुसार परिवर्तन की तीव्र इच्छा होगी, क्योंकि तब मनुष्य परिस्थितियों पर नहीं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिस्थितियाँ मनुष्य पर हावी होंगी। तीव्र इच्छा के कारण बनावट में अन्तर आने से नये शरीरों के विकास की बात प्रत्येक जीव-शास्त्री मानते हैं, इसलिये अब इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया कि यदि मनुष्य ने अपनी इच्छाएँ अपने वर्तमान भौतिकता की ओर बढ़ रहे कदमों में परिवर्तन न किया तो उसके शरीरों का एकदम बदलकर विलक्षण आकृति धारण कर लेने में कोई सन्देह नहीं है ।

आज की बुद्धिमत्ता से यह आग्रह है कि उसे भावी पीढ़ी की इस उपहासास्पद स्थिति से बचाने के लिये अपने आपको इतना निर्बल नहीं बना लेना चाहिए कि परिस्थितियों को सम्भालना कठिन हो जाये । हमें बढ़ती हुई भौतिकता को रोककर जीवन के जो अंश अधूरे और अनियमित पड़े हैं, उन्हें ठीक करके आने वाली सन्तानों को अधूरा और अनियमित बनाने का पाप नहीं ही करना चाहिए ।

क्या हम भविष्य में अति कुरूप हो जायेंगे ?

लम्बाई अब की अपेक्षा कुछ अधिक ७ फुट तक, छाती कुल १२ इञ्च, सारस जैसी सीकियाँ टाँगे, मुँह में दाँत नहीं, पाँव में कुल चार अँगुलियाँ, आँख कबूतर जैसी, गीध की सी चोंच, सर पूरे फुटबाल जितना पर उसमें एक भी बाल नहीं, स्त्रियों को भी जूड़ा बाँधने से मुक्ति—यह होगी अब से कुछ शताब्दियों बाद मनुष्य की रेखागणित । अभी तक जो मनुष्य देवाकृति जैसा स्वस्थ और सुन्दर दिखाई दिया करता था अब उसी में वह परिवर्तन उभर रहे हैं जो मनुष्य को १ लाख वर्ष बाद बिल्कुल कार्टून की सी स्थिति में बदल देंगे । इसके लिए दोषी परिस्थितियाँ न होंगी वरन् परिस्थितियों को विद्रूप करने वाला आज का मनुष्य ही होगा जो आज अपनी विद्या और बुद्धि के अभिमान में फूला नहीं समा रहा ।

मनुष्य का दोष इसलिए होगा कि वह परमात्मा के दिये हुए सर्वांग सुन्दर वाहन शरीर को जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जैसा उचित प्रयोग करना चाहिए था, नहीं कर रहा । एक पहिये से खींचने पर गाड़ी की जो दुर्दशा हो सकती है, मनुष्य शरीर के एकांगी भौतिक उपयोग के कारण भी वही दुर्दशा हो सकती है ।

प्रसिद्ध जीवशास्त्री लेमार्क, जिसका पूरा नाम बेप्टाइज लेमार्क था, ने विकासवाद सिद्धान्त के अन्तर्गत एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसका नाम है—'थ्योरी आफ यूज एण्ड डिसयूज' । लेमार्क ने अनुभव किया कि नये जीवों का वातावरण बदलने का कारण होता है । वातावरण बदलने से आवश्यकताएँ बदलती हैं और आवश्यकताओं के अनुसार आकृति में भी परिवर्तन होता है जिन जीवों में यह परिवर्तन होता है वे जीव इन परिवर्तनों को आगे आने वाली पीढ़ी को उत्तराधिकार में दे देते हैं इससे अन्तर पड़ता चला जाता है आज वह जीव जिस आकृति में होता है उसकी कई पीढ़ियों के बाद का बच्चा आकृति में उससे बिल्कुल भिन्न होता है ।

उदाहरण के तौर पर लेमार्क ने बताया कि पहले जो बन्दर थे वे पेड़ों पर रहते थे सुरक्षा के लिए उनकी आँख हड्डी की परिधि के भीतर रहती थी । पेट की बनावट सादी थी । कन्धे की हड्डी स्पष्ट थीं । हाथ की दोनों हड्डियाँ 'रेडियन' और 'अलना' कभी एक में जुड़ी रहती थीं । हाथ और पैर में पाँच-पाँच उँगलियाँ रहती थीं । इनमें पूँछ भी होती थी क्योंकि पेड़ों पर चढ़ने के लिए इन्हें उछाल लेनी पड़ती थी । बन्दर, लंगूर, नील, वानर सब इसी श्रेणी में आते थे । यही जब 'अलक' श्रेणी में आये अर्थात् जब इन्होंने धीरे-धीरे पेड़ों की अपेक्षा पृथ्वी पर भी रहना प्रारम्भ कर दिया तो इनकी आकृति में अन्तर आ गया । उछलने की आवश्यकता न रहने से पूँछ घिस गई । विकासवाद के समर्थक कहते हैं मनुष्य की रीढ़ की हड्डी जहाँ समाप्त होती है उसके पास आज भी 'टेल वरटिब्री' पाई जाती है यह वही स्थान है जहाँ पहले पूँछ रहती थी किन्तु उसका उपयोग न होने के कारण वह समाप्त होते-होते 'अलक' में बिल्कुल ही समाप्त हो गई ।

लेमार्क सिद्धान्त के दूसरे मत के अनुसार जीवनकाल में अंगों के उपयोग और अनुपयोग का शरीर पर बहुत प्रभाव पड़ता है । जो अंग बराबर काम में प्रयुक्त होते रहते हैं उनमें स्थिरता बनी रहती है, उस अंग के परमाणु क्रियाशील रहते हैं इसलिए वह स्थान बलवान और स्वाभाविक बना रहता है । वह अंग बढ़ता और अधिक शक्तिशाली होता रहता है । किन्तु जो अंग प्रयोग में नहीं आते वे धीरे-धीरे दुर्बल होते हुए क्षीण एवं अनुपयोगी हो जाते हैं । हम इस सिद्धान्त को मानते हैं हमारा विश्वास भी ऐसा ही है । पर उससे योनियों के अपने वंशानुक्रम प्रभावित होते हैं ऐसा नहीं होता कि एक जीव ही दूसरे जीव में बदल जाता है । वे परिवर्तन जो व्यक्ति के जीवन काल में प्रयोग और अप्रयोग (यूज एण्ड डिसयूज) के कारण होते हैं उन्हें अपने में जोड़ लेने या बढ़ा लेने को 'एम्बायर्ड करेक्टर' कहते हैं । लेमार्क के मतानुसार यह गुण आगे आने वाली पीढ़ियों में लक्षण सूत्रों (जीन्स) के रूप में 'पास' हो जाते हैं इसलिए कई पीढ़ियों बाद मानवाकृति में पूर्णाकृति से भिन्नता आ जाती है ।

इस सिद्धान्त का मनुष्य के भविष्य से गहरा सम्बन्ध है इसलिये इसका प्रतिपादन आवश्यक है । हम देखते हैं कि आज हमारी परिस्थितियाँ हमारे रहन-सहन का ढाँचा ऐसा हो गया जिसमें कुछ आवश्यकताओं की ओर मनुष्य बिल्कुल ध्यान नहीं देता, कुछ बातों में वह आवश्यकता से अधिक महत्व देता है । महत्व पाने वाले अंग तेजी से विकसित होंगे किन्तु जिनकी उपेक्षा की जा रही है वह नष्ट होंगे या ऐसे क्षीण होंगे कि आने वाली पीढ़ियों में इतना अन्तर आ जायेगा कि वह अबकी मनुष्याकृति न रहकर 'कार्टून' सा बन जायेगा ।

हमारे पूर्वजों का रहन-सहन इस तरह का था कि वे अधिक से अधिक प्रकृति के सम्पर्क में रहते थे । फलों के लिये वे वृक्षों पर चढ़ा करते थे । पहाड़ों की सैर करते थे, खेती करते थे । भरपूर परिश्रम करने से उनकी श्वास-प्रश्वास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रिया गहरी बनी रहती थी । फेफड़े इतने फूलते थे कि छाती में पर्याप्त हवा भरी रहती थी उससे सीने चौड़े और सारा शरीर सुडौल बना रहता था किन्तु जीवन में अब कृत्रिमता आ जाने से शरीर का पर्याप्त श्रम करना रुक गया इसलिए अब के युवकों की छातियाँ अपने पिता बाबाओं की छाती की तुलना में छोटी पड़ गईं । परिश्रम और पूरी साँस न लेने का ही परिणाम होगा कि आने वाली पीढ़ियाँ १२ इञ्च से अधिक चौड़े सीने वाली नहीं होंगी । पेट भी इनका सिकुड़ता चला जायेगा ।

आवश्यकता इस बात की थी कि हम अपने पूर्वजों से कुछ ग्रहण करते पर हुआ यह कि अपनी बुद्धिमत्ता सिद्ध करने के लिए आज के मनुष्य ने विज्ञान का आश्रय लिया । शरीर के काम यन्त्रों ने ले लिये, मनुष्य ने अधिक से अधिक कामोपभोग करने में अपनी क्षमताएँ लगाईं फलस्वरूप उसके शरीर में उतार होता चला जा रहा है । योरोप और अमरीका में इस सम्बन्ध में गहन सर्वेक्षण हुआ है पिछले ५० वर्षों के जो निष्कर्ष सामने आये हैं, वह बताते हैं कि आज का मनुष्य १.३७ इञ्च अधिक लम्बा हो गया है । वह इस दिशा में निरन्तर प्रगति कर रहा है । आणविक विकरण के प्रभाव और शुद्ध ऑक्सीजन शरीर को न मिलने के कारण लक्षण-सूत्र (जीन्स) विकृत हो रहे हैं । जिससे मनुष्य की आकृति शिवजी के बरातियों की सी हो सकती है । इन परिवर्तनों को अधिकतर वही रोक पायेंगे जो कृत्रिमता को दूर रखकर, संयमपूर्वक आहार-विहार में शुद्धता रखकर अपने शरीर और जीवकोषों को शुद्ध और बलवान बनाये रखेंगे ।

लोहार के हाथ (मसल्स) बहुत मजबूत होते हैं किन्तु शहरी बाबुओं के हाथ परिश्रम न करने के कारण कमजोर और पतले होते हैं । गाँव के चरवाहे और किसानों को औसत १० मील प्रतिदिन चलना पड़ता है किन्तु नौकरीपेशे वालों को १ मील जाकर घूमने और शुद्ध हवा लेना भी मुश्किल लगता है इससे उनकी जंघा और टाँगें पतली होती चली जा रही हैं । सरीसृप श्रेणी के सभी जीवों के पैर होते हैं मगर, घड़ियाल, कछुये, छिपकली, कोतरी, बम्हनी, गोह इन सबके पैर होते हैं क्योंकि इनमें से जल में रहने वाले जीव भी बराबर जल से बाहर आकर अपने पैरों का उपयोग करते रहते हैं । इनके पैरों में कोई अन्तर नहीं आया पर साँप ने रेंगकर चलने के कारण अपने पैरों का उपयोग नहीं किया इसलिए उसके पेट में हाथ और पाँव के छोटे-छोटे दाने (इम्प्रेसन) मात्र रह गये । प्रारम्भ में साँप इतना बड़ा न होता था । रेंगकर चलने में उसे शरीर को खींचना पड़ता है जिससे वह बड़ा भी होता गया । अपने शरीर का विधिवत उपयोग न करने के कारण मनुष्य की भी यही स्थिति होगी ।

धरती के भीतर रहने वाले जीव जैसे मेंढक, केंचुये, गुबरैले और दूसरे कीड़ों की आँखें बिल्कुल कमजोर होती हैं क्योंकि उन्हें आँखों से काम नहीं लेना पड़ता, जबकि खुली हवा में आकाश में उड़कर केवल अपने शिकार की ही ढूँढ में रहने वालों की आँखें बहुत तेज होती हैं । परिश्रम और भरपूर प्रयोग से अंगों में दबाव पड़ने की अपेक्षा शक्ति आती है यह बात भूलने के कारण ही हम अपने शरीरों को कुछ का कुछ बनाते चले जा रहे हैं ।

जीववैज्ञानिकों का मत है कि अबसे कई शताब्दियों पूर्व जब वन अधिक थे जंगलों में दूसरे जीवों का बाहुल्य था तब मनुष्यों की चिन्ताएँ कम थीं, कम से कम आवश्यकताओं में वह अधिक-से-अधिक मस्ती का जीवन-यापन करता था, तब उसका सिर ८१४ घन सेन्टीमीटर था अब मस्तिष्क के घनत्व का औसत १३५० घन सेन्टीमीटर है । अब यन्त्र विज्ञान इतना बढ़ गया है कि आने वाली पीढ़ियों को कम से कम एक पुस्तक नाम तो, उन पुर्जों के याद रखने पड़ेंगे जो उनके सामान्य जीवन के उपयोग के होंगे । शरीर को काम करना पड़ेगा नहीं, इसलिये वे तो कमजोर हो जायेंगे पर सिर अनुमान है १७२५ घन सेन्टीमीटर अर्थात् वनमानुष युग से दोगुना बड़ा होगा । पाँच लाख वर्ष बाद सिर फुटबाल की तरह और शरीर उन पुतलों जैसा हो जायेगा जो गाँवों की स्त्रियाँ नाग पूजा पर दीवारों पर काढ़ा करती हैं ।

जीववैज्ञानिकों के अनुसार पहले लोग कच्चा खाने, फल और तरकारियाँ खाने, मेवे चबाने में दाँतों को पर्याप्त व्यायाम देते रहते थे, इसलिये तब दाँत बहुत मजबूत थे । किन्तु अब पेयों का बहुत प्रचलन हो गया है, कामुकता के कारण लोगों के पेट की माँसपेशियाँ दुर्बल पड़ जायेंगी, जिससे वह कच्ची वस्तुएँ पचा ही नहीं सकेगा । तब पेयों की मात्रा और अधिक बढ़ेगी, इससे लोगों के दाँत समाप्त हो जायेंगे । कुछ लोगों के दाँत होंगे पर बहुत दुर्बल, अधिकांश पोपले हुआ करेंगे । भौंहो की हड्डी भी, अनुमान है बदल जायेगी—वह गोल हो सकती है, जिससे सिर बिलकुल फुटबाल जैसा लगेगा । यह सब इसलिए होगा कि हम अपनी परिस्थितियाँ, अपना वातावरण ऐसा बनाते चले आ रहे हैं कि सारे शरीर का उपयोग ही नहीं होता । जिन अंगों का उपयोग बढ़ा रहे हैं वह तो बड़े और भौंड़े हो सकते हैं, जबकि प्रयोग में न आने वाले अंग या तो समाप्त ही हो सकते हैं या फिर ऐसे होंगे जिन्हें देखते ही ऐसे हँसी आ जाये जैसे कार्टून को देखकर हँसी आ जाती है ।

इन परिस्थितियों में क्या हम सोचेंगे कि हमारे जीवन में पनप रही कृत्रिमता, परिश्रम का अभाव और यन्त्रीकरण का प्रेम हमें कहाँ से कहाँ और क्या से क्या बना सकता है ।

व्यक्तित्व की प्रखरता के लिए तदनुकूल वातावरण की आवश्यकता

गर्भावस्था में आने से लेकर मृत्यु-पर्यन्त मनुष्य को अनेकानेक वातावरण में परिवेष्ठित हो रहना पड़ता है । गर्भकाल में वह अपनी आनुवंशिकता से आवेष्ठित होता है और उस समय जन्मदात्री माँ के शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य एवं भाव संवेदनाओं का उस पर प्रगाढ़ असर पड़ता है, किन्तु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस दुनिया में पदार्पण करते ही उसे जो प्रथम वातावरण मिलता है, वह उसका पारिवारिक परिवेश होता है । यह एक ऐसा वातावरण है जहाँ शिशु के व्यक्तित्व की गलाई-ढलाई होती है एवं इसकी नींव रखी जाती है, जिस पर कालान्तर में सुदृढ़ व्यक्तित्व का महल खड़ा किया जाता है । वैज्ञानिक अनुसंधानों से भी अब यह स्पष्ट हो गया है कि बच्चों को आनुवंशिकी से अधिक वातावरण, पारिवारिक परिवेश एवं परिस्थितियाँ प्रभावित करती हैं । शिशुओं के समग्र मानसिक विकास के लिए पारिवारिक शान्ति, सौहार्द्र और स्नेह-दुलार के साथ-साथ संस्कारोन्मुख प्रशिक्षण की व्यवस्था का होना भी नितान्त आवश्यक है ।

नृतत्ववेत्ताओं, समाजशास्त्रियों एवं चिकित्साविज्ञानियो ने इस संदर्भ में गभीरतापूर्वक अध्ययन-अनुसंधान किया है । उनके अनुसार मनुष्य की ज्ञानवृद्धि-प्रशिक्षण एवं अभ्यास के अभाव में स्वाभाविक ढंग से नहीं हो पाती । इसके लिए जहाँ एक ओर माता-पिता या अभिभावक और शिक्षक आवश्यक हैं, वहीं दूसरी ओर तदनुरूप उपयुक्त वातावरण का होना भी जरूरी है ।

बेबीलोन के सुप्रसिद्ध राजा असुर वानापाल, फ्रेडरिक द्वितीय, जेम्स चतुर्थ और अकबर के समय में कुछ बच्चों पर इस तरह के प्रयोग किये गये थे जिनमें उन्हें मानव समाज से इस तरह अलग रखा गया था कि उनका सम्पर्क किसी भी व्यक्ति से न हो सके । न तो वे किसी की बातें सुन सकें और न उनके क्रिया-कलापों को देख सकें । केवल कुछ महिलाएँ ही उनके पालन-पोषण और रक्षण के लिए नियत की गयीं थीं जो बिना बोले कुछ संकेतों द्वारा ही उनका पालन-पोषण करती रहीं । निश्चित अवधि के पश्चात् वे भी उनसे दूर हट जातीं और वहीं से उनका निरीक्षण करती रहती थीं । उन सभी प्रयोग-परीक्षणों से एक ही निष्कर्ष निकला था कि प्रशिक्षण एवं ज्ञानवृद्धि के अभाव में सभी बच्चे अविकसित, गूँगे-बहरे एवं व्यक्तित्व की दृष्टि से सर्वथा गये गुजरे थे ।

'अन्डरस्टैण्डिंग ह्यूमन बिहेवियर' नामक पुस्तक में 'वाइल्ड चाइल्ड' शीर्षक के अन्तर्गत इस प्रकार के अनेक मानव शिशुओं का विस्तृत विवरण दिया गया है, जिनको असहाय अवस्था में पाकर विपरीत स्वभाव कहे जाने वाले वन्य हिंस्र पशुओं—यथा भेड़िये, शेर, चीते, बन्दरों और भालुओं ने अपने बच्चों की तरह ममता एवं वात्सल्य भरे आत्मीयता से पाला-पोसा । प्रख्यात जीवविज्ञानी डॉ. हिलबर्ट सिग्लर ने इस सम्बन्ध में किये गये अपने व्यापक अध्ययन एवं सर्वेक्षणों के आधार पर बताया है कि हिंस्र पशुओं के साथ पले-बढ़े ये सभी मानव शिशु अपने वन्य पालकों के साथ हिल-मिलकर रहते, उछलते-कूदते और शिकार करते पाये गये थे । रहन-सहन, खान-पान एवं व्यवहार में भी वे पूरी तरह जंगली वातावरण के अनुरूप ढल गये थे ।

अँग्रेजी के सुविख्यात साहित्यकार रडयार्ड किपलिंग ने 'टारजन ऑफ दि एप्स' नामक अपने शोध ग्रन्थ में 'टारजन' नामक वन-मानव की कथा को बड़े ही रोचक-पूर्ण शब्दों में वर्णित किया है । टारजन एक ख्याति प्राप्त कॉमिक स्ट्रीप ही नहीं अब वाइल्ड फैन्टेसी का एक विलक्षण नायक भी है । इसकी कथा इस प्रकार है कि एक ग्यारह वर्षीय अँग्रेज बालक एक जहाज से बिछुड़ कर अफ्रीका के घने जंगलों में जा फँसा, जहाँ उसे बन्दरों ने पकड़कर पाल-पोस लिया । अन्य पशुओं का भी उसे भावनात्मक सहयोग मिला और लगातार पन्द्रह वर्ष तक उनके बीच रहकर वह वन्य परिवार के हिंस्र तथा अहिंस्र प्राणियों का परिचित ही नहीं स्नेहभाजन भी बन गया था ।

सर्वप्रथम वन्य पशुओं द्वारा पाले-पोसे गये मानव शिशुओं का प्रामाणिक विवरण चौदहवीं शताब्दी में तैयार किया गया था । सन् १३४१ में जर्मनी के हैसे नामक बालक का नाम रिकार्ड में सर्वप्रथम अंकित किया गया था । लगभग बारह वर्षीय यह बालक जर्मनी के सघन जंगलों से खूँखार जानवरों के झुण्ड से जाल में फँसाकर पकड़ा गया था । इसके बाद समय-समय पर मध्य और पूर्वी योरोप के देशों में अनेक बालकों को जंगली जानवरों के मध्य रहते हुए खोज निकाला गया । वे सभी गूँगे थे या अपने पालनकर्ताओं की तरह गुर्राने और कच्चा मांस खाने वाले थे तथा उन्हीं की तरह हाथ-पैरों से छलाँग मारकर चलते थे ।

भारत में ब्रिटिश शासनकाल में मेजर जनरल स्लीमैन नामक एक अँग्रेज अधिकारी ने इस संदर्भ में गहरी रुचि ली । सन् १९०० में उसने यह अनुमान लगाया था कि समूचे विश्व में प्रतिवर्ष प्रायः ६ हजार बच्चे जंगली हिंसक पशुओं की गिरफ्त में आ जाते हैं जिनमें से अधिकतर को वे अपने बच्चों की तरह पाल-पोसकर अपने परिवार का अभिन्न सदस्य बना लेते हैं । उनके निर्देशन में पश्चिम बंगाल के मिदनापुर के जंगलों से अमला और कमला नामक दो लड़कियाँ खोज निकाली गयीं थीं जिनमें अमला की आयु १८ माह और कमला की १२ वर्ष थी । अनेकों प्रयत्न करने के बावजूद भी उन्हें पूरी तरह प्रशिक्षित नहीं किया जा सका था दोनों की मृत्यु क्रमशः ९ वर्ष एवं १७ वर्ष की आयु में हो गयी थी ।

सन् १९७३ में इटली के प्राणि-व्यवहार विशेषज्ञों के एक खोजी दल ने आब्रूजी नामक पहाड़ियों के मध्य जंगली भेड़ियों के समूह से 'रोमो' नामक एक बच्चे को पकड़ा था । यह जंगल अपनी अत्यधिक सघनता एवं हिंस्र प्राणियों की बहुलता के लिए विख्यात है । रोमो भी पशुओं की तरह हाथ-पैरों की सहायता से छलाँग लगाता और भेड़ियों की तरह गुर्राता था । इसी वर्ष श्रीलंका के घने जंगलों से 'टीसा' नामक एक बालक भी बंदरों की टोलियों के साथ उछल-कूद करते हुए पाया गया था । बन्दरों के साथ छीना-झपटी करते समय वह भी अन्य साथियों की तरह घुड़की भरता और गुर्राता हुआ पेड़ की शाखाएँ हिलाने लगता । मनोवैज्ञानिकों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के सतत् परिश्रम और प्रयासों से उसे कुछ ही महीनों में सामान्य व्यवहार क्रम में प्रशिक्षित कर लिया गया ।

मानवीय व्यवहार विशेषज्ञों व अनुसंधानकर्ताओं ने वन्य पशुओं द्वारा पोषित मानव शिशुओं को दो प्रकार की श्रेणी में रखा है । पहली श्रेणी में वे बच्चे आते हैं जो किसी आकस्मिक दुर्घटना अथवा संयोगवश अपने माता-पिता या परिजनों से बिछुड़कर भूल-भटककर सघन जंगलों में फँसे, जहाँ उनकी असहाय एवं दयनीय अवस्था से द्रवीभूत खूँखार समझे जाने वाले जानवरों ने अपनी सन्तानों की तरह आत्मीयतापूर्वक पालपोस लिया था । दूसरी श्रेणी में उन बच्चों को रखा गया है जिन्हें शेर, चीते, बाघ, भालू और भेड़िये जैसे मानवीय रक्त और माँस से अपनी क्षुधा-पिपासा शान्त करने वाले प्राणियों ने उठा लिया था, किन्तु अपनी खुद की सन्तान न होने के कारण अथवा क्रूर और निर्मम मनुष्यों द्वारा अपने शिशुओं की हत्या कर दिये जाने पर सहज वात्सल्य भावना उमड़ पड़ने से उनको स्व-शिशुवत पाल लिया था ।

गहन अध्ययनों एवं सर्वेक्षणों के आधार पर यह तथ्य भी उभरकर आया है कि पर्याप्त प्रशिक्षण तथा स्नेह-दुलार के अभाव में कितने ही बच्चे मानसिक रूप से अविकसित रह जाते हैं और कितने ही मानसिक विकृति अथवा अन्य पारिवारिक कलह, कुंठा-कुत्साओं के कारण घर छोड़कर जंगलों की ओर भाग जाते हैं । आज का तथाकथित सभ्य मानव भले ही स्वार्थी, निष्ठुर, क्रूर और मानवीय संवेदनाओं से रहित हो गया हो, किन्तु अध्ययनों से पता चलता है कि खूनी एवं हिंस्र समझे जाने वाले वन्य प्राणियों की भाव संवेदनाओं—प्रेम, ममता, समता और सद्भाव, सहयोग का स्रोत अभी सूखा नहीं है । वे मासूम, असहाय, बेसहारा बच्चों की व्यथा-वेदना पर टूक-टूक हो जाते हैं और अपनी विनाशकारी हिंसक प्रवृत्ति छोड़कर अपने निजी शिशुओं की तरह उन पर भी वात्सल्यभाव भरी ममता का सागर उड़ेल देते हैं । बच्चे भी उन्हीं परिवारों का अभिन्न अंग बनकर रहने और तदनुरूप अनुकरण, आचरण तथा व्यवहार करने लगते हैं ।

वन्य जीवों, जंगली हिंस्र पशुओं के साथ घुल-मिलकर जीवन-यापन करने वाले प्रकृति के कठोर आघातों से संतुलन बिठा लेने में समर्थ मानव शिशुओं के ये विवरण विचारशीलों, मनोवेत्ताओं एवं वैज्ञानिकों को सोचने के लिए विवश करते हैं कि यदि बच्चों को, भावी पीढ़ी को सुसंस्कृत वातावरण प्रदान नहीं किया गया, प्रशिक्षण एवं ज्ञान वृद्धि की समुचित व्यवस्था जुटायी नहीं जा सकी, तो अगले दिनों व्यक्तित्व की दृष्टि से मनुष्य को पशु मानव का जीवन व्यतीत करना पड़ सकता है । विश्व-विख्यात वैज्ञानिक मनीषी जॉन ग्रेन ने 'यूनिसेफ' के माध्यम से ठीक ही कहा है—"यदि आप एक बच्चे को उचित वातावरण पारिवारिक परिवेश, भोजन, माता-पिता का प्यार समुचित स्वतंत्रता एवं शिक्षा से वंचित रखते हैं तो आप एक ऐसे वयस्क का निर्माण करेंगे जो व्यक्तित्व की दृष्टि से अविकसित रहेगा और विकास की दिशा में प्रगति को तेज करने की अपेक्षा उसे पीछे की ओर धकेलेगा ।"

व्यक्ति निर्माण—उत्कृष्ट वातावरण पर निर्भर

व्यक्ति निर्माण एवं समाज निर्माण के लिए ऐसी शिक्षा-प्रणाली और वातावरण व्यवस्था की आवश्यकता है जिसके प्रभाव से अनुप्राणित होकर पिछड़े हुए लोग ऊँचे उठ सकें और नई पीढ़ी को उपयुक्त दिशा-धारा का सम्बल मिल सके ।

वातावरण के प्रभाव और सत्संग-कुसंग की प्रशंसा-निन्दा से शास्त्र भरे पड़े हैं । सत्संग की महिमा का तो इतना भावनापूर्ण उल्लेख है जिसे पढ़ने-सुनने पर अत्युक्ति की गंध आती है, पर विचार करने पर उस प्रतिपादन को तथ्यपूर्ण ही माना जायगा । इतिहास में इस बात के अनेकों प्रमाण हैं कि सामान्य मनःस्थिति और परिस्थिति के व्यक्ति किन्हीं महामानवों के उच्चस्तरीय सम्पर्क में आकर तेजी से अपने व्यक्तित्व को समुन्नत और परिष्कृत करते चले गये और प्रगति के उच्चशिखर पर जा पहुँचे । यदि उन्हें वैसा अवसर और वातावरण न मिलता तो संभवतः वे उसी स्थिति में पड़े रहते जिसमें कि उनके अन्य साथी कुटुम्बी निर्वाह करते हुए जिन्दगी के दिन पूरे कर गये । इस प्रकार ऐसी घटनाओं की भी कमी नहीं है जिनमें अच्छे, खासे-भले, चंगे मनुष्य हेय वातावरण के दबाव से कुसंग में फँसे और क्रमशः गिरते-गिरते पतन के भयंकर गर्त में जा गिरे । नई उम्र के किशोर और युवक प्रायः इसी कुचक्र में फँसकर अपना भविष्य अंधकारमय बनाते देखे गये हैं । अवारागर्दी गुण्डागर्दी, उच्छृंखलता, चोरी, नशेबाजी जैसी बुरी आदतों में भले घर के बालकों को फँसते और अपना सर्वनाश करते बहुधा देखा जाता है ।

ऐसा क्यों हुआ है? इसका पता करने पर यही बात सामने आती है कि कुसंग के फौलादी शिकंजे में फँसकर वे बाज द्वारा दबोचे हुए कबूतर की तरह निराश मनःस्थिति में कहीं से कहीं घिसटते चले गये हैं । नारद के सम्पर्क से ध्रुव, प्रहलाद, पार्वती, सावित्री जैसे अनेकों नर-नारियों ने ऐसी प्रेरणाएँ पाईं जिनके सहारे वे असामान्य बन गये । अंगुलिमाल, अजामिल, अम्बपाली जैसे ओछे जीवन भी किन्हीं प्रतिभाओं के प्रभाव से अपने में पूर्णतया परिवर्तन करके निकृष्ट से उत्कृष्ट बनने में समर्थ हुए थे । भगवान बुद्ध के सम्पर्क में आकर असंख्यों को देवमानव बनने का अवसर मिला । गान्धीजी की निकटता और घनिष्टता ने कितनों को युग पुरुष बनाया । वे अपने को धन्य बनाने और उस समय को बदलने में सफल हुए । अरस्तू के द्वारा सिकन्दर का, चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त का, समर्थ गुरु रामदास द्वारा शिवाजी का, रामकृष्ण परमहंस द्वारा विवेकानन्द का, विरजानन्द द्वारा दयानन्द का निर्माण हुआ था । उनमें अपनी मौलिक प्रतिभा भी थी, पर खरादने से हीरे का मूल्य निखरता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संसार के विभिन्न क्षेत्रों का पर्यवेक्षण किया जाय तो प्रतीत होगा कि क्षेत्रीय विशेषता का वहाँ के पदार्थों और प्राणियों पर कितना प्रभाव पड़ता है । ठंडे देशों के निवासी गोरे रंग के सुदृढ़ और दीर्घजीवी होते हैं, परन्तु जहाँ गर्मी अधिक पड़ती है, वहाँ लोगों के स्वास्थ्य गिरे, शरीर दुर्बल और रंग काले पाये जाते हैं । यही बात वनस्पतियों के संबंध में भी है । जड़ी-बूटियाँ वही हैं, पर विभिन्न क्षेत्रों में उगाये जाने पर उनके गुणों में न्यूनाधिकता उत्पन्न हो जाती है । हिमालय क्षेत्र में गंगातट पर उगी ब्राह्मी की तुलना में मैदानी क्षेत्रों में नहर, चरागाहों के किनारे उगी हुई ब्राह्मी के गुणों में भारी अन्तर पाया जाता है । यही बात अन्यान्य वनौषधियों के संबंध में भी है ।

मनोवैज्ञानिकों एवं शिक्षा-शास्त्रियों ने अनेकानेक प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया है कि व्यक्ति के ऊपर वातावरण का विशेष प्रभाव पड़ता है । श्रेष्ठ एवं प्रेरणादायक वातावरण से व्यक्तित्व में निखार आता है, जबकि दूषित वातावरण के प्रभाव से होनहार, प्रतिभावान एवं सच्चरित्र व्यक्ति भी पशुतुल्य हेय जीवन जीते देखे गये हैं । समय-समय पर जंगली जानवरों के साथ पकड़े गये बालकों के जीवनस्तर को देखकर इस तथ्य की वास्तविकता को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है ।

फ्रांस के मनोविज्ञानी डा. ज्यां इनार्द के अनुसार प्रस्तुत समय के वातावरण में विभिन्न स्तर के भरते जा रहे प्रदूषण में यदि इसी तरह अभिवृद्धि होती रही तो आने वाली पीढ़ी को इसके दुष्परिणाम निश्चय ही भुगतने पड़ेंगे और तब वे जंगली जानवरों के साथ पकड़े गये बालकों की तुलना में थोड़ा बहुत ही सभ्य कहलाने योग्य होंगे । इसी से मिलती-जुलती मान्यता मूर्धन्य वैज्ञानिक डा. क्रुक शैंक की है । उनका कहना है कि मनुष्य अपनी संतति या भावी पीढ़ी को अपनी प्रवृत्तियाँ एक अचल सम्पत्ति रूप में सौंपता है । भली-बुरी जैसे भी वे रहती हैं, वातावरण उन्हें कई गुना बढ़ा देते हैं और यही उनके उत्थान-पतन का कारण बनती हैं । व्यक्तित्व को सुधारने के लिए शिक्षणपरक उपायों की उपयोगिता को मानते हुए भी वे कहते हैं कि यदि प्रवृत्तियों की दृष्टि से भी मनुष्य को परिष्कृत बनाना है तो यह कार्य उनके जन्मदाताओं को प्रजनन की बात सोचने के पूर्व अपने निज के सुधार-परिष्कार के साथ ही अपने आस-पास के वातावरण को भी श्रेष्ठ बनाने के रूप में आरम्भ करना चाहिए । इतना ही नहीं यह कार्य पीढ़ी दर पीढ़ी चले तभी ऐसा संभव है ।

श्रेष्ठ वातावरण के निर्माण में सामूहिक उपासना, साधना महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । प्राचीनकाल में सामूहिक प्रार्थना, उपासना एवं यज्ञ आयोजनों आदि का बाहुल्य था । परिशोधित वातावरण के कारण जन-जीवन उत्कृष्टता की चरम सीमा पर था । सभी का जीवन आनन्दमय था । उस काल में धार्मिकता ही नैतिकता की पर्यायवाचक थी । अब परिस्थितियाँ बदल गई हैं । साम्प्रदायिकता बहुमुखी हो गई है और परस्पर विरोधी भी । ऐसी दशा में वातावरण बनाने के प्रश्न पर विचार करने वालों को नैतिकता और सामाजिकता की आस्थाओं को ही सामूहिक सम्मिलन का माध्यम बनाना होगा । प्राचीन धर्म तत्वों का आधार समझदारी, ईमानदारी, और जिम्मेदारी की भावनाओं में सन्निहित समझा जा सकता है । इसके लिए स्काउटिंग भावना को साथ लेकर हमें सामूहिक आयोजन की संरचना प्रेरणाप्रद वातावरण बनाने के निमित्त करनी चाहिए, समाज और संसार का सम्पूर्ण परिवर्तन तभी संभव है, इससे कम में नहीं ।

परिवेश मनुष्य को भी बदल देता है

मनुष्य पारदर्शी काँच की तरह है । वह जिस तरह से रंग के सम्पर्क में आता है, उसी रंग का दीखने लगता है । परिस्थितियाँ उसे जहाँ भी जैसे भी वातावरण में रखती हैं वह उसी स्तर का बनता जाता है । जहाँ ऊँचा उठाने वाली परिस्थितियों में रहकर व्यक्ति समुन्नत बनता है, वहाँ निष्कृष्ट परिस्थितियाँ उसे निरन्तर गिराती चली जाती हैं और उस स्थिति तक पहुँचा देती हैं, जहाँ उसे नरपिशाच की संज्ञा दी जा सके ।

अँग्रेजी शासन काल में एक भेड़िया मानव मध्य प्रदेश में पकड़ा गया था । नागपुर से जबलपुर जाने वाली सड़क पर एक गाँव था—'सन्त बावड़ी' उसके आस-पास चोरों ने बहुत आतंक मचा रखा था । आस-पास के गाँव आतंकित हो उठे थे और राहगीरों ने लूट के भय से उस रास्ते आना-जाना ही बन्द कर दिया था ।

सरकार ने उसकी रोकथाम के लिए लेफ्टीनेन्ट कवरले की ड्यूटी लगाई । उन्हें चोरों के अतिरिक्त एक और आतंक भी छाया मिला कि रात को घरों से मनुष्य गायब हो जाते हैं और वे फिर कभी नहीं मिलते । ऐसा कौन करता है—बाघ, भेड़िया, भूत, राक्षस, डाकू, तान्त्रिक ? जो हो, घटनाएँ इतनी अधिक घट चुकी थीं कि उनका पता लगाना भी आवश्यक था । लेफ्टीनेन्ट ने उस जाँच पड़ताल को भी अपने कार्यक्रम में सम्मिलित कर लिया ।

अनेक गुम हुए व्यक्तियों और ले जाये जाते समय उनके शरीर से टपके हुए रक्त को देखकर यह अनुमान लगाया गया कि यह कार्य किसी भेड़िये का है । किन्तु पैरों के निशान बड़े विचित्र थे उसे देखकर भूत, राक्षस, तान्त्रिक आदि की बात वहाँ के ग्रामीण लोग कहते थे । ध्यान से देखने से यह समझ में आया कि यह किसी घुटने और कोहनियों के बल पर चलने वाले मनुष्य के निशान हैं । क्या कोई मनुष्य और भेड़िये का सम्मिश्रित प्राणी यह कार्य करता है । पद-चिह्नों की अधिक खोज करने पर इसी बात की अधिक पुष्टि हुई ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खोज तेजी से आरम्भ कर दी गई और इस कार्य में आदिवासियों, शिकारियों तथा कुत्तों की एक बड़ी संख्या सुनियोजित ढंग से खोज करने के लिए नियुक्त कर दी गई । अन्तत: पता चल ही गया । भेड़ियों की एक माँद में मनुष्यों की अधखाई लाशें पाई गईं आश्चर्य तब हुआ जब उसी माँद में एक मनुष्य युवक भी पाया गया, जिसका जीवन-क्रम पूर्णतया भेड़ियों जैसा था । उसे जीवित पकड़ लिया गया और कई दिन तक बाँधकर रखकर देखा गया कि इस स्थिति में कैसे आ गया ।

कोई प्रामाणिक सबूत तो नहीं मिले पर अनुमान लगाया गया कि किसी मादा भेड़िया ने उसे कहीं से चुराया होगा अपना बच्चा न रहने पर थनों का दूध हलका करने के लिए उसे पाल लिया होगा । बड़ा होने पर वह अपनी अतिरिक्त बुद्धि के कारण भेड़ियों की, मनुष्य के शिकार में सहायता करने लगा होगा और उन्हीं जैसे जीवन का अभ्यस्त हो गया होगा ।

कई दिन तक उस नर भेड़िये को जंजीरों से बाँधकर रखा गया । कौतूहल पूरा करने के लिए दूर-दूर से लोग उसे देखने आये । पर अब प्रश्न यह उत्पन्न हुआ कि इसका क्या किया जाय ? वह भेड़िये की आदतें छोड़कर मनुष्य स्वभाव अपनाने के लिए तैयार नहीं हो रहा था । लेफ्टीनेन्ट से उसे ईसाई मिशनरियों ने माँगा और उन्हें वह दे भी दिया गया । उन्होंने उसे फिर मनुष्य की आदत में लौटाने के लिए भरपूर प्रयत्न किया किन्तु वे उसमें सफल न हो सके । एक वर्ष के भीतर ही वह लड़का मर गया । रूडयार्ड किपलिंग ने सम्भवत: इसी घटना-क्रम को अपनी कल्पना आधार बनाकर 'वृक मानव' नामक एक कहानी भी लिखी है ।

एक सभ्य देश और सभ्य परिवार में उत्पन्न हुई, महिला असभ्य वातावरण और असभ्य लोगों के बीच लम्बे समय तक रहने के पश्चात् किस प्रकार निकृष्ट स्तर की बन गई इसकी रोमांचकारी कथा नीचे की पंक्तियों में पढ़ने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वातावरण का कितना अधिक प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है ।

अफ्रीका का एक देश कांगो द्वितीय महायुद्ध से पहले बेलजियम का उपनिवेश था । युद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों की नीति के अनुसार कांगो को भी स्वतन्त्रता मिली । पर खीजे हुए गोरों ने वहाँ गृह-युद्ध करा दिया और ऐसी स्थिति पैदा कर दी जिसमें उन्हें फिर शान्ति स्थापित करने के बहाने वहाँ पैर जमाने का अवसर मिल सके ।

गृह-युद्ध रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी सेनाएँ भेजीं और एक ऐसा प्रतिनिधि मण्डल भी जो आपस में लड़ने वाले कवाइली लोगों को समझा-बुझाकर शान्ति और प्रगति का मार्ग अपनाने के लिए रजामन्द कर सकें । इस प्रतिनिधि मण्डल के नेता थे—स्वीडन के कप्तान नेल्स बोहेमन । उन्होंने सुदूर क्षेत्र में फैले हुए कवाइली सरदारों की बस्तियों में जाने और उन्हें समझाने-बुझाने का कार्य हाथ में लिया । दौरे में उन्हें भयंकर जंगलों में रहने वाले नर-भक्षी आदिवासियों की बस्तियों में जाना पड़ा । सो उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध था, पर एक जगह वे वाक्कटू लोगों के नर-भक्षी कबीले की पकड़ में आ गये और अपहरण करके वहाँ पहुँचा दिये गये जहाँ वे लोग नरबलि देने का उत्सव मनाया करते थे ।

नेल्स वोहेमन को बलिवेदी पर प्रस्तुत किया गया । वहाँ के भयंकर वातावरण को देखकर वे समझ गये कि अब उनका अन्त निकट आ गया । रस्सों से वे इस कदर जकड़े हुए थे कि बचने की कोई सम्भावना दिखाई नहीं पड़ रही थी । सबसे बड़ा आश्चर्य उन्हें इस बात का हुआ कि इन नरमेधों का सूत्र संचालन और नेतृत्व करने वाली देवी काले कवीलों में से नहीं वरन् एक गोरी योरोपियन युवती थी । उस देवी का नाम था 'रुआना' ।

सहसा उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ कि सभ्य देशों में उत्पन्न हुई अँग्रेजी और फ्रेंच अच्छी तरह बोल सकने वाली यह युवती आखिर इस भयंकर जंगल में किस प्रकार आ पहुँची और ऐसे नृशंस कृत्य कराने का नेतृत्व कैसे करने लगी ।

कप्तान ने साहस बटोरा और मरने से पूर्व—कुछ बात-चीत का सिलसिला बनाकर यह जानने का प्रयत्न किया कि वह कैसे यहाँ आई, कैसे यह सब करने लगी । उत्तर में रुआना ने बताया था, वह फ्रेंच कुमारी है । उसका असली नाम—'जानेटीफेन्रे' है । जब वह १४ वर्ष की थी तब अपने माता-पिता के साथ कांगो सैर के लिए आई थी । नाव उलट जाने से माता-पिता तो डूब गये, पर वह बेहोश स्थिति में नदी तट पर पड़ी थी । संयोगवश हिलते ही काले साँप उसके शरीर से लिपट गये । नरभक्षियों ने मूर्च्छित सुन्दरी पर कालेनागों का लिपटा होना, उसे देवी प्रकट होना मान लिया और उसे अपनी पवित्र देवी तथा स्वामिनी बना लिया । उसे उनकी मर्जी पर चलना पड़ा और रीति-रिवाजों को अपनाना पड़ा । जान बचाने के लिए और कोई रास्ता न था । आरम्भ में तो आये दिन की नरबलि उसे अखरी पर पीछे उसका मन अभ्यस्त हो गया और उन कृत्यों में ही मजा आने लगा । अब उसे नर बलि एक मनोरंजक और उत्साहवर्द्धक प्रथा लगती है । यहाँ से भागकर अन्यत्र जाने का उसका मन भी नहीं होता, वह अपनी वर्तमान स्थिति से पूर्णतया सन्तुष्ट है ।

इतनी वार्ता के बाद कप्तान को आशा थी कि राष्ट्रसंघ के प्रतिनिधि और सभ्य गोरे होने के नाम पर वे अपने प्राणों की भिक्षा माँग सकेंगे और किसी प्रकार छुटकारा पा सकेंगे । पर इसके लिए बहुत प्रयास करने पर भी वे सफल न हो सके । रुआना का मन पूर्णतया दयाविहीन हो चुका था ।

कप्तान ने मृत्यु से छुटकारे का अन्तिम प्रयास किया और वे किसी प्रकार अपनी पिस्तौल संभालने और गोली चलाने में सफल हो गये । उन्होंने रुआना को मार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डाला—कबाइलियों में भगदड़ मच गई और वे वहाँ से निकल भागने में सफल हो गये ।

कहने का तात्पर्य मात्र इतना ही नहीं है कि यदि परिवेश उत्कृष्ट स्तर का न रहा, तो उसमें रहने वाले भी निकृष्टता अपनाते और अनुदार स्तर के बनते देखे जाते हैं । अत: व्यक्तित्व विकास के संदर्भ में स्वयं के सुधार-संशोधन से भी अधिक महत्व इस बात का है कि व्यक्ति जिस वातावरण में रह रहा है, उसकी परिस्थितियाँ कैसी हैं ? कारण कि सर्व-साधारण के लिए अपना सुधार-परिष्कार भी तभी चलता रह सकता और अन्तिम सीमा तक पहुँच पाता है, जब परिवेश उसके अनुकूल हो, अन्यथा गये-गुजरे वातावरण में यह शुभारंभ हुआ भी तो दूसरे ही पल वह अपनी सत्ता पानी के बबूले की तरह मिटाता देखा जाता है और व्यक्ति का यह कार्य आवेश स्तर से अधिक कुछ नहीं बन पड़ता । इसीलिए आत्मोत्थान के परिप्रेक्ष्य में अध्यात्मवेत्ता वातावरण के महत्व को सर्वोपरि स्वीकारते और उत्कृष्टता संपादन के लिए तदनुरूप परिवेश में रहने की सलाह देते है ।

वातावरण हमें स्वयं ही बनाना होगा

जन्मत: मनुष्य कोरे कागज की तरह होता है । संपर्क में आने वाले वातावरण द्वारा उसका स्वभाव या रुझान गढ़ा जाता है । प्रचंड गर्मी के दिनों में पानी के स्रोत सूख जाते हैं और घास-पात के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं । पर वर्षा आने पर वह बात नहीं रहती । देखते-देखते ठंडक का माहौल बन जाता है और सर्वत्र जल भरा दीखता है । जमीन पर हरी मखमल का फर्श बिछ जाता है । यह परस्पर विरोधी चमत्कार वातावरण के परिवर्तन से ही बन पड़ते हैं । ऋतुएँ अपने प्रभाव से हर किसी को अपने-अपने ढंग से प्रभावित करती हैं । युद्ध, उपद्रव, आतंक से प्रत्यक्ष प्रभावित भले ही सीमित लोग ही होते हों पर उनके कारण भयभीत, अस्तव्यस्त अधिकांश लोगों का मानस बनता है ।

वसंत ऋतु हर किसी को उल्लास और सौंदर्य की अनुभूति कराती है । पर्व त्यौहारों और हर्षोत्सवों के दिनों में सर्वसाधारण का मन हुलसने लगता है । समुचित सुसंस्कृत वातावरण में साधारण जनों को भी सभ्यता का स्वरूप जानने और उस ढाँचे में ढलने का अनायास ही सुयोग मिलता है । इसके विपरीत दुष्ट, दुर्जनों, अनाचारी, व्यभिचारी, दुर्व्यसनी लोगों के बीच रहते हुए अच्छे भले भी उसी प्रवाह में बहने लगते हैं । व्यक्तिगत प्रयास और साहस का मूल्य समझते हुए भी देखने में यही आता है कि वातावरण का प्रभाव दबाव भी कम सशक्त नहीं है । वह भी बहुत कुछ कर गुजरने में समर्थ होता है । जर्मनी में नाजीवाद, रूस में साम्यवाद जनता की निजी उपलब्धि नहीं थी । वहाँ लोक मानस को शासन तंत्र ने अपने अनुरूप ढालने में सफलता पाई थी । सतयुग भी सीमित संख्या वाले ऋषि-मनीषियों की ही अनुकृति मात्र था । समाज सुधारकों और राष्ट्र निर्माताओं ने योजनाबद्ध रूप से सुसंगठित प्रयास किये हैं और जन समुदाय को अपना अनुयायी आदर्श अपनाने के लिए भी बनाया है । ऐसे लोगों में गाँधी, बुद्ध, ईसा आदि मनस्वी लोक निर्माताओं का उदाहरण सर्व साधारण के सामने आँखों के सामने तैरता रहता है ।

आज का अनौचित्य भरा चिंतन, स्वभाव एवं क्रियाकलाप उन लोगों की देन है, जिनने लोकमानस को प्रभावित करने की शक्ति को उभारा और अपने मनचाहे प्रयत्नों से लोकप्रचलन को अनुपयुक्त मार्ग पर धकेला । इसमें साहित्यकारों, अभिनेताओं, प्रचारकों, नेताओं को विशेष रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है । टेलीविजन, वीडियो, सिनेमा, रेडियो जैसे तंत्र शिक्षित-अशिक्षित सभी को अपने प्रभाव से प्रभावित करते हैं । शासन या समाज द्वारा जिन लोगों का, जिन कृत्यों का समर्थन किया जाता है प्रोत्साहन मिलता है, उसी प्रकार का लाभ प्राप्त करने के लिए असंख्यों का मन मचलता है । समारोहों, जुलूस प्रदर्शनों के माध्यम से उत्पन्न किये जाने वाला वातावरण भी उन लोगों तक को अपने प्रवाह में घसीट ले जाता है, जिनका प्रत्यक्षत: इससे कुछ लेना देना नहीं है । वातावरण के प्रभाव से बच निकलना या उससे विपरीत दिशा में स्वतंत्र चिंतन के आधार पर चल सकना किन्हीं बिरलों के लिए ही संभव होता है ।

व्यक्ति निर्माण से लेकर समाज निर्माण तक के लिए देश को ऊँचा उठाने एवं आगे बढ़ाने के लिए जहाँ व्यक्तिगत जीवन को आदर्शवादिता के सहारे प्रखर प्रतिभावान बनाने की आवश्यकता है, वहीं यह भी उचित है कि ऐसा वातावरण बनाने का प्रयत्न किया जाय जिसमें शालीनता को पनपने का अवसर मिल सके । जिसमें जनविरोध के कारण अवांछनीयताओं को बेमौत मरना पड़े । जितना आवश्यक अपना उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत करना है, उतना ही यह प्रयास भी महत्वपूर्ण है कि अनौचित्य भरे वातावरण को उलटने और शालीनता का पक्षधर माहौल बनाने के लिए सुविस्तृत क्षेत्र में सुनियोजित ढंग से व्यापक प्रयास किये जायँ ।

व्यक्तिगत सेवा-सहायता भी सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप सराहनीय हो सकती है । पीड़ितों-पिछड़ों के लिए, अपंगों-असमर्थों के लिए उनकी आवश्यक सहायता उदारचेताओं द्वारा जुटाई ही जानी चाहिए । वह सहृदयता का, उदारता का परिपोषण करने के लिए आवश्यक भी है । उदारचेता इन अभिव्यक्तियों को समय-समय पर चरितार्थ करते रहे हैं । दुर्भाग्यग्रस्त लोगों के कष्ट व व्यथाओं को निष्ठुर मन से देखते रहना, सेवासहायता के लिए हाथ न बँटाना आत्मधिक्कार और लोक अपयश का कारण बनता है । इस संदर्भ में सभी को आवश्यक ध्यान रखना चाहिए ।

इतने पर भी यह नहीं समझ लिया जाना चाहिए कि दरिद्रों की आर्थिक सहायता या पीड़ितों की प्रत्यक्ष सेवा करने मात्र से ही कर्तव्य की इति श्री हो जाती है । सार्वजनीन हित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कामना और अभ्युदय की योजना बनाते समय यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि निकृष्टता भरा मानस और आचरण ही समस्त विपत्तियों का व आज के आस्था संकट का प्रधान कारण है । उनका कारगर उपाय भी एक ही है, अवांछनीयताओं के दलदल से मानवी सत्ता को उबारने के लिए असाधारण स्तर का ऐसा प्रबल प्रयास किया जाय जो प्रचलन को ही उलट सके । उलटे को उलटकर सीधा कर सके ।

मनुष्य सीखने वाला प्राणी है । परिस्थितियों के अनुरूप वह बुराइयों को अपनाने के लिए भी चल पड़ता है और यदि प्रेरक वातावरण के साथ रहने का सुयोग जुट सके तो वह कुछ से कुछ भी बन सकता है । पारस छूकर लोहा बनने की उपमा इसी संदर्भ में दी जाती है । संसार के महामानवों ने अंत:प्रेरणा के अतिरिक्त प्रेरणाप्रद संपर्क सान्निध्य से ही बहुत कुछ पाया था । बुद्ध, गाँधी, शंकराचार्य, विवेकानंद जैसे प्रखर व्यक्तित्वों ने ऐसा वातावरण विनिर्मित किया था, जिसके चुम्बकत्व वाले दबाव से खिंच कर असंख्य छोटे-बड़े उनके बताये मार्ग पर चल पड़ने के लिए कटिबद्ध हुए । जब युद्धोन्माद उत्पन्न करके धन-जन का विशाल समुच्चय उस ज्वाला में होमा जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि प्रेरणाप्रद वातावरण बनाकर असंख्य जन समुदाय को उत्कृष्ट आदर्शवादिता अपनाने के लिए प्रोत्साहित न किया जा सके ।

प्राचीनकाल में मनीषाएँ, प्रतिभाएँ इस प्रयोजन को व्यक्तिगत रूप से मिलजुल कर पूरा कर लिया करती थीं । पर आज तो परिस्थितियाँ ही दूसरी हैं । इसमें समर्थ प्रवाह तंत्र ही अभीष्ट वातावरण बनाने में समर्थ हो सकता है । उदाहरण के लिए, ईसाई धर्म और साम्यवाद के द्रुतगति से अग्रगामी होने के प्रत्यक्ष प्रमाण सामने प्रस्तुत हैं । इन दोनों ने आँधी तूफान की तरह बढ़कर जनसमुदाय के सामान्य मस्तिष्कों को अपने ढाँचे में ढाल लेने की अप्रत्याशित सफलता पाई है । प्राचीनकाल के अनेकानेक धर्म, सम्प्रदाय, दर्शन और संगठन ऐसे ही सामूहिक प्रयासों की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुए और क्रमश: चक्रवृद्धि रीति-नीति अपना कर आगे बढ़ते चले गये । इन दिनों भी यह यथार्थता यथास्थान अवस्थित है । समाचार पत्र, साहित्य, सिनेमा, टी. वी. जैसे कुछेक समर्थ तंत्रों ने सामान्य जन-मानस को अपने ढाँचे में ढाल लेने में असाधारण सफलताएँ पाई हैं । तानाशाही राजतंत्र भी इसी अस्त्र के सहारे इच्छा या अनिच्छा से असंख्यों को अपने आदेशों का परिपालन करने के लिए बाधित करते रहे हैं । तथ्य बताते हैं कि जो भूमिका किसी समय में अवतारों, देवदूतों, विशिष्ट प्रतिभाओं द्वारा संपन्न की जाती रही है, आज उनका अभाव होने पर भी समर्थ प्रचार एवं प्रभाव तंत्र के सहारे बहुत कुछ संपन्न किया जा सकता है । समय को देखते हुए यही अनुरूप भी लगता है । मनीषियों को इन सामयिक आवश्यकताओं पर पूरी गंभीरता पूर्वक विचार करना और प्रचार तंत्र का सदुपयोग करने का एक सशक्त ढाँचा खड़ा करने में जुट जाना चाहिए ।

अपने समाज में इन दिनों अनेकों अवांछनीयताएँ, अनैतिकताएँ, मूढ़ मान्यताएँ अंध परंपराएँ, कुरीतियाँ प्रचलित हैं । बाल विवाह, खर्चीले विवाह, कन्या विक्रय, वर विक्रय, मृतक-भोज, भिक्षा व्यवसाय, फैशन अपव्यय, जातिगत ऊँच-नीच, पर्दाप्रथा आदि कुप्रचलनों की परिणितियों ने दूरगामी दुष्परिणाम उत्पन्न करने वाली समस्याओं के बबंडर खड़े किये हुए हैं । आलस्य और प्रमाद के कारण मनुष्य की आधी उत्पादक शक्ति नष्ट हो रही है । शिक्षितों की बेरोजगारी का एक बड़ा कारण यह है कि कुर्सी मेज पर बैठकर काम करना उन्हें श्रम की तुलना में श्रेयस्कर लगता है ।

भाग्यवाद, भूत-पलीत, ग्रह-नक्षत्र, शकुन, मुहूर्त, टोना-टोटका, जादू, चमत्कार जैसी अनेकानेक भ्रांतियों ने समझदारों की नासमझी के रूप में अपने समाज में गहरी जड़ें जमा रखी हैं । पुराने लोग स्वर्ग मुक्ति, सिद्धि, देवदर्शन, आदि के फेर में पड़े रहते हैं । नई पीढ़ी के लोग वासना, तृष्णा और अहंता के लिए समूची तत्परता नियोजित किये रहते हैं । दोनों पीढ़ियों का ही चिंतन व्यक्तिवादी संकीर्ण-स्वार्थपरता पर केन्द्रित है । आत्मशोधन का पुण्य और लोकमंगल का परमार्थ रास नहीं आता । संक्षेप में, यही है समाजगत मान्यताओं और प्रचलनों का सर्वविदित स्वरूप । दूर-दूर तक फैली विष-वृक्ष की इन्हीं जड़ों में लंबे समय तक कुठाराघात करने की आवश्यकता है । साथ ही नंदनवन और चंदनवन जैसे सत्प्रवृत्तियों के अभिनव उद्यानों का आरोपण-अभिवर्धन भी उतना ही आवश्यक है ।

इसके लिए प्राणवान प्रतिभाओं के उच्चस्तरीय प्रयासों, संगठनों को योजनाबद्ध रूप से हाथ में लेकर समुद्र पर सेतु बाँधने का प्रयास अभीष्ट है । इमारतों को गिराने में थोड़े से प्रयत्नों से ही काम चल जाता है, पर यदि उन्हें विनिर्मित करना हो तो अत्यधिक साधनों की, कुशल श्रमिकों और इंजीनियरों की जरूरत पड़ती है जिन्हें भी सदाशयता, सृजन, संवर्द्धन अभीष्ट है, उन्हें मिलजुल कर ऐसे प्रयास करने होंगे, जो वातावरण के उलटे प्रवाह को उलटकर सतयुगी निर्माण को संभव बना सकें । यही विचार क्रांति अभियान का लक्ष्य है ।

नरपशु नहीं, देवमानवों की पीढ़ी जन्मे

मानवी विकास जहाँ अन्यान्य घटकों पर निर्भर है, वहाँ परिवेश को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता रहा है । यह सही है कि माता का चिंतन, आहार तथा संस्कार बालक को प्रभावित करते हैं तथा जन्म लेने के बाद तक भी उन पर उनकी छाप रहती है किंतु बहिरंग जगत में आते ही कच्ची मनोभूमि पर वातावरण का, दृश्यजगत का, आसपास के परिवेश-संगति का जो प्रभाव पड़ता है, उसका अपने आप में बड़ा महत्व है, यदि हम सही वातावरण शिशुओं, विकसित हो रहे बच्चों को दे पाएँ, सुसंस्कारों का आरोपण कर पाएँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो जो संतति जन्म लेगी, निश्चित ही संस्कारवान-श्रेष्ठ चिंतन वाली होगी, देवमानवों के रूप में विकसित होने वाली । यदि वातावरण श्रेष्ठ आत्माओं को भी हेय स्तर का मिला तो संभव है, उनकी प्रगति में अवरोध आ जाय, वे नर-पशु ही नहीं किन्हीं और रूपों में जीवन जीती हुई इस मनुष्य तन का दुरुपयोग करती देखी जाएँ ।

महापुरुषों का कथन है कि कई श्रेष्ठ स्तर आत्माएँ इस धरित्री पर आती हैं, किंतु उचित वातावरण गर्भावस्था में या उसके बाद न मिल पाने के कारण वे शीघ्र ही धरती छोड़कर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो पुनः श्रेष्ठ कोख व वातावरण की तलाश में सूक्ष्म जगत में चली जाती हैं । पारलौकिक जीवन सूक्ष्म जगत के रहस्य बड़े विलक्षण हैं अतः ऐसा होता हो तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए ।

जन्म लेने के बाद घरों में जो स्वर्गोपम वातावरण मिलना चाहिए, वह न मिल पाने के कारण भी कई आत्माएँ घुटती, असाध्य मनोरोगों का शिकार होती व अल्पायु को प्राप्त होती दिखाई देती हैं । कई बार मानवी जगत से संबंध टूट जाने तथा पशुओं की संगति पाने पर मानव शिशुओं को वैसा ही विकसित होता देखा जाता रहा है । जंगल का जीवन जैसा परिवेश प्रदान करता है, शिशु वैसा ही विकसित होता चला जाता है । रामू भेड़िये की कथा प्रख्यात है, जिसमें उसे भेड़िये नवजात स्थिति में उठाकर ले गये थे व अंततः शिकारियों ने उसे भेड़िये की तरह चौपायों की भाँति चलते पाया । बहुत प्रयास करने पर भी उसे बचाया न जा सका । ऐसे उदाहरण अगणित हैं । एक घटना सन् १९२४ की है, जब जर्मनी स्थित हैमलिन के जंगलों से वन-रक्षकों ने पीटर नामक एक दस वर्षीय बच्चे को जंगली खूँख्वार जानवरों के मध्य खेलते हुए पाया । उस समय बच्चे की गर्दन में कमीज का टुकड़ा लटक रहा था । इस आधार पर विशेषज्ञों ने अनुमान लगाया था कि कुछ विषम परिस्थितियों में यह लड़का घर से पलायन कर गया होगा । आचरण एवं बोली में वह जानवरों जैसा ही व्यवहार करता था । पीटर का सचित्र विवरण जब वहाँ के राष्ट्रीय दैनिक समाचार पत्रों में निकाला गया तो क्रूगर नामक एक किसान ने उसे अपना पुत्र बताया जो रोज-रोज के पारिवारिक कलह के कारण घर छोड़कर निकल गया था । इस तथ्य की पुष्टि तब हुई जब वह एक रात मौका पाकर पुनः घर से जंगल में भाग गया । खोजकर्ताओं ने दुबारा पकड़कर उसे इंग्लेण्ड के शासक किंग जार्ज प्रथम के सुपुर्द कर दिया । जहाँ विशेषज्ञों की देखरेख में उसका शिक्षण प्रारंभ किया गया । बाद में वह एक सभ्य नागरिक बन गया और पचास वर्ष तक जीवित रहा ।

इसी तरह का विवरण फ्रांस स्थित एवरॉन नगर के विक्टर नामक बालक का मिलता है जिसे सन् १७९६ में जंगल में भेड़ियों के समूह से पकड़ा गया था । एक दिन अवसर मिलने पर वह भी फिर से उसी जंगल में पलायन कर गया जहाँ से उसे पकड़ा गया था । सन् १७९८ में भयंकर सर्दी की एक रात में वह वन स्थित एक कृषि फार्म पर आया जहाँ उसे फिर पकड़ लिया गया और मूर्द्धन्य शरीर विज्ञानी एवं मनोविद् डॉ. इटार्ड को सौंप दिया गया । उन्होंने उसे धैर्यपूर्वक मानवीय व्यवहार एवं सूत्र-संकेतों का प्रशिक्षण दिया । गंभीरतापूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए बताया कि पीटर की उम्र २० वर्ष की है । किन्हीं परिस्थितियों के कारण मानव संस्कृति और सभ्यता से कट जाने के कारण उसमें मानवीय आचरणों का अभाव हो गया था, पर प्रकृति सहचरी के कठोर आघातों से वह इतना अधिक सामंजस्य स्थापित कर चुका था कि चिलचिलाती धूप एवं कड़कड़ाती शीत में भी मजे से रहता रहा । डॉ. इटार्ड के संरक्षण में उसने अपने जीवन के ४० बसंत देखे तब तक वह एक सभ्य नागरिक बन चुका था ।

सन् १९७३ में आस्ट्रिया के समाचार पत्रों में पाँच वर्षीय एक बालक का सचित्र विवरण छपा था जिसे वैज्ञानिकों के एक खोजी दल ने जर्मनी के जंगलों में शिकारी कुत्तों के झुंड से पकड़ा था । वह कुत्तों की तरह ही चलता और भौंकता था । देखा गया कि संकट आने पर वह अपनी बाहें मादा कुतिया की गर्दन में डाल देता था और उसी को अपनी माँ समझता था । इससे पूर्व सन् १९६० में थाईलैंड के प्रसिद्ध चिड़ियाघर चैंगमाई के मालिक हैरोल्ड एम. यंग ने लाहू पहाड़ियों के घने जंगल में रहने वाले एक भीमकाय भेड़िये बालक को पकड़ा था । रात्रि के समय वह पहाड़ी से नीचे उतरता और मनुष्यों तथा पशुओं को अपना शिकार बनाता । भेड़ियों की तरह ही वह अपने दाँतों से शिकार की गर्दन पर वार करता और उनका सफाया कर देता था ।

सर्वाधिक आश्चर्यपूर्ण विवरण आयरलैंड के उस बच्चे का है जिसे जंगली भेड़ों के समूह में से पकड़ा गया था । उसकी विशेषता यह थी कि अन्य मेमनों की तरह ही वह झाड़-झंखाड़ों से पत्तियाँ नोचकर खाता, उन्हीं की तरह हाथ-पैरों से चलता और मेमनों की बोली में अपना स्वर मिलाता था । सुप्रसिद्ध चिकित्साविज्ञानी डॉ. एम्स्टेर्डम ने परीक्षणोपरांत निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए बताया है कि उस बालक ने प्रकृति के साथ इतना सघन तादात्म्य स्थापित कर लिया था कि सर्दी-गर्मी का उसके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था । अंततः वातावरण सही मिलने पर वह मानव बालक के रूप में विकसित हो सका ।

उपर्युक्त विवरणों से तथ्य एक ही निकलता है कि मानवी प्रगति के लिए परिवेश, सुसंस्कारी वातावरण अत्यंत अनिवार्य है । क्या आज की तथाकथित सभ्य मानव जाति निरंतर प्रदूषित हो रही संस्कृति, टी. वी. मीडिया द्वारा गड़बड़ा रहे घर के वातावरण एवं स्वयं के व्यवहार पर भी थोड़ा ध्यान देगी ताकि भावी पीढ़ी सुसंस्कारी बन सके ।

गर्भस्थ शिशु का इच्छानुवर्ती निर्माण

महाभारत में एक कथा आती है कि "एक बार कुपित होकर अश्वत्थामा ने द्रौपदी के गर्भस्थ शिशु (परीक्षित) पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आग्नेयास्त्र प्रयोग किया । परीक्षित माँ के उदर में ही असह्य पीड़ा से जलने लगा । माँ ने भी उसे जाना । उन्होंने सम्पूर्ण समर्पण भाव से परमात्मा का स्मरण किया तब उस बच्चे की रक्षा हो पाई ।''

गर्भस्थ शिशु को कोई अस्त्र तब तक नहीं छेद सकता जब तक माँ का शरीर न छिदे । दरअसल आग्नेयास्त्र मन्त्र शक्ति थी, जो संकल्प-शक्ति के द्वारा चलाई गई थी । बाहरी व्यक्ति द्वारा दूर से संकल्प-प्रहार से यदि गर्भस्थ बच्चा जल और मर सकता है और फिर परमेश्वर के प्रति अटल विश्वास और रक्षा की भावना से उस बच्चे को बचाया जा सकता है तो उसके शरीर और मनोभूमि में भी इच्छानुवर्ती परिवर्तन लाया जा सकता है ।

सती मदालसा के बारे में कहा जाता है कि ''वह अपने बच्चे के गुण, कर्म और स्वभाव की पूर्व घोषणा कर देती थीं फिर उसी प्रकार निरन्तर चिन्तन, क्रिया-कलाप, रहन-सहन, आहार-विहार और व्यवहार-बर्ताव अपनाती थीं, जिससे बच्चा उसी मनोभूमि में ढल जाता था, जिसमें वह चाहती थीं । इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि उनके पहले सभी बच्चे ज्ञानी, सन्त और ब्रह्मनिष्ठ होते गये । अजातशत्रु की प्रार्थना पर उन्होंने अन्तिम गर्भस्थ बच्चे को राजनेता के अनुरूप ढाला । उसी ने पिता का राज्य-सिंहासन सम्भाला और कुशल राजनीतिज्ञ हुआ ।

आयुर्वेद के विशेष ग्रन्थ सुश्रुत संहिता में भी आया है—''**पूर्व पश्ये ऋतुस्नानां या दृशं नर मंगला । तादृश्य जनयेत्पुत्र भर्त्तारं दर्शये तत ।**'' अर्थात्—ऋतु स्नान के पश्चात् स्त्री जिस प्रथम पुरुष को देखती है, बच्चे का रूप-रंग और मुखाकृति उसी जैसी होती है, इसलिये वह सर्वप्रथम अपने पति का दर्शन करे ।

यह सभी तथ्य भावना विज्ञान से सम्बन्धित हैं, इसलिये प्रत्यक्ष न दिखाई देने पर उनकी सत्यता में कोई सन्देह नहीं है । यह बात अब पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिक, डॉक्टर और दूसरे प्रबुद्ध व्यक्ति भी मानने लगे हैं । डॉ. फाउलर ने इस सम्बन्ध में काफी खोज की है, गर्भावस्था में भी गर्भिणी के हाव-भाव का बच्चे के शरीर और मनोवृत्ति पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इस सम्बन्ध में उनके कई प्रमाण हैं ।

डॉ. फाउलर का मत है कि क्रोध, आश्चर्य, घृणा, अहंकार, गम्भीरता आदि के अवसर पर माता की नासिका, मुख और आकृति में जैसे परिवर्तन उठाव, गिराव होते हैं, वैसे ही बच्चे की नाक, मुँह, माथे आदि अवयवों की शक्ल भी बनती है । गर्भाधान के बाद स्त्री प्रसन्न नहीं रहती, शोक या चिन्ताग्रस्त रहती है, तो बालक के मस्तिष्क में पानी की मात्रा बढ़ जाती है । यदि ४ वर्ष के बच्चे के सिर का व्यास बीस इन्च से अधिक हो तो मानना चाहिए कि वह जल-संचय का शिकार हुआ है, उसकी माँ-गर्भावस्था में दुःखी रही है ।

भय, विक्षेप, अशुभ चिन्तन, उत्तेजना से जिस तरह अंगों में भद्दापन, बेडौल और खराब मुखाकृति बनती है, उसी तरह शुभ-संकल्प और प्रसन्नतापूर्ण विचारों से बच्चा स्वस्थ, सुन्दर और चरित्रवान् बनता है । इसीलिये कहा जाता है—गर्भावस्था में माँ को सत्य भाषण, उत्साह, प्रेम, दया, सुशीलता, सौजन्यता, धर्माचरण और ईश-भक्ति का अनुगमन करना चाहिए । यह बच्चे होनहार और प्रतापी होते हैं, जबकि क्रोध, ईर्ष्या, भय, उद्विग्नता आदि अधम वृत्तियों के बच्चे भी अधम, उत्पाती और स्वेच्छाचारी होते हैं । गलत खान-पान भी उसमें सम्मिलित हैं ।

इसके अतिरिक्त जो महत्वपूर्ण बातें गर्भस्थ शिशु को प्रभावित करती हैं, उनमें से वातावरण मुख्य है । ध्रुव ऋषि-आश्रम में जन्मे थे । उनकी माँ सुनीति बड़ी नेक स्वभाव और ईश्वर भक्त थीं । ध्रुव के महान् तेजस्वी होने में वातावरण भी मुख्य सहायक था, जबकि उत्तानपाद के दूसरे बेटे में वैसी तेजस्विता न उभर सकी ।

एक पाश्चात्य डॉक्टर ने वातावरण के प्रभाव का अध्ययन इस प्रकार किया—''एक बार एक कमरे का फर्श और दीवार सबको नील-पोत कर नीला कर दिया । उस कमरे में श्वेत रंग के खरगोशों का एक जोड़ा रखा गया । कुछ समय बाद खरगोश के दो बच्चे हुए, दोनों के बालों में नीले रंग की झलक थी । इससे पता चलता है कि बच्चे के मस्तिष्क में ही नहीं, वातावरण का सूक्ष्म प्रभाव स्थूल अंगों पर भी पड़ता है । गर्भवती का निवास ऐसे स्थान पर होना चाहिए, जहाँ चारुता हो, मोहकता और आकर्षण हो । हरे बगीचों, केले, फलों आदि से घिरे स्थान, देव-स्थान और विशेष रूप से सजे-सजाये, साफ-सुथरा स्थान गर्भस्थ बच्चों पर सुन्दर प्रभाव डालते हैं ।

स्पेन के किसी अँग्रेज परिवार में एक बार एक स्त्री गर्भवती हुई । गर्भवती जिस कमरे में रहती थी, उसमें अन्य चित्रों के साथ एक इथोपियन जाति के बहादुर का चित्र लगा हुआ था । वह चित्र उस स्त्री को अति प्रिय था । कमरे में वह उस चित्र को बहुत भावनापूर्वक देखा करती थी । दूसरे काम करते समय भी उसे उस चित्र का स्मरण बना रहता था । अन्त में जब उसे बालक जन्मा तो उसके माता-पिता अँग्रेज होते हुये भी लड़के की आकृति और वर्ण इथोपियनों जैसा ही था । उस चित्र की मुखाकृति से बिल्कुल मिलता-जुलता, उसी के अनुरूप था । घरों में भगवान् के, महापुरुषों के चित्र लगाये भी इसीलिये जाते हैं कि उनकी आकृतियों से निकलने वाले सूक्ष्म भावना-प्रवाह का लाभ मिलता रहे ।

वातावरण के साथ-साथ गर्भणी के साथ व्यवहार, बर्ताव और बातचीत भी बहुत सौम्य, शिष्ट और उदार होना चाहिए । क्रोध, मारपीट, धमकाना, डाँटना, दबाकर रखना आदि कुटिलताओं का बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़ता है । कई बार इस प्रकार के आचरण बहुत ही दुःखदायी और स्पष्ट परिलक्षित होते हैं । एक बार एक व्यक्ति ने समुद्री-यात्रा के दौरान किसी बात से अप्रसन्न होकर, अपनी गर्भवती पत्नी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को जोर का धक्का मारा । गिरते-गिरते जहाज की जंजीर हाथ में पड़ गई । उससे वह गिरने से सम्भल गई किन्तु वह व्यक्ति बड़ा क्रूर निकला । उसने छुरे से वार किया, जिससे उस स्त्री की जंजीर पकड़े हुये हाथ की तीन अँगुलियाँ कट गई, वह स्त्री समुद्र में चली गई ।

जहाज के चले जाने पर कुछ मल्लाहों ने उसकी रक्षा की । बाद में उस स्त्री को जो सन्तान हुई यह देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये कि उसकी तीन अँगुलियाँ ही नहीं थीं और वह बालक मानसिक दृष्टि से अपूर्ण, क्रोधी तथा शंकाशील स्वभाव का था ।

धमाका पैदा करने वाला ऐसा कोई व्यवहार गर्भवती से नहीं करना चाहिए, जिससे मस्तिष्क में तीव्र आघात लगे । इससे बच्चे के शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है ।

बच्चों के मानसिक निर्माण में माता-पिता की घनिष्टता, प्रगाढ़ प्रेम, परस्पर विश्वास का सबसे सुन्दर प्रभाव पड़ता है । सच बात तो यह है कि माता-पिता का संकल्प बच्चे को उसी प्रकार पकाता है, जिस प्रकार मादा कछुआ पानी में रहकर रेत में रखे अपने अण्डों को पकाती है । दिव्य गुणों का बच्चे में आविर्भाव ही प्रेमपूर्ण भावनाओं से होता है, इसलिये गर्भावस्था में स्त्री-पुरुष को अधिकांश समय साथ-साथ बिताना चाहिए । पवित्र आचरण और प्रगाढ़ मैत्री रखनी चाहिए, ऐसे बच्चे शरीर से ही नहीं मिजाज से भी पूर्ण स्वस्थ होते हैं ।

इस उदाहरण से यह बात और भी स्पष्ट होगी । एक अँग्रेज ने किसी बाजील की लड़की से विवाह किया । लड़की का रंग साँवला था पर उसमें मोहकता अधिक थी । पति-पत्नी में घनिष्ट प्रेम था । पर उन्हें कोई संतान नहीं हुई ।

कुछ समय पश्चात् वह स्त्री मर गई । पति को बड़ा दुःख हुआ । कुछ दिन बाद उसने दूसरा विवाह अँग्रेज स्त्री से किया । वह गौर वर्ण की थी पर इस अँग्रेज को अपनी पूर्व पत्नी की याद बनी रहती थी इसलिये वह अपनी नई पत्नी को भी उसी भाव से देखा करता था । इस स्त्री से एक कन्या उत्पन्न हुई, जो बाजीलियन लड़की की तरह साँवली ही नहीं मुखाकृति से भी मिलती-जुलती थी । यह गर्भावस्था में पिता के मस्तिष्क में जमा हुआ पत्नी-प्रेम का संस्कार ही था, जिसके कारण बालिका ने उसका रंग और आकार ग्रहण किया ।

इन समस्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि गर्भस्थ शिशुओं का इच्छानुवर्ती निर्माण सम्भव है । अपने रहन-सहन, स्वभाव और संकल्पों को स्वस्थ और सुन्दर बनाकर भावी बच्चों में भी स्वास्थ्य, सौन्दर्य, सद्गुण, तेजस्विता और मनस्विता का विकास किया जा सकता है । यह बात माता-पिता दोनों को मालूम होनी चाहिए ।

कलमी आदमी नहीं बन सकते

मूर्धन्य वैज्ञानिकों में एक विशेष महत्वाकांक्षा इन दिनों इस दिशा में जगी है कि प्राणियों का रूपान्तरण करके उन्हें अधिक उपयोगी बनायें । इस दिशा में वे एक प्राणी की कोशिकाएँ दूसरे शरीर में प्रविष्ट कराते और यह देखते हैं कि संकरत्व का कैसा प्रतिफल होता है । इस दिशा में उन्हें वनस्पति वर्ग पर अधिक सफलता पाई । वस्तुतः प्रयास वैज्ञानिक मेण्डल द्वारा सर्वप्रथम वनस्पति जगत में ही किये गए एवं एक पौधे में दूसरे की कलम लगाकर क्रास ब्रीडिंग कर तीसरी किस्म को बनाने में उन्हें सफलता मिली ।

शाक भाजियों, फूलों और फलदार वृक्षों पर यह प्रयोग बहुत सफल हुए हैं । यहाँ तक कि एक ही पेड़ पर अलग-अलग प्रकार के फलों की कलमें सफलतापूर्वक लगा ली गयीं । वनस्पतिजन्य धान्यों की भी कई किस्में उत्पन्न की गई हैं । ये संकर प्रजातियाँ कहलाती हैं । इनके बीज भी बोये जाते हैं तथा छोटी (ड्वार्फ) या बड़ी पौध भी लगाई जाती हैं ।

चूँकि वनस्पतियों को भी उथले प्राणी वर्ग में ही गिना जाता है, अतः यह दुस्साहस किया गया कि सचेतन मन एवं बुद्धि वाले प्राणियों पर भी वह प्रयोग करके देखा जाय । इन प्रयासों में उतनी सफलता नहीं मिली जितनी कि उन्हें वनस्पतियों में मिली थी । प्राणियों में ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं, साथ ही अपनी पृथक जाति एवं रुचि भी । इनका संकरत्व अधिक सफल नहीं हो सका । विजातीय रज एवं वीर्य परस्पर सम्मिश्रित नहीं हो सकते । जर्सी गायें तो उन्हीं गायों के परिवर्धित संस्करण हैं । अपवाद एक ही सामने आया है । गधे और घोड़ी के सम्मिश्रण से खच्चर उत्पन्न हुआ । किन्तु खच्चरों के युग्म न बन सके । ये नपुंसक ही रहे । इसके विपरीत गधी के गर्भाशय में घोड़े का वीर्य भी फलित न हुआ । कुछ समय पूर्व चीन में एक मादा चिम्पाजी का गर्भाधान पुरुष के शुक्राणु से कराया गया था । उद्देश्य एक ही था, ऐसी प्रजाति उत्पन्न हो जिसमें शक्ति-पौरुष चिम्पाजी का हो किन्तु बुद्धि मनुष्य की । ऐसे प्रयोग असफल ही रहे हैं । वस्तुतः सभी प्राणि गंध प्रधान होते हैं । यौनाचार क्रिया में उन्हें सजातीय ही स्वीकार होते हैं । उत्तेजना होने पर भी एक वर्ग दूसरे वर्ग के प्राणी के साथ कामाचार हेतु उद्यत नहीं होते । कारण कि एक की उत्तेजना दूसरे पक्ष को प्रभावित नहीं करती ।

फिर भी बायोइंजीनियरिंग के इस क्षेत्र में वैज्ञानिक अभी हारे नहीं हैं । वे सोचते हैं कि आज नहीं तो कल वनस्पति स्तर के प्रयोग पशुओं में भी सफल होंगे। मुर्गे की कई प्रजातियाँ उत्पन्न की गयी हैं । इसी प्रकार क्षेत्र विशेष के सजातीय पशुओं का भी संकरत्व बन पड़ा है और उनके दुधारूपन, श्रमशीलता एवं माँसलता में भी वृद्धि हुई है । इस हेराफेरी में भी मौलिक वर्ग वही रहा है । उस लक्ष्मण रेखा से हटकर कलम लगाने का प्रयोग एक प्रकार से कौतूहल बनकर ही रह गया है ।

महत्व की बात मनुष्य से संबंधित है । प्रश्न रह-रह कर यही सामने आता है कि क्या मनुष्य में किसी अन्य प्राणी की या किसी अन्य प्राणी में मनुष्य की कलम लगाई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जा सकेगी ? शरीर संरचना की दृष्टि से बन्दर और मनुष्य आपस में मिलते-जुलते हैं । चिम्पाजी, वनमानुष एवं गौरिल्ला भी बन्दर वर्ग के हैं । जैसा कि ऊपर कहा गया है, इनका मनुष्य के साथ प्रत्यावर्तन तो दूर, इन वानरों की भी मिश्रित प्रजातियाँ पैदा न की जा सकीं । कुत्ते और भेड़िये के सम्मिश्रण से बने वंशजों पर भी यही बात लागू होती है ।

मनुष्यों में जलवायु के भेद से गोरी, काली, पीली जैसी कई नस्लें पाई जाती हैं । हड्डी की बनावट व शक्ल के हिसाब से भी कोई काकेशियन है, कोई मंगोलॉइड । पर ये मूलतः हैं सभी मनुष्य ही । इसलिए उनका संकरत्व चल जाता है । एंग्लोइंडियन सरीखी जातियाँ माता-पिता के गुणों का सम्मिश्रण लेकर भिन्नता लिए हुए विकास करने लगी हैं । नर व नारी में से जिसकी प्रौढ़ता परिपक्वता अधिक होती है, संतानों में उनकी विशेषता का अंश भी अधिक पाया जाता है । पर यह अन्तर आकृति में अधिक, प्रकृति में कम होता है । प्रकृति वातावरण या समाज के अनुरूप बनी है । यह प्रयास निराशाजनक ही रहा कि जातिगत संकरत्व से उनके गुणों में नवीनता उत्पन्न करके ऐसी पीढ़ी को जन्म दिया जाय जो उपयोगिता की दृष्टि से माता-पिता की तुलना में अधिक वरिष्ठ हो । कई बार तो उल्टा भी हुआ । संकरत्व से पैदा जाति पूर्वजों से भी घटिया निकली है ।

प्रयोक्ताओं की चिन्ता यह है कि वर्तमान पीढ़ियों की तुलना में अगली पीढ़ियाँ अधिक समर्थ, बलशाली बनें । वे प्रतिभाशाली हों व सुन्दर भी । इसके लिए कभी माता को प्रमुख उत्पादक इकाई मानकर चलते हैं, तो कभी पिता के पौरुष को । इसी प्रयास में वे ऐसे जोड़ों के संयोग को महत्त्व देते हैं, जिनमें दोनों पक्ष विशेषताओं से भरे हों । पर बहुत खोजने पर भी मुट्ठी भर जोड़े ही ऐसे मिल सकते हैं । फिर उनका स्वास्थ्य भी सीमित उत्पादन की क्षमता वाला होता है । उतने भर से विश्वभर के लिए व्यापक परिमाण में अभीष्ट स्तर के व्यक्ति नहीं पैदा हो सकते, न ही इस बात की कोई गारण्टी दी जा सकती है कि आगामी पीढ़ियाँ वातावरण से अप्रभावित रहकर अपनी श्रेष्ठता बनाये रखेंगी ।

इस सन्दर्भ में अधिक माथापच्ची करने से पूर्व वनस्पतियों और प्राणियों की मौलिक संरचना पर ध्यान देना चाहिए । वनस्पतियाँ शरीर मात्र हैं । उनमें यौनाचार नहीं है । बीज या गाँठ से वे अपना वंश चलाती व बढ़ाती रहती हैं । किन्तु प्राणियों में चेतना की अतिरिक्त मात्रा है, साथ ही कामुकता की संवेदना का एक विशेष स्तर भी । यह भी नर-मादा के उत्पादन उभार से संबंधित है । यह स्थिति सन्तुलित न हो तो मनुष्य या अन्य प्राणी नपुंसक कहलाएँगे । वृद्धावस्था में हारमोन्स के स्तर में परिवर्तन से उफान ठण्डा हो जाता है और संतानोत्पादन की क्षमता होते हुए भी वैसा बन नहीं पड़ता । वनस्पतियों के बारे में यह बात नहीं । गर्मी की सूखी घास वर्षा आते ही फिर हरियाने लगती है, जबकि प्राणी एक बार नष्ट होने पर दुबारा नहीं जीवित होते ।

मानवी विशेषता मात्र शरीरगत नहीं है । अधिक से अधिक काया सुन्दर, सुगठित या बलिष्ठ हो सकती है । पर इसका बुद्धिमत्ता, प्रतिभा या कौशल से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है । गाँधी, विनोबा, राधाकृष्णन या अष्टावक्र जैसे कायिक दृष्टि से दुर्बल व्यक्ति भी उच्चस्तरीय हो सकते हैं, जबकि रावण, कुंभकरण जैसे अदूरदर्शियों की भी कमी नहीं होती ।

मनुष्य आहार-विहार के संयम से स्वस्थ, दीर्घजीवी हो सकता है । पर इतने भर से काम कहाँ चलता है ? महापुरुष, अतिमानव, ऋषि बनने के लिए दूरदर्शिता से भी अधिक शालीनता की आवश्यकता होती है । यह मात्र नर-नारी के कायिक संयोग भर से नहीं होता वरन् उसके लिए पीढ़ियों की परम्परा, पारिवारिक वातावरण चाहिए एवं ऐसे जोड़े, जिनमें परस्पर प्रभाव ग्रहण करने की क्षमता हो, तभी वह सम्मिश्रण व्यक्तित्व का गठन करता है । वैसा माहौल बना करके ही व्यक्ति को चिन्तनशील, मनीषी, चरित्रवान एवं व्यवहारकुशल बनाया जा सकता है । इसलिए मनुष्य को वनस्पति व जीव-जन्तुओं से भिन्न मानकर उसके निषेचन पर उतना ध्यान नहीं देना चाहिए जितना कि शालीनता के पक्षधर वातावरण पर ।

क्या मनुष्य 'ब्रह्मा' बन सकता है ?

इन दिनों मनुष्य और ईश्वर में एक प्रकार से होड़ लगी हुई है कि कौन कितना अद्‌भुत प्राणी विकसित कर सकता है । इस दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्य ईश्वर से बीस ही साबित होगा, उन्नीस नहीं, क्योंकि उसकी रचना में अब तक सब अजूबे ही अजूबे पैदा हुए हैं ।

अभी कुछ वर्ष पूर्व मैक्सिको विश्वविद्यालय के आनुवंशिकी विभाग ने एक ऐसी गाय विकसित की है, जिसे आकार की दृष्टि से कुत्ता कहना ज्यादा उपयुक्त होगा । यह गाय मात्र ६५ से.मी. लम्बी है । इसको 'जेबू' प्रजाति की गाय से विकसित किया गया है । इसका आहार अत्यंत स्वल्प है । एक जेबू प्रतिदिन जितना चारा खाती है, उतने से प्रायः एक दर्जन मिनी जेबुओं का निर्वाह हो सकता है । अब तक इस प्रकार की ४० गायें पैदा की जा चुकी हैं । इनके करीब तीन दर्जन बछड़े हैं । देखने में ये बछड़े कम, बिल्ली के बच्चे ज्यादा लगते हैं । इनके अत्यधिक छोटे आकार के कारण चारागाह में बराबर खोने का भय बना रहता है । आज कल ये रंग-बिरंगी गायें मैक्सिको विश्वविद्यालय के आनुवंशिकी विभाग की शोभा बढ़ा रही हैं ।

ऐसे ही वहाँ एक अन्य प्रयोग के दौरान गाय और भैंसे के संयोग से एक विचित्र जंतु पैदा किया गया । इसके कुछ गुण गाय से मिलते हैं, तो कुछ भैंसे से । खुराक में यदि यह गाय जैसा है, तो स्थूलता में भैंसे जैसा । रंग इसने गाय का पाया है, तो सींगें भैंसे से मिलती-जुलती हैं जबकि शक्ल गाय की तरह है । कुल मिलाकर यह बड़ा अजीबोगरीब दीखता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी क्रम में बकरी और भेड़ की मध्यवर्ती संरचना भी वैज्ञानिकों ने विनिर्मित की । उसका नाम 'शीगॉट' रखा गया । यह विलक्षण बकरी ऊन उत्पन्न करती और दूध भी देती है । ऐसे ही मादा शेर व नर चीते को मिलाकर 'टिग लायन' नामक नया जीव विकसित किया गया । मादा तेंदुए एवं नर बाघ से जिस प्रजाति का जन्म हुआ, उसे 'पैन्थोपार्ड' कहकर पुकारते हैं, जबकि गधे और जेब्रा की वर्णसंकर संतान को 'जैब्रायड' नाम दिया गया है ।

इन बड़े जंतुओं पर सफल प्रयोग के बाद अब वैज्ञानिक अपेक्षाकृत छोटे जीवों पर परीक्षण करने के मंसूबे बना रहे हैं । फिलाडेल्फिया यूनिवर्सिटी के जंतुशास्त्री डॉ. बीट्रिस मिंट्स ने चूहों पर ऐसे कुछ प्रयोग किये और सफल हुए हैं । उन्होंने उनकी कोशिका में विशेष विधि द्वारा वैसे मानव 'जीन' प्रविष्ट करा दिये, जो शरीर विकास के लिए जिम्मेदार थे । उन 'जीनों' की उपस्थिति से चूहे की काया वृहदाकार हो गयी । इन चूहों का डॉ. मिंट्स ने 'सुपर माउस' नाम रखा । अब ऐसे ही प्रयोग बिल्ली, कुत्ते एवं दूसरे पालतू जीवों पर करने का विचार वैज्ञानिक बना रहे हैं और सुपर कैट, सुपर डॉग स्तर की संरचनाएँ गढ़ने की सोच रहे हैं ।

इसी शृंखला में शायद उनके मन में 'सुपर मैन' बनाने की बात भी कौंधे और गौरिल्ला अथवा चिंपाजी प्रभृति किसी जंतु का 'जीन' मनुष्य में प्रत्यारोपित करके उसे भीमकाय बना डालें । इस संबंध में वैज्ञानिकों का मत है कि यदि ऐसा हुआ, तो निश्चय ही मानव की संकर प्रजाति शक्ति और आकार में अद्वितीय साबित होगी । संभव है इस दृष्टि से नवविकसित किस्म 'सुपरमैन' कहलाने का अधिकारी सिद्ध हो, पर अध्यात्म अवधारणा में जिस 'अतिमानव' की कल्पना की गई है, वह सर्वथा इससे भिन्न प्रकार का है । यह अतिमानव परिष्कृत चेतना की एक सुसभ्य, श्रेष्ठ व सुसंस्कृत प्रतिमूर्ति है, भले ही उसका बाह्य आकार लम्बा, छोटा कैसा भी क्यों न हो, किन्तु वैज्ञानिकों का सुपरमैन आकार प्रधान है । वह विशालकाय होने मात्र से सुपरमैन बन जाता है, भले ही उसकी प्रकृति नीत्शे के सुपरमैन जैसी ही क्यों न हो ।

अब सवाल यह है कि मानव जीन प्रवेश करा कर किसी को सुपरजीव बना दिया जाय, अथवा अन्य किसी जंतु का जीन मनुष्य में प्रत्यारोपित करके उसे सुपरमैन बना डाला जाय या शेर व बाघ जैसे दो भिन्न जंतुओं के अस्वाभाविक संयोग से 'लाइगर' जैसा प्राणी विनिर्मित कर दिया जाय, पर मूल प्रश्न फिर भी ज्यों-का-त्यों बना रहता है कि आखिर इनकी उपयोगिता क्या है ? क्या यह ईश्वर की सृष्टि से खिलवाड़ करना नहीं है ? यदि हाँ, तो इसे रोका जाना चाहिए और कुछ ऐसा किया जाना चाहिए, जो ईश्वरीय विधान में अनावश्यक हस्तक्षेप न होकर उसमें सहायक हो । ऐसा कार्य यही हो सकता है कि हम सृष्टि को अव्यवस्थित करने की तुलना में अधिकाधिक सुव्यवस्थित और समुन्नत बनाते चलें । सुपर जीवों जैसे नये सृजन का दायित्व पूर्णतः परमात्मा के जिम्मे छोड़ दें, अन्यथा यह परम्परा यदि चल पड़ी, तो फिर वैधानिकता का पूर्ण अंत हो जायेगा और नवीन 'ब्रह्मा' ऐसी-ऐसी कौतुकपूर्ण सृष्टियाँ करने लगेगा, जिनकी न तो कोई उपयोगिता सिद्ध हो सकेगी, न आवश्यकता ही । ऐसे में मनुष्य भले ही अभिनव रचनाकार की उपाधि पा ले, पर परमेश्वर से उसकी तुलना में सेर और छटाँक जितना भारी अंतर बना ही रहेगा । अतः उत्तम यही है कि हम स्वयं मनुष्य बने रहें और निर्माता की भूमिका भगवान को संपन्न करने दें । सुव्यवस्था की गारंटी तभी दी जा सकेगी ।

आनुवंशिकी प्रगति में आत्म-बल का प्रयोग करना होगा

निकट भविष्य में जीन के रासायनिक संश्लेषण का सबसे अधिक प्रभाव चिकित्सा प्रणाली पर पड़ेगा । तब गोली, कैप्सूल, मिक्सचर, इंजेक्शन घटिया दर्जे के प्रयास माने जायेंगे और रोग का मूल कारण जीनों की विकृतियों में तलाश किया जायगा । आजकल जिस तरह किन्हीं विकृत या टूटे-फूटे अंगों की चीर-फाड़ करके उन्हें सुधारा जाता है या नये अंग का आरोपण किया जाता है, उसी प्रकार जीनों की मरम्मत, स्थानान्तरण या प्रत्यारोपण की प्रक्रिया काम में लाई जाया करेगी और उस इलाज का परिणाम पीढ़ी दर पीढ़ी देखने को मिला करेगा । रोगों की तह में जिन एंजाइमों या जीवरसायनों की कमी कीटाणुओं में पाई जाया करेगी तब उसी की पूर्ति की जटिल किन्तु रामबाण व्यवस्था बनाई जाया करेगी ।

कारण यह है कि अब वात, पित्त, कफ का प्रकोप, रोग कीटाणुओं का आक्रमण, आबी, बादी, खाकी, विष, असन्तुलन की, आयुर्वेदी ऐलोपैथी, तिब्बी, होम्योपैथी चिकित्सा पद्धतियाँ गये युग की पुरातन पंथी मूढ़ मान्यताएँ बनती चली जा रही हैं और आनुवंशिकी विज्ञान यह सिद्ध कर रहा है कि कोशिकाओं के गर्भ में अन्तर्हित गुण सूत्रों मे रुग्णता और आरोग्य की आधारशिलाएँ सन्निहित हैं । कुछ वंशों, जातियों की विशेषता दीर्घजीवन की है । रूस के उजबेकिस्तान प्रान्त में प्रायः सभी लोग शतायुषी होते हैं वरन् इससे भी अधिक जीते हैं जबकि उनके आहार-विहार में साधारण लोगों की अपेक्षा कुछ भी विशेषता नहीं है ।

इसी प्रकार बंगालियों की नस्ल दुबली और पंजाबियों, सीमा प्रांतियों की नस्ल मजबूत पाई जाती है । रोगी और नीरोग भी प्रायः परम्परागत विशेषताएँ धारण किये रहते हैं । कुछ शारीरिक रोग और मनोविकार वंश परम्परागत पाये जाते हैं । एकाध पीढ़ी के अन्तर से वे दबते उभरते भी रहते हैं । दोनों की विकृतियाँ परस्पर मिल-जुलकर नये-नये कायिक और मानसिक रोगों का सृजन करती हैं । कई बार उनकी जड़ें इतनी गहरी होती हैं कि दवा-दारू का उन पर कोई स्थिर प्रभाव नहीं होता, कितने ही रोगियों पर हर चिकित्सा पद्धति के प्रयोग प्रायः असफल ही रहते हैं और लगता है चिकित्सा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवसाय मात्र अटकल पच्चू सिद्धान्तों पर खड़ा किया गया है अन्यथा छोटी-मोटी बीमारियों के उन्मूलन में वह क्यों असफल रहता है ।

अब शरीरशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचते जा रहे हैं कि सुदृढ़ स्वास्थ्य की उपलब्धि एवं रोगों की निवृत्ति के लिए 'जीन' बीजों तक पहुँच बनानी पड़ेगी और वहाँ जड़ जमाये पीढ़ी विकृतियों की जड़ उखाड़ सकने को, वहाँ नये आशा भरे बीज जमाने की विद्या प्राप्त करने की तैयारी करनी पड़ेगी । समग्र स्वास्थ्य की समस्या इसके बिना हल नहीं हो सकेगी । औषधि उपचार और शल्यक्रिया की पहुँच पत्ते धोने सींचने की तरह है । जड़ की स्थिति सुधारे बिना शरीर वृक्ष की हरियाली सन्दिग्ध ही बनी रहेगी ।

यों—शरीर अरबों कोषाणुओं से बना है, पर उसका आरम्भ एक कोष से होता है । यह एक भी दो आधे-आधे टुकड़ों से मिलकर बना होता है । इन टुकड़ों में एक माता का भाग होता है—एक पिता का । यह आरम्भिक जीवन कोष, जैव रसायनों का एक सम्मिश्रण मात्र है । इसके चारों ओर एक खोल चढ़ा रहता है । इस खोल के भीतर जीव द्रव [प्रोटोप्लाज्म] के दो भाग हैं । बीच का गहरा भाग 'कोष केन्द्र' [न्यूक्लियस] कहलाता है । उसके चारों ओर एक हल्का शुक्र कीटाणु [साइटोप्लाज्म] है ।

मानव कोष के अन्तर्गत ४६ आकारों के होते हैं—जिन्हें 'क्रोमोसोम' कहते हैं । अणु खुर्दबीन से देखा जाय तो क्रोमोसोम के भीतर हजारों कीड़े रेंगते दिखाई देंगे उन्हें 'उत्पत्ति कण' [जीनी] कहते हैं ।

प्रत्येक कोशिका में २३ + २३ = ४६ गुण सूत्र पाये जाते हैं । पर अपवाद रूप से किसी-किसी में मूल संख्या २३ से तीन गुने अर्थात् ६९ भी पाये गये हैं ।

गुणसूत्रों की विकृतियाँ और रुग्णताएँ ही अक्सर कष्ट साध्य और असाध्य रोगों के रूप में उभरती हैं । मामूली बुखार खाँसी आहार-विहार की गड़बड़ी से हो सकते हैं और उन्हें मामूली दवा दारू से अच्छा किया जा सकता है । पर जब बीमारी गहराई में घुसी बैठी होती है, उसकी जड़ कोशिकाओं के अन्तरंग में प्रविष्ट हो जाती है तो साधारण रासायनिक पदार्थों की पहुँच वहाँ तक नहीं हो पाती और शुद्ध उत्पादन की तरह रुग्ण उत्पादन भी भीतर ही भीतर चलता रहता है । बहुत बार तो यह कोशिकागत गुणसूत्रों में बैठी हुई रुग्णता विकृत आकृति एवं प्रकृति बनाने लगती है ।

स्वास्थ्य संरक्षण से लेकर दीर्घजीवन तक के सूत्र इन्हीं कोशिकाओं के उस कक्ष में भरे पड़े हैं जिन्हें 'जीन' कहते हैं । इनकी आश्चर्यजनक क्षमता का एक छोटा सा प्रमाण तब प्रत्यक्ष देखा जाता है जब वे विकास का लक्ष्य सामने रखकर अपने विस्तार में प्रवृत्त होते हैं ।

आश्चर्य तो देखिये भ्रूण कलल आरम्भ करते समय पहली युग्म कोशिका का भार एक ओंस के दस लाखवें भाग की बराबर होता है पर २८५ दिनों में वह भार लगभग सात पौण्ड हो जाता है । यों युवा शरीर में ७० खरब कोशिकाएँ पाई जाती हैं नवजात शिशु में भी वे खरबों की संख्या क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी होती हैं । एक से अनेक और लघु से विराट् बनने का यह कैसा अद्भुत उपक्रम है ।

कोशिकाओं के प्रमुख तीन भाग होते हैं—(१) केन्द्रक (२) जीव-द्रव एवं (३) कोशिका भित्ति । कोशिका के भीतर के पदार्थ का बाहर आना या बाहर वाले पदार्थ का भीतर जाना इस भित्ति में होकर ही होता है । यह भित्ति अनुपयुक्त पदार्थों को भीतर जाने में अवरोध का काम करती है । जीवद्रव, जिसे वैज्ञानिकों की भाषा में साइटोप्लाज्म कहते हैं, कोशिका के बढ़ने, बेकार पदार्थ को बाहर निकालने एवं श्वास लेने का काम करती है । कोशिका द्रव के मध्य में एक घना, गाढ़ा पदार्थ होता है जिसे कोशिका नाभि अथवा केन्द्रक कहते हैं । यह पूरी कोशिका का नियन्त्रण एवं निर्देशन भी करता है । जीवन के समस्त रहस्य इस नाभिक में ही छिपे हैं । इसी के निर्देश पर विभिन्न कोशिकाएँ अपने-अपने अंगों के निर्माण के विभिन्न क्रिया-कलापों में संलग्न रहती हैं । आमतौर से सभी जीवधारियों में यही क्रम चलता है । अमीबा और वैक्टीरिया जैसे निम्न श्रेणी के जीव ही इसके अपवाद हैं । उनमें विखण्डन से ही नये जीव का निर्माण आरम्भ हो जाता है । नाभिक के दो भाग हुए कि दो जीवों का अस्तित्व तैयार । उनका जन्म, जनन, परिवर्तन और मृत्यु का सिलसिला ऐसे ही चल पड़ता है । साधारणतया दो जनन कोशिकाओं का परस्पर मिलन भी किसी जीव जाति की पीढ़ियाँ बनाने और बढ़ाने का आधार रहता है ।

इन कोषों के—जीन्स को विकसित एवम् परिष्कृत किया जा सकता है । यह प्रयोजन मानव शारीरिक उधेड़बुन से नहीं वरन् मानसिक ऊर्जा का संवेग तीव्र करने से सम्पन्न हो सकता है । पशुओं और पेड़-पौधों में इस स्तर की उलट-पुलट भौतिक प्रयोगों से भी एक हद तक सम्भव हो गई है पर मनुष्य की कायिक स्थिति में भी हेर-फेर किया गया है पर प्रकृति की जिसमें स्वस्थता की मूलभूत क्षमता भी सम्मिलित है—प्रबल मनःशक्ति की ही अपेक्षा करती है । यदि मनोबल तीव्र हो तो संकल्प शक्ति एवम् चित्त की एकाग्रता के आधार पर सम्पन्न किये जाने वाले ध्यानयोग जैसे उपायों से कोशिकाओं की अन्तरंग स्थिति में हेर-फेर किया जा सकता है ।

विश्व के समस्त जीवधारियों के शरीर इन कोशिकाओं की सूक्ष्म इकाइयों के मिलने से ही बने हैं । एक कोशिका वाले अमीबा से लेकर विशालकाय हाथी तक के शरीरों में इन कोशिकाओं की ही ईंटें लगी हैं । इस सिद्धान्त को स्कलीडन और थियोडन नामक जर्मन वैज्ञानिकों ने और भी अधिक स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया ।

एक औसत कोशिका का आकार व्यास एक सेन्टी-मीटर का दो हजारवाँ भाग होता है । देखते-देखते इनमें से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाखों-करोड़ों मरती और जन्मती रहती हैं । माता और पिता से सिर्फ दो नन्हीं कोशिकाएँ सारे पैतृक गुणों का सार लेकर आपस में मिलती हैं और उसी मिलन के आधार पर एक नये प्राणी का सृजन होता है । ये दो नन्हीं कोशिकाएँ जैव इंजीनियरिंग के सिद्धान्त पर एक शानदार शरीर बनाने में जुट जाती हैं और सफलतापूर्वक अपना कार्य भ्रूणावस्था में आरम्भ करके प्रजनन स्थिति आने तक बहुत कुछ पूरा कर लेती हैं ।

पादरी ग्रेगर जोहान मेंडल के मटर पर किये गये और डच वैज्ञानिक ह्यूगोडिब्रीज के मक्का पर किये गये प्रयोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कोई जीव स्वतः ही सन्तान की विशेषताएँ उत्पन्न नहीं करता वरन् उसके पीछे कोशिकाओं में सन्निहित पीढ़ियों में संग्रहीत संस्कार काम करते रहते हैं । प्रो. वेटसन ने इस तथ्य पर और अधिक प्रामाणिक प्रकाश डाला । जर्मनी के कोरेन्स और आस्ट्रिया के शेरमाक वैज्ञानिकों के प्रयास से आनुवंशिकी विज्ञान पर और अधिक प्रकाश पड़ा और वह इस स्थिति में पहुँचा कि उस पर विश्वभर के वैज्ञानिक अधिक गम्भीरतापूर्वक और अधिक सुनिश्चित पद्धति के अनुसार विचार कर सकें ।

डॉ. स्टेवार्ड के तत्वावधान में चल रही अमेरिकी जीव शोध ने गाजर की कुछ कोशिकाओं से पूरा गाजर का पौधा बनाने में सफलता प्राप्त कर ली है । गाजर की विभिन्न कोशिकाओं में प्रायः एक ही तरह के जीन होते हैं अस्तु, उसका एक कोषाणु समग्र गाजर के रूप में सहज ही परिवर्धित हो सकता है ।

चिकित्साशास्त्री तब चकित रह जाते हैं जब शारीरिक, मानसिक दृष्टि से स्वस्थ प्रतीत होने वाले माता-पिताओं की गोद में भी विद्रूप बालक आ जाते हैं । उसी प्रकार उस स्थिति में भी आश्चर्य होता है जब पिछड़ी हुई शारीरिक, मानसिक, आर्थिक स्थिति में भी कीचड़ से कमल उत्पन्न होते हैं । इसका कारण अनेक पीढ़ी ऊपर के किसी पूर्वज की वह विशेषता ही उभरी होती है जो एक दो ऊपर की पीढ़ियों में कहीं दबी ही पड़ी रही और उस प्रकार की विचित्रता का कोई आभास तक नहीं मिला ।

इस प्रकार की विकृतियों की चिकित्सा तभी सम्भव है जब कोशिकाओं के मर्मस्थल तक पहुँच सकना और गुणसूत्रों में हेर-फेर कर सकना सम्भव हो सके । यह सफलता मिल सके तो ही इच्छानुसार सन्तान लड़की या लड़का पैदा कर सकने वाली बात में कोई तुक है । यदि पुरुष के एक्स प्रकृति के गुणसूत्र मूर्च्छित और यदि प्रकृति के सशक्त किये जा सके तो ही शर्तिया पुत्र उत्पन्न होने वाली आकांक्षा पूरी हो सकती है । यदि पुरुष के एक्स गुणसूत्र अधिक सक्रिय हों तो उसके द्वारा उत्पादित सन्तान केवल कन्याएँ ही कन्याएँ हो सकती हैं ।

कुछ खूँख्वार प्रकृति के अपराधियों का जब शारीरिक विश्लेषण किया गया तो उनमें तीन-तीन 'वाई' गुण सूत्र पाये गये । वकील ने अपने इन अपराधी मुवक्किलों के पक्ष में बहस करते हुए कहा इसमें दोष उनका नहीं यह आनुवंशिकी प्रेरणा का फल है इसलिए जिस प्रकार पागलों को छोड़ दिया जाता है उसी प्रकार इन विवश अपराधियों को भी छोड़ दिया जाय ।

गर्भ स्थापना और उससे कन्या या पुत्र का जन्म होना अथवा बन्ध्या नपुंसक रहना इन्हीं 'जीन्स' की स्थिति पर निर्भर है । मनोवांछित सन्तान प्राप्ति का स्वप्न दवा-दारू के आधार पर देखा भले ही जाता रहे पर वह सार्थक, साकार उसी दिन होगा जब आनुवंशिकी विज्ञान के अन्तराल में उतर कर जीन्स एवं गुणसूत्रों की गतिविधियों पर नियन्त्रण करने में सफलता प्राप्त कर ली जायगी ।

नारी के दोनों गुणसूत्र एक्स वर्ग के होते हैं । यदि उनमें एक-एक ही सक्रिय और एक मूर्छित हो तो फिर उसे कभी कोई सन्तान न होगी, उसे बन्ध्या ही रहना पड़ेगा । गर्भाशय की छोटी-मोटी खराबी के कारण यदि सन्तानोत्पादन नहीं हो रहा है तो उसका उपचार डॉक्टर कर सकते हैं, पर यदि गुणसूत्रों में कोई विकृति है तो उसे चिकित्साशास्त्र की अब तक की उपलब्धियों से सुधारा नहीं जा सकता । उसके लिए उस समय की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जबकि चिकित्सा विज्ञानी 'जीनों' का उपचार, आपरेशन, स्थानान्तरण अथवा निराकरण कर सकने की क्षमता प्राप्त कर लें । गर्भपात की दुर्घटनाओं में गर्भाशय की खराबी की अपेक्षा गुणसूत्रों की गड़बड़ी के कारण अधिक रहता है । यदि स्त्री को दो एक्स सूत्रों की अपेक्षा तीन एक्स हों तो फिर उसमें से नारीत्व की कोमलता एवं उमंगें चली जायेंगी और वह नपुंसक जैसी मानसिक और शारीरिक स्थिति में होगी । पुरुष में यदि एक की बजाय दो एक्स हों तो वह 'ल्माइने फेल्टर' का शिकार हो जायगा और लौकिक तथा मानसिक दृष्टि से अविकसित ही रहेगा । अमेरिका में ४०० में से प्रायः एक लड़का इस प्रकार की कमी का शिकार पाया जाता है ।

वैज्ञानिक सोचते हैं कि कुछ बाधाएँ दूर हो जायें तो एक गाँधी से अनेक गाँधी बन सकते हैं । इसी प्रकार एक ही आइन्स्टाइन या केनडी के सहारे अनेक आइन्स्टाइन केनडी प्रयोगशाला में बनाये जा सकते हैं । इसमें जहाँ लाभ है वहाँ रावण, कंस, हिटलर जैसे त्रासदायक व्यक्तित्वों की प्रतिलिपियाँ कोई उपजाने लगे तो उलटे संकट भी खड़ा हो सकता है ।

भारतीय तत्ववेत्ता मनोबल एवं आत्मबल की उस क्षमता से परिचित थे जिसके आधार पर गुणसूत्रों, जीन शृंखलाओं को दिशा दे सकना पूर्णतया सम्भव था । उसी आधार पर वे अपनी स्वतन्त्र पीढ़ियाँ विनिर्मित करते थे । ये अमैथुनी होती थीं । नर-नारी के सम्पर्क से मात्र गर्भ कलल की स्थापना हो सकती है और उसका प्रतिफल शिशु-जन्म के रूप में सामने आ सकता है पर आत्मिक प्रवाह में बहाने और बहने का उपक्रम यदि बन सके तो व्यक्तित्व का मर्मस्थल ही बदल सकता है । गुरु परम्परा से भी अपने यहाँ गोत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलते हैं और वे पिता की तरह ही प्रामाणिक होते हैं कारण स्पष्ट है । प्रजनन शृंखला से बढ़-चढ़कर प्रत्यावर्तन शृंखला है । आत्मिक विद्युत की भट्टी में तपाकर किये जाने वाले रासायनिक परिवर्तनों की तरह मनुष्य के व्यक्तित्व में भी आत्मवेत्ता परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं और उसे कुछ से कुछ बना सकते हैं । आनुवंशिकी विज्ञान यदि विकसित होता रहा तो एक दिन उसी स्थान पर जा पहुँचेगा जहाँ आत्मविद्या के ज्ञाता साधना तपश्चर्या के आधार पर पहुँचते रहे हैं । आत्मविज्ञान और भौतिक विज्ञान की प्रगति यदि यथावत् होती रहे तो वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य की शारीरिक, मानसिक विकृतियों को ही दूर नहीं किया जा सकेगा वरन् व्यक्ति को सर्वांग सुन्दर और अपूर्णताओं से मुक्त होने का स्वप्न साकार किया जा सकेगा ।

देवमानव का सृजन निकट भविष्य में ही होगा

सुसन्तति के सम्बन्ध में सामान्यतया इतना ही समझा जाता है कि यदि माता-पिता स्वस्थ सुन्दर हों तो उनकी संतान वैसी ही उत्पन्न होगी । यदि खान-पान अच्छा मिले, सुविधा शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो तो बच्चे विकसित बनेंगे । यह तथ्य एक अंश तक ही सीमित है । वस्तुस्थिति कुछ और ही है ।

रज वीर्य के बहुत ही छोटे, खुली आँखों से न दीख पड़ने जितने नन्हें कण अपने भीतर कुछ ऐसी रहस्यमय परम्पराएँ जोड़े रहते हैं जिनका सन्तान के शरीर और मन पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है । यह परम्परागत सम्पत्ति कितनी ही पीढ़ियों बाद भी उभर सकती है । माता की कितनी ही पीढ़ियों पहले की कोई शारीरिक एवं मानसिक स्थिति सन्तान में उभर सकती है, उसी प्रकार पिता के पूर्वजों में रही कोई विशेषता भी सन्तान में प्रकट हो सकती है । यह ऐसी विलक्षण भी हो सकती है जिनका माता-पिता की तात्कालिक शारीरिक, मानसिक स्थिति से कोई सीधा सम्बन्ध न हो ।

माता-पिता की शारीरिक, मानसिक स्थिति से भिन्न एवं विपरीत प्रकार के बालकों के जन्मने का कारण ढूँढ़ते हुए जीव विज्ञानी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि रज एवं शुक्र कीटों के भीतर रहने वाले जीवाणुओं की परम्परागत संचित सम्पदा अवसर पाकर फलित, प्रकटित होती हैं और उसी से ऐसी विभिन्नताएँ सामने आती रहती हैं । अतएव सन्तान को सुयोग्य सुविकसित देखना हो तो माता-पिता की शारीरिक, मानसिक स्थिति को पर्याप्त न मानकर वंश परम्परा की विशेषता पर भी ध्यान देना होगा ।

शरीर के विभिन्न उपभागों द्वारा मनुष्य के विभिन्न अंग-प्रत्यंग बनते हैं । इस प्रक्रिया को अनुशासन में रखने के लिए शरीर में कुछ रासायनिक पदार्थों की आवश्यकता होती है । जिन्हें 'ऐंजाइम' कहते हैं । इन ऐंजाइम में वे सम्भावनाएँ व्यक्त रहती हैं जिनके ऊपर शरीर और मन में समयानुसार अनेकों भली-बुरी विशेषताएँ उभरती रहती हैं ।

प्रजनन के लिए काम आने वाला कोष केन्द्र दो अर्द्धघटकों में विभाजित होता है । नारी वर्ग के कोष 'अण्ड' और पुरुष वर्ग के कोष 'शुक्राणु' कहलाते हैं । इन दोनों का मिलन ही मनुष्य के जीवन आरम्भ का श्रीगणेश है ।

जीवकोष में ४६ 'क्रोमोसोम' होते हैं । इन्हें तितर-बितर करके पृथक्-पृथक् पहचाना जा सकता है । इनमें ४४ तो नर नारी में एक जैसे होते हैं इनका कार्य शरीर निर्माण भर होता है । शेष दो नर-मादा अलग-अलग होते हैं, इन्हें सैक्स क्रोमोसोम कहते हैं । इन्हें वैज्ञानिकों की भाषा में 'एक्स' और 'वाई' कहते हैं । नर में एक 'एक्स' और एक 'वाई' होती है पर मादा में दोनों 'एक्स' होते हैं । बालक-बालिका का जन्म होना पूर्णतया नर की स्थिति पर निर्भर है । उसमें यदि 'एक्स' की प्रधानता होगी तो लड़की जन्मेगी । किन्तु यदि 'वाई' का अस्तित्व है तो लड़का उत्पन्न होगा । इसमें मादा का कोई हाथ नहीं, क्योंकि उसमें तो सदा 'एक्स' कोष ही रहता है । कन्याओं की अधिकता में जो नारी को दोष दिया जाता है वह सर्वथा गलत है । यह नर पक्ष ही है जिसमें यदि 'एक्स' कणों की प्रमुखता है तो कन्याएँ ही कन्याएँ होती रहेंगी । हाँ, माता-पिता में से किसी के अणु प्रबल होंगे तो आकृति प्रकृति में उसकी प्रधानता लिए हुए बालक जन्मेगा ।

वर्णशंकर पद्धति को कुछ समय पूर्व अच्छा माना जाता था । भिन्न स्तर के रक्तों के सम्मिश्रण की वकालत इसलिए की जाती थी कि उसका दृश्य परिणाम अच्छा निकलता है । एक जाति का मिश्रण दूसरी से किया जाय तो शारीरिक परिणाम अच्छा निकलता है । घोड़ी और गधे के सम्मिश्रण से खच्चर उत्पन्न होता है वह घोड़े की तुलना में हल्का भले ही पड़े पर गधे से तो निश्चित रूप से मजबूत होता है । इसके शंकरत्व से गधा वर्ग को लाभ मिलता है । उसकी उन्नति का पथ प्रशस्त होता है । वृक्ष-वनस्पतियों में भी यह प्रयोग किये गये हैं और फसलें उगाने में इसकी सफलता देखी गई है । इसलिए पिछले दिनों पूरे उत्साह के साथ वर्णशंकर प्रक्रिया को प्रोत्साहित किया जाता रहा है ।

सन् १८६५ में आस्ट्रिया की एक मठवासी वैज्ञानिक मंडली ने पादरी मेंडल के नेतृत्व में मटर की विभिन्न जातियों की वर्णशंकर नस्लें पैदा करके उनमें अनोखी विशेषताएँ पैदा कीं । उन्होंने सिद्ध किया कि पीढ़ियों से चली आ रही परम्परा में कुछ मूल तत्व सन्निहित रहते हैं और कारणवश उन्हीं के दबने, उभरने से विविध विशेषतासम्पन्न नस्लें प्रकाश में आती हैं । गुणसूत्रों की ओर इस शोध में महत्वपूर्ण संकेत था । इस शोध के अनुसार वे इतना अनुभव सम्पादन कर सकें कि वे मिश्रित जाति के पौधों में बदले हुए रंग, आकार, प्रकार, स्वाद, फूल आदि में सम्भावित परिवर्तन की पूर्व घोषणा कर देता और वह अनुमान प्रायः सही ही निकलता । मेंडल द्वारा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थापित वे एक शताब्दी से भी अधिक पुराने सिद्धान्त अभी भी उस क्षेत्र में प्रामाणिक माने जाते हैं ।

किन्तु यह उत्साह बहुत आगे तक न बढ़ सका । तात्कालिक थोड़ा दृश्यमान लाभ भर ही वर्णशंकरत्व का होता है अन्ततः उसके दुष्परिणाम ही निकलते हैं। गधी और घोड़ी से उत्पन्न 'खच्चर' नपुंसक होते हैं उनकी पीढ़ियाँ आगे नहीं चलतीं । गधी और घोड़े के संयोग से उत्पन्न बच्चे तो माता-पिता दोनों की तुलना में गये-गुजरे होते हैं ।

कलमी वृक्षों पर फल जल्दी, मीठे और बड़े तो जरूर आते हैं पर वे उतने गुणकारी नहीं होते । फिर उन वृक्षों का विकास एवं जीवन तो निश्चित रूप से अपेक्षाकृत स्वल्प होता है । इस प्रकार वह तात्कालिक लाभ अन्ततः घाटे का सौदा ही सिद्ध होता है इस दृष्टि से जातिगत वर्ण शंकरत्व की महिमा जो पिछले दिनों बहुत गाई जाती थी, अब धूमिल पड़ गई है और जहाँ तक सुसन्तति का प्रश्न है, पूर्वजों की वंश परम्परा को ध्यान में रखने पर बहुत जोर दिया जाने लगा है ।

आनुवंशिकी अन्वेषण में शोध कार्य की शृंखला में एक के बाद एक उपयोगी कड़ी जुड़ती ही चली गई है । हालैण्ड के वैज्ञानिक ह्यूगोडिब्रीज ने इस दिशा में बहुत कार्य किया । इस दिशा में मेंडल, फिशर, हाल्डेन, राइट, सटन, मार्गन, हर्मन मूलर, फ्रेडरिक मीशर, लीनस पालिंग, फ्रांसिस क्रिक, वाटसन, क्रिक, मार्शल निरेन वर्ग, राबर्टहाले प्रभृति वैज्ञानिकों ने विश्व के विभिन्न देशों में शोध संस्थानों के अन्तर्गत बहुत काम किया । अनेक विश्वविद्यालयों ने इस अन्वेषण को महत्व दिया, प्रयोगशालायें बनाईं तथा गुणसूत्रों के स्वरूपों को समझने तथा उनमें हेर-फेर करने की दिशा में आशाजनक प्रगति की । अमेरिका में काम कर रहे भारतीय मूल के डॉक्टर हरगोविंद खुराना ने विस्कासिन विश्वविद्यालय में इस विषय में महत्त्वपूर्ण शोधें कीं और नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया ।

सुविकसित जातियाँ अपनी रक्त शुद्धि पर इसी दृष्टि से जोर देती रही हैं और उनमें अपने ही कुल वर्ग के अन्तर्गत विवाह करने पर जोर दिया जाता रहा है । मिश्र के शासक कभी इस सम्बन्ध में बहुत कठोर थे । योरोप के राज्य परिवारों में इस बात पर अधिक ध्यान दिया जाता रहा है । हिटलर ने जर्मन जाति को शुद्ध आर्य रक्त घोषित किया था तथा उस वर्ण की रक्षा पर जोर दिया था । भारत में रोटी बेटी के लिए जाति मर्यादाएँ स्थापित थीं । इन प्रचलनों के मूल में कुछ वैज्ञानिक तथ्य थे पर पीछे वे बातें ढकोसला मात्र रह गईं । जाति-पाँति की प्रथा तो ध्यान में रही पर पीढ़ियों में क्या-क्या सूक्ष्म विशेषताएँ पनप रही हैं । इसकी खोज का कोई आधार न रहा, फलतः यह जाति के अन्तर्गत विवाह करने वाली बात भी रूढ़िवादिता मात्र सिद्ध हुई । उसका भी अभीष्ट सत्परिणाम देखने को नहीं मिला ।

हीमोफीलिया, एल्केप्टीनूरिया, एल्केप्टोनमीह, सरीखे रोग अक्सर सगोत्र विवाहों के कारण होते हैं । जाति और उपजाति के कठोर बन्धनों में बँधी जातियाँ क्रमशः दुर्बल होती चली जाती हैं ।

ऐसी दशा में उभयपक्षीय संकट उत्पन्न होता है । न वर्णशंकरत्व का समर्थन करते बनता है और न खण्डन । फिर सुसन्तति की समस्या, पीढ़ियों का सुधार सम्वर्द्धन कैसे किया जाय ?

इस सन्दर्भ में शोध निष्कर्ष यह निकले हैं कि रज वीर्य के सूक्ष्म स्वत्व गुणसूत्रों का परिष्कृतीकरण किया जाय, उन्हें नये स्तर पर सुधारा-सँभाला जाय, उनमें समाविष्ट विकृतियों का नये आधार पर संशोधन किया जाय और इस परिशोधन के उपरान्त सुविकसित पीढ़ियाँ आरम्भ करने का श्रीगणेश किया जाय ।

प्राचीनकाल में सम्भवतः नियोग प्रथा इसी दृष्टि से थी । सुयोग्य सन्तानोत्पादन में समर्थ नर-नारी यदि परस्पर विवाह सम्बन्ध में नहीं बँधना चाहते थे तो भी सुसन्तति की उपलब्धि के लिए शारीरिक संयोग को वैध मान लेते थे । भारतीय धर्म ग्रन्थों में इस प्रकार के प्रचलन को मान्यता दी गई है । कुन्ती के पाँचों पुत्र उनके वैध पति द्वारा उत्पादित नहीं थे । भीम पुत्र, घटोत्कच की माता वैध पत्नी नहीं थी । व्यास द्वारा पाण्डु और धृतराष्ट्र को जन्म देना, शुकदेव की, शकुन्तला की उत्पत्ति कुछ ऐसे ही स्तर की थी । ऐसे अगणित उदाहरण उपलब्ध हैं । पर इस अनुकरण में भी वंश परम्परा की पूर्ण शुद्धि का निश्चय नहीं फिर दाम्पत्य जीवन की पवित्रता का भी व्यतिरेक होता है । किन्हीं उच्चस्तरीय प्रयोगों की बात दूसरी है पर यह प्रचलन भी सर्वसुलभ प्रथा के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता । इससे व्यभिचारजन्य दुष्परिणाम से सुसन्तति प्राप्त करने की तुलना में होने वाले लाभ का कुछ विशेष महत्व न रह जायगा ।

अस्तु, यह मार्ग अधिक उपयुक्त है कि गुणसूत्रों को परिष्कृत करके सुसन्तति की प्रक्रिया आगे चलाई जाय । दशरथ जी को पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा सुसन्तति प्राप्त होने का उदाहरण उसी स्तर का है । भारत में उसके लिए पति-पत्नी के लिए तप साधना को आधार बताया जाता रहा है । कृष्ण और रुक्मणी द्वारा बद्रीनाथ धाम में बारह वर्ष तक तप करने की तपश्चर्या इसी उद्देश्य से की गई थी और उन्हें मनोवांछित सन्तान प्रद्युम्न के रूप में प्राप्त हुई ।

वंश परम्परा की महत्ता को अधिक प्रकाश में लाने वाले आनुवंशिकी विज्ञान के क्रमिक अन्वेषणों में एक के बाद एक रहस्योद्घाटन किये हैं । जिनके आधार पर यह सम्भावना स्पष्ट हो सकी है कि अभीष्ट विशेषताओं से सम्पन्न मनुष्य का निर्माण सम्भव है । पैतृक दोष प्रवाह को हटाया भी जा सकता है और ये नर-नारी युग्मों की केवल विशेषताओं में ही विकसित हो सकती है और विकृतियाँ क्रमशः समाप्त की जा सकती हैं । यह उपलब्धियाँ भावी मनुष्य विकास की दृष्टि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । आशा की जानी चाहिए कि यदि यह प्रयास आगे बढ़ते रहे तो समुन्नत वर्ग का मनुष्य निर्माण कर सकना स्वप्न न रहकर एक तथ्य बन जायगा ।

जेनेटिक्स (आनुवंशिकी) के विशेषज्ञ पियरेलुई और लैमार्क इस बात से सहमत हैं कि इस विज्ञान की सहायता से मानवी पीढ़ियाँ क्रमशः अधिक सुविकसित बनाई जा सकेंगी और वह दिन आयगा जब इस धरती पर 'सुपरमैन' (देव मानव) ही प्रधान रूप से पाये जायेंगे । पर दो नोबेल पुरस्कार विजेता जैक मोनो और प्रो. निकोलाय दुविनिन इस सम्बन्ध में बहुत संदिग्ध हैं । वे कहते हैं वंश परम्परागत अवरोध इतने अधिक और इतने जटिल हैं कि उन सबका सुधार परिष्कार कर सुपरमैन पीढ़ी का निर्माण तो अभी आकाश कुसुम ही कहा जा सकता है ।

प्रयोग यह भी चल रहा है कि मनुष्य जाति की अगणित पीढ़ियों में घुसी-धँसी विकृतियों का संशोधन करके परिष्कृत 'जीन' विनिर्मित करने की अपेक्षा विभिन्न जीवों की विशेषताओं को लेकर एक ऐसा सम्मिश्रण बनाया जाय जिससे सर्वथा नये स्तर का जीवन तत्व बन सके और उसमें उन विशेषताओं का समावेश किया जाय जिनकी कि संसार को अगले दिनों आवश्यकता पड़ेगी ।

जड़ समझे जाने वाले पदार्थों में जीवन तत्व होता है और उसे विकसित करके चेतन तत्व का सृजन किया जा सकता है । यह तथ्य अब 'कृत्रिम जीन' निर्माण हो जाने की सफलता ने प्रमाणित कर दिया है । अस्तु, यह संभावना स्पष्ट हो चली है कि संसार के उपयोगी पदार्थों के स्वत्व लेकर अभिनव मनुष्य का निर्माण निकट भविष्य में हो सकेगा ।

नोबेल पुरस्कार प्राप्त डॉ. हरगोविन्द खुराना ने अपने अन्वेषणों से सिद्ध किया है कि एक परीक्षण नलिका में जैविक रसायनों के सम्मिश्रण से 'कृत्रिम जीन' तैयार किया जा सकता है । अब वंशवृद्धि के लिए प्राकृतिक जीन की अनिवार्य आवश्यकता नहीं रही । भविष्य में खिलाड़ी, विद्वान, कलाकार, लड़ाकू आदि प्रकृति के मनुष्य इच्छानुसार उत्पन्न किये जा सकेंगे । कृत्रिम तन्तुखण्ड भी ठीक वैसे ही हैं जैसे कि प्राकृतिक डीओक्सीरिवो न्यूक्लीक एसिड (डी. एन. ए.) के अणु ।

कृत्रिम 'जीन' का निर्माण एक बड़ी दार्शनिक गुत्थी उत्पन्न करता है या सुलझाता है । अब तक जड़ चेतन का भेद इस आधार पर किया जाता रहा है कि जड़ वे हैं जिनमें चेतना नहीं । अब हर जड़ को चेतन मानना पड़ेगा या हर चेतन को जड़ । शरीर और आत्मा के सन्दर्भ में आत्मवादी दर्शन यह परिभाषा करता रहा है कि शरीर जड़ है और आत्मा चेतन । पर अब कृत्रिम जीन का निर्माण यह सिद्ध करता है कि जड़ को विकसित करके चेतन की स्थिति में पहुँचाया जा सकता है । मूलतः हर जड़ में चेतना विद्यमान है । इस प्रतिपादन से वेदान्त की अद्वैत मान्यता की पुष्टि भी होती है जिसके अनुसार इस जगत् को ब्रह्ममय बताया गया है और किसी 'जड़' के अस्तित्व से ही इन्कार किया गया है ।

इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध प्रकृतिशास्त्री डार्विन ने प्राणियों और वनस्पतियों के मूल अस्तित्व के सम्बन्ध में विशेष अध्ययन किया । १९वीं शताब्दी के तृतीय और चतुर्थ दशक में उसने अपनी शोधों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि विभिन्न जीवों की विभिन्न उपजातियों के बीच गजब की समानताएँ और असमानताएँ विद्यमान हैं । उसने अपने दो ग्रन्थों में यह प्रतिपादन किया कि समस्त जीवधारी एक ही आदि जीव के विकसित और परिवर्तित रूप हैं । परिस्थितियों का सामना करने के लिए जीवों ने अपने आपमें आवश्यक परिवर्तन किये हैं । डार्विन का कथन यही है कि परिस्थितियों का दबाव और प्राणी की जीवित रहने की इच्छा इन दोनों तत्वों के समन्वय ही जीवों की अगणित आकृतियों और प्रकृतियों के उद्भव का मूल कारण है ।

जब समस्त जीवधारी एक ही आत्म सत्ता की शाखा-प्रशाखा हैं और उनके बीच एकता की सघन सम्भावनाएँ विद्यमान हैं तो फिर उनका पुनः विभाजन संयोजन करके क्यों नहीं एक ऐसी नई जाति का सृजन किया जा सकता है जो आज की परिस्थितियों के अनुकूल उपयुक्त हो । वैज्ञानिक इस सम्भावना को स्वीकार करते हैं और इसके अभिनव उत्पादन की सूत्र शृंखलायें ढूँढ़ने में तत्परतापूर्वक संलग्न हैं । उनके मत से भावी पीढ़ियाँ शारीरिक और मानसिक दृष्टि से ऐसी उपयुक्तताओं से भरीपूरी बनाई जा सकेंगी जो संसार में शान्ति और प्रगति में सहायक सिद्ध हो सकें ।

अध्यात्म विद्या इस प्रकार के सफल निष्कर्ष बहुत पहले ही निकाल चुकी है कि तप साधना से पति-पत्नी के शरीरों में विद्यमान गुणसूत्र परिष्कृत किये जा सकते हैं । पीढ़ियों से चली आ रही विकृतियों का निराकरण किया जा सकता है और साधना पूँजी से सुसम्पन्न व्यक्ति यदि ब्रह्मचर्य पालन की तरह ही सुसन्तति उत्पादन का प्रयोजन सामने रखें तो निस्सन्देह ऋषि परम्परा की पीढ़ियों का सृजन हो सकता है और आनुवंशिकी विज्ञान जिस महामानव के आदि पूर्वज को विनिर्मित करने में संलग्न है उसका प्रयोजन पूरा किया जा सकता है । अध्यात्म और विज्ञान के सहयोग समन्वय से यह युगान्तरकारी प्रयोग और भी अधिक सफलता एवं शीघ्रता से सम्पन्न हो सकता है ।

कोशाओं की अंतरंग शक्ति का परिष्कार

जीवन की मूल इकाई कोशिका है जिसे सैल या कोशा भी कहते हैं । शरीर का यह सबसे छोटा किन्तु मूलघटक इसी प्रकार माना जाता है जिस प्रकार पदार्थ का मूलघटक परमाणु होता है । कोशा रासायनिक पदार्थों से मिलकर बनती है, पर उसके मध्य में जो 'नाभिक' है उसी को कोशा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्माण्ड का बिजलीघर कह सकते हैं, यहीं से सारी हलचलों का प्रवाह चलता है । अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि रासायनिक खोखला कलेवर मात्र है, उसका मूल जीवन नाभिक के केन्द्र में सन्निहित है और वह 'विद्युत' रूप है । इस प्रकार अब जीवन की व्याख्या एक विशिष्ट विद्युत प्रवाह के रूप में की जाने लगी है और यह माना जाने लगा है कि यह बिजली सामान्य विद्युत जैसी दिखाई पड़ने पर भी उसके भीतर एक सुव्यवस्थित क्रम व्यवस्था ही नहीं जीवनोपयोगी चेतना भी विद्यमान है । जड़ के अन्तर्गत इस चेतना की विद्यमानता इन्हीं दिनों मूर्द्धन्य वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार की गई है । अब मनुष्य सर्वथा जड़-मात्र रासायनिक संयोग नहीं रहा । वह चिन्मय स्वीकार कर लिया गया है ।

रासायनिक संयोग में हेर-फेर करके कोशाओं के स्वरूप में परिवर्तन करके मनुष्य का वर्तमान स्तर बदला जा सकेगा ऐसा पिछले बहुत दिनों से सोचा जा रहा है । इस सन्दर्भ में गुणसूत्रों और जीन्स की खोज खबर ली जा रही थी अब एक नये चरण में विज्ञान ने प्रवेश किया है और माना है कि यदि कोशाओं के स्तर में कुछ परिवर्तन करना हो तो वह रासायनिक हेर-फेर से नहीं विद्यमान विद्युत प्रवाह में ही कुछ उलट-पुलट करके सम्भव हो सकेगा । अब रसायन मुख्य नहीं रहे—उनका स्थान विद्युत ने ले लिया है । यह प्रतिपादन लगभग वहीं जा पहुँचता है जो आत्मा को चित् शक्ति से ओत-प्रोत बताया गया है । यों अभी अध्यात्म और विज्ञान की प्रतिपादित चित् विद्युत की परिभाषा एक नहीं हुई है । दोनों के कथन में काफी अन्तर है फिर भी पहले की अपेक्षा वह अन्तर काफी घटा है और वह दिन दूर नहीं जब कोशा नाभिक में सन्निहित विद्युत को चित् शक्ति के रूप में ही स्वीकार कर लिया जायगा विज्ञान और अध्यात्म की तेजी से घटती हुई दूरी अगले दिनों दोनों को एक स्थान पर मिलाने वाले केन्द्र बिन्दु तक पहुँचाकर ही रहेगी ।

यह समझा जाता रहा है कि पिता के शुक्राणु लगभग वैसी आकृति के होते हैं जैसे कि पानी के पूँछदार कीड़े दिखाई पड़ते हैं । वर्गीकरण की दृष्टि से उनके दो भाग किये जा सकते हैं एक सिर, दूसरा पूँछ । शुक्राणु का नाभिक सिर भाग में होता है, पूँछ उसके चलने दौड़ने में गति प्रदान करती है । पूँछ अक्सर हिलती रहती है जिससे शुक्र कीट आगे बढ़ता है और निषेचन के समय दौड़कर डिम्ब अणु के साथ जाकर मिल जाता है । यह एकाकार होने की स्थिति ही गर्भ धारण है । एक नया प्राणी इस सुयोग संयोग से उत्पन्न होता है ।

शुक्राणु और डिम्बाणु की उपरोक्त व्याख्या स्थूल है । उनके भीतर भी बहुत बारीक कण होते हैं । क्रोमोसोम—उनसे भी सूक्ष्म जीन्स की प्रजनन शक्ति का उत्तरदायी कहा जा सकता है । जीन्स में भी प्रोटीन की कुछ मात्रा और डी. एन. ए. (डी. ओक्सी राइबोन्यूक्लिक एसिड) नामक पदार्थ रहता है । इसी क्षेत्र में वंश परंपरा की शारीरिक और मानसिक विशेषताएँ समाविष्ट रहती हैं । वे विशेषताएँ केवल माता-पिता की ही नहीं होतीं वरन् उनके भी मातृ पक्ष और पितृ पक्ष की पीढ़ी-दर-पीढ़ी से जुड़ी हुई चली आती हैं । उनमें भी संयोग-वियोग के आधार पर हुए परम्परागत और कुछ समन्वयात्मक विशेषताएँ उभरती रहती हैं । इसी उथल-पुथल के कारण सभी भाई-बहिन एक जैसे आकार प्रकार के नहीं बन पाते यद्यपि उनमें बहुत सी विशेषताएँ एक जैसी भी बनी रहती हैं ।

'दि ब्रेव न्यू वर्ल्ड' नामक ग्रन्थ में जीवविज्ञानी एडलस हक्सले ने डिम्ब और शुक्र कीटों के क्रिया-कलाप को मात्र रासायनिक संयोग नहीं माना है वे उन्हें 'अल्फा', 'बीटा' और 'गामा' किरणों का उत्पादन मानते हैं ।

पूर्वजों के जीन्स अपने साथ जिन विशेषताओं को लपेटे चलते हैं उनमें बहुत सी अच्छी होती हैं और बहुत सी बुरी । परम्परागत बीमारियों का लिपटा हुआ कुचक्र परिधान निश्चित रूप से बुरा है । डायबिटीज, एलर्जी, ब्रोनोचिट्स, हेमाफीलिया, दमा, कोढ़, गर्मी, सुजाक, रक्त-विकार, दृष्टि मंदता जैसी बीमारियाँ बच्चो को अपने पूर्वजों से भी विरासत में मिलती हैं ।

अफ्रीका महाद्वीप के कांगो देश में तीन-चार फुट ऊँचे बौनों की बड़ी संख्या है वे शिकार पर निर्वाह करते हैं और आदिवासी यायावरों की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान में अपने डेरे डालते रहते हैं । पेरू के जंगलों में यूस जाति के ऐसे आदिवासी पाये गये हैं जिनकी ऊँचाई तीन फुट से अधिक ऊँची नहीं बढ़ती वरन् कुछ नीची ही रह जाती है । माल्योनैटो के रोम कैथोलिक चर्च द्वारा प्रकाशित 'रीजन फ्राम दी जंगल' नामक पुस्तक में इन बौनी जातियों की वंश परम्परा पर अधिक प्रकाश डाला गया है । इन 'यूश' जाति के बौनों की अधिक संख्या ब्राजील, बोलीविया तथा क्यूरा नदी के तट पर पाई जाती है । यह लोग २० कबीलों में बँटे हुए हैं ।

बंगलौर में वी. एन. थिम्मया नामक एक नाई के घर ऐसा बालक जन्मा था जो जन्म के समय तो केवल ५.१४ पौण्ड का था पर कुछ ही दिन बाद तेजी से उसका शरीर फलने-फूलने लगा । ११ वर्ष की उम्र पर पहुँचने तक १६२ पौण्ड भारी और ५० इन्च ऊँचा हो गया । इतना ही नहीं उसकी छाती ४६ इन्च की हो गई । लगभग फुटबाल जैसा गोल-मटोल वह दिखाई पड़ने लगा । बढ़ोत्तरी इस तेजी से हुई कि हर महीने पुराने कपड़े रद्द करना और नये बनवाना उस गरीब आदमी के लिए अत्यन्त कठिन हो गया । अच्छा इतना ही रहा कि खुराक साधारण स्तर के बालकों जितनी ही बनी रही ।

डॉक्टरों ने खोज-बीन करके यह बताया कि यह हारमोन का चमत्कार है । खुराक आदि घटाकर बच्चे को नई विपत्ति में न डाला जाय । यदि कभी सम्भव हुआ तो हारमोन सन्तुलन कर सकने वाले चिकित्सक ही उसे सामान्य स्थिति में ला सकेंगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हारमोन कुछ समय पूर्व तक मात्र रासायनिक पदार्थ मात्र माने जाते थे अब उनकी विलक्षणता उनकी सूक्ष्मता में—विद्युत तरंग स्पन्दन में ढूँढ़ लिया गया है । हारमोन बाहर से एक जैसे ही दीखते हैं रासायनिक विश्लेषण करने में उनमें कुछ बहुत बड़ा अन्तर नहीं पाया जाता—पर उनके भीतर पाये गये विद्युत प्रवाह में इतना अन्तर रहता है जिसे विभिन्न मनुष्यों में विभिन्न प्रकार की विशेषताएँ उत्पन्न करने का आधार माना जा सके । 'जीन्स' स्वयं अत्यन्त सूक्ष्म हैं फिर उनके भीतर का जो वर्गीकरण है उसे रासायनिक स्तर पर नहीं, विद्युत कम्पनों के स्तर पर ही विभाजित किया जा सकता है । हारमोन रसायनों का विश्लेषण वर्गीकरण करना हो तो भी उसके घटक इन्हीं शक्ति कम्पनों से ओत-प्रोत पाये गये हैं । इनकी भिन्नता पृथकता भी इसी प्रवाह आधार पर है ।

न्यूयार्क विश्वविद्यालय के तत्वावधान में बफेले नगर की प्रयोगशाला ने इस असम्भव समझे जाने वाले कार्य को सम्भव करके दिखाया है । विश्वविद्यालय के अनुसंधान सम्बन्धी उपाध्यक्ष डॉ. रेमण्ड इवेल तथा जीवविज्ञान केन्द्र के निर्देशक जेक्स डेनिमाली द्वारा इस शोध निष्कर्ष की चर्चा करते हुए कहा गया है कि वंश परम्परा से चली आ रही आकृति-प्रकृति तथा शारीरिक, मानसिक स्थिति में अब आमूलचूल परिवर्तन कर सकना सम्भव हो सकेगा । वंश परम्परा की बीमारियों पर काबू प्राप्त किया जा सकेगा । सूक्ष्म कोषों की शल्य क्रिया करना उनमें दूसरे कोषों के आंशिक पैबन्द लगा सकना सम्भव होने से यह भी शक्य हो जायगा कि इच्छानुरूप विशिष्टताओं वाले बच्चे पैदा किये जा सकें । सन् १९६७ का नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले विज्ञानी डॉ. आर्थर कारन वर्ग ने कैलीफोर्निया के स्टेन फोर्ड विश्वविद्यालय ने जीवकोषों का प्राण 'डी. एन. ए.' खोजा था, अब उस खोज ने इतनी प्रगति कर ली है कि जीवकोषों की स्थिति में इच्छानुसार एवं आवश्यकतानुसार फेर-बदल किया जा सके ।

न केवल वंश परम्परा की दृष्टि से वरन् मनुष्य की रोग मुक्ति, बलवृद्धि तथा दीर्घजीवन की दृष्टि से इन कोशा कणों की स्थिति में सुधार परिवर्तन अपेक्षित है । यह कार्य दवा-दारू के आधार पर अथवा आहार-विहार के मोटे परिवर्तनों से भी सम्भव नहीं हो सकता । बहुत बार देखा गया है कि सही आहार-विहार रखने और उपयुक्त चिकित्सा उपचार करने पर भी कई व्यक्ति रुग्ण बने रहते हैं और स्वल्पजीवी होते हैं । इसका कारण कोशाओं और हारमोन रसायनों में घुसकर बैठी हुई विकृतियाँ होती हैं जिन पर सामान्य चिकित्सा प्रक्रिया एवं भोजन परिवर्तन जैसे उपचारों से भी काबू नहीं पाया जा सकता । इस सुधार के लिए ऐसे विशिष्ट उपाय ढूँढ़ने पड़ते हैं जो कोशाओं के अन्तःस्थल में छिपे विद्युत प्रवाह को प्रभावित कर सकें ।

मनुष्य का शरीर भवन जिन ईंटों से चुना गया है, उन्हें कोशा या सैल कहते हैं । इन्हीं के बनने-बिगड़ने का क्रम हमें जीवित और स्वस्थ रखता है और रुग्ण-दुर्बल बनाते हुए मृत्यु के मुख में धकेल देता है ।

सामान्यतया यह कोशाएँ टूटकर बँटती रहती हैं और नई कोशाओं को जन्म देती रहती हैं । चमड़ी की कोशाएँ प्रायः ४-५ दिन में पुरानी से बदलकर नई हो जाती हैं । जिस प्रकार साँप अपनी केंचुली बदलता है, उसी प्रकार हम भी अपनी चमड़ी हर चौथे-पाँचवें दिन बदल देते हैं । यों यह बात आश्चर्य जैसी लगती है, पर वस्तुतः होता यही रहता है । जिन्दगी भर में हमें हजारों बार चमड़ी की केंचुली बदलनी पड़ती है । यही हाल शरीर के भीतर काम करने वाले प्रमुख रसायन प्रोटीन का है । वह भी प्रायः ८० दिन में पूरी तरह बदल कर नया आ जाता है । यह परिवर्तन अपनी पूर्वज कोशाओं के अनुरूप ही होता है । अस्तु, अन्तर न पड़ने में यह प्रतीत नहीं होता कि पुरानी के चले जाने और नई के स्थानापन्न होने जैसा कुछ परिवर्तन हुआ है ।

इस परिवर्तन क्रम को चलाने की सीमा हर अवयव की अलग-अलग है । किसी अवयव का काया-कल्प जल्दी-जल्दी होता है किसी का देर-देर में । इसी प्रकार उनके काम करने की, सक्षम रहने की अवधि भी भिन्न-भिन्न है । डॉ. केनिव रांसले की पर्यवेक्षण रिपोर्ट के अनुसार मनुष्य के गुर्दे २०० वर्ष तक, हृदय ३०० वर्ष तक, चमड़ी १००० वर्ष तक, फेफड़े १५०० वर्ष तक और हड्डियाँ ४००० वर्ष तक जीवित रह सकने योग्य मसाले से बनी हैं । यदि उन्हें सम्भाल कर रखा जाय तो वे इतने समय तक अपना अस्तित्व भली प्रकार बनाये रह सकती हैं । इनके जल्दी खराब होने का कारण यह ही है—उनसे लगातार काम लिया जाना और बीच-बीच में मरम्मत का अवसर न मिलना । यदि इसकी व्यवस्था बन पड़े तो निश्चित रूप से मनुष्य की वर्तमान जीवन अवधि में कई गुनी वृद्धि हो सकती है ।

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी के डॉ. मिलन कोपेक और तकफेलर इन्स्टीट्यूट के डॉ. ऐलोक्सिस कैरलन द्वारा किये गये प्रयोगों से एक ही निष्कर्ष निकला है कि कोशाएँ जब तक अपनी वंश वृद्धि करने में सक्षम रहती हैं तब तक बुढ़ापा किसी प्रकार छाने नहीं पाता, पर जैसे-जैसे वे नई पौध उगाने की क्रिया शिथिल करती हैं वैसे ही वैसे अवयव कठोर और निष्क्रिय होते चले जाते हैं और अन्ततः मृत्यु के मुख में जा घुसते हैं । यदि इन कोशाओं की क्षमता घटने न दी जाय और उन्हें उत्पादन की अपनी स्वाभाविक संरचना अवधि तक क्रियाशील रहने का उपाय ढूँढ़ निकाला जाय तो शरीर को अमर न सही उसे दीर्घायुषी तो बनाया ही जा सकता है ।

क्रमिक गति से—स्थूल से सूक्ष्म के क्षेत्र में प्रवेश करता हुआ विज्ञान अब रासायनिक पदार्थों की परिधि लाँघ कर उस गहराई तक जा पहुँचा है जहाँ शक्ति-शक्ति का ही साम्राज्य शेष रह जाता है । शरीर एवं मन के प्रयोजनों में लगी इस धारा को विज्ञान में मानवी विद्युत नाम दिया है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्यात्म उसे चित् शक्ति अथवा प्राण-शक्ति कहता है । अन्ततः मानव का मूलभूत आधार इसी केन्द्र पर टिका हुआ सिद्ध होता है ।

शरीर और मन में रासायनिक परिवर्तन करने के लिए पदार्थों का चयन करना हो तो उसका चयन प्रयोगशाला के निष्कर्ष पर नहीं, वरन् उनमें सन्निहित सूक्ष्म चेतना को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए । सतोगुणी प्रकृति के, सात्विक उपार्जन के एवं सद्भावना के वातावरण में पकाये बनाये अन्न में वह दिव्य विद्युत भरी होती है जो कोशाओं के अंततल को स्पर्श करके उनमें समाविष्ट वंश परम्परा से तथा दूसरी प्रकार से उत्पन्न विकृतियों का निराकरण कर सकता है । साथ ही वह तत्व भी बढ़ सकता है जिसमें व्यक्तित्व का समग्र विकास हो सके ।

योगाभ्यास, तपश्चर्या, उपासना एवं साधना की पुनीत प्रक्रियाएँ जीवनचर्या में सम्मिलित की जा सकें तो वह प्रखर विद्युत प्रवाह उत्पन्न होगा, जिसे अध्यात्म की भाषा में ब्रह्मवर्चस् और विज्ञान की भाषा में प्राण-तेजस् कहा जा सकता है ।

भावी पीढ़ियों का स्तर उठाना, व्यक्तित्व को विकसित करना, शारीरिक, मानसिक सामर्थ्य को बढ़ाना तथा चिर-यौवन एवं दीर्घजीवन जैसी विभूतियों को प्राप्त करना वैज्ञानिक विद्युत उपचारों की अपेक्षा अध्यात्म साधना प्रक्रिया अपनाकर अधिक अच्छी तरह और अधिक सरलतापूर्वक सम्भव हो सकता है । प्रयोग करके इस तथ्य को अपने सामने प्रत्यक्ष खड़ा देख सकते हैं ।

व्यक्तित्व परिष्कार हेतु गहराई तक प्रवेश करना होगा

आहार-विहार की उपयुक्तता का स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ने की बात गलत नहीं है । पर विज्ञान के बढ़ते हुए कदम अब यह सिद्ध कर रहे हैं कि न केवल स्वास्थ्य संगठनों का वरन् पीढ़ियों की आकृति-प्रकृति का सम्बन्ध भी अधिक गहराई तक इस तथ्य से जुड़ा हुआ है । यह गहराई है जीव कोशिकाओं की, जो परम्परागत 'जीन्स' तथा अविज्ञात आधार पर खड़े हुए हारमोन स्रावों की जो शरीर की आकृति-प्रकृति से बहुत कुछ सम्बन्ध स्थापित करती हैं ।

वंशानुक्रम विशेषताओं को चार्ल्स डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्तों के अनुसार प्रजनन के लिए एक कच्ची सामग्री भर समझा जाता रहा है । ज्यों-ज्यों विज्ञान ने प्रगति की, वैसे ही सन्तति विकास में वंशानुक्रम की मान्यताएँ भी परिवर्तित होती रही हैं । डार्विन के पश्चात् ग्रेगर मेण्डल ने वंशानुक्रम को भलीभाँति समझा और उन नवीनतम् सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया, जिन्हें वंशानुक्रम की कुंजी के नाम से जाना जाने लगा । लेकिन दुर्भाग्यवश यह महत्वपूर्ण कार्य जन-साधारण की दृष्टि में नहीं आया । सन् १९०० में उनके प्रतिपादनों को पुनः खोजा गया । जिसे बाकायदा 'हेरेडीटी' नाम दिया गया । शनैः-शनैः खोजों का क्रम जारी रखा गया । मेण्डेल ने प्रजनन से सम्बन्धित उन सभी नियमों को खोज निकाला जिनमें मानवी विशेषताएँ वंशानुक्रम का निर्धारण करती हैं । लेकिन तात्कालिक विज्ञ समुदाय ने पर्याप्त प्रमाणों के अभाव में इन्हें विज्ञानसम्मत होने की पुष्टि नहीं दी । किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् जब इस दिशा में पुनः शोध-कार्य आरम्भ हुआ, तो वैज्ञानिकों को वही सारे परिणाम प्राप्त हुए, जिसके बारे में वर्षों पूर्व मेण्डेल ने बताया था । इस प्रकार आनुवंशिकी का जनक कहलाने का उन्हें श्रेय प्राप्त हुआ, मगर मेण्डल ने पौधों के बाह्य आकार-प्रकार को लेकर प्रयोग-परीक्षण किये थे । अस्तु, उनके परिणाम भी उन्हीं पर आधारित थे । वे इस बात को बताने में सर्वथा असमर्थ रहे, कि आखिर इन गुणों को एक पीढ़ी-से-दूसरी पीढ़ी तक ले जाने के लिए जिम्मेदार कौन है ? इस कारक की खोज आगे के वैज्ञानिकों ने की । जर्मनी के 'आगस्टस वेजमेन' का नाम इस क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय है । उन्हीं ने प्रथम बार यह बताया कि कोशिकाओं के नाभिक में पाया जाने वाला 'न्यूक्लियर थ्रेड' अथवा गुणसूत्र ही वे मूलभूत कारक हैं, जो माता-पिता के गुणों को पुत्र तक ले जाने की भूमिका सम्पन्न करते हैं । इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी बताया कि संतति की कोई अपनी निजी विशेषता नहीं होती, वरन् उसमें माँ-बाप दोनों के गुणों का सम्मिश्रण होता है । इस प्रकार यदि चाल-ढाल, बात-व्यवहार पिता से मिलते हैं, तो सम्भव है नाक-नक्श, रूप-रंग माँ के समान हो ।

गुणसूत्रों के बारे में इतनी जानकारी मिलने के बाद वैज्ञानिक इसके और गहन अध्ययन में जुट पड़े, जिसके उपरान्त यह जानना सम्भव हो सका कि पुरुषों और महिलाओं में यह दो भिन्न प्रकार के होते हैं । पुरुषों में एक्स-वाई तथा महिलाओं में एक्स-एक्स प्रकार के पाये जाते हैं । शोधों से कई ऐसे नये तथ्य भी हाथ लगे, जिनकी पूर्व के वर्षों में जानकारी नहीं थी, यथा—"क्यों किसी विशेष नस्ल के लोगों की आयु अन्यों की अपेक्षा अधिक होती है और क्यों कोई अल्पायु होता है ? वर्णान्धता और अधिरक्तस्राव की व्याधियों से पुरुष वर्ग ही अधिक पीड़ित होते क्यों देखे जाते हैं आदि । अनुसंधान के दौरान इन सभी के मूल में गुणसूत्रों सम्बन्धी संरचना ही मुख्य कारण ज्ञात हुआ । अध्ययनों से यह भी पता चला कि हर प्रजाति में गुणसूत्रों की संख्या निश्चित होती है, पर हर क्षेत्र की भाँति यहाँ भी अपवाद देखने को मिला । मनुष्यों में यह प्रायः ४६ की संख्या में होते हैं, किन्तु कई लोगों और विशेषकर मंगोलियनों में इनकी संख्या ४७ पायी गयी । इस अतिरिक्त गुणसूत्र का प्रभाव उनकी शारीरिक व मानसिक संरचनाओं में स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है । ज्ञातव्य है कि मंगोलियनों के चेहरे की बनावट अन्य जातियों से नितान्त भिन्न प्रकार की होती है । इस विशेष चेहरे के लिए आनुवंशिक शास्त्री उसकी कोशिकाओं में विद्यमान एक अतिरिक्त 'वाई' गुणसूत्र को ही जिम्मेदार ठहराते हैं, जबकि उसकी आन्तरिक संरचना में इससे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

आक्रामकता और अवांछनीयता की वृद्धि होती है । इस आधार की पुष्टि तब और सुदृढ़ हो गई जब सन् १९६० में इंग्लैण्ड के एक ऐसे व्यक्ति का सूक्ष्म अध्ययन किया गया, जो आक्रामक प्रकृति का था एवं जीवन में अनेक हत्याएँ कर चुका था । परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि उसके व्यक्तित्व की ११ प्रकार की त्रुटियों के लिए मात्र उसका एक अतिरिक्त गुणसूत्र ही उत्तरदायी है, पर गुणसूत्रों की संख्या में वृद्धि सर्वदा अवांछनीय ही नहीं होती । कभी-कभी उससे अच्छे गुण भी विकसित हो जाते हैं ।

कोल्चीसिन औषधि को क्रौकस नामक पौधे से निकालते समय गुणसूत्रों की संख्या में मूल पौधे से कई गुनी अधिक वृद्धि हो जाती है, किन्तु इस प्रक्रिया से इस पौधे में कोई अन्यथा परिवर्तन नहीं होता, वरन् उसकी नस्ल में और अधिक सुधार हो जाता है । परीक्षणों के दौरान इससे पौधे की प्रजनन क्षमता व उत्पादकता और अधिक सबल समर्थ होते देखी गयी, कारण कि इसमें एक से दूसरे पौधे में गुण सूत्रों के हस्तान्तरण की प्रक्रिया में उपयोगी जीन पहुँचाये जाते हैं, जो नस्ल उन्नत बनाने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं । अब इसी प्रक्रिया से अन्य पौधों की भी उन्नत किस्में विकसित की जा रही हैं, मगर इस प्रक्रिया द्वारा नस्लों में सुधार-विकास सिर्फ वृक्ष, वनस्पतियों एवं छोटे आकार के जन्तुओं तक में ही उचित होगा । मनुष्यों के साथ इस प्रकार के प्रयोग-परीक्षण में खतरा सदा इस बात का बना रहेगा कि इस प्रक्रिया के दौरान कहीं कोई हिटलर, मुसोलिनी, रुडाल्फ, हेस अथवा क्लाउस बार्बी (लियोन का कसाई) स्तर का व्यक्तित्व न पैदा हो जाय, जो समय और समाज दोनों के लिए ही घातक सिद्ध हो । ऐसी स्थिति में वैज्ञानिक अब इस बात पर विचार कर रहे हैं कि व्यक्तित्व में निकृष्टता और उच्छृंखलता पैदा करने वाले 'जीन्स' की कटाई-छँटाई कर मनुष्य के व्यक्तित्व को उत्कृष्ट और उदात्त बनाया जाय । इस दिशा में सफलता अमेरिका के डॉ. होपवुड को मिली है । उन्होंने 'हाइब्रिड तकनीक' नामक एक ऐसी विधि ढूँढ़ निकाली है, जिसके अन्तर्गत जीन्स की मरम्मत एवं प्रत्यारोपण दोनों सम्भव हो सकेंगे । इस प्रणाली द्वारा उत्पन्न तीन प्रकार के जीनों (१) एक्टीनोरहिडीन (२) मेडरमाइसिन (३) ग्रेण्टीसिन द्वारा शरीर में उन रसायनों व एन्जाइमों की कमी पूरी की जा सकेगी, जिसके कारण शरीर-स्वास्थ्य लड़खड़ाने व रुग्ण बनने लगता है । इस प्रकार इस प्रक्रिया द्वारा जहाँ एक ओर दोष-दुर्गुण व रोगोत्पादक जीन्स में सुधार-परिवर्तन शक्य होगा, वहीं दूसरी ओर श्रेष्ठतावर्धक जीन्स का प्रत्यारोपण कर मनुष्य की गुणवत्ता बढ़ाना भी सम्भव हो सकेगा ।

गुणवत्ता सम्बन्धी समस्या के अतिरिक्त मनुष्य के साथ इन दिनों जो एक और समस्या जुड़ गई है, वह है उसकी अल्पायुष्य की । आजकल व्यक्ति की औसत उम्र ५०-५५ के बीच रह गई है अतः स्वस्थता, गुणवत्ता के साथ-साथ आयुष्य-वृद्धि की बात भी आवश्यक समझी जा रही है । वैज्ञानिक अब इस क्षेत्र में भी जीन-क्रान्ति लाने का विचार कर रहे हैं । इस सन्दर्भ में विश्व की अनेक प्रयोगशालाओं ने काम करना भी प्रारम्भ कर दिया है । न्यूयार्क के "नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एजिंग" के प्रख्यात जैवरसायनज्ञ रिचर्ड कटलर व मूर्धन्य आनुवंशिकशास्त्री मक्रेस एक ऐसे रसायन की खोज में जुटे हैं, जो आयु के लिए जिम्मेदार जीन को उद्दीप्त कर सकें । वस्तुतः प्रत्येक शरीर कोशिका में छह जीन्स का एक 'सुपर जीन-समूह' होता है । जब इस पर किसी स्वतन्त्र मूलक का आक्रमण होता है तो प्रतिक्रिया स्वरूप ये एस. ओ. डी. नामक आयुवर्द्धक एन्जाइम स्रावित करने लगते हैं । रिचर्ड कटलर का कहना है कि किसी प्रकार यदि इन जीन-समूह को धोखा देकर उनमें यह भ्रम पैदा किया जा सके कि उसकी कोशिकाओं के चारों ओर बहुत सारे स्वतन्त्र मूलक हैं, तो भ्रान्ति में पड़कर जीन्स एस. ओ. डी. एन्जाइम स्रावित करने लगेंगे और इस प्रकार कोशिका और व्यक्ति की जीवन अवधि में महत्वपूर्ण बढ़ोत्तरी सम्भव हो सकेगी । यूनिवर्सिटी ऑफ नेब्रास्का मेडिकल सेण्टर, ओमाहा के डेनहाम हरमन ने भी इस परिकल्पना का समर्थन करते हुए मत व्यक्त किया है कि यह सम्भव है । यदि ऐसी कोई विधि निकट भविष्य में खोज ली गई, तो इससे जीवन अवधि ५-१५ वर्ष तक बढ़ायी जा सकती है ।

आनुवंशिकी के वैज्ञानिकों के यह प्रयास निश्चय ही सराहनीय हैं और यदि जीन-अभियांत्रिकी द्वारा आयु, स्वास्थ्य व व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले यह उपाय-उपचार सम्भव हुए भी तो वे इतने महँगे व मुश्किल भरे होंगे कि सबके लिए एवं सब जगह उपलब्ध न हो सकेंगे । ऐसी स्थिति में हमें किसी ऐसी विधि की तलाश करनी चाहिए जो सर्वसुलभ भी हो और जिसमें कोई खर्च भी न पड़े । ऐसे में ध्यान अनायास अध्यात्म विज्ञान की ओर जाता है । जिस कार्य को भौतिक विज्ञान कठिन व मुश्किल भरा मानता है, वहाँ इससे अपेक्षाकृत अधिक सरल संभव बन जाता है । अंग्रेज जीन विज्ञानी डॉ. क्रुकशैन्क भी इसकी उपादेयता स्वीकार करते हुए कहते हैं कि अध्यात्म साधना विज्ञान की रहस्यमयी सम्भावनाओं में यह तथ्य कुछ सुगमता से क्रियान्वित किया जा सकता है कि मनुष्य हर दृष्टि से उन्नत बन सके । सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व सम्पन्न संतति की निर्मिती ऐसे ही उपचारों से सम्भव है, जो मानवी अन्तराल की गहराई में संस्कार चेतना से अन्तःसत्ता को अनुप्राणित कर दें ।

सुसन्तति प्राप्ति के उपहासास्पद प्रयत्न

जीवविज्ञान (बायोलॉजी) एक सुविस्तृत विज्ञान है । उसकी एक शाखा है 'जेनेटिक्स' जिसे जनन विज्ञान भी कह सकते हैं । उसकी भी एक उपशाखा है यूजेनिक्स जिसे हिन्दी में सुप्रजनन अथवा नस्ल सुधार कह सकते हैं ।

यह माना जाता है कि मनुष्यों की वर्तमान पीढ़ी अपने पूर्वजों की तुलना में लम्बाई, मजबूती, नीरोगता, दीर्घजीवन आदि सभी दृष्टि से बढ़े-चढ़े थे और हम उनकी अपेक्षा कहीं

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक दुर्बल एवं रुग्णताग्रसित बन गये हैं । इस कमी को पूरा करके पूर्वजों की अथवा उससे भी अच्छी स्थिति में पहुँचन की अपनी इच्छा स्वाभाविक है । यूजेनिक्स के अन्तर्गत इसके लिए उपाय ढूँढ़े जा रहे हैं । इतना ही नहीं मानसिक संरचना एवं व्यक्तित्व की अनेक धाराओं में भी ऐसे सुधार किये जाने अपेक्षित हैं जिनके आधार पर मनुष्य को सुविकसित कहा जा सके ।

यह सुविकसित स्थिति वह होनी चाहिए जो समय की माँग को पूरा कर सकने में समर्थ हो । सत्ताधीशों के इशारे पर नत-मस्तक होकर चल सके और उसकी इच्छित विशेषताओं से भरपूर हो । ऐसे सुविकसित मनुष्य कहाँ हैं ? कैसे मिलें ? अथवा किस प्रकार प्रशिक्षित किये जायँ ? इन झंझटों में पड़ने की अपेक्षा अब यह उचित और सरल समझा जा रहा है कि अभीष्ट स्तर के मनुष्य पैदा करने की दिशा में ध्यान केन्द्रित किया जाय और सुधरे बीज से सुधरी फसल उगाने का सिद्धान्त मनुष्यों पर भी लागू किया जाय । यह प्रयोग वनस्पतियों, वृक्षों, अनाजों पर पूर्णतया सफल रहा है । कलम लगाकर अथवा वर्णशंकर बनाकर वनस्पति जगत में ऐसी विधि उपलब्ध करली गई है कि अधिक मात्रा में, अधिक बढ़िया, अधिक गुणकारी अनाज, फल एवं चारा उगाया जा सके । यह विधि पशुओं पर भी सफल रही है । कृत्रिम गर्भाधान की पद्धति ने किसी भी जाति की मादा को किसी भी जाति के नर के साथ निषेचन करने के लिए बाध्य कर दिया है । सजातीय संयोग की प्रकृति प्रेरणा को उठा कर एक कोने पर रख दिया गया है । अब ऐसी पशुजातियाँ उत्पन्न की जा रही हैं जो अपने माता-पिता की प्रकृति एवं क्षमता से भिन्न होते हैं । घोड़ी, गधे के संयोग से खच्चर उत्पन्न करने की बात अब पुराने जमाने की हो गई । अब तो उनके जनन बीजों का ही इस तरह कतर व्योंत कर दिया जाता है कि अभीष्ट आकार-प्रकार की, गुण-स्वभाव की पशु पीढ़ियाँ उत्पन्न हो सकें । मनुष्य जाति पर भी वह प्रयोग किये जा सकते हैं और सफल हो सकते हैं इस विश्वास को लेकर जीवविज्ञानी अब इस प्रयत्न में जुट गये हैं कि मनुष्यों की सुविकसित फसल उगाई जाय । उसकी वंश परम्परा में जोड़-गाँठ और काट-छाँट कर देने से वैसी पीढ़ियाँ उत्पन्न करना सम्भव हो सकेगा जैसी कि हमारे कर्णधारों को अपेक्षित है ।

मनुष्य की मानसिक स्थिति, स्वभाव एवं प्रकृति में सुधारों की आवश्यकता अनुभव की जाती है । पर सबसे पहली आवश्यकता शारीरिक स्थिति को सुधारने की है । जल्दी थकान, दुर्बलता विपरीत परिस्थितियों को न सह सकने वाली अशक्तता, अनेकानेक छोटे-बड़े रोगों से ग्रसित रहना, इन्द्रिय क्षमता में न्यूनता, स्वल्प श्रम कर सकने जैसा ढाँचा, अल्पायु, शीघ्र वृद्धावस्था आदि कितने ही ऐसे व्यवधान हैं, जिनसे मनुष्यों की शारीरिक स्थिति क्रमशः दयनीय स्थिति तक पहुँचती जा रही है । दीन-दुर्बल काया एक प्रकार से भार ही बनी रहती है, जीवन का आनन्द उठा सकने में वह साथ देती ही नहीं । जो अपने आपके लिए और अपने परिवार के लिए भार बना हुआ है वह समय की, समाज की आवश्यकता क्या पूरी करेगा ? कर्णधारों की महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण कर सकने की उसमें सामर्थ्य कहाँ होगी ?

इन सब बातों पर विचार करते हुए मनुष्यों की उपयोगी फसल उगाने की बात वैज्ञानिक क्षेत्र में सोची गई है और इसके लिए शारीरिक स्थिति के सुधार को प्राथमिकता दी गई है । असह्य शीत, ताप वाले ऐसे प्रदेश अभी बहुत विस्तृत क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं जिनमें मनुष्यों का अधिक संख्या में रह सकना सम्भव नहीं हो पाता । दलदलों की कीचड़ से भी ऐसी हवा उत्पन्न होती है, जिसमें रहने पर बीमारियों से बचा नहीं जा सकता । दुर्गम पहाड़ों पर चढ़ने उतरने को भी असुविधाजनक समझा जाता है और वहाँ रहने वालों की संख्या दिन-दिन घटती जा रही है । सह्य और संतुलित परिस्थितियों में रहना ही अभी लोगों को पसन्द है । कष्टकर परिस्थितियों में रहना सुहाता नहीं । ऐसी दशा में एक बहुत बड़ा भू-भाग ऐसा पड़ा रहता है जिसके उपयोग का लाभ मनुष्यों को मिलता ही नहीं। परिस्थितियाँ बदलना कठिन है । पहाड़ों को समतल बनाना और शीत-ताप को संतुलित करना कठिन है । प्रकृति पर इतनी बड़ी विजय आसानी से मिलती नहीं दीखती । मिली भी तो उसमें देर लगेगी । जल्दी ही मनुष्यों की वांछित फसल तैयार करने के लिए उसके जीव बीजों में सुधार करके ऐसी काया गठन के लोग उत्पन्न किये जा सकते हैं जो अब के लोगों को कष्टकर लगने वाले क्षेत्रों में प्रसन्नतापूर्वक रह सकें । उनकी शारीरिक स्थिति ऐसी हो जिससे आज की कठिनाई तनिक भी न अखरे और नई पीढ़ी के लोग वहाँ खुशी-खुशी निर्वाह करें । हिम प्रदेशों में रहने वाले मनुष्य और पशु वहीं चैन पाते हैं । गर्म प्रदेश में उन्हें ले आया जाय तो वे वहाँ हाँपते, जलते दम तोड़ देंगे । इसी प्रकार गर्म प्रदेश के लोग शीत क्षेत्र में ठंड से अकड़कर मौत के मुँह में धँसते चले जायेंगे । पहाड़ी वन्य जन्तु वहाँ की चढ़ाई-उतराई को विनोद मात्र मानते हैं । यदि मनुष्यों की ऐसी फसलें उगाई जा सकें जो आज की विपन्न समझी जाने वाली परिस्थितियों में निर्वाह कर सकें तो यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी । जीवविज्ञानी आशा करते हैं कि ऐसा सुधार परिवर्तन कष्टसाध्य तो है, पर असम्भव नहीं । अगली पीढ़ियों की शरीर रचना ऐसी हो सकती है जिससे प्रकृति अवरोधों से जूझते हुए भावी पीढ़ी के लोग प्रसन्नतापूर्वक निर्वाह कर सकें ।

ठीक इसी प्रकार रोगों से पीछा छुड़ाना भी जीव बीजों में सुधार करने से सम्भव हो सकता है । यों अधिकतर बीमारियाँ आहार-विहार की विकृति से उत्पन्न होती हैं । प्रतिकूलताएँ भी कई बार बीमारी का कारण होती हैं पर आधे से अधिक रोग वंश परम्परा से आते हैं । जीव बीजों के किसी कोने में वे छिपे बैठे रहते हैं और तनिक-सा अवसर पाते ही वे उभर पड़ते हैं । दवा-दारू से तात्कालिक लाभ भर होता है, जीव बीजों में छिपकर बैठे हुए चोर इन दवाओं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से मरते नहीं । नित-नये उपचार आविष्कार सामने आते हैं, पर उनसे किसी भी रोग का सुनिश्चित निवारण सम्भव नहीं होता । जीव बीजों को सुधारने या बदलने में कोई उपचार समर्थ हो तभी इन असाध्य या कष्टसाध्य बने हुए रोगों से पीछा छुड़ाने में सफलता मिल सकती है ।

यही बात लम्बा या ठिगना कद बनाने में, चमड़ी का रंग गोरा काला बनाने में, श्रम सामर्थ्य में, दीर्घायुष्य में लागू होती है । आहार, व्यायाम की सहायता से इस वंश परम्परा को नहीं बदला जा सकता । उसे बदलने के लिए जीव बीजों का ही उपचार करना पड़ेगा । ऐसी ही अनेक शारीरिक समस्याओं का समाधान अब एक ही दिखाई पड़ता है कि जीव बीजों का उपचार शल्य प्रयोग एवं प्रत्यावर्तन करने की विधि ढूँढ़ निकाली जाय । विज्ञान इसे सम्भव मानता है । यद्यपि यह उपचार बहुत सूक्ष्म स्तर का होने के कारण कष्ट साध्य अवश्य है ।

वर्तमान परिस्थितियों का मुकाबिला करने में समर्थ-समय की माँग को पूरा कर सकने के उपयुक्त मनुष्य का निर्माण करने के लिए वैज्ञानिकों की दृष्टि में वंश विज्ञान की गहरी खोज करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि नर-नारी के प्रजनन तत्व में समर्थ जीवकणों का नये सिरे से उत्पादन एवं परिशोधन किया जाय । उनका पोषण नई परिस्थितियों में किया जाय और उसमें अभीष्ट स्तर की पीढ़ियाँ उत्पन्न की जायँ । गुणसूत्रों को विद्युत आवेशों से उत्तेजित करने की प्रक्रिया बहुत दिन पहले ही हाथ लग गई है । कन्या को जन्म देने वाले कणों की भिन्नता उनकी मूलभूत भिन्नता नहीं है । दोनों की मूल प्रकृति एक ही होती है मात्र विद्युत आवेशों का ऋण धन स्तर ही उनमें लिंग भेद पैदा कर देता है । यह विद्युत आवेश प्रयत्नपूर्वक बदला जा सकता है और भ्रूण स्थापना से पूर्व नर-नारी की आन्तरिक स्थिति ऐसी बनाई जा सकती है । जिससे कन्या या पुत्र जो चाहे वही उत्पन्न हो । इसी प्रयत्न में एक कड़ी और जुड़ गई है कि कुछ समय के गर्भ को भी लिंग परिवर्तन के लिए बाध्य किया जा सकता है । गर्भ संस्थानों एवं प्रजनन केन्द्रों में अमुक स्तर के विद्युत आवेश को अमुक मात्रा में पहुँचाने से यह सम्भव हो जाता है ।

बर्लिन के डा. एम. न्यूमैन और डाक्टर एम. क्रेमर ने इस आश्चर्य को भी सरल बना दिया है । गर्भवती चुहियाओं को किप्रोटेकोन एसीटेट के इंजेक्शन लगाये गये । उनके पेट से जो चुहियाएँ उत्पन्न हुईं सो तो ठीक पर जो चूहे उत्पन्न हुए उनकी यौन प्रक्रिया में मादा अवयव भी मौजूद थे । शल्य चिकित्सा से उन्हें पूरी मादा बना दिया गया ।

इन डाक्टरों का कहना है प्रत्येक भ्रूण आरम्भ में मादा वर्ग का ही होता है । नर गुणसूत्र पीछे सक्रिय होते हैं । जब वे प्रबल हो उठते हैं तब उनके प्रयास से भ्रूण में टेस्टोस्टेरोन नामक नर हारमोन बनना आरम्भ होता है । यह प्रक्रिया चल पड़ने पर आरम्भिक भ्रूण की परिणित नर लिंग में होती है । गर्भ धारण करने के बाद भी पेट में एक वर्ग के गुणसूत्रों को मूर्छित रखने और दूसरे वर्ग को सक्रिय बनाने का कार्य हो सकता है । गर्भाधान के आरम्भिक दिनों में तो इस प्रकार का हेर-फेर और भी अधिक सरल संभव हो सकता है । यह कठिन कार्य सम्पन्न कर सकने योग्य कुछ विशिष्ट विद्युतधाराएँ विर्निमित की गई हैं जो अन्य अवयवों में हानिकारक विक्षेप उत्पन्न करके केवल गुणसूत्रों में ही अभीष्ट हलचलें उत्पन्न करती हैं ।

इसी विज्ञान का विकास अब इस प्रकार होने जा रहा है कि 'जीन' में जो वंश परम्परागत शारीरिक एवं मानसिक विकृतियाँ जुड़ी चली आ रही हैं उन्हें नष्ट कर दिया जाय और जो श्रेष्ठ अंश प्रसुप्त स्थिति में पड़े हैं उन्हें उभार दिया जाय । इस प्रकार की शल्य क्रिया विद्युत तरंगें 'जीन' के मर्मस्थलों तक पहुँचकर की जा सकती हैं । इस विधि से सामान्य नर-नारी भी अपने शुक्र कीटों और डिम्बाणुओं को इस योग्य बना सकते हैं कि सुप्रजन सम्भव हो सके ।

इस प्रक्रिया में एक बड़ी त्रुटि यह है कि माता-पिता के गुणसूत्रों को प्रधानतया विकृति मुक्त ही किया जा सकता है । बहुत हुआ तो प्रसुप्त विशेषताओं को थोड़ी मात्रा में उभारा जा सकता है । इतने पर भी यह नहीं हो सकता कि मातृ पक्ष या पितृ पक्ष में जो विशेषताएँ वंश परम्परा से रही ही नहीं उनका भी समावेश किया जा सके । घटाना-सुधारना सरल है पर समावेश तो कैसे किया जाय । गेहूँ में जो तत्व नहीं है उन्हें भी यदि मिलाया जाना सम्भव हो तो फिर वही इतना पौष्टिक बन जाता है कि प्रोटीन, खनिज, चिकनाई, विटामिन आदि अन्य किसी पदार्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती । गेहूँ के बीज को थोड़ा सुविकसित किया जा सकता है, पर उसमें उन तत्वों का समावेश करना कठिन है जो उसकी मूल प्रकृति में है ही नहीं । गुणसूत्र मनुष्यों की भूतकालीन स्थिति के प्रतीक प्रतिबिम्ब मात्र हैं जो कभी हुआ बीता ही नहीं वह संस्कार उनमें आ कहाँ से जायेगा । यहाँ आकर गाड़ी फिर रुक जाती है । समुन्नत स्तर की पीढ़ियों में जिन विशेष क्षमताओं का समावेश किया जाना है, विद्युत प्रवाह द्वारा 'गुणसूत्रों' में उथल-पुथल कर देने मात्र से भी वह सब सम्भव न हो सकेगा । फिर लक्ष्य कहाँ पूरा हुआ ?

विज्ञान अपने ढंग से समुन्नत पीढ़ियों का लक्ष्य पूर्ण करने के लिए सोचने और उपाय ढूँढ़ने में संलग्न है । अध्यात्म इस समस्या का समाधान बहुत पहले ही बता चुका है । पति-पत्नी सन्तानोत्पादन के लिए दीर्घकालीन तप साधना करें जैसी कि स्वयंभू मनु और शतरूपा रानी ने इसी उद्देश्य के लिए तप करके दशरथ और कौशिल्या का शरीर धारण करके भगवान राम जैसे परिष्कृत व्यक्तित्व को जन्म दिया था । भगवान कृष्ण अपनी पत्नी रुक्मिणी को लेकर सन्तानोत्पादन तप करने के लिए बद्रीनाथ स्थल में हिमालय साधना के लिए गये थे और बेर के फल खाकर वे दोनों दीर्घकालीन साधना करते रहे थे । इसके उपरान्त इन्हें प्रद्युम्न पुत्र प्राप्त हुआ था जो आकृति-प्रकृति में पूर्णतया अपने पिता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसा ही था । पुराण ग्रन्थों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह विदित होता है कि तपस्वी ऋषि अपनी पत्नियों समेत रहते थे और पुनीत आरण्यकों में ऐसी सन्तान उत्पन्न करते थे जो ऋषि परम्परा के अपेक्षाकृत और भी अच्छी तरह आगे बढ़ा सके । व्यास, वशिष्ठ, शुकदेव, परशुराम, शृंगी, अत्रि, भरद्वाज, याज्ञवल्क्य आदि अधिकांश ऋषि अपने ऋषि माता-पिताओं से ही उत्पन्न हुए थे । उनमें से भी अधिकांश ने सन्तानोत्पादन किया ।

वासनात्मक उद्देश्य के साथ जुड़ी हुई वर्तमान सन्तानोत्पादन प्रक्रिया अपने मूल प्रयोजन जैसी ही घिनौनी संतान उत्पन्न कर सकती है । यदि विशुद्ध लोकमंगल के लिए श्रेष्ठतम अनुदान प्रस्तुत करने की दृष्टि से उसे सम्पन्न किया जाय और उसके लिए दीर्घकालीन तप साधना द्वारा प्रजनन तत्व को परिष्कृत किया जाय तो वह उद्देश्य सहज ही पूरा हो सकता है जिसके लिए संसार का विचारशील वर्ग इतना व्यग्र है और ओंधे-सीधे उपायों की उलट-पुलट कर रहा है ।

व्यक्तित्व के विकास में आनुवंशिकी स्तर स्पर्श करना होगा

अपने को, सन्तान को, परिवार को, समाज को सुखी समृद्ध बनाने के लिए हमें यह सोचना होगा कि इसके लिए धन से भी अधिक उँचा आधार है व्यक्तित्व । विकृत व्यक्तित्व वाले मनुष्य प्रचुर सुविधा साधनों के रहते हुए भी न स्वयं सुखी रह पाते हैं और न अपने स्वजन-सम्बन्धियों को चैन से रहने देते हैं । इसी के विकास के लिए साधारणतया आहार, व्यायाम, उपकरण प्रशिक्षण, वातावरण आदि को पर्याप्त माना जाता है, पर वास्तविकता यह है कि इतने से कुछ अधिक प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । यदि बात इतनी भर रही होती तो साधन सम्पन्न लोग यह सारे साधन सहज ही जुटा सकते थे और व्यक्तित्व सम्पन्न बन सकते थे । पर ऐसा होता कहाँ है—वे इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत अभावग्रस्त लोगों से भी पिछड़े एवं गये-गुजरे सिद्ध होते हैं ।

विज्ञान ने सूक्ष्म से सूक्ष्मतर परतों में प्रवेश करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि जिस प्रकार बीज में सन्निहित अदृश्य विशेषताएँ अवसर पाकर वृक्ष के रूप में विकसित होती हैं, उसी प्रकार कोशिकाओं के गर्भ में सन्निहित वंशानुक्रम की विशेषताएँ ही व्यक्तित्व बनकर पल्लवित होती हैं । शरीर और मन का स्तर बहुत कुछ परम्परागत होता है । यह परम्पराएँ पूर्वजों के प्रत्यक्ष जीवन पर नहीं परोक्ष, अदृश्य एवं अविज्ञात स्तर पर अवलम्बित रहती हैं । यदि सचमुच ही किसी को अपना व्यक्तित्व विनिर्मित करना हो—अपनी सन्तान को सुविकसित व्यक्ति के रूप में प्रतिभा सम्पन्न बनाना हो तो उसके लिए—प्रगति के लिए आवश्यक माने जाने वाले बाह्य उपकरणों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए वरन् वंशानुक्रम से सम्बन्धित उस सूक्ष्म स्तर को स्पर्श करना चाहिए, जिनके स्फुरण से ही बहिरंग जीवन की अनेक विशेषताएँ विकसित होती हैं ।

आनुवंशिकी अन्वेषणों से यह अधिकाधिक स्पष्ट होता चला जा रहा है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए उपयुक्त समझे जाने वाले आहार-विहार, शिक्षा-साधन जैसे माध्यमों की तुलना में वे तत्व हजारों गुने अधिक प्रबल हैं जो परम्परागत प्रक्रिया के आधार पर कोशिकाओं के अन्तर भूमिका के अत्यन्त गहन मर्म-स्थल में गुँथे रहते हैं ।

फ्रांसीसी दार्शनिक मान्टेन को पैंतालीस वर्ष की आयु में पित्ताशय में पथरी की बीमारी हुई । उनके पिता को यह रोग पच्चीस वर्ष की आयु में आरम्भ हुआ था । मौटे तोर से यह बात समझ में नहीं आती कि उनके जन्म के समय जब पिता को वह बीमारी नहीं थी तो उसकी सन्तान को कैसे हो सकती है ? पर अब इस रहस्य पर से पर्दा उठ गया है । मात्र माता-पिता का रज-वीर्य ही बालक के स्वास्थ्य, मनःस्तर का सृजनकर्ता नहीं है वरन् वंश परम्परा में चली आने वाली—जीन्स के साथ जुड़ी हुई वे विशेषताऐं पीढ़ियों के निर्माण में अति महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करती हैं । मान्टेन की पित्ताशय की पथरी कई पीढ़ियों से चली आ रही थी । भले ही वह प्रकट रूप से दिखाई न पड़ती हो पर सूक्ष्म 'जीन्स' में छाया रूप में वह विशेषता मौजूद थी जो अनुकूल अवसर आते ही फलने फूलने लगी ।

मधुमेह वंश परम्परागत हो तो भी इन्सुलीन के इन्जेक्शनों के सहारे उसके रोगी को खड़ा रखा जा सकता है । बालकों का 'गैलेक्टो सीमियाँ' पैतृक जीन्स से सम्बन्धित होता है । बाहरी कारणों से वह कदाचित् ही होता है । वह जीन जब आई-पी-यूरी डायल ट्रान्सफरे ऐंजाइम नहीं बनने देता तो बच्चे दूध में रहने वाली मिठास-गैलेक्टोस-पचा नहीं पाते । फलतः वह खून में जमा होती रहती है । वह जिगर में इकट्ठी होकर बच्चे का पेट खराब कर देती है और बहुत करके उसे मार ही डालती है । ऐसा ही एक दूसरा रोग है, एक्रोडमे, टाइटिस ऐटेरोपैथिका । यों इनका इलाज भी किया ही जाता है, पर पैतृक विकृतियों को धारण किये हुए जीन्स जिन रोगों का सृजन करती है, वे बड़े हठीले और कष्टसाध्य होते हैं । आँख-मिचौनी खेलते रहते हैं और जब भी दाव लगता है फिर उभरकर खड़े हो जाते हैं ।

आँख का केन्सर—रेटीनो ब्लास्टीमा-जीन्स दोष का ही परिणाम है । निकट दृष्टि—मायोपिया सारे परिवार को होते देखा गया है । प्रकृतिगत प्रभावों की असाधारण शृंखला का समावेश आनुवंशिकी क्षेत्र तक पहुँच जाय तो अद्भुत परिवर्तन देखे जाते हैं । बौनेपन का कारण यही है । सिर और धड़ का आकार सामान्य और हाथ-पाँव छोटे रह जाना विलक्षण आकृति के अधिक या न्यून अंगप्रत्यंगों वाले बालक ऐसे ही जीन्स उत्परिवर्तन के परिणाम हैं । माता-पिता में इस प्रकार की कमी होने से ही ऐसे अविकसित बालक नहीं होते वरन् उनमें जीन्स की एकोड्रोप्लासिया आपत्ति ही कारण होती है । ऐसे अविकसित बच्चे मरते जल्दी हैं यदि बच भी गए तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वंश वृद्धि में असमर्थ होते हैं । ऐसी महिलाएँ यदि गर्भ धारण करलें तो फिर न जच्चा का कुछ ठिकाना रहता है न बच्चा का ।

बेशक परिस्थितियों का महत्व है । परम्परागत विकृतियों को अच्छा आहार, अच्छा रहन-सहन, अच्छी जलवायु से बहुत कुछ नियन्त्रण में रखा जा सकता है फिर भी विकृत आनुवंशिकता इतने से ही निर्मूल नहीं हो जाती इसके लिए अधिक गहरे और अधिक प्रभावी उपचार काम में लाने पड़ते हैं । यदि इस ओर ध्यान न दिया जाय तो पीढ़ियाँ ऐसी बनती हैं जिसे दुर्भाग्य या अभिशाप ही कहा जा सके ।

शारीरिक विकास के लिए आहार-विहार, जलवायु की प्रतिक्रिया को चीरकर आनुवंशिकी तत्व अपनी मौलिक विशेषता स्थिर रखे रह सकते हैं । पूर्वजों की प्रतिच्छाया सहज ही सन्तान में परिलक्षित हो सकती है ।

माता-पिता दोनों ही देखने में स्वस्थ हों, पर बालक में जिस पक्ष की 'जीनी' का वर्चस्व यदि पैतृक रूप से रुग्ण हो तो उसका प्रभाव कभी भी उभर सकता है । बालक ऐसे रोगों से ग्रसित हो सकता है, जिनका निराकरण साधारण दवा-दारू से सम्भव न हो सके । वंश वृद्धि की दृष्टि से हाड़-माँस की स्वस्थता का बहुत अधिक मूल्य नहीं है । बाहर से मजबूत और सुडौल एवं सज्जन दीखने वाला व्यक्ति भी अपने कोषाणु गर्भ में ऐसे गुणसूत्रों से भरा हो सकता है जिसका प्रजनन शारीरिक अथवा मानसिक रुग्णता ग्रसित हो । अस्तु, सुसन्तति के लिए न केवल वर-वधू की तात्कालिक शारीरिक, मानसिक स्थिति पर ही दृष्टिपात करना आवश्यक होता है वरन् उसकी पैतृक परम्पराओं को भी देखने समझने की आवश्यकता पड़ती है । 'खानदान' का इतिहास, सुसंतति की दृष्टि से अतीव महत्वपूर्ण होता है ।

विकासवादी डार्विन का विवाह उसकी चचेरी बहिन से हुआ था । परम्परागत विशेषताओं का प्रकटीकरण उसने अपने परिवार में देखा उसको यही कहना पड़ा—वंश परम्परा विज्ञान बड़ा ही आश्चर्यजनक है । इस रहस्य की खोज बहुत दिनों से चल रही थी । चेकोस्लोविया के पादरी ग्रेगर मेण्डल ने आनुवंशिकता पर प्रकाश डाला था । पीछे उसे अणु विज्ञान की तरह महत्वपूर्ण माना गया और डा. खुराना प्रभृति अन्वेषकों ने तत्सम्बन्धी शोधों से समस्त विश्व का ध्यान इस ओर आकर्षित कर लिया ।

परम्परागत शारीरिक विशेषताओं का पीढ़ियों तक गतिशील रहना प्रत्यक्ष है । वे भली भी हो सकती हैं और बुरी भी । बात उतने तक ही सीमित नहीं है मानसिक, भावनात्मक, चारित्रिक तथा अन्यान्य प्रकार की विशेषताएँ भी पीढ़ी दर पीढ़ी चलती देखी गई है ।

शरीर में लगभग ७०० प्रकार के ऐंजाइम पाये जाते हैं । इनकी न्यूनाधिकता ही प्रायः शरीर संचालन के सारे क्रिया-कलाप सम्पन्न करती है । इन ऐंजाइम का स्तर गुणसूत्रों की प्रेरणा से ही गिरता उठता है । इनकी पूर्ति दवाओं में सम्मिलित ऐंजाइम शरीर में पहुँचाकर की जाती है । मधुमेह में ऐन्सुलीन प्रायः गोलियों और इन्जेक्शनों से पहुँचाया जाता रहता है पर उसका प्रभाव क्षणिक रहता है । एक बार के आहार में ही वह मात्रा समाप्त हो जाती है फिर दूसरी मात्रा लेनी पड़ती है । पर यदि गुणसूत्रों में सन्निहित मूल स्रोत सुधारे जा सकें तो ही यह किसी स्थायी रूप से दूर की जा सकती है ।

आनुवंशिकी प्रक्रिया में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाने पर सन्तानों के शरीर और मन विचित्र प्रकार से विकृत हो सकते हैं । यह विकृतियाँ जिनमें आरम्भ होती हैं, उन्हें पता नहीं चलता, पर सन्तान पर उनका प्रभाव परिलक्षित होता है । कुछ विकृतियाँ धीरे-धीरे पलती रहती हैं और कई पीढ़ियों के उपरान्त प्रकट होती हैं । गर्भ स्थापन एवं गर्भ विकास काल में रही हुई विकृतियाँ भी विलक्षण आकार-प्रकार की पीढ़ियाँ प्रस्तुत करती हैं ।

शांसी प्रान्त का गवर्नर लूचिंग, जो कुछ समय राज्य मंत्री भी रहा लूचिंग में एक शारीरिक विशेषता भी थी । उसकी दोनों आँखों में दो-दो पुतलियाँ थीं । पर इससे उसकी दृष्टि में कोई अन्तर नहीं पड़ा । दो पुतलियों के कारण दूना दीखता हो सो बात भी नहीं थी पर उनके कारण कोई दृष्टि दोष भी उत्पन्न नहीं हुआ था वे अन्य सामान्य मनुष्यों की तरह ही देखते भालते थे ।

इन उदाहरणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि गुणसूत्रों का मर्म यदि और भी अधिक स्पष्ट हो जाय तो वर्तमान आकृति-प्रकृति से भिन्न प्रकार के मनुष्यों की नई सृष्टि रची जा सकती है । आज मानवी काया में जो कमियाँ प्रतीत होती हैं, उन्हें अगले दिनों इच्छानुसार सुधारा-सम्भाला जा सकता है । यह कार्य शल्य चिकित्सा, आहार विज्ञान एवं मस्तिष्कीय शिक्षण प्रशिक्षण का नहीं वरन् आनुवंशिक विज्ञान का है, उस सन्दर्भ में यदि समुचित ज्ञान प्राप्त हो सके और सुधार परिवर्तन का विधान जाना जा सके तो मनुष्य को अभीष्ट विशेषताओं से सुसंपन्न बनाया जा सकता है और न केवल व्यक्ति विशेष को वरन् उसकी पीढ़ियों को भी सुधारा जा सकता है । इस दिशा में जो आरम्भिक प्रयत्न वैज्ञानिकों ने किये हैं उनमें उत्साहवर्द्धक सफलताएँ भी मिली हैं ।

पाँचवीं अन्तर्राष्ट्रीय आनुवंशिकी काँग्रेस में प्रो. एच. जे. मूलर ने 'एक्स' किरणों की सहायता से जीनों में परिवर्तन ला सकने का अपना प्रतिपादन प्रस्तुत किया था, तब से अब तक इस दिशा में बहुत प्रगति हो चुकी है और प्रतीत होता है कि इस विज्ञान के आधार पर धरती के जीवधारियों की आकृति तथा प्रकृति में अभीष्ट परिवर्तन किया जा सकेगा ।

प्रयोक्ताओं ने मक्खियों की चित्र-विचित्र ऐसी नस्लें उत्पन्न करली हैं जो अपने पूर्वजों से बहुत कम मिलती जुलती हैं । वनस्पतियों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं और पशुओं की नस्लों में भारी सुधार हुए हैं । मैक्सिको के बौने गेहूँ को भारत में सोनेरा ६४ शरवती गेहूँ के रूप में समुन्नत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया गया है । इसी प्रकार अन्य अनाजों में इच्छानुसार लम्बी या बौनी जातियाँ पैदा की गई हैं । गेहूँ, जौ, मक्का, धान, ज्वार, मूँग आदि की अब कई नस्लें ऐसी आई हैं जिनमें पोषक तत्व कहीं अधिक हैं । इसी प्रकार आँधी-तूफान से बचाने के लिए कम ऊँचाई की फसलें पैदा करने में भी अच्छी सफलता मिल रही है । शूक रहित बालें बदली गई हैं ताकि उनका भूसा जानवरों के गले में चुभन पैदा करने के दोष से मुक्त हो जाय ।

एण्टीबायोटिक्स दवाओं में काम आने वाली फफूँदी में रहने वाली उपयोगी अमीनो अम्ल 'लाइसिन' की मात्रा पहले बहुत कम रहती थी पर अब उसमें प्राय: एक हजार गुनी तक वृद्धि करली गई है इसलिए दवाओं की आवश्यकता पूर्ति अपेक्षाकृत सरल हो गई है । वैक्टीरिया की जातियों को सुधारने में भी सफलता मिली है । कृत्रिम क्लोरेला पौधा भविष्य में पौष्टिक खाद्य समस्या का हल करने में जल्दी ही महत्त्वपूर्ण योगदान देने लगेगा । फल, शाक, घास, अनाज, फूल तथा वनस्पतियों में ऐसे सुधार हुए हैं, जिनसे उनकी उपयोगिता में कई गुनी वृद्धि हो सके । जानवरों की दूध देने की तथा श्रम करने की शक्ति बढ़ रही है, साथ ही उनके शरीर घटाये जा रहे हैं ताकि कम स्थान मे उनके निवास तथा कम खुराक में इनके गुजारे की समस्या हल हो सके ।

इन परीक्षणों में सफलता प्राप्त करते हुए आनुवंशिकी वैज्ञानिक अब इस प्रयास में हैं कि मनुष्य जाति को अब की अपेक्षा भविष्य में अधिक परिष्कृत बनाया जाये, रोगों और विषों की जो अवांछनीय मात्रा वर्तमान पीढ़ी के मनुष्यों में प्रविष्ट हो गई है और पग-पग पर स्वास्थ्य संकट उत्पन्न करती रहती है उसका परिशोधन हो सकना सैद्धान्तिक रूप से सम्भव मान लिया गया है । वे प्रयोग जल्दी ही कार्यान्वित होंगे जिनके आधार पर नीरोग और सर्वांग सुन्दर मानव पीढ़ी को विकसित किया जा सके । इन्हीं प्रयोगों में अधिक विकृत वर्ग का बन्ध्याकरण भी सम्मिलित है ताकि विभीषिकाओं से इसी बीच छुटकारा पा लिया जाय ।

इतना ही नहीं मस्तिष्क की प्रखरता और स्वभाव की शालीनता भी गुणसूत्रों में आवश्यक हेर-फेर के आधार पर सम्भव हो सकेगी । तब अपराधी तत्वों से निपटने में खर्च होने वाली शक्ति को सृजनात्मक कार्यों में लगाने के लिए लगाया जा सकेगा और कर्तव्य पालन तथा शिष्टाचार निर्वाह के लिए धर्मोपदेश करने की भी कोई आवश्यकता न रहेगी क्योंकि वे तत्व जन्मजात रूप से सब को प्राप्त होंगे और उनका आचरण बिना प्रयास स्वसंचालित रीति से होता रहेगा ।

पशुओं में से आजकल जो निरर्थक और हानिकारक बने हुए हैं उन्हें इस प्रकार बदला जा सकेगा जिससे वे स्वयं सुखपूर्वक रह सकें और मनुष्य भी उनसे लाभ उठा सकें । जीवजन्तुओं में विचारशीलता तो निश्चित रूप से बढ़ सकेगी और वे अनगढ़ न रहकर अपेक्षाकृत अधिक अनुशासित, सामाजिक और शान्ति प्रकृति के बनकर संसार को सुव्यवस्थित बनाने में सहायता कर सकेंगे ।

आनुवंशिकी विज्ञान वेत्ता जो कुछ अन्वेषण एवं सुधार परिवर्तन का प्रयत्न कर रहे हैं, उसका आधार मात्र भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों एवं उपकरणों तक ही सीमित है । जब कि वह मर्मस्थल उससे कहीं अधिक गहरा है । गुणसूत्रों की प्रकृति बदलने के लिए चेतना शक्ति का प्रयोग ही अन्तत: सफल होगा क्योंकि भौतिक विज्ञान अधिक से अधिक गुणसूत्रों का कलेवर बदल सकता है, उसकी मूल प्रकृति में हेर-फेर करने की सफलता उसे कभी कदाचित् ही मिल सकेगी ।

प्राचीनकाल में व्यक्ति का व्यक्तित्व बदलने और पीढ़ियों को परिष्कृत बनाने में अध्यात्म विद्या का, आत्म-शक्ति का प्रयोग उपयोग किया जाता रहा है ।

भविष्य में इस महती आवश्यकता की पूर्ति चैतन्य आत्मिक क्षमता द्वारा ही की जा सकेगी । इसके लिए ऐसे महामानवों का निर्माण किया जाना चाहिए जो अपनी प्रचण्ड आत्मिक ऊर्जा को विकसित करने में सफलता प्राप्त करके अपने साथ-साथ समस्त मानव जाति की ठोस प्रगति के लिए आवश्यक आनुवंशिकी परिवर्तन कर सकने में सफल समर्थ हो सकें ।

यान्त्रिकी और मान्त्रिकी का सुव्यवस्थित सुनियोजन

जनमानस को श्रेष्ठता की दिशा-धारा अपनाने के लिए अतीत के स्वर्णिम युग में ऋषि-मनीषियों ने आत्मिकी की समर्थता एवं प्रक्रिया के सहारे लोकमान्यताओं में शालीनता के तत्वों को भर देने में सफलता पायी थी और मनुष्यों में देवत्व का उदय तथा धरती पर स्वर्ग का अवतरण संभव करके दिखाया था। तब आत्मिकी सर्वसमर्थ थी । पर आज भौतिकी का ही बोलबाला है । उसकी सामर्थ्य प्रत्यक्ष है । वर्तमान में भौतिक विज्ञान की सैकड़ों धाराओं का प्रशिक्षण होता है और उसके सहारे यह बताया जाता है कि प्रकृति क्या करती और क्या चाहती है ? मनुष्य उससे क्या लाभ उठा सकता है ? इस संदर्भ में अब तक जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, वे उत्कृष्टता की आस्थाओं का ही समर्थन नहीं करते, वरन् उच्छृंखलता अपनाने की प्रेरणा देते हैं । इस आधार पर कुबेर जितनी सम्पदा और इन्द्र जितनी सुविधा बटोर लेने पर भी आंतरिक निकृष्टता मनुष्य को दुख-दारिद्रय की नारकीय आग में जलाती रहती है । इन प्रेरणाओं को उलट सकना तनिक भी कठिन नहीं है । यदि आत्मिकी और भौतिकी के सही स्वरूप को समझा और दोनों महाशक्तियों में सुनियोजन बिठाया जा सके तो सुखद परिस्थितियाँ सहज ही विनिर्मित हो सकती हैं ।

ऋषियों का समस्त चिन्तन, प्रतिपादन और समर्थन इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए हुआ, इसलिए इस समस्त विचार परिकर को ऋचा या मंत्र कहा गया और आत्मिकी को मांत्रिकी के नाम से जाना गया । उनका लक्ष्य सदा अध्यात्म और विज्ञान-आत्मिकी और भौतिकी के समन्वय का एवं उस समुद्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मंथन से प्राप्त नवनीत से जन मानस को लाभान्वित कराने का रहा है । यांत्रिकी और मांत्रिकी दोनों ही विषयों में मनीषियों ने गंभीरता-पूर्वक अनुसंधान किया था । एक का क्षेत्र स्वयं का काय कलेवर तथा दूसरे का पदार्थ जगत था । उन्होंने यह जान लिया था कि यान्त्रिकी की तरह ही मान्त्रिकी भी समर्थ है ।

यांत्रिकी एवं मान्त्रिकी के कार्यक्षेत्र अलग-अलग होते हुए भी दोनों के उद्देश्य एक हैं । प्रकृति के अन्तराल में छिपी हुई भौतिक शक्तियों को प्रत्यक्ष करने तथा प्रयोग में लाने के लिए विभिन्न उपाय-उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है । इन्हें 'यंत्र' कहते हैं और प्रयुक्त करने की विधा यांत्रिकी कहलाती है । चेतना के अन्तराल में छिपी हुई दिव्य शक्तियों के प्रकटीकरण एवं प्रयोग के लिए जिन माध्यमों को अपनाया जाता है उसे 'मंत्र' कहते हैं । यन्त्र हर प्रयोजन के लिए अलग-अलग प्रकार के बनाने पड़ते हैं, पर मंत्र में अपना शरीर और मन ही पर्याप्त माना जाता है । इन दोनों की संरचना बड़ी रहस्यमय है । साधारणतया शरीर अपने जीवन धारण और निर्वाह साधन का परिश्रम करने में लगा रहता है, पर यदि उसकी सूक्ष्म संरचना पर ध्यान दिया जाय तो एक नये विलक्षण प्रकार का ढाँचा उसके भीतर फिट किया हुआ परिलक्षित होता है । षट्चक्र, ग्रंथि संस्थान, उपत्यिकायें, प्राण प्रवाहिनी, दिव्य नाड़ियों जैसी अगणित विलक्षणताओं से भरी इस काया में ऐसा तिलिस्म सामने आता है, जिसे खोजने वाले सूक्ष्म जगत में प्रवेश करके अनेक ऐसी विलक्षणताएँ एवं विशेषताएँ उपलब्ध करते हैं, जिन्हें अध्यात्म की भाषा में सिद्धियाँ कहा जाता है ।

शरीर की संरचना पंचतत्वों एवं विभिन्न रसायनों से सम्मिश्रण से हुई है । इसलिए इसमें पदार्थ जगत में पायी जाने वाली शक्तियों का समस्त तारतम्य बीजरूप में विद्यमान रहता है । चिनगारी को प्रयत्नपूर्वक प्रचण्ड ज्वाला में प्रकट किया जा सकता है, इसी प्रकार काया में समाहित प्रकृति-शक्तियों के प्रकटीकरण में शरीर साधना के रूप में बने हुए अनेक उपचार काम दे सकते हैं । आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा, नेति, धौती, वस्ति, उपवास, तप-तितिक्षा आदि साधनों का उपयोग इसी क्षेत्र को नीरोग, समर्थ एवं विशिष्ट बनाने के लिए किया जाता है । मांत्रिकी का यह एक पक्ष है ।

अध्यात्म में मांत्रिकी का दूसरा क्षेत्र है मन । यों मस्तिष्क को भी शरीर के अन्तर्गत ग्यारहवीं इन्द्रिय माना गया है, फिर भी इसकी स्थिति ऊँची है । चेतना का घोंसला इसी में है । वह उन्मुक्त आकाश में उड़ने वाले पक्षी की तरह समस्त काया में और उसके बाहर भी अपने प्रभाव-पुरुषार्थ का परिचय देती है । इसलिए घोंसले की रचना और क्षमता अन्य अवयवों से भिन्न एवं विशिष्ट मानी गयी है । मूर्धन्य मनोवैज्ञानिकों एवं मस्तिष्कीय विद्या में निष्णात वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान निष्कर्षों में बताया है कि मस्तिष्कीय क्षमता की अभी मात्र तेरह प्रतिशत ही जानकारी मिल सकी है और सामान्य मनुष्य उस क्षमता का ६ प्रतिशत ही उपयोग करता है । शेष सब कुछ प्रसुप्त एवं अविज्ञात स्थिति में पड़ा है। यदि उसे जाना, जगाया और सक्रिय किया जा सके तो आज की तुलना में मानवी सामर्थ्यों में अनेक गुनी अभिवृद्धि हो सकती है ।

अतीन्द्रिय क्षमताओं की आश्चर्य भरी चर्चा आये दिन होती रहती है । परामनोविज्ञानवेत्ता भी अब इन विलक्षणताओं को परीक्षण की कसौटी पर कसकर वास्तविकता स्वीकारते और उनके आधार पर तथा कारण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि मनःक्षेत्र की समग्र क्षमता एवं विलक्षणता उससे कहीं अधिक है जितनी कि जानी जा सकी है । ऋषि युग के तत्वदर्शी और प्रयोक्ता इस रहस्यमय क्षेत्र की सूक्ष्म जगत की जानकारी प्राप्त करने में बहुत आगे तक बढ़ गये थे । उन्होंने शरीर और मन की रहस्यमयी परतों को खोजने और प्रत्यक्ष प्रयोग में लाने के लिए अपने ढंग से प्रयत्न किया था । इस पुरुषार्थ को सूक्ष्म जगत की खोज, व्यक्ति की विलक्षणताओं का प्रकटीकरण तथा सामर्थ्य के विशिष्ट स्रोतों की उपलब्धि कहा जा सकता है । अध्यात्म की भाषा में इसे 'साधना' कहते हैं जिसमें काय-कलेवर में सन्निहित प्रसुप्ति को जाग्रत एवं निष्क्रिय को सक्रिय किया जाता है ।

भारतीय अध्यात्म-वेत्ताओं ने विज्ञान के इस क्षेत्र को महत्व दिया था कारण कि काया का एक यंत्र ही जड़ चेतन जगत के रहस्य लोक में प्रवेश करने के लिए पर्याप्त और सहज उपलब्ध है तो फिर यांत्रिकी को सामान्य दैनिक उपचारों तक ही सीमित क्यों न रखा जाय ? उच्चस्तरीय प्रयोजनों के लिए क्यों न आत्मिकी को अपनाया जाय ? ऋषि युग को संक्षेप में साधना एवं तपश्चर्या का युग कहा जा सकता है । इस युग की महान उपलब्धियाँ आत्मिकी के विशिष्ट प्रयोगों का ही प्रतिफल है । आत्मिकी का प्रत्यक्ष परिचय साधनात्मक उपचारों में मिलता है । साधना में मंत्र शक्ति की प्रमुखता है । इसलिए उसे 'मांत्रिकी' भी कहते हैं । यांत्रिकी और मांत्रिकी का उद्देश्य एक ही है—गुह्य रहस्यों का उद्घाटन और अनुपलब्ध पर आधिपत्य ।

भौतिकी उत्पादन भर कर सकती है, पर उसका उपयोग करने के लिए दूसरे बुद्धिमान की आवश्यकता पड़ती है । यह कठिनाई आत्मिकी में नहीं है । प्रयोक्ता अपने शरीर और मन के सदा साथ रहने वाले और बिना खर्च और झंझट के यंत्रों का विशिष्ट उपयोग करके उच्चस्तरीय सामर्थ्य हस्तगत करता है । उन्हें उच्चस्तरीय इसलिए कहा जाता है कि उससे प्रयोक्ता का व्यक्तित्व देवोपम बनता है और उस सामर्थ्य से दूसरों की चेतना तक को प्रभावित-परिष्कृत किया जा सकता है, जबकि भौतिकी की समर्थता इन दोनों में से एक भी काम नहीं कर सकती । यंत्र अपने आपको अपने प्रयत्न से उच्चस्तरीय नहीं बना सकता और न वह अपने निजी प्रयत्न से दूसरे यंत्रों को अपने समान बना सकने में समर्थ होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

आत्मिकी का सर्वोपरि उपचार मंत्र है, इसलिए उसे मांत्रिकी कहा जाता है । इसके बिना अन्य साधनाएँ शारीरिक-मानसिक व्यायाम भर बनकर रह जाती हैं । चेतना के गहन अन्तराल तक पहुँचने और कुरेदने-उभारने में मंत्रोपचार का आश्रय लिए बिना काम नहीं चलता । मंत्र मात्र शब्द गुच्छक की रटन-पुनरावृत्ति तक सीमित नहीं है । यह कृत्य करना तो पड़ता है, पर उसके साथ और भी बहुत कुछ रहता है । साधक को आहार-विहार में विशेषताएँ संपन्न करके शरीर को उन उपचारों के उपयुक्त बनाना पड़ता है और मन:शक्ति को प्रखर करने के लिए उस पर लदी हुई दुर्बुद्धि का निराकरण करना होता है । मंत्रोपचार में साधक के चरित्र, चिन्तन और स्वभाव की उत्कृष्टता उभारना भी एक अनिवार्य अंग है । इसी प्रकार उस प्रयोग उपचार में एकाग्रता और तन्मयता का समावेश करने के लिए ध्यान धारण एवं श्रद्धा-भक्ति का, समर्पण का अभ्यास करना पड़ता है । व्यक्ति सत्ता के प्रत्यक्ष पक्ष को उभारने में तपश्चर्या का और परोक्ष पक्ष को परिष्कृत करने में 'ब्रह्म विद्या' का आश्रय लेना पड़ता है । इसके अतिरिक्त विधान, अनुशासन एवं उपचार-उपकरणों की इस परम्परा का ध्यान रखना होता है जो अध्यात्मवेत्ता, तत्वदर्शियों ने अपने दीर्घकालीन अनुभवों और प्रयोग-परीक्षणों द्वारा निर्धारित की है ।

अतीत की गौरव गरिमा के साथ 'आत्मिकी' की उपलब्धियाँ ही जुड़ी हुई हैं । भौतिकी ने प्रकृति शक्तियों के आवरण उघाड़कर उसे नंगा कर दिया है । आज भौतिकी की महिमा सर्वत्र बिखरी पड़ी है, इतने पर भी सामंजस्य के अभाव में दोनों संकट बनकर रह रही हैं । आत्मिकी के विधान ही लुप्त नहीं हुए, उसे प्रखर बनाने वाली तत्परता और तन्मयता का अभ्यास भी घट गया । दूसरी ओर भौतिकी पर से आत्मिकी का अंकुश उठ जाने से उसने मदोन्मत्त हाथी की तरह स्वेच्छाचार बरतना आरंभ कर दिया । अत: दोनों ही अपनी गरिमा और महिमा गँवाती चली जा रही हैं ।

पदार्थ के बिना प्राणी का निर्वाह नहीं और प्राणी के बिना पदार्थ की उपयोगिता नहीं । दोनों के समन्वय से ही जीवन और जगत का महत्व बना एवं सौन्दर्य निखरा है । पिछले दिनों भ्रान्तियों ने भौतिकी और आत्मिकी को परस्पर विरोधी सिद्ध किया । एक को समग्र और दूसरे को व्यर्थ बताया गया । इस विग्रह ने जहाँ भ्रान्तियाँ पैदा कीं वहाँ असहयोग के कारण प्रगति अवरुद्ध होकर अवगति की ओर मुड़ गयी । आज की अनेक विपन्नताओं, विपत्तियों एवं विभीषिकाओं का यही सबसे बड़ा परोक्ष कारण है । इस भ्रान्ति को मिटाया जाना चाहिए साथ ही साथ आत्मिकी का उपचार, अनुशासन एवं उत्तरदायित्व निखरकर सामने आना चाहिए । इसी प्रकार भौतिक समर्थताओं की अभिवृद्धि तो हो, पर उस पर अध्यात्म का अनुशासन अनिवार्य माना जाना चाहिए जिससे सामर्थ्यों का कोई दुरुपयोग न कर सके । विश्व की वही दो प्रमुख सत्ताएँ हैं । यदि वे आपस में लड़ती रहीं अथवा लूली-लंगड़ी पड़ी रहीं तो विनाश सुनिश्चित है और यदि अपना-अपना उत्कर्ष करती हुई सहयोगी रहीं तो विकासक्रम चरम सीमा तक उसी प्रकार जा पहुँचेगा जैसे कि पुरातन काल में मनुष्य देवता बनकर रहते थे और इसी धरती को स्वर्गीय परिस्थितियों से भरापूरा रखते थे । आज भी अध्यात्म व विज्ञान, आत्मिकी एवं भौतिकी, मांत्रिकी एवं यांत्रिकी में उपयुक्त समन्वयात्मक तालमेल की सफलता पर ही उज्ज्वल भविष्य की, नवयुग के अवतरण की संभावना टिकी हुई है ।

अन्नमय कोश को जाग्रत करें और व्यक्तित्ववान बनें

दृश्यमान शरीर की स्थूल संरचना तो अन्य प्राणियों जैसी ही है; पर उसके अन्तराल में प्रवेश करने पर पता चलता है कि पग-पग पर उसमें विलक्षणताएँ भरी पड़ी हैं । इनके स्वरूप और उपयोग को जाना जा सके, तो तिलिस्म के वे पर्दे उठ सकते हैं, जिनके भीतर रहस्यमय सिद्धियों के अनन्त भाण्डागार भरे पड़े हैं । काय-कलेवर में स्थूल क्षमताओं का आधार अत्यन्त छोटी इकाई है-'जीन्स' । यह आँख से दृष्टिगोचर न होने वाली कोशाणुओं के अन्दर पाये जाने वाली सूक्ष्मतम इकाई है । इतने पर भी उनकी क्षमता देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है और सोचना पड़ता है कि जब उसके स्थूल अंश में इतनी बढ़ी-चढ़ी सामर्थ्य है, तो उसकी सूक्ष्म सत्ता को जाग्रत कर लेने पर व्यक्ति कितना विभूतिवान बन सकता है, यह कल्पना से परे है । इसे आज की विडम्बना ही कहनी चाहिए कि हम न तो उसकी अद्‌भुत सामर्थ्य को समझ पा रहे हैं, न स्वीकार कर पा रहे हैं । फिर उसके जागरण और सुनियोजन की बात ही कैसे बने !

काया का स्थूल भाग अन्नमय कोश छोटी-छोटी कोशिकाओं से बना है, जिसके अन्दर के द्रव में एक नाभिक होता है । इस नाभिक में अनेक धागों के समान संरचनाएँ होती हैं, जिन्हें गुणसूत्र कहते हैं । इनमें कुछ छोटी-छोटी सूक्ष्म गाँठें उभरी रहती हैं । यही 'जीन्स' कहलाती हैं । यह जीन्स क्या हैं ? कैसे यह अपनी आश्चर्यजनक भूमिका पूरी करते हैं ? इस रहस्य पर से विज्ञान अभी पर्दा पूरी तरह उठा नहीं सका है । उनके संबंध में तेजी से शोध कार्य चल रहे हैं । बहुत से रहस्य खुले भी हैं, पर वह नहीं के बराबर हैं ।

'जीन्स' की सूक्ष्म-संरचना के बारे में अभी तक पूरी तरह नहीं जाना जा सका है, किन्तु यह जानकारियाँ निश्चित रूप से हो गयी हैं कि शरीर के अंग-प्रत्यंग की विशिष्ट रचना से लेकर अनेक परम्परागत स्वभावों, रोगों, गुणों के विकास की आश्चर्यजनक क्षमता इनमें है । इसके गुणों और क्रिया-कलापों को कैसे नियंत्रित किया जाय ? यह पता विज्ञान अभी नहीं लगा सका है; किन्तु यह माना जाने लगा है कि यदि 'जीन्स' के गुणों एवं कार्य-प्रणाली को प्रभावित किया जा सके, तो आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह अन्नमय कोश के छोटे-से घटक एक कोशिका के नाभिक में रहने वाले नगण्य आकार वाले कण मनुष्य के आस-पास के वातावरण से लेकर उसके विचारों और भावनात्मक विशेषताओं के संस्कार ग्रहण करने में समर्थ हैं ।

मनुष्य के विकास के संबंध में भारतीय मान्यता यही रही है कि उस पर आनुवंशिकता के साथ-साथ बाह्य वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है । पहले इस मान्यता के प्रति उपेक्षा बरती जाने लगी थी । किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया है कि अपने वातावरण तथा अपनी चेष्टाओं द्वारा व्यक्ति जिन स्वभाव-गुणों को अर्जित करता है, वे वंशानुक्रम से प्राप्त नहीं होते और न ही कोई व्यक्ति उन अर्जित विशेषताओं को इसके द्वारा अपने बच्चों को प्रदान कर सकता है, पर यह तथ्य आंशिक रूप से ही सत्य है । उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति ने अनेक भाषाएँ सीखी हैं, तो वह उस भाषा-ज्ञान को अपने बच्चों को वंशानुगत द्वारा नहीं दे सकता । बच्चों को भी भाषा-ज्ञान की प्रचलित विधियों को ही अपनाना होगा तथा मेहनत करनी पड़ेगी, पर मिथ्या यह भी नहीं है कि अपने व्यवहार और आचरण को साध और शोध लेने से जो प्रखरता पैदा होती है, उसे अन्तस् की उस इकाई तक पहुँचाया जा सकता है, जो वंशानुक्रम का प्रमुख आधार है । भारतीय मनीषी इन सूक्ष्मताओं से परिचित थे, तभी वे सुसन्तति के लिए माता-पिता का चरित्रगत, तपस्वी, संयमी होना अनिवार्य बतलाते थे । इन्द्रिय लिप्साओं जैसी कुचेष्टाओं में संलिप्त रह कर सुसंतति की आकांक्षा करते रहना आकाश कुसुम खिलाने के समान है । उसके सफल होने की कदापि कोई भी संभावना नहीं है । अन्नमय कोश की इन सूक्ष्मताओं से परिचित होकर अपना जीवनक्रम उस प्रकार व्यवस्थित कर व्यक्ति न केवल सुयोग्य सन्तति के जनक-जननी बनने की क्षमता से विभूषित होता है, अपितु उन अनेक विशिष्ट विभूतियों से सम्पन्न बनाता है, जिनसे मनुष्य शरीर की सार्थकता और गरिमा है । अन्नमय कोश की साधना स्वयं की इन क्षमताओं के विकास का ही दूसरा नाम है ।

इसीलिए आनुवंशिकता और वातावरण दोनों को समान महत्त्व दिया जाता है । आनुवंशिकता द्वारा अर्जित गुण दूसरे तरीके से कदाचित् ही प्राप्त होते हैं, पर इस बात से भी सर्वथा इन्कार नहीं किया जा सकता कि कुछ जन्मजात गुणों का आधार ही इसे माना जाता है । ये जन्मजात गुण वंशानुगत के लक्षण कहे जाते हैं । यह लक्षण गुणसूत्रों के आधार पर प्राप्त होते हैं । गुणसूत्र ही व्यक्ति की विशिष्टताओं का निर्माण करते हैं ।

'जीन्स' का व्यवहार या आचरण से सीधा संबंध नहीं होता । जीन्स शरीर के ऊतक तथा अंगों के विकास को निर्देशित-नियंत्रित करते हैं । इस प्रकार वे शरीर की क्रियाशीलता को भी नियंत्रित करते हैं । शरीर की ये क्रियाएँ स्पष्टत: व्यवहार को भी प्रभावित करती हैं और उस रूप में जीन्स का संबंध व्यवहार से भी होता है । उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति वंशानुक्रम से छोटा कद और बहरे कान प्राप्त करता है तो निश्चय ही कुछ क्षेत्रों में उसकी योग्यता सीमित हो जायेगी । इसी प्रकार शारीरिक क्रियाओं में भाग लेने वाले हजारों रासायनिक तत्व भी जीन्स द्वारा ही निर्धारित होते हैं । इन तत्वों की उपस्थिति के आधार पर सशक्तता या दुर्बलता का संबंध जीन्स से ही होता है । ऐसे अनेक लक्षण वंश परम्परा से संबंधित होते हैं ।

वंशानुक्रम के आधारभूत घटकों, 'जीन्स' और क्रोमोजोम्स के अध्ययनों के निष्कर्ष इस तथ्य के द्योतक हैं कि अन्नमय कोश में निर्माण का सूक्ष्म आधार कितना व्यापक और जटिल होता है । पौष्टिक भोजन मात्र से अन्नमय कोश सुदृढ़ नहीं हो जाता । इसके विपरीत अन्नमय कोश की सुदृढ़ता ही भोजन के रस-परिपाक का कारण व आधार बनती है । बढ़िया खाने-पहनने की चिन्ता करते रहने को ही जीवन का पुरुषार्थ मान बैठने वाले अन्नमय कोश के निर्माण के आधारों से अनभिज्ञ रह कर उसे अस्तव्यस्त और दूषित, विकृत बनाते रहते हैं और भावी संततियों को भी उस विकृति का अभिशाप दे जाते हैं ।

मूर्द्धन्य जन्तु विज्ञानी एवं दार्शनिक एस. वाल्टर स्मिथ ने इसी भारतीय विचारधारा का समर्थन करते हुए अपनी पुस्तक 'हेरेडिटरी जर्नी' में लिखा है कि बुरा चिन्तन और बुरा आचरण करने वाला समाज न सिर्फ अपनी जैसी ओछी संतानें पैदा करता है, वरन् व्यक्ति में विद्यमान उन विभूतियों को भी अंकुरित होने से कुचल कर रख देता है जो संभावित महानता के रूप में व्यक्ति में पहले से ही विद्यमान थीं ।

उल्लेखनीय है कि हर व्यक्ति में गुण-अवगुण समान रूप से विद्यमान होते हैं । यदि कोई सद्गुणी है, तो इसका कारण मात्र इतना है कि उसने अपनी उस विभूति को प्रयासपूर्वक उभार लिया है और दोष को दबा दिया, जिसके कारण वह लौकिक दृष्टि से सदाचारी प्रतीत होता है । इसी आशय का मन्तव्य प्रकट करते हुए डॉ. गोपीनाथ कविराज अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति और साधना,' (खण्ड-२) के 'सूर्य विज्ञान रहस्य' अध्याय में लिखते हैं कि सूर्य विज्ञान के माध्यम से गुलाब के फूल को गुडहल में अथवा जवा पुष्प को कमल में बदल देना प्रकट रूप से रूपान्तरण जैसा लग सकता है; पर सच्चाई यह है कि गुलाब का गुडहल कभी नहीं बनता, वरन् उसमें जो गुडहल का अच्छन्न अंश है, वह सक्रिय हो जाता है और आकाश में अपने सजातीय अणुओं को खींचकर अपनी अभिव्यक्ति करता है । इसका यह मतलब कदापि नहीं कि गुडहल से गुलाब की सत्ता बिल्कुल ही समाप्त हो गई, अपितु यथार्थता यह है कि वह अप्रकट रूप में अब भी उसमें मौजूद है । सूर्य विज्ञान द्वारा सिर्फ इतना किया जाता है कि जो प्रकट है, उसे अप्रकट बना दे और जो अप्रकट-अगोचर है उसे गोचर कर दे ।

प्रस्तुत विलुप्ति और अभिव्यक्ति के जिस सिद्धान्त से साधना विज्ञान प्राचीन काल से ही परिचित था, अब उसे 'जेनेटिक्स' भी स्वीकारने लगा है । उसका 'लॉ ऑफ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डोमिनेन्स' इसी की स्वीकारोक्ति है । इसमें इसी बात को तथ्य रूप में अंगीकार किया गया है कि जन्तु अथवा व्यक्ति में शारीरिक या व्यावहारिक रूप में जो लक्षण दिखाई पड़ते हैं, सच्चाई मात्र इतनी ही नहीं होती, अपितु इसके विपरीत गुण भी उसमें अगोचर रूप में सदा बने रहते हैं, यह कथन भी उतना ही सत्य है, जितना दिन-रात का होना ।

इस प्रकार इतना ज्ञात हो जाने के उपरान्त कि देव-दानव स्तर के लक्षण सदा साथ-साथ रहते हैं, मनुष्य का प्रयास मात्र उस पुरुषार्थ को कर गुजरना भर होता है, जो उसके अन्दर अघटित को घटित कर दे और उसे महानता की भूमिका तक पहुँचा दे । अन्नमय कोश में सन्निहित अति सूक्ष्म व उपेक्षणीय स्तर के घटक जीन्स उन्हीं लक्षणों को सँजोने वाले प्रतीक प्रतिनिधि हैं । यदि व्यक्तित्व में पाये जाने वाले ये लक्षण हेय स्तर के हैं तो यह तो इसका एक पक्ष हुआ । इसका दूसरा उत्कृष्ट और महान पहलू भी एक है, इसे सदा स्मरण रखना चाहिए और प्रयत्न एवं पराक्रम सदा उसी दिशा में गतिशील रखना चाहिए, ताकि सुषुप्ति को जागृति में परिवर्तित कर कुछ महत् और महत्वपूर्ण हस्तगत किया एवं स्वयं को अविस्मरणीय-अभूतपूर्व जैसा बनाया जा सके ।

कैसा होगा भविष्य का मानव ?

मानवी विकास से संबंधित जटिल प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए चिरकाल से ही ऊहापोह चल रही है । आदि मानव मनु थे, उनकी संतानें मनुष्य कहलाईं । स्वर्ग से आदम और हव्वा जमीन पर धकेल दिये गये और उन्होंने यहाँ आकर जो सन्तानें उत्पन्न कीं, वे मनुष्य बन गयीं । ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न की और उसी समय वृक्ष-वनस्पतियों एवं समस्त जीवधारियों के साथ सर्वश्रेष्ठ प्राणी के रूप में मानव को सृजा । इन पौराणिक आख्यायिकाओं से अब बुद्धि का समाधान नहीं होता । विज्ञान इस संदर्भ में तर्क, तथ्य और प्रमाणों को आधार मानकर खोजें करता रहा है और आगे भी इस प्रयास में संलग्न है ।

आदि मानव कहाँ और कब पैदा हुआ ? इस संबंध में अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिकों का मानना है कि एशिया एवं अफ्रीका उन प्रमुख केन्द्रों में से हैं, जहाँ मानव का विकास सबसे पहले हुआ । प्रारंभिक अवस्था में वह 'केनियोपिथेकस' के रूप में था, जो अब से बारह करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर निवास करते थे । एशिया में पाये जाने वाले 'रेमापिथेकस' नामक आदि मानव अफ्रीका से होते हुए भारत पहुँचे । 'आस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रिकेन्स' को उन्होंने 'प्रथम मानव' की संज्ञा दी है और कहा है कि अफ्रीका के सबाना प्रांत में पाये जाने वाले इस मानव प्रजाति के मस्तिष्क का अग्र और पश्चभाग विकसित था, जो इस बात का प्रमाण है कि उनकी मस्तिष्कीय शक्तियाँ तब भी उन्नत अवस्था में थीं । मूर्धन्य वैज्ञानिक लुइस एच. मार्गन ने अपनी कृति में मानव विकास के तीन स्तरों का वर्णन करते हुए बताया है कि किस तरह मनुष्य ने वन में, गुफाओं में अन्य जीवधारियों की तरह जीवन व्यतीत करते हुए आज के तथाकथित सभ्यता के युग में प्रवेश किया है ।

नृतत्ववेत्ताओं ने प्रागैतिहासिक प्रमाणों के आधार पर मानव-जाति का अस्तित्व इस धरती पर लगभग ३२ लाख वर्ष पूर्व आँका है । विकासवादियों का भी कहना है कि वह अब से दस लाख वर्ष पूर्व इस स्थिति में विकसित हो गया था कि उसे मनुष्य नाम दिया जा सके । मिश्र, भारत, दक्षिण और मध्य अफ्रीका, चीन, जावा आदि देशों में जो मानव कंकाल, खोपड़ियाँ तथा प्रयोग के जो उपकरण मिले हैं, उनसे प्रतीत होता है कि उन क्षेत्रों में मनुष्य का अस्तित्व मौजूद था । एक जगह उत्पन्न होकर उसकी पीढ़ियाँ दूर-दूर फैलीं या विभिन्न स्थानों में अपने-अपने क्रम से मनुष्य का विकास हुआ । इस प्रश्न के उत्तर में जो बातें कहीं गयी हैं उनमें यही युक्तिसंगत है कि वातावरण और परिस्थितियों ने धरती के विभिन्न भागों में जीवों के विकास को प्रोत्साहन दिया है । इसी क्रम में मनुष्य भी विभिन्न स्थानों में अपना स्वतंत्र विकास करता रहता है, अपने पूर्वजों की तुलना में उसे अपेक्षाकृत अधिक उन्नति करते रहने का अवसर मिलता रहा है ।

आदि मानव को 'होमिनिड' नाम दिया गया है. अर्द्धवानर और अर्धमानव लगभग वन मानुष स्तर का । इसी से कालान्तर में पूर्ण मानव 'होमोसेपियन्स' और विकसित मानव—'होमोइरैक्ट्स' क्रमशः बनते चले आये हैं । परिस्थितियों के अनुसार नस्लें सुधरती गयी हैं । यह नस्लें भारत, चीन, अफ्रीका और योरोप के कुछ स्थानों पर विकसित हुईं । सुप्रसिद्ध अनुसंधानकर्ता डॉ. लेविस लीके ने अफ्रीका में ओल्डुबाई नामक ३० मील लम्बी और ३०० फुट गहरी गुफा की खोज करके जो अवशेष प्राप्त किये, उससे न केवल मनुष्य की, वरन् प्रागैतिहासिक काल के अन्य प्राणियों के इतिहास की भी प्रामाणिक शृंखला मिलती-जुलती है । सबसे पुराना नर कंकाल जिसे नृतत्ववेत्ताओं ने 'जिंजानथ्रोपस' नाम दिया है, यह प्रमाणित करता है कि मनुष्य का अस्तित्व अब से १३ लाख वर्ष पूर्व भी विद्यमान था । पश्चिम जर्मनी में नियडर नदी के किनारे राइनलैण्ड क्षेत्र की एक गुफा में मिली मानव खोपड़ी मध्य सुमात्रा एवं जावा में प्राप्त अस्थियाँ, फ्रांस की लासापेल ओ सां की गुफा में मिले कंकाल, सहारा एवं इसराइल में खुदाई से उपलब्ध अस्थियों के अवशेष, चीन में डॉ. ब्लैक को मिली अस्थियाँ एवं योरोप के विभिन्न भागों से मार्स्टन द्वारा संग्रहीत पुरातन प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य अपने पूर्वजों की अपेक्षा क्रमिक विकास के पथ पर अग्रसर होता आया है । राकफेलर फाउण्डेशन की सहायता से प्रसिद्ध वैज्ञानिक फ्राज वाइडन राइसन ने मनुष्य विकास के पुरातन कालीन इतिहास सम्बन्धी जो व्यापक खोजें की हैं, उनका विवरण 'डेण्टीशन आफ साइनान्थ्रोपस', 'द एक्स्टीमिटी बोन्स आफ साइनान्थ्रोपस', 'द स्कूल आफ साइनान्थ्रोपस' नामक तीन ग्रंथों को प्रकाशित किया है । इनमें उन्होंने मानवी विकास क्रम पर अधिक प्रामाणिक प्रकाश डाला है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चार्ल्स डार्विन ने अब से एक सौ वर्ष पहले यह कहा था कि आदि मानव अफ्रीका में जन्मा था । उनकी इस मान्यता का कारण उस क्षेत्र में मिले प्रागैतिहासिक काल की खोपड़ियाँ थीं । अब अन्यत्र भी उसी प्रकार के प्रमाण मिल रहे हैं । डॉ. लीके सहित अनेक वैज्ञानिकों ने अब वैसे ही अवशेष ढूँढ़ निकाले हैं । इनके अनुसार मनुष्य का अति पूर्वज एन्थ्रोपायड एप और उसके पीछे का विकसित वंशज-'आस्ट्रैलोपिथेकस' माना जाता है । यह दोनों ही कपि-मानव थे । इसी वंश का क्रमिक विकास होता गया और उसकी न केवल आकृति, वरन् प्रकृति भी बदलती और विकसित होती चली गयी । समयानुसार वह काल आया जिसे पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार 'प्लीस्टोसीन एरा' अथवा 'मानव युग' कहते हैं । यह दस लाख वर्ष पूर्व आरंभ हुआ ।

विकासवादियों का कहना है कि प्राचीन मानव शारीरिक दृष्टि से विशालकाय और बलिष्ठ थे, पर मस्तिष्कीय चेतना की दृष्टि से मंदबुद्धि थे । जैसे-जैसे बुद्धि का उपयोग अधिक होने लगा वह बढ़ती गयी और शरीर से कम श्रम लिया गया तो वह छोटा होता गया । प्रकृति का सिद्धांत है कि जिस तत्व की उपयोगिता समझी जायेगी, आवश्यकता अनुभव की जायगी तथा प्रयोग में लायी जायेगी, वह बढ़ेगी, मजबूत होगी और जिसकी उपेक्षा की जायेगी वह निरर्थक पड़ी-पड़ी घटती चली जायेगी । साधन बढ़ने से उसका विकासक्रम यहाँ आ पहुँचा जहाँ आज हम हैं । पुराने महागज और सरीसृप—डायनासौर आज के हाथी और गिरगिट की तुलना में कई गुना बड़े और भीमकाय थे । इसके विपरीत पुराने ज्ञान कौशल, उपकरण और साधनों में इस समय तक अत्यधिक विकास हुआ है । एक ओर घटोत्तरी तो दूसरी ओर बढ़ोत्तरी का अपना क्रम चलता रहता है । इन दोनों ही पहियों पर टिका प्रगति रथ इधर-उधर के झकझोरे खाता हुआ यहाँ तक आ पहुँचा है ।

पुराना मनुष्य कैसा था, इसकी एक झलक झाँकी हिमालय पर पाये जाने वाले हिम-मानव के रूप में अभी भी यदा-कदा सामने आती रहती है । हिम-मानव का अस्तित्व अब असंदिग्ध है । उसके प्रमाण एक के बाद एक मिलते ही जाते हैं । पिछले दिनों एवरेस्ट चोटी पर सफल चढ़ाई करने वाले एडमंड हिलेरी के साथ शेरपा तेनसिंह के पिता का यह दावा था कि उन्होंने १६ हजार फुट की ऊँचाई पर चुरयो इलाके में हिममानव को निकट से देखा था । सीमेन्ट जैसा रंग, लम्बी नाक, पंजे डेढ़ फुट, आँखें छोटी, बाल तीन से पाँच इंच तक थे । वह शाकाहारी भी एवं माँसाहारी भी था । नेपाल, सिक्किम और भूटान के लोगों ने भी अपने-अपने क्षेत्रों में हिम मानव देखे हैं । कुछ दिनों पूर्व सुप्रसिद्ध नेपाली इतिहासकार श्रीनरहरिनाथ ने अपने एक लेख में हिममानव को आँखों देखा वर्णन प्रकाशित किया था, साथ ही उनके फोटो भी छपाये थे जो उन्होंने स्वयं खींचे थे । उनके अनुसार हिममानव की ऊँचाई ११ फुट थी और सीना तीन-फुट चौड़ा । वह मनुष्य से बहुत कुछ मिलता-जुलता है । शरीर पर बालों की अधिकता ही उसे सामान्य मनुष्य से अलग करती है । वह किसी को देखकर भयभीत भी नहीं होता ।

तिब्बती लामा छेभेद के मठ में एक विशालकाय अस्थिपंजर रखा हुआ है जिसकी विशेष पर्वों पर पूजा की जाती है । कहा जाता है कि यह किसी पवित्रात्मा हिममानव का कंकाल है जो उस लामा की समय-समय पर सहायता करता रहा । इस अस्थिपंजर की विशालता को देखते हुए उस क्षेत्र में हिममानव के अस्तित्व की पुष्टि होती है ।

भविष्य में मनुष्य कैसा बनेगा ? इसका उत्तर उसकी इच्छा और आवश्यकता को देखते हुए ही दिया जा सकता है । मानव चिंतन की दो दिशाधाराएँ हैं—पहली भौतिकवादी और दूसरी अध्यात्मवादी । यदि चिंतन का प्रवाह वर्तमान स्तर का भौतिकवादी ही बना रहा और पहल जीवशास्त्रियों के हाथ रही तो नये सिरे से जीव-कोषों का ढालना आरंभ करेंगे और मनुष्य की ऐसी नस्ल पैदा करेंगे जो अंतर्ग्रही परिस्थितियों में भी अपना निर्वाह कर सके । वर्तमान मनुष्यों की शारीरिक और मानसिक स्थिति को विज्ञान के आधार पर ऐसे मोड़ दिये जा सकते हैं जो भावी परिस्थितियों के साथ सुविधापूर्वक तालमेल बिठाये रह सकें । उसका शरीर ही नहीं मन भी बदला जा सके. अब इतनी शक्ति विज्ञान के हाथों आ गयी है और वह उसका उपयोग समस्त मानव जाति के साथ सत्ताधीशों की सहायता से बलपूर्वक भी कर सकता है । अन्न, वस्त्र, निवास आदि की कमी का ध्यान रखते हुए वर्तमान स्तर के मनुष्य को हटाकर उस स्थान पर नयी जाति के, नयी नस्ल के 'मिनी मनुष्य' भी बनाये जा सकते हैं जो कम जगह घेरें और खुराक भी नष्ट न करें, पर बुद्धिमत्ता एवं प्रतिभा की दृष्टि से बढ़े-चढ़े हों । बौद्धिक प्रखरता के बल पर वे बिजली, पवन आदि जैसी प्राकृतिक शक्तियों पर अपना आधिपत्य कर मनचाही दिशा में प्रगति कर सकेंगे ।

अध्यात्मवादी चिंतनधारा मनुष्य में देवत्व और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की पक्षधर है । समय ही बतावेगा कि प्रधानता भौतिकवाद की रहती है या अध्यात्मवाद की । इन दिनों दोनों पक्षों में रस्साकशी चल रही है । प्रबुद्ध अध्यात्म भी अब मनुष्य जाति को विनाश के सर्वभक्षी संकट में से निकालने के लिए अपना कर्तव्य पालन करने के लिए कटिबद्ध हो रहा है । भले ही उसकी विशालकाय प्रयोगशालाएँ दृष्टिगोचर न हों, पर निश्चेष्ट वह भी नहीं है जबकि मानवी भाग्य एवं भविष्य का भला-बुरा निपटारा होने की घड़ी सामने है, तो देव पक्ष की सत्ता भी निष्क्रिय नहीं बनी रह सकती है । मनुष्य के ईश्वरकृत सनातन रूप को अक्षुण्ण और परिष्कृत बनाये रखने के लिए अध्यात्म शक्तियाँ भी दृश्य या अदृश्य रूप से अपना काम प्रचंड वेग से कर रही हैं । अदृश्य जगत में हो रहा देवासुर संग्राम अभी भी सूक्ष्मदर्शी आँखें देख सकती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि अध्यात्मशक्ति विजयी हुई तो मनुष्य 'मिनी' नहीं 'महान' बनेगा । तीव्र परिवर्तनों की वर्तमान गति उसे महामानव, देवमानव, अतिमानव भी बना सकती है। महर्षि अरविन्द ने निकट भविष्य में मनुष्य में ऐसे अवतरणों की संभावना व्यक्त की है । अपनी कृति 'द ह्यूमन साइकल' में उन्होंने कहा है कि मनुष्य सचेतन प्राणी है और चेतना का सहज स्वभाव महत् चेतना की ओर अग्रसर होने अति चेतन बनने का है । मनुष्य अपने विकासक्रम में जीव चेतन से ऊपर उठकर अर्द्धदेवता बन चुका है और अब पूर्ण देवत्व की ओर अग्रसर है । बौद्धिक विकास के बाद अब आत्मिक प्रगति का युग आ रहा है । मानव-जाति समान हितों के बाहरी कारणों को छोड़कर आध्यात्मिक विकास के फलस्वरूप आंतरिक एकता का अनुभव करने लगी है । आर्थिक और बौद्धिक दृष्टिकोण के स्थान पर आध्यात्मिक और अतिमानसिक भावना बढ़ती जा रही है । भावी मनुष्य सुनिश्चित रूप से दिव्य-शक्तियों से संपन्न होगा जिसकी चेतना देव स्तर की होगी, जो इस धरती पर उदार आत्मीयता, स्नेह, सौजन्य और सहकार की अमृतधारा बहाने और स्वर्ग का वातावरण बना सकने में समर्थ होगा । यदि मानवी विवेक जग पड़ा तो संभावना इसी प्रकार की अधिक है । मानव से महामानव, नर से नारायण बनना ही मनुष्य की नियति है ।

समुन्नत नई पीढ़ी के लिये अध्यात्मवादी भी प्रयत्न करें

नशेबाजी का विस्तार, अणु विस्फोटों का सिलसिला, कारखानों से उत्पन्न जलवायु प्रदूषण जिस क्रम से बढ़ रहा है उसे देखते हुए यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि निकट भविष्य में इस संसार का वातावरण बहुत विषाक्त होने जा रहा है उसमें वर्तमान स्तर के व्यक्ति साँस लेकर जीवित न रह सकेंगे । इसी प्रकार नशेबाजी तथा मानसिक तनावों से उत्पन्न विक्षुब्धता के कारण नर-नारी इस स्थिति में जा पहुँचेंगे कि उनके लिए नीरोगी और दीर्घजीवी सन्तानें उत्पन्न कर सकना सम्भव ही न रहेगा । इतना ही नहीं जो बच्चे पैदा होंगे उन्हें आज से सर्वथा भिन्न स्तर के विषाक्त वायुमण्डल में ही निर्वाह करना पड़ेगा । इसके लिए यह आवश्यक है कि नई पीढ़ियों का पूरा ढाँचा ही उस स्थिति के अनुकूल बना हुआ है । जीवन तो उबालने वाली गर्मी और जमाने वाली ठण्डक में भी देखा गया है । जीवाणु दाहक तेजाबों के भीतर भी क्रीड़ा कल्लोल करते पाये गये हैं फिर कोई कारण नहीं कि अणु विकरण, विषैली हवा, गंदे जल और विकृत आहार से भी गुजारा कर सकने वाले बच्चे पैदा न किये जा सकें । यदि वर्तमान प्रगतिवाद इसी क्रम से चलता है और मनुष्य अपना अस्तित्व भी बचाये रहना चाहता है तो फिर यही एकमात्र उपाय शेष रह जाता है कि उसी स्तर के रक्त माँस से बनी पीढ़ियाँ उत्पन्न हों ।

समय जिस तेजी से आगे बढ़ रहा है और परिस्थितियाँ जिस द्रुतगति से बदल रही हैं उसे देखते हुए यह प्रश्न उभर कर सबसे आगे आ सकता है कि विकट भविष्य से जूझने वाला, भयंकर समस्याओं को सुलझा सकने वाला मनुष्य उत्पन्न होना चाहिए । वैज्ञानिक इसका समाधान प्रजनन तत्व में भारी हेर-फेर करके उसे ढूँढ़ रहे हैं । जिन रासायनिक पदार्थों से जीवन बनता है उनकी मात्रा एवं क्रम बदल देने से, वर्तमान जीव कोषों की शल्य क्रिया कर देने से ऐसा सम्भव हो सकता है । वे सोचते हैं इन सुधरे हुए जीवकोषों को माता के गर्भ की अपेक्षा किसी स्वतन्त्र परखनली में पकाया जाय ताकि माता के रक्त माँस से होने वाला भ्रूण पोषण कहीं उस कष्टसाध्य सुधार प्रक्रिया को बेकार न कर दे ।

इटंली के डा. डैनियल पैसेचि ने आलोनो की अपनी प्रयोगशाला में कृत्रिम मनुष्य भ्रूण उत्पन्न किये थे । उन्होंने एक पारदर्शी गर्भाशय बनाया था । उसमें एक रजकोश और एक शुक्रकोश का संयोग कराया तथा वे रसायन भर दिये जिनमें भ्रूण पलता है । भ्रूण स्थापित हुआ और उसी तरह बढ़ने लगा जैसा कि माता के पेट में पलता है । पहला भ्रूण २९ दिन और दूसरा भ्रूण ५९ दिन तक उन्होंने पाला । इस उपलब्धि ने संसार में तहलका मचा दिया और यह संभावना स्पष्ट कर दी कि मनुष्यों का कृषि कर्म हो सकना एक सुनिश्चित तथ्य है । डा. पैसेचि ने पहले भी यह संभावना बहुत कुछ प्रशस्त हो चुकी थी । डा. शैटल्स, डा. जानराक ने इस प्रयोग परीक्षण की सफल शुरूआत बहुत पहले ही आरम्भ कर दी थी ।

भारतवंशी अमेरिकी वैज्ञानिक डा. हरगोविन्द खुराना ने वंश तत्वों के रहस्यों का उद्घाटन करके नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया है । रोवो न्यूक्लिक एसिड (आर. एन. ए.) में जीवनोत्पादन की क्षमता है, यह बहुत पहले जान लिया गया था । डीयोक्सीरिबो न्यूक्लिक (डी.एन.ए.) का जीवन संचार में कितना हाथ है यह विश्लेषण अब बहुत आगे बढ़ गये है । ए. जी. टी. और सी. प्रोटीनों के सूक्ष्म कण किस प्रकार जीवन तत्व को प्रभावित करते हैं यह जीवविज्ञान के छात्रों को विदित हो चुका है और न्यूक्लियोटाइड की चार रसायनों की भूमिका भली प्रकार जानी जा चुकी है । सन् १९६५ से इस विज्ञान ने क्रान्तिकारी उपलब्धियाँ हस्तगत की हैं ।

ब्रिटेन की इण्टर नेशनल साइन्स राइटर्स ऐसोसियेशन के अध्यक्ष जी. आर. टेलर ने अपनी पुस्तक 'दि बायोलोजिकल टाइम बम' में जीवविज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए यह बताया है कि वह दिन दूर नहीं जब मनुष्यों की अभीष्ट जातियाँ शाक-भाजियों की तरह उगाई जा सकेंगी और उन्हें कलम लगाकर कुछ से कुछ बनाया जा सकेगा ।

न्यूजीलैण्ड के आकलैण्ड नगर में शर्ले एन. लासन नामक एक महिला ने एक साथ चार लड़कियाँ और एक लड़का प्रसव किया । इसी प्रकार स्वीडन के फालुन नगर में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक महिला करीन ओल्सेन ने भी एक साथ पाँच बच्चे जने । यह चमत्कार नव आविष्कृत हारमोनों के प्रयोग का था । जिनके गर्भाशय में पहले एक भी डिम्ब अण्ड नहीं था उनमें एक साथ पाँच अण्डों का उत्पन्न कर देना जीव-विज्ञान का एक विशिष्ट चमत्कार है ।

यह उपलब्धियाँ सम्भावना का द्वार खोलती हैं कि मानव भ्रूण का पालन किसी उपयुक्त प्रकृति की पशु मादा के पेट में पालन करा लिया जाय इससे उस बच्चे में मनुष्य और पशु के सम्मिलित गुण विकसित हो जायेंगे । इन प्रयोगों से आरम्भ में थोड़े से बच्चे बनाने में ही अधिक परिश्रम पड़ेगा । पीछे तो कृत्रिम गर्भाधान विधि से वे थोड़े ही बच्चे तरुण होकर सहस्रों बच्चे पैदा कर देंगे । एक स्वस्थ साँड़ के द्वारा जीवन भर का संचित शुक्र ५० हजार तक बच्चे पैदा कर सकता है । विशेष रासायनिक प्रयोगों से उत्तेजित मादा डिम्बों द्वारा एक साथ पाँच तक सन्तानें उत्पन्न कराई जा सकती हैं । नई मनुष्य जाति को जल्दी बढ़ाने के लिए ऐसे ही तरीके काम में लाये जायेंगे; साथ ही पुरानी पीढ़ी को समाप्त करके उन सबका बन्ध्याकरण किया जायेगा अन्यथा दोनों स्तर की सन्तानें बढ़ती रहीं तो फिर उनका शंकरत्व होने लगेगा और वे वर्ण शंकर न जाने क्या-क्या नई समस्याएँ उत्पन्न करेंगे ।

नई पीढ़ी के उत्पादक कोषों के मूल आधार तो मानवी जीवकोष ही रहेंगे, पर उनके साथ उस कृत्रिम जीवन प्रक्रिया को जोड़ दिया जायगा जो अभी-अभी मनुष्य के हाथ लगी हैं । रासायनिक सम्मिश्रण से नवीन जीवाणु बना सकने में सफलता प्राप्त कर ली गई है । पर वे अभी इस स्थिति में नहीं हैं कि पूर्ण प्राणी का स्थान ले सकें । इसके लिए उन्हें सुविकसित जीवन तत्व के साथ मिला देने से ही काम चलेगा । पुरातन और नवीन की कलम लगाकर ऐसे जीवकोष तैयार किये जाने की सम्भावना व्यक्त की गई है जो इच्छित स्तर के मनुष्य रूप में विकसित हो सकें ।

विश्वास किया जाता है कि इन प्रयत्नों के फलस्वरूप अबकी अपेक्षा निकट भविष्य में अभीष्ट परिष्कृत स्तर का मानवी उत्पादन किया जा सकेगा । शीत, उष्ण, पहाड़ी, रेतीले प्रदेशों में रह सकने योग्य स्थिति के जिस देश को जब जितने मनुष्यों की आवश्यकता पड़ा करेगी तब वहाँ उतने बच्चे उस प्रकार के पैदा कर लिये जाया करेंगे । इतना ही नहीं आवश्यकतानुसार उस मानसिक स्तर की सन्तानें भी पैदा करली जाया करेंगी जिनकी कि उन दिनों आवश्यकता पड़ेगी । कवि, साहित्यकार, गायक, शिल्पी, योद्धा, श्रमिक, वणिक, धर्माचार्य, दार्शनिकों की जब जहाँ जितनी आवश्यकता पड़े तब वहाँ उत्पन्न हो जाया करेंगे और सामाजिक सन्तुलन बनाये रखा जा सकेगा ।

अभिनव मनुष्य के निर्माण में, विज्ञान अपने ढंग से सोच और कर रहा है । उद्देश्य और पुरुषार्थ दोनों ही दृष्टि से इन प्रयत्नों की सराहना की जानी चाहिए पर साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि मनुष्य पूर्णतया भौतिक तत्वों से विनिर्मित नहीं है, जिसे विद्युत आवेशों, रस और रासायनिक प्रयोगों से मात्र प्रयोगशालाओं और उपकरणों के माध्यम से बदला या बनाया जा सके । उसमें एक स्वतन्त्र चेतना का भी अस्तित्व है । उस तथ्य को भुला नहीं देना चाहिए । खोट शरीरों में उतना नहीं जितना उस चेतना में घुस पड़ी आस्थाओं का है । मूलत: वे आस्थाएँ ही गड़बड़ा कर शारीरिक, मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न करती हैं । यह विकृतियाँ चिन्तन से उत्पन्न होती हैं न कि विद्युत आवेशों और रासायनिक पदार्थों की घट-बढ़ से । मनुष्य की वर्तमान दुर्गति का कारण वह चिन्तन भ्रष्टता ही है जिसने मनुष्य को दुर्भावग्रस्त और दुष्प्रवृत्ति संलग्न निकृष्ट कोटि का नर-पशु बनाकर रख दिया है ।

सुधार इस चिन्तन स्तर का भी होना चाहिए अन्यथा वंश परम्परा के खोट हटा देने अथवा रक्त-माँस का स्तर बदल देने से अधिक से अधिक इतना ही हो सकेगा कि शारीरिक एवं बौद्धिक दृष्टि से नई पीढ़ी समय की परिस्थिति के अनुरूप ढल जाय । आस्थाओं की उत्कृष्टता के बिना मनुष्य 'यन्त्र मानव' भर रह जायगा । उसमें महामानवों का गौरवास्पद स्तर बनाये रहने की और संसार में सद्भावनाओं का स्वर्गीय वातावरण बनाने की क्षमता कैसे उत्पन्न होगी ? और इसके बिना वह क्रियाशील किन्तु भावरहित पीढ़ी संसार के दिव्य सौन्दर्य संरक्षण, अभिवर्द्धन कैसे कर सकेगी? इसके बिना यह विश्व मात्र हलचलों का केन्द्र ही बनकर रह जायगा ।

अभिनव मनुष्य के निर्माण में आध्यात्मिक क्षेत्र का भी समुचित योगदान रहना चाहिए । जन्म और जननी का उच्च आदर्शवाद व्यक्तित्व विनिर्मित किया जाय । गर्भ काल से लेकर युवावस्था आने तक उस परिष्कृत परिस्थितियों में विकसित होने का बालक को अवसर दिया जाय तभी उसकी आत्माओं में उत्कृष्टता का समावेश होगा । भौतिक दृष्टि से नई पीढ़ी को समुन्नत स्तर का बनाने के लिए भौतिक विज्ञानी प्रयत्न करें और आत्मिक दृष्टि से उसे समुन्नत बनाने के लिए अध्यात्म विज्ञानी अग्रसर हों । तब दोनों के समन्वित प्रयत्न ही उस स्वप्न को साकार कर सकेंगे जिसमें समुन्नत स्तर के मनुष्य के निर्माण की आशा की गई है ।

कोरी कल्पना नहीं है अमैथुनी सृष्टि

डार्विन और लेमार्क आदि ने विकासवाद का जो सिद्धान्त दिया है, वह यदि सत्य नहीं है, तो पृथ्वी में मानव की उत्पत्ति को आकस्मिक और ईश्वरीय इच्छा का प्रतिफल ही कहना होगा । ईश्वरीय सत्ता और उसकी सर्वशक्तिमत्ता को काल्पनिक कहने वाले तब यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि यदि मनुष्य का प्रादुर्भाव आकस्मिक संयोग है और सर्वप्रथम ब्रह्मा का पुरुष वेष में जन्म हुआ, तो उनके द्वारा सन्तानोत्पत्ति कैसे संभव हुई ? सन्तान की उत्पत्ति के लिए पुरुष और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्त्री का समायोजन आवश्यक है, फिर अकेले ब्रह्मा जी अमैथुनी सृष्टि उत्पन्न करने में किस प्रकार समर्थ हुए ?

यह प्रश्न आज से सौ वर्ष पूर्व विवाद के घेरे में आ सकता था और विज्ञानवेत्ता इस शास्त्र कथन को कपोल कल्पना भर मानकर अमान्य कर सकते थे किन्तु अब जबकि विज्ञान इतनी प्रगति कर चुका है और अनेक अमैथुनी निर्माण करने में सफल हुआ है, तो इस पृष्ठभूमि में उपर्युक्त कथन को नकारना अनुचित ही होगा ।

ब्रह्मा जी पुरुष होकर एकाकी सृष्टि रचना में कैसे सफल हो सके ? इस प्रश्न का जवाब अमैथुनी सृष्टि के मातृक पक्ष द्वारा मिल जाता है, जिसमें केवल स्त्रियों द्वारा सन्तान पैदा करने की बात आती है । यह प्रसंग केवल भारतीयों में ही प्रचलित नहीं है, वरन् अन्य अनेक धर्मों में ऐसे आख्यान मिलते हैं, जिनमें अमैथुनी प्रजा का यह दूसरा रूप, अर्थात् बिना पुरुष के संयोग के स्त्री द्वारा सन्तानोत्पत्ति का विवरण मिलता है । सामान्य श्रेणी के व्यक्तियों के लिए यह दोनों ही प्रसंग अप्रामाणिक हैं । इस सम्बन्ध में समुचित जानकारी न होने से ही आज तक अतिमानवता के रूप में उत्पन्न हुई विभूतियाँ कलंकित हुई हैं ।

भगवान राम अपने भाइयों समेत पिता के संयोग के बिना जन्मे थे । इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि जब दशरथ की आयु ढलने लगी और उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई, तो उन्होंने गुरु वशिष्ठ के पास जाकर अपना दुःख प्रकट किया । वशिष्ठ ने तब शृंगी को बुलाकर पुत्रेष्टि यज्ञ कराया । इस यज्ञ में 'चरु' में देव शक्तियों का आह्वान कर उसे चारों रानियों को बाँट दिया गया । एक-एक भाग मिलने के कारण कौशल्या और कैकेयी को एक-एक और दो भाग मिलने के कारण सुमित्रा ने जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया ।

इस घटना ने सिद्ध कर दिया था कि देव-शक्तियों को कृत्रिम गर्भाधान द्वारा मानव आकृतियों में लाया जा सकता है । ऐसे जो भी शरीर पैदा हुए हैं, शारीरिक गुण धर्म से वह भले ही मनुष्य जैसे रहे हों, पर उनकी अतीन्द्रिय क्षमताएँ बहुत बढ़ी-चढ़ी रहीं हैं, इसलिए उन्हें देवदूत, पैगम्बर और साक्षात् भगवान माना जाता रहा । देव-उपासना के द्वारा पुरुष और स्त्री शरीरों में ऐसी शक्तियों का आवाहन, धारण और प्रजनन आज भी संभव है ।

मरियम तब कुँवारी ही थीं, जब उन्होंने महाप्रभु ईसा को जन्म दिया । मरियम की ईश्वर भक्ति और उनकी आत्म-पवित्रता सर्वविदित थी, इसलिए तब उन पर किसी ने दुराचरण का दोषारोपण नहीं किया । पीछे जिन लोगों ने सन्देह किया, वह उनकी अपनी भ्रान्त धारणाएँ थीं, महापुरुष ईसा में जो विशेषताएँ थीं वह बताती थीं कि इस आत्मा का प्रादुर्भाव वंशगत नहीं, वरन् ब्रह्माण्ड की किन्हीं अदृश्य शक्तियो से है । तभी तो वे हर किसी के मन की बात जान सकते थे, किसी भी रोगी को स्पर्श और आशीर्वाद से अच्छा कर सकते थे, कुछ ही अन्न से अनेकों की भूख मिटा सकते थे ।

कर्ण का जन्म कुन्ती के उदर से हुआ था । कुन्ती एक दिन गायत्री मन्त्र का जप कर रही थीं । महाभारत में कथा आती है कि वे उस दिन अत्यधिक ध्यानावस्थित थीं । उन्हें लगा जैसे भगवान सूर्यदेव उनके पास हैं, उन्हें स्वीकार कर रहे हैं, उनका भर्ग उनके गर्भ में प्रविष्ट हुआ और वे सचमुच गर्भवती हो गईं । कर्ण सूर्य के समान तेजस्वी और अप्रतिम दानी थे । वह क्षमता महाभारत के और किसी योद्धा में नहीं थी ।

पाण्डु ने एक बार एक ऐसे मृग के जोड़े का वध कर दिया था जो उस समय काम-क्रीड़ा में निमग्न था । पाण्डु को मृगों ने शाप दिया "तुम्हारी मृत्यु भी ऐसे ही होगी ।" इसके बाद की घटना है । उनकी दोनों रानियों—कुन्ती और माद्री ने देव-शक्तियों के आह्वान द्वारा अमैथुन पुत्रों को जन्म दिया । यम के पुत्र युधिष्ठिर साक्षात् धर्मावतार थे । इन्द्र के पुत्र अर्जुन के शौर्य और पराक्रम का कोई और जोड़ीदार नहीं था । भीम मरुत पुत्र थे । उनमें वायु से भी प्रचण्ड बल विद्यमान था । नकुल सोम के अंश से जन्म होने के कारण ज्योतिर्विद्या के अद्वितीय पण्डित थे । एकमात्र सहदेव ही ऐसे थे, जो सहवास से पैदा हुए थे और वही ऐसे थे, जिनमें अन्य भाइयों की अपेक्षा सांसारिकता का भाव और कामनाएँ अधिक थीं ।

कौरव भ्रूण संतान थे । अंजनी पुत्र हनुमान पितृहीन संतान थे । महापुरुष रामकृष्ण परमहंस का जन्म पिता के संयोग के बिना ही हुआ और उससे यह सिद्ध हो गया कि संसार में ऐसे तथ्य विद्यमान हैं, जो गुण और स्वभाव से मानव प्रकृति के होकर भी ज्ञान, शक्ति और दिव्यता की दृष्टि से बहुत विकसित होते हैं । उनसे अतीन्द्रिय सम्पर्क स्थापित कर कोई भी स्त्री या पुरुष अपने आपमें उन दैवी प्रतिभाओं को विकसित कर सकता है ।

विज्ञान ने इन संभावनाओं पर बीसवीं सदी के आरंभ से ही विचार करना शुरू कर दिया था । जब विज्ञानवेत्ताओं ने केंचुए के खण्ड को रिजेनेरेशन प्रक्रिया द्वारा एक नवीन और स्वतन्त्र केंचुए में विकसित होते देखा, तभी से उनके मस्तिष्क में यह विचार बार-बार उभरने लगा था कि इस अमैथुनी प्रक्रिया द्वारा मानव रचना संभव है क्या ? कल्पना को साकार रूप देने के लिए विभिन्न देशों में कार्य आरंभ हो गया । इस दिशा में पहली सफलता 'कोलम्बिया प्रेसबा इटेरियन मेडिकल सेण्टर न्यूयॉर्क' के प्रो. लैण्ड्रम बी. शीटल्स को मिली । उन्होंने फ्लोरिडा निवासी डोरिस डेलजियो के गर्भाशय से कुछ अण्डे निकाल कर उसे परखनली में उसके पति के शुक्राणुओं द्वारा निषेचित करने में सफलता हासिल की । भ्रूणकलल प्रयोगशाला में गर्भाशय के बाहर संतोषजनक ढंग से विकास कर रहा था । कुछ ही दिनों में उसे गर्भाशय में प्रत्यारोपित किया जाना था, किन्तु इससे पूर्व भ्रूण को विनष्ट कर दिया गया और इस प्रकार वह प्रयोग अधूरा रह गया । यदि उक्त प्रयोग पूरा हो भी जाता और उससे शिशु जन्म करा लिया जाता तो भी वास्तविक अर्थों में उसे अमैथुनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सृष्टि नहीं कहा जा सकता था, कारण कि शरीर के अन्दर भले ही डिम्ब और शुक्राणु न मिले हों, किन्तु उनके मिलन की आवश्यकता तो हर वक्त बनी ही रही, वह परखनली में मिल रहे हों तो क्या और गर्भाशय में मिल रहे हों तो क्या ? पुरुष की आवश्यकता तो सदा बनी ही रहती है । इसलिए इस प्रकार के निर्माण को मैथुनी रचना ही कहना उचित होगा, जबकि वैज्ञानिक सर्वथा अमैथुनी सृजन करना चाहते थे । इस प्रक्रिया में वे स्त्रियों के डिम्ब की जरूरत तो अनुभव करते थे, पर शुक्राणु की मदद के बिना ही किसी प्रकार उसे भ्रूण में विकसित कर मानव-निर्माण की आकांक्षा रखते थे । उनके अनुसार इस विधि द्वारा नर-नारी में से किसी की भी हू-ब-हू अनुकृति बनाया जा सकना संभव है । फ्रांसीसी जीवविज्ञानी जीन रोस्टेण्ड का इस सम्बन्ध में विचार था कि ऐसा यदि सम्भव हुआ, तो किसी की भी नकल को अनन्त काल तक बनाये रख पाना शक्य होगा । डॉ. जेम्स डेनियेली का मत है कि यदि एक ही व्यक्ति की कई-कई अनुकृतियाँ बनाकर उन्हें भिन्न-भिन्न वातावरण में रखा जा सके तो परिस्थिति और पोषण का मानवी स्वभाव पर पड़ने वाले प्रभावों का आसानी से अध्ययन किया जा सकता है । डॉ. इलॉफ एक्सेल कार्ल्सन का विश्वास है कि वर्षों पूर्व मृत ऐतिहासिक पुरुषों की प्रतिकृति इस विधि द्वारा बनायी जा सकेगी । उन्होंने आशा प्रकट की है कि गीजा के पिरामिड में सुरक्षित रखे प्राचीन मिश्री राजा तूतनखामन के मृत शरीर में अब भी इतने पर्याप्त डी.एन.ए. हो सकते हैं कि उससे राजा की 'कार्बन कॉपी' तैयार की जा सके । ज्ञातव्य है कि बहुचर्चित अँग्रेजी फिल्म 'जुरैसिक पार्क' इसी कथानक पर आधारित चलचित्र है । उसमें किसी वैज्ञानिक ने जुरैसिक युग में प्रचुर संख्या में विद्यमान महाकाय डायनासोर के कुछ डी.एन.ए. कहीं से एकत्र करने में सफलता प्राप्त कर ली थी फिर उसी अवशेष से उसने उसका 'ब्लूप्रिण्ट' तैयार कर लिया ।

यदि सचमुच ऐसा हुआ है, तो डिम्ब के संदर्भ में निषेचन का तात्पर्य मात्र इतना ही हो सकता है कि उसमें गुणसूत्रों के दो सेट विद्यमान हों । इतना होने मात्र से ही अण्डे उसे निषेचित अवस्था मानकर विभाजन प्रारम्भ कर देते हैं ! बात ऐसी ही है, तो शरीर-कोशाओं में गुणसूत्र के दोनों सेट मौजूद होने के कारण उसे कोश विभाजन के लिए प्रेरित किया जा सकता है । यह यदि सम्भव हुआ तो हर एक शरीर कोशा से एक पूर्ण मानव विकसित करना शक्य हो जायेगा । विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि इस दिशा में एक ही अड़चन सामने आयेगी कि सेल-विभाजन को प्रारम्भ और नियंत्रित करने वाला तंत्र कैसे विकसित किया जाय ? अनुसंधानकर्ताओं ने इसके भी कई विकल्प सुझाये हैं । एक के अनुसार यदि डिम्ब के कोशा-द्रव्य (साइटोप्लाज्म) को शरीर-कोशा में किसी प्रकार पहुँचाया जा सके, तो इस उलझन से छुटकारा पाया जा सकता है । कुछ शोधकर्त्ताओं का विचार है कि यदि कोई ऐसा कृत्रिम द्रव्य बनाया जा सके, जो स्वभाव में अण्ड-द्रव्य की तरह व्यवहार करे, तो समस्या का समाधान सरल हो जायेगा ।

इसके उपरान्त एक ही प्रश्न शेष रह जाता है, वह है स्त्री के प्रजनन कोशों में 'वाई' किस्म के गुणसूत्र की विद्यमानता । अब तक नारी के शरीर में इस गुणसूत्र की उपस्थिति का समर्थन नहीं हो पाया है । यदि इतना और हो जाये, तो किसी को भी यह मानने में आपत्ति शेष न रहेगी कि अमैथुनी सृष्टि का सिद्धान्त गलत है ।

अब तक विज्ञान 'वाई' क्रोमोसोम को पुरुष प्रधान मानता रहा है और नर शिशु के लिए भ्रूण में उसकी उपस्थिति अनिवार्य बताता रहा है । यह उसकी स्थूल और उथली गवेषणा है । अध्यात्म विज्ञान सूक्ष्म की गहराई में उतर कर इस बात की घोषणा करता है कि नर और नारी गुण दोनों में ही समान रूप से मौजूद हैं । अन्तर इतना ही है कि नारी में नारी गुण पूर्णरूप से अभिव्यक्त स्थिति में आ जाते हैं, जबकि पुरुष प्रधान लक्षण अप्रकट बने रहते हैं । उसी प्रकार पुरुषों में पुरुष स्वभाव व्यक्त स्तर का बना रहता है, पर यह कहना गलत होगा कि स्त्रियोचित प्रकृति उनमें है ही नहीं । है, पर वह प्रच्छन्न स्थिति में पड़ी रहती है । यदि ऐसी बात नहीं होती, तो सर्वथा क्रूर और कठोर कहलाने वाला रत्नाकर, दस्यु जीवन के उत्तरार्द्ध में दया और करुणा का प्रतिमूर्त ऋषि बाल्मीकि नहीं बन पाता और क्रौंच पक्षी के वध पर इतना विकल नहीं होता कि ग्रन्थ लिख डाले । अँगुलिमाल का जब हृदय-परिवर्तन हुआ, तो उसने अपने कलुषित जीवन को धिक्कारते हुए बुद्ध का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया । सदन, अजामिल, बिल्वमंगल सभी के साथ लगभग ऐसा ही हुआ और जब उनमें परिवर्तन घटित हुआ, तो जीवन में नारी सुलभ गुण स्पष्ट प्रकट हो गये । यों इन्हें स्त्रियोचित गुण कहने की तुलना में आध्यात्मिक स्वभाव कहना ज्यादा उचित होगा, कारण कि जब व्यक्ति का उदात्तीकरण होता है, तो उसका शील नम्र और कोमल, करुणाजनित बन जाता है । यह आमतौर से महिलाओं की नैसर्गिक प्रकृति है, इसलिए इसे स्त्री सुलभ स्वभाव कह दिया जाता है, पर ऐसी बात नहीं कि नारियों में पुरुषोचित लक्षण नहीं पाये जाते । लक्ष्मी बाई, दुर्गा बाई, पुतली बाई, चाँद बीबी और फ्रांस की स्वतंत्रता सेनानी जोन ऑफ आर्क इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं ।

बहादुरी के क्षेत्र में उन्होंने कितनी अद्वितीय भूमिकाएँ निभायीं, यह सर्वविदित है ।

गुह्यविद्या के आचार्यों का कहना है कि जब कोई योगी हवा से मिठाई उत्पन्न करता है, तो इसका यह मतलब नहीं कि वह शून्य से पैदा की गई । शून्य से तो शून्य ही उत्पन्न हो सकता है । कहा भी गया है—'नथिंग कम्स आउट ऑफ नथिंग' अर्थात् शून्य से शून्य की ही उत्पत्ति होती है । ऐसे प्रसंगों में जब कोई पदार्थ प्रादुर्भूत होता है तो इसके पीछे एक सूक्ष्म एवं सुनिश्चित विज्ञान कार्य करता है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्यात्मवेत्ताओं का मत है कि इस संसार में जितने स्थूल पदार्थ हैं, उनके कुछ अंश सूक्ष्म रूप में भी विद्यमान होते हैं । इनमें से जब जिन्हें प्रकट करना होता है, उनके सूक्ष्म उपादानों को इकट्ठा कर सक्रिय कर देने भर से अभीष्ट वस्तु उद्भूत हो जाती है । इस प्रकार किसी वस्तु के स्थूल अभाव मात्र से ही उसकी सत्ता से पूर्णत: इन्कार कर देना उचित नहीं ।

विज्ञान भी 'वाई' गुणसूत्र की स्थूल उपस्थिति पर ही शुरू से ध्यान केन्द्रित किये रहा, इसलिए यह निष्कर्ष निकाल लिया कि स्त्रियों में इस तत्व का अभाव है । यदि उसने तनिक सूक्ष्म भूमिका में उतरकर विचार किया होता, तो उसे स्पष्ट प्रतीत होता कि अनुपस्थिति जैसी कोई बात है नहीं, क्योंकि भ्रूण-कलल में पितृपक्ष का भी एक अंश होता है, इसे विज्ञान भी अब स्वीकारता है । वह यदि किसी कारणवश अदृश्य स्तर का बना रहे, तो इतने मात्र से उसके अस्तित्व से इनकार करने का कोई कारण नहीं । अगले दिनों यदि इस दिशा में शोध कार्य जारी रहा, तो संभव है कोई ऐसा तत्व ढूँढ़ लिया जाय, जो नारी-कोशिका में कार्य और स्वभाव की दृष्टि से 'वाई' गुणसूत्र से एकदम मिलता-जुलता हो । ऐसा यदि हुआ तो 'वाई' गुणसूत्र सम्बन्धी वर्तमान उलझन समाप्त हो जायेगी । तब नारी और नर की पृथक-पृथक शरीर कोशाओं से अमैथुनी सृष्टि के अन्तर्गत मनचाहा लिंग उत्पन्न कर लेना असंभव नहीं होना चाहिए ।

प्रस्तुत उदाहरण भी इस बात की पुष्टि करता है कि यदि अकेले ब्रह्मा जी ने इस संसार की रचना अमैथुनी ढंग से की, तो इसमें गप जैसी कोई बात नहीं, यह बिलकुल संभव है ।

घटना नाथसंप्रदाय के पुरोधा मत्स्येन्द्र नाथ से सम्बन्धित है । कहते हैं कि एक बार वे भिक्षाटन करते हुए अवध क्षेत्र के जायस नगर पहुँचे । वहाँ एक विधवा नि:संतान ब्राह्मणी रहती थी । उसकी व्यथा देख कर उन्हें बड़ी पीड़ा हुई । उन्होंने अपनी झोली से थोड़ी भभूति निकाल कर दी और कहा इसे खा लेने पर तुम्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति होगी । लोक-लाज के भय से ब्राह्मणी ऐसा नहीं कर सकी और उसको घर के बाहर गोबर के ढेर में फेंक दिया । बारह वर्ष पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथ पुन: जायस आये, तो एक बार फिर ब्राह्मणी के घर पहुँचे और बच्चे को दिखाने का आग्रह करने लगे । ब्राह्मणी ने सच बात बता दी । वे गोबर के ढेर के निकट पहुँचे और तनिक तीव्र स्वर में 'अलख निरंजन' का घोष किया । चूँकि आशीर्वाद देने और पुन: लौट कर आने के मध्य बारह वर्ष की अवधि बीत चुकी थी, इसलिए 'अलख' शब्द के उच्चारण के साथ ही एक बारह वर्षीय तेजपूर्ण बालक कचरे के ढेर के मध्य से प्रकट हुआ । मत्स्येन्द्रनाथ उसे अपने साथ ले गये । बाद में वही बालक गोरखनाथ ने नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

इस प्रकार ब्रह्मा जी के द्वारा अमैथुनी सृष्टि रचने संबंधी शास्त्रीय आख्यान सत्य सिद्ध होता है । विज्ञान अपने ढंग से इसकी पुष्टि करने की स्थिति में अब पहुँचता जा रहा है और अध्यात्म की यह सुनिश्चित मान्यता है कि ऐसा शक्य है । यदि कोई अन्त:करण को पवित्र बनाकर अपने अन्दर देवशक्तियों को ग्रहण धारण कर सके, तो इसकी पुनरावृत्ति आज भी हो सकती है, ऐसा निगूढ़ विद्या के आचार्यों का मत है ।

अमैथुनी सृष्टि भी उत्पन्न होती है, हो सकती है

अमैथुनी सृष्टि क्या संभव है ? अध्यात्म की तो इस संबंध में सुदृढ़ धारणा है कि यह शक्य है । विज्ञान भी धीरे-धीरे अब इस सच्चाई के समीप पहुँचता जा रहा है कि उभय-पक्षीय सहयोग के बिना भी संतानोत्पादन केवल एकपक्षीय आधार पर हो सकता है । इस पृष्ठ-भूमि में यदि उस पौराणिक मिथक पर विचार किया जाय, जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति 'ब्रह्मा' जी द्वारा हुई बतायी जाती है, तो यह बात तथ्यपूर्ण और सारगर्भित ही लगती है ।

१८९९ में डा. जैम्वीस लौव ने एक प्रयोग किया। उन्होंने समुद्र में पाये जाने वाले 'अर्चिन' नामक जन्तु की मादा के अण्ड को मैग्नीशियम क्लोराइड से उद्दीप्त किया, उसे अण्ड में गर्भाधान (फर्टलाइजेशन) बिना किसी शुक्राणु की सहायता से हो गया । इस घटना से वैज्ञानिक जगत् में तीव्र प्रतिक्रिया हुई और कृत्रिम गर्भाधान की खोज के लिए वैज्ञानिकों में सर्वत्र होड़ मच गई ।

स्त्री के अण्ड (ओवम) में गर्भाधान के लिये यह आवश्यक है कि २४ गुणसूत्र (क्रोमोसोम्स) स्त्री के और २४ गुणसूत्र पुरुष के मिलना आवश्यक हैं । पुरुष के गुणसूत्रों में एक विशेषता यह होती है कि एक ग्रुप में २४ गुणसूत्र समान होते हैं किन्तु दूसरे ग्रुप में २३ गुणसूत्र समान धर्म वाले होते हैं और एक गुणसूत्र ऐसा होता है जो शेष ४७ से किसी प्रकार भी नहीं मिलता । यह एक गुणसूत्र ही पुरुष के जन्म का कारण है, यदि स्त्री और पुरुष के वह ग्रुप मिलें, जिनमें २४ गुणसूत्र समान (इन्हें अँग्रेजी में एक्स एक्स क्रोमोसोम कहते हैं।) होते हैं तो कन्या जन्म लेगी, किन्तु यदि स्त्री के २४ गुणसूत्रों से पुरुष के गुणसूत्रों का वह ग्रुप मिले, जिसमें एक गुणसूत्र भिन्न प्रकृति का होता है (इसे वाई क्रोमोसोम कहते हैं) तो सन्तान पुत्र होगा । अर्चिन के मामले में शुक्राणु का कार्य मैग्नीशियम द्वारा सम्पन्न होना यह बताता है कि अन्तरिक्षीय शक्तियों के माध्यम से गर्भ में पितृहीन सन्तानों को स्थापित किया जा सकता है । इस बार डा. यूजीन बटाइलोन ने मेढ़क के अण्ड में पिन चुभोकर निषेचन की क्रिया के लिये प्रयास किया और इसमें उन्हें सफलता भी मिल गई । निषेचन का अर्थ है, गुणसूत्रों की संख्या दुगुनी हो जाना । यदि गुणसूत्रों की संख्या दुगुनी हो जाती है तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिना पिता की सहायता से अण्ड में सन्तान रह सकती है । इस प्रयोग में ऐसा ही हुआ, पिन चुभोने से मेढ़क का निषेचन हो गया और उसको इस कृत्रिम गर्भाधान से ही सन्तान हो गई । यह प्रयोग खरगोशों पर भी सफल हुये । १५ जुलाई १९६७ को लन्दन से प्रकाशित होने वाली 'टिटबिट्स' पत्रिका में डा. जिराल्ड मैकनाइट ने यह लिखा है कि ब्रिटेन में इस तरह का क्रमबद्ध प्रयोग चल रहा है । १०० स्त्रियों ने अपने आपको कृत्रिम निषेचन के लिये प्रस्तुत किया । जिनमें कम-से-कम ८ महिलाएँ ऐसी थीं, जिन्हें बच्चा पैदा करने में किसी प्रकार पुरुष के सहयोग की आवश्यकता नहीं पड़ी । श्रीमती एमेनेरी जोन्स ने 'मोनिका' नामक पुत्री को जन्म दिया । वैज्ञानिकों ने जोन्स की पूरी देखरेख की थी । वे इनके बारे में निर्विवाद थे, मोनिका के रंग-रूप, आकृति प्रकृति में मानवोचित गुण, धर्म एवं प्रकृति में बिल्कुल अन्तर नहीं था । वैज्ञानिक अब उन तत्वों की खोज में हैं, जो कृत्रिम गर्भाधान की क्रिया में शुक्राणु (स्पर्म) का स्थान ले सकते हैं । इन प्रयोगों की सफलता देवों या ब्रह्माण्ड स्थित चेतन शक्तियों के रहस्यों का भी उद्‌घाटन करेगी ।

अब एक ही प्रश्न शेष रह जाता है वह है, स्त्री के प्रजनन कोषों में 'वाई' किस्म के गुणसूत्र की विद्यमानता । अभी तक स्त्रियों के शरीर में इस गुणसूत्र की उपस्थिति का समर्थन नहीं हो पाया । यदि इतना और हो जाये तो किसी को भी यह मानने में आपत्ति शेष न रहेगी कि अमैथुनी सृष्टि का सिद्धान्त गलत है ।

वैज्ञानिक स्पष्ट रूप से व्याख्या भले ही न कर पायें हों, किन्तु ऐसे प्रमाण मिल चुके हैं, जिनसे पुरुषों में पर्याप्त मात्रा में स्त्रियोचित गुण और स्त्रियों में पुरुषोचित गुण पाये गये हैं । अमेरिका में इन दिनों यौन-परिवर्तन सामान्य आपरेशन की श्रेणी में आता जा रहा है । वहाँ के अखबारों में आये दिन किसी लड़की का लड़का और लड़के को लड़की की योनि में बदल जाने के समाचार छपते रहते हैं । यह आपरेशन उन दशाओं में ही सम्भव है, जबकि यौन परिवर्तन की इच्छा करने वालों में परिवर्तन के लिए उपयुक्त गुण किसी न किसी अंश में पहले से ही विद्यमान हों । इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है, जिनसे पता चलता है कि स्त्रियों में पुरुषों के और पुरुषों में स्त्रियों के तत्व भी होते हैं और यह तभी सम्भव है, जबकि उनके वंश को निर्धारित करने वाले गुणसूत्रों में भी वह विशेषताएँ विद्यमान हों । यदि यह सच है तो यह मानने में किसी को कोई आपत्ति न होगी कि प्रकृति के प्रत्येक कण में पुरुष और स्त्री दोनों स्वभाव सनातन हैं, इसी को प्रकृति और परमेश्वर की—"गिरा अरथ जल-बीच सम" अभिन्नता कहते हैं । मैड्रिड (स्पेन) में मेडिकल फैकल्टी के एक सर्वेक्षण में डा. जान केस्लर नामक एक डा. का बयान छपा है । डा. केस्लर ने बताया कि लोजानो नामक व्यक्ति की स्त्री को दो जुड़वाँ सन्तानें हुई । एक बालक था, एक बालिका । माँ के स्तनों में उतना दूध नहीं होता था, जितने से बच्चों की भूख मिट जाती । इस कारण बच्चे दिन भर रोया करते थे । संयोग से लोजानो के स्तन सामान्य पुरुषों के स्तनों से कुछ बड़े थे सो वह बच्चों को बहलाने के लिये उन्हें अपने स्तनों में लगा लेता । बच्चे दूध पीने लगते. धीरे-धीरे लोजानो के स्तनों से दूध निकलने लगा । दूध इतना निकलने लगा कि उसने अपने बच्चे को ५ माह तक दूध पिलाया, पिता का दूध पी-पीकर बच्चा खूब स्वस्थ हो गया ।

नीमेस के डा. रेवाल ने एक १५ वर्षीय बालक का परिचय छापा था, जिसके दोनों स्तन बालिकाओं की तरह के थे कुछ दिन में उनसे इतना दूध निकलने लगा कि उसे शर्म से स्तनों में रूई बाँधे रहना पड़ता था ।

जनवरी १९२४ के एक अमेरिकन समाचार पत्र में जबोटा जियोबिच नाम के २२ वर्षीय युवक का समाचार छपा है । और उसमें आश्चर्यपूर्वक स्वीकार किया गया है कि बेलग्रेड के अस्पताल में उसके पेट का आपरेशन करके १० और ५ इन्च लम्बे दो भ्रूण निकाले । इन भ्रूणों के गर्दन, छाती, हाथ, पाँव काफी पुष्ट हो चुके थे ।

यह घटनाएँ पुरुषों की हैं और यह प्रमाणित करती हैं कि पुरुषों में स्त्रियोचित संस्कार होना असम्भव नहीं । भले ही वे प्रसुप्त अवस्था में हों पर यदि वे विकसित किये जा सकें तो मनुष्य स्वयं भी अपने शरीर में अमैथुनी सृष्टि पैदा कर सकता है ।

यही बात स्त्रियों के सम्बन्ध में भी है । उनमें अनेक बार पुरुषोचित गुण स्पष्ट रूप से देखने में आते हैं, यह तभी सम्भव हो सकता है, जब पुरुषों के गुण धर्म वाले सूत्र उनके शरीर में पहले से ही विद्यमान हों ।

अमेरिका की श्रीमती टेलर जैसे वृद्ध होती गईं, उनकी दाढ़ी-मूँछ काफी बड़ी निकल आईं । इनकी दाढ़ी के बाल स्तनों के नीचे तक पहुँच गये थे । १७३२ में ड्रेसडेन में रोजिने मार्गरिट मुलर का निधन हुआ । उनके निधन का समाचार छापते हुये डा. गाल्ड और पाइले ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'एनामलीज एण्ड क्युरियासिटीज आव मेडिसिन' में लिखा है कि श्रीमती मार्गरिट मुलर के खूब घनी और लम्बी-लम्बी दाढ़ी-मूँछें थीं ।

नील्स होपर ने अपनी पुस्तक 'पुरुष-स्त्री' (मैन इनटू वुमन) में लिखा है कि ड्रेसडन (जर्मनी) के शल्य चिकित्सक डा. वार्नेक्रुत्स ईनर वेलनर नामक एक चित्रकार की शल्य-चिकित्सा की और उसे मनुष्य से स्त्री बना दिया । इसके जीवन का मनोरंजक वृत्तान्त भी इसमें छपा है । १८ अप्रैल १९४३ के 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' (जो कलकत्ता से छपता था) में जोरहाट के पास चारवाल गाँव के केवट की १७ वर्षीया पुत्री सईदी खातून के पुरुष बन जाने का समाचार छापा था ।

ड्रेसडन के शल्य चिकित्सक डा. वार्नेक्रुत्स ने जिस ईनर वेलरन नामक डेनिश चित्रकार को पुरुष से स्त्री बना दिया उसका वृत्तान्त भी कम मनोरंजक नहीं, ईनर वेलनर जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

बीस वर्ष का था तभी उसने अपने साथ पढ़ने वाली एक लड़की से गन्धर्व विवाह कर लिया । चित्रकार के हाव-भाव बहुत कुछ स्त्रियों जैसे थे यह देखकर उसकी पत्नी प्राय: मुस्कराया करती पर तब तक उनके दाम्पत्य जीवन के सुख में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया ।

एक दिन ईनर को उसकी स्त्री ने हँसी-हँसी में अपने कपड़े पहना दिये । इन कपड़ों में ईनर बिल्कुल लड़कियों जैसा लगा । पीछे उसे स्त्रियों के वेष में देखकर उसके मित्रों ने उसका नाम भी स्त्रियों का रख दिया । अब वह 'लिली' नाम से पुकारा जाने लगा । यह नाम मानो उसके लिये ही चुना गया था । अन्त तक वह स्थायी रह भी गया क्योंकि उसके भीतर सचमुच एक नारी का व्यक्तित्व छिपा था । समय बीतने के साथ-साथ वह लक्षण और स्पष्ट होते गये उसकी मानसिक प्रक्रियाएँ तो तेजी से नारी के स्वभाव में बदलती गईं । उसे अपने ही यौन-अंगों के प्रति विलक्षण आकर्षण होता । इसे कुछ लोग उसकी मूर्खता और वहम बताते । कई शल्य-चिकित्सकों ने तो उसे मूर्ख कहकर अपने यहाँ से भगा भी दिया ।

वर्तमान विज्ञान-वेत्ताओं का ध्यान प्रकृति की इस विलक्षणता की ओर गया होता कि उसके प्रत्येक कण में पुरुष और नारी भाव छिपा पड़ा है तो वे विकासवाद को यों ही गले का हार न बनाते । वे यह भी सोचते कि जिस प्रकृति में ऐसे विलक्षण सत्यों के लिये स्थान है वह स्वतंत्र पुरुष या स्त्री का अमैथुनी निर्माण भी कर सकती है ।

फरवरी १९३० में ईनर की अवस्था बहुत गम्भीर हो गई । उसने आत्म-हत्या करने तक का निश्चय किया । सौभाग्य से इन्हीं दिनों ड्रेसडेन डाक्टर वार्नेक्रुत्स पेरिस आये हुये थे । सो ईनर के कई मित्रों ने उनसे परीक्षण कराने की सलाह दी । ईनर ने ऐसा ही किया । वार्नेक्रुत्स ने उसके शरीर की परीक्षा करके बताया कि उसके शरीर के भीतर स्त्री और पुरुष दोनों के ही लक्षण हैं पर दोनों में से पूर्ण विकास के लिये किसी को भी अवसर नहीं मिल रहा इसलिये यह कष्ट-पूर्ण स्थित है । स्त्री होने की सम्भावनाएँ अधिक थीं वार्नेक्रुत्स ने उसे बर्लिन जाकर प्रोफेसर गेबहार्ड के पास शल्य-चिकित्सा की सलाह दी ।

ईनर बर्लिन चला गया । वहाँ उसका कठिन आपरेशन किया गया । आपरेशन के कुछ ही समय बाद उसकी आवाज विलक्षण ढंग से बदलने लगी । अब उसकी आवाज कोमल और सुरीली हो रही थी । आपरेशन से उसकी पुरुष योनि स्त्री योनि में बदल चुकी थी । कुछ ही महीनों में उसके स्तन भी उभर आये और इस तरह एक अच्छा हृष्ट-पुष्ट युवक कोमल भोली-भाली स्त्री में बदल गया । प्रकृति की इस विलक्षणता पर वैज्ञानिक कुछ भी प्रकाश डालने में असमर्थ हैं पर अब वे यह स्वीकार करते हैं कि प्रकृति में कोई विलक्षण मानसिक चेतना काम कर रही है और वह अपने आप ही ऐसे विलक्षण जीव और शरीर उत्पन्न करती रहती है । सम्भव है आरम्भ में मनुष्य का आविर्भाव भी ऐसी ही अमैथुनी स्थिति में हुआ हो ।

यह घटनाएँ इसलिये दी गई हैं कि उनसे स्त्री और पुरुष के प्रजनन कोषों में परस्पर एक दूसरे के गुणों का विद्यमान होना निश्चित समझा जाये । पर इससे सम्भावना मात्र सिद्ध होती है, ऐसा नहीं जान पड़ता कि प्रकृति ने अपने आप कहीं से ईंट-पत्थर जोड़कर पुरुष या स्त्री का शरीर गढ़ दिया हो । पौराणिक कथानकों पर यदि विश्वास करें तो उनके ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं जिनसे स्वतन्त्र सन्तान उत्पन्न करने के अनेक वैज्ञानिक प्रयोगों का विवरण मिलता है ।

मार्कण्डेय पुराण में अनुसुइया के तीन पुत्र—चन्द्रमा, दत्तात्रेय और महर्षि दुर्वासा के जन्म का विवरण आता है । यह तीनों ही देव शक्तियों के अंशावतार थे । उनकी चेतना का सम्बन्ध ब्रह्माण्ड की अदृश्य शक्तियों के साथ था जबकि शरीरों का निर्माण रासायनिक ढंग से हुआ था ।

कथा इस प्रकार है । एक बार सती अनुसुइया ने ऋतु स्नान किया । प्राकृतिक जीवन में रहने के कारण उनका सौन्दर्य वैसे ही अपरिमित था । स्नान के बाद तो जैसे स्वयं कामदेव ही उनके शरीर में उतर आये । रजोदर्शन के उपरान्त शृंगार किये हुये अनुसुइया को देखकर एकाएक महर्षि अत्रि का मन कामोद्वेग से विचलित हो उठा । उन्होंने मन ही मन अनुसूइया के साथ सम्भोग का वैसे ही चिन्तन किया जैसे कोई स्वप्न में किसी रमणी के साथ समागम का दृश्य देखता है । इससे उत्पन्न हुये विकार को व्यर्थ न जाने देने के लिये उन्होंने तीन प्रकार के रसायन (१) सतोगुणी—जिसे विष्णु का अंश कहते हैं (२) रजोगुणी—ब्रह्मा का अंश और (३) तमोगुणी—शिव का अंश तैयार किये । यह तीनों एक प्रकार से अण्ड थे जिनमें उन्होंने अपने वीर्य कोष स्थापित किये । भ्रूण के विकास के लिये उचित परिस्थितियाँ आवश्यक होती हैं इसलिये इन तीनों को बाद में उन्होंने अनुसुइया के गर्भ मे उसी प्रकार बिना सम्भोग के प्रतिष्ठित किया जिस प्रकार ब्रिटेन में प्रयोग करके श्रीमती एमीनेरी जोन्स के गर्भ में कृत्रिम गर्भाधान कराकर मोनिका नामक लड़की को जन्म दिया (इस आशय का विस्तृत समाचार लन्दन से छपने वाले मासिक पत्र के १५ जुलाई १९६७ के "टिट्विट्स" पत्रिका में छपा है । यह लेख श्री जिराल्ड मैकनाइट द्वारा प्रस्तुत किया गया है) । यही गर्भ अन्त में क्रमश: चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा के रूप में जन्मे । इन तीनों सन्तानों में अपने-अपने रसायनों के प्रकृति गुणों के साथ दैवी-गुणों की बहुतायत थी ।

तापस मनु की उत्पत्ति भी इसी प्रकार स्वराष्ट्र नामक राजा के प्रभाव से एक हरिणी के गर्भ से हुई थी । इनमें शारीरिक दृष्टि से पशुओं के लक्षण होते हुये भी मानसिक दृष्टि से प्रकांड पांडित्य था । नृपति स्वराष्ट्र और विद्या बहुत तप करके पाई थी । उन्होंने पंचाग्नि विद्या का गहन अध्ययन, अन्वेषण और प्रयोग किया था ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रावण स्वयं बड़ा वैज्ञानिक था । उसने भी अपनी मन्दोदरी के उदर से एक ऐसे भ्रूण को जन्म दिलाया था पर पीछे उसने उसे असफल मानकर समुद्र में फिकवा दिया । इस भ्रूण की विलक्षणता यह थी कि उसमें लाखों वीर्य-कोष एक साथ विकसित हो गये थे । गर्भ में यह संभव न था कि वे सब बच्चे हो जाते । दबे रहने के कारण अविकसित रह गये इसीलिये यह प्रयोग असफल हो गया था । यही भ्रूण बहते-बहते एक पीपल की जड़ों में अटक गया । वीर्य कोषों में जीवन तो था ही । सम्मिलित भ्रूण छितर गया और वे सब पीपल का दूध चूस-चूस कर उसी तरह बढ़ने लगे जैसे कोई एककोषीय जन्तु प्रोटोजोन विकसित होता है । आखिर समुद्री आहार ले लेकर यह सब १ लाख पुत्रों में परिणत हो गये । उनमें सबसे प्रथम बालक 'नारान्तक' नाम से प्रख्यात हुआ । शेष सब भाइयों को लेकर उसने 'विहवावल' राजधानी बनाकर स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया । यह सभी १ लाख भाई जुड़वाँ भाइयों के समान इतने मिलते-जुलते थे कि बाहर का कोई भी व्यक्ति उनमें से किसी को भी पहचान नहीं कर सकता था ।

अरब में पाये जाने वाले फायनिक्स पक्षी (यह पक्षी वहाँ रेगिस्तान में ६वीं शताब्दी तक पाये जाते रहे) के सम्बन्ध में भी एक ऐसा ही पौराणिक आख्यान आता है जिसमें यह बताया गया है कि रेगिस्तान में एक जगह राख पड़ी हुई थी । एक सन्त ने उसमें से ही युवा फायनिक्स को बनाया । ऐसा लगता है इस राख में प्रजनन वाले कोई अंश रहे होंगे और सन्त उनका जीव-विज्ञान से सम्बन्ध जानते रहे होंगे तभी उनके लिये यह सम्भव हुआ होगा ।

रघुवंश में 'युवनाश्व' नामक राजा का वर्णन आता है । वह एक बार जंगल में भटककर एक ऋषियों के आश्रम में पहुँच गये । उन दिनों इस आश्रम में इस तरह का एक प्रयोग चल रहा था । विविध रसायनों से भरा एक घड़ा यज्ञ वेदी पर रखा गया था । यज्ञ के माध्यम से ऋषिगण उसमें उतारने का प्रयत्न कर रहे थे । घड़े का अधिकांश भाग जल था (स्मरण रहे प्रोटोप्लाज्मा जिससे जीवित शरीरों का निर्माण होता है उसमें अधिकांश भाग जल का ही होता है) रात में सब लोग सो गये । युवनाश्व भी यज्ञ मंडप के समीप ही सोये थे । रात में उन्हें प्यास लगी । वहाँ कहीं पानी नहीं दिखाई दिया । प्यास रोक सकने की स्थिति में भी वे नहीं थे, निदान उस घड़े से ही लेकर जल उन्होंने पी लिया । अभिमंत्रित जल उनके उदर में गर्भ के रूप में बढ़ने लगा । ऋषियों के लिये यह और भी कौतूहल की बात हो गई थी । इसलिये वे बराबर युवनाश्व की देखभाल करते रहे । अन्त में पूर्ण विकास होने पर युवनाश्व की दाहिनी कोख की शल्य-क्रिया करके बच्चे को जीवित निकाला गया । यह बालक मान्धाता नाम से विश्वविख्यात हुआ ।

सुद्युम्न की कथा अग्नि पुराण में आती है वह पुरुष से स्त्री बन गया था । तब उसका नाम 'इला' हो गया । इला एक दिन राजकुमारी के वेष में वन-विहार के लिये निकली । सोम के पुत्र 'बुध' ने उसे देखा तो वे कामासक्त हो उठे । उन्होंने 'इला' को वहीं स्वीकार कर लिया । 'बुध' उसी प्रकार की नक्षत्रीय शक्ति है जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा । वह कोई पुरुष नहीं था । बुध की चेतना शक्ति ने ही इला के गर्भ में प्रवेश किया था । इसी अमैथुनी सहवास से पुरुरवा नामक प्रतापी राजा का जन्म हुआ । भारतीयों में गोत्रों के नाम सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी आदि नाम से चलते हैं । यह इन्हीं आख्यानों से प्रारम्भ हुये हैं अर्थात् यहाँ अमैथुनी सन्तानों का प्रचलन किन्हीं दिनों में सामान्य बात थी । यहाँ का वैदिक युग और पुराण काल दोनों ही विज्ञान की चरम प्रगति के काल थे । उन दिनों देव-शक्तियों के आवाहन और धारण द्वारा अमैथुनी सन्तानें उत्पन्न करने के सैकड़ों सफल प्रयोग हुये । यदि भारतीय अपने आपको यों प्रत्यक्ष देव-वंश का मानें तो इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं होनी चाहिए । प्रारम्भ के 'स्वायंभू' पुरुष की उत्पत्ति भी तो ईश्वरीय ही है । उस पद्धति के बीच में भी कभी भी पुनः नया रूप देना सम्भव हो पाये तो उसमें किसी को आश्चर्य नहीं करना चाहिए ।

आज विज्ञान इस दिशा में तेजी से प्रयोग कर रहा है और एक दिन आने वाला है जब प्रयोगशालाओं में बच्चे पैदा होंगे और उपरोक्त पौराणिक गाथाओं की पुष्टि करेंगे । आज जो लोग वेद-पुराणों को कल्पना की उड़ान कहते हैं वही उन्हें सत्य सिद्ध होते अपनी आँखों से देखेंगे ।

वैज्ञानिकों ने जीवित शरीर की इकाई प्रोटोप्लाज्मा का विश्लेषण कर लिया इसमें हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, सिलिकन, कार्बन, सोडियम, कैल्शियम, क्लोरीन, गंधक, फास्फोरस, मैगनीशियम और आयोडीन तत्व पाये जाते हैं उन सबको प्रकृति प्राप्त किया जाना सम्भव हो गया है, अब उसमें चेतना डालना भर शेष रह गया है जिस दिन यह भी हो जायेगा उस दिन अमैथुनी सन्तानों का निर्माण भी होने लगेगा । तब सन्तान के लिये न स्त्री की आवश्यकता होगी न पुरुष की, किन्हीं प्रकाश किरणों से कृत्रिम सन्तानें उसी प्रकार तैयार की जाया करेंगी जैसे घड़े से कुम्भज ऋषि को पैदा कर लिया गया था । पैतृक गुणों की दृष्टि से यह सन्तानें देव-शक्तियों का ही प्रतिनिधित्व करेंगी ।

कोश (सेल) जीवित पदार्थों द्वारा बनाये जाते हैं । पहले भोजन का प्रोटीन बनता है फिर प्रोटीन से 'सेल' । भोजन को निर्जीवन कहें और कोश (सेल) को जीवित तो प्रोटान को उनके बीच की इकाई कहेंगे । प्रोटीन ही सजीव 'सेल्स' का निर्माण करते हैं इसके बिना हाथ-पाँव, पेट, मुँह, दाँत आदि कुछ नहीं बन सकते । मुर्गी के अण्डों में प्रोटीन आश्चर्यजनक रूप से बढ़ता पाया गया है इससे यह आशा हो गई है कि जिस प्रकार अन्न से अमीनो एसिड और अमीनो एसिड से २४ तत्वों में बदलता हुआ जीवित कोश बन जाता है उसी प्रकार प्रोटीन सीधे भी रासायनिक क्रियाओं से तैयार किया जा सकता है । विशेषज्ञों का अनुमान है कि वंश परम्परा और विकास के लिये यह प्रोटीन की बनावट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और विशेषता ही सहायक है । कोर्नेल विश्वविद्यालय और फेलर इन्स्टीट्यूट न्यूयार्क आदि में यह पता लगाया गया है कि न्यूक्लिक तेजाब (जो लक्षण बीज 'जीन्स' के मूल होते है) और अमीनो एसिड्स दोनों के अणु मिलकर ही शरीर का भवन और चेतना तैयार करते हैं । जीवित सेल में प्रोटीन के उत्पादन का पता लगते ही अमैथुनी सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ हो जायेगा ।

मियामी (फ्लोरिडा) विश्वविद्यालय के आणविक विकास संस्थान के डा. सिडनी फाक्स और उनके सहयोगियों का ध्यान उस ओर गया है जब पृथ्वी में पहली बार जीवन का आविर्भाव हुआ होगा । उस समय तो यहाँ गैस, ताप और पानी ही रहा होगा । इसलिए एक ऐसा थियेटर तैयार करके डा. फाक्स परीक्षण कर रहे हैं जिसमें वैसा ही वातावरण रहे जैसा जीवन के प्रादुर्भाव काल में रहा होगा । उन्होंने देखा गैसों को गरम करने से अमीनो अम्ल बनते हैं । इस अम्ल को गर्म करने से वह प्रोटीनायड का रूप ले लेता है । यदि उसमें पानी मिला दें तो एक ऐसा जटिल तत्व बन जाता है जो हमारे कोषाणुओं से बहुत कुछ मिलता-जुलता है । यदि जीवित सेल की इस तरह रचना सम्भव हो गई तो केवल उस ढाँचे का निर्माण ही शेष रह जायेगा जिसमें भरकर मनुष्य, पशु-पक्षी, कुत्ते, बिल्ली कोई भी आकृति बना लेना सम्भव हो जायेगा ।

प्रकृति के यह विलक्षण रहस्य जब तक अप्रकट हैं तब तक हम स्थूलताओं से घिरे हैं । यह रहस्य पूर्णतया प्रकट होंगे तो चेतन शक्तियों की महत्ता का पता चलेगा । हम यह मानने को विवश होंगे कि चेतन शक्तियों ने जब धरती में मनुष्य का आविर्भाव किया होगा तब प्राकृतिक परिस्थितियाँ ही उनके लिये पर्याप्त रही होंगी । विकासवाद की जटिलता से गुजरकर विकसित प्राणी तैयार करना उसके लिये आवश्यक न रहा होगा ।

विकासवाद को सही परिप्रेक्ष्य में समझा जाय

संसार के इतिहास में ऐसे उदाहरण सैकड़ों की संख्या में भरे पड़े हैं, जब केवल स्त्री ने ही सन्तान को जन्म दिया है, अथवा पुरुष ने अकेले ही कोई बच्चा पैदा किया हो, स्त्री-पुरुषों में से किसी का भी सहयोग न हो ऐसे प्राणियों के जीवन की सम्भावनाएँ भी अब सत्य सिद्ध होने जा रही हैं और इस तरह विकासवाद के सिद्धान्त की धीरे-धीरे धज्जियाँ उड़ने जा रही हैं ।

१६३४ में प्रकाशित अपनी उपलब्धियों के प्रसंग में फ्रांसीसी सर्जन डा. एम्ब्रोज पारे और मान्तेग्ने ने जार्मे गार्नायर नामक एक १५ वर्षीय लड़की ने एकाएक पुरुष योनि में बदल जाने की घटना का उल्लेख किया है । जार्मे गार्नायर का जन्म विट्रो लेफ्रान्से में हुआ । वह प्राय: सुअर चराने का काम करती थी । १५ वर्ष की आयु में एक दिन वह जंगल में सुअर चरा रही थी । उसके सुअर किसी किसान के खेत में घुस गये। खेत के किनारे-किनारे ऊँची खाई थीं । जार्मे गार्नायर को पता चला तो वह भागी और रास्ते में पड़ रही खाई को लाँघने के लिये जोर से कूदी । कूदने पर उसे पेडू में जोर का धक्का लगा, जिससे यह जान पड़ा मानो उसकी आँतें फटकर बाहर निकल पड़ी हों। लड़की दर्द से चीख उठी । कुछ लोगों ने उसे उठाकर घर पहुँचाया । डाक्टर को बुलाया गया । उन्होंने परीक्षा की और बड़े आश्चर्य के साथ घोषित किया कि लड़की-लड़का बन गई है । डाक्टर ने निरीक्षण करके बताया कि उसके पेडू में पुरुष जननेन्द्रिय का विकास काफी दिनों से हो रहा था । पूर्ण विकास हो जाने पर ही धक्के से पेडू फटा और पुरुष-लिंग बाहर निकल आया । डाक्टरों ने इस बात पर आश्चर्य किया कि मनुष्य शरीर की मूलभूत इकाई में दोनों प्रकार के गुणसूत्र किस प्रकार पाये जाते हैं । इस घटना से सारे नगर में तहलका मच गया और वहाँ एक विशेष गीत गाया जाने लगा, जिसका यह अर्थ होता था—"जोर से मत उछलो नहीं तो लड़का बन जाओगी ।" इस घटना के बाद जार्मे गार्नायर का एक पादरी द्वारा विधिवत् नाम संस्कार कराया गया और तब वह जर्मे मेरिया हो गया ।

इंग्लैण्ड से छपने वाले साप्ताहिक पत्र 'पियर्सन' में एक लेख छपा जिसका शीर्षक 'कुमारी कौब कोवा से श्री कोबेक' है । कु. जेकन कोबकोवा चेकोस्लोवाकिया की प्रसिद्ध महिला खिलाड़ी थी । यौवन में प्रवेश करते समय नारियों के विशेष लक्षण उभरते हैं पर इनके साथ उलटा ही हुआ । प्रारम्भ में स्तन थे, वह छोटे होने लगे । पेडू में उन्हें प्राय: दर्द हुआ करता । डाक्टरों को दिखाने पर पता चला कि उनके शरीर में पुल्लिंग विद्यमान है, तब उन्होंने अपना आपरेशन कराया । आपरेशन में कोई कष्ट नहीं हुआ और वे विधिवत स्त्री से पुरुष बन गईं ।

यह घटनाएँ यह बताती हैं कि मनुष्य के शरीर का विकास करने वाला पहला कोश (सेल) स्त्री-पुरुष दोनों की सम्भावनाओं से परिपूर्ण था । लिंग वाले लक्षण बीज (जीन्स) में से पहले एक उभार में आया और पीछे दूसरे ने उभार कर लिया और उस मनुष्य ने इसी शरीर में यौन परिवर्तन कर लिया ।

अनेक बार शारीरिक दृष्टि से यौन परिवर्तन नहीं होता शरीर पुरुष का ही रहता है पर गुणसूत्र (क्रोमोसोम्स) स्त्री के गुणों वाले विकसित हो जाते हैं, ऐसी अवस्था में पुरुष शरीर में रहने वाली चेतना भी स्त्रियों जैसे काम करती रहती हैं, उसे उसी में अच्छा लगता है, कदाचित् यह पद्धित बदलनी पड़े तो उसमें उसे दु:ख होता है । ऐसी अनेक घटनाएँ 'मिस्ट्रीग ऑफ सेक्स' नामक पुस्तक में श्री सी. जे. एस. टामस द्वारा दी गई हैं ।

पेरिस के एक सरकारी पदाधिकारी में यह गुण असाधारण रूप में था । वह अपने ड्यूटी के घन्टों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतिरिक्त जब घर में होता तो प्राय: हमेशा ही स्त्रियों के कपड़े पहनता, वैसी ही बात-चीत करता, मुख के हावभाव भी बिल्कुल स्त्रियों जैसे ही होते । १९२६ में वह कई दिन तक घर से बाहर नहीं निकला तब पुलिस ने सन्देह में घर का ताला तोड़ा । उसने आत्म-हत्या कर ली थी । मृत्यु के कारणों का तो पता नहीं चला पर छत से लटकने तक वह जो वस्त्र पहने था, उससे उसकी नारी-वृत्ति का गहरा परिचय मिलता है । अन्य वस्त्रों की बात तो दूर रही, उसने अन्डर-वियर और मोजे दस्ताने भी स्त्रीयों के ही पहने थे । बाल भी वह स्त्रियों जैसे ही सँजोये हुये था ।

१९२३ में अमेरिका में एक दुर्घटना घटी । टेस्मर नामक दम्पत्ति पर किन्हीं बदमाशों ने आक्रमण कर दिया । आक्रमणकारियों में एक स्त्री भी थी, जिसे श्रीमती टेस्मर ने पहचान लिया । प्रयत्न करने पर पुलिस ने एक शोफर और उसकी पत्नी को गिरफ्तार कर लिया । गिरफ्तार स्त्री को श्रीमती टेस्मर ने पहचान भी लिया । जेल में रह रही वह स्त्री तब लोगों के आश्चर्य का कारण बनी, जब लोगो ने देखा कि उसके दाढ़ी मूँछें निकलना प्रारम्भ हो गईं । पुलिस ने जाँच की तो पता चला कि वह बदमाश पुरुष है । उसे स्त्री वेष, हावभाव इतने पसन्द थे कि वह छोटी अवस्था से ही स्त्रियों जैसे रहता, इस पर घर वालों ने उसे निकाल दिया । १९१२ में उसने इन्डियाना के एक पुरुष से विवाह कर लिया । उसका गला बिल्कुल स्त्रियों जैसा था, इसलिये उसे कई बार स्त्रियों के मध्य गाने का भी अवसर मिला । १२ वर्ष बाद उसने एक लड़की से भी विवाह कर लिया इस पर उसका पति नाराज हुआ पर बाद में तीनों साथ-साथ रहने को सहमत हो गये । टामस नामक लेखक ने इस व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखा है, उसमें पुरुषत्व के कोई भी लक्षण नहीं थे ।

इंग्लैण्ड की 'बैबीजेम्स' तो इतिहास की एक मनोरंजक घटना बन गई थी । बैब्रीजेम्स को पुरुषत्व के हावभाव बहुत पसन्द थे । उसने अपना स्त्रीत्व आजीवन छिपाये रखकर हास्पीटल में डाक्टर का काम किया । कालेज के दिन भी उसने पुरुष वेश में ही बिताये । १८१९ में वह स्टाफ सर्जन के रूप में भरती हुई और उन्नति करते हुए, १८५१ में डिप्टी-इन्सपैक्टर जनरल, १८५८ में इन्स्पेक्टर जनरल के उच्च पद तक पहुँची । जब उसकी मृत्यु हुई तब जाकर पता चला कि आजीवन पुरुष का सफल अभिनय करने वाला इन्स्पेक्टर जनरल पुरुष नहीं, स्त्री था ।

इतिहास के यह पृष्ठ हमें यह सोचने के लिये विवश करते हैं कि शरीर का आत्मा के लिये कोई महत्व नहीं । चेतना मन और विचार हैं और वह इच्छानुसार स्त्री या पुरुष हो सकता है । इच्छाएँ यदि अविकसित रहें तो परिवर्तन एक शरीर में से दूसरे शरीर में हो सकता है ।

कुछ दिन पूर्व अमृत बाजार पत्रिका में एक समाचार छपा था कि हैदराबाद (सिन्ध) की शेरपुर रियासत में गम्बात् के पास के छोटे से गाँव में काबू नामक १८ वर्षीय लड़का अचानक लड़की हो गया । इसे अब स्त्रियों की तरह मासिक धर्म भी होने लगा है और वह स्त्री के समान गर्भ धारण करने की क्षमता से भी परिपूर्ण है, जबकि जन्म से उसके शरीर में ऐसी कोई सम्भावनाएँ न थीं ।

विकासवाद में अंगों और तन्तुओं के लुप्त होकर दूसरे जीवों में क्रमिक रूप से विकसित हो जाने की समय-सारणियाँ बड़ी लम्बी हैं । कई-कई परिवर्तन तो एक-एक लाख वर्ष में होते बताये गये हैं, जिनकी सत्यता कभी भी प्रमाणित नहीं हो सकती । उस समय का कोई जैविक (बायोलाजिकल) इतिहास उपलब्ध न होने से यह नहीं कहा जा सकता कि विकास की कल्पना सत्य होगी ही । हड्डियों और ढाँचों के बारे में समय सम्बन्धी मान्यताएँ गलत भी हो सकती हैं पर यह प्रत्यक्ष घटनाएँ तो इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि आत्म-चेतना अपने आप में विलक्षण शक्ति है और वह इच्छानुसार शरीर धारण करने में समर्थ है । कई बार इच्छाएँ स्वयं अनिर्णीत रह जाती होंगी और इस तरह वह ऐसे गुणसूत्रों में फँस जाती होंगी, जिनमें स्त्री व पुरुष दोनों के वंश-बीज विद्यमान रहते होंगे । शरीरों में आकस्मिक परिवर्तन इसी आधार पर होना सम्भव है । नील्सहोपर ने 'मैन इन्टू वूमैन' नामक ग्रन्थ में ऐसी अनेक घटनाएँ प्रस्तुत की हैं और अपनी सम्मति देते हुये लिखा है—'यह घटनायें सचमुच मानव-जीवन के अस्तित्व को और भी रहस्यपूर्ण बनाती हैं । लगता है कोई ऐसी सत्ता प्रकृति में काम कर रही है, जो अपने आप व्यक्त होने में समर्थ है । उसका स्वरूप और शरीर विचारमय ही हो सकता है।'

ऐसी घटनाएँ भारतीय संस्कृति के इतिहास में भी कम नहीं हैं । महाभारत में शिखण्डी के स्त्री से पुरुष में परिवर्तित होने का वर्णन आता है । पांचाल नरेश द्रुपद को रुद्र के आशीर्वाद से एक कन्या हुई । रुद्र की आज्ञानुसार राजा द्रुपद और उनकी रानी के अतिरक्त यह भेद और किसी को भी प्रकट न हुआ। शिखण्डी का पालन-पोषण राजकुमारों की तरह ही हुआ । युवावस्था में पदार्पण करते ही राजा द्रुपद ने शिखण्डी का विवाह दशार्ण के सम्राट् हिरण्यवर्मा की पुत्री से कर दिया । किन्तु राजकुमारी को शिखण्डी के सम्पर्क में आते ही पता चल गया कि वह स्त्री है । उसने यह बात अपने पिता तक पहुँचा दी । शिखण्डी को इस बात का पता चला तो उसने दु:खी होकर गृह-परित्याग कर दिया, वह वन मे जाकर तप करने लगा । तप करते हुए शिखण्डी की व्यथा स्थूणाकर्ण नामक यक्ष को मालूम हुई । उसने शिखण्डी की शल्य चिकित्सा की और उसे पुरुष बना दिया ।

सूर्य पुत्र वैवस्वत मनु के पुत्र का नाम सुद्युम्न था । सुद्युम्न एक बार जंगल की ओर गये । वहाँ शिव व पार्वती एकान्तवास में थे । सुद्युम्न को उस समय स्त्रियों की तरह काम-वासना भड़की । यों पौराणिक कथा यह है कि शिव ने शाप देकर उसे स्त्री बना दिया पर ऐतिहासिक तथ्य यह है कि शिव ने औषधि द्वारा उसके प्रसुप्त नारीत्व के लक्षणों को जाग्रत कर दिया था । इससे वह लड़की बन गया और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसका नाम 'इला' पड़ गया महान् सौन्दर्यशाली राजकुमार पुरुरुवा का जन्म इस यौन परिवर्तित इला के गर्भ से ही हुआ था ।

यह पौराणिक गाथाएँ पढ़कर लोग भारतीय धर्म और उसकी आख्यायिकाओं को कल्पना की विलक्षण उड़ान कहकर हँसते और टालते हैं पर तब वही बात विज्ञान और वर्तमान प्रमाणों के द्वारा सत्य होती दीख पड़ती है, तब वेदांग और पुराणों की वैज्ञानिकता को स्वीकार नहीं किया जाता । वही बात भारतीय संस्कृति और अध्यात्म के लिये अन्ध-विश्वास बन जाती हैं, जबकि विज्ञान के लिये सत्य और तथ्य । बातें दरअसल दोनों ही एक हैं ।

इंग्लैण्ड में मिडिल ग्रेट स्ट्रीट यारमाउथ नगर की दो बहिनों की घटना बड़ी विलक्षण है । इनका नाम था मार्जोरी और डेजीफेरो । मार्जोरी तब १३ वर्ष की थी और एक आर्ट-कालेज में पढ़ती थी, तभी उसे अपनी आवाज कुछ भारी और शरीर में विचित्र परिवर्तन से अनुभव हुये । विवश होकर उसे डाक्टरों की शरण लेनी पड़ी । डाक्टरों ने उसके शरीर में पुरुषत्व के लक्षण उभरते देखे । लन्दन के एक अस्पताल में उसकी चिकित्सा हुई और वह लड़की से लड़का बन गई । अब उसका नाम मार्क रखा गया ।

मार्क और डेजीफेरो कुछ दिन भाई-बहिन की तरह रहे पर इसी बीच मार्क वाली शिकायत उसे भी उठ खड़ी हुई और उसका भी डाक्टरों को आपरेशन करना पडा । मार्क की तरह डेजीफेरो भी लड़का बन गई । उसका नाम डेविड रखा गया, दोनों बहिनें—दो भाई हो गये और दोनों ने बाद में पुनः लड़कों के स्कूल में साथ-साथ शिक्षा ग्रहण की ।

इस घटना के पीछे भी वही रहस्य है, जो उन पौराणिक घटनाओं के पीछे । इन्हें कोई भी व्यक्ति अन्धविश्वास नहीं कहता, क्योंकि यह आधुनिक हैं । यदि यह घटनाएँ सत्य हैं तो भारतीय अध्यात्म की आख्यायिकाओं को भी सत्य ही मानना पड़ेगा । पुराणकाल विज्ञान के विकास का चरमकाल था, उस समय इन घटनाओं द्वारा वही बातें प्रमाणित की गई थीं, जो आज की जा रही हैं । अमैथुनी सृष्टि वस्तुतः आत्म-चेतना का यथार्थ इतिहास है, उसमें गहन आध्यात्मिक रहस्यों का प्रवेश है, जिन्हें विज्ञान क्रमशः खोलता चला जा रहा है ।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकासवादी अवधारणा चेतनात्मक हो

गिरा हुआ देवता या उठा हुआ पशु ?

मनुष्य का विश्लेषण दो प्रकार से किया जाता है, धर्म उसे 'गिरा हुआ देवता' कहता है और विज्ञान उसे 'उठा हुआ पशु' बताता है । देखना यह है कि दोनों प्रतिपादनों में यथार्थता किसके साथ है ।

आदम और हव्वा स्वर्ग में रहते थे उन्होंने शैतान के बहकावे में आकर अभक्ष्य खाया और जमीन पर आ गिरे । उनके वंशज मनुष्य कहलाए । देवता और अवतारों का धरती पर उतरकर मनुष्य शरीर धारण करना और सन्तानोत्पादन में संलग्न होना । प्राय: इसी से मिलती-जुलती कथा गाथाएँ समस्त धर्मों में प्रचलित हैं, जिनमें आदि मानव के अस्तित्व का आरम्भ किस प्रकार हुआ, इस जिज्ञासा का समाधान किया गया है । यह मान्यताएँ बताती हैं कि मनुष्य गिरा हुआ देवता है । स्वर्ग लोक के देवता अपने इस गिरे हुए साथी की सहायता करने के लिए समय-समय पर अपने सहृदय सहायक का परिचय देते रहते हैं ।

भौतिक विज्ञान की प्रचलित मान्यताओं के अनुसार आदि जीव की उत्पत्ति पृथ्वी के रासायनिक पदार्थों के पानी तथा सूर्य की गर्मी के साथ समन्वय होने के कारण सम्भव हुई । तब वह पानी में तैरने वाला एक जल कीटक मात्र था । उसमें जड़ पदार्थों से अपने को स्वतन्त्र करने की और आगे बढ़ने की तीन विशेषताएँ थीं— (१) भोजन करने और बढ़ने की शक्ति, (२) घूमने-फिरने की शक्ति, (३) अपने समान दूसरे प्राणी को जन्म दे सकने योग्य प्रजनन शक्ति । इनसे भी बढ़कर थी उसके 'अहम' के साथ जुड़ी हुई इच्छा-शक्ति ।

चेतन जीव प्रेरणा को प्राणि-जगत के विकास का मूलभूत आधार माना गया । वस्तुत: यही जड़-चेतन की विभेद रेखा है अन्यथा जड़ में भी हलचल होती है । रासायनिक अणु अपने ढङ्ग से विकास वृद्धि और मरण परिवर्तन का क्रम चलाते हैं । अन्तर इतना ही होता है कि उनमें इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति का उपयोग, अभिवर्द्धन एवं नियन्त्रण करने की स्वतन्त्र चेतना नहीं होती । प्रकृति प्रेरणा के वे खिलौने मात्र होते हैं । चेतन जीव में विभिन्न हलचलें तो होती ही हैं । उसमें प्रकृति प्रेरणाओं के अनुरूप अथवा प्रतिकूल चलने का स्वतन्त्र सङ्कल्प-बल भी होता है । चेतन इसी का नाम है । जीव सत्ता का उद्गम इस चित्तशक्ति को कहा जा सकता है ।

इस संसार में जीव कैसे उत्पन्न हुआ और उसका विकास किस रूप में हुआ ? इस सन्दर्भ में कितनी ही मान्यताएँ प्रचलित हैं । एक कथन यह है कि पृथ्वी में जब उष्ण गैस मात्र थी तब उसने सूर्य की परिक्रमा करते हुए जीवन तत्व का उद्भव किया था । ध्रुवों की अन्तिम सीमा को छोड़कर उसकी ऊपरी परत के नीचे यह जीवन जमा होता गया और जब जल तथा ताप का सन्तुलन हुआ तो वह जीवन नन्हें-नन्हें कृमि कीटकों के रूप में विकसित होने लगा । उसी का क्रमिक विकास वर्तमान प्राणियों के स्तर तक होता चला आया है । अभी भी विषुवत रेखा के समीपवर्ती उष्ण प्रदेशों में जीवों की बहुलता है । इसे सूर्य और धरती की समागम स्थली कहा जाता है ।

प्रो. जे. वी. एस. हाल्डेन ने अल्ट्रा वायलेट किरणों के विकरण द्वारा उच्च अणु भार वाले प्रांगारिक यौगिकों का संश्लेषण होना जीवन का प्रारम्भ कारण माना है । सर आलिवर लाज का कथन है कि ईथर तत्व के साथ जीवन का अनन्त स्पन्दन अनादि काल से है । उसका आरम्भ काल वह है कि जब से जीवधारियों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता के रूप में उसकी अनुभूति की । जुलियन हक्सले का जड़ के विकास से चेतन की उत्पत्ति सिद्ध करने का प्रयास उपहासास्पद है । चेतना की सत्ता इस सृष्टि में अनादि काल से विद्यमान है । जड़ को वर्तमान रूप तक घसीट लाने का श्रेय उस चेतना को ही दिया जाना चाहिए ।

नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो. हेनरी वर्गसन ने अपने ग्रन्थ 'क्रिएटिव इवोल्यूशन' में लिखा है । जीवन एक प्रचण्ड शक्ति है जिसने आरम्भिक ऊबड़-खाबड़ पदार्थ सम्पदा को एक व्यवस्थित और उपयोगी स्तर तक पहुँचाने का अथक प्रयत्न किया है । जार्ज वर्नार्डशा ने अपनी पुस्तक 'मैन एण्ड सुपर मैन' में जीवन तत्व को लाइफ फोर्स के रूप में प्रस्तुत किया है । वे कहते हैं जीवन सत्ता को प्रकृति की समस्त शक्तियों में सर्वोपरि स्तर की स्वतन्त्र कर्तृत्व सम्पन्न सामर्थ्य कहा जा सकता है । नैपोलियन की बात लगती तो उपहासास्पद है पर तथ्य उसमें भी है वह कहता था जीव का जन्म कीचड़ से हुआ है । कमल जैसा सुन्दर पुष्प भी तो कीचड़ में ही जन्मता है । जल, मिट्टी और ऊष्मा के संयोग से जीव की उत्पत्ति मानने वाले प्रकारान्तर से नैपोलियन की बात को ही पुष्ट करते हैं । क्या सचमुच ही हमारी आदि जन्मदात्री कीचड़ है ? क्या हम कीचड़ में सने हुए जन्मे और अभी तक उस कीचड़ से उबर नहीं पाये हैं ? यह एक विचित्र पहेली है, दार्शनिकों के लिए भी और भौतिक विज्ञानियों के लिए भी ।

कीचड़ में से कीड़ा, कीड़े से मछली, मेढ़क, सरीसृप, पक्षी और स्तनपायी जीवों का उद्भव—कैसा है यह विचित्र संयोग ? जिसे न स्वीकार करते बनता है और न अस्वीकार करते । प्रथम स्तनधारी 'मैमल' ही क्या हमारा वंश पूर्वज है स्पीसीज वंश के स्तनपायी वनमानुष के रूप में हम विकसित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुए और पिछली टाँगों के सहारे खड़ा होना, सीधे चलना सीखा ! दो हाथों को पैरों के प्रयोजन से मुक्त करके उन्हें विविध कर्म कर सकने योग्य बनाया । यह इतनी बड़ी जीवन क्रान्ति उन दिनों न जाने कितने चक्रों को पार करते हुए सम्भव हुई होगी ? इस खड़े होने की प्रक्रिया ने वनमानुष और गृह मानुष के बीच बनावट का अन्तर किया है, ऐसा शरीर शास्त्री मानते हैं ।

डार्विन ने अपनी पुस्तक 'ओरिजिन आफ स्पीसीज' में उन पुरानी मान्यताओं को झुठलाया है जिनमें यह कहा जाता रहा है कि प्रत्येक प्राणी अपने वर्तमान स्वरूप में ही अवतरित हुआ है । उन्होंने जीव के क्रमिक विकास को अपने प्रख्यात 'विकासवाद' दर्शन में अनेकों कारण और प्रमाण प्रस्तुत करते हुए सिद्ध किया है । मनुष्यों का पूर्वज वे होमोसैपियन जाति के नर-वानर को मानते हैं । एफ गुरिल्ला चिंपेंजी, आरांगओटान, गिव्वन आदि सब उसी नर-वानर के वंशज हैं । उनके गोत्र ही अलग-अलग हैं ।

मनुष्य का बाप बन्दर था, यह बात गले न उतरने पर एक बार आक्सफोर्ड के लार्ड विशप सेम्युअल विल्वर फोर्स ने जीव विज्ञानी टामस हक्सले से व्यंगपूर्वक पूछा वनमानुष आप माता के पक्ष में हैं या पिता के पक्ष में ? इस पर हक्सले ने उत्तर दिया—मुझे इस बात की लज्जा नहीं कि अपने बाबा या दादी वनमानुष थे । मुझे लज्जा उन पर आती है जो अहंमान्यता के कारण सच्चाई को पद-दलित करने के लिए तुले हुए हैं । उन दिनों सचमुच ही यह एक विचित्र प्रतिपादन समझा गया था कि प्राणियों ने क्रमिक विकास किया है और मनुष्य बन्दर की औलाद है । धार्मिक और राजनैतिक क्षेत्रों में इस प्रतिपादन का प्रबल विरोध हुआ था । सन् १८७० में प्रशिया (जर्मनी) की सरकार ने आदेश निकाल कर प्रतिबन्ध लगा दिया था कि विकासवाद की बात किसी शिक्षा में—संस्था में न पढ़ा जाय । टिनेसी (अमेरिका) में तो एक अध्यापक पर यह मुकद्मा भी चला था क्योंकि उसने छात्रों को विकासवाद के सिद्धान्त पढ़ाये ।

मनुष्य और वानर की शरीर रचना में अद्भुत समानता है । इतना ही नहीं मानसिक स्तर पर भी वे दोनों बहुत कुछ मिलते हैं । शान्ति, चिन्ता, हँसी, रुदन क्रोध, उत्तेजना, विरक्ति जैसी कितनी ही सम्वेदनाएँ ऐसी हैं जो मनुष्य के अतिरिक्त केवल वानरों में ही पाई जाती हैं । उनसे पारस्परिक सहयोग, स्नेह, वात्सल्य जैसी प्रवृत्तियाँ भी अन्य जीवों की तुलना में कहीं अधिक विकसित और स्थिर हैं ।

जीवविज्ञानी मनुष्य को पंक-प्रजनन कृमि-कीटक का विकास एवं बन्दर की औलाद मानते हैं । क्या उनका प्रतिपादन मिथ्या है ? दुष्प्रवृत्तियों में उसका रुझान और उत्साह देखते हुए लगता है सम्भवत: यही ठीक है कि मूलत: मानव प्राणी नर-पशु मात्र है । अन्यथा विवेकवान और दूरदर्शी होते हुए भी ऐसी गतिविधियाँ क्यों अपनाता जो उसके स्वयं के लिए और समस्त समाज के लिए अहितकर ही सिद्ध होती हैं ।

दर्शनशास्त्री मनुष्य को गिरा हुआ देवता मानते हैं । यह निरर्थकता है ? नहीं, यदि ऐसा न होता तो उसके अन्त:करण में ऊँचा उठने और श्रेष्ठ सिद्ध होने के लिए सत्कर्म करने की ललक क्यों पाई जाती ? आदर्शवादिता की, उत्कृष्टता की उमंगों का उठना और भौतिक लोभ, लिप्सा को छोड़कर परमार्थ प्रयोजनों के लिए त्याग, बलिदान का साहस जुटाना, अकारण नहीं हो सकता । परोक्ष के लिए प्रत्यक्ष की हानि सहने की उमंगें उठना मानवी अन्तरात्मा की अपनी विशेषता है । यदि वह आदि काल में देव न रहा होता तो रह-रहकर वे दिव्य आकांक्षाएँ उसे क्यों बेचैन किये रहती हैं ? देवोपम जीवन जीने के लिए क्यों उसे कोई निरन्तर व्यथित करता रहता है ?

फिर दोनों में से कौन गलत है । हम आदि में नर पशु थे या नर-नारायण ? गहराई से विचार करने पर प्रतीत होता है कि शारीरिक दृष्टि से मनुष्य ने नीचे से ऊपर को प्रगति की है और आत्मिक दृष्टि से ऊपर से नीचे गिरा है । इन दिनों में वह अधर में लटक रहा है । असमंजस के साथ वह एक चौराहे पर खड़ा है और सोचता है कि नर-वानर, नर-पशु, नर-कीटक बनने के लिए उसे वापिस लौटना चाहिए अथवा नर-देव बनने कि दिशा में अपने चरण पीछे लौटाने चाहिए । आत्म-पक्ष कहता है—तुम देव थे देवत्व की ओर पीछे लौटो । देह-पक्ष कहता है कृमि कीटकों का जीवन अधिक स्वच्छन्द और निरापद है । उसी मूल उद्गम की ओर लौट कर चैन की वंशी बजानी चाहिए ।

मनुष्य के उद्भव, विकास और वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में आनुवंशिक विज्ञान द्वारा भी कर्तव्य सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाते रहे हैं ।

आनुवंशिकता या इच्छाशक्ति

आनुवंशिकी-विज्ञान के अन्तर्गत पिछले दिनों यह सिद्ध किया जाता रहा है कि प्राणी अपने पूर्वजों की प्रतिकृति होते हैं । माता-पिता के डिम्ब-कीट और शुक्र-कीट मिल-जुल कर भ्रूण-कलल में परिणत होते हैं और शरीर बनना आरम्भ हो जाता है । उस शरीर में जो मन:चेतना रहती है, उसका स्तर भी पूर्वजों की मन:स्थिति की भाँति ही उत्तराधिकार में मिलता है । शरीर की संरचना और मानसिक बनावट के लिए बहुत हद तक पूर्वजों के उन जीवाणुओं को ही ठहराया गया है, जो परम्परा के रूप में वंशधरों में उतरते चले जाते हैं ।

इस प्रतिपादन से यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्ति अपने आप में कुछ बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है । पूर्वजों के ढाँचे में ढला हुआ एक खिलौना मात्र है । यदि सन्तान को सुयोग्य, सुविकसित बनाना हो तो वह कार्य पीढ़ियों पहले आरम्भ किया जाना चाहिए अन्यथा साँचे में ढले हुए इस खिलौने में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन न हो सकेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आनुवंशिकी का प्रतिपादन जहाँ तक मानव-प्राणी का सम्बन्ध है, बहुत ही अपूर्ण और अवास्तविक है । पशु-पक्षियों में एक हद तक यह बात सही भी हो सकती है, पर मनुष्य के लिए यह कहना अनुचित है कि वह पूर्वजों के साँचे में ढला हुआ एक उपकरण मात्र है । यह मानवी इच्छाशक्ति, विवेक-बुद्धि, स्वतन्त्र-चेतना और आत्मनिर्भरता को झुठलाना है । समाज-शास्त्री, अर्थ-शास्त्री और मनोविज्ञानवेत्ता वातावरण एवं परिस्थितियों के उत्थान पतन का कारण बताते रहे हैं । आत्मवेताओं ने एक स्वर से सदा यही कहा है—मनुष्य की अन्तःचेतना स्वनिर्मित है । वह वंश परम्परा से नहीं, संचित संस्कारों और प्रस्तुत प्रयत्नों के आधार पर विकसित होती है । इच्छा-शक्ति और संकल्प-शक्ति के आधार पर अपने मानसिक ढाँचे में कोई चाहे तो आमूलचूल परिवर्तन कर सकता है ।

आनुवंशिकी की मान्यताएँ एक हद तक ही सही ठहराई जा सकती हैं । चमड़ी का रङ्ग, चेहरा, आकृति अवयव आदि पूर्वजों की बनावट के अनुरूप हो सकते हैं, पर गुण, कर्म, स्वभाव भी पूर्वजों जैसे ही हों, यह आवश्यक नहीं । यदि ऐसा हो रहा होता तो किसी कुल में सभी अच्छे और किसी कुल में सभी बुरे उत्पन्न होते । रुग्णता, स्वस्थता, बुद्धिमत्ता, सज्जनता, दुष्टता, कुशलता, अस्तव्यस्तता भी परम्परागत होती तो प्रगतिशील वर्ग के परिवार के सभी सदस्य सुविकसित होते और पिछड़े लोगों का स्तर सदा के लिए गया-गुजरा ही बना रहता । तब उत्थान-पतन के लिए किये गये प्रयत्नों की भी कुछ सार्थकता न होती । वातावरण का भी कोई प्रभाव न पड़ता, पर ऐसी स्थिति है नहीं । पूर्वजों की स्थिति से सर्वथा भिन्न स्तर की सन्तानों के अगणित उदाहरण पग-पग पर सर्वत्र बिखरे हुए देखे जा सकते हैं । इससे मनुष्य की स्वतन्त्र चेतना और इच्छा-शक्ति की प्रबलता का लक्ष्य ही स्पष्ट रूप से सामने आता है ।

मद्यप मनुष्यों की सन्तान क्या जन्म-जात रूप से उस लत से ग्रसित होती हैं ? इस खोज-बीन में पाया गया कि ऐसी कोई बात नहीं है वरन् उल्टा यह हुआ कि बच्चों ने बाप को मद्यपान के कारण अपनी बर्बादी करते देखा तो वे उसके विरुद्ध हो गये और उन्होंने न केवल मद्यपान से अपने को अछूता रखा, वरन् दूसरों को भी उसे अपनाने से रोका ।

मनुष्यों में गुणसूत्रों के हेर-फेर से जो परिणाम सामने आये हैं, उससे स्पष्ट है कि बिगाड़ने में अधिक और बनाने में कम सफलता मिली है । विकलाङ्ग और पैत्रिक रोगों से ग्रसित सन्तान उत्पन्न करने में आशाजनक सफलता मिली है । क्योंकि विषाक्त मारकता से भरे रसायन सदा अपना त्वरित परिणाम दिखाते हैं । यह गति विकासोन्मुख प्रयत्नों की नहीं होती । नीलाथोथा खाने से उल्टी तुरन्त हो सकती है, पर पाचन शक्ति सुधार देने के प्रयोग उतने सफल नहीं होते । देव से असुर की शक्ति को अधिक मानने का यही आधार है । मनुष्यों में मनचाही सन्तान उत्पन्न करने का प्रयोग सिर्फ इतनी मात्रा में कुछ अधिक सफल हुआ है कि रङ्ग, रूप और गठन की दृष्टि से जनक-जननी का सादृश्य दृष्टिगोचर हो सके । काया की आन्तरिक दृढ़ता, बौद्धिक तीक्ष्णता एवं भावनात्मक उत्कृष्टता उत्पन्न करने में वैज्ञानिक प्रयोगों का उत्साहवर्द्धक परिणाम नहीं निकला है ।

गुणसूत्रों को बदलने में इन दिनों विद्युत-ऊर्जा एवं रासायनिक हेर-फेर के साधन जुटाये जा रहे हैं, पर वे यह भूल जाते हैं कि यह बाहरी थोप-थाप स्थिर न रह सकेगी—उससे क्षणिक-चमत्कार भले ही देखा जा सके । शरीर के प्रत्येक अवयव को मस्तिष्क प्रभावित करता है और मस्तिष्क का सूत्र-संचालन इच्छा-शक्ति के हाथ में रहता है । अस्तु शारीरिक, मानसिक समस्त परिवर्तनों का तात्विक आधार इस इच्छा-शक्ति को ही मानना पड़ेगा । गुण-सूत्रों पर भी इसी ऊर्जा का प्रभाव पड़ता है और इसी माध्यम से वह परिवर्तन किये जा सकते हैं, जो मनचाही पीढ़ियाँ उत्पन्न करने के लिए वैज्ञानिकों को अभीष्ट हैं ।

अभीष्ट स्तर की पीढ़ियाँ क्या रासायनिक हेर-फेर अथवा विद्युतीय प्रयोग उपकरणों द्वारा प्रयोगशालाओं में विनिर्मित हो सकती हैं । यह एक जटिल प्रश्न है । यदि ऐसा हो सका तो यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य इच्छा-शक्ति का धनी नहीं, वरन् रासायनिक पदार्थों की परावलम्बी प्रतिक्रिया मात्र है । यदि यह सिद्ध हो सका तो इसे मनोबल और आत्मबल की गरिमा समाप्त कर देने वाली दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति ही कहा जायेगा, पर ऐसा हो सकना सम्भव दिखाई नहीं पड़ता—भले ही उसके लिए ऐड़ी-चोटी प्रयत्न कितने ही किये जाते रहें ।

शरीर के विभिन्न अंगों पर दबाव डाले जाते रहे हैं, पर प्राणी की मूल इच्छा ने उस दबाव को आवश्यक नहीं समझा तो उस तरह के परिवर्तन नहीं हो सके । चीन में शताब्दियों तक स्त्रियों के पैर छोटे होना—सौन्दर्य का चिन्ह माना गया, इसके लिए उन्हें कड़े जूते पहनाये जाते थे । उससे पैर छोटे बनाने में सफलता मिली । पर वंश-परम्परा की दृष्टि से वैसा कुछ भी नहीं हुआ । हर नई लड़की के पैर पूरे अनुपात से ही होते थे ।

प्राणियों के क्रमिक-विकास में इच्छा-शक्ति का ही प्रधान स्थान रहा है । मनुष्य तो मनोबल का धनी है, उसकी बात जाने भी दें और अन्य प्राणिधारियों पर दृष्टिपात करें तो प्रतीत होगा कि उनकी वंश-परम्परा में बहुमुखी परिवर्तन होता रहा है । इसका कारण सामयिक परिस्थितियों का चेतना पर पड़ने वाला दबाव ही प्रधान कारण रहा है । असुविधाओं को हटाने और सुविधाएँ बढ़ाने की आन्तरिक आकांक्षा ने प्राणियों की शारीरिक स्थिति और आकृति में ही नहीं प्रकृति में भी भारी हेरफेर प्रस्तुत किया है । जीव-विज्ञानी इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हैं ।

यदि पूर्वजों के गुण लेकर ही सन्तानें उत्पन्न होने वाली बात को सही माना जाय तो जीवों की आकृति-प्रकृति में परिवर्तन कैसे सम्भव हुआ ? उस स्थिति में तो पीढ़ियों का स्तर एक ही प्रकार का चलता रहना चाहिए था ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेमार्क ने प्राणियों का स्तर बदलने में वातावरण को, परिस्थितियों को श्रेय दिया है । वे कहते हैं— इच्छा-शक्ति इन्हीं दबावों के कारण उभरती-उतरती है । सुविधा-सम्पन्न परिस्थितियों के प्राणियों के ऊपर किसी प्रकार का दबाव नहीं रहता । अतएव उनका शरीर ही नहीं, बुद्धि-कौशल भी ठप्प पड़ता जाता है । अमीरी के वैभव में पले हुए लोग अक्सर छुईमुई बने रह जाते हैं और उनका चरखा बखेर देने के लिए एक छोटा-सा आघात ही पर्याप्त होता है ।

लेमार्क ने नये किस्म के अनेक जीवधारियों की उत्पत्ति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए कहा है कि बाहर से मौलिक जीव दीखने पर भी वस्तुत: किसी ऐसे पूर्व प्राणी के ही वंशज होते हैं, जिन्हें परिस्थितियों के दबाव से अपने परम्परागत ढाँचे में आमूलचूल परिवर्तन करना पड़ा ।

जीवों के विकास-इतिहास के पन्ने-पन्ने पर यह प्रमाण भरे पड़े हैं कि प्राणियों के अंग-प्रत्यंग निष्क्रियता के आधार पर कुण्ठित हुए हैं और सक्रियता ने उन्हें विकसित किया है । प्रवृत्ति, प्रयोजन और चेष्टाओं का मूल इच्छा-शक्ति ही है । असल में यह इच्छाशक्ति ही प्राणिसत्ता मे विकास, अवसाद उत्पन्न करती है । रासायनिक पदार्थों और गुण-सूत्रों की वंश-परम्परा विज्ञान में कायिक क्षमता को एक अंश तक प्रभावित करने वाला आधार भर माना जाना चाहिए । आधुनिक विज्ञान-वेत्ता मौलिक-भूल यह कर रहे हैं कि मानवी-सत्ता को उन्होंने रासायनिक प्रतिक्रिया मात्र समझा है और उसका विकास करने के लिए जनक-जननी को, उनके जनन-रसों को अत्यधिक महत्त्व दे रहे हैं । इस एकांगी आधार को लेकर मनचाही आकृति-प्रकृति की पीढ़ियाँ वे कदाचित् ही पैदा कर सके ।

वैज्ञानिक बीजमन के चूहों और चुहियों की लगातार बीस पीढ़ियाँ तक पूछें काटीं और देखा कि क्या इसके फल स्वरूप बिना पूँछ वाले चूहे पैदा किये जा सकते हैं ? उन्हें अपने प्रयोग में सर्वथा असफल होना पड़ा । बिना पूँछ के माँ-बाप भी पूँछ वाले बच्चे ही जनते चले गये । इससे यह निष्कर्ष निकला कि मात्र शारीरिक हेर-फेर से वंशानुक्रम नहीं बदला जा सकता । इसके लिए प्राणी की अपनी रुचि एवं इच्छा का समावेश होना नितान्त आवश्यक है ।

हर्बर्ट स्पेन्सर ने अपनी खोजों में ऐसे कितने ही प्राणियो के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जिन्होंने शरीर के किसी अवयव को निष्क्रिय रखा तो वह क्षीण होता चला गया और लुप्त भी हो गया । इसके विपरीत ऐसे उदाहरण भी कम नहीं हैं, जिनमें 'आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है' वाले सिद्धान्त को सही सिद्ध करते हुए अपने शरीर में कई तरह के नये पुर्जे विकसित किये पुरानों को आश्चर्यजनक स्तर तक परिष्कृत किया ।

समुद्र-तट की गहराई में रहने वाली मछलियों को प्रकाश से वंचित रहना पड़ता है । अतएव उनकी आँखों का चिन्ह रहते हुए भी उनमें रोशनी नहीं होती है । आँख वाले अन्धों में उनकी गणना की जा सकती है । अँधेरी गुफाओं में जन्मने और पलने वाले थलचरों का भी यही हाल होता है । उनकी आँखें ऐसी होती हैं, जो अन्धेरे में ही कुछ काम कर सकें । प्रकाश में तो वे बेतरह चौंधिया जाती हैं और निकम्मी साबित होती हैं ।

समर्थ का चुनाव मात्र शारीरिक बलिष्ठता पर निर्भर नहीं है, वरन् सच पूछा जाय तो उनकी मन:स्थिति की ही परख इस कसौटी पर होती है । पशुवर्ग और सरीसृप वर्ग के विशाल-काय प्राणी आदिमकाल में थे । उनकी शरीरगत क्षमता अद्‌भुत थी, फिर भी वे मन्द-बुद्धि, अदूरदर्शिता, आलस जैसी कमियों के कारण दुर्बल संज्ञा वाले ही सिद्ध हुए और अपना अस्तित्व खो बैठे । जबकि उसी समय में छोटी काया वाले प्राणी अपने मनोबल के कारण न केवल अपनी सत्ता सँभालते रहे वरन् क्रमश: विकासोन्मुख भी होते चले गये ।

जीवों के विकासक्रम का एक महत्त्वपूर्ण आधार यह है कि उन्हें परिस्थितियों से जूझना पड़ा, अवरोध के सामने टिके रहने के लिए अपने शरीर में तथा स्वभाव में अन्तर करना पड़ा । यह परिवर्तन किसी रासायनिक हेर-फेर के कारण नहीं, विशुद्ध रूप से इच्छा-शक्ति की प्रवाह-धारा बदल जाने से ही सम्भव हुआ है । जीवन संग्राम में जूझने की पुरुषार्थ-परायणता का उपहार ही अल्प-प्राण जीवों को महाप्राण स्तर का बन सकने के रूप में मिला है । जिन्होंने विपत्ति से लड़ने की हिम्मत छोड़ दी और हताश होकर पैर पसार बैठे, उन्हें प्रकृति ने कूड़े-कचरे की तरह बुहारकर घूरे पर पटक दिया । किसान और माली भी तो अपने खेत बाग में अनुपयोगी खर-पतवार की ऐसी ही उखाड़-पछाड़ करते रहते हैं । विकास की उपलब्धि पूर्णतया जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने के फलस्वरूप ही मिलती है और इस संघर्षशीलता का पूरा आधार साहसी एवं पुरुषार्थी मनोभूमि के साथ जुड़ता रहता है ।

आनुवंशिकी विज्ञान की अन्यान्य शोधें कितनी ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों, पर यह प्रतिपादन, तथ्य व तर्क किसी भी कसौटी पर स्वीकार्य नहीं हो सकता कि प्राणियों का स्तर पूर्वजों के परम्परागत गुणसूत्रों पर निर्भर करता है । विशेषत: मनुष्य का स्तर तो परम्परागत सूत्रों पर किसी भी प्रकार पूरी तरह निर्भर नहीं करता है । परमात्मा ने मनुष्य में बीज रूप से वे सारी विशेषताएँ भर दी हैं जिनके द्वारा इच्छाशक्ति की प्रचंड समर्थता के आधार पर शारीरिक, मानसिक और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया सम्पन्न कर ले । इन सम्भावनाओं को मान्यता देने के उपरान्त ही वंशगत विशेषताओं की चर्चा की जाय, यही उचित है ।

'अमीबा' से नहीं, मनुष्य ईश्वर की इच्छा से बना है

भगवान् मनु ने कहा है—

मन: सृष्टिं विकुरुते चोद्यमान सिसृक्षया

—मनु. १/७४-७५,

सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने अपनी इच्छाशक्ति से मन (जीवों) को उत्पन्न किया ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सृष्टि की हलचल की ओर ध्यान जमाकर देखें तो यह सत्य ही प्रतीत होगा कि इच्छाओं के कारण ही लोग या जीव क्रियाशील हैं, यह इच्छाएँ अनेक भागों में बँटी हुई हैं—(१) दीर्घ-जीवन की इच्छा, (२) कामेच्छा, (३) धन की इच्छा, (४) मान की इच्छा, (५) ज्ञान की इच्छा, (६) न्याय की इच्छा और (७) अमरत्व या आनन्द प्राप्ति की चिर तृप्ति या मोक्ष । इन सात जीवन धाराओं में ही संसार का अविरल प्रवाह चलता चला आ रहा है । इन्हीं की खटपट, दौड़-धूप ऊहापोह में दुनिया भर की हलचल मची हुई है, इच्छाएँ न हों तो संसार में कुछ भी न रहे ।

इन इच्छाओं की शक्ति से ही सूर्य, अग्नि और आकाश की रचना हुई है । देखने और सुनने में यह बात कुछ अटपटी-सी लगती है, किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि जब हम शोक, क्रोध, काम या प्रेम आदि किसी भी स्थिति के होते हैं तो शारीरिक परमाणुओं में अपनी-अपनी विशेषता वाली गति उत्पन्न होती है । परमाणु जो एक ही पदार्थ या चेतना की अविभाज्य स्थिति में होते हैं, भिन्न-भिन्न प्रकार से स्पंदित होते रहते हैं, इससे स्पष्ट है कि शरीर की हलचल इच्छाओं पर आधारित है ।

अभी यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या मूल चेतना में अपने आप इच्छाएँ व्यक्त करने की शक्ति है । इस बात को वर्तमान वैज्ञानिक उपलब्धियों से भली प्रकार सिद्ध किया जा सकता है । जिन्होंने विज्ञान का थोड़ा भी अध्ययन किया होगा, उन्हें ज्ञात होगा कि जड़ पदार्थ (मैटर) को शक्ति (एनर्जी) अथवा विद्युत (इलेक्ट्रिसिटी) में बदल दिया जाता है । इस बात का पता पदार्थ की अति सूक्ष्म अवस्था में पहुँचकर हुआ । हम जानते हैं कि पदार्थ परमाणुओं से बने हैं । परमाणु भी अन्तिम स्थिति न होकर उनमें भी इलेक्ट्रान तथा 'प्रोट्रान' आवेश होते हैं । प्रोट्रान परमाणु का केन्द्र है और इलेक्ट्रान उस केन्द्र के चारों ओर घूमते रहते हैं । यह दोनों अंश छोटे-छोटे टुकड़े नहीं हैं वरन् यह धन और ऋण आवेश (इलेक्ट्रिसिटी) हैं, दोनों की सम्मिलित प्रक्रिया का नाम ही परमाणु है । इस दृष्टि से देखें तो यह पता चलेगा कि संसार में जड़ कुछ है ही नहीं । जगत् का मूल तत्व विद्युत है और उसी के प्रकम्पन (वाइब्रेशन्स) द्वारा स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों का अनुभव होता है । छोटे-छोटे पौधों, वृक्ष एवं वनस्पति से लेकर पहाड़, समुद्र, पशु-पक्षी, रङ्ग-रूप और अग्नि, वायु, शीत, ग्रीष्म आदि सब विद्युत चेतना के ही कार्य हैं । एक ही शक्ति सब पदार्थों के मूल में है । सृष्टि के आविर्भाव से पूर्व एक ही तत्व था, यह बात इतने से ही साबित हो जाती है ।

कृषि विज्ञान के बहुत से पण्डितों ने पदार्थों के अन्दर पाये जाने वाले गुणसूत्रों (क्रोमोसोम) में परिवर्तन करके उनकी नस्लों में भारी परिवर्तन करने में सफलता पाई है । दिल्ली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा. जी. आर. राव ने मकोय के गुणसूत्रों पर 'कोल्ची-साइन' क्रिया के द्वारा प्रभाव डालकर उसे टमाटर की सी नस्ल में परिवर्तित कर दिया । शकर से हीरा बनाया गया है पर वह वास्तविक हीरे से महँगा पड़ता है । इससे भी यही जान पड़ता है कि पदार्थ की मौलिक चेतना विघटित और संगठित होकर नये-नये पदार्थों का निर्माण कर लेती है । यहाँ यह लगेगा कि यह प्रयोग मानव कृत है, फिर मूल-तत्व की अपनी इच्छा का क्या महत्व रहा ?

वैज्ञानिक यह बताते हैं कि परमाणु में इलेक्ट्रान चक्कर लगाते-लगाते एकाएक अपना स्थान बदल देता है, जिसका कोई कारण नहीं होता उसका यह स्थान परित्याग कार्यकरण सिद्धान्त (ला आफ काजेशन) से परे होता है । अर्थात् विद्युत जहाँ एक बद्ध-तत्व है, वहाँ उसकी अपनी इच्छा और चेतनता भी है, भले ही वह विद्युत तत्व से कोई सूक्ष्मतर स्थिति हो और अभी उसका अध्ययन एवं जानकारी वैज्ञानिकों को नहीं हो पाई हो । इस मौलिक स्वाधीनता को 'ला आफ इनडिटरमिनेंसी' के नाम से पुकारा जाता है और उसी के आधार पर अब वैज्ञानिक भी कहने लगे हैं कि विश्व की सभी वस्तुएँ एक-दूसरे से सम्बद्ध, परस्पर अवलम्बित और एक ही संगठन में पिरोई हुई हैं । सारा संसार अर्थात् पृथ्वी से लाखों दूर के नक्षत्र तक गणित के सिद्धान्तों से बँधे हुए हैं, वैज्ञानिक तब यह मानने को विवश हुए कि सम्पूर्ण जगत् एक ही वांछित संस्थान (राशनल सिस्टम) के द्वारा संचालित है । प्रकृति में पूर्ण व्यवस्था और नियमबद्धता है और वह सब किसी विश्व-व्यापी, स्वेच्छाचारी शक्ति के ही आधीन है ।

हम उसका स्वरूप भले ही समझ न पाते हों पर उस सत्ता के अस्तित्व से इन्कार नहीं कर सकते । उसी ने अपनी इच्छा से धरती में पुरुष तत्व को पैदा किया । जब अनेक इच्छाएँ जीवधारियों के रूप में उत्पन्न हुईं तो उनमें शक्ति और इच्छा बल के कारण परस्पर संघर्ष हुआ । एक जीव दूसरे को खाने और सताने लगा । उससे थोड़े ही दिन में सृष्टि का अन्त दिखलाई देने पर ईश्वरीय सत्ता को किसी सर्वशान्ति सम्पन्न जीवधारी के उत्पन्न करने की कल्पना सूझी होगी । मनुष्य का आविर्भाव उसी इच्छा का परिणाम लगता है । मनुष्य में ही वह क्षमता है जो उपरोक्त सातों इच्छाओं में क्रम और अनुशासन, न्याय एवं व्यवस्था बनाये रख सकता है, क्योंकि उसके लिये प्रत्येक उचित शक्ति भगवान ने उसे दी है, जो और किसी भी प्राणी को नहीं दी । यदि मनुष्य इस बात को भावनाओं की गम्भीरता में उतरकर समझता नहीं और स्वयं भी पाशविक आचरण करता है, उसे उस योनि में जाने का भगवान का दण्ड-विधान अनुचित नहीं है । उत्तराधिकार में पाये हुए साम्राज्य और शक्तियों को मनुष्य जैसा विवेकशील प्राणी अपने स्वार्थ में लगाये और विश्व-व्यवस्था या ईश्वरीय आदेश का परिपालन न करे तो यह दण्ड मिलना उचित ही है ।

अमीबा से मनुष्य जाति के विकास की पाश्चात्य थ्योरी को समूचे ज्ञान का एक अंश कहा जा सकता है, सम्पूर्ण नहीं । जो शक्ति सूर्य, चन्द्रमा जैसे प्रकाशवान् नक्षत्र, शीत ग्रीष्म, वर्षा जैसी जटिल और व्यापक प्रकृति उत्पन्न कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है, उसे अमीबा से हाइड्रा, जोड़वाला, मछली, मण्डूक, सर्पणशील पक्षी और फिर स्तनधारी जीव के क्रमिक विकास की क्यों आवश्यकता हुई होगी ।

विकास की थ्योरी को सत्य मान लें तो यह सोचना पड़ेगा कि अमीबा के एक कोश से ही स्त्री और पुरुष दो भेद कैसे पैदा हो गये । यदि 'अमीबा' के बाद दो कोश का 'हाइड्रा' हुआ तो क्रम से सभी योनियाँ दुगुने परिणाम से क्यों नहीं बढ़ती ? यदि, सर्पणशील जीवों से पर-धारी जीव विकसित हुए तो वह कृमि जो पर-धारी होते हैं और उड़ लेते हैं वह किस विकास प्रक्रिया पर आधारित हैं ? पक्षी, जलजन्तु और कीड़े सभी माँस खाते हैं, स्तनधारी यदि उन्हीं से विकसित हुये तो गाय, भैंस और बकरी आदि माँस क्यों नहीं खाते ? एक-सी स्थिति में उत्पन्न हुए हाथी और हथिनियों में, मुर्गी और मुर्गे में तथा मोर और मोरनी में शारीरिक विकास में अन्तर क्यों पाया जाता है ? स्मरण रहे कि हथिनी के बड़े दाँत नहीं होते, मोरनी के लम्बे पंख और मुर्गी के सिर में कलंगी नहीं होती । प्राणियों में दाँतों की संख्या और आकृति में अन्तर पाया जाता है । घोड़े के स्तन नहीं होते, बैल के अण्डकोष के पास स्तन होते हैं । यदि यांत्रिक सिद्धान्त पर प्राणियों का विकास हुआ तो पक्षियों की अपेक्षा कछुए और सर्प ने अधिक जीवन क्यों पाया ? आदि ऐसी आशंकाएँ हैं, जिनसे यह पता चलता है कि मनुष्य अन्य जीवों की विकसित अवस्था न होकर ईश्वरीय इच्छा से प्रकट अपने आप में एक पूर्ण चमत्कार है और वह किसी प्रयोजन के लिये ईश्वरीय इच्छा से ही हुआ है । मनुष्य शरीर की जटिल प्रक्रियाएँ, चक्रों और ग्रन्थियों की संरचना ऐसी है, जिसे देखकर भी ऐसा लगता है कि मनुष्य का निर्माण किसी बहुत सूझ, समझ और योग्यता के साथ हुआ, उसमें अन्य जीवों की विकसित स्थिति के लक्षणों का पूर्णतया अपवाद है ।

जब तक एक स्थान के वृक्ष-वनस्पतियाँ या जीव अन्य स्थानों में नहीं ले जाये जाते वहाँ उनका अभाव रहता है, इससे भी विकासवाद का सिद्धान्त कट जाता है । भारत में बाघ, सिंह और हाथी होते हैं, इंग्लैण्ड में नहीं, साँप, बिच्छू और अन्य गर्मी में पैदा होने वाले प्राणी शीत प्रधान योरोपीय देशों में नहीं होते । अँग्रेज और भारतीय जलवायु के प्रभाव में अपने-अपने वर्ण के होते हैं, रंग-रूप सभी भिन्न होते हैं, योरोपवासी जब तक नहीं गये थे, आस्ट्रेलिया में खरगोश नहीं थे । जब तक प्राणी कहीं पहुँचकर अपनी संतति का स्वयं विस्तार न करे कोई जीव हो नहीं सकता, मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही बात है, उसने अपना विकास तो किया है पर वह भिन्न-भिन्न देशों में किसी एक स्थान से विकसित होकर गया है ।

इस विकास की थ्योरी को बुद्धिसंगत नहीं माना जा सकता, वह हम ऊपर लिख चुके हैं । मनुष्य की आदिम स्थिति और आज की स्थिति की तुलना करें तो लगता है कि शरीर, स्वास्थ्य, आयु और ज्ञान सब दृष्टि से आज का मनुष्य बहुत छोटा है, विकास की स्थिति में तो मनुष्य को अब तक कुछ से कुछ हो जाना चाहिए था पर प्रकृति में अपने आप विस्तार की क्षमता नहीं है ।

इतने वर्ष पूर्व जो भी जीव सृष्टि में पहले आया होगा, उसे लेकर ही चलें तो भी यही मानना पड़ेगा कि वह चाहे प्रकृति कहें या परमेश्वर उनमें से किसी की इच्छा या चेतन-क्रियाशीलता के द्वारा ही हुआ होगा । मेन्टल रेडियो के लेखक अप्टन सिवलेयर के इस कथन से भी यही बात पुष्ट होती है, वे लिखते हैं—हम स्पष्ट रूप से कास्मिक या ऐच्छिक चेतना का चिन्ह पा रहे हैं—कुछ ऐसा मानसिक पदार्थ (मेन्टल स्टफ) हम सब में समान होता है, हम उसे वैयक्तिक चेतना में ला सकते हैं । हमें यह भी मालूम है कि एक सर्वमान्य (यूनीवर्सल) मानसिक पदार्थ भी उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार सर्वमान्य शरीर पदार्थ (यूनीवर्सल वाडी स्टफ) जिससे हमारा निर्माण होता है । हम सब उसी इच्छा में जन्मे हैं ।

वैज्ञानिकों के यह सूत्र आगे और भी भारतीय दावे की स्पष्ट पुष्टि करेंगे और यह बतायेंगे कि मनुष्य का जन्म किसी अज्ञात शक्ति की उद्देश्यपूर्ण इच्छा से हुआ है, उसे वन्य-जीवन के बीच शांति व्यवस्था, मर्यादा, पुण्य और आनन्द की उपलब्धि के लिये भेजा गया है, ताकि भटकती हुई इच्छाएँ फिर आनन्द में परिणित हो सकें । जो मनुष्य इस ईश्वरीय प्रयोजन को पूरा नहीं करता वह बार-बार उसी वन्य-जीवन में कष्ट भोगने का ही दण्ड पाता है ।

विकास या पतन अपनी इच्छा से

विकासवाद के सिद्धान्तों को वैज्ञानिक क्षेत्रों में भी पुनः परखा जा रहा है और नयी शोधें, नये निष्कर्ष भारतीय दर्शन की मान्यताओं को ही पुष्ट करते हैं । उदाहरण के लिए, पुनर्जन्म के सिद्धान्त को ही लें महर्षि वशिष्ठ ने राम को पुनर्जन्म प्रकरण पढ़ाते हुए कहा है—

आशापाश शताबद्धा वासनामाव धारिणः ।
कायात्कायमुपायान्ति वृक्षाद्वृक्षमिवाण्डजाः ।।

हे राम ! मनुष्य का मन सैकड़ों आशाओं (महत्वाकांक्षाओं) और वासनाओं के बन्धन में बँधा हुआ मृत्यु के उपरान्त उन क्षुद्र वासनाओं की पूर्ति वाली योनियों और शरीरों में उसी प्रकार चला जाता है जिस प्रकार एक पक्षी एक वृक्ष को छोड़कर फल की आशा से दूसरे वृक्ष में जा बैठता है ।

मनुष्य जैसा विचारशील प्राणी इतर योनियों—मक्खी, मच्छर, मेढ़क, मछली, साँप, बैल, भैंस, नेवला, शेर, बाघ, चीता, भेड़िया, कौवा आदि योनियों से किस प्रकार चला जाता होगा । यह बात राम की समझ में नहीं आई । उन्होंने अपनी शंका महर्षि के समक्ष प्रकट की और कहा भगवन् ! मनुष्य जैसा समझदार व्यक्ति भला दूसरी योनियाँ क्यों पसन्द करेगा ? इस पर महर्षि ने राम को जिस ढंग से जीवात्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

द्वारा अन्य शरीर धारण करने की अवस्था और मनोविज्ञान समझाया है वह वस्तुत: हर विचारशील व्यक्ति के लिए मनन करने की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वस्तु है—वशिष्ठ ने राम को वह तत्वज्ञान जिन शब्दों में दिया योगवशिष्ठ में उन्हें तीसरे अध्याय के ५५ वें सूत्र में ३९, ४०, ४१ और ४ श्लोकों में इस प्रकार बताया है—

हे राम ! वीर्य रूप में जीवात्मा ही स्त्री की योनि में आता है और गर्भ में पककर एक बालक का रूप धारण करता है । (यहाँ शास्त्रकार का वह कथन भी प्रामाणिक है जिसमें आत्मा को अणोऽरणीयान—अर्थात् सूक्ष्म से भी सूक्ष्म कहा गया है पुरुष शरीर का वीर्य कोष (स्पर्म) अत्यन्त सूक्ष्म अणु होता है यह विज्ञान भी सिद्ध कर चुका है) और अपने पूर्व जन्मों के संस्कारों के अनुरूप अच्छा या बुरा शरीर प्राप्त करता है । उल्लेखनीय है कि उसी कोष में ही जीव की शारीरिक रचना के सारे गुणसूत्र (क्रोमोसोम) रहते हैं यह भी विज्ञान सिद्ध कर चुका है । बालक धीरे-धीरे बढ़ने लगता है और इस प्रकार वह युवावस्था में पदार्पण करता है । पकी हुई इन्द्रियाँ अपने सुख माँगती हैं कुछ पूरी होती हैं अधिकांश अधूरी । अधूरी रह गई वासनाओं महत्वाकांक्षाओं को मनुष्य अपने मन में भीतर ही भीतर दबाता रहता है क्योंकि एक बार उठी वासना जब तक पूर्ण नहीं हो जाती नष्ट नहीं होती, वरन् वह भीतर ही भीतर और भी बलवती होती रहती है । फ्रॉयड ने स्वप्न प्रकरण में स्वीकार किया है कि मनुष्य की दमित वासनाएँ ही स्वप्न के उसी तरह के काल्पनिक चित्र तैयार करती हैं और मनुष्य अद्‌भुत तथा अटपटे स्वप्न देखता है । वासनाओं के दमन से शरीर के पंच भौतिक पदार्थों पर दबाव पड़ता है और वे क्रमश: कमजोर होते चले जाते हैं जिससे वृद्धावस्था आ जाती है और मनुष्य का शरीर मर जाता है पर मन अपनी वासना के अनुसार एक-दूसरे जगत में प्रवेश कर जाता है । गीता में भगवान् कृष्ण ने शरीरों को क्षेत्र या जगत कहा है महर्षि वशिष्ठ ने यह जो दूसरे जगत में जाने की बात कही उसका तात्पर्य दूसरी योनि के शरीर से ही है । शरीर और भौतिक प्रकृति में कोई अन्तर नहीं है यह विज्ञान भी मानता है कि अब तक ढूँढ़े गये १०८ तत्व ही विभिन्न क्रमों में सजकर विभिन्न प्रकार के किन्हीं और शरीरों की रचना करते हैं । इस प्रकार अपने तन की वासना के अनुरूप जीव तब तक अनेक शरीरों में भ्रमण करता रहता है जब तक उसकी वासनाएँ पूर्ण शान्त नहीं हो जातीं और वह फिर से शुद्ध आत्मा की स्थिति में नहीं आ जाता । प्रबुद्ध आत्मा बालक के रूप में फिर से जन्म लेती है, अब यह उसके अधिकार की बात होती है कि यह अपना फिर से प्राप्त यह सौभाग्य सार्थक करे, आत्म साक्षात्कार, स्वर्ग मुक्ति जैसे पवित्रतम जीवन उद्देश्य को सफल बनाने या फिर से उन्हीं तुच्छ भोग-वासनाओं और अहङ्कारपूर्ण आकांक्षाओं की दिशा में अपनी प्रगति प्रारम्भ करके फिर उन्हीं ८४ लाख योनियों में चक्कर काटने के लिए चल दे ।

जीवात्मा के बन्धन और मुक्ति के स्वरूप का इन पंक्तियों में महर्षि वशिष्ठ ने इतना सुन्दर और युक्तिसंगत दर्शन प्रस्तुत किया है जिसे पढ़कर यही मानना पड़ता है कि उन्होंने अपनी बुद्धि अपने मन को कितना सूक्ष्म और शुद्ध बनाकर इन तथ्यों की खोज की होगी । इस देश में करोड़ों वर्षों तक आत्मा का यह दर्शन लोगों को जीवन मुक्ति की दिशा प्रदान करता रहा । यहाँ का औसत नागरिक भी मूल आत्मा के गुणों और शक्तियों से परिपूर्ण हुआ करता था । थोड़े शब्दों में भारतवर्ष में स्वर्ग ही उतरकर आ गया था ।

किन्तु पश्चिम में इस सिद्धान्त के बिल्कुल उल्टा 'विकास वाद' का सिद्धान्त (एवोल्यूशन थ्योरी) जब से चल पड़ा तब से जीवात्मा के इस महान् दर्शन का पतन शुरू हुआ और लोग आत्मा को ऊर्ध्वगामी और शक्तिशाली बनाने वाली साधनाओं को छोड़ बैठे । विकासवाद का सिद्धान्त मूल रूप से मनुष्य शरीर का रचना काल ढूँढ़ते और यह शरीर कैसे बना इस रहस्य को जानने के लिए प्रकाश में आया पर उसे जिस रूप में प्रस्तुत किया गया उससे मनुष्य और कला, मनुष्य और उसके साथ अनिवार्य रूप से जुड़े हुए मनोविज्ञान का सम्बन्ध ही टूट गया । एककोषीय जीव से जटिल कोशों वाले शरीरों की रचना का विकास दरअसल जीवात्मा के पतन का ही उल्टा खड़ा किया हुआ ढाँचा है । संसार में जीवों की संख्या इतनी अधिक है कि उनको एक क्रम में सजाकर यह सिद्ध करना कि मनुष्य शरीर अमीबा जैसे किसी क्षुद्र एककोषीय जीव का विकसित रूप है कोई कठिन काम नहो है पर विकासवाद का सिद्धान्त आखिर मनुष्य के साथ जुड़े हुए मनोविज्ञान को कहाँ सन्तुष्ट कर पाता है उसका खड़ा किया हुआ अपना ही ढाँचा अब बेबुनियाद सिद्ध हो रहा है । नई वैज्ञानिक उपलब्धियों ने जो नये प्रश्न खड़े कर दिये, विकासवादियों के पास उनके कोई उत्तर नहीं है ।

उदाहरण के लिए स्वयं डारविन ने, जो कि विकासवाद के जन्मदाता थे यह माना है कि अन्य जीवों विशेष रूप से बन्दर के शरीर से मनुष्य शरीर में विकसित होने की शृङ्खला हम ढूँढ नहीं सके । उन्होंने अपनी इस असफलता के बावजूद भी यह कहा कि एक दिन ऐसे अस्थि कंकाल मिलेंगे जो इस खोई हुई कड़ी (मिसिंगलिंक) की पूर्ति करेंगे । पीछे कुछ ऐसे अस्थि कंकाल मिले भी जिन्हें मनुष्य और मनुष्येत्तर जीवों के शारीरिक विकास की कड़ी माना जाता है । उदाहरण के लिए १९५९ में डा. लीके ने टंगनियका प्रान्त में ओल्डवह जार्ज नामक स्थान में खुदाई कराते समय एक कंकाल पाया जिसका नाम 'आस्ट्रोलिपिथोस' रखा गया । उस मनुष्य के पास हीं हथियारो के आकार की कुछ वस्तुएँ पाई गईं । विकास शास्त्रियों ने उसे मनुष्य का बहुत समीपवर्ती वंशज माना । वैज्ञानिक कून ने पहले ही शङ्का प्रगट की थी कि विकासवाद की पुष्टि के लिए सबसे पहले वैज्ञानिक जानकारियाँ उपलब्ध की जानी चाहिए । यह नहीं मान लेना चाहिए कि विकासवाद ही सही है अन्यथा वैज्ञानिक किसी भी

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरीके से प्रमाण जुटाने का प्रयास करेंगे और इस तरह एक गलत सिद्धान्त को भी सच्चा प्रमाणित कर दिया जायेगा । उन्होंने यह बताया कि गिबन, आरेंगटान, गोरिल्ला और चिम्पैन्जी—ये चार बन्दरों की जातियाँ हैं जिनमें गोरिल्ला और चिम्पैन्जी मनुष्य की शारीरिक बनावट से बहुत अधिक समानता रखते हैं । इनके कंकाल मनुष्य के कंकाल से मिलते-जुलते होते हैं । इसलिए यह सम्भव है जिन कंकालों को मनुष्य के और अन्य जीवों के बीच की कड़ी माना जाता है वे कड़ी न होकर किसी बन्दर के ही कंकाल रहे हों । कम से कम १९५९ में खोजे गये अस्थि-कंकाल के बारे में यही हुआ । वैज्ञानिकों ने इस कंकाल की खोज करते समय आगे चलकर पाया कि यह अस्थि-कंकाल तो कुल १०० वर्ष ही पुराना है और इस जाति के लोग अभी भी धरती में पाये जाते हैं ।

वैज्ञानिक श्री सी. एस. कून ने अपनी पुस्तक 'दि ओरिजिन आफ रेसेस', न्यूयार्क, १९६२ पेज ४ में विकासवाद को गलत बताते हुये लिखा है—"अगर मनुष्य की जातियाँ कुछ हजार साल पूर्व किसी एक जाति के प्राणी से बनी होती हों तो उन सब जातियों को एक ही भाषा बोलनी चाहिए थी । एक ही उत्पत्ति केन्द्र होने पर यह कैसे सम्भव है कि विश्व में हजारों प्रकार की बोली और वर्णमाला की रचना हुई । एस्किमो और एल्यूट जाति के लोग एक ही भाषा बोलते हैं जबकि दोनों के इतिहास में २००० वर्ष का अन्तर है । दूसरी ओर आस्ट्रेलिया और तस्मानियाँ में रहने वाली कुछ जातियाँ उन जातियों से समानता रखती हैं जिनको १,००,००० वर्ष पुराना माना जाता है ।"

वैज्ञानिक अनुसन्धानों से यह भी पता चला है कि प्राचीनकाल के मनुष्य का मस्तिष्क आज के मनुष्य के मस्तिष्क से विकसित था । तब के मस्तिष्क की क्षमता (कैपिसिटी) १६०० सी. सी. थी, जबकि आज १३०० सी. सी. है । विकासक्रम में ऐसा नहीं होना चाहिए था । विकासवाद के अनुसार आदि मानव को बर्बर, असभ्य और जंगली होना था पर भूगर्भ की खुदाई से प्राप्त प्राचीनतम सिक्के, हथियार और कला-कृतियाँ इस बात की प्रमाण हैं कि आज की अपेक्षा पहले के लोग शरीर, मस्तिष्क दोनों से अधिक समर्थ थे । अलेक्जेन्डर मारशाक ने अपनी पुस्तक 'दि बेटन आफ मॉटगेडियर नेचुरल हिस्ट्री' वॉल्यूम एल ३९ नं. ३ मार्च, १९७० पेज ५८ में लिखा है कि—मैं पिछले ६ वर्षों के निरन्तर अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्राचीन मनुष्यों की कला और संस्कृति आज से ऊँचे स्तर की थी । विकासवाद के अनुसार कला को भी विकासोन्मुखी होना चाहिए । इससे प्रकट है कि विकासवाद का सिद्धान्त मनगढ़न्त अधिक तथा तथ्यपूर्ण कम है ।

राकशेल्टर ९, होशंगाबाद, मध्यप्रदेश की गुफा में एक जिराफ और खंगधारी घुड़सवार की आकृति बनी है । भारतीय पुरातत्व जिसकी मान्यताएँ पाश्चात्य देशों पर ही आधारित हैं, ने इस चित्रकारी को ईसा से अधिक से अधिक १००० वर्ष पुराना माना है जबकि हिन्दुस्तान में इतने समय पहले तक कोई भी जिराफ नहीं पाया जाता था । जिराफ का एक कंकाल हिमालय में मिला था उसकी आयु ११ लाख वर्ष पूर्व बताई जाती है । इसी प्रकार मिर्जापुर की गुफाओं में, रामगढ़ की गुफाओं में, फ्रांस की गुफाओं में ऐसे चित्र उपलब्ध हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि मनुष्य जाति अपने प्रादुर्भाव काल से कला और संस्कृति का ज्ञान रखती रही है । यह तथ्य विकासवाद से बिलकुल उलटे हैं ।

लगभग ढाई करोड़ वर्ष पूर्व अमरीका में एक जानवर पाया जाता था उसके अस्थि कंकालों के अध्ययन के आधार पर उसका नाम मूर्खपाद (फुलिश फूटेड, मोरोपस) रखा गया है इसी तरह के जीव कुछ अन्य जैसे डायनोरस, डेविल कार्क स्क्रू, स्टैबिंग कैट भी उस समय पाये जाते थे । यह अस्थि कंकाल विकासशास्त्रियों के लिये आज भी सिर दर्द हैं वे यह नहीं समझ पा रहे इन्हें विकास सिद्धान्त की किस श्रेणी में रखा जाये ।

हमारा उद्देश्य इन पंक्तियों में विकासवाद की आलोचना करना नहीं, यह बताना है कि इस सिद्धान्त ने मनुष्य जीवन के एक शाश्वत सिद्धान्त से किस प्रकार उसका ध्यान खींचकर उसे भ्रमित किया और उसे केवल भौतिक सुखों के ही आकर्षण जाल में फँसने को विवश किया ।

मनुष्य से आश्चर्यजनक मनुष्य का मन और उसका मनोविज्ञान है । मनुष्य की उत्पत्ति के साथ उसकी पुरानी हड्डियों का सम्बन्ध जोड़कर विकासवाद का सिद्धान्त बना दिया जाये पर उसके अभिन्न अङ्ग मनोविज्ञान के साथ कोई सिद्धान्त न तय किया जाये इससे बढ़कर मूर्खता और दुर्भाग्य क्या हो सकता है । आज विज्ञान मानता है कि संस्कार और सम्पूर्ण मनोमय चेतना कोश (सेल) के भीतर रहते हैं । वह शक्ति या प्रकाश के रूप में प्रकृति की विलक्षण और जटिलतम रचना है । सृष्टि के समस्त १०८ प्रकार के तत्व और उनसे सम्मिश्रित १ × २ × ३ × ४ × ५ × ६ × ७ × ८ × ९ × १० × ११ × १२ × १३ × १४ × १५ × १६.....× १०८= प्रकार के गुणसूत्रों से सम्पन्न कोश (सेल) मनुष्य शरीर में होते हैं । यह संस्कार शक्ति के रूप में सदैव अमर रहते हैं केवल इनमें रासायनिक परिवर्तन हुआ करता है । तब फिर यह क्यों न माना जाये कि मनुष्य की चेतना ही अपने एक-एक गुणों का त्याग करती हुई मनुष्य योनि से भटकती हुई अन्य योनियों में भ्रमण किया करती है । इस दृष्टि से यदि नये सिरे से अध्ययन प्रारम्भ किया जायेगा तो पता चलेगा कि विकासवाद का सिद्धान्त बिलकुल उल्टा है और यह सच है कि मनुष्य-चेतना या आत्म-चेतना ही है जो अपने मूलभूत गुणों को त्यागकर वासनाओं के कारण अन्य शरीरों में भ्रमण करने को विवश होता है । डा. फ्रॉयड के अनुसार दमित वासनाएँ, स्वप्न की कल्पना में आती हैं यदि उसी सिद्धान्त को व्यापक रूप से भारतीय आचार्यों ने यह कहा कि जीवन भर की दबी हुई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महत्वाकांक्षायें—वासनाएँ मन अन्य शरीरों में जाकर चरितार्थ करता है अर्थात् मनुष्य देखने में चाहे कितना साफ-सुथरा शिक्षित दिखाई देता हो अपनी वासनाएँ, तृष्णाएँ जब तक नहीं छोड़ता तब तक वह इस निकृष्ट योनियों में जाने को मजबूर होता रहता है, इसमें चिढ़ने जैसी कोई बात क्यों हो ?

प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक (शिकागो) डा. चिल्डर पेनफील्ड ने मनुष्य के मस्तिष्क पर अनेक प्रयोग करके बताया है इन्च के दसवें भाग जितनी मोटी लगभग २५ वर्ग इन्च क्षेत्रफल की मस्तिष्क में काले रंग की दो पट्टियाँ होती हैं यह पूरे मस्तिष्क को ढके रहती हैं । मनुष्य जब पुरानी बातें स्मरण करने का प्रयत्न करता है तब स्नायुयों से निकलती हुई विद्युत धारायें इन पट्टियों से गुजरती हैं और वह घटनाएँ याद हो जाती हैं । ''सामान्य स्थिति में मनुष्य अपनी मानसिक विद्युत को न तो इतना प्रखर बना पाता है और न ही एकाग्र हुए बिना किसी मदद से इस काली पट्टी के सम्पूर्ण इतिहास का पता लगा सके और जान सके कि वह पूर्व जन्मों में कब क्या था पर वैज्ञानिक प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मन कभी मरता नहीं अपनी वासना और कर्मों के अनुसार वह बार-बार जन्म लेता और मरता रहता है ।

उदाहरण के लिये डा. पेनफील्ड ने एक व्यक्ति की इस काली पट्टी में विद्युत प्रवाहित की तो वह एक गीत गुनगुनाने लगा जो न तो अमरीकन था न जर्मन । उपस्थित कोई भी व्यक्ति उसे समझ न सका । उस गीत को टेपरिकार्ड कर लिया गया और भाषा-शास्त्रियों की मदद ली गई तो पता चला कि वह भाषा किसी आदिवासी क्षेत्र की थी और वह गाना सचमुच ही उस क्षेत्र के लोग गाया करते हैं । इस तरह की अनेक घटनाएँ डा. पेनफील्ड ने संगृहीत की हैं जो यह बताती हैं कि जीवों के शरीर से विकासवाद को ही पुष्ट करने में लगे रहना समस्त मानव जाति के साथ एक प्रकार का धोखा है । हमें मन और उसके उत्थान या पतन का विज्ञान भी ढूँढ़ना चाहिए यदि मन की शक्ति का ज्ञान वैज्ञानिक पा सकें और उसे मानव जीवन के साथ जोड़ सकें तो आज महर्षि वशिष्ठ की जो बातें लोग समझ नहीं पा रहे कल राम की तरह सभी उसे समझने और मनुष्य शरीर में ही ईश्वरत्व की प्राप्ति करने लगेंगे । जब तक यह नहीं होगा मनुष्य जाति पतित और निम्नगामी योनियों में भ्रमण करती रहे तो इसे न तो कौतुक माना जाय, न ही अतिशयोक्ति ।

यह तथ्य प्रतिपादित करते हैं कि मनुष्य न तो अमीबा से बना है और न ही किसी ऐसे प्राणी से जिसके बाद की कड़ियाँ विलुप्त हो गयी हों । वस्तुतः मनुष्य सर्वसमर्थ परमात्मा की सन्तान है, अपने भले-बुरे कर्मों के कारण ही उसे ऊँची और गिरी हुई योनियों में जाना पड़ता है ।

मानवी सत्ता चिरपुरातन है

डार्विन के विकासवाद में पृथ्वी का जन्म तथा उस पर छोटे जीवाणुओं के उपरान्त बड़े जीवधारियों की उत्पत्ति का वर्णन है । प्रायः इसी को सही माना जाता है और उसी अनुमान की स्कूली पुस्तकों में प्रामाणिक बताया जाता है ।

किन्तु नवीनतम खोजों से जो अकाट्य प्रमाण सामने आये हैं वे उन मान्यताओं को पूरी तरह उलट देते हैं । उनसे पता चलता है कि पृथ्वी अनुमान के विपरीत कहीं अधिक पुरानी है और जीवन की शुरूआत छोटे जीवाणुओं से नहीं वरन् सभ्य मानवों से होती है । उनके न केवल शरीर असाधारण रूप से बड़े-छोटे थे वरन् उन्हें विज्ञान की भी उच्चस्तरीय जानकारी थी । इसके ऐसे प्रमाण-चिन्ह मिले हैं जिन्हें झुठलाया नहीं जा सकता ।

इन्हीं शोध कथनों में भूतकालीन खण्ड प्रलयों और भावी अनिष्ट सम्भावनाओं का भी उल्लेख है ।

मिस्र की नील घाटी की सभ्यता को १० हजार वर्ष ई. पूर्व पुराना बताया जाता है वहाँ के सबसे पहले सम्राट 'मीन्स' ने अपने दक्षिणी मिस्र के राज्य में उत्तरी भाग को भी मिलाकर राज्य चलाया था । उसके काल की भोजपत्र पर अंकित नील-नदी की स्तुति आज भी लन्दन के अजायबघर में सुरक्षित है । चौबीस अक्षरों की वर्णमाला का आविष्कार वहाँ पहले-पहल हुआ था साथ ही लेखन सामग्री का उपयोग भी होने लगा था । मिस्र के पिरामिड़ जो आज भी रहस्य बने हुए हैं उसी काल के निर्मित बताये जाते हैं । इन पिरामिडों में गीना का पिरामिड २३० मीटर की भुजा के वर्गाकार आधार पर विनिर्मित है जिसकी ऊँचाई १४७ मीटर है । कहा जाता है कि इस पिरामिड को १ लाख कारीगरों ने २० वर्षों में बनाया था । इस पिरामिड में नरसिंह (सिर तथा धड़) की मूर्ति पत्थर से बनी लगभग ४९ मीटर लम्बी और २१ मीटर ऊँची है ।

कोणार्क का विशाल मन्दिर ४०० मीटर लम्बा था । उसके मुख्य कक्ष की लम्बाई ५२ मीटर और चौड़ाई १०३ मीटर थी । यह कक्ष १३६ खम्भों पर पाटा गया था । इसके १२ बीच के खम्भे तो २४-२४ मीटर ऊँचे थे जिनमें से प्रत्येक पर १०० व्यक्ति एक साथ खड़े हो सकते थे ।

पश्चिम एशिया में दजला-फरात नदियों के किनारे के निप्पुर, बाबुल और उरनगर ई. पू. ५००० के आसपास बसाये गये थे । इनमें बाबुल का टावर विश्वविख्यात है ।

वस्तुतः इन विलक्षण पिरामिडों की संरचना भारतीय कलाकारों ने ही की थी । जिसे कभी-कभी पिरामिड बैल्ट के नाम से भी पुकारा जाता रहा है । यह बैल्ट मिस्र से मेसोपोटेमिया से लेकर यूरोप तक तथा अमेरिका से पूर्व (भारत) तक फैली हुई है । सुमेरिया (मिश्र) में बनी इस प्रकार की विलक्षण इमारतों में सूर्य पूजा का क्रम आज भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलता है । लोगों में धार्मिक चेतना की जाग्रति का इसे केन्द्र कहा जा सकता है ।

पश्चिम जर्मनी के एक भूगर्भशास्त्री का कहना है कि पृथ्वी के बनने से पहले भी ब्रह्माण्ड में प्राणियों का अस्तित्व था । पृथ्वी को बने ३८० करोड़ से ४६० करोड़ वर्ष हो गये हैं ।

जर्मन शोध सेवा के अनुसार जीवेंन विश्वविद्यालय के भूगर्भ शास्त्री प्रो. हांग डीटरफलग का कहना है कि उन्हें ऐसे अवयवों के अवशेष मिले हैं जो मूलत: टूटे हुये तारों के खनिज ढाँचे में बन्द थे । इलैक्ट्रान माइक्रोस्कोप से देखने पर ये अवशेष वर्तमान जीवित अवयवों के समान ही पाये गये । हालांकि इनका आकार वर्तमान अवयवों का दसवाँ हिस्सा है ।

प्रो. फलग का कहना है कि हालांकि ये सक्षम अवयव केवल एक कोशिका से बने हैं और उनमें कोई हड्डी नहीं है लेकिन ये चट्टानों में अरबों वर्ष तक जीवित रह सकते हैं । पश्चिम ब्रीनलैण्ड की इशुआ चट्टान में पाये गये सूक्ष्म अवशेषों से यह बात सिद्ध हुई है । यह चट्टान विश्व की सबसे पुरानी चट्टान मानी जाती है । प्रो. फलग का मत है कि उल्काओं का निर्माण भी उसी समय हुआ था जब सौरमण्डल का निर्माण शुरू हुआ था । लगभग सौ वर्ष पहले स्वीडन के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक स्वांटे अरहेनियस ने एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया था । जिसका प्रो. फलग भी समर्थन करते हैं । इस सौ वर्ष पुराने सिद्धान्त के अनुसार जीवन सबसे पहले बाहर अन्तरिक्ष में शुरू हुआ । शक्तिशाली जीवाणु अन्तरिक्ष से पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों पर गये जहाँ उनके लिये जीवित रहने की परिस्थितियाँ थीं । इस सिद्धान्त का अभी तक पूरी तरह से खण्डन नहीं हुआ है और न ही यह पूरी तरह से सही सिद्ध हुआ है ।

मानव उत्पत्ति के बारे में विभिन्न प्रकार की लोक मान्यताएँ प्रचलित हैं । मानवी सभ्यता का विकास कब हुआ ? इसके सम्बन्ध में भी विद्वानों के पृथक्-पृथक् अभिमत रहे हैं । कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी के उपकुलपति डा. जान लाइटफूट के अनुसार मानवी सभ्यता का विकास ईसा से ४००० वर्ष पूर्व २३ अक्टूबर के प्रात: से आरम्भ होता है । उन्होंने उत्पत्ति का मूल कारण त्रेयक परमेश्वर (ट्रिनिटी) को ही समझा है । डा. लाइटफूट का कहना है कि तथ्यान्वेषण का सर्वप्रथम अनुसंधान प्रयास फिलिप हैनरी गूज ने १८५७ में किया । बाइबिल में वर्णित एडम और ईव की उत्पत्ति का भी यही समय है ।

भारतीय धर्म ग्रन्थों की मान्यताओं के अनुसार अब तक भगवान् विष्णु नौ बार सृष्टि का उद्धार कर चुके हैं अर्थात् महाप्रलय से मुक्ति दिलाई है । दसवीं बार महाप्रलय की प्रतीक्षा में वे इस समय बैठे हुए हैं । प्राचीनकाल में मैक्सीको के एक महान मनीषी टौल्टेक, जिनके नाम से टौल्टेक कलैण्डर परम्परा चल पड़ी, ने अपनी गणनाओं के आधार पर बताया कि अब तक तीन बार इस पृथ्वी को महाप्रलयों का सामना करना पड़ा । सर्वप्रथम घटित होने वाली को 'वाटर सन' यानी पृथ्वी बाढ़ों के प्रकोपों से घुल गयी । दूसरा युग 'अर्थ सन' का था । जिसमें सृष्टि के विनाश का मुख्य कारण भूकम्पों का रहा । तीसरी बार होने वाली महाप्रलय को 'विडसन' के नाम से पुकारा जाने लगा । यह अन्तरिक्षीय वायुमण्डल में तीव्रता के कारण हुई । जिस युग में हम लोग रह रहे हैं इसे 'फाहर सन' का चौथा युग कह सकते हैं । एटमिक (आणविक) जैसे युद्ध आयुधों की बढ़ती होड़ को देखकर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि यह दुनिया शीघ्र ही जल-भुनकर नष्ट हो जायेगी । टौल्टेक ने इस महाप्रलय का मूल कारण सूर्य को ही माना है ।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अवलोकन किया जाय तो पता चलता है कि अपने इस युग का आरम्भ वर्ष १४५३ अर्थात् कौनस्टैन्टीनोपल के पतन से होता है ।

सुप्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ, इतिहासकार एवं मानचित्रकार प्रो. चार्ल्स हैपगुड ने 'मैप्स आफ दी ऐन्सीएन्ट सी किम्स' में अतीत के रहस्यमयी प्रमाणों को प्रस्तुत करते हुए बताया है कि कोलम्बस ने अपने पूर्वजों द्वारा बनाये गये मानचित्रों के आधार पर ही अनेकानेक अज्ञात स्थानों की खोज करने में सफलता पायी है ।

अंटार्टिका महाद्वीप के बारे में भी यही बात कही जा सकती है । फ्रांस के एक शिक्षाशास्त्री फिलिप बुचे ने १७३७ में अन्टार्टिका की स्थिति को अपने मानचित्र में भली-भाँति प्रदर्शित कर दिखाया । उन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुये वर्ष १९४९ में स्वीडिस ब्रिटिश-नार्वेजियन अभियान चल पड़ा और ठीक वैसी ही स्थिति वहाँ देखने को मिली ।

अन्तर्राष्ट्रीय भूभौतिकी वर्ष १९५८ बड़े धूमधाम के साथ मनाया और अंटार्टिका के बारे में बताया गया कि वहाँ पर बर्फ जैसी कोई चीज है नहीं । बुचे ने यही बात बहुत पहले प्रदर्शित कर रखी थी ।

जर्मन के इन्जीनियर बिलहेम कौनिग ने वर्ष १९३६ में बगदाद शहर के पुरातत्व संग्रहालय में रखे पाषाणों की जाँच-पड़ताल करने के उपरान्त बताया कि आज से १७०० वर्ष पूर्व सीवर प्रोजेक्स तथा इलैक्ट्रिक बैट्री का प्रयोग अवश्य रहा होगा । बैंजामिन फ्रैंकलिन ने इन्हीं प्रमाणों के आधार पर बिजली के प्रयोग की सार्थकता को सिद्ध कर दिखाया है ।

भारतीय संस्कृति विश्वव्यापी है । ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध लेखक एवं अन्वेषक कर्नल फासेट के मतानुसार अमेजन नदी में एक रहस्यमयी इमारतों के अवशेषों को देखकर इसका अनुमान सुगमतापूर्वक लगाया जा सकता है । इस विशालकाय भवन के पत्थर रात्रि के समय में प्रकाश किरणों की भाँति चमकते हैं । कर्नल फासेट ने सन् १९२० में अपने शोध कार्यों से यह सिद्ध कर दिखाया है कि इन अलौकिक दृश्यों में भारतीय धर्म और संस्कृति की झलक-झाँकी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डा. मैरिया रीके ने वर्ष ५०० ए. डी. की ७ वर्डस लार्जेस्ट ऐस्ट्रानामी बुक का बड़ी गहनता के साथ अध्ययन किया और तथ्यों को प्रकट करते हुये बताया है कि ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति को समझने के लिए अन्तरिक्ष यानों की उड़ानों का विज्ञान महाभारत काल में भी था । जिन्हें रथ और विमानों के नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है ।

ऐतिहासिक घटनाओं में मात्र १० प्रतिशत से भी कम के प्रमाण अवशेषों के रूप में देखने को मिलते हैं । बेबीलॉन की पुस्तकों में ऐसे शिलालेखों का प्रदर्शन है जिन्हें देखकर कहा जा सकता है कि लोगों ने बिना किसी टैलिस्कोप की सहायता के शुक्र ग्रह की स्थिति का अनुमान लगाया । 'हार्न आफ वीनस' (शुक्र के सींग) का उल्लेख भी वहाँ के ग्रन्थों में देखने को मिलता है । इसी तरह की मान्यताएँ उनकी तारागणों के बारे में रही हैं वे उन्हें देवी-देवता, जानवर तथा वीर योद्धाओं की उपमा देते चले आये हैं । महान वैज्ञानिक, समुद्री यात्री एवं अन्वेषक सर वाल्टर रैले ने वीनस के सम्बन्ध में जिन तथ्यों का उल्लेख 'विश्व का इतिहास' (१६१६) नामक पुस्तक में किया है उसी के आधार पर गैलीलिओ जैसे विश्व विख्यात वैज्ञानिक अपने अनुसंधान कार्य में सफल हुए ।

ईसा से ५८५ वर्ष पूर्व २५ मई को एक ग्रीक वैज्ञानिक एवं खगोलज्ञ थेल्स को स्टीम पावर की खोज का श्रेय दिया जाता है । सुप्रसिद्ध इतिहासकार हैरोडोटस के कथनानुसार सूर्य और चन्द्र ग्रहणों की पूर्व घोषणा करने की क्षमता भी थेल्स में थी ।

महाग्रन्थों के लेखक होमर और वर्जिल का कहना है कि मंगल ग्रह जब अपना स्वरूप लाल ग्रहण कर लेता है तो उसे युद्ध का देवता कहते हैं । यानी युद्धों के होने की सम्भावनाएँ अधिक बढ़ जाती हैं । यह ग्रह अपने दो विशेष दूत भेजता है—(१) फोबोस (२) डमोस । जिन्हें भय और दंगे उत्पन्न करने की पूरी छूट मिली होती है ।

गिजाह के ग्रेट पिरामिडों का निर्माण लगभग आज से ५००० वर्ष पूर्व का है । जो मिस्र के ७० पिरामिडों में से सबसे बड़ा समझा जाता है । ४५ मंजिल के इस पिरामिड में ढाई से बारह टन वजन के २५ लाख शिलाखण्ड लगे हुए हैं । इनमें विभिन्न प्रकार के शिला लेख देखने को मिले हैं जो हमारी संस्कृति की गरिमा को प्रदर्शित करते हैं ।

पेरू में माकू पिक्कू नामक स्थान पर एक बिना छत का सूर्य मन्दिर है जो मौसम परिवर्तन के बारे में पूरी जानकारी प्रदान करता है । सूर्य किरणों की घट-बढ़ से यह सब कुछ ज्ञात होता है ।

आर्कमिडीज तथा ग्रीक गणितज्ञों ने पाई की आधुनिक कीमत ३१४१६ पिरामिडों पर अंकित शिलालेखों के आधार पर ही निकाली । कहने का तात्पर्य है कि मिस्र की गणितीय प्रणाली इतनी स्पष्ट थी जो आज के वैज्ञानिकों को बिना आश्चर्य में डाले नहीं रह सकती । एक वर्ष में ३६५.२४० दिन होने की गणना पिरामिडों में अंकित है । इसे पिरामिडीकल इंच के नाम से भी जाना जाता है । पिरामिड की ऊँचाई का गुणा यदि १ करोड़ से कर दिया जाय तो सूर्य और पृथ्वी के मध्य की दूरी निकल आती है ।

वैज्ञानिकों के अनुसार पिरामिड का वजन ६ लाख टन है यदि इतनी संख्या का गुणा १ अरब से कर दिया जाय तो लगभग पृथ्वी का वजन निकल आता है ।

गीजा के पिरामिडों के स्तम्भ-चिन्हों को देखने से पता चलता है कि मिश्रवासी सूर्य की पूजा-उपासना में अत्यधिक रुचि लेते रहे होंगे । वहाँ के फारूह सम्राट को मरणोपरान्त 'सन बोट' में देवताओं द्वारा स्वर्ग में ले जाने के संकेत स्पष्ट परिलक्षित होते हैं ।

पेरू अथवा बोलीबीया के मन्दिरों, किलों तथा राजभवनों में पाये गये इंका के ध्वंसावशेषों से विभिन्न प्रकार के देवी-देवताओं की उपासना का विधि-विधान देखने को मिलता है । भूकम्पों की पूर्व सूचना भी इनके संकेतों के आधार पर होती है ।

बोलीबिया के टिआहूना के नामक स्थान पर सूर्य मन्दिर आज भी वैज्ञानिकों के लिए अनुसन्धान का विषय बना है । मन्दिर के दरवाजे पर मानवाकार की चौबीस प्रतिमाएँ प्रज्जलित मसाल लेकर खड़ी हैं । इनमें से कुछ प्रतिमाएँ मनुष्य जैसी आकृति तथा कुछ पक्षियों के सदृश दृष्टिगोचर होती हैं । 'स्वर्ग से देवागमन' की पौराणिक गाथाओं के अनुसार ये प्रतिमाएँ दैवीय सन्देशों को मानवी चेतना तक पहुँचाने का कार्य सम्पन्न करती हैं ।

पिरामिडों में स्टोनहैंज के निर्माण की विलक्षणता को देखते हुये कहा जा सकता है कि उत्कृष्ट श्रेणी के लोगों का अस्तित्व ईसा से २००० वर्ष पूर्व भी रहा होगा । पृथ्वी और सूर्य की स्थिति में परिवर्तन का अनुमान 'हील स्टोन' पर फैली हुई सूर्य किरणों से लगाया जा सकता है । 'हील स्टोन' पर सूर्य किरणें २१ जून को बिलकुल सीधी पड़ती हैं । ऋतु परिवर्तन इसी के आधार पर स्पष्ट देखा जा सकता है । ग्लासस्टोनवरी में जोड़ी एकल कलैण्डर एक विशालकाय पत्थर के ऊपर अंकित है, जिससे ग्रह-नक्षत्रों एवं राशिचक्रों के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त होती है । ये सारी साक्षियाँ प्रमाणित करती हैं कि मानवी सत्ता सभ्यता का आदि स्रोत बहुत पुराना है । मानव श्रेष्ठ व सभ्य के रूप में ही धरती पर आया व विकसित हुआ है ।

मनुष्य अपनी मौलिक विशेषताएँ लेकर ही आया

डार्विन का विकासवाद जीवविज्ञान का बहुसमर्थित सिद्धान्त है । इस मान्यता को ही आजकल विद्यालयों में पढ़ाया और समझाया जाता है कि जीवन का आरम्भ अविकसित स्तर पर हुआ और वह क्रमशः आगे बढ़ता चला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आया । इसके अनुसार मनुष्य का पूर्व इतिहास गौरवास्पद नहीं है । आज का मनुष्य अपने पूर्वजों से अधिक अच्छी स्थिति में है, यह मान्यता हमें अहंकारी ही नहीं बनाती वरन् अपने पूर्वजों के प्रति अश्रद्धा एवं उपहास की भावनाएँ भी पैदा करती है ।

विकासवादी व्याख्या के अनुसार 'प्रोटोजोआ' से मनुष्य क्रमशः विकसित हुआ । सर्वप्रथम एककोशीय जीव अमीबा, स्पंज, हाइड्रा और फिर विभिन्न सीढ़ियाँ पार करता हुआ मछली, मेढ़क, साँप, छिपकली, चिड़िया, घोड़े, हाथी, बन्दर आदि विकसित होते हुए मनुष्य बना । यह सिद्धान्त हमें यह सिखाता है कि जीव का मूलस्वरूप ही नहीं उसका स्तर, स्वभाव और आधार भी विकसित, परिवर्तित होता आया है । एककोशीय इंद्रिय चेतना से रहित जीवन क्रम उलट-पुलट करते-करते मनुष्य जैसे विकसित प्राणी के रूप में आ गया है । लेकिन यह विकासवादी व्याख्या बुद्धि-संगत नहीं जान पड़ती । इसे मान भी लिया जाय तो प्रश्न उठता है कि वर्तमान प्राणी जिस स्थिति में है वह कब तक बनी रहेगी ? विकास सिद्धान्त के अनुसार उनमें परिवर्तन होते-होते अन्ततः वे किस स्थिति में पहुँच जायेंगे और प्रगति की अनंत प्रक्रिया प्राणियों को कौन-सा स्वरूप प्रदान करेगी ?

सर्वप्रथम हमे विकासवादी सिद्धान्त की कुछ स्थापनाओं का अवलोकन करना पड़ेगा । इसके अनुसार लगभग १० लाख वर्ष पूर्व 'आस्ट्रेलोपिथेकस' नामक वनमानुष विकसित हुआ । यह पहला ग्लेशियर दक्षिण की ओर बढ़ता हुआ यूरेशिया तथा उत्तरी अमेरिका पहुँचा तथा वहाँ के एक बड़े हिस्से पर छा गया । उस समय अर्थात् अब से दस लाख वर्ष पूर्व यह वनमानुष दक्षिण अफ्रीका के जंगलों में घूमता था और उसका सजातीय 'आस्ट्रेलोपिथेकस' नामक वनमानुष उत्तरी अमेरिका में । यह चिंपेंजी की तरह होता था और सीधा तनकर चलता था । यही नहीं 'आस्ट्रेलोपिथेकस' वृक्षों की अपेक्षा धरती पर ही रहता था । यही 'आस्ट्रेलोपिथेकस' विकसित होकर 'पिथेकेन्थाइन' मनुष्य रूप मे आया । इसके बाद लगभग ६० हजार वर्ष पूर्व 'निएण्डरथल' जिससे प्रारम्भिक मानव या आदिमानव विकसित हुआ । बताया जाता है कि इनमें बौद्धिक सामर्थ्य भी थी । ये औजार बनाते थे, शिकार करते थे तथा अपने मृतकों का अन्तिम संस्कार समारोहपूर्वक मनाते थे ।

डार्विन के बाद 'हेमल' और स्पेंसर आदि ने इसी सिद्धान्त की पुष्टि की और इन्हीं आधारों पर नयी-नयी परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की । लेकिन पिछले ५० वर्षों में डार्विन का यह प्रतिपादन खण्ड-बण्ड होकर निराधार सिद्ध हो गया है । इस धारणा ने आत्मा, ईश्वर, पुनर्जन्म आदि की तमाम आस्थाओं को जड़-मूल से हिलाकर रख दिया था । क्योंकि विकासवाद के अनुप्रतिद्वन्द्विता प्रकृति का शाश्वत एवं सनातन सिद्धान्त है । इसमें जो योग्यतम होता है वही बचता है । 'यूज एण्ड डिसयूज' के अनुसार कारण विशेष से शारीरिक रचना में परिवर्तन, अंगों का लोप और विकास होता है । प्रकृति योग्यता का चुनाव कर उनकी ही रक्षा करती तथा औरों की उपेक्षा करती है, फलतः वे नष्ट हो जाते हैं । प्राणियों में बलदान निर्बलों को नष्ट करके अपने को सुरक्षित रखते हैं । जिनमें अपने आपको परिस्थिति के अनुसार बना सकने की क्षमता होती है उन्हीं की सन्तान वृद्धि का क्रम चलता है । इस जीवन संघर्ष से विभिन्न गुणों-विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार भेद उत्पन्न होता है और परंपरानुगत था आनुवंशिकता से पुष्ट होते हैं ।

कुल मिलाकर यह कि विकासवाद के अनुसार मनुष्य पहले बन्दर था अर्थात् पृथ्वी पर जीवन का क्रमशः विकास हुआ तथा जीवितों में जो योग्य शक्तिशाली और सबल थे वे बचे रहे एवं अन्य प्राणी नष्ट हो गये । डार्विन के बाद ही उनके इस सिद्धान्त का खण्डन होने लगा था । उनके एक प्रमुख सहयोगी अल्फ्रेड रसेल वालेस ने जो डार्विन के बाद भी विकास सिद्धान्त की गवेषणा करते रहे अन्त में कहा—"मैंने विकास के उन मौलिक नियमों की सरल और गम्भीर परीक्षा की है, जिनको डार्विन ने अपने अधिकार के बाहर समझ कर जानबूझकर अपने ग्रन्थों में नहीं लिखा और उन नियमों की परीक्षा के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जीवन अभी भी अव्याख्येय है ।"

आल्फ्रेडरसेल वालेस ने यह मन्तव्य अपनी पुस्तक 'टि वर्ल्ड ऑफ लाइफ' में प्रकट किया था । चार्ल्स डार्विन के पुत्र जार्ज डार्विन ने स्वयं सन् १९०५ में कहा था कि जीवन का रहस्य अभी भी उतना ही गूढ़ है जितना कि पहले था ।

प्रो. पैट्रिक गेडीस ने कहा है कि—हम नहीं जानते कि मनुष्य कहाँ से आया और कैसे आया ? यह मान लेना चाहिए कि मनुष्य विकास के प्रस्तुत किये गये सिद्धान्त पर्याप्त प्रमाणों के अभाव में संदिग्ध हैं ।

स्वयं डार्विन ने भी लिखा था कि ये सिद्धान्त कोई अन्तिम रूप से सत्य नहीं हैं । हो सकता है कि आगे चलकर उनमें कुछ और नये तथ्य जुड़ जायें ।"

प्रो. ओर्वेन का कहना था कि—"मनुष्य अपने प्रकार की एकमात्र जाति है और अपनी जाति का एकमात्र प्रतिनिधि" । बन्दर से मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सर जे. डब्ल्यू. डौसन ने कहा है—"बन्दर और मनुष्य के बीच की आकृति का कुछ भी पता नहीं है । मनुष्य की प्राचीनतम अस्थियाँ भी मनुष्यों की सी ही हैं । उनसे उस विकास का कुछ भी पता नहीं चलता जो मनुष्य शरीर के पहले हुआ" ।

इन सब वैज्ञानिकों से अधिक विस्मयजनक और डार्विन के विकासवाद से एकदम विपरीत वैज्ञानिक अवधारणा प्रस्तुत की है प्रसिद्ध जीवशास्त्री जौन टी. रीड ने । उन्होंने कई तथ्यों, प्रमाणों और पुरातत्व अवशेषों के आधार पर कहा है कि—"मनुष्यों का विकास बन्दरों से नहीं हुआ प्रत्युत् बन्दर ही मनुष्यों से जन्मे हैं ।" इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए जॉन टी. रीड ने कहा है कि—"प्राचीनकाल में मनुष्य ने ज्ञानविज्ञान के क्षेत्र में बहुत उन्नति की थी । उनमें से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कईयों के सिर कमजोर हो गये । ऐसे कमजोर सिर वाले मनुष्यों में से कई तो वनमानुष हो गये'' ।

विकास सिद्धान्त के अनुसार जब एक ही जाति के प्राणी निर्बल और कमजोर होकर जीवन संघर्ष में हारने लगते हैं तथा उनसे शक्तिशाली उन्हें परास्तकर आगे बढ़ने लगते हैं तो यह असम्भव नहीं है कि मनुष्य जाति का ही एक भाग मस्तिष्क से कमजोर होने लगा तथा उसमें और दूसरे गुण उत्पन्न हो गये । फलतः आदमी बन्दर के रूप में उछल कर वृक्ष की डाल पर बैठा ।

यह तो अब तक की नवीन शोधों से सिद्ध हो चुका है कि बन्दर से मनुष्यों की उत्पत्ति का सिद्धान्त किन्हीं ठोस आधारों पर प्रतिपादित नहीं है । डार्विन ने विकास का अध्ययन करने के लिए संसार के कई भागों की यात्रा की और जीव-जन्तुओं की एक-एक जाति के अगणित भेद पाये । इन भेदों की मालथस सिद्धान्त के अनुसार संगतियाँ बिठाकर विकासवाद का सिद्धान्त स्थिर किया । मालथस के अनुसार कोई भी जीव, जाति की संख्या में अधिक बढ़ जाने के कारण जीवन संघर्ष में हार जाता है और उसी जाति के कुछ सदस्य नयी विशेषताओं के साथ जीवित रहते हैं ।

डार्विन ने इन परिवर्तनों का आधार जीवन संघर्ष मानते हुए विभिन्न आकार-प्रकार वाले जीव-जन्तुओं की कड़ियाँ मिलायीं और कहा कि पृथ्वी पर जीवन सरल से जटिल की ओर सर्जित होता गया । कई स्थानों पर प्राप्त बहुत पुराने प्राणियों के अवशेषों को आधार बनाकर उन्होंने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि सब प्राणी एक ही मौलिक शरीर यंत्र के परिशोधित एवं परिवर्धित रूप हैं । उदाहरण के लिए सर्वप्रथम बनी साइकिल बहुत ही भद्दे और भौंडे ढंग की थी । साथ ही वह इतनी आसानी से चलायी भी नहीं जा सकती थी जितनी आसानी से कि हम चला लेते हैं । उसमें सुधार होते-होते ही साइकिल का वर्तमान स्वरूप बना ।

इस तर्क का उत्तर देते हुए 'पाइन्स एण्ड रिलीजन' के लेखक डॉ. जे. एम. फ्लोमिंग ने लिखा है—'भले ही साइकिल एक ही यन्त्र का विकास हो किन्तु मोटर, रेल, वायुयान तथा कारखानों के यन्त्र तो सब साइकिल के विकास नहीं हैं । इसी तरह साँपों के अवान्तर भेद से साँपों का विकास भले ही हो परन्तु कनखजूरा जैसे सैकड़ों पैरवाला जीव, गिजाया आदि साँपों के विकसित रूप नहीं हो सकते हैं । फिर भी मानलें कि ये साँप की ही विकसित पीढ़ियाँ हैं तो फिर साँप को इस पृथ्वी से विलुप्त हो जाना चाहिए था, क्योंकि डार्विन के अनुसार जीवन संघर्ष में आत्मरक्षा के लिए प्रकृति ने ही उन्हें यह नया आकार-प्रकार दिया ।

कहा जाता है कि सूक्ष्म जन्तुओं का ही मछलियों कछुओं, पक्षियों, बन्दरों तथा मनुष्यों के रूप में विकास हुआ । यदि यही विकास क्रम वास्तविक है तो फिर बन्दरों से बन्दरों की, मनुष्यों से मनुष्यों की, पक्षियों से पक्षियों की और मछलियों से मछलियों की ही उत्पत्ति क्यों होती है ? आज भी बन्दरों की परम्परा से मनुष्यों का जन्म होना चाहिए । थोड़ी बहुत समानता से अन्यत्र अन्य रूप में परिणाम हो—यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कितने ही पौधे समान रूप आकार-प्रकार के होते हुए भी गुण और लक्षणों में भिन्न होते हैं । एक समान दिखाई देने वाले कितने ही पौधे औषध भी होते हैं—और विष के समान भी । एक समान घोड़ों में भी हय, अश्व और अर्वा घोड़ों की जातियों में अलग-अलग गुण, स्वभाव और आदतें पायी जाती हैं । यही क्यों एक ही आकृति के मनुष्यों में भी कोई दुष्ट दुर्जन होता है तो कोई सन्त-सज्जन ।

ईश्वर ने हर प्राणी को अपनी स्वतन्त्र सत्ता सृष्टि के आरम्भ में ही दी है । अमीबा अभी भी अमीबा ही है । मनु की सन्तान मानव ने अपनी लम्बी यात्रा में कई उतार-चढ़ाव तो देखे होंगे, परन्तु मनुष्य किसी और रूप में इस सृष्टि पर आया तथा आकृति में विकसित होता गया, यह असम्भव ही है । सन् १९२३ में नेवादा की खुदाई करते समय ६ लाख वर्ष पुराना एक जूता मिला है । उस जूते की सिलाई, धागों का मरोड़ और मात्रा इतना कौशलपूर्ण है कि वह आज के किसी भी जूते की तुलना में अधिक मजबूत सिद्ध होता है । यहीं नहीं वहाँ ऐसे प्रमाण भी मिले हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि तब वहाँ कोई बहुत विकसित सभ्यता रही होगी । स्मरणीय है वहाँ प्राप्त अवशेषों की आयु भूगर्भ विद्याशास्त्रियों ने निर्धारित की थी । 'थियोसोफिकल पाथ' पत्रिका के अगस्त १९२३ अंक में प्रकाशित एक लेख में बताया गया है कि नेवादा की सभ्यता आधुनिक सभ्यता की तुलना में कहीं भी उन्नीस नहीं ठहरती ।

विकास सिद्धान्त के अनुसार अब से साठ हजार वर्ष पूर्व ही इस धरती पर आदि मानव के चरण पड़े तो नेवादा की छह लाख वर्ष पुरानी सभ्यता कौन से जीवों ने विकसित की थी । विकासवादियों के पास इसका कोई उत्तर नहीं है । यह ठीक है कि मानव सभ्यता उत्थान और पतन, प्रगति और अवनति के कई दौरों से गुजरी । साधनों ने उसके चिन्तन और कर्तृत्व तथा जीवनयापन के क्रम में भी परिवर्तन किया होगा । इतने पर भी मानव की मूल सत्ता—जिसे ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति कहा जाता है आरम्भ से ही अपनी मौलिक विशेषताओं को साथ लेकर जन्मी है और उन्हें पूर्णता का जीवन लक्ष्य प्राप्त करने तक अपने अन्तरंग में धारण किये ही रहेगी ।

मनुष्य आदिमकाल में भी बुद्धिमान था

विकासवाद की आधुनिक मान्यताओं के आधार पर यह समझा और समझाया जाता है कि पुरातन काल में सर्वत्र पिछड़ापन छाया था । प्रगति के पथ पर तो क्रमशः ही आगे बढ़ सकना सम्भव हुआ है । इसका अर्थ यह हुआ कि पूर्वज हर क्षेत्र में पिछड़े हुए थे । प्रगति क्रमिक गति से हुई है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसीलिए यह माना जाना चाहिए कि आज का मनुष्य ही विकास की सर्वोच्च सीढ़ी पर है ।

यह प्रतिपादन आंशिक रूप से ही युक्ति-युक्त माना जा सकता है । हो सकता है आज का मनुष्य भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक सफलता प्राप्त कर सका हो और सुविधा-सामग्री की दृष्टि से अधिक अच्छी स्थिति में हो । पर यह नहीं समझा जाना चाहिए कि प्राचीनकाल में भौतिक विज्ञान अथवा समाज विज्ञान की दृष्टि से पिछड़ापन छाया हुआ था । उपलब्ध प्रमाणों से स्पष्ट होता रहा है कि भूतकाल में भी विज्ञान की अनेक धाराएँ मनुष्य ने हस्तगत की थीं और ऐसे पराक्रम प्रस्तुत किये थे, जिन्हें देखकर आज के विज्ञानवेत्ता हतप्रभ से दीखते हैं । पुरातन काल में प्रगति के अगणित प्रमाण मिलते जा रहे हैं । साथ ही इस स्तर की उपलब्धियों की साक्षियाँ बढ़ती जा रही हैं, जिनके सम्बन्ध में यह प्रतीत नहीं होता कि उन दिनों की परिस्थितियों में अभिनव जैसे दीखने वाले कार्य किस प्रकार सम्भव बनाये गये होंगे ।

अन्य सबूतों के अलावा 'रेडियो कार्बन डेटिंग पद्धति' से भी इस बात की पुष्टि हुई है कि मिश्र का गीजा स्थित यह पिरामिड ईसा पूर्व लगभग २५०० वर्ष पूर्व निर्मित हुआ था । चार्ल्स पियाजी स्मिथ ने उन्नीसवीं शताब्दी में जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की थीं उनमें से उसकी एक खोज यह भी थी कि यह बड़ा पिरामिड पूरे संसार के मध्य में स्थित है ।

आज किसी को यह वास्तविकता नहीं मालूम है कि इतने बड़े-बड़े पत्थर (२ से ५ टन के) क्या मिट्टी के ढालू चढ़ावों पर धकेल कर चढ़ाये गये थे या इन्जीनियरिंग उपकरणों द्वारा चढ़ाकर अपने स्थानों में रखे गये थे ? पिरामिडों के निर्माताओं के सामने सबसे प्रथम चुनौती तो यह थी कि १३ एकड़ से कुछ अधिक के इतने बड़े क्षेत्र में उन्होंने पूरी तरह समतल नींव कैसे तैयार की होगी ? इसके लिए एक परिष्कृत सुझाव आया है कि सम्भवत: पिरामिड के आधार तल (वर्गाकार) की पूरी परिधि पर मिट्टी का बँधान बना लिया गया और उसे अन्दर से पानी से भरा गया होगा । पानी की समतल सतह के ऊपर निकले टीले व ऊबड़-खाबड़ भागों को छीलकर, खोदकर समतल बनाया गया होगा और पानी को धीरे-धीरे बाहर निकालते गये होंगे । इस तरह हम देखते हैं कि इस पिरामिड का आधार स्थूल आज इतना समतल है कि उसमें १०,००० भाग में से १ भाग की शुद्धता है । लगभग इतनी ही न्यूनतम शुद्धता-सूक्ष्मता हमारे आधुनिक निर्माण कार्यों में भी रहती है ।

विलियम पेटर्सन कालेज न्यूजर्सी में प्राचीन इतिहास के प्रोफेसर डा. लिवियो स्टेशिनी द्वारा इस पिरामिड की गणितीय विशेषताओं का पुनर्परीक्षण किया गया था । डा. लिवियो स्टेशिनी के साथ पीटर टाम्पकिन्स ने पिरामिड निर्माण में सन्निहित अनेक उपलब्धियों को गिनाया है । उनके अनुसार सबसे बड़ा पिरामिड एक अत्यन्त सावधानीपूर्वक स्थापित, भूभाग का एक स्थिर निशान है । इन स्थिर बैंच मार्क से पृथ्वी के पूरे विशाल क्षेत्र का सर्वेक्षण किया जा सकता था जिसमें पृथ्वी की गोलाई का सन्तुलन करना भी शामिल था । इसी आधार पर पूरे विश्व का भव्य प्राचीन भूगोल मानचित्र तैयार किया गया था । यह एक आकाशीय बेधशाला थी, जिससे तारामण्डल के गोलार्द्ध का सूक्ष्म रूप से शुद्ध मानचित्र व चार्ट तैयार किये जा सकते थे ।

किसी जमाने में चट्टान ही मानव निर्माणों का प्रमुख साधन सामग्री के रूप में प्रयुक्त होती थी । उन दिनों धातुओं का आविष्कार नहीं हुआ था तो भी उपलब्ध साधन सामग्री का ऐसा आश्चर्यजनक उपयोग हुआ जिसे देखते हुये यह समझना अति कठिन पड़ता है कि इन भीमकाय चट्टानों को इधर से उधर ले जाने और उन्हें उपयुक्त उपकरणों के रूप में प्रयुक्त करने में किसी स्तर के विज्ञान कौशल एवं शक्ति स्रोत का उपयोग किया गया होगा । उसे किस प्रकार जुटाया गया होगा ।

'दी वर्ल्ड एटलस आफ मिस्ट्रीज' पुस्तक में ब्रिटिश उपद्वीपों और ब्रिटानी भू-भाग का चित्र दिया हुआ है । इन भू-भागों में काले धब्बों से विभिन्न स्थलों पर बने पाषाणों के वृत्त, टीले और अन्य स्मारक दर्शाये गये हैं । इनमें मुख्य स्थान केलानिश, स्टेनेस बाडगर, क्लावा, न्यूगेंज, लांगमेग एण्ड हरडाटर्स, आरबरलो, स्टेन्टन ड्रयूरोलराइट स्टोन्स, एबवरी स्टोनहैन्ज और कारनाक आदि हैं ।

ये खड़े हुये विशाल लम्बे पत्थर, मिट्टी के टीले और मुर्दा गाड़ने के प्रकोष्ठ, मनुष्य के सबसे प्राचीन और सबसे ज्यादा रहस्यमय स्मारक हैं । यूरोप के एटलांटिक समुद्र तट की २५०० किलोमीटर की पट्टी में ये फैले हुये हैं । इस खोई हुई सभ्यता के उत्कर्ष की पराकाष्ठा स्टोनहैन्ज स्मारक के निर्माण में प्रतीत होती है । इनमें सबसे प्राचीन स्मारक इतने सुदूर प्राचीनकाल का है, जो हैरानी में डालने वाला है ।

इतने बड़े-बड़े पत्थरों के खण्डों को काटकर अलग करने और उन्हें घसीटकर लाने में इतनी शक्ति क्यों लगाई गयी ? कुछ स्थलों पर तो उनको लगाने का निर्धारित स्थान कई मील दूर था । स्टोनहैन्ज में लगे नीले पत्थर तो वेल्स के प्रेसली पर्वतों से दो सौ किलोमीटर की दूरी से आये है । यद्यपि स्टोनहैन्ज प्रभावशाली हैं, पर कई अन्य स्थानों पर लगे अनेक पत्थर इनसे भी ज्यादा बड़े आकार के हैं । उत्तर फ्रांस के ब्रितानी क्षेत्र के लोक मेरियाकर में 'ग्रेन्ड मेनहिर ब्राइज' नामक विराट आकार की एक दीर्घ लाट किसी समय ५० मीटर ऊँची खड़ी थी और उसका वजन ३४० टन था ।

कारनाक के निकट ३००० से भी अधिक पत्थर सीधी पंक्तियों में जमे हुये इतने विस्तृत क्षेत्र में फैले हुये है कि जहाँ तक क्षितिज पर आँखें देख सकती हैं उससे भी आगे चले गये हैं और वास्तव में ये पत्थर इससे भी बड़ी विशाल ज्यामितीय आकृति में थे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभी-अभी जो एक तथ्य सामने आया है कि यदि इन स्थानों में वास्तव में कोई दिव्य शक्ति थी तो वह सावधानी पूर्वक खगोलीय (आकाशीय) पर्यवेक्षणों से किसी तरह प्राप्त की गयी थी । इस तथ्य का अध्ययन करने के लिए ज्ञानार्जन की एक नयी शाखा नक्षत्रीय पुरातत्व शास्त्र का उदय हुआ है ।

एलेक्जेण्डर थाम इसे ज्यामितीय उपलब्धि का चरमोत्कर्ष मानते हुये कहते हैं कि यह कुछ ऐसी बात है कि संसार भर के इतिहास में कभी भी कोई इन्जीनियर इस उपलब्धि पर गर्व कर सकता था ।

बाहर निकले हुये पत्थरों के निशानों व पहाड़ी की तंग घाटियों , अलग से विशेष रूप से बनाये गये चबूतरों आदि स्थानीय वस्तुओं का उपयोग करके उन्होंने अपने इस पाषाण वृत्तों को बेधशालाओं का रूप दिया था । वे मध्य ग्रीष्म या मध्य शीतकाल के दिनों के सूर्योदय जैसी अपेक्षाकृत सरल चीजों को ही नहीं नापते थे, परन्तु बहुत सारी सूक्ष्म गतिविधियों-हरकतों का भी पर्यवेक्षण करते थे, जिनमें १००० भाग में से १ भाग की सही नाप की आवश्यकता होती है । वे चन्द्रमा के अल्प विराम का पता लगाने में सक्षम हो गये थे ।

इन आदि खगोलविद्-पुरोहितों को यह ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? उसे वे पीढ़ी दर पीढ़ी कैसे सम्प्रेषित कर सके, ब्रिटिश खगोल वैज्ञानिक सर फ्रेड होपले ने इसे अपने शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—"वास्तव में कोई न्यूटन या आइस्टीन इस काम में लगा होगा ।" वहाँ कोई विश्वविद्यालय रहा होगा । जिसमें यह विद्या पारंगत बनाने के स्तर तक छात्रों को पढ़ाई जाती होगी ।

जिन दिनों मनुष्य पिछड़ा, अनाड़ी, अभावग्रस्त माना जाता है, उन्हीं दिनों के अगणित निर्माणों में से ऊपर दो का उल्लेख है । इन पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि मनुष्य क्रमिक विकास के मार्ग पर चला तो है पर तथाकथित आदिम काल के पाषाण युग में भी वह सर्वत्र विज्ञान बुद्धि से रहित नहीं था ।

जीवन विकास का चक्र क्रम

रेखागणित के दो महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त हैं— (१) रेखा (२) चक्र । रेखा उसे कहते हैं जो एक स्थान से आरम्भ होकर दूसरे स्थान पर समाप्त होती है । उदाहरण के लिए, लाठी । यह एक रेखा है उसका आदि और अन्त दो सिरों के रूप में देखा जा सकता है चक्र वह है जिसका कहीं आदि अन्त नहीं । गाड़ी का पहिया या गेंद उसका उदाहरण है । उसका आदि कहाँ है और अन्त कहाँ, यह बताया नहीं जा सकता । यदि बताया जायगा तो जहाँ आदि होगा वहीं उसके साथ बिलकुल सटा हुआ—सर्वथा अविछिन्न अन्त भी जुड़ा रहेगा ।

विकासवाद का प्रतिवाद जीवन को 'रेखा' की तरह आदि अन्त युक्त सिद्ध करने का है । 'अमीबा' सरीखे एक कोषीय जीवों के रूप में प्राणी का आरम्भ हुआ और वह मछली, मेंढक, सरीसृप, शूकर, वानर आदि के रूप में विकसित होते हुए मनुष्य बना । यदि यह सही माना जाय तो भावी विकास की वैसी ही विशालकाय कल्पना करनी पड़ेगी । अमीबा और मनुष्य की शारीरिक, मानसिक स्थिति में जितना अन्तर है कम से कम उतना अन्तर तो आज के मनुष्य और भविष्य के मनुष्य में रहेगा ही । वह विशालकाय शरीर वाला और असीम सम्भावनाओं युक्त मन वाला मनुष्य आखिर कितने बड़े आकार-प्रकार का होगा यह सोचना बहुत कठिन मालूम पड़ता है । सृष्टि के अन्त तक वह मनुष्य प्राणी कितना विस्तृत हो जायगा, यह कल्पना करते-करते सिर चकराने लगता है । फिर अन्य प्राणियों का भी तो उनकी जाति परिधि में विकास होना है । तब सृष्टि के अन्त तक आज के अनेकानेक जीवधारी कितने बड़े हो जायेंगे । उनकी स्थिति कितनी विस्तृत, कितनी समुन्नत हो जायगी । यह एक ऐसी विचित्र सम्भावना है जो गले नहीं उतरती । जिनने भूतकाल से लेकर वर्तमान तक की कल्पना कर ली उन्हें कृपापूर्वक यह क्रम आगे भी जारी रखना चाहिए था और यह भी बताना चाहिए था कि इस विकास क्रम का भविष्य कहाँ है ? उसका दूसरा सिरा कहाँ जाकर पूर्ण होगा ?

हमारे पूर्वज बन्दर थे । बन्दर ने अपनी अनावश्यक पूँछ उखाड़ फेंकी । हमें भविष्य में अपने वर्तमान अवयवों में से क्या-क्या उखाड़ फेंकने होंगे यह बताया जा सका होता तो अधिक अच्छा होता । नाक, कान तो बिल्कुल ही बेकार हैं । दो आँखों की जरूरत भी, एक से ही पूरी हो सकती है । हाथी जब एक सूँड में अपना हाथ का काम चला सकता है तो मनुष्य ही दो हाथों का दूना भार क्यों लादे फिरे ? पैर इतने लम्बे होने से बहुत बेतुके हैं । छोटे गाड़ी के पहियों की तरह वे हों तो छोटी चारपाई, छोटा विस्तर, छोटा मकान बनाकर काम चलाया जा सकेगा । साँप की तरह चिकना शरीर हो तो पेट के बल रेंगना भी क्या बुरा है ? पक्षी की तरह उड़ने में आदमी को बहुत सुविधा रहेगी । जब पानी में से निकलकर थल पर चलने में विकासवादी मनुष्य सफल हो गया तो उसे थलचर से नभचर बनने में क्यों सुविधा अनुभव न होगी ? यदि सुविधा-असुविधा की दृष्टि से जीव अनावश्यक अंगों को उखाड़ कर फेंक सकता है और दूसरे उपयोगी अवयव उठा सकता है तो वह सिलसिला पूँछ उखाड़ फेंकने तक ही क्यों समाप्त होना चाहिए । वर्तमान शरीर में जो असुविधाजनक है उसे हटाने और सुविधाजनक उत्पादन का प्रयास क्यों नहीं होना चाहिए । यदि ऐसा सम्भव हो तो निश्चय ही अब की अपेक्षा मनुष्य की काया में, आकृति-प्रकृति में जमीन-आसमान जितना परिवर्तन करने की गुंजाइश प्रतीत होगी । तब उस स्वेच्छया निर्माण से मनुष्य निश्चित रूप से इस कलेवर को सर्वथा बदल डालेगा, जिसमें वह आज जकड़ा हुआ है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन सत्ता के बारे में हमारा दार्शनिक प्रतिपादन इन विकासवादियों से सर्वथा भिन्न है । तत्व-दर्शन ने जीवन को एक चक्र माना है जिसका न आदि है न अन्त । वह गोल घेरे की तरह है जिसका यदि आदि अन्त मानना हो तो दोनों को एक-दूसरे के साथ बिलकुल सटा हुआ ही कहना पड़ेगा ।

अण्डे में से पक्षी उत्पन्न हुआ या पक्षी से अण्डा जन्मा ? बीज से वृक्ष उत्पन्न हुआ या वृक्ष में बीज उगाया ? नर से नारी उत्पन्न हुई या नारी ने नर को जना ? मरण के बाद जन्म हुआ या जन्म के उपरान्त मृत्यु आई ? ऐसे प्रश्नों का उत्तर चक्र स्थिति का प्रतिपादन करके ही दिया जा सकता है । रेखा स्थिति की मान्यता के आधार पर इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता है । प्राणी चौरासी लाख यौनियों में भ्रमण करता उत्थान-पतन के चक्र में घूमता है । ज्वार-भाटे की तरह उसका उत्कर्ष-अपकर्ष होता है । सूर्य की तरह उसका उदय, अस्त, संक्रमण चलता है । पृथ्वी की तरह ऋतु-चक्र से जीवन को गुजरना पड़ता है । यही उत्तर युक्तिसंगत प्रतीत होता है । भारतीय तत्व दर्शन इसी जीवन चक्र का समर्थन, प्रतिपादन करता रहा है ।

जन्म और मरण—किशोरावस्था और बुढ़ापा—इसी जीवन में इस 'चक्र' क्रम की एक झाँकी हम देखते हैं । शरीरों की दृष्टि से यह क्रम अन्य यौनियों में भी चलता रह सकता है । अपराध करने पर जेल में बन्द कर दिये जाने—कर्मचारी के ड्यूटी पूरी न करने पर एक दर्जा नीचे उतार दिये जाने की बात स्पष्ट है । जिस यौनि में जो कर्तव्य निर्धारित किये गये हैं उन्हें पालन न करने पर सुधार-शिक्षण अथवा दण्ड के लिए नीचे की यौनियों में लौटना पड़ता हो तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं । जो गलत सीखा है उसे भुलाना भी आवश्यक है अन्यथा वह गलती भविष्य में लगातार होती रहेगी । बुरी आदतों को छुड़ाने के लिए एकाकी जीवनयापन करने की व्यवस्था कठोर तो है, पर सुधार की दृष्टि से उसकी उपयोगिता भी है ।

मनुष्य को यदि अपनी अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियाँ, बुरी आदतें भूलने के लिए नीची समझी जाने वाली यौनियों में जाना पड़ता हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है । बेकार हुए लोहे को भट्टी में डालकर गलाया जाता है, तब वह नया जीवन फिर आरम्भ करता है । इस प्रकार सड़े-गले जीवन की आदत पड़ जाने पर यदि मनुष्य को छोटी यौनियों में तपने, गलने के लिए वापिस लौटना पड़ता हो तो इसमें कोई अस्वाभाविक बात नहीं है । मनुष्य जीवन में सही और गलत दिशा पकड़ने वालों को दंड और पुरस्कार भोगने पड़ सकते हैं । लुहार अपने उपकरणों और कुम्हार अपने बर्तनों को इसी प्रकार तो ठोंक-पीटकर गला-जलाकर काम के योग्य बना पाता है । वैद्य की औषधियों को भी तो घोंटने-पीसने, जलाने-उबालने की चित्र-विचित्र प्रक्रिया में होकर गुजरना पड़ता है । जीवन चक्र में इस प्रकार के उतार-चढ़ाव आ सकते हैं । मनुष्य को सदा मनुष्य ही रहना चाहिए—उसे नीचे की यौनियों में नहीं लौटना पड़ता—चौरासी लाख यौनियों में भ्रमण करने की बात गलत है ऐसा नहीं कहा जाना चाहिए । अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि मनुष्य स्तर तक पहुँचने वाले को कुछ समय के लिए सुधार अथवा दण्ड स्वरूप ही नीचे की यौनियों में जाना पड़ता है पीछे वह प्रयोजन पूरा होने पर जल्दी ही लौटकर अपनी जगह वापिस आ जाता है । दुष्कर्मों का दण्ड यदि नरक हो सकता है तो उसी नारकीय जीवन में कीट-पतंगों की, पशु-पक्षियों की अभावग्रस्त एवं कष्टसाध्य यौनियों को सम्मिलित कर सकते हैं । विचारशील स्तर तक पहुँचे मनुष्य को जब इन यौनियों में लौटना पड़ता होगा तो उसे सामान्य क्रम से विकसित होने वाले प्राणियों की अपेक्षा निश्चय ही अधिक कष्ट अनुभव होता होगा और उसकी चेतना को पश्चाताप करने का, सुधार का नये सिरे से उचित मार्ग पर चलने का प्रकाश मिलता होगा ।

जीवन-चक्र की यथार्थता इस दृष्टि से भी है कि वह पूर्ण से उत्पन्न हुआ और फिर एक यात्रा पूरी करते हुए पूर्ण में ही जा मिलता है । सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर अकेला था, क्रीड़ा-कल्लोल का रसास्वादन करने के लिए उसने अपने को अपने खण्डों में बाँटा, अनेकता अपनाई और सृष्टि संरचना बनकर खड़ी हो गई । यह खेल अन्त में समाप्त ही होता है । महाप्रलय में मकड़ी द्वारा अपना जाला समेट लिए जाने की तरह फिर वह अकेला ही रह जाता है । जीवन-क्रम भी इसी प्रकार है विभिन्न यौनियों के खट्टे-मीठे अनुभव प्राप्त करता हुआ प्रत्येक काय-कलेवर की दी गई अपने-अपने ढङ्ग की विशेषताओं का आनन्द लेता हुआ वह लौटकर पुनः उसी केन्द्र में जा मुड़ता है जहाँ से उत्पन्न हुआ था ।

विचार या शब्द की रेडियो तरंगें एक बहुत बड़े घेरे में भ्रमण करती हुई उसी केन्द्र पर लौट आती हैं जहाँ से दे आरम्भ हुई थीं । पृथ्वी पर एक सीधी दिशा में चलें तो अन्ततः वहीं आ पहुँचेंगे जहाँ से चले थे । पृथ्वी अपनी धुरी पर कक्षा पर घूमती है और लौट-लौटकर वापिस आती है । अन्य ग्रह-नक्षत्र भी इसी प्रकार परिक्रमा करते हैं । जीवन-चक्र भी इसी परिक्रमा परिधि में घूमता है । उसका क्रम रेखावत् नहीं है जैसा कि डार्विन आदि विकासवादी बताते हैं । जीवन विकास चक्र गति से चल रहा है । उसी में उसकी उपयोगिता है और सुखद सम्भावना भी ।

इस आधार पर यह सहज ही सिद्ध किया जा सकता है कि मनुष्य अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ ईश्वर से उत्पन्न हुआ और अन्ततः उसी में विलीन हो जाता है । वही उसका आदि और अन्त है । इस अवधारणा के विपरीत यदि जीव-उत्पत्ति के संबंध में डार्विन के विकासवाद को आधारभूत तथ्य के रूप में स्वीकारा गया, तो फिर यह बता पाना मुश्किल होगा कि जो विकास-यात्रा अमीबा से आरंभ होकर सम्प्रति मनुष्य तक पहुँची है, उसका चरमोत्कर्ष कब, किस रूप में, कैसा होगा ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इच्छित दिशा में जीवधारियों का विकास

जीवविज्ञान के क्षेत्र में पिछली शताब्दी में प्रतिपादित विकासवाद के सिद्धान्त ने मनुष्य के गौरव, उसके मूलस्वरूप, स्तर, स्वभाव और आधार पर जिस तरह चोट की है वह मनुष्य को नियति के हाथ का एक खिलौना भर सिद्ध करती है । 'जीवन संघर्ष' विकासवाद का एक प्रमुख सिद्धान्त है । उसके अनुसार पृथ्वी पर सर्वप्रथम एककोशीय अमीबा के रूप में जीवन अवतरित हुआ । अमीबा इतने बढ़े कि उनके लिए पोषण की वस्तुओं का अभाव होने लगा । फलतः अमीबा का तेजी से ह्रास होने लगा और जो अमीबा बलवान तथा योग्य थे वे अधिक विकसित रूप में जीवित रहे । इस जीवन संघर्ष में योग्य बचे और अयोग्य मारे गये । संघर्ष का यह क्रम अनवरत चलता रहा । साथ ही योग्य प्राणी बचे और अयोग्य लुप्त हो गये । जो बचे, परिस्थितियों के अनुसार उनके आकार-प्रकार भी बदलते रहे और इसी क्रम से क्रमशः मछली, मेंढक, साँप, पक्षी, गाय, बैल, घोड़े, बन्दर, बनमानुष और मनुष्य की उत्पत्ति हुई ।

दूसरे प्राणियों से उन्नत प्राणियों का विकास हुआ—इस सिद्धान्त के खण्डन के कई तर्क दिये जा सकते हैं और यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि पृथ्वी पर चलने वाले जीवन संघर्ष में योग्य, बलवान, अयोग्य, अशक्तों को मारकर जीवित बचे तथा विकसित हुए । जैसे अमीबा अभी भी इस रूप में पाये जाते हैं, जिस रूप में कहा जाता है कि वह पृथ्वी पर सर्वप्रथम अवतरित हुआ । यदि अमीबा ही विकसित होकर दूसरे रूप में बढ़ा तो अमीबा जीवित क्यों है ?

फिर भी जातिविधान, लुप्तजन्तु, गर्भशास्त्र, संधियोनियाँ आदि को जैविक परिभाषाओं के अनुसार यह सिद्ध करने का निरन्तर प्रयास चलता रहा है कि पृथ्वी पर जीवन क्रमशः विकसित हुआ । क्रमिक विकास का यह सिद्धान्त इतना बहुसमर्थित है कि उसके कारण मनुष्य को पूर्व इतिहास नितान्त ही दीन, हीन और मूल्यहीन ही ठहरता है । मनुष्य जाति के पूर्वज वर्तमान की अपेक्षा बहुत गिरे हुए, अविकसित, असभ्य और कहना चाहिए बन्दर थे—यह मान्यता हमें अपने अतीत के प्रति अश्रद्धालु और स्वयं को अहंकारी ही बनाती है ।

सवाल केवल भावनाओं और सांस्कृतिक मूल्यों का ही नहीं है । विकासवाद की यह धारणा तथ्यों से भी परे है । क्रमिक विकास के सिद्धान्त का एक अंश ही ग्राह्य हो सकता है । जैसे बालक का शरीर और मस्तिष्क अविकसित होता है । समय के अनुसार उसकी प्रगति होती है और युवावस्था तक पहुँचने पर वह प्रौढ़, प्रगल्भ, परिपक्व बन जाता है ।

लेकिन मनुष्य की या अन्य जीव-जन्तुओं की मूल परम्परा में एकरूपता और समानता बनी रहती । जीवधारियों में इस परम्परागत समानता की सम्भावना उनके शुक्राणुओं में विद्यमान मानी जाती है । गेहूँ के बीज से ही गेहूँ उत्पन्न होता है । आम की आकृति और स्वाद का पूरा ढाँचा उस गुठली में भरा रहता है जिससे कि नया पौधा उत्पन्न होता है । इस वंशधर में अपने पूर्वज के गुण ही विकसित पाये जायेंगे । विकास क्रम की यह परम्परा कहीं भी देखने में नहीं आती कि सरसों का बीज क्रमशः विकसित होते-होते कटहल जैसे फूल लगाने लगा हो । मूँग की बेल पर कद्दू जैसे स्वाद और आकार के फल लग सकना शायद कभी भी सम्भव न हो सकेगा ।

विकासवाद के अनुसार जिन अंगों का उपयोग न किया जाय वह जंग खाकर नष्ट हो जाता है । जिन अंगों का उपयोग किया जाय वही अंग विकसित होते हैं । 'थ्योरी आफ यूज एण्ड डिसयूज' के इसी सिद्धान्त के अनुसार जीवों में अवशेष तथा विभिन्न प्राणियों की शारीरिक संरचना का तुलनात्मक अध्ययन कर विकासवाद का क्रम निरूपण किया जाता है । जैसे बन्दर ने पेड़ों पर से उतरकर जमीन पर रहना आरम्भ किया तो उसकी पूँछ का उपयोग भी बन्द हो गया । फलस्वरूप पूँछ धीरे-धीरे कमजोर पड़ती गयी और बन्दर से मनुष्य बनने तक पूरी तरह नष्ट हो गयी ।

यह संगति भी कल्पना और अनुमान के आधार पर ही बिठायी गयी है । प्रकृति के परमाणुओं में भी ऐसी व्यवस्था नहीं कि एक बीज से दूसरे भिन्न बीज की या भिन्न बीज वाले पदार्थ की उत्पत्ति हो सके । इस क्रम निरूपण की प्रामाणिकता को परखने के लिए पिछले दिनों कार्नेल यूनिवर्सिटी के 'सेल' फिजियोलौजी ग्रोथ एण्ड डेवलपमेण्ट्स' विभाग के निर्देशक श्री एफ. सी. स्टीवर्ड ने एक प्रयोग किया और उस प्रयोग में एक गाजर काटी । गाजर में असंख्य कोशिकायें थीं । प्रत्येक कोशिका में समान गुण थे । स्टीवर्ड ने कुछ कोशिकायें निकाल कर काँच की नलियों में रखीं और उनमें नारियल का पानी भर दिया ।

एक कोशिका के और अधिक टुकड़े नहीं किये जा सकते, परन्तु नारियल का पानी पाते ही गाजर की वे कोशिकायें एक से दो, दो से चार, चार से आठ के क्रम में बढ़ने लगीं और अन्त में प्रत्येक कोश एक स्वतन्त्र गाजर का पौधा बन गया । इस प्रयोग के आधार पर प्रो. स्टीवर्ड ने सिद्ध किया कि कोई भी कोशिका अपनी जाति के नये कोश बनाने की शक्ति तो रखती है, परन्तु वह नयी जाति के कोश नहीं बना सकती है ।

फिर भी यह मान लिया जाय की जीवधारियों मे धीरे-धीरे परिवर्तन हुए तो प्रश्न उठता है कि परिवर्तन का वह क्रम अब रुक क्यों गया है ? ज्ञात इतिहास से अब तक मनुष्य शरीर में कोई परिवर्तन के संकेत नहीं मिलते ? क्या प्रकृति की विकास प्रक्रिया रुक गयी है ? दूसरा प्रश्न यह है कि विकासवाद के अनुसार जीव में सामान्य से विकास में करोड़ों वर्ष लग गये तो मनुष्य जैसे विलक्षण जीव के रूप में वनमानुष सहसा किस प्रकार विकसित हुआ ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्मरणीय है विकासवाद के अनुसार पृथ्वी पर तीन हजार लाख वर्षों में जो जीवन-चक्र चला वह प्रारम्भ के ढाई हजार लाख वर्षों तक बहुत ही मन्द गति से चला—उसमें केवल जीवन के लक्षण थे । पाँच करोड़ वर्ष पूर्व से ही जीवन के विकास की गति अति तीव्र हुई तथा एक करोड़ वर्ष पूर्व पशु तथा वनस्पति जगत में जीवन के विभिन्न प्रमाण मिले । मनुष्य के पूर्वज तो कुछ लाख वर्ष पूर्व ही विकसित हुए और वे भी एक लाख वर्ष पूर्व तक गुफावासी और पाषाण युग में थे । मनुष्य का मानसिक विकास तो गत १०-१२ वर्षों से ही हुआ और उसमें भी अधिकतम विकास पिछले दो हजार वर्षों में हुआ । कहा जाता है कि ज्ञान-विज्ञान का जितना विकास पिछले दो हजार वर्षों में उससे अधिक पिछले दो सौ वर्षों में हुआ । दो सौ वर्षों में भी पिछले पचास वर्ष ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अब तक के विकास के अद्वितीय उदाहरण हैं ।

यहाँ यह विचारणीय है कि ज्ञान-विज्ञान का विकास इतनी तीव्रगति से हुआ तो शरीर का विकास अवरुद्ध क्यों हो गया ? और मनुष्य का बौद्धिक विकास हुआ तो उसके कथित पूर्वज बन्दर बौद्धिक दृष्टि से जहाँ के तहाँ ही क्यों हैं ? मनुष्य जैसे विलक्षण जीव के रूप में विकसित होने के बाद मनुष्य उससे भी अधिक विलक्षण-विचक्षण क्यों नहीं हो सका ? सुलझे हुए वैज्ञानिकों ने विकासवाद पर इस तरह के कई प्रश्न चिन्ह लगाये हैं ।

विकासवादी सिद्धान्त के अनुसार अब से छह हजार वर्ष पूर्व सुमेरिया में गुफावासी आदिम मानव 'नियोलिथिक' रहता था । लेकिन पुरातत्व शोधों के अनुसार तब वहाँ एक सुविकसित सभ्यता विद्यमान थी । वहाँ के लोग नगरों में रहते थे, खेती करते थे और कला-संगीत के क्षेत्र में भी विकास कर चुके थे । हिन्दू सभ्यता और मय सभ्यता विश्व की सर्वाधिक प्राचीन सभ्यताएँ मानी जाती हैं । दोनों सभ्यताओं में प्रचलित और लिपिबद्ध गाथाओं के अनुसार उन दिनों अन्तरिक्ष से विमान आते जाते थे और पृथ्वीवासियों का अन्य ग्रहों, लोकों के निवासियों से भी सम्पर्क था ।

सृष्टि पर जीवन का क्रमशः विकास हुआ और फिर कुछ हजार वर्ष पूर्व मनुष्य आज की तरह चलना सीख सका, उपलब्ध प्रमाणों के बाद भी यह मानना पूर्वाग्रह पूर्ण होगा । जीवन का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है, जिसे भारतीय तत्वविदों ने जीवसत्ता का नाम दिया है । यह जीवात्मा अपनी इच्छा और कर्मों के अनुसार किन्हीं भी योनियों में किन्हीं भी प्राणियों के देह में निवास करने लगती है । मनुष्य की जीव चेतना, अन्य प्राणियों का देहधारण भी कर सकती है और अन्य प्राणी मनुष्य योनि में भी जन्म ले सकते हैं, मनुष्यों के समान कई प्राणियों के व्यवहार और कई मनुष्यों का पाशविक आचरण इस बात का प्रतीक है कि जीवसत्ता अपने पूर्व जीवन के संस्कारों को साथ लेकर विभिन्न योनियों में भ्रमण करती है ।

इस परिवर्तन या विकास की जड़वादी व्याख्या अधूरी है और अब तो भूगर्भवेत्ता भी इस व्याख्या को असंगत ठहरा रहे हैं । विकासवादी विश्लेषण के अनुसार प्राणियों की पूर्व स्थिति में वापसी असम्भव है । विश्व के विभिन्न भागों में प्राप्त हाथियों के फासिल्स के आधार पर भूवेत्ताओं ने निष्कर्ष निकाला कि करोड़ों वर्ष पूर्व हाथी की उत्पत्ति हुई तथा उस समय हाथी का आकार कुत्ते के बराबर था ।

कहा जाता है कि करोड़ों वर्ष पूर्व भारत की शिवालिक पहाड़ियों में हाथी विशाल संख्या में विद्यमान थे । हाथी का आदिम विकास 'मोटोथिटियम' जीव से हुआ बताया जाता है । गेण्डे के आकार के स्तनधारी जीव थे । इसी वर्ग से पहला हाथी 'फियोफिय' उत्पन्न हुआ जिसकी उँचाई तीन फुट थी । इसके बाद टैटरा बैलोजन, मास्टाउन, स्टोगोडान वर्ग की पीढ़ियाँ विकसित हुईं । जिनकी ऊँचाई क्रमशः पाँच, आठ और पन्द्रह फुट थी । पन्द्रह फुट ऊँचे हाथी 'स्टोगोडन' के बाहरी दाँत १२ फीट लम्बे और सवा दो फुट व्यास के थे ।

लेकिन इसके बाद हाथी की ऊँचाई और आकार घटने लगा । अब १० से १२ फुट ऊँचे हाथी ही होते हैं । इन दिनों भारतीय हाथियों की ऊँचाई १०-११ फुट होती है । भूतत्व शास्त्रियों के अनुसार हाथी की ऊँचाई फिर घटने लगी है और सम्भव है कि वे अगले १-१॥ करोड़ वर्षों में ३ फीट ऊँचे अर्थात् कुत्ते जैसे होने लगें ।

विकासवाद इन्हीं विसंगतियों के कारण स्वयं ही सन्देहों और आक्षेपों का केन्द्र बनता जा रहा है । प्रस्तुतकर्ताओं के तर्क उन्हीं के प्रतिपादित तथ्यों को काट रहे हैं । एक ओर तो अमीबा को ह्वेल जैसे विशाल आकार वाले प्राणी के रूप में परिणत होने की बात कही जाती है और दूसरी ओर आदिम काल के महागजों को भैंसे, कुत्ते जितनी ऊँचाई के हाथियों की स्थिति में लौट पड़ने और महासरीसृपों को छोटी छिपकली मात्र रह जाने के प्रमाण दिये जाते हैं ।

पूर्वजों तथा उनके वर्तमान वंशजों में आकृति और प्रकृति का इतना अन्तर अस्वाभाविक है । क्योंकि इससे तो उनकी मूलसत्ता का ही कोई आधार शेष नहीं रह जाता । प्राणियों में विकास और पतन दोनों की सम्भावनाएँ समान रूप से विद्यमान हैं । हाथी कभी कुत्ते जैसे आकार से विशालकाय प्राणी बन सकते हैं तो विशालकाय प्राणी से वापस उसी स्थिति में भी लौट सकते हैं । मोटे रूप में यह बात गले न उतरे, परन्तु सिद्धान्ततः यह सही है कि प्राणधारी अपनी मनःस्थिति और परिस्थिति के अनुसार ही उठते, गिरते हैं । जीवसत्ता को ऊँचा उठाने और नीचे गिराने में, प्रगति करने अथवा अवनति के गर्त में धकेलने के लिए इच्छाशक्ति ही प्रधान है । प्रकृति ने अथवा ईश्वरीय विधि-व्यवस्था ने प्राणी को न तो प्रगति के लिए विवश ही किया है और न पतन के गर्त में गिरने से रोका है ।

वह अपनी स्वतन्त्र इच्छाशक्ति के अनुसार किधर भी बढ़ या घट सकता है । परिवर्तन उत्थान की दिशा में ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं पतन की दिशा में भी हो सकता है । गति आगे बढ़ने का कारण भी हो सकती है और पीछे हटने में भी सहायक हो सकती है । आकाश की ओर भी आगे बढ़ा जा सकता है और पाताल की ओर भी प्रवेश किया जा सकता है । ईश्वर ने हर प्राणी को स्वतन्त्र सत्ता सृष्टि के आरम्भ में ही दी है । जीवात्मा किस स्थिति में रहना और किस दिशा में बढ़ना चाहता है यह उसके मनमर्जी की बात है ।

मानवी व्यक्तित्व में अन्तर्निहित समग्रता

पदार्थवादी दृष्टिकोण वाले बौद्धिक मनुष्य को जैव रासायनिक संयोगों का एक आकस्मिक समुच्चय ही मानते रहे हैं । उस स्थिति में सम्पूर्ण व्यक्तित्व की किसी विशिष्ट एक सूत्रता का प्रश्न ही नहीं उठता । रंग, रक्त, शरीरस्थ रसों आदि की दृष्टि से निश्चित वर्गों का निर्धारण हो जाने पर तो यह और भी निश्चित माना जाने लगा कि जिस प्रकार कुछ तत्वों की निश्चित मात्रा एवं निर्दिष्ट प्रक्रिया में संयोग से अमुक यौगिक विशेष तैयार हो जाता है, उसी प्रकार कुछ निश्चित तत्वों के संयोग में सफल हो जाने पर वर्ग विशेष के मनुष्य भी तैयार हो सकें ।

लेकिन विज्ञानप्रेमियों की इस बाल-कल्पना का आधार ध्वस्त किया खुद वैज्ञानिकों ने । जैसे-जैसे जीवन के रहस्यों की खोज का क्रम बढ़ता गया, वैसे-वैसे वे तथ्य सामने आते गये, जिनसे स्पष्ट होता गया कि शरीर के ढाँचे, वर्ण, कद, आकृति, रक्त, हड्डियों आदि के हिसाब से तो वर्गीकरण ठीक है । किन्तु जीवन के इससे गहरे आधारों के क्षेत्र में वर्गीकरण से काम चलने का नहीं । चेतना की विद्यमानता प्रत्येक व्यक्तित्व को एक समग्र रूप देती है । जो दूसरे से बिल्कुल भिन्न है और इस लिये जिसे वर्गों में नहीं बाँधा जा सकता क्योंकि हर व्यक्ति अपने आप में एक पूर्ण इकाई है । अपना वर्ग वह स्वयं है ।

व्यक्ति के संस्कार उसकी जन्म-जन्मांतर की संचित सम्पदाएँ और साधन हैं यह मान्यता भारतीय तत्वदर्शन की रही है । संस्कारों का यह सम्पुञ्जन बहु-आयामी और अति विस्तृत होता है । संस्काररूपी ये विशेषताएँ व्यक्ति की स्वयं उपार्जित क्षमताएँ होती हैं । इन्हीं से व्यक्तित्व का निर्माण होता है । इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में उसकी अपनी विशिष्टता घनीभूत रहती है । दृश्यमान मानव-शरीर की स्थूल संरचना में बहुत अधिक अन्तर नहीं होता । तो भी कोई दो व्यक्ति शत-प्रतिशत एक जैसे नहीं होते । फिर अन्तरंग क्षेत्र तो और भी विस्तृत है । प्रत्येक व्यक्तित्व का अलग-अलग अनूठापन होता है । जो संस्कार समूहों की ही विशेषता होती है ।

यह विशेषता ही मनुष्य की प्रवृत्तियों, रुचियों और सामर्थ्य के रूप में प्रकट होती रहती है । कोई प्रचण्ड शरीर बल का स्वामी है, तो किसी में उसकी अल्पता है । कोई विलक्षण मेधा और स्मरण शक्ति से सम्पन्न है तो किसी की बुद्धि में स्थूल बातों के अतिरिक्त और कुछ बैठता ही नहीं और स्मरण शक्ति भी मन्द होती है । किसी के हृदय में करुणा का अथाह समुद्र उमड़ता-घुमड़ता रहता है, तो किसी को पर-पीड़न में ही पुरुषार्थ प्रतीत होता है । ये सभी भिन्नताएँ ईश्वरीय अनुदान में किसी प्रकार के पक्षपात या विषमता का परिणाम नहीं हैं, वरन् जन्म-जन्मान्तरों से अमुक व्यक्ति द्वारा बढ़ाई जा रही विशेषताओं या खोयी गँवाई जा रही क्षमताओं का ही जोड़-बाकी और गुणनफल हुआ करती है ।

जिस प्रकार मिट्टी, पत्थर प्रतीत होने वाली वस्तुओं के तल में इलेक्ट्रान-प्रोटान-न्यूट्रान और उनकी आधार-भूत विद्युत-तरंगें सक्रिय रहती हैं, उसी प्रकार स्थूल दृष्टि से जो काय कलेवर के अवयव हाड़-माँस के बने दीखते हैं उनमें चेतन कोशिकाएँ और उनकी भी तह में जीन्स क्रोमोसोम की निर्माणकारी चेतना प्रक्रियाएँ क्रियाशील रहती हैं ।

प्रत्येक मनुष्य के अपने व्यक्तित्व की विशिष्ट छाप उन मूलभूत इकाइयों तक में विद्यमान होती है । इस विशेषता का पता चला आणविक जैविकी के विकास से, जिसकी भव्य परिणति के रूप में पिछले दिनों दुनिया की प्रथम परखनली शिशु का प्रादुर्भाव हो सका है और जिसने पूरे संसार को रोमांचित कर दिया है ।

आणविक जैविकीविदों की खोजों से यह तथ्य सामने आया कि जीवन की मूलभूत इकाई है कोशिका । ये इकाइयाँ अति सूक्ष्म होती हैं । ये प्राणिमात्र की देह-इकाइयाँ हैं । एक कोशीय जीव अमीबा से लेकर विकसित मनुष्य तक । किसी स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट युवक के शरीर में लगभग साठ हजार अरब कोशिकाएँ होती हैं । इनमें से दस हजार अरब तो ऐसी इकाइयाँ ही हैं, जो स्वचालन-क्रिया को परिचालित करती हैं जितनी जगह में 'मैं कोशिका हूँ' छपा है, उतनी जगह में औसत आकार की पचास हजार कोशिकाएँ रखी जा सकती हैं ।

इनमें से प्रत्येक कोशिका एक शानदार कारखाना है । जो उत्पादन, कचरे के निष्कासन, सक्रियता, सुव्यवस्था एव प्रशासन की सुनियोजित प्रणाली से क्रियाशील है । इस कारखाने के तीन मुख्य खण्ड होते हैं—पहला बाहरी खोल, जो एक पतली झिल्ली जैसा होता है, दूसरा साइटोप्लाज्म जैसे लसलसे पदार्थ से लबालब भाग और तीसरा केन्द्रक । यह केन्द्रक ही प्रत्येक गतिविधि का नियन्त्रक होता है । केन्द्रक में ही डी. एन. ए. रहता है जो मनुष्य के गुणसूत्रों तथा अन्य सूचनाओं का भंडार होता है । सच पूछा जाय तो कोशिका एक बड़ी झील है, इसे जीव-द्रव्य या प्रोटोप्लाज्म की झील कह सकते हैं, जीव चेतना को क्षीरसागर भी कहा जा सकता है । इसी क्षीरसागर के केन्द्र में है केन्द्रक या न्यूक्लिस रूपी विष्णु जिनकी नाभिवत् केन्द्रिका या न्यूक्लिजोलस में रहते हैं डी. एन. ए. रूपी ब्रह्मा । इन ब्रह्मा के चार मुँह हैं- डी. एन. ए. रूपी सीढ़ी की पौड़ियों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चार यौगिक एडिनिन, ग्वैनिन, साइटोसिन और थाइमिन । एडिनिन और थाइनिन का सदा जोड़ा रहता है तथा साइटोसिन और ग्वैनिन का । इन चारों का क्रम ही समस्त जीवों की समानता या भिन्नता का मूल है । डी. एन. ए. का जो कुण्डलीनुमा फीता है उसके उपयुक्त चार यौगिक उसकी चार अक्षर की वर्णमाला है । इन्हीं अक्षरों के क्रम और डी. एन. ए. की संख्या के उलट फेर से भिन्न-भिन्न चेतना संदेश तैयार हो जाते हैं और उन चेतना सन्देशों से ही बनता है यह सारा चेतना संसार । गुणसूत्र के डी. एन. ए. के एक क्रम से व्यक्ति का रंग काला बनता है तो अन्य भिन्न-भिन्न क्रम से गोरा, भूरा या पीला । देह के प्रत्येक अवयव और उनकी विशिष्टताओं का निर्माण इन्हीं डी. एन. ए. के हेर-फेर से हुआ करता है । कोशिकाओं के भीतर का डी. एन. ए. ही प्रोटीनों के संश्लेषण का निर्देशक है । इन प्रोटीनों से बनते हैं एंजाइम । प्रत्येक जैव-रासायनिक क्रिया का प्रारम्भ, विकास या अन्त इन्हीं एंजाइमों का खेल है ।

दुनिया में प्राणियों की बोलियाँ भिन्न-भिन्न हैं । एक प्राणी दूसरे वर्ग के प्राणी की बोली कम समझ पाता है । मनुष्य ने तो भिन्न-भिन्न भाषाएँ विकसित कर ली हैं और जिस भाषा-बोली का उसे ज्ञान नहीं, उसका आशय, अभिप्राय वह नहीं समझ पाता । कई बार तो मनोदशा और ज्ञान स्तर की भिन्नता से एक ही भाषा के बोलने वाले दो व्यक्ति एक दूसरे का अभिप्राय ठीक-ठीक नहीं समझ पाते । किन्तु सभी जीवों की रासायनिक भाषा एक है और प्रत्येक जीवकोशिका उससे भली-भाँति अवगत है । उस भाषा का जो अर्थ जीवाणु कोशिका के लिए है वही अर्थ मानव-कोशिका के लिए ।

इन सबसे यही स्पष्ट होता है कि सभी प्राणियों में क्रियाशील मूलभूत चेतना एक ही है और उनकी संरचना के आधारभूत सूत्र भी एक हैं ।

भारतीय तत्वदर्शी प्रखर साधनाओं द्वारा इसी 'एकमेवाद्वितीयं चेतन' सत्ता और उसके लिए क्रियाकलापों की जानकारी में समर्थ होते रहे हैं । तभी वे सूक्ष्म जगत में उभरने वाली हलचलों की जानकारी प्राप्त करने में समर्थ होते थे । सृष्टि के रहस्यों को समझ सकने के लिए सर्व व्याप्त चेतना से तादात्म्य स्थापित करने के अतिरिक्त और कोई उपाय भी नहीं ।

एक ही आत्मा सब में समाया हुआ है । एक ही सूर्य असंख्य लहरों में प्रतिबिम्बित हो रहा है । यह प्रतिबिम्ब भिन्न-भिन्न रूपाकारों में उसी रूप में ढला दिखाई पड़ता है ।

आकार-प्रकार की यह भिन्नता कोशिकाओं तक में देखी जा सकती है । चमड़ी का बाहरी हिस्सा चपटी कोशिकाओं से बना रहता है तो पाचन प्रणाली की कोशिकाएँ सिलेन्डर के आकार की होती हैं माँसपेशियों की कोशिकाएँ आकुंचन प्रसारण में सहायक होती है, तो गुर्दे की मूत्र निर्माण-निष्कासन में सहायक होती हैं । किन्तु कहीं की भी कोशिका हो उसमें वे विशिष्टताएँ विद्यमान होती हैं जो उस व्यक्तित्व का सार है । उनका पुनरुत्पादन भी सम्भव है । इसी आधार पर वैज्ञानिक दावा करते हैं कि यदि महात्मा गाँधी की त्वचा की ही कोशिकाएँ लेकर उनके ऊतक संवर्द्ध बना लिये गये होते, तो अब तक कुछ दिनों बाद तकनीक विकसित होने पर उन्हीं 'ऊतक संवर्धों' से हजारों गाँधी बनाये जा सकते थे । ताकि यदि आज जिम्मी कार्टर अथवा ब्रेजनेव की त्वचा की कोशिकाएँ इसी प्रकार रख ली जायँ, तो कल उन्हीं से अनेक कार्टर और अनेक ब्रेजनेव बन सकते हैं ।

चेतना विज्ञान और अणु जैविकी के अन्वेषण में कदम-कदम पर पैदा होने वाली नई-नई कठिनाइयाँ एवं प्रतिक्रियाएँ वैज्ञानिकों की इस सामर्थ्य सम्भावना को साकार कर सकें अथवा नहीं । किन्तु एक बात तो स्पष्ट हो गई है कि जिस प्रकार एक व्यक्ति के अँगूठे की छाप दूसरे व्यक्ति से और एक के स्वरों का ध्वनि-चित्रांकन दूसरे के स्वरों के ध्वनि चित्रांकन से भिन्न होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की कोशिका दूसरे से भिन्न होती है । साथ ही एक मनुष्य के शरीर में विद्यमान खरबों कोशिकाओं में से प्रत्येक में उसकी आधारभूत विशेषताएँ सुरक्षित होती हैं । इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य की सम्पूर्ण सत्ता में समग्रता है । वह किन्हीं चित्र-विचित्र प्रवृत्ति प्रवाहों का आकस्मिक मेल नहीं है । उसकी विशेषताएँ भिन्न-भिन्न रासायनिक तत्वों के यों ही एकत्रीकरण भर से नहीं पैदा होतीं, अपितु उसके रोम-रोम में अंग-अंग में उन विशेषताओं का सारभूत अंश विद्यमान होता है ।

इसी तथ्य से एक अन्य निष्कर्ष भी सामने आता है । मृत्यु के बाद मनुष्य के मस्तिष्क के प्रोटोप्लाज्म के बिखर जाने और उसके किसी अंश-विशेष के अन्य मनुष्य में प्रविष्ट हो जाने की बात कई वैज्ञानिकों द्वारा उन प्रमाणों के सन्दर्भ में की जाती रही है, जहाँ कोई व्यक्ति अपने कथित पूर्व जन्म का कोई प्रामाणिक विवरण दे देता है । किन्तु कोशिका-सम्बन्धी ये खोजें उस तर्क को कमजोर बनाती हैं । जब शरीर के किसी भी हिस्से की कोशिका में व्यक्ति की सभी मूलभूत विशेषताएँ सुरक्षित रहती हैं तो मस्तिष्क की कोशिका का प्रोटोप्लाज्म बिखर कर घूम-घूम कर दूसरे में प्रविष्ट होने के स्थान पर चेतन कोशिका के ही नये रूप में पहुँचने की सम्भावना है । यों अभी तो इसके अनेक रहस्य अज्ञात के गर्भ में ही हैं । इतना ही स्पष्ट हुआ है कि हर नयी कोशिका अपनी जननी कोशिका से समस्त सूचनाएँ, साँचे संकेत और नक्शे लेकर अपना नया कारखाना खोलती है । आनुवंशिकी कोड भाषा अभी तक पूर्णतः जानी नहीं जा सकी है । रहस्य खुलने पर वह जानकारी जीव-कोशिकाओं में निहित चेतना को अविच्छिन्नता पर भी प्रकाश डाल सकेगी ।

आणविक जैविकी की इन खोजों ने ये दो बातें अब तक स्पष्ट की हैं—सभी जीव-कोशिकाओं की मूलभूत रचना-प्रक्रिया एक है । जिस व्यक्तित्व की वे इकाइयाँ होती हैं उसकी सभी आधारभूत विशेषताएँ इनमें सूत्र रूप में सन्निहित होती हैं । दोनों ही तथ्य भारतीय दर्शन के प्रतिपादन के अनुरूप हैं । वेदान्त दर्शन की मान्यता है कि एक ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतन-तत्व भिन्न-भिन्न दृश्यों के रूप में सर्वत्र दीखता है । साथ ही इन दृश्यों का बनना-बिगड़ना भी आकस्मिक नहीं है । वह एक सुनिश्चित सृष्टि प्रक्रिया का अंग है । विकास किसी अन्धेरगर्दी भरी शैली से नहीं होता, अपितु उसी व्यवस्था के नियमों के अनुसार होता है ।

हमारा चेतनास्तर न तो आकस्मिक है और न अन्तिम या अपरिवर्तनीय । न तो इसका चाहे जैसे संयोग होता है न ही चाहे जैसा विघटन । इस सृष्टि में सभी कुछ सुव्यवस्थित और नियमबद्ध है और चेतना से परिपूर्ण है । मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है और वह परम पिता परमेश्वर का लाड़ला पुत्र है, इन दो तथ्यों को ध्यान में रखने पर उन्नति तथा आनन्द की वास्तविक दिशाएँ सदा स्पष्ट रहेंगी और उस ओर चलते हुए जीवन को सफल, सार्थक बनाया जा सकेगा ।

क्या मानवी सभ्यता मात्र आठ हजार वर्ष पुरानी है ?

विकासवादी मान्यता चल पड़ी है कि "मनुष्य के आदि पुरुष वानर जाति के निकटवर्ती थे । अनुभवों से वे सीख-सीखकर सभ्य हुये । ऐसी ही एक सभ्य जाति थी आर्य, जो ईसा से दो हजार साल पहले मध्य पश्चिम एशिया में थी । उसी की एक शाखा ईरान से होते हुए भारत में आयी । यहाँ उस आर्य सभ्यता का कालक्रम से और अधिक विकास हुआ । उन्हीं द्वारा लगभग डेढ़ हजार ईसवी पूर्व से बारह सौ ईसवी पूर्व के बीच जो सांस्कृतिक साहित्य रचा गया, वह वेदों के रूप में विद्यमान है । इस अवधि के उपरान्त आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र ग्रन्थ आदि रचे गये । इस स्थापना का कारण यही है कि विकासवादी पुरातत्ववेत्ता पृथ्वी पर मानव-सभ्यता का आरम्भिक उदय कुल ४-५ हजार वर्ष पूर्व ही मानते हैं । किन्तु इस स्थापना के पीछे न कोई ठोस तर्क है, न ही पर्याप्त तथ्य ।

जब ईसाई लोगों का विश्व पर प्रभुत्व बढ़ा और ज्ञान-विज्ञान की अग्रिम पंक्ति में वे लोग आये तो जाने-अनजाने उन्होंने अपने ईसाई संस्कारों का वैज्ञानिक परिकल्पनाओं (हाइपोथीसिस) में प्रक्षेपण किया । बाइबिल में लिखा है कि सृष्टि को हुए मात्र आठ हजार वर्ष हुए हैं । उधर आधुनिक वैज्ञानिक गणनाएँ यह सिद्ध कर रही थीं कि पृथ्वी की आयु ४ अरब वर्ष है । ऐसी स्थिति में ईसाई-संस्कारों वाले विकासवादी वैज्ञानिकों ने यह परिकल्पना प्रस्थापित की कि मनुष्य का वानर रूप में जन्म तो कुछ लाख वर्ष पूर्व हुआ है, किन्तु सभ्य मानव का जन्म मात्र सात-आठ हजार वर्ष पूर्व हुआ । इससे उन्हें यह सन्तोष कर सकने का अवसर मिला कि बाइबिल की बात आंशिक रूप से सत्य है । किन्तु यह सन्तोष सत्य पर नहीं, परिकल्पना पर आधारित है । बिना सत्य का पूर्ण निष्ठा से अनुसंधान किये व्यक्ति को शान्ति नहीं मिल सकती है ।

यहाँ तीन बातें स्मरण कर लेनी आवश्यक हैं—पहली यह कि वैज्ञानिकों के ही अनुसार अपनी इस पृथ्वी की आयु लगभग ४ अरब वर्ष है । दूसरी बात यह कि यह पृथ्वी किन्हीं भी श्रेष्ठ प्राणियों के निवास के उपयुक्त है और तीसरी यह कि आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह माना है कि अपने इस ब्रह्माण्ड के कतिपय अन्य ग्रहों में भी न केवल जीवन की, अपितु सुविकसित सभ्यता होने की भी सम्भावना है । अमरीकी वैज्ञानिक डॉ. विल्स के अनुसार तो ब्रह्माण्ड में १८ करोड़ ग्रह ऐसे हैं, जहाँ किसी न किसी रूप में जीवन अवश्यम्भावी है । १८ हजार ऐसे हैं, जहाँ मनुष्यों की तरह के विचारशील प्राणी रहने की सम्भावना है और १८० ग्रह तो ऐसे हैं, जो पंचभौतिक तत्वों की अत्यन्त सूक्ष्म जानकारियों से ओत-प्रोत समृद्ध प्राणियों के निवास स्थल हो सकते हैं । यह भी वैज्ञानिक मानते हैं किसी पृथ्वी पर मनुष्य का जन्म १० लाख वर्ष से भी पहले हुआ ।

जैवरसायन शास्त्री डा. एस. मिलर ने प्रकाश स्रोतों की रासायनिक संरचना का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि ऐसे समुन्नत एवं जीवधारी ग्रहों की संख्या एक लाख से कम कदापि नहीं हो सकती । ऐसे ग्रहों तक विद्युत-चुम्बकीय संकेत भेजकर उनसे सम्पर्क करने के प्रयास भी वैज्ञानिक कर रहे हैं । यदि उन ग्रहों में इन दिनों श्रेष्ठ, सुविकसित प्राणी हो सकते हैं, तो आज से लाखों वर्ष पूर्व इसी पृथ्वी पर श्रेष्ठ, सुविकसित मनुष्य क्या न रहे होंगे ? चार अरब वर्ष पुरानी पृथ्वी पर करोड़ों या लाखों वर्ष पूर्व सुविकसित बुद्धिमान मनुष्य रहे हों, इसमें कुछ भी असम्भव नहीं और सभ्य मनुष्य मात्र ५-६ हजार वर्ष से हुये हैं, इसका अर्थ है कि शेष सारी अवधि यानी ९ लाख ९५ हजार वर्षों तक लगातार वन्य मानव तो रहा ही । इतनी लम्बी अवधि में अरबों-खरबों वन्य मानव जन्मे और मरे होंगे । उन सभी के कंकाल मिट्टी में दबते रहे । किन्तु आज तक पुरातत्वविदों को उनके कुल जीवाश्म जो मिले हैं, वे हजार भी नहीं हैं, उनकी संख्या सैकड़ों तक ही सीमित है और वे भी जीवाश्म आधे-अधूरे मिले हैं । शेष अरबों-खरबों वन्यमानवों के जीवाश्म कहाँ गये ? वे क्यों नहीं मिलते ?

इसके साथ ही दूसरी युक्ति यह है कि यदि आज से लाखों वर्ष पूर्व सुविकसित मनुष्य थे तो फिर क्या प्रकृति के परमाणुओं में ऐसी व्यवस्था नहीं कि एक बीज से दूसरे भिन्न बीज वाले पदार्थ की उत्पत्ति हो सके । अमीबा अभी भी अमीबा ही है । अमीबा से ही ह्वेल और डायनासोर आदि विशाल आकार के जीव भी बने और फिर महासरीसृप आदि छोटी छिपकलियों में भी बदल गये, ऐसे विचित्र प्रतिपादन जो विकासवाद के पक्ष में किये जाते हैं, विवेक-ग्राह्य नहीं हैं । जीवधारियों की आकृति एवं प्रकृति में कालक्रम से हेर-फेर तो स्वाभाविक है किन्तु वह हेर-फेर इतने आश्चर्यकारी अन्तर वाला नहीं हो सकता कि जिससे किसी जीव-वर्ग की मूलसत्ता का कोई आधार तक शेष न रहे । मनु की सन्तान मानव ने अपनी लम्बी यात्रा में अनेक उतार-चढ़ाव तो अवश्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखे होंगे । उसके चिन्तन, कर्तृत्व एवं जीवनयापन के क्रम में भी परिवर्तन स्वाभाविक ही हुये होंगे ।

ईश्वर ने हर प्राणी को अपनी स्वतन्त्र सत्ता सृष्टि के आरम्भ में ही दी है । मनुष्य भी अपनी मूलभूत विशेषताओं के साथ प्रारम्भ से ही जन्मा है और कालचक्र के अलग-अलग सोपानों में वह अनेकानेक उतार-चढ़ावों से गुजरता रहा है ।

मनुष्य आगे-पीछे, दायें-बायें सभी ओर चलता रह सकता है । यात्रा आकाश की भी हो सकती है और पाताल की । दोनों को अपने-अपने ढंग से प्रगति ही कहा जा सकता है । अपनी स्वतन्त्र सत्ता एवं इच्छाशक्ति के कारण मनुष्य तथा अन्य प्राणी भी जीवन के अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरते हैं, इस आलोक में ही विकास के क्रमों का अन्वेषण अधिक युक्ति युक्त होगा तथा सत्य के अधिक नजदीक ले जायेगा ।

भारतीय आर्ष-ग्रन्थों में ऐसे अनेक सूत्र-संकेत तथा विवरण भी विद्यमान हैं, जिनसे मानवी विकास के क्रम अन्वेषण में दिशा-निर्देश व सहायता मिल सकती है । बाल्मीकिकृत रामायण में रावण का द्वारयानों और विमानों से सज्जित होने का उल्लेख है । कुछ पूर्व समय मैक्सिको में भूमि खनन से एक अतिश्रेष्ठ युद्धक विमान का अति प्राचीन प्रारूप प्राप्त हुआ है, जो मय-सभ्यता का अवशेष है । मानव मय रावण का समकालीन था और उसके नाम से ही मय-वंश चला । यह शिल्पी समुदाय के रूप में प्रसिद्ध हुआ है । महाभारत काल में भी इस समुदाय के शिल्पी विद्यमान थे, ऐसे विवरण मिलते हैं ।

विश्व के विभिन्न हिस्सों में हाथियों के जो जीवाश्म मिले हैं, उसके आधार पर पुरातत्वेत्ताओं का कथन है कि चार करोड़ वर्ष पूर्व ओलिगोसीन युग में हाथी विशाल संख्या में शिवालिक के जंगलों में बिचरण करते थे । यह 'फियोमिय' वर्ग के हाथी थे । इसके बाद हाथियों के आकार-प्रकारों में हेर-फेर के अनुसार ये वर्ग पाये गये हैं—'तैतरा वेलोडान' वर्ग तदुपरान्त 'मास्ताडान' वर्ग और फिर 'स्टेगोडान' वर्ग । 'स्टेगोडान' वर्ग के ही हाथियों में चार दाँतों वाले हाथी भी थे जो लगभग १० लाख वर्ष पूर्व शिवालिक पहाड़ियों में विचरते थे । भारत की परम्परागत गणना के अनुसार भी राम-रावण का समय लगभग पौने नौ लाख वर्ष पुराना है । चार दाँतों वाले हाथियों का काल भी लगभग वही है । अतः राम-रावण युद्ध का काल लगभग पौने लाख वर्ष पुराना ठहरता है । उस समय भारत में इतने सुविकसित सभ्य लोग रहते थे, कि उनके पास विमान, आग्नेययास्त्र आदि की दृष्टि से भी वे लोग अत्यन्त विकसित थे, विज्ञान और दर्शन में तो विकसित थे ही ।

ऐसे विशिष्ट प्रमाणों और संकेतों के आधार पर हमें पूर्वाग्रह से पूर्णतः मुक्त रहकर अपने तथा सम्पूर्ण मानव जाति के इतिहास एवं क्रम विकास का गहराई और सूक्ष्मता से अध्ययन-विश्लेषण करना चाहिए । तभी ऐसे महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त होंगे, जो सृष्टि-चक्र तथा मनुष्य की संकल्प-शक्ति के तथ्य, स्वरूप पर प्रकाश डालेंगे और मनुष्य को ऊर्ध्वगामी, आलोकवादी बनने की प्रेरणा दे सकेंगे ।

अधिकार और अनुशासन

डार्विन के सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि में सर्वाधिक प्रभावशाली प्रेरक शक्ति जो सृष्टि के हर प्रकार के जीवों को क्रियाशील करती है वह है—सेक्स । लेकिन नवीनतम वैज्ञानिक अनुसंधानों से प्राप्त तथ्यों के अनुसार अपने निवास स्थानों पर कब्जा जमाए रहने वाली, अधिकार जताने वाली प्रवृत्ति सबसे प्रबल है । सामान्यतः सेक्स प्रवृत्ति का सम्बन्ध उचित तापमान से जोड़ा जाता है । एक प्रयोग में किसी कृत्रिम जलाशय (जिसमें अनेक जलचर जन्तु थे) का तापमान क्रमशः अधिकाधिक गिराया गया । तापमान यहाँ तक नीचे चला गया कि उनकी सेक्स वृत्ति सर्वथा सो गई । लेकिन यह देखा गया कि विभिन्न जलचरों के अपने-अपने रहने के लिए नियत किए हुए स्थान पर किसी ने कब्जा करने का प्रयास किया तो उनकी ओर से शत्रु का डटकर मुकाबला किया गया ।

'अफ्रीकन जेनेसिसः रिवोल्यूसन इन दि नेचुरल साइन्सेस' (लेखक रोबर्ट आड्रे) एवं 'टेरिटरी इन वर्ड लाइफ' (लेखक ब्रिटिश एमेचर ऑर्नीथोलॉजिस्ट, इलियट हॉवर्ड, इन दोनों पुस्तकों में कई रोचक विवरण इस सन्दर्भ के छपे हैं । सुदूर स्थानों की यात्रा करने वाले पक्षियों में यह पाया गया है कि मादाओं की अपेक्षा नर पक्षी आगे रहते हैं । नए स्थान पर पहुँचकर किसी स्थान अथवा वृक्ष विशेष पर बैठकर नर पक्षी गीत गाता है । जिसका अर्थ होता है—यह स्थान हमारे लिए सुरक्षित है और इस पर किसी के द्वारा अधिकार जमाना वर्जित है । जो जितना अच्छा और सुरक्षित स्थान चुनता है उसके अनुसार उसे मादा मिल जाती है । डार्विन ने केवल सेक्स को ही महत्त्व दिया था । परन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं है । सेक्स से भी अधिक प्रबल भावना मनोविज्ञानवेत्ताओं के अनुसार अधिकार की है ।

पक्षियों के अधिकार जताने का माध्यम उनके गीत और चहचहाहट हुआ करती है । जबकि पशु और कीटपतंगों में स्थान जताने का माध्यम गंध हुआ करते हैं । विशेषकर स्तनधारी प्राणियों की घ्राण शक्ति बहुत तेज हुआ करती है । शेर और बाघ आदि किसी स्थान पर अधिकार जताने के लिए वहाँ पेशाब कर देते हैं जिससे तीव्र गन्ध आती है । कीट-पतंगों तथा कई पशुओं में गन्ध पैदा करने वाली ग्रन्थियाँ हुआ करती हैं । कई प्रकार के हिरनों में आँख के ऊपर एक ग्रन्थि होती है जिसके स्राव की गन्ध विशेष से उनके स्थान का पता लगता है अपने अधिकार क्षेत्र के पेड़ों व डालीपत्तियों से वे इस स्राव को घिस देते हैं ।

ज्यूरिख (प. जर्मनी) के चिड़ियाघर के डायरेक्टर डॉ. हाइने हेडिगर लेखक को चिड़ियाघर में बन्दर के पिंजड़े के पास ले गए । उस समय बन्दर बैठा हुआ था । इन दोनों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रेक्षकों को आत देखकर उनके ठीक सामने पड़ने वाले लोहे की छड़ पर कोई सांकेतिक निशान बनाकर पुन: अपने स्थान पर जा बैठा और ऊपर से अपनी मुखाकृति ऐसी बनाने लगा मानो उनसे कह रहा हो—"कहाँ घुसे चले आ रहे हो ? देखते नहीं यह मेरा घर है ।" इस घटना को देखकर लेखक को इसके पीछे छिपा सिद्धान्त बताते हुए डा. हाइने हेडिगर ने बताया कि पिंजड़े में कैद पशु-पक्षी प्रारम्भ में पिंजड़े से छूट भागने का हर सम्भव प्रयास करते हैं । लेकिन कुछ समय बीतने पर जब उससे स्थायित्व का भाव आ जाता है तो पिंजड़े से खुद बाहर जाने की अपेक्षा—स्वयं तो उसी में रहना पसन्द करते हैं लेकिन बाहर से उसमें घुसने वालों को रोकने का हर सम्भव प्रयास करते हैं । डा. हेडिगर ने आगे बताया कि निवास के प्रति लगाव के कई दृष्टान्त आप जंगल में भी पायेंगे । पशु-पक्षियों के निवास के लिए छत या दीवार की व्यवस्था नहीं होती फिर भी विभिन्न प्रयोगों के लिए वे अलग-अलग स्थान अंकित कर लेते हैं । जैसे भोजन का स्थान, सोने का स्थान, शिशु पालन का स्थान और सूर्य स्नान के लिए छतों की व्यवस्था वे स्वत: कर लेते हैं । यह पाया गया है कि प्रत्येक पशु-पक्षी अपने शरीर की स्वच्छता के प्रति विशेष रूप से जागरूक होता है । यदि मल विसर्जन, स्नान, स्वच्छता इत्यादि की आम व्यवस्था उपलब्ध न हो तो प्रत्येक जीवधारी अपने निजी निवास स्थान पर ही इसकी व्यवस्था बनाता है । सामान्यत: सम्पत्तिवान् मनुष्य अपने अधिकार और सम्मान की अवहेलना पसन्द नहीं करते । कई पशुओं में यह प्रवृत्ति इसी रूप में पायी जाती है । पशुओं में सबसे उच्छृंखल और बर्बर भेड़िया होता है । लेकिन भेड़ियों में पाई जाने वाली अधिकार व सम्मान की परम्परा के बारे में एक विज्ञान पत्रिका 'द इकोलाजीकल परबल' में तैतीस पृष्ठों का विस्तृत लेख छपा है जिसमें स्विट्जरलैण्ड के वैसल नामक अभ्यारण्य में रहने वाले जंगली भेड़ियों का अध्ययन किया गया है । पाया गया है कि इन पशुओं में सिर एवं कान की विभिन्न भाव-भंगिमा एवं पूँछ तथा शरीर के विभिन्न भागों के बालों को हिलाने की अलग-अलग विधियाँ, आँख के भँवों का विभिन्न तनाव, दाँत दिखाने के विभिन्न तरीकों का प्रत्येक की सामाजिक स्थिति के अनुरूप अलग-अलग विधान होता है ।

मनुष्यों में अपनी जाति के लिए बलिदान होने की घटनाओं को इज्जत की दृष्टि से देखा जाता है । एक रात्रि को बबून अपनी गुफा में पंक्तिबद्ध होकर जा रहे थे । उसी रास्ते के नीचे झाड़ी में छिपकर एक चीता उन बबूनों में से किसी एक को अपना शिकार बनाने तथा उनकी गुफा में अपना कब्जा जमाने की घात लगाए बैठा था । उस समय अपनी जाति की सुरक्षा हेतु दो बबूनों ने ऊपर से अपनी जान की बाजी लगाकर छलाँग लगाई । एक ने उसकी गर्दन दबोची और दूसरा उसकी छाती पर घाव करने लगा । सुविदित है कि बबूनों की अपेक्षा चीता बहुत बलवान होता है । चीते ने अपने जबड़े से गर्दन दबोचे हुए बबून को पकड़ लिया और नीचे धर पटका तथा दूसरे बबून को अपने पंजे से दूर हटाया । लेकिन तब तक काफी देर हो चुकी थी । बबूनों ने अपने पैने दाँतों से उसकी धमनी को काट दिया था । चीते ने उन दो बबूनों को तो मार दिया लेकिन अपना प्राण भी वह बचा नहीं पाया । मनुष्यों में यदि ऐसी घटना होती तो उसका बड़ा स्मारक बनाया जाता । बबूनों का हुजूम विस्मय विस्फारित नेत्रों से इस दृश्य को देखता रहा और नाटक पटाक्षेप होते ही कुछ क्षणों की मौन प्रार्थना मृत बबूनों की शांति के लिए कर चुपचाप पंक्तिबद्ध होकर अपनी कन्दरा की दिशा में बढ़ गया ।

विश्व में आज समाजवाद और साम्यवाद के फैलने का मुख्य कारण मनुष्य की सम्पत्ति और अधिकार लिप्सा बताई जाती है तथा इसके लिए केवल मनुष्य को ही दोषी ठहराया जाता है । लेकिन सृष्टि के प्राय: सभी पशु-पक्षी, कीट-पतंगों में भी यह प्रकृति-प्रदत्त लिप्सा देखने में आती है ।

तथ्यान्वेषी आधुनिक विज्ञान आज जिस निष्कर्ष पर पहुँच रहा है कि केवल मनुष्य ही नहीं अपितु मनुष्येतर प्राणियों में भी मूल प्रवृत्तियाँ एक-सी होती हैं । यही बात पूर्वकाल के तत्ववेत्ता भी कहते रहे हैं कि विश्व के प्राणिमात्र में मूलतत्व सर्वत्र एक ही हैं । भिन्नता केवल शारीरिक संरचना में अपेक्षाकृत अधिक विकसित मस्तिष्क और समस्याओं के समाधान हेतु दृष्टिकोण भर की है । भगवान् द्वारा मनुष्य को दिए हुए विशेष अनुदान की सार्थकता तभी है जब मनुष्य अपनी भाव सम्वेदनाओं को उच्चस्तरीय बनाकर परस्पर स्नेह, सद्भाव और आपसी समझ-बूझ तथा तालमेल का विकास कर सके ।

मानवी विकास के प्रारम्भिक सोपान

मानवी विकास के आरम्भिक दिनों की चर्चा करते हुए प्रसिद्ध नृतत्वविज्ञानी डा. ईवान्स के प्रगति काल को कुछ काले पृष्ठों में लिखा है कि आदिम युग में मनुष्य बहुत डरा और सहमा हुआ था । बुद्धि के विकास के आरम्भिक दिनों में उसने अपने को विपत्तियों से घिरा पाया । आसमान में चमकने वाले सूर्य-चन्द्र, घुमड़ते बादल और कड़कती बिजली को उसने देवताओं का प्रकोप माना और समझा कि वे सब मनुष्य को डराने और उससे कुछ चाहने वाले आकाशस्थ देवगण हैं । तब देवों की डरावनी प्रकृति उसे दैत्यों जैसी लगती थी प्रेत, पिशाचों जैसी । उनसे अपने ऊपर भय बरसने की आशंका निरन्तर बनी रहती थी । आँधी, तूफान, चक्रवात भी उसे इसी समर्थ प्रतिपक्ष के सहचर प्रतीत होते थे । ऋतु परिवर्तन से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयाँ भी उसे ऐसी ही भयानक लगती थीं । बुद्धि विकास के आरम्भिक दिनों में वह अपने को बहुत डरा और घिरा हुआ अनुभव करता था । जबकि अन्य प्राणी सोच-विचार के झंझट की मन:स्थिति तक पहुँच पाने के कारण केवल सामयिक कठिनाइयों को झेलते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भर थे । समय बदलते ही फिर निश्चिन्त होकर जीवन-क्रम चलाते थे ।

मनुष्य का विकास इस भय के साथ होता है । उसे भयानक और विशालकाय पशुओं से भी पाला पड़ता था । उनके आक्रमण से बच न पाने के कारण वह अपने को निरीह अनुभव करता था । जबकि विपत्ति के समय पक्षी आकाश में उड़ जाते थे । कछुए और मगर पानी में खिसक जाते थे । बन्दर और बिलाव ऊँचे पेड़ों की डालियों पर उछल-कूद लेते थे । यहाँ तक कि चूहे तक बिलों में छिप जाते थे । तब मनुष्य अपने को इन सबसे दुर्बल पाता था । बचाव के लिए जहाँ-तहाँ छिपते फिरने के अतिरिक्त और कोई साधन उसके पास न थे । हिंस्र जन्तुओं से, पृथ्वी पर ऋतु प्रभाव से, आसमान से उसे विपत्ति टूटती दिखायी पड़ती थी । बुद्धि के आरम्भिक विकास ने उसे एक डरावनी विभीषिका में फँसा दिया । आक्रमण तो दूर बचाव के लिए भी उसने अपने को असहाय पाया ।

इस विपत्ति से बचने के लिए उसे कल्पित देवताओं की रचना करनी पड़ी और उनका सहारा प्राप्त करने की सूझ उठने लगी । पर यह करें कैसे? उन दिनों बलिष्ठ जन्तुओं में से कुछ को छोड़कर शेष माँसाहारी थे । माँसाहारी पराक्रमी माने जाते थे । सोचा गया कि देवता भी माँसाहारी ही हो सकते हैं और भूखे रहने पर मनुष्य पर आक्रमण की बात सोचते होंगे । उनके प्रसन्न होने का एक ही तरीका सोचा गया कि स्वेच्छापूर्वक उनके सम्मुख भेंट उपहार प्रस्तुत किया जाय ।

ईवान्स के अनुसार मनुष्य आदिम दिनों से रीछ की तरह शाकाहारी भी था और माँसाहारी भी । उसने देवताओं के लिए स्वादिष्ट फल भेंट करने की और जो उसकी पकड़ में आ सकते थे ऐसे मेंढक, खरगोश, बकरी, मुर्गी जैसे प्राणी बलि करने की बात सोची । बलि पूजा उसके इसी आदिम काल की कल्पना है । वही वह करने लगा और सोचने लगा जो कुछ भी रक्षा हो सकी है इसी बलि का प्रताप है ।

समय बीतता गया । ईवान्स कहते हैं कि प्रकृति की विचित्रताओं को अधिक गौर से देखने और समझने की क्षमता में वृद्धि होने के कारण उसने उपयोगी साधनो की खोज की । इस प्रयास में उसे अग्नि प्रज्ज्वलित करना, गोलाई का चक्र, रूप में उपयोग करना और धातुओं के उपकरण ढालने की विधियाँ हाथ लगीं । इनके सहारे पर अनेकों बातों में समर्थ हो गया । माँस पका सकता था । बीज भून सकता था । पशुओं को डरा सकता था । शीत के प्रकोप से बच सकता था और ऐसे औजार बना सकता था जिनसे पेड़ काट सकता और कम समझ के प्राणियों का वध कर सकता था । इस विकास को उसने देवताओं का अनुग्रह माना । साथ ही यह भी समझा कि यह उपलब्धियाँ उसे देवताओं के अनुग्रह से प्राप्त हुई हैं । अपने भीतर बुद्धि स्फुरण भी देखी, पर उसे विकास-क्रम से जोड़ने की बात न सूझी । वह पहले देवताओं से डरता भर था । पीछे उसे सूझा कि उन्हें अनुकूल बनाने के लिए भेंट-पूजा ही अनुकूल साधन है । इस आधार पर उनकी क्रुद्धता को हलकी बनाया जा सकता है और अनुकम्पाजन्य लाभ उठाया जा सकता है । इस निर्णय ने उसे बर्बरता की ओर अग्रसर किया ।

मानवी विकास और मनुष्य की सुविधा के बीच की कड़ी के रूप में उसे देवताओं को प्रसन्न करने की बात सूझी । इसके साधन जुटाने के लिए उसे भेंट-पूजा के अधिकाधिक साधन जुटाने का उत्साह बढ़ा । इस बढ़े हुए उत्साह ने उसे अधिक बर्बर बनाया । इस बर्बरता में उसे कई लाभ भी थे । बलि किये हुए पशुओं की खाल खींच लेने से उसे आच्छादन और वस्त्र की सुविधा मिलने लगी । जो विशालकाय पशु उस पर सहज आक्रमण कर बैठते थे वे प्रज्ज्वलित आग से भय खाने लगे । उपकरणों के सहारे वह इतनी मात्रा में सामग्री भी इकट्ठी करने लगा जो संकट के समय उसके आहार की आवश्यकता पूरी कर सके । इन सुविधाओं ने उसे भयाक्रान्त रहने की अपेक्षा गर्वशील बनाया । वह जंगल के कानून से परिचित हुआ कि समर्थ को असमर्थों के दमन का अधिकार है । उनसे लाभ उठा सकता है । इस प्रयोजन के लिए अपने इर्द-गिर्द बड़ी संख्या में पाये जाने वाले और सहज पकड़ में आ सकने वाले भेड़, बकरी, खरगोश, पक्षी और मछली जैसे प्राणी पकड़ने, मारने और उनके चमड़े का लाभ उठाने की सुविधा में अधिकाधिक प्रसन्नता होने लगी । इस क्रमिक प्रगति का कारण उसने देवताओं की अनुकम्पा को माना ।

उन्हें अधिक प्रसन्न कैसे किया जा सकता है ? अधिक आकर्षक उपहार क्या दिया जा सकता है ? इस सोच विचार में उसे भूख के बाद दूसरा उत्साहप्रद कृत्य 'मैथुन' सूझ पड़ा । इसके लिए उसने देवताओं को स्त्रियाँ भेंट करनी शुरू कीं । देव पूजा में ही उन्हें समर्पण नहीं किया गया वरन् उनके अनुपयोगी होने पर भोज्य पदार्थ के रूप में बलि भी चढ़ाया जाने लगा ।

पशुओं की तुलना में मनुष्य श्रेष्ठ गिना गया । इसलिए बलि प्रथा में मनुष्यों को भी आगे लाया गया । मनुष्यों में से ही कुछ ने अपने को देव एजेन्ट बताना आरम्भ किया । यह प्रचार इतनी चतुरता से हुआ कि बर्बर मनुष्य देव मानवों की एक नई गुलामी में फँस गया । इतने पर भी यह प्रसन्नता थी कि जिन अन्तरिक्ष निवासी और प्रत्यक्ष इच्छा प्रकट करने वाले देवताओं की तुलना में ऐसे माध्यम मिल गये जो प्रत्यक्ष वार्ता कर सकते थे । कठिनाइयों का हल बता सकते थे और साधन जुटाने की विधि बता सकते थे ।

इसी विकासक्रम से अधिक चतुर होने से राजा और पुरोहित बन गये । इस बीच मनुष्य भी परिवार बसाना और खोलों में रहना सीख गया । हर कबीले के पास समय के अनुरूप सम्पदा भी होती थी । राजा और पुरोहितों के इशारे पर बलवान कबीले अल्पसंख्यकों और दुर्बलों पर चढ़ाई करके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विजय प्राप्त करने लगे । विजय में जो साधन, सामग्री, स्त्रियाँ तथा युवक मिले उन्हें हथिया लिया गया । बड़ा भाग राजा और पुरोहितों को रहा, शेष को लड़ाकुओं के बीच बाँट दिया गया । आदिम और बर्बर युग की अनेकों प्रथाएँ इसी आधार पर विनिर्मित हुईं । ईवान्स का यह प्रतिपादन तर्क की कसौटी पर कितना सही है यह शोध का विषय है ।

पूर्वाग्रहों से उबरें

अमेरिका में लड़े गये उस मुकद्मे को लोग कभी भी भूल न सकेंगे जो देखने में जरा-सा था, पर उस पर ध्यान उस देश के लोगों का ही नहीं, सारी दुनिया का आकर्षित हुआ । उसके समाचार विश्व की अति महत्वपूर्ण घटनाओं की तरह संसार भर में मोटी सुर्खियों के साथ तब तक छपते रहे जब तक कि मुकद्मा अदालत में चलता रहा । यह मुकदमा 'मंकी ट्रायल' के नाम से विश्व विख्यात हुआ ।

मुकदमा जानस्कोप्स नामक एक अध्यापक पर चला । वह टेनेसी राज्य के एक छोटे से कस्बे 'डेटन' में जीव विज्ञान पढ़ाता था । उस राज्य के सरकारी कानून में यह प्रतिबन्ध था कि स्कूलों में जो कुछ पढ़ाया जाय वह बाइबिल के प्रतिपादनों के अनुरूप ही होना चाहिए । उससे भिन्न या विपरीत नहीं ।

जीवन विकास के सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान की मान्यता है कि उसका विकास छोटे जीवों से हुआ है और वह क्रमशः बढ़ते-बढ़ते उन उच्चस्तर के प्राणियों तक बढ़ा है जिनमें से एक मनुष्य भी है । पुरातन पंथियों की मान्यता इससे विपरीत है । वे कहते हैं मनुष्य ऊपर से उतरा आसमान से टपका और जमीन पर आ गिरा । नीचे से ऊपर उठने की परम्परा रही है अथवा ऊपर से नीचे गिरने की । यह प्रमुख मतभेद है पुरातन पंथियों और नवीन विचारकों में । यह मतभेद उस छोटे स्कूल में भी उभर आया । जीवविज्ञानी जानस्कोप अपना विषय पढ़ाता था । स्कूली पाठ्यक्रम बाइबिल के अनुसार निर्धारित थे सो पढ़ाता तो वह उन्हें भी था, पर साथ ही यह भी कह देता था कि मेरा इन बातों पर विश्वास नहीं है । मेरी मान्यता तो इस समर्थन में जाती है कि जीवन नीचे से ऊपर उठा है और वह क्रमशः ऊपर ही उठता जायगा । मेरी समझ यह नहीं कहती है कि हम ऊपर से नीचे गिरे हैं और इस पतनक्रम में गर्त में निरन्तर अधिक गहरे गिरते चले जायेंगे ।

एक दिन की मामूलीसी घटना थी । रेप्पेलीए नामक एक इंजीनियर किसी पादरी से बहस में उलझ पड़ा और कहने लगा 'जीवन विकास के सम्बन्ध में डार्विन का विकासवाद सही है ।' पादरी बाइबिल की बातें तो कहता, पर कोई तर्कसंगत उत्तर न दे पाता । अस्तु, उसने स्कूल के जीवविज्ञान शिक्षक को अपने समर्थन के लिए बुला भेजा ताकि वह इन्जीनियर को परास्त कर सके । स्कोप्स आया तो पर उलटे इन्जीनियर की बात का ही समर्थन करने लगा । इसने यही कहा—इन्जीनियर का कथन सही है । जीवन नीचे से ऊपर को उठा है ।

इस पर पादरी झल्ला गया । एक धार्मिक राज्य में, निर्धारित धर्म मान्यताओं के विरुद्ध कोई अध्यापक मतभेद रखे और छात्रों में भी अनास्था पैदा करे, यह सहन नहीं किया जा सकता । सीधा तरीका तो यह था कि अध्यापक को नौकरी से निकाल दिया जाता, पर बात कुछ अन्य प्रकार की बन गई । स्कूल के अधिकारियों ने यह उचित समझा कि अध्यापक पर अदालत में मुकद्मा चलाया जाय और उसे दंडित कराके यह जाहिर किया जाय कि ऐसा करना अपराध है और जो अपराध करेगा वह दंड भुगतेगा । निदान ७ मई, १९२५ को वह मुकद्मा अदालत में दायर कर दिया गया ।

कानूनी प्रश्न तो इतना भर था कि टेनेसी राज्य के प्रचलित कानून का उल्लंघन जिस अध्यापक ने किया है उसे दण्ड दिया जाय । पर उसकी पृष्ठ-भूमि बहुत बड़ी थी । मुख्य विवाद धर्म और विज्ञान के बीच था । पूर्व मान्यताएँ ही ठीक मानी जाती रहें या जो बुद्धिसंगत है उसे स्वीकारा जाय । विवाद का मुख्य केन्द्र यहाँ आ टिका । अदालत को गौर इस विषय पर भी करना था कि शिक्षण सही है या गलत । अध्यापक अपना उत्तरदायित्व यथार्थ ज्ञान देने के रूप में निभा रहा है या नहीं । कानून का पालन एवं यथार्थ शिक्षण यह दो प्रश्न साथ-साथ जुड़ जाने से विवाद का विषय काफी बड़ा हो गया ।

मुकद्मा एक अध्यापक और स्कूल अधिकारियों के बीच उठे एक मामूली से विवाद का था, पर उसने बहुत बड़ा रूप धारण कर लिया । विज्ञान पक्षधरों का जोश उमड़ पड़ा और वे मुकद्मे को सर्वोच्च न्यायालय तक ले जाने की तैयारी करने लगे । दूसरी ओर भी जोश कम न था पुरातन पंथियों ने विवाद को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया और अभियोग को सिद्ध करने के लिए पूरी तैयारी के साथ कमर कसकर खड़े हो गये । कोई पक्ष न झुकने को तैयार था, न हार मानने को । अस्तु, मुकद्मा पूरी तैयारी के साथ और पूरे जोश के साथ लड़ा गया । "सत्य की शिक्षा देने के लिए किसी अध्यापक को दंडित न होना पड़े" इसके समर्थन के लिए अमेरिका की नागरिक स्वतन्त्रता यूनियन ने मुकदमा लड़ने का निश्चय किया और सफाई पक्ष की ओर से अमेरिका के सबसे प्रख्यात वकील लारेंस डेरी खड़े किये गये । उस देश की धर्म संस्थाओं ने मिलकर वादी पक्ष के वकील के रूप में डेमोक्रेटिक पार्टी की ओर तीन बार राष्ट्रपति पद के लिए मनोनीत विलियम ब्राइन को खड़ा कर दिया ।

मुकदमे ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की । संसार भर के प्रमुख पत्रों के एक सौ से अधिक सम्वाददाता नित्य अपने-अपने पत्रों के लिए खबरें भेजने के लिए हवाई जहाजों से उड़कर आये । तारघर को २२ नये तार कर्मचारी नियुक्त करने पड़े और नई लाइनें बिछानी पड़ीं । प्रतिदिन प्रायः दो लाख शब्दों के समाचार वहाँ से भेजे जाने लगे । उस छोटे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से कस्बे की आबादी मात्र डेढ़ हजार थी । लेकिन मुकदमे के दिनों देश के कोने-कोने से आये दिलचस्पी लेने वालों, विदेशी सम्वाददाताओं, तम्बुओं में बने होटलों और सरकार के व्यवस्था कर्मचारियों की इतनी भीड़ हो गई मानो अच्छाखासा मेला लगा हो ।

प्रमुख वकील तो दोनों पक्षों के एक-एक ही थे किन्तु उनकी सहायता के लिए अमेरिका भर के चोटी के दर्जनों वकील आकर जमा हो गये । टेनेसी राज्य के एटर्नी जनरल टामस स्टीवर्ट स्वयं सरकार की ओर से मुकदमा लड़ने आये । ब्राइन अद्भुत वक्ता थे और भी सभी कई वकील चोटी के थे जो अपराध सिद्ध करने में ऐड़ी चोटी का पसीना एक कर रहे थे । सफाई पक्ष में डैरो के अतिरिक्त उडलेफील्डमेलन और अर्थिर गारफील्ड हैज ऐसे थे जिन्हें अमेरिका के अदालती क्षेत्र का प्रत्येक व्यक्ति भली प्रकार जानता था । इन लोगों की उन दिनों धाक थी । दोनों पक्ष के गवाहों में विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों से लेकर वैज्ञानिकों, धर्माध्यक्ष, संसद सदस्यों तथा दूसरे मूर्धन्य लोगों की लम्बी नामावली थी । वे सभी बारी-बारी से गवाहियाँ देने आये । मुकदमा काफी समय तक चला । किन्तु आश्चर्य इस बात का था कि मुख्य न्यायाधीश जान कालस्टन ही एक कानूनी बारीकियों को समझते थे । जूरी १२ थे । उनमें से तीन तो ऐसे थे जिन्होंने बाइविल के अतिरिक्त और कोई पुस्तक ही नहीं पढ़ी थी । एक बिलकुल अनपढ़ था । शेष ऐसे ही अर्द्धशिक्षित थे ।

दोनो पक्षों की ओर से जोरदार बहसें की गईं अनोखे तर्क दिये गये और वक्तृताओं की ऐसी धारा बहाई गई कि उसे सुनना भर श्रोताओ के लिए एक बहुत बड़ा दिलचस्प कौतूहल था । हजारों की संख्या में लोग उन बहसों को सुनने मात्र के लिए दूर-दूर से आकर वहाँ जमा हुए ।

बहस के कुछ स्फुट प्रसङ्ग लोगों की नोटबुकों में अभी तक लिखे हैं । सफाई पक्ष के वकील डेरो ने अदालत को सम्बोधित करते हुए कहा था—आज सत्य की शिक्षा देने से अध्यापक रोके जा रहे हैं, कल वैसा साहित्य प्रकाशित करने पर रोक लगाने के और परसों सोचने या बोलने पर प्रतिबंध लगाये जायेंगे और हमें उस सोलहवीं सदी में धकेल दिया जायेगा, जिसमें ज्ञान की चेतना उत्पन्न करने वालों को धर्मांध लोगों द्वारा सरेआम जीवित जला दिया जाता था ।

वादी पक्ष के ब्राइन ने कहा—युगों से धर्म चेतना उत्पन्न करने वाली ईश्वरी पुस्तक बाइविल को आज की गलत पुस्तकें नहीं काट सकतीं । ईश्वर की कही हुई बातें झूठी नहीं हो सकतीं । बन्दर मनुष्यों का पूर्वज नहीं हो सकता ।

मेलोन ने सच्चाई पर कोई बन्धन न लगाने का आग्रह करते हुए कहा—सत्य से किसी को नहीं लड़ना चाहिए । वह अजेय है । तथ्य भले ही पूर्वाग्रहों से भिन्न हों, पर उन्हें विवेक और न्याय का समर्थन मिलना चाहिए ।

डेरो एक के बाद एक प्रश्न बड़ी गम्भीरता और संजीदगी से पूछते रहे । उन्होंने ब्राइन से पूछा—आप तो बाइविल पर अक्षरश: विश्वास करते हैं न ?

ब्राइन बाइविल पर अनेक लेख लिख चुके थे और सारगर्भित भाषण दे चुके थे । वकील की तरह बाइविल विशेषज्ञ के रूप में भी उनकी ख्याति थी । उत्तर में 'हाँ' के अतिरिक्त और कुछ वे कह भी नहीं सकते थे ।

डेरो ने बाइविल का एक वाक्य पढ़ा—"और तब सुबह और शाम से मिलकर पहला दिन बना ।".....'सूरज की सृष्टि चौथे दिन हुई । और पूछा—क्या आप बता सकते हैं कि सूरज के बिना सुबह और शाम कैसे हुई ? और जब सूरज था ही नहीं तो चार दिन बाद उसके उगने का हिसाब कैसे लगाया गया ?

डेरो ने दूसरा प्रश्न किया—बाइविल के अनुसार आदम और हब्बा के वर्जित फल खाने के लिए बहकाने पर ईश्वर ने साँप को पेट के बल रेंगने का शाप दिया था । पर इससे पहले साँप किस प्रकार चलता था ?

ब्राइन कोई उत्तर न दे सके मात्र बड़बड़ाते रहे और उन पर नास्तिक होने का आरोप लगाते रहे । तो भी धैर्य पूर्वक यही पूछते रहे—क्या आप सचमुच इन बातों पर विश्वास करते हैं, जिन पर आज कोई भी बुद्धिमान विश्वास नहीं कर सकता ।

मुकदमे का अन्त हुआ । अदालत ने एक छोटा-सा फैसला लिखा और उसे नौ मिनट में सुना दिया । "सौ डालर जुर्माना और मुकदमे के सरकारी खर्च की अदायगी ।"

धर्म पक्ष के लोगों ने इस पर खूब खुशियाँ मनाईं । पर विचारशील लोगों ने उस मुकदमे की जान भर कहा—विवाद की विजय के रूप में उसे नहीं स्वीकारा यहाँ तक कि प्रमुख प्रवक्ता ब्राइन भी अपने मन में वैसा ही मानते रहे और अपने बुद्धि कौशल की अनुपयुक्तता पर पश्चात्ताप करते हुए जीत के दो दिन बाद ही परलोकवासी हो गये ।

डेटन का अब बहुत विकास हो गया है और वहाँ ब्राइन के नाम एक अच्छाखासा विश्वविद्यालय बना हुआ है । टेनेसी राज्य का वह पुराना कानून अभी भी मौजूद है जिसमें बाइविल के मत से भिन्न कुछ भी नहीं पढ़ाया जा सकता । किन्तु वह कानून सिर्फ कागजों पर छपा रह गया है उसका प्रयोग नहीं होता । ब्राइन विश्वविद्यालय में भी डार्विन के विकासवाद को बिना किसी रोक-टोक के पढ़ाया जाता है । मिलान में मुकदमे के दौरान जो बौद्धिकता की माँग की थी और अदालत से कहा था—"सत्य से किसी को नहीं लड़ना चाहिए—वह अजेय है । तथ्य भले ही पूर्वाग्रहों से भिन्न हो, पर उन्हें विवेक और न्याय का समर्थन मिलना चाहिए ।" यह माँग उस समय जानराल्स्टन की अदालत ने स्वीकार नहीं की थी, पर आज विवेक की अदालत ने उसे स्वीकार कर लिया है यही कारण है उन्हीं पुराने कानूनों की'—उसी प्रबल समर्थक ब्राइन के नाम पर चलकर विश्वविद्यालय में ही खुली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवज्ञा हो रही है । यद्यपि पूर्वाग्रह अपने स्थान पर अभी भी यथास्थान जमे बैठे हैं ।

'मंकी ट्रायल' मुकद्मा देखने को जन-साधारण की इच्छा को देखते हुए एक प्रख्यात् फिल्म बना है—''इन हेरिट दी विड'' यह फिल्म संसार भर में बड़े चाव से देखी गई है । मुकदमे में हारा हुआ डार्विन का बन्दर फिल्म के पर्दे पर जनविवेक से यह पूछता दिखाया गया है बताइए मेरा नीचे का ऊपर चढ़ना ठीक है या परम्परावादियों के अनुसार मुझे ऊपर से नीचे गिराने की बात सीखनी चाहिए ।

विकासवाद की कल्पना के विरुद्ध इसलिए विचार करना पड़ता है कि उससे हमारा स्थायित्व चला जाता है । आत्मिक चेतना समाप्त हो जाती है और वंशानुक्रम का जीवाणुवाद ही शेष रह जाता है । इसके उपरान्त मनुष्य के लिए निर्धारित नीतिमर्यादा के सारे नियम छिन्न-भिन्न हो जाते हैं । मनुष्य यदि हँसने वाला पशु और चलने वाला पौधा है तो उसे आवश्यकतानुसार कुछ भी करने की छूट मिल जाती है । फिर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का कोई विवेचन शेष नहीं रहता । पशु प्रवृत्तियों में से अधिकांश ऐसी हैं जो मानवी सभ्यता में तनिक भी तालमेल नहीं खातीं । पशु अपना पेट कहीं भी दीखने वाली हरियाली को देखकर भरने चल पड़ता है । उसे यह ज्ञान नहीं कि यह खेत किसी ऐसी विधवा का है जिसके छोटे बच्चे इसी फसल से पलेंगे । फिर वह दूरदर्शिता और उपयोगी दूरदर्शिता को भी छोड़ बैठेगा और भावनात्मक भी न रहेगा । अन्य प्राणियों में किसी भी नर-मादा के साथ यौन सम्पर्क साधने की छूट है । यदि मनुष्य भी एक पशु है तो उसे भाई-बहिन, माता-पुत्र जैसे पवित्र रिश्तों की क्या आवश्यकता रह जायेगी । फिर वह भी क्यों अन्य प्राणियों की तरह स्वच्छन्द यौनाचार बरतकर परिवार संस्था को समाप्त क्यों न कर लेगा ?

कर्मफल का सिद्धान्त केवल मनुष्य पर ही लागू होता है । अस्तु, वह तात्कालिक लाभ के लिये ललचाते समय भावी परिणामों की बात भी सोचता है । स्वर्ग-नरक भी उसकी दृष्टि में रहता है और सामाजिक यश-अपयश भी प्रभावित करता है । ऐसी ही अनेक विशेषताएँ मनुष्य की हैं । आस्तिक भी वही होता है और ज्ञान, कर्म, भक्ति की विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए संयम, अनुशासन के अनेकानेक वचन अनुशासन अपने ऊपर स्वेच्छापूर्वक लगाता है । यदि तथाकथित विकासवाद के सिद्धान्त को मान्यता दी जाय तो फिर इस संसार में ''जिसकी लाठी तिसकी भैंस'' का सिद्धान्त ही सर्वत्र अपनाया जाने लगेगा और बड़ी मछली छोटी को खाने लगेगी ।

ऐसी दशा में मानवी स्नेह-सहयोग का आधार क्या रह जायेगा ? उचित-अनुचित का विश्लेषण कैसे हो सकेगा । ऐसी दशा में वन-मानुषों की बिरादरी में ही सारा मनुष्य समुदाय सम्मिलित हो जायेगा । तब न्याय, प्रेम, सहयोग, देशभक्ति, परमार्थ, आत्म-संयम जैसे सिद्धान्तों का भी सहज परित्याग चल पड़ेगा ।

विकासवाद में पुरातत्व की, प्राणि विकास की खोज ही सीमित नहीं है पर उसकी प्रतिक्रिया अत्यधिक भयंकर है । वह मनुष्य को संचित सभ्यता को पूरी तरह छीन सकती है फलतः प्रगति का द्वार भी रोक सकती है । भ्रष्टाचार और अनाचार की तो पूरी छूट मिलेगी ही ।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए काल्पनिक विकासवाद को किसी की अभिभूत और अप्रामाणिक कल्पना की घुड़-दौड़ मात्र ही समझा जाना चाहिए ।

आत्म-गौरव, आत्म-सम्मान, इतिहास, सभ्यता, संस्कृति की दुहाई देने वाले, अपने को सृष्टि का मुकटमणि और सृष्टा का ज्येष्ठ पुत्र मानने वाले मनुष्य के लिए यह बड़ी लज्जा की बात होगी कि डार्विन के मतानुसार वह अपने महान पूर्वजों को बन्दर कहे । यदि इस मान्यता ने जोर पकड़ा तो हमें निर्वस्त्र होकर रहने में भी क्या लज्जा लगेगी और शिक्षा, दर्शन आदि की क्या उपयोगिता शेष रहेगी ।

विकासवाद-अधूरी और एकांगी मान्यता

विकासवाद का प्रचलित सिद्धान्त हमें यह सिखाना चाहता है कि जीव का मूल स्वरूप ही नहीं स्तर स्वभाव और आधार भी विकसित तथा परिवर्तित होता चला आया है । एककोषीय इन्द्रिय चेतना से रहित जीवनक्रम उलट-पुलट करते-करते मनुष्य जैसे विकसित प्राणियों की स्थिति में आ धमका है । विकास का यह सिद्धान्त बहुचर्चित और बहुप्रचलित है । प्रसिद्ध वैज्ञानिक हीक्सस भी विकासवाद के सिद्धान्त के समर्थकों में आते हैं ।

वे भी यह मानते हैं कि मनुष्य शरीर का विकास एक कोशीय जीव (प्रोटोजोन्स) से हुआ । पहले अमीबा, अमीबा से स्पंज, स्पंज से हाइड्रा फिर जेलीफिश, मछली, मेढक, साँप, छिपकली, चिड़िया, घोड़े आदि से विकसित होता हुआ आदमी बना । इसके लिए— (१) जीवों के मिले अवशेषों (२) विभिन्न प्राणियों की शारीरिक बनावट के तुलनात्मक अध्ययन, (३) थ्योरी ऑफ यूज एण्ड डिसयूज के उदाहरणों से यह सिद्ध किया जाता है कि मनुष्य शरीर विकसित हुआ है । थ्योरी ऑफ डिसयूज का अर्थ है कि जिस अंग का प्रयोग न किया जाये, वह घिसता और नष्ट होता चला जाता है । उदाहरण के लिए पहले मनुष्य पेड़ों पर रहता था । उछलकर चढ़ने के लिए पूँछ आवश्यक होती है । तब मनुष्य को पूँछ थी यह इसका निशान 'टेल वरटिब्री' के रूप में अभी भी शरीर में है । पर जब मनुष्य पृथ्वी पर रहने लगा, पेड़ों पर चढ़ने की आवश्यकता न पड़ी तो पूँछ का प्रयोग भी बन्द होता गया और वह अपने आप घिस गई ।

किन्तु एक शरीर से दूसरे शरीर के विकास का समय इतना लम्बा है कि उन परिवर्तनों को सही मान लेना बुद्धि संगत नहीं जान पड़ता । प्रकृति के परमाणुओं में भी ऐसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवस्था नहीं है कि एक बीज से दूसरे बीज वाला पदार्थ पैदा किया जा सके, भले ही उसके लिए भिन्न प्रकार की जलवायु प्रदान की जाये । जलवायु के अन्तर से फल के रंग आकार में तो अन्तर आ सकता है पर बीज के गुणों का सर्वथा अभाव नहीं हो सकता ।

सर्वप्रथम हमें विकासवादी सिद्धान्त की कुछ मुख्य स्थापनाओं का अवलोकन करना होगा । इसके अनुसार लगभग १० लाख वर्ष पूर्व 'आस्ट्रेलोपिथेकस' नामक वनमानुष विकसित हुआ । जब पहला विशाल ग्लेशियर दक्षिण की ओर सरकार तथा यूरेशिया और उत्तरी अमेरिका के बड़े हिस्से को ढक लिया । उस समय यानी आज से १० लाख वर्ष पहले यह 'आस्ट्रेलोपिथेकस' दक्षिण अफ्रीकी जंगलों में घूमता था और 'जिन्जनथ्रोपस' नामक वनमानुष उत्तर अफ्रीका में । 'आस्ट्रेलोपिथेकस' चिम्पेजी की तरह ही होता था पर वह सीधा तनकर चलता था और वृक्षों पर कम, भूमि में अधिक रहता था । उसके दाँत आधुनिक मनुष्यों के दाँत जैसे थे । इसी आस्ट्रेलोपिथेकस का विकास 'पिथेकेन्थ्रोपाइन' मनुष्यों के रूप में हुआ जो अफ्रीका के साथ ही पीकिंग के आस-पास तथा जावा में भी रहते थे ।

इसके बाद लगभग ६० हजार वर्ष पूर्व 'निएण्डरथल' जो कि प्रारंभिक मानव माने जाते हैं । इनमें बौद्धिक सामर्थ्य होने के प्रमाण मिले हैं । ये औजार बनाते थे । शिकार करते थे तथा अपने मृतकों को समारोहपूर्वक दफनाते थे । किन्तु अगले ५० हजार वर्षों में ये क्रमशः नष्ट हो गये और उनका स्थान 'क्रोमैगनन' मानव ने ले लिया आज से लगभग १० हजार वर्ष पूर्व ये वर्तमान मानव के पूर्व पुरुष माने जाते हैं ।

अब यहाँ जड़ विकासवादी व्याख्या पर एक प्रश्नचिन्ह लगता है—मनुष्य में अब कोई महत्त्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन क्यों नहीं हुए ? क्या प्रकृति की विकास प्रक्रिया रुक गई है ?

दूसरा प्रश्न यह कि प्राणिशास्त्र के अनुसार जब प्रत्येक जीव में सामान्य से विकास में करोड़ों वर्ष लगते हैं । तब मनुष्य जैसे विलक्षण जीव के रूप में वनमानुष का सहसा विकास क्यों कर हुआ ? क्योंकि वनमानुष से मनुष्य की मस्तिष्कीय संरचना तो भिन्न है ही अन्य प्रमुख भिन्नतायें भी हैं । शारीरिक संरचना भी बहुत भिन्न है । प्रकृति (स्वभाव) में अत्यधिक अन्तर है तथा यौन आकांक्षाएँ व प्रवृत्तियाँ तथा यौनावेगों का स्वरूप भी दोनों में सर्वतः भिन्न है ।

विकासवादी सिद्धान्त के अनुसार ६ हजार वर्ष पूर्व सुमेरिया में गुफावासी आदिम मानव नीयोलिथिक रहता था । तब सुमेरियन सभ्यता इतनी विकसित क्यों थी ? विकसित सुमेरियन सभ्यता के अनेकों प्रमाण मिले हैं । वहाँ नगर-जीवन, कृषि-विकास तथा कला-क्षमताओं के प्रमाण मिले हैं ।

हिन्दू सभ्यता और मयसभ्यता विश्व की सर्वाधिक प्राचीन सभ्यताएँ मानी जाती हैं । दोनों सभ्यताओं में से ऐसी गाथाएँ प्रचलित व लिपिबद्ध हैं जिनमें अन्तरिक्ष से आने वाले विमानों और देवताओं के विवरण हैं । यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है ।

भू-वेत्ताओं की कई खोजें भी विकासवाद की जड़वादी व्याख्या को असंगत ठहरा रही हैं । हाथी का ही आकार-प्रकार पहले क्रमशः बढ़ा और अब क्रमशः घट रहा है । पूर्वस्थिति में वापसी विकासवादी विश्लेषण के विरुद्ध है ।

विश्व के विभिन्न हिस्सों में प्राप्त हाथियों के फासिल्स के आधार पर भू-वेत्ताओं ने निष्कर्ष निकाला है कि करोड़ों वर्ष पूर्व हाथी की उत्पत्ति हुई तथा उस समय वह कुत्ते के से आकार का होता था ।

करोड़ों वर्ष पूर्व हाथी भारत में शिवालिक के जंगलों में विशाल संख्या में विचरते थे । शिवालिक घाटियों के भू-गर्भीय पाषाणों का अध्ययन विश्लेषण यह बताता है कि चार करोड़ वर्ष पहले ओलिगोसीन युग से ही वहाँ हाथी थे । हाथी का आदिम विकास 'मोरोथिरियम' जीव रूप से हुआ । पहला हाथी 'फियोमिय' वर्ग का है, जो 'मोरोथिरियम' विकसित रूप कहा जाता है । 'मोरोथिरियम' गैंडे के से आकार के, स्तनधारी जीव थे, 'फियोमिय' का आकार भी वैसा ही था । इसके बाद अगली पीढ़ी 'टैटरा बेलोडान' हाथियों की थी । फिर आये 'मास्टाडान' और तब 'स्टेगोडान' का आकार-प्रकार 'फियोमिय' से बिल्कुल भिन्न था । 'फियोमिय' तीन फुट ऊँचे थे । 'टैटरा बेलोडान' ५ फुट के, 'मास्टाडान' ८-९ फुट ऊँचे और 'स्टेगोडान' की ऊँचाई १५ फुट थी । इस विशालकाय हाथी के नुकीले बाह्य दाँत १२ फीट लम्बे और २७ इंच व्यास के होते थे । अफ्रीका में उस समय जो हाथी थे, वे इनसे कुछ कम ऊँचे होते थे और उनके दाँत २३ इंच व्यास वाले तथा १० फुट लम्बे होते थे । 'स्टेगोडान' शिवालिक के जंगलों में 'अरकी डिस्कोडन प्लैनिफानस' नामक हाथी सत्ताधारी बना । इसकी खोपड़ी कुछ कम विकसित थी । हाथी का आकार भी धीरे-धीरे घटने लगा । दाँतों की लम्बाई भी । अब १० से १२ फुट ऊँचे हाथी होते हैं । इन दिनों भारतीय हाथियों की ऊँचाई लगभग १०-११ फुट और बाहरी दाँत की लम्बाई ८-९ फुट होती है । भू-तत्वशास्त्रियों के अनुसार हाथी की ऊँचाई फिर घटने लगी है । सम्भव है कि अगले १-१.५ करोड़ वर्ष में वे फिर ३ फुट ऊँचे अर्थात् कुत्ते जैसे होने लगें ।

यहीं हमें एक अन्य पहलू से भी विचार करना होगा । विश्व में तीन हजार लाख वर्षों में जो जीवन चक्र चल रहा है, वह आरम्भिक २,५०० लाख वर्षों में अति मन्द गति से चला, उसमें केवल आदि जीवन के लक्षण हैं, जैसे कुकरमुत्ता, जीवाणु आदि । ५ करोड़ वर्ष पूर्व से जीवन की विकास गति अधिक तीव्र हुई तथा १ करोड़ वर्ष पूर्व पशु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व वनस्पति-जगत में विभिन्न प्रकार के जीवन के प्रमाण मिले हैं । मनुष्य के पूर्वज, जो कुछ लाख वर्ष पूर्व ही दृष्टिगोचर हुए, वे भी १ लाख वर्ष पूर्व तक गुफावासी और पाषाण के उपकरणों पर निर्भर थे । मनुष्य का मानसिक विकास तो विगत १०-१२ हजार वर्षों में ही हुआ तथा इस बौद्धिक विकास का अधिकतम प्रकाशन पिछले दो हजार वर्षों में हुआ है ।

वर्तमान विकासवाद की एकांगी मान्यताएँ अपनी ही विसंगतियों के कारण आप ही सन्देहों और आक्षेपों की केन्द्र बनती जा रही हैं । प्रस्तुतकर्ताओं के तर्क उन्हीं के प्रतिपादित तथ्यों को काट रहे हैं । एक ओर तो अमीबा को ह्वेल और विशाल आकार में परिणत होने की बात कही जाती है तो दूसरी ओर आदिम काल के महागजों को भैंसे जितनी ऊँचाई के हाथियों की स्थिति में लौट पड़ने और महा सरीसृपों को छोटी छिपकली मात्र रह जाने के प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं । आकृति और प्रकृति के इतने अन्तर पूर्वजों और उनके वर्तमान वंशजों में होना गले नहीं उतरता जिसमें उनकी मूल सत्ता का कोई आधार ही शेष न रह जाये ।

विकासवाद बनाम ८४ लाख

'थ्यौरी आफ यूज एण्ड डिस्यूज' की बात में तो भी कुछ दम है, उससे इच्छाशक्ति की सामर्थ्य का पता चलता है । यदि हमारे मस्तिष्क में किसी जबर्दस्त परिवर्तन की आकांक्षा हो तो निश्चय ही वह कोषों के संस्कार सूत्रों (जीन्स-कोष में बटी हुई रस्सी की तरह का अति सूक्ष्म अवयव जिस पर कोष के विकास की सारी सम्भावनाएँ और भूत का सारा इतिहास संस्कार रूप में अंकित रहता है) को बदल सकता है । यदि संस्कार सूत्र (जीन्स) बदल जायें तो नये बीजों मे परिवर्तन आ सकता है पर यह सब चेतन इच्छाशक्ति के द्वारा ही सम्भव है, किसी वैज्ञानिक प्रयोग से नहीं ।

इस बात से जहाँ विकासवाद के सिद्धान्त का खण्डन होता है, वहाँ ८४ लाख योनियों में भ्रमण और कर्मफल की बात भी सत्य जान पड़ती है । हम देखते हैं कि मनुष्य की इच्छाशक्ति का कभी अन्त नहीं होता । मृत्यु के समय एक या अनेक इच्छाएँ बलवान हो उठती हैं, उसके अनुरूप ही संस्कार सूत्र (जीन्स) में परिवर्तन आ जाता है, जीन्स कभी नष्ट नहीं होते, यदि किसी तरह उनमें चेतना का अंश सिद्ध किया जा सकता है कि अपनी इच्छाओं के वश में बँधा हुआ होने के कारण ही मनुष्य दूसरी-दूसरी योनियों में भटकता रहता है ।

अन्तिम इच्छाओं के अनुसार परिवर्तित जीन्स जिस जीव के जीन्स से मिल जाते हैं, उसी ओर वे आकर्षित होकर वही योनि धारण कर लेते हैं । ८४ लाख योनियों में भटकने के बाद वह फिर मनुष्य शरीर में आता है । गर्भोपनिषद में इस बात की पुष्टि हुई है—

पूर्व योनि सहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया ।
आहारा विविधा भुक्ता: पीता नानाविधा: स्तना ।।
स्मरति जन्म मरणानि न च कर्म शुभाशुभं विन्दति ॥

अर्थात्—उस समय गर्भस्थ प्राणी सोचता है कि अपने हजारों पहले जन्मों को देखा और उनमें विभिन्न प्रकार के भोजन किये, विभिन्न योनियों के स्तन पान किये । अब जब गर्भ से बाहर निकलूँगा, तब ईश्वर का आश्रय लूँगा । इस प्रकार विचार करता हुआ प्राणी बड़े कष्ट से जन्म लेता है पर माया का स्पर्श होते ही गर्भज्ञान भूल जाता है । शुभ-अशुभ कर्म लोप हो जाते हैं और इस सुरदुर्लभ शरीर के सौभाग्य को भी गँवा देता है ।

सौभाग्य से हीकल्स की अगली व्याख्या से ही इस बात का समर्थन हो जाता है । उन्होंने भ्रूण-विज्ञान (एम्बियोलाजी) में एक प्रसिद्ध सिद्धान्त दिया— 'आन्टोजेनी रिपीट्स फायालोजेनी' अर्थात् चेतना गर्भ में एक बीज कोष में आने से लेकर पूरा बालक बनने तक सृष्टि में या विकासवाद अन्तर्गत जितनी योनियाँ आती हैं, उन सब की पुनरावृत्ति होती है । प्रति तीन सैकिंड से कुछ कम के बाद भ्रूण की आकृति बदल जाती है । स्त्री के प्रजनन कोष (ओबम) में प्रविष्ट होने के बाद पुरुष का बीज कोष (स्पर्श) १ से २, २ से ४, ४ से ८, ८ से १६, १६ से ३२ इस क्रम से कोषों में विभाजित होकर शरीर बनता है ।

गर्भधारण की अवधि लगभग ९ माह १० दिन मानी गयी है । इस अवधि में लगभग २४१९२००० सैकिंड होते हैं । तीन सैकिंड से कम में आकृति बदलने का अर्थ ८०६०६६६ (लगभग ८४ लाख ही) विभिन्न आकृतियों का परिवर्तन आता है । यह चौरासी लाख यौनियाँ एक प्रकार से जीव जिन परिस्थितियों में रहकर आ चुका है उनका छाया चित्रण होता है ।

अस्तित्व की खोज

ए. एन. विडेगरी ने अपनी पुस्तक कांटेपोटेर्श थोट ऑफ ग्रेट ब्रिटेन में विकासवाद को एक सीमा तक ही सही माना है । उन्होंने इस बात पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा है कि सांसारिक अस्तित्व के सम्बन्ध में जितनी खोज की जा रही है, उतना मानवी अस्तित्व के बारे में नहीं खोजा जा रहा है । लगता है—मानवी सत्ता, महत्ता और आवश्यकता को आँखों से ओझल ही किया जा रहा है अथवा चेतन को जड़ का अनुगामी सिद्ध किया जा रहा है । बौद्धिक प्रगति के यह बढ़ते हुए चरण में सुख-शान्ति के केन्द्र से हटाकर ऐसी जगह ले जा रहे हैं, जहाँ हम यांत्रिक अथवा रासायनिक बोलने-सोचने वाले उपकरण मात्र बनकर रह जायेंगे । तब हम साधन-सम्पन्न कितने ही क्यों न हों—सभ्यता और संस्कृति जन्य गरिमाओं से हमें सर्वथा वंचित ही होना पड़ेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जड़-जीवन के लिए बाधित की गई चेतना कितनी अपंग हो जायेगी? जब यह कल्पना करते हैं तो प्रतीत होता है कि विकास की दिशा में चल रही हमारी दौड़ विनाश में अधिक विघातक सिद्ध होगी ।

कई रूपों में हम अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक अच्छे समय में रह रहे हैं । आज एक विधि तथा नियम का स्थिर शासन और निश्चित संविधान है । व्यक्तिगत सम्पत्ति एवं स्वतन्त्रता अभिव्यक्ति अधिक सुरक्षित है । विज्ञान की प्रगति के कारण मृत्युदर घट रही है । व्याधियों पर नियन्त्रण किया जा रहा है । औसत आयु बढ़ रही है । शिक्षा का प्रसार बढ़ा है । देश-भक्ति जगी है । सुविधा सामग्री सस्ती तथा सामान्य हो गयी है । शासन की स्थापना में जनता का हाथ है । इतना सब होते हुए भी एक भारी क्षति मानवी-दृष्टिकोण का स्तर बहुत नीचा गिर जाने की हुई है । आज सर्वाधिक ज्ञानी, सर्वाधिक धनवान् और सर्वाधिक सामर्थ्यवान् लोगों का दृष्टिकोण भी संकीर्ण और स्वकेन्द्रित हो रहा है । वर्तमान से आगे की उनकी चिन्ताएँ तथा रुचियाँ जाती रही हैं । आत्मा के सम्बन्ध में सोचने के लिए उसके पास समय नहीं और न यह सूझ पड़ रहा है कि मानव-जाति का भविष्य बनाने के लिए, बिगाड़ को रोकने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है ?

खोज और प्रगति के लिए मात्र भौतिक-क्षेत्र में ही अपने को अवरुद्ध कर लेना हमारे लिए उचित न होगा । यह और भी अधिक आवश्यक है कि जिस जीवधारी के लिए प्रकृति की शक्तियों को करतलगत करके विपुल सुविधा-साधन जुटाये जा रहे हैं, उसकी अपनी हस्ती क्या है? इस पर भी विचार किया जाय और यह भी खोजा जाय कि जीवन-सत्ता का विकास-विस्तार किस हद तक सुख शांति की आवश्यकता पूर्ण कर सकता है ? विज्ञान का यह पक्ष भी कम उपयोगी और कम महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाना चाहिए ।

अभावों और असुविधाओं से लड़ने और प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने के लिए जीवधारी की संकल्प शक्ति को प्रखर बनाया जाना चाहिए । साधनों की बहुलता तो मनुष्य को अकर्मण्य और अशक्त बनाती चली जायगी । प्रगति का मूल आधार विचार-प्रवाह एवं संकल्प-बल ही रहा है । जीवधारियों की प्रगति का इतिहास इन्हीं उदाहरणों से भरा पड़ा है ।

जीवन के व्याख्याकारों ने उसके सम्बन्ध में विविध प्रकार के मत व्यक्त किये हैं । गतिशीलता, समर्थता, चेतना, विकास की क्षमता, भोज्य पदार्थों की ऊर्जा के रूप में परिणत कर सकना, जन्म दे सकने की क्षमता आदि-आदि कितनी शर्तें जीवन-अस्तित्व के साथ जोड़ी गई हैं ।

यह सारी विशेषताएँ प्रोटोप्लाज्म में सीमित नहीं हो सकतीं उसके लिए कुछ अतिरिक्त क्षमता की आवश्यकता है । हमारी भावी खोज और दिलचस्पी इस अद्भुत अतिरिक्तता पर ही केन्द्रित होनी चाहिए, जो जड़ परमाणुओं के सीमित क्रियाकलाप से कहीं अधिक ऊँचा है ।

विज्ञान वेत्ता रासायनिक विश्लेषण से कभी आगे बढ़ते हैं तो विद्युतीय स्फुरण के रूप में प्राण-चेतना की व्याख्या करने लगते हैं । मनुष्य शरीर में बिजली का विपुल-भण्डार भरा पड़ा है, यह ठीक है और यह भी सत्य है कि मस्तिष्क से विचारों के कम्पन विद्युत-प्रवाह के ही रूप में निकलते है और शारीरिक आन्तरिक क्रिया प्रक्रिया सम्पन्न करते हैं, साथ ही विश्व ब्रह्माण्ड में हलचल उत्पन्न करके अगणित मस्तिष्कों पर अपना प्रभाव डालते हैं और जड़ पदार्थों की दिशा मोड़ते हैं । किन्तु यह मान बैठना उचित न होगा कि यह बिजली बादलों में कड़कने वाली धूप गर्मी के रूप में अनुभव आने वाली तथा बिजलीघरों में उत्पन्न होने वाली के ही स्तर की है । भौतिक-बिजली और प्राण-शक्ति में मौलिक अन्तर है । प्राण के कारण शरीर और मस्तिष्क में बिजली पैदा होती है, किन्तु यह विद्युत-प्रवाह तक सीमित न होकर अनन्त अद्भुत क्षमताओं से परिपूर्ण हैं ।

मानवी विद्युत आकर्षण—ह्यूमन मैगनेटिज्म तथा जीवनीशक्ति, मेटाबोलिज्म का संयुक्त स्वरूप प्राण है । उसे विश्वव्यापी महाप्राण का एक अंश भी कहा जा सकता है क्योंकि भौतिक जगत में और चेतन सम्वेदनाओं में जो कुछ स्फुरणा रहती है, उनका समन्वित समीकरण मानवी प्राणसत्ता में देखा जा सकता है ।

'प्रोजोक्टिजम आफ ऐस्ट्रल वाडी' के लेखक ने बताया है कि शरीर की स्थूल रचना अपने आप में अद्भुत है, पर यदि उसके भीतर काम कर रहे विद्युत शरीर की क्रिया-प्रक्रिया को समझा, जाना जा सके तो प्रतीत होगा कि उसमें सूर्य से तथा अन्याय ग्रह-नक्षत्रों से धरती पर आने वाली ज्ञात और अविज्ञात किरणों का भरपूर समन्वय विद्यमान है । गामा, वीटा, एक्स, लेजर, अल्ट्रा वायलेट, अल्फा वायलेट आदि जितने भी स्तर की शक्ति किरणें भूमण्डल में भीतर और बाहर काम करती हैं, उन सबका समुचित समावेश मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में हुआ है । स्थूल शरीर जड़ पदार्थों के बन्धनों से बँधा होने के कारण ससीम है, पर सूक्ष्म शरीर की सम्भावनाओं का कोई अन्त नहीं । उसका निर्माण ऐसी इकाइयों से हुआ है, जिनकी हलचलें ही इस ब्रह्माण्ड में विविध-विधि क्रियाकलाप उत्पन्न कर रही हैं ।

जीवन-तत्ववेत्ता ई. के. लेनकास्टर ने अधिक गहराई तक जीवन-तत्व की खोज करने के उपरान्त उसे भौतिक-जगत में चल रही समस्त क्रिया-प्रक्रियाओं से भिन्न स्तर का पाया । उसके निरूपण के लिए जो भी सिद्धान्त निर्धारित किये, वे सभी ओछे पड़े । अस्तु उन्होंने कहा—जीवन सत्ता के बारे में मानवबुद्धि कुछ ठीक निरूपण शायद ही कर सके । उसकी व्याख्या भौतिकसिद्धान्तों के सहारे कर सकना सम्भवत: भविष्य में भी सम्भव न हो सकेगा । जीवन एक स्वतन्त्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विज्ञान है और ऐसा जिसकी नाप-तौल पदार्थ विद्या के चटखरों से नहीं ही हो सकेगी ।

निर्जीव पदार्थ का केवल अस्तित्व है । उसमें अनुभूति नहीं और न जीवन । पौधों में अस्तित्व और जीवन है, पर ज्ञान का अभाव है । प्राणियों में अस्तित्व, जीवन और अनुभूति है, परन्तु ज्ञान या स्वतन्त्र इच्छा विकसित अवस्था में नहीं है । इसके विपरीत मनुष्य में ये सब गुण विद्यमान हैं, उसमें अस्तित्वपूर्ण जीवन, अनुभूति ज्ञान और स्वतन्त्र इच्छाशक्ति का समन्वय है, इस प्रकार उसे चेतना के सुविकसित स्तर पर प्रतिष्ठापित किया जा सकता है ।

जड़ और चेतन की आणविक हलचलों में समानता हो सकती है, पर यह किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होता कि जड़ का विकास इतना अधिक हो सके कि वह चेतना के उच्चतम स्तरों की परतें उधेड़ता चला जाय । अस्तु हार-थककर वे अन्य प्रकार के उपहासास्पद निष्कर्ष निकालते हैं । उदाहरण के लिए केल्विन, हैमरीज, किचटर, अरहेनियस की मान्यता है कि जीवन किसी अन्य लोक से भूलता-भटकता पृथ्वी पर आ पहुँचा है ।

टैण्डाल और पास्टयूर की मान्यता थी कि जीवन—जीवन से ही उत्पन्न हो सकता है । आरम्भ में सेल अपने आप अपनी वंश-वृद्धि किया करते थे, पीछे—'नर-मादा-संयोग' का क्रम चला । इसी प्रकार भीतरी-बाहरी अवयवों की संख्या एवं क्षमता भी क्रमशः ही विकसित हुई है । जड़ से चेतन की उत्पत्ति अथवा पदार्थ का जीवन में परिवर्तन उन्होंने अशक्य माना है । चेतना की वे स्वतन्त्रत सत्ता ठहराते हैं ।

ब्रह्माण्डव्यापी महाशक्तियों में से गुरुत्वाकर्षण की क्षमता सर्वविदित है । आकाश में समस्त ग्रह-नक्षत्र उसी के आधार पर टिके हुए हैं और जीवित हैं ।

इलैक्ट्रोमैगनेटिक शक्ति (विद्युत चुम्बकीय क्षमता) अगणित भौतिक प्रक्रियाओं का नियन्त्रण करती है । प्रकाश, ताप, ध्वनि, विद्युत, रासायनिक परिवर्तन आदि का जो क्रियाकलाप इस जगत में चल रहा है, उसके मूल में यही शक्ति काम कर रही है । ईथर अपने विभिन्न आकार-प्रकारों में वस्तुओं पर शासन स्थापित किये हुए है ।

यह विद्युत चुम्बकीय क्षमता, मात्र जड़ नहीं है । यदि वह जड़ ही होती तो अणु-परमाणुओं की संरचना में जो अद्भुत व्यवस्था दिखाई पड़ती है । उसके दर्शन नहीं होते । साथ ही चेतन प्राणियों में दूरदर्शिता, आकांक्षा, भावना जैसी कोई विशेषता न होती और न किसी जीव में कोई ऐसी अतीन्द्रिय-क्षमता पाई जाती, जिसका जड़-चेतन के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं हो ।

आइन्स्टाइन कहते थे—आज न सही, कल यह सिद्ध होकर रहेगा कि अणु सत्ता पर किसी अविज्ञात चेतना का अधिकार और नियन्त्रण है । भौतिक जगत उसी की स्फुरणा है । पदार्थ मौलिक नहीं है चेतना की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही पदार्थ का उद्भव हुआ है । भले ही आज यह तथ्य प्रयोगशाला में सिद्ध न हो सके, पर मेरा विश्वास है कि कभी वह सिद्ध होगा अवश्य ।

जीव-तत्व की शोध के स्वस्थ कदम आत्मा की स्वतन्त्र चेतन सत्ता स्वीकार करने पर ही आगे बढ़ सकेंगे । आत्मा को जड़ सिद्धान्तों के अन्तर्गत बाँधते रहने से—चेतना विज्ञान के उपयुक्त विकास में बाधा ही खड़ी रहेगी और सही निष्कर्ष तक पहुँचने में एक भारी व्यवधान खड़ा रहेगा ।

वैज्ञानिक शोधों में जिस जिज्ञासा की आवश्यकता पड़ती है, उसी सूक्ष्म दृष्टि को अपनाकर आत्म-सत्ता की महत्ता और उसके स्वस्थ विकास की सम्भावनाओं को समझा जा सकता है । इस लाभ से मनुष्य जिस दिन लाभान्वित होगा, उस दिन उसे न अभाव, दारिद्र्य का सामना करना पड़ेगा और न शोक-सन्ताप का ।

कठोपनिषद् के अनुसार 'बालक नचिकेता'—महाभाग यम से जीवन और मृत्यु की पहेली का उत्तर पूछता है । तैत्तरीय उपनिषद में भृगु अपने पिता वरुण से ब्रह्म की प्रकृति तथा सर्वोच्च यथार्थ के बारे में जानना चाहता है । श्वेतकेतु ज्ञान से समृद्ध होकर लौटता है तो उसके पिता उससे पूछते हैं कि क्या उसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया ? जनक निरन्तर याज्ञवल्क्य से एक के बाद एक प्रश्न पूछते हुए एतरेय उपनिषद में यही जानना चाह रहे हैं कि जीव को शुद्ध अन्तर्दृष्टि से किस प्रकार पूर्णता का बोध होता है ।

मनुष्य सर्वसमर्थ परमात्मा की संतान है । परमात्मा ने अपनी संतान को उन सभी विशेषताओं, विशिष्ट सामर्थ्यों से अलंकृत कर इस दुनिया में भेजा है । वह अपने विकास के लिए परिस्थितियों पर निर्भर है तथा बाह्य साधनों पर अवलम्बित । अपनी इच्छाशक्ति के आधार पर वह स्वयं का इच्छित विकास करने और अभीष्ट उपलब्धियों को अर्जित करने में सर्वतः स्वतन्त्र, स्वनिर्भर है ।

इस समाधान को प्राप्त करके ही मानवी चिंतन की सार्थकता और विकासक्रम की पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है । शास्त्र कथन भी इसी विकासवादी मान्यता का समर्थन करता है । योग वाशिष्ट का इस सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश है:

अनारतं प्रतिदिशं देशे देशे जले स्थले ।
जायंते वा म्रियंते वा बुदबुदा इव वाहिनि ॥
—योगवाशिष्ठ ४४/४५/१-२

एवं जीवाम्बितो भावा भवभावनयोहिता ।
ब्रह्मणः कल्पिताकारास्तत्क्षणोडयच कोटिशः ॥
असंख्याताः पुरा जाता जायन्ते चापि वाद्य भोः ।
उत्पत्तिष्यन्ति चैवाम्बुकणौघा इव निर्झरात् ॥
—योगवाशिष्ठ ४/४३/१-२

हे राम ! जिस प्रकार जल में अनेक बुलबुले बनते और बिगड़ते रहते हैं उसी प्रकार सब देश और सभी कालों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में यह चेतना ही अनेक जीवों के रूपों में उत्पन्न और नष्ट होती रहती है । यह सब चित्त के रूपान्तर का फल है । जीव अपनी इच्छा और कल्पना के द्वारा लाखों और करोड़ों की संख्या में तीनों कालों में उत्पन्न होते रहते हैं जैसे झरने के जल कण ।

इतना स्पष्ट उल्लेख के उपरान्त फिर इस विवाद में पड़ने का कोई औचित्य रह नहीं जाता कि जीव 'अमीबा' से पैदा हुए और मनुष्य बन्दर की सन्तान है । अच्छा होता हम विकासवादी अवधारणा के उस पक्ष पर विचार करते, जो शरीर से नहीं, चेतना से संबंधित है, क्योंकि मनुष्य का परम लक्ष्य चेतना की अन्तिम और सर्वोच्च अवस्था की प्राप्ति ही है । इसी मार्ग पर चलकर उसका वास्तविक कल्याण हो सकता है । शोध-अनुसंधान भी इसी दिशा में नियोजित होने चाहिए, बुद्धि को भ्रमाने वाले सर्वथा काल्पनिक और अवास्तविक जड़वादी विकासवाद के क्षेत्र में नहीं ।

विकासवाद की अवधारणा मात्र चेतनात्मक ही

मनुष्य का प्रादुर्भाव कैसे हुआ ? इस संबंध में विकासवादी अवधारणा यह है कि जीवन विकास का प्रारंभिक चरण एककोशिक जीव था । इसी से कालक्रम में छोटे-से-छोटे जीवधारी से लेकर मानव जितना बुद्धिमान प्राणी पैदा हुआ ।

यदि इस मान्यता को आधार माना गया, तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि विकासवादी प्रक्रिया पूर्णतः आकस्मिक थी । जहाँ सब कुछ अकस्मात् हो रहा है, कोई नियामक तंत्र उसके पीछे काम नहीं कर रहा हो, उसकी परिणति भी अचानक घटी दुर्घटना जैसी होनी चाहिए, पर नृतत्ववेत्ता तो मानवी विकास की एक सुसंबद्ध शृंखला ढूँढने का प्रयास कर रहे हैं—यह कितना हास्यास्पद है और परस्पर विरोधी भी । यह सभी जानते हैं कि आकस्मिकता और सुसंबद्धता साथ-साथ घटित नहीं हो सकतीं । दोनों की प्रकृति भिन्न है । जहाँ आकस्मिकता होगी, वहाँ किसी प्रकार का नियम लागू नहीं होता, वह अनिश्चित एवं अनियमित होगी, पर जहाँ सुसंबद्धता है, वहाँ निश्चित रूप से कोई न कोई नियम, कोई न कोई तंत्र क्रियाशील होगा । इतना सब ज्ञात होते हुए भी विकासवादियों ने दोनों को मिलाने की गलती क्यों की ? यह तो वहीं जानें पर "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा," जैसी उक्ति को चरितार्थ करते हुए विज्ञान ने आदमी की एक विकासवादी शृंखला बनाकर खड़ी कर दी । बीच-बीच में जहाँ की कड़ी नहीं मिल पायी, उसकी विवेचना में एक नया सिद्धांत गढ़ दिया । कहा कि इस मध्य प्रगति इतनी तीव्र हुई कि अगला सोपान पिछले की तुलना में एकदम बदल गया, इतना अधिक कि यह अनुमान लगा पाना कठिन हो गया कि दूसरे का आविर्भाव पहले वाले से ही हुआ हो । इस सिद्धान्त का नाम उनने 'जम्प थ्योरी' रखा, पर क्रमिक विकास में आदि पूर्वजों को जहाँ-तहाँ छलाँग लगाने की विवशता क्यों आ पड़ी ? इसे बता पाने में वे असफल रहे । वस्तुतः जोड़-तोड़ का विज्ञान का यह पुराना तरीका है । जहाँ बुद्धि आगे काम नहीं करती, वहाँ तुरन्त विज्ञानवेत्ता कोई न कोई नया सिद्धान्त खड़ा कर देते हैं । ऐसा सिद्धान्त जो उनके पुराने मत का समर्थन कर सके । यहाँ भी वैसा ही किया गया, पर ऐसा करते समय कदाचित् वे यह नहीं सोच सके कि विकासवाद की इस प्रक्रिया द्वारा जीवन उत्पत्ति यदि मानी गई, तो उन प्रश्नों का उत्तर दे पाना कैसे संभव होगा, जो समय-समय पर इस संदर्भ में उठाये और पूछे जाते रहे हैं कि पहले कौन हुआ ? अण्डा या मुर्गी ? नर या नारी ? बीज या वृक्ष ?

विकासवादी इन प्रश्नों का कोई संतोषजनक जवाब नहीं दे सके । सच तो यह है कि जीव उत्पत्ति संबंधी वर्तमान धारणा के आधार पर इन सवालों का उत्तर दे पाना कठिन ही नहीं, असंभव भी है । असंभव इसलिए कि मुर्गी के बिना अंडे की कल्पना नहीं की जा सकती और यदि क्रमिक विकास से मुर्गी आविर्भूत हुई भी, तो बिना मुर्गे के अंडा कैसे पैदा हो ? आकस्मिक प्रक्रिया मुर्गे को कब जन्म देगी । देगी भी या नहीं ? इसमें सदा संदेह बना रहता है । ऐसा ही संशय नारी-नर एवं दूसरे जीवों के युग्मों के संबंध में पैदा होना स्वाभाविक है । यह भी शक अस्वाभाविक नहीं कि जिस तरह हर प्राणी के जोड़े आज दुनिया में मौजूद हैं, वह सब किसी आकस्मिक प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न हुए हैं ? इसे कोई विवेकशील व्यक्ति शायद ही स्वीकार कर सके ।

जो भी हो, कुछ क्षण के लिए यदि सृष्टि विकास संबंधी प्रचलित मत को अंगीकार कर भी लिया जाय, तो इस आधार पर वास्तविक आरंभिक मनुष्य (होमो इरेक्टस) का जो समय जीव विज्ञानियों ने निर्धारित किया है, वह दस लाख वर्ष से अधिक नहीं है, जबकि हाल की खोजों से इसका स्पष्ट खण्डन होता है । सन् १९७० में अफ्रीका के तीन भिन्न स्थानों में तीन अलग प्रकार के अवशेष मिले । वैज्ञानिक विधि द्वारा जब इनकी आयु आँकी गई, तो प्राप्त उम्र की संगति वर्तमान सिद्धान्त द्वारा निर्धारित वय से किसी प्रकार नहीं बैठी । इससे स्पष्ट है कि सत्य और सिद्धान्त में कहीं कोई भूल अवश्य है ।

जिसका कारण प्राप्त जीवाश्मों (फॉसिल्स) के अध्ययन से धीरे-धीरे स्फुट होने लगा । प्रथम अवशेष केन्या के रुडोल्फ बेसिन में मानवी खोपड़ी एवं कुछ अस्थियों के रूप में प्राप्त हुआ । इसकी आयु वैज्ञानिकों ने २० लाख ८० हजार वर्ष बतायी । इसका संपूर्ण आकार-प्रकार आधुनिक मनुष्य से एकदम मिलता-जुलता था । एकमात्र खोपड़ी ही ऐसी थी, जो कुछ छोटी थी । द्वितीय गवेषणा दक्षिणी अफ्रीका में स्वाजीलैण्ड एवं नैटाल की सीमाओं के बीच एक गुफा के रूप में हुई । इस कंदरा से जो हड्डियाँ पायी गईं, वह आधुनिक मानव जैसी थीं । इनके अस्तित्व के बारे में विशेषज्ञों का मत है कि वे आज से करीब एक लाख वर्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईसा पूर्व वहाँ निवास करते थे । तीसरा प्रमाण तंजानिया से प्राप्त हुआ । यहाँ से उपलब्ध हुए नमूनों में मानवी जबड़े और दाँत प्रमुख थे । इनकी आयु ३० लाख ७५ हजार वर्ष आँकी गई ।

इन साक्षियों से विकासवादियों को गहरा धक्का लगा, कारण कि अनुमान और सबूत में अवधि संबंधी इतना भारी अंतर होगा, इसकी उनने कल्पना तक नहीं की थी । दूसरे वे इतने विकसित बुद्धि वाले होंगे, इसका भी अंदाज नहीं था, किन्तु अन्वेषण से यह भ्रम दूर हुआ और वे अनुमानित से भी अधिक बुद्धिमान निकले । प्राप्त औजारों से इसकी पुष्टि भी हो गई । उपकरणों में कई ऐसे मिले, जिन्हें देखकर अनुसंधानकर्त्ता चकित हुए बिना न रह सके । गोमेद पत्थर की बनी सुन्दर कलाकृतियुक्त छुरियाँ ऐसी ही थीं । इनकी धार अब भी इतनी तेज थी कि उनसे कागज के टुकड़े आसानी से किये जा सकें । इसके अतिरिक्त उपलब्ध प्रमाणों से यह स्पष्ट विदित होता है कि धर्म के प्रति उनकी दृढ़ आस्था थी और वे मरणोत्तर जीवन पर भी विश्वास करते थे । भारतीयों की तरह उनमें अस्थि विसर्जन की भी प्रथा प्रचलित थी । इसकी पुष्टि बालक की उन हड्डियों से हो गई, जो एक बंद पात्र में पायी गईं । विशेषज्ञों का यह सुनिश्चित मत है कि तब उनमें भाषा का विकास हो चुका होगा और उनके बीच कोई विकसित बोली, बोली जाती होगी । कारण बताते हुए वे कहते हैं कि मरणोत्तर जीवन जैसे गंभीर एवं सूक्ष्म विषय को भाव-भंगिमाओं, मुद्राओं अथवा अर्थहीन ध्वनियों से अभिव्यक्त कर पाना संभव नहीं । यह शक्य तभी हो सकता है, जब विचार-विनिमय संबंधी कोई बोली अथवा भाषा हो । गिनती भी तब प्रचलन में आ चुकी थी, ऐसा विज्ञानियों का मानना है ।

सन् १९७० में जब दक्षिण अफ्रीका की उक्त गुफा का पता चला, तो एड्रियान बोजियर एवं पीटर ब्यूमोण्ट नामक शोधकर्त्ताओं ने इसका गहराई से निरीक्षण किया । फलस्वरूप लगभग ३ लाख मानव निर्मित वस्तुएँ प्राप्त हुईं । इसके अतिरिक्त विभिन्न जंतुओं की जली हड्डियाँ मिलीं । लकड़ी के कोयलेयुक्त राख की एक पर्त भी पायी गई । इसी के नीचे बालक का कंकाल दबा पड़ा था । वैज्ञानिकों के अनुसार यह दोनों परतें दो भिन्न युगों को निरूपित करती हैं । राख वाली सतह अपेक्षाकृत आधुनिक है । इसकी आयु का हिसाब लगाते हुए वैज्ञानिक बताते हैं कि यह करीब ६० से ७० हजार वर्ष ईसा पूर्व की है, जबकि नर-कंकालयुक्त निचली सतह एक लाख वर्ष (ईसा पूर्व) पुरानी है ।

इससे पहले तक प्राणि विज्ञानियों के एक वर्ग का अनुमान था कि ईसा पूर्व ७५ हजार वर्ष पहले मनुष्य की जिस प्रजाति का अस्तित्व रहा होगा, वह निण्डरथल किस्म (आदि मानव की एक विशेष प्रजाति) का मनुष्य होगा, किन्तु गुफा के अंदर के अवशेष से जो कुछ विदित हुआ, उससे उनकी इस मान्यता को जबरदस्त आघात लगा । अनुसंधानकर्त्ताओं का कहना है कि यह अवशेष निश्चय ही आधुनिक मानव (होमो सेपियन्स) के हैं, जबकि विकासवादी प्रथम वास्तविक मनुष्य (होमो इरेक्टस) की उत्पत्ति ही दस लाख वर्ष पूर्व मानते हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि वर्त्तमान स्वरूप को प्राप्त करने में उन्हें कई हजार वर्ष और लगे होंगे । ऐसा अनुमान है कि ३५-४० हजार वर्ष ईसा पूर्व के आस-पास ही वे संभवतः आधुनिक रूप को प्राप्त कर सके हों । मानव विज्ञानियों के हिसाब से भी लगभग इतना ही समय होमो सेपियन्स के प्रादुर्भाव का हुआ है, जबकि शोधकर्ताओं के अन्वेषणों से इस प्रजाति की उपस्थिति एक लाख वर्ष ईसा पूर्व सिद्ध हो चुकी है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यथार्थ और अनुमान के बीच कोई बड़ी त्रुटि रह गई है । इस संबंध में एक प्रमुख शोधकर्त्ता बोजियर का कहना है कि हम बंदर को मनुष्य का पूर्वज मान बैठे हैं, यही शायद हमारी सबसे बड़ी गलती है और इसी कारण अनुमान तथा प्रमाण के बीच इतना बड़ा व्यतिरेक पैदा हुआ है । वे कहते हैं कि आधुनिक अनुसंधान में अब तक जितनी वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, वे सब अनुमान से तीन गुना पुरानी साबित हुई हैं । तीर-धनुष, जिनके बारे में पूर्व मान्यता थी कि १५ हजार वर्ष ईसा पूर्व उनका विकास हुआ होगा, अब पाषाण तीरों की उपलब्धि से यह स्पष्ट हो गया है कि वे ५० हजार वर्ष पहले भी अस्तित्व में थे ।

ऐसे ही अन्य स्थानों से प्राप्त साक्ष्य भी वर्तमान अवधारणा को हतोत्साहित करते हैं । सत्य तो यह है कि हम एक सर्वथा मिथ्या मान्यता अपनाये हुए हैं । इस सिद्धान्त के आधार पर सृष्टि विकास की कभी भी भली-भाँति व्याख्या नहीं की जा सकती । यदि प्राणियों को विकासवादी प्रक्रिया की परिणति कहा गया और मनुष्य को बंदर की औलाद माना गया, तो संसार में अब भी अनेक ऐसे जीव (सी अर्चिन, सी कुकुंबर, जेलीफिश) मौजूद हैं, जिनकी वंशावली तो क्या, पूर्वजों तक का भी पता नहीं है । ऐसे में विज्ञान की यह शाखा अधूरी, असमर्थ ही नहीं, अविश्वसनीय भी साबित होती है । जिस विज्ञान के पास सभी सवालों का तर्क-संगत जवाब नहीं, उसे कोई कैसे स्वीकार करे ?

यथार्थता इतनी है कि मानव आरम्भ से ही मानव था और आगे भी वह वही बना रहेगा । इसी स्वर में स्वर मिलाते प्रागैतिहासविद् पीटर ब्यूमोण्ट कहते हैं कि हम लाख दुराग्रह पालें और आदमी को बंदर की संतान सिद्ध करें, पर उपलब्ध प्रमाण यह मानने के लिए बाधित ही करेंगे कि वर्तमान धारणा बेबुनियाद ही नहीं, बेतुकी भी है । जैसे-जैसे खोज कार्य आगे बढ़ रहे हैं, वैसे-वैसे इस बात की संभावना भी बढ़ती जा रही है कि आज नहीं तो कल हमें इस तथ्य को स्वीकारना ही पड़ेगा कि मनुष्य शुरू से ही मनुष्य था और बंदर, बन्दर । न बंदर से मनुष्य का उद्भव हुआ है, न अमीबा से जीव विकास । यह ठीक है कि आरम्भ में कल्पना की नींव से ही काम चलाना पड़ता है, पर वे कहते हैं कि कल्पना का आधार तभी तक मान्य है, जब तक प्रमाण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुपलब्ध हों । उपलब्ध साक्ष्य के आगे इसका कोई महत्व रह नहीं जाता ।

इस प्रकार दृष्टि पसारकर देखा जाय, तो पायेंगे कि हम धीरे-धीरे उसी बिन्दु की ओर अग्रसर होते चले जा रहे हैं, जहाँ से इस बात की दृढ़तापूर्वक घोषणा की जा सके कि सृष्टि ईश्वर की संरचना है और यहाँ के प्राणी उसके संकल्प के परिणाम । इस निर्णय से कदाचित् किसी विज्ञानवेत्ता को आपत्ति हो और वह विकासवाद के समर्थन में जिराफ जैसे जंतुओं का उदाहरण सामने रखते हुए यह कहे कि उसकी लम्बी गर्दन विकासवादी प्रक्रिया का नतीजा है, तो यह किसी प्रकार स्वीकार्य नहीं होगा । लंबी गर्दन परिस्थिति के दबाव (ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की पत्तियाँ खाने के प्रयास में पड़ने वाला खिंचाव) का परिणाम हो सकता है, पर यह बदलाव जर्म सेल (जनन कोशिका) में किस प्रकार पहुँच गया ? यह समझ से परे है । अफ्रीका के जंगलों में रहने वाले जनजाति कबीले के लोग भी अपने अंगों को दबाव और खिंचाव के द्वारा घटाते-बढ़ाते रहते हैं । सिर के ऊपर धात्विक छल्ले कसकर वे उसके स्वाभाविक गोलाकार को लम्बा कर लेते हैं । ऐसे ही कानों और होठों में वजन लटका कर उन्हें बड़ा बना लेते हैं, पर उनके बड़े कान, लटकते होंठों और लम्बा सिर उनकी संतानों में नहीं देखे जाते । उनमें उक्त अंग स्वाभाविक आकार के ही होते हैं । अस्वाभाविक रूप देने के लिए उनको वैसा ही उपक्रम अपनाना पड़ता है, जैसा पिता ने अपनाया था । यदि ऐसे उपायों से कायान्तर को संतति में ले जा पाना संभव होता, तो यहाँ भी वैसा होना चाहिए था, पर ऐसा होता कहाँ देखा जाता है ? ऐसे में यह अंगीकार कर लेने में ही समझदारी होगी कि जिराफ की लंबी गर्दन प्रकृति प्रदत्त है, वह किसी अभ्यास एवं आदत की फलश्रुति नहीं ।

इतना स्पष्ट हो जाने के उपरान्त फिर यह कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि मानव का आदि रूप भी वैसा ही था, जैसा वर्तमान में है और दूसरे जीव भी प्राकट्य के बाद से अपने-अपने आदिम रूप को ही अपनाये हुए हैं । आगे भी वे अपने मूल रूप में बने रहेंगे-इसमें दो मत नहीं । केवल मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है, जिसमें परिवर्तन की संभावना शेष है और विकास की भी गुंजायश बाकी है, पर यह सब मानसिक स्तर पर ही संपन्न हो सकेगा । उसकी चेतनात्मक प्रगति शुरू से होती आयी है । आगे भी वह जारी रहेगी, तब तक, जब तक मानव अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त न कर ले । यही उसकी अंतिम मंजिल होगी और चेतनात्मक विकासवाद का आखिरी सोपान भी । इस सर्वोच्च सोपान पर पहुँचना ही मानवी जीवन का उद्देश्य होना चाहिए । जहाँ पहुँचकर कहीं अन्यत्र जाना और कुछ अतिरिक्त प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता । उत्कर्ष के इस बिन्दु पर प्रतिष्ठित होना विकासवादी अवधारणा द्वारा ही संभव है, पर यह अवधारणा चेतनात्मक ही होनी चाहिए पंचभौतिक काया वाली नहीं ।

विज्ञान, विकासवाद और भारतीय अध्यात्म

वर्षों पूर्व नीत्से ने घोषणा की थी कि ईश्वर मर गया । यदि बात सचमुच ऐसी रही होती, तो इस जड़ जगत का संपूर्ण ढाँचा ही लड़खड़ा गया होता एवं प्रकृति की हर प्रणाली में सर्वत्र अराजकता और अव्यवस्था ही झलकती-झाँकती दृष्टिगोचर होती, किन्तु प्रत्यक्ष में ऐसा होता कहाँ दीखता है ? सूक्ष्म-से-सूक्ष्म परमाणुओं के अंतराल में भी एक सुनिश्चित क्रमबद्धता पायी जाती है । इससे ऐसा लगता है इस संसार को संचालित करने वाली कोई परोक्ष सत्ता अवश्य होनी चाहिए ।

एक जमाना था, जब लोग, भोले, भावुक और विश्वासी हुआ करते थे । तब ईश्वरीय सत्ता के प्रति उनके मन में न कोई शंका थी, न संदेह । यह उनकी अच्छाई थी । बुराई यह थी कि इसके साथ-साथ वे अनेक अनगढ़ परम्पराओं को अपनाये हुए थे, जिससे उनका विकास लम्बे समय तक अवरुद्ध बना रहा । बुद्धिवाद के बढ़ने के साथ-साथ कुप्रथाओं का अंत तो हुआ, पर एक इससे भी भयंकर आस्था-संकट आ खड़ा हुआ-नास्तिकवाद, जो ईश्वर के अस्तित्व को ही संदेहास्पद मानने लगा और उसे तर्क, तथ्य व प्रमाण की कसौटी पर कसने का प्रयास करने लगा । जब इनसे उस चेतनात्मक सत्ता की पुष्टि न हो सकी, तो कुछ सिरफिरे किस्म के दार्शनिकों ने यह कहना प्रारम्भ किया कि भगवान नाम की किसी सत्ता का संसार में कोई अस्तित्व नहीं । बस, यहीं से अनीश्वरवादी दर्शन की शुरूआत हुई ।

पश्चिमी जगत में इस विचारधारा का जन्म डार्विन से हुआ, जब उसने मनुष्य को बन्दर की औलाद बताया । यों प्रत्यक्षतः उसने आस्तिकवाद पर कोई प्रहार नहीं किया, पर परोक्ष रूप से इसका खण्डन कर दिया । बाद के अनुसंधानकर्ताओं ने उनके कथन को सही सिद्ध करने के लिए जोड़-गाँठ करके बन्दर से मनुष्य तक के विकासयात्रा की एक क्रमबद्ध शृंखला तैयार कर दी । इतने पर भी बीच की उसकी कई कड़ियाँ अब तक ढूँढ़ी नहीं जा सकी हैं । इस महत्त्वपूर्ण त्रुटि से छुटकारा पाने के लिए वैज्ञानिकों ने एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । इसका नाम रखा गया—'जम्प थ्योरी' या 'सैलटैटरी थ्योरी' । इस सिद्धान्त के अनुसार मानवी विकास में बीच-बीच में कई ऐसे पड़ाव आये, जहाँ प्रगति अचानक एकदम रुक गई और फिर अकस्मात् इतनी तेजी से आरम्भ हुई कि प्राणी की शारीरिक संरचना पहले से काफी बदल गई । दूसरे शब्दों में विकासवाद के पक्षधरों ने इसे यात्रा के दौरान की एक लम्बी छलाँग बतायी । उनके अनुसार इसी कारण बीच की दो मिलती-जुलती कड़ियाँ नहीं पायी जा सकीं । हाथी, घोड़े, ऊँट आदि जानवरों की आधी-अधूरी वंशावलियाँ भी इसी प्रकार येन-केन प्रकारेण तैयार कर ली गई । इतने पर भी आश्चर्य यह है कि कुछ एक प्रमाणों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के आधार पर विज्ञान न संपूर्ण जीव-जगत को विकासवाद पर आधारित कैसे मान लिया ? जबकि कितने ही जीव (जेलीफिश, स्पांज, सीअरचीन, सीकुकुम्बर एवं अन्य) ऐसे हैं, जिनके किसी एक पूर्वज को भी सारी पृथ्वी पर अब तक खोजा नहीं जा सका है । ऐसे में विकासवादी अवधारणा को सच कैसे मान लिया जाय और इस तथ्य से सर्वथा इनकार कैसे किया जाय कि इनकी रचना के पीछे किसी अदृश्य सत्ता का हाथ नहीं है ?

यदि जीव-जगत को विकासवादी प्रक्रिया की परिणति माना जाय, तो फिर वनस्पति-जगत को भी इसमें सम्मिलित करना पड़ेगा, जबकि पादप-जगत में ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है, जिसमें एक वृक्ष से दूसरे का उद्भव बताया गया हो । हाँ, किसी प्राकृतिक माध्यम अथवा कृत्रिम ढंग से दो पौधों में परस्पर परागण की क्रिया हो जाय, तो उससे तीसरी प्रजाति की उत्पत्ति हो सकती है, पर नैसर्गिक रूप से उसमें परिवर्तन तब तक नहीं होगा, जब तक किसी बाह्यकारक के कारण उसका पर-परागण न हो जाय, जबकि प्राणियों की दुनिया में एक जीव से दूसरे का प्रादुर्भाव लाखों-करोड़ों साल की प्रगति-यात्रा के दौरान होने वाले स्वाभाविक परिवर्तन को माना जाता है । यदि ऐसा हुआ, तो यह सृष्टि में विकास संबंधी अंतर्विरोध होगा, क्योंकि एक ही क्रिया की दो भिन्न प्रक्रियाएँ प्रकृति में अब तक नहीं देखी गईं । ऐसे में हर जन्तु, जाति और वृक्ष को बिलकुल स्वतंत्र मानकर चलना ही बुद्धिमानी होगी । यह तभी संभव है, जब इसके पीछे किसी स्रष्टा का हाथ होना माना जाय ।

इसी प्रकार का मंतव्य प्रकट करते हुए कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के मूर्धन्य वनस्पतिशास्त्री एवं प्रख्यात विकासवादी ई. जे. कॉरनर कहते हैं कि यदि पूर्वाग्रह रहित होकर कहूँ तो पौधों के अब तक के जीवाश्म-रिकार्ड विकासवादी मान्यता को हतोत्साहित करते और किसी अविज्ञात रचियता का पृष्ठपोषण करते पाये जाते हैं । इसी प्रकार के विचार प्रकट करते हुए प्रसिद्ध जेनेटिसिस्ट एवं विकासवादी रिचर्ड बी. गोल्ड्समिड कहते हैं कि समस्त प्राणी और पादप अकस्मात् प्रकट हुए और बिना किसी परिवर्तन के वे अब तक बने हुए हैं । एक अन्य विकासवादी ऑर्ज गेलार्ड सिम्पसन का कहना है कि प्रीकैम्ब्रियन युग के जीवाश्मों की अनुपस्थिति विकासवादी अवधारणा के लिए पहेली बनी हुई है । वे कहते हैं कि इसे विकासवाद की अपेक्षा जीवों का स्वतंत्र उद्भव जैसी मान्यता के आधार पर आसानी से सुलझायी जा सकती है । बर्मिंघम विश्वविद्यालय के एनाटामी विभाग के अध्यक्ष लार्ड सोली जुकरमैन ने जीवनपर्यन्त अपने अन्वेषण के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि मनुष्य यदि गोरिल्ला सदृश्य प्राणी से विकसित हुआ होता तो वह अपने जीवाश्मों में बिना किसी परिवर्तन के ज्यों-का-त्यों बना रहता, जबकि जीवाश्मविज्ञानियों ने मनुष्य के तथाकथित पूर्वजों के ढेर सारे जीवाश्म खोज निकालने का दावा किया है । इनका यह दावा जुकरमैन के निष्कर्ष के विरुद्ध है । इससे यही सिद्ध होता है कि मनुष्य आरंभ से ही मनुष्य था और गोरिल्ला, गोरिल्ला । यह विचारधारा भी किसी विधाता की उपस्थिति का संकेत करती है ।

जीव-विकास के समर्थक जीवन का प्रादुर्भाव जीवन विहीन रसायनों से मानते हैं । उनके अनुसार आदिमकाल में कुछ रसायनों की परस्पर प्रतिक्रिया से अमीनो अम्ल बने, जो बाद में जीवन-विकास के लिए उत्तरदायी हुए । इस प्रकार बने एककोशीय जीवों से कालक्रम में जटिल संरचना वाले बहुकोशीय जीवों की उत्पत्ति हुई । यदि जीव-उद्भव संबंधी इस मान्यता को सही माना गया, तो अनेक ऐसे प्रश्न उठ खड़े होंगे, जिनका उत्तर दे पाना कठिन होगा, यथा-यौगिकों को पारस्परिक प्रतिक्रिया की प्रेरणा कहाँ से मिली ? जड़ पदार्थों में चेतना का आविर्भाव किस भाँति संभव हो सका ? आदि । इस स्थिति में किसी सूक्ष्म रचनाकार का अस्तित्व स्वीकार कर लेने से जीवविकास संबंधी विवेचना अत्यन्त सरल हो जाती है । यदि ऐसा नहीं माना जा सका और अमीबा से ही जीवोत्पत्ति का दुराग्रह अपनाया गया, तो ऐसी विसगतियाँ सामने आती हैं, जिन्हें किसी कदर स्वीकार नहीं किया जा सकता । उदाहरण के लिए, आधुनिक विकासवाद अथवा नव डार्विनवाद को लिया जा सकता है । इसके अनुसार म्यूटेशन विकास का निमित्त कारण है । उल्लेखनीय है कि म्यूटेशन गुणसूत्रों अथवा जीन्स में आकस्मिक परिवर्तन की एक प्राकृतिक प्रक्रिया है । विशेषज्ञों का मत है कि इस परिवर्तन की दर का पता लगाना संभव है और यह भी अन्दाज लगाना शक्य है कि कितने अनुकूल म्यूटेशन विकासवादी परिवर्तन के लिए अभीष्ट होंगे । यह गणना भी सरल है कि एक अमीबा के पूर्ण मनुष्य में रूपान्तरण में कितना लंबा कालखण्ड आवश्यक होगा । इन्स्टीट्यूट फॉर क्रियेशन रिसर्च, सैनडियागो, कैलिफोर्निया के एसोसिएट डायरेक्टर डूने टाल्बर्ट गिश, जो कि विकासवाद के प्रबल विरोधी हैं, के अनुसार गणितज्ञों के एक दल ने जब इसकी गणना की, तो प्राप्त समय पृथ्वी की उत्पत्ति से कई अरब लंबा पाया गया । वैज्ञानिक पृथ्वी को ५ अरब वर्ष पुराना मानते हैं, जबकि विकासवादी प्रक्रिया से मानवी प्रादुर्भाव का समय अनेकों गुना विशाल मिला । यह विरोधाभास विकासवाद का खण्डन करता है और जीवन विकास संबंधी किसी ऐसे मतवाद पर विचार करने के लिए विवश करता है, जो सर्वमान्य हो । ऐसी स्थिति में डूने की 'क्रियेशन थ्योरी' ही ज्यादा स्टीक और सारगर्भित प्रतीत होती है, जिसमें उनने सृष्टि-संरचना के पीछे भगवान को प्रमुख माना और कहा है कि मनुष्य समेत हर प्राणी का पदार्पण स्वतंत्र सत्ता के रूप में हुआ है, उनमें किसी का किसी से कोई संबंध नहीं । एककोशिक अमीबा आरंभ में भी अमीबा था, अब भी अमीबा है और जब एक तक यह सृष्टि रहेगी, वह अपने उसी रूप में विद्यमान रहेगा । मनुष्य और बन्दर आदि काल से वही थे और अनंत काल तक उसी कलेवर को अपनाये रहेंगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ भौतिकी के एक प्रसिद्ध सिद्धांत पर तनिक चर्चा कर लेना अनुचित न होगा । थर्मोडायनामिक्स के दूसरे नियम के अनुसार संपूर्ण प्राकृतिक तंत्र में व्यवस्था से अव्यवस्था की ओर जाने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है । यह पूरे ब्रह्मांड में सूक्ष्म और स्थूल स्तर पर समान रूप से देखी जाती है और अब तक कभी असफल होते हुए नहीं पायी गई है । विकासवाद का प्रतिपादन इससे ठीक उलटा है । वह कहता है कि समस्त निसर्ग का अव्यवस्था से व्यवस्था (कुछ अव्यस्थित रसायनों के व्यवस्थित संयोग से अमीबा की उत्पत्ति और फिर उससे अधिकाधिक जटिल जीवों का विकास) की ओर विकास करने का आम स्वभाव है । उसके अनुसार यह स्वभाव सूक्ष्म परमाणुओं से लेकर बड़े पदार्थों तक में सर्वत्र दिखाई पड़ता है । ज्ञातव्य है कि प्रकृति की एक ही प्रक्रिया से संबंधित दो विपरीत सिद्धांत लागू नहीं हो सकते । उपरोक्त दोनों नियमों में से सत्य कोई एक ही हो सकता है । ज्ञातव्य यह भी है कि थर्मोडायनामिक्स के सुस्थापित दूसरे नियम पर अँगुली उठाने का साहस अभी तक किसी ने नहीं किया । ऐसी स्थिति में विकासवादी प्रक्रिया संशय के घेरे में आ जाती है ।

इस दशा में यदि आस्तिकवाद के ईश्वर की मान्यता को स्वीकार लिया जाय, तो सृष्टि रचना संबंधी व्याख्या अत्यन्त सरल हो जाती है । वैज्ञानिक डूने गिश ने इसी का आश्रय लेते हुए विज्ञान और विकासवाद के बीच संव्याप्त विसंगतियों के आधार पर विकासवाद को अमान्य कर दिया । वे अपनी लंबी शोध के उपरांत उसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, जिसे भारतीय अध्यात्म बहुत पहले से कहता आ रहा है । उनने कण-कण में भगवान की उपस्थिति का समर्थन कर अन्ततः उस उपनिषद् वाक्य की ही पुनरुक्ति की है, जिसमें **''ईशावास्यमिदं सर्वं''** कहकर उसे सर्वव्यापी, सर्वनियंता बताया है । इस दर्शन को अंगीकार कर लेने के पश्चात् **''एकोऽहम् बहुस्याम्''** के ईश्वरीय संकल्प को मान लेने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए । इससे जीव-उत्पत्ति और सृष्टि-विकास संबंधी सारी उलझनें समाप्त हो जाती हैं । फिर हमें न तो यह कहने की जरूरत पड़ेगी कि मनुष्य बन्दर की संतान है और न यह कि संसार स्वतः उत्पन्न है ।

प्रयास यांत्रिक नहीं, चेतनात्मक उत्कर्ष की दिशा में चले

मानवी सभ्यता इन दिनों वैज्ञानिक-प्रगति के चरम उत्कर्ष पर है । नित नयी स्वसंचालित मशीनों का आविष्कार हो रहा है । जो कार्य कभी जनशक्ति-श्रमशक्ति के आधार पर होते थे, उन्हें कुछ ही समय में देखते-देखते स्वसंचालित मशीनें पूरा कर लेती हैं । इससे भौतिक सुख-सुविधाओं में अभिवृद्धि हुई है, मनुष्य के रहन-सहन का स्तर बढ़ा है, किंतु इसके अभिशाप भी कुछ कम नहीं बढ़े हैं । आत्मनिर्भरता का स्थान यांत्रिक परावलंबन ने लिया है, जिसके कारण मनुष्य की मस्तिष्कीय क्षमता, बौद्धिक कुशलता में गिरावट आयी है । मशीनों के सामने मनुष्य की इस पराजय ने चिंतकों, मनीषियों, दार्शनिकों एवं मूर्द्धन्य वैज्ञानिकों के सामने एक गंभीर समस्या पैदाकर दी है । यह एक ऐसी समस्या है जिसका संबंध मानवी प्रगति के जैविक, बौद्धिक और नैतिक स्थायित्व से है । चेतनात्मक परिष्कार के अभाव में भौतिक उन्नति का सदुपयोग भी तो नहीं बन पड़ता ।

प्रख्यात विकासवादी लॉरेन आइसले का कहना है कि मानव जीवन के इतिहास में बाह्य उपलब्धियों का इतना महानयुग पूर्व में कभी नहीं आया, जिसमें उसका स्वयं का इतना विस्मयकारी फैलाव उसके द्वारा निर्मित मशीनों से ही हुआ । उनके अनुसार मनुष्य जब कभी पराभूत होगा तो वह अपनी स्वयं की तकनीकी कृतियों एवं यांत्रिक जीवन पद्धति के कारण होगा । सुप्रसिद्ध जीवविज्ञानी जूलियन हक्सले का भी कहना है कि वर्तमान मशीनी सभ्यता के परिणामस्वरूप मानव के आनुवंशकीय रूप का ह्रास दिखाई देता है । वैज्ञानिक मनीषी ब्रोडिंजर के मतानुसार मशीनीकरण की अभिवृद्धि के कारण मानव बुद्धिहीनता की ओर बढ़ता जा रहा है । उसकी मस्तिष्कीय क्रियाशीलता, बौद्धिक प्रखरता एवं शारीरिक क्षमता के शिथिल होने का एक गंभीर खतरा पैदा हो गया है । इस तथ्य को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि एक ओर जहाँ शिल्पकौशल को निरुत्साहित किया जाता है, वहीं दूसरी ओर कलपुर्जे जोड़ने वाले निरर्थक और उबाने वाले काम का विकास करके एक अच्छे अवसर प्राप्त करने वाले प्रतिभाशाली और कुशल व्यक्ति को एक अकुशल व्यक्ति के स्थान पर काम में लगाकर दोनों को एक ही श्रेणी में रखा जाता है । इससे प्रतिभाशाली एवं तीक्ष्ण बुद्धि के धनी अपनी प्रतिभा का सही उपयोग नहीं कर पाते और क्रमशः अपनी शारीरिक-मानसिक क्षमता को गँवाते चले जाते हैं । उनकी स्थिति जंग खाये लोहे की तरह हो जाती है । इसका दुष्प्रभाव न केवल स्वयं के जीवन पर, वरन पीढ़ियों पर भी पड़े बिना नहीं रहेगा ।

मनुष्य एक सचेतन प्राणी है और उसके विकास में ही उसका वास्तविक हित सन्निहित है, किन्तु जब वह भौतिक जड़ पदार्थों के खोज विकास में ही उलझकर रह जाता है तो न केवल चेतनात्मक प्रगति अवरुद्ध हो जाती है, वरन विनाश की घड़ी भी निकट आ पहुँचती है । विज्ञानवेत्ता भी अब इस तथ्य को स्वीकारते हैं और कहते हैं कि जब मनुष्य मशीनों के सामने अपनी श्रेष्ठता भुला देगा और अपनी ही कृतियों के द्वारा पराभूत होगा तो फिर उसका चेतनात्मक अस्तित्व ही कहाँ रहेगा ? एक बार पिकरिंग नामक एक महान खगोल भौतिकविज्ञानी ने मानवीय काया की न सराहते हुए उसकी वास्तविक विसंगतियों पर बल देते हुए कहा था कि मनुष्य का शरीर तेरह तत्वों का एक 'कोलोहडेल' संयोजन मात्र है, जिनकी एक-दूसरे के साथ पुष्टि भी होती है । वह प्रकृति का एक अजीबोगरीब एवं बहुत ही मनोरंजक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

संयोग है । चेतना को भुला दिया जाय तो फिर सामान्य मनुष्य से प्राप्त होने वाले पदार्थों का बाजार में मूल्य ९८ सेंट अर्थात् लगभग ३० रुपये मात्र है ।

वस्तुत: पिकरिंग के कथन में कोई त्रुटि नहीं है । हमारी पंचभौतिक काया में इन तत्वों के अतिरिक्त शरीर का तीन-चौथाई भाग पानी है और पानी भी कोई मूल्यवान वस्तु नहीं है । वह सामान्य पानी है और महँगाई के इन दिनों में भी उसका कोई विशेष मूल्य नहीं है । अत: उनके द्वारा मूल्य का निर्धारण आवश्यकता से कहीं अधिक ही किया गया है ।

मनुष्य के अंगों को पृथक्-पृथक् करके उनका विश्लेषण विज्ञानवेत्ताओं द्वारा समय-समय पर किया जाता रहा है, किंतु इससे वे किसी महान प्रतिभा का चेतना के उद्गम स्रोत को उद्घाटित करने में सफल हो सकेंगे कहा नहीं जा सकता । क्योंकि इससे तो मनुष्य मात्र पदार्थ के पंचभौतिक तत्वों के छोटे-छोटे टुकड़ों का एक ढेर मात्र ही बनकर रह जायेगा जिसे और लघु करके अणु के समान बनाया जा सकता है और फिर और लघुतम बनाकर परमाणु के रूप में बदला जा सकता है । सामान्य दृष्टि से इसका मूल्यांकन नहीं के बराबर होगा, किन्तु इसी अणु-परमाणु में सृष्टि के समस्त आश्चर्य भरे पड़े हैं । मनुष्य का समस्त जीवन अत्यधिक रूप से, यहाँ तक कि उसकी मूलभूत शारीरिक संरचना के सूत्र के अतिरिक्त उसकी विशिष्टताएँ भी इन्हीं परमाणुओं में अन्तर्निहित हैं । परमाणविक निधियों में सबसे महत्वपूर्ण डी. एन. ए. अणु हैं जिन्हें 'जीवन के सूत्रधार परमाणु' की संज्ञा दी गई है ।

मनुष्य जिस तरह मशीनों को अपनी आवश्यकतानुसार उसे नये-नये रूप में आकार-प्रकार में ढालता बनाता रहता है, उनके कलपुर्जों में हेर-फेर करता रहता है, क्या उसी तरह जीवन का भी उत्पादन कर सकेगा ? यह संभावना सुनिश्चित होने पर इससे संबंधित कुछ गंभीर दार्शनिक और सामाजिक प्रश्न उठ खड़े होते हैं । पहला प्रश्न यही उठता है कि क्या आत्मचेतना का परिष्कार किये बिना इस प्रक्रिया द्वारा एक नयी प्रभावशाली, प्रतिभावान एवं उच्चस्तरीय व्यक्तित्व संपन्न मानव जाति का अस्तित्व में आना संभव होगा ? दूसरे क्या इस तरह पृथ्वीवासियों के जीवन का और अधिक विकास होने की संभावना है और क्या मनुष्य को, जो कि विश्व-विधि व्यवस्था के एक प्रतिनिधि अथवा यंत्र के रूप में है, उसकी भूमिका को नकारते हुए भावी विकास प्रक्रिया से हटाया जा सकता है ?

इस संदर्भ में रूटजर्स यूनिवर्सिटी के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. जॉन कोसिन का कहना है कि जब से मनुष्य का इस धरती पर आविर्भाव हुआ है, वह क्रमश: विकास की ओर ही अग्रसर रहा है । कभी वह शारीरिक दृष्टि से हृष्टपुष्ट व बलिष्ठ था, पर कालक्रम के अनुसार अब वह मानसिक रूप से अधिक उन्नत अवस्था में पहुँच गया है । वे इस बात पर जोर देते हैं कि एक नये प्रकार के जीव के गठन होने का यह अर्थ तो नहीं हो सकता कि वह प्रतिस्पर्धा की भावी दौड़ में अयोग्य ही बना रहेगा । मनुष्य अपनी योग्यता से परिवर्तनशील परिस्थितियों में भी सामंजस्य बना लेता है । वह अपनी प्रवीणता के आधार पर आपातकालीन परिस्थितियों में अस्तित्व के लिए संकट उत्पन्न हो जाने पर भी अपने संरक्षण के लिए उन पर विजय प्राप्त करने के लिए यंत्रों का, मशीनों का निर्माण कर सकता है । ये संकट चाहें प्राकृतिक प्रकोप के रूप में हों अथवा बुद्धिमान कहलाने वाले मनुष्य के द्वारा स्वयं आहूत हों, उसे अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए और अन्य जीवों पर अपना प्रभाव बनाये रखने के लिए सजग रहना होगा ।

जीवन के रहस्यों पर अनुसंधान कर रहे वैज्ञानिकों का कहना है कि जिस तरह से मनुष्य मशीनों, यंत्र-उपकरणों को अपनी आवश्यकतानुसार निर्माण करने में सफलता प्राप्त करता आया है, उसी तरह वह अपने प्रयास से इच्छानुसार विकासात्मक गति को बनाये रखने वाले अपने उत्तराधिकारी का निर्माण करने में भी सफल हो जायेगा । वस्तुत: यह एक वैज्ञानिक कल्पना ही नहीं है, वरन् आज की एक वास्तविकता है । इस प्रकार के प्रयोग पूर्व में भी किये गये हैं । हिटलर जर्मन जाति को विश्व की सर्वश्रेष्ठ नस्ल और अधिपति बिरादरी बनाने का स्वप्न देखता था । इस प्रयोजन के लिए उसने अन्य जाति वालों को नष्ट करने तथा स्त्रियों को सन्तानोत्पादन के लिए अपने निर्बल पतियों की अपेक्षा बलवान और मेधावी पुरुषों के साथ संपर्क को प्रोत्साहन देने वाला वातावरण तैयार किया । उसके चिकित्सक डॉ. जोसेफ मेनजेले ने तो जर्मनी के प्रत्येक बच्चे को हिटलर की प्रतिकृति बनाने के प्रयोग भी संपन्न कर लिये थे । किन्तु दुर्भाग्यवश हिटलर का पतन हो जाने के कारण उसे अपने को बचाने के लिए काफी समय तक विभिन्न देशों में रहना पड़ा । संयोगवश हिटलर के रक्त और चमड़ी का नमूना उसके पास सुरक्षित था । ऐसा माना जाता है कि इससे उसने ९४ बच्चे रेड इंडियन जाति की महिलाओं से उत्पन्न किये थे जो आकृति तथा प्रकृति में हूबहू हिटलर की समानता वाले थे । मालूम नहीं इसमें कितना सत्य है ?

पिछले दिनों आर्थर गेल्टन नामक एक वनस्पति विज्ञानी ने पौधों की कोशिकाओं पर प्रयोग करते समय गाजर की कोशिकाओं को एक पूर्ण पौधे के रूप में विकसित करने में सफलता प्राप्त की । उनका मत है कि एक कोशिका से अनेक कोशिकाओं का निर्माण कर उन्हें पूर्ण पौधे के रूप में विकसित किया जा सकता है । इससे प्रतीत होता है कि उसके गठन की प्रत्येक कोशिका में वे मूलभूत अनिवार्य जीवन तत्व मौजूद हैं जिसकी एक जीव के उत्पादन के लिए आवश्यकता है । इस तकनीक का प्रयोग प्राणिकोशिकाओं के साथ भी किया जा सकता है । प्राणी के विभिन्न अवयवों में से विशिष्ट कोशिकाओं को निकाला और प्रयोगशाला में उन्हें संबर्धित करके नये जीव का निर्माण किया जा सकता है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह कहते हैं कि इस प्रक्रिया में मानव कोशिकाओं को भी सम्मिलित किया जा सकता है । यह उस संभावना का स्रोत बिन्दु है जब कि मनुष्य अपनी इच्छानुसार अपनी प्रतिकृति के अनेकों व्यक्ति बनाने में समर्थन हो सकेगा ।

डॉ. गेल्टसन के कथनानुसार यदि वैज्ञानिक एक संबर्धित-कोशिका या ऊतक से मनुष्य का पुनर्निमाण करने में सक्षम हो गये तब हम अपनी व प्रत्येक व्यक्ति की कोशिकाओं का उचित माध्यम से संवर्धन कराकर इच्छित संख्या में अपनी प्रतिकृतियों का निर्माण करा सकेंगे किन्तु इसके साथ ही एक प्रश्न यह भी सामने आता है कि क्या इस तरह से विकसित उस प्रतिकृति में उस मनुष्य की चेतना, ज्ञान और स्मृति का भी स्थानांतरण हो सकेगा ? इसका उत्तर पाना शेष है । अच्छा हो हम मशीनों की तरह कायिक पुर्जों में हेर-फेर करने की अपेक्षा मानवीय दिव्य चेतना के उत्कर्ष की बात सोचें और ऋषिप्रणीत अध्यात्म विज्ञान के उपाय उपचारों को अपना कर इसी जीवन में मानव से देव मानव नर से नारायण बनने का प्रयत्न करें, अन्यथा दिशाहीन यांत्रिक विकास में ही उलझ कर चेतना प्रधान जीवन की "इतिश्री" हो जायगी ।

सृष्टि संरचना की जड़ में है चेतना का निरन्तर विकास

वैज्ञानिक अवधारणा के अनुसार चेतना अथवा आत्मा का स्थूल शरीर की भाँति कोई पृथक अस्तित्व नहीं वरन् यह भी पंचभौतिक शरीर की तरह पदार्थों का सम्मिश्रण मात्र है । इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यदि प्रस्तुत कथन सत्य है, तो पदार्थों के मिश्रण की प्रक्रिया का ज्ञान कराने वाले किसी दूसरे मन की भी आवश्यकता निश्चित ही पड़ेगी ।

इस संदर्भ में मूर्धन्य मनोवैज्ञानिक जॉन बर्लिट्ज ने ठीक ही कहा है—"मस्तिष्क का गहन विश्लेषण करने के उपरान्त भी मनुष्य को जब आत्मा अथवा मन का अस्तित्व किसी प्रकार समझ में नहीं आता है और थक-हार कर जब उसे मस्तिष्क प्रक्रिया का एक अंग मान लेता है, तो वह यह भूल जाता है कि इस प्रकार की स्वीकारोक्ति ही आत्मा के अस्तित्व का सबसे बड़ा प्रमाण है ।"

विज्ञान के अनुसार गति ही गति उत्पन्न करती है । यदि इस कथन को सत्य मान लिया जाय, तो यह कैसे स्वीकारा जा सकता है कि जड़ मस्तिष्कीय संरचना चेतना या बुद्धि उत्पन्न करती है, क्योंकि बुद्धि अथवा चेतना कोई गति नहीं, वरन् गति का अनुमान करने वाली शक्ति है । इस प्रकार भौतिकीविदों का उक्त प्रतिपादन स्वतः गलत प्रमाणित हो जाता है ।

इस संबंध में प्रसिद्ध खगोलशास्त्री जेम्स जीन का यह कथन कि जो कोषाणुओं के व्युहाणविक गति को चेतना का मूल कारण मानते हैं, वे अनर्गल प्रलाप के अतिरिक्त और कुछ नहीं करते, ध्यातव्य है ।

विज्ञान के धुरंधरों की मान्यता है कि स्मृति का आधार मस्तिष्क एवं शरीर की विशिष्ट संरचना है । इन दिनों प्रायः इसी आधार पर किसी को असाधारण बुद्धि संपन्न एवं किसी को मूर्ख घोषित कर दिया जाता है । आइन्स्टीन विलक्षण बुद्धि वाला था । वैज्ञानिकों की उपरोक्त कथन की पुष्टि उनकी मस्तिष्कीय-संरचना द्वारा हो भी गई । जब मृत्योपरान्त उनके ब्रेन का अध्ययन किया गया, तो प्रत्येक न्यूरोन के पीछे ग्लायल सेलों की संख्या उनमें सामान्य से अधिक पायी गई । बस, फिर क्या था । शरीर शास्त्री इस दिशा में स्थापित अपने सिद्धान्त को निरपेक्ष सत्य मान बैठे । यही उनकी सबसे बड़ी भूल थी । प्रथम तो सपोरटिंग (ग्लायल) सेलों के बढ़ जाने से बुद्धि बढ़ जाती है—यह उन्होंने किस आधार पर सुनिश्चित किया, समझ से परे की बात है । यदि केवल उक्त असामान्यता ही उनके निर्णय, निर्धारण का आधार रहा, तो निश्चिय ही इसे निराधार कहा और अमान्य ठहराया जा सकता है । आये दिन कितने ही बच्चे प्रसव पूर्व असावधानियों के कारण विकृत हो जाते हैं । उनके यदा-कदा तीन-तीन टाँगें पायी जाती हैं । कइयों में उँगलियाँ असामान्य संख्या में होती हैं । परस्पर जुड़े बच्चे भी देखने को मिल जाते हैं, किन्तु इनसे उनकी बौद्धिक क्षमता प्रभावित हुई हो ऐसा देखने में नहीं आया । बाह्य अंगों की तरह अंदर के अंगों में भी ढेरों विकृतियाँ पायी जाती हैं । कई मामलों में यह बात भी देखने को मिलती है कि व्यक्ति में असाधारण बुद्धि-कौशल के होते हुए भी ग्लायल सेलों की संख्या उनमें सामान्य लोगों जितनी थी, फिर भी वे बढ़-चढ़कर बौद्धिक-क्षमता का परिचय देते थे । यहीं वैज्ञानिकों के बुद्धि संबंधी सिद्धांत का खण्डन हो जाता है और यह स्पष्ट होता है कि इसका आधार संरचना न होकर कोई और है । शरीर शास्त्री जानते हैं कि प्रत्येक साढ़े सात वर्ष में शरीर की समस्त आणविक संरचना परिवर्तित हो जाती है । बचपन का शरीर युवावस्था में, यौवन के कोषाणु वार्द्धक्य में नहीं रह जाते, फिर भी बचपन तक की स्मृतियाँ घटनाएँ ज्यों की त्यों बनी रहती हैं । यह भी उसी मान्यता की पुष्ट करता है कि बुद्धि का निमित्त कारण मस्तिष्कीय संरचना नहीं हो सकती ।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि किसी भी वस्तु का कारण उसी में सन्निहित होता है, जैसा कि बीज में विशाल वृक्ष की समस्त संभावनाएँ छिपी रहती हैं, अस्तु यह कहा जा सकता है कि परिणाम कारण की ही अभिव्यंजना मात्र है ।

प्रख्यात भौतिक विज्ञानी जे. ए. बटलर अपनी रचना 'इन साइड दि लिविंग सेल' में लिखते हैं—"इस समस्त सृष्टि को चेतना एवं पदार्थ की मिश्रित अभिव्यक्ति के रूप में माना जाना चाहिए, यद्यपि इस बात को साक्ष्यों और प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता, फिर भी यह अटल सत्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है कि अन्त की संभावनाएँ प्रारंभ में, वृक्ष का वैभव बीज में ही समाया होता है ।

अँग्रेज विज्ञानी जे. इर्विन 'सेल विद क्वीयर एनर्जी' नामक पुस्तक में कहते हैं "शरीर की समस्त कोशिकाएँ एवं ऊतक अपने-अपने प्रकार के निश्चित कार्य में अहर्निशि जुटे रहते हैं । इस क्रम में उनमें किसी प्रकार का कोई व्यक्तिक्रम नहीं होता, न गलती दिखाई पड़ती है । यदि यहाँ यह स्वीकार लिया जाय कि सही-सटीक काम करना उनका स्वभाव है, तो अगले ही पल एक अन्य प्रश्न उठ खड़ा होगा कि इस स्वभाव का आधार क्या है, जो उसे गलत करने नहीं देता, जबकि स्वयं मनुष्य-अगणित कोशिकाओं का विशाल समुच्चय-औंधे-सीधे कार्य करता रहता है ? और इस प्रकार अनेक सवाल एक के बाद एक पैदा होते चले जायेंगे, जिनका समुचित जवाब दे पाना विज्ञान के लिए कठिन ही नहीं, असंभव भी है । अन्ततः हमें अध्यात्म विज्ञान की आत्मा व चेतना वाली मान्यता स्वीकार करनी ही पड़ेगी, तभी इन जटिल प्रश्नों का सहज समाधान संभव हो सकता है ।"

जीवन क्या है ? इस संबंध में दो प्रकार की मान्यताएँ हैं । प्रथम यह कि जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक विकास का क्रमिक रूप है, जिसमें वातावरण और वंश-परंपरा का प्रभाव होता है । दूसरा पक्ष अध्यात्मवादियों का है । उनके अनुसार जीव में आत्मतत्व का अलग अस्तित्व होता है, जो शिशु में विकास के अति आरंभिक अवस्था में ही प्रविष्ट होता है ।

मृत्यु के संबंध में प्रथम मत वाले वैज्ञानिकों की मान्यता है कि शरीर बनाने वाले दोनों तत्व अर्थात् अणु और चेतना शक्ति अपना-अपना कार्य बन्द कर दें, तो मृत्यु हो जाती है, जबकि दूसरी मान्यता के समर्थक प्रायः सभी धर्म और आध्यात्मिक प्रतिपादन हैं । उनकी मान्यता है कि आत्मा की मृत्यु नहीं होती, वरन् मृत्यु के बाद उसका अस्तित्व अक्षुण्ण बना रहता है । कर्मफल के रूप में दण्ड पुरस्कार इसे ही भोगना पड़ता है ।

इस ब्रह्माण्ड की संरचना के संबध में प्रथम स्कूल वाले वैज्ञानिकों की मान्यता थी कि इसका निर्माण कुछ रसायनों के पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया के आधार पर हुआ । रसायन अणुओं के संयोग से बने हैं । बाद में परमाणुओं की सत्ता सिद्ध हुई । रदरफोर्ड एवं बोर जैसे वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया कि परमाणु अनेक विद्युत कणों के संयोग से विनिर्मित एक लघु सौर-परिवार के रूप में है । तब से लेकर अद्यतन जो प्रयोग हुए हैं उनसे यही ज्ञात होता है कि सृष्टि संरचना का आधार परमाणु ही नहीं, वरन् सूक्ष्म तरंगें हैं । सृष्टि का आदि कारण यही है । अतः अब तरंग को सृष्टि का आधार माना जाता है, किन्तु विज्ञान की बढ़ती पकड़ अब तरंगों को भी असंदिग्ध नहीं मानती ।

सर जेम्सजीन्स ने आधुनिक वैज्ञानिकों की मान्यताओं पर कुठाराघात करते हुए अपनी पुस्तक 'दि ग्रेट डिजाइन' में लिखा है "यह पदार्थ क्या है ? क्या यह विद्युत विकिरण है ? तब यह विकरण क्या है ? विकरण सृष्टि का आधार मूलतत्व है, जिससे यह सृष्टि बनी है । यह विशुद्ध ऊर्जा है, कुछ अन्य नहीं ।"

इस प्रकार सृष्टि-रचना संबंधी विज्ञान और अध्यात्म दोनों एक ही बिन्दु पर पहुँचते हैं कि इसकी मूलसत्ता चेतना ही है । पदार्थ उसी की स्थूल अभिव्यक्ति है । उसके भिन्न कुछ अन्य नहीं । इसी चेतना को विज्ञान 'ऊर्जा' कहता है, जबकि अध्यात्म उसे सर्वव्यापी सत्ता कहता है नाम भले ही अलग हों, पर वस्तु एक ही है । इसे इस रूप में भी कहा जा सकता है कि सीमित दायरे में चेतना को पदार्थ और विस्तृत परिधि में यह चेतना ही जीवित पदार्थ या आत्मा है । यह चेतना ही अधिक स्वतंत्र रूप में विशुद्ध चेतना है । इस प्रकार यह चेतना के विकास की पद्धति वैज्ञानिकों के विकासवाद का ही स्वरूप हुआ । इस विकास यात्रा के एक किनारे में पदार्थ तथा दूसरे में चेतना या आत्मा है । चेतना का विकास का क्रम तब तक जारी रहता है, जब तक चेतना (आत्मा) परमात्मा (परम तत्व) से एकाकार न हो जाय ।

इस संबंध में दार्शनिक मेटरनिक ने ठीक ही कहा है—"ब्रह्माण्ड के एक अणु का भी रहस्य मेरी समझ में जिस दिन आ जायेगा, उस दिन यह विश्ववाटिका या तो नर्क तुल्य हो जायेगी या फिर मेरी चेतना ही जड़वत् बन जायेगी ।"

हम इस सच्चाई को समझें और चेतना के अधिकाधिक विकास की ओर ध्यान दें, तभी यह जीवन सार्थक हो सकता है । हमारा यही लक्ष्य और प्रयोजन है ।

विकास जड़ का नहीं, चेतना के स्फुल्लिंगों का

भारतीय दर्शन और संस्कृति आदिकाल से ही आत्म-चेतना की अखंडता पर आस्थावान है । आत्मा अणुमात्र होकर भी वह संपूर्ण शरीर पर आधिपत्य रखती है । भावनात्मक परिष्कार से आत्मबल बढ़ता है और अपने स्वरूप को जानने वाला जीवात्मा परमात्म सत्ता से एक रूप हो जाता है । आत्मिक विकास की यह स्वाभाविक प्रक्रिया है । इस रहस्य को न जान पाने के कारण मनुष्य काया को ही सब कुछ मानकर उसी को सँजोने-सँवारने में सारी जिन्दगी खपा देता है और अंततः खाली हाथ इस संसार से विदा होता है ।

शरीर मरणधर्मा है, किन्तु ईश्वर का अविनाशी अंश आत्मा अजर अमर है । इस तथ्य को पाश्चात्य मनीषी एवं नोबुल पुरस्कार विजेता भौतिकीविद् डॉ. पियरे दि कोम्ते ने स्वीकार करते हुए कहा है कि आत्मा विश्वात्मा से संबंधित है । इसी आधार पर वह अमर है, क्योंकि विश्व चेतना अमर है और आत्मा उसी की छोटी इकाई मात्र है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनोविज्ञानी जिसे 'ईगो' कहते हैं, इलेक्ट्रोडायनेमिक सिद्धान्तों के अनुसार उसकी छानबीन किये जाने पर यह तथ्य सामने आये हैं कि जन्ममरण चक्र में परिभ्रमण करती हुई, भिन्न-भिन्न आकृति-प्रकृति अपनाते हुए भी मूल सत्ता अक्षुण्ण बनी रहती है, जो चेतन सत्ता की अखंडता का परिचायक है ।

विभिन्न खोजों के बाद विश्वविख्यात वैज्ञानिक फ्रेड हॉयल तथा भारतीय विज्ञानविद डॉ. जयंत विष्णु नार्लीकर ने यह स्थापना की है कि विश्व रचना के कारणभूत अणु और मानवीय काया की संरचना में भाग लेने वाले कारणभूत अणु की मूल संरचना एकसी है । इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य का विकास प्रकृति परमाणुओं से एक नियम विशेष के तहत हुआ है जिसका नियंत्रण चेतना करती है । आइन्स्टीन ने भी सृष्टि के मूल में चेतना को सक्रिय माना था । जे.ए. थामसन, स्वर जेम्स जीन्स ए. एस. एडिंगटन आदि प्रख्यात वैज्ञानिकों ने विज्ञान की नवीन दिशाओं का अलग-अलग विवेचन करते हुए एक ही बात कही है कि विज्ञान के पास जीवन के प्रारम्भ होने की कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं है । अब वैज्ञानिक अन्वेषण चेतना और विचार जगत की ओर बढ़ रहे हैं ।

आज का विज्ञान यों आत्मा के अस्तित्व तक पहुँच गया है, पर ध्यान और अनुभूतिजन्य ज्ञान के अभाव में वह इस तथ्य को मानने को तैयार नहीं होता । मनुष्य शरीर जिन छोटी-छोटी प्रोटोप्लाज्म की इकाइयों से बना है । वह दो भागों में विभक्त हैं—(१) नाभिक-न्यूक्लियस (२) साइटोप्लाज्म, जिसके अंतर्गत जल, कार्बन, नाइट्रोजन फास्फोरस, आकाश आदि सभी पंच भौतिक ठोस, द्रव तथा गैस अवस्था वाले पदार्थ पाये जाते हैं । विभिन्न प्राणधारियों में यहाँ तक कि मनुष्य-मनुष्य के साइटोप्लाज्म में फर्क होता है । वह वंशानुगत आहार पद्धति और जलवायु आदि पर आधारित है और परिवर्तनशील भी है । आहार के नियमों तथा एक स्थान से दूसरी जलवायु वाले स्थान में परिवर्तन के फलस्वरूप हमारे शरीरों के स्थूल भाग में अंतर आ सकता है । पर अभी तक चेतना की अर्थात् नाभिक की क्रियाओं पर विज्ञान कोई नियंत्रण नहीं पा सका, हाँ वैज्ञानिक शोधों से यह जरूर सिद्ध हो चुका है कि नाभिक में ही मनुष्य की सारी बौद्धिक चेतना काम करती है । उसमें न केवल अमर व अविनाशी गुण सूत्र विद्यमान हैं, वरन् वह सूत्र ब्रह्माण्ड को नाप सकने की क्षमता से परिपूर्ण है । समूचे शरीर में यह चैतन्य तत्व एक शक्ति, एक तरंग की भाँति विद्यमान है, उसी के न रहने पर शरीर भी नहीं रहता ।

यह चेतना ही है जो मनुष्य शरीर से लेकर सृष्टि के स्थूल कणों तक में व्याप्त हो रही है । जहाँ तक चेतना का अंश प्राकृतिक परमाणुओं से शक्तिशाली होना है वहाँ तक तो जड़ और चेतन का अंतर स्पष्ट प्रतीत होता रहता है, पर एक अवस्था ऐसी आती है जब जड़ता चेतनता पर पूरी तरह घटाटोप हो जाती है । यही वह अवस्था है जब चेतना पूर्णरूप से जड़ गुणों वाली अर्थात् कंकड़-पत्थर जैसी स्थिति में चली जाती है । मुख्य रूप से सृष्टि की चेतना एक ही है, पर वह गुणों के द्वारा क्रमशः जड़ होती चली गई है । जो जितना जड़ हो गया, वह उतना ही उपभोग्य हो गया, पर जिसने अपनी चेतना का जितना अधिक परिष्कार कर लिया, वह उतना ही उपभोक्ता अर्थात् महामानव-देवमानव होता चला जाता है ।

डार्विन जैसे विकास शास्त्रियों ने मनुष्य को अन्यान्य जीवों का विकसित रूप बताया है । 'थ्योरी आफ यूज एण्ड डिसयूज' के सिद्धान्तों से यह सिद्ध किया है कि मनुष्य शरीर विकसित हुआ है । कहा नहीं जा सकता यह सिद्धांत कितने सच हैं, क्योंकि इसमें एक शरीर से दूसरे शरीर में विकास की जो कड़ियाँ बैठायी हैं, उनके विकास का समय इतना लम्बा है कि उन परिवर्तनों को सही मान लेना बुद्धि संगत नहीं जान पड़ता । प्रकृति के परमाणुओं में भी ऐसी व्यवस्था नहीं है कि एक बीज से दूसरे बीज वाला पदार्थ पैदा किया जा सके, भले ही उसके लिए भिन्न प्रकार की जलवायु प्रदान की जाय । जलवायु के अंतर से फल के रंग, आकार में तो अंतर आ सकता है, पर बीज के गुणों का सर्वथा अभाव नहीं हो सकता । विकासवाद के सही रहस्य को समझने के लिए हमें आत्मचेतना की गहराई में प्रवेश करना पड़ेगा तभी यह समझा जा सकेगा कि आत्मचेतना ही सर्वत्र जड़ एवं चेतन में क्रियाशील है । पेड़-पौधों को जड़ और चेतन के बीच की नीचे की कड़ी कहा जा सकता है और जीवित ग्रहों को उच्च कड़ी । यही प्रतिपादन जड़ता से असीम चेतना के विकास का प्रमाण माना जा सकता है ।

आत्मा एक दिव्य चेतना स्फुलिंग है, जिसका विकास ही मानव के लिए अभीष्ट है । स्वाध्याय, सत्संग, चिंतन, मनन से लेकर और जप-तप एवं योगाभ्यासपरक ध्यान-धारणा समाधि की समस्त प्रक्रियाओं का निर्धारण इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किये गये हैं । इस प्रकार अपूर्णता से पूर्णता की ओर जब कदम बढ़ चलते हैं तब जीवन का वह स्वरूप बन जाता है जिसमें आत्मा भवबंधनों से मुक्त होकर नर नारायण बनने की ओर प्रगतियात्रा को अग्रगामी कर पाती है ।

क्या चेतन जड़ से उत्पन्न हुआ ?

जीवन कैसे उत्पन्न हुआ ? उसका आरम्भिक रूप कैसा था ? प्रगति किस आधार पर हुई । उन प्रश्नों में से सबका उत्तर एक साथ देना तो कठिन है पर इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जड़ से चेतन की उत्पत्ति नहीं हुई, जैसा कि अति उत्साही प्रकृति समर्थक नास्तिकवादी वैज्ञानिक पिछले दिनों मानने लगे थे ।

जीवन, जीवन से ही उत्पन्न हो सकता है । उसका काय-कलेवर भले ही भौतिक रसायनों का बना हुआ हो पर उसका मूल अस्तित्व वैसा नहीं है जिसे कि पदार्थ का उत्पादन कहा जा सकेगा । इस सन्दर्भ में जो भ्रान्तियाँ समय-समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर उठती रही हैं, क्रमशः उनका समाधान भी होता चला आया है ।

शताब्दियों तक इस पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति एक साधारण-सी बात समझी जाती थी । उस समय लोगों के लिए यह बहुत बड़ी समस्या नहीं थी । अनेक वैज्ञानिकों एवं विज्ञान के जनक माने जाने वाले ग्रीक दार्शनिक अरस्तू का भी विचार था कि जीवों की उत्पत्ति स्वतः ही निर्जीव पदार्थों से हुई है जबकि ईसा के तीन शताब्दी बाद के महान दार्शनिक प्लोटिन का विचार था कि जीवों की उत्पत्ति मिट्टी के सड़ने से हुई है ।

सन् १८६२ के बाद उपरोक्त मान्यता को बहुत बड़ा आघात पहुँचा जब कि 'लुई पाश्चर' ने अपना यह प्रतिपादन किया कि "जीवन की उत्पत्ति जीवन से ही सम्भव है ।" 'लुई पाश्चर' के प्रयोग ने यह साबित कर दिखाया कि वर्तमान परिस्थितियों में छोटे-छोटे जीवधारियों की भी उत्पत्ति स्वतः नहीं हो सकती । पाश्चर के इस प्रतिपादन के बाद जीवधारियों की उत्पत्ति सम्बन्धी समस्या वैज्ञानिकों के लिए सिर दर्द बन गयी ।

इस पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ हैं । एक दल की मान्यता है कि जीवन शाश्वत है और इसकी उत्पत्ति हमारी पृथ्वी पर नहीं हुई, अपितु अन्तरिक्ष से यह हमारी पृथ्वी पर आया जहाँ इसका स्थायी निवास है । वैज्ञानिकों के दूसरे दल का विचार है कि जीवों की उत्पत्ति इसी पृथ्वी पर हुई, लेकिन जीवनविहीन पदार्थों से । इस मान्यता को सर्वमान्य बनाने के लिए उन्होंने कुछ प्रायोगिक आँकड़े भी प्रस्तुत किये लेकिन इस मान्यता को ख्याति नहीं मिल पाई । 'फ्रोडिकएन्जिल्स' ही पहला वैज्ञानिक था, जिसने जीवधारियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपना वैज्ञानिक प्रतिपादन दिया । इनका कहना था कि जीवन की उत्पत्ति आकस्मिक रूप में नहीं हुई, वरन् पदार्थों के क्रमिक विकास के दौरान हुई ।

प्राणि-संरचना के बारे में भारतीय मत सर्वथा भिन्न है । भारतीय मत ऐसा है कि—ईश्वर ने हर प्राणी को सृष्टि के आरम्भ में ही स्वतन्त्र सत्ता सौंपी है । अमीबा अभी भी अमीबा है, हाथी हाथी है, सरीसृप सरीसृप है, बन्दर बन्दर है तथा मनुष्य मनुष्य है । वह प्राणियों के आदिम सृजन काल से ही मनुष्य है । शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक क्षमताओं में उतार-चढ़ाव, हेर-फेर, क्रियाशीलताओं की दिशाओं में उलट-पुलट और जीवनयापन के स्वरूप में कालक्रम से परिवर्तन तो होता ही रहता है । इस संसार का ध्रुव नियम परिवर्तन ही है, किन्तु मूल सत्ता अक्षुण्ण रहती है । समस्त प्राणी आरम्भ से ही इसी प्रकार हैं । मनुष्य भी प्राणि-सृष्टि के आरम्भकाल में अपनी समस्त मौलिक विशेषताओं के साथ जन्मा है—यही भारतीय प्रस्थापना है जो पश्चिम के विकासवाद और कुछ धार्मिक कठमुल्लों के विघटनवाद या पतनवाद दोनों से सर्वथा भिन्न है। साथ ही प्राण-चेतना भारतीय दृष्टि से मौलिक आदि तत्व है— वह जड़ की उत्पत्ति नहीं है ।

चेतना का अस्तित्व और अनुभूति

आत्मा एक, अखण्ड, अदृश्य पदार्थ है, जो हृदय या मस्तिष्क में कहीं निवास करता है । उसका आकार उस स्थान के आकार जैसा है । अणुमात्र होने पर भी वह सम्पूर्ण शरीर पर आधिपत्य रखता है ।

आत्मा अविनाशी तत्व है, वह कभी निष्क्रिय नहीं रहता । यहाँ तक कि शारीरिक तत्व जब शिथिल पड़ जाते हैं और मनुष्य सो जाता है, तब भी वह जाग्रत रहता है । वह सनातन जागृत और चेतन तत्व है, जो खाता-पीता, बात करता, दुख-सुख की अनुभूति आदि विभिन्न क्रियाओं का स्वामी है ।

जिस प्रकार शरीर बढ़ता और विकसित होता है, उसी प्रकार आत्मा बढ़ती और विकसित होती है । अच्छी तरह नियम और संयमपूर्वक रखने से जिस तरह शरीर की शक्ति, सौन्दर्य और बल बढ़ता है, उसी प्रकार भावनाओं के परिष्कार के द्वारा आत्मा भी बलवान् बनती है, अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेने वाली जीव रूपी आत्मा ही परमात्मा बन जाती है ।

आत्मा एक अखण्ड, अमूर्तिक पदार्थ है, जो शरीर में भी व्याप्त है और शरीर के बाहर निखिल ब्रह्माण्ड में भी । इसलिये वह शरीर की ही नहीं जानता शाश्वत जगत में जो कुछ हो रहा है, जो कुछ होने वाला है, वह सब जानता है, यदि उस पर पाप और मलिनता का पर्दा, इच्छा और आसक्ति की चादर न पड़ी हो ।

यह मान्यताएँ भारतीय दर्शन की आत्मा के प्रति आदिकाल से चली आ रही हैं । भारतीय संस्कृति और हमारे जीवन का सम्पूर्ण क्रिया-कलाप इसी अन्तर्दर्शन पर आधारित रहा है । इसलिये हम शेष जगत से भिन्न प्रतीत हुये । हमारा जीवन-दर्शन दूसरों से विलगकोटि का रहा ।

यद्यपि अब सारा संसार ही उन सूक्ष्म मान्यताओं पर उतर रहा है पर बीच में भौतिक विज्ञान के विकास ने हमारी मान्यता का खण्डन भी किया और उपहास भी । किन्तु आज वही विज्ञान गहराइयों में धँसता-धँसता अब यह भूल रहा है कि भौतिक पदार्थ ही सब कुछ नहीं है । अब वह भारतीय मान्यता की ओर झुकने को विवश है ।

पृष्ठ १४२ में 'इन्ट्रोडक्शन टू साइन्स' में प्रसिद्ध वैज्ञानिक जे. ए. थामसन ने लिखा है—"पृथ्वी पर जीवन का प्रारम्भ कैसे हुआ, इसका कोई उत्तर विज्ञान के पास नहीं है ।" 'मिस्टीरियस यूनिवर्स' के लेखक सर जेम्स जोन्स को भी कहना पड़ा—"आजकल इस बात में बहुत अधिक लोग सहमत हैं कि ज्ञान की सरिता अयांत्रिक वास्तविक तत्व की ओर बह चली है । अब विश्व यन्त्र की अपेक्षा विचार के अधिक समीप लगता है । मन ऐसी वस्तु दिखाई नहीं पड़ता,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो जड़ की दुनिया में अकस्मात् टपक पड़ा हो ।" ठीक इसी से मिलते-जुलते विचार डा. टेंडल ने भी व्यक्त किये हैं ।

दि माडर्न रिव्यू कलकत्ता के जुलाई, १९३६ अंक में सर ए. एस. एडिगुन ने लिखा है—"हम नहीं जानते वह क्या है पर कुछ अज्ञात शक्ति काम कर रही है । मैं चेतना को मुख्य मानता हूँ, भौतिक पदार्थ को गौण । पुराना नास्तिकवाद चला गया । धर्म, आत्मा और मन का विषय है, वह किसी प्रकार हिलाया नहीं जा सकता ।"

इन सब उक्तियों के बाद भी आज का अर्द्धराध और पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित समाज चेतना को मानने के लिये तैयार नहीं । क्योंकि वह वस्तुस्थिति से अपरिचित है । आइन्स्टीइन जो विज्ञान का पारंगत पण्डित था मानता है कि सृष्टि में कोई चेतना काम कर रही है पर तो भी विज्ञानवादी उसे मानने के लिये तैयार नहीं होते, तब यह कहना पड़ता है कि क्या यह घटनाएँ भी आत्मा की उन मान्यताओं को पुष्ट नहीं करतीं जिनका विवरण ऊपर दिया गया है ।

लन्दन के एक निवासी के सम्बन्ध में कुछ वर्ष पूर्व समाचार आया था कि ७६ वर्षीय एक व्यक्ति की निद्रा १८ वर्ष की आयु में किसी रोग के कारण भंग हो गई थी और उसके बाद सारे जीवन अर्थात् अगले ५८ वर्षों तक उसे निन्द्रा नहीं आई । उस व्यक्ति के शरीर या मस्तिष्क में कोई रोग या असाधारण जैसा कोई चिन्ह भी परिलक्षित नहीं हुआ अर्थात् वह इतने वर्ष लगातार न सोने पर भी पूर्ण स्वस्थ था ।

स्पेन के वैलेन्टिन मेडिना नामक एक और सज्जन हैं, जिन्होंने पिछले ६२ वर्ष से सोना तो क्या झपकी भी नहीं ली । उन्हें यह भी याद नहीं है कि उन्होंने कभी जम्हाई ली भी थी या नहीं । वे चौबीसों घण्टे काम करते हैं । अर्नेस्टो मेडार्ज के कृषि फार्म में वे पहले १६ घण्टे हल चलाते, निकाई करते हैं । शेष ८ घण्टे चौकीदारी करते हैं । जहाँ एक मजदूर कुल आठ घण्टे की मजदूरी कमाता है, वहाँ श्री वेलेन्टिन तीन पाली काम की मजदूरी प्राप्त करते हैं । वे प्रतिदिन दो-बार नाश्ता और चार बार भोजन करते हैं । थक जाते हैं तो उनके लिये बैठकर थोड़ा आराम करना काफी है, सोते तो वे हैं ही नहीं । उनके पास आज तक सोने का कोई विस्तर भी नहीं है ।

इस असाधारण स्थिति की जाँच दुनिया भर के डाक्टर कर चुके । गोलियाँ, इन्जेक्शन और औषधियाँ भी दी गईं पर कोई अन्तर न पड़ा । डाक्टरों ने उनकी मृत्यु के बाद की परीक्षा के लिये अनुमति भी माँगी है और स्पेन के मेडिकल स्कूल को यह अधिकार दे भी दिया गया । किन्तु मस्तिष्क की अहर्निशि इस जाग्रत अवस्था का कोई निश्चित निष्कर्ष वैज्ञानिक और डाक्टर न निकाल पाये ।

यह दोनों घटनायें आत्मा के एक चिर जाग्रत तत्व होने का ही प्रमाण हैं । जिसका न कोई डाक्टर खण्डन कर सका है और न वैज्ञानिक । न ही उनके पास इसका कोई निश्चित उत्तर ही है ।

पूर्व ज्ञान भी उसी प्रकार शारीरिक और यांत्रिक प्रक्रियाओं की सीमा में नहीं आया और न ही विज्ञान इस बात का कोई उत्तर दे सका कि हृदय में आई हुई कई बातें भविष्य में सच सच घटित हो जाती हैं, उसका रहस्य क्या है ? सुकरात कहा करते थे—"मेरे अन्दर एक 'डेमन' (आत्मा) का वास है, वह मुझे होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास करा देती है ।" यह सच था कि सुकरात अनेक रहस्यपूर्ण बातों की जानकारी पहले ही दे दिया करते थे । एक बार सुकरात अपने अनुयायियों के साथ एक सड़क पर जा रहे थे । वे अचानक एक स्थान पर रुके और कहा—"मेरा डेमन कहता है कि इस सड़क से नहीं चलना चाहिए । गन्तव्य तक पहुँचने के लिये दूसरे रास्ते से चलेंगे । इस रास्ते में कोई खतरा है ।"

'दे जेनियो सोक्रेटीज' में लिखा है कि—इस बात पर जिन्होंने विश्वास कर लिया वे सुकरात के साथ दूसरे रास्ते से चले गये पर चेरिलस और कुछ दूसरे लोगों ने कहा—यह सब बेकार की कल्पना है और वे उसी रास्ते गये । थोड़ी ही दूर पहुँचे होंगे कि जंगली सुअरों के एक झुण्ड ने उन पर आक्रमण कर दिया । कई को चोटें आईं, कई को सुअरों ने रौंद डाला, बड़ी मुश्किल से सुकरात के पास पहुँच पाये ।

प्लेटो ने भी अपनी एक थीसिस में ऐसी ही एक घटना का उल्लेख किया है । सुकरात भोजन कर रहे थे । तिमार्कस नामक युवक भी उनके पास था । वह उठकर कहीं जाने को हुआ तो सुकरात ने फिर वही बात दुहराई—मेरा डेमन कहता है कि तुम्हारा यहाँ से जाना खतरे से खाली नहीं है । पर तिमार्कस ने अनसुनी कर दी । उसके कुछ मित्रों ने कोई षड्यन्त्र रचा था, तिमार्कस गया तो उन्हीं के साथ हो गया और एक व्यक्ति की हत्या कर दी, उसी अपराध में उसे भी प्राण-दण्ड दे दिया गया ।

आत्मा का एक गुण यह है कि वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, यह बात थोड़ी कम समझ में आती है पर तात्विक दृष्टि से चिन्तन करने पर यह बात भी स्पष्ट हो जाती है । पदार्थ की तीन अवस्थाएँ साधारणतंया सबको ज्ञात हैं—(१) घन (पत्थर की तरह कड़ी), (२) द्रव, (३) गैस । लोहा घन है पर उसे तेज आँच दें तो वह पिघल कर द्रव में परिणत हो जाता है । ज्यादा गर्मी दी जाये तो वही भाप बन जायेगा । यही अवस्था दूसरे पदार्थों की भी है । मूलत: जड़ और चेतन दो ही अणु काम करते हैं, जहाँ जड़ अणु ढेर हो जाती है वहीं घनत्व दिखाई देने लगता है । जहाँ चेतन अणु जितने पदार्थरहित (इच्छा रहित) होंगे, वहाँ उतनी ही सूक्ष्म दृष्टि होगी । भले ही हम उस तत्व को इन आँखों से न देख पायें ।

अब इन तीन अवस्थाओं के आगे की चौथी अवस्था भी जानी गई है, वह है ईथर तत्व । यह ईथर सम्पूर्ण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्माण्ड में फैला है और रेडियो सन्देशों को तार की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचा देता है । आपका चित्र इस पृथ्वी के नीचे वाले आसमान में भी विद्यमान है, यदि यह कहा जाये तो चौंके नहीं, क्योंकि ईथर के परमाणु आपको घेरे हैं, इस तरह जहाँ तक भी ईथर फैला हुआ है, वहाँ तक आपका फोटो उन परमाणुओं के माध्यम से बह रहा है, जिसे आवश्यकता होती है, वह आपको कहीं भी देख लेता है । वैसे सामान्य स्थिति में सबके चेहरे उपेक्षित लहर लेते रहते हैं ।

अब ईथर के भी ७ खण्ड किये गये हैं । अर्थात् पदार्थ की सात अवस्थाएँ ईथर से आगे भी हैं । अँग्रेजी में उन्हें एस्ट्रल कहते हैं और हम भारतीय उन्हें लोक कहते हैं और यह मानते हैं कि इन सात अवस्थाओं में जिसे जिस तरह की अवस्था प्राप्त हो जाती है, वह उसी लोक की अनुभूति करने लगता है । इन अवस्थाओं से सम्पर्क का लाभ ईथर में प्रवाह की तरह होता है, अर्थात् वह मनुष्य कहीं भी दूर की सुन सकता है और देख भी सकता है । वहाँ की परिस्थितियों का रसास्वादन भी कर सकता है ।

सेनेवा कोलम्बस से १५०० वर्ष पूर्व जन्मा था, किन्तु उसने तभी यह भविष्यवाणी कर दी थी कि एक दिन पृथ्वी में कभी ऐसे आयुधों का आविष्कार होगा, जिसके बारे में कल्पना करना भी कठिन है । प्रसिद्ध चित्रकार लियोनार्दो द विंची ने आज से ४०० वर्ष पूर्व ही यह बता दिया था—आगे लोग आकाश में उड़ा करेंगे । इनसे भी महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणी जानेथन स्विफ्ट की है । जानेथन ने 'गुलिवर की भ्रमण कथा' में एक लापुटा नामक द्वीप का चित्रण किया है । उसी में बताया है कि मङ्गल ग्रह के चारों ओर दो चन्द्रमा चक्कर लगाया करते हैं, उनमें से एक चन्द्रमा दूसरे से दुगुनी तेज गति से चक्कर लगाता है । उस समय उस बात को गप्प कहा जाता था, किन्तु १८७७ में अमेरिका की नावल आब्जरबेटरी ने एक शक्तिशाली दूरबीन के द्वारा यह पता लगाया कि यथार्थ ही मंगल ग्रह में दो चन्द्रमा हैं, उनमें एक की गति दूसरे से दुगुनी है । स्विफ्ट ने बिना किसी यन्त्र के यह कैसे जान लिया इसका उत्तर माँगा जाय तो विज्ञान के पास सिवाय चुप्पी के और कोई उत्तर न होगा ।

ऐसी घटनाओं की कमी नहीं है जिनसे आत्मा के एक विचित्र 'क्रिस्टल' होने की बात सत्य सिद्ध होती है, हिप्नोटिज्म, विचार प्रेषण, दूरदर्शन, दूरश्रवण और स्वप्नावस्था में भी जाग्रत अनुभूतियाँ इस बात की प्रमाण है कि शरीर में किसी अणु आत्मा का निवास अवश्य है, उसी का संकेत करते हुये मैत्रोयण्युपनिषद के पंचम प्रपाठक में बताया गया है—

द्विधा वा एष आत्मानं विभर्त्ति यः प्राणो यश्चासावादित्योऽथ द्वौ वा एतावास्तां पञ्चधा नामान्तर्बहिश्चाहोरात्रे तौ व्यावर्तते असौ वा आदित्यो बहिरात्मान्तरात्मा..... एवाश्रितोऽन्नमत्ति ॥ १. ॥

अर्थात्—"वह परमात्मा दो प्रकार की आत्माओं (स्वरूपों) को धारणा करता है, यह जो प्राण है और जो सूर्य है, ये दोनों प्रथम हुये थे । वे भीतर और बाहर दिन रात फिरा करते हैं, वह सूर्य बाहर का अन्तर्रात्मा है और प्राण अन्तर्रात्मा है । इसकी गति को देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि यह आत्मा है। वेद कहते हैं कि यह गति रूप ही है, जिस विद्वान के पाप नष्ट हो चुके हैं । वह सब का अध्यक्ष होता है, उसका मन शुद्ध होता है, उसकी निष्ठा परमात्मा में ही होती है । उसका ज्ञान-चक्षु खुल जाता है और अन्तर्रात्मा में ही स्थित रहता है । वह गति द्वारा बाहर भी चला जाता है, आत्मा की गति का अनुमान किया जा सकता है, ऐसा वेद कहते हैं ।"

हम प्रगति पथ पर आगे ही बढ़ते चलें

चेतना को जीवन कहते हैं । जीवन का प्रथम चरण जड़ पदार्थों में, खनिजों में देखा जा सकता है । स्तब्ध दीखते हुए भी उनके अन्तःक्षेत्र में आणविक गति-विधियाँ तत्परतापूर्वक चल रही हैं । जड़ पदार्थ उत्पन्न होते, बढ़ते और मरते हैं । जीवधारियों में यह प्रक्रिया द्रुतगति से होती है और जड़ पदार्थों में मन्द गति से । पत्थर नया है या पुराना यह आसानी से जाना जा सकता है । उनका शैशव, यौवन एवं जरत्व समझने में जानकारों को कोई कठिनाई नहीं पड़ती । जन्म और मरण का क्रम पदार्थों का भी चलता रहता है, जीवधारियों की तरह वे भी जन्मते और मरते हैं । आत्मा की अमरता की तरह पदार्थ की अन्तःस्थिति—अणुसत्ता और उसकी सक्रियता भी अजर-अमर है ।

विकास क्रम समस्त ब्रह्माण्ड के प्रत्येक क्षेत्र में गतिशील हो रहा है । जीव भी उस प्रक्रिया से अछूता नहीं है । जीवन का भी क्रमिक विकास हुआ है । यह तम, रज और सत तीन रूपों में है और क्रमशः एक-एक मंजिल ऊपर उठता चला जा रहा है । तम का अर्थ है जड़ता । जड़ सृष्टि का इसी वर्ग में गिनते हैं । जड़ पदार्थों में भी जीवन तो है, पर वह प्रसुप्त स्थिति में पड़ा है । इससे कुछ ऊँची और अच्छी स्थिति सूक्ष्म जीवाणुओं की हैं । वे मिट्टी में मिले रहते हैं । हवा और पानी में गतिशील हैं । शरीर में जीवाणुओं की भरमार है । चूँकि इनमें इन्द्रियाँ और मस्तिष्क नहीं है इसलिए उन्हें भी जड़ गिना जाता है । उससे थोड़ी और अच्छी स्थिति वृक्ष-वनस्पतियों की है । यों उन्हें भी जड़ कहा गया है फिर भी उनमें जीवन प्रत्यक्ष लहलहा रहा है । यह सारा प्रसार, विस्तार जड़ जगत का है । पानी जड़ है, पर उसमें ओत-प्रोत जीवन से विज्ञान क्षेत्र भली प्रकार परिचित है । पंचतत्वों में से प्रत्येक में अपने-अपने ढंग की हलचल और चेतना विद्यमान है । इसे तमस स्थित में पड़ा हुआ अविकसित जीवन कह सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इससे अगली स्थिति 'रजस्' की है । जीवन के इस वर्ग में इन्द्रिय चेतनायुक्त चल-फिर सकने वाले प्राणी आते हैं । जलचर, थलचर, नभचर वर्ग के असंख्यों जीवधारी इस श्रेणी में गिने जाते हैं । कीट-पंतग, पशु-पक्षी, उद्भिज, स्वेदन, अंडज, जरायुज— प्राणी इसी स्तर के हैं । इससे उच्च वर्ग के प्राणी हैं जिन्हें सूक्ष्म जीवों की तरह अदृश्य कह सकते हैं । इनमें पितरों, देवात्माओं, जीवन मुक्तों, देवदूतों की गणना होती है । वे कभी शरीर धारण करते हैं । कभी अशरीरी रहते हैं । अशरीरी रहकर वे अपनी सूक्ष्म शक्ति से अधिक व्यापक क्षेत्र में अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं । अधिक सत्पात्रों को अधिक उपयोगी एवं अधिक मात्रा में प्रेरणाएँ दे सकते हैं । किन्तु जब जन-साधारण को प्रत्यक्ष मार्गदर्शन करते हुए उन्हें साथ लेकर चलना होता है और कोई परम्परा स्थापित करनी होती है तो शरीर धारण करके अवतारी देवदूतों की तरह काम करते हैं । वे कर्मफल भोगने के लिए विवश होकर जन्म-मरण के चक्र में घूमने वाले प्राणियों की तरह शरीर धारण नहीं करते वरन् समय की आवश्यकता पूरी करने के लिए व्यक्ति और समाज को ऊँचा उठाने के विशेष प्रयोजन से जन्म लेते हैं और अपना उद्देश्य पूरा करके पुनः वापिस लौट जाते हैं ।

तथ्य को और भी स्पष्ट रूप से समझना हो तो संक्षेप में उसे इस प्रकार जानना चाहिए कि पदार्थ की 'रचना' तो पंच तत्वों, परमाणुओं एवं रासायनिक यौगिकों की सहायता से हुई है । ऊर्जा विविध स्वरूप से उन्हें कई प्रकार की हलचलों के लिए प्रेरित कर रही है । चेतना के संबंध में बात दूसरी है । वह तम, रज और सत इन तीन भागों में विभक्त है अथवा तीन स्थितियों में रह रही है । चेतना की प्रथम स्थिति है 'तम'—जिसे जड़ निर्जीव कहा जाता है जिसमें खनिज, वनस्पति एवं सूक्ष्मजीवी आते हैं । बोध के अविकसित स्थिति में होने के कारण ही उन्हें जड़ वर्ग का ठहराया गया है । चेतना की दूसरी स्थिति है 'रज' अर्थात् विकसित जागरूकता । मन प्रधान प्रेरणा । उपलब्धियों के लिए आतुर सक्रियता । उसे अहंता, संचय और उपभोग के तीन रूपों में काम करते हुए देखा जा सकता है । शास्त्रकारों ने इसे अहंकार, तृष्णा और वासना में निरूपित किया है । विकसित कहे जाने वाले प्राणियों के विविधि क्रिया-कलापों के प्रेरणा स्रोत यही तीन हैं । इन्हें मनोवैज्ञानिक ने जीव की मूल-भूत प्रवृत्ति कहा है और उनका न्यूनाधिक विभाजनों के साथ वर्णन किया है । इस स्तर के प्राणियों को शास्त्रकार जीवित कहते हैं । इनका चिन्तन और कर्त्तत्व रजस् स्तर का कहा जाता है ।

इससे ऊँचे सत तत्व में विकसित चेतना है । इसे शरीरधारी और अशरीरी दोनों रूपों में देखा जा सकता है । आत्मशोधन में एवं ब्रह्मवर्चस् की साधना में संलग्न ब्राह्मण और इससे आगे परिपक्व स्थिति में पहुँचे हुए साधु कहलाते हैं । ब्राह्मण परिवार बनाकर रहते हैं और ज्ञान संवर्द्धन की सेवा में संलग्न रहते हैं । साधु पके फल की तरह परिवार भर के उत्तरदायित्वों से छुटकारा पाकर विश्व नागरिकों में सम्मिलित हो जाते हैं । उनका अपनापन असीम हो जाता है । व्यापक लोकहित को महत्व देते हैं और ऊँचा उठाने वाली प्रेरणाएँ देने की पुण्य-प्रक्रिया में संलग्न रहते हैं । उनकी गति-विधियाँ बादलों जैसी परिव्राजक स्तर की रहती हैं । वे सर्वत्र बरसते हैं कहीं भी मोह बन्धन में नहीं बँधते । इन्हें महात्मा कह सकते हैं । महामानव, सन्त, सुधारक, शहीद तत्वदर्शी, युग-दृष्टा, मनीषी आदि विशेषणों से इन शरीर धारी देवताओं को पहचाना जाता है । इन्हें भूसुर अर्थात पृथ्वी के देवता भी कहते हैं ।

अशरीरी देवताओं की सत्ता आँखों से तो नहीं दीखती पर वे सूक्ष्म एवं कारण शरीर धारण करके सृष्टि संतुलन को बनाये रहने के लिए अति महत्वपूर्ण काम करती रहती हैं । भौतिक सुविधाएँ बढ़ाने में वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, उद्योगपतियों, शासकों, शिल्पियों, उत्पादकों, श्रमिकों कलाकारों एवं दूसरे अनेकों का अपने-अपने ढंग का योगदान होता है । ठीक इसी प्रकार सूक्ष्म जगत की सुव्यवस्था बनाये रहने और प्रगति के आधार खड़े करने में इन अशरीरी सूक्ष्म शरीरधारी देवताओं का भारी योगदान होता है । कई उपयोगी आन्दोलन एवं क्रिया-कलाप जब तब बड़े उत्साहपूर्वक चलते दीखते हैं । उनमें साधन जुटने, सहयोग मिलने एवं सफलता रहने की चमत्कारी प्रगति को देखकर उसके संयोजक तक आश्चर्यचकित रह जाते हैं । वस्तुतः ऐसे अवसरों पर दैवी शक्तियों के सहयोग को सम्मिलित देखा जा सकता है ।

स्थूल जगत की तरह सूक्ष्म जगत में भी तम और सत की स्थिति रहती है । वहाँ भी आसुरी और दैवी सत्ता ताने-बाने की तरह, जीवन मरण की तरह, रात-दिन की तरह, धूप-छाँह की तरह काम करती है । अपनी दुनिया में सुख-दुःख, पाप-पुण्य की परस्पर विरोधी गतिविधियाँ चलती हैं । सूक्ष्म जगत में भी दैवी और आसुरी, सतोगुणी और तमोगुणी तत्व काम करते हैं । वहाँ भी देवासुर संग्राम मचा रहता है । अशरीरी आत्माओं में भी दुष्ट प्रवृत्ति पाई जाती है । वे भी देवताओं की तरह ही अपने स्वभाव के अनुरूप काम करती हैं और दुष्ट संभावनाएँ साकार करने में लगी रहती हैं । दुष्कर्मों में भी कई बार बढ़ी-चढ़ी सफलता मिल जाती है । इनमें अशरीरी आसुरी तत्वों का योगदान रहता है । साधना विज्ञान में दैवी और आसुरी दोनों प्रकार के विधान है । दैवी स्तर की उपासना दक्षिणमार्गी कहलाती है । उससे साधक में सत तत्वों की वृद्धि होती है और देव अनुग्रह उपलब्ध होता है । इसके प्रतिपक्षी तन्त्रोक्त वाममार्ग द्वारा आसुरी शक्तियों से भी संपर्क साधा जा सकता है । उनके सहयोग से मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण जैसे क्रूर कर्म किये जा सकते हैं ।

चेतना का उच्चस्तर अशरीरी किन्तु सुविकसित होता है, उसमें देव और असुर दोनों प्रकृति के हो सकते हैं । यह उभय-पक्षी स्थिति तो रज और तम में भी होती है । रजस् स्तर के प्राणियों में गाय जैसे दयालु और व्याघ्र जैसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिंसक पशु मौजूद हैं । हंस और काक का भेद इसी प्रकार का है । सर्प और नेवला की भिन्नता स्पष्ट है । शरीर के भीतर विघातक विषाणु भी पाये जाते हैं और जीवन रक्षा के प्रहरी श्वेत रक्त कण भी अपना काम करते हैं । जड़ पदार्थ में प्राणघातक विषों को भी कमी नहीं और अमृतोपम औषधियाँ भी प्रचुर परिमाण में मौजूद हैं । अग्नि जैसे दाहक और हिम जैसे शीतल पदार्थों में परस्पर विरोधी प्रकृति काम करती पाई जाती है । चेतना के तम, रज और सत् स्तरों में से प्रत्येक को शुभ-अशुभ के दो-दो भागों में बाँटा जाय तो स्पष्ट ही वे छह की संख्या में हो जाते हैं ।

यहाँ लगे हाथों अद्वैत, द्वैत और त्रैत का अन्तर भी समझ लेना चाहिए । सृष्टि के मूल में एक ही तत्व है चेतना । वैज्ञानिक विकास के साथ अब प्रकृति की नई परतें खुली हैं और किसी समय जो पदार्थ की मूल-भूत इकाई परमाणु समझी जाती थी अब वह मान्यता वापिस ले ली गई है। परमाणु भी अनेक घटकों का सम्मिश्रित पिण्ड बन गया है । उन घटकों का शवच्छेद करने पर वे स्वयं समाप्त हो जाते हैं और उनके मूल में ऊर्जा रह जाती है । इसे 'क्वान्टा' कहते हैं । अब पदार्थ की मूल इकाई परमाणु नहीं है वरन् हलचलों के लिए उत्तरदायी व्यापक ऊर्जा है, अब यही प्रकृति है और इसी का नाम क्वान्टा है ।

क्वान्टा अचेतन है या चेतन ? इस प्रश्न का समाधान अब वैज्ञानिक क्षेत्र ही इस तरह करने जा रहे हैं जिस तरह अध्यात्म द्वारा प्रतिपादित किया जा रहा है । 'इकॉलाजी' के सिद्धान्तानुसार प्रकृति की-पदार्थों की समस्त हलचलें एक-दूसरे की पूरक हैं । पारस्परिक हित साधन सहयोग और संतुलन की रीति-नीति ठीक इसी प्रकार चल रही है मानो किसी सुव्यवस्थित शासन ने अपनी प्रजा को बिना टकराये स्नेह सहयोगपूर्वक रहने का विधान बना रखे हों । गृहपति अपने परिवार की व्यवस्था करता है । जीवात्मा अपने शरीर के अवयवों और जीवाणुओं को घड़ी के कलपुर्जों की तरह सहयोगी बनाये हुए हैं । मनुष्य की गन्दी साँस को वनस्पति खाती है और वनस्पतियों द्वारा ठण्डी साँस को मनुष्य पाते हैं । भूमि की उर्वरता पौधों को उगाती है और पौधे सूख कर खाद बनते और भूमि को उर्वरता लौटाते हैं । समुद्र, बादल, वर्षा, नदी और फिर समुद्र के क्रम से जलराशि का भ्रमण चक्र चलता रहता है । ग्रह-नक्षत्र आपस में टकराते नहीं वरन् अपनी-अपनी कक्षाओं में शान्तिपूर्वक भ्रमण करते हैं । वे एक-दूसरे के साथ छेड़खानी नहीं करते वरन् स्नेह-सहयोग भरा आदान-प्रदान करते हैं । दुर्बल प्राणियों का प्रजनन अधिक और समर्थों का स्वल्प होना प्रकृति की विवेकशीलता का द्योतक है । जब भी अवांछनीय परिस्थिति बढ़ती है तो उनकी विरोधी प्रतिक्रिया होती है और उस तूफान द्वारा फिर यह वातावरण स्वच्छ हो जाता है । अवतारों का दृश्य-अदृश्य, अवतरण इसी सृष्टि संतुलन के लिए होता रहता है । 'इकालाजी' विज्ञान की जितनी गहरी परतें खुलती जा रही हैं उसी अनुपात से यह स्पष्ट होता जाता है कि प्रकृति अन्धी नहीं वरन् अत्यन्त दूरदर्शी, विवेकशील एवं क्रिया-कुशलता में सुसम्पन्न है । इसका अर्थ हुआ प्रकृति को चेतनायुक्त होने की मान्यता मिलना । विश्वास किया जाना चाहिए कि अगले दिनों 'क्वान्टा' भी मर जायगा और इसके स्थान पर सृष्टि का उद्गम स्रोत 'चेतना प्रवाह' घोषित कर दिया जायगा । विभिन्न पदार्थ और प्राणी उसी चेतना समुद्र की लहरें ठहराये जायेंगे और सर्वत्र एक ही परमेश्वर संव्याप्त होने की बात स्वीकार की जायेगी । हमें धैर्य रखना चाहिए और विश्वास करना चाहिए कि शोध में निरत विज्ञान भी अध्यात्म के स्वर में मिला कर एक ही तथ्य का प्रतिपादन कर रहा होगा—**'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचिंत् जगत्यां जगत्'** यहाँ सर्वत्र ईश्वर संव्याप्त हैं । **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** का वेदान्त उद्घोष अगले ही दिनों विज्ञान की कसौटी पर भी सत्य और तथ्य सिद्ध होकर रहेगा ।

वैज्ञानिकों की दृष्टि से परमाणुओं का अन्धड़ तूफान ही यह संसार है । रेगिस्तान में आँधी आने पर यहाँ का रेत वहाँ उड़कर जा पहुँचता है और रेत के टीले इधर से उधर उखड़ते-जमते रहते हैं । बादलों की कई तरह की आकृतियाँ बनती-बिगड़ती रहती है । इसी प्रकार परमाणुओं के अन्धड़ में तरह-तरह के पदार्थ, प्राणियों के शरीर बनते-बिगड़ते रहते हैं । मूलसत्ता अणु प्रवाह है । प्राणियों की मस्तिष्कीय संरचना एवं परमाणुओं की भगदड़ का सम्मिश्रित स्वरूप ही यह संसार है जिसमें हम रहते और तरह-तरह के अनुभव करते हैं । हर प्राणी को दुनिया उसके चेतना स्तर के अनुरूप एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है । मेढक इस संसार को जिस दृष्टि से दीखता है, जैसा सोचता अनुभव करता है, इन्द्रियों की सहायता से उपभोग सामग्री तथा परिस्थिति में से जिस प्रकार की अनुभूति पाता है वह मनुष्य की अनुभूतियों से सर्वथा भिन्न प्रकार की है । दोनों के बीच जमीन-आसमान जितना अन्तर हो सकता है । ऐसी दशा में संसार का वास्तविक रूप क्या हो सकता है ? यह निर्णय कर सकना सर्वथा असम्भव है । एक ही खाद्य पदार्थ का विभिन्न प्राणी विभिन्न प्रकार का स्वाद लेते हैं तो किसी पदार्थ मूल स्वाद कैसे घोषित किया जाय ? जब एक ही दृश्य से अनेकों प्रकार के निष्कर्ष निकाले जाते हैं तो उनकी वास्तविकता किस आधार पर निरूपित की जाय ? इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए वेदान्त में इस संसार को माया, मिथ्या, स्वप्न आदि नामों से पुकारा है । रज्जु-सर्प की उपमा देते हुए इन्हें भ्रान्ति कहा है । इस अर्थ के पीछे सृष्टि की यथार्थता का दिग्दर्शन है । जो दीख रहा है उसे झुठलाने की चुनौती नहीं है और न निर्धारित कर्तव्यों से भाग खड़े होने का उपदेश है । सिनेमा के पर्दे पर होने वाली घुड़दौड़ सत्य भी है और असत्य भी । सत्य इसलिए कि हम प्रत्यक्ष देखते हैं और दृश्य का आनन्द लेते हैं । असत्य इसलिए कि वहाँ न तो घोड़े हैं और न दौड़ हो रही है । मस्तिष्क की रचना आँखों की निरीक्षण शक्ति फिल्म पर खिंचे फोटो और दिखाने की मशीन का द्रुतधावन आदि की प्रक्रियाओं से मिलकर सिनेमा एक प्रत्यक्ष सत्य बना हुआ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । इतने पर भी उसे वैज्ञानिक एवं दार्शनिक दृष्टि से भ्रान्ति दर्शन ही ठहराया जायगा । वेदान्त ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्या कहता है तब उसका तात्विक प्रतिपादन क्या है ? इसका यत्किंचित आभास ऊपर की पंक्तियों से प्राप्त किया जा सकता है । यह अद्वैत का प्रतिपादन है ।

ब्रह्म को सत् कहा गया है, प्रकृति उसी स्फुरणा है । एक को चेतन दूसरे को जड़ कहा गया है । दोनों के मिलन से पदार्थ में हल-चल और प्राणियों में चिन्तन चलता है । सृष्टि के मूलतत्व ब्रह्म को सत् कहा गया है और उसके आवरण, उपकरण को प्रकृति एवं तमस् कहते हैं । इस प्रकार प्रकृति और पुरुष की दो सत्ताएँ बनती हैं और इन्हें सत् एवं तम की तात्विक स्थिति कह सकते हैं । यह द्वैत कहलाया । वस्तुतः इस संसार में जड़-चेतन, प्रकृति-पुरुष, प्रकाश अन्धकार, सर्दी-गर्मी, जल-थल की तरह दो ही बड़े तथ्य हैं । अकेला ब्रह्म होता तो वह अपने आप तक ही सीमित रहता । अकेली प्रकृति होती तो सब कुछ निस्तब्ध नीरस, निष्प्राण होने के कारण अविकसित एवं भयावह स्थिति में बना रहता । चमत्कार तो मिलन से हुआ है । दो के मिलने से तीसरी वस्तु बनती है इसे हर कोई जानता है । दिन और रात की मिलन बेला को संध्याकाल कहते हैं । नीला और पीला रंग मिलाकर हरा बनता है । दो गैसें मिलने से पानी बन जाता है । आग और पानी के मिलने से भाप बनती है । जड़ और चेतन का मिलन ही 'जीव' है । त्रैतवाद में ईश्वर प्रकृति और जीव को तीन सत्ताएँ मानी गयी हैं । जीव एक सम्मिश्रण है । मुक्ति की स्थिति में माया हट जाती है और जीव अपने शुद्ध स्वरूप परमेश्वर में जा मिलता है इस प्रकार उसकी द्विधा स्थिति का अन्त हो जाता है । माचिस में आग लगती है तो लौ उठती है । तीली समाप्त हो जाती है और व्यापक अग्नि तत्व में जा मिलती है । जड़ और चेतन के सम्मिश्रण से बँधी हुई एक अहंता ग्रन्थि को जीव कहते हैं । अहम् का तात्पर्य जड़ शरीर एवं भौतिक साधनों सहित चेतना की आत्ममान्यता होती है । इसी जकड़न को भव बन्धन कहते हैं । आत्मा और प्रकृति की भिन्नता की अनुभूति यदि अन्तःकरण को हो सके तो 'आत्म-ज्ञान का', ब्रह्मज्ञान का उद्देश्य पूरा हो जायेगा । इसी अनुभूति को भूमा, ऋतम्भरा, प्रज्ञा, तुरियावस्था, समाधि, ईश्वर-प्राप्ति, जीवन मुक्ति आदि के नाम से जाना जाता है ।

प्रकृति और पुरुष तम और सत् ही दो तत्व इस संसार में हैं । दोनों के मिलन से जो जड़ पदार्थों में हलचल और चेतना में चिन्तन चलता है उसे रज कहते हैं । सक्रियता मिलन की ही प्रतिक्रिया है । बिजली के दो तार अलग रहें तो निष्क्रियता रहेगी, पर जब वे मिलेंगे तो चिनगारियाँ छूटेंगी और विद्युत प्रवाह बह निकलेगा । रजस मिलन की प्रतिक्रिया भर है उसका स्वतंत्र अस्तित्व कुछ नहीं ।

त्रैत-द्वैत और अद्वैत का दर्शन शास्त्र समझ लेने से हमारी आध्यात्मिक गुत्थियाँ खुलती हैं और वस्तुस्थिति समझने एवं सत्य तक पहुँचने में सुविधा होती है । ईश्वर जीव प्रकृति है । यदि सम्मिश्रण को महत्वहीन समझ कर विश्लेषण पृथक्करण पर उतारू हो जाय तो फिर प्रकृति और पुरुष का द्वैत सिद्धान्त ही पर्याप्त प्रतीत होता है । यदि और भी गहराई तक उतरा जाय तो इस विश्व में एकमात्र चेतना का ही अस्तित्व है । वही कृत-विकृत होकर ऊर्जा प्रकृति परमाणु पदार्थ में विकसित होते-होते दृश्य संसार बन जाती है । इस प्रकार अपने-अपने स्तर पर यह तीनों ही सिद्धान्त सही हैं और उन्हें स्थिति के अनुसार अपने-अपने स्थान पर ठीक माना जा सकता है । यही बात सत्, रज, तम तीनों तत्वों के सम्बन्ध में है । सत् को चेतना और तम को पदार्थ कह सकते हैं । रज का कोई मौलिक अस्तित्व नहीं । वह दोनों के मिश्रण से बना एक कृत्रिम तत्व है । संध्या काल का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं वह दिन और रात्रि के मिलन की सम्मिश्रण अवधि है । उसे मान्यता दी भी जा सकती है और नहीं भी । रज एक स्थिति में स्वीकारा जा सकता है, पर दूसरी में उसे अस्वीकार करने में भी अनौचित्य नहीं है ।

प्रगति का क्रम नीचे से ऊपर की ओर है । तम से रज, रज से सत् की ओर जीवन बढ़ता है । यही उचित है और यही शोभनीय । जीव इसी क्रम को अपनाये रहे तो उसकी प्रशंसा है । निम्न योनियों में से प्रगति करते-करते जीव को मनुष्य स्थिति में आने का सौभाग्य मिल गया तो अब प्रतिष्ठा इसी में है कि आगे बढ़ा जाये तो जीवात्मा भर न रहकर महात्मा, देवात्मा और अन्ततः परमात्मा बनने का चरम लक्ष्य प्राप्त किया जाय ।

मनुष्य प्रकृति में भी गुण, कर्म, स्वभाव का स्तर बड़ता, जागरूकता एवं उत्कृष्टता प्रधान रहता है । यह तम, रज और सत की स्थिति है । आत्म-विश्लेषण से यह जाना जा सकता है कि हमारी अन्तःस्थिति पाशविक है, मानवी है या दैवी उत्कर्ष की दिशा में बढ़ रही है, प्रशंसनीय विवेकशीलता इसी में है कि हम निम्न स्थिति में न पड़े रहें वरन् उत्कर्ष के लिए प्रबल पुरुषार्थ करें और चरम लक्ष्य तक द्रुतगति से बढ़ चलने का कीर्तिमान स्थापित करें ।

चेतना की प्रगति का महत्व समझा जाय

सृष्टि में जीवन का इतिहास जल पर छाई हुई 'काई' तथा जल-थल पर विभिन्न आकृतियों में पाई जाने वाली घास से आरम्भ होता है । उसी ने प्रगति करते हुए इच्छा, ज्ञान और कर्म की विशेषताओं से युक्त जीवधारी का रूप ग्रहण किया है और फिर अमीबा से लेकर मनुष्य तक असंख्य वर्ग के प्राणधारी उत्पन्न होते और क्रमशः आगे बढ़ते चले गये हैं ।

अपने युग में मनुष्य ने अपनी सफलताओं पर गर्वोन्मत होकर प्राणी पर लगे हुए प्रकृति के अंकुश की अवहेलना आरम्भ करके स्वेच्छाचार अपनाने की उद्धतता दिखाई है । फलतः उसे पत्थर से सिर टकराने पर चोट लगने की तरह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कई प्रकार की आपत्तियों का सामना करना पड़ा और उलझनों में जकड़ना पड़ा है । यह सामयिक उद्दण्डता और प्रताड़ना की एक झलक कही जा सकती है और उसे अस्थायी माना जा सकता है । भूलें सुधारते-सुधारते ही मनुष्य आगे बढ़ा है । मानवोचित शालीनता की अवज्ञा करने पर किस प्रकार का प्रतिफल भुगतना पड़ता है—विज्ञान की पाठशाला में यह पाठ इन दिनों पढ़ना पड़ रहा है और उल्टी राह चलना कितना महँगा पड़ता है, यह समय की प्रयोगशाला में भली प्रकार सीखा जा रहा है । भविष्य आशाजनक है । ठोकर खाकर सम्भलने-भूलों को सुधारने और भटकाव को बदलने में मनुष्य कुशल रहा है । अपने समय में भी वह कुशलता प्रखर हो रही है । युग-परिवर्तन के लिए चल रहा प्रचण्ड अभियान इसी सुधार प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है । हमें मरना नहीं जीना अभीष्ट है । हमें पतन नहीं उत्थान चाहिए । अस्तु, सृष्टि के आदि से लेकर अब तक सुधार प्रक्रिया का चलता आ रहा क्रम अब भी जारी है और अपने भविष्य में भी जारी रहेगा । यह सुनिश्चित है कि अपने समय में जो दुष्प्रवृत्तियाँ और दुर्भावनाएँ हर दृष्टि से घातक सिद्ध हो रही हैं उन्हें अगले दिनों बदल ही लिया जायेगा । युग-परिवर्तन अभियान की सफलता का श्रेय किन्हीं पर भी क्यों न बरस पड़े ? असल में वह मानवी सत्ता की चिर अभ्यस्त प्रक्रिया ही है जिसके अनुसार भूल सुधारों का क्रम अनवरत गति से होता चला आया और भविष्य में भी इसी प्रकार चलता रहेगा ।

यह तो सामयिक प्रसंग और भूल सुधार के सनातन क्रम का उल्लेख मात्र है । यहाँ चर्चा उस प्रगति क्रम की होनी है जो सृष्टि के आदि काल से चलता आ रहा है और जिसने शिक्षा, चिकित्सा, उत्पादन, व्यवसाय, विज्ञान, समाज, शासन आदि के अनेकानेक सुविधा-साधनों का पथ-प्रशस्त किया है । इस विकास-क्रम में जीवात्मा के चरण आगे ही आगे बढ़े हैं । वे भविष्य में और भी द्रुतगति से बढ़ेंगे क्योंकि अतीत में जितने साधन थे अब उसकी तुलना में असंख्य गुने अधिक बढ़ गये हैं । बैलगाड़ी की तुलना में मोटर अपेक्षाकृत अधिक जल्दी लम्बा सफर पूरा करा देती है । आज के मनुष्य को अधिक साधन उपलब्ध हैं अस्तु उसकी प्रगति यात्रा भी अधिक तेजी से बढ़ेगी—यह भी निश्चित है ।

विज्ञान, अर्थ-व्यवस्था, शिक्षा, चिकित्सा, अन्तरिक्ष पाताल के क्षेत्रों में नित नये आविष्कारों से यह स्पष्ट है कि मनुष्य के हाथ में वे साधन लग रहे हैं जो भूतकाल में उपलब्ध नहीं थे । इनका उपयोग भौतिक शक्ति और सम्पन्नता प्राप्त करने के लिए हो रहा है । अधिपति अपने साधनों का मनमाना उपयोग करते रहे हैं । अब भी वह हो रहा है । पर अगले दिनों जन-चेतना के दबाव से उनका उपयोग सर्वजनीन स्तर पर होने लगेगा । समाजवाद जैसी प्रवृत्तियाँ इसके लिए प्रयत्नशील भर हैं । अगले दिनों भौतिक साधनों की वृद्धि होगी और एकाधिकार को लोकहित के लिए विकेन्द्रित करने के लिए भी प्रयत्न होंगे । इन दिनों अभिनव उपलब्धियों का उपयोग निहित स्वार्थों के लिए होता देखकर चिन्ता होनी स्वाभाविक है, पर तत्वदर्शी निश्चिन्त हैं कि अवांछनीयता देर तक स्थिर न रह सकेगी । विवेक का सूर्य उगेगा और सद्भावना के वातावरण में सत्प्रवृत्तियाँ पनपती दिखायी देंगी और भौतिक क्षेत्र में भी मनुष्य अन्ततः क्रमिक प्रगति करते-करते स्वर्गीय सुख-सुविधाओं का लाभ प्राप्त करेगा । उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाएँ मूर्तिमान करने के लिए यदि प्रबुद्ध वर्ग सच्चे मन से प्रयत्न करें तो वह बिना कठिनाई और बिना देरी के निकट आ सकता है । यदि इस दिशा में मूर्धन्य व्यक्ति अपना कर्त्तव्य नहीं भी निबाहें तो भी देर-सवेर में स्थिति आ ही जायगी, जिससे अपूर्णता से पूर्णता की ओर चलने का—जड़-चेतन पर लागू होने वाला प्रगति क्रम सनातन धर्म सही सिद्ध हो सके । प्रश्न केवल देरी-जल्दी और कठिनाई-सरलता का है । युग पुरुषों की भूमिका इसी क्रम चक्र में सरलता उत्पन्न करती है अन्यथा उसे किसी प्रकार तो सृष्टि अन्तराल में काम कर रही प्रगति चेतना अपने ढंग से भी पूरी कर लेती है । विश्व मानव का समष्टि विवेक अनादि काल से प्रगति के पथ की ओर इस सृष्टि को धकेलता चला आया है और तब तक वह क्रम चलता ही रहेगा जब तक कि एक को बहुत में बिखेरने वाला सृष्टा—बहुत को एक में समेट नहीं लेता ।

यह बहिरंग प्रगति के संदर्भ में पर्यवेक्षण हुआ । अब चेतना की अन्तरंग स्थिति के सम्बन्ध में दृष्टि-पात करने की आवश्यकता है । वास्तविक प्रगति तो चेतना की ही होती है । उसका स्तर जितना विकसित होता है उसी अनुपात में भौतिक पदार्थों का अधिक मात्रा में अधिक उच्चस्तरीय उत्पादन एवं उपभोग सम्भव होता है । नर-पशु दाम्पत्य-जीवन में मात्र यौन उत्तेजना के कुछ क्षणों का ही भौंडा-सा लाभ ले पाते हैं, पर भावुक सम्वेदना, सौन्दर्य दृष्टि, कलात्मक सहयोग का समावेश हो जाने से उस मिलन की सरसता अत्यधिक उच्चस्तर की बन जाती है । इस अन्तर में जननेन्द्रियों की नहीं, अन्तःविकास की गरिमा ही काम करती है । इसके रहते पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करते हुए भी उस काम क्रीड़ा का आनन्द लिया जा सकता है जिसमें सामान्य रूप से घिनौनी काम लिप्सा भी मोक्ष, धर्म, अर्थ की तरह ही सरस और सुखद बन जाती है । यह चेतना के विकास का प्रमाण है । चेतना की प्रगति सत्यं-शिवं-सुन्दरं के रूप में दृष्टिगोचर होती है । उससे सत्-चित आनन्द की दिव्य अनुभूतियाँ सम्भव होती हैं और स्वल्प साधनों से भी स्वर्गीय आनन्द को अपनी इसी धरती पर प्राप्त कर सकना सम्भव होता है ।

दृश्यमान आकर्षण को तो चमड़े की आँख से भी देखा, जाना जा सकता है । उसे तो अर्द्ध विक्षिप्त तक परखने और अपनाने में कुशल होते हैं । इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय में प्रशिक्षित और अभ्यस्त होती हैं वे रुचिकर और अरुचिकर का भेद सहज ही बता देती हैं । सुन्दर और असुन्दर खिलौने और कपड़े तो छोटे बच्चे भी जानते हैं तथा ललचाते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतना की सौन्दर्य दृष्टि इससे गहरी होती है उसकी परख की कसौटी भिन्न स्तर की रहती है । अन्तरंग की पवित्रता और शालीनता के आधार पर जो श्रद्धासिक्त पुलकन उठती है उसमें सौन्दर्य का वह तत्व रहता है जिसके लिए अध्यात्म में 'सुन्दरम्' शब्द प्रयुक्त हुआ है । यह परख आँखों से आगे की है । इसमें स्थिति को नहीं स्तर को प्रधानता मिलती है । इसलिए विकसित चेतना ही इस सुन्दरम् को दृश्य के पीछे अदृश्य को ढूँढ़ पाने में समर्थ होती है । आँखें तो इस सम्बन्ध में धोखा ही धोखा खाती हैं । उनके द्वारा तो नकली और असली हीरे तक के और वेश्या तथा साध्वी तक के बीच किसे प्रधानता दी जाय यह निर्णय भी करते नहीं बनता ।

शिवं-कल्याण कहाँ है ? किसमें है ? सत्यं-का आधार क्या हो सकता है ? इसका निर्णय करने में भौंथरी चेतना प्राय: असमर्थ रहती है । श्रेय और प्रेय के बीच एक का चुनाव करने का जब अवसर आता है तो पिछड़ी हुई चेतना आमतौर से 'प्रेय' को ही चुनती है । लोग उपभोग के लिए आतुर हैं । उपयोग की बात कौन सोचता है ? आज का, अभी का लाभ प्राप्त करने के लिए आमतौर से लोग भविष्य को अन्धकारमय बनाने और भयंकर दुष्परिणाम सहने की भूल करते रहते हैं । उतनी दूरदर्शी विवेक दृष्टि कितनों में होती है कि बीज बोकर वृक्ष के फलने तक उसे सींचने, सम्भालने का माली जैसा धैर्य धारण किये रह सकें । शहद पर टूट पड़ने और पंख लिपट जाने पर तड़पकर प्राण देने वाली मक्खी का उदाहरण ही आम लोगों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है । बड़प्पन छोड़कर महानता अपनाने के लिए किसका जी करता है । मद्य छोड़कर पय-पान करने में किसे अभिरुचि है ? यह अन्त:चेतना का पिछड़ापन ही है जिसमें उपयोगिता की उपेक्षा और आकर्षण की प्रतिष्ठा की नीति अपनाई जाती रहती है । शिवं की व्याख्या वासना और तृष्णा के अतिरिक्त और कुछ कहाँ होती है ? सत्यं में अहंता का पोषण ही आधार माना जाता है । यही कारण है कि आन्तरिक बौनापन बेहिसाब बढ़ रहा है । विशाल अन्त:करण और उदात्त दृष्टिकोण वाले 'देवमानव' निरन्तर घटते चले जा रहे हैं । हिम मानव कहे जाने वाले 'दैत्य' अब खोज और चर्चा के विषय बनकर रहे गये हैं । उन्हें प्रत्यक्ष देख पाना अति कठिन है । लगता है कुछ समय में देवमानवों का वंश भी घटता-मिटता चला जायगा । धन वैभव बढ़ा किन्तु ब्रह्म-वर्चस् खो गया तो उसे सौभाग्य नहीं दुर्भाग्य ही कहा जा सकेगा ।

इन दिनों बुद्धि-वैभव की चमत्कारी प्रगति प्रत्यक्ष है । विज्ञान से लेकर शिक्षा तक के सभी क्षेत्रों में जो उन्नति हो रही है उससे कौन अपरिचित है ? शक्ति और साधनों के नये-नये स्रोत हाथ में आ रहे हैं । प्रकृति की रहस्यमय परतों पर से के बाद एक पर्दा उठता चला जा रहा है और उसके आधार पर मनुष्य का दर्जा सृष्टि शिरोमणि से बहुत ऊँचा उठकर प्रकृति प्रशासक एवं अधिपति का बनता जा रहा है । बौद्धिक क्षेत्र की प्रगति में अपने युग ने जो प्रगति की है उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा ही की जा सकती है, पर यहाँ इतना और भी ध्यान रखना होगा कि यह चेतना की प्रगति नहीं है । चेतना और बुद्धि का अन्तर समझा जाना चाहिए । बुद्धि का केन्द्र मस्तिष्क शरीर का एक अवयव मात्र है । शरीर पंच भौतिक है । मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय माना गया है । किसी के पैरों में दौड़ने की-हाथों में वजन उठाने की, जीभ में बातें बनाने की कुशलता बढ़ जाय तो उसे शरीर की उन्नति ही कहा जायगा । चेतना की परतें बुद्धि से उतनी ही गहरी हैं— जितनी कि शरीर की तुलना में आत्मा की । किसी बलिष्ठ का चमत्कार दंगल में कुश्ती जीतने के रूप में देखा जा सकता है, पर यह आवश्यक नहीं कि वह भक्ति भावना, सहृदयता और उत्कृष्ट आदर्शवादिता की दृष्टि से भी बढ़ा-चढ़ा है । भावना का क्षेत्र चेतना का है और वह शरीर के साथ जुड़ी होने पर भी अस्तित्व की दृष्टि से उससे भिन्न है । किसी रुग्ण व्यक्ति की भी सद्भावना अत्यन्त उच्चस्तर की हो सकती है । इन उदाहरणों से शरीर और आत्मा की स्थिति भिन्नता पर प्रकाश पड़ता है । बुद्धि-वैभव को भी एक प्रकार से भौतिक प्रगति के अन्तर्गत ही गिना जा सकता है । स्पष्ट है कि उसके कारण सांसारिक उपलब्धियाँ ही हस्तगत हुई हैं । यदि बुद्धि ने चेतना को विकसित करके भी अपना पराक्रम दिखाया होता तो साधनों के उपभोग की उपेक्षा करके उनके उपयोग की बात सोची गई होती । तब प्रस्तुत साधन-सामग्री के सहारे ही इस संसार का प्रत्येक प्राणी आनन्द और उल्लास का रसास्वादन करते हुए क्रीड़ा-कल्लोल मग्न रहा होता और अपनी इसी धरती पर सतयुगी-स्वर्गीय परिस्थितियाँ बिखरी हुई दृष्टिगोचर होतीं । तब एक ने दूसरे को काटने-गिराने की बात सर्वथा त्याग दी होती और स्नेह-सहयोग की उदार नीति अपनाकर ऊँचा उठाने— आगे बढ़ाने में योगदान दिया होता । जो शक्ति इन दिनों काटने-गिराने में लगी हुई है वही यदि सृजन एवं उत्कर्ष में लगी होती तो खाई खोदने के साधन दीवार चुनने में लगने पर जिस तरह चमत्कारी प्रतिफल उत्पन्न होता है उसी प्रकार पतन के प्रयास उत्थान में संलग्न होकर ऐसे परिणाम उत्पन्न करते—जिनकी कल्पना करने मात्र से आँखें चमकने लगतीं ।

चेतना का उत्कर्ष समूचे, व्यक्तित्व को प्रभावित करता है । उसके प्रभाव से भावना – विचारणा और क्रिया की दिशा धारा उच्चस्तरीय बनती है । फलत: व्यक्ति का त्रिविधि पुरुषार्थ उसके स्तर को उस दिशा में विकसित करता है जिसे भूसुर अथवा नरदेव कहा जाय । देवताओं के व्यक्तित्व और कर्तृत्व की गुण गरिमा से पुराण साहित्य भरा पड़ा है । इसमें से यदि रोचक, भयानक, अलंकारिता को हटा दिया जाय तो इतना स्पष्ट हो जाता है देव-मानव किस प्रकार अपनी महानता के कारण परम श्रद्धास्पद बनते हैं और किस प्रकार असंख्यों को अपने कन्धों पर बिठा कर पार लगाने का श्रेय प्राप्त करते हैं । उनकी ऊर्जा अपने समय और सम्पर्क क्षेत्र को ही प्रभावित नहीं करती वरन् इतिहास के पृष्ठों पर अमर रहकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिरकाल तक अपने प्रेरणाप्रद प्रकाश का लाभ संसार को देती रहती है ।

ऐसे व्यक्ति अपने आप में कितने संतुष्ट रहते हैं उनके अन्त:करण में आनन्द और उल्लास की कैसी हिलोरें उठती रहती हैं इसका अनुभवी लोगों को शब्दों के सहारे परिचय कराया जा सकना कठिन है । इस प्रकार की मन:स्थिति का परिचय शास्त्रकारों ने अपने अलंकारिक भाषा में देने का आधा अधूरा प्रयत्न किया है । स्वर्ग, मुक्ति, भक्ति, सोमरस, अमृत, भूमा, प्रज्ञा, समाधि, आत्मसाक्षात्कार, ईश्वर दर्शन, ब्रह्मानन्द, परमानन्द जैसे शब्द किसी परिस्थिति या प्रत्यक्ष उपलब्धि की ओर इंगित करते दीखते हैं, पर वस्तुत: यह मन:स्थिति के हलके-भारी स्तर भर हैं । जिन सात लोकों की विशद चर्चा शास्त्रकारों ने की है वे इस अपने ब्रह्माण्ड में कहीं भी खोजे पाये जा नहीं सकते । वे चेतना की विकसित-अतिविकसित स्थिति के अन्तरों का अलंकारिक चित्रण मात्र हैं । यों भू सर्वेक्षण की दृष्टि से यह धरती एक ही प्रकार की है, पर दृष्टिकोण भिन्नता के आधार पर किये गये पर्यवेक्षण के आधार पर यह सिद्ध होता है कि हर व्यक्ति की दुनिया अलग है और वह उसकी अपनी गढ़ी हुई है । एक आततायी जिस दृष्टिकोण से संसार को देखता और अपने आचरण की संगति बिठाता है, उसकी तुलना में एक सन्त के दृष्टिकोण में जमीन-आसमान जैसा अन्तर होता है । विराट् विश्व को भगवान की साकार प्रतिमा की तरह देखने और सियाराम मय सब जग जानी की रीति-नीति अपनाने पर व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध की प्रतिक्रिया अत्यन्त सरस और मधुर होती है । इसके विपरीत हिंस्र पशुओं जैसी क्रूरता के आवरण जिनकी दृष्टि और क्रिया के ऊपर छाये रहते हैं उनकी अन्तरंग दुष्टता और बहिरंग भ्रष्टता नारकीय दावानल की तरह धधकती है । ऐसे व्यक्ति को स्वयं तो उस आग में अहर्निशि जलना ही पड़ता है साथ ही समूचे सम्पर्क क्षेत्र को भी उसमें झुलसना पड़ता है । नरक इसी मन:स्थिति का नाम है । स्वर्ग और नरक का चित्रण कलाकारों ने विस्तार पूर्वक कला कल्पना के सहारे किया है । यदि उस प्रतिपादन में से तथ्य ढूँढने हों तो उतना ही निष्कर्ष निकलेगा कि चेतना का समुन्नत स्तर ऊर्ध्व गति के और अध:पतित स्तर अधोगति की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करता है । उन्हीं अनुभूतियों को परिस्थिति के रूप में चित्रित करके प्रगति और अवगति का परिचय सर्व-साधारण को कराया गया है । आवश्यक नहीं कि मरण के उपरान्त ही इन लोकों में निवास किया जाय । जीवित रहते हुए भी, जनसाधारण जैसी सामान्य परिस्थितियों में निर्वाह करते हुए भी यह उभय पक्षीय रसास्वादन सम्भव हो सकता है । निष्कृष्टता अपनाने पर नरक की और उत्कृष्टता अपनाने पर स्वर्ग की अनुभूति कभी भी—किसी को भी—हो सकती है ।

चेतना की प्रगति और अवगति का महत्व समझा ही नहीं गया अस्तु उस सम्बन्ध में सतर्कता बरतने और त्वरितता अपनाने की आवश्यकता भी अनुभव नहीं की गई । यह दुर्भाग्य की बात है कि जिस तथ्य को सर्वोपरि स्थान मिलना चाहिए था—जिसे प्रमुखता की अग्रिम पंक्ति में रखा जाना चाहिए था; उसे अनावश्यक और महत्वहीन समझकर उपेक्षा के गर्त में फेंक दिया गया । इस भूल का अविलम्ब परिमार्जन करने का ही समय है । साधनसम्पन्न परिस्थितियों में भी सामूहिक आत्महत्या की जो उतावली दृष्टिगोचर हो रही है उसके पीछे चेतना के स्तर का अध:पतन ही एकमात्र कारण है । स्थिति बदली जानी चाहिए । अपने को चैतन्य समझने वाले जड़ता से ऊँचा मानने वाले हर मनुष्य का कर्तव्य है कि 'चित्' शक्ति की गरिमा समझें । उसके प्रसाद से मिल सकने वाले अजस्र अनुदानों का स्मरण करें और चेतना का स्तर सुविकसित करने के लिए उन आधारों को अपनाएँ जिन्हें हलके शब्दों में संस्कृति और भारी शब्दों में आध्यात्मिकता कहा जाता है ।

चेतना का उदात्तीकरण

आदिम काल में मनुष्य बन्दरों, वनमानुषों की तरह रहता था और शारीरिक श्रम के आधार पर ही निर्वाह के साधन जुटाता था । तब उसके पास सम्पदा के नाम पर मिट्टी के बर्तन और पत्थरों के उपकरण भर थे । लम्बे पत्तों से काया को ढँकता और ऋतु प्रभाव से अपने को बचाता था । निवास के लिए पेड़ों के झुरमुट और पहाड़ों के गुफा-खन्दक ही उसका आश्रय थे । यह स्थिति चिरकाल तक चली और शरीर रक्षा ही प्रमुख समस्या रही । उसका स्तर आज के वनमानुषों से बढ़ा-चढ़ा न था ।

कालान्तर में इच्छाशक्ति उभरी, प्रगति की कामना जगी तो बुद्धि के कलपुर्जे अधिक सक्रिय हो गए । अग्नि जलाना, पहिए बनाना, कृषि करना, पशुपालन, आवास खड़े करना, आच्छादन वस्त्र बनाना जैसी जीवनोपयोगी कलाएँ सीखीं । भाषा और लिपि का विकास हुआ । आयुध एवं औजार बने । इसी प्रकार क्रमश: भौतिक विज्ञान की प्रगति होती गई । सहकार बढ़ा । कुटुम्ब बने और एक का ज्ञान अनुभव दूसरे को हस्तान्तरित होने लगा । यही प्रक्रिया बढ़ते-बढ़ते आज उस स्थिति तक आ पहुँची है कि मनुष्य विद्युत शक्ति का दैनिक प्रयोजनों में, व्यावसायिक उद्देश्यों में भरपूर प्रयोग कर रहा है । प्रकृति के अनेकों रहस्य उसने खोज लिए हैं । अनेकानेक सुविधा-साधन जुटा लिए हैं और भविष्य में प्रकृति का अधिष्ठाता, सम्पदा का धन कुबेर, शक्ति का इन्द्र बनने की महत्वाकांक्षा सँजोए हुए है । जल थल पर तो उसका अधिकार था ही । अब नभ अन्तरिक्ष पर भी कब्जा जमाना आरम्भ कर दिया है । ससीम मनुष्य यदि विराट ब्रह्माण्ड का अधिपति न बन सके तो इसे विवशता ही कहना चाहिए अन्यथा उसकी महत्वाकांक्षा इतनी बड़ी है जिसकी तुलना में यह विराट ब्रह्माण्ड भी छोटा पड़ता है । अद्यावधि हस्तगत हुई उपलब्धियों तथा भावी सम्भावनाओं की विभूतियाँ क्यों कर हाथ लगीं ? इसका उत्तर देते हुए यही कहना होता है कि यह विज्ञान का चमत्कार है । यदि इस दिशा में प्रगति न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुई होती तो यह किसी भी प्रकार संभव न था कि वनमानुषों की बिरादरी आगे बढ़कर सृष्टि का मुकुट मणि बनने की स्थिति तक जा पहुँचे, आगे बढ़ सके, सम्पदा, सुविधा और साधनों के अम्बार उसके सामने खड़े हो गये ।

भौतिक विज्ञान की जितनी प्रशंसा की जाय, जितनी महिमा बखानी जाय, उतनी ही कम है । पदार्थ प्रकृतितः अनगढ़ और अस्त-व्यस्त था । उसे सुनियोजित मानवी बुद्धि, श्रमशीलता और कुशलता ने ही संभव किया है । विज्ञान पदार्थों के अनुकूलन की विद्या सिखाता है । इसके लिए गतिशील रहा गया तो भविष्य में इस प्रत्यक्ष प्रगति के और भी अधिक आधार हाथ लगेंगे । इतने पर भी यह सब रहेगा एक पक्षीय ही । उससे सुविधा-साधनों के अतिरिक्त और कुछ मिलने वाला नहीं है । शरीर पंच तत्वों का, पदार्थों का बना है । उसे सुविधा प्रदान करने तक ही पदार्थ विज्ञान की सीमा नियत निर्धारित है ।

इतने पर भी यह सब अपूर्ण अधूरा है क्योंकि मानवी सत्ता का एक पक्ष चेतना भी है । चेतना जहाँ अपने प्रभाव से शरीर को जीवित सक्रिय रखती है । वहाँ वह नीतिनिष्ठा, भाव सम्वेदना, धर्म धारणा, आदर्शवादिता से भी भरी पूरी है । मानवी गरिमा उसी की सुसंस्कारिता पर निर्भर है । उसी के संकल्प से संयम बरतते बन पड़ता है । मर्यादा पालन एवं वर्जनाओं का अनुशासन भी उसी की प्रेरणा से निभता है । चरित्रनिष्ठा एवं समाज साधना का निर्वाह उसी के संकेतों पर अवलम्बित है । गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता जिस अन्तःकरण के सम्वेदनशील होने पर निर्भर है, उसे परिष्कृत चेतना के साथ सघन रूप से जुड़ा हुआ समझा जा सकता है । मानव जीवन का विचार पक्ष उसी पर अवलम्बित है । उच्चस्तरीय प्रगति उसी पर निर्भर है । महापुरुषों जैसी महानता उसी क्षेत्र से उद्भूत होती है । व्यक्तित्व का निखार, प्रतिभा का उभार इसी उद्गम से होता है । दृश्य शरीर की तुलना में चेतना का अदृश्य पक्ष सहस्रों गुना अधिक श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ है ।

चेतना यों रहती तो सभी जीवधारियों में है । उसी की उपस्थिति तक जीवन रहता है । उसके विलग होते ही मरण निश्चित है । इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि प्रखर परिष्कृत होने पर अन्तःकरण की भाव सम्वेदना, मस्तिष्क की दूरदर्शी विवेकशीलता और शरीर की तन्मय-तत्परता का विकास इसी चेतना के विकसित होने पर अवलम्बित है । चेतना का उत्कर्ष ही नरपशु को महामानव बनाता है ।

इस ब्रह्माण्ड की संरचना दो भागों में बँटी हुई है । एक जड़ दूसरा चेतन । एक प्रकृति, दूसरा पुरुष । पदार्थ जड़ तो है, पर निष्क्रिय नहीं । क्षुद्र परमाणुओं से लेकर विशाल ब्रह्माण्ड के हर छोटे-बड़े घटक सर्वदा गतिशील रहते हैं । पदार्थ मूलतः अनगढ़ हैं । मिट्टी, पत्थर खनिज, वनस्पति आदि जहाँ, तहाँ जिस-तिस स्थिति में पाए जाते हैं । उन्हें अनुकूल एवं सुन्दर, सुव्यवस्थित मानवी चेतना द्वारा विनिर्मित किया जाता है । चेतना लुहार है, पदार्थ लोहा । दोनों के समन्वय से औजार उपकरण बनते हैं । पदार्थ से चेतना का महत्व अधिक है । बहुमूल्य वायुयान, जलयान, रेल, रेडियो आदि मनुष्य द्वारा ही सोचे-बनाए गए हैं और वही उन्हें संचालित भी करता है । बिना संचालक के स्वयं चालित मशीनें भी नहीं चल सकतीं और न कम्प्यूटर, रोबोट ही काम कर सकते हैं । प्रकृति को भी सचेतन परब्रह्म ने ही बनाया है । अस्तु, यह तथ्य स्पष्ट है कि जड़ से चेतन का मूल्य महत्व असंख्य गुना होना चाहिए । जड़ पदार्थों के सहारे जब अनेकानेक सुख-साधन विनिर्मित हो सकते हैं, तो चेतना की बुद्धिमत्ता एवं भाव सम्वेदना कितना अधिक श्रेय साधन प्रदान कर सकती है, इसे सहज ही समझा जा सकता है ।

भौतिक विज्ञान पदार्थों के अनुकूलन पर आधारित है । उसमें वस्तुओं को इच्छानुरूप स्थिति में बनाने की क्रिया-प्रक्रिया सीखी सिखाई जाती है । दूसरा समानान्तर विज्ञान है चेतना का, उसके परिशोधन, उन्नयन की प्रक्रिया का । इसे अध्यात्म कहते हैं । इसका प्रथम चरण है चिन्तन । विचार पद्धति का सुसन्तुलन सर्वविदित है कि क्रिया-कलापों के मूल में विचारणा ही काम करती है । विचार प्रवाह यदि अनुपयुक्त दिशा में बह रहा है तो उसके सूत्र संचालन पर निर्भर क्रियाकलाप भी हेय स्तर के ही बन पड़ेंगे । हेय कृत्यों का प्रतिफल दुःखद, संकटापन्न एवं अपयश, विरोध विग्रह के रूप में ही सामने आना चाहिए । उस कुचक्र में फँसे मनुष्य खिन्न-विपन्न ही देखे जाते हैं । उनके सम्पर्क में आने वाले अन्य लोग भी पतन के गर्त में गिरते और त्रास सहते हैं । इसके प्रतिकूल जिनके विचार उत्कृष्ट स्तर के हैं उनका कर्तृत्व यशस्वी होता है और अनुकरणीय, अभिनन्दनीय बनता है ।

चिन्तन के उपरान्त चरित्र आता है । विचारणा में, दृष्टिकोण में यदि महानता का समावेश हो तो उसकी प्रतिक्रिया सज्जनता, शालीनता के रूप में परिणित होनी चाहिए । आचारवान लोग नीति-नियमों को मानते हैं, मर्यादाओं में बँधे रहते हैं और वर्जनाओं का उल्लंघन नहीं करते । चरित्र में गुण, कर्म, स्वभाव के सभी पक्ष आते हैं । निज की विनम्रता, संयमशीलता और दूसरों को सम्मान प्रदान करते रहने, मधुरता का पुट लगाते रहने, प्रसन्नता-प्रफुल्लता व्यक्त करने वाली हल्की मुस्कराहट चेहरे पर बनाये रहने पर व्यक्तित्व का स्तर प्रकट होता है । इस चुम्बकत्व से जन साधारण का सहयोग-सद्भाव खिंचता चला आता है । वैसे चरित्रनिष्ठा के आवश्यक अंग समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी के रूप में जाने जाते हैं ।

तीसरा पक्ष व्यवहार का है । जैसा सोचा जाता है वैसा ही व्यक्तित्व बनता है, चरित्र ढलता है । चरित्रवान व्यक्ति अपनी गरिमा के अनुरूप लोकोपयोगी कामों में हाथ डालता है, उदार परमार्थपरायणता का परिचय देता है । मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा के रूप में दूसरों से यथोचित व्यवहार बन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ता है । बोजना ऐसा कुछ कर गुजरने की रहती है जिसका प्रभाव ग्रहण करने वाले हर किसी को ऊँचा उठने, आगे बढ़ने की प्रेरणा मिले ।

आत्मीयता की स्नेह-सम्वेदनाओं से भरा-पूरा उदार सेवा-सहयोग सम्मिश्रित सद्व्यवहार हर किसी से नहीं बन पड़ता । ओछे व्यक्ति तो अहंकार भरी अशिष्ट उजड्डता ही बरतते देखे गए हैं । सज्जनता चरित्रनिष्ठा का ही एक अंग है । नीतिवान मानवी गरिमा का मनुष्य जन्म का मूल्य महत्व समझते हैं । अस्तु, अपना व्यक्तित्व ऐसा बनाए रहते हैं जिससे अन्तरात्मा प्रफुल्लता-प्रसन्नता अनुभव करे और सम्पर्क क्षेत्र के लोग सहायता करते रहें । किसी को किसी भी कारण अँगुली उठाने का अवसर न मिले । शत्रु भी लोहा माने और उसका मूल्यांकन अजात शत्रु के रूप में करे । चरित्र वस्तुत: चिंतन का ही परिणाम है, चिन्तन बीज है । उसमें चरित्र और व्यवहार का खाद पानी लगाने से जीवन कल्पवृक्ष जैसा फलता है, चन्द्रन जैसा महकता है । चिन्तन आमतौर से अचिन्त्य चिन्तन की रंगीली उड़ाने उड़ता और आवारा गर्दी में भटकता देखा गया है । पर जब उसे आदर्शवादिता का अवलम्बन मिलता है तो सही मार्ग पर चलने लगता है । उच्छृंखलता अवरुद्ध होती है और निर्धारित उद्देश्यों के लिए एकनिष्ठ तन्मयता अपनाता है । ऐसों की एक भी विचार तरंग अनगढ़ नहीं होती । न उनमें भटकाव देखा जाता है, न असंयमी स्वच्छन्दता का दौर उभरता है । विचारों का मूल उद्गम अन्त:करण है । आस्थाएँ, भावनाएँ, कामनाएँ जिस अन्त:करण में उत्कृष्ट स्तर की होती हैं, वहाँ विचार तरंगों का उत्पादन भी आदर्शवादी अभिव्यंजनाओं से आपूरित रहता है । अन्त:करण ही है जिसमें संस्कार जड़ जमाए रहते हैं । जहाँ कुसंस्कारों का उन्मूलन करके सुसंस्कारों को आरोपित कर लिया जाता है । वहाँ चिन्तन, चरित्र और व्यवहार के सभी स्तर आदर्शों से भरेपूरे रहते हैं ।

चेतना का उदात्तीकरण जीवन के अन्तरंग और बहिरंग क्षेत्र का परिशोधन-परिष्कार करने की प्रक्रिया जारी रखने पर सहज संभव है । इसके लिए आत्मनिरीक्षण, आत्मसुधार, आत्म निर्माण और आत्मविकास के चार कदम उठाने पड़ते हैं । एकान्त में बैठकर एकाग्र मन से अपने गुण-कर्म-स्वभाव में घुसी हुई अवांछनीयताओं को समझने, पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए । जो अनुपयुक्तता समझ में आए, उसे कूड़े कचरे की तरह बुहार फेंकने का साहस भरा प्रयत्न करना चाहिए । प्रबल इच्छाशक्ति के सामने कोई दुष्प्रवृत्ति टिक नहीं सकती । यह परिशोधन हुआ । यह आवश्यकता है, किन्तु पर्याप्त नहीं । दुष्प्रवृत्तियों के हटाने पर जो स्थान खाली हुआ है, उसे रिक्त नहीं रहने देना चाहिए वरन् उसमें सत्प्रवृत्तियों का आरोपण करना चाहिए । उन्हें स्वभाव का अंग बनाने के लिए, अभ्यास में उतारने के लिए तदनुरूप अनुकरण करने की क्रमबद्ध योजना बनानी चाहिए और उसे कार्यान्वित करते रहने के निश्चय पर आरूढ़ रहना चाहिए ।

'आत्म विकास' का अर्थ है अपने 'स्व' का दायरा बढ़ाना । जिस शरीर परिवार में कामना सँजो रखी है उसे सुविस्तृत करते हुए "आत्मतत् सर्वभूतेषु" की "वसुधैव कुटुम्बकम्" की मान्यता अपनानी चाहिए । इसका तात्पर्य है स्वार्थ को परमार्थ में विकसित करना । विराट् ब्रह्म का विशाल विश्व के रूप में दर्शन करना । लोकसेवा का व्रत लेना और सत्प्रवृत्ति सम्बर्द्धन में जुट जाना ।

इस स्थिति तक पहुँचने के लिए अध्यात्मवादी तत्वदर्शन के अनुरूप अपने श्रद्धा-विश्वास को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढाला जाना चाहिए । इसके लिए स्वाध्याय, सत्संग, सेवा और साधना के चारों आधार जीवनचर्या के अविच्छिन्न अंग बनाए जाने चाहिए । चिन्तन और मनन की प्रक्रिया में अधिकाधिक समय लगाना चाहिए । चिन्तन का प्रयोजन होना चाहिए— 'परिशोधन' और मनन का उद्देश्य रहे— "भावी गतिविधियों को सत्प्रवृत्तियों में सुनियोजित करने की उमंग भरी विचारणा ।"

आध्यात्मिक विकासवाद एवं जीवन्मुक्ति तत्वदर्शन

जीवात्मा का चरम लक्ष्य है उस परमतत्व से तादात्म्य स्थापित करना जिसका कि वह एक अंश है । उसकी संरचना, कार्यपद्धति एवं जीवनचर्या का निर्धारण ही कुछ इस प्रकार हुआ है मानो सृजेता ने विकास की चरमावस्था को प्राप्त करने के लिये ही इस धरती पर भेजा हो । उपनिषदों में जीवनमुक्ति एवं पूर्णता सम्बन्धी जितनी धारणाएँ व्यक्त की गयी हैं, उनसे आध्यात्मिक विकासवाद की एक प्रगतिशील झलक मिलती है । उपनिषद्कार का कथन है कि "मानव की जीवात्मा निरन्तर यह कामना करती रहती है कि वह स्वच्छन्द हो, समग्र बने एवं पूर्णता को प्राप्त करे ।" लघु से महान बनने, बीज रूप से विराट् में विकसित होने की यह परिकल्पना मिथ्या नहीं । इसे दैनन्दिन जीवन के क्रिया-कलापों में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।

विकास के सम्बन्ध में विज्ञान मात्र स्थूल दृष्टि रखते हुए दो ही प्रकार की स्थितियाँ जानता है । एक शारीरिक एवं दूसरे मानसिक विकास की । नृतत्व विज्ञानी एवं अन्यान्य आधुनिक दर्शन के समर्थक इससे इतर कुछ सोचना भी नहीं चाहते । वे कहते हैं कि एक नवजात शिशु जन्म के समय लगभग सात पौण्ड भार लिये होता है । माता के दूध एवं वातावरणजन्य परिस्थितियों से उसका क्रमश: विकास होता है । धीरे-धीरे वह एक विकसित किशोर अथवा युवा लड़की के रूप में विकसित हो एक स्पष्ट रूप ले लेता है । यह शारीरिक विकास है जो प्रत्यक्षत: सबको दिखाई देता है, जिस पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता है एवं जिसके तनिक भी व्यतिक्रम से चिन्ता होने लगती है । मानवी विकास का दूसरा पक्ष मानसिक है—जो परोक्ष है, जिसे चर्मचक्षुओं से देखा नहीं जा सकता, किसी यन्त्र द्वारा जिसकी मॉनीटरिंग नहीं की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जा सकती । बहिरंग की शिक्षा एवं संस्काररूपी विद्या के माध्यम से शिशु में क्रमशः स्वावलम्बन, आत्मविश्वास, सतर्कता, आत्मरक्षा, प्रतिभा, स्व-मूल्यांकन जैसी विशेषताएँ विकसित होने लगती हैं । इस क्षेत्र में विकास की सम्भावनाएँ अनन्त हैं, जबकि शारीरिक विकास एक सीमा में परिबद्ध है । असामान्य मेधा, जीवन संकल्पबल, प्रखरता, अन्वेषण बुद्धि का विकास ही मानस क्षेत्र की उपलब्धियाँ हैं । इस कार्य में मनुष्य का स्वयं का पुरुषार्थ तो सहयोग करता ही है, वातावरण भी इसमें एक महती भूमिका निभाता है । अपवादस्वरूप ही कुछ प्रतिभासम्पन्न ऐसे निकल आते हैं, जो प्रतिकूल परिस्थितियों के होते हुए भी मानसिक दृष्टि से विकसित हुए होते हैं एवं पूर्व जन्म की संचित सम्पदा के उचित दिशा में मोड़ मिलते ही वे प्रगति के परम शिखर पर जा पहुँचते हैं । अल्पायु में भी अतिमेधावान बालकों को 'प्रोडिगी' कहा जाता है व इनकी संख्या भी कम नहीं होती । यह क्यों व कैसे होता है ? इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक अभी मौन हैं एवं उन्हें विलक्षण मानकर संयोगों की शृंखला में बिठा भर देते हैं ।

मानसिक विकास में बहिरंग जगत की परिस्थितियाँ भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं । शिक्षा, सुरुचिपूर्ण संस्कारी वातावरण, स्वाध्याय, सत्संग-सान्निध्य के सहारे अनेकों व्यक्ति प्रतिभासम्पन्न होते देखे जा सकते हैं जहाँ ऐसा वातावरण, नहीं उपलब्ध हो पाता, उल्टे कुरुचि भड़काने वाली, पतन के गर्त में गिराने वाली परिस्थितियों का प्राधान्य होता है, वहाँ कमजोर मनोबल वाले प्रखरता के अभाव में गिरते हैं, अविकसित नर पागलों की श्रेणी में शामिल होते देखे जा सकते हैं ।

शारीरिक एवं मानसिक ये दो ही पक्ष ऐसे हैं जिनके विकास-पराभव की जानकारी विज्ञान जगत को है । उनकी परिभाषाएँ भी इसी परिधि में घूमती नजर आती हैं । डार्विन के विकासवाद के समर्थक, लैमार्क के पक्षधर एवं जाति-प्रजातियों को गम्भीर अध्ययन करने वाले एन्थ्रापॉलाजिस्ट शरीर एवं मन के विकास के इस सीमित परिकर में ही ऊहापोह करते दृष्टिगोचर होते हैं ।

अध्यात्म की विकासवाद की परिभाषा में एक और तीसरा पक्ष भी आता है जो शरीर एवं मन से कहीं और उच्च स्थान लिए हुए है । आत्मिकी के प्रतिपादक इसे आध्यात्मिक विकास कहते हैं, जो मनोआत्मिक विकास क्रम से आरम्भ होकर पूर्णता पर समाप्त होता है । यही जीवात्मा का चरम लक्ष्य भी है, इसी की खोज-प्राप्ति हेतु वह अवतरित भी हुई है । यह आयाम व्यक्ति के 'स्व' का सर्वव्यापी सर्वश्रेष्ठ, असीमित आयाम है जिसमें वेदान्त के प्रतिपादनों के अनुसार व्यष्टि को समष्टि के साथ एकाकार हुआ देखा जा सकता है । इसकी बहिरंग में अभिव्यक्ति, नैतिक एवं सामाजिक विकास के रूप में, सुसंस्कारिता, सहकारिता, पारिवारिकता की भावना के उत्कर्ष के रूप में देखी जा सकती है ।

क्राइस्ट ने इसे परफैक्शन कहा है जो पूर्णता का बोधक है । मेथ्यू (बा. ४८) के अनुसार "तुम इसलिये पूर्ण बनो क्योंकि तुम्हें जन्म देने वाला स्वर्ग स्थित परमपिता भी पूर्ण है ।" बुद्ध ने इसी चरम उद्देश्य की प्राप्ति को आत्मबोध, ज्ञानोदय कहा है । अन्तः में निहित सत्य को जान लेना ही विकास की अन्तिम परिणति है, ऐसा बुद्ध का मत है । वेदान्त के अनुसार ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने पर मनुष्य सदेह जीवन्मुक्त हो जाता है । 'अविद्या लेश' सिद्धान्त का हवाला देते हुए वेदान्त समर्थक कहते हैं कि ज्ञान से अविद्या का आवरण हटते ही मानव पूर्णता को प्राप्त होता है ।

सभी धर्म सम्प्रदाय, पंथ, मतावलम्बी इस पर एक मत हैं कि शारीरिक एवं मानसिक विकास तो उस पूर्णता की प्राप्ति के मध्य की अवस्थाएँ हैं । मानसिक अनुशासन, धार्मिक कर्मकाण्ड मात्र मस्तिष्क रूपी ज्ञानेन्द्रियों पंच तन्मात्राओं के नियमन हेतु बनाई गयी विधि-व्यवस्थाएँ हैं, जो अन्ततः पूर्णता की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होती हैं । मनोसामाजिक, मनोआत्मिक एवं आत्मिक विकास वस्तुतः वे अवस्थाएँ हैं जो जीवात्मा को क्रमशः इस चरम लक्ष्य पर पहुँचाती हैं ।

मनीषियों का मत है कि आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया में अहम् रूपी क्षणिक लेकिन सुखदायी भ्रान्ति से मुक्ति दिलाकर उसे वास्तविक व्यक्तित्व की श्रेणी में पहुँचाने में नैतिक अनुबन्धों एवं आत्मिक अनुशासनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । अहम् का जाला एक प्रकार से भवबन्धन ही है जिनसे मुक्ति पाकर मनुष्य अपने यथार्थवादी रूप को पहचान लेता है । भक्ति-उपासना, जीवन साधना अथवा समाज सेवा की आराधना में से कोई भी मार्ग ऐसा हो सकता है, जिसे अपनाता हुआ मनुष्य आत्मिक विकास के सोपानों पर क्रमशः आगे बढ़ता चला जाए । जो भी क्रिया-कृत्य अपनी अन्तःप्रेरणा को साधना, उपादानों द्वारा सशक्त बनाने के लिए किये जाते हैं, वे ही सच्चे कर्मकाण्ड हैं एवं आध्यात्मिक विकासवाद की प्रक्रिया में उन्हें ऋषि-मनीषियों ने गरिमापूर्ण स्थान भी दिया है ।

भगवान श्री कृष्ण ने पूर्णता की प्राप्ति के इस प्रसंग को गीता के ग्यारहवें अध्याय में इस प्रकार वर्णित किया है ।

मत्कर्म कृन्मत्परमो मद्भक्तः संङ्ग वर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः मामेति पाण्डव ॥

अर्थात्—"हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल मेरे ही लिए सम्पूर्ण कर्मों को करने वाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्ति रहित है, सम्पूर्ण भूत प्राणियों से बैर-भाव से मुक्त है, वह मुझको ही (पूर्णता को ही) प्राप्त होता है ।"

वस्तुतः जीवन रूपी कर्मशाला में मनुष्य को अपनी कायारूपी उच्चस्तरीय प्रयोगशाला को सुनियोजित रूप से संचालित करने के लिये पूर्ण अवसर प्राप्त है । शेष समस्त साधना अनुशासन तो मन के प्रशिक्षण, परिशोधन एवं अग्रगमन की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । इन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गतिशील यन्त्रों को कौन कितनी कुशलतापूर्वक संचालित कर पाता है, इसी पर उसका आध्यात्मिक विकास निर्भर है ।

यह विकास की प्रक्रिया जैव समाज वैज्ञानिकों (सोशियोबायोलॉजिस्ट) एवं विकासवादियों की मान्यता से कितनी भिन्न है ? किस प्रकार मनुष्य को अन्यान्य जीवों से श्रेष्ठ, प्रारम्भ से ही विकसित प्राणी बताती है, इसका निरूपण श्रीमद्भागवत में इस प्रकार हुआ है—

"उस दिव्य परम सत्ता ने अपनी निहित शक्ति के द्वारा अनेक प्रकार के चेतन आकारों को जन्म दिया । जैसे कि पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, रेंगने वाले जीव, कीट, मछली आदि । किन्तु उसे अपने मन में इन आकारों से सन्तोष नहीं हुआ । जब उसने मानव को विनिर्मित कर उसे ब्रह्म को अर्थात् सार्वभौम दिव्य सत्ता को प्राप्त करने की पात्रता से विभूषित किया । अपनी इस कृति को बनाकर ही उसे प्रसन्नता प्राप्त हुई ।"

ऋषिगणों, मनीषियों की प्रज्ञा को मानव और प्रकृति के यथार्थवादी स्वरूप को मात्र अनुमान एवं अटकल से ही जानकर सन्तोष नहीं हुआ । उन्होंने अपने ज्ञान के उत्तरोत्तर विकास की शृंखला को सतत् जारी रखा । 'बृद्धारण्यक उपनिषद्' (१-४-७) के अनुसार—"उन्होंने जब गहराई में प्रवेश किया तो समय की परिधि में आबद्ध ससीम सत्ता के पीछे उन्हें एक असीम शाश्वत वास्तविकता की उपलब्धि हुई । इस प्रकार उन्होंने विशुद्ध चेतना के स्वरूप एवं जीवात्मा के विकास की चरम परिणति को जाना ।"

वस्तुत: विकासवाद की यही अद्वितीय मान्यता भारतीय दर्शन को अन्यान्य प्रतिपादनों से ऊँचा सिद्ध करती हुई आधुनिक मतों का खण्डन करती है । वह जीवात्मा की चेतना के विकास क्रम के रहस्यों का उद्घाटन करती हुई उसे अपने परम लक्ष्य का बोध करती है ताकि वह मायावी भ्रम जंजाल से बचकर मुक्ति पथ पर अग्रसर हो सके ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभूतिवान बनाने वाली विद्या—आत्मिकी

आत्मिकी का स्वरूप और प्रयोजन

इस विश्व ब्रह्माण्ड में दो शक्ति सत्ताएँ आच्छादित हैं । एक जड़, दूसरी चेतन । इन्हीं को प्रकृति और पुरुष भी कहते हैं, स्थूल और सूक्ष्म भी । इन दोनों का पृथक्-पृथक् अस्तित्व और महत्त्व है, पर सुयोग तभी बनता है, जब वे, एक दूसरे की सहायक बनकर संयुक्त शक्ति के रूप में विकसित होतीं और अपने चमत्कार दिखाती हैं ।

उदाहरण के लिए शरीर को ही लिया जाय । काया पंचतत्वों द्वारा विनिर्मित है । अंग-अवयवों में रक्त-माँस, तन्तु-झिल्ली, अस्थि-मज्जा इत्यादि का मिलन एकीकरण है । इसलिए उनसे इच्छानुरूप काम कराया जा सकता है । शरीर तन्त्र की प्रकृति का करामात ही इसे कह सकते हैं । इतने पर भी वह अपूर्ण है, उसके भीतर एक चेतना काम करती है, उसी का अचेतन भाग श्वास-प्रश्वास, निमेष-उन्मेष, आकुचंन-प्रकुंचन, सुषुप्ति-जाग्रति आदि की व्यवस्था बनाती रहती है । उसी का दूसरा पक्ष है—सचेतन । जो सोचता, निर्णय करता और इच्छानुसार कार्य करने का आदेश देकर अनेकानेक क्रियाकृत्य सम्पन्न कराता है ।

जब तक जड़ चेतन का संयोग है, तभी तक प्राणी जीवित रहता है । दोनों के विलग हो जाने पर मृत्यु हो जाती है । मरा हुआ शरीर देखने में यथावत् रहने पर भी सर्वथा निर्जीव हो जाता है । तेजी से सड़ने-गलने लगता है ताकि उसके घटक पृथक्-पृथक् होकर अपनी मूल स्थिति में जा पहुँचें, निर्जीव शरीर बेकार है । शरीर रहित आत्मा अपना अस्तित्व भले ही बनाये रहती हो, पर उसका प्रकट परिचय देने तक की स्थिति में नहीं रहता । मरणोपरान्त अदृश्य प्राण चेतना किस रूप में रहती है ? पुनर्जन्म से पूर्व उसे किस स्थिति में कहाँ रहना पड़ता है ? इसका केवल अनुमान ही लगाया जाता रहता है ।

अभिप्राय इतना भर है कि जड़ और चेतन का समन्वय ही कोई सार्थक स्थिति का निर्माण करता है, अन्यथा इस विशाल मात्रा में बिखरा पड़ा पदार्थ तत्व भी अपनी अस्तव्यस्तता और कुरूपता का ही परिचय देता है । धरती पर ठोस रूप में, जलाशयों में द्रव रूप में और आकाश में वाष्पीभूत स्थिति में पदार्थ सत्ता बेतुके रूप में बिखरी पड़ी रहती है । थल प्रदेश जिसके साथ मनुष्य का सम्पर्क नहीं सधा है वहीं खड्डे-टीले जैसा ही कुछ अनगढ़ देखा-पाया जाता है । वृक्ष वनस्पति वहाँ हैं तो उनकी क्रमबद्धता कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती । जलाशयों में समुद्र सबसे बड़ा है, पर वह इतना गहरा और खारी है कि उसका प्रयोग सर्वसाधारण के लिए किसी निमित्त कर सकना संभव नहीं । आकाश में यों हवा का ही परिचय मिलता है, पर उन गैसों में भी विद्युत, विद्युत्चुम्बकीय, लेसर, एक्सरे जैसी सूर्य द्वारा उत्पादित किरणों की भरमार है । इनका स्वतंत्रतः कोई विशेष उपयोग नहीं । कभी-कभी उस क्षेत्र में भी आँधी-तूफान जैसे उद्दण्ड प्रकरण भी उभरते रहते हैं । मेघ-मालाएँ घुमड़ने और बिजली चमकने जैसे दृश्य; कौतूहलवर्द्धक दृश्य तो सामने आते हैं, पर उनकी शक्ति-सामर्थ्य का ऐसा उपयोग नहीं बनता जिसे सराहा और उपयोगी कहा जा सके । कहीं अतिवृष्टि, कहीं अनावृष्टि । यहाँ तक कि समुद्रों से उठे बादल समुद्र पर ही बरसकर अपने बेतुकेपन का परिचय देते हैं । थल, जल और नभ के क्षेत्र में यदि चेतना का हस्तक्षेप न हुआ होता तो यहाँ अभी भी लगभग वैसा ही दीख पड़ता, जैसा अनादि काल में किसी प्रकार विनिर्मित हुआ था ।

कहने का तात्पर्य यह है कि जड़ और चेतन का संयोग ही सब प्रकार अभीष्ट है । जीवन यात्रा के सुसंचालन तक में चेतना को पदार्थ की और पदार्थ को चेतना की आवश्यकता पड़ती है तभी वे सुन्दर, सुव्यवस्थित और उपयोगी होने का प्रमाण परिचय दे पाते हैं । भूमि को समतल बनाकर घास किस्म की वनस्पतियों को अन्न के रूप में खाद्य का प्रमुख आधार बना देना मनुष्य का ही कौशल है, यहाँ तक कि तापमान को चिन्गारी से लेकर ज्वाला में बदल लेने का श्रेय भी मनुष्य को है । यद्यपि अग्नि एवं बिजली का अस्तित्व अनादि काल से सृष्टि परिकर में विद्यमान था, पर उसका उद्घाटन तो मनुष्य ने ही किया है और उन सबका विविध प्रयोजनों के लिए उपयोग कर सकने का कौशल उसी के पुरुषार्थ ने संभव कर दिखाया है ।

ऊपर कुछ प्रारम्भिक प्रत्यक्षीकरणों और उत्पादनों की चर्चा है, जिनमें यह बताना उद्देश्य है कि प्रकृति के ठोस, द्रव्य और व्याप्त कलेवरों में शक्ति-सामर्थ्य कितनी ही क्यों न हो, पर उनका लाभ लेना मानवीय चेतना के कौशल पर ही निर्भर रहा है । आरम्भिक काल से लेकर अब तक प्रकृति की शक्तियों का रहस्योद्घाटन, सुनियोजन और महत्त्वपूर्ण उपयोग बन पड़ना सम्भव बनाने वाली कुशलता का नाम ही विज्ञान है । इस चमत्कारी उपलब्धि को जड़-चेतन का समन्वय ही कह सकते हैं । इसी के बल पर वह प्रगति सम्भव हुई है, जिसके आधार पर इस धरातल पर सर्वत्र सुख-साधनों के अम्बार खड़े हो गये हैं । उनके सहारे मनुष्य अपने को सर्वश्रेष्ठ, शक्ति सम्पन्न एवं धरातल का अधिष्ठाता बनने का दावा करते देखा जाता है । वह दावा किसी सीमा तक सही भी है । वन्यपशुओं और मनुष्य की तुलनात्मक समीक्षा करने पर सहज ही जाना जा सकता है कि पदार्थ को सुनियोजित करने की क्षमता, जिसे विज्ञान कहते हैं, कितना सशक्त-समर्थ और कितने सुविधाओं से भरापूरा है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पदार्थ की अपनी स्वतंत्र सत्ता है । इसी प्रकार चेतना के भी स्रोत-उद्गम और कार्यक्षेत्र पृथक् हैं । इस पृथकता के रहते हुए भी संसार इतना सुन्दर और इतना सुविधा-साधनों से भरा-पूरा बन सका, इसका श्रेय उस विज्ञान रूपी विधा को ही दिया जा सकता है जिसे पदार्थ से लाभान्वित होने की कुशलता भी कहा जा सकता है । सामान्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य सुखी, समृद्ध है, यह तभी बन पड़ा जब विज्ञान के रहस्यों को उद्घाटित कर उससे लाभ उठाने की प्रक्रिया को अधिकाधिक सफलतापूर्वक सम्पन्न करना सम्भव हुआ ।

इस मोटी जानकारी के उपरान्त एक और भी बड़ी बात विचारणीय रह जाती है कि पदार्थ का उपयोग जानना ही पर्याप्त नहीं, उसका सदुपयोग भी समझा जाना चाहिए । यह विभाजन रेखा मात्र पदार्थ तक ही सीमित नहीं है, वरन् स्वयं चेतना के अपने आपे पर भी लागू होती है । इन दोनों महाशक्तियों का यदि सदुपयोग न बन पड़े तो फिर दूसरा पक्ष दुरुपयोग ही रह जाता है । विज्ञान को शक्ति और साधन उत्पन्न करने का श्रेय तो है, पर वह स्वयं इस स्थिति में नहीं है कि सदुपयोग और दुरुपयोग का अन्तर कर सके । देखा गया है कि तात्कालिक लाभ की संकीर्णता प्राय: ऐसे सघन आवरण से भरीपूरी होती है कि उसे दूरवर्ती परिणामों की सूझ-समझ प्राय: नहीं के बराबर होती है । इसलिए प्रलोभनों, आकर्षण, लिप्साओं की प्रबलता उपलब्ध शक्तियों का दुरुपयोग करने के लिए ही घसीट ले जाती है । जाल में फँसने वाली चिड़िया, मछली का उदाहरण इस संदर्भ में प्राय: दिया जाता रहता है । इसे विज्ञान वैभव को अनर्थ के लिए नियोजित करना भी कह सकते हैं । पतन तात्कालिक लाभ की आतुरता के साथ जुड़ा हुआ है । आमतौर से यही किया और अपनाया जाता है । फलस्वरूप व्यक्ति अपने सुदूर भविष्य को अन्धकारमय बनाता है । त्रास सहता है और आत्मप्रताड़ना के साथ-साथ लोक भर्त्सना का भाजन बनता है । इसकी रोकथाम समाज, शासन द्वारा तो यत्किंचित ही बन पड़ती है । उसे सहज भ्रम में डाला या लुभाया जा सकता है, मात्र एक ही रोकथाम का उपाय है— दूरदर्शिता पर आधारित विवेकशीलता, मानव गरिमा के साथ जुड़ी हुई उत्कृष्टता । इसी को तत्वदर्शन की भाषा में अध्यात्म कहा गया है ।

पदार्थ से भी अधिक शक्तिवान है चेतना । उसी का कौशल और चमत्कार है कि पदार्थ को अनगढ़ से सुगढ़ स्थिति तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त हुई । फिर भी एक आश्चर्य और भी शेष रह जाता है कि विज्ञान की जन्मदात्री होने पर भी यह चेतन अपने आपके सम्बन्ध में भी कम दिग्भ्रान्त नहीं रहती । अपने को भी अपना मकड़जाल बुनकर फँसाने और असाधारण सन्त्रास सहते रहने के लिए बाधित होती रहती है : यह और भी जटिल स्थिति है । दूसरों के सम्बन्ध मे समीक्षा करना सरल पड़ता है । दूसरों के रूप का भला-बुरा वर्णन किया जा सकता है, पर आत्म-समीक्षा कैसे बन पड़े ? अपने प्रति पक्षपात भी रहता है और सर्वोत्तम होने का आग्रह भी । ऐसी दशा में दृष्टिकोण गड़बड़ाता है एवं कुकल्पनाएँ उठती हैं । अपने को सही सिद्ध करने वाले अनेकानेक तर्क साथ देते हैं । बुद्धि का निर्णय कभी तदनुरूप ही होता है । जैसा कि सामान्यतया मानस बन गया है ।

ऐसी दशा में यह कठिनाई भी सामने आती है कि अपना दृष्टिकोण उत्कृष्ट आदर्शवादिता के ढाँचे में कैसे ढले ? व्यवहार में ऐसी शालीनता का समावेश कैसे हो ? जिसे मानवीय गरिमा के उपयुक्त कहा जा सके । जिसके आधार पर चरित्र और व्यवहार ऐसा बन सके, जिससे उपलब्ध साधनों का सदुपयोग बन पड़े । दूसरों के साथ सज्जनता स्तर का शिष्टाचार निभ सके ।

यह ध्यान में रखने योग्य बात एक है कि लोग आदर्शों की बात का मौखिक समर्थन तो अपने बड़प्पन बघारने के लिए करते रहते हैं । वैसे धर्मोपदेश सुनकर उनके प्रति समर्थन भी व्यक्त कर देते हैं, पर मानते और करते वही रहते हैं जो पहले से ही मजबूती के साथ अपनी मान्यताओं में समाविष्ट कर रखा है । आत्म-सुधार के क्षेत्र में यही भारी संकट है । उपदेश, परामर्श, शास्त्र उल्लेख आप्त वचन जब कान, मस्तिष्क तक टकराकर ही बाहर निकल जायँ और उसका प्रभाव अन्तराल की गहराइयों तक न पहुँचे तो चेतना का परिष्कार किस आधार पर बन पड़े ?

इस संदर्भ में एक ही आधार कारगर हो सका है और वह है, आत्म-समीक्षा निष्पक्ष भाव से कर सकने की क्षमता । आत्म-सुधार और आत्म-निर्माण के लिए उगाया गया प्रचण्ड साहस । अपने आपे का सुधार-परिष्कार उस आत्मबल के पक्षधर तत्वदर्शन के माध्यम से ही हो सकता है, जिसे पुरातन भाषा में 'अध्यात्म' कहते हैं । विज्ञान-वैभव का सदुपयोग और आत्म-चेतना का परिष्कार ये दोनों ही प्रयोजन जिस आधार पर सिद्ध हो सकें, उसे एक शब्द में अध्यात्म कहा जा सकता है, उच्चस्तरीय तत्वदर्शन भी ।

लोकव्यवहार में अध्यात्म और विज्ञान की दो पृथक् धाराएँ बन गई हैं । दोनों ने अपने-अपने दुर्ग अलग-अलग खड़े कर लिए हैं । भ्रान्तियाँ दोनों पर ही अपने-अपने ढंग की सवार हैं । वे जिस भी स्थिति में हैं अपने को पूर्ण मान कर चल रहे हैं । जिस प्रकार बँटे हुए आदिम स्तर के कबीले एक दूसरे के प्रति सहयोग और सहानुभूति रखने की आवश्यकता नहीं समझते, उसी प्रकार दोनों वर्ग के सत्ताधारी यह सोच बनाकर चले हैं कि वे अपने आप में पूर्ण हैं ।

वैज्ञानिक क्षेत्रों में अध्यात्म को अन्धविश्वास, कल्पनाओं की उड़ान और प्रतिगामियों का बौद्धिक षड्यन्त्र कहना शुरू कर दिया गया है । धर्म को अफीम की गोली और तत्वदर्शन को भ्रान्तियों की पिटारी ठहराना शुरू कर दिया गया है ।

इस द्वन्द्व मे मनुष्य जाति को असीम क्षति उठानी पड़ रही है । गाड़ी को खींचने वाले दो बैल यदि परस्पर सींग मारने पर उतर आयें तो यात्रा हो नहीं सकेगी । वे बैल भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आहत होकर उस उद्देश्य को चोट पहुँचायेंगे जिसके लिए दोनों गाड़ी में जुते और एक दिशा में चलकर एक लक्ष्य पूरा करने के लिए नियोजित हुए थे । अब समय आ गया है कि दोनों पक्ष एक दूसरे की उपयोगिता व समन्वय की आवश्यकता समझते हुए चिन्तन के अवरुद्ध द्वार खोलें । मानव जाति का भविष्य इसी समन्वय पर टिका हुआ है ।

आत्मिकी: ऐश्वर्यवान बनाने वाली विद्या

चिन्तन को एक प्रचण्ड शक्ति के रूप में प्रतिपादित किया गया है और कहा गया है कि उसे डाइनामाइट अणु विखंडन-रेडियो विकरण से भी अधिक शक्तिशाली चेतन क्षमता माना जाना चाहिए । प्रतिपादनकर्त्ताओं का कहना है कि विचार क्षेत्र के उतार-चढ़ाव ही व्यावहारिक जीवन में उत्थान-पतन की सम्भावनाएँ खड़ी करते हैं । ताप, प्रकाश, शब्द की ध्वनि तरंगों की तरह वे विचारों को भी एक दिव्य ऊर्जा मानते हैं और उसके प्रवाह को ईथर में संव्याप्त सूक्ष्म ध्वनि तरंगों की तरह न केवल चिरस्थायी, वरन् प्रचण्ड शक्तिशाली भी मानते हैं ।

यह शक्ति अपने उत्पादनकर्त्ता को भी प्रभावित करती है । जिसको लक्ष्य रखकर छोड़ी जाती है उस पर भी निशाना साधती है और पीछे अपने प्रभाव से समूचे वातावरण को अनन्तकाल तक प्रभावित किये रहती है । अनगढ़ विचार करते तो सभी हैं और उस ऊर्जा को अस्त-व्यस्त ढंग से कई बार तो अनिष्टकर रीति से अभिचार, अभिशाप एवं साँप की फुसकार की तरह वातावरण को विषाक्त करने के लिए भी बिखेरते रहते हैं । जो भी हो विचार शक्ति को व्यष्टि और समष्टि के उत्थान-पतन में असाधारण भूमिका का होना सुनिश्चित तथ्य है । उस महत्ती क्षमता का सही उपयोग क्या और कैसे हो सकता है ? उसे अवांछनीयता के कुचक्र में पड़कर सर्वनाश करने से कैसे बचाया जा सकता है, इस सुविस्तृत समस्या का समाधान आत्म-विज्ञान के निर्धारणों द्वारा हो सकता है ।

जिन्हें इस विचार-विद्या की जानकारी नहीं वे उस महती उपलब्धि को कौड़ी मोल गँवाते, पछताते, अवांछनीय ढंग में प्रयुक्त करके दुष्परिणामों से सिर धुनते देखे गये हैं । ऐसे ही प्रसंगों को देखकर इस नतीजे पर पहुँचना पड़ता है कि आत्म-चेतना से सम्पन्न मनुष्य को अपने उस अदृश्य, किन्तु महती शक्ति का सदुपयोग करके उन लाभों को उठाना चाहिए जिसे दूरदर्शी मनस्वी उठाते और अपने को, अपने सम्पर्क क्षेत्र को कृत-कृत्य करते रहते हैं ।

आत्मिकी का क्षेत्र प्रयोजन विचार विभा का, प्रवृत्तियों का, सुसंस्कारिता का, उभार सदुपयोग करके सामान्य जीवन को सुखी-समुन्नत बनाने तक ही सीमित नहीं है, किन्तु उससे भी दो कदम आगे बढ़कर उन रहस्यमय परतों में प्रवेश करना भी है, जिन्हें अतीन्द्रिय क्षमता कहा जाता और ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में चमत्कारी वर्णित किया जाता है ।

मन:संस्थान के विशेषज्ञों का कथन है कि मस्तिष्कीय चेतना एक समूचा जादूगर, भानमती का पिटारा है । उसकी रहस्मय परतों का मात्र तेरह प्रतिशत अभी तक जाना जा सका है । इस तेरह प्रतिशत में से मात्र सात प्रतिशत ऐसा है जो औसत आदमी के प्रयोग में आता है । विशिष्ट व्यक्ति तो इससे कुछ अधिक भाग प्रयुक्त कर पाते हैं । निर्वाह तथा लोक-व्यवहार में इतना ही भाग काम में आता है । इससे आगे के रहस्यमय संस्थान वे हैं जिन्हें मन:स्थिति अचेतन, अति चेतन, सुपर चेतन आदि कहते हैं । कुछ समय पहले तक रोगों के अनेकानेक कारण ढूँढ़े और समझे जाते थे, अब नवीनतम शोधें यह कहती हैं कि मस्तिष्क में चलने वाली उथल-पुथल स्नायु तन्तुओं के माध्यम से अपने विद्युतीय प्रभावों को विभिन्न अवयवों में भेजती और रुग्णता के कारण खड़े करती है । निकट भविष्य में रक्त-माँस की जाँच-पड़ताल करने की अपेक्षा मन:क्षेत्र में बैठी हुई कुत्साओं, कुण्ठाओं को समझने और उनका समाधान करके आरोग्य लाभ का सुनिश्चित आधार अपनाया जाया करेगा । रोगों से मुक्ति दिलाने में अब औषधि उपचार की अपेक्षा मानसिक पर्यवेक्षण और निराकरण पर ध्यान केन्द्रित किया जाया करेगा । प्राचीन काल में भी प्रायश्चित उपचार का कारगर प्रचलन था । अगले दिनों उसी प्रक्रिया को पुनर्जीवित किया जाना है । विश्वास किया जाता है कि मानसिक परिशोधन से आधि-व्याधियों के निराकरण का ठोस आधार हस्तगत हो जायेगा ।

मानसिक परिष्कार के लिए जिस चिकित्सा की आवश्यकता है उसका निदान, पथ्य, उपचार सब कुछ अध्यात्म विज्ञान के द्वारा मान्यता प्राप्त सिद्धान्तों पर निर्भर है । अरोग्य एवं दीर्घजीवन की समस्या अब तक किसी भी चिकित्सा पद्धति द्वारा सुलझी नहीं है । एक भी रोग की ऐसी कोई चिकित्सा नहीं ढूँढ़ी जा सकी जो अच्छा करने का विश्वासपूर्वक दावा करती है । अन्धेरे में डेला फेंकने की बात ही चिकित्सकों के हाथ में है और उस भटकाव में रोगी को जिस-तिस के दरवाजे नाक रगड़नी और जेब कटानी पड़ती है । चिकित्सकों की संख्या और औषधियों के नित नये लेबिल बटते रहने पर भी जनस्वास्थ्य का संरक्षण सम्भव नहीं दीखता उलटे नित नये रोगों का बाहुल्य पहले की अपेक्षा और भी अधिक द्रुतगति से बढ़ता चला जा रहा है । समाधान की आशा किरण एक ही है कि अध्यात्म विज्ञान का पुनर्निधारण जन-जन की आरोग्य रक्षा करने और रुग्णता के भयावह आक्रमण से मुक्ति दिलाने में समर्थ हो सकेगा । कुत्साओं और कुण्ठाओं से छुटकारा दिलाने वाली आत्मिकी ही अगले दिनों जनस्वास्थ्य की सुरक्षा वाली चुनौती स्वीकार करेगी और संरक्षण की गारण्टी देगी ।

यह अनैतिक प्रसंग हुआ । इससे अगली परत है उच्च चेतन । इसे अन्तराल का गहनतम स्तर कह सकते हैं । चिन्तन और चरित्र की दृष्टि से पवित्र-प्रतिभा और वरिष्ठता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की दृष्टि से प्रखर व्यक्तित्व की हाँडी उच्च चेतन के चूल्हे पर ही पकती है । महामानव, सिद्ध पुरुष, ऋषि-मनीषी, महाप्रज्ञ और देवदूत स्तर की प्रतिभाएँ इसी महासागर में मणि-मुक्तकों की तरह भरी पाई जाती हैं । चमत्कारी सिद्धियों की चर्चा विवेचना से इतिहास पुराणों के पन्ने भरे पड़े हैं । आध्यात्मिक समर्थता वाले सिद्ध पुरुषों के शाप वरदान फलित होते देखे गये हैं । अतीन्द्रिय क्षमताओं को कभी देवी-देवताओं की अनुकम्पा, भूत-प्रेतों की सहायता तथा जादू विद्या जैसी कोई अविज्ञात कारणों से उत्पन्न हुई चमत्कारी घटना समझा जाता रहा है । प्रत्यक्ष देखी गई विलक्षण सामर्थ्यों का कोई कारण समझ में न आने से भूतकाल में ऐसी ही मान्यताएँ चलती रही हैं और इन विशेषताओं से युक्त मनुष्य को किसी अदृश्य शक्ति का वाहन समझा जाता रहा है, पर जब यथार्थता के निकट आने-जाने पर यह स्पष्ट होता जा रहा है कि विभूतियाँ किसी से उपहार, अनुदान या कृपा-अनुकम्पा की तरह पाई या झपटी गई नहीं होतीं, वरन् यह अन्तराल के उच्च चेतन से उगी उछली होती हैं । पेड़ पर लदे हुए फूलों या फलों की कोई यह कल्पना भी कर सकता है कि वे ऊपर चाँद सितारों द्वारा टपकाये गये होंगे, पर वस्तुतः वैसा कुछ होता नहीं, यह दृश्यमान वृक्ष-वैभव वस्तुतः उसकी जड़ों द्वारा सुविस्तृत भूमि में फैलकर बूँद-बूँद करके खींचा गया होता है । विभूतियों को फल-फूल की तरह सुशोभित देखकर ऊपर से बरसने वाली बात सोचने की अपेक्षा इसी निष्कर्ष पर पहुँचना उपयुक्त है कि वह भीतर से उपार्जित किये गये हैं । अन्तराल का क्षेत्र इतना उपजाऊ है कि इसमें तनिक सा प्रयत्न करने पर बहुमूल्य फसलें उगाई जा सकती हैं । उसमें हीरे-मोती तक बोये, उगाये जा सकते हैं ।

इन्द्रिय शक्ति के आधार पर सुविधाएँ कमाने और प्रसन्नता पाने का अवसर मिलता है । भौतिकी इन्द्रिय शक्ति का ही चमत्कार है । पदार्थ तो अनादि काल से अपनी विशेषताएँ भीतर दबाये बैठा था, पर उसकी रहस्यमय विशेषताएँ तभी प्रकट हुई और काम में आईं जब मनुष्य की प्रतिभा ने इन्द्रिय शक्ति के माध्यम से उन्हें खोजा, कुरेदा और करतलगत करने का प्रयत्न किया । यहाँ इन्द्रिय शक्ति में मस्तिष्कीय क्षमता को भी सम्मिलित करना चाहिए, क्योंकि उसे भी ग्यारहवीं इन्द्रिय माना गया है । प्रकृति एवं पदार्थ में ही मूलतः भौतिक शक्तियों का भाण्डागार है फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उनका वर्तमान स्वरूप एवं उपयोग मनुष्य की प्रतिभा एवं इन्द्रिय शक्ति के माध्यम से प्रकट हुई पुरुषार्थ परायणता का ही प्रतिफल है । इस पर श्रेय देने का प्रसंग आने पर भौतिकी के क्षेत्र में उपलब्ध हुए चमत्कारों को मानवीय प्रतिभा की ही जयमाला पहनानी पड़ती है ।

भौतिकी की तुलना में आत्मिकी का क्षेत्र और भी अधिक उच्चस्तरीय विभूतियों से भरा-पूरा है । परमात्मा जो कर सकता है वह जीवात्मा तुरन्त कर भले ही न सके, पर तत्वतः उन विशेषताओं के अवसर मिलते ही प्रकटीकरण की सम्भावना तो रहती है और वह समय-समय पर इसका परिचय भी देती रहती है । महामानवों, सिद्ध पुरुषों, ऋषियों, देवदूतों की अद्भुत क्षमताएँ समय-समय पर प्रकट होती देखी गई हैं । इन्हें ऋद्धि-सिद्धि कहते हैं । सिद्धियाँ अर्थात् आत्मिकी के आधार पर भौतिकी के क्षेत्र में उगाई पाई गई सम्पदाएँ, सफलताएँ । ऋद्धियाँ अर्थात् आत्म-विज्ञान के माध्यम से अन्तराल को परिष्कृत, बलिष्ठ बनाकर असाधारण व्यक्तित्व को परिचय देने वाली विभूतियाँ ।

शरीरगत क्षमता को इन्द्रिय शक्ति कहते हैं । मस्तिष्क सहित शरीर जो कुछ पुरुषार्थ उपार्जन कर सकता है, वह सब उसी क्षेत्र में आता है । भौतिकी के उपार्जन उत्पादन का माध्यम यही है । इससे ऊपर की परत चेतना क्षेत्र की रहस्यमयी परतों की है । चेतना द्वारा सभ्यता एवं व्यवहार कुशलता के क्षेत्र में सफलताएँ मिलती हैं और साधनों का बाहुल्य बढ़ने से अपने को वैभवशाली एवं प्रतिभाशाली बनने का अवसर मिलता है । अचेतन को परिष्कृत करने पर व्यक्तित्व को सुसंस्कारी बनाया जाता है और सर्व-साधारण की तुलना में भारी भरकम सिद्ध होने, सम्पर्क क्षेत्र एवं वातावरण को प्रभावित करने की प्रखरता उपलब्ध होती है । इन दो क्षेत्रों का अधिकांश सम्बन्ध भौतिक जगत से, प्राणियों पदार्थों से है । इसलिए चेतना के यह दोनों ही पक्ष ब्रह्म जगत से सम्बन्धित माने जाते हैं । उन क्षेत्रों में उपलब्ध हुई सफलताएँ सिद्धि स्तर की कही जाती हैं । उच्च चेतन भौतिकी के साथ बहुत पतले धागे से जुड़ा है । वस्तुतः उनकी घनिष्टता परमात्मसत्ता के साथ है, इसलिए आदान-प्रदान भी उसी क्षेत्र के होते हैं । इस सन्दर्भ में इन्द्रिय शक्ति कम काम करती है, उसमें अतीन्द्रिय क्षमता का ही प्रमुख उपयोग होता है ।

अतीन्द्रिय क्षमता अर्थात् उच्च चेतन की वह विशेषता जो परब्रह्म की समष्टि चेतना के साथ जुड़ती और अदृश्य जगत में प्रवेश करने की, उस क्षेत्र में चल रही जानकारियों की विशिष्टता प्राप्त करती है । इतना ही नहीं उस क्षेत्र के कुशल इन्जीनियरों की तरह बहुत कुछ उलट-पुलट करने की सामर्थ्य भी अर्जित करती है । आत्मिकी के इस पक्ष को अतीन्द्रिय क्षमता के नाम से जाना जा सकता है ।

इन दिनों, दूरदर्शन, दूरश्रवण, भविष्यकथन, विचार संचालन, प्राणप्रहार, सम्मोहन, मानवीय विद्युत उपचार जैसे कितने ही ऐसे प्रसंगों की चर्चा होती रहती है जिनमें मनुष्य में पाई जाने वाली इन्द्रियातीत सामर्थ्य का प्रमाण परिचय प्राप्त होता है । यह आकर्षक विषय है । इन्द्रिय शक्ति के सहारे प्रकृति क्षेत्र की भौतिकी की उपलब्धियाँ हस्तगत की गई हैं । इन्द्रियातीत सामर्थ्य के आधार पर चेतन क्षेत्र की आत्मिकी विभूतियों के उपार्जन का द्वार खुल सकता है । स्पष्ट है कि जब मात्र भौतिकी के बल पर मनुष्य इतना समर्थ सम्पन्न बन सका है तो आत्मिकी में गति होने पर जो सूक्ष्म जगत की चेतनापरक, परब्रह्म सत्ता से सम्बन्धित सामर्थ्यों के साथ सम्बन्ध जुड़ेगा तो अब की अपेक्षा मनुष्य कितना अधिक

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुविकसित, समुन्नत, परिष्कृत विशिष्ट, वरिष्ठ होगा, इसकी आज तो कल्पना ही की जा सकती है । पौराणिक काल के ऋषि-मनीषियों, देवात्माओं की चर्चा भर की जाती रहती है । आत्मिकी के क्षेत्र में यदि भौतिकी जैसा मंथन चल पड़े तो ऐसे अभिनव सूत्र हाथ लग सकेंगे जिनके सहारे मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण सम्भव हो सके ।

आत्मिकी: चेतना को परिष्कृत-प्रखर बनाने वाली फलदायी विद्या

ब्रह्म विद्या के आत्मिकी के दो भाग हैं—एक आस्था पक्ष, दूसरा क्रिया पक्ष । आस्था पक्ष में चिन्तन क्षेत्र को प्रभावित करने वाले समस्त ज्ञान विस्तार को सम्मिलित किया गया है । वेद शास्त्र, उपनिषद्, दर्शन, नीतिशास्त्र आदि इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए रचे गये हैं । पाठ, स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन का, कथा प्रवचनों का, माहात्मय इसी आधार पर बताया गया है कि उस प्रक्रिया के सहारे मानवीय चिन्तन का परिष्कार होता रहे । अवांछनीय पशु-प्रवृत्तियों के कुसंस्कार छुड़ाने में यह ज्ञान साधना साबुन का काम करती है । विकृतियों से छुटकारा मिलता है और विवेकयुक्त दूरदर्शिता का पथ प्रशस्त होता है । प्रज्ञा, भूमा, ऋतम्भरा इसी परिष्कृत चिन्तन का नाम है । 'ज्ञानामुक्ति', 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' जैसी उक्तियों में सद्ज्ञान को अध्यात्म का प्राण माना गया है । वेदान्त दर्शन को तो विशुद्ध रूप से ज्ञान साधना ही कहा जा सकता है ।

इसी सद्ज्ञान संवर्द्धन की बहुमुखी प्रक्रिया को अध्यात्म विज्ञान में 'योग' नाम दिया गया है । योग का अर्थ है जोड़ देना—आत्मा को परमात्मा से । यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं, वरन् शक्ति है । उत्कृष्ट आदर्शवादी आस्थाओं, आकांक्षाओं के रूप में ही उसकी अनुभूति अपने विचार संस्थान में की जा सकती है । आत्म-साक्षात्कार का अर्थ यही है कि अपनी आस्थाएँ परिष्कृत स्तर की देवोपम दीखने लगें ।

अध्यात्म विज्ञान का दूसरा पक्ष क्रियापरक है—इसे 'तप' कहते हैं । आत्म-निर्माण इसका एक चरण है और लोक-कल्याण दूसरा । इन दोनों के लिए जो भी प्रयत्न करने पड़ते है, उनमें अभ्यस्त पशु-प्रवृत्तियों को चोट पहुँचाती है । स्वार्थ साधनों में कमी आती है और परमार्थ प्रयोजनों की सेवा-साधना करते हुए कई तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । स्वार्थ सुविधा में कटौती करके ही परमार्थ की दिशा में कुछ किया जा सकता है । प्रत्यक्षत: यह सांसारिक दृष्टि से घाटे का सौदा है और अभ्यस्त प्रवृत्ति से विपरीत पड़ने के कारण कष्ट, भय भी अनुभव होता है, इन कठिनाइयों को पार करने के लिए शरीर की तितीक्षा का, मन की सादगी का तथा इस मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का सामना करने योग्य आन्तरिक साहसिकता का सहारा लेना पड़ता है । अपने आप को इसी ढाँचे में ढालने के लिए, जितने भी प्रयास किये जाते हैं, वे सब 'तप' की श्रेणी में गिने जाते हैं ।

आत्मिक प्रगति की दिशा से बढ़ने के लिए योग और तप के दोनों कदम बढ़ाते हुए, लेफ्ट राइट की परेड करते हुए गतिशील होना पड़ता है । ज्ञान और विज्ञान की दोनों धाराएँ गंगा-यमुना की तरह जब मिलती हैं, तब प्रभु प्राप्ति का संगम, सुअवसर हाथ में आता है । भिन्न-भिन्न परम्पराओं में अपनी ज्ञान-साधना और कर्मकाण्ड प्रक्रिया को कई तरह से निर्धारित किया है, पर सभी का मूल प्रयोजन समान है । समस्त संसार में प्रचलित अध्यात्म के ज्ञान पक्ष को योग और क्रिया पक्ष को तप की ही संज्ञा दी जा सकती है । गायत्री को योग और यज्ञ को तप के अर्थ में ही प्रयुक्त साधन के रूप में देखा समझा जाना चाहिए ।

आत्मिकी के योगदर्शन को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) आत्मज्ञान, (२) ब्रह्मज्ञान, (३) तत्वज्ञान, (४) सद्ज्ञान ।

आत्मज्ञान वह है—जिसमें जीव का, जीवन का, अन्त:चेतना के उत्थान-पतन का निरूपण किया जाता है और आत्म-चिन्तन, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण एवं आत्म-विकास का सूक्ष्मदर्शी प्रकाशयुक्त मार्ग-दर्शन किया जाता है । दूसरे शब्दों में इसे जीवात्मा की विवेचना भी कह सकते हैं ।

ब्रह्मज्ञान वह है—जिसमें परमात्मा की सम्पूर्ण सत्ता की व्याख्या तो अचिन्त्य नेति-नेति कहकर बौद्धिक असमर्थता प्रकट कर दी गई है, पर मनुष्य जीवन के साथ परमात्मा सत्ता का जितना तालमेल बैठता है, उस पर कई दृष्टियों से प्रकाश डाला जाता है । आत्मा के साथ परमात्मा का मिलन निस्संदेह लोहे और पारस के सम्पर्क से सोना बन जाने वाली किम्वदन्ती सच्चे अर्थों में सार्थक देखी जा सकती है । अमृत और कल्पवृक्ष के लाभ माहात्म्य का जो अलंकारिक वर्णन मिलता है, उसे परमात्मा के सान्निध्य से मिलने वाली भौतिक तथा आत्मिक उपलब्धियों को देखते हुए अक्षरश: सही माना जा सकता है । सिद्धियों का, चमत्कारी अलौकिकताओं का जो विवरण साधना ग्रन्थों में मिलता है, उसे परमात्मा सत्ता के साथ जीवात्मा के सान्निध्य-सम्पर्क की सुनिश्चित प्रतिक्रिया कहा जा सकता है ।

आस्था का तीसरा पक्ष है—तत्वज्ञान इसे, विचार विज्ञान कह सकते हैं । विचारों की प्रचण्ड शक्ति और उनकी प्रतिक्रियाओं से बहुत कम लोग परिचित होते हैं । तथ्य यह है कि हाड़-माँस के पुतले में जितना चेतन चमत्कार देखा जाता है, वह सब विचार वैभव का ही परिणाम है । व्यक्तित्व की उत्कृष्टता, निकृष्टता, मनुष्य की प्रतिभा, वरिष्ठता और सर्वतोमुखी दुर्बलता का मूल्यांकन किसी के विचारों का स्तर देखकर ही किया जा सकता है । सफलता और असफलता के कारणों में साधनों का, परिस्थितियों का नहीं, संकल्प शक्ति और व्यवस्था बुद्धि का ही प्रमुख महत्व रहता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लोग गलत ढंग से सोचते हैं और गलत विचारों को अपनाते हैं । फलतः जीवन का स्वरूप और भविष्य दोनों ही अन्धकार से ढक जाते हैं । मस्तिष्क को जिस तरह सोचने की आदत है, उसका गुण-दोष के आधार पर विवेचन करते हुए मात्र औचित्य को अपनाने की साहसिकता को मनस्विता कहते हैं ।

चौथा पक्ष सद्ज्ञान है । सद्ज्ञान का तात्पर्य है—नीति शास्त्र, व्यवहार कौशल, शिष्टाचार, सदाचार, कर्त्तव्य-पालन, उत्तरदायित्वों का निर्वाह । धर्म इसी को कहते हैं । मनुष्य सामाजिक प्राणी है, उसे एकाकी नहीं, सहजीवन जीना पड़ता है । सहकारिता के बिना, पारस्परिक आदान-प्रदान के बिना न स्थिरता रह सकती है न प्रगति सम्भव हो सकती है । हमें परस्पर मिल-जुलकर ही रहना होता है और सामाजिकता के नियमों का पालन करते हुए, नागरिक उत्तरदायित्वों को निबाहते हुए सज्जनता का जीवन जीना पड़ता है । इस क्षेत्र में जहाँ जितनी उच्छृंखलता बरती जा रही होगी, वहाँ उतनी ही अशान्ति फैलेगी और विपन्नता उत्पन्न होगी । अपने आपके प्रति, स्वजन-सम्बन्धियों के प्रति एवं सर्वसाधारण के प्रति हमारी रीति-नीति, व्यवहार पद्धति क्या हो ? उसकी सही और शालीनता युक्त गतिविधि अपनाने को लोकव्यवहार एवं सद्ज्ञान कहा जाता है ।

अध्यात्म का योग पक्ष इन चारों ज्ञान प्रक्रियाओं के परिष्कार एवं समन्वयपरक आधार पर विनिर्मित होता है, इस पक्ष के पारंगतों को मनीषी, ऋषि, तत्वज्ञानी, ब्रह्मवेत्ता, दृष्टा, आत्मदर्शी आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है । वे अपने में परमात्मा का दर्शन करते हैं । वह सब कुछ प्राप्त करते हैं जो इस संसार में पाने योग्य है ।

आत्मिकी का क्रिया पक्ष जिसे तप कहते हैं—तीन भागों में विभक्त है—(१) आत्म निग्रह के लिए की गई तितीक्षा और तृष्णा का निग्रह-नियंत्रण, (२) परमार्थ प्रयोजनों के लिए सेवा साधना में, त्याग बलिदान में उत्साह और अभ्यास, (३) साधनात्मक कर्मकाण्डों के माध्यम से आत्म-शिक्षण की प्रसुप्त शक्तियों के जागरण की प्रक्रिया ।

आत्मनिग्रह में अस्वाद व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य, मौन सर्दी-गर्मी के ऋतु प्रवाह का सहन, सादगी, मितव्ययता, दिनचर्या निर्धारण और उसका कड़ाई से पालन जैसी शरीर और मन की पुरानी अवांछनीय आदतों पर रोकथान के लिए बरती हुई कड़ाई तप-साधना के तितीक्षा वर्ग में आती है ।

दान, पुण्य, सेवा, सहायता, सामूहिक सत्कर्मों में सहयोग, लोक कल्याण की प्रवृत्तियों में रस लेना और उसके लिए समय, श्रम एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाना । अनीति के विरुद्ध संघर्ष करने में लगने वाली चोटों को सहने के लिए साहस एकत्रित करना । उदारता के कारण अपनी सुविधाओं में कमी के लिए तैयार रहना । इसमें अप्रतिष्ठा एवं सम्बन्धियों के स्वार्थों में कमी आने से उनकी नाराजगी सहने को प्रस्तुत रहना । लोकप्रवाह से विपरीत चलने के कारण उपहार, अपमान, विरोध एवं प्रहार की सम्भावना मानकर चलना और उनका धैर्यपूर्वक सामना करना । इस प्रकार की कष्ट सहिष्णुता तप-साधना का दूसरा चरण है ।

तीसरे तप वर्ग में विभिन्न प्रकार के साधनात्मक कर्मकाण्ड आते हैं । जप, ध्यान, प्राणायाम, देवपूजा, संध्या, अनुष्ठान, पुरश्चरण आदि अनेक सम्प्रदायों में प्रचलित अनेक विधिविधान इसी उपासना वर्ग में आते हैं ।

योग साधना के चार और तप साधना के तीन कुल मिलाकर ये आत्मिकी के सात सोपान हैं । इन्हीं को सप्तलोक, सप्तऋषि, सप्तमहाव्रत कहा गया है । सप्त-दीप, सप्त-समुद्र, सप्त-शिखर, सप्त-रत्न, सप्त-धातु, स्वर-सप्तक, सप्त-सूर्य किरणें, सप्ताह आदि की संगति इन्हीं सात सोपानों से मिलती है । विभिन्न अलंकारों के साथ इन्हीं सात तथ्यों को मनीषियों ने विभिन्न प्रतिपादनों के साथ निरूपित किया है और जनमानस में विभिन्न प्रतिपादनों के साथ प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया है । अध्यात्म के ज्ञान पक्ष और विज्ञान पक्ष को समझने के लिए जो अनेकानेक शास्त्र पढ़ने को और विद्वानों के प्रवचन प्रतिपादन सुनने को मिलते हैं, उनमें सात महा तथ्यों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । यदि उन्हें सही रीति से समझा और अपनाया जा सके तो मनुष्य में देवत्व का अवतरण हो सकना सुनिश्चित है ।

विज्ञान पक्ष की साधना में तपश्चर्या को केन्द्र मानकर चलने वाले विधि-विधानों का उद्देश्य है—प्रसुप्ति से निवृत्ति, मूर्छना से मुक्ति । इसके लिए गर्मी उत्पन्न करनी पड़ती है । गर्मी पाकर प्रसुप्ति से मुक्ति मिलती है । सूर्योदय की वेला निकट आने पर प्राणियों की निद्रा टूटती है और वे जागते, उठते एवं कार्यरत होते हैं । रात्रि में कलियाँ सिकुड़ी पड़ी रहती हैं, पर जैसे ही सूर्य निकलता है, वे हँसने-खिलने लगती हैं । मानवीय सत्ता के अन्तर्गत बहुत कुछ है । अत्युक्ति न समझी जाय तो यह भी कहा जा सकता है कि सब कुछ है किन्तु है वह मूर्छित् इस मूर्छना से जगाने के लिए धूप, आग, बिजली आदि से उत्पन्न बाहरी गर्मी से काम नहीं चलता । उसका प्रभाव भौतिक जगत में ही अपनी हलचल उत्पन्न करके रह जाता है । चेतना पर चढ़ी हुई मूर्छना को हटाने के लिए तप करना पड़ता है । उसके लिए भीतरी गर्मी की आवश्यकता पड़ती है । इसे कैसे उगाया और बढ़ाया जा सकता है ? इसी विज्ञान को अध्यात्म की भाषा में तप कहते हैं ।

मनोविज्ञान इसी का नाम है । निरोध से शक्ति उत्पन्न होती है । खुले मुँह की पतीली में खौलता हुआ पानी भाप बनकर ऊपर उड़ता रहता है और उसके तिरोहित होने में कोई अचम्भे जैसी बात मालूम नहीं पड़ती, पर जब उसी को कड़े ढक्कन में बन्द कर दिया जाय तो फैली हुई भाप उस बर्तन को फाड़कर भयंकर विस्फोट कर सकती है । स्टोव और प्रेशर कुकर फटने से दुर्घटनाएँ इसी निरोध का परिणाम होती हैं । इन्द्रियनिग्रह और मनोनिग्रह का माहात्म्य इसी आधार पर बताया जाता है । ब्रह्मचर्य की महत्ता का रहस्य

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही है कि 'ओजस्' को निम्नगामी अधपतन से रोककर ऊर्ध्वगामी बनाया जाता है । उस शक्ति को गन्दी नाली में बिखेरने की अपेक्षा मस्तिष्कीय चेतना में धारण किया जाता है तो ब्रह्मलोक जगमगाने लगता है । यह निरोध का चमत्कार है ।

तप-साधना का दूसरा पक्ष है—मंथन । समुद्र-मंथन की वह पौराणिक आख्यायिका सर्वविदित है जिसमें देव-दानवों ने मिलकर समुद्र मथा था और चौदह बहुमूल्य रत्न पाये थे । जीवन एक समुद्र है । इसमें इतनी रत्न राशि भरी पड़ी है जिनकी संख्या सीमित नहीं की जा सकती । सिद्धियों और ऋद्धियों की गणना अमुक संख्या में की जाती रहती है, पर वह बालकों की अपनी अनुभूति भर है जिसने जितना खोजा पाया, उसने उतना बताया । समुद्र बहुत विस्तृत है । बच्चे उसमें कितना घुस सके और कितना पा सके इतने भर से यह अनुमान लगाना उचित नहीं कि समुद्र की समग्र सम्पदा इतनी स्वल्प ही है ।

देव-दानवों ने समुद्र मथकर कुछ ही समय में चौदह बहुमूल्य रत्न पाये थे । यह मंथन यदि अधिक समय तक, अधिक गहराई तक जारी रखा जा सके, तो उस आधार पर मिलती रहने वाली उपलब्धियों का कोई अन्त नहीं मिल सकता ।

यह मंथन प्रक्रिया ही तप-साधना के अन्तर्गत किये जाने वाले सरल, संक्षिप्त कर्मकाण्डों द्वारा होती है और इस आधार पर स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से कारण और कारण से अनन्त में प्रवेश करती चली जाती है । आरंभ के छात्रों को जो कृत्य बताये जाते हैं वे उपहासास्पद लगते हैं और यह समझ में नहीं आता कि इतनी स्वल्प-सी शारीरिक, मानसिक हलचलों से इतनी बड़ी उपलब्धियाँ किस प्रकार करतलगत हो सकती हैं ।

हम अपने भूलोक के बारे में ही कुछ जानते हैं । अपने लोक की मोटी उपलब्धियों पर हमारी जीवनचर्या निर्भर है । भोजन, वस्त्र, निवास, विश्राम, उपार्जन, उपभोग विनोद, सुरक्षा, चिकित्सा, यातायात जैसी दैनिक आवश्यकताएँ इन्हीं सामान्य उपलब्धियों के आधार पर मिलती हैं । उन्हीं के सहारे जीवन धारण किये रहना सम्भव होता है । इससे आगे की गहराई में वैज्ञानिक, विद्वान, कलाकार, तत्वदर्शी उतरते हैं और वे उच्चस्तरीय विभूतियाँ प्राप्त करके अपने व्यक्तित्व और क्षेत्र को चमत्कृत करते हैं ।

इससे आगे के लोक और भी हैं । अध्यात्म क्षेत्र में उनके नाम भू, भुवः, स्वः, तपः, महः, जनः, सत्यम् कहे गये हैं । यह आकाश का विभाजन या किन्हीं ग्रह-नक्षत्रों का वर्णन नहीं—लोकों का विवरण है । लोक का अर्थ है—चेतना के स्तर । काम-काजी श्रमिक और सूक्ष्मदर्शी वैज्ञानिक की चेतना का अन्तर और प्रतिफल हम रोज ही देखते हैं । इससे आगे की गहराई में उतरकर, ऊँचाई में उड़कर यदि अन्य चेतना लोकों में प्रवेश किया जा सके तो प्रतीत होगा कि जो प्रत्यक्ष में स्थूल भू लोक में देखा पाया जाता है, इससे कहीं अधिक उच्चस्तरीय भूमिका में विद्यमान अन्य लोकों में भरा पड़ा है । उन्हीं के साथ सम्पर्क बनाने में बरती गई तत्परता को योग साधना एवं तपश्चर्या कहा जाता है ।

इन्हीं दिव्य उपलब्धियों के लिए साधना क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है । साधना कोई जादू-चमत्कार नहीं वरन् विशुद्ध विज्ञान है । इसमें देवी-देवताओं को प्रसन्न करके अमुक वरदान पाने की बात सोची और कही जाती है इस बालबोध में भी कुछ हर्ज नहीं, पर तथ्य दूसरा ही है । मानवीय सत्ता के कण-कण में जो भरा है वह दिव्य है—अद्भुत है और अनन्त है । उसी को प्राप्त करने के लिए आकांक्षा, साहसिकता, सक्रियता और तत्परता को जुटा देना साधना है । साधना यदि सही दिशा में इसी प्रक्रिया को अपनाते हुए की जा सके तो उसकी सिद्धि सुनिश्चित है ।

आत्म-विस्मृति की विडम्बना

सृष्टि की सबसे विलक्षण, अद्भुत तथा सामर्थ्यवान संरचना है—मनुष्य । किसी भी वस्तु का सही स्वरूप और सामर्थ्य अविज्ञात हो तो उससे समुचित लाभ उठाते नहीं बनता । प्रकृति की कितनी ही शक्तिधाराओं का ज्ञान मनुष्य को लाखों वर्ष तक न था । फलस्वरूप उनसे लाभ नहीं मिल सका । आज ही नहीं लाखों वर्ष पूर्व भी वे धूल सादृश्य पदार्थ के गर्भ में विद्यमान थे, जिनसे परमाणु बम जैसे घातक आयुध बनते हैं । वस्तुएँ भी मौजूद थीं जिनसे विमानों, राकेटों, अन्तरिक्ष उपग्रहों का निर्माण होता है । ऊर्जा के प्रचुर पेट्रोलियम भण्डार इसी पृथ्वी के भीतर दबे पड़े थे । पर दीर्घकाल तक जानकारियों का अभाव बना रहा । फलतः उनसे मनुष्य जाति को प्रगति में विशेष सहयोग न मिल सका । जैसे उनकी सामर्थ्य का पता, प्राप्त करने की विधा हाथ लगी, द्रुतगति से प्रगति पथ पर बढ़ चलने का मार्ग प्रशस्त हुआ ।

भौतिक प्रगति के आधारों को ढूँढ़ निकालने वाली मानवीय अन्वेषक बुद्धि की जितनी सराहना, प्रशंसा की जाय, कम ही होगी, पर उससे भी अधिक प्रशंसनीय, अभिनन्दनीय वह दिन होगा, जिस दिन वह अपनी सत्ता के सामर्थ्यों को समझने एवं उन्हें करतलगत करने की विधा को ढूँढ़ निकालेगा इस क्षेत्र में वह उतना ही पिछड़ा है, जितना कि आदिम युग में प्रकृति के सन्दर्भ में था । यह पिछड़ापन ही उसकी अनेकानेक भौतिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं, उलझनों का प्रमुख कारण है । मनुष्य क्या है, इसका सही उत्तर जिस दिन मिलेगा, प्रगति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना होगी । उससे भी बड़ी घटना जितनी कि डायनामाइट, आग तथा परमाणु जैसे भौतिक आविष्कारों की थी ।

मनुष्य के सन्दर्भ में विज्ञान से जो जानकारियाँ मिलीं हैं वह मात्र वर्णनात्मक स्थिति तक हैं । उसकी ज्ञान की जितनी धाराएँ हैं, उन सबको एक जगह एकत्रित कर दिया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय तो भी एक पूर्ण मनुष्य की समग्र व्याख्या करने में समर्थ न हो सकेंगे । सम्बद्ध विषयों के विशेषज्ञों को जितना ज्ञात हुआ है उससे प्रतीत होता है कि वे मनुष्य की पूर्ण सत्ता को समझने तथा उसमें सन्निहित अद्भुत सामर्थ्यों के लाभ उठाने की विधा से अभी करोड़ों मील दूर हैं । मानव की स्थूल आकृति तथा सूक्ष्म प्रकृति का एक नगण्य हिस्सा ही जानकारियों की पकड़ सीमा में आ सका है, जिन्हें जानकर मनुष्य उलझता अधिक है । उसे भटकाव ही हाथ लगता है ।

विज्ञान की विभिन्न धाराओं से खींचे गये रेखाचित्र के रूप में उसका अस्तित्व सामने आया है । मानव शरीर का पोस्टमार्टम करने तथा अध्ययन करने वाले शरीरविज्ञानी उसे एक लाश मानते हैं । इसे रसायनशास्त्री टिश्यू तथा तरल रसायनों के संयोग से बनने वाली संरचना घोषित करते हैं । जीवविज्ञानियों का मत है कि कोशिकाओं तथा पोषक तरल पदार्थों का मनुष्य एक आश्चर्यजनक योग है । मन:शास्त्रियों के अनुसार वह अपने मन की गहराइयों में झाँकने वाला एक चैतन्य प्राणी है जो अनुकूल वातावरण पाकर विकसित होता है । अध्यात्मशास्त्री उसे एक मूलत: सर्वसमर्थ सत्ता घोषित करते हैं, जो अपने ही बन्धनों के कारण दीन-हीन स्थिति में पड़ी रहती है । फलत: अपनी समर्थता का परिचय नहीं दे पाती । उन बन्धनों को तोड़ सकें तो सन्त, सिद्ध, ऋषि, योगी, महापुरुष सब कुछ बनाया जा सकता है ।

कम आश्चर्यजनक बात यह भी नहीं है कि सर्वाधिक विवादास्पद, अविज्ञात सत्ता यदि कोई है तो वह मनुष्य की ही है । मनुष्य के सन्दर्भ में विशेषज्ञों के मत अलग-अलग हैं । एक भौतिकवादी तथा एक अध्यात्मवादी दोनों ही नमक, चीनी, मिर्च के कणों के रंग, स्वाद, रूप का वर्णन एक रूप में ही करेंगे, पर मनुष्य के विषय में ऐसी वैचारिक एकता का सदियों से अभाव रहा है तथा ऐसा प्रतीत होता है कि अभी कुछ समय तक और रहेगा । स्वयं एक यान्त्रिक शरीर विज्ञानी तथा एक जैविक शरीर विज्ञानी दोनों ही मनुष्य की शारीरिक रचना के सम्बन्ध में भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं । मन:शास्त्र मनुष्य की व्याख्या-विवेचन में अपनी ढपली आप बजाता, अपना राग अलग ही निकालता है । भौतिकी की इन विभिन्न धाराओं का विरोधाभास कब तक रहेगा, यह सुनिश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । मनुष्य अपनी सत्ता से कब तक अनभिज्ञ बना रहेगा, कुछ भी कहना सम्भव नहीं ।

ज्ञानयूटनलोव और हेन्सड्रिश जैसे विद्वान मानव-शास्त्रियों का वह मत यथार्थ जान पड़ता है कि "प्रगतिक्रम में अनेकानेक वैज्ञानिकों, रहस्यवादियों, कवियों तथा विचारकों ने आदिकाल से लेकर अब तक अपने ज्ञान अनुभवों का संचित विशाल भण्डार हमारे लिए उपलब्ध कराया है तो भी उनसे हम अपनी सत्ता की परिपूर्ण जानकारी प्राप्त करने में असफल ही रहे हैं । यह सबसे बड़ी विडम्बना है, जिसके कारण ही आकर्षणों की मृग-मरीचिका में मानव भटकता रहता है । फलत: जीवनरूपी गुलशन में शान्ति, सन्तोष आनन्द के पुष्प खिलाने तथा सुरभि आनन्द लेने के स्थान पर उसमें अशान्ति, उद्वेग, असन्तोष, खिन्नता रूपी पौधों का ही बीजारोपण करते और उनकी विषाक्त दुर्गन्ध से अगणित प्रकार से हानि उठाते हैं ।"

मानव शरीर की संरचना एवं उसकी प्रकृति से जुड़े हुए कितने ही प्रश्न ऐसे हैं जिनका कोई सटीक उत्तर विज्ञान नहीं दे सका है । शरीर की आन्तरिक संरचना एवं जटिल क्रिया प्रणाली एवं उनसे उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रियाओं में से अनेक के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है । रासायनिक पदार्थों के अणु जटिल और अस्थायी पेशियों के अवयवों को बनाने के लिए किस प्रकार परस्पर सम्बद्ध होते हैं ? शरीर की कोशिकाएँ क्यों कर संगठित रहतीं और क्यों बागी होकर कैन्सर जैसे असाध्य रोगों को जन्म देती हैं ? नर, नारी शिशु का निर्धारण, क्रोमोसोम के मिलन की आकस्मिक प्रक्रिया का परिणाम है अथवा और कुछ ? अपने आप एक निश्चित प्रकार का क्रोमोसोम ही नारी सेक्स क्रोमोसोम के विशिष्ट क्रोमोसोम से मिलकर कभी पुरुष अथवा कभी मनमाने ढंग से नारी शिशु का निर्माण क्यों करता है ? क्या उसमें मानवीय इच्छाओं, आकांक्षाओं, संकल्पों की भी भूमिका होती है, जो एक निश्चित प्रकार के क्रोमोसोमों को मिलने के लिए बाध्य करते हैं ? शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक विकास की प्रक्रियाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण कौन-कौन से हैं ? जीवित पदार्थों की तरह मनुष्य भी ऊतकों व रसायनों का संयोजन मात्र है अथवा और भी कुछ ? चेतना तथा मस्तिष्क के आपसी सम्बन्धों का स्वरूप क्या है ? मनुष्य मनुष्य के बीच जन्मजात बौद्धिक विशेषताओं में इतनी भिन्नता क्यों दिखायी पड़ती है ? स्नायु तन्त्र के सन्तुलन के लिए कौन से तत्व प्रमुख रूप से जिम्मेदार हैं ? मन:शक्ति तथा आत्मशक्ति इन्द्रियों को किस सीमा तक प्रभावित करती है ? स्थायी सुख-शान्ति एवं सन्तोष के लिए परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं अथवा स्वयं की मन:स्थिति ? मन:स्थिति के निर्धारण में किन तत्वों की प्रमुख भूमिका होती है ? साहस, शौर्य, पराक्रम जैसी मानसिक शक्तियाँ तथा दया, करुणा, उदारता, सहिष्णुता जैसी भावनात्मक विशेषताओं को मनुष्य के भीतर कैसे पैदा किया जा सकता तथा उन्हें कैसे बढ़ाया जा सकता है ? सौन्दर्य बोध, रसानुभूति का केन्द्र बाहर है अथवा भीतर ? स्थूल है अथवा सूक्ष्म ? मनुष्य के पतनोन्मुखी प्रवाह को कैसे रोका एवं मोड़ा जा सकता है ? मनुष्य के जीवन से जुड़े हुए ये प्रश्न ऐसे हैं जिनका हल ढूँढना अत्यावश्यक है । इनकी उपेक्षा का अर्थ होगा—अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी मारना । परमाणु युग से छलाँग लगाकर अन्तरिक्ष युग में प्रवेश करने वाले विज्ञान की विविध धाराएँ भी इन प्रश्नों का सटीक उत्तर नहीं दे सकी हैं । मनुष्य का अपने स्वयं के विषय में ज्ञान अभी प्रारम्भिक स्थिति में है ।

यह सच है कि संसार में थोड़े से ही व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो पेट-प्रजनन के सीमित दायरे से निकलकर मनुष्य एवं समाज से जुड़ी हुई गम्भीर समस्याओं पर गम्भीरता से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचार करते हैं । उनमें से थोड़े से होते हैं जो उनका समाधान ढूँढ़ने के लिए पूरे मनोयोग से जुटते हैं । विचारक, मनीषी, वैज्ञानिक, ऋषि, तत्वदर्शी इसी स्तर के व्यक्ति होते हैं—जो उन समस्याओं की ओर अपना ध्यान लगाते तथा अपनी सामर्थ्यों को खपाते हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती हैं, पर सामान्य व्यक्ति उन्हें महत्त्व नहीं देते, उनके चिन्तन प्रयास की ही परिणति ज्ञान-विज्ञान की धाराओं के रूप में, तत्वज्ञान एवं अध्यात्म के अमृत के रूप में होती है, जिसका लाभ असंख्यों व्यक्ति उठाते हैं ।

सर्वविदित है कि विज्ञान की परिधि बाह्य संसार-प्रकृति जगत तक सीमित है तथा अध्यात्म की चेतना प्रधान है । चेतना अर्थात् सृष्टि का वह संचालक तत्व जिसकी प्रेरणा से जीव-जंतु, पेड़-पादप जीवन प्राप्त करते, हलचल करते तथा प्रकृति का शृंगार सौन्दर्य के रूप में करते हैं । विज्ञान की उपलब्धियों का लाभ उपभोग के साधनों के रूप में मिलता है, जिसके लिए मनुष्य को विविध रूपों में मूल्य चुकाना पड़ता है । पर उपभोग में सदुपयोग की दूरदर्शी दृष्टि का विकास अध्यात्म ज्ञान के बिना सम्भव नहीं है । अध्यात्म अर्थात् चेतना का विज्ञान । अधिक स्पष्ट व्यावहारिक परिभाषा देनी हो तो उसे जीवन दृष्टि के रूप में जाना जा सकता है । ऐसी दृष्टि जो स्वयं के स्वरूप के विषय में ज्ञान रखती है तथा उसके प्रकाश में बाह्य संसार तथा वस्तुओं का सही मूल्यांकन करती हो । संसार में उँगली पर गिनने जितने मनुष्य होंगे जो इस दृष्टि से युक्त है अन्यथा अधिकांश बुद्धिमान, विद्वान, प्रतिभावान होते हुए भी उससे शून्य हैं । यही है वह विष बीज जिससे अगणित मानव समस्याएँ जन्म लेतीं तथा परिपोषित होती रहती हैं । समझदार होते हुए भी उनके मूलभूत कारणों की जड़ न उखाड़ने तथा समाधान के लिए बाहर दौड़ते रहने का परिणाम मनुष्य को अशान्ति, असन्तोष तथा असफलता के रूप में भुगतना पड़ता है ।

प्रख्यात पुस्तक 'मैन दी अननोन' के लेखक तथा नोबेल पुरस्कार विजेता एलेक्सिस केरेल का कहना अक्षरशः सत्य है कि "विश्व के भौतिकवादी सुखों ने मानव मस्तिष्क को अपनी ओर पूरी तरह आकृष्ट कर रखा है । फलस्वरूप मानव आध्यात्मिक जीवन तथा उससे जुड़ी असीम सम्भावनाओं को पूरी तरह भुला बैठा है । वह भौतिक संसार में ही जीता तथा उसका उपभोग करता है । अपनी सत्ता को शरीर एवं मन से अधिक नहीं मानता । यह एक ऐसी भ्रान्ति है, जिसके रहते जीवन के उच्चस्तरीय आयामों में प्रवेश करते नहीं बनता ।"

आत्मविस्मृति के गर्त में पड़े रहने तथा भौतिक संसार को ही सब कुछ मानकर उसमें डूबे रहने में मनुष्य ने गँवाया अधिक, पाया कम है । जो पाया है वे साधन भी उसी के लिए अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं । जड़ की प्रचण्ड शक्ति परमाणु विभीषिकाओं के रूप में मनुष्य के सिर पर मँडरा रही हैं । फूटकर वह कब महाप्रलय के रूप में टूट पड़े, यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता । अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तनावों को बढ़ने, व्यक्तिगत, सामाजिक जीवन में विग्रहों को पनपने का कभी अवसर नहीं आता, यदि उस सच्चाई का ज्ञान रहा होता कि हम सब एक सत्ता के एक परमात्मा की सन्तान हैं, एक ही अभिन्न सत्ता सब में उसी प्रकार क्रीड़ा-कल्लोल कर रही है, जिस तरह एक सूर्य अनेक किरणों के रूप में चमकता दिखायी पड़ता है । आत्मस्वरूप की अनुभूति युग की एक परम आवश्यकता है । ऐसी जिसकी कि उपेक्षा किसी भी हालत में नहीं की जानी चाहिए । असीम सामर्थ्यों से भरी-पूरी मानवीय सत्ता नर-पशु के रूप में विचरती अपनी गरिमा को भूली रहे, इससे बड़ी विडम्बना और क्या होगी ?

अज्ञ रहना अन्धकार में भटकना है

ज्ञान स्वयं एक अनिवर्चनीय आनन्द है । ज्ञानोद्भूत आनन्द की तुलना आत्मानन्द के सिवाय और किसी से नहीं की जा सकती । भौतिक उपभोगों के सुखों और ज्ञान-जन्य आनन्द के बीच दरिद्री तथा श्रीपति जैसा अन्तर है । जिसने एक बार ज्ञान के पवित्र आनन्द का आस्वादन कर लिया, उसके लिये इन्द्रियजन्य आनन्द सदा-सर्वदा के लिये हेय तथा अग्राह्य हो जाता है । जब तक मनुष्य आनन्द के लिये ज्ञानार्जन का मार्ग छोड़कर विषयों तथा इन्द्रियों के संयोग में सुख खोजता रहता है, तब तक वह मरुमरीचिका में प्यास बुझाने का प्रयत्न जैसी ही मूढ़ता करता रहता है । एक बार ज्ञान का रसास्वादन करने पर वह उसी प्रकार परितृप्त हो जाता है, जिस प्रकार कोई प्यासा सुन्दर, स्वच्छ एवं प्रसन्न जलाशय को पाकर हो जाता है । आत्मा की प्यास ज्ञान रूपी अमृत से ही परितृप्त होती है । सारे काम करते रहकर अथवा काम छोड़कर भी, जैसी भी परिस्थिति हो मनुष्य को ज्ञान-लाभ करने का प्रयत्न अवश्य करते रहना चाहिए । मनुष्य का जीवन पाकर जिसने ज्ञान की कतिपय बूँदें भी इकट्ठी न कीं उसने मानो इस रत्न को मिट्टी मोल खो दिया ।

सारे सद्विषयों की परिलीनता एक ही आत्म-ज्ञान के महासागर में पूर्ण होती है । अस्तु, यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य प्रारम्भ से ही सारे विषयों को छोड़कर एकमात्र आध्यात्मिक ज्ञान में ही तल्लीन हो जाये । जिनको इस प्रकार की सुविधा प्राप्त हो उन्हें तो एक क्षण नष्ट किये बिना ही अध्यात्म-ज्ञान की प्राप्ति में लग जाना चाहिए । किन्तु जिनको इस प्रकार की सुविधा प्राप्त न हो उन्हें अपने आवश्यक विषयों के अध्ययन में लगना ही चाहिए । भौतिक विषयों का अनुसरण भी यदि यह विश्वास एवं दृष्टिकोण रखकर पवित्रता एवं निस्पृहता के साथ किया जाये कि इन सारे विषयों का सम्मिलीकरण एक, अनन्त, अगाध एवं परिव्याप्त विषय आत्म-ज्ञान में ही होता है, तो भावना के अनुसार सांसारिक विषयों का भी वही फल बतलाया गया है जो आध्यात्मिक प्रयासों का ।

ज्ञान क्या है ? किसी विषय की पूर्ण एवं व्यवस्थित जानकारी को ज्ञान कहा जाता है । यह जानकारी पूर्ण रूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से प्राप्त होने पर फिर उसका विषय कोई भी क्यों न हो एक आत्म-सन्तोष, एक आत्मभूत आनन्द ही देती है । उदाहरण के लिये राजनीति का ही विषय ले लीजिए । यों तो यह विषय बड़ी ही व्यस्तता, व्यग्रता एवं अशांति का कारण बतलाया गया है और इसमें उलझे हुए अधिकांश लोग अशांत तथा व्यस्त ही दीखते हैं तथापि जब इसका ज्ञान पूर्णता को पहुँच जाता है तब वह आनन्द का हेतु बन जाता है । राजनीति के धुरन्धर दिन और रात में से अपना कोई भी क्षण बेकार नहीं खोते । वे परिश्रम एवं स्वाध्याय द्वारा अपने राजनैतिक ज्ञान को अनुदैनिक बनाये रहते हैं. सम्पूर्ण संसार की राजनीतिक गति-विधियों तथा उसके अनुबन्धित विषयों का आधुनिकतम ज्ञान उपलब्ध किये रहते हैं । इससे उनको एक प्रकार से सारा संसार 'करतलगत आमलक समान' हो जाता है । वे अपने कक्ष में बैठे हुये संसार की सारी गतिविधियाँ, अपने ज्ञान बल पर चलचित्र की भाँति देखा करते हैं । ज्ञान द्वारा प्राप्त यह दिव्य दृष्टि एवं यह आश्चर्यजनक उपलब्धि कितना आनन्द दे सकती है इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता । इस आनन्द की प्रेरणा आत्म-ज्ञान की ओर अग्रसर न करेगी तो क्या इन्द्रिय जन्य भोग सुख की ओर करेगी ? इसी प्रकार संसार का कोई भी विषय क्यों न हो उसका सम्पूर्ण ज्ञान समग्र जानकारी आत्मानन्द का ही हेतु बनती है ।

जहाँ ज्ञान आनन्द का कारण है वहाँ अज्ञान घोर अशान्ति का हेतु माना गया है । अज्ञान अथवा अविद्या एक तो यों ही अन्धकार माना गया है और अन्धकार में ग्रस्त मनुष्य का अशान्त रहना स्वाभाविक ही होता है । फिर जीवन में अजानकारी का दोष कितना अशान्त एवं व्यग्र बना देता है, इसको समझने के लिये यह साधारणसा उदाहरण ही पर्याप्त है ।

जीवन की सबसे आवश्यक, अनिवार्य तथा सामान्य क्रिया 'ठाठ-बाट' मानी गई है । क्रय-विक्रय का समुचित ज्ञान न रखने वाला व्यक्ति बाजारों में अधिकतर ठगा ही जाता है । भावों का पता न रहना, वस्तुओं के गुण-दोषों को न जानना, उनकी उपयोगिता-अनुपयोगिता के सम्बन्ध में अज्ञानता मानो एक ऐसा अपराध है, समाज में जिसे क्षमा नहीं किया जा सकता । दुकानदार उसकी इस त्रुटि का पूरा-पूरा लाभ उठाता है । ऊँचे दामों पर घटिया चीजें भेड़ता है । अपने वाग्जाल में घेरकर अनावश्यक एवम् अनुपयोगी चीजें माथे मढ़ देता है । इस प्रकार जब वह गाँठ के खरे दाम खोकर घटिया एवम् अनुपयोगी चीजें लेकर आता है तब उसको बेवकूफ बनना पड़ता है । जानकार लोगों के उपहास का विषय बनता है । इस प्रकार अपने अज्ञान का ज्ञान होने पर उन्हें कितना असन्तोष तथा अशान्ति होती होगी, इसे तो उस स्थिति का व्यक्ति ही जान सकता है ।

अज्ञान के कारण मनुष्य में आत्म-विश्वास की कमी रहती है । इसलिये या तो वह आवश्यक होने पर भी बहुत से कामों को करने का साहस नहीं करता और यदि डरता-डरता करता भी है तो बहुधा उसमें असफल ही रहा करता है । अज्ञानजन्य सफलता कितने बड़े सन्ताप का कारण होती है, इसे तो वही प्रकट कर सकता है जिसे उन परिस्थितियों का अनुभव होता है ।

अज्ञानी व्यक्ति के लिये यात्रा तो एक भयंकर काम है । मार्ग न जानना, भाड़े का ज्ञान न होना, गाड़ियों का समय एवम् स्वयं स्थान की अजानकारी वे कमियाँ हैं, जिनके कारण बहुत बार तो लोग जेब के पैसे और पास का माल-असबाव खोकर खाली हाथ घर वापिस आते रहते हैं । इस प्रकार के अशिक्षित तथा अजानकार बहुत से व्यक्ति आये दिन स्टेशनों पर इधर से उधर जिस-तिस से गाड़ी तथा भाड़ा को पूछते-भागते देखे जा सकते हैं । अज्ञानी व्यक्ति को संसार में सभी ज्ञानवान् दिखाई देते हैं । उसकी पूछताछ का जो व्यक्ति भी जो उत्तर दे देता है, उसी पर विश्वास कर लेता है और इस प्रकार बहुत बार लोगों के विवाद का कारण बन जाता है, अथवा न जाने कहाँ का कहाँ पहुँच जाता है । इस दुनिया मे सबसे अधिक कष्ट तथा व्यग्रता अज्ञानी व्यक्ति को ही होती है । उसे कदम-कदम पर ऐसे अवसर आते रहते हैं जो उसको शांत अथवा सन्तुलित नहीं रहने देते हैं । अज्ञान का एक बड़ा दण्ड पर-निर्भरता भी है । अशिक्षित अथवा अज्ञानी व्यक्ति को एक पत्र लिखाने-पढ़ाने अथवा संसार का कोई समाचार जानने के लिये दूसरों पर ही निर्भर रहना पड़ता है । वह न तो स्वयं पढ़ सकता है और न ठीक से कोई बात समझ सकता है । कदम-कदम की असफलता एवम् पर-निर्भरता में कितना सन्ताप, अशान्ति एवम् असन्तोष रहता है इसका वर्णन उसके लिये भी सम्भव नहीं जो उसकी आग में जला करता है । अज्ञान का दोष दुर्भाग्य का बहुत प्रबल प्रतिनिधि है । इसे तो हर सम्भव उपाय से मार ही भगाना चाहिए ।

जब संसार की साधारण बातों में अज्ञान-अशांति का इतना बड़ा कारण हो सकता है. तब जीवन आत्मा के और परमात्मा के विषय में उसका अन्धकार कितना भयंकर हो सकता है, इसका अनुमान लगा सकना कठिन है । आत्मा होकर भी अपने को शरीर मानना एक ऐसा अन्य अज्ञान है जो मनुष्य का न केवल लोक अपितु परलोक तक भ्रष्ट कर देता है । अपने को देह मानकर चलते रहने वाले अज्ञानी व्यक्ति ही तो अपनी इन्द्रियों को विषयों द्वारा तृप्त करने में लगे रहकर अपनी आत्मा का नाश किया करते हैं । भोग-विलास की तृष्णा उन्हें मनुष्य से पशु बनाकर रख दिया करती है । वित्तेषणा तथा लोकेषणा की पिशाचिनी उनको कर्म-अकर्म और धर्म-अधर्म की विवेकबुद्धि से वंचित रखकर भवसागर की तरंगों पर उठाती-पटकती रहती है । दिन-रात शरीर सेवा में लगे वे इतने मूढ़ हो जाते हैं कि इसके आगे भी एक आत्मा एवं परमात्मा का वह विषय पड़ा हुआ है, जिसका अन्वेषण ही मानव जीवन का प्रमुख ध्येय है । ऐसे व्यक्ति जल्दी ही देर तक सीमित रहकर आत्मा के साथ-साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर का भी सर्वनाश कर लेते हैं । अनेक तरह के दैहिक तथा मानसिक रोगों के शिकार बनकर अपने जीवन का एक एक क्षण अशांति एवं असन्तोष से भर लिया करते हैं ।

जीवन में अशांति एवं असन्तोष से दूर रहने और एक स्थायी सुख-शांति प्राप्त करने के लिये मनुष्य को अज्ञान के अन्धकार से निकलकर ज्ञान के प्रकाश में आना ही चाहिए । अशांत एवं असन्तुष्ट जीवन असफल तथा पापपूर्ण जीवन माना गया है । ज्ञान का प्रकाश पाते ही मनुष्य की आत्मा चमत्कृत हो उठती है । उसके आगे आशा, विश्वास, उन्नति एवं असफलता के हजारो फूल खिलकर अपनी मोहक मुस्कान से उसे आकर्षित करने और बुलाने लगते हैं, मनुष्य-जीवन पाकर जिसने ज्ञान प्राप्त करने के लिये अपने को प्रयत्न एवं पुरुषार्थ से विरत रखा, उसने मानो जीवन में कुछ किया ही नहीं । अनन्त धनराशि, विपुल वैभव, अपरिमित उन्नतियाँ, यदि इनका उद्देश्य आत्मानन्द की ओर प्रेरित करना नहीं है तो तृष्णा आत्मानन्द की तरह निरर्थक एवं नि:स्सार ही मानी जायेगी । ज्ञान के आलोकाभाव में यह सारी उपलब्धियाँ मनुष्य को गलत रास्ते पर ही डालने में सहायक होती हैं । यह कारण अज्ञान ही तो है कि जीवन की सारी सुख-सुविधाऐं एकत्र होने पर भी अधिकांश धनी लोग अधिकाधिक व्यग्र एवं अशांत रहा करते हैं । ज्ञान का सच्चा रसास्वादन करने वाले विद्वान अथवा महात्मा धन-सम्पत्ति कुछ भी न होने पर भी कितने सुखी, सन्तुष्ट तथा शांत चित्त देखे जाते हैं । ज्ञान का आलोक पाकर उन्हें किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रहती । वे सागर की तरह अपनी गम्भीरता में निमग्न आत्म-तुष्ट रहा करते हैं ।

ज्ञान द्वारा मनुष्य में जिस दिव्य तेजस्विता का समावेश होता है उसकी तुलना में श्रीमन्तों तथा शासकों का तेज भी नगण्य ही माना जाता है । किसी विद्वान्, महात्मा अथवा ज्ञान-गरिमा से अभिभूत व्यक्ति को देखकर सबका मस्तक अनायास ही श्रद्धा से झुक जाया करता है । विद्वान् का आदर-स्वागत बड़े-बड़े श्रीमन्त भी उठकर और आगे बढ़कर किया करते हैं । ज्ञान के धनी विद्वान का सब कालों तथा सब देशों में सदैव ही सच्चा एवं समुचित आदर होता है । उसके वचन आर्ष-वाक्यों की तरह ही माननीय एवं विश्वस्त माने जाते हैं । संसार का सुधार तथा उसको नई दिशा देना विद्वानों का ही अधिकार है । इस तेजस्विता से किस मौलिक आनन्द की उपलब्धि होती होगी—यह तो ज्ञानवान् बनकर ही जाना जा सकता है । संसार का सारा सार एवं सुख एक इस 'ज्ञान' शब्द में सन्निहित हुआ रहता है । इसकी इतनी महत्ता होते हुए भी जो व्यक्ति अज्ञान के अन्धकार से निकल कर ज्ञानालोक में आने का प्रयास नहीं करते उन्हें मूढ़, दुर्भाग्यवान् अथवा पाप-ग्रस्त प्राणी के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? वास्तव में वह मनुष्य सर्वश्रेष्ठ तथा सौभाग्यवान् ही है जो दिनों-दिन ज्ञान की सम्पत्ति संचय करने में लगकर अपने लोक एवं परलोक दोनों को बनाने की बुद्धिमानी कर रहा है ।

जीवन की सर्वश्रेष्ठ विभूति-ज्ञान

ज्ञान को आत्मा का नेत्र कहा गया है । नेत्रविहीन व्यक्ति के लिए सारा संसार अन्धकारमय है । इसी प्रकार ज्ञानविहीन व्यक्ति के लिए इस संसार में जो कुछ उत्कृष्ट है उसे देख सकना असम्भव है । ज्ञान के आधार पर ही धर्म का, कर्त्तव्य का, शुभ-अशुभ का, उचित-अनुचित का विवेक होता है और पाप प्रलोभनों के आकर्षणों के पार यह देख सकना सम्भव होता है कि अन्तत: दूरवर्ती हित किसमें है । अज्ञानी व्यक्ति यह सब जान नहीं पाते । इन्द्रियों की वासना और प्रलोभनों की तृष्णा जीव को मनमाना नाच नचाती रहती हैं और अन्त में उसे पतन के गहरे गर्त में धकेल देती है । इस दुर्दशा से बचाव तभी हो सकता है जब ज्ञान दीपक का प्रकाश हो रहा हो और विवेक के नेत्र खुले हुए हों ।

भौतिक जीवन की सफलता और आत्मिक जीवन की पूर्णता के लिए सबसे प्रथम सोपान ज्ञान की प्राप्ति है । स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन के आधार पर जीवन की गुत्थियों को समझना और उन्हें सुलझाने का मार्ग खोजना सम्भव होता है । इसलिए मनीषियों ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि मनुष्य को ज्ञानवान बनना चाहिए । अत्यन्त आवश्यक कार्यक्रमों में एक कार्यक्रम ज्ञान सम्पादन का भी रहना चाहिए ।

स्कूली शिक्षा 'ज्ञान' की श्रेणी में नहीं आती । वह ज्ञान प्राप्ति के लिए एक साधन मात्र है, क्योंकि भाषा ज्ञान के बिना शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं हो सकता । कठिन अभिव्यक्तियों को समझा नहीं जा सकता । इसलिए शिक्षा की भी आवश्यकता एवं उपयोगिता माननी ही पड़ेगी । ज्ञान का स्तर इससे ऊपर है । स्वाध्याय, सत्संग यह दो ज्ञान प्राप्ति के बाह्य उपाय हैं और चिन्तन, मनन यह आन्तरिक उपाय हैं । इन चारों चरणों से मिलकर सर्वांगपूर्ण ज्ञान साधना बनती है और उसी के आधार पर जीव अपने लक्ष मार्ग की ओर गतिशील होता है ।

भगवान् राम ने जब गुरु वशिष्ठजी से सांसारिक क्लेशों के भवबन्धन से छुटकारे का उपाय पूछा तो उन्होंने यही कहा कि—"यह सब बिना 'ज्ञान' प्राप्ति के सम्भव नहीं । यदि भवसागर से पार होने की इच्छा है तो सबसे प्रथम ज्ञान संचय का प्रयत्न करो ।" योग वाशिष्ठ में इस सम्बन्ध में बहुत बल दिया गया है ।

ज्ञानान्निर्दु:खतामेति ज्ञानादज्ञान संक्षय: ।
ज्ञानदेव परा सिद्धिर्नान्यस्माद्राम वस्तुत: ॥

योगवाशिष्ठ ५ / ८८ / १२

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हे राम, ज्ञान से ही दुःख दूर होते हैं, ज्ञान से अज्ञान का निवारण होता है, ज्ञान से ही परम सिद्धि प्राप्त होती है और किसी उपाय से नहीं ।

ज्ञानवानेव सुखवान्ज्ञानवानेव जीवति ।
ज्ञानवानेव बलवांस्तस्माज्ज्ञान मयोभव ॥

योगवाशिष्ठ ५ ।९२ । ४९

ज्ञानी ही सुखी है, ज्ञानी ही जीवित है, ज्ञानी ही बलवान है, इसलिए ज्ञानी बनना चाहिए ।

यथा दीपः प्रकाशात्मा स्वल्पोवा यदि वा महान् ।
ज्ञानात्मानं तथा विद्यादात्मानं सर्व जन्तुषु ॥

जैसे छोटा या बड़ा दीपक प्रकाशवान ही होता है, वैसे ही सब छोटे बड़े प्राणियों की आत्मा भी ज्ञान रूप ही है ।

ज्ञानमेव परं ब्रह्मज्ञानं बन्धाय चेष्यते ।
ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम् ॥

ज्ञान से ही ब्रह्म प्राप्ति होती है, विपरीत ज्ञान से ही बन्धन बँधाते हैं, इस संसार में जो कुछ है ज्ञानात्मक ही है । ज्ञान से परे कुछ भी नहीं है ।

अस्य देवाधिदेवस्य परस्य परमात्मनः ।
ज्ञानादेव परा सिद्धर्न त्वनुष्ठानदुःखतः ॥

योगवाशिष्ठ ३ । ६ । १

उस परमदेव परमात्मा को ज्ञान द्वारा ही प्राप्त किया जाता है और किसी अनुष्ठान से उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है ।

एकेनैवात्मतेनैष बोधेन स्वेन पूज्यते ।
एतदेव परं ध्यानं पूजैषैव परा स्मृता ॥

योगवाशिष्ठ ६ । ३८ । २५

उस आत्मा की एक ही प्रकार से ज्ञान द्वारा पूजा की जाती है । ध्यान ही उस आत्म देवता का सबसे बड़ा पूजन है ।

अत्रज्ञानमनुष्ठानं नत्वन्यदुपयुज्यते ।

योगवाशिष्ठ ३ । ६ । २

मुक्ति प्राप्त करने के लिए ज्ञान ही एकमात्र उपाय है । दूसरा और कोई नहीं ।

ज्ञानादेव परा सिद्धिर्नत्वनुष्ठान दुःखतः ।

योगवाशिष्ठ ३ । ६ । १

परम सिद्धि ज्ञान से ही प्राप्त होती है और किसी अनुष्ठान से नहीं ।

ज्ञानवानुदितानन्दो न क्वचित्परिमज्जति ।

योगवाशिष्ठ ५ । ९३ । २४

ज्ञानी ही परम आनन्द प्राप्त करता है, वही पार होता है ।

ततो वच्मि महाबाहो यथा ज्ञानेतरा गतिः ।
नास्ति संसारतरणे पाशबन्धनस्य चेतसः ॥

योगवाशिष्ठ ५ । ६७ । २

बन्धन में पड़े हुए तन को मुक्त करने और संसार सागर से तरने के लिए ज्ञान के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है ।

ज्ञानयुक्तिप्लवेनैव संसारब्धिं सुदुस्तरम् ॥
महाधियः समुत्तीर्णा निमेषेण रघूद्वह ॥

योगवाशिष्ठ २ । ११ ।३६

संसार रूपी समुद्र को बुद्धिमान लोग ज्ञान रूपी नौका पर सवार होकर आसानी से पार कर जाते हैं ।

संसारोत्तरणे जन्तो रुपायो ज्ञानमेवहि ।
तपो दानं तथा तीर्थमनुपायाः प्रकीर्तिताः ॥

योगवाशिष्ठ

संसार से पार होने का एकमात्र उपाय ज्ञान ही है । तप, दान, तीर्थ आदि उपाय नहीं ।

दुरुत्तरा याविषदो दुःखकल्लोल संकुलाः ।
तीर्यते प्रज्ञया ताभ्योनानाऽपद्धयो महामते ॥

योगवाशिष्ठ ५ । १२ । २०

विभिन्न प्रकार की कठिन विपत्तियों के समुद्र को ज्ञान द्वारा ही तरा जाता है ।

कलना सर्वजन्तूनां विज्ञानेन शमेन च ।
प्रबुद्धा ब्रह्मतामेत भ्रमतीतरथा जगत् ॥

योगवाशिष्ठ ५ । १३ । ५९

ज्ञान और शम के द्वारा ही प्राणी ब्रह्म रूप हो जाता है । इनके अभाव से वह संसार में भटकता ही रहता है ।

ज्ञान शक्ति की गौरव गरिमा

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को मोह-कलिल से उबारने के लिए, उन्हें युद्ध में प्रवृत्त करने के लिए, उनकी शोकाकुल मनःस्थिति दूर करने के लिए ज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा था—

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।'

'ज्ञान के समान पवित्र तथा पवित्र करने वाला इस संसार में कोई दूसरा नहीं है ।'

इस प्रसंग से जहाँ ज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन होता है, वहीं इसे प्राप्त करने के लिए प्रेरणा भी प्राप्त होती है । वस्तुतः ज्ञान ही वह सम्बल है जिसका आश्रय लेकर मनुष्य-पाषाण काल से क्रमशः समुन्नत होता हुआ, आज विकास की चरम सीमा पर पहुँचा है ।

भौतिक जगत के अनेक विध वैज्ञानिक आविष्कार और अध्यात्म जगत की अनेकानेक उपलब्धियाँ ज्ञान द्वारा ही प्राप्तव्य होती हैं । इसके अभाव में कुछ कहने लायक अर्जित करने को कौन कहे, सामान्य जीवन-क्रम भी स्थिर कर पाना कठिन होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के कष्टों से मुक्ति पाना ज्ञान के द्वारा ही सम्भव हो पाता है—

आधयो व्याधयश्चैव द्वय दुःखस्य कारणम् ।
तन्निवृत्तिःसुखं विद्यात् तद्भयो मोक्ष उच्यते ।।

—योग वाशिष्ठ

आधियाँ (मानसिक रोग) और व्याधियाँ (शारीरिक रोग) यह दो ही व्यक्ति के लिए दुःख के कारण बनते हैं । इनकी निवृत्ति ज्ञान द्वारा होती है । इस दुःख निवृत्ति का नाम ही मोक्ष है । संसार में व्यक्ति केवल अपनी अज्ञानता से ही कष्ट पाता है और कुमार्गगामी बन जाता है । महाभारतकार ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

एकः शत्रुर्न द्वितीयोऽस्ति शत्रुरज्ञान तुल्यः
पुरुषस्य राजन् ।
येनावृतः कुरुते सम्प्रयुक्तो, घोराणि कर्माणि
सुदारुणानि ।।

—महा.शान्तिपर्व

इस संसार में पुरुष का एक ही शत्रु है—अज्ञान । इसके अतिरिक्त उसका अन्य कोई शत्रु नहीं है । इसी अज्ञान से विमोहित होकर व्यक्ति अनेकानेक कुकर्मों में प्रवृत्त होता रहता है ।

ज्ञानी पुरुष को किसी प्रकार का कष्ट नहीं उठाना पड़ता—

प्राज्ञं विज्ञातं विज्ञेयं सम्यग् दर्शनमादयः ।
न दहन्ति वनं वर्षासिक्तमग्नि शिखा इव ।।

—योग वाशिष्ठ

जिसने जानने योग्य को जान लिया और विवेक दृष्टि प्राप्त कर ली, उस ज्ञानी व्यक्ति को कष्ट (शरीर और मन के) उसी प्रकार नहीं दुःखी कर पाते, जिस प्रकार वर्षा से भींगे जंगल को अग्नि नहीं जला पाती । सद्ज्ञान प्राप्त कर पाना सर्वोपरि उपलब्धि होती है, क्योंकि यही सुख-शान्ति का कारण होता है—

पाताले भूतले स्वर्गे सुखऐश्वर्यमेव वा ।
न तत्पश्यामि यन्नाम पाण्डित्यादतिरिच्यते ।।

स्कन्द पुराण ६ । १४३ । ३

पृथ्वी लोक, पाताल लोक और स्वर्ग लोक में पाण्डित्य (ज्ञान) से बढ़कर कोई भी सुख या ऐश्वर्य नहीं दिखाई पड़ता है । ज्ञान ही सुख ऐश्वर्य आदि का कारण होता है ।

ज्ञानी-मनुष्य को, अन्य सांसारिकता के बन्धनों से जकड़े, दुःख-तकलीफ सहते, रोते-कलपते मनुष्य, अत्यधिक छोटे-तुच्छ या क्षुद्र परिलक्षित होते हैं—

प्रज्ञा प्रासादमारुह्याशोच्यः शोचतो जनान् ।
तमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोनुपश्यति ।।

प्रज्ञा प्राप्त विवेकवान् योगी, संसार में शोकाकुल मनुष्यों को उसी प्रकार देखता है, जैसे पहाड़ की चोटी पर खड़ा मनुष्य पृथ्वी पर नीचे खड़े हुए मनुष्यों को देखता है । उन ज्ञानी व्यक्ति की स्थिति का वर्णन उपनिषद्कार के शब्दों में—

'विशोक आनन्दमयो विपश्चित्-स्वर्यं कुतश्चिन्न । विज्ञ (ज्ञानी) व्यक्ति शोकरहित होकर आनन्दपूर्वक रहते हैं, वे किसी से भी नहीं डरते ।

'ज्ञान' का गुणगान जितना भी किया जाय वह कम ही होगा इसके विपरीत अज्ञान की अधिकाधिक भर्त्सना भी कम ही होगी । 'ज्ञान' में विकास की जहाँ समग्र सम्भावनाएँ विद्यमान हैं 'अज्ञान' में वहीं पतन की पराकाष्ठा भी है ! इस तथ्य को समझकर 'ज्ञान' प्राप्ति के मार्ग पर ही नित्य-निरन्तर गतिशील होना ही श्रेयष्कर होगा । यही मानव-जीवन के सच्चे लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग का प्रदर्शक कहा जा सकता है ।

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं

गुरुनिष्ठ, जबाला के पुत्र सत्यकाम ब्रह्म को जानने की इच्छा से महर्षि हारिद्रुमत के पास गये । गुरुजन तब शिष्य की श्रद्धा की परीक्षा लिया करते थे । श्रद्धावान् शिष्य ही ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । अतः उनकी यह परीक्षा लेने के उपरान्त ही उन्हें विशद-ज्ञान दिया जाता था । महर्षि ने भी वही किया । सत्यकाम को ४ सौ अत्यन्त कृश गायें सौंपी गईं और उनकी संख्या एक हजार न होने तक उसे वापस न लौटने की आज्ञा कर दी गई । सत्यकाम गायों की सेवा में तत्पर हुये । उनकी अटूट श्रद्धा के कारण ही उन्हें वृषभ, अग्नि, हंस तथा मद्गु नामक जलमुर्ग पक्षी के द्वारा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त हो गया ।

छान्दोग्य उपनिषद् की इस कथा में उपनिषद्कार ने श्रद्धा को ही ब्रह्म-ज्ञान की पृष्ठभूमिका सिद्ध की है । साधना के क्षेत्र में जो अनेक विघ्न व बाधाएँ आती हैं, उनसे बचाने के लिए श्रद्धा अनिवार्य है । ब्रह्म-ज्ञान की पूर्णता तक पहुँचने के लिए जिज्ञासु के अन्तःकरण में तरह-तरह की शंकाएँ उठा करती हैं, वह कभी ब्रह्म की ओर, कभी माया की ओर खिंचता रहता है । इनमें मायावी तत्व, सांसारिक भोग वासनाओं में ऐसी आकर्षक शक्ति भरी होती है कि वह एक क्षण में मनुष्य को साधन-विरत कर देती है । इनसे बचाने का एकमात्र पाथेय मनुष्य की आन्तरिक श्रद्धा है । हृदय में श्रद्धा और मन में विश्वास हो तो अनेक कठिनाइयों के होते भी मनुष्य अपने जीवन लक्ष्य की ओर बढ़ता हुआ चला जायगा । श्रद्धा मनुष्य में दृढ़-निश्चय शक्ति पैदा करती है, जिससे वह उस कंटकाकीर्ण पथ को प्रसन्नतापूर्वक पार कर लेता है, साधारण व्यक्ति जिस पर चलने से भी डरते, कतराते और दूर भागते हैं । इसलिए श्रद्धा के द्वारा ही आध्यात्मिक जीवन का श्रीगणेश माना जाता है ।

श्रद्धा से यद्यपि निश्चयात्मक बुद्धि का संचार होता है, किन्तु वह बुद्धि से भिन्न तत्व है । बुद्धि सांसारिक, सामाजिक एवं व्यावहारिक जीवन की शक्ति है, जबकि श्रद्धा आत्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और परमात्मा के असीमत्व को बाँधने और पकड़ने वाली प्रचण्ड क्षमता है । अतः वह बुद्धि की अपेक्षा अधिक सत्-प्रवृत और जाग्रत है । श्रद्धा एक प्रकार की आत्मा के सूक्ष्म अन्तराल से प्रस्फुटित होने वाली आनन्दपूर्ण कृतज्ञता है जो निराश हृदय को सान्त्वना, अवलम्ब एवं जीवन देती है । प्रेम का क्षेत्र एकाकी है, इसलिए उसका विस्तार श्रद्धा की अपेक्षा कम है । श्रद्धा सर्वात्मा की अनुभूति कराने वाली शक्ति का नाम है । इसमें आत्म-समर्पण का भाव है, इसलिए वह अन्य सभी सद्भावनाओं से श्रेष्ठतम है । श्रद्धा परमात्मा के प्रेम का प्रतीक है ।

संत विनोबा ने कहा है—"सद्विचार पर बुद्धि रखने का नाम ही श्रद्धा है । यही श्रद्धा मनुष्य को शक्ति, प्रेरणा एवं आध्यात्मिक प्रकाश देती है और मनुष्य जीवन को सार्थक बनाती है ।" महात्मा गाँधी जी के विचार में "श्रद्धा का अर्थ है आत्म-विश्वास और आत्म-विश्वास का अर्थ है ईश्वर पर विश्वास ।" इस तरह का विश्वास मनुष्य जीवन में सदैव अपेक्षित है" क्योंकि व्यक्ति की यदि 'अहं' भावना का नाश नहीं होता तो उसकी अन्तर्मुखी दृष्टि भी जाग्रत नहीं होती । केवल बाह्य पदार्थों में सुख अनुभव करने और उनमें ही अपना अधिकार प्रदर्शित करते रहने से मनुष्य की बुद्धि पूर्णतया सांसारिक बन जाती है । श्रद्धा के द्वारा विनयशीलता आती है, नम्रता का उदय होता है । परमात्मा को प्राप्त करने की यह आवश्यक शर्त है कि मनुष्य अपने आपको बिलकुल छोटा अहंकार-विहीन बना ले । जब तक मनुष्य की यह आन्तरिक वृत्ति जागती नहीं तब तक उसे विषय-विकारों से निवृत्ति भी नहीं मिलती । श्रद्धा के द्वारा मनुष्य में भक्ति-भाव आता है, वह अपने आपको परमात्मा के हाथों सौंपकर हलकापन अनुभव करता है इससे उसकी आध्यात्मिक दिशा सरल एवं बोधगम्य बनती है और मनुष्य तेजी से जीवन सार्थकता की ओर बढ़ता चला जाता है ।

लोग समझते हैं कि परमात्मा की कृपा जब तक नहीं होती, तब तक ईश्वरीय-ज्ञान का अभ्युदय नहीं होता, किन्तु बात ऐसी नहीं है । परमात्मा की कृपा सब पर समान है । मनुष्य यदि उसकी कृपा से वंचित है तो इसका मूल कारण उसका अपना ही दर्प व अभिमान है । जो मनुष्य अपने अन्तःकरण को शुद्ध बनाकर श्रद्धानुरत कर लेते हैं, वे दिव्य ज्ञान या परमात्मा की कृपा के अधिकारी बन जाते हैं । मन और इन्द्रियों का संयम श्रद्धा से ही होता है, श्रद्धा से ही आत्म-ज्ञान की तत्परता आती है । गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है—

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥

(गीता ४।३९)

अर्थात्—साधन परायण, इन्द्रियों को नियंत्रण में रखने वाले, श्रद्धावान् व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त करते हैं । इस प्रकार ज्ञान प्राप्त व्यक्ति ही परमात्मा को प्राप्त करते हैं ।

श्रद्धा, क्षणिक भावुकता या आवेश का नाम नहीं है, वरन् यह साधना की कठिनाइयों को झेलने की कसौटी है । आवेशपूर्ण श्रद्धा से जीवन में कोई विशेष लाभ नहीं होता, किन्तु जो लोग दृढ़तापूर्वक साधन की कठिनाइयों को सहन करते रहते हैं उनकी श्रद्धा और भी तेजस्वी बनती है और मन पर तथा इन्द्रियों पर संयम करना आसान हो जाता है ।

'हम हैं' और 'हमें सुखपूर्वक, भोगपूर्वक जीवित बने रहना चाहिए' जब तक मनुष्य इतने ही घेरे में पड़ा रहता है, तब तक उसे केवल भौतिक वस्तुओं का ही ज्ञान रहता है, इसी को ही वह सब कुछ मानकर दिन-रात इसी प्रयोग में लगा रहता है, किन्तु मनुष्य जब अपने आपको घुलाकर अपने सुखों को दूसरों पर ढाल देना चाहता है तो उसका आत्म-तत्व जाग्रत होता है । आत्मा और "मैं शरीर हूँ" का भेद प्राप्त होने पर मनुष्य की विचार प्रणाली में परिवर्तन आता है, तब वह सोचता है मैं क्या हूँ, मेरी उत्पत्ति का कारण क्या है ? उद्देश्य क्या हूँ ? इन प्रश्नों की गहराइयों में बढ़ते हुये मनुष्य को एक विश्वास प्राप्त होता है कि सचमुच उसका अपना अस्तित्व इस संसार में कुछ भी नहीं है । सम्पूर्ण जगत की तुलना में वह मिट्टी के एक कण से भी बहुत छोटा है । इस तरह के आत्मज्ञान का आभास होने पर आत्मा के विषय में वह दृढ़ हो जाता है और इस तरह ईश्वर के प्रति विश्वास दृढ़ हो जाता है । श्रद्धेय के प्रति अपनी श्रद्धा का विकास करने से उसे आत्म-विषयों में और भी अधिक आनन्द की अनुभूति होने लगती है । फलस्वरूप श्रद्धा से ही उस मनुष्य के जीवन में सुख का विस्तार होता है और परमात्मा की प्राप्ति में पड़ने वाले विघ्नों को, घेरों को तोड़ते हुये जीवन उद्देश्य की ओर बढ़ते रहने का साहस जाग जाता है । इस स्थिति में पहुँचने के उपरान्त आध्यात्मिक प्रगति में बाधाएँ आते हुए भी वह मन्द या शिथिल नहीं होती । आगे बढ़ने का उत्साह सदैव ही बना रहता है ।

भोगवादी व्यक्ति जिस तरह भोग की लालसा में अनुचित-उचित का विचार नहीं करता और उसी में सुख का अनुभव करता है, उसी तरह सदाचारी व्यक्ति भी अपने चारों ओर प्रसन्नता देखना चाहता है । अपनी प्रसन्नता का निश्चय श्रद्धा द्वारा ही होता है, क्योंकि अपनी यथार्थ शक्ति और सामर्थ्य का बोध श्रद्धा द्वारा ही होता है । भले ही उन अभूतपूर्व परिणामों की तत्काल उपलब्धि न हो, किन्तु श्रद्धा के साथ जो आशा का अविचल सम्बन्ध है, उससे मनोभूमि की निराशा तथा दुःखों का अन्त हो जाता है । ऊपर से देखने में दूसरे लोग भले ही यह अनुमान करें कि उसका जीवन शुष्क, रसहीन है, किन्तु उसके अन्तर में जो आनन्द का स्रोत उमड़ता रहता है उसे दूसरा समझ नहीं पाता, पर वह व्यक्ति अपना आन्तरिक आनन्द की स्थिति से ही अपने चारों ओर प्रसन्नता का अनुभव कर लेता है ।

श्रद्धा इस तरह मनुष्य के व्यक्तिगत उत्थान का ही साधन नहीं, वरन् उससे औरों को भी आदर्श की प्रेरणा और मंगल कार्यों में उत्साह मिलता है, क्योंकि मनुष्य अपने हृदय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का परिचय श्रद्धा द्वारा ही तो देता है । श्रद्धावान् व्यक्तियों के आचरण में पवित्रता होती है, आत्मीयता, सौहार्द्र एवं सौजन्यता होती है । इन सद्गुणों के रहते हुए चारुतायुक्त वातावरण का निर्मित होना स्वाभाविक ही है । आन्तरिक श्रद्धा को धारण करने वाले मनुष्यों की सान्निध्यता में सभी को सुख मिलता है क्योंकि वहाँ किसी के लिए दुर्भावना नहीं होती ।

श्रद्धा के अनुसंगी विचारों का संचार जब सामाजिक जीवन में करते हैं तो उससे स्वस्थ वातावरण बनता है । इसे समाज की आन्तरिक भूख समझनी चाहिए । ऐसे व्यक्तियों के बैठने, चलने, फिरने, हँसने, बोलने तथा व्यवहार करने से ही उनके शील एवं प्रतिभा का परिचय मिलता है फलतः दूसरे भी उनका अनुकरण करते हैं और दैवी-सम्पदाओं वाले समाज का विकास होता है ।

आत्म-ज्ञान से निरुत्साहित इस युग में मनुष्य के अज्ञान का कारण मनुष्य की अश्रद्धा ही है, जिसके कारण वह मोह-बन्धनों में भटकता फिर रहा है । उसका व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक जीवन दुःखमय होने का कारण भी यही है । स्वस्थ समाज की रचना के लिये, आत्म-ज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान की नितान्त आवश्यकता की पूर्ति के लिए श्रद्धा ही साधन है । इसी से सच्चा ज्ञान समृद्ध होता है तथा लोक-मंगल की भावनाओं का विस्तार होता है ।

'मैं' के जानने में ही ज्ञान की पूर्णता है

मेरा मकान, मेरा बैल, मेरा खेत, मेरा जूता इस तरह मेरा सब कुछ है । इन जड़ पदार्थों से ऊपर उठकर फिर आगे बढ़ें तब अपने कुटुम्बों के बारे में भी मेरा बेटा, मेरा भाई, मेरा पिता, मेरी बहिन आदि के रूप में 'मैं' प्रयुक्त होता है । ये सम्बन्ध सांसारिक हैं । 'मैं' को स्वयं अपने आप को भी कहें तो ठीक नहीं है । क्योंकि शरीर का अंग स्वयं 'मैं' नहीं है । वह 'मैं' फिर कहता है मेरा हाथ, मेरा पैर, मेरी नाक, मेरी जीभ, मेरा शरीर । तब प्रश्न अब जटिलता की ओर अग्रसर होता है । 'मैं' क्या है ? इसकी सूक्ष्मता पर ध्यान करने पर फिर 'आत्मा' 'प्राण' आते हैं । उनके साथ भी मेरी आत्मा, मेरा प्राण का ही उपयोग होता है । जब यह आत्मा भी स्वयं 'मैं' नहीं है, तब 'मैं' क्या है ? यह मानव, शरीर, संसार आदि 'मैं' नहीं है । इन सबके अन्दर से बोलने वाली कोई सत्ता है । यही सिद्ध होता है । जो 'मैं' है । उस सर्वसत्ता 'मैं' के साथ सम्बन्धित तथा अटूट सम्बन्ध इस जगत का है, जो उस 'मैं' से अलग नहीं किया जा सकता ।

'मैं' के साथ मेरा है । जो घमण्ड के साथ कहता है, कि मैंने ऐसा किया, ऐसा कर दूँगा । इस नश्वर शरीर को शोभा नहीं देता । इस शरीर का वास्तविक मालिक परमात्म सत्ता है । हम दुनिया को जानने की कोशिश करते हैं । उनके साथ सम्बन्ध कायम करने के लिए लालायित हैं, किन्तु स्वयं अपने को जानने में तथा अपने साथ ही सम्बन्ध के लिए कितने आलसी हैं । यही हमारा अज्ञान है ।

इस अज्ञानता की कोठरी में पड़े हमें सारा संसार भी नहीं दीख पायेगा । आँखें स्वयं देखती नहीं हैं । वे उतनी सामर्थवान नहीं है कि बिना प्रकाश की सहायता के दुनिया को देखें । प्रकाश का और आँखों का सम्बन्ध अटूट है । यदि प्रकाश न रहे तो सुन्दर आँखें भी बेकार हैं । अतः प्रकाश ही नजर है, दृष्टि है । उसी तरह हमें ज्ञान का प्रकाश चाहिए जो हमारी बुद्धि की नजर उठाये बिना ज्ञान की बुद्धि भी आँख के समान व्यर्थ है ।

इस ज्ञान का नाम ही 'मैं' है । 'मैं' है वह परमात्म सत्ता । इस सत्ता को जानना ही आस्तिकता है । वह सत्ता सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान है । उसके पास अन्याय नहीं है न्याय है । अन्याय के लिए दण्ड देता है न्याय के लिए पुरस्कार । वह जालिम जल्लाद भी है हमें मृत्यु देता है । आत्महत्यारा भी है । स्वयं अपने आपकी हत्या करता है । भगवान् भाव के रूप में इस भौतिक शरीर में आता है । उसका कोई आकार नहीं है । यह सारा ब्रह्माण्ड ही उसका स्वरूप है । यह साकार ईश्वर है ।

हम इस साकार ईश्वर के अंग हैं । यह सारा विश्व हमारा शरीर है । किन्तु हमें स्वयं को न जानने के फलस्वरूप ही हम अपने शरीर से खिलवाड़ करते हैं । बुरा करते, अन्याय करते तथा हम स्वयं का ही नाश करते हैं । जिस तरह हमारे शरीर के प्रत्येक अंग झगड़ा करने लगें कि हम स्वतन्त्र हैं, हम सर्वोपरि हैं तथा एक दूसरे की सहायता करना छोड़ दें, तब इस शरीर की क्या गति होगी ? उसी तरह आज हम अज्ञानता के अन्धकार में भटकते हुए अपने शरीर को भी अपना नहीं समझते तब यह संसार रूपी शरीर कब तक समझ पावेंगे ?

शरीर सहयोग का एक पुतला है । यदि इसमें सहयोग न रहे तथा हाथ पैर, कान, नाक, पेट आदि अलग-अलग कर दें, तब वह शरीर नहीं कहा जा सकता । शरीर को कायम रखने के लिए सहयोग एकता आवश्यक है । मनुष्य स्वयं एक अंग के समान अपूर्ण है । इस सारे विश्व का एक अंग है ! अतः अपने आपको जानकर अपना स्वयं का ज्ञान होना आवश्यक है ।

इस 'मैं' के साथ अन्तःस्थिति महान् शक्ति काम करती है । जो अहंकार में आकर इस शक्ति का दुरुपयोग करता है, वह शक्ति स्वयं अपने आप का मान-मर्दन कर अपनी शक्ति उस कुसंस्कारी से छीन लेती है । उस शक्ति के हटते ही हमारा शरीर जीवित रहते हुए भी निष्प्राण हो जाता है, तब उसका नाश अवश्य हो जाता है । जिस तरह से कौरव, रावण, कंस आदि को अहं आने पर उनकी शक्ति हट गई तथा नाश हो गया ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को विराट रूप दर्शन में बताया था—कि यदि तू नहीं भी रहेगा तो भी यह युद्ध होगा । तू कौरवों को नहीं मारेगा तो भी अवश्य मरेंगे । वे तो पहिले ही मारे जा चुके हैं । केवल संसार को दिखाने के लिए तू एक निमित्तमात्र है । उनकी आत्मा की सत्ता मैंने अपने में खींच ली है । वे केवल शरीर से जीवित हैं जिसको शक्ति मार चुकी है फिर उन्हें कौन बचा सकता है । इस विश्व में युग परिवर्तन करता है, वह केवल निमित्त होता है । काल शक्ति से प्रेरित होता है जिसमें काली शक्ति प्रवेश करती है वही यह सब कर सकता है । यह बताते हुए अर्जुन को कृष्ण ने अपने दर्शन में पहिले बता दिया कि महाभारत इसके पूर्व ही समाप्त हो चुका है, तब अर्जुन को ज्ञान प्राप्त होता है कि कुटुम्बी भाइयों के मारने में मेरा दोष नहीं है । वे तो स्वयं ही मर चुके हैं ।

कितने आश्चर्य की बात है कि इस संसार में सभी दूसरों को, संसार को जानते हैं । किन्तु अपने आप को नहीं जानते । व्यवहार रूप में भी देखिये दूसरों के दोष दुर्गुण, दुराचार जल्दी देख सकते हैं, किन्तु अपने स्वयं के नहीं । जो दुनिया को जानता है, वह ज्ञानी है—चेतन ज्ञान रूपी ईश्वर को जानता है, वही ज्ञानी है, स्वयं को जानता है, किन्तु ज्ञानी कहीं भी नजर नहीं आता । इस कला विज्ञानसम्पन्न युग में मानव आज भी अपने बारे में असीम अज्ञान के कारण ही इस युग की अनेकानेक समस्याओं का सामना करता है । यदि हम स्वयं को जानने लगें तो सारी समस्याएँ स्वयं नष्ट हो जायेंगी । हम अपने आपको, शरीर को, मन को, प्रवृत्ति को, आत्मा को, ईश्वर को नहीं जान पाये । जो स्वयं को जानने की पहली सीढ़ी है उसे छोड़ कर उछाल मारना चाहते हैं । यह प्रकृति के नियम का उल्लंघन है । इसी कारण सजा भुगतनी पड़ रही है । इस सजा के प्रतिफल हमारी सभ्यता, दर्शन, संस्कृति का पतन हो गया, हमारा पतन हो गया ।

शरीर के अंग-प्रत्यंगों के समुच्चय से मानव बनता है । मानव जटिल ज्ञान है । उसी तरह प्रत्येक वस्तु से संसार बना है । यह शरीर जिन कोषाणुओं से बना है वह स्वयं एक ब्रह्माण्ड है । इस शरीर में अनेक ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं । मानव मस्तिष्क प्रकृति की विलक्षण शक्ति की कृति है । किन्तु यह मस्तिष्क, यह शरीर केवल शरीर नहीं है । यह विश्व है । इसका ज्ञान प्राप्त करने में ज्ञान की आवश्यकता है । मानव की मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, कलात्मक, आध्यात्मिक क्रियाओं का माप असम्भव है । सृजनात्मक आनन्द के निर्माण, चेतना को शरीर से मुक्त, दूसरों के साथ, विश्व के साथ एकाकार आदि करने का महान् अमापनीय कार्य है ! यह कला ज्ञान ही हो सकता है, किन्तु इस ज्ञान के अभाव में ही मानव जीवन लुप्त सा हो गया है ।

जिस तरह नारद को वानर का रूप देने पर भी वह स्वयं को न जानने पर स्वयं को अच्छा ही समझता था तथा दूसरो को बुरा । इसी अज्ञानता के कारण हँसने वालों को उन्होंने श्राप दे दिया । किन्तु बाद में अपनी सूरत दर्पण में देखने के बाद आत्मबोध होने पर उन्हें पश्चात्ताप होता है । यदि इससे पूर्व वह स्वयं को जान लेता तो उसे इस दुःख के संसार में डूबना न पड़ता । अपना अहम् अंकुरित नहीं होने देता, तब उसका वह क्षण इस वासना वृत्ति में समाप्त न होकर जीवन के उत्थान में लगा होता ।

इस शरीर के निर्माण में इस विश्व का कितना सहयोग है । माँ-बाप, अन्न-जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु आदि के सहयोग का अनुमान लगाना कठिन है, इनके सहयोग से जी रहा मानव परावलम्बी है । फिर भी स्वयं को स्वावलम्बी समझता है । इन अटूट सम्बन्धों से अपने को स्वतंत्र मानता है । यहाँ स्पष्ट है कि मनुष्य ने स्वयं को नहीं पहिचान पाया है । यदि स्वयं को पहिचानता तो वह विश्व के किसी भी कण से अपने को अलग न मानकर अपना अटूट सम्बन्ध कायम रखता । आज की उपस्थित छटपटाहट से बचकर शान्तिपूर्वक जीवन बिताता । यही 'मैं' है । 'मैं' को जानना आवश्यक है, बिना 'मैं' को जाने हमारा जीवन सुखी एवं सार्थक नहीं हो सकता । हमारा ज्ञान पूर्ण नहीं हो सकता ।

क्या 'मैं' शरीर ही हूँ—उससे भिन्न नहीं ?

मैं क्या हूँ ? मैं कौन हूँ ? मैं क्यों हूँ ? 'मैं' इस छोटे से प्रश्न का सही समाधान न कर सकने के कारण 'मैं' को कितनी विषम विडम्बनाओं में उलझना पड़ता है और विभीषिकाओं में संत्रस्त होना पड़ता है, यदि यह समय रहते समझा जा सके तो हम वह न रहें, जो आज हैं । वह न सोचें जो आज सोचते हैं । वह न करें जो आज करते हैं ।

हम कितने बुद्धिमान हैं कि धरती आकाश का चप्पा-चप्पा छान डाला और प्रकृति के रहस्यों को प्रत्यक्ष करके सामने रख दिया । इस बुद्धिमत्ता की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम और अपने आपके बारे में जितनी उपेक्षा बरती गई, उसकी जितनी निन्दा की जाय वह भी कम ही है ।

जिस काया को शरीर समझा जाता है, क्या यही 'मैं' हूँ ? क्या कष्ट, चोट, भूख, शीत, आतप आदि से पग-पग पर व्याकुल होने वाला अपनी सहायता के लिए बजाज, दर्जी, किसान, रसोइया, चर्मकार, चिकित्सक आदि पर निर्भर रहने वाला ही 'मैं' हूँ ? दूसरों की सहायता के बिना जिसके लिए जीवन धारण कर सकना कठिन हो, जिसकी सारी हँसी-खुशी और प्रगति दूसरों की कृपा पर निर्भर हो, क्या वही असहाय, असमर्थ, 'मैं' हूँ ? मेरी आत्म-निर्भरता क्या कुछ भी नहीं है ? यदि शरीर ही 'मैं' हूँ तो निस्सन्देह अपने को सर्वथा पराश्रित और दीन, दुर्बल ही माना जाना चाहिए ।

परसों पैदा हुआ, खेल-कूद, पढ़ने-लिखने में बचपन चला गया । कल जवानी आई थी । नशीले उन्माद की तरह आँखों में, दिमाग में छाई रही । चंचलता और अतृप्ति से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बेचैन बनाये रही । आज ढलती उम्र आ गई । शरीर ढलने, गलने लगा । इन्द्रियाँ जवाब देने लगीं । सत्ता बेटे, पोतों के हाथ चली गई । लगता है एक उपेक्षित और निरर्थक जैसी अपनी स्थिति है । अगली कल यही काया जरा जीर्ण होने वाली है । आँखों में मोतियाबिन्दु कमर घुटनों में दर्द, खाँसी, अनिद्रा जैसी व्याधियाँ, घायल गधे पर उड़ने वाले कौओं की तरह आक्रमण की तैयारी कर रही हैं । अपाहिज और अपंग की तरह कटने वाली जिन्दगी कितनी भारी पड़ेगी । यह सोचने को जी नहीं चाहता, वह डरावना और घिनौना दृश्य एक क्षण के लिए भी आँखों के सामने आ खड़ा होता है तो रोम-रोम काँपने लगता है, पर उस अवश्यम्भावी भवतव्यिता से बचा जाना सम्भव नहीं, जीवित रहना है तो इसी दुर्दशा ग्रस्त स्थिति में पिसना पड़ेगा । बच निकलने का कोई रास्ता नहीं । क्या यही 'मैं' हूँ ? क्या इसी निरर्थक विडम्बना के कोल्हू के चक्कर काटने के लिए ही 'मैं' जन्मा ? क्या जीवन का यही स्वरूप है ? मेरा अस्तित्व क्या इतना ही तुच्छ है ?

आत्मचिन्तन कहेगा—नहीं, नहीं, नहीं । आत्मा इतना हेय और हीन नहीं हो सकती । वह इतना अपंग और असमर्थ, पराश्रित और दुर्बल कैसे होगी ? यह तो प्रकृति के पराधीन पेड़-पौधों जैसा, मक्खी, मच्छरों जैसा जीवन हुआ । क्या इसी को लेकर—मात्र जीने के लिए 'मैं' जन्मा सो भी जीना ऐसा जिसमें न चैन, न खुशी, न शान्ति, न आनन्द, न सन्तोष । यदि आत्मा-सचमुच परमात्मा का अंश है तो वह ऐसी हेय स्थिति में पड़ी रहने वाली हो ही नहीं सकती । या तो 'मैं' हूँ ही नहीं । नास्तिकों के प्रतिपादन के अनुसार या तो पाँच तत्वों के प्रवाह में एक भँवर जैसी बबूले जैसी, क्षणिक काया लेकर उपज पड़ा हूँ और अगले ही क्षण अभाव के विस्मृति गर्त में समा जाने वाला हूँ । या फिर कुछ हूँ तो इतना तुच्छ और अपंग हूँ जिसमें उल्लास और सन्तोष जैसा गर्व और गौरव जैसा, कोई तत्व नहीं है । यदि 'मैं' शरीर हूँ तो हेय हूँ । अपने लिए और इस धरती के लिए भारभूत । पवित्र अन्न को खाकर घृणित मल में परिवर्तन करते रहने वाले, कोटि-कोटि छिद्रों वाले इस कलेवर से दुर्गन्ध और मलीनता निसृत करते रहने वाला, अस्पर्श्य, घिनौना हूँ 'मैं' । यदि शरीर हूँ तो इससे अधिक मेरी सत्ता होगी भी क्या ?

मैं यदि शरीर हूँ तो उसका अन्त क्या है ? लक्ष्य क्या है ? परिणाम क्या है ? मृत्यु-मृत्यु-मृत्यु । कल नहीं तो परसों वह दिन तेजी से आँधी-तूफान की तरह उड़ता-उमड़ता चला आ रहा है, जिसमें आज की मेरी यह सुन्दर सी काया, जिसे मैंने अत्यधिक प्यार किया, प्यार क्या जिसमें पूरी तरह समर्पित हो गया, घुल गया । अब वह मुझसे विलग हो जायगी । विलग ही नहीं अस्तित्व भी गँवा बैठेगी । काया में घुला हुआ 'मैं' मौत के एक ही थपेड़े में कितना कुरूप, कितना विकृत, कितना निरर्थक, कितना घृणित हो जाऊँगा कि उसे प्रिय परिजन तक, कुछ समय और उसी घर में रहने देने के लिए सहमत न होंगे जिसे मैंने ही कितने अरमानों के साथ, कितने कष्ट सहकर बनाया था । क्या यही मेरे परिजन हैं ? जिन्हें लाड़-चाव से पाला था । अब ये मेरी इस काया को, घर से हटा देने के लिए, उसका अस्तित्व सदा के लिए मिटा देने के लिए क्यों आतुर हैं ? कल वाला ही तो 'मैं' हूँ ।

मौत के जरा से आघात से मेरा स्वरूप यह कैसा हो गया । अब तो मेरी मृत काया—हिलती-डुलती भी नहीं, बोलती, सोचती भी नहीं । अब तो उसके कुछ अरमान भी नहीं हैं । हाय, यह कैसी मलीन, दयनीय, घिनौनी बनी जमीन पर लुढ़क रही है । अब तो यह पलंग बिस्तर पर सोने तक का अधिकार खो बैठी । कुशाओं बान से ढकी, गोबर से लिपी गीली भूमि पर यह पड़ी है । अब कोई चिकित्सक भी इसका इलाज करने को तैयार नहीं । कोई बेटा, पोता गोदी में नहीं आता । पत्नी छाती तो कूटती है, पर साथ सोने से डरती है । मेरा पैसा, मेरा वैभव, मेरा सम्मान हाय रे सब छिन गया, हाय रे मैं बुरी तरह लुट गया । मेरे कहलाने वाले लोग ही, मेरा सब कुछ छीन कर मुझे इस दुर्गति के साथ घर से निकाल रहे हैं । क्या यही अपनी दुर्दशा कराने के लिए मैं जन्मा ? यही है क्या मेरा अन्त, यही था क्या मेरा लक्ष्य ? यही है क्या मेरी उपलब्धि, जिसके लिए कितने अरमान सँजोये थे, जिसके लिए कितने पुरुषार्थ किये थे, क्या उसका निष्कर्ष यही है ? यही हूँ 'मैं' जो मुर्दा बना पड़ा हूँ और लकड़ियों की चिता में जलकर अगले ही क्षण अपना अस्तित्व सदा के लिए खोने जा रहा हूँ ।

लो अब पहुँच गया मैं चिता पर । लो, मेरा कोमल मखमल जैसा शरीर, जिसे सुन्दर सुसज्जित, सुगन्धित बनाने के लिए घण्टों शृंगार किया करता था, अब आ गया अपनी असली जगह पर । लकड़ियों का ढेर, उसके बीच दबाया दबोचा हुआ मैं । लो यह लगी आग । लो, अब मैं जला । अरे मुझे जलाओ मत । इन खूबसूरत हड्डियों में मैं अभी और रहना चाहता हूँ, मेरे अरमान बहुत हैं, इच्छाएँ तो हजार में से एक भी पूरी नहीं हुई । मुझे मेरी उपार्जित सम्पदाओं से अलग मत करो, प्रियजनों का वियोग मुझे सहन नहीं । इस काया को जरा सा कष्ट होता था तो चिकित्सा, उपचार मैं बहुत कुछ करता था । इस काया को इस निर्दयतापूर्वक मत जलाओ । अरे स्वजन और मित्र कहलाने वाले लोगों, इस अत्याचार से मुझे बचाओ । अपनी आँखों के आगे ही मुझे इस तरह जलाया जाना तुम देखते रहोगे । मेरी कुछ भी सहायता न करोगे । अरे यह क्या, बचाना तो दूर उलटे तुम्हीं मुझ में आग लगा रहे हो । नहीं-नहीं, मुझे जलाओ मत, मुझे मिटाओ मत । कल तक मैं तुम्हारा था, तुम मेरे थे, आज ही क्या हो गया जो तुम सबने इस तरह मुझे त्याग दिया ? इतने निष्ठुर तुम सब क्यों बन गये ? मैं और मेरा संसार क्या इस चिता की आग में ही समाप्त हुआ ? सपनों का अन्त, अरमानों का विनाश, हाय री चिता, हत्यारी चिता, तू मुझे छोड़, मरने का जलने का मेरा जरा भी जी नहीं है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अग्नि देवता, तुम तो दयालु थे । सारी निर्दयता मेरे ही ऊपर उड़ेलने के लिए क्यों तुल गये ?

लो, सचमुच मर गया । मेरी काया का अन्त हो ही गया । स्मृतियाँ भी धुँधली हो चलीं । कुछ दिन चित्र फोटो जिये । श्राद्ध तर्पण का सिलसिला कुछ दिन चला । दो तीन पीढ़ी तक बेटे पोतों को नाम याद रहे । पचास वर्ष भी पूरे न हो पाये कि सब जगह से नाम निशान मिट गया । अब किसी को बहुत कहा जाय कि इस दुनिया में 'मैं' पैदा हुआ था । बड़े अरमानों के साथ जिया था, जीवन को बहुत सँजोया, सम्भाला था, उसके लिए बहुत कुछ किया था, पर वह सारी दौड़, धूप ऐसे ही निरर्थक चली गई । मेरी काया तक ने मेरा साथ न दिया, जिसमें मैं पूरी तरह घुल गया था । जिस काया के सुख को अपना सुख और जिसके दुःख को अपना दुःख समझा । सच तो यह है कि मैं ही काया था और काया ही मैं था । हम दोनों की हस्ती एक हो गई थी, पर यह क्या अचम्भा हुआ, मैं अभी भी मौजूद हूँ ।

वायुभूत हुआ आकाश में मैं अभी भी भ्रमण कर रहा हूँ, पर वह मेरी अभिन्न सहचरी लगने वाली काया न जाने कहाँ चली गई । अब वह मुझे कभी नहीं मिलेगी क्या ? उसके बिना मैं रहना नहीं चाहता था, रह नहीं सकता था, पर हाय री निर्दय नियति । तू ने यह क्या कर डाला । काया चली गई, माया चली गई, मैं अकेला ही वायुभूत बना भ्रमण कर रहा हूँ । एकाकी-नितान्त एकाकी । जब काया ने ही साथ छोड़ दिया तो उसके साथ जुड़े हुए परिवारी भी क्या याद रखते ? क्यों याद रखते ? याद रखे भी रहे हों तो अब उससे अपना बनना भी क्या है ?

मैं काया हूँ । यह जन्म के दिन से लेकर, मौत के दिन तक मैं मानता रहा । यह मान्यता इतनी प्रगाढ़ थी कि कथा पुराणों की चर्चा में आत्मा काया की पृथकता की चर्चा आये दिन सुनते रहने पर भी गले से नीचे नहीं उतरती थी । शरीर ही तो मैं हूँ, उससे अलग मेरी सत्ता भला किस प्रकार हो सकती है ? शरीर के सुख-दुःख के अतिरिक्त मेरा सुख-दुःख अलग क्योंकर होगा ? शरीर के लाभ और मेरे लाभ में अन्तर कैसे माना जाय ? यह बातें न तो समझ में आती थीं और न उन पर विश्वास जमता था । परोक्ष पर प्रत्यक्ष कैसे झुठलाया जाय ? काया प्रत्यक्ष है, आत्मा अप्रत्यक्ष है, उसके स्वार्थ, सुख-दुःख अलग हैं, यह बातें कहने-सुनने भर की ही हो सकती हैं । सो रामायण गीता वाले प्रवचनों की हाँ में हाँ तो मिलाता रहा, पर उसे वास्तविकता के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया ।

पर आज देखता हूँ कि वह सच्चाई थी जो समझ में नहीं आई और वह झुठाई थी जो सिर पर हर घड़ी सवार रही । शरीर ही मैं हूँ । यही मान्यता, शराब की खुमारी की तरह नस-नस में भरी रही । बोतल पर बोतल छानता रहा तो वह खुमारी उतरती भी कैसे ? पर आज आकाश में उड़ता हुआ वायुभूत, एकाकी मैं सोचता हूँ । झूठा जीवन जिया गया । झूठ के लिए जिया गया, झूठे बनकर जिया गया । सच्चाई आँखों से ओझल ही बनी रही । मैं एकाकी हूँ, शरीर से भिन्न हूँ । आत्मा हूँ, यह सुनता जरूर रहा, पर मानने का अवसर ही नहीं आया । यदि उस तथ्य को जाना ही नहीं, माना भी होता तो वह अलभ्य अवसर जो हाथ से चला गया, इस बुरी तरह न जाता । जीवन जिस मूर्खतापूर्ण रीति-नीति से जिया गया वैसा न जिया जाता ।

शरीर मेरा है, मेरे लिए है, मैं शरीर नहीं हूँ । यह छोटी सी सच्चाई यदि समय रहते समझ में आ गई होती तो कितना अच्छा होता । तब मनुष्य जीवन जैसे सुर-दुर्लभ सौभाग्य का लाभ लिया गया होता, पर अब क्या हो सकता है ? अब तो पश्चात्ताप ही शेष है । भूल भरी मूर्खता के लिए न जाने कितने लम्बे समय तक रुदन करना पड़ेगा ?

छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा—'मैं' हूँ

''गैसीय स्थिति में जीवन सम्भव है'' यद्यपि यह मत अभी कुछ वैज्ञानिक ही स्वीकार करते हैं, पर यदि इसी तरह विज्ञान बढ़ता गया तो वह निश्चित ही भावनाओं की तह तक पहुँचेगा और उक्त मान्यता के आधार पर यह अनुभव करना सरल होगा कि सूर्य-चन्द्रमा भी मनुष्य की तरह संवेदनशील शक्तियाँ हैं । उनके देवता होने की कल्पना तब भी निराधार न होगी, जब लोग चन्द्रमा पर पहुँच जायेंगे । जिस प्रकार मनुष्य शरीर का ही एक भाग दृश्य और स्थूल है, पर उसका प्रकाश वाला चेतन स्वत्व देखने में नहीं आता । एक मिला-जुला रूप ही दिखाई देता है, उसी प्रकार व्यक्तियों की गैसीय स्थिति को दृश्य के साथ मिला-जुला अनुभव किया जाना नितान्त सम्भव हो जायेगा ।

जीव-चेतना की उस खोज का सिलसिला अब आगे बढ़ता है । जीव-विज्ञान वेत्ताओं ने अभी कुछ समय पहले ही अमेरिका की नेशनल एयरोनाटिक्स एण्ड स्पेज एडमिनिस्ट्रेशन' को बताया—''पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य ग्रहों पर जिस जीवन की कल्पना हम करते हैं, उसके अन्तर्गत उन ग्रहों पर मनुष्य की तरह न तो सामान्य आकृति वाले प्राणी होंगे और न कथाओं वाले दैत्याकार मानव, वरन् वहाँ जीवन अणु-जीवों के रूप में होगा, इसलिये अपने अनुसन्धान कार्य में ऐसे यन्त्रों को सम्मिलित किया जाना चाहिए, जो मंगल आदि ग्रहों के सम्भावित जीवन के बारे में सूचनाएँ देंगे ।''

अभी इन शोधों के लिये कुछ समय है, पर धरती में जीवाणु विज्ञान सम्बन्धी जो खोज कार्य हुआ है, वही इतना पर्याप्त है कि उससे संसार में चेतना के अस्तित्व की संगति बैठाई जा सकती है । मुख्य कठिनाई यह है कि अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड या फ्रांस आदि में अनेक विद्वान वैज्ञानिक हैं, पर उनके ज्ञान और उपलब्धियों का क्षेत्र नितांत एकांगी है । जिसे रसायन शास्त्र का अध्ययन है, वह भौतिकशास्त्र के कुछ पन्ने ही जानता है, सम्पूर्ण नहीं । मनोविज्ञान, खगोल विद्या और जीव-रचना शास्त्र आदि अनेक बातें जो जीवन को अहं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समस्याओं से उतनी ही घनिष्टता रखती है, जितना रसायनशास्त्र । फल यह होता है कि उसकी विद्वता भी भ्रामक रह जाती है, सिवाय इसके कि उससे कुछ बौद्धिक जानकारी बढ़ जाये । मनुष्य जीवन सम्बन्धी किसी भी तथ्य या निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव नहीं होता । यह बात सभी प्रकार के पाश्चात्य विद्वानों के सम्बन्ध में भी है । यदि सभी वैज्ञानिक उपलब्धियों को एक स्थान पर लाकर उनसे फैसला कराना सम्भव हो जाता तो जीव विज्ञान की अब तक की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ही उक्त सन्दर्भ में भारतीय तत्व-दर्शन की पुष्टि कर देतीं और उससे आत्म-निरीक्षण की पद्धति का एक नया विज्ञान ही चल पड़ा होता । उसके लिये शोध और कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता, वह सब मशाला भारतीय ग्रन्थों में तैयार रखा है, उसके सहारे आत्म-कल्याण और विश्व-शान्ति का मार्ग खोज निकालना प्रत्येक व्यक्ति के लिये सम्भव हो गया होता ।

इस विषय का विज्ञानसम्मत प्रतिपादन करें इससे पूर्व भारतीय उपलब्धियों को जान लेना आवश्यक है । कैवल्योपनिषद् में जीव की व्याख्या इन शब्दों में की है—"**सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरे नित्यं तत्वमेव तत्** अर्थात् जिसे सूक्ष्म से सूक्ष्म यन्त्रों से भी नहीं देखा जा सकता, जिसका कभी नाश भी नहीं होता, वही तुम हो, तुम वही हो ।"

इसी उपनिषद के २०, २१, २२, २३ और २४ मंत्रों में विस्तारपूर्वक बताते हुये लिखा है—

अणोरणीयानहमेव तद्वन्महानहं विश्वमिदं विचित्रं
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं
शिवरूपमस्मि ।
अपाणि पादोऽहमचिन्त्यशक्तिः पश्याम्यचक्षुः
सश्रृणोम्यकर्णः ॥
अहं विजानामि विविक्त रूपो न चास्ति वेत्ता
मम चित्सदाहम् ।
वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो वेदान्त कृद्वेद विव वृद्वेदविदेव
चाहम् ॥
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो न जन्म देहेन्द्रिय
बुद्धिरस्ति ।
न भूमिरापो न च वहिरस्ति न चानिलो मेऽस्ति
न चाम्बरं च ॥
एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं
निष्कलमद्वितीयम् ॥
समस्त साक्षिं सदसद्विहीनं प्रयाति शुद्धं
परमात्मरूपम् ।

—कैवल्योपनिषद् २०-२४

अर्थात्—मैं (जीव) छोटे से भी छोटा और बड़े से भी बड़ा हूँ, इस अद्भुत शरीर को मेरा ही रूप मानना चाहिए । मैं ही शिव और ब्रह्म स्वरूप हूँ, मैं ही परमात्मा और विराट्पुरुष हूँ, मेरे न हाथ हैं, न पैर । कल्पना भी जिस तक नहीं पहुँच सकती, वह परब्रह्म भी मैं ही हूँ । मैं सदैव अपने चेतन स्वरूप में रहता हूँ । मुझे कोई स्थूल नेत्रों और बुद्धि से देख और समझ नहीं सकता, किन्तु मैं बुद्धि के बिना ही सब कुछ समझता, नेत्रों के बिना ही सब कुछ देखता, कानों के बिना ही सब कुछ सुनने को सामर्थ्य रखता हूँ । वेद का उपदेश और वेदान्त की रचना मैंने ही की है । वेदों में मेरा ही वर्णन है । मैं जन्म और मरण से परे हूँ, पाप और पुण्य मुझे स्पर्श नहीं कर सकते, क्योंकि शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से मैं रहित हूँ, मेरे लिये भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश भी कुछ नहीं है जो इस तरह स्थूलता से रहित मुझे जान लेता है, वही परमात्मा को प्राप्त करता है ।

भारतीय विद्वानों की तत्व-दर्शन की अपनी एक शैली रही है । उन्होंने विज्ञान की उन सब बातों का प्रतिपादन तो किया है, पर उन्हें खींचकर उन प्रेरणाओं तक बार-बार ले गये हैं, जिनसे मनुष्य इस संसार में आने के अपने उद्देश्य को समझ ले और उसे प्राप्त कर जीव-मुक्ति का आनन्द ले । यह ठीक ऐसा ही है जैसा कि जीवाणु की खोज करते हुये पाश्चात्य वैज्ञानिक नई-नई औषधियों की रचना करते जाते हैं, उससे लोग भ्रम में तो पड़ते हैं, पर जिस तरह जीव-अणु की खोज पाश्चात्य दृष्टि में औषधियों का महत्व है उसी प्रकार हमारे पूर्वजों ने जीव का सम्बन्ध भावनाओं से जोड़कर उसे विराट् के साथ तादात्म कराने का प्रयत्न किया है, जिससे ज्ञान केवल शब्द सामर्थ्य ही बनकर न रह जाये वरन् उसका आत्म-कल्याण के लिये उपयोग भी हो ।

प्रतिपाद्य विषय का ऐसा ही महत्त्वपूर्ण विश्लेषण गर्भोपनिषद् में मिलता है । सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव अपनी सूक्ष्मतर स्थिति तक पहुँचकर विराट् के साथ किस प्रकार तादात्म हो, यह कैवल्योपनिषद् में बताया गया । गर्भोपनिषद् में प्राणी के सूक्ष्म से सूक्ष्म में परिवर्तित होने का वर्णन है । रज-वीर्य के संयोग से किस प्रकार जीव गर्भ में प्रवेश करता है ? पलता, बढ़ता और जन्म लेता है ? इस प्रक्रिया का वर्णन करते हुये उस समय की जीव भावनाओं का दिग्दर्शन कराया गया है । वह मानव-जाति के महान् उपयोग का ज्ञान और उसकी सर्वोच्च आवश्यकता भी है, किन्तु भावनाओं के अस्तित्व से इनकार करते रहने के कारण आज के मनुष्य ने अपना बड़ी अहित किया । गर्भोपनिषद् में इस बात का बार-बार संकेत करते हुये बताया है कि गर्भाधान होने पर शुक्र और शोणित के एक-एक अणु मिलकर कलल बनाते हैं, शुक्र का स्वरूप तेजस् और शोणित को पदार्थ या स्थूल तत्व कहा गया है । यही वह तेज-बिन्दु शोणित के साथ स्थूल संरचना में आता है । ७ रात्रियों में वह कलल ही बुदबुद बनता, एक पखवारे में पिण्ड और फिर इसी तरह विकसित होता, माता के द्वारा सेवन किये हुये अन्न से ज्ञान और कर्मेन्द्रियों का विकास करता हुआ जीव नौवें महीने में गर्भ से बाहर आता है । गर्भ में रहने तक उसे अपनी सूक्ष्म स्थिति का पता रहता है । वह बोलता नहीं, संकल्प और विचार कर सकता है । जीव विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया कहें या भगवान् का विधान,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसी के अनुसार जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि और आकाश इन पाँचों तत्वों से उसके शरीर में कपाल, केश, दर्भ, मुख, एक सौ अस्सी सन्धियाँ, एक सौ सात मर्मस्थान, एक सौ नौ स्नायु, सात सौ शिराएँ, पाँच सौ मज्जाएँ, तीन सौ साठ हड्डियाँ और साढ़े चार करोड़ वाला यह विराट् शरीर विनिर्मित होता है, यह विराट् शरीर उसका लोक है, ब्रह्मांड है, उसमें यजमान रूप से वह सूक्ष्माति-सूक्ष्म आत्मा ही काम कर रही होती है जो गर्भाधान के दिन नारी के पैथेली कोष में प्रविष्ट हुआ था ।

उस अवस्था में जीव के संकल्प-विकल्प आदि के सम्बन्ध में तब तक कोई पुष्टि नहीं दी जा सकती, जब तक कि मनुष्य की स्वयं की बुद्धि उस सूक्ष्म विषय की ग्रहणशीलता की योग्यता न प्राप्त कर लें, पर पाश्चात्य वैज्ञानिकों की खोजों ने यह अवश्य निश्चित कर दिया है कि जीव अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था में भी चेतना की सभी अभिव्यक्तियाँ प्रदर्शित करता है ।

पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार जीवित प्राणियों में जीवाणु सबसे छोटा जीव है । इसके शरीर में तरल प्रोटोप्लाज्म भरा होता है, उसके ऊपर सेल्यूलोज की पतली झिल्ली होती है । प्रोटोप्लाज्म के बीच बैठा हुआ जीवाणु १/२४००० इन्च से भी छोटा होता है । इनके आविर्भाव की प्रक्रिया भी बड़ी विचित्र है, ये सर्दी-गर्मी, जल, वायु, मिट्टी आदि का संयोग पाकर स्वयं ही बढ़ते हैं, कुछ ही सेकिण्डों में वह अपने जैसे हजारों जीवाणु न जाने कहाँ से पैदा कर देता है । एक जीवाणु १० मिनट के अन्दर ही नये जीवाणु पैदा करने लगता है । २२ घण्टे में वह १७०००००० जीवाणु पैदा कर डालता है । जिस प्रकार मनुष्य सर्दी-गर्मी के आवर्तन-परिवर्तन में कमजोर, स्वस्थ, प्रजनन आदि क्रिया करता है, उसी प्रकार गर्मी-सर्दी के निश्चित सह्य ताप में वह भी यह क्रियाएँ किया करता है, तो भी वह आँखों से दिखाई नहीं देते । इन्हें अणुवीक्षण यन्त्रों द्वारा ही ८०० से २००० गुना अधिक बढ़ाकर देखा जा सकता है । यह जीवाणु भी जीव की सूक्ष्मतम स्थिति नहीं वरन् कोई बीच का रोग उत्पन्न करने और वस्तुओं के गुण बदलने (फारमनटेशन) वाली जाति है । जीवधारी के सूक्ष्मतम जीवद्रव्य की लघुता का तो अभी कोई अनुमान ही नहीं किया जा सका ।

सारिकोडिना वर्ग के विख्यात जन्तु अमीवा को भी जीव की सूक्ष्मावस्था के उदाहरणार्थ लिया जा सकता है । पाश्चात्य वैज्ञानिक तो मनुष्य जाति को अमीवा की ही पूर्ण विकसित अवस्था मानते हैं, अमीबा की लम्बाई १/१०० इन्च होती है, उसे भी स्थूल आँखों से देखा नहीं जा सकता । प्रसिद्ध वैज्ञानिक मास्ट ने अमीवा को चार भागो मे—(१) प्लाज्मालेमा, (२) बाह्य-द्रव्य (एक्टोप्लाज्मा), (३) प्लैज्म जेल और (४) प्लेजसोल—विभक्त कर मनुष्य के लिये सूक्ष्म-आत्मा के सम्बन्ध में और भी गूढ़ रहस्य में डाल दिया अर्थात् वह तो पूरे अमीवा से भी सूक्ष्मतम स्थिति है और एक निश्चित शरीर से आबद्ध होने के कारण ठीक मनुष्य की तरह ही संवेदनशील भी है । जब उसे सुई से छेदा जाता है तो वह उत्तेजित हो उठता है और अपने को बचा कर भागने का प्रयत्न करता है, बिजली के करेन्ट से भी वह दूर भागता है, पर विचित्रता यह कि वह अपने शरीर के किसी भी भाग से भोजन कर सकता है, उसके मुख नहीं । थोड़े से जल के साथ वह भोजन ग्रहण करता है और मल-विसर्जन भी किसी भी हिस्से से कर देता है । अमीवा का मूल चेतन भाग केन्द्रक या नाभिक स्वयं ही विभक्त होकर नये अमीबा पैदा करता है विश्व के और प्राणी तो गर्भाधान से बच्चे पैदा करते हैं, पर यह सूक्ष्म जीवाणु स्वयं ही नई सृष्टि पैदा करने की स्थिति में होते हैं, उससे पता चलता है कि केन्द्रक या दिखाई देने वाले नाभिक के भीतर कोई ऐसी विलक्षण शक्ति है, जो या तो अक्षय शक्ति का भण्डार या विश्व-चेतना का मूल है, सृष्टि में जो भी स्पन्दन और स्फुरण है, सब उसी की इच्छानुसार होता रहता है ।

अब आनुवंशिकी विज्ञान ने इस रहस्य को और भी सूक्ष्म रूप में ला दिया है । वैज्ञानिकों के अनुसार शरीर ७० खरब कोशिकाओं का एक विराट् जगत् है, प्रत्येक कोष के अन्दर ४६-४६ गुणसूत्र विद्यमान् हैं । यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि कोशिका शरीर की अन्तिम इकाई है, जिसमें जड़ और चेतन दोनों समन्वित रहते हैं । इन गुणसूत्रों के आधार पर ही पीढ़ियाँ चलती हैं । गुणसूत्र मनुष्य के स्वभाव और संस्कार को नहीं बनाते शरीर का छोटा-बड़ा, लम्बा, कुबड़ा, गोरा, काला या कुरूप होना सब गुणसूत्रों पर निर्भर है । जब बच्चा गर्भ की स्थिति में जाता है तो वह एक कोशिकाणु अर्थात् ६४ गुणसूत्रों में अपनी शुरूआत करता है । इनमें से २३ माता की, २३ पिता की देन होते हैं । हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका में चूँकि ४६-४६ गुणसूत्र (क्रोमोसोम) हैं, इसलिये प्रारम्भ ९२ गुणसूत्रों से होना चाहिए, किन्तु जनन कोशिकाओं में चाहे वह स्त्री हो या पुरुष २३-२३ गुणसूत्र ही होते हैं, दोनों के मिलाप से एक पूर्ण गुणसूत्र सम्पन्न कोशिका का आविर्भाव होता है । इस क्रिया के बिना मनुष्य की उत्पत्ति सम्भव नहीं इसलिये मनुष्य के विकास वाली अमीबा या और सभी सिद्धान्त गलत हो जाते हैं ।

यहाँ हम जीव के सूक्ष्माति-सूक्ष्म और विराट् से विराट् स्वरूप की कल्पना कर रहे हैं, इसलिये विकास थ्योरी को यहाँ नहीं ले रहे । हमारा ध्यान जीव उत्पत्ति की उस रहस्यपूर्ण स्थिति में, जिसकी सूक्ष्मता को आँखों से नहीं देखा जा सकता । प्रत्येक स्त्री-पुरुष में २ घात २३ अर्थात् ८३८८६०८ जनन कोशिकाएँ बनाने की क्षमता है, इनमें से कोई भी शुक्राणु गर्भाधान की क्रिया में भाग ले सकता है । स्त्री के २३ में से कोई या पुरुष के २३ मे से कोई अर्थात् प्रत्येक जीवकोष के अन्दर २ घात ४६ तरह के बच्चे पैदा करो की क्षमता है । यह तो केवल ४६ गुणसूत्रों का हिसाब है । प्रत्येक गुणसूत्र १० हजार जीन्स से बने होते है इस तरह २ घात ४६ और उसके गुणनफल से जो संख्या आये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके १०००० घात इतने प्रकार का प्राणि-जगत एक मनुष्य के भीतर भरा हुआ है, जबकि सारी पृथ्वी की जनसंख्या ही कुल २ घात ३२ और २ घात ३४ के बीच में है । यदि सूक्ष्म का अन्त केवल जीन है तो ही एक मनुष्य के अन्दर सारी सृष्टि विद्यमान माननी चाहिए, यदि जीन्स की भी कोई इकाई निकल आई तब तो वैज्ञानिक यह देखेंगे कि शुक्र, शनि, बुध, मंगल सहित ५० करोड़ प्रकाश वर्षों और १० करोड़ निहारिकाओं वाला विराट् ब्रह्मांड मनुष्य के भीतर ही है । आकाश में दौड़ लगाने का यह जो धनसाध्य और समयसाध्य परिश्रम किया जा रहा है, वह सब व्यर्थ है, यदि यह परिश्रम मनुष्य अपने आपकी खोज में करे तो वह अपने आपमें ही अद्वितीय आनन्द के स्रोत उपलब्ध कर सकता है । यही बात योग-वाशिष्ठ में काफी समय पहले ही समझा दी गई थी । श्रुति का कथन है कि—

जगतोऽन्तरहंरूपमहंरूपान्तरे जगत् ।
स्थितमन्योन्यवलितं कदलीदलपीठवत् ॥
—६/ २/२२, २६,

परमाणुनिमेषाणां लक्षांशफलनास्वपि ।
जगत्कल्प सहस्राणि सत्यानीव विभान्त्यलम् ॥
तेष्वप्यन्तस्तथैवान्तः: परमाणुकणम् प्रति ।
भ्रान्तिरेव मनन्ताहो इयमित्यवभासते ॥
—३/६२/१-२,

अणावणावसंख्यानि तेन सन्ति जगत्तिखे ।
तेषान्तान्व्यवहारौघान्संख्यातुं क इव क्षमः ॥
—६/२/१७६ ६,

अर्थात्—आकाश में अनन्त द्रव्यों के असंख्य परमाणु बिखरे पड़े हैं, उन सबमें अनोखे जगत विद्यमान् हैं । जहाँ-जहाँ जीवाणु हैं, वह अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार सृष्टि का अनुभव करते हैं । प्रत्येक अणु के अन्दर अनन्त सृष्टियाँ विद्यमान् हैं । परमाणु के एक अत्यन्त सूक्ष्म अणु के लाखवें भीतर हजारों जगत प्रत्यक्ष से दिखाई देते हैं । अणु-अणु के भीतर जगत विद्यमान है, जो इस बात को जानता और समझता है वही सच्चा ज्ञानी है ।

आज का विज्ञान भी यही कहता है कि हर परमाणु के भीतर सौर-मण्डल विद्यमान् है, किन्तु हमारा कितना दुर्भाग्य है कि हम उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेतन सत्ता का अनुभव न कर विराट्-दर्शन से वंचित रह जाते और दीन-हीन जीवन जीते रहते हैं ।

आत्म-कल्याण का उपाय-उपचार

शरीर का संचालन मन करता है और मन को दिशा अन्तरात्मा से मिलती है । इसी को तत्वदर्शियों ने 'अहम्' 'स्वत्व', 'स्व' आदि नामों से सम्बोधित किया है । अँग्रेजी में इसी को 'ईगो' कहते हैं । व्यक्तित्व का बीज स्वरूप यही है । ईगो को 'सुपर इगो' तक, 'स्व' को विराट 'पर' स्तर तक विकसित एवं परिष्कृत करने वाले महामानव-देवमानव बनते और अपनी सघन आत्मीयता एवं सहृदयता का पग-पग पर परिचय देते हैं । विकसित एवं परिष्कृत आत्मचेतना ही ब्रह्म है, अध्यात्मदर्शन में पग-पग पर इसी की व्याख्या-विवेचना की गई है ।

अपने व्यक्तित्व को सीमित रखने का नाम स्वार्थ है और विकसित करने का नाम परमार्थ है । सीमित 'स्व' दुर्बल होता है, पर जैसे-जैसे उस का दायरा विस्तृत होता है, आन्तरिक बलिष्ठता बढ़ती जाती है । प्राणशक्ति का विस्तार सुख, दुःख की अपनी छोटी परिधि में केन्द्रित कर लेने से रुक जाता है, पर यदि उसे असीम बनाया जाय और स्वार्थ को परमार्थ में परिणत कर लिया जाय, तो इसका प्रभाव यश, सम्मान, सहयोग आदि के रूप में बाहर से तो मिलता ही है, भीतर की स्थिति भी द्रुतगति से परिष्कृत होती है और व्यक्तित्व प्रखर होता चला जाता है ।

तत्वदर्शियों के अनुसार अधिसंख्य व्यक्ति अपनी छोटी-सी परिधि को ही समूचा संसार और उसमें चलती रहने वाली ऊहा-पोह को सबसे बड़ी समस्या मान लेते हैं । उतने ही सीमित दायरे में वे अपने स्वार्थ और सुख को सीमित किये रहते हैं । इस छोटे दृष्टिकोण में बँधा व्यक्ति छोटी सी समझ के अन्तर्गत ही अपने को समेटे रहता है और जो कुछ करते बन पड़ता है, वह उतने ही छोटे क्षेत्र में सम्पन्न होता रहता है, किन्तु जब दृष्टिकोण का विकास एवं अपने आपे का विस्तार होता है, तो विशाल विश्व ब्रह्माण्ड की सुविस्तृत परिधि दीख पड़ती है । सम्पूर्ण संसार अपना घर जैसा दीखने लगता है, तब उसका हित-अनहित भी उतना ही विस्तृत हो जाता है और सोचने तथा करने के लिए उतना ही बड़ा दायरा अपने दायित्वों के अन्तर्गत आ जाता है । यही स्वत्व-विकास या आत्म-विकास है । क्षुद्रता की परिधि लाँघ कर विशाल एवं विराट् की परिधि में इसी प्रकार प्रवेश किया जाता है । ऐसे व्यक्तित्व तब स्वयं को वैभव, वासना, तृष्णा की पूर्ति तक सीमाबद्ध नहीं रखते, वरन् समस्त विश्व का सुख-दुःख उनका अपना बन जाता है । उस सुविस्तृत परिधि में ही उनका 'स्व' फैल जाता है और अपना-पराया एक होकर समग्र अद्वैत की स्थापना होती है । यह विशाल विश्व विराट्-ब्रह्म की परिधि है । इस स्थिति में पहुँचा हुआ व्यक्ति 'स्व' और 'पर' को एकीकृत हुआ अद्वैत समझता और उसी विराट् को अपना कार्यक्षेत्र बनाता है ।

महान् दार्शनिक प्लेटो के अनुसार, जब हमारा परिष्कृत 'स्व' से साक्षात्कार होता है तब हमें अपने सही स्वरूप का, अपने बहुआयामी विस्तार का भान होता है । इसी उच्च स्थिति में पहुँचने पर आत्मा का परमात्म तत्व में विलय या साक्षात्कार होता है । परिणामस्वरूप व्यक्ति को फिर किसी के आश्रय-अवलम्बन की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह स्वयं समर्थ हो जाता है । यही प्रत्येक मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य भी है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रख्यात् मनोवेत्ता कार्ल गुस्ताव जुंग आत्मीयता की परिष्कृत अहं की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि न जाने क्यों यह तथ्य बुद्धिमानों के गले नहीं उतरता कि वे मस्तिष्कीय चमत्कारों की तुलना में कहीं अधिक विभूतियाँ अपनी अंतःचेतना को विकसित करते हुए हस्तगत कर सकते हैं । 'स्व' को यदि उच्चस्तरीय बनाया जा सके तो फिर 'पर' के प्रति न कोई शिकायत रहेगी, न कोई उपेक्षा-अवमानना ही बन पड़ेगी ।

जब देशकाल की परिधि से बाहर निकल कर 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' की महान् दृष्टि प्राप्त हो जाती है, तो 'स्व' की छोटी परिधि समाप्त होकर विशाल और विराट् अपना आपा हो जाता है । इसी को ब्रह्मनिष्ठा या ईश्वर प्राप्ति कहते हैं । इस विस्तार को प्राप्त करने वाले को उस सबकी उपलब्धि या अनुभूति हो जाती है, जो कुछ इस समाज में फैला हुआ है । उसका चिन्तन और कर्त्तव्य भी उतना ही विस्तृत हो जाता है । पूर्णता का, जीवनमुक्ति का रसास्वादन ऐसी ही स्थिति में होता है ।

तत्वज्ञ शैलिन्ग ने अपनी कृति में कहा है—कि मनुष्य के अन्तराल में चेतना की भावसम्वेदना की उच्चस्तरीय परतें विद्यमान हैं । किसी भाँति यदि उन्हें जाग्रत एवं विकसित किया जा सके तो महानता की, जीवन के परमलक्ष्य की उपलब्धि सुगमतापूर्वक की जा सकती है । उनके अनुसार इस जगत में दो प्रकार के व्यक्तित्व देखे जाते हैं । एक तो वह है, जो अपने निजी स्वार्थ के लिए जीते और उसी छोटे दायरे में सीमाबद्ध रहते हुए जीवन की इतिश्री कर लेते हैं । दूसरे वे हैं, जो अपने एवं अपने परिवार के अतिरिक्त पड़ोसियों के लिए, देश एवं समाज के लिए स्नेह-सौजन्यता जगाने-जताने के लिए अपने स्वार्थ का त्याग करते हैं और बदले में आत्म-संतोष तथा लोक-सम्मान अर्जित करते हैं । ऐसे ही व्यक्तित्वों का विकास 'सुपरईगो' स्तर का माना जा सकता है ।

मूर्धन्य मनीषी डॉ. मोटोयामा के अनुसार जब तक कोई व्यक्ति अपनी ही तरह दूसरों के दुःख-दर्द की अनुभूति नहीं करता, उसका 'स्व' सीमित बना रहता है और जब तक 'स्व' का विकास, परिष्कार नहीं होता, तब तक सन्तोष और स्थायी सुख मात्र कल्पना-जल्पना भर बनकर रह जाते हैं । वे कहते हैं कि जैसे-जैसे व्यक्ति की आत्मीयता का अपने आप का विस्तार होता जाता है, उसका हृदय विशाल होता जाता है । दूसरों के दुःख को वह अपना मान लेता है और अपने सुख को दूसरों के लिए लुटा देता है । बुद्ध, ईसा, गाँधी आदि महामानवों ने इसी गुण को अपने में विकसित करके उसे सर्वोच्च कक्षा तक पहुँचाया और तभी अतीव आनन्द की अनुभूति की थी । अपने आपे के इस विकास को उनने 'अतिचेतना' का विस्तार कहा है । क्षुद्र 'अहं' के सीमित दायरे में जकड़े व्यक्ति जहाँ निजी जीवन जीने वाले सामान्य व्यक्तियों की भाँति छोटे से परिकर तक ही सीमित रह जाते हैं, वहीं दूसरी कोटि के साधकों को अपना-पराया नहीं दीखता । विराट् चेतना से एकात्मकता स्थापित कर लेने के कारण उनकी चेतना विलक्षण रूप से जाग्रत हो उठती है ।

जापान में बहुप्रचलित 'जेन' साधना की यौगिक क्रिया "जो साकू" में त्याग के माध्यम से 'स्व' का विकास कराया जाता है । इसी प्रकार से विश्व के विभिन्न धर्मों में आत्मत्याग की तपश्चर्याएँ निर्धारित हैं । मानव जीवन में उच्च समस्वरता लाने के लिए 'जेन' पद्धति में सेल्फ निगेशन की तपश्चर्या को अनिवार्य माना गया है । डॉ. मोटोयामा ने अपनी कृति 'हिप्नोटिज्म एण्ड रिलीजियस सुपरकान्शसनेस' में इसका सविस्तार वर्णन करते हुए बताया है कि इस साधना उपक्रम द्वारा उल्लेखनीय आत्म-विकास किया जा सकता है । अन्तःप्रेरणा के माध्यम से सूझबूझ को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया जा सकता है । इसके अभ्यासियों का वैज्ञानिक परीक्षण जे. बी. राइन द्वारा आविष्कृत अतीन्द्रिय क्षमता टेस्ट द्वारा करने पर पाया गया कि अपने आपे का विस्तार करने वाले अन्यों के दुःख-दर्दों को बिना किसी के बताये ही जान जाते हैं । उनके कष्ट-कठिनाइयों को अपने शुभ संकल्पों के माध्यम से दूर करने में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण सफलता पाई । ऐसे व्यक्तियों की अतीन्द्रिय क्षमताएँ भी बढ़ी-चढ़ी देखी गईं । मनुष्य जीवन का उद्देश्य ही है वैश्व चेतना से एकत्व स्थापित करना, स्वार्थ से ऊपर उठकर परमार्थ परायण बनना ।

मनुष्य और मनुष्य के बीच पनपने वाली अहंजनित विभेद बुद्धि ही समस्त विग्रहों का मूल है । यदि आत्मीयता की, अपनत्व की भावना विकसित हो सके, तो सब अपने दिखाई पड़ने लगें । सब में एकता की सूत्र शृंखला बँधी दिखाई पड़ने लगे तो व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थपरता का अंत होने और सीमित परिधि में संकुचित 'स्व' के विस्तृत होने में देर न लगे । 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना ही आध्यात्मिक समाजवाद है । इसी के प्रखर रहने पर भूतकाल स्वर्णिम युग बनकर रहा । उज्ज्वल भविष्य के लिए भी अपने आपे को, एकता एवं आत्मीयता के तत्वदर्शन को सुविस्तृत बनाना होगा । आत्म-कल्याण और विश्व-कल्याण का यह एक ही उपाय है ।

आध्यात्मिक शक्ति और मानव

मानव सृष्टि में आध्यात्मिक शक्ति अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है । इस शक्ति का मनुष्य के जीवन में भोजन, आराम, लौकिक व्यवहार, कमाई आदि की तरह ही विशेष महत्त्व है । जिन-जिन जातियों में इस शक्ति का विकास हुआ, वे उन्नति की ओर बढ़ीं । भारत का प्राचीन गौरव का एक कारण इसके अध्यात्म शक्ति से सम्पन्न होना भी था । अध्यात्म शक्ति को किन्हीं शब्दों में चरित्र बल, मानसिक बल अथवा आत्म बल भी कहते हैं ।

मानव के आध्यात्मिक विकास का स्वयं को भले या बुरे निर्देश देने से बहुत सम्बन्ध है । स्वयं को पवित्र एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महानता के निर्देश देने से अथवा अन्तरात्मा के निर्देशों के अनुकूल चलने के संकल्प करना जीवन को उन्नत एवं विकासशील बनाता है । इसी प्रकार अपने आपको बुरे निर्देश देना अर्थात् अपनी अन्तरात्मा के प्रतिकूल कार्य करना पतन एवं विनाश का कारण बनना है, जिससे मनुष्य का जीवन दुःख एवं परेशानियों से खराब होकर नारकीय-सा बन जाता है ।

एक धन ऐश्वर्य एवं भौतिक सम्पत्तियों से सम्पन्न व्यक्ति यदि जितना आध्यात्मिक शक्ति से शून्य है उतने ही अर्थ में सब से बड़ा दीन है । क्योंकि वह आध्यात्मिकता से रहित होने के कारण इन भौतिक सम्पत्तियों से उल्टा पतन एवं विनाश का मार्ग अपना लेगा । ईर्ष्या, द्वेष, परपीड़न, शोषण आदि से जीवन अशान्त एवं उद्विग्न बन जायगा । इनसे उसकी मानसिक शक्ति का ह्रास हो जायगा जिसके फलस्वरूप पद-पद पर चिन्ता, भय, दुःख एवं अपनी शक्तिहीनता का अनुभव करेगा जो नारकीय यन्त्रणाओं से कम नहीं है । संसार का सबसे बड़ा व्यक्ति वह है जो आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न है । वह अपने आध्यात्मिक बल से न केवल स्वयं को ही अपितु समग्र संसार को सुखी बना सकता है । ईश्वर के इस सृष्टि रूपी बगीचे में अपनी कलाकृति की छाप छोड़ जाता है, क्योंकि उसका जीवन स्वयं के लिए नहीं होता ।

अब यहाँ विचार करना है कि यह महान् आध्यात्मिक शक्ति क्या है एवं इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? अपने जीवन को इस अमृत से सराबोर करने वाली महान् आत्माओं ने यह अनुभव करके निर्णय किया है कि इस समस्त सृष्टि में मन रूपी एक तत्व अखण्ड विस्तार से, एक रस से सर्वत्र व्याप्त है । मानव मन उसकी एक इकाई है । किन्तु जब आध्यात्मिक शक्ति से शून्य मानव अपनी देह बुद्धि से इस तत्व का अनुभव करता है तो केवल पंचतत्वों का क्षणभंगुर यह पुतला नजर आता है, क्योंकि अपने क्षुद्र ज्ञान के कारण इसका पसारा केवल देह तक ही मालूम पड़ता है । इसी कारण मानव देह या इससे सम्बन्धित भौतिक वस्तुओं की क्षति को ही वह अपनी क्षति समझता है । इस देह पर दुःख आदि पड़ने पर ही स्वयं को दुःखी समझ लेता है । किन्तु ज्योंही मानव अपने परोक्ष ज्ञान से, स्वयं को एक रस रूप, सर्वत्र व्याप्त उस अखण्ड ईश्वरीय तत्व की इकाई समझता हुआ एवं उसी में स्थित हुआ अनुभव करता है तो सर्वत्र अपना ही अपना दृष्टिगोचर होता है । अपने पराये का भेद समाप्त हो जाता है । उस चर-अचर व्याप्त तत्व में स्थित हुआ व्यक्ति सृष्टि में हलचल मचा देने वाली शक्ति की अनुभूति प्राप्त करता है । साधारण विकास कार्यों की तो बात ही क्या है । उस सूक्ष्म ईश्वरीय दिव्य शक्ति से सम्बन्ध स्थापित करने पर महान् एवं चमत्कारी कार्य सम्पन्न होते हैं । प्रकृति भी वहाँ अपनी मर्यादाओं का व्यतिरेक कर विपरीत फल देती है ।

महापुरुष इस दृश्य जगत में उस ईश्वरीय तत्व की स्थिति ठीक उसी तरह अनुभव करते आये हैं जैसे माला के भीतर का सूत्र । जब स्थूल नेत्रों से देखा जायेगा तो माला में केवल मनके ही नजर आयेंगे और पृथकत्व की भावना होगी, किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो सबको धारण करने वाला वह सूत्र नजर आयगा जिसके अभाव में इस दृश्य जगत रूपी माला का अस्तित्व ही नहीं है । हमारे महापुरुष ऋषि-महर्षि आदि इसी तत्व में स्थित होकर आत्मीयता के एक सूत्र में बँधे हुये 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का मधुर संगीत सुनाते रहे हैं । वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों व अन्य ऋषि प्रणीति-ग्रन्थों में यह मधुर गान भरा पड़ा है जिससे मानव आत्मविभोर हो उठता है । आत्मीयता के इस चरम विकास को, परमानन्द को, जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर मानव धन्य हो जाता है, कृतार्थ हो जाता है । पूर्ण से पूर्ण मिलकर पूर्ण हो जाता है । इस मधुर अमृत का पान कर हमेशा के लिए अमर हो जाता है ।

इस आध्यात्मिक शक्ति के विकास के लिये ठीक उसी तरह मानसिक साधना करनी होगी, जीवन को उसी तरह संयत एवं नियमित करना होगा जिस तरह पहलवान अपने शरीर बल की वृद्धि के लिए करता है । जबकि स्वास्थ्य जैसी भौतिक एवं तुच्छ शक्ति के लिये इस प्रकार के अनेक अभ्यास, साधना आदि की आवश्यकता होती है तो उस महान् एवं सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न होने के लिए प्रचुर मात्रा में अभ्यास एवं साधना आदि करनी ही होगी । साधना पथ पर अग्रसर होने के लिए सर्वप्रथम ब्राह्ममुहूर्त के महत्त्व को समझना आवश्यक है । उस समय का शांत एवं प्राकृतिक वातावरण आध्यात्मिक चिंतन के लिए बहुत ही अनुकूल है । प्रत्येक आध्यात्मिक जिज्ञासु को सूर्योदय से दो घंटे पूर्व उठना आवश्यक है । महान् पुरुषों के जीवन चरित्रों को देखा जाय तो ज्ञात होगा कि उनकी दिनचर्या सूर्योदय के दो तीन घंटे पूर्व से आरम्भ होती है ।

अध्यात्म शक्ति सम्पादन के पवित्र लक्ष्य की ओर बढ़ने में "दृढ़ संकल्प और अभ्यास" ठीक उसी तरह के आधार हैं जैसे मानव देह में अस्थि पंजर । सर्वप्रथम अपने पवित्र लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए दृढ़ संकल्प और फिर उसके अनुसार अभ्यास करना प्रत्येक अध्यात्म पिपासु के लिये आवश्यक है । महान् आशा एवं उत्साह के लिये अपने पवित्र संकल्पों को दृढ़ता के साथ साकार रूप में परिणित करने के लिए स्वतः अभ्यास करते रहना सफलता की कुंजी है । व्यक्त मन, पुस्तकीय ज्ञान, एवं विद्वता की पहुँच, अध्यात्म तृष्णा को शांत करने के लिये असम्भव-सी है, अतः केवल इसे ही प्रधानता देना तर्क के बल पर उस महान् शक्ति का विकास एवं अनुभव करना बड़ी भूल है, क्योंकि बड़े-बड़े विद्वान, डिग्रियाँ प्राप्त, एक साथ कई विषयों के आचार्य पद प्राप्त करने वाले महानुभाव, कठिनाइयों एवं विपरीत परिस्थितियों में साहस छोड़ देते हैं । अपनी तर्क बुद्धि के बल पर नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का उपदेश देने वाले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधारण से लोभ आने पर फिसल जाते हैं । इस तरह बाहरी पुस्तकीय ज्ञान से हमारा बौद्धिक स्तर उन्नत हो सकता है, किन्तु आध्यात्मिक विकास नहीं हो सकता ।

स्वयं को असहाय एवं हीन समझना एक बड़ा भारी विघ्न है । लिखा भी है कि **"नार्थ आत्मा बल हीनेन् लभ्यः"** अर्थात् यह आत्मा बलहीनों से प्राप्त नहीं होती । अपने आपको परम पिता परमात्मा का युवराज समझना चाहिए । सर्वशक्ति सम्पन्न, सर्वाधार ईश्वर का युवराज कभी हीन, दुःखी. शक्तिहीन क्यों होने लगा । यह केवल हमारा मिथ्या ज्ञान है जो हमें पतन की ओर ले जाता है । अपने पिता की भाँति सर्व शक्तियों से सम्पन्न यह पुरुषार्थी युवराज अपने पुरुषार्थ के बल पर शीघ्र ही अपना आत्म-लक्ष्य प्राप्त कर सकता है, साधक को अपनी महानता एवं गौरव की अनुभूति जाग्रत करनी चाहिए, किन्तु सावधानी से सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना चाहिए कि कहीं हमारा क्षुद्र अहंकार तो नहीं पनप रहा है जिसकी सीमा इस शरीर एवं इससे सम्बन्धित भौतिक जगत तक ही है । इतना ही नहीं पतन की ओर ले जाने वाला कण्टकाकीर्ण मार्ग है ।

साधना पथ पर चलते हुये साधक को विषयों के दल-दल से बचना चाहिए । इस बड़े भारी विघ्न के कारण साधक को समग्र शक्तियों का क्षय होने लगता है और पतन की ओर गिरने लगता है । अपने पवित्र लक्ष्य की ओर प्रगति करने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन भी महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक है । इसके साथ-साथ स्वयं को पवित्र एवं परमार्थ कार्यों में लगाये रहना चाहिए । इससे चित्त भी विषयों की ओर नहीं दौड़ता और मानव-जीवन का सदुपयोग भी होता है । साधक को यह ध्यान में रखना चाहिए कि इन विषयों की दौड़ अंत तक उसका पीछा नहीं छोड़ती । जहाँ भी थोड़ी-सी अपनी उन्नति देखकर यदि उन्हें ढिलाई दे दी तो ये साधक को अपनी कई गुनी शक्ति से पतन की ओर खींच ले जाते हैं ।

पर-निन्दा भी साधक की आध्यात्मिक उन्नति में बड़ी बाधक है । दूसरों की निन्दा करने में न केवल आध्यात्मिक पतन ही होता है वरन् लौकिक व्यवहार में भी ईर्ष्या, द्वेष आदि का द्वार खुलता है, जो मानव-जीवन को विषतुल्य बना देते हैं । यह सत्य है कि पर-निन्दा करने वाला व्यक्ति अपने जीवन में कई प्रयत्नों के बावजूद भी अध्यात्म चेतना की अनुभूति प्राप्त नहीं कर सकता । अधिक विलास एवं अनर्गल भाषण से भी आध्यात्मिक प्रगति रुकती है और आयु भी क्षीण होती है ।

स्वाध्याय एवं सत्संग मानव के अपने पवित्र लक्ष्य की ओर बढ़ने में बहुत बड़े सहायक हैं । इनसे यह ही नहीं कि समय का सदुपयोग होता हो वरन् कुछ समय के लिये उन महान् आत्माओं से विचार द्वारा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । इससे मानसिक विकास के साथ-साथ हमारा पथ प्रदर्शन भी होता है । इन उपरोक्त नियमों को ध्यान में रखते हुये प्रत्येक व्यक्ति को अपना सुव्यवस्थित जीवन बना लेना चाहिए । फिर उसके अनुसार अध्यात्म शक्ति से सम्पन्न बनने के लिये सततः प्रयत्न करना चाहिए । अमूल्य सुरदुर्लभ मानव जीवन का सदुपयोग अपने इस पवित्र लक्ष्य की ओर बढ़ने में ही है । यदि आज का मानव अपने को भौतिकता, भोग-विलास, हिंसा, शोषण, पर-पीड़न, बेईमानी के बहाव से बचकर अध्यात्म-शक्ति को अपनावें तो निश्चय ही विकास और प्रगति का सुन्दर पथ निर्माण हो जावे । स्वयं को एवं मानव समाज को इस आध्यात्मिक चेतना की ओर मोड़ना प्रत्येक मानव सृष्टि के सदस्य का आवश्यक कर्त्तव्य है ।

आरोह तमसो ज्योतिः

हम बाह्य जीवन के बारे में सुविस्तीर्ण दृश्य जगत के बारे में बहुत कुछ जानते हैं । इन विषयों की विवेचना करते, व्याख्यान देते जी नहीं अघाता है । बहस करने और वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ भी जीतते हैं, पर आश्चर्य तो इस बात का है कि ढेरों की ढेरों जानकारियाँ रखने वाले को अपने बारे में कुछ भी नहीं पता है । अपनी सत्ता और महत्ता के बारे में हमारा ज्ञान नहीं के बराबर है । बहिर्मुखी जीवन बाह्य संसार में ही व्यस्त रहता है और यथार्थता के समझने की न तो आवश्यकता समझता है और न समय पाता है । यदि अपने वास्तविक स्वरूप, लक्ष्य और कर्त्तव्य का सही ढंग से भान हो जाय और संसार के साथ अपने सम्बन्धों को ठीक ढंग से जानकर सुधार लिया जाय तो सामान्य-सा दीखने वाला मानवीय अस्तित्व महानता और दिव्यता से ओत-प्रोत हो सकता है ।

अमेरिकन म्यूजियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री के पक्षी विभाग में एसोसियेट क्यूरेटर द्वारा जो विवरण प्रकाशित किए गए हैं, उनसे पता चलता है कि न्यूगिनी स्थान के आदिवासी किस तरह अपने क्षेत्र में भटक जाने वालों को जिन्दा भून कर खा जाते थे । उसी खतरनाक क्षेत्र में पक्षियों की खोज के लिए एक दल गया । पापुआन क्षेत्र के मियाओं कबीले के लोग अपने क्रूर कर्मों के कारण कुख्यात हैं । इस इलाके में किसी खास सुरक्षा व्यवस्था के बिना किसी को जाने की अनुमति नहीं है, पर खोजी दल के सदस्य किसी तरह वहाँ जा पहुँचे और सभी सदस्यों को रोमांचकारी ढंग से मार दिया गया ।

पादरी आइवोस्केफर ऐसे क्षेत्र में लगभग ४५ वर्ष से इन नरभक्षी दरिन्दों के बीच महात्मा ईसा का सन्देश सुनाने के लिए रहे । उन्होंने अपने कार्य व्यवहार से वहाँ के निवासियों को प्रभावित कर लिया । उन्हें वे सभी पवित्र आत्मा मानते थे और नुकसान की अपेक्षा सम्मान ही करते थे ।

शुरू-शुरू में उस निष्ठावान किन्तु क्रिया-कुशल पादरी ने किस प्रकार इन लोगों के बीच अपने सामान्य ज्ञान के बल पर स्थान पाया । इस बारे में उसने अपनी नोट बुक में लिखा है कि इस इलाके में प्रथम बार जाने पर उन्हें इन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नर-माँस लोलुपों द्वारा घेर लिया गया । लगभग ४०-५० व्यक्ति भाले-बरछी लेकर हमको घेर कर नाचने लगे । यह हर्ष प्रदर्शन इसलिए था कि दो मनुष्यों खासकर गोरों का ताजा सुस्वादु माँस खाने को मिलेगा । इसी कारण निश्चिन्त होकर गीत गा रहे थे और प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे ।

इस बीच पादरी ने युक्ति से काम लेने की सोची । उसने अपने झोले से एक दर्पण निकाला और उन आदिवासियों के सरदार के सामने कर दिया । उसने जैसे अपनी शक्ल आइने में देखी डर गया । शीशा तो उन लोगों के लिए बिल्कुल नई चीज थी । एक-एक करके पादरी ने उन सभी को शीशा दिखाया । वे सब भयभीत हो गए । सोचने लगे कि यह आदमी जरूर कोई बड़ा जादूगर है । इसे मारने से कोई विपत्ति आ सकती है । अस्तु, वे अपने भाले बर्छी फेंककर उसके आस-पास आशीष वरदान पाने के लिए सिर झुका कर बैठ गए । अब पादरी ने एक दूसरा चमत्कार प्रस्तुत किया । उसने अपने मुख से नकली दाँतों की बत्तीसी निकाली, दाँत उन्हें दिखाए, मुँह का पोपलापन दिखाया फिर दाँतों को लगाकर पहले जैसा मुँह बना लिया । इस नए चमत्कार को देखकर आदिवासी हैरतअंगेज रह गए । उन्हें पूरी तरह भरोसा हो गया कि यह कोई विलक्षण जादुई व्यक्ति है । इतनी मान्यता बना देने पर पादरी का कार्य सरल हो गया । वह वहाँ चैन से अपना कार्य उस क्षेत्र में करने लगे और अपने धर्म प्रचार के प्रयोजन में सफल रहे ।

इन पादरी महाशय के उदाहरण से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है कि नैतिक और सामाजिक विकास के लिए वास्तविकता का बोध कितना आवश्यक है, पर ज्ञान सम्बन्धी वे उपकरण जो मनुष्य को माध्यम के रूप में मिले हैं एक सीमा तक ही जानकारी दे पाने में सक्षम हैं । वेदान्त ने इसी कारण ऐसी अनुभूतियों को मिथ्या माना है और निरपेक्ष शाश्वत् ज्ञान की प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ करने का निर्देश दिया है । ज्ञानेन्द्रियों की एक सीमा मर्यादा है । इन्हें पूर्ण मानना भूल होगी । इस जगत में भिन्न-भिन्न कारणों से भिन्न-भिन्न शब्द कम्पन उत्पन्न होते हैं । मनुष्य के कान केवल उतने ही कम्पन सुनने में सक्षम हैं जिनकी गति ३३ प्रति सेकण्ड से ४० प्रति सेकण्ड होती है । इससे कम या ज्यादा गति कम्पनों को कान नहीं पकड़ पाते हैं । यही कारण है कि वैज्ञानिकों ने एक विशेष सीटी का निर्माण किया है जिसे कुत्ता तो सुन लेता है, समझ लेता है पर पास खड़ा मनुष्य बिल्कुल नहीं सुन पाता और हक्का-बक्का देखता रहता है । मनुष्य की सुनने की परिधि के बाहर विचरण करने वाला प्रवाह इतना ज्यादा है, जिसकी तुलना में सुनाई देने वाला हिस्सा लाख-करोड़वाँ ही है । इतनी थोड़ी सी ध्वनि सुन सकने वाले कानों को शब्द सागर की कुछ बूँदों का ही अनुभव होता है । शेष के बारे में तो अनजान ही बने रहते हैं । इस अधूरे उपकरण के द्वारा ध्वनि के माध्यम से विचरण करने वाले ज्ञान को स्वल्प कहा जाना ही नीतिसंगत होगा । उतने से साधन से मिलने वाली जानकारी के आधार पर वस्तुस्थिति समझने का दावा कोई कैसे कर सकता है ?

स्पर्शेन्द्रिय के माध्यम से मिलने वाली जानकारी भी कानों की ही भाँति अधूरी है और भ्रान्त भी । हाथ पर थोड़ी देर बर्फ रखे रहें फिर उसी हाथ को साधारण जल में डुबोयें तो लगेगा पानी गरम है । तत्पश्चात् हाथ पर कोई गरम चीज रखें फिर हाथ को उसी पानी में डुबोएँ तो लगेगा कि पानी ठण्डा है । जबकि पानी का तापमान तो जैसे का तैसा है । हाथ पर बर्फ और गरम चीज रखने से अनुभव भिन्न-भिन्न हुए । ऐसी त्वचा की गवाही पर क्या भरोसा जो कुछ का कुछ बताती है । इसके माध्यम से तो समग्र सत्य को समझने की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

अपनी आँखें सघन रात्रि में घोर अंधकार का अनुभव करती हैं । कुछ भी देख पाने में असमर्थ होती हैं, जबकि उसी स्थिति में उल्लू, चमगादड़, चीता, बिल्ली आदि प्राणी भली प्रकार देख सकते हैं । विज्ञान स्पष्ट करता है कि अन्धकार नाम की कोई चीज दुनिया धरती पर है ही नहीं । मनुष्य की आँखें एक सीमा तक के ही प्रकाश कम्पनों को देख सकती हैं । जब प्रकाश की गति मनुष्य की नेत्र सीमा से कम होती है तो अंधकार प्रतीत होता है ।

आकाश में अनेक रंग के भिन्न-भिन्न गति वाले प्रकाश कम्पन विद्यमान होते हैं । मनुष्य की आँखें उनमें मात्र सात रंगों की थोड़ी-सी प्रकाश तरंगों का ही अनुभव कर पाती हैं, शेष को देख पाने में असमर्थ होती हैं ।

यदि किसी को 'रैटिनाइटिस विग मेन्टोजा' रोग हो जाय तो उसे सीधी रेखा भी धब्बे या बिन्दुओं के रूप में दिखाई देती है । आकाश को ही देखने पर लगता है कि वह नीली चादर वाला गोलाकार पर्दे जैसा है और उसमें समतल सितारे टंगे हुए हैं, पर क्या यह ज्ञान सही है ? क्या आकाश उतना ही बड़ा है, जितना दिखाई देता है ? क्या वे सभी समतल हैं ? क्या आकाश सचमुच नीला है ? इन अनेक सवालों का जवाब खगोल शास्त्र के ज्ञान भण्डार में देखें तो ऐसा मात्र होगा नहीं, पर इन आँखों को क्या कहा जाय जो वास्तविकता से भिन्न जानकारी देकर भ्रम में डालती हैं ।

यही हाल घ्राणेन्द्रिय का है । हमें कितनी ही वस्तुएँ गन्धहीन लगती हैं, पर वस्तुतः उनमें गन्ध होती है और उनके स्तर अगणित तरह के होते हैं । प्याज लहसुन की महक लगते ही कितने ही ऐसा तिरछा मुँह बनाते वहाँ से भागने लगते हैं, पर कितनों को इस गंध के महसूस होते ही मुख में पानी आ जाता है । यही बात सिगरेट, शराब आदि के बारे में भी है, इन परिस्थितियों में नासिका की गवाही को प्रामाणिक कैसे ठहराया जाय ?

जिह्वा तो हमें चित्र-विचित्र स्वादों की अनुभूति कराती है । विभिन्न प्रकार की चाट-रसगुल्ले, जलेबी, संदेश की याद आते ही चटखारे भरने लगती है, पर क्या यह सब सही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है ? वस्तुस्थिति तो यह है कि खाद्य पदार्थ के साथ मुख के स्राव मिलकर एक विशेष प्रकार का सम्मिश्रण बनाते हैं, उसी को मस्तिष्क स्वाद के रूप में अनुभव करता है । यही सच होता तो नीम के पत्ते मनुष्य की तरह ऊँट को भी कड़वे व कसैले लगते और वह उन्हें न खाता । ऊँट को नीम की पत्तियों का स्वाद मनुष्य की जिह्वा अनुभूति से बिल्कुल भिन्न होता है । इसका मतलब यह हुआ कि हमारी जीभ वास्तविक स्वाद को पकड़ नहीं पाती । भिन्न-भिन्न प्राणी अपनी जीभ के अनुसार भिन्न स्वाद अनुभव करते हैं । मलीन वस्तुओं को मनुष्य की जीभ स्वीकार नहीं करती, पर शूकर के लिए वही परम स्वादिष्ट है और वह खूब आनन्द से खाता है । बुखार रहने, मुँह में छाले हो जाने पर वस्तु के स्वाद का अनुभव ही नहीं होता । इस आधी अधूरी जानकारी वाली जिह्वा इन्द्रिय को सत्य की साक्षी के लिए कैसे स्वीकारा जाय ?

इसी कारण तत्त्वेत्ताओं ने यथार्थ ही कहा है, "कि हर व्यक्ति का अपना मनोनिर्मित संसार है, वह उसी अपनी बनाई दुनिया में विहार करता है, पर सही माने में यह दुनिया है कैसी ? इस सवाल का एक ही जवाब दिया जा सकता है कि यह जड़ परमाणुओं की नीरस व कोलाहलपूर्ण हलचल भर है । यहाँ तो परमाणुओं, अणुओं की धूल बिखरी है और किन्हीं प्रवाह में इधर-उधर दौड़ती-भागती रहती है । इसके अलावा यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं जिसे रूपवान, कुरूप, अच्छा, बुरा की संज्ञा दी जा सके ।"

सही माने में तो संसार वह है ही नहीं जिसे हम देखते और अपने ऊपर आरोपित कर लेते हैं । हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों के भुलावे, भ्रम में न आकर साधना उपासना से प्राप्त अन्तर्दृष्टि से निहारें तो स्पष्ट होगा कि सारा का सारा भ्रम जंजाल मिटता जा रहा है और यथार्थता वास्तविकता सामने आ रही है । इस वास्तविक के बोध होने पर तो परम सत्ता की कण-कण में व्याप्त तथा अपना अन्तःकरण भी उसी से ओत-प्रोत दिखाई देगा और सर्वत्र आनन्द का साम्राज्य ही होगा और उसके मध्य में होगें भली-भाँति आनन्दामृत में परितृप्त हम । अच्छा हो ऐसी वास्तविक बोध की दुनिया में जिया जाय । अपनी अन्तर्दृष्टि को जाग्रत कर यथार्थता वस्तुस्थिति को समझने पाने में प्रयत्नशील हुआ जाय । इसीलिये ऋषि कहते आए हैं—"अविद्या से निकलकर ज्ञान की ओर, प्रकाश की ओर बढ़ो" ।

अंधकार अस्थिर, प्रकाश शाश्वत्

प्रत्येक वस्तु के दो पक्ष होते हैं—एक उज्ज्वल तो दूसरा इसके विपरीत कालिमा से भरा । दिन भर में बारह घण्टे प्रकाश तो बारह घण्टे अन्धकार होता है । शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष के रूप में माह में दो बार अँधेरा और उजाला अपने प्रधान रूप में रहता है । अन्धकार के साथ प्रकाश का एक अविच्छिन्न समन्वय सृष्टा ने अपनी हर मूलकृति में किया है । अन्धकार से भटकाव होता है । इससे मनुष्य को उबारने के लिये कहीं न कहीं से प्रकाश किरणें आती हैं और सही मार्ग दिखाती हैं ।

अन्धेरी रात में अपना मार्ग ढूँढ़ता राही चन्द्रमा की किरणों में या झिलमिल तारों की रोशनी में अपना रास्ता बना लेता है । इसी तरह समाज में दुराचारी, पापों की अभिवृद्धि के रूप में जब उसका अन्धकार वाला पक्ष प्रबल होने लगता है तो महामानवों के प्रेरणाप्रद विचारों एवं उत्कृष्ट चिन्तन के रूप में प्रकाश किरणें आती हैं और अन्धकार के साम्राज्य को मिटा देती हैं ।

मानवता का अब तक का इतिहास यही बताता है कि अँधियारा वाला पक्ष कभी भी उजले पक्ष पर हावी नहीं हो पाया । जब-जब भी ऐसे प्रयास हुए हैं—दैवी चेतना शक्ति के प्रकाश पुञ्ज उठ खड़े हुए और उन्होंने तम से मोर्चा लेकर अन्धकार को मिटाकर ही दम लिया ।' अधर्म के विनाश और सत्धर्म की स्थापना के लिये, दुष्प्रवृत्तियों के निवारण और सत्प्रवृत्तियों की स्थापना के लिये ऐसे प्रकाश पुत्र जन्म लेते हैं और अपनी प्रचण्ड विचार शक्ति द्वारा चारों ओर प्रातः के उदीयमान सूर्य की तरह प्रकाश किरणें बिखेर देते हैं ।

प्रकृति के अन्तराल में भी विश्वनियन्ता ने ऐसी ही कुछ विचित्रताओं का समावेश कर रखा है जो अपनी अद्भुतताओं से मानव को हतप्रभ भी कर देती हैं एवं विकास के पथ पर चलते रहने की सतत् प्रेरणा देती रहती हैं । पृथ्वी के दोनों ध्रुवों पर सूर्य छह-छह माह प्रकाशमान रहता है । जिस समय एक ध्रुव पर प्रकाश होता है, दूसरे ध्रुव पर अन्धकार का साम्राज्य छाया रहता है; लेकिन इसी अन्धकार के समय दोनों गोलार्द्धों में एक ऐसी आकर्षक प्रकाश ज्योति दिखाई देती है जो वास्तविक होते हुए भी लगती काल्पनिक ही है । जैसे-जैसे अन्धकार घना होता जाता है, यह प्रकाश ज्योति प्रकट होने लगती है और धीरे-धीरे उज्ज्वल प्रकाश की एक पट्टी के रूप में बदल जाती है । इस असाधारण प्रकाश पुञ्ज को पृथ्वी से साठ से लेकर पाँच सौ किलोमीटर की ऊँचाई तक देखा जा सका है । सौ मीटर से लेकर कई किलोमीटर लम्बी यह पट्टी निरन्तर प्रकाशमान रहकर अन्धकार को चुनौती देती रहती है ।

प्रकृति जगत के अन्तराल में ऐसी अनेकानेक व्यवस्थाएँ हैं जो हमें सृष्टा की विराट्ता का मात्र परिचय ही नहीं देतीं, वरन् निरन्तर प्रेरणा देती रहती हैं । वस्तुतः प्रकाश का अभाव ही अन्धकार है । निराश, हीन भावनाग्रस्त व्यक्ति को उसका अन्धकार वाला पक्ष ही प्रबल दिखाई देता है तो आशावादी, महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति उस अन्धेरे में भी अपना मनोबल बनाये रखकर अपना पथ ढूँढ़ता चला जाता है । पतितों, पददलितों एवं पिछड़ों को अन्धकार से उबार कर प्रकाश की ओर ले जाने के लिये ही समाजसेवियों, महामानवों का आविर्भाव होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । अपने चिन्तन, उपदेश एवं सत्परामर्श द्वारा वे समाज को नयी दिशा देते हैं ।

अन्धकार स्थायी नहीं है । उसे तो मिटना ही है । चिरपुरातन काल से ऋषि 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की प्रेरणा अपनी ऋचा में देते आ रहे हैं । आवश्यकता मात्र स्वयं को पहचानने की है, अज्ञान के, अन्धकार के, अभाव के पथ से हटाकर स्वयं को प्रकाश की ओर उन्मुख करने की है । तम से समझौता करने वाले प्रकाश पुत्रों को, अन्धकार स्वीकारने वाले प्राणियों को भी प्रकृति यही सतत् प्रेरणा देती आ रही है कि वे स्वयं को उस दिव्य प्रकाश की ओर अग्रसर करें, जो मानव का अन्तिम लक्ष्य है ।

स्वार्थ सिद्धि बनाम परमार्थ परायणता

माया और ब्रह्म के सुयोग से मिलकर बनी हुई, इस सृष्टि में दोनों का अपना-अपना अस्तित्व जड़ और चेतन के रूप में पृथक् भी दृष्टिगोचर होता है । जड़ पदार्थ प्रकृति वर्ग में आते हैं और प्राणियों की चेतना में ब्रह्म की सत्ता दृष्टिगोचर होती है । इसी युग्म द्वारा गाड़ी के दो पहियों की तरह संसार की विभिन्न हलचलें गतिशील होती रहती हैं । मानवीया सत्ता में भी दोनों का यह सघन संयोग प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है । शरीर माया की प्रकृति की जड़ संरचना है । आत्मा को परमात्मा का अंशधर, प्रतिनिधि माना जाता है । यह दोनों ही अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण और समर्थ हैं । दोनों की अपनी-अपनी सीमा भी और आवश्यकता भी । इन्हें साथ-साथ जुटाया जा सकता है । दो पैर क्रमबद्ध से उठते और लम्बी मंजिल पार करते हैं । दो हाथों का परस्पर सघन संयोग रखे रहते हैं । गाड़ी के दो पहिये साथ-साथ लुढ़कते हैं । स्त्री-पुरुष मिलकर स्नेह सहयोग भरा गृहस्थ चलाते हैं । फिर कोई कारण नहीं कि शरीर और आत्मा की आवश्यकताएँ दूरदर्शी रीति-नीति अपनाकर जुटाई न जा सके और प्रसन्नता एवं प्रगति का उभयपक्षीय लाभ उठाते हुए यह जीवन सुखमय न बिताया जा सके ।

शरीर रक्षा के लिए अन्न, वस्त्र और आच्छादन की व्यवस्था करनी पड़ती है । प्रसन्नता और प्रगति के लिए इन्द्रियो की क्षमता एवं उत्तेजना का सहारा लिया जाता है । उतने भर से सामान्य प्रत्यक्ष जीवन का काम चल जाता है और निर्वाह चक्र बिना किसी कठिनाई के गतिशील रहता है । व्यतिक्रम अतिवाद अपनाने से आरम्भ होता है । पेट भूखा रहने पर भी परेशानी होती है, किन्तु यदि उसमें अनावश्यक ठूँस-ठूँस कर भार लदे तो फिर दूसरी तरह का संकट उत्पन्न होता है । इसलिए मध्यवर्ती मार्ग ही श्रेयस्कर माना गया है । जो इस या उस स्तर की अति बरतते हैं वे ही विपत्ति मोल लेते हैं । अनशन पर बैठने से भी मृत्यु हो सकती है, अत्यधिक खा मरने पर अमृत भी विष का काम करता है । अति बरतना ही विपत्तियों का प्रधान कारण है । जो सन्तुलन बनाकर चलते हैं, वे ही बुद्धिमान कहलाते और सफल जीवन जीते हैं । यदि किसी को अपना स्वार्थ ही प्रिय हो तो उसे शरीर और आत्मा के बीच सन्तुलन बनाकर ही चलना चाहिए । दोनों में से किसी को अति नहीं अपनाने देनी चाहिए । एक-दूसरे के स्वार्थों में टकराव नहीं होने देना चाहिए, वरन् ऐसी रीति-नीति अपनाना चाहिए जिससे दोनों का समान हित साधन होता रहे । न कोई उपेक्षित, अभावग्रस्त रहे और न किसी को दूसरे का भाग भी हड़प जाने की छूट मिले । इसी को सह-जीवन, सह-अस्तित्व, समन्वय कहते हैं । इसे अपनाने पर वे सभी लाभ भरपूर मात्रा में मिलते हैं, जिसे कोई स्वार्थ सिद्धि कहता है, कोई आत्मकल्याण । वस्तुतः दोनों एक ही हैं, पर जब अतिवाद अपनाया जाता है तभी चिन्ता और विपत्ति आ खड़ी होती है ।

शरीर निर्वाह के लिए मुट्ठी भर साधनों की आवश्यकता है । उसे समस्त जीवधारी कुछ ही समय के प्रयास से, रास्ता चलते पूरा करते रहते हैं फिर बीस उँगलियों वाला और असाधारण बौद्धिक प्रतिभा वाला आदमी उसे कुछ ही घण्टों के प्रयास से जुटा न सके ऐसा हो ही नहीं सकता । निरन्तर की व्यस्तता अपनाये रहने पर भी जब अभावग्रस्तता की शिकायत करनी पड़े तो उनके दो ही कारण हो सकते हैं— एक पिछड़ेपन की अस्त-व्यस्तता, दूसरे अतिवादी ललक लिप्साएँ । वासना, तृष्णा, अहंता की तीन ललक लिप्साएँ, जब मनुष्य पर चढ़ दौड़ती हैं तो फिर इच्छाओं, आवश्यकताओं का स्वरूप इतना बढ़ जाता है कि उस खाई को समूची प्रतिभा और क्षमता झोंक देने पर भी पाटना सम्भव नहीं होता । आवश्यकताएँ सीमित होने के कारण सरलतापूर्वक पूरी हो सकती हैं । किन्तु लिप्साओं की कोई सीमा नहीं । एक के पूरा होते-होते दस नई एवं बड़ी और उठ खड़ी होती हैं । उन्हें पूरी करने का अवसर आने से पूर्व ही सौ नई और मोटी तगड़ी और सामने आ खड़ी होती हैं । आग में ईंधन डालते रहने पर वह और भी अधिक भड़कती है । समुद्र पाटना सरल है, पर तृष्णा की पूर्ति हो सकना सम्भव नहीं । उस प्रयास में रावण और हिरण्यकश्यपु तक असफल रहे और अभाव की शिकायत करते-करते मर गये । सिकन्दर, नेपोलियन तक को अपनी उपलब्धियाँ कम लगती रहीं । फिर सामान्यजनों को इस भस्मक रोग के रहते तृप्ति तुष्टि की आशा नहीं करनी चाहिए ।

आम आदमी इसी मनोरोग से ग्रसित पाया जाता है कि वह शरीर निर्वाह के लिए जितना आवश्यक है उतना जुटा लेने भर से सन्तुष्ट नहीं रहता । बड़ा आदमी बनने की लिप्सा अपनाकर एक प्रकार की बौखलाहट अपना लेता है । और-और-और-और की रट लगाते-लगाते ऐसी मनःस्थिति में जा पहुँचता है कि जितने साधन सामने हैं, वे बहुत कम प्रतीत होते हैं । उनमें चौगुने-सौगुने पाने की आतुरता भूतोन्माद की तरह चढ़ी रहती है । इसी व्यथा को बोलचाल की भाषा में भौतिक महत्त्वाकांक्षा और अध्यात्म चर्चा में ऐषणा या तृष्णा कहा जाता है । निर्वाह के लायक कमाने और सन्तोषपूर्वक दिन गुजारने के हजार रास्ते हैं । इसमें किसी अपंग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अविकसित को ही कठिनाई हो सकती है । सामान्य जीवन इतने निर्वाह साधन सुविधापूर्वक उपार्जित कर सकता है जिनसे जीवनचर्या नितान्त सरलतापूर्वक पूरी होती रहे । इतना ही नहीं बहुत करके तो वह अनायास ही इतना होता है कि मिल बाँटकर खाने और बदलने में हँसती-हँसाती जिन्दगी खरीदने की बात सोचनी पड़े, पर उनके लिए क्या कहा जाय जिनके सिर पर अहंकार भरी अमीरी का नशा सात बोतल पी चुकने वाले की तरह चढ़ा है । जिसे अपनी ही रट है, दूसरे की सुनने तक की फुरसत नहीं ।

अमीरी की, बड़ा आदमी कहलाने की ललक ऐसी है जिसे नीति-नियमों के अन्तर्गत रहकर पूरा नहीं किया जा सकता । उचित साधनों से उचित व्यवसाय एवं उचित परिश्रम करके उचित लाभांश रखने पर किसी भी व्यवसाय में इतना लाभ नहीं मिल सकता जिससे कोई धन कुबेर बन सके । अपने देश में तो ऐसी परिस्थितियाँ हैं ही नहीं कि साथियों को भागीदारी देते रहने पर भी कोई धनाढ्य बन सके । फिर सहृदयता का तकाजा भी साथ-साथ चलता है, जो कहता है कि इर्द-गिर्द के पिछड़ेपन को घटाने के लिए हर समर्थ को उदारता बरतनी चाहिए । यह उदार सहृदयता जहाँ भी जीवित होगी, वहाँ निर्वाह से अधिक की सम्पदा को हाथों-हाथ पीड़ा और पतन के निवारण में लगाना पड़ेगा । अन्तरात्मा की इस पुकार को अनसुनी करने वाले ही जमा करने की ठाट-बाट बनाने, फिजूलखर्ची अपनाने दुर्व्यसनों में लुटाने की बात सोच सकते हैं ! कृपणता ही जो बने, उसे सन्तान के निमित्त छोड़ने का निर्णय करती है ।

उदारमना सभी को अपना समझते हैं और परिवार को स्वावलम्बी, सुसंस्कारी बनाने भर की बात सोचते हैं । उन पर संग्रह को उड़ेल देने का अनर्थ नहीं करते । जो हाथ-पैर से कमा सकता है उसके लिए बाप-दादों की दौलत भी हराम की कमाई मानी जायगी और यह सुनिश्चित तथ्य है कि जो भी हराम की कमाई खायेगा, बेमौत मरेगा । जिस प्रकार रोटी कमाने और हजम करने के लिए श्रम की आवश्यकता है, उसी प्रकार जीवनचर्या में नैतिकता बनाये रहने के लिए भी यह आवश्यक है कि अपने निजी परिश्रम की कमाई पर गुजारा किया जाय । हराम की कमाई अपनाना और दूसरों के लिए छोड़ना दोनों ही रिश्वत देने और लेने की तरह अपराध हैं । जो स्वावलम्बी नहीं बन सके, उन आश्रितों को निर्वाह व्यवस्था जुटाने का औचित्य तो है, पर जो मजे में कमाते हैं उनके सिर पर भी यदि अभिभावक सन्तान मोह में उत्तराधिकार को दौलत से लादते हैं तो इसमें तीन हानियाँ हैं—एक यह कि हराम की कमाई जब किसी को भी नहीं पचती और दुर्व्यसनों की विपत्ति लदती हो तो अपनी सन्तान ही उस संकट से कैसे बचेगी ? दूसरी बात यह है कि जो धन जरूरतमन्दों के काम आ सकता था, वह उन्हें नहीं मिला । हक छिना । तीसरा यह कि उस कूड़े-करकट को कमाने में बहुमूल्य जीवन निरर्थक चला गया । इन तीनों हानियों को देखते हुए बुद्धिमत्ता का तकाजा है कि अमीरी का सपना न देखा जाय । औसत देशवासियों के स्तर का निर्वाह क्रम अपनाया जाय और सादा जीवन उच्च विचार के मार्ग पर चलते हुए हर दृष्टि से कृतकृत्य बना जाय ।

अमीरी की एक और सहेली है, वह है—बड़ा कहलाने की अहंकारिता । इसकी पूर्ति के लिए ठाट-बाट बनाना पड़ता है । दर्प या आतंक दिखाना पड़ता है । इसकी पूर्ति के लिए अपव्यय करना एक प्रकार से अनिवार्य हो जाता है । फिजूलखर्ची ही बड़े आदमी होने की निशानी है । शृंगार, फैशन जेवर से लेकर अनेकानेक ऐसे उपकरण जमा करने पड़ते हैं जो दूसरों के पास नहीं हैं । इसकी तुलना करते हुए पड़ोसी अपने को हीन अनुभव करेंगे और हमें बड़ा समझेंगे यह कल्पना की जाती है । कल्पना कहाँ तक सही है यह तो समझदारी की एक किरण फूटते ही पता चल जाता है, पर उन्माद की स्थिति में लगता यही है कि सम्पदा की बढ़ोत्तरी और अहमन्यता की अकड़ में ही सार्थकता है । ऊँचे पद पाने की ललक प्रायः इसी निमित्त रहती है अन्यथा सेवा कार्य तो छोटे पदों पर रहते और भी अधिक अच्छी तरह बन पड़ता है । अहंकार की पूर्ति का सीधा तरीका व्यक्ति में पवित्रता और प्रखरता का समावेश करने और समर्थता का उपयुक्त भाग सेवा-साधना में लगाते रहने से भली प्रकार बन पड़ता है, किन्तु उन्माद के रहते यह सूझ, सूझे कैसे ? उसकी तृप्ति तो साथियों को अपने से हीन सिद्ध करके ही होती है । इसी निमित्त बड़े आदमी व्याहशादियों में दौलत लुटाते हैं, ताकि अन्य लोग अपने को दीन-दयनीय समझें और उन लुटाने वालों के भाग्य को सराहें । दूसरों का व्यंग्य, उपहास, तिरस्कार करके भी कई लोग अपने अहंकार की पूर्ति करते देखे गये हैं । यह समूचा अहंकारी समुदाय एक प्रकार से मनोरोग पीड़ित ही कहा जा सकता है । उनकी मान्यताएँ यथार्थता की कसौटी पर कसे जाने से शत-प्रतिशत असत्य निकलती हैं । न अमीरी बटोरने से किसी का स्वार्थ सिद्ध हुआ है और न बड़प्पन लूटने के लिए अनर्थपूर्वक धन कमाने और उसे पानी की तरह बहाने से किसी को प्रशंसा या प्रतिष्ठा मिली है । चाटुकारों की बात दूसरी है । वे तो किसी को भी उल्लू बनाने के लिए मक्खी को भैंस से बढ़कर बखान सकते हैं ।

शरीरगत विलासिता, तृष्णा और अहन्ता के निमित्त आम आदमी अपनी समूची क्षमता एवं बुद्धिमत्ता खपा देता है । बहुमूल्य जीवन इसी कुचक्र के कोल्हू में पिल जाता है । बदले में क्या मिला ? यह छाये हुए उन्माद की स्थिति में तो सूझना नहीं, पर जब खुमारी उतरती है तो प्रतीत होता है कि भूल ही भूल होती रही । तृष्णाओं की पूर्ति सामान्य उपायों से हो सकना शक्य नहीं । ऐसी दशा में अनीति अपनाने, कुकर्म करने अपराधी दुष्प्रवृत्तियों में निरत रहने के अतिरिक्त और कोई चारा रहता ही नहीं । क्या मनुष्य जीवन इसीलिए मिला था ? क्या इन्हीं विडम्बनाओं की पूर्ति में इस सुर दुर्लभ सुयोग की सार्तकता थी ? यह सोचने पर आँखों के सामने अन्धेरा छाने लगता है । लोगों से जिस प्रशंसा,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिष्ठा की आशा रखी गई थी, वह भी कहाँ पूरी होती है । संकीर्ण स्वार्थपरता में निरत व्यक्ति के अनैतिक और उद्दण्ड आचरण हर किसी के ऊपर बुरी छाप छोड़ते हैं । जीभ से कोई कहे न कहे, पर भीतर ही भीतर इन अहन्ता के अतिवादियों के ऊपर सर्वसाधारण की घृणा ही उफनती है । कई बार तो ईर्ष्यालु लोग उन्हें नीचा दिखाने के लिए अकारण ही आक्रमण कर बैठते हैं । शरीरगत वितृष्णा अपनाने वाले, अमीरी और बड़प्पन का सपना देखने वाले, लाभ कमाने के स्थान पर इतना घाटा उठाते हैं जिनकी पूर्ति समय निकलने पर और किसी प्रकार हो ही नहीं सकती ।

परिवार बढ़ाते चलना, सदस्यों को राजकुमारों जैसी सुविधाओं का आदी बनाते रहना एक ऐसा व्यामोह है जिसकी भयानक परिस्थिति का पता तब चलता है, जब होश वापस लौटता है । आरम्भ में तो नित नये बच्चे उत्पन्न करने और उस कमाई पर फूलकर कुप्पा होने, ढोल बजाने, बधाई बाँटने की ही ऊत सूझती है । दिन गुजरते ही जब उनकी बढ़ती आवश्यकताएँ जुटाने का प्रश्न सामने आता है, तब बगलें झाँकते हैं और सोचते हैं कि प्रजनन में आँखें मूँदकर प्रवृत्त रहने में कितना बड़ा अनर्थ छिपा पड़ा था ।

आत्मिक प्रगति के साथ-साथ सच्ची स्वार्थ सिद्धि की इच्छा रखने वालों को उन भूलों की आरम्भ से ही जानकारी रखनी चाहिए जो आरम्भ में तो आकर्षक लगती हैं पर पीछे धोबी द्वारा कपड़ा पीटने या धुनिये द्वारा रूई धुनने की तरह पछाड़ती पीटती रहती हैं । अच्छा हो समझदारी समय रहते उगे और बताये कि शरीर का महत्त्व इतना ही है कि उसे निर्वाह साधन तो दिये जायें पर वासना, तृष्णा और अहन्ता की उद्दण्डता में हित सोचने की भूल न करने दी जाय । जिनसे इतना बन पड़ेगा, वे ही यह सोच सकेंगे कि जीवन में महत्त्वपूर्ण भागीदारी आत्मा की भी है और उसकी भी कुछ आवश्यकताएँ हैं । इनकी ओर से सर्वथा आँख बन्द कर लेने का अर्थ है अतिवाद अपनाना, जिसमें अन्तराल को आवश्यक परिपोषण न मिलने पर निरन्तर त्रास सहना और रुदन करना पड़ता है ।

आत्मा का अस्तित्व भी जीवनचर्या में गुँथा हुआ समझा जा सके और उसकी भी कुछ इच्छा आवश्यकता होने पर ध्यान दिया जा सके तो फिर इसी निर्णय पर पहुँचना होगा कि शरीर पर ही घी के घड़े न लुढ़काते रहा जाय, वरन् अन्तरात्मा की क्षुधा को भी समझा जाय और उसे जुटाने के लिए कुछ समय, श्रम एवं मनोयोग एवं साधन भी जुटाए जायँ । यही है सन्तुलन का वह ध्रुव केन्द्र जिस पर दूरदर्शिता नियोजित करने पर किसी उपयुक्त दिशाधारा का अवलम्बन सम्भव हो सकता है । महत्त्वाकांक्षाएँ आत्मा की भी तो हैं । उन्हें भी आगे बढ़ने, ऊँचे उठने की अभिलाषा, आकांक्षा है । महामानवों की श्रेणी में बैठने, ऋषि कल्प बनने तक की प्रगति करने और अपूर्णता से पूर्णता की ओर चलने के लिए उसका भी मन मचलता रहता है, पर यह कार्य माला घुमाने, धूपबत्ती जलाने भर जैसी खिलवाड़ से सम्भव नहीं हो सकता । इसके लिए उस कार्य पद्धति को अपनाना पड़ता है जिसे लोकसाधना अथवा परमार्थ परायणता कहा जाता है । इसे नहीं कर सकेगा जो अपने समय एवं मनोयोग से शरीरगत वितृष्णाओं को रोककर इस दिशा में मोड़ने की प्राथमिक आवश्यकता समझने एवं उसे करने का साहस जुटाने में समर्थ हो सकेगा ।

सच्चा स्वार्थ ही परमार्थ है । संकीर्ण स्वार्थपरायण शरीरगत वितृष्णाओं के जाल-जंजाल में फँसता और बेमौत मरता है, जबकि परमार्थी आत्मा की महत्ता और आवश्यकता समझते हुए उस राजमार्ग पर चल पड़ता है जिस पर महामानव चले और कृत-कृत्य हुए हैं ।

'वसुधैव कुटुम्बकम्'–उदात्त भावना विकसित हो

''आत्मवत् सर्व भूतानि यः पश्यति सः पण्डितः।'' के एक सूत्र में मानव कल्याण की समग्र भावना सन्निहित है । यह सारा विश्व एक सूत्र में बँध सकता है यदि सभी लोग इसके अनुसार संसार को एक कुटुम्ब के रूप में देखें और प्रत्येक मनुष्य से वैसे ही प्रेम करें जैसे अपने परिवार के सदस्यों के साथ करते हैं । व्यवहार की सहृदयता हृदय की विशाल भावनाओं से समुन्नत होती है । जितने उच्च विचार और उदार भावनाएँ होंगी, उतना ही औरों को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता भी होगी । चिरस्थायी ममत्व अपनत्व मनुष्य की आंतरिक उत्कृष्टता से ही प्राप्त होता है । वाचालता और कपटपूर्ण व्यवहार से किसी को थोड़ी देर तक अपनी ओर लुभाया जा सकता है, पर स्थिरता का सूत्र तो प्रेम ही है । हमारे अंतःकरण में दूसरों के लिए जितनी अधिक मैत्री की भावना होगी, उतना ही अपना व्यक्तित्व विकसित होगा, उतनी ही आत्म-शक्तियाँ विस्तरित होंगी ।

अपने हित की साधना का भाव तो पशु-पक्षियों तक में पाया जाता है, परन्तु अन्य जीवधारियों की तुलना में मनुष्य जीवन में दिव्यता की, दिव्य विकास की सारी सम्भावनाएँ विद्यमान हैं । अतः इसमें कोई बुद्धिमानी नहीं हो सकती कि मनुष्य सम्पूर्ण जीवन केवल अपनी ही स्वार्थपूर्ण प्रवंचनाओं में बिता दे । इससे अन्त तक मानवीय, दिव्य शक्तियाँ प्रसुप्त बनी रहती हैं । प्रेम और आत्मीयता की भावनाओं का विकास नहीं हो पाता । स्वार्थपरता एवं संकीर्णता के कारण मनुष्य का जीवन कितना दुःखमय, कितना कठोर हो सकता है, यह सर्वविदित है । वस्तुतः सज्जन तथा सराहनीय वह है जो केवल स्वहित तक सीमित नहीं है । जो उदारतापूर्वक सबके हित की बात सोचता है, वही व्यक्ति श्रेय का अधिकारी है ।

''दि राइट्स ऑफ मैन'' नामक अपनी कृति में सुप्रसिद्ध मनीषी टामस पेन ने कहा है कि—''यह समूचा विश्व मेरा देश है और भलाई करना मेरा धर्म ।'' विश्व प्रेम की इस भावना में जो रमणीयता, सौन्दर्य दर्शन तथा मोहकता सन्निहित है, यथार्थ में यही मनुष्य की सच्ची धार्मिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्पत्ति हो सकती है । इसी से पुण्य पथ प्रशस्त होता है, इसी से प्रसुप्त क्षमताएँ जाग्रत होती हैं । घृणा और क्रोध, बैर और बदले की भावना से आज हमारा जीवन स्तर गिरता चला जाता है । इससे सामूहिक तौर पर व्यक्ति और समाज दोनों का पतन होता है । समाज में सात्विकता का प्रकाश जिन सद्गुणों से फैलता है, उनकी ओर संकेत करते हुए भगवान् कृष्ण ने कहा है—

"अद्वेष्टा सर्वभूतानां, मैत्रः करुणा एव च ।
निर्ममो निरहंकार सम दुख सुख क्षमी ॥"

अर्थात् जो सम्पूर्ण प्राणियों को अद्वैत भावना से देखता है, सबके साथ मैत्री, करुणा, माया-मोह से रहित और नम्रतापूर्ण व्यवहार करता है, जो सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति क्षमा भाव रखता है, उनके साथ सुख और दुःखों में समान रहता है, वही पूर्ण पुरुष है । अर्थात् महानता का लाभ मनुष्य इन्हीं सद्गुणों के आधार पर पाता है ।

स्वामी रामतीर्थ ने विशाल संसार को अपना घर बताते हुए कहा है कि सर्वत्र प्रेम का साम्राज्य है । इसके बिना मानव जीवन में सरसता नहीं आती । हम जितने अधिक अंशों में समाज के प्रति आत्म-विस्तार करते हैं, उसी अनुपात में प्रेम की अन्तःज्योति हमारे जीवन में मधुरता भरती जाती है । भावनाओं का यह विस्तार मनुष्य को अपने आप से करना होता है । व्यक्तिगत चरित्र निर्माण से यह प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, धीरे-धीरे परिवार, गाँव, समाज, राष्ट्र और विश्व के साथ उसका सामंजस्य बढ़ता जाता है । इसी क्रम में व्यक्ति को निज का ज्ञान, बौद्धिक विकास और ईश्वर अनुभूति की सिद्धि प्राप्त होती है । यह आत्मयोग ही ब्रह्मज्ञान का सबसे सीधा और सरल रास्ता है ।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की उदात्त भावना ही आत्मा के पूर्ण विस्तार की प्रतीक है । ऐसे व्यक्तियों के सहृदयता, उदारता, कष्ट सहिष्णुता आदि सद्गुण पराकाष्ठा तक जा पहुँचते हैं । उनके लिये अपने पराये का भेद मिट जाता है । वह परमात्मा के प्रकाश में ऐसे असीमत्व का अनुभव करते हैं जिससे उनके सम्पूर्ण दुःख, अभाव आदि नष्ट हो जाते हैं और प्राणिमात्र की सेवा में सर्वस्व बलिदान करने की महानता जाग्रत होकर धरती को कृतार्थ कर देती है । उदारचेताओं की भाँति हमें भी 'वसुधैव कुटम्बकम्' की यह भावना विकसित कर पूर्णता के लक्ष्य को पाना चाहिए ।

जीवन बहुमूल्य है—इसे व्यर्थ न गँवायें

किसी वस्तु की कीमत क्या होगी ? इसका निर्धारण उथले पर्यवेक्षण से कर सकना सम्भव नहीं है । जब तक उसका स्वरूप एवं उपयोगिता मालूम न हो, तब तक सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता । जानकारियों के अभाव में बहुमूल्य प्रकृति पदार्थ भी पैरों तले सदियों तक रौंदे जाते हैं । आदिम युग में उनकी कीमत दो कौड़ी जितनी थी । धूल कणों में ही सोना, चाँदी, पीतल, अल्यूमीनियम, लोहा, पीतल, ताँबा के अयस्क घुले मिले थे । अधिकांश व्यक्तियों की नजरों के सामने वे आते भी थे, पर किसी को भी विदित न था कि वे इतने कीमती एवं उपयोगी हो सकते हैं, पर जैसे ही उनके विषय में विस्तृत जानकारियाँ मिलीं, उन्हें बहुमूल्य समझा जाने लगा । कोयले के खदानों में ही हीरे के कण भी विद्यमान थे, पर दीर्घकाल तक वे एक अजूबे से अधिक नहीं माने जाते थे । उनकी कीमत उस दिन बढ़ी, जब उनका स्वरूप ज्ञात हुआ ।

पेट्रोलियम सम्पदा के विपुल भण्डार का परिचय किसी न किसी रूप में तो पहले भी मिलता रहा होगा, पर ऊर्जा के रूप में प्रयुक्त करने, उससे विपुल धन कमाने का सुयोग हजारों, लाखों वर्षों तक कहाँ बन सका ? अभी कुछ सदियों पूर्व तक दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया की आदिम जातियाँ सोने की खदानों पर वैभव से अनभिज्ञ बनी कंगालों की तरह रहती थीं, पर उन्हें अपनी बहुमूल्य सम्पदा का जरा भी बोध न था । चेतना उस समय आयी, जब अँग्रेज आए और उस पर अपना आधिपत्य जमा कर मालामाल बन गये ।

किसी भी वस्तु की सही कीमत लगानी हो तो उसकी विस्तृत जानकारी होनी आवश्यक है । जड़ पदार्थों की तुलना में चेतन्य घटकों की उपयोगिता एवं महत्ता कहीं अधिक है । कोई भी पदार्थ क्रिया-कलाप की दृष्टि से चेतन्य जीवों का स्थानापन्न नहीं बन सकता । मनुष्य चेतना सम्पन्न इस सृष्टि की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई है । तत्व दृष्टियों ने अपनी परोक्ष दृष्टि से पाया है कि सामान्य दिखायी पड़ने वाला मनुष्य भी विलक्षणताओं का भाण्डागार है । यदि उसकी प्रसुप्त क्षमताओं को जाग्रत किया जा सके तो उसी जड़ कलेवर में महाशक्ति सम्पन्न एक नये मानव का प्रादुर्भाव सम्भव है ।

भौतिक विज्ञान की यह विडम्बना रही है कि उसने प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने वाले पदार्थों अथवा संसार के जड़ उपादानों भर का यह महत्त्व समझा । मोटी दृष्टि को जितना दिखायी पड़ा तथा प्रयोग में आया मात्र उतने का ही मूल्यांकन किया गया । परोक्ष भूमिका निभाने वाले घटकों की उपेक्षा हुई । अर्थ की भाषा में जीवन की व्याख्या करने वालों ने तो कुछ दशकों पूर्व तक शरीर का भी अत्यन्त उथला मूल्यांकन किया था । कुछ विशेषज्ञों का मत था कि शरीर के विभिन्न तत्वों, कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन आदि की बाजारू कीमत लगायी जाय तो वह पचास रुपयों से अधिक नहीं प्राप्त हो सकेगी, परन्तु मानव शरीर की गहराइयों में जाकर खोज करने वालों ने अब उस मान्यता को उलट दिया है । अमरीका के येल विश्वविद्यालय के एक चिकित्सा विशेषज्ञ का मत है कि मानव शरीर से स्रवित होने वाले एन्जाइमों की ही मात्र कीमत लगायी जाय तो लाखों रुपयों से ऊपर होगी । जीवनपर्यन्त शरीर के विभिन्न सूक्ष्म संस्थानों से होने वाले स्रावों की कीमत तो करोड़ों रुपये होगी । कितने ही सूक्ष्म घटक ऐसे हैं जिनकी कीमत ही नहीं लगायी जा सकती । शरीर को स्वस्थ, सन्तुलित रखने तथा मानवीय विकास को गति देने में पिट्यूटरी तथा पीनियल ग्रन्थियों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो योगदान है, उनकी कीमत किस तरह आँकी जा सकती है । वफादार नौकर की तरह बिना कहे अपनी-अपनी सक्रिय भूमिका निभाने वाले अंगों—हृदय, गुर्दे, फेफड़े, आँख, नेत्र, कान आदि के कार्यों का मूल्यांकन पैसों में कर सकना कैसे सम्भव है ? उक्त विशेषज्ञ का मत है कि मनुष्य में भौतिक शरीर का ही अभी यथार्थ रूप में मूल्यांकन सम्भव नहीं हो पाया है ।

बुद्धि और मन की परतें और भी विलक्षण, और भी सामर्थ्यवान हैं । बुद्धि की प्रखरता की परिणति ही सर्वत्र वैज्ञानिक आविष्कारों के रूप में दिखायी पड़ रही है । उसी का एक छोटा सा अनुदान पाकर कोई वैज्ञानिक बन जाता है तो कोई गणितज्ञ । कोई चिकित्सा विशेषज्ञ कहलाता है तो कोई अध्यापक नित नये साधनों का विकास उसी के सहयोग से हो रहा है । भौतिक उपलब्धियों में उसी की प्रमुख भूमिका होती है ।

प्रज्ञा स्तर तक पहुँची अन्वेषक बुद्धि ही विचारकों, मनीषियों, तत्ववेत्ताओं को जन्म देती है । बुद्धि की गहरी परत 'इन्ट्यूशन' की है । जबकि बुद्धि का सामान्य तथा लौकिक पक्ष इन्टेलीजेन्स कहलाता है । भौतिक तथ्यों को खोजने वाली 'इन्टेलीजेन्स' स्तर की बुद्धि है, जबकि पराभौतिक सत्यों की खोज में 'इन्ट्यूशन' स्तर की बुद्धि ही काम आती है ! अभी मनुष्य 'इन्टेलीजेन्स' के धरातल पर है । अँगुली पर गिने जाने वाले थोड़े से व्यक्ति ही 'इन्ट्यूशन' के स्तर पर पहुँच पाते हैं । जिस दिन संसार इस द्वितीय स्तर पर पहुँचेगा, दुनिया का स्वरूप कुछ और ही होगा ।

मन की परतें कोई कम विलक्षण नहीं हैं । मनुष्य इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा कल्पनाओं के उभार को तो अनुभव करता था, पर एक सदी पूर्व तक उनके स्वरूप एवं सामर्थ्य से अपिरिचित था । बीसवीं सदी में विज्ञान के साथ-साथ मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी प्रगति हुयी है । अब अनुभव किया जाने लगा है कि मन की शक्ति शरीर से कम नहीं, कहीं अधिक ही है । मनुष्य को अभीष्ट साँचे में ढालने के लिए मनोवैज्ञानिक प्रयोगों का सिलसिला भी चल पड़ा है । मन:क्षेत्र को अब महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों एवं सम्भावनाओं का आधार समझा जा रहा है ।

शरीर, मन और बुद्धि के प्रत्यक्ष पक्षों एवं उनकी सामर्थ्यों का जितना परिचय मिला है, उसी के आधार पर मनुष्य का मूल्यांकन किया गया है, पर अधिकांश परतें अभी भी अविज्ञात हैं जो प्रत्यक्ष की तुलना में कहीं अधिक सामर्थ्यवान हैं । जिस दिन उन पक्षों का रहस्योद्घाटन होगा उस दिन मनुष्य अनुभव करेगा कि तत्ववेत्ता ऋषियों की वह उक्ति अक्षरशः सही है कि "मनुष्य से महान् एवं श्रेष्ठ इस संसार में और कुछ भी नहीं ।"

जीवन का यथार्थ मूल्यांकन वस्तुतः वही कर सकते हैं जो उसकी गरिमा से परिचित हों । पशु-पक्षियों की दृष्टि में बहुमूल्य पदार्थों की भी कीमत दो कौड़ी के बराबर होती है जो अविकसित एवं पिछड़े हैं अथवा पशु प्रवृत्तियों में संलग्न रहते हैं, उनके लिए मनुष्य जीवन कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखता । निरुद्देश्य भटकने पर प्रजनन जितने प्रयोजनों में जीवन गँवा देने, मरने और मारने पर उतारू साधारण व्यक्ति जीवन का मूल्य कहाँ समझते हैं । वे तो उसे नासमझ की तरह हैं, जिसे अनायास ही चन्दन का उद्यान हाथ लग गया था और वह उससे अनजान बना उसे कोयला बनाकर बाजार में कौड़ी के मोल बेचता रहा है । अधिकांश व्यक्ति आत्म-गरिमा से अपिरिचत होने से अपनी सामर्थ्यों को कोयला बनाते रहते हैं और हाथ मलते हुए इस दुनिया से पश्चाताप के आँसू बहाते चल बसते हैं । अधिक अच्छा हो कि जीवन को जैसे-तैसे काटने की अपेक्षा उसके स्वरूप पर गम्भीरता से विचार कर लिया जाय । इतना सम्भव हो सके तो निरर्थक भटकावों से बचने तथा सामर्थ्यों को सुनियोजित करने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है ।

इस दिव्य अनुदान को व्यर्थ न जाने दें

श्रुति में एक अलंकारिक कथा आती है कि प्रजापति ने समस्त प्राणियों के शरीर बनाये और उनमें से किसी को पसंद करके उनमें निवास करने के लिए देवताओं से कहा । देवताओं ने अन्य सब शरीर अस्वीकृत कर दिये । मात्र मनुष्य शरीर को ही अपने योग्य समझा और उसे स्वीकार किया ।

देवता अनेक थे । मनुष्य शरीर एक । सभी उसमें कैसे रहें ? इस प्रश्न पर उन लोगों ने समझौता कर लिया और एक-एक अवयव में रहते हुए काम चला लेने का समझौता किया । अग्नि ने वाणी में, प्राणवायु ने नासिका में, नेत्रों में सूर्य चन्द्र ने, हृदय में इन्द्र ने, मस्तिष्क में परब्रह्म ने इसी प्रकार अंग-प्रत्यंगों से लेकर रोम कूपों तक में समस्त देवता प्रसन्नतापूर्वक निवास करने लगे ।

इसी प्रकार एक पौराणिक अलंकारिक वर्णन में देवताओं के निवास के लिए अनेक लोक बनने का प्रसंग आता है—ब्रह्मलोक, शिवलोक, इन्द्रलोक, अग्निलोक, यमलोक आदि । इसका तात्पर्य यह हुआ कि चेतना अनेक महत्त्वपूर्ण अवयवों में विभाजित होकर समस्त ब्रह्माण्ड में समा गई । श्रुति वचनों में वही बात मनुष्य शरीर में उन सब को निवास के रूप में बतायी गयी है । इस प्रकार उपनिषद् की उस उक्ति का समर्थन होता है कि जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड है ।

भौतिक विज्ञान ने इस तथ्य को दूसरे ढंग से कहा है । इस सृष्टि को परमाणुमयी माना है और प्रत्येक परमाणु में अनन्त सामर्थ्य का समावेश माना है । एक अणु के विस्फोट से जो ऊर्जा निकलती है, वह सैकड़ों मील के दायरे को जला या गला सकती है । उसके रचनात्मक प्रयास भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । अणु भट्टियों से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा छुट-पुट अगणित बिजलीघरों से भी भारी पड़ती है ।

जड़ से चेतन का महत्त्व और भी अधिक है । मनुष्य शरीर की संरचना में पंचतत्वों की अणुशक्ति का समावेश है । साथ ही जीवाणुओं में भरी हुई चेतना पर श्रुति वाली उक्ति लागू होती है कि उसके विभिन्न अवयवों और जीवाणुओं में चेतना भी भरी पड़ी है । मनुष्य का शरीर जड़ और अन्तःकरण सचेतन माना गया है, दोनों ही आपस में घुल-मिलकर रह रहे हैं । इसलिए शरीर न केवल पंचतत्वों से निर्मित है, वरन् उसके पाँच प्राण भी हैं । इस प्रकार जड़-चेतन के समन्वय से बना हुआ शरीर निखिल ब्रह्माण्ड में पाई जाने वाली शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है । छोटे रूप में मानव शरीर एक समूचा ब्रह्माण्ड ही है और उसके अणु रूप में विशाल विभु की सत्ता विद्यमान है, किन्तु वह है सभी प्रसुप्त रूप में । बीज के भीतर एक विशाल वृक्ष की समस्त सम्भावनाएँ विद्यमान रहती हैं । आँख से न दीख पड़ने वाले शुक्राणु में पीढ़ियों के संस्कार लिए एक समूचा मानव विद्यमान है । रेत के एक कण का क्या मूल्य हो सकता है ? पर उसी के परमाणु का जब वैज्ञानिक विधि से विस्फोट किया जाता है, तो उससे उत्पन्न शक्ति का पारावार नहीं रहता । मनुष्य की महान्सत्ता का विवेचन इसी रूप में किया जाना चाहिए । यद्यपि भौंडे और अनगढ़ रूप मे वह पिछड़ा, दरिद्र, दुर्बल, भिक्षुक, चोर, रोगी जैसी हेय स्थिति में दिन काटते और जिन्दगी की लाश ढोते दिखाई पड़ता है ।

जागरण अपने आप में एक सुयोग है । सोता हुआ मनुष्य मृतक तुल्य पड़ा रहता है और उसे लज्जा ढकने वाले वस्त्रों तक को सम्भालने का ध्यान नहीं रहता । उस स्थिति में उसके लिए कुछ पुरुषार्थ कर सकना भी सम्भव नहीं होता । यही बात मनुष्य जीवन के सम्बन्ध में भी है । वह पेट भरने और प्रजनन के जंजाल की समस्याएँ सुलझाने भर में मुश्किल से ही समर्थ होता है । इतने भर से आये दिन रोना-खीझना होता रहता है, गुजारा न होने पर चोरी करता, ठगते कुकर्मों में निरत रहता दीखता है । आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण के दैवी उत्तरदायित्व का निर्वाह तो उनसे बन ही कहाँ पड़ता है ? पड़े तो तब, जब अपनी गरिमा का ज्ञान हो और उसके श्रेष्ठतम सदुपयोग की योजना बने और निभे । इसी को 'माया' कहा गया है कि सर्वसमर्थ मनुष्य हर घड़ी मृगतृष्णा से ग्रसित होकर प्यास की रट लगाता हुआ चारों ओर दौड़ता है । कस्तूरी के हिरन जैसी दुर्दशा वह अपने आप बनाता है ।

मन में एक इच्छित स्तर की दुनिया बनाकर खड़ी कर देने की शक्ति है । यह सृष्टि विद्वान, महामानव, सुखी, सम्पन्न, प्रतापी, सिद्ध पुरुषों द्वारा कुछ ही प्रयास से अपनी दिशाधारा को उत्कृष्टता की ओर मोड़ देने से बन सकती है । साथ ही उनके लिए यह भी सम्भव है कि दुर्व्यसनी, कुकर्मी, दरिद्र, दुष्ट आदि पतनोन्मुख दिशाओं की ओर पग बढ़ायें तो वैसा ही बन चले । इस संसार में भला-बुरा सभी कुछ है । अपने चुम्बकत्व से मनुष्य अभीष्ट स्तर की परिस्थितियाँ, साधन-सामग्रियाँ तथा मंडलियाँ एकत्रित करके और अपना एक निजी सौर मंडल बनाकर चाहे तो उनका मार्गदर्शक बना सकने वाले केन्द्र बिन्दु की भूमिका निभा सकता है ।

जीवन एक चौराहा है उसमें उत्थान और पतन की दिशा में दोनों ओर रास्ते जाते हैं, उनमें से कोई भी पकड़ा जा सकता है । ऐसा भी हो सकता है कि कोल्हू के बैल की तरह पीसने की चक्की की तरह कुछ उलट-पुलट करते रहने पर भी यथास्थान खड़े रहा जाय । मन अपना है, शरीर की ही तरह । शरीर से इच्छानुसार जो भी चाहें काम ले सकते हैं, वैसे ही मन भी अन्तःकरण के आदेशों को मानने से इन्कार नहीं कर सकता । दो हाथ, दो पैर जिस प्रकार अपने हैं, वही बात शरीर और मन पर भी लागू होती है ।

अवरोध एक ही है कि जन्म-जन्मान्तरों के जमे हुए कुसंस्कार पशुप्रवृत्तियों की अभ्यस्त राह पर चल पड़ने के लिए खींचते हैं । मानवीय गरिमा के प्रतिरूप कहने वाले तो बहुत मिलते हैं, पर उन्हें कार्यान्वित करने वाले दृष्टि पसारने पर भी कहीं दीख नहीं पड़ते हैं । मनुष्य की एक बुरी आदत यह भी है कि वह स्वतन्त्र चिन्तन का विकास नहीं करता । भेड़ों की तरह भीड़ जिधर भी चलती है, उधर ही चल पड़ता है । तीसरी कमी है, विवेकसम्मत आदर्शवादिता को अपनाने की कमी । दूसरों का सहारा तकने की अपेक्षा एकाकी आत्म-विश्वास के सहारे चल सकने की हिचकिचाहट । इन तीन कठिनाइयों से लड़ा जा सके तो उन्हें परास्त कर सकना तनिक भी कठिन नहीं है । प्रश्न महानता अपनाने के निश्चय भर का है । जोखिम तो हर मार्ग में है, किन्तु उत्कृष्टता अपनाने में अपेक्षाकृत कम ही कठिनाई है । हिम्मत न हो, तो एक कदम उठाना भी कठिन है । साहस हो तो लम्बी और कठिन मंजिल भी पार हो सकती है ।

परमात्मा का सब से बहुमूल्य उपहार मनुष्य जन्म प्राप्त करने के सौभाग्य के उपरान्त दूसरा सौभाग्य एक ही है—उसका सदुपयोग । यह कार्य मनुष्य की बुद्धिमत्ता पर छोड़ा गया है । वह प्रगति, अवगति या स्थिरता में से कोई मार्ग चुन ले और उस चुनाव एवं प्रयास के कडुए-मीठे फल भोगे । हम सब इस चक्र पर घूम रहे हैं । कर्त्तव्य अपना किन्तु उसका दोष या श्रेय दूसरों को देखकर अपना मन बहलाने की आत्म-प्रवंचना करते रहते हैं ।

मनुष्य जन्म धारण करने के उपरान्त स्वयं करने योग्य काम इतना ही रह जाता है कि अपने सौभाग्य से परिचित हो, सामर्थ्यों को पहिचाने और आन्तरिक दुर्बलताओं से लड़ पड़े । गीता में अर्जुन को इसी महाभारत में लड़ने के लिए भगवान् ने कहा था । विवेक को मान्यता दें, औचित्य को अपनायें और इसकी परवाह न करें कि दूसरे लोग क्या कहते और क्या करते हैं । मार्ग निर्धारण करने की बुद्धिमता और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्य की दिशा में चल पड़ने की साहसिकता अपनाने के उपरान्त आधी मंजिल पार हो जाती है । कुसंस्कारों से जूझने के लिए साधनाओं का उपक्रम और भटकाव की बेल किसी समर्थ का मार्ग-दर्शन अभीष्ट है । यह दोनों ही कार्य सरल हैं, उतने नहीं जितने कि समझे जाते हैं ।

सच्चे आत्म-विश्वासी और प्रगति-परायण व्यक्ति की सहायता करने वालों की कमी नहीं । गुरु बहुत हैं । कमी शिष्यों की है । यदि अपनी प्यास सही और उद्देश्यपूर्ण है तो ग्रीष्म की तपन को मिटाने के लिए बादल कहीं से भी आ घमकेंगे और अपना भंडार खाली करके जल जंगल एक कर देंगे । उड़ती धूलि पर हरीतिमा का मखमली फर्श बिछा देंगे । साधक को सिद्धि मिल कर रही है और मार्ग बताने वाले सहारा देकर मंजिल पार कराने वाले की कहीं भी, कभी भी कमी नहीं रही ।

अध्यात्म मार्ग सरल है । जंजाली प्रपंची जीवन की तुलना में वह कहीं अधिक सुगम है । संकीर्ण, स्वार्थ परायण, पग-पग पर ठोकर खाते, रोते-रुलाते और खीजते-खिजाते हैं, पर देवत्व की दिशा अपनाने में एक भी झंझट नहीं है । सादा जीवन का व्रत लेने पर उच्च विचारों का आगमन अनायास ही मेघमालाओं की तरह घुमड़ता चला आता है । उच्च-आध्यात्मिक विचारों का अवलम्बन लेने पर कठिनाइयाँ भी सुविधाओं की तरह श्रेयस्कर लगती हैं और आत्मबल बढ़ाती हैं ।

महर्षि व्यास का कथन है कि "मैं एक बड़े रहस्य की बात बताता हूँ कि मनुष्य से बढ़कर श्रेष्ठ इस संसार में और कोई नहीं है । इस कथन में रत्ती भर भी अत्युक्ति नहीं है ।" जिसके रोम-रोम में देवता बसे हों, जिसके कण-कण में निर्जीव परमाणुओं की तुलना में अनेक गुनी शक्ति वाली जीवनी अरबों-खरबों की संख्या में भरी पड़ी हो, वह किसी उपयुक्त कार्य के कर सकने में असफल-असमर्थ कैसे रह सकता है ? उस तूफानी आत्म-सत्ता के मार्ग में कौन-सा अवरोध अड़ सकता है ।

दूरदर्शी, विवेकशीलता का एक ही चिह्न है, कि हम छाया की ओर से मुँह मोड़कर प्रकाश की ओर चलना आरम्भ करें, छाया के पीछे नहीं दौड़ना पड़ेगा, वह अपने पीछे मनुहार करती हुई चलेगी । सौभाग्यशीलता का एक ही चिह्न है कि हम निकृष्टता से, सस्ती हेय महत्त्वाकांक्षाओं से विरत हों और उस नाविक जैसा साहस जुटायें, जो स्वयं पार होता है और अनेक को पार करता है । खतरे से भरे पूरे नौकायन व्यवसाय को जब अनेक आत्म-विश्वासी अपनाते और भूखे पेट भी नहीं सोते तो हमीं क्यों ऐसे असमंजस में पड़ें कि परमार्थ पथ अपनाने से घाटा सहेंगे और मूर्ख कहलायेंगे ।

जिनके चरणों पर शत्-शत् अभिनंदन होते हैं, जिनके पद-चिह्नों का अनुगमन करने में असंख्यों को कृतकृत्य होने का अवसर मिलता है, उसका परित्याग करने के लिए कौन सा दुर्भाग्य हमारे आड़े आता है, इसे देखें । महामानवों की कृतियों की गौरव-गरिमा इतिहास के पृष्ठों पर तलाश करें तो पाते हैं कि शरीर न रहने पर भी उनकी आत्मा जीवितों से बढ़कर अपनी सत्ता बनाये हुए हैं और अनेक निष्प्राणों में प्राण भरती हैं । हो सकता है कि वे अमीर न बन पाये हों, सम्भव है तृष्णा, विलासिता और अहंता की मृगतृष्णा में उन्हें न भटकना पड़ा हो । सन्त-सज्जनों की तरह सामान्य जीवन जी सके हों, पर इतना निश्चित है कि जिस भी स्थिति में वे रहे होंगे, अपने सत्प्रयासों के कारण पुलकित और प्रमुदित रहे होंगे । अब जबकि उनका शरीर नहीं है, तो भी पिछला स्मरण करके संतोष की साँस लेते होंगे और कहते होंगे कि मनुष्य जीवन ने हमें धन्य किया और उस जीवन को गौरवान्वित करने में हमने कमी न रहने दी ।

जब कभी जिस किसी के जीवन में मार्ग निर्धारण की उमंग उठे और उस वेला में उत्कृष्टता के अवलम्बन की स्फुरणा उठे, समझना चाहिए वह स्वयं धन्य हुआ और देवताओं ने अपने निवास के लिए जिस चोले का चुनाव किया था वह चुनाव भी बुद्धिमत्तापूर्ण सिद्ध हुआ ।

आत्मिक और भौतिक प्रगति का संतुलन

बालक के पास भी अभिभावकों से उत्तराधिकार में मिलने वाली सम्पत्ति होती है, पर वे न तो उससे परिचित होते हैं और न उसका कुछ उचित उपयोग कर पाते हैं । अविकसित मनःस्थिति में पिता की सम्पत्ति की उन्हें जानकारी हो जाय और उसका मनचाहा उपयोग करने की छूट मिल जाय तो निश्चय ही इस असामयिक अधिकार का प्रतिफल दुष्परिणाम स्तर का ही होगा । यह सम्पत्ति भी नष्ट होगी और प्रयोगकर्ता बालक का भी विनाश करेगी । इस आशंका को ध्यान में रखते हुए अभिभावक बन्दूक की बारूद और तिजोरी की चाबी जैसा महत्त्वपूर्ण वस्तुओं को इस प्रकार रखते हैं कि बच्चे उन्हें प्राप्त न कर सकें । इस दुराव में द्वेष का नहीं वरन् सतर्कता का ही समावेश है । बच्चों के प्रति अभिभावकों का असीम और असंदिग्ध प्यार होता है, फिर भी जब कोई गोपनीय वार्त्ता प्रसंग चल रहा होता है अथवा बहुमूल्य वस्तुओं को किसी गुप्त स्थान पर रखा जा रहा होता है तो बच्चे किसी बहाने वहाँ से अन्यत्र खिसका दिये जाते हैं । यहाँ परायेपन का उपेक्षा या द्वेष, अविश्वास जैसा कोई कारण नहीं है । मात्र इतनी ही सतर्कता है कि बालक अबोध मनःस्थिति के कारण कहीं कोई अवांछनीय दुर्घटना खड़ी न कर दें ।

चेतना का बचपन ईश्वरीय सत्ता के हाथ दिव्य अनुदान देने से रोकता है अन्यथा आत्मा और परमात्मा के बीच का प्रगाढ़ सम्बन्ध अजस्र अनुदान सम्भव है, होता रहा है और होता रहेगा । देव मानवों की स्थिति सामान्य स्तर के नर-वानरों की तुलना में कितनी भिन्न होती है, इसका विश्लेषण करने पर सहज ही यह पता चल जाता है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतना की उच्च परतें कितनी सशक्त और समर्थ हैं और उन्हें प्राप्त करके मनुष्य कितना उच्चकोटि का बन सकता है ।

बहिरङ्ग भौतिक प्रगति का अपना महत्त्व है । श्रम और मनोयोग के आधार पर ही बलिष्ठता, विद्या, प्रतिभा, सम्पदा, कीर्ति जैसी सांसारिक उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं । इनसे भी बड़ी विभूतियाँ आन्तरिक हैं । जड़ जगत द्वारा जो साधन और सुख मिल सकता है, उसकी तुलना में चेतन जगत के वरदान असंख्य गुने अधिक हैं । जितना प्रयास बहिर्जगत की सुख-सुविधाएँ उपार्जित करने के लिए किया जाता है, उसका आधा चौथाई भी यदि अन्तर्जगत की विभूतियों को पहचानने और विकसित करने में किया जा सके तो उसकी सफलता देखते ही बनेगी और प्रतीत होगा कि तिजोरी में भरी अजस्र सम्पदा से अपरिचित रहकर और जहाँ-तहाँ कंकड़-पत्थर बीनने के लिए किये गये श्रम में कितना बड़ा अन्तर था ।

पेड़ की जड़ों की गहराई और लम्बाई के आधार पर उसका ऊपरी विस्तार होता है । जड़ें छोटी होंगी तो पेड़ भी बड़ा न बनेगा । किसी प्रकार बढ़ भी जाय तो वह चिरस्थायी न रह सकेगा, हवा के छोटे से थपेड़े में ही उखड़ जायेगा । फसल के लहलहाने में प्रशंसा तो पौधों की ही होती है, पर वस्तुत: वह धरती की उर्वरता ही उफनकर ऊपर आई होती है । यदि उर्वरक तत्व खेत में न होंगे तो बाहरी प्रयत्नों से शस्य श्यामला के नयनाभिराम दृश्य और बहुमूल्य उत्पादन उपलब्ध न हो सकेंगे । अन्तरङ्ग जीवन की आमतौर से उपेक्षा होती रहती है । उस क्षेत्र का कोई महत्त्व नहीं माना जाता । स्वास्थ्य और शिक्षा के सहारे शरीर और मस्तिष्क को भारी-भरकम बनाया जाता है और उसके सहारे अर्थोपार्जन का लाभ लिया जाता है । इतना तो सहज ही हो जाता है, पर उपलब्धियों का उपयोग किस प्रयोजन के लिए हो इसका महत्त्वपूर्ण निर्णय नहीं हो पाता ।

भौतिक प्रगति के लिए प्रयत्न करने की प्रशंसा ही की जा सकती है और उसके लिए प्रोत्साहन ही दिया जा सकता है । यहाँ आक्षेप उस विकृत दृष्टिकोण पर किया जा रहा है जो इस उपार्जन को विलासिता और अहम्मन्यता के लिए विनिष्ट करने की प्रवंचना रचकर खड़ी करता है । यदि इस मूर्खता को समझा जा सके तो आत्मिक प्रगति की बात सोचने, उसके महत्त्व को जानने का अवसर मिले ।

हर महत्त्वपूर्ण वस्तु को प्राप्त करने के लिए उसका समुचित मूल्य कठोर श्रम, प्रखर मनोयोग एवं अभीष्ट साधन जुटाने के रूप में चुकाना पड़ता है । इससे कम अनुदान लिये बिना तो कोई भौतिक सफलता भी नहीं मिलती फिर आत्मिक प्रगति का क्षेत्र तो और भी बड़ा है । उसकी उपलब्धियाँ भी अपेक्षाकृत अधिक बहुमूल्य एवं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । ऐसी दशा में उसके लिए चिन्तन और कर्तृत्व का विनियोग भी अधिक मात्रा में किया जाना स्वाभाविक है । पूजा-पाठ के छुट-पुट प्रयोग बाल कक्षा के छात्रों द्वारा विद्या प्राप्ति के लिए किया गया पट्टी-पूजन जैसा छोटा, किन्तु अति उपयोगी प्रयास है । बात इतने भर से नहीं बन सकती । जप, ध्यान जैसे प्रयास आत्मिक प्रगति की दिशा में उठाये गये आरम्भिक चरण हैं, इन्हें किसी किसान द्वारा बीज बोने के समतुल्य माना जा सकता है । यह आवश्यक तो हैं, पर पर्याप्त नहीं । वस्तुत: व्यक्तित्व की सभी परतों का समग्र पर्यवेक्षण करना और उन्हें नये सिरे से सुव्यवस्थित करने का नाम ही श्रेय पथ का अवलम्बन है ।

पिछले दिनों धीरे-धीरे अगणित अनुपयुक्त मान्यताएँ, अनावश्यक विचारणाएँ तथा अवांछनीय आदतें चेतना की गरदन पर लद पड़ी होती हैं । इनसे पीछा छुड़ाये बिना उसे भार से मुक्ति नहीं मिल सकेगी जिसके भार के अन्त:करण को बहुत बोझिल बना दिया है और वह उच्चस्तरीय प्रगति के कठिन मार्ग पर ऊँचा चढ़ सकने में समर्थ नहीं हो सकता । आन्तरिक स्वच्छता वह चरण है जिसको भूमि जोतने, गोड़ने, खाद युक्त और नम बनाने जैसे कृषि प्रयासों के समतुल्य माना जा सकता है । आत्मिक प्रगति के पथ पर मिलने वाले चमत्कारी सिद्धियों के अनेक पड़ावों का आनन्द तब लिया जा सकता है, जब मलीनता के, अवांछनीयता के लदे हुए भार से छुटकारा पाने में सफलता मिले । मैला-कुचैला कपड़ा रंगने का प्रयास व्यर्थ है । इसमें रंग खरीदने में खर्च किया गया पैसा और रँगाई के लिए किया गया श्रम भी निरर्थक चला जाता है । अच्छी रंगाई की सफलता इस बात पर निर्भर है कि कपड़े को अच्छी तरह धोकर स्वच्छ बना लिया गया हो । पूजा-पाठ के समस्त अनुशासन को यदि गहराई से देखा जाय तो उसके पीछे यही तथ्य और संकेत झाँकते दिखाई पड़ेंगे जिन्हें अपनाने पर उत्कृष्ट व्यक्तित्व के निर्माण का मार्ग अपनाना पड़ता है । आत्म-शोधन की, आत्म-निर्माण की उपेक्षा करके, मात्र पूजा-पाठ के सहारे वह प्रयोजन पूर्ण नहीं हो सकता जिसे आत्मिक प्रगति के नाम से पुकारा जाता है ।

श्रेय को प्रधानता देने पर प्रेय स्वभावत: गौण हो जाता है । प्रेय की प्रधानता रहेगी तो श्रेय के लिए अन्यमनस्क, आधे-अधूरे प्रयत्न ही सम्भव होंगे । फुरसत न मिलने और मन न लगने की शिकायत एक पक्ष में तो बनी ही रहेगी । या तो मन श्रेय में लगेगा और प्रेय के प्रति उतना ही ध्यान रहेगा जितना निर्वाह के लिए आवश्यक है । स्पष्ट है शरीर यात्रा बहुत सस्ती और हलकी है । यदि तृष्णाओं के पर्वत उस पर न लादे जायें तो गुजारे का प्रश्न बहुत ही हलका-फुलका लगेगा और वह थोड़े से प्रयास में भली-भाँति पूरा होता रहेगा । सतर्कता और तत्परता के साथ निर्वाह साधन जुटाने में उतना ही दबाव पड़ता है जितना खिलौनों से खेलने की खिलवाड़ में । हास-परिहास के लिए, क्रीड़ा-विनोद के लिए जितनी दौड़-धूप करनी पड़ती है, उतनी से ही निर्वाह साधन जुट जाते हैं ।

यदि यह समझा जा सके कि हम शरीर नहीं आत्मा हैं और आत्मा की प्रखरता का निखार आत्मिक प्रगति के साथ जुड़ा हुआ है, जीवन की सार्थकता आत्म-विकास,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्म-साक्षात्कार एवं आत्म-कल्याण में है तो फिर निश्चय ही अपने साधनों का उपयोग इन्हीं पुण्य-प्रयोजनों के लिए किया जायेगा । घोड़े को घास तो सभी खिलाते हैं, पर इस स्नान कोई बिरला ही कराता है, शरीर की भौतिक आवश्यकताएँ तो पूरी की जानी चाहिए, पर उसकी वासना, तृष्णा के लिए सारी जिन्दगी क्यों बर्बाद की जानी चाहिए, आत्मा के लिए शरीर है, न कि शरीर के लिए आत्मा । हमें रोटी खानी चाहिए न कि रोटी उलटी हमें ही खाने लगे । यदि इस उलटी चाल को बदलकर सीधी राह अपनाई जाय तो आत्मिक प्रगति की राह पर बहुत आगे तक द्रुतगति से बढ़ा जा सकता है । हर हालत में आत्मिक प्रगति जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए साधनों का एक बड़ा हिस्सा नियोजित रहना चाहिए । मुफ्त में या स्वल्प प्रयास से तो छोटे-छोटे काम भी पूरे नहीं होते फिर आत्मिक विभूतियाँ प्राप्त करने की सफलता स्वल्प श्रम से किस प्रकार सम्पन्न हो सकती है । वस्तुतः जीवन के अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग स्तरों का परिष्कार ही वह स्थिति है जिसमें ईश्वर का अनुग्रह और उसकी दिव्य विभूतियों का अवतरण मनुष्य को प्राप्त हो सकता है ।

आत्मिक प्रगति की आरम्भिक तैयारी का प्रथम चरण यह है कि निर्वाह व्यवस्था और परमार्थ प्रयोजनों के बीच साधनों का उचित बँटवारा किया जाय और इस प्रकार सन्तुलन बिठाया जाय कि दोनों ही प्रयोजन ठीक तरह पूरे हो सकें । श्रम, समय, मनोयोग, कौशल, प्रतिभा जैसे व्यक्तित्व के साथ जुड़े हुए साधनों को ही वास्तविक वैभव माना गया है । इन्हें आत्मिक प्रगति के प्रयोजनों में जितनी मात्रा में लगाया जायेगा उतनी ही सफलताएँ मिलेंगी । जितना गुड़ पड़ेगा उतना ही मीठा होगा । यदि सारे साधन भौतिक प्रयोजन में लगे रहेंगे तो स्थिति के अनुरूप पूरी, अधूरी सफलता उसी क्षेत्र में मिलेगी । पूजा-पाठ को बेगार ज्यों-त्यो करके भुगत ली जाय तो उतने भर से किसी बड़ी प्रगति की अपेक्षा नहीं की जा सकती ।

व्यक्तित्व का निर्माण एक जटिल काम है । बहिरङ्ग क्रिया-कलापों में हेर-फेर करना सरल है । वस्तुओं को बदल लेना भी सरल है, पर गुण, कर्म, स्वभाव में हेर-फेर करना कठिन है । आदतें कितनी ढीठ होती हैं, इसे हर कोई जानता है । उन्हें बदलने के लिए कितने तापमान का मनोबल चाहिए इसे अनुभवी ही जानते हैं और उस आत्म-संघर्ष को महाभारत जीतने जैसा बताते हैं । दुष्प्रवृत्तियों का निराकरण कर लेने से आधी बात बनती है, आधी तब पूरी होती है, जब निराकरण से खाली हुए स्थान को उच्चस्तरीय सत्यप्रवृत्तियों से भरा जा सके । इसका अभ्यास लोग-मङ्गल के परमार्थ प्रयोजनों में संलग्न हुए बिना और किसी प्रकार सम्पन्न नहीं हो सकता । यह कार्य भी बातें बनाने या कल्पना के घोड़े दौड़ाने भर से नहीं हो जाता । उसके लिए बढ़े-चढ़े अनुदान देने पड़ते हैं । साधु, ब्राह्मणों की परम्परा यही रही है कि वे भौतिक आवश्यकताएँ न्यूनतम रखते थे और इस प्रकार अपनी बहुत कुछ क्षमताएँ निर्वाह से बचाकर लोक-मङ्गल की साधना में लगा सकते थे । लिप्सा-लालसाएँ छोड़े बिना यह बचत अन्य किसी प्रकार नहीं हो सकती । अस्तु, जिन्हें आत्मिक प्रगति ईश्वर की अनुभूति वस्तुतः ही अपेक्षित है उन्हें अपने साधनों का श्रेय और प्रेय के बीच उचित विभाजन करने की योजना बनानी चाहिए ।

परमार्थ साधना का एक और भी तरीका हो सकता है कि सेवा कार्यों की योग्यता अपने में न्यून हो तो दूसरे अधिक उपयुक्त व्यक्तियों द्वारा वह कार्य सम्पन्न कराये जायें और उनके निर्वाह का एवं साधन जुटाने का उत्तरदायित्व स्वयं उठाया जाय । एक व्यापारी जन-जागरण जैसे बौद्धिक एवं भावनात्मक स्तर की क्षमता द्वारा सम्पन्न हो सकने वाले कार्य स्वयं तो नहीं कर सकता, पर जो लोग उस प्रकार की क्षमता से सम्पन्न हैं उन्हें निर्वाह की चिन्ता से मुक्त करने के लिए अपने उपार्जन को उदारतापूर्वक देता रह सकता है । लोक-मङ्गल के कार्यों में कितने ही उपकरणों एवं साधनों की आवश्यकता पड़ती है । उनके बिना खाली हाथ सेवा-भावी व्यक्ति भी कुछ अधिक कार्य नहीं कर सकते । इन साधनों को जुटाने में अर्थसम्भव उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है । इनके लिए भी पैसा चाहिए । वह व्यापारी अपने व्यवसाय में जुटा सके, अधिकांश अथवा सारा समय उसी में लगावे और अपने लिए न्यूनतम सुविधा लेकर अधिकांश उत्पादन उन्हीं पुण्य प्रयोजनों में लगाये तो समझना चाहिए कि उसने ब्राह्मण परम्परा का निर्वाह कर लिया ।

मूल तथ्य यथास्थान रहेगा उसका स्वरूप बदल जायेगा । एक लोकसेवा प्रत्यक्षतः अपनी लेखनी, वाणी, श्रम अथवा प्रतिभा से करता है । उसी कार्य को एक दूसरा व्यक्ति अप्रत्यक्ष रूप से उन्हीं कार्यों के लिए अपने साधन देकर भी कर सकता है । साधन तो आखिर श्रम और मनोयोग से ही जुटते हैं, इनका उपयोग यदि परमार्थ कार्यों में हो गया तो लक्ष्य वही पूरा हुआ जो स्वयं सीधा परिश्रम करके सम्पन्न किया जा सकता है । स्वयं ज्ञानवान, चरित्र-निष्ठ और प्रतिभासम्पन्न बनने में देर लग सकती है, पर उसी स्तर के व्यक्ति को अपना सहयोग देकर यदि परमार्थ प्रयोजन सम्पन्न कर लिए तो उद्देश्य एक ही पूरा हो गया । महामारी पीड़ित लोगों की सेवा, सहायता के लिए एक वृद्ध और अनुभवहीन व्यक्ति अपने शरीर से कुछ बड़ा काम नहीं कर सकता, किन्तु यदि वह अपने साधन उन कार्यों में झोंक देता है और स्वयंसेवकों की, चिकित्सा उपचार की व्यवस्था बना देता है तो भी पीड़ितों को उतना ही लाभ मिल सकता है जो उस वृद्ध के स्वयं चिकित्सक होने और सेवा संलग्न रहने पर सम्भव हो सकता था ।

अन्धे और पंगे की कहानी सर्वविदित है । उन्होंने नदी-नाले पार करते हुए कठिन और लम्बी मञ्जिल पूरी कर ली थी । अलग-अलग रहकर वे दोनों ही असफल रहते । पारस्परिक सहयोग ने दो अपूर्णों को मिलाकर एक पूर्ण बना दिया । समर्थ रामदास और शिवाजी, प्रताप-भामाशाह, चाणक्य-चन्द्रगुप्त, शङ्कराचार्य-मान्धाता, बुद्ध, हर्षवर्धन,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रामकृष्ण परमहंस-विवेकानन्द, गाँधी और जवाहर जैसे युग्म परस्पर सहयोग से कितनी बड़ी सफलताएँ प्राप्त कर सके यह सर्वविदित है । उन युग्मों के दोनों पक्षों की क्षमताएँ अपने-अपने ढङ्ग की अनोखी थीं, फिर भी वे एकाकी होने पर प्राय: अपूर्ण ही बनी रहतीं और उनके स्वतन्त्र एकाकी प्रयासों का उतना प्रतिफल न होता जो मिल-जुलकर काम करने में सम्पन्न हो सका । आग और ईंधन की मिलन प्रक्रिया से गगनचुम्बी दावानल उत्पन्न होने की बात जिनके ध्यान में है वे अपनी सेवा क्षमताएँ स्वल्प होने की चिन्ता नहीं करते, वरन् नाले और नदी के मिलन की तरह किसी उपयोगी लोक-साधना में अपने को नियोजित कर देते हैं । श्रेय किसको मिले यह कृपणता यदि मन में न हो तो परोक्ष रूप से श्रेय दोनों पक्षों को प्रकारांतर से लगभग समान ही मिल जाता है । ईसाई धर्म का पुनर्निरूप सेन्टपाल ने अपने अथक् परिश्रम और अजस्र अनुदान से सम्पन्न किया था । वे स्वयं ईसा तो न बन सके, पर सन्त ईसा को परमेश्वर का बेटा बना देने के श्रेयाधिकारी वे ही माने गये । सेन्टपाल की यह उपलब्धि परोक्ष रूप से ईसा के समतुल्य ठहराई जाय तो तथ्य स्वीकारने में किसी विचारशील को कोई बड़ी आपत्ति न होगी ।

प्रयास प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, लोक-साधना स्वयं की जाय या दूसरों से कराई जाय यह निर्णय परिस्थितियों को देखकर भिन्न-भिन्न प्रकार से हो सकता है । बात क्रिया की नहीं भावना की है । अपने लिए न्यूनतम, परमेश्वर के लिए, आदर्शवाद के लिए अधिकाधिक का मार्ग अपनाकर ही कोई आत्म-चेतना को विकसित कर सकता है । सदाशयता और आस्था का प्रमाण इसी परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर मिलता है । सहृदयता यदि वस्तुत: है तो उसे सेवा में अनिवार्य रूप से परिणत होना चाहिए । करुणा, ममता और भक्ति निर्जीव, निर्वीय, निस्तेज और नपुंसक नहीं होती, वह वाचलता एवं कल्पना-जल्पना तक सीमित नहीं रहती । उसे कार्यान्वित हुए बिना चैन ही नहीं पड़ता । जो सोचता तो बहुत है, पर करता कुछ नहीं, उसकी श्रद्धा को उथली और निर्जीव ही कहा जायेगा । ऐसी अन्त:स्थिति के रहते आत्मिक प्रगति का वह पुण्य प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता, जिसके आधार पर ईश्वर का अनुग्रह और चमत्कारी ऋद्धि-सिद्धियों का अवतरण अनायास ही वर्षा के बादलों की तरह बरसता हुआ दृष्टिगोचर होता है ।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

रात्रि की सघन तमिस्रा में हाथों-हाथ नहीं सूझता । प्रकाश में अभाव में आँख काम नहीं देती । वस्तुओं का सही स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता । कुछ के बदले कुछ दीखता है । ऐसी दशा में कोई क्रिया-कलाप सही बन पड़ना सम्भव नहीं होता । न लेखक लेख लिख सकते हैं और न शिल्पी अपने औजारों का उपयोग वहाँ कर सकते हैं, जहाँ उन्हें प्रयुक्त किया जाना चाहिए । घसियारे अपनी खुरपी उठाकर रख देते हैं, क्योंकि अनुमान के आधार पर वह खुदाई भी नहीं हो सकती । साँप, बिच्छू भी उँगली दंश सकते हैं । पथिक भी रास्ता नहीं चलते । राह भूल जाने, काँटे लगने, कंकड़ चुभने और ठोकर लगने की आशंका रहती है । न दुकानदार दुकान खोलते हैं और न व्यापारी व्यापार करते हैं । अँधेरे में भूलें होते रहने का खतरा स्पष्ट रहता है । वातावरण का तापमान सूर्य के अस्त होने पर प्रकाश के अभाव में घट जाता है । शरीर भी उससे प्रभावित होता है । फलत: सुस्ती घेर लेती है, थकान चढ़ दौड़ती है और आलस आने लगता है । बढ़ते-बढ़ते वह खुमारी की स्थिति में जा पहुँचता है और नींद आ घेरती है । सर्वत्र सन्नाटा छा जाता है । चोरों का भय बढ़ता है । दरवाजे बन्द करने पड़ते हैं । जहाँ अधिक खतरा होता है, वहाँ पहरेदार, चौकीदार की व्यवस्था करनी पड़ती है । अंधकार निष्क्रियता का, निस्तब्धता का प्रतीक है । उसके खतरे तो बढ़ते ही हैं, साथ ही चोर, उचक्के, व्यभिचारी, नशेबाज, दस्यु, तस्कर भी अपनी गतिविधियाँ तेज करते हैं । असुरक्षा, भयानकता, निष्क्रियता, निस्तब्धता जैसे न जाने क्या-क्या संकट सामने आ खड़े होते हैं ।

रात्रि में फूल खिलना बन्द कर देते हैं । वृक्ष, वनस्पतियों तक की बढ़वार रुक जाती है । प्रकाश ही जीवन है । उसकी जितनी कमी पड़ती जायेगी, उतनी ही प्रगति अवरुद्ध होती जायेगी । श्रेय का साम्राज्य बदलेगा, सपनों की दुनिया गति पकड़ेगी । कोई किसी की सहायता न कर सकेगा । यहाँ तक कि सद्ग्रन्थ भी अक्षर दीख न पड़ने के कारण अपना मार्ग-दर्शन कर सकने में समर्थ न हो सकेंगे । निशाचरों की बन पड़ती है । हिंसक जन्तु इसी अवसर पर आखेट के लिए निकलते हैं ।

ऋषि के शब्दों में सार्वभौम अन्तरात्मा ने प्रार्थना की है कि 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात्—हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल । प्रकाश में वस्तुओं का स्पष्ट रूप दर्शन की क्षमता तो होती ही है, इसके अतिरिक्त उसमें ऊर्जा भी सन्निहित रहती है । यही कारण है कि सूर्य के उदय होते ही सर्वत्र गतिशीलता का प्रादुर्भाव होता है । पक्षी अपने घोंसले से निकल कर फुदकने, चहकने लगते हैं । पशु बाड़ा छोड़ कर भोजन की तलाश में निकलते हैं । सोने वाले नींद छोड़कर नित्यकर्म से निपटते और नये दिन के कार्य आरम्भ करते हैं । किसान, शिल्पी, कलाकार, व्यवसायी, विद्यार्थी सभी अपना-अपना काम आरम्भ कर देते हैं । उपार्जन, उत्पादन, निर्माण, उत्थान का क्रम सभी का अपने-अपने ढंग से चल पड़ता है । प्रकाश की गरिमा ही ऐसी है । उसके साथ उत्कर्ष, अभ्युदय का क्रम अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है । प्रकाश ही जीवन है और अन्धकार ही मरण । संसार की हर जड़ चेतन इकाई जीवन के प्रति उत्सुक रहती और मरण के प्रति अनित्सुक । इसलिए उसे प्रकाश का आश्रय लेना पड़ता है । अन्धकार से जूझने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए दीपक से लेकर शक्तिशाली विद्युत बल्बों तक का प्रबन्ध करना पड़ता है, यदि ऐसी व्यवस्था न बन पड़े तो यह कल्पना करना कठिन हो जाता है कि रात्रि किस प्रकार कटेगी और उस निविड़ता के बीच निर्वाह कैसे बन पड़ेगा ?

भौतिक-जगत में जो स्थान प्रकाश का है, ऊर्जा का है, वही सम्मिश्रित प्रभाव अध्यात्म-जगत में सद्ज्ञान का है । इसलिए श्रुति परकर में स्थान-स्थान पर सद्ज्ञान रूपी दिव्य-प्रकाश की उपलब्धि के लिए परब्रह्म से भाव-भरी प्रार्थनाएँ की गई हैं । गायत्री महामंत्र में इसी विभूति, उपलब्धि को हस्तगत करने का तारतम्य है । सर्वोपरि इस दिव्य वरदान की प्राप्ति के लिए आत्मा ने अपनी प्रबल आकांक्षा से अभिव्यक्ति की है । इसे प्राप्त कर सकने का विधान, प्रयोग भी उसमें सन्निहित है । इसी कारण गायत्री को वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता आदि नामों से अलंकृत किया गया है। उसी दिव्य-ज्ञान को भूमा, प्रज्ञा, प्राण सम्वेदना आदि नामों से पुकारा गया । उसे पाकर और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। जिसके हाथ में चिन्तामणि पहुँचती है वह इसी जीवन में स्वर्ग, मोक्ष और सिद्धि का आनन्द प्राप्त करता है । अलंकारिक भाषा में उसे अमृत, कल्पवृक्ष और पारस नाम से निरूपित किया जाता है ।

शिक्षा और विद्या का अन्तर स्पष्ट है । शिक्षा की परिधि में भौतिक दुनियादारियों का समुच्चय आता है । उसके आधार पर चतुर, अनुभवी क्रिया-कुशल बना जाता है और धनोपार्जन से लेकर यशस्वी, पदाधिकारी, सफल, सम्मानित आदि बना जाता है । इन प्रत्यक्ष लाभों को देखते हुए सरकारी और गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं की धूम है । वे छोटे-बड़े रूपों में स्थान-स्थान पर विनिर्मित हैं । व्यक्तिगत परामर्श और आदान-प्रदान से भी यह क्रम पारिवारिक वातावरण से लेकर समाज संरचना के अनेक क्षेत्रों में उत्साहपूर्वक चलता रहता है । अगणित पुस्तकें अनेकानेक भाषाओं में प्रायः इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु लिखी जाती, छपती और बिकती हैं । रेडियो, दूरदर्शन, फिल्म, अखबार, पत्रिकाएँ आदि भी इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए अपना विशालकाय ढाँचा खड़ा किये हुए हैं । पर्यटन, प्रदर्शन, विज्ञापन-प्रचार आदि माध्यमों से भी इसी प्रयोजन की पूर्ति होती है । यह शिक्षा-तंत्र अत्यन्त विशद् और विस्तृत है । इसी के आधार पर मनुष्य अनेकानेक विषयों में प्रवीण, पारंगत बनता है । भौतिक सफलताओं और उपलब्धियों का बहुत कुछ आधार प्रशिक्षण प्रक्रिया के साथ जुड़ा हुआ है । इसलिए उसे उपयोगी भी समझा जाता है और इस दिशा में अधिकाधिक प्रवेश पाने के लिए प्रयत्नरत भी रहा है । यह सर्वविस्तृत और सर्वनिमोदित प्रक्रिया है, जो अपने ढंग से प्रतिष्ठित भी है और गतिशील भी ।

विद्या इससे आगे की उच्चस्तरीय उपलब्धि है इसके अन्तर्गत आत्म-चिन्तन और आत्म-मनन आता है । चिन्तन का तात्पर्य है, वस्तुस्थिति का अध्ययन अवगाहन । मनन का तात्पर्य है, विकृतियों के परिशोधन और सत्प्रवृतियों के सम्वर्द्धन की विचारणा-योजना और सम्भावनाओं की अभिनव स्थापना । विद्या का शुभारम्भ आत्मिक क्षेत्र के चिन्तन-मनन से प्रारम्भ होता है । इससे आगे आत्मसमीक्षा, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास के ऊर्ध्वगामी चरण उठते हैं । ब्राह्माण्डीय चेतना के साथ आत्म-चेतना से सम्बन्ध बिठाने और दोनों के बीच आदान-प्रदान का द्वार खोलने का उपक्रम आरम्भ होता है ।

भौतिकी और आत्मिकी का अपना-अपना क्षेत्र, उपयोग एवं महत्व है । भौतिकी सांसारिक जीवन में साधन सम्पदा जुटाने और उनका समुचित उपयोग करके सुरम्य बनाने का पथ-प्रशस्त करती है । इसलिए उसकी आवश्यकता सहज समझ में आ जाती है । उसे समर्थन प्रश्रय भी मिलता है, पर आत्मिकी का क्षेत्र गुह्य है । शरीर और उससे सम्बन्धित वैभव प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है और उसके लाभ भी हाथों-हाथ उपलब्ध होते हैं । इसलिए हर कोई उसे चाहता है । साधन-सामग्री की प्रचुरता की आकांक्षा को भी वही पूरा करती है । चतुर लोग अपने को गौरवान्वित अनुभव करते और विलास की सामग्री उपलब्ध करके प्रसन्नता अनुभव करते हैं । किन्तु आत्मिकी का क्षेत्र अप्रत्यक्ष है । उसे इन्द्रियातीत कहा गया है । अन्तर्मुखी होने की विद्या जिन्हें आती है, वे ही इसका स्वरूप समझने और लाभ उठाने में समर्थ होते हैं ।

पेड़ का तना, पल्लव बार-बार फूलों-फलों का समुच्चय प्रत्यक्ष दीख पड़ता है, पर उन सबको जीवन तथा विकास देने वाली जड़ें जमीन के अन्दर रहती हैं । वे सामान्यतया दीख नहीं पड़तीं फिर भी विचारशील निश्चयपूर्वक जानते हैं कि जड़ें ही वृक्ष की प्रगति एवं स्थिरता का आधारभूत कारण हैं । उनके सुदृढ़ होने पर ही वृक्ष की स्थिरता अवलम्बित है । यदि जड़ें सूख जायें, उन्हें दीमक चर जाय तो समझना चाहिए कि वृक्ष का जीवन समाप्त हुआ । वह सूखेगा और हवा के किसी बड़े झोंके में धराशायी हो जायेगा । व्यक्ति को एक वृक्ष समझा जा सकता है, उसका बाह्य वैभव भौतिकी और जड़ों वाला अदृश्य पक्ष आत्मिकी । साधारण बुद्धि आत्मिकी का अर्थ नहीं समझती, वह भौतिकी को ही सब कुछ मान बैठती है । इतने पर भी तथ्य यथास्थान रहते हैं । सद्गुणों के बिना मनुष्य मात्र अनगढ़ ही बना रहता है । उसके गुण, कर्म, स्वभाव में ऐसी प्रखरता उत्पन्न नहीं होती कि वह साधारण कार्यों को भी सांगोपांग ढंग से सम्पन्न कर सके । कोई बड़ी सफलता प्राप्त कर सकना तो उसके लिए किसी भी प्रकार शक्य नहीं हो पाता । पेट-प्रजनन के कोल्हू में बैल की तरह चलते तो हैं, पर शालीनता के अभाव में वे उसे भी ठीक तरह पूरा नहीं कर पाते । आये दिन उलझनों में उलझते और संकटों का सामना करते हैं, यह प्राणि सुलभ क्षेत्र में उनके लिए ऐसा जाल-जंजाल बन जाता है, जिसके लिए अनेक संकट सहने और अनर्थ करने पड़ते हैं । जिनकी जड़ों को पोषण नहीं मिला, वे किसी प्रकार जिन्दगी के दिन तो पूरे करते हैं, पर फूलते-फलते वृक्ष जैसा प्रश्रय, गौरव कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते । पुण्य-परमार्थ की बात तो उनके चिन्तन तक में प्रवेश नहीं कर पाती और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस प्रयोजन को कार्य रूप मे परिणत कर सकना तो बन ही कैसे पड़े ?

ज्ञान की गरिमा 'आत्म-ज्ञान' के रखने में जानी जाती है । जीवन का स्वरूप उददेश्य, सदुपयोग का बोध जैसे सागोपांग नहीं हुआ और वह न आदर्शों के साथ जुड़ पाता है और न शालीनता, उत्कृष्टता की राह समझने, उस पर चलने की विधि-व्यवस्था से परिचित होता है । ऐसी दशा में व्यक्तित्व में उत्कृष्टता का, शालीनता का समावेश तो हो ही सकता है । इस अभाव के कारण स्थिति अस्त-व्यस्त, अनगढ़, असंस्कृत जैसी ही बनी रहती है । जिस आधार पर उच्चस्तरीय प्रगति बन पड़ती है—स्नेह, सहयोग, सद्भाव मिल सकता है, वह सूत्र हाथ ही नहीं आता । ऐसी दशा में पिछड़ेपन की हेय स्थिति ही घेरे रहती है । उस दल-दल में से उबरकर मानवीय गरिमा के अनुरूप कोई श्रेय सुयोग हाथ ही नहीं लग पाता । आत्मिकी से अनजान रहने का यही दु:खद परिणाम निरन्तर सामने खड़ा रहता है ।

भौतिकी के क्षेत्र में प्रकाश का अर्थ है—रोशनी ऊर्जा । यही है वह मौलिक शक्ति जिसके आधार पर संसार का समस्त जड़-चेतन गतिशील हो रहा है । आगे से और बढ़ रहा है । आत्मिकी के क्षेत्र में यही ज्योति ऊर्जा महाप्रज्ञा के नाम से जानी जाती है । चूँकि यह सचेतन आवश्यकताएँ पर-ब्रह्म से उद्भूत होती हैं । इसीलिए इसे अखण्ड-ज्योति भी कहते हैं । जिसका भावार्थ है—चेतनात्मक दिव्य प्रेरणा । ऐसी ऊर्जा जो मनुष्य के अन्तराल तक प्रवेश कर सकने का मार्ग बनाती है और उसे क्षेत्र की रहस्यमय परतों को उभार कर उजागर करती है । इतना उजागर कि मनुष्य अपने में देव स्तर का अवतरण होते प्रत्यक्ष देख सके ।

यही है वह प्रकाश जिसे प्राप्त करने पर मनुष्य अपने निर्धारित पक्ष को देख सकता है । उस पर बिना लड़खड़ाए चल सकता है और अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँच सकता है ।

प्रकाश भरा आनन्द हमारी ही मुट्ठी में है

सत्ता केवल प्रकाश की है । अन्धकार कोई पदार्थ नहीं, प्रकाश के अभाव का नाम ही अन्धकार है । प्रकाश की नाप-तोल और व्याख्या-विवेचना हो सकती है, अन्धकार का कोई प्रमाण परिमाण नही । अभाव अपने आप में डरावना है, इसलिए अन्धकार डरावना लगता है । अनिश्चित से, अविज्ञात से डर लगता है । वस्तुस्थिति जब समझ ली जाती है तब डर चला जाता है । मौत इसलिए डरावनी है कि उसके उदर में चले जाने के उपरान्त क्या होता है, इसका निश्चय नहीं । यदि वस्तुस्थिति का सुनिश्चित ज्ञान रहा होता तो कोई भी उससे डरता नहीं । अपना घर छोड़कर बम्बई जाने की कल्पना हमें डराती नहीं, शरीर छोड़कर अन्यत्र जाने का भी डर निरस्त हो सकता था, यदि गन्तव्य स्थान के सम्बन्ध में समाधानकारक जानकारी रही होती । जो नही है, वही अविज्ञात है और वही डरावना । इतना जान लेने के बाद हमें ज्ञान का प्रकाश खोजना पड़ता है ताकि उस बहुमूल्य सत्ता से लाभान्वित हो सकें और अभावजन्य अन्धकार द्वारा पग-पग पर मिलने वाले त्रास से छुटकारा पा सकें ।

इस संसार में केवल श्रेष्ठ है, अश्रेष्ठ कुछ नहीं । मनुष्य श्रेष्ठ से बना है । उसकी पुनीत संरचना में अश्रेष्ठ का रंच मात्र भी उपयोग नहीं हुआ है । होता तो तभी न जब इस विश्व में कहीं अश्रेष्ठ की सत्ता रही होती । अन्धकार की तरह अश्रेष्ठ भी एक अभाव की, अविज्ञात की, अनिश्चय की स्थिति है । यद्यपि उसका कोई अस्तित्व नहीं, तो भी अनस्तित्व की भयानक विभीषिका तो है ही ।

श्रेष्ठ को जब अपना आहार नहीं मिलता तो वह भूख-प्यास से व्याकुल होकर निकृष्ट बन जाता है । क्षुधा और तृषा की आतुरता में वह भटकता है । तृप्ति के शुद्ध साधन मिलते नहीं, तो वह खाने-पीने लगता है । जो कृमि-कीटकों के योग्य था, मनुष्य के लिए अयोग । इस अयोग्य को गले से नीचे उतारने की स्थिति में जब भी जहाँ भी मनुष्य पाया जाता है, तब उस पर निकृष्टता का दोषारोपण किया जाता है ।

श्रेष्ठ और निकृष्ट के बीच की एक और भी स्थिति है वह है— भ्रमित । पतवाररहित, चालकरहित नौका लहरों के इशारे पर निरुद्देश्य भ्रमण करती रहती है । वह डूबती तो नहीं, पर कहाँ पहुँचेगी इसका कुछ निश्चय नहीं । अन्धड़ के साथ उड़ते तिनके नष्ट तो नहीं होते, पर वे किस लक्ष्य तक पहुँच पावेंगे इसका क्या भरोसा ?

श्रेष्ठ वह है जो अपनी आन्तरिक सम्पन्नता को समझता है और उससे उदारतापूर्वक दूसरों की झोली को भरकर अपने को सन्तुष्ट एवं दूसरों को सुखी बनाता है । पका फल अपने में सन्तुष्ट रहता है, समीक्षकों का सम्मान पाता है और उपभोक्ताओं को सुख देता है । यह श्रेष्ठता है । मनुष्य की मूल सत्ता श्रेष्ठ है और उसका स्वभाव श्रेष्ठता से भरा पूरा है ।

निरुद्देश्य घृणा का पात्र नहीं, दया का पात्र है । भटकाव ने उसे दिशा नहीं दी और वह पानी की लहरों के साथ, हवा के झोंकों के साथ इधर-उधर भटकते रहकर बहुमूल्य अवसर से हाथ धो बैठा । तोतली बोली में बोलते बच्चे किसी का अनिष्ट तो नहीं करते, लँगड़ाकर चलने वाले अपंग उलटे तो नहीं चलते । उनके साथ गति तो है । अगति का दोष उन पर नहीं मढ़ा जा सकता ।

चिन्ताजनक निकृष्टता है, क्योंकि उसमें विकृति भरती जा रही है । जहाँ अभाव होगा, वहाँ रिक्तता भरेगी और अन्धकार छा जायेगा । अन्धकार डरावेगा और डरा हुआ व्यक्ति हतप्रभ होकर कुछ भी करने पर उतारू हो जायेगा । भयभीत मनुष्य काँपता है, दीन वचन बोलता है और अनिश्चित दिशा में दौड़ता है । फलस्वरूप स्थिति उससे भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुरी बन जाती है जो सम्भावित विपत्ति के सचमुच आ धमकने पर हो सकती थी ।

इस प्रकाश को देखें और समझें यही उचित है । अपने स्वरूप, बल और लक्ष्य को समझें यही बुद्धिमत्तापूर्ण है । हमारी प्यास श्रेष्ठ का सेवन करने से ही बुझेगी । आत्मा की प्यास श्रेष्ठता के शीतल निर्झर के तल तक पहुँचकर ही बुझ सकती है ।

मानवीय गौरव के नीचे गिरकर जिस महाशून्य में उतरते हैं—वही भयावह है, वही निकृष्ट है । यदि अपनी मूल सत्ता के गरिमा भरे अस्तित्व को समझना और उसके उपयुक्त रीति-नीति अपनाना सम्भव हो सके तो समझना चाहिए कि अपने सुखद संसार का और समुन्नत भविष्य का निर्माण हो गया । इस निर्माण के विश्वकर्मा हम स्वयं ही हैं ।

सत्यं—शिवं—सुन्दरम् और उनकी विवेचना

महामनीषियों, ऋषियों और तत्ववेत्ताओं ने मानव-जीवन का जो सार खोज निकाला है, वह सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की त्रिपुटी में सन्निहित है । जिस मनुष्य के जीवन में सत्य, शिव और सुन्दर की अवतारणा हो गई, वह हर प्रकार से धन्य ही माना जायेगा । क्या लोक, क्या परलोक उसके लिए हर प्रकार से सार्थक तथा सुखदायक बन जाते हैं ।

सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अनुभूति प्राप्त कर लेने पर फिर कुछ पाना शेष नहीं रह जाता । जीवात्मा जिस अनन्त एवं अक्षय आनन्द के लिए छटपटाती रहती है वह इन्हीं त्रितत्वों के अधीन रहती है । इनको पा लेने का अर्थ है आनन्द पा लेना ।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के क्रम में जिस प्रकार धर्म प्रथम है, उसी प्रकार सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के क्रम में सत्य का प्रथम स्थान है । इन क्रमों से प्राथमिकता का अर्थ है, प्रधानता । बिना धर्म के अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति असम्भव है और बिना सत्य के शिवं एवं सुन्दरम् का कोई अस्तित्व नहीं है । जो सत्य है वही शिव और सुन्दर है और जो शिव तथा सुन्दर है उसको सत्य होना ही चाहिए । शिव एवं सुन्दर को सत्य का ही परिणाम मानना चाहिए । जो सत्य का उपासक है, उसे शिवं तथा सुन्दरं की प्राप्ति स्वयं ही हो जाती है । अस्तु, जीवन की सफलता तथा सार्थकता के लिए मनुष्य को सत्य और खोज की उसकी उपासना में ही संलग्न होना चाहिए ।

सत्य क्या है ? उसका निवास कहाँ है और उसे किस प्रकार पाया जा सकता है ? इन प्रश्नों का उत्तर है कि सत्य किसी भी वस्तु-विषय का वह अन्तिम स्वरूप है जिसमें किसी विकार अथवा परिवर्तन का अवसर न हो । सत्य का निवास संसार के प्रत्येक अणु में है और वह विश्वासपूर्ण जिज्ञासा के बल पर पाया जा सकता है ।

इस सम्पूर्ण सृष्टि में जो कुछ प्रत्यक्ष रूप में दिखाई दे रहा है वह चिरन्तन सत्य नहीं है, क्योंकि वह किसी विषय का विकृत स्वरूप है और प्रत्येक क्षण परिवर्तनशील है । सत्य की खोज करने के लिये किसी विषय के बाह्य स्वरूप से हटकर उसके अन्तःरूप की ओर दृष्टि डालनी होगी । उसके आदिम तथा अन्तिम रूप को खोज निकालना होगा । हम जो कुछ भी चर-अचर एवं जड़-चेतन प्रत्यक्ष रूप में देख रहे हैं, वह सृजन है, निर्माण है जो किसी तत्व विशेष द्वारा निर्मित हुआ है । किसी भी वस्तु का वह आदि तत्व ही चिरन्तन सत्य है जो अन्त में पुनः अपने आदि स्वरूप को प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो क्या मनुष्य, क्या वनस्पति, क्या पशु, क्या पक्षी अपने वर्तमान रूप में सत्य नहीं हैं । इनका सत्य स्वरूप उस तत्व में निहित है जिसकी सहायता से इन सबका सृजन हुआ है और वह तत्व एकमात्र परमात्मा ही है । परमात्मा की उपासना, सत्य की उपासना और सत्य की उपासना परमात्मा की उपासना है ।

उपर्युक्त सत्य की जो विवेचना की गई है वह तात्विक दृष्टि से चरम सत्य की विवेचना है, किन्तु यही चरम सत्य संसार में जब व्यावहारिकता का रूप धारण करता है, तब इसका स्वरूप उसी प्रकार से कुछ बदल जाता है, जिस प्रकार ईश्वर रूप होते हुए भी मनुष्य-विग्रह में उसकी उपाधि मनुष्य ही है । मनुष्य ईश्वर का व्यावहारिक रूप है जो सृष्टि की सहायता से आत्म-स्वरूप की अभिव्यक्ति के लिये ही सारे व्यवहार करता है । मनुष्य का सारा क्रिया-कलाप अपने सत्य स्वरूप को ही प्राप्त करने का उपक्रम मात्र है ।

इस विविधता पूर्ण संसार में सत्य के भी विविध रूप हैं, जिनका व्यवहार करते हुए मनुष्य एक दूसरे को आत्म रूप की ओर अग्रसर होने में सहयोग करते हैं ।

संसार में जो भी व्यवहार, व्यापार अथवा आचार किया जाय वह सत्य ही होना चाहिए । क्योंकि सत्य से शून्य कोई भी आचार व्यवहार मनुष्य को प्रतिकूल दिशा की ओर ले जाता है जिससे वह आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के स्थान पर आत्म-विस्मृत के अन्धकार में फँस जाता है । यही कारण है कि तत्ववेत्ताओं ने मिथ्याचार को हर स्थिति में सर्वथा वर्जित ही बताया है ।

मनुष्य का वह प्रत्येक कार्य मिथ्याचार ही है जो किसी भी काल में उसको अथवा किसी दूसरे को दुःखदायी होता है । व्यवहार जगत में ऐसे अनेक अवसर आ जाया करते हैं, जब सत्य, असत्य के और असत्य, सत्य के रूप अर्थ में लिया जा सकता है । मानिये कोई आततायी किसी को मारने के लिये उसका पीछा करता हुआ आता है और वह आदमी आपके देखते एक स्थान पर छिप जाता है । आततायी आकर आपसे पूछता है कि क्या आपने देखा है कि वह आदमी कहाँ छिप गया है । आप ठीक-ठीक जानते हुए कि वह कहाँ छिपा हुआ है—आततायी को क्या उत्तर देंगे ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि आप उस आदमी का ठीक-ठीक पता बतला देते हैं तो वह आदमी मारा जायेगा और आप हत्या के भागीदार बनेंगे और यदि आप ठीक-ठीक पता नहीं बतलाये तो झूठ बोलते हैं, ऐसे अवसर पर कोई भी करणीय अथवा अकरणीय के असमंजस में पड़ जायेगा ।

इस प्रकार के असमंजस के समय आपको निर्णय करने से पहले यह विचार करना होगा, कि आप उस समय व्यवहार जगत में बरत रहे हैं अथवा अध्यात्म जगत में । यदि अध्यात्म जगत में बरत रहे हैं तो निर्लिप्त भाव होने से 'हाँ' और 'न' दोनों स्थितियों में आप पाप के भागी न बनेंगे । उस समय आपका वही उत्तर सत्य होगा जो सहसा प्रथम बार ही आपके अन्तःकरण में प्रतिध्वनित होगा । 'हाँ' अथवा 'न' कोई भी उत्तर देने के बाद यदि आपके अन्तःकरण में कोई द्वन्द्व नहीं उठता और तत्काल उस घटना को भूलकर आत्मस्थ हो जाते हैं तो आपका कोई भी उत्तर निष्फल होगा । जिसका परिणाम न पाप होगा और न पुण्य ।

यदि आप उस समय व्यवहार जगत में चेष्टावान हैं तो आपको अपने कथन की उपयोगिता एवं परिणाम देखकर उत्तर देना होगा जिसमें अधिक से अधिक मानवीय हित का समावेश हो, आपका वही उत्तर उचित होगा ।

उपरोक्त स्थिति विशेष में आपका निषेधात्मक उत्तर ही ठीक है, क्योंकि उस प्रकार किसी एक निरपराध की जीवन रक्षा होगी और आततायी तात्कालिक हत्या के पाप से बच जायेगा और इस प्रकार आप एक सामयिक सत्य की रक्षा करेंगे ।

इसके अतिरिक्त यदि आप आततायी से भयभीत होकर प्रच्छन्न व्यक्ति का पता बतला देते हैं और यह सोच लेते हैं कि वह व्यक्ति मारा जायेगा, तो मारा जाये, मैंने तो सत्य ही बोला है तो आपका वह सत्य घोर असत्य है, जिसके लिये आप पाप के भागी होंगे ।

इसी प्रकार की एक अन्य स्थिति में यदि कोई अपराधी आपकी जानकारी में छिपा हुआ है और उसकी तलाश में पुलिस आप से पूछती है तो आपका यह सोचकर न बतलाना कि बेचारा पुलिस के फंदे में फँसकर दण्ड पायेगा, तो आप की वह दया एक घोर असत्य ही है । निरपराधी तथा अपराधी की रक्षा में समानता नहीं हो सकती । फिर चाहे एक में आपको असत्य और दूसरे में सत्य कथन का सहारा ही क्यों न लेना पड़ा हो ।

जिस व्यवहार जगत में हम बरतते हैं उसमें कथन की हितकारिता ही सत्य का स्वरूप है और यही 'सत्यम्' के साथ 'शिवं' का समावेश है, किन्तु कथन की हितकारिता में किसी स्वार्थ, भय, क्रोध अथवा मोह का पुट नहीं होना चाहिए ।

जिस प्रकार सत्यं के साथ हितकारिता के रूप में 'शिवं' आवश्यक है, उसी प्रकार 'सुन्दरम्' अर्थात् मृदुता एवं मधुरता भी सत्य का एक अभिन्न अंग है । सत्य के इस अंश 'सुन्दरम्' का सम्बन्ध भाषा तथा अभिव्यक्ति से है । किसी सत्य को विकृति, अतिरेकता आवेश, कटुता अथवा उपहासात्मक व्यंग्य के साथ सामने रखना अथवा स्वयं समझना भी एक प्रकार से असत्य की ही सेवा है । किसी नग्न सत्य को भी शिष्टता का जामा पहनाकर ही सामने लाना ठीक है अन्यथा कटुता के कारण किसी को अनावश्यक कष्ट देने वाला सत्य भी असत्य का ही रूप है । इस प्रकार सत्य का स्वरूप तभी पूर्ण होता है, जब वह शिवं एवं 'सुन्दरम्' के साथ ही हो ।

सत्यमेव जयते नानृतम्

हर मनुष्य की अपनी एक तौल होती है । इसे आत्म-श्रद्धा कहें या आत्म-गौरव । हर व्यक्ति इसी आंतरिक तौल के आधार पर आचरण करता है, उसी के अनुरूप ही उसे दूसरों से प्रतिष्ठा भी मिलती है और सांसारिक सुखोपभोग भी मिलते । अपने आपके प्रति जिसमें जितनी प्रगाढ़ श्रद्धा होती है, वह उतने ही अंश में नेक, ईमानदार, सच्चरित्र, तेजस्वी और प्रतापी होता है । इन सद्गुणों का बाहुल्य ही विपुल सफलता के रूप में परिलक्षित होता है ।

अपनी तौल क्या है ? अपनी वाणी विचार और क्रिया के सत्य-असत्य का विवेचन ही वह माप है जिससे हम अपने सम्बन्ध की मान्यता स्थिर करते हैं । अर्थात् आत्म-श्रद्धा का आधार सत्य है । हम सत्य से जितना विमुख होते हैं उतना ही अपने आपसे अश्रद्धालु बनते हैं । आत्मा के प्रति श्रद्धा का न होना ही दीनता, कायरता और कमजोरी है । इसी बात को यों कहा जा सकता है कि जो सत्य के प्रति बफादार नहीं होते वह कायर और कमजोर, दीन-हीन और दुःखी होते हैं । अपनी ही नजर में जो गिर गया वह सैकड़ों के उठाये नहीं उठ सकता । जिसने सत्य का परित्याग कर दिया, समझना चाहिए सुख-स्वर्ग का मार्ग उसके लिये अवरुद्ध हो गया ।

शास्त्रकारों ने सप्त मर्यादाओं में सत्य को दूसरा स्थान दिया है । 'सत्यमेव जयते नानृतम्' "सत्य की ही जय होती है, असत्य की नहीं, सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं ।" इन शब्दों में सत्य की गरिमा का उल्लेख किया है । वेद में कहा है—

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत सत्यानृते प्रजापतिः
अश्रद्धामनृतेदधाच्छ्रद्धां सत्यं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान शुक्रमन्धस
इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥

(यजु १९-७७)

प्राण में अमृत है । अन्न और जल में भी जीवनामृत है । यह दोनों प्राणधारियों के शरीर की रक्षा करते हैं । इनके निकल जाने पर शरीर तेज और क्रिया-शक्तिविहीन हो जाता है, उसी तरह सत्य न रहने से मनुष्य जीवन की सारी तेजस्विता का अन्त हो जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राचीनकाल में सब स्त्री-पुरुष सत्यनिष्ठ होते थे । मन, वचन और कर्म से भी सत्य का ही व्यवहार किया जाता था, तब मनुष्य का जीवन बिलकुल सीधा-सादा, सरल, स्वाभाविक एवं प्राकृत था, स्वल्प आवश्यकताएँ थीं, इसलिये जीवन में बनावट लाने की लोगों को जरूरत ही न पड़ती थी । धीरे-धीरे सांसारिक सुखों में बढ़ोत्तरी हुई यद्यपि वे अल्पकालिक थे, किन्तु अत्यधिक आकर्षण के कारण यह लोग अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाने लगे, तब जीवन में कृत्रिमता भी आई । हानि से बचने और अपने लिये अधिक से अधिक सुखोपभोग करने के लिये असत्य का प्रयोग करने लगे ।

तब विचारवान लोग प्रजापति के पास जाकर बोले—आदि पुरुष! सत्य की रक्षा कैसे हो? तब प्रजापति ने यह व्यवस्था कर दी कि भविष्य में जो सत्य का पालन करेगा, उसे ही ऐश्वर्य प्राप्त होंगे अन्य को नहीं । यह नियम यथावत् चल रहा है । सच्चा ऐश्वर्य सुख केवल सत्यशील को ही मिलता है ।

आत्मा स्वयं शाश्वत् सत्य है । असत्य होना तो असत्यवादी भी पसंद नहीं करता । झूठ बोलने वाले को कह दो 'आप झूठ बोलते हैं' तो वह जलकर खाक हो जाता है और प्रतिशोध तक के लिये तत्पर हो जाता है । खेद है कि फिर भी लोग जीवन को असत्य के आचरण से कलुषित बनाते हैं और अपनी आत्मैश्वर्य को कमजोर बनाते हैं । सच्ची बात न कहने वाले और सच्ची बात छुपाने वाले दोनों ही इस अधिकार से वंचित होते हैं और धार्मिक जीवन की पवित्रता और दिव्य आनन्द से विमुख बने रहते हैं ।

सत्य सरल भी है और स्वाभाविक भी । यदि तुच्छ अहङ्कार और स्वार्थमयता को प्रमुख न बनाया जाय तो सत्य तथ्य छिपाने की आवश्यकता ही न पड़े । जो कुछ सत्य है उसी की अभिव्यक्ति हो तो फिर जीवन में जटिलता का समावेश हो ही नहीं । न विवादास्पद परिस्थितियाँ बनें । सीधे सरल अवसर का लाभ स्वार्थपूर्ति के लिये करना ही धूर्तता है इससे मनुष्य का सारा श्रेय और बड़प्पन गिर जाता है । छोटे व्यक्ति भी अपनी स्वाभाविक सरलता के कारण सामाजिक सम्मान और प्रतिष्ठा के पात्र बनते हैं जबकि तथाकथित बड़े कहे जाने वाले लोग भी सत्यविमुख हो जाने से विश्वास खो देते हैं ।

इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि सत्य-विमुख होने पर युधिष्ठर जैसे धर्मात्मा, कुमारिल भट्ट जैसे विद्वान और आचार्य पिंगल ऋषि को भी अधःपतित लोकों में जाना पड़ा और हरिश्चन्द्र जैसे राजसी प्रकृति वाले व्यक्ति ने सत्य के बल पर ही उस शाश्वत् आनन्द को पा लिया था जिसे योगीजन कठिन तपश्चर्या से प्राप्त कर पाते हैं । "साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप" वाली कहावत भी जगत प्रसिद्ध है ।

जीवन की पवित्रता और लक्ष्य सत्य-विच्युतों को यों नहीं मिला करते कि उनका सारा ध्यान असत्य बोलने से उत्पन्न हुई स्थिति को सम्भालने में ही लग जाता है । जिस किसान के खेत सींचने वाली नाली कमजोर होती है, उसका अधिकांश पानी इधर-उधर ही फैल-फूट जाता है, उसका बहुत समय केवल उसी सुधार में लग जाता है और सिंचाई का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन अधूरा ही रह जाता है । असत्य बोल कर धन कमाया जा सकता है, पर जीवन का आनंद, पवित्रता और लक्ष्य नहीं प्राप्त किया जा सकता है । "एक झूठ को छिपाने के लिये सौ झूठ और बोलने पड़ते हैं" फिर उन सौ झूठों के लिए हजार बहाने ढूँढ़ने पड़ते हैं । ऐसे व्यक्ति को आत्मा या ईश्वर चिन्तन के लिए समय ही कहाँ मिलेगा ?

आत्मा के ऐश्वर्य और सत्य के शाश्वत् स्वरूप को शाश्वत् बनाए रखने के लिए सत्य बोलना, विचार करना और तदनुसार आचरण यह 'सत्य देवता' जिन्हें सिद्ध हो जाता है, उन्हें परमात्मा को ढूँढ़ने के लिए और कहीं जाने की आवश्यकता नहीं । वह क्रमशः विश्व की परिस्थितियों का यथार्थ ज्ञान, आत्म-साक्षात्कार करता हुआ, आत्मा में ही ईश्वरीय दर्शन का आनन्द लेता है । सत्य जीवन की मधुरता है और उसकी पूर्ण-परिपक्वता जीवन लक्ष्य की प्राप्ति ।

सत्य की प्रतिष्ठा होते हुये भी उसे छुपाने के अनेक प्रयत्न किये जाते हैं । सुख-सौभाग्यों में पराजय और सामाजिक संघर्ष का यह बहुत बड़ा कारण है । इतना होते हुए भी मनुष्य की अन्तरात्मा सत्य की ओर झुकी रहती है । उसी सत्य को प्रमाणित करने के लिए उपनिषद् प्रार्थना करते हैं—

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्वं तुष्णं अपावृणतु सत्य धर्माय दृष्टये ॥

'हे परमात्मन् ! मनुष्य की आत्मा सत्य को प्रकाश में लाना चाहती है, किन्तु मन के प्रलोभन उस पात्र को ढके हुए हैं । हमें सत्य को ही देखने की दृष्टि दो ।"

यह प्रार्थना जीवन में चरितार्थ होती है तो भावनामय संसार का सत्य स्वरूप प्रकट हो जाता है । ऐसी दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है जिससे सम्पूर्ण अन्तर्द्वन्द्वों से छूटकर जीव आत्म-श्रद्धा का सुखोपभोग करता है । इसलिये हम जीवन में सदैव सत्य बोलें, सत्य सुनें और ग्रहण करें ।

हम विराट विश्वात्मा के एक घटक मात्र हैं

मनुष्य अपने को एकाकी अनुभव करके स्वार्थान्ध रहने की भूल भले ही करता रहे, पर वस्तुतः इस विराट् ब्रह्म का, विशाल विश्व का, एक अकिंचन-सा घटक मात्र है । समुद्र की लहरों की तरह उसका अस्तित्व अलग से दीखता भले ही हो, पर वस्तुतः वह समष्टि सत्ता का एक तुच्छ सा परमाणु भर है । ऐसा परमाणु जिसे अपनी सत्ता और हलचल बनाये रहने के लिये दूसरी महाशक्तियों के अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अपनी पृथ्वी सूर्य से बहुत दूर है और उसका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखाई नहीं पड़ता फिर भी वह पूरी तरह सूर्य पर आश्रित है । सर्दी, गर्मी, वर्षा, दिन, रात्रि जैसी घटनाओं से लेकर प्राणियों में पाया जाने वाला उत्साह और अवसाद भी सूर्य सम्पर्क से सम्बन्धित रहता है । वनस्पतियों का उत्पादन और प्राणियों की हलचल में जो जीवन तत्व काम करता है, उसे भौतिक परीक्षण से नापा जाय तो उसे सूर्य का ही अनुदान कहा जायेगा । असंख्य जीव कोशाओं से मिलकर एक शरीर बनता है, उन सबके समन्वित एवं सहयोग भरे प्रयास से जीवन की गाड़ी चलती है । प्राण तत्व से इन सभी कोशाओं को अपनी स्थिति बनाये रहने की सामर्थ्य मिलती है । इसी प्रकार इस संसार के समस्त जड़-चेतन घटकों को सूर्य से अभीष्ट विकास के लिए आवश्यक अनुदान सन्तुलित और समुचित मात्रा में मिलता है ।

यह सूर्य भी अपने अस्तित्व के लिए महासूर्य के अनुग्रह पर आश्रित है और महासूर्यों को भी अतिसूर्य का कृपाकांक्षी रहना पड़ता है । अन्ततः सभी को उस महाकेन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है जो ज्ञान एवं शक्ति का केन्द्र है वह ब्रह्म है, सविता है । अति सूर्य, महासूर्य और सूर्य सब उसी पर आश्रित हैं ।

प्राणियों, वनस्पतियों और पदार्थों की गतिविधियों पर सूर्य के प्रभाव का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनकी स्वावलम्बी हलचलें वस्तुतः परावलम्बी हैं । सूर्य की अँगुलियों में बँधे हुए धागे ही बाजीगर द्वारा कठपुतली नचाने की तरह विभिन्न गतिविधियों की चित्र-विचित्र भूमिकाएँ प्रस्तुत करते हैं । यहाँ तक कि प्राणियों का, मनुष्यों का चिन्तन और चरित्र तक इस शक्ति प्रवाह पर आश्रित रहता है । न केवल सूर्य वरन् न्यूनाधिक मात्रा में सौरमण्डल के ग्रह, उपग्रह तथा ब्रह्माण्ड क्षेत्र के सूर्य तारक भी हमारी सत्ता-स्थिरता एवं प्रगति को प्रभावित करते हैं ।

अमेरिका के पागल खानों में किये गये सर्वेक्षण में पाया गया कि पूर्णिमा के दिन मानसिक रोगी अधिक विक्षिप्त हो जाते हैं, जबकि अमावस के दिन यह दौर सर्वाधिक कम होता है । विक्षिप्त ही नहीं, सामान्य मनुष्यों की चित्त-दशा पर भी चन्द्रकलाओं के उतार-चढ़ाव का प्रभाव पड़ना सामूहिक मनश्चेतना का ही द्योतक है ।

वनस्पति विज्ञानी वृक्षों के तनों में बनने वाले वर्तुलों द्वारा वृक्षों के जीवन का अध्ययन करते हैं । देखा गया है कि वृक्ष में प्रतिवर्ष एक वृत्त बनता है, जो कि उसके द्वारा छोड़ी गई छाल से विनिर्मित होता है । हर ग्यारहवें वर्ष यह वृत्त सामान्य वृत्तों की अपेक्षा बड़ा बनता है । अमेरिका के रिसर्च सेन्टर ऑफ ट्री रिंग ने पता लगाया है कि ग्यारहवें वर्ष जब सूर्य पर आणविक विस्फोट होते हैं तो वृक्ष का तना मोटा हो जाता है और उसी कारण वृत्त बड़ा बनता है । स्पष्ट है कि सूर्य और चन्द्र के परिवर्तनों से मनुष्यों एवं पशु-पक्षी तथा पेड़-पौधे भी प्रभावित होते हैं । तब क्या मात्र मनुष्यों में ही सामूहिक मनश्चेतना न होकर सम्पूर्ण सृष्टि में ही कोई एक समष्टि चेतना विद्यमान है; यह प्रश्न आज वैज्ञानिकों के सामने खड़ा उन्हें आकर्षित कर रहा है ।

डॉ. हेराल्ड श्वाइत्जर के नेतृत्व में आस्ट्रिया के वैज्ञानिकों ने सूर्य ग्रहण के प्रभावों का निरीक्षण-परीक्षण कर यह निष्कर्ष निकाला कि पूर्ण सूर्यग्रहण के समय सामान्य कीट-पतंगे भी विचित्र आचरण करने लगते हैं । अनेक पक्षी सूर्यग्रहण के चौबीस घण्टे पूर्व ही चहचहाना बन्द कर देते हैं । चींटियाँ सूर्यग्रहण के आधा घण्टे पूर्व से भोजन की खोजबीन बन्द कर देती हैं और व्यर्थ ही भटकती रहती हैं । सदा चंचल बन्दर वृक्षों को छोड़कर जमीन पर आ बैठते हैं । वुड लाइंस, बीटल्स, मिली पीड्स आदि ऐसे कीट-पतंगे जो सामान्यतः रात्रि में ही बाहर निकलते हैं, वे भी सूर्य ग्रहण के दिन बाहर निकले देखे जाते हैं । दिशा-ज्ञान में दक्ष चिड़ियाँ भी चकित हो जाती हैं और उन्हें दिशा बोध नहीं रह जाता । नीलकंठ गौरैया जैसी कुछ चिड़ियों को छोड़कर शेष चिड़ियाँ चहकना भी भूल-सी जाती हैं ।

जापान के प्रख्यात जैविकीविद् तोनातो के अनुसार हर ग्यारहवें वर्ष सूर्य पर होने वाले आणविक विस्फोटों के समय पृथ्वी पर पुरुषों के रक्त में अम्ल तत्व बढ़ जाते हैं और उनका रक्त पतला पड़ जाता है ।

पृथ्वी का मात्र सूर्य से अथवा अपने ही उपग्रह चन्द्र से ही अन्तर्सम्बन्ध नहीं है । प्रोफेसर ब्राउन ने मंगल, शुक्र, बृहस्पति आदि ग्रहों का अध्ययन कर यह सिद्ध किया है कि इनकी गतियों और स्थितियों के परिवर्तन से पृथ्वी भी प्रभावित होती है । ये सभी सूर्य सन्तति ही तो हैं और जुड़वाँ बच्चों वाला सिद्धान्त यहाँ भी घटित होता है, तो आश्चर्य ही क्या है ?

रूसी वैज्ञानिक चीजेवस्की ने १९२० में ही यह सिद्ध कर दिया था कि सूर्य पर प्रति ग्यारहवें वर्ष होने वाले आणविक विस्फोट से पृथ्वी पर युद्ध एवं क्रान्तियों का उद्भव-विकास होता है । उनका कहना था कि पृथ्वी पर घटित होने वाले प्रत्येक प्रमुख परिवर्तन का सम्बन्ध सूर्य से होता है ।

ऐसे ही निष्कर्षों के विस्तृत अध्ययन व इस दिशा में व्यापक अनुसन्धान प्रयासों के लिये १९५० में वैज्ञानिक जियोजारजी गिआर्डो ने ब्रह्माण्ड रसायन को जन्म दिया । गिआर्डो के अनुसार समूचा ब्रह्माण्ड एक शरीर है और इसके सभी अंग इससे सम्पूर्ण एकात्म हैं । इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक नक्षत्र पिंड फिर वह कितनी भी दूरी पर क्यों न हो पृथ्वी के जीवन को प्रभावित करता है ।

भारत में इसी तत्वदर्शन के अनुरूप अतीत में ज्योतिर्विज्ञान का विकास हुआ था । आर्यभट्ट का ज्योतिष सिद्धान्त, कालक्रिया पाद, गोलपाद और सूर्य सिद्धान्त, फिर नारदेव, ब्रह्मगुप्त आदि द्वारा उन सिद्धान्तों का संशोधन-परिवर्धन, भाष्कराचार्य का महाभाष्करीय आदि ग्रन्थ

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस महत् प्रयास के कुछ सुलभ अवशिष्ट परिणाम हैं । बाद में इस विशुद्ध विज्ञान का जो दुरुपयोग हुआ, उसे जातीय-जीवन क्रम के ह्रास-काल की अराजकता समझते हुए उसके मूल सिद्धान्त-सूत्रों और निष्कर्ष संकेतों के आधार पर इस दिशा में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती है ।

भारतीय तत्वमनीषी हजारों वर्ष पूर्व इस तथ्य से परिचित थे कि जड़ता वस्तुतः कहीं है नहीं । वह हमारी स्थूल दृष्टि की 'एपियरेन्स' या आभास मात्र है । यथार्थतः सर्वत्र आत्म-चेतना ही विद्यमान है । यह सर्वव्यापी चैतन्य सत्ता ही विश्वात्मा है । विश्वात्मा के साथ आत्मा की जितनी समीपता, घनिष्टता होती है उसी अनुपात से उसे विशिष्ट अनुदान् प्राप्त होते रहते हैं ।

सान्निध्य की सार्थकता अनुशासन में

आत्मा के कौशल से शरीर का निर्वाह चलता है और शरीर के सहयोग से आत्मा अपना लक्ष्य पूरा कर पाती है । यह सम्भव तभी होता है, जब दोनों के बीच उच्चस्तरीय सहयोग बना रहे । यदि इनमें से एक पक्ष भी असहयोग या विग्रह करे तो दूसरे पक्ष की ही नहीं, उसकी अपनी भी दुर्गति होगी । आत्मा को शरीर का पोषण और नियमन करना चाहिए तथा शरीर को आत्मा के निमित्त परिश्रम करने एवं अनुशासन पालने में तत्पर रहना चाहिए । यही है एक मात्र सुख-शान्ति का मार्ग ।

संसार की पदार्थ सत्ता विराट् ब्रह्म का शरीर है । सदुद्देश्यों का प्रतीक-प्रतिनिधि परमात्मा इसका अधिपति है । दोनों के मध्य सहयोग रहना चाहिए । इसमें परमात्मा पक्ष ने सृष्टि को समर्थ और समुन्नत बनाये रहने में कहीं कोई चूक नहीं रहने दी है । उसके अनुदान और नियम पदार्थों को उपयोगी और प्राणियों को प्रसन्न रखने के निमित्त अपना काम बराबर करते रहते हैं । शरीर सत्ता के दल-दल में फँसी हुई जीव चेतना ही उच्छृंखलता बरतती है और ईश्वरीय अनुशासन के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा करती है । यही है व्यापक असन्तुलन का एकमात्र कारण जिसने इस सुन्दर विश्व उद्यान में अनेकानेक विग्रह एवं व्यवधान खड़े किये हैं ।

इस सर्वभक्षी संकट का एक ही कारण है—चेतना और पदार्थ के मध्यवर्ती जीवन का आदर्श और स्वरूप विकृत हो जाता है । यदि जीवनचर्या में आत्मा और सम्पदा का तालमेल बिठाये रहने की विवेकशीलता बनी रहती तो सर्वत्र सुख-शान्ति का ही वातारवरण दीखता । अनिष्टों और संकटों से घटाटोप का दैवी प्रकोप नहीं, मनुष्य द्वारा अपने पैरों कुल्हाड़ी मारना कहना चाहिए । समापन भी आमन्त्रण देने वाले को ही करना होगा । विनाश की विभीषिकाएँ मनुष्य ने अपने चिन्तन और चरित्र में उच्छृंखलता की मात्रा बढ़ाकर ही की है । यदि विपत्तियाँ अरुचिकर या असह्य प्रतीत होती हों तो उसे ही अपने कदम वापिस लौटाने होंगे ।

जीवन के दो पक्ष हैं—शरीर प्रकृति का प्रतिनिधि, आत्मा विराट् चेतना की अंशधर । दोनों एक दूसरे के साथ रहें उतना ही पर्याप्त नहीं, वरन् होना यह भी चाहिए कि दोनों एक दूसरे की प्रगति तथा प्रसन्नता का भी ध्यान रखें । सान्निध्य ही नहीं, सहयोग भी चाहिए । सहयोग न होने पर जो कुछ बच रहता है उससे विसंगतियाँ ही उत्पन्न होती हैं । जेल में एक साथ अनेक कैदी रहते हैं, मुसाफिर खाने में ढेरों लोग सटे बैठे रहते हैं, बाड़े में कितनी ही भेड़ें बन्द रहती हैं, पर साथ रहने से किसी का कुछ बनता नहीं, उलटी असुविधा ही होती है । आत्मा और शरीर दोनों साथ-साथ रहें तो, पर एक दूसरे से श्रेय साधन में रुचि न लें तो फिर उस उपेक्षापूर्ण निर्वाह से जीवनचर्या नीरस और निरर्थक ही बनती जाती है ।

साथ रहने वाले यदि एक दूसरे के विरुद्ध आचरण करें तब तो समझना चाहिए कि संकट ही खड़ा हुआ । चारपाई में खटमल, सिर में जुएँ, कमरे में मच्छर तथा घर में साँप, बिच्छू, चूहे, छछूँदर अति समीप रहते हुए भी अपने आश्रयदाता के लिए विपत्ति बनकर ही रहते हैं । अधिपति इन सहचरों से पिंड छुड़ाने की बात ही सोचता रहता है । शरीर और आत्मा के एक साथ रहने से प्राणी जीवित तो रहता है, पर सहयोग के अभाव में न कहीं आनन्द दीखता है और न प्रगति का आधार बनता है । उलटे खिन्नता, उद्विग्नता के कारण दोनों एक दूसरे से पिण्ड छुड़ाने की बात सोचने लगते हैं ।

आत्मा और काया को एक दूसरे का हित साधक बन कर रहना चाहिए और सच्चे अर्थों में दाम्पत्य-जीवन का आदर्श उपस्थित करना चाहिए । इस क्षेत्र में क्षणिक आकर्षण एवं उत्तेजना से बचना और चिरस्थायी हित साधन का ध्यान रखना होता है । अनावश्यक आवेश के प्रसंग आने पर समझदारों में से एक दूसरे आतुर को समझाता और रोकता है । उस समय बुरा लगने जैसे अप्रिय अवसर रहने पर भी विवेकवान दम्पति अपने साथी को अहितकर मार्ग पर नहीं जाने देते । इसमें असहयोग या विरोध भी करना पड़ सकता है । यों ऐसे अवसर अपवादस्वरूप ही कभी-कभी आते हैं । साधारणतया स्नेह-सहयोग का आदान-प्रदान ही चलता रहता है । दूरदर्शिता अन्ततः हितकर ही होती है । उसे अपनाने पर जो सामयिक मनोमालिन्य उभरा था, वह भी देर तक टिक नहीं पाता ।

आत्मा का दूरगामी हित साधन काया करे इसके लिए उसका सहयोग आदर्शवादी सत्प्रवृत्तियों को क्रियान्वित करने में होना चाहिए । शरीर की प्रभृति इस ढाँचे में ढलनी चाहिए कि उसकी ज्ञानेन्द्रियों को उच्चस्तरीय क्रिया-कलापों में रस आने लगे, उसकी कर्मेन्द्रिय ऐसा श्रम करने में उत्साह प्रकट करने लगे, साथ ही यदि कुसंस्कारों का दबाव अनुचित कृत्य करने में हो, तो उसकी प्रतिक्रिया आत्मा का अहित होने का ध्यान रखते हुए असहयोग, अनुत्साह जैसी होनी चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यह शरीर पक्ष का नीति निर्धारण हुआ । अब आत्मा की, चेतना की जिम्मेदारी आती है । उसे काया को नीरोग, बलिष्ठ एवं दीर्घजीवी बनाये रहने के उत्तरदायित्व को ध्यान में रखते हुए ऐसा मार्गदर्शन करना चाहिए, जिसमें मात्र औचित्य भरी गतिविधियाँ ही अपनाई जाती रहें । ऐसा कुछ न बन पड़े जो तात्कालिक उत्तेजना की दृष्टि से तो आकर्षक लगे, किन्तु परिणाम में काया को क्षीण दुर्बल बनाने लगे । बच्चे सभी को प्यारे लगते हैं, पर उनकी चित्र-विचित्र फरमाइशों को तत्काल पूरा करते रहने के लिए कोई अभिभावक सहमत नहीं होता । जो उचित है, उतनी ही मात्रा में बच्चे का मन रखा जाता है । शेष के लिए इधर-उधर की बातों में लगाकर या स्पष्ट मना करके उसे बालहठ छोड़ने की स्थिति तक पहुँचा दिया जाता है । आत्मा की वरिष्ठता इसी में है कि वह शरीर रूपी पत्नी का आत्यन्तिक हित देखे, उसकी अनगढ़ फरमाइशों के प्रति उदासीनता ही बरते । साथ ही जो उचित एवं आवश्यक है उसे पूरा करने में उत्साह दिखाने तथा सहयोग करने में तनिक भी त्रुटि न रहने दे ।

काया को नीरोग दीर्घजीवी बनाने का उत्तरदायित्व आत्मा को वहन करना चाहिए । इसके लिए चटोरी आदतें और बचकानी मचलनें यदि रोकनी पड़ें तो उसे विग्रह नहीं हित साधन ही समझा जाय । इतना ही नहीं देखना यह भी होगा कि उसे अपयश एवं तिरस्कार का भाजन न बनना पड़े । अकर्म करने से बदनामी सहनी पड़ती है और अप्रामाणिकता लद जाने से तिरस्कार बरसता है । स्वस्थ ही नहीं शरीर को यशस्वी एवं प्रामाणिक भी होना चाहिए । इसके लिए यह आवश्यक है कि चेतना काया को संचित कुसंस्कारिता के आधार पर अवांछनीय आचरण करने की छूट न दे । जहाँ औचित्य के लिए प्रोत्साहन देना आवश्यक है, वहाँ यह भी कर्त्तव्य है कि अनुचित को निरस्त किया जाय । वैसे आग्रह से मीठे, कड़ुए ढंग से अस्वीकृत कर दिया जाय । ऐसी विवेकपूर्ण नीति अपनाने पर ही आत्मा का काया के लिए विवेकपूर्ण सदव्यवहार सध सकेगा । इसके विपरीत बालहठ पूरी करते रहने की अदूरदर्शिता अपनाने में सब प्रकार से अहित ही अहित है ।

काया और आत्मा की घनिष्टता, एकात्मता सर्वविदित है । दोनों साथ-साथ ही रहते हैं और मिल-जुलकर काम भी करते हैं । इतने पर भी एक त्रुटि ऐसी बनी रहती है जिसके कारण वह सहचरत्व उपयोगी न बनकर अनिष्टकारक सिद्ध होता है । मनुष्य जीवन को सुरदुर्लभ कहा गया है । यह चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के उपरान्त मिलने वाला असाधारण सौभाग्य है । इसे सार्थक बनाने के लिए आवश्यक है कि मानवीय काया और आत्मा के मध्य उच्चस्तरीय हित साधन की दूरदर्शिता भी बनी रहे । इसके लिए कौशल एवं चातुर्य भर से काम नहीं चलता, वरन् दूरगामी परिणामों को महत्त्व दे सकने वाले और तदनुरूप निर्णय ले सकने वाले विवेक को जाग्रत रहना भी आवश्यक है । इसके अभाव में शरीर की क्रियाशक्ति और चेतना की विचारशक्ति भारी उछल-कूद करते रहने पर भी अन्ततः विषाक्त परिणाम ही उत्पन्न करती है ।

कई मित्र ऐसे होते हैं जो अनजान में ही अपने साथी को शत्रु जैसी विपत्ति में फँसा देते हैं । शरीर और आत्मा की पारस्परिक सघनता रहते हुए भी उनके पारस्परिक व्यवहार ऐसे हो सकते हैं जिनमें मित्र द्वारा शत्रु जैसा व्यावहारिक होने के दुर्भाग्य को नग्न नृत्य करते देखा जा सके । यह जीवन समाप्त होने पर यदि नारकीय यन्त्रणा सहनी पड़ी, लौटकर फिर चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करना पड़े, शुभावसर गँवा देने के लिए चिरकाल तक पश्चात्ताप की आग में जलना पड़े तो यही कहा जायगा कि काया और आत्मा के विवाह की सार्थकता सिद्ध नहीं हुई । दोनों एक दूसरे के लिए मरते, खपते तो रहे, पर कोई किसी का हित साधन न कर सका । आत्मा की दुर्गति हुई तो शरीर भी कहाँ सुखी रह सकेगा । शरीर ने दुष्प्रवृत्ति अपनाकर अपना स्वास्थ्य और यश गँवाया तो उससे आत्मा भी गौरवशाली कहाँ हुई? ऐसी दशा में मित्रता के साथ शत्रुता के व्यवहार को अमृत में विष घुल जाने की तरह दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जायगा ।

अध्यापक अनुशासन सिखाते हैं और छात्रों का बचकानापन 'येन केन प्रकारेण' सुधारने का प्रयत्न निरन्तर जारी रखते हैं । बच्चे ऐसे गुरुजनों से कतराते तो अवश्य हैं, पर बड़े होने पर वे सोचते हैं कि अभिभावकों से भी बड़ा अनुदान उन्हें अध्यापक से मिला । अनुशासन बरतने पर जो अनख लगता और मन बिचकता है, उसे स्वाभाविक दुर्बलता मानते हुए भी पहुँचना इसी निर्णय पर पड़ता है कि इस कटु प्रसंग की तरह विपन्नता से छूटने के लिए नीमगिलोय की तरह गले उतारा जाय ।

व्यक्तिगत जीवन में जिस पर दाम्पत्य जीवन में दूरदर्शी सहकारिता की आवश्यकता है, उसी प्रकार समष्टि की सार्वभौम व्यवस्था में प्रकृति और पुरुष का उच्चस्तरीय सहयोग होना चाहिए । साधनों और हलचलों को ईश्वरीय नियन्त्रण में आदर्शवादी अनुशासन में नियन्त्रित रहना चाहिए । आत्म पक्ष के अनुशासन में जन-जन को आबद्ध रखने का उत्तरदायित्व ऋषियों और मनीषियों के कन्धों पर आया है, इसलिए इन्हें धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधित्व करने वाले देव-दूत कहा जाता है । निराकार भगवान् की साकार मूर्ति परमार्थ परायण महामानवों को कहते हैं । चेतना के प्रतिनिधि वही हैं । उनका कर्त्तव्य है कि प्रकृति सम्पदा और प्राणियों की गतिशीलता में अनौचित्य का समावेश न होने दें ।

प्रकृति तो जड़ है उसमें शक्ति और गुण है । इस विशिष्टता का अपना महत्त्व है । इतने पर भी यह उत्तरदायित्व अन्ततः चेतना पर ही आता है कि वह इस प्रकार की व्यवस्था बनाये जिसमें पदार्थ सम्पदा का कहीं भी दुरुपयोग सम्भव न हो सके । प्रकृति का स्वभाव अधोगामी है । पृथ्वी की आकर्षण शक्ति ऊपर से नीचे को खींचती है । पानी ढलान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की ओर बहता है । पतन की ओर मन चलता है । पशु पक्षी भी प्रजनन क्रिया में अनायास ही प्रवीण पाये जाते हैं । कठिन तो अभ्युदय की ऊँचाई को ओर उछलने वाली उत्कृष्टता ही पड़ती है । भारी उल्काएँ जमीन पर अनायास ही आ गिरती हैं, किन्तु छोटे से राकेट को अन्तरिक्ष में उछालने के लिए बड़ी मात्रा में शक्ति, बुद्धि और सम्पत्ति लगानी पड़ती है । यह प्रकृति के उत्थान क्रम में अवरोध को तोड़ने की आदत को निरस्त करना ही है ।

सान्निध्य एवं सहयोग का सौभाग्य तभी सराहा जा सकता है, जब उसके पीछे दूरदर्शिता, विवेकशीलता, हित साधना के लिए अपनाया गया अनुशासन भी सम्मिलित हो । इसी तथ्य को इन दिनों गम्भीरतापूर्वक समझने और समझाये जाने की आवश्यकता है ।

हम सब एक महान् शृंखला के घटक भर हैं

मनुष्य एकाकी खाता-सोता तो है, पर वस्तुतः वह इस विराट् विश्व का नन्हा-सा घटक भर है । उसे निर्वाह सामग्री, प्रसन्नता, सम्पन्नता और सफलता की अनेकानेक उपलब्धियाँ समूचे समाज के योगदान से ही उपलब्ध होती हैं । लगने को तो यह भी लग सकता है कि हमारा सम्बन्ध-सम्पर्क एवं आदान-प्रदान थोड़े से लोगों तक है, पर थोड़ी लम्बी दृष्टि फैलाने पर पता चलता है कि मानवीय समुदाय के मध्य सहयोग की एक लम्बी शृंखला बनी हुई है । भूतकाल के दिवगत मनुष्यो के अनुसंधान एवं उपार्जन का लाभ हम-सब अद्यावधि उठा रहे है और भविष्य में भी अनुदानों का यह सिलसिला पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहने वाला है । मछली का जीवन जल है और मनुष्य का अस्तित्व समाज पर निर्भर है ।

विद्वान हेगल ने समष्टि मन को ही 'विराट् पुरुष' की संज्ञा दी है । विराट् ब्रह्म के रूप में इस निखिल ब्रह्माण्ड की सत्ता को ही चित्रित, प्रतिपादित किया जाता रहा है और "सियाराम मय सब जग जानी" वाली उक्ति के अनुसार समाज या संसार को भी विराट् की उपमा दी जाती रही है, किन्तु तत्वदर्शियों के गहन-प्रतिपादन में 'समष्टि-मन' को ही वह गरिमा प्रदान की जा सकती है, जिसमें उसे ईश्वर या उसके समतुल्य ठहराया जा सके ।

ब्रह्माण्ड में भला-बुरा सब कुछ है । यहाँ नीति के साथ अनीति भी चलती है और देव के साथ असुर का अस्तित्व भी मौजूद है, किन्तु 'समष्टि-मन' विश्व के समग्र हित साधन को ही आधारभूत कारण मानता है । तदनुरूप मात्र कल्याणकारी प्रतिपादनों को ही अंगीकार करता है । यह समूहवाद या समाजवाद से ऊँची स्थिति है । समूह वर्ग विशेष के होते हैं । उसमें मनुष्य के स्तरों का विभेद भी हो सकता है और अन्य प्राणियों को मानवीय नीति-नियमों से पृथक भी रखा जा सकता है, किन्तु 'समष्टि-मन' तो एक प्रकार से सार्वभौम नीति-निष्ठा-सहकारिता एवं उदारता का समन्वित स्वरूप रहेगा अन्यथा उसके प्रभाव से व्यष्टि-मन को उत्कृष्टता की दिशा देने योग्य प्रखरता एवं क्षमता ही न रह जायेगी ।

विराट् पुरुष अथवा समष्टि-मन में उस श्रेय का ही बाहुल्य रहेगा । ऐसा श्रेय जिसे सहयोग एवं औचित्य का समन्वय कहा जा सके । 'हेगल' के प्रतिपादन का यही सार संक्षेप है ।

कार्डिनल न्यूमेन ने अपने ग्रन्थ 'ग्रामर ऑफ असेण्ट' में अन्तरात्मा से उठने वाली उच्चस्तरीय प्रेरणाओं का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है और उसे 'इलेक्ट्रिक फेकल्टी' नाम दिया है । वे कहते हैं—"धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता के रूप में अपने अस्तित्व का परिचय देने वाली 'श्रद्धा' इसी उद्गम स्रोत से निःसृत होती है ।"

व्यक्ति और समाज के हित साधन की बात सोचने वाली चिन्तन प्रक्रिया को बुद्धिमत्ता या दूरदर्शिता ही कहा जा सकता है, पर अन्तःकरण का विस्तार इतने सीमित क्षेत्र में ही समाप्त नहीं हो जाता, वरन् इसके आगे की उच्चस्तरीय स्थिति है—अन्तरात्मा । यह विशुद्ध रूप में उन्हीं आदर्शों का समर्थन करती हैं जो व्यक्ति और समाज के बुद्धिसंगत प्रतिपादनों से भी कहीं ऊँचे होते हैं ।

न्यूमेन के अनुसार मनुष्य के विचारों में तर्क से परे एक विलक्षण शक्ति कार्य करती हैं । जिसे श्रद्धा-विश्वास की शक्ति कहा जा सकता है । तर्क, तथ्य और प्रमाण बुद्धि को प्रभावित करते हैं, पर वह प्रभाव व्यक्ति को उतना ही स्वीकार करने की आज्ञा देता है जिसमें पूर्व कल्पित स्वार्थों पर आँच न आती हो ।

भौतिक स्वार्थों की उपेक्षा करके भी जो उत्कृष्टता को अपनाने की प्रेरणा उत्पन्न करती और उसे अपनाने में कुछ भी हानि उठाने का साहस देती है, वही 'श्रद्धा' है । इसे अन्तरात्मा की आवाज या अन्तरध्वनि भी कह सकते हैं । यह परत जिनकी भी विकसित हो सके उन्हें देवताओं की श्रेणी में गिना जा सकता है । ऐसे ही लोग महामानव कहलाते हैं और ऋषि-कल्प श्रद्धा के अधिकारी बनते हैं । समय पर, लोकमानस पर ऐसे लोग ही गहरी छाप छोड़ते और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन की भूमिका सम्पादित करते हैं ।

बोगार्ड्स कहते हैं "समाज का प्रवाह उस दिशा में बहना चाहिए जिससे उसके सदस्यों को सत्प्रवृत्तियाँ पनपाने के लिये प्रोत्साहन एवं पोषण मिल सके । साथ ही व्यक्तियों का निजी तथा सम्मिलित प्रयास यह होना चाहिए कि वे सभ्य समाज के गठन में योगदान दें । बादल बरसने से नदियों में पानी पहुँचता है और नदियाँ समुद्र को भरा-पूरा रखकर उसे बादल उत्पन्न कर सकने योग्य बनाये रहती हैं । इसी प्रकार व्यक्तियों के पुरुषार्थ का लक्ष्य होना चाहिए । समुन्नत समाज की संरचना और समुन्नत कहलाने वाले समाजों को इस तथ्य की प्रमुखता देनी चाहिए कि उस ढाँचें में सुसंस्कृत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तित्वों को ढालने, परिपुष्ट करने की क्षमता पर्याप्त मात्रा में बनी रहे ।''

डेविस कहते हैं—''आज देशों और समाजों के उन्नत-अवनत होने का अनुमान इस आधार पर लगाया जाता है कि उनके पास सम्पन्नता के साधन-स्रोत कितने हैं ? शास्त्र-सज्जा तथा अर्थव्यवस्था कितनी मजबूत है ? व्यक्ति का उसकी बलिष्ठता, सम्पन्नता और शिक्षा कुशलता के आधार पर ऊँचे और नीचे होने का निर्णय-किया जाता है, किन्तु स्मरण रखने योग्य बात यह है कि जिस प्रकार अनेक मूढ़ मान्यताएँ हट रही हैं, उसी प्रकार यह मान्यता भी देर तक बनी नहीं रहेंगी कि साधनों-सुविधाओं के आधार पर समाजों एवं व्यक्तियों का मूल्य-निर्धारण किया जाता रहे ।''

वह दिन दूर नहीं जब उत्कर्ष एवं अपकर्ष के सम्बन्ध में नई परख-प्रक्रिया व्यवहार में आने लगेगी । उसके अनुसार यह सोचा जायेगा कि जिस समाज में सामाजिकता की भावना जितनी अधिक होगी, उसके सदस्य नागरिक जिस हद तक सहकारी प्रयासों में जितनी गहरी श्रद्धा के साथ संलग्न हों, उसे उतना ही श्रेष्ठ और समुन्नत स्वीकार किया जाय ।

''अगले दिनों प्रजाजनों की चरित्र-निष्ठा और व्यवहार कुशलता ही व्यक्तियों को सम्मान और सहयोग दिला सकेंगे और राष्ट्रों-समाजों की श्रेष्ठता भी इसी पर अवलम्बित रहेगी कि सदाशयता को कहाँ किस स्तर तक समझा और अपनाया जा रहा है ।

मनुष्य की दो दुनिया हैं, एक अपनी, दूसरी सम्मिलित । दोनों का अपना-अपना महत्त्व है । एक-दूसरे की पूरक रहने के कारण उन दोनों का समन्वय रहना आवश्यक है ।

निजी दुनिया वह है, जिसमें इन्द्रिय तृप्ति की वासना और मन:तुष्टि की तृष्णा कहा जाता है । इन दोनों के समन्वय को आकांक्षा कहते हैं । व्यक्तिगत उमंगें और चेष्टाएँ इसी प्रेरणा केन्द्र से उद्भूत होती हैं । आत्मकेन्द्रित व्यक्ति इसी परिधि में अपने चिन्तन एवं प्रयास को नियोजित किये रहते हैं । इसी परिधि की उपलब्धियों के अनुरूप अपने को सुखी-दु:खी, सफल-असफल मानते रहते हैं ।

सम्मिलित चेतना इससे आगे की है, उसमें परिवार, स्वजन, सम्पर्क और समाज का सुविस्तृत क्षेत्र आता है । इसकी तुष्टि और प्रगति का भी वैसा ही ध्यान रखना पड़ता है जैसा कि अपने आप का । दोनों के बीच इतनी सघनता है कि एक के बिना दूसरे का मनोरथ एवं प्रयोजन पूरा हो नहीं सकता । विकसित व्यक्तित्व ही साझे की दुनिया में अपना स्थान बनाने और उपयोगी आदान-प्रदान कर सकने में सफल होता है ।

प्रगतिशील को उभयपक्षीय प्रगति का उसी प्रकार ध्यान रखना पड़ता है जैसा कि गाड़ी को अपने दोनों बैलों या पहियों का । इनमें से एक भी लड़खड़ाने लगे तो गतिरोध खड़ा होगा और गतिशीलता का लाभ मिलने के स्थान पर टूट-फूट को सुधारने का नया जंजाल खड़ा होगा । व्यक्तित्व की दृष्टि से सुसंस्कारिता का जितना महत्त्व है, उतना ही समष्टिगत सफलताओं के लिये सज्जनोचित शालीनता एवं सघन सहकारिता का ।

यह सही है कि मनुष्य पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है और समीपवर्ती परिस्थितियाँ उसे अपने अनुरूप ढाँचे में ढालती चली जाती हैं । इस प्रतिपादन में बहुत कुछ सच्चाई होते हुए भी यह कमी है कि उसमें उस दूसरे पक्ष को महत्त्व नहीं दिया गया जो प्राय: इतना ही सामर्थ्यवान है, जितना कि पारिवारिक एवं सामाजिक पर्यावरण ।

व्यक्ति का 'स्व' भी एक प्रचण्ड सामर्थ्य है । वह दुर्बल पड़ता है, तो ही पर्यावरण से प्रभावित होता है अन्यथा यही आत्मा जब अपनी प्रखरता को विकासवान् बनाती है तो असाधारण समर्थता का परिचय देती है । इतना असाधारण जिसे परिस्थिति को उलट डालने अथवा उन्हें अवरोध न बन सकने की स्थिति में पहुँचाने योग्य बनाकर रख दे ।

वातावरण भौतिक पदार्थों से बना है, किन्तु अन्तराल चेतनामय । चेतना की वरिष्ठता प्रख्यात है । वायु यान-जलयान जैसे विशालकाय संयन्त्र भी सचेतन-संचालक के संकेत पर चलते हैं । यदि चेतना का स्तर ऊँचा हो तो उसकी सामर्थ्य वातावरण को, उसके प्रवाह को मोड़ने-मरोड़ने में भी समर्थ हो सकती है ।

चेतना सर्वथा परावलम्बी नहीं है । उसे परिपोषण की सामग्री भर बाहर से मिलती है, किन्तु वास्तविक शक्ति तो भीतर से ही उदय होती है । पेड़ हवा में साँस लेते हैं पर उन्हें जीवन-रस की उपलब्धि जमीन के भीतर छिपी हुई जड़ों से ही प्राप्त होती है । हीरा खरादा तो चरखी पर जाता है और बिकता जौहरी की दुकान पर है । उसका निर्माण किसी अविज्ञात खदान की गहरी परत में ही होता है ।

व्यक्ति स्वनिर्मित है, ऐसा कहा जाय तो उसे अत्युक्ति नहीं माना जाना चाहिए । अपनी उमंग अपनी हिम्मत और अपनी मेहनत से ही कोई कुछ पा सकता है । जड़ों को खुराक मिलती तो है जमीन से ही, पर चूसने की विशिष्टता उनकी अपनी होती है । इसी आधार पर वह एक समूचे पेड़ को पनपाने और फला-फूला बनाने में समर्थ होती है ।

चेतना की मौलिक विशेषता जिस स्तर की होती है, जितनी समर्थ होती है, उसी अनुपात से बाह्य जगत का सहयोग मिलता चला जाता है । चेतना अनगढ़, मूर्छित और विकृत हो तो समझना चाहिए कि प्रचुर साधन और भरपूर सहयोग होते हुए भी प्रगति पथ पर बढ़ चलना तो दूर अपनी स्थिति को यथावत् बनाये रहना तक कठिन हो जायेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समस्त जड़-चेतन पर उच्च-स्तरीय सत्ता का अनुशासन

दार्शनिक स्पिनेोज कहते थे—"तथ्यों तक पहुँचने के लिए तर्क ही एकमात्र आधार नहीं है । उसके अतिरिक्त भी अन्य माध्यम हैं जिनके आधार पर मनुष्य की गरिमा टिकी हुई है । अन्तःप्रेरणाओं और आत्मानुभूतियों की सत्ता ऐसी ही है जो आमतौर से तर्कों का समर्थन नहीं करती अथवा जिनका समर्थन तर्क से नहीं किया जा सकता ।"

मनुष्य और मनुष्य के बीच पाई जाने वाली उदार आत्मीयता, मैत्री, सहानुभूति एवं सेवा-सहकारिता को एक सीमा तक ही तर्कसंगत ठहराया जा सकता है । उस सीमा तक जहाँ आदान-प्रदान में लाभदायक परिणाम की आशा अपेक्षा की जाती है । जहाँ इस कसौटी पर मैत्री खोटी सिद्ध होती है, वहाँ तर्क तुरन्त पीछे हटने या उपेक्षा बरतने का सुझाव देता है । तर्क बुद्धि पर निर्धारित है और बुद्धि भौतिक स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करती है । दीन दुःखियों की सेवा, सहायता करने में जो समय, श्रम एवं मनोयोग लगता है उसे तर्कसंगत नहीं ठहराया जा सकता । भावनाएँ तर्क से ऊपर हैं उन्हीं के दबाव से परमार्थ की बात सोची जा सकती है और उसे चरितार्थ करने की हिम्मत जुटाई जा सकती है ।

जिस तर्क के आधार पर बूढ़े बैल को कसाई के हाथ बेचकर चारे की, जगह की बचत की जाती है, उसी आधार पर घर के वयोवृद्धों को मौत के घाट उतारा जाना चाहिए । यदि वे जीवित है और अशक्त होते हुए भी सेवा, सम्मान का लाभ लेते हैं तो यह तर्क का अनुग्रह नहीं भावनाओं का अनुकम्पा है

दार्शनिक किर्केगार्ड कहते थे—"तर्क से न आत्मा सिद्ध होती है और न परमात्मा का अस्तित्व प्रमाणित किया जा सकता है इतने पर भी उन्हें अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि अन्तराल की गहराई में जमी हुई आस्थाएँ उनकी सत्ता को सदा स्वीकार करती है । गलत काम करने पर भीतर से कोई प्रेरणा ऐसी उठती है कि लाभ दीखते हुए भी उसे नहीं किया जाना चाहिए । इस सम्बन्ध में तर्क से कोई सहायता नहीं मिल सकती । स्वार्थ के लिए जब अन्य प्राणी बिना उचित-अनुचित के झंझट में पड़े, कुछ भी कहते रहते हैं तो मनुष्य ही उसका अपवाद क्यों होना चाहिए ? उसी को गलत कामों के करते हुए अन्तर्द्वन्द्व क्यों उठना चाहिए ? इससे प्रतीत होता है कि भाव संवेदनाओं की अपनी सत्ता है और वे तर्कसंगत न होते हुए भी अपना काम करती और प्रभाव दिखाती हैं ।"

बच्चों को पालने में कष्ट उठाने और उन्हें दुलार देने का तर्कसंगत कोई आधार नहीं । जिनसे प्रतिदान न मिले उनकी क्यों सेवा-सहायता की जाय ? प्रेम के बदले प्रेम की बात तो समझी जा सकती है, पर जिस नवजात शिशु में अभी भावना का विकास तक नहीं हुआ है, उससे प्रतिदान की आशा कैसे रखी जाय ? बड़ी होने पर लड़कियाँ सुसराल चली जाती हैं और लड़कों में से भी अधिकांश घाटे के सौदे सिद्ध होते हैं । यह सब कुछ जानते हुए अभिभावकों द्वारा विशेषतया माता द्वारा उन्हें जो उदार स्नेह-सहयोग मिलता है उसके पीछे कोई बुद्धिसंगत तर्क प्रस्तुत कर सकना कठिन है ।

विवाह के पक्ष में पुरुषों के पास तर्क हो सकते हैं । उन्हें पत्नी से कई प्रकार के लाभ सस्ते मोल में मिलते हैं, किन्तु पत्नी को तो हर दृष्टि से घाटा ही घाटा है । उसे देना अधिक पड़ता है और मिलता कम है । ऐसी दशा में वह क्यों विवाह बन्धन स्वीकार करे ? यही बात गर्भ धारण के सम्बन्ध में भी है । प्रजनन कर्म में नारी को हर दृष्टि से घाटा ही घाटा है । फिर वह उसे क्यों स्वीकार करे ? यहाँ तर्क मौन हो जाता है और भावनाएँ अपनी सामर्थ्य का परिचय देती हैं । दाम्पत्य जीवन अपनाने और गर्भ धारण करने में नारी को उत्साह ही रहता है और सन्तोष भी, जबकि तर्क की दृष्टि से उसे इन दोनों ही जिम्मेदारियों से बचकर चैन से रहना चाहिए ।

देशभक्ति, परमार्थ, धर्म-धारणा, तपश्चर्या, संयम, दान सेवा जैसे उत्कृष्ट आदर्शों का समर्थन तर्क नहीं भावनाओं द्वारा ही होता है । त्याग, बलिदान की उमंगें तर्कसंगत नहीं ठहरतीं । उन्हें उस मार्ग पर बुद्धिवादी नहीं भावनाशील ही बढ़ाते हैं । दूरदर्शिता अपनाने वाला विवेक तर्कों को तोड़ता है । उसे उदात्त आस्था और भाव श्रद्धा का ही समर्थन मिलता है । यह समर्थन कभी-कभी इतना प्रबल होता है कि सदुद्देश्यों के लिए कई बार लोग बड़े से बड़े यहाँ तक कि सर्वस्वदान, प्राणाहुति तक देते पाये जाते हैं । इस प्रकार की साहसिकता में तर्क तो प्रायः असहमत ही रहते हैं ।

अरस्तू अपने शिष्यों से कहा करते थे—"तुम देख सकते हो कि सज्जनों की तुलना में दुष्ट नफे में रहते और मौज उड़ाते हैं । इतने पर भी सज्जनता मरती नहीं । लोग घाटे में रहकर भी उसे अपनाये रहते हैं । ऐसा क्यों ? इसका उत्तर एक ही है आत्मा के प्रतिपादन इतने प्रबल होते हैं कि तर्कों और प्रमाणों को अस्वीकृत करते हुए भी घाटा सहने पर आरूढ़ बने हैं । यह मनुष्य की उन आस्थाओं का प्रभाव है जिन्हे आत्मा का आधारभूत गुण कह सकते हैं ।"

कान्ट ने आत्मा की अमरता का एक प्रमाण यह प्रस्तुत किया है कि—"लोग मरते समय तक अपना प्रयास-पुरुषार्थ नहीं छोड़ते । जबकि जीवन का अन्त समय देखकर उन्हें बचे हुए समय में मौज के दिन गुजारने तथा झंझटों से दूर रहने की बात सोचनी चाहिए थी । होता इसके ठीक विपरीत है, अन्तिम दिनों आवश्यकता एवं महत्वपूर्ण कामों को अधिक तत्परता से करने और जल्दी निपटाने की बात ध्यान में बनी रहती है । इसका कारण अन्तःकरण की वह आस्था है जिसमें उसे जीवनक्रम भविष्य में भी चलते रहने का अटूट विश्वास होता है । यदि मरण के साथ अन्त निश्चित होता तो लोग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निराश पाये जाते और संग्रह के स्थान पर बर्बादी की बात सोचते ।''

'क्रिटिक ऑव प्रेक्टिकल रीजन' के अनुसार विश्व का प्रत्येक घटक सुनियोजित ढंग से बना है । उसके पीछे पूर्ण परसंगतियाँ हैं और अस्तित्व की रक्षा से लेकर प्रगति करने एवं अनुपयुक्त परिस्थितियाँ आने पर तदनुरूप ढलने, बदलने की समस्त सम्भावनाएँ विद्यमान हैं । हर चीज सुन्दर डिजायन और उपयुक्त साधन-सामग्री से बनी है । ऐसा न तो अपने आप हो सकता है और न अपने आप अनगढ़ रूप से संयोगवश वैसा हो सकता है । जड़ पदार्थ भावना या बुद्धियुक्त है या नहीं इस सम्बन्ध में असमंजस हो सकता है, पर इसमें सन्देह नहीं कि उन्हें बनाया । विवेकवान, दूरदर्शी एवं अपने विषय की प्रवीण पारंगत सत्ता में ही है, भले ही उसका नाम ईश्वर रखा जाय अथवा कुछ और ।

कान्ट के 'क्रिटिक ऑफ जजमेन्ट' ग्रन्थ में अपनाई गई दार्शनिकता ने सिद्ध किया है कि तर्क से जो बातें सिद्ध न हो सकें उन्हें अप्रामाणिक मान बैठना भूल है । तर्क मनुष्य की बौद्धिक क्षमता के अनुसार बढ़ता और बदलता चला आया है । प्रगति पथ पर चलते हुए मनुष्य ने अपनी मान्यताओं और दलीलों में आश्चर्यजनक परिवर्तन किये हैं । जो बातें कभी नितान्त सत्य समझी जाती थीं उन्हीं के पीछे नये तथ्यों ने अमान्य ठहरा दिया । इसका कारण यह था कि जिन प्रमाणों को आधार मानकर तर्क ने अपनी दिशा अपनाई थी वे जब नये प्रतिपादनों ने अमान्य ठहरा दिये तो तार्किकों को भी मैदान छोड़कर भागना और नया रास्ता अपनाना पड़ा । ऐसी दशा में तर्कों और उसके समर्थक तथ्यों पर भी उतना ही सन्देह करने की गुंजायश है जितना कि ईश्वर और आत्मा के सम्बन्ध में किया जाता है ।

ह्वाइट हेड ने लिखा है—''यदि कल्पना के आधार पर चेतन को जड़ ठहराया जा रहा है तो ऐसा क्यों नहीं हो सकता कि उसी आधार पर जड़ में चेतन को ओतप्रोत माना जाय । जब हर पदार्थ के अन्तराल और बाह्य क्षेत्र में सुनियोजित हलचलें चल रही हैं और उनमें से प्रत्येक घटक को एक कठोर अनुशासन के अन्तर्गत अपना निर्वाह करना पड़ रहा है तो इस चेतना की सत्ता मानने में क्यों आपत्ति होनी चाहिए ।''

धर्म का आधार तर्क नहीं नैतिकता है । नैतिकता आत्मा की मूलभूत प्रकृति है । उसे सिद्ध करने के लिए तर्क की आवश्यकता नहीं । सच तो यह है कि तर्कों को इस आधार पर मान्यता मिलेगी कि वे नीति समर्थक हैं या नहीं । चोरी या छल करने में कितनी ही दलीलें क्यों न दी जायें ? समर्थ लोग अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए कितने ही हतप्रभ करने वाले कारण क्यों न प्रस्तुत करते रहें, वे मान्यता प्राप्त न कर सकेंगे । अनाचारी लोग अपनी गतिविधियों का औचित्य बताने के लिए बहुत कुछ कहते रहते हैं । फिर भी उन्हें सुनने और कहने वाले उस प्रतिपादन को 'तर्क के लिए तर्क' मानते और अस्वीकृत करते रहते हैं ।

माता और पुत्री से विवाह उन समाजों में भी प्रचलित नहीं है, जिन्हें नितान्त अनगढ़ और आदिम सभ्यता के अनुचर कहा जाता है । नीति मर्यादाओं को काटने के लिए इतने तर्क दिये जा सकते हैं कि पूरे सामाजिक ढाँचे और सभ्यता प्रचलन को अस्वीकृत किया जा सके । अनास्थावादियों का अपना सम्प्रदाय है । फिर भी उनमें कुछ न कुछ मर्यादाएँ बनी ही रहती हैं । कोई चाहे तो यह पूछ सकता है कि जब पूर्व प्रचलन अस्वीकृत किये गये तो नये नियमों को क्यों अपनाया गया ? बात फिर घूम फिर कर वहाँ आ जाती है जहाँ उपयोगिता और आवश्यकता से भी बढ़कर नैतिकता के कुछ आदर्शवादी नियमों को मान्यता देनी पड़ती है । यही है तर्क की तुलना में नीति की वरिष्ठता, जिसे सहज ही झुठलाया नहीं जा सकता ।

स्पिनोजा का वह प्रतिपादन सारगर्भित है जिसमें वे कहते हैं कि—''जो कुछ दृष्टव्य और अनुभवगम्य है उसमें से प्रत्येक इकाई अपने आप में एक एवं समग्र है । इतना ही नहीं वह किसी समर्थ केन्द्र के साथ बँधी है । बँधी का तात्पर्य है—सामर्थ्य पाना और अनुशासन मानना । बृहदाकार ग्रह पिण्डों से लेकर अणु-परमाणुओं तक में यही क्रम समान रूप से चलता है । प्राणियों की काया भी इसी नियम के अन्तर्गत जीवनयापन करती है । अपने इस प्रतिपादन के पक्ष में स्पिनोजा अनेकानेक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं इस पूर्णता, सूत्रबद्धता, सुव्यवस्था का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उससे कहीं कोई भी बचा हुआ नहीं है । इस अनुशासन को ईश्वर न सही कुछ और कहा जाय, पर वह है अवश्य ।''

वर्कले ने एक जगह कहा है—''दर्शन और विज्ञान सिर्फ इतना कहते हैं कि ईश्वर और आत्मा को सिद्ध करने के लिए हमारे पास उपयुक्त प्रमाणों का अभाव है । इसका अर्थ यह नहीं कि उसे अमान्य ठहरा दिया गया या कोई तार्किक विरोध खड़ा किया गया है । विरोध करने जैसा किसी तार्किक या विज्ञानी के पास कुछ भी नहीं है । ऐसी दशा में यह भी कहा जा सकता है कि तार्किक दृष्टि से जो असम्भव नहीं है, उसकी सत्ता हो सकती है । यह केवल असमंजस का प्रकटीकरण है । अस्वीकरण या विरोध नहीं ।''

विकासवाद की मान्यता है कि, भौतिकी में जो वस्तु 'क्रिया-शक्ति' है, वही जीवित प्राणियों में भावनात्मक प्रबलता । वही अपने-अपने क्षेत्रों में क्रमिक विकास की लम्बी मंजिल पर चलते हुए आज की स्थिति तक पहुँची है ।

इसी प्रतिपादन की दूसरी तरह भी व्याख्या हो सकती है कि किसी विकासशील प्रेरणा ने पदार्थों और प्राणियों को आगे बढ़ने की प्रेरणा और परिस्थितियाँ प्रदान की हैं । विकासवाद के वर्तमान प्रतिपादनों को प्रचलित नास्तिकतावादी व्याख्या ही मान्यता प्राप्त करे यह आवश्यक नहीं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब उस तथ्य को अधिक अच्छी तरह समझा और स्वीकारा जा रहा है, जिसके अनुसार इस सृष्टि के समस्त परिकर परस्पर सघन बनकर रह रहे हैं और सुसम्बद्ध रूप से पूरक बने हुए हैं । 'इकालाजी' अन्वेषण से सृष्टि के हर क्षेत्र में पारस्परिक तारतम्य और तालमेल पाया गया है । इस विश्व ब्रह्माण्ड के सभी घटक अपने सजातियों के साथ तो आदान-प्रदान रखते ही हैं, विजातियों के साथ भी लेने-देने का क्रम चलाते और अस्तित्व रक्षा से लेकर विश्व व्यवस्था में योगदान करते हैं ।

तर्क से आत्मा, परमात्मा, नीतिसत्ता और उत्कृष्टता का कहाँ तक समर्थन होता है इसमें अभी भी असमंजस है, पर अब यह प्रतिपादन असंदिग्ध बनता जा रहा है कि तर्क और तथ्यों से भी ऊपर एक उच्चस्तरीय विधान एवं अनुशासन की सत्ता है । उस सत्ता में ही हम सब सूत्र में पिरोई हुई माला की तरह एकीभूत हो रहे हैं ।

प्रगति का मूलमंत्र—आत्मोत्कर्ष

मानव प्राणी यदि अपने कर्त्तव्य-धर्म का ठीक प्रकार पालन करें तो ईश्वर का अविनाशी राजकुमार एवं सृष्टि का मुकुटमणि ही माना जायगा, क्योंकि उसके अन्दर की महानता जब प्रकट, प्रस्फुटित एवं परिपुष्ट होती है तो वह महामानव, देवता एवं परमात्मा के रूप में दृष्टिगोचर होने लगता है । इस धरती पर अब तक ऐसे अगणित अवतारी, महापुरुष, नर-रत्न, महान् आत्मा, ऋषि, महर्षि, देवदूत एवं त्यागी तपस्वी उत्पन्न हुए हैं जिनके शरीर भले ही आज जीवित न हों, पर उनका अमर यश सर्वसाधारण के लिए आज भी प्रकाश-दीप बनकर मार्ग-दर्शन कर रहा है । कितने ही भूले-भटके व्यक्ति उस प्रकाश में अपना मार्ग खोज निकालते हैं । ऐसे आदर्शवादी नर रत्न बनने का श्रेय उन्हें ही प्राप्त हुआ है जिनने अपनी महानता को विकसित किया है । देवत्व हर व्यक्ति के अन्दर पर्याप्त मात्रा में भरा पड़ा है यदि वह चाहे तो आसानी से उसे जगा सकता है और जिसके अन्दर का सोया देवत्व जगा, उसका बाह्य जीवन सब प्रकार उज्ज्वल बनना सर्वथा स्वाभाविक है ।

नर-रत्नों का भण्डागार

भारत का प्राचीन इतिहास ऐसे नर-रत्नों का इतिहास है जिनने अपने देवत्व को जगाया ही नहीं, जगमगाया भी था । इस देश के प्रत्येक मानव में यह प्रतिस्पर्द्धा होती रही है कि वह श्रेष्ठता की दृष्टि से अपने किसी साथी से पीछे न रहे । यहाँ हर व्यक्ति ने यह प्रयत्न किया है कि मानवता की कसौटी पर वह सर्वथा खरा उतरे, उसके चरित्र एवं व्यक्तित्व में कोई ऐसा दाग-धब्बा न लगे जिससे उसके अन्तःकरण में निवास करने वाले देवता को लज्जा या संकोच अनुभव करना पड़े । इसी विशेषता के कारण यह भारत भूमि धरती का स्वर्ग कहलाती रही है और यहाँ के तेतीस कोटि निवासी अपने आदर्शवाद के कारण संसार भर में भूसुर—पृथ्वी के देवता कहलाते रहे हैं । तेतीस कोटि देवता इसी भारत भूमि पर निवास किया करते थे ।

भौतिक सुख-शान्ति, समृद्धि एवं सम्पत्ति मानवीय व्यक्तित्व की अनुगामिनी रही है, रहती है । गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से जो व्यक्ति पूर्णता के निकट पहुँचता जायगा वह कभी अभावग्रस्त न रहेगा । स्वेच्छा से त्याग करे, बात दूसरी है, पर सद्गुणी व्यक्ति प्रकृति की ओर से कभी अभावग्रस्त या दीन-दरिद्र नहीं रखा जाता । पुरुषार्थी, उद्योगी, दृढ़ चरित्र कर्मयोगी के लिए पर्वत रास्ता देते हैं और बादल उन पर छाया करते हैं । अभावग्रस्त और दीन-दरिद्र तो उन्हें रहना पड़ता है, जिनका व्यक्तित्व दोषपूर्ण है । जिनके गुण, कर्म, स्वभाव का स्तर मानवता के मापदंड तक ऊँचा उठा हुआ है, उनके लिए इस संसार में विपत्तियों का नहीं सम्पदाओं का ही उपहार प्रस्तुत रहता है । प्राचीनकाल में जिस प्रकार हमारा देश नर-रत्नों से भरा पड़ा था वैसे ही भौतिक ऐश्वर्य की भी कमी न थी । जहाँ सज्जनों का बाहुल्य होगा, वहाँ सुख-शान्ति भी चिरस्थायी रहेगी ही । जहाँ सन्मार्ग का पथ अपनाया हुआ है, वहाँ न तो समस्याएँ उपजती हैं न गुत्थियाँ उलझती हैं ।

मानवता के आदर्शों पर आस्था

हमारा स्वप्न यही है कि हममें से हर व्यक्ति मानवता के आदर्शों पर सच्ची आस्था रखने वाला और उस पर निरन्तर आरूढ़ रहने वाला बने । दूसरे लोगों की कल्पना दूसरी तरह की है । वे सोचते हैं धन-दौलत, उद्योग, सम्पत्ति एवं साधन-सुविधाएँ जुटा देने से मनुष्य का जीवन स्तर ऊँचा उठ जायगा और उसकी समस्याएँ सुलझ जावेंगी । सम्पत्ति की वृद्धि करना अच्छी बात है, सुविधाएँ बढ़ेंगी तो उससे आसानी ही रहेगी, पर यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि भावना और आदर्श की दृष्टि से मनुष्य का आन्तरिक स्तर गिरा रहा तो सम्पत्ति और सुविधा बढ़ने से भी चैन न मिलेगा वरन् उन्हें पाकर अनीतिवान मनुष्य और भी अधिक दुष्कर्म करने लगेगा और भी अधिक विपत्ति में फँसेगा । ऐश्वर्य बढ़ना चाहिए, पर साथ ही उत्तरदायित्व को समझने एवं उपलब्ध साधनों का सदुपयोग करने की विवेकशीलता भी बढ़नी चाहिए ।

मनुष्य का आन्तरिक स्तर इसी आधार पर ढाला जाना चाहिए कि वह स्वयं चैन से रहे और दूसरों को चैन से रहने दे । स्वयं प्रगतिशील बने और दूसरों को प्रगति के पथ पर चलने में सहयोग प्रदान करे । अनीति को न तो सहन करे और न किसी को अन्यायपूर्वक सतावे । अपना कर्त्तव्य पालन करे और दूसरों के सामने ऐसा आदर्श प्रस्तुत करे जिससे उन्हें भी श्रेष्ठता के मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिले । धन संग्रह की तृष्णा, पद, अधिकार, सत्ता एवं अहंकार की पूर्ति में आज जिस प्रकार लोग अपनी उन्नति समझते हैं और मौज-मजा कर लेने को जैसे जीवन की सफलता मानते हैं, वैसे ही यदि जीवन को आदर्श, महान,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्त्तव्यरत एवं धर्मपरायण बनाने की हर व्यक्ति को लगन लग जावे तो मनुष्य आदर्श मनुष्य बन सकता है और मानव प्राणी कितना महान् है, इसका प्रतिक्षण अनुभव कर सकता है । सद्भावनाओं में जिन लोगों का मन डूबा रहेगा उनका शरीर आदर्श कार्य ही करेगा और उन कार्यों से उन व्यक्तियों का निज का कल्याण तो होगा ही साथ ही जो उनके सम्पर्क में आवेंगे. वे भी सन्तोष एवं प्रसन्नता अनुभव करेंगे ।

विकास का सच्चा प्रयास

आज हम उन्नति तो चाहते हैं, पर मानवीय सद्गुणों के विकास का प्रयत्न नहीं करते । समाज में शान्ति और सम्पन्नता रहे यह सभी की इच्छा है, पर इसके मूल आधार पारस्परिक प्रेम भाव की वृद्धि का उपाय नहीं करते । भौतिक सुविधाओं में वह शक्ति नहीं है कि व्यक्ति को श्रेष्ठ बना दे, पर अच्छे व्यक्तित्व में यह गुण मौजूद है कि वह सम्पन्नता का उपार्जन कर ले । हम इस तथ्य को जब तक न समझेंगे, तब तक दौलत के पीछे भागते रहेंगे । आदर्शवाद की उपेक्षा करके सम्पन्नता के लिए घुड़दौड़ लगाने का परिणाम लाभ के स्थान पर हानिकारक ही सिद्ध हो सकता है । यह दुनिया अधिक अच्छी, अधिक सुन्दर, अधिक सम्पन्न, अधिक शान्तिपूर्ण बने, यदि हम सब यही चाहते हैं तो फिर इस प्रगति के मूल आधार—व्यक्तित्व की श्रेष्ठता की ओर ध्यान क्यों नहीं दिया जाता, यही आश्चर्य है । प्रगति तभी स्थायी रह सकेगी, सुख-शान्ति में तभी स्थिरता रहेगी, जब मनुष्य अपने को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने का प्रयत्न करे । इस उपेक्षित तथ्य को अनिवार्य आवश्यकता के रूप में जब तक हम स्वीकार न करेंगे और व्यक्तिगत एवं सामूहिक चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए कटिबद्ध न होंगे, तब तक अगणित समस्याओं की उलझनों से हमें छुटकारा न मिलेगा ।

मलीनता का वातावरण

आत्मा स्वभावत: पवित्र है, उसमें परमात्मा का प्रचुर अंश विद्यमान रहने में देवत्व की सभी विशेषताएँ और सम्भावनाएँ मौजूद हैं, पर प्रस्तुत वातावरण की मलीनता से प्रभावित होकर वह भी मलीन जैसा बन जाता है । अपनी यह दुर्गति देखना हमें कदापि सहन न होना चाहिए । कोई दूसरा कीचड़ में फँस जाय या नदी-नाली में गिर पड़े तो हमें उस पर दया आती है और उसे निकालने के लिए उदारतापूर्वक प्रत्येक सम्भव सहायता देने का प्रयत्न करते हैं । यह उचित भी है और मानव धर्म के अनुकूल भी, किन्तु आश्चर्य तब होता है, जब अपने आपको मलीनता की कीचड़ में कंठतम धँसे होने पर भी स्वयं निकलने का प्रयत्न नहीं करते और न उसके सम्बन्ध में कुछ सोचते हैं । औरों की सहायता करना पुण्य है, पर अपनी सहायता करना, अपना उद्धार करना, अपना उत्कर्ष करना तो उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है । आत्मा का उद्धार करना सबसे बड़ा पुण्य-परमार्थ माना गया है ।

सुख की खोज करते-करते मनुष्य दौलत की देहरी पर अपना सिर पटकता रहता है । दौलतमंदी के बाहरी ठाट-बाट को देखकर, भोग-सामिग्री को देखकर यह भ्रम होता है कि वस्तुत: यही सुखी है और इनकी स्थिति यदि अपने को प्राप्त हो जाय तो हम भी भरपूर आनंद उठा सकेंगे, पर यह बात अनुभव की कसौटी पर कसे जाने से गलत ही सिद्ध हुई है । दौलत की आवश्यकता उतनी ही मात्रा में है जितने से कि दैनिक जीवन का साधारण कार्यक्रम पूरा होता रहे, इससे अधिक परिग्रह जिसके पास भी होगा, जहाँ भी होगा वहाँ नाना प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होंगी और आदर्शवाद के अभाव में वे समस्याएँ ऐसे उलझती रहेंगी कि व्यक्ति अपनी साधारण और स्वाभाविक शान्ति से भी हाथ धो बैठेगा । धन कमाना या संग्रह करना अपने आप में कुछ भी महत्त्व नहीं रखता, महत्त्वपूर्ण तो उसका सदुपयोग ही है । कितने ही व्यक्ति विपुल सम्पदा के स्वामी होते हैं, पर उसका उपयोग नहीं जानते । कंजूस की तरह उसे जोड़ते रहते हैं और अन्त में दूसरों के लूट ले जाने के लिए सब कुछ पड़ा छोड़ जाते हैं । धन से किसी ने यदि कुछ लाभ उठाया है तो उसका श्रेय सदुपयोग करने वाली बुद्धि को ही दिया जायेगा । यह विवेक बुद्धि ही सुख-शान्ति की सच्ची आधारशिला है ।

सच्ची प्रगति का एकमात्र उपाय

आत्म-कल्याण के लिए सद्गुणों की, सद्विचारों की, सद्भावनाओं की, सत्कर्मों की अभिवृद्धि होनी चाहिए । जब तक यह प्रगति रुकी है, तब तक प्रगति जैसी लगने वाली तड़क-भड़क एक खोखली विडम्बना मात्र ही रहेगी । मनुष्य का सच्चा धन उसका आत्मिक स्तर ही है । यह स्तर जिस का जितना ऊँचा है, वह उतना ही धनी माना जायेगा । महानता वस्तुओं में नहीं मानवीय गुण, कर्म, स्वभाव में सन्निहित रहती है । हम उत्कर्ष की ओर चढ़ें, उन्नति करें, सुख-साधन बढ़ावें, पर यह भली-भाँति याद रखें इस सब धन सम्पदा से नहीं, मानवीय सद्गुणों के मूल्य पर ही वह आनन्द और उत्कर्ष प्राप्त हो सकता है जो वास्तविक सुदृढ़ और चिरस्थायी है ।

सिद्ध न होना ही चेतना का प्रमाण

भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा, दीक्षा और मनोरंजन की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध होते हुए भी लोगों को बुरी तरह अशांत, क्लान्त, दु:खी और विषादग्रस्त देखा जा सकता है । जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त सुविधा साधन हैं । समृद्धि और सम्पन्नता की दृष्टि से अच्छी खासी स्थिति है फिर भी दु:ख, खिन्नता, निराशा और शोक क्यों ? शरीर निर्वाह और जीवनयापन के लिए जो वस्तुएँ या स्थितियाँ आवश्यक हैं, वे प्रचुरता से उपलब्ध होने पर भी असन्तुष्ट रहने का कोई कारण नहीं होना चाहिए । फिर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोग क्यों असन्तुष्ट और दुःखी दिखाई देते हैं ? इसके उत्तर में हजारों वर्ष पूर्व भारतीय मनीषा कह चुके हैं कि ये उपलब्धियाँ केवल स्थूल या बाह्य जीवन से सम्बन्धित हैं तथा उसी क्षेत्र की आवश्यकता पूरी करती हैं जबकि जीवन की एक आन्तरिक स्थिति भी है जिसे चेतना, आत्मा, अन्तःकरण या जीवन का उत्स कहा जा सकता है । उस चेतना के विकास हेतु यदि समुचित कदम न उठाये गए तो बाह्य जीवन में कितने ही सुविधा-साधन क्यों न बढ़ाये जाएँ मनुष्य अतृप्त और खिन्न ही रहेगा । नदी जहाँ से निकल कर बहती है, यदि वहीं कोई विकृति है तो नदी का जल सागरपर्यन्त दूषित ही रहेगा, मार्ग में उसकी शुद्धि के लिए चाहें जितने ही प्रयास क्यों न किये जाएँ । गंगा का पानी सागर तक इसलिए निर्मल है कि हिमालय के जिस क्षेत्र से वह निकलती है, वहीं प्रकृति उसे उपचारित संस्कारित कर देती है और फलस्वरूप उसका प्रवाह इतना प्रभावपूर्ण रहता है कि मार्ग में अनेक नदी नाले मिलने पर भी गंगाजल की निर्मलता अक्षुण्ण रहती है ।

बाह्य-जगत को ही सब कुछ मान लेना, जड़-तत्वों से बने शरीर को ही सर्वस्व समझ लेना और स्थूल जगत के अतिरिक्त किसी सूक्ष्म सत्ता का अस्तित्व स्वीकार न करना जड़वाद का ही समर्थन है और जड़वाद चेतन सत्ता के लिए जड़ता की स्थितियाँ उत्पन्न कर जीवन को जड़ ही बनाता है । यह अपने युग का दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि इन दिनों चेतना के अस्तित्व को झुठलाने की प्रवृत्ति ही प्रधान है । कोई आवश्यक नहीं है कि तर्कों, विचारों और प्रतिपादनों से ही चेतना के अस्तित्व को झुठलाया जाय । मौखिक रूप से उसके अस्तित्व को स्वीकारते हुए भी चेतना के विकास की कोई व्यवस्था न करना, उसके लिए प्रयास न करना भी चेतना के अस्तित्व को नकारना है । जिस चेतना ने जड़ पदार्थों को साज-सम्हालकर सुन्दर एवं उपयोगी बनाया, जिस चेतना ने अपनी सूक्ष्म बुद्धि से प्रकृति के अनेकानेक रहस्यों का पता लगाया और उनसे लाभान्वित होने की स्थिति उपलब्ध कराई उसी चेतना के अस्तित्व को विस्मृत किया जाने लगे तो यह ठीक वैसा ही होगा जैसा कि मित्र-परिचितों से मिलने के लिए जाते समय उसके मकान की दीवारों को ही देखकर, उन्हीं से बात कर चले आना और मित्र-परिचितों से मिले बिना ही इतने मात्र से मिलन का उद्देश्य पूरा हो गया समझना ।

यह ठीक है कि हम इस शरीर के माध्यम से ही चेतना का अस्तित्व अनुभव करते हैं किन्तु वह उतने तक ही सीमित नहीं है । सही बात तो यह है कि शरीर के बिना भी उसका अस्तित्व बना रह सकता है, जबकि शरीर का अस्तित्व उसके बिना बने रहने का कोई उपाय नहीं है । प्रश्न उठता है इस चेतना को कैसे समझा जाए ? प्रकृति के सूक्ष्म स्वरूप को तो यन्त्र, उपकरणों के माध्यम से समझा जा सकता है, उनके माध्यम से जड़ पदार्थों का भी विश्लेषण किया जा सकता है किन्तु चेतना को परखने के लिए अभी तक कोई यन्त्र उपकरण नहीं बन सका है, न ही निकट भविष्य में उसके बन सकने की कोई सम्भावना है । क्योंकि भौतिक उपकरण केवल अपने सहधर्मी भौतिक पदार्थों को ही पहचान और पकड़ सकते हैं । शरीर और उनकी अनुभूतियाँ भी तत्वों से बने परमाणुपरक पदार्थों के आधार पर ही कुछ निष्कर्ष निकालती तथा रस लेती हैं । मशीन भी धातुओं से ही बनती और विद्युत या भाप जैसी भौतिक ऊर्जाओं से चलती है । ऐसी दशा में उनका परख क्षेत्र स्थूल या सूक्ष्म दृश्य अथवा अदृश्य जड़-जगत तक ही सीमाबद्ध रहता है । चेतना को समझने का कोई यन्त्र बन सका तो वह चेतना ही होगा क्योंकि उसे केवल वही अनुभव कर सकती है ।

आत्मा और परमात्मा को प्रयोगशालाओं में अब तक इसी कारण सिद्ध नहीं किया जा सका है कि ये अभौतिक हैं जबकि प्रयोगशालाओं के सभी यन्त्र, उपकरण भौतिक ही हैं और इसी कारण वैज्ञानिकों ने इन दोनों की सत्ता को अस्वीकार कर दिया । वे शरीर को चलता-फिरता पौधा मात्र मानते हैं और उसकी चेतना को मस्तिष्कीय हलचल मात्र मानते हैं । मस्तिष्क तो शरीर का ही अंग है । इसलिए वे आत्मा की परिभाषा शरीर तक ही सीमित रखते हैं और मृत्यु के साथ ही आत्मा की समाप्ति की बात भी कहते हैं । परमात्मा के सम्बन्ध में भी उनकी इसी प्रकार की मान्यता है । प्रकृति व्यवस्था को वे स्वसंचालित मानते हैं । सृष्टि में चल रही विभिन्न व्यवस्थाओं को वे अपने आप अपने ढर्रे या धुरी पर घूमती हुई बताते हैं और इसमें किसी ईश्वर का नियन्त्रण या हस्तक्षेप होने की बात सिरे से इन्कार करते हैं ।

वैज्ञानिक अनुसंधानों के प्रचलित ढर्रे को अपनाते हुए चेतना के अस्तित्व को प्रमाणित करने में कठिनाई यह है कि विज्ञान जगत प्रत्यक्ष भौतिक प्रयोग परीक्षणों को ही सब कुछ मान बैठता है और प्रयोगशाला की सिद्धि को ही प्रामाणिक मानता है जबकि तर्क और तथ्य यह कहते है कि इस विश्व के रहस्यों को, विशेषतया चेतना सम्बन्धी सत्य को जानने के लिए प्रयोगशालाओं तक ही सीमित नहीं रहा जा सकता । सही बात तो यह है कि प्रयोगशालाओं मे भौतिक उपकरणो से चेतना का अस्तित्व सिद्ध किया भी नहीं जा सकता और कदाचित् करा भी लिया गया तो वह चेतना नहीं होगी, क्योंकि जो चेतन है, अभौतिक है, वह जड़ भौतिक की पकड़ में कहाँ से आएगी ? और आ गई तो चेतना तो कहाँ रही ? हवा को मुट्ठी में बाँध लेने की तरह ही चेतना को प्रयोगशालाओं में सिद्ध कर पाना असम्भव है । हवा को मुट्ठी में बन्द कर लेना भले ही सम्भव हो जाए, पर जड़-यन्त्रों से चेतन सत्ता की पहचान, पकड़ कदापि सम्भव नहीं है । क्योंकि दोनों एक ही अस्तित्व के अंग होते हुए भी क्षेत्र की दृष्टि से भिन्न हैं । आँखों से जिस प्रकार सुना नहीं जा सकता और कानों से जिस प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देख पाना असम्भव है उसी प्रकार जड़-यन्त्रों के माध्यम से चेतना को पहचान पाना कठिन है ।

इतने पर भी चेतना के अस्तित्व को प्रमाणित करने वाले पर्याप्त कारण हैं, जो उसके लक्षणों में परिलक्षित होते हैं । बुखार का कोई आकार-प्रकार, स्वरूप या स्वाद नहीं होता, केवल उसके लक्षण ही अनुभव किये जाते हैं और उसी आधार पर बुखार की पहचान की जाती है । इसी प्रकार चेतना को सिद्ध करने का कोई उपाय न होने पर भी उसके अनेक लक्षण और असंख्य प्रमाण हैं जो चेतना के अस्तित्व को पहचानने की दृष्टि प्रदान करते हैं । मरने के बाद भी जीव चेतना का अस्तित्व बना रहता है, इस तथ्य की पुष्टि में प्रेतात्माओं की हलचलें तथा पुनर्जन्म की ऐसी घटनाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं जो प्रामाणिक व्यक्तियों के अनुभव में आई हैं तथा अनेक अधिकारी मर्मज्ञों ने उनका विश्लेषण किया है । पुनर्जन्म के ऐसे अगणित प्रमाण मिले हैं जिनसे सिद्ध होता है कि पिछले जन्म में इस व्यक्ति की चेतना अमुक परिवार का सदस्य थी । ऐसे व्यक्तियों ने अपने पिछले जन्म के विवरण इस प्रकार खोलकर बता दिये मानो वही व्यक्ति सामने आ गया है । किसी ने सिखा-पढ़ाकर पूर्वजन्म की स्मृति का कौतूहल तो नहीं खड़ कर दिया, इस आशंका की काट उन प्रमाणों से मिलती है जिनमें बालकों ने अपने पिछले जन्म के सम्बन्धियों को पहचाना और उनका नाम लेकर पुकारा है । इसी प्रकार उन्होंने ऐसी घटनाएँ सुनाईं जो नितान्त व्यक्तिगत थीं और परिवार में भी एकाध व्यक्तियों को छोड़कर किसी को मालूम नहीं थीं । इस तरह की घटनाओं में जमीन में गढ़ा हुआ धन बताकर उसे निकलवाना पुनर्जन्म का सशक्त और ठोस प्रमाण हो सकता है । प्रेतात्माओं के अस्तित्व और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों को यदि प्रयोगशाला में सिद्ध होने वाले तथ्यों की तुलना में माना जा सके तो फिर आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती ।

'द ह्यूमन परसनैलिटी एण्ड इट्स सरवाइबल ऑफ बॉडीली डैथ' नामक पुस्तक में ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, जो शरीर से पृथक् आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं । कई उदाहरण तो एक व्यक्ति के शरीर में दूसरे व्यक्ति की आत्मा द्वारा आधिपत्य करने तथा फिर उसे गुम कर देने के हैं । साथ ही संगीत, गणित, ललितकलाओं आदि में अद्भुत क्षमता व प्रवीणता वाले बच्चों के उदाहरण भी हैं, जिनका असाधारण ज्ञान पूर्वजन्म की संचित सामग्री ही सिद्ध होता है ।

प्रयोगशालाओं में सिद्ध न होने पर भी कई वैज्ञानिकों ने चेतना के अस्तित्व को अनुभव किया है तथा उसकी व्याख्या करने की चेष्टा की है, भौतिकी के आचार्य राबर्ट मायर ने ऊर्जा के दर्शन पर जो खोजें की हैं, वे बताती हैं कि उसकी अधिकाधिक सूक्ष्म स्थिति में जो तत्व शेष रह जाता है, उसे चेतना की संज्ञा दी जा सकती है । यह उच्च स्तर पर एकरस और सर्वव्यापी स्थिति में भी गतिशील बनी रहती है ।

सुप्रसिद्ध मनोविज्ञानी जे. बी. राइन ने मानवीय मनःचेतना को पराजागतिक और पराभौतिक की संज्ञा दी है । वे उसका स्वरूप विद्युतीय एवं चुम्बकीय स्तर की ऐसी इकाई के रूप में मानते हैं जो मरने के बाद भी अपनी सत्ता बनाये रहता है । उसमें इतने प्रबल संकल्प जुड़े रहते हैं जिनके सहारे पुराने स्तर की तथा नये प्रकार की किसी आकृति का सृजन और धारण किया जा सके । उनकी दृष्टि में यह व्यक्ति चेतना दृश्य अथवा अदृश्य स्थिति में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रहने में पूर्णतया समर्थ है ।

सापेक्षवाद के प्रणेता सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टीन ने सृष्टि के मूल में चेतना को ही सक्रिय माना था और यह भी कहा था कि यन्त्रों तथा उपकरणों के माध्यम से उसे प्रयोगशाला में सिद्ध नहीं किया जा सकता, यदि यन्त्रों और उपकरणों से चेतना जैसा कोई अस्तित्व सिद्ध कर भी लिया गया तो वह चेतना नहीं होगा । नोबल पुरस्कार विजेता भौतिक शास्त्री पियरे दि कोन्ते ने आत्मा को विश्वात्मा से सम्बन्धित बताया है तथा इसी आधार पर उसे अमर सिद्ध किया है क्योंकि विश्व चेतना अमर है और आत्मा उसी का घटक, एक छोटा-सा अंशमात्र है ।

भारतीय दर्शन और संस्कृति आदिकाल से आत्मा की अखण्डता और अनश्वरता के प्रति आस्थावान है । अणुमात्र होकर भी वह सम्पूर्ण शरीर पर आधिपत्य रखता है । मनीषियों ने इसी तत्वदर्शन के आधार पर भौतिक जीवन को समृद्ध, सम्पन्न तथा उन्नत बनाते हुए आत्मिक विकास करते रहने का मार्गदर्शन किया था और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अनेक विधियों, उपायों का दिग्दर्शन किया था ।

वे उपाय और विधियाँ आज भी प्रभावपूर्ण हैं तथा उनके परिणाम देखे, प्राप्त किये व अनुभव किये जा सकते हैं । दुर्भाग्य से इन दिनों जीवन की अन्तरंग मूल सत्ता को वाद-विवाद का विषय बनाकर उलझा दिया गया है अथवा उसे वाणी विलास का विषय मात्र मान लिया गया है : इसके विकास की ओर कम ही ध्यान दिया जा रहा है : परिणाम सामने है, समग्र सुख-सुविधाएँ और समृद्धि, साधन के उपकरण उपलब्ध रहते हुए भी मनुष्य असन्तुष्ट, खिन्न उदास और दुःखी सा है ।

सर्वांगपूर्ण योग साधना का प्रयोजन अपनी आत्मिक चेतना का विकास करने के साथ-साथ भौतिक जीवन को सुदृढ़ और सुविकसित बनाना भी है । इससे दोनों ही प्रयोजन पूरे होते हैं । योग साधना के क्षेत्र में जितनी ही सफलता मिलती जाती है मनुष्य उतनी ही मात्रा में उस वैभव को हस्तगत करता और उस पर आधिपत्य जमाता चलता है, जिसके प्रभाव को हम जड़ चेतन में अपने चारों ओर बिखरा हुआ अनुभव करते हैं । भौतिक जीवन तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही अपने आपको सीमाबद्ध रखने के कारण मनुष्य दीन और दरिद्र होता जाता है, पर आत्मिक चेतना को यदि विकसित किया जा सके तो विराट् चेतना के साथ जुड़कर महानता प्राप्त करने में कोई कमी नहीं रह जाती ।

आत्मा की समीपता की ओर कदम

जीव-विज्ञान के अनुसन्धानों में यद्यपि कोशिका (सेल्स) को सबसे अधिक आश्चर्यजनक रूप में देखा गया है । उसे वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड का छोटा-सा नक्शा मानते हैं । उसके अन्दर सूक्ष्म रूप में वह सब कुछ है जो इन स्थूल आँखों से दिखाई देता है । ''रोम-रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड'' वाली तुलसीदास की उक्ति को विज्ञान ने कोशिका के रूप में सत्य मान लिया ।

किन्तु हम जो कुछ देखते हैं, उससे भी अधिक आश्चर्यजनक, रहस्यपूर्ण, कौतूहल-वर्द्धक और महत्त्वपूर्ण वह है, जिसकी दूरी और सीमाएँ इतनी व्यापक और विशाल हैं कि हमारी आँखें उसे देखने में समर्थ नहीं हुईं । हमारे शास्त्रों में उस व्यापकता और अनन्तता के परमात्मा कहा है और बताया है कि उसे सूक्ष्म होकर ही जाना जा सकता है—

बालाग्रशतसाहस्रं तस्य भागस्य भागिनः ।
तस्य भागस्य भागार्द्ध तल्लाये तु निरंजनम् ॥
पुष्प मध्ये यथा गन्धः पयोमध्ये यथा घृतम् ।
तिलमध्ये यथा तैलं पाषाणेष्विव काञ्चनम् ॥
एवं सर्वाणि भूतानि मणौ सूत्रमिवात्मनि ।
स्थिर बुद्धिरसंमूढ़ो ब्रह्मविद्ब्रह्माणि स्थितः ॥

—ध्यान विन्दूपनिषत् ४-६,

अर्थात्—बाल के सबसे छोटे टुकड़े का भी सौवाँ भाग, उसका भी हजारहवाँ भाग और उसका भी आधे का आधा भाग (सूक्ष्माति-सूक्ष्म) क्षय हो जाने पर निरंजन होता है, जिस प्रकार फूलों में गन्ध, दूध में घृत, तिल में तेल, पाषाण में स्वर्ण और माला के दाने सूत में पिरोये रहते हैं, उसी प्रकार सब भूत निरंजन में व्याप्त है, स्थिर बुद्धि वाला ज्ञानी मोह रहित होकर ऐसे ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करके उसमें स्थिर रहता है ।

आर्ष वैज्ञानिकों के इस कथन की सत्यता का सर्वप्रथम किंग्स कालेज लन्दन के डॉ. विल्किस ने अध्ययन किया । उन्होंने बताया कोशिका अपने आप में उतनी आश्चर्यजनक नहीं है, जितनी उसके अन्दर के दूसरे कण और क्रियाएँ महत्त्वपूर्ण हैं, इनमें से नाभिक या केन्द्रक (न्यूक्लियस) और उसमें लिपटे हुये क्रोमोसोम, स्पूतनिक की तरह कोशिका के आकाश में स्थित 'सेन्टोसोम' जो कोशों के विकास में सहायक होता है, पारदर्शी गुब्बारे जैसा वह भाग जो भोजन को शक्ति में बदलता है, वह भी एक से एक बढ़कर आश्चर्यजनक है । न्यूक्लियस कोशिका का वह गुम्बदाकार भाग है, जहाँ से पूरे शरीर का सूत्र संचालन होता है । गुणसूत्र (क्रोमोसोम) की जटिलता और भी अधिक है, क्योंकि उन पर व्यक्ति के गुण, शारीरिक विकास और आनुवंशिकता आधारित है, इसलिये इनकी खोज में वैज्ञानिक तीव्रता से जुट गये ।

'जीन्स' जिन्हें आज का वैज्ञानिक जीवन की इकाई मानता है, इन्हीं गुण-सूत्रों का ही एक अत्यन्त सूक्ष्म अवयव है । जिस प्रकार एक डोरे में थोड़ी-थोड़ी दूर पर गाँठें लगा देते हैं । इन गुणसूत्रों में भी गाँठें लगी हुई हैं, इन गाँठों को ही 'जीन्स' कहते हैं । एक कोशिका के जीन्स जो कुण्डली मारे बैठे रहते हैं, उन्हें यदि खींचकर सीधा कर दिया जाय तो ५ फीट तक लम्बे पहुँच सकते हैं । हमारा शरीर चूँकि कोशिकाओं की ईंटों से बना हुआ होता है और एक युवक के शरीर में यह कोशिकाएँ ६०० खरब तक होती हैं, इसलिये यदि सम्पूर्ण शरीर के 'जीन्स' को खींच कर रस्सी बनाई जाये तो वह इतनी बड़ी होगी, जिससे सारे ब्रह्माण्ड को नाप लिया जाना सम्भव हो जायेगा ।

आत्मा सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है । सम्भवतः यह जीन्स उस भारतीय मत की पुष्टि करें, पर जीन्स को ही आत्मा नहीं मान लेना चाहिए । वह चेतन आत्मा का एक अणु हो सकता है पर आत्मा नहीं । सूर्य एक आत्मा है, उसकी एक किरण वहाँ से चलती है और किसी स्थान पर वहाँ की ऊर्जा पहुँचाती रहती है, बहुत सम्भव है उसी तरह उस किरण जाल से सूर्य की स्थान-स्थान की खोज-खबर लेता रहता हो । यह किरणें भी प्रकाश के छोटे-छोटे अणु (एटम) से बनी हैं और प्रत्येक अणु में सूर्य जैसी क्षमताएँ विद्यमान् होती हैं, उतनी ही ऊर्जा (एनर्जी) उतनी ही चमक और वैसी ही आकृति, पर वह सूर्य नहीं हो सकता, वह तो सूर्य का एक अणु मात्र है । अणु को पकड़ा, तोड़ा और मरोड़ा जा सकता है पर सूर्य को तोड़ डालने की शक्ति विज्ञान ने कहाँ पाई है । सूर्य अपने आप में एक स्वतन्त्र सत्ता है ।

'जीन्स' भी ऐसे ही हैं यद्यपि मनुष्य का कुछ छोटा या बड़ा होना, उसके बाल काले, भूरे या घुँघराले होना, नाक चौड़ी, लम्बी या पतली होना, आँखें नीली, काली या भूरी होना यह सारी बनावट जीन्स की बनावट पर निर्भर है, यदि विस्तृत खोज की जाय तो गर्भस्थ शिशु का एक दिन इच्छानुवर्ती निर्माण सम्भव हो जायेगा । आनुवंशिक (हेरेडेटरी) रोगों का इलाज भी तब सम्भव है, जीवधारी के पृथ्वी पर आने से पहले ही कर दिया जा सके, बहुत सम्भव है आदम, ईसा या कर्ण जैसा अमैथुनी मनुष्य भी बनाया जा सके पर यह सब मनुष्य की इच्छा पर नहीं किसी पर्दे में काम करने वाली शक्ति की इच्छा पर ही होगा । मनुष्य जीवों का विकसित रूप नहीं वरन् वह अमैथुनी क्रिया द्वारा ही पैदा हुआ है, यह भारतीय दर्शन की मान्यता है, जो आज की वैज्ञानिक दृष्टि में सत्य सिद्ध हो रहा है पर वह मनुष्य के लिये नितान्त सम्भव नहीं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यह बात हम नहीं वह वैज्ञानिक भी जिन्होंने जीन्स का भी रासायनिक विश्लेषण कर लिया है, मानने लगे है । डॉ. विल्किंस ने बताया कि जीन्स सर्पिल आकार के अणुओं से बने होते हैं, यह अणु 'डी आक्सी राइबो न्यूक्लिक एसिड' (संक्षेप में डी.एन.ए.) के नाम से जाने जाते हैं । इन्हें केवल एक लाख गुना बढ़ाकर दिखाने वाली (मैग्नाफाइङ्ग पावर) खुर्दबीन (माइक्रोस्कोप) से ही देखा जाना सम्भव है । इस दिशा में हारवर्ड यूनिवर्सिटी अमेरिका के डॉ. जेम्स वाट्सन और कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी की कैकेंडिश लैबोरेटरी के डॉ. फ्रांसिस क्रिक ने विस्तृत अनुसन्धान किये । उन्होंने चार प्रमुख नाइट्रोजन यौगिकों १. एडीनाइन, २. साइटो साइन, ३. गुएनाइन और थाईमाइन और फास्फेट व एक प्रकार की शर्करा के रासायनिक संयोग से प्रयोगशाला में ही डी. एन. ए. अणु (मालेक्यूल) का मॉडल बनाकर सारे संसार को आश्चर्यचकित कर दिया । यह जीवन-जगत् में हलचल पैदा करने वाली खोज थी । उसके आधार पर अमैथुनी कृत्रिम गर्भाधान ही संभव न हुआ वरन् चिकित्सा और शरीर विकास की अनेक अद्भुत सफलताओं का स्रोत खुल गया । डी. एन. ए. की सफलता एक दिन ऐसे शरीर बना सकेगी, जो बाजारों में साधारण मनुष्यों की तरह ही घूमा-फिरा करेंगे, फिर भी कोई समझ न पायेगा कि क्या ये कृत्रिम मानव हैं ।

इतनी सफलता पा जाने के बाद क्या वैज्ञानिक संतुष्ट हो गये या उन्होंने यह विश्वास कर लिया कि उन्होंने आत्मा पर अधिकार कर लिया है । नहीं, नहीं, नहीं । १९६२ में इन तीन वैज्ञानिकों को जब इस सम्बन्ध में नोबुल पुरस्कार दिया गया तो उन्होंने ही कहा—"सूत्र हाथ में आ गया है सूत्रधार नहीं, सम्भव है, एक दिन वह भी हाथ लग जायेगा और तब आज जो मनुष्य प्रकृति के इशारे पर नाचता है, तब प्रकृति उसके इंगित पर चलने लगे । पर अभी तो स्थिति यह है कि मनुष्य जीवन की सारी गतिविधियाँ जिनका आदेश जीन्स के द्वारा मिलता है, वह किसी और की है । जीन्स तो उसके आदेश कोशिका तक पहुँचाते रहते हैं । एक कोशिका से दूसरी कोशिका तक सारे शरीर का कार्य संचालन जीन्स के द्वारा दिये गये आदेशों पर चलता है । यह आदेश भी किसी भाषा में नहीं होते वरन् उसकी भी एक रासायनिक पद्धति है ।

जीन्स से कोई तत्व कोशिका में गया तो वह भाग खाली होते ही ऊपर से कोई और तत्व की पहुँचाने की आवश्यकता प्यास रूप में प्रकट हुई । किसी ने कहा नहीं पर हम उठे और पानी पिया । पानी पीने की प्रेरणा जीन्स ने कोशिकाओं को दी, हाथ ने उठाकर पी लिया पर जीन्स को वह आदेश किसने दिया । क्या जीन्स ही की इच्छा थी वह । यदि ऐसा होता तो प्रयोगशाला में बनने वाला डी. एन. ए भी अपनी इच्छा से विकसित होने लगता ।

अभी इस जीन्स से भी कोई अति सूक्ष्म और सर्वव्यापी सत्ता है, इसका प्रमाण उसी की संरचना से मिल जाता है । उदाहरणार्थ डी. एन. ए. पर ही लगभग एक अरब एमीनो एसिड क्रम से लगे रहते हैं, इन्हें वह अक्षर कह सकते हैं जो मिलकर जीन्स की आकांक्षा को व्यक्त करते हैं । जैसे भूख-प्यास, बोलना, उठना-बैठना, मिलना-जुलना, सोना, स्वप्न देखना आदि । इनका ही क्रम मनुष्य के गुणों का निर्धारण करता है । मरोड़ी हुई सीढ़ी की शक्ल में यह अणु एक जीन्स की शक्ल में दिखाई देते हैं । उन सबकी अनुभूतियाँ अलग-अलग हैं, इससे यह पता चलता है कि जीन्स जहाँ कोशिका की आत्मा है, वहाँ वह शरीरगत् सम्पूर्ण चेतना का एक अङ्ग भर है और उससे अधिक कुछ नहीं ।

शरीर की सामाजिकता के आधीन रहना पड़ता है, ऐसा न होता, प्रत्येक जीन्स एक स्वतन्त्र अस्तित्व होता तो वह शरीर के प्रत्येक अङ्ग से मनुष्य पैदा करना आरम्भ कर देता । ऐसा वह नहीं कर सकता, मनुष्य भी परमात्मा का एक अंश है, वह अपने दायरे में निर्माण, पालन और संहार के कार्य किया करता है पर वह विश्व-इच्छा के आधीन है । उसकी अपनी सत्ता उस सामाजिकता से अलग रही होती तो वह अपनी इच्छा से जन्म और मृत्यु का स्वामी हो जाता । बाह्री स्थिति में भले ही वह वैसा हो जाता है पर मनुष्य जब तक मनुष्य है, तब तक उसे उस इच्छा ही के आधीन रहना पड़ता है, यही स्थिति जीन्स की भी है । वह आत्मा का अणु हो सकते हैं, आत्मा नहीं । आत्मा की खोज के लिये अभी लम्बे प्रयोग की आवश्यकता है ।

कोशिका के ऊपरी आवरण को, जिसे प्रोटीन कहते हैं, अब वैज्ञानिक पद्धति से बनाना सम्भव हो गया है । दूध के प्रोटीन से ऊन बना लेने के बाद वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रोटीन बना लेना कोई कठिन बात नहीं है। अभी इस वर्ष डॉ. खुराना को तो इसी विषय में नोबुल पुरस्कार भी मिला है । एक ओर प्रोटीन पर दूसरी ओर डी. एन. ए. पर विस्तृत गवेषणाएँ चल रही हैं । जितनी सफलताएँ मिलती जा रही हैं, उतनी ही आत्मा के किसी अति सूक्ष्म तत्व और सर्वव्यापी होने की पुष्टि बढ़ती ही जा रही है । अभी यह नहीं मान लेना चाहिए कि डी. एन. ए. का निर्माण करके वैज्ञानिकों ने आत्मा को जान लिया । भले ही उन्हें वैसी कोई इकाई मिल गई हो ।

शरीर का ही नहीं-आत्मा का भी ध्यान रखें

इस बात से जरा भी इनकार नहीं किया जा सकता कि मानव-जीवन में शरीर का महत्त्व कम नहीं है । शरीर की सहायता से ही संसार यात्रा सम्भव होती है । शरीर द्वारा ही हम उपार्जन करते हैं और उसी के द्वारा सारी क्रियाएँ सम्पन्न करते हैं । यदि मनुष्य को शरीर प्राप्त न हो तो वह तत्व रूप से कुछ भी करने में समर्थ न हो ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि एक बार मानव-शरीर के इस महत्त्व को गौण भी मान लिया जाये, तब भी शरीर का यह महत्त्व तो प्रमुख है ही कि आत्मा का निवास उसी में होता है । उसे पाने के लिए किए जाने वाले सब प्रयत्न उसी के द्वारा सम्पादित होते हैं । सारे आध्यात्मिक कर्म जो आत्मा को पाने, उसे विकसित करने और बन्धन से मुक्त करने के लिए अपेक्षित होते हैं, शरीर की सहायता से ही सम्पन्न होते हैं । इस रूप में तो निश्चित रूप से शरीर का अपरिहार्य महत्त्व है । इससे इनकार नहीं किया जा सकता.

शरीर का महत्त्व बहुत है तथापि, जब इसको आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे दिया जाता है, तब यही शरीर जो संसार बन्धन से मुक्त होने में हमारी एक मित्र की तरह संहायता करता है, हमारा शत्रु बन जाता है । अधिकार से अधिक शरीर की परवाह करने और उसकी इन्द्रियों की सेवा करते रहने से, शरीर और उसके विषयों के सिवाय और कुछ भी याद न रखने से वह हमें हर ओर से विभोर बनाकर अपना दास बना लेता है और दिन-रात अपनी ही सेवा में तत्पर रखने के लिए दबाव डाला करता है । शरीर के दबाव में आ जाने वाला व्यक्ति कमाने-खाने और विषयों को भोगने के सिवाय, इससे आगे की कोई बात सोच ही नहीं पाता । उसका सारा ध्यान शरीर और उसकी आवश्यकताओं तक ही केन्द्रित हो जाता है । वह शरीर और इन्द्रियों की दासता में बँधकर अपनी सारी शक्ति, जिसका उपयोग महत्तर कार्यों में किया जा सकता है, शरीर की सेवा में समाप्त कर देता है । इस प्रकार उसका जीवन व्यर्थ चला जाता है और उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसके हृदय में एक पश्चात्ताप रह जाता है, जिसके लिए यह बहुमूल्य मानव-जीवन प्राप्त हुआ है । इसलिए मनुष्य को इस विषय में पूरी तरह से सावधान रहने की आवश्यकता है कि शरीर का कितना महत्त्व है और अपनी सेवा पाने का उसे कितना अधिकार है ?

शरीर की सेवा तक सीमित हो जाने की भूल मनुष्य से प्रायः तब होती है, जब वह शरीर को ही सब कुछ समझ लेता है । सत्य बात यह है कि मनुष्य शरीर नहीं, आत्मा है । शरीर तो साधन मात्र है, साध्य केवल आत्मा ही है । इसलिए प्रधान महत्त्व शरीर को नहीं आत्मा को ही देना चाहिए । आत्मा स्वामी है और शरीर सेवक । इसलिए शरीर को ही आत्मा की सेवा में नियोजित करना चाहिए न कि आत्मा को शरीर के अधीन कर देना चाहिए । जो इस नियम एवं अनुशासन का उल्लंघन करते हैं, वे आत्मा की हित हानि करने की भयानक भूल करते हैं, जो निश्चित रूप से शोक, खेद और पश्चात्ताप का विषय है ।

शारीरिक स्वार्थ का महत्त्व है, लेकिन एक सीमा तक । उसी सीमा तक जहाँ तक वह स्वस्थ, सशक्त और सक्षम बना रहे । वह आवश्यकता तथा अल्पायु से बचा रहे । इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उपार्जन भी करना है और सुख-सुविधा, मनोरंजन आदि की व्यवस्था भी, किन्तु सच्चा स्वार्थ आत्मा का ही है । उसी की पूर्ति और उसी का हित-साधन करने को प्रधानता दी जानी चाहिए, क्योंकि मानव-जीवन का उद्देश्य यही है और इसी के लिए वह अनुग्रह भी किया गया है ।

आवश्यकता से अधिक शरीर की सेवा में लगा रहने से शरीर पुष्ट हो जाता है । उसकी जड़ता प्रबल हो जाती है । आवश्यकताएँ वितृष्णा के स्तर पर पहुँच जाती हैं और तब मनुष्य मोह-लोभ-मद-मत्सर आदि ऐसे विकारों से ग्रसित हो जाता है, जो स्पष्टतः आत्मा के शत्रु माने गए हैं । यह विकार अपना अस्तित्व पाकर मानव-जीवन को पतन की ओर ही प्रेरित करते हैं । उनका ऐसा करना स्वाभाविक ही है । मनुष्य को पतन की ओर ले जाना विकारों का सहज धर्म है इसके लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता । दोषी तो वास्तव में वह मनुष्य है, जो इनसे अपनी रक्षा का प्रबन्ध नहीं करता । बिच्छू का धर्म है डंक मारना । यदि वह किसी के डंक मारता है तो इसके लिए बिच्छू को दोष नहीं दिया जा सकता । दोष तो उस व्यक्ति को ही आएगा, जिसने उस कुटिल कीट को कष्ट पहुँचाने का अवसर अपने प्रमाद के कारण दिया । एकमात्र शरीर की सेवा में निरत रहने से उक्त विकास जन्मेंगे, पनपेंगे और अपना अस्तित्व पाकर मनुष्य को धर्मतः पतन की ओर खींचेंगे । अस्तु, अपनी रक्षा के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह प्रधानता शरीर को नहीं आत्मा को दे और उसके हित साधन में निरत हो, उसी का कल्याण करे ।

शरीर को अपेक्षित अधिकार देकर जो बुद्धिमान व्यक्ति शेष समय तथा रुचियाँ आत्मा के स्वार्थ में, उसकी सेवा करने में लगाते हैं, वे लोक में सुख और परलोक में श्रेय के अधिकारी बनते हैं । शरीर की सेवा जहाँ मनुष्य को पतन के गर्त में गिराकर रोग-शोक, संताप, पश्चात्ताप आदि की यातना दिलाकर भव-पाशों में लपेटती जाती है, वहाँ आत्मा की सेवा में मनुष्य अलौकिक सुख, हर्ष-उल्लास, आनन्द आदि के साथ मोक्ष एवं मुक्ति का पुरस्कार पाता है । अवश्य ही शरीर की उपेक्षा मत कीजिए । कमाइये, खाइये, गृहस्थी बसाइए, सुख और सम्पत्ति के अधिकारी बनिए, लेकिन उसमें इस सीमा तक न डूब जाइए कि इसके सिवाय और कुछ सूझ ही न पड़े । शरीर और संसार में उतना ही समय, श्रम और मनोयोग लगाना चाहिए, जितना आवश्यक है और जिससे जीवन की गाड़ी सुविधापूर्वक चलती रहे । शेष का सारा समय, श्रम तथा मनोयोग आत्मा का हित-साधन करने में लगाना चाहिए, जिससे स्वार्थ के साथ परमार्थ और लोक के साथ परलोक भी बनता चले ।

आत्मिक कल्याण आवश्यक होने के साथ-साथ थोड़ा कठिन भी है । कठिन इसलिए कि मनुष्य प्रायः जन्म-जन्म के संस्कार अपने साथ लाता है । वे संस्कार प्रायः भौतिक अथवा शारीरिक ही होते हैं । इसका प्रमाण यह है कि जब मनुष्य का देहाभिमान नष्ट हो जाता है तो वह मुक्त हो जाता है । उसे शरीर धारण करने की लाचारी नहीं रहती । चूँकि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी मनुष्यों की अभिव्यक्ति शरीर में हुई, इसलिए यह सिद्ध है कि उसमें अभी शारीरिक संस्कार बने हुए हैं । पूर्व संस्कारों पर विजय पाकर इन्हें आधुनिक रूप में मोड़ लेना—या यों कह लिया जाए कि शारीरिक संस्कारों का आत्मिक संस्कारों से स्थानापन्न कर लेना सहज नहीं होता । संस्कार बड़े प्रबल व शक्तिशाली होते हैं । इन दैहिक संस्कारों को बदलने का सरल-सा उपाय यह है कि जिस प्रकार सांसारिक कार्यों और शारीरिक आवश्यकताओं की चिन्ता की जाती है, उसी प्रकार आत्म-कल्याण की चिन्ता की जाए । जिस प्रकार सांसारिक असफलताओं के लिए निर्धारित एवं सुनियोजित कार्यक्रम बनाकर प्रयत्न तथा पुरुषार्थ किया जाता है, उसी प्रकार मनोयोगपूर्वक आध्यात्मिक कार्यक्रम बनाए और प्रयत्नपूर्वक पूरे किए जाते रहें । इस प्रकार यदि मनुष्य अपने विचार-कोण के साथ-साथ पुरुषार्थ की धारा बदल डाले तो निश्चय ही उसके संस्कार परिवर्तित हो जायेंगे और वह शरीर की ओर से मुड़कर आत्मा की ओर चल पड़ेगा ।

संस्कार बदलने का प्रयत्न करने के साथ-साथ यह भी देखते चलना आवश्यक है कि संस्कारों में अपेक्षित परिवर्तन घटित हो भी रहा है या नहीं । इसकी पहचान यह है कि जब आप देखें कि आत्म-कल्याण के कार्यक्रमों की सफलता के लिए वैसी ही चिन्ता रहती है, जैसी कि घर-गृहस्थी के कामों और आर्थिक योजनाओं को सफल बनाने की, तब समझ लें कि संस्कारों में परिवर्तन प्रारम्भ हो गया है, यदि भौतिक सफलता की चिन्ता की तरह आध्यात्मिक सफलता की चिन्ता नहीं होती तो समझ लेना चाहिए कि उस दिशा में उचित प्रगति नहीं हो रही है । आप जो कुछ भी आध्यात्मिक प्रयत्न कर रहे हैं, वह सब यों ही एक बेगार अथवा मनोरंजन के लिए कर रहे हैं । उसमें आपका पूरा-पूरा मानसिक योग नहीं है और अपने उत्तरदायित्व के रूप में उक्त प्रयत्न का मूल्यांकन नहीं किया है ।

संस्कारों में परिवर्तन लाने के लिए इस प्रकार के हल्के-फुल्के दिखाऊ प्रयत्न करने से काम न चलेगा, इस कर्त्तव्य को जीवन लक्ष्य के उत्तरदायित्व की भावना से ही करना होगा । बहुत-से लोग आवेश में आकर जोश-खरोश के साथ संस्कार बदल डालने में सहसा जुट पड़ते हैं । इस प्रकार का असात्विक प्रयत्न भी वांछित सफलता सम्पादित करने में कृतकृत्य न होगा । ज्वार की तरह उठा हुआ कोई भी जोश कुछ ही दिनों में ठण्डा पड़ जाता है । संस्कारों में वांछित परिवर्तन लाने के लिए सात्विक निष्ठा के साथ आध्यात्मिक कार्यक्रम अपनाकर और उत्तरदायित्व के साथ उन्हें पूरा करना होगा । प्रगति यदि कम भी है, लेकिन गति में एक दृढ़ता है तो चिन्ता की बात नहीं है । कभी न कभी वह काम पूरा हो जाएगा, किन्तु यदि प्रगति के चरण तो लम्बे-चौड़े देखते हैं और गति में दृढ़ता नहीं है तो निश्चय ही शीघ्र ही थकान घेर लेगी और उदासीनता गतिहीन हो जाने के लिए विवश कर देगी । संस्कारों में परिवर्तन लाने की योजना तभी सफल होगी, जब स्थिति के अनुसार व्यावहारिक कार्यक्रम बनाया जाए और दृढ़तापूर्वक एक-एक कदम बढ़ाया जाए । ऐसा करने से ही संस्कारों में परिवर्तन सम्भव है, अन्यथा नहीं । जिस दिन अध्यात्म विषयक कार्यक्रमों में भौतिक कार्यक्रमों की अपेक्षा अधिक आनन्द और उत्साह अनुभव होने लगे और शरीर की अपेक्षा आत्मा की चिन्ता अधिक रहने लगे तो समझना चाहिए कि संस्कार बदल गए हैं और अब शीघ्र ही हमारा जीवन-यान भवसागर में उस तट की ओर चल पड़ा है, जिस पर कल्याण-कुसुमों से सुशोभित वनस्पति लहलहा रही है ।

मनुष्य शरीर नहीं, आत्मा है । उसे चाहिए कि वह शरीर की अपेक्षा आत्मा को अधिक महत्त्व दे । आत्मा का स्वार्थ ही सच्चा स्वार्थ है, जिसे परमार्थ के नाम से भी पुकारा जाता है । परमार्थ पथ पर अग्रसर होने के लिए आवश्यक है कि दैहिक संस्कारों के स्थान पर आत्मिक संस्कारों की स्थापना की जाए । इसके लिए आध्यात्मिक कार्यक्रमों को निर्धारित कर उनकी सफलता के लिए चिन्तापूर्वक उसी प्रकार प्रयत्न करना होगा, जिस प्रकार भोजन, वस्त्र और घर-गृहस्थी की चिन्ता की जाती है ।

मानव-जीवन का लक्ष्य आत्म-कल्याण है । इस लक्ष्य को पाने के लिए आवश्यक है कि आत्मा को शरीर के ऊपर प्रधानता दी जाए । यह क्रिया, विचार-कोण बदल देने से सहज में पूरी हो सकती है । हम मनुष्य हैं, शरीर ही सब कुछ है । इसकी सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है, इस प्रकार के दैहिक विचारों के स्थान पर इन विचारों को स्थापित करना होगा—हम आत्मा हैं । शरीर तो साधन मात्र है । आत्मा का कल्याण करना ही हमारा परम धर्म है, जिसका निर्वाह हर मूल्य पर करना ही है । इस प्रकार मनुष्य शारीरिक दासता से बचकर आत्मा की सेवा में समर्पित हो जाएगा, जिससे उसे यह पश्चात्ताप करने का अवसर नहीं रहेगा कि—"हाय मैंने अज्ञान के वशीभूत होकर अमर आत्मा की उपेक्षा कर दी और अपना सारा जीवन उस शरीर की सेवा में लगा दिया, जो नश्वर है और जिसकी दासता पतनकारी विकार देने के सिवाय और कुछ नहीं दे पाती ।"

आत्मा को जानिए

मनुष्य पाप, बुढ़ापे, मृत्यु, भूख, प्यास की चिन्ता तथा भय के कारण, अनेक संकल्प-विकल्प के उत्पन्न होने वाले शोक, उद्विग्नता आदि से जीवन के सहज स्वाभाविक सुख और उपलब्धियों का भी लाभ नहीं उठा पाता । सुर दुर्लभ मानव-जीवन को भार, अभिशाप मानकर जीता है । भय की कुकल्पनाएँ उसे चैन से नहीं सोने देतीं, न सुखी जीवन बिताने देती हैं । इन सबसे छुटकारा पाकर जीवन को सुखी व मधुर बनाने की खोज मनुष्य सदा से ही करता आया है । उपनिषद्कार ने इसी को महत्त्व देते हुए कहा है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"य आत्मा पहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोऽपिपासः सत्य काम: सत्य संकल्प: सोऽन्वेष्टव्य: स विजिज्ञासितव्य ।"

"जो निष्पाप, जरा रहित, अमर्त्य शोकरहित, भूख प्यास से मुक्त सत्य काम, सत्य संकल्प है, उसे ही ढूँढ़ना चाहिए, उसे ही जानने की इच्छा करनी चाहिए और वह तत्व है 'आत्मा' ।"

वस्तुत: आत्मा ही जरा-मरण, भूख-प्यास, समस्त भय सन्देह, संकल्प-विकल्पों से रहित नित्य मुक्त, अजर-अमर अविनाशी तत्व है । उसे जान लेने पर ही मनुष्य समस्त भय, शोक, चिन्ता, क्लेशों से मुक्त हो जाता है ।

आत्मा सर्वव्यापी नित्य तत्व है । आत्मा ही मानव-जीवन का मूल सत्य है । आत्मा के प्रकाश में ही बाह्य संसार और मानव जीवन के क्रिया-कलापों का अस्तित्व है । आत्मा के पटल पर ही संसार और दृश्य जीवन का छाया-नाटक बनता-बिगड़ता रहता है । संसार जो कुछ भी है, वह आत्मा की अभिव्यक्ति और उसका विस्तार है । ऐतरेय ब्राह्मण में आया है—

"आत्मा वा इदमेक एवाय आसीत् नान्यात्किञ्चनमिषत् । स ऐक्षते लोकान्नुसृजा इति ।"

पूर्व में केवल एकमात्र आत्मा ही थी अन्य कोई तत्व नहीं था । उस आत्मा में से ही अनेक लोकों का सृजन हुआ । छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है— **"आत्मै वेदं सर्वम्"** आत्मा ही यह सब है । आत्मा के धरातल पर ही दृश्य जगत के घरौंदे बनते-बिगड़ते रहते हैं । सृजन और संहार का चक्र चलता रहता है, किन्तु यह आत्म-तत्व अपने नित्य स्वरूप में स्थिर रहता है सदा-सदा । अनन्त आकाश के मध्य ग्रह-नक्षत्रों का क्रिया-कलाप चालू रहता है । अनेकों उल्कायें, नक्षत्र बनते-बिगड़ते रहते हैं, किन्तु आकाश अपने गुरु गम्भीर अविचल स्वरूप में नित्य ही स्थिर रहता है । इसी तरह सर्वत्र व्याप्त आत्मतत्व के मध्य पदार्थों का सृजन और विनाश होता रहता है, किन्तु आत्म-तत्व पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह सदा सर्वदा नित्य है ।

सर्वव्यापी विराट् आत्मसत्ता ही ब्रह्म है । **'अयमात्मा ब्रह्म'** (वृ. उप.) यह आत्मा ही ब्रह्म है ऐसा उपनिषद्कार ने अपनी अनुभूति के आधार पर कहा है । आत्मा ही परमात्मा है—ईश्वर है । आत्म-तत्व जब जगत देह, इन्द्रिय तथा संसार के पदार्थों को प्रकाशित करता है जो अनेक रूपों में दिखाई देता है । जिस तरह जल की बूँदें समुद्र पर गिरते समय अलग-अलग दिखाई देती हैं, किन्तु गिरने से पूर्व और गिरने पर वह अथाह सिन्धु के रूप में ही होती है । आत्मा भी आदि अन्त में हमेशा ही स्थिर रहने वाला नित्य तत्व है । जो विराट् है भूमा है— **"यौ वै भूमा ।"**

आत्मप्रबोध उपनिषद् में लिखा है—

"घट्यवभासको भानुघटनाशेन नश्यति ।
देहावभासक: साक्षी देह नाशे न नश्यति ॥"

"जिस तरह घड़े को प्रकाशित करने वाला सूर्य घड़े के नष्ट होने पर नष्ट नहीं होता है, उसी तरह देह के नाश होने पर आत्मा का नाश नहीं होता ।" सूर्य का प्रकाश विभिन्न घड़ों में पड़ते समय अलग-अलग-सा जान पड़ता है, लेकिन सूर्य अखण्डित ही रहता है । इसी प्रकार आत्मा भी विभिन्न देह पदार्थों को प्रकाशित करते हुए खण्ड-खण्ड नहीं होती । अथाह धरती के धरातल पर बच्चे मिट्टी के छोटे-छोटे अनेक घरौंदे बनाते हैं, बिगाड़ते हैं, मूर्तिकार अनेक मूर्तियाँ बनाता है फिर वे समय पर नष्ट भी हो जाती हैं । इस पर भी आदि अन्त में मिट्टी, धरती अपने नित्य स्वरूप में ही स्थित रहती है । ठीक इसी तरह आत्मा के पटल पर संसार और उसके पदार्थों का बनना-बिगड़ना जारी रहता है, किन्तु आत्म-तत्व अपने नित्य स्वरूप में स्थिर रहता है ।

इस तरह मानव-जीवन, समत संसार और पदार्थों की मूलसत्ता, सर्वव्यापी, आत्म-तत्व को जान लेने पर मनुष्य-जीवन में होने वाले विभिन्न परिवर्तन, सृजन और विनाश, लाभ हानि, सुख-दु:ख, भय, शोक आदि से मुक्त हो जाता है। उसके समस्त पाप-ताप, विकृतियाँ तिरोहित हो जाते हैं । आत्मविद् होकर, आत्मस्थित होकर मनुष्य सुख-शांति, आनन्द की सहजावस्था प्राप्त कर लेता है । आत्मा की सत्यता का ज्ञान हो जाने पर मनुष्य स्वत: ही संसार और इसके पदार्थों से अलिप्त निस्पृह बन जाता है । वस्तुत: संसार और इसके पदार्थों को जीवन का सत्य मानने वाले ही विभिन्न उपायों से पदार्थ, उपकरण आदि संग्रह करते हैं, इसके लिए एक-दूसरे का अहित, शोषण, नाश करने में भी नहीं चूकते । पदार्थों की चकाचौंध में परस्पर टकराकर, दिन-रात अशान्ति, क्लेश, उद्विग्नता के भागी बनते हैं, लेकिन आत्मविद् संसार और इसके पदार्थों की क्षणभंगुरता, अनित्यता को जानकर आत्मा के स्वभाव अनुसार दिव्य कर्म, दिव्य गुणों से युक्त हो स्वर्गीय जीवन बिताता है । वह पदार्थों की मोहक गन्ध पर गिद्धों की तरह नहीं टूटता न किसी से लड़ता है ।

देह, इन्द्रियाँ और सांसारिक पदार्थों को महत्त्व देने पर ही जीवन में विभिन्न राग-द्वेष की आशा, अभिलाषाओं का चक्र चलता है । जब मनुष्य इनसे ऊपर उठकर आत्मा के व्यापक विराट् स्वरूप में स्थित होता है तो पदार्थों की तुच्छता, देह इन्द्रिय की अनित्यता क्षणभंगुरता का ज्ञान हो जाता है । तब फिर वह अमूल्य मानव-जीवन को इन तुच्छ बातों में नष्ट नहीं करता और इसी के साथ उसके समस्त दु:ख-द्वन्द्व तिरोहित हो जाते हैं ।

सर्वत्र आत्मा के स्वरूप को देखने वाले आत्मविद् के अन्तर से विश्व-प्रेम की सुरसरी बह निकलती है । सत्य, प्रेम, आनन्द आदि आत्मा के गुण-धर्म हैं । जिस अन्तर में ये पुण्य धाराएँ बहती रहती हैं, उन्हें जो आनन्द, शान्ति, तोष प्राप्त होता है, उसे अनुभवी ही जानते हैं । सर्व को आत्ममय देखने वाला व्यक्ति सबसे प्रेम करेगा । सबसे प्रेम,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सबकी सेवा, सबसे आनन्द की अनुभूति आत्मविद् के स्वभाव का अंग बन जाती है ।

आत्मा का ज्ञान मनुष्य को जरा-मरण के भय से मुक्त करता है । वस्तुत: जरा और मृत्यु का भय, चिन्ता इतनी भयावह होती है कि इससे मनुष्य का जीवन सत्व तेजी के साथ नष्ट होने लगता है । भय की प्रबल प्रातिक्रियाओ से लोग अचानक मरते देखे जाते हैं, लेकिन सब भयों का, खासकर सबसे बड़े मृत्यु भय का उच्छेद आत्म-ज्ञान से तत्क्षण ही हो जाता है, क्योंकि आत्मा जरा, मरण के बन्धनों से मुक्त है ।

इस तरह आत्मा की अजर-अमर अविनाशी तथा चिरन्तन सत्ता का ज्ञान-बोध हो जाने पर मनुष्य जरा-मरण एवं अन्य सभी प्रकार के भयों से मुक्त हो जाता है । आत्मविद् के लिए मृत्यु एक वस्त्र बदलने जैसी प्रक्रिया मात्र है । आवश्यकता पड़ने पर वह हँसते-हँसते मौत का आलिंगन करने में भी नहीं चूकता, क्योंकि इससे उसका शरीर नष्ट होता है आत्मा नहीं ।

इसलिए जीवन में परितोष की प्राप्ति के लिए, सत्य, प्रेम, आनन्द की व्यापक अनुभूति के लिए, जीवन के सत्य की प्राप्ति के लिए सर्व और से निर्भय, निर्द्वन्द्व, निश्चिन्त बनने के लिए आत्मतत्व में प्रवेश पाने, उसे जीतने, उसे स्थिर रहने के लिए नित्य ही प्रयत्न करना आवश्यक है ।

आत्म-सत्ता और उसकी महान् महत्ता

जीव की शारीरिक स्थिति पर विचार करें तो प्रत्यक्षत: यह देखने में आता है कि दो शक्तियाँ अवस्थित हैं । प्रथम पंचघ प्रकृति—जिससे हाथ, पाँव, पेट, मुँह, आँख, कान, दाँत आदि शरीर का स्थूल कलेवर बनकर तैयार होता है । इस निर्जीव तत्व की शक्ति और अस्तित्व का भी अपना विशिष्ट विधान है जो भौतिक विज्ञान के रूप में आज सर्वत्र विद्यमान है । जड़ की परमाणविक शक्ति ने ही आज संसार में तहलका मचा रखा है, जबकि उसके सर्गाणुओं, कर्षाणुओं, केन्द्रापिण्ड (न्यूक्लिअस) आदि की खोज अभी भी बाकी है । यह सम्पूर्ण शक्ति अपने आप में कितनी प्रबल होगी इसकी कल्पना करना भी कठिन है । द्वितीय—शरीर में सर्वथा स्वतन्त्र चेतन शक्ति भी कार्य कर रही है जो प्राकृतिक तत्वों की अपेक्षा अधिक शक्तिमान मानी गई है । यह चेतन तत्व संचालक है, इच्छा कर सकता है, योजनाएँ बना सकता है, अनुसन्धान कर सकता है, इसलिये उसका महत्त्व और भी बढ़-चढ़कर है । हिन्दू ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में जो गहन शोधों के विवरण हैं वे चेतन शक्ति की आश्चर्यजनक शक्ति प्रकट करते हैं । इतना तो सभी देखते हैं कि संसार में जो व्यापक क्रियाशीलता फैली हुई है, वह इस चेतना का ही खेल है । इसके न रहने पर बहुमूल्य, बहु शक्ति-सम्पन्न और सुन्दर शरीर भी किसी काम का नहीं रह जाता ।

जीवधारियों के शरीर में व्याप्त इस चेतना का ही नाम आत्मा है । सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, ज्ञान तथा प्रयत्न उसके धर्म और गुण हैं । न्याय और वैशेषिक दर्शनों में आत्मा के रहस्यों पर विशद् प्रकाश डाला गया है और उसे परमात्मा का अंश बताया गया है । यह आत्मा ही जब सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष आदि विकारों का त्याग कर देती है तो वह परमात्मा-भाव में परिणित हो जाती है ।

आज भौतिक विचारधारा के लोग इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं होते । उनकी दृष्टि में शरीर और आत्मा में कोई भेद नहीं है । इतना तो कोई साधारण बुद्धि का व्यक्ति भी आसानी से सोच सकता है कि जब उसके हृदय में ऐसे प्रश्न उठते रहते हैं—'मैं कौन हूँ', 'मैं कहाँ हूँ', 'मेरा स्वरूप क्या है, मेरे इस शरीर-धारण का उद्देश्य क्या है' आदि । 'मैं यह खाऊँगा', 'मुझे यह करना चाहिए' 'मुझे धन मिले'—ऐसी अनेक इच्छाएँ प्रतिक्षण उठती रहती हैं । यदि आत्मा का प्रथम अस्तित्व न होता तो मृत्यु हो जाने के बाद भी वह ऐसी स्वानुभूतियाँ करता और उन्हें व्यक्त करता । मुख से किसी कारणवश बोल न पाता तो हाथ से इशारा करता, आँखें पलक मारतीं, भूख लगती, पेशाब होती, पर ऐसा कभी होता नहीं देखा गया । मृत्यु होने के बाद जीवित अवस्था की-सी चेष्टाएँ आज तक किसी ने नहीं कीं, आत्मा और शरीर दो विलग वस्तुएँ, दो विलग तत्व होने का यही सबसे बड़ा प्रमाण है ।

छान्दोग्योपनिषद् के सातवें अध्याय के २६वें खण्ड में बताया गया है—

"आत्मा से प्राण, आत्मा से आशा, आत्मा से स्मृति, आत्मा से आकाश, आत्मा से तेज, आत्मा से जल, आत्मा से आविर्भाव और तिरोभाव, आत्मा से अन्न, आत्मा से बल, आत्मा से विज्ञान, आत्मा से ध्यान, आत्मा से चित्त, आत्मा से संकल्प, आत्मा से मन, आत्मा से वाक्, आत्मा से नाम, आत्मा से मन्त्र, आत्मा से कर्म और यह सम्पूर्ण चेतन जगत ही आत्मा से आच्छादित है । इस आत्म-तत्व का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले मनुष्य जीवन-मरण के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं ।"

वृहदारण्यकोपनिषद् में राजा जनक ने आत्मा के सम्बन्ध में श्री याज्ञवल्क्य को उपदेश देते हुए कहा है—

"यह आत्मा प्राणों में बुद्धिवृत्तियों के भीतर रहने वाला विज्ञानमय ज्योतिस्वरूप पुरुष है । वह लोक-परलोक दोनों में संचार करती है । स्वप्नावस्था में यह सूक्ष्मतिसूक्ष्म आत्मा ही विभिन्न लोकों में विचरण करता है ।"

भौतिक विज्ञान दरअसल आत्मा के अस्तित्व का खण्डन नहीं करता अपितु वह उसे सिद्ध करने में ही सहायक हुआ है । विज्ञान की उच्च सतह पर न पहुँचने के कारण आज कुछ लोग ऐसी भ्रामक धारणाएँ फैलाए हुए हों, यह दूसरी बात है अन्यथा जिन वैज्ञानिकों ने गहन तत्वान्वेषण किये हैं उनमें से प्राय: सभी ने यह माना है कि पदार्थ जड़ है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा चेतनायुक्त ज्ञानमय द्रव्य है । इन दोनों के गुणों में असमानता है और आत्मा की शक्ति पदार्थ की शक्ति से बहुत बड़ी है ।

जुलाई १९३६ में कलकत्ता से प्रकाशित 'दी मॉर्डन रिव्यू'— में सर ए. एस: एडिंग्टन तथा प्रो. अलवर्ट आइन्स्टीन के आत्म-ज्ञान सम्बन्धी विचार उद्धृत हुए हैं जो इस प्रकार हैं—

"संसार में कोई अज्ञात शक्ति काम कर रही है जिसे हम नहीं जानते कि वह क्या है ? फिर भी इतना तो स्पष्ट है ही कि वह अधिक शक्तिशाली है । मैं चेतना को मुख्य मानता हूँ । इस आत्मा के विषय में मुझे अपने मत से कोई विचलित नहीं कर सकता ।"

"मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि सारी प्रकृति में एक असीम शक्तिशाली चेतन-शक्ति काम कर रही है ।"

विश्वविख्यात वैज्ञानिक डॉ. गाल का मत है—"विश्व में केवल एक ही मुख्य तत्व है जो देखता है, अनुभव करता है, प्रेम करता है, विचार और स्मृति करता है ।"

"जैसे मनुष्य दो दिनों के बीच रात्रि को स्वप्न देखता है, वैसे ही मनुष्य की आत्मा ही मृत्यु तथा पुनर्जन्म के मध्य विभिन्न सांसारिक क्रियाएँ करती हैं"—सर ऑलिवर लॉर्ज ने इन शब्दों में आत्मा के अस्तित्व पर प्रकाश डाला है—

कुछ दिन पूर्व इस बात को लेकर वैज्ञानिकों में काफी लम्बी चर्चा चली थी और आत्मा के अस्तित्व सम्बन्धी उनके मत लिए गए थे, जिन्हें सामूहिक रूप से 'दी ग्रेट डिजाइन' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया गया है । पुस्तक में उपसंहार करते हुए लिखा गया है—

"यह संसार कोई आकस्मिक घटना नहीं लगता है । इसके पीछे कोई सुनियोजित विधान चल रहा है । एक मस्तिष्क, एक चेतन-शक्ति काम कर रही है । अपनी-अपनी भाषा में उसका नाम चाहे कुछ रख लिया जाय पर वह मनुष्य की आत्मा ही है ।"

इसके अतिरिक्त जे. एन. थामसन, जे. बी. एम. हेल्डन, पी. गोइडेस, आर्थर एच. काम्पटन, सर जेम्स जोन्स आदि वैज्ञानिकों ने भी आत्मा के अस्तित्व में सहमति प्रकट की है । उसके प्रत्यक्ष ज्ञान के साधनों का पाश्चात्य देशों में भले ही अभाव हो, पर विचार और बुद्धिशील मनुष्य के लिए यह अनुभव करना कठिन नहीं है कि यह जगत केवल वैज्ञानिक तथ्यों तक सीमित नहीं, वरन् उन्हें नियन्त्रित करने वाली कोई चेतना भी अवश्य काम कर रही है और उसे जानना मनुष्य के लिए बहुत आवश्यक है ।

शास्त्रीय कथानकों के माध्यम से आत्मा के अस्तित्व, गुणों और क्रियाओं के सम्बन्ध में बड़ी ही ज्ञानपूर्ण चर्चाएँ की गई हैं । ऐसे कथानकों में नारद, ध्रुव आदि के वार्त्तालाप के साथ राजा चित्रकेतु की कथा भी बड़ी शिक्षाप्रद और वास्तविक तथ्यों से ओत-प्रोत है ।

चित्रकेतु एक राजा था जिसे महर्षि अंगिरा की कृपा से एक सन्तान प्राप्त हुई थी । बच्चा अभी किशोर ही था कि उसकी मृत्यु हो गई । राजा पुत्र-वियोग से बड़ा व्याकुल हुआ । अन्त में ऋषिदेव उपस्थित हुए और उन्होंने दिवंगत आत्मा को बुलाकर शोकातुर राजा से वार्त्तालाप कराया । पिता ने पुत्र से लौटने के लिए कहा तो उसने जवाब दिया, "हे जीव ! मैं न तेरा पुत्र हूँ और न तू मेरा पिता है । हम सब जीव कर्मानुसार भ्रमण कर रहे हैं । तू अपनी आत्मा को पहचान । हे राजन् ! इसी से तू सांसारिक संतापों से छुटकारा पा सकता है ।" अपने पुत्र के इस उपदेश से राजा आश्वस्त हुआ और शेष जीवन उसने आत्म-कल्याण की साधना में लगाया । राजा चित्रकेतु अन्त में आत्म-ज्ञान प्राप्त कर जीवन-मुक्त हो गया ।

यह आत्मा अनेक योनियों में भ्रमण करती हुई मनुष्य जीवन में आती है । ऐसा संयोग उसे सदैव नहीं मिलता । शास्त्रीय अथवा विचार की भाषा में इतना तो निश्चय ही कहा जा सकता है कि जीवों की अपेक्षा मनुष्य को जो श्रेष्ठताएँ उपलब्ध हैं वे किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही हैं जो आत्मज्ञान या अपने आपको जानना ही हो सकता है । आत्मज्ञान ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है, जिससे वह जीवभाव से मुक्त होकर ईश्वरीय भाव में लीन हो जाता है ।

आत्मा का अस्तित्व विवेक की कसौटी पर

वह समय अब पीछे छूटता जा रहा है, जब यह कहा जाता था कि चेतना जड़ की उत्पत्ति मात्र है—आत्मा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है । संसार के मूर्धन्य दार्शनिकों एवं मनीषियों ने यह स्वीकार किया है कि मनुष्य मात्र जड़ परमाणुओं का समुच्चय नहीं है, उसके भीतर ऐसी कोई सत्ता काम कर रही है जो स्वतन्त्र एवं अविनाशी है । गहराई से अपनी ही सत्ता का विश्लेषण एवं विचार करने पर उपरोक्त तथ्य की पुष्टि हो जाती है ।

अपरिवर्तनीय, अविनाशी, शाश्वत् शरीर से परे आत्म-सत्ता का परिचय मनुष्य जीवन के अध्ययन से मिलता है । हर व्यक्ति यह अनुभव करता है कि अमुक समय मेरा बचपन था जब मैं बाल सुलभ चेष्टाओं में निरत रहता था । किशोरावस्था में प्रविष्ट करते ही विद्याध्ययन में अभिरुचि जगी । कुछ करने एवं विशिष्ट बनने की आकांक्षा मन में उमड़ती-घुमड़ती रहती थी । युवावस्था आई । विवाह हुआ । दाम्पत्ति जीवन में बँधे, पति-पत्नी के बीच स्नेह का आदान-प्रदान चला । कुछ समय बाद प्रौढ़ावस्था आयी और अन्ततः जीवन के उत्तरार्द्ध वृद्धावस्था में प्रवेश करना पड़ा । बचपन से लेकर वृद्धावस्था के अविराम क्रम की अनुभूति प्रत्येक व्यक्ति करता रहता है । शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन के इस क्रम में एक अपरिवर्तनीय तत्व भी कार्य करता है जो जीवन के समस्त घटनाक्रमों का अनुभव करता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । अमुक समय बचपन था, अमुक युवाकाल तथा अमुक प्रौढ़ावस्था । विश्लेषण करने पर यह बात स्पष्ट होती है कि हर अवस्थाओं की अनुभूति करने वाली कोई सत्ता है जो सभी शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों एवं सम्बन्धित घटनाक्रमों को देखती रहती है, किन्तु स्वयं उनसे अप्रभावित रहती है । परिवर्तनों, घटनाक्रमों एवं दृश्यों के इस दृष्टा को ही आत्मा कहा गया है जो समस्त जीवन प्रवाह का आदिकरण एवं प्रणेता है, जिसके शरीर से विलग होते ही सारी शरीरगत हलचलें समाप्त हो जाती हैं और निष्प्राण भौतिक शरीर ही अवशेष बचता है । जो कभी आत्म-सत्ता की उपस्थिति में इतना अधिक कीमती एवं उपयोगी था, उसे शीघ्रातिशीघ्र सड़ने के डर से जलाकर छुट्टी पायी जाती है ।

अपनों का अपनापन भी उस दृष्टा के बने रहने पर ही रहता है । जान से भी प्यारे, आँखों के दुलारे बच्चों, युवकों अथवा वृद्धों के प्रति मोह तभी तक रहता है, जब तक आत्मा की चैतन्य शरीर में विद्यमान है । वस्तुतः जिस शरीर अथवा जिस व्यक्ति के प्रति हमारा स्नेह झलकता है, वह भी प्रकारान्तर से आत्म-सत्ता के प्रति ही होता है । दृष्टि बर्हिमुखी होने के कारण इस तथ्य को अधिकांश व्यक्ति नहीं समझ पाते और यह आत्मानुराग व्यक्ति के प्रति मोह के रूप में प्रकट होता है । यह सत्य इस बात से भी प्रकट होता है कि शरीर की आकृति ठीक वही रहती है, किन्तु न तो कोई उसे संजोकर रखता है और न ही निष्प्राण शरीर के प्रति राई-रत्ती भर आसक्ति दिखाई पड़ती है । विशेषता शरीर की रही होती तो वह बाद में भी उसी तरह बनी रहती, किन्तु ऐसा कहीं नहीं देखा जाता । अस्तु, महत्ता एवं विशेषता आत्म-सत्ता की ही प्रभावित होती है ।

स्वयं निर्लिप्त होते हुए भी वह जीवन में गति भरता, मन एवं बुद्धि को आलोकित करता, प्राणों से अनुप्राणित करता, ज्ञानेन्द्रियों में संवेदना भरता, कठपुतली की भाँति मनुष्य से नृत्य कराता रहता है । जीवन उसी की अभिव्यक्ति है । बचपन उसका एक चरण है—यौवन दूसरा तथा वृद्धावस्था तीसरा, किन्तु वह स्वयं इन तीनों अवस्थाओं की परिधि से परे है ।

आद्य शंकराचार्य ने इस अनुभूति को इस प्रकार व्यक्त किया है—"वर्तमान को मैं जानता हूँ, भूत को मैंने जाना है और भविष्य को मैं जानूँगा । अनुभव की इस परम्परा में ज्ञातव्य वस्तु का ही परिवर्तन दिखायी पड़ता है । ज्ञात का स्वरूप कभी परिवर्तित नहीं होता, वह सदा अपने स्वरूप में यथावत् बना रहता है ।" इस तथ्य को अन्यत्र प्रतिपादित करते हुए शंकराचार्य लिखते हैं कि— "हर कोई आत्मा के अस्तित्व में जाने-अनजाने विश्वास करता है । ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो अपनी सत्ता में अविश्वास व्यक्त करे और वह कहे "मैं नहीं हूँ । 'मैं हूँ' यह बोध हर काल हर अवस्था में बना रहता है । अतः इस चिरन्तन बोध का बना रहना आत्म-सत्ता के अस्तित्व का स्वतः प्रमाण है ।"

प्रसिद्ध दार्शनिक रेने डेकार्ट का मत है कि "मान भी लें कि आत्मा नहीं है, तो भी यह तो मानना ही होगा कि मैं सन्देह करता हूँ कि आत्मा है या नहीं । यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि मैं सन्देह करता हूँ तो विवश होकर यह मानना होगा कि मैं उक्त सन्देह के प्रति विचार करता हूँ । अस्तु, जो विचार करेगा वही सन्देह कर सकेगा कि मैं हूँ या नहीं हूँ । अगर मैं विचार करता हूँ तो यह निश्चित हो गया कि मैं हूँ ।"

पाश्चात्य दर्शन शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान बर्कले का कहना है कि "रंग की अपने आप में कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । देखने वाला हो तभी रंग की सत्ता है । शब्द की सत्ता भी सुनने वाला हो तभी है । इसी प्रकार रंग, रस, गंध की भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । इनको अनुभव करने वाला हो तो ही इनकी सत्ता है और अनुभूति की यह विशेषताएँ ज्ञानेन्द्रियों की भी अपनी मौलिक नहीं है । इन्हें उपरोक्त क्षमताएँ आत्म-सत्ता द्वारा मिली हुई हैं ।" इस तथ्य को और भी स्पष्ट रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है— "मरणोपरान्त भी शरीर एवं सम्बन्धित ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों का आकार प्रकार उसी तरह बना रहता है । हाथ, पैर मस्तिष्क, आँख, कान, नेत्र सभी विद्यमान रहते हैं, किन्तु न तो हाथ हिलते हैं और न ही पैर । जो कभी बड़ा से बड़ा काम देखते-देखते कर डालते थे, वे ही अपने को हिलाडुला सकने में भी असमर्थ सिद्ध होते हैं । नेत्र के सभी अवयव विद्यमान रहते हैं, किन्तु उनमें न तो प्रकाश होता है और न देखने की क्षमता । कान और नाम यथावत् होते हुए भी कहीं वे ध्वनियों को सुन और गंध को सूँघ पाते हैं । मस्तिष्क जो कभी विलक्षण प्रतिभा का केन्द्र था, कठिन से कठिन गुत्थियों को हल करने में सक्षम था, वह भी निश्चेष्ट पड़ा रहता है । उसके सभी कलपुर्जे ठीक होते हुए भी न तो सोच पाता है और न ही उसकी प्रखरता रहती है ।"

कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों के सभी अवयव ठीक रहते हुए भी शरीर से चेतना के निकलते ही अपनी क्षमताओं एवं विशेषताओं को गँवा बैठना, इस बात का प्रमाण है कि उन सबमें आत्म-सत्ता का प्रकाश ही प्रकाशित होकर विभिन्न प्रकार की हलचलों के लिए प्रेरणा एवं शक्ति दे रहा था । उसके अपनी विभूतियों को, प्रकाश शक्ति एवं प्रेरणाओं को समेटते ही सभी इन्द्रियाँ निष्प्राण हो जाती हैं ।

अस्तु प्रत्यक्ष नेत्रों से दिखायी न पड़ना ही आत्मसत्ता के न होने का प्रमाण नहीं है । विविध प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक हलचलों एवं विशेषताओं में अदृश्य प्रेरणाएँ आत्मा की ही होती हैं । अभिव्यक्ति तो जड़ पदार्थों की होती है, चेतना की नहीं । आत्मा अस्तित्वपूर्ण होते हुए भी अभिव्यक्ति से परे है । उसकी अनुभूति हो सकती है । अनुभूति अपनी सत्ता की अनुभूति होना ही आत्मा का सबसे बड़ा प्रमाण है । शरीर में रहते हुए भी वह शरीर से परे है । इन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों में शक्ति एवं प्रकाश भरते हुए भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनसे परे मन द्वारा शरीर एवं बुद्धि का संचालन करते हुए भी वह मन से सर्वथा अलग है ।

उस चिरन्तन, शाश्वत् अविनाशी आत्म-सत्ता के अस्तित्व को न मानने का कोई विवेकपूर्ण कारण नजर नहीं आता "चेतना जड़ की उत्पत्ति है तथा जड़ परमाणुओं के नष्ट होने के साथ ही नष्ट हो जाता है आत्मा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है ।" ये सभी मान्यताएँ दार्शनिक एवं वैचारिक दृष्टि से विवेकसंगत नहीं हैं । उचित यही है कि निष्पक्ष निर्णय बुद्धि को आधार बनाकर आस्तिकता सम्बन्धी भावनाओं पर विचार किया जाय एवं हठधर्मिता का खण्डन किया जाय ।

आत्म-सत्ता का अस्तित्व

दर्शनशास्त्र मनःशास्त्र या धर्म की पहुँच वस्तुतः आत्मसत्ता तक नहीं है । रहस्यवाद ही आत्मसत्ता के रहस्यों का बोध कराता है । व्यक्तित्व और मन दोनों अहम् (आत्मा) के भाग हैं, जो जानता है, समझता है और इच्छा करता है । मन चेतना का ही अंग एवं एकत्व है । व्यक्तित्व मन का प्रमुख अंग है ।

समझदारी, स्मृति, मनोभाव और तर्क आदि मानसिक उपज नहीं हैं वरन् ये चेतना की प्रेरणाएँ हैं, जो मन द्वारा व्यक्त होते हैं । चेतना में अनेक अनुभूतियाँ हमेशा होती रहती हैं । हमारे शरीर और अंगों की सम्वेदनाएँ, तकलीफें और दर्द, इन्द्रियों की अनुभूतियाँ, भूतकाल की मन्द अनुभूतियाँ, वर्तमान और भविष्य की अनुभूतियाँ, आशाएँ इच्छाएँ आदि हमेशा चेतना में रहती हैं । प्रत्येक मनुष्य की चेतना में नित्य एकता बनी रहती है और वह अपना कार्य व्यवस्थित रूप से करती है । नए अनुभव पहले के अनुभवों के परिष्करण के रूप में (इसमें) होते हैं और उनसे घुल-मिलकर एक हो जाते हैं । इन अनुभवों में चेतना के समस्त गुण एवं दृष्टिकोण होते हैं । यह मिश्रित व्यवस्था 'सेल्फ' कहलाती है ।

सेल्फ की दो स्थितियाँ हैं—(१) बाह्यगत (२) आन्तरिक । बाह्यगत सेल्फ से हम सोचने-समझने और अनुभव करने का काम लेते हैं, जो चेतना की ऊपरी पर्त में है । इसके भीतर आन्तरिक सेल्फ (इनर सेल्फ) गहराई में होता है । यह अतीन्द्रिय चेतना (अभौतिक) है और सबको प्रभावित करने वाले संवेग (अन्तःप्रेरणाएँ) होते हैं । यह प्रभाव बाह्यगत चेतना (आबजेक्टिव सेल्फ) या स्मृति, ज्ञान और अनुभव [जो अन्तःचेतना में छिपी रहती है] के द्वारा अन्तःचेतना पर पड़ता है ।

अन्तःचेतना आत्मा का आन्तरिक भाग है और बाह्य चेतना आत्मा का बाह्य भाग है । आत्मा जीवन का स्रोत है और इसके रहते तक ही शरीर जीवित रहता है । यह स्वतन्त्र है और अपनी इच्छानुसार नित्य कार्य करती है, अतः उससे समस्त ज्ञान प्राप्त होते हैं और सर्वोच्च शक्ति [परमात्मा] से वही सम्बन्ध स्थापित करती है । उसके रहस्यों का ज्ञान यह अन्तःआत्मा ही देती है । यही रहस्यवादियों का आदर्श एवं प्रेरणा स्रोत है ।

पदार्थ जगत में अधिक व्यस्त हम रहते हैं और अन्तःजगत को भूले रहते हैं । इसीलिए हमें साधारणतः ये अनुभव नहीं होते । विषयगत विश्व से दूर रहने के कारण बच्चों को ये अनुभव कई बार होते हैं, परन्तु उनके अभिभावक उन पर ध्यान नहीं देते । बच्चे ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं, अनुभूतियाँ होना बन्द हो जाती हैं ।

बच्चों को अन्तर्दर्शन की शिक्षा दी जानी चाहिए । यह बहुत महत्त्वपूर्ण अनुभवों एवं ज्ञानों का स्रोत है । अन्तर्दर्शन से हम ईश्वरी तत्व को जानते हैं और उसकी शक्तियों को समझते हैं । विश्व में सर्वत्र यह तत्व भरा है, परन्तु हम अज्ञानतावश इसका लाभ नहीं उठा पाते । प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर का अंश है और उसमें ईश्वर की सारी शक्तियाँ सूक्ष्म रूप से भरी हैं । सारा विश्व ईश्वर का शरीर है और प्रत्येक वस्तु में वह विद्यमान है । अन्तर्मन (आत्मा) मनुष्य के भाग्य का सूर्य है और सम्पूर्ण जीवन पर वह उसे प्रकाशित करता है । यह अन्तरात्मा मनुष्य में ईश्वर की आवाजों, विचारों एवं शक्तियों को बतलाती है ।

इनर सेल्फ [अन्तरात्मा] पदार्थवाद से बहुत दूर सूक्ष्म अतीन्द्रिय क्षेत्र में रहता है, जहाँ तर्क समाप्त हो जाते हैं और अन्तःज्ञान प्राप्त होते हैं । भौतिकवाद मन की उपज है और असत्य है । मन और अन्तरात्मा समझ से परे है तथा इनको समझने के लिए विश्व में कोई भाषा या व्याकरण नहीं है । अतः अन्तर्दर्शन एवं अन्तरात्मा के विकास के लिए उपयोगी शिक्षा हमें लोगों को अवश्य देनी चाहिए । भारतीय दर्शन का यह मौलिक सिद्धान्त है ।

आत्मा का अस्तित्व—सत्य और तथ्य

पुनर्जन्म की सैकड़ों घटनाएँ आये दिन आती रहती हैं । भारतवर्ष में तो उनकी बहुतायत है, पर इस्लाम और ईसाई धर्मावलम्बी देशों में भी पुनर्जन्म की अनेक घटनाएँ घटीं तो पाश्चात्य वैज्ञानिकों को यह सोचने के लिये विवश होना पड़ा कि क्या आत्मा का कोई अस्तित्व भी है । भारतवर्ष में ही उसकी व्यापक खोज की जा रही है, किन्तु अभी लोगों की मान्यताएँ स्पष्ट नहीं हुई ।

परामनोविज्ञान पुनर्जन्म की घटनाओं को पदार्थ का रूपान्तर मानता है । उनके अनुसार शरीर में जो जीन्स होते हैं, उनमें स्मृतियाँ विद्यमान रहती हैं । मरने के बाद शरीर नष्ट हो जाता है, पर जीन्स नहीं होते । उनका रूपान्तर होता है । राख बन जाते हैं । राख मिट्टी में मिल जाती है, मिट्टी से वही जीन्स किसी वृक्ष में चले जाते हैं, वृक्ष के पत्ते, फल या दानों में यही जीन्स पहुँच जाते हैं । फल कोई मनुष्य खा लेता है और जीन्स वीर्य में परिवर्तित हो जाते हैं फिर उससे किसी बालक का जन्म होता है । बालक के स्मृति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पटल (सेरीबोलम) में पहुँचकर वही जीन्स जब जाग्रत हो उठता है तो संयोगवश यदाकदा उसे वह घटनाएँ भी याद हो आती हैं, जो पूर्व जन्म के शरीर में थीं । इस तरह परामनो-विज्ञान की मान्यता यह है कि पुनर्जन्म जीन्स का होता है, आत्मा नामक कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है । इस तरह पुनर्जन्म के सिद्धान्त को पाश्चात्य अनुसंधान केन्द्रों ने काट दिया और उसके द्वारा आत्मा के अस्तित्व को मानने से इन्कार कर दिया ।

भारतीय दर्शन आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है । हमारा उपनिषद्कार कहता है—

अंगुष्ठमात्र : पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥
एतद्वै तत्
अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उश्वः ॥
एतद्वै तत्

—कठोपनिषद् द्वितीय अध्याय प्रथम बल्ली,१२, १३

अर्थात्—यह आत्मा ही वह परमेश्वर है, जिसे जान लेने पर मनुष्य किसी की निन्दा नहीं करता । वह परम पुरुष अंगुष्ठ मात्र देह गह्वर में स्थित होकर भूत भविष्यत् आदिकालों में सब पर शासन करता है । यही वह परमेश्वर है, जो आज भी है, कल भी रहेगा । वह अंगुष्ठ प्रमाण परिमाण वाला पुरुष निर्द्धूम ज्योति (अत्यन्त उज्ज्वल प्रकाश) के समान है एवं भूत, भविष्यत् सब कालों पर शासन करता है ।

यदि ऐसी विराट् शक्ति देह में स्थित है तो उसकी अनुभूति क्यों नहीं होती ? उसका कारण इसी उपनिषद् के प्रथम अध्याय की तीसरी बल्ली में इस प्रकार बताया है—

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि ॥

—तीसरी बल्ली ,१२

यस्त्वविज्ञानवान् वान्यभवत्यमनस्क सदाशुचिः ।
न रु तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥

—तीसरी बल्ली ,७

अर्थात्—परमात्मा सभी में आत्मा के रूप में देहधारियों में निवास करता हुआ भी अपनी माया से आच्छादित रहने के कारण प्रकट नहीं होता । केवल सूक्ष्मदर्शियों को ही सूक्ष्म बुद्धि द्वारा दर्शन देता है । अविवेकी बुद्धि और असंयत मन वाला अपवित्र हृदय मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमता रहता है और परमपद को कभी प्राप्त नहीं कर सकता ।

अब इस दृष्टि से जब विचार करते हैं और पुनर्जन्म की घटनाओं को विवादग्रस्त पाते हैं तो आत्मा के अस्तित्व के प्रमाण के लिये अन्य सूत्रों की खोज करनी पड़ी । इन सूत्रों को दो भागों में बाँटते हैं—(१) आत्मा की जानकारी सम्बन्धी वैज्ञानिकों की खोजें और उनके निष्कर्ष, (२) भूत और प्रेतों का अस्तित्व । इन दोनों स्थितियों के कुछ ऐसे तथ्य सामने आये हैं, जिनसे आत्मा के सम्बन्ध में कहे गये कठोपनिषद् के कथन नितान्त सत्य साबित होते हैं ।

इंग्लैण्ड की राजधानी लन्दन के प्रख्यात सेंट जेम्स अस्पताल के डॉक्टर डब्ल्यू.जे. किल्नर को एक बार आत्मा के अस्तित्व को जानने की तीव्र जिज्ञासा पैदा हुई यह जिज्ञासा एक आकस्मिक घटना के कारण हुई । एक दिन जब वे अस्पताल में रोगियों का परीक्षण कर रहे थे तो खुर्दबीन पर एक विशेष प्रकार का रंग जम गया । वह विशेष रासायनिक रंग था, जो इतना दुर्लभ था कि सेंट जेम्स तो दूर शायद इंग्लैण्ड की किसी भी प्रयोगशाला में उसका उपलब्ध होना कठिन था । वह रंग कहाँ से आया इस पर बहुत खोज की पर उस सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका ।

दूसरे दिन वे अपने एक रोगी के कपड़े उतरवाकर खुर्दबीन से उसके शरीर की जाँच कर रहे थे तो वह यह देखकर स्तब्ध रह गये कि उसी रासायनिक रंग की लहरें शीशे के सामने उड़ रही हैं । कपड़े बिल्कुल हटा देने पर उन्होंने पाया कि रोगी के छः-सात इन्च की परिधि में वही प्रकाश एक मण्डल बनाये हुए स्थित है । यह देखकर वे इतना डर गये कि उनकी अँगुलियाँ काँपने लगीं । उन्होंने बहुत जाँच की पर उस प्रकाश को शरीर की किसी अवस्था का परिणाम नहीं पाया । तभी एक और विचित्र घटना हुई । उन्होंने देखा जब यह प्रकाश कुछ तीव्र रहा, तब तक रोगी चेतना की सी स्थिति में रहा पर, जैसे ही प्रकाश मन्द पड़ना प्रारम्भ हुआ कि रोगी का शरीर भी शिथिल पड़ने लगा । डॉ. किल्नर बराबर रोगी पर दृष्टि रख रहे थे । वह मरणासन्न था, धीरे-धीरे वह प्रकाश न जाने कहाँ विलुप्त हो गया और इसके बाद जब उन्होंने उसकी नाड़ी परीक्षा की तो उसे पूर्ण रूप से मृत पाया । सारा शरीर ठण्डा पड़ चुका था और वहाँ किसी भी प्रकार का रासायनिक रंग शेष नहीं रह गया था ।

इस घटना की रिपोर्ट छपी तो सैकड़ों लोग आश्चर्य चकित रह गये । डॉ. किल्नर ने बाद में 'दि ह्यूमन एटमास्फियर' नामक पुस्तक लिखी । उसमें उन्होंने वर्तमान भौतिक विज्ञान को चुनौती देने वाले तथ्य प्रस्तुत किये हैं और यह बताया है कि पश्चिम की यह बड़ी भारी भूल है कि वह जीवन जैसी अमूल्य और वास्तविक वस्तु की खोज करने की अपेक्षा जड़ वस्तुओं के चक्कर में पड़ा अपना अहित कर रहा है । अमेरिका के विलियम मैक्डूगल का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने भी आत्मा के अस्तित्व को जानने के लिये प्रयोग प्रारम्भ कर दिये । उन्होंने रोगियों का वजन लेने के लिये एक ऐसा तराजू बनाया जो पलंग पर लेटे हुए रोगी का एक ग्राम से भी सैकड़ों अंश कम भार को भी तोल सके । एक बार एक मरणासन्न रोगी को उसमें लिटाकर वजन लिया । उसके फेफड़ों में कितनी साँस रहती है, उसका तौल पहले ले लिया । कपड़ों सहित पलंग का वजन भी तैयार था । रोगी को जो भी औषधि दी गई, उसका तौल तराजू की सुई बराबर बताती रहती थी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब तक रोगी जीवित रहा तब तक वह सुई बराबर एक स्थान पर टिकी रही, पर जिस क्षण उसके प्राण निकले सुई पीछे हटकर टिक गयी और जब अंक पढ़े गये तो यह देखा गया कि १ औंस (आधी छटाँक) वजन कम हो गया है । बाद में भी उन्होंने जितने भी मरणासन्न रोगियों पर यह प्रयोग किया, चौथाई औंस से लेकर डेढ़ औंस तक वजन कम पाया । उन्होंने इस सिद्धान्त की पुष्टि की कि शरीर में कोई अत्यन्त सूक्ष्म तत्व निश्चित रूप से है, वही जीवन का आधार है, उसकी तौल भी उन्होंने उपरोक्त प्रकार के परीक्षणों से प्राप्त की । लॉस एन्जिल्स के प्रोफेसर ट्वाहनिंग और कार्नल विश्वविद्यालय के डॉ. ओटोरान ने भी ऐसे प्रयोग किये । १९३६ में डॉ. रान ने अपने प्रयोगों के आधार पर लिखा कि इसमें सन्देह नहीं है कि प्रत्येक जीवित मनुष्य के चारों ओर कुछ रहस्यमय किरणों का आवरण रहता है, पर वे मृत्यु के उपरान्त लुप्त हो जाती हैं । विज्ञान जब तक इन अतिसूक्ष्म प्रकाश कणों को नहीं जान पाता, तब तक वह अधूरा और भ्रामक ही रहेगा, क्योंकि जीवन का आधार इन सूक्ष्म किरणों में सन्निहित है और उसके विकास एवं अनुभूति की प्रणाली भिन्न है ।

डॉ. गेट्स ने एक नई किरणों की खोज की है और उनसे आत्मा के अस्तित्व का पता लगाया है । इन किरणों का रंग कुछ कालापन लिये हुये लाल है, ये कुछ-कुछ बनफशई रंग की कही जा सकती हैं, पर इस रंग से इनका रंग कुछ गहरा होता है । 'एक्स रेज' जिस रंग की होती है यह भी उनसे कुछ-कुछ मिलती-जुलती सी है, किन्तु कई बातों में इनका 'एक्स रेज' से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं है, इनमें जो देदीप्यमान शक्ति रहती है, वह अंधेरे में नहीं दीख पड़ती उनके प्रकाश को मनुष्य आँख से नहीं देख सकता । किन्तु उन्होंने कमरे की दीवारों में 'रोडापसिन' नामक एक पदार्थ का लेप किया तो देखा कि इन किरणों के प्रभाव से उसका रंग बदल जाता है । इन किरणें में इतनी जबर्दस्त पारदर्शिता देखी गई कि वे हड्डी, धातु, लकड़ी और पत्थर को भी पार करके चमकने लगती है, यदि इन किरणों को दीवार में डाला जाय और बीच में कोई मनुष्य आ जाये तो उन्होंने देखा कि उसकी छाया स्पष्ट दिखाई देने लगती है । तात्पर्य यह है कि यह किरणें जीवित प्राणी के शरीर का भेद नहीं कर सकती हैं । यह प्रकाश किरणें डॉक्टर गेट्स ने तुरन्त मरे हुए जानवरों की आँखों से इसे प्राप्त किया है । उन्होंने जीवित चूहे को गिलास में डालकर इन किरणों का अध्ययन किया, पर सबसे ज्यादा आश्चर्यजनकउनकी उपलब्धि यह थी कि जब एक मरणासन्न चूहे को गिलास में डालकर यह किरणें फेंकी गईं तो दीवार पर उसकी छाया पड़ी जब तक चूहा जीवित रहा छाया बराबर बनी रही, पर जैसे ही चूहे के प्राण निकल गये, उसका शरीर भी इन किरणों के लिये पारदर्शी हो गया । ठीक उसी क्षण एक छाया नली के भीतर जिसमें चूहा रखा गया था निकली और मसाला भरी हुई दीवाल की तरफ जाकर कुछ दूर ऊपर लोप हो गई । परीक्षा के समय यह दृश्य दो और अध्यापक भी देखते रहे, उन्होंने इस छाया को दीवार पर ऊपर-नीचे जाते हुए अच्छी तरह देखा । अब गेट्स इस प्रयत्न में है कि यह पता लगाया जाय कि जब यह छाया शरीर से निकलकर कहाँ लोप हो जाती है, उस समय वह ज्ञान अवस्था में रहती है या नहीं । इस सम्बन्ध में यदि कुछ वैज्ञानिक हल निकल सका तो आत्मा के सूक्ष्म अस्तित्व की और अधिक पुष्टि की जा सकेगी । भूत-प्रेतों की लीलाएँ वास्तव में इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं ।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि चूहा जीवित अवस्था में पारदर्शी क्यों नहीं होता ? मृत्यु के उपरान्त ही क्यों होता है ? डॉ. गेट्स ने इसका उत्तर देने के लिये गैलवानो मीटर (विद्युत्मापक यंत्र) से किसी व्यक्ति के शरीर में संचालित विद्युत तरंगों की शक्ति को मापा और इसके बाद उन किरणों की शक्ति को । शारीरिक बिजली की शक्ति अधिक थी । अब गेट्स ने बताया कि जिस समय मनुष्य विचार करता है और उसकी नाड़ी और मज्जा-तंतु काम करते रहते हैं, तब तक शरीर में विद्युत प्रवाह बना रहता है । इस प्रवाह की शक्ति अधिक होने के कारण जब यह किरणें उनके पास पहुँचती हैं तो पीछे धकेल दी जाती हैं, पर जब प्राण विद्युत निकल जाती है तो उनके लिये कोई बाधा नहीं रह जाती । उन्होंने शरीर की इस विद्युत-शक्ति को ही आत्मा की प्रकाश-शक्ति माना है । इस तथ्य से भी बिल्कुल इन्कार नहीं किया जा सकता ।

आत्मा को तौलने और उसे विकिरण से सिद्ध करने की तरह ही उसके फोटो लेने के लिये भी प्रयत्न किये गये हैं । फ्रांस के डॉक्टर हेनरी बारादुक ने एक विशेष कैमरा बनवाया और मृत्यु की फोटो लेने की तैयारी की । संयोग से एक बार उनका लड़का बहुत तेजी से ज्वराक्रान्त हुआ । उसके बचने के कोई लक्षण दिखाई न दिये तो इस वैज्ञानिक ने परीक्षण करने की ही बात ठान ली । ऐसा ही प्रयोग उसने अपनी मरणासन्न पत्नी पर भी किया और एक प्रकार की प्रकाश-किरणों की पुष्टि की, पर उसके कठोर स्वभाव के कारण फ्रांसीसियों ने उसकी उपेक्षा कर दी और उसका सारा उत्साह वहीं ठण्डा पड़ गया । कैलीफोर्निया के दूसरे डॉ. एफ. एम. स्टॉ ने तो इस प्रकार का एक सार्वजनिक प्रदर्शन ही किया था, जिसमें अखबार के प्रतिनिधियों ने साधारण कैमरों से कुछ रहस्यमय किरणों के चित्र प्राप्त किये । सब वैज्ञानिकों ने यह माना कि मनुष्य शरीर में कोई चैतन्य तत्व, कुछ रहस्यमय किरणें, कोई विलक्षण तत्व और प्रकाश है अवश्य, पर उसका रहस्य वे नहीं जान पाये ।

आत्मसत्ता की तथ्यसम्मत प्रामाणिकता

शारीरिक बनावट की दृष्टि से सभी मनुष्य प्रायः एक जैसे होते हैं, किन्तु अन्तस् के स्तर में भारी अन्तर पाया जाता है । आन्ध्र हैदराबाद का एक बारह वर्षीय बालक ऐसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रांजल संस्कृत धाराप्रवाह से बोलता था, मानो वह उसे मातृभाषा के रूप में जन्मजात मिली है । इसी प्रकार कितने ही बालक बिना कारगर शिक्षा पाये ऐसे कला-कौशल का, बुद्धि चातुर्य का परिचय देते पाये गये हैं, जिससे प्रतीत होता है कि इन विभूतियों का अनुदान इन्हें किसी पिछले जन्म की कमाई से मिला है ।

अणिमा महिमा, लघिमा आदि सिद्धियों को प्राप्त करना तो योगाभ्यास का विषय है, पर कितनों में ही अनायास रूप से ऐसी विशेषताएँ देखी जाती हैं जिन्हें अद्‌भुत, अनुपम एवं आश्चर्यजनक कहा जा सके ।

इन दिनों वैज्ञानिक क्षेत्र में मानवीय अतीन्द्रिय क्षमताओं का प्रसंग चर्चा का विषय बना हुआ है । दूरसंचार, दूरदर्शन पूर्वाभास, स्वप्न संकेत, अदृश्य सहायक मानवीय विद्युत विचार संचार, स्वसम्मोहन, शरीर विद्युत, हिप्नोटिज्म प्रेत हलचल, पुनर्जन्म जैसे विषयों पर भारी खोज-बीन जारी है । ढूँढ़े गये प्रमाणों से इन सभी प्रसंगों पर अनेकानेक ऐसे घटनाक्रम मिलते चले जाते हैं, जिन्हें गम्भीर परीक्षण के उपरान्त यथार्थता के रूप में समझा भी गया है । उनहें उपहास में उड़ा देने की, अन्ध-विश्वास बताने की या झुठलाने की हिम्मत बड़े-बड़े तार्किकों एवं अनास्थावादियों की भी नहीं पड़ रही है । शरीर में भिन्न चेतना की शाश्वत् सत्ता के किया-कलापों को देखते हुए उन्हें मान्य शोध विषयों में सम्मिलित किया गया है ।

मनुष्य शरीर का अस्तित्व जलने के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता । उसका अस्तित्व किसी न किसी रूप में कहीं न कहीं बना अवश्य रहता है । इस सम्बन्ध में धार्मिक मान्यताएँ तो न्यूनाधिक मात्रा में मिलती-जुलती ही रही हैं, पर अब विज्ञान ने भी इस संदर्भ में अपनी हठधर्मिता छोड़ दी है कि शरीर मात्र चलता-फिरता पेड़-पौधा ही है जो दिल की धड़कन बन्द होते ही अपनी सत्ता की इतिश्री कर बैठता है । उपलब्ध प्रमाणों में दिवंगत आत्मा प्रेत-पितर के रूप में नित नये घटनाक्रम सामने आते रहे हैं, जिन्हें अन्धविश्वास या मन-गढ़न्त भर नहीं कहा जा सकता ।

बाइबिल में ईसा के बारे में लिखा है कि वे पूर्व जन्म में एलीसियस थे । इसके बाद वे ईसा के रूप में जन्मे । यह भी कहा जाता है कि वे फिर जन्म लेंगे और संसार का नये सिरे से कल्याण करेंगे ।

थियोसोफीकल सोसाइटी का जन्म ही इस आधार पर हुआ कि उसमें शामिल वैज्ञानिकों का प्लेन्चेट द्वारा मृतात्मा से सम्बन्ध हुआ और उसके माध्यम से ऐसी सूचनाएँ प्राप्त हुईं जिनकी प्रामाणिकता में कोई सन्देह न था । शोध के उपरान्त अनेक वैज्ञानिक तथ्यों ने मृतात्माओं के अस्तित्व को प्रमाणित कर दिखाया और उस संदर्भ में आगे गहरी खोजें करते रहकर उस मान्यता को प्रामाणिकता का जामा पहनाया ।

परामनोविज्ञान के घटना प्रसंगों के अन्तर्गत कई ऐसे प्रामाणिक प्रसंग ऐसे व्यक्तियों से संदर्भित मिलते हैं जिन्हें देख-पढ़कर उनकी विश्वसनीयता पर कोई संदेह नहीं रहता । कुछ स्वप्नों में मिली प्रेरणा से सम्बन्धित होते हैं तो कुछ अनायास मिली अदृश्य प्रेरणा के रूप में । कुछ पुनर्जन्म सम्बन्धी होते हैं तो कुछ पूर्वानुभूति के रूप में । अनेक व्यक्तियों को आने वाले घटना-क्रम, विभीषिका, दुर्योग या समष्टिगत विपत्ति का आभास ऐसे होने लगता है, मानो उनकी आँखों के सामने फिल्म चल रही हो । उस समय तो सब कुछ रहस्यमय आश्चर्यजनक लगता है, पर जब यह सत्य सिद्ध होता है तो फिर अविज्ञात के सम्बन्ध में कोई दुविधा मन में रह नहीं जाती ।

आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज में वहाँ के विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों ने मिलकर परामनोविज्ञान सम्बन्धी शोधों के लिए एक सोसाइटी बनाई है, जिसका उद्देश्य है अविज्ञात रहस्यों का मानवीय अवचेतन के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध होने न होने की घटनाओं की जाँच-पड़ताल करके निष्कर्ष निकालना । उसने इस प्रसंग में उपस्थित किये गये प्रयासों को झुठलाया नहीं है । साथ ही यह भी स्वीकार किया है कि इस संदर्भ में धैर्यपूर्वक लम्बे परीक्षण की आवश्यकता है ।

भारत में बनारस नगर में 'इण्डियन सोसाइटी फॉर साइकिक एण्ड यौगिक रिसर्च' है । इसके अन्वेषकों ने भी यह माना है कि उपलब्ध प्रमाण ऐसे नहीं हैं जिन्हें उपहास में उड़ाया जा सके । उनकी गम्भीरता अधिक अन्वेषण की माँग करती है ।

रूस में उत्रेखत्वस्की यूनीवर्सिटी ने परामनोविज्ञान के रहस्यवादी पक्ष को मान्यता दी है । उसने इस विषय पर १४ देशों की एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी भी बुलाई थी । नेल्या मिखाइलोवा नामक रहस्यवादी परामनोवैज्ञानिक इसी राष्ट्र की हैं व कई वैज्ञानिक इसका परीक्षण भी कर चुके हैं ।

ब्रिटेन के सर ई. ए. वेलिंग्टन पुरातन भाषाओं और लिपियों के विशेषज्ञ माने जाते हैं । उन्होंने अपने इस क्षेत्र में प्रवेश करने और सफलता प्राप्त करने के सम्बन्ध में एक स्वप्न संस्मरण लिखा है ।

एक रात वे सोये हुए थे कि उन्होंने सपना देखा कि कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में पुरातन विद्या का एक शोध विशेषज्ञ नियुक्त किया जाना है । उस प्रतियोगिता में उसे सम्मिलित हो जाना चाहिए । कोई शक्ति सफलता दिलाने में उसकी सहायता करेगी ।

प्रतियोगिता वस्तुतः अगले दिन होने ही वाली थी । वेलिंग्टन को उसमें स्थान पाने की उत्कण्ठा भी बहुत थी । सपने के आश्वासन में उनका उत्साह बढ़ा । नियत तिथि आई तो उन्होंने फिर एक सपना देखा जिसमें एक वयोवृद्ध उनके हाथ में परीक्षा के प्रश्न-पत्र थमा रहा है । साथ ही एक पुस्तिका में उनके उत्तर भी लिखे थे । सोते-सोते ही उन्होंने उन कागजों को कई बार पढ़ा और ऐसी मनः स्थिति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बना ली मानो उन्हें वह सब कुछ भली-भाँति याद हो गया है ।

दूसरे दिन परीक्षा हुई । उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब ठीक वही प्रश्न पत्र सामने आये तो उन्होंने सपने में देखे थे । आश्चर्य यह है कि उत्तर उन्हें याद थे, सो लिखने में तनिक भी कठिनाई नहीं हुई ।

पर्चे जाँचे गये । वे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए और विभागाध्यक्ष के रूप में नियुक्त हुए । उन्होंने अत्यन्त दुरूह समझी जाने वाली प्राचीन लिपियों का सफल अन्वेषण किया उनके प्रतिपादन को प्रामाणिक माना गया और कितने ही अविज्ञात रहस्यों का उद्घाटन हुआ ।

इन सफलताओं के सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि उन्हें लिपियों के रहस्य जानने में इतनी मेहनत नहीं करनी पड़ी जितनी कि समझी जाती है । उन्हें किसी अदृश्य सहायक ने जो उन विधाओं का पारंगत था, सहायता की और प्रतिपादन इतनी जल्दी सम्पन्न हो गये जिसकी कोई आशा ने करता था । जीवन भर वे पुरातत्व विधा पर ही अन्वेषण करते रहे व अपनी उपलब्धियों का श्रेय परोक्ष जगत में बैठी दैवी सत्ता को देते रहे ।

प्रख्यात फिल्म कलाकर रोमान रोवारी उस दिन एक छोटे होटल में ठहरे हुए थे । होटल के मालिक की मृत्यु के उपरान्त उसके लड़कों के बीच सम्पत्ति के बँटवारे का झगड़ा चल रहा था । पिता इस सम्बन्ध में मरने से पूर्व कोई वसीयत कर गये हैं क्या ? इसका उन लड़कों को पता न था । झगड़ा रोवारो के सामने भी एक प्रतिष्ठित अतिथि के नाते आया । उसमें कहा गया कि कोई उपाय हो तो झगड़ा सुलझाएँ ।

रोवारो इसी समस्या को अपने मस्तिष्क में लिए हुए सो गया । रात को उसे सपना आया कि वह वसीयत होने की आशा से होटल के तहखाने में लगी लोहे की अलमारी को खोलकर उसकी कुरेद-बीन कर रहा है, इतने में रद्दी कागजों के ढेर के बीच उसे वसीयत मिल गई । खुशी का ठिकाना न रहा कि वह झगड़े को सुलझाने में कामयाब हुआ । इतने में उसकी नींद खुल गई । सवेरा होने में देर न थी । उठकर वह नित्य कर्म से निपटा और लड़कों को बुलाया । सपने की बात कही । किसी को विश्वास तो न हुआ फिर भी देखा तो तहखाने में सचमुच एक लोहे की अलमारी पायी गई । उसे ढूँढ़ने गया तो अन्य कागजों के बीच फँसी हुई वह वसीयत मिल गई ।

उस आधार पर बँटवारा हो गया और उस सपने ने एक बड़ी समस्या सुलझा दी ।

पुलित्जर पुरस्कार विजेता अमेरिका निवासी मैकिनेल केन्टर ने अपनी पुस्तक में उस घटना का सुविस्तृत विवरण लिखा है जिसमें वाशिंगटन के एक छोटे होटल में किसी प्रेतात्मा के साथ उन्हें झगड़ना पड़ा था । लेखक के कथनानुसार कम्बल ओढ़ कर सोया ही था कि पैताने की ओर से कोई उसका कम्बल खींचने लगा । उसने आवाज दी पर कोई बोला नहीं । सोचा चूहा आदि कोई खटपट कर रहा होगा । उसने कम्बल कसकर पकड़ लिया तो भी वह खिंचता चला गया । आधा शरीर नंगा हो गया । इस पर वह उठ बैठा और चारों ओर कारण तलाश करने लगा । उसे दीवार से सटा हुआ एक व्यक्ति दिखाई दिया । साथ ही कमरे में अविज्ञात रोशनी एवं एक विचित्र गंध फैलने लगी । भूत हँसा और फिर लड़ने, धमकाने की मुद्रा में सामने आ गया । अन्ततः मैकिनेल डरकर बाहर आ गया और दरवाजे से बाहर बैठकर रात गुजारी । फिर भी उसे कमरे में मनुष्यों की बातचीत सुनाई और हलचल दिखाई देती रही ।

फ्रेडरिक मायर्स ने मनुष्य की रहस्यमय चेतना के सम्बन्ध में बहुत खोजा और बहुत लिखा है । वे उस सत्ता को 'सबलिमिनल सेल्फ' कहते थे ।

मायर्स ने संसार के विभिन्न क्षेत्रों में दौरे किये और दुर्घटनाओं को खोजा जो मनुष्य की सामान्य बुद्धि एवं क्षमता से परे थीं । बारह वर्षों के प्रयत्न से उसने प्रायः ४०० ऐसी घटनाएँ खोजीं जिनका उत्तर सामान्य बुद्धि से नहीं दिया जा सकता और न कोई तार्किक उनकी यथार्थता पर सहज विश्वास कर सकता है, पर वे सभी सत्य थीं । प्रमाणों पर आधारित थीं ।

मायर्स ने अपनी खोजों को वैज्ञानिकों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए परीक्षा की कसौटी पर कसा जाना पसंद किया इस उद्देश्य के लिए उसने 'साइकिक रिसर्च सोसाइटी' का गठन किया । उसमें तार्किक और वैज्ञानिक प्रत्यक्षवादी सम्मिलित किये । इस जाँच-पड़ताल द्वारा यह पाया गया व प्रमाणित किया गया कि पूर्वाभास और दूरदर्शन के कितने ही अनुभव सही भी होते देखे गये हैं । उन्होंने प्रेतात्माओं की हलचल को भी प्रामाणिक सिद्ध किया । विवाद रहते हुए भी उनके प्रतिपादनों में से अधिकांश ऐसे थे जिनका खण्डन किसी भी आधार पर नहीं किया जा सकता था ।

दार्शनिक सुकरात अपने समय के प्रख्यात मनीषियों में से एक थे । उन्होंने स्वयं तो अपनी जीवनी नहीं लिखी, पर विद्वान प्लेटो, जेनोफेन प्लुटार्क आदि के ग्रन्थों से सुकरात की जीवन गाथा के साथ जुड़े हुए कितने ही प्रामाणिक संस्मरण मिलते हैं ।

विद्रोह फैलाने के अपराध में अदालत से सुकरात को मृत्यु दण्ड मिला । अपील में उनके छूट जाने के लिए पर्याप्त सामग्री एकत्र कर ली गई थी, पर डेमन ने कहा, "यह मृत्यु तुम्हारे लिए श्रेयस्कर है । इससे इन्कार मत करो ।" सुकरात ने अपील नहीं करने दी और वे विष का प्याला पीकर खुशी-खुशी मृत्यु की गोद में चले गये । कोई-कोई डेमन को उनका छाया पुरुष मानते थे, कोई अदृश्य आत्मा मानते थे ।

इंग्लैण्ड के प्रख्यात लेखक लार्ड मिण्ट ने अपनी पुस्तक 'दि थर्ड किलर' में अपने भारतीय मित्र सरदार के.

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एस. पणिक्कर के सम्बन्ध में लिखा है कि उनका विश्वास था कि भारत में सन् २००० के बाद कम्युनिज्म आ जायेगा । उनका नेतृत्व करने के लिए मुझे उस समय परिपक्व युग चाहिए । इसके लिए यह आवश्यक है कि मुझे इन्हीं दिनों मर जाना चाहिए ताकि नये जन्म में उस नेतृत्व को सम्भालने योग्य बन सकूँ । "उनकी इच्छा पूरी हुई और वे अपने इच्छित समय पर साधारण मौत मर भी गये । सन् २००० आने वाला है । वह युग वैसा होगा या नहीं एवं उनका पुनर्जन्म होगा या नहीं, यह एक प्रश्न चिह्न है ।"

आत्मा की अमरता का सिद्धान्त यदि सही सिद्ध होता है और उसके पुनर्जन्म होने से लेकर पूर्व कृत कर्मों या अभ्यासों का सिलसिला क्रमबद्ध बैठता है तो इसके दूरगामी परिणाम होंगे । भविष्य को उज्ज्वल बनाने की चिन्ता एवं इच्छा हर विचारशील में पाई जाती है, पर यह निश्चित नहीं हो पाता कि भले-बुरे कर्मों के प्रतिफल यदि अभी नहीं मिलते हैं तो भविष्य में कभी मिल सकते हैं क्या ?

शरीर मरण के बाद आत्मा का अस्तित्व समाप्त हो जाने की बात नास्तिक स्तर के प्रत्यक्षवादियों द्वारा कही जाती है, पर उसका प्रमाणित उत्तर उनसे नहीं बन पाता जो आत्मा को अमर मानकर उसका साथ कृत्यों तथा आदतों की शृंखला साथ आने की बात से अन्यान्यों को भी सहमत करना चाहते हैं । प्रत्यक्षवाद ही प्रत्यक्षवाद का जवाब है । अब परिस्थितियाँ ऐसी बनती जा रही हैं । मुनियों ने आत्मा के चिरस्थायी अस्तित्व को सिद्ध करके अगले जन्मों में क्रिया-कलापों की परिणत सिद्ध की जा सके ।

यह सिद्ध होना मनुष्य के दृष्टिकोण को व्यापक रूप से निरत रहने से भविष्य में सत्परिणाम मिलने का विश्वास सुदृढ एवं सुस्थिर हो सकेगा ।

आत्मा का अस्तित्व इन्कारा नहीं जा सकता

भारतीय तथा विश्व के अन्य सभी धर्मों में पुनर्जन्म की मान्यता है । यह दूसरी बात है कि मरणोत्तर जीवन कितना लम्बा होता है और उस अवधि में किस प्रकार निर्वाह करना पड़ता है । मतभेद इन्हीं बातों पर है । पुनर्जन्म को अस्वीकारा किसी ने भी नहीं, भले ही उसके लिए प्रलयकाल जितनी लम्बी प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया हो । धार्मिकों की तरह पुरातन दर्शनशास्त्र भी पुनर्जन्म के समर्थक रहे हैं । उन चार्वाक जैसों की संख्या नगण्य है, जिनमें आत्मा के अस्तित्व से इन्कार करने के साथ-साथ एक ही साँस में पुनर्जन्म की मान्यता का भी सफाया कर दिया ।

कठिनाई आधुनिक वैज्ञानिकों ने उत्पन्न की है, जिन्होंने पदार्थ को ही सब कुछ माना और आत्मा के अस्तित्व से इन्कार कर दिया । जब आत्मा ही नहीं तो पुनर्जन्म किसका ? आस्तिकता के सभी सिद्धान्त आत्मा की अमरता और ईश्वर की न्याय व्यवस्था के साथ जुड़ते हैं । यदि इन दो तथ्यों को अमान्य ठहरा दिया जाय तो फिर चेतना की स्वतन्त्र सत्ता की समाप्ति हो जाती है और संसार मात्र रासायनिक पदार्थों का ऐसा खिलौना भर रह जाता है । जो अणु कम्पनों की हलचलों से प्रभावित होकर एक निरुद्देश्य उछल-कूद भर करता रहता है ।

यह प्रसंग दार्शनिक विवाद भर का रहा होता तो उसे बुद्धिमानी की मानसिक कसरत के लिए छोड़ा भी जा सकता था, किन्तु कठिनाई यह है कि आस्तिकता की अस्वीकृति के बाद नैतिक क्षेत्र में अराजकता फैल जाती है । शासकीय नियन्त्रण इतना समर्थ नहीं हो सकता कि वह अवांछनीय गतिविधियों और दुष्प्रवृत्तियों को रोक सके भी । उन्हें न अपनाने के लिए सर्वसाधारण को सहमत कर सके । ईश्वरीय सत्ता, मरणोत्तर जीवन, कर्म जैसी आस्थाएँ मनुष्य को पाप से डरने और पुण्य के प्रति श्रद्धालु होने की पृष्ठभूमि बनाती हैं । इस मान्यता के अभाव में मनुष्य नीति-अनीति का विचार क्यों करेगा ? उसमें इतनी दूरदर्शिता कहाँ है कि अनीति अपनाने से होने वाली हानियों की भावी कल्पनाओं को कर सके और उस भय से आत्म-नियन्त्रण करने की बात सोच सके । आमतौर से प्रत्यक्ष लाभ को ही सब कुछ समझा जाता है । अनीति अपनाने में तात्कालिक लाभ है, ये सभी जानते हैं । भविष्य के डर से ही कुछ अंकुश रह पाता है । यदि इस सन्दर्भ में बची हुई आस्थाओं को समाप्त कर दिया जाय तो फिर नीति धर्म की चर्चा चलते रहने पर भी लोग उस अनुशासन को सच्चे मन से स्वीकार न करेंगे और मर्यादाओं का बाँध टूटता चला जायेगा । उच्छृंखलता पनपेगी और उपयोगी नीति-नियमों को नष्ट-भ्रष्ट करके रख देगी । ऐसी दशा में मनुष्य की समर्थता, सम्पन्नता एवं बुद्धिमत्ता का उपयोग निकृष्ट स्वार्थों की पूर्ति के निमित्त ही होता चला जायेगा । भावना क्षेत्र की इस अराजकता का दुष्परिणाम इतना भयंकर होगा जिसकी आज तक कल्पना भी नहीं की जा सकती । जब आस्तिकता की मान्यताएँ किसी रूप में बनी रहने पर भी इतना अनाचार पनपता है तो उस अनुशासन के उठ जाने पर तो मनुष्य के मत्स्य न्याय का दर्शन ही चल पड़ेगा फिर संयम सदाचार की, उपकार परमार्थ की न तो कोई आवश्यकता प्रतीत होगी न उपयोगिता । ऐसे समाज में प्रगति की आशाएँ समाप्त ही समझनी चाहिए । अनाचार का एकमात्र परिणाम दुर्गति ही हो सकता है । इस प्रकार नास्तिकता की अराजकता का दार्शनिक प्रतिपादन किसी प्रकार ओछे-सीधे तर्कों द्वारा कर भी दिया जाय तो भी परिणति को ध्यान में रखने पर यही उचित प्रतीत होता है कि इस भावनात्मक अनुशासन को स्थिर रहने देने में ही भलाई है ।

यह तो गुण-अवगुण की परिणाम प्रतिक्रिया की बात हुई । अब तथ्यों की दुनिया में प्रवेश करने और उनका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने पर भी आस्तिकता के समर्थन में ऐसी सच्चाइयाँ सामने आ खड़ी होती हैं जिससे इन्कार करना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है । परोक्ष को यदि प्रत्यक्ष के बिना मान्यता नहीं मिल सकती तो ऐसे प्रमाण भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कम नहीं हैं जो बताते हैं कि आत्मा की मरण के साथ ही समाप्ति की जो बात वैज्ञानिक क्षेत्रों में में कही जाती है, वह सच नहीं है ।

पुनर्जन्म के प्रत्यक्ष प्रमाण इतने अधिक हैं कि उन्हें हर कसौटी पर कसा और सही पाया जा सकता है । कितने ही बालक अपने पूर्व जन्म का विवरण बताते पाये गये हैं । जाँचने पर यह पाया गया है कि बच्चे को वैसी धूर्तता किसी ने सिखाई नहीं है, वरन् उसने सहज स्वभाव से ही अपनी पूर्व स्मृति का परिचय दिया है । यह कोई कल्पना तो नहीं है उसकी जाँच-पड़ताल इन घटनाक्रमों में इस प्रकार की जाती रही है कि यदि कहीं कुछ छद्म हो तो उसका पर्दाफाश होने में देर न लगे । पुरानी ऐसी घटनाएँ जो मात्र सम्बद्ध व्यक्तियों की जानकारी से ही हो सकती थीं । इन बालकों द्वारा बताया जाना, स्थानों, वस्तुओं तथा घटनाओं का वर्णन करना यह बताता है कि इसमें कल्पना या छद्म नहीं तथ्य ही प्रत्यक्ष है ।

पुनर्जन्म के विवरण भारतवर्ष में आये दिन उपलब्ध होते रहते हैं । यहाँ उन पर आश्चर्य भी नहीं होता, पर ईसाई, मुसलमान प्रधान देशों के लिए तो यह अतीवआश्चर्य जनक है, क्योंकि उनकी महाप्रलय के बाद ही जन्म होने की मान्यता है । यदि मध्य में कोई जन्म लेता है तो उससे उनके पूर्वाग्रहों को आघात पहुँचता है । इस प्रकार के प्रमाण उन वैज्ञानिकों के लिए भी एक चुनौती हैं जो मनुष्य को एक चलता-फिरता पौधा मानते हैं और मरण के साथ ही उसकी सत्ता समाप्त हो जाने की बात कहते हैं । यदि आत्मा का, चेतना का, कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है और मरण के बाद ही उसका अन्त हो जाता है तो पुनर्जन्म कैसे सम्भव होगा ? यदि पुनर्जन्म सिद्ध होता है तो आत्मा का अस्तित्व सिद्ध हो जाता और नास्तिकता की आधी जड़ कट जाती है । फिर मात्र कर्मफल मिलने न मिलने की बात शेष रह जाती है सो उसके लिए उच्चस्तरीय मनोविज्ञान द्वारा वे तथ्य ही समर्थन बन जाते हैं जिनमें छद्म, दुराव, अन्तर्द्वन्द्व दुहरे व्यक्तित्व, अनाचार, अपराध दुश्चिन्तन आदि के जाल में फँसे रहने वालों को अनेकानेक शारीरिक, मानसिक अधि-व्याधियों में फँस जाने और निकृष्ट स्वभाव आचरण के कारण व्यावहारिक जीवन में पग-पग पर ठोकरें खाने और कष्ट सहने की बात कही गई है । कर्म फल में कुछ तो शासकीय और सामान्य व्यवस्था भी सहायक सिद्ध होती है ।

मरणोत्तर जीवन की पुष्टि आस्तिकता का आधा पक्ष समर्थन कर देती है । उसके बाद ईश्वर की सिद्धि एवं कर्म व्यवस्था की बात कुछ अधिक कठिन नहीं रह जाती । कठिनाई तो तब पड़ती, जब भौतिकवाद का वह प्रतिपादन सही सिद्ध होता जिससे पदार्थ को ही सब कुछ माना गया है । उसकी रासायनिक हलचलों को प्राणियों की उत्पत्ति और समाप्ति का कारण कहा गया है । ऐसी नास्तिकता यदि सही है तो फिर पुनर्जन्म की घटनाओं का कोई अस्तित्व दृष्टिगोचर नहीं होना चाहिए । यदि होता है तो उस प्रतिपादन को अमान्य ठहराना होगा जिससे चेतना का, आत्मा का अस्तित्व अस्वीकारा गया है ।

विश्व विख्यात वैज्ञानिक डॉ. इयानस्टीवेंसन ने जब आनुवंशिकता-विषयक प्राप्त समस्त जानकारियों में व्यक्तित्व को सर्वांग निर्माण में अपूर्ण पाया तो पुनर्जन्म में उनकी रुचि बढ़ी । अभी तक उन्होंने 'दि साइकियाट्रिक इक्जामिनेशन' १९६९ में और 'दि डायागोनिस्टिक इन्टरव्यू' (१९७०) में नामक पुस्तकें प्रकाशित की हैं । डॉ. स्टीवेंसन की लगन व प्रमाणों की खोज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रभावित होकर वर्जीनिया विश्वविद्यालय में उन्हें अपने यहाँ मनोविज्ञान का प्रोफेसर नियुक्त किया । इस बीच उन्होंने विश्व के विभिन्न राष्ट्रों से जानकारियाँ एकत्र कर अपने कार्य क्षेत्र को इतना विस्तृत किया कि क्वीरोंम्स के आविष्कारक प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्व. डा. चेस्टर कार्लसन उनके प्रमुख समर्थक बन गये थे । उनके निष्ठापूर्ण प्रश्नों एवं एकत्रित प्रमाणों की सत्यता से प्रभावित होकर विश्व वैज्ञानिकों की संस्था 'द अमेरिकन एसोसिएशन फॉर द एडवांस मेन्ट ऑफ साइन्स' ने अमेरिकन परामनोवैज्ञानिक संस्था को अपने साथ सम्बद्ध कर लिया ।

जार्जवाशिंगटन विश्व-विद्यालय के परामनोविज्ञान विभाग के डॉ. गार्डनर मर्फी की मान्यता है कि आज तक विश्व में डॉ. स्टीवेंसन के समान पुनर्जन्म के सम्बन्ध में कोई अन्य वैज्ञानिक नहीं है । डॉ. स्टीवेंसन के प्रशंसकों में परामनोविज्ञान के ही वैज्ञानिक डॉ. स्टाकर्ड, डा. स्मीडलर, डॉ. रिप्ले आदि हैं ।

पुनर्जन्म की बढ़ती मान्यताओं से प्रभावित होकर ब्रिटेन के दैनिक अखबार 'डेली एक्सप्रेस' ने कुछ वर्षों पूर्व अपने पाठकों से जिन्हें उनके पूर्व जन्म की स्मृतियाँ हों सप्रमाण भेजने का निवेदन किया था । इस निवेदन का परिणाम यह हुआ कि मात्र ब्रिटेन से ही एक हजार से अधिक घटनाओं का संकलन हो गया । उनमें कुछ प्रमुख घटनाएँ ये हैं—

डेरिक सेन्ट जूलियन-ब्राउन जिन्हें चित्रकारी का विशेष शौक था । इनकी अपनी कलाकृतियों में एक ऐसा लहरदार जीना विशेष प्रमुख है जिसके एक किनारे में एक युवती खड़ी दरवाजे को खटखटाती है तथा जीने के मध्य एक युवक की लाश पड़ी है । श्री ब्राउन का कहना है कि वह मृतक लाश मेरी ही है । मेरा कभी एक नाम यंग्स मैक्रकलाम था और तब मैं स्काटलैण्ड में १४७२ में पैदा हुआ था । १४९४ ई. में वह इटली युद्ध करने गया था ।

ओलिवर बेलर ने अपने पूर्वजन्म के संस्मरणों के सम्बन्ध में 'डेली एक्सप्रेस' के सम्पादक को लिखा कि पूर्वजन्म में वह रेलवे विभाग में एक मजदूर के रूप में कार्य करते थे । उसका कार्य स्थल मिडहर्स्ट था । ७० वर्ष की उम्र में उसकी मृत्यु हुई थी ओलिवर बेलर ने तत्कालीन अपने विभागीय और गैर विभागीय लोगों के सम्बन्ध में भी बहुत-सी जानकारी दीं । 'डेली एक्सप्रेस' के सम्पादक ने उक्त कथन की निष्पक्ष जाँच हेतु मिडहर्स्ट नगरपालिका और रेलवे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रेलवे विभाग के कागजातों को देखने पर श्री ओलिवर बेलर द्वारा दी गई समस्त जानकारी सत्य पायीं ।

एडवर्ड रियाल ने अपने पूर्वजन्म के संस्मरण में लिखा कि उसने १६८५ ई. में सेजमूर की प्रसिद्ध लड़ाई में एक सैनिक के रूप में भाग लिया था । उस समय उनकी उम्र ४० वर्ष की थी । इस लड़ाई में वह मारा गया था और अपने पीछे पत्नी के साथ दो लड़के छोड़ गया था । उस समय उनका नाम 'जान फलेक्चर' था । सरकारी कागजात का मिलान करने पर उपरोक्त कथन बिलकुल सत्य पाया गया ।

कर्नल लेकने जिनका पूर्वजन्म में कोई विश्वास न था । १९३९ ई. में जब उन्हें रंगरूट में भर्ती करने के सिलसिले में बंगलौर भेजा गया । वहाँ पहुँचते ही उन्हें स्पष्ट स्मरण हो गया जैसे कल की बीती बात हो कि वह कभी एक अँग्रेज सैनिक थे और सुल्तान टीपू की सेनाओं से युद्ध किया था । युद्ध में वह बन्दी बना लिये गए थे । बाद में टीपू के सैनिकों ने उन्हें धक्का दे-देकर मार डाला था ।

एक बार सम्मोहनावस्था में श्रीग्लेन फोर्ड १८वीं सदी की फ्रेंच बोल रहे थे । इस समय जबकि वह आजकल की फ्रेंच भी नहीं जानते । इसी प्रकार उन्होंने सम्मोहनावस्था में ही बहुत ही सुन्दर पियानो बजाया था, जबकि व्यक्तिगत जीवन में पियानो बजाना उन्हें नहीं आता । इस सम्बन्ध में श्री फोर्ड ने बतलाया कि १९वीं सदी में वह पियानो शिक्षक थे, जिसके संस्कार उनके अचेतन मस्तिष्क पर पड़े हुए हैं और सम्मोहनावस्था में वह प्रकट होते हैं । पूर्व जीवन में वह जब पियानो शिक्षक थे तो क्षय रोग के कारण उनकी मृत्यु हुई थी । उन्होंने उस स्थान का नाम भी बताया जहाँ उन्हें दफनाया गया था । खोज करने पर वह स्थान और बातें सत्य पायी गईं ।

अनेक व्यक्तियों ने विभिन्न क्षेत्रों में अल्प आयु में अपनी रुचि के अनुकूल दृढ़ विश्वास के साथ अपनी क्षमताओं को विकसित किया । १६ वर्ष की आयु में जगत्गुरु शंकराचार्य सभी शास्त्रों के ज्ञाता हुए । १४ वर्ष की अवस्था में रबीन्द्रनाथ ठाकुर ने शेक्सपीअर के नाटक मेकबेथ को बंगला भाषा में अनुदित कर दिखाया और बंगला नाटककार हरिश्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपना प्रसिद्ध नाटक 'अबुल हसन' १४ वर्ष की अवस्था में ही लिखा । अँग्रेजी साहित्य की एक और बंगला कवयित्री तारादत्त ने भी १८ साल में महान् ख्याति अर्जित की । सन्त ज्ञानदेव ने १४ वर्ष की अवस्था में भगवत गीता पर मराठी छन्दों में ज्ञानेश्वरी टीका लिखी । भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र ने अपनी ७ वर्ष की आयु में गूढ़ एवं रहस्यमय दोहे लिखे और १३ वर्ष की आयु में ही श्रीमती सरोजिनी नायडू ने १३०० पंक्तियों की एक अँग्रेजी कविता लिखकर सम्पूर्ण अँग्रेजी सभ्यता को एक विशाल चुनौती दी है ।

एक घटना जर्मनी की है । छह वर्षीय बालिका 'लोना वेट फोर्ड' को विश्व की पाँच प्रसिद्ध भाषाओं जर्मन, फ्रेंच, अँग्रेजी, हिन्दी और जापानी की जानकारी है । वह धारा-प्रवाह से इन भाषाओं को बोल सकती है । इतनी कम आयु में इन भाषाओं का आना स्वयं में एक आश्चर्य है । इसके लिए उक्त बालिका को किसी प्रकार का प्रशिक्षण नहीं मिला था, फिर भी उसे उन भाषाओं के बोलने व लिखने पर अधिकार है । ऐसा विश्वास किया जाता है कि जन्म-जात प्राप्त यह प्रतिभा पूर्वजन्मों के संस्कारों का प्रतिफल है, जो इस जन्म में साकार हो उठी है ।

वैचारिक हठवादिता का जोर घटने से जो चीजें धर्मास्था या अन्धविश्वास का ही विषय न रहकर वैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में आती जा रही हैं, उनमें से एक है—पुनर्जन्म । छोटी-छोटी प्रायोगशालाओं को ही तथ्य की सत्यता का मापदण्ड मान लेने वाले वैज्ञानिक अब इस दिशा में सकारात्मक चिन्तन कर रहे हैं ।

अमेरिका के वर्जीनिया विश्वविद्यालय के परामनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष डॉ. इयन स्टिवेन्सन पिछले ३० वर्षों से इसी क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं । विगत दिनों वे भारत आये थे और उन्होंने बताया कि विस्तृत सर्वेक्षण से संसार के कुछ ऐसे भौगोलिक क्षेत्रों का पता चला है, जहाँ पूर्वजन्म की स्मृतियों वाले बच्चे अपेक्षाकृत अधिक संख्या में जन्म लेते हैं । ये क्षेत्र हैं—श्रीलंका, उत्तर भारत, बर्मा, थायलैंड, तुर्की इन्डोनेशिया, उत्तर पश्चिम अमेरिका । ऐसा क्यों है ? यह बता पाना कठिन है ।

शरीर में उत्पत्ति शरीर की ही हो सकती है, किन्तु जीवात्मा शरीर नहीं है । शरीर से अलग वह एक चेतन अभौतिक पदार्थ है । शरीर मात्र कर्तत्व, भोक्तृत्व और ज्ञातृत्व लक्षणों के प्रकाश का उपकरण है । माता या पिता के शरीर में पुत्र के जीवात्मा की उत्पत्ति मानना किसी भी प्रकार उचित नहीं है, क्योंकि एक तो सन्तान अपना स्वयं का व्यक्तित्व लेकर जन्मती है । उसमें बहुत-से स्वभाव माता-पिता से मिलते-जुलते हैं, परन्तु सम्पूर्ण नहीं । अतः जीवात्मा का आरम्भ इस जीवन से नहीं होता अपितु इससे पूर्व की उसकी विद्यमानता सिद्ध हो जाती है । दूसरे एक ही माता-पिता के दो बच्चों का मानसिक, वैज्ञानिक और शारीरिक विकास भिन्न होता है । वह सब विकास के एक ही तल पर नहीं होते ।

इस प्रकार प्रत्येक बच्चा अपने व्यक्तित्व को आरम्भ से ही प्रकाशित कर देता है । एक ही परिस्थिति में पलते हुए भी उनका विकास भिन्न-भिन्न लाइनों पर होता है और आगे चलकर यह भिन्नता और स्पष्ट हो जाती है ।

पीपल और बरगद के छोटे-छोटे बीज अलग-अलग तो हैं, पर उनमें बहुत बड़ा भेद नहीं है । खेत की भूमि, एक-सी, जल-ऋतु एक-सी होने पर भी एक पीपल का वृक्ष व एक बरगद का विशाल वृक्ष बन जाता है, जिनमें बहुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्तर है । भिन्नता उन दोनों के मूल में थी । इस भिन्नता को जन्म के पश्चात् तलाश करना भूल है ।

अत: शारीरिक जीवन का आरम्भ जीवात्मा का आरम्भ नहीं है ।

क्या हम सचमुच ही मर जायेंगे ?

'दि अदरवर्ल्ड' 'जर्नीज आउट ऑफ दि बॉडी' आदि ग्रन्थों में इस प्रकार की अनेक घटनाओं का वर्णन है, जिसमें आत्माओं ने अपने शरीर को छोड़कर सूक्ष्म शरीर के सहारे बहुत कुछ देखा और बहुत कुछ किया है । इन घटनाओं से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि अशरीरी आत्माओं का किन्हीं दूसरों के शरीर में प्रवेश करके उनसे कुछ विशेष कार्य करा लेना सम्भव है । इसी प्रकार यह भी सम्भव है कि सूक्ष्म शरीर स्वयं इतना परिपुष्ट हो जाय कि शरीर की तरह स्वयं ही अपने क्रिया-कलाप का परिचय दे सके ।

अरविन्द आश्रम की संचालिका माता जी के बारे में कहा जाता है कि वे अपने बाल्यकाल में देह से आत्मा को बाहर निकाल कर सूक्ष्म शरीर से दूर-दूर की यात्राएँ करती थीं ।

परामनोविज्ञानवेत्ता प्रो. मुलडोन ने अपने ग्रन्थ 'दि प्रोजेक्शन ऑफ एस्टेल बॉडी' में परकाया प्रवेश के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि एक रजत तन्तु से आत्मा अपने स्थूल शरीर से सम्बन्ध बनाये रखकर भी अन्यत्र किस प्रकार जा सकती है और क्या कर सकती है?

मूर्द्धन्य मनोविज्ञानी कार्ल जुङ्ग ने अपने निजी मरणोत्तर जीवन का एक वृत्तान्त स्व-लिखित 'मेमोरीज ड्रीम्स रिफ्लेक्शस' में लिखा है— सन् १९४४ में उन्हें भयानक दिल का दौरा पड़ा । डॉक्टर उन्हें मरणासन्न स्थिति में अनुभव कर रहे थे और ऑक्सीजन तथा कपूर के इंजेक्शनों के सहारे बचाने का प्रयत्न कर रहे थे । इसी समय जुङ्ग ने अनुभव किया कि वे हजारों मील ऊपर उड़ गये और अधर में लटके हुए हैं । इतने हलके हैं कि किसी भी दिशा में इच्छानुसार जा सकते हैं । ऊपर से ही मैंने येरुशलम नगर का दृश्य तथा और भी बहुत-सी चीजें देखीं । उन्हें लगा वे अब पहले की अपेक्षा बहुत बदल गये हैं । बहुत देर इसी स्थिति में रहने के बाद उन्हें अपने पुराने शरीर में लौटना पड़ा और शरीरगत जीवन पुन: प्रारम्भ हो गया । जुङ्ग ने लिखा है—"मरणोत्तर जीवन की इस अलौकिक अनुभूति ने मेरे समस्त संशय समाप्त कर दिये हैं और यह समझा दिया है कि मरने के बाद क्या होता है ।"

हमारे शरीर का प्रत्येक भाग कोशिकाओं से बना है । एक इन्च जगह में ६ हजार कोशिकाएँ समा जाती हैं । प्रत्येक कोशिका के भीतर प्रोटोप्लाज्म नामक पतला चिकना पदार्थ भरा रहता है । यह प्रोटोप्लाज्मा वायु खींचता व कार्बन (दूषित वायु) बाहर फेंकता है । इस तरह हमारे शरीर के लाखों-करोड़ों प्रोटोप्लाज्म हमारी साँस के साथ साँस लेते हैं । प्रोटोप्लाज्म में एक 'न्यूक्लियस' होता है । वैज्ञानिक उसे ही जीवन का आधार मानते हैं । नई कोशिकाएँ बनाने की उसी में क्षमता होती है । जब न्यूक्लियस निर्बल होने लगता है, तो प्रोटोप्लाज्म भी सूखने लगता है और एक दिन प्रोटोप्लाज्म से मूल चेतना गायब हो जाती है । वह कहाँ चली जाती है, यह अभी वैज्ञानिक नहीं समझ सके हैं ।

वीर्य का प्रत्येक 'सेल' पिता के और माता की प्रत्येक डिम्ब कोश (ओवम) माता के सभी गुणों को धारण किये रहती है । सूक्ष्म रोगों तक का वीर्य के प्रत्येक 'सेल' में प्रभाव होता है । 'सेल्स' के 'नाभिक' में अचेतन के समस्त भावों का प्रभाव रहता है । यानी व्यक्ति के समस्त संस्कारों की छाप प्रत्येक सेल में होती है ।

संस्कारों के इतने सूक्ष्म 'सेल्स' में भी पूर्णत: विद्यमान होने और उनका एक शरीर से दूसरे शरीर में सम्प्रेषणा सम्भव होने का यह सिद्धान्त स्पष्टत: पुनर्जन्म के सिद्धान्त की भी युक्तियुक्तता प्रतिपादित करता है । जिस तरह वीर्य के 'सेल' के साथ सूक्ष्म संस्कार जाते हैं, उसी तरह जीवात्मा के साथ भी वे बने रहते हैं और पुराने शरीर से नये शरीर में जाते हैं ।

आधुनिक वैज्ञानिकों की मान्यता है कि सम्भवत: मृत्यु के समय शरीरस्थ 'प्रोटोप्लाज्म' शरीर से पृथक् हो मिट्टी-राख आदि में मिल जाते हैं और वहाँ से वनस्पतियों, फसलों आदि में पहुँच जाते हैं । वनस्पतियों, फसलों, पेड़-पौधों की पत्तियों, फूलों और फलों-दानों आदि में वे सन्निहित रहते हैं । इन पत्तियों, फूलों, फलों, अनाज आदि को गुण-साम्य के अनुरूप भेड़-बकरी, कुत्ता, बैल, गाय, भैंस, कौआ, तोता, मनुष्य आदि खाते हैं और उनके द्वारा 'प्रोटोप्लाज्म' शरीर के भीतर पहुँच जाते हैं । यही 'प्रोटोप्लाज्म जीन्स' में समाहित रहते हैं और नये शिशु के साथ पुन: जन्म लेते हैं । इस प्रकार पूर्व शरीर के प्राणी का प्रोटोप्लाज्म ही नये शरीर के साथ जन्म लेता है ।

शिशु के स्मृति पटल में पहुँच कर जब कभी कोई प्रोटोप्लाज्म जाग्रत हो उठता है, तो उससे सम्बन्धित पूर्वजन्म की घटनाएँ भी याद आ जाती हैं । इस तरह पुनर्जन्म प्रोटोप्लाज्म का होता है, आत्मा का नहीं, लेकिन इधर आत्मा सम्बन्धी खोजें वैज्ञानिकों को अपना पूर्वाग्रह परिवर्तित करने को प्रेरित कर रही हैं ।

डॉ. गेट्स ने कालापन लिए लाल-सी यानी वनफशई रङ्ग की किरणें खोजी हैं । इन किरणों का प्रकाश मनुष्य आँख से नहीं देख सकता, पर कमरे की दीवारों पर 'रोडापसिन' नाम पदार्थ का लेप कर उस पर ये किरणें फेंकी गईं, तो उसका रङ्ग बदल गया । ये किरणें हड्डी, लकड़ी, पत्थर, धातु को पार करके चमकने लगती हैं, पर इन किरणों को दीवार पर डाला जाए और बीच में कोई मनुष्य आ जाए तो दीवार पर उसकी छाया दीखेगी यानी ये किरणें जीवित प्राणी का शरीर नहीं भेद सकतीं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवित स्थिति में शारीरिक विद्युत प्रवाह तीव्रतर होने से ये किरणें शरीर से टकराकर लौट जाती हैं, शारीरिक विद्युत प्रवाह उन्हें धकेल देता है । निष्प्राण होने पर ऐसी कोई बाधा बचती नहीं और किरणें शरीर को भेद जाती हैं ।

डॉ. गेट्स शरीर की विद्युत शक्ति को ही आत्मा की प्रकाश-शक्ति मानते हैं ।

फ्रांस के डा. हेनरी वारादुक ने अपनी मरणासन्न पत्नी एवं बच्चे पर प्रयोग कर मृत्यु के फोटो लिए, तो कुछ रहस्यमय किरणों के चित्र प्राप्त हुए । डॉ. एफ. एम. स्ट्रा ने तो इस तरह का सार्वजनिक प्रदर्शन ही किया, जिसमें अखबारी प्रतिनिधियों ने भी चित्र लिए और रहस्यमय किरणों के चित्र प्राप्त किए ।

अमरीका में विलमा क्लाउड चेम्बर द्वारा आत्मा के अस्तित्व सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये गये हैं । यह चेम्बर एक खोखला पारदर्शी सिलेण्डर है । इसके भीतर से हवा पूरी तरह निकालकर, भीतर रासायनिक घोल पोत देते हैं । इससे सिलेण्डर में एक मन्द प्रकाशपूर्ण कुहरा छा जाता है । इस कुहरे से यदि एक भी इलेक्ट्रान गुजरे तो फिट किए गये शक्तिसम्पन्न कैमरों द्वारा उनका फोटो ले लिया जाता है । सिलेण्डर में होने वाली हर हलचल का चित्र आ जाता है ।

वार्कले, केलीफोर्निया (अमरीका) में कार्यरत डॉ. लीसनेला और उनके साथियों ने इस विषय पर न केवल खोज की है, बल्कि 'साइक्रोसिस और ट्रान्सेन्डेन्स ?' शीर्षक एक लेख में 'द रिवर्थ प्रासेस' (पुनर्जन्म प्रक्रिया) की गहरी छानबीन व दस्तावेजों से भरी व्यख्या भी प्रस्तुत की है ।

डॉ. सनेला के समूह ने शीजोफ्रेनिया, मेनिअक, डिप्रेसन (एक अवधि के लिए मानसिक उन्माद की स्थिति आ जाना फिर सामान्य मन:स्थिति, इसी तरह अनवरत क्रम) तथा मानसिक असन्तुलन अन्य रोगों के रोगानुसन्धानों का विवरण देते हुए यह तथ्य प्रदर्शित किया है कि उनमें से अधिकांश उच्चतर मानसिक विकास की प्रक्रिया वाले वे लोग हैं, जो विराट आन्तरिक शक्तियों के अपरिपक्व तथा असन्तुलित प्रस्फुटन के कारण इस स्थिति में पहुँचे हैं । सनेला-समूह के अनुसार विकास की यह स्थिति वस्तुत: मानसिक रोग नहीं है, बल्कि पुनर्जन्म प्रक्रिया की ओर यह गति मात्र है ।

पहले विज्ञान पदार्थ की चार अवस्थाएँ ही जानता था—ठोस, द्रव्य, गैस और प्लाज्मा । प्लाज्मा मात्र बाह्य अन्तरिक्ष में विद्यमान है, किन्तु भौतिकी प्रयोगशालाओं में भी उसे अत्युच्च तापमान पर उत्पादित किया जा सकता है ।

१९४४ में सोवियत भौतिकविद् व्ही. एस. ग्रिश्चेन्को ने पहली बार पदार्थ की पंचम अवस्था—'जैव प्लाज्मा' की खोज की, जो कि सभी जीवधारियों में विद्यमान प्राण ही है ।

प्रो. ग्रिश्चेन्को के अनुसार जैव प्लाज्मा में इयान्स, स्वतन्त्र इलेक्ट्रॉन और स्वतन्त्र प्रोटान होते हैं, जो कि नाभिक से स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं । यह तीव्र संचालक है और दूसरे अवयवों या जीवधारियों में शक्ति संग्रहण रूपान्तरण तथा संवहन में सक्षम होता है । यह मनुष्य के मस्तिष्क में और सुषुम्ना नाड़ी में एकत्रित रहता है । यह अत्यधिक दूरियों को तीव्र गति से लाँघ सकता है और इस तरह टेलीपैथी, मनोवैज्ञानिक और मनोगति की प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है ।

इस अनुसंधान के बाद, सोवियत विज्ञान ने तेजी से इस क्षेत्र में प्रगति की है । अपने प्रयोगों के दौरान रूसियों ने अत्यधिक विकसित उपकरणों का उपयोग किया । उच्च वोल्टेज वाली फोटोग्राफी की प्रक्रिया जिसमें इलेक्ट्रॉनिक माइक्रोस्कोप भी शामिल हो, क्लोज-सर्किट टेलीविजन तथा मोशन-पिक्चर, टेक्नीक का उपयोग जिसे एस. डी. कीर्लियन और व्ही. के. कीर्लियन ने विकसित किया है । रेडिएशन-फील्ड फोटोग्राफी को रूसी 'कीर्लियन औरा' कहते हैं । इनके द्वारा ग्रे. ग्रिश्चेन्को की 'बायोप्लाज्मा' और उसके भारतीय समतुल्य 'सूक्ष्म शरीर' तथा उसमें परिव्याप्त प्राण आवरण की अवधारणाओं की पुष्टि होती है । इस तरह यह अज्ञात ईथर तत्व के जगत में वैज्ञानिकों द्वारा अति महत्त्वपूर्ण भौतिक आधारों की खोज है ।

सोवियत रूस के प्रसिद्ध अन्तरिक्ष केन्द्र के पास अल्माअता में कजाकिस्तान राज्य विश्वविद्यालय की जैव विज्ञान प्रयोगशाला के निर्देशक डॉ. ह्वी. एम. इन्युशिन पी.एच.डी. ने अपने एक शोधपत्र में कहा है कि उच्चस्तरीय विशेषीकृत तथा क्लिष्ट विधियों के द्वारा अत्युच्च संवेदना वाली कीर्तियन-फोटोग्राफिक प्रक्रियाओं द्वारा पहले खरगोश और बाद में मनुष्यों के फोटोग्राफ लिए जाने पर, सोवियत वैज्ञानिक 'बायोप्लाज्मा' तथा शरीर के चारों ओर उसकी परिव्याप्ति (झीनी चादर) की फोटो लेने में सफल रहे हैं । कीर्लियन फोटोग्राफों से पता चलता है कि जैविक-प्रकाश (चमक) का कारण जैव-प्लाज्मा है । इनका आकार होता है और इनमें ध्रुवीय छोर होते हैं ।

प्रयोगों से प्रमाणित होता है कि—

(१) प्लाज्मा मस्तिष्क में सर्वाधिक सघन है ।

(२) सुषुम्ना-नाड़ी और उसकी स्नायविक कोशिकाएँ बायो-प्लाज्मा गतिविधियों के केन्द्र हैं ।

(३) यह अँगुलियों के छोर तथा सूर्य-चक्र की पीठ में अधिक सुदृढ़ होता है ।

(४) रक्त की तुलना में स्नायुओं के केन्द्रों में अधिक प्लाज्मा होता है ।

नेत्र तीव्र विकिरण के स्रोत हैं । (इससे पता चलता है कि हिप्नोटिस्ट क्यों अपने सबजेक्ट की आँखों में गहराई तक झाँकते हैं और इस तरह अपने विचारों से उसे प्रभावित करते हैं ?)

डॉ. इन्सुशिन स्पष्ट करते हैं—अपनी प्रयोगशाला में हमने लगातार प्रयोग किये हैं—यह जानने के लिए कि क्या बायो-प्लाज्मा का (प्राण शक्ति का) वास्तविक अस्तित्व है ? हम जानते हैं कि प्रत्येक जीवधारी के पास एक ऐसी प्रणाली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है जो शक्ति का विकरण करती है और अपने चारों ओर एक क्षेत्र (सूक्ष्म शरीर) तैयार करती है ।

किन्तु हम जीवधारियों की शक्ति-प्रक्रिया को बहुत कम जानते हैं, विशेषकर टेलीपैथी में, जबकि दो व्यक्ति एक ऐसी दूरी पर रहते हुए एक साथ परस्पर सम्बद्ध क्रियाएँ करते हैं, कि उसकी प्रक्रिया परम्परागत साधनों द्वारा ठीक से समझाई नहीं जा सकती ।

एक जीवित देहधारी को एक जैविक क्षेत्र कहा जा सकता है, जिसमें एक-दूसरे को प्रभावित करने वाली शक्ति-धाराओं का अस्तित्व हो । इन जैविक क्षेत्रों का स्पष्ट रूपाकार है और ये विभिन्न भौतिक क्षेत्रों द्वारा विनिर्मित हैं—इलेक्ट्रोस्टेटिक, इलेक्ट्रो मैग्नेटिक, हाइड्रोडायनमिक, श्रव्य तथा सम्भवत: ऐसे अनेक क्षेत्र भी, जिनके बारे में हम अभी नहीं जानते । बायो-प्लाज्मा इनमें से किसी एक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है ।

मनुष्य की विभिन्न शरीर क्रिया वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं की जाँच की गई । देखा गया कि सुषुम्ना नाड़ी का केन्द्र, अनेक स्नायविक कोशिकाओं के गुच्छों के साथ (चक्र) जैव-प्लाज्मीय सक्रियता का केन्द्र है । बायो-प्लाज्मिक सक्रियता 'भ्रूण' पर निर्भर देखी गई । उदाहरणार्थ, कलाकार किसी कलाकृति के बारे में सोचते समय उच्चस्तरीय चेतना की स्थिति में थे । यानी उनका 'कोरोना' अत्यन्त प्रकाशवान था, जबकि कुण्ठित, तनावग्रस्त व्यक्ति का 'कोरोना' बहुत पतला था तथा उसमें कई काले धब्बे थे ।

शरीर में जैव-प्लाज्मीय (बायो-प्लाज्मिक) क्षेत्र की सापेक्ष स्थिरता के बावजूद बायो-प्लाज्मा के द्वारा व्यक्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंश अन्तरिक्ष में विकीर्ण होता है । यह माइक्रोस्टीमर्स के रूप में हो सकता है या फिर बायो-प्लाज्माइड्स के रूप में । माइक्रोस्टीमर्स हवा के द्वारा बनने वाले बायो-प्लाज्मिक अवयवों के वे टुकड़े हैं, जो शरीर से अलग हो गये हैं (यानी वे कॉस्मिक-चेतना को मानवीय-चेतना से जोड़ने के स्रोत हैं ।)

एक अन्य प्रख्यात वैज्ञानिक जर्मनी के प्रो. विलहेमरीच भी प्राण-शरीर के अस्तित्व में भारतीय सिद्धान्त का मानवीय देह की एक प्रतिकृति के अस्तित्व के रूप में समर्थन करते हैं । वे इसे 'आर्गोन' कहते हैं यानी एक जैव विद्युतीय शक्ति, जो नीले रङ्ग की है ।

सोवियत खोज को अमेरिकी वैज्ञानिकों के सामने प्रस्तुत करते हुए, शैला आस्ट्रेन्डर तथा लिन स्क्रोडर ने लिखा है, "सोवियतों को ऐसा साक्ष्य मिल गया प्रतीत होता है कि समस्त जीवधारियों में शक्ति का कोई साँचा, एक प्रकार का अदृश्य शरीर अथवा भौतिक शरीर को परिवृत करने वाला कोई प्रकाश पिंड होता है...।"

"इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप की आँखों से इन वैज्ञानिकों ने प्रशान्त उच्चस्तरीय 'फ्रीक्वेन्सी' पर कोई ऐसी वस्तु निरन्तर 'डिस्चार्ज' होते देखी है जो पहले 'क्लेयर वोमेन्टस' (भविष्यदृष्टा) ही देख पाते थे । उन्होंने जीवित देह में एक जीवित प्रतिकृति को गतिवान देखा है ।"

यह प्रतिकृति क्या है? यह एक समग्र एकीभूत देह ही है, । जो एक इकाई की तरह काम करती बताई जाती है । यह अपने स्वयं के विद्युत चुम्बकीय क्षेत्रों का अतिक्रमण करती तथा जीव-वैज्ञानिक क्षेत्र का यह आधार है ।

यह जैविक प्रकाश पिंड, जो कीर्लियन चित्रों में देखा जा सकता है, बायो-प्लाज्मा के द्वारा विनिर्मित है । कजाक वैज्ञानिक के अनुसार इस कम्पनशील, रङ्गीन शक्ति—शरीर की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसकी एक विशिष्ट स्थानिक संरचना है । उनमें आकार है तथा वह पोलराइण्ड भी है (यानी उसमें घोर भी है) ।

यह हैं कुछ निष्कर्ष जो पदार्थ विज्ञान के आधार पर मरणोत्तर जीवन की सम्भावनाओं पर प्रकाश डालते हैं और शरीर त्यागने के उपरान्त भी जीवात्मा का अस्तित्व बना रहने की मान्यता का समर्थन करते हैं, किन्तु यह यों तो तथ्य का एक छोटा और भौंडा पक्ष है । वस्तुत: उस संदर्भ से दूसरे आधार पर नये सिरे से विचार करना होगा । विशाल ब्रह्माण्ड का लघुतम घटक अणु-अण्ड है । दोनों के सघन समन्वय पर ही इस संसार की विविध हलचलों की व्याख्या विवेचना सम्भव होती है । भौतिकी का सुविस्तृत शास्त्र इन्हीं शोध प्रयोजनों में संलग्न रहता है । यह विश्व का स्थूल आवरण हुआ । उसका प्राणतत्व उस सूक्ष्म सत्ता के रूप में जाना जाता है जिसे ब्रह्माण्डीय चेतना अथवा ब्रह्मतत्व कहते हैं । विराट् ब्रह्म का लघुतम घटक जीव है । जीव और ब्रह्म के बीच होने वाले आदान-प्रदान पर ही चेतनात्मक हलचलों का आधार खड़ा है । जीव ब्रह्म में से ही उदय होता है और अन्तत: उसी में उसे लय भी होना पड़ता है । भौतिकी को आवरण विवेचना कहा गया है और ब्रह्म-विद्या को चेतना का तत्वदर्शन । दोनों के अपने-अपने क्षेत्र हैं और अपने-अपने प्रयोजन । जिस दिन भौतिकी की तरह ब्रह्मविद्या का भी सुनिश्चित एवं प्रामाणिक शास्त्र बनकर तैयार हो जायेगा, उसी दिन जीव-सत्ता और ब्रह्म-सत्ता का पारस्परिक सम्बन्ध सम्पर्क ठीक प्रकार समझा जा सकेगा । ऋषियों ने अपने ढंग से दार्शनिक पृष्ठभूमि पर ब्रह्म-विद्या का ढाँचा खड़ा किया था । आज उन निष्कर्षों का समर्थन प्रत्यक्षवादी आधारों पर किये जाने की युग अपेक्षा है । सत्य तो सत्य ही है । तथ्य तो तथ्य ही है । उन्हें इस आधार पर भी सिद्ध किया जा सकता है और उस आधार पर भी । ब्रह्म-सत्ता को प्रत्यक्षवादी आधार ब्रह्माण्डीय चेतना के रूप में मान्यता दे रहे हैं और जीव को बायो-प्लाज्मा के रूप में । दोनों का तारतम्य बैठ रहा है । आशा की जानी चाहिए कि अगले ही दिन जीव-चेतना के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रत्यक्षवादी पृष्ठभूमि पर भी प्रस्तुत हो सकेंगे, तब सर्वसाधारण के लिए मरणोत्तर जीवन के अस्तित्व के तथ्य को सिद्ध कर सकना भी कुछ कठिन न रह जायेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करना ही पड़ेगा

पिछली दशाब्दियों में विज्ञान वेत्ता समस्त जड़चेतन जगत को पदार्थ विनिर्मित मानते रहे हैं और चेतना को तत्वगत एवं रासायनिक सम्मिश्रण का परिणाम बताते रहे हैं । उनकी दृष्टि में आत्मा नाम की स्वतन्त्र सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं । वृक्ष-वनस्पतियों की तरह ही मनुष्य या पशु, पक्षी, कीट-पतङ्ग भी हैं । छोटे स्तर के अविकसित प्राणियों में तथा मनुष्यों में जो विचार शक्ति पाई जाती है, वह उनके मस्तिष्क अवयव में होने वाली एक विशेष प्रकार की हल-चल भर है, किन्तु यह मान्यता समय के साथ-साथ धुँधली पड़ती चली आई है और अब इतने अधिक प्रमाण इकट्ठे हो गये हैं कि आत्मिक चेतना का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार किया जा सके ।

'अकस्मात्' वादी नास्तिकवाद का कथन है कि यह संसार अकस्मात् पैदा हुआ है और बिना किसी नियन्त्रण के स्वसंचालित रूप से समस्त गति-विधियाँ अनायास ही चल पड़ी हैं और चल रही है ।

कहा जाता है कि जिस प्रकार सराय में पहुँचने पर अकस्मात् ही कोई मित्र मिल जाता है और उसके मिलते ही नमस्कार, मुस्कान, कुशल प्रश्न, उपहार आदान-प्रदान का क्रम चल पड़ता है । ठीक इसी तरह संसार का आविर्भाव तथा क्रम-निर्धारण स्वयमेव निरुद्देश्य चल पड़ा है ।

किन्तु यह 'अकस्मात्' वाद कहने में जितना सरल है, उतना आसानी से सिद्ध नहीं किया जा सकता । सृष्टि का हर जीवाणु परमाणु एक सुव्यवस्थित क्रिया-प्रक्रिया के अनुसार चल रहा है । इतना ही नहीं उसके पीछे भावी परिणामों की सूझबूझ भी है और परिस्थिति को देखते हुए अपनी गतिविधियों में हेर-फेर कर लेने की दूरदर्शिता भी है । इन तथ्यों पर विचार करने पर जड़ समझी जाने वाली प्रकृति में चेतना का बहुमुखी आधार विद्यमान सिद्ध होता है ।

स्पेन का दार्शनिक इब्न बाजा कहता था—जगत की रचना परिछिन्न गति युक्त पिण्ड परमाणुओं से हुई है । वे कण न तो निःचेष्ट हैं न मृतक ! उनमें क्रिया भी विद्यमान है और चेतना भी । वह स्थिति अस्त-व्यस्त भी नहीं वरन् पूर्णतया क्रमबद्ध भी है । इस क्रम निर्धारण और नियामक सत्ता को कोई भी अपने समीपतम क्षेत्र में प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है । इस प्रमाण को प्रमाणित करने की किसे क्या आवश्यकता पड़ेगी ?

शरीर के पृथक् आत्मा की अपनी स्वतंत्र सत्ता होने के सम्बन्ध में वैज्ञानिक क्षेत्रों में कितने ही अन्वेषण कार्य हुए हैं, इन्हीं प्रयोगों में एक प्रयास मनोविज्ञान अनुसन्धान समिति का है । उस संस्था ने अपने शोधपरिणाम "दी ह्यूमन परसनैलिटी एण्ड इट्स सरवाइवल ऑफ बॉडीली डैथ" नामक पुस्तक में प्रकाशित किये हैं । इस पुस्तक में कितने उदाहरण ऐसे प्रस्तुत किये हैं जिनमें शरीर से भिन्न आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध होता है । कुछ उदाहरण विशेष घटनाओं के पश्चात् व्यक्तियों की जीवन भर की संचित स्मृति पूर्णतया नष्ट होकर एक अजनबी व्यक्तित्व उस शरीर में काम करने लगने के हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि शरीर पर आधिपत्य रखने वाली आत्मा को धकेलकर उस स्थान पर कोई दूसरी आत्मा कब्जा कर सकती है और जब तक चाहे वहाँ रह सकती है । इन घटनाओं में कुछ ऐसी भी हैं जिनमें आधिपत्य जमाने वाली आत्मा ने अपना कब्जा छोड़कर पुरानी आत्मा को उस शरीर में वापस लौट आने का अवसर दिया ।

उपरोक्त पुस्तक में ऐसे छोटे बच्चों के उद्धरण भी दिये हैं जो गणित, सङ्गीत, ज्यामिति, चित्रकला आदि में इतने पारङ्गत थे, जितने उस विषय के प्राध्यापक भी नहीं होते । बिना शिक्षा व्यवस्था के पाँच छः वर्ष जितनी छोटी आयु में ही इस प्रकार का असाधारण ज्ञान होना इसी एक आधार पर सम्भव होता है कि किसी आत्मा को अपने पूर्व जन्म की संचित ज्ञान सामग्री उपलब्ध हो, पूर्व जन्म की सिद्धि आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

स्वीडन देश के स्टाकहोम नगर में एक भविष्य सूचना का विवरण डेजन्स नेहटर पत्र में कुछ समय पूर्व प्रकाशित हुआ था जो अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ । बात यह थी कि हेन्स क्रेजर नामक एक व्यक्ति ने अपने कमरे में बैठे एक दिवास्वप्न देखा कि चौथी मंजिल पर एक अधेड़ व्यक्ति ने एक नव-युवती की चाकू मार कर हत्या कर दी । हेन्स को वह घटना इतनी सत्य प्रतीत हुई कि वह अपने को रोक न सका और सीधा पुलिस दफ्तर में रिपोर्ट करने पहुँचा । पुलिस बताये गये कक्ष में पहुँची तो पाया कि वह कमरा मुद्दतों से बन्द था और उसमें थोड़ा सा फर्नीचर मात्र ही रखा था । झूठी रिपोर्ट करने के अभियोग में हेन्स को पागलखाने भेजा गया । जाँच पूरी भी न हो पाई थी कि एक सप्ताह के भीतर ही वह रिपोर्ट अक्षरशः सत्य हो गई । किसी व्यक्ति ने उस मकान को किराये पर लिया और साथ वाली औरत की चाकू से हत्या कर दी । चीख-पुकार के बीच हत्यारा पकड़ा गया । मृत युवती और आक्रमणकारी अधेड़ की हुलिया बिलकुल वैसी ही थी जैसा कि रिपोर्ट में उल्लेख किया गया था ! इस घटना पर टिप्पणी करते हुए उपरोक्त अखबार ने टिप्पणी की कि इस संसार में बहुत कुछ पूर्व व्यवस्थित क्रम से हो रहा है और उनकी जानकारी आत्मा की प्रखर चेतना समय से पूर्व भी जान सकती है ।

पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) के प्राचार्य लेम्बरटन एक वैज्ञानिक गुत्थी को सुलझाने में वर्षों से लगे थे । एक रात को उन्होंने स्वप्न देखा कि सामने की बड़ी दीवार पर उनके प्रश्न का उत्तर चमकदार अक्षरों में लिखा है । जागने पर उन्हें अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि इतना सही उत्तर किस प्रकार उन्हें स्वप्न में प्राप्त हो गया ।

रायल सोसाइटी के अध्यक्ष सर आलीवर लाज तथा सर विलियम क्रुक्स, सर आर्थर कानन डायल, डॉ. मेयर्स

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदि वैज्ञानिक विद्वानों ने अपने अनुसन्धानों द्वारा निकले हुए ऐसे निष्कर्षों को सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में छपवाया था जिनसे मृत्यु के उपरान्त पुनर्जन्म के प्रमाण मिलते हैं साथ ही यह भी सिद्ध होता है मरण और नवीन जन्म के बीच कतिपय मनुष्यों को सूक्ष्म शरीर धारण करके प्रेत रूप में भी रहना पड़ता है ।

सर आलीवर लाज की मरणोत्तर जीवन पर प्रकाश डालने वाली केमण्ड मेन्थून विज्ञान और मानव विकास तथा मैं आत्मा के अमरत्व में क्यों विश्वास करता हूँ ? नामक तीन पुस्तकों में विस्तृत प्रकाश डाला है । इसी प्रकार उच्चकोटि के कितने ही विज्ञान वेत्ताओं ने इसी प्रकार की पुष्टि की है, ऐसे विद्वानों में एलफ्रेड सरल, वलेससर विलयम क्रुक्स, सर एडवर्ड मार्सल के नाम अधिक प्रख्यात हैं ।

मनोविज्ञानी जे. डब्ल्यू. ड्रेवर ने अपनी पुस्तक 'दी कनफ्लिक्ट विटवीन रिलीजन एण्ड साइन्स' पुस्तक में प्राचीन यूनान की मान्यताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—"रोम निवासियों की यह मान्यता रही है कि आत्मा का सूक्ष्म आकार स्थूल शरीर जैसा ही होता है और शरीर की स्थिति के साथ-साथ आत्मा की स्थिति में भी अन्तर आता है ।" यह प्रतिपादन भारतीय अध्यात्म के साथ मेल नहीं खाता, तो भी इतना तो स्पष्ट है कि शरीर से भिन्न आत्मा की सत्ता को न केवल भारतीय तत्वज्ञान ही माना है, वरन् संसार के अन्य भागों में भी उस सिद्धान्त को मान्यता प्राप्त रही है ।

भविष्यवाणियों के इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए यह तथ्य स्पष्ट हो चला है कि किन्हीं व्यक्तियों में पूर्वाभास की क्षमता आश्चर्यजनक रूप से पाई जाती है । उनकी भविष्य-वाणियाँ असन्दिग्ध रूप से समय पर सत्य सिद्ध होती हैं । इसका कारण क्या है और इस शक्ति को प्राप्त कर सकना हर किसी के लिए सम्भव है या नहीं ? है तो किस प्रकार आदि प्रश्नों के उत्तर आज उपलब्ध नहीं हैं फिर भी इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि संसार में असंदिग्ध भविष्यवाणियाँ कर सकने वाले लोग भी हुए हैं । यह तथ्य भी जड़जगत में किसी अलौकिक सत्ता का अस्तित्व सिद्ध करने का कम महत्त्वपूर्ण आधार नहीं है ।

महायुद्ध छिड़ने से पहले की बात है लन्दन के स्पेन दूतावास में एक भोज दिया, जिसमें ब्रिटेन के तत्कालीन विदेशमंत्री लार्ड हैली फैक्स सम्मिलित थे । आमन्त्रित अतिथियों में भविष्यवक्ता डी. व्होल भी थे । वे संयोग से विदेश मन्त्री महोदय की बगल में ही बैठे थे । उन्होंने चुपके से भावी महायुद्ध और उसके सम्बन्ध में हिटलर की पूर्व योजनाओं की जानकारी बताने का अनुरोध किया । उसके उत्तर में व्होल ने कई ऐसी बातें बताईं जो अप्रत्याशित थीं । हैली फैक्स ने वायदा किया कि यदि उनकी भविष्यवाणी सच निकली तो उन्हें सम्मानित सरकारी पद दिया जायेगा । भविष्यवाणी सच निकली । तदनुसार उन्हें फौज में कैप्टिन का पद दिया गया ।

हिटलर के सलाहकारों में पाँच दिव्यदर्शी भी थे, उनका नेतृत्व विलियम क्राफ्ट करते थे । उनकी सलाह को हिटलर बहुत महत्त्व देता था । इस मण्डली के एक सदस्य किसी समय व्होल भी रह चुके थे । वे जानते थे हिटलर के ज्योतिषी उसे क्या सलाह दे रहे होंगे । उस जानकारी को वह इंग्लैण्ड के अधिकारियों को बता देता । इन जानकारियों से ब्रिटेन बहुत लाभान्वित हुआ और उसने अपनी रणनीति में काफी हेर-फेर किये । फौज के महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व कुछ फौजी अफसरों को सौंपे जाने थे । उनमें से किसका भविष्य उज्ज्वल है इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने एक आदमी से जनरल बरनार्ड माण्ट गोभरी की ओर इशारा किया । उन्हें ही वह पद दिया गया और अन्ततः उन्होंने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त करके दिखाई । जापान के जहाजी बेड़े को बुरी तरह नष्ट करने की जो सफल योजना बनाई गई थी उसमें भी व्होल से गम्भीर परामर्श किया गया था । महायुद्ध समाप्त होने तक ही उन्होंने ब्रिटिश सरकार को भविष्यवाणियों का लाभ दिया । पीछे उन्होंने वह कार्य पूरी तरह छोड़ दिया और अपने पुराने धार्मिक लेखन कार्य में लग गये ।

मैटाफिजिक्स, पैरा साइकोलोजी आदि वैज्ञानिक आधारों का जितना विकास होता चलेगा विज्ञान जगत उसी अनुपात में आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार करता चलेगा और पिछले दिनों हमें जिन अवस्थाओं में भटकना पड़ा है उनसे छुटकारा मिलता चलेगा ।

सर्वव्यापी आत्मा की सर्वज्ञता

साधना खण्ड के अनेक उपनिषदों में सिद्धियों के अनेक चमत्कारिक वर्णन मिलते हैं । उनमें एक सिद्धि 'ज्ञान सिद्धि' है । 'योग कुण्डल्युपनिषत्' में आत्म-भेदन की विभिन्न योगिक क्रियाओं का वर्णन करते हुए अन्त में कहा है—

पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिङ्गसूत्रात्मनोरपि ।
स्वयं वा कृतयोरैक्यं स्वप्रकाशचिदात्मनोः ॥

—अध्याय १ ।८१,

"इस तरह पिण्ड और ब्रह्माण्ड, लिंगदेह और सूत्र रूप से शरीरस्थ आत्मा में एकता हो जाती है और आत्मा अपने आपको प्रकाश या ज्ञान रूप में अनुभव करने लगती है ।"

इस स्थिति में शरीरधारी आत्मा भी तीक्ष्ण बुद्धि, तीव्र स्मरण शक्ति, भूत और भविष्यत् में होने वाली घटनाओं का ज्ञाता, दूरवर्ती और समीपवर्ती सभी वस्तुओं की बाह्य और अन्तरङ्ग स्थिति को जानने वाला, पूर्वजन्मों के वृत्तान्त जानने वाला, सब प्राणियों के मनोगत भावों को जानने वाला शास्त्रों का ज्ञानी, वैरागी और निस्पृह प्रेमी हो जाता है ।

आत्मा की सूक्ष्म शक्तियों का इससे भी विस्तृत विश्लेषण शास्त्रकारों ने किया है, पर अब जब उसे प्राप्त करने की साधनाओं से लोग विमुख होने लगे तो वह बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भी मिथ्या प्रतीत होने लगीं । यह अज्ञान सारी मानव जाति के लिये दुर्भाग्य का विषय है ।

साधनाओं की पृष्ठभूमि पर न उतरें, न सही पर संसार में होने वाली अनेक घटनाओं से वस्तुस्थिति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, ऐसी घटनाएँ हर मनुष्य के जीवन में देखने-सुनने में आया करती हैं, उनसे आत्म-तत्त्व की विशदता की अनुभूति की जा सकती है और उसकी जाग्रति की चेष्टाएँ भी उभारी जा सकती हैं ।

२४ नवम्बर, १९६३ के धर्मयुग में एक घटना गीता कपूर ने दी है । ये लिखती हैं—''सन् १९५१ में मेरे चाचाजी एकाएक बीमार हो गये । बीमारी गम्भीर रूप धारण करती चली गई । अमावस्या का दिन था, रात हो गई थी, सब लोग मन्द-मन्द दीपक के प्रकाश में रुग्ण चाचाजी के समीप बैठे थे । तभी ऐसा जान पड़ा कोई स्त्री गहन असित वस्त्र धारण किये कमरे में प्रविष्ट हुई और फिर एक झटके से बाहर भाग गई । वह कोई प्रेत था या छाया पुरुष कुछ पता न चला । इसी बीच चाचाजी बोले—''अब सब लोग विदा दीजिये ।'' यह कहकर उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम की मुद्रा अभिव्यक्त की । यह दृश्य देखकर सब लोग रो पड़े । बड़े दादा भी पास ही थे । अश्रु बहाते हुए उन्होंने कहा—''कहाँ जाओगे ?'' चाचाजी ने कहा—''वहाँ, जहाँ एक दिन सब को जाना पड़ता है, जहाँ जीवन का विराम है ।'' बड़े दाऊ ने पूर्व ममत्व भरे स्वर में पूछा—''अकेले जाने में वहाँ डर न लगेगा ?'' चाचाजी ने उत्तर दिया—''अकेले नहीं एक साधु बाबा जी साथ जा रहे हैं ।'' यह कहकर उन्होंने आँखें मूँदी और इस नश्वर देह का त्याग कर दिया ।''

साधू बाबा वाली बात उस समय समझ में नहीं आई । प्रात:काल अर्थी उठाई गई, घाट पर पहुँचे, ठीक उसी समय एक और अर्थी आई । पूछने पर पता चला कि वे एक साधू हैं और ठीक उसी समय जब चाचाजी की मृत्यु हुई इनकी भी मृत्यु हुई ।

कई कोस दूर एक व्यक्ति की मृत्यु का ज्ञान इस तरह होना, जैसे वह बिल्कुल पास हो, आत्मा की सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता का प्रमाण नहीं तो और क्या है ?

मुरादनगर से पाँच मील दूर मुरादनगर किसान नेशनल इन्टर कालेज के ४२ वर्षीय एक अध्यापक श्री सत्यदेव शर्मा ने अपने प्राण त्यागने से लगभग आठ घण्टे पूर्व अपनी मृत्यु की सूचना दे दी थी । श्री सत्यदेव शर्मा कुछ समय से रोग से पीड़ित थे । उन्होंने एक दिन अर्द्धरात्रि को अपनी बहिन को बुलवाकर कहा—''प्रात: आठ बजे यात्रा पर जाऊँगा, अत: गायत्री मन्त्र व यज्ञादि का कुछ आयोजन करवा दो ।'' बहिन समझ गई, प्रात: तीन बजे से ही गायत्री जप और हवन की व्यवस्था कर दी गई । मुहल्ले के सैकड़ों स्त्री-पुरुष भी पूजा-पाठ में सम्मिलित हो गये । श्री सत्यदेव जी ने स्वयं गायत्री मंत्र का पाठ किया और पूजन आदि शांतिपूर्वक देखते हुए ठीक आठ बजे प्राण छोड़ दिये । वे बड़े साधु प्रकृति के कर्त्तव्यनिष्ठ अध्यापक थे ।

विज्ञान ने ऐसे-ऐसे यंत्र दिये हैं, जो प्राकृतिक परिवर्तनों की बड़ी सही जानकारी देते हैं । वर्षा, भूकम्प, तूफान का बहुत पहले इन यंत्रों से पता लगा लिया जाता है । रेडारों द्वारा दूर के दृश्यों, जहाजों, सूर्य-चन्द्रमा और ग्रह-नक्षत्रों में होने वाली हलचलों एवं ग्रहण आदि का सही पता लगा लिया जाता है, पर मृत्यु आदि सूक्ष्म वस्तुओं का पता लगाना, अभी विज्ञान के लिये कहाँ सम्भव हुआ । यह ज्ञान तो आत्मा का अपना विज्ञान है ।

गुरुकुल काँगड़ी की बात है । १९१७ में डॉ. सुखदेव जी ने एक नौकर रखा, वह जाति का चमार था, नाम था बारू । उसके भोजन की व्यवस्था सबके साथ ही की गई 'ताकि मानव मात्र एक हैं' का रचनात्मक शिक्षण लोगों को दिया जा सके ।

गुरुकुल के एक कर्मचारी बिहारी को यह बात सहन न हुई । उसने द्वेषवश भण्डार में खाना ही बन्द कर दिया । एक दिन दुर्भाग्य से स्प्रिट का ड्रम खोलते समय बारू उसमें बुरी तरह जल गया । बिहारी ने जो अब तक उससे द्वेष रखता था, अब अपना दृष्टिकोण बदल दिया । उसने जान लिया बारू की अमुक दिन मृत्यु हो जायेगी । इस अनायास की आत्म-प्रेरणा ने उसके हृदय का मल-विक्षेप और अहङ्कार निकाल दिया । अब बिहारी को प्रत्येक जीव, प्रत्येक प्राणी में एक ही आत्मा के दर्शन हो रहे थे ।

साथ ही उसे अपने कृत्य पर दु:ख भी हुआ । प्रायश्चित के लिये उसने उसी दिन से अन्न ग्रहण करना बन्द कर दिया । प्रतिदिन अपने घर से भोजन लेकर जाता और बारू को स्वयं खिलाता, आप ही उसकी सेवा करता ।

वह दिन आया जिस दिन बारू की मृत्यु होनी थी । लोग हैरान थे कि उस दिन बिहारी क्यों नहीं आया । उस दिन वह अपने घर पर ही ले— गया । बारू का निधन हो गया । तब लोगों ने खबर ली तो पता चला कि ठीक उसी समय बिहारी ने भी प्राणान्त किये ।

बिहारी ने कोई अपघात नहीं किया, उसे कुछ रोग भी नहीं था, पर उसने ठीक उसी समय प्राण त्याग कैसे किया ? यह अब तक रहस्य है । यह रहस्य तन्त्र का नहीं आत्मा का रहस्य ही हो सकता है ।

२७ मई, १९६४ की श्री टी.पी. झुनझुनवाला (घटना धर्मयुग १२ जुलाई १९६४ में छपी) नाम के एक सज्जन महाबलेश्वर के पर्यटन पर थे । उस दिन उनका 'प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शन' का कार्यक्रम था । उनका बच्चा अमित भी उनके साथ था । दोपहर के विश्राम के बाद जागते ही बच्चे ने एकाएक अपने पिताजी को बुलाते हुए कहा—''पापा जी, पापा जी चाचा नेहरू अब इस संसार में नहीं रहे ।''

सब ने उस बात को झुठला दिया । नेहरू जी देहरादून में अच्छी तरह हैं, विश्राम कर रहे हैं । ऐसा कैसे सम्भव

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो सकता है । अमित को झिड़की मिली—"चल बेवकूफ कहीं के, इस तरह अशुभ बात मुख से निकाली जाती है" ।

पर आत्मा के लिये न तो कुछ शुभ है और न अशुभ, वह तो दृष्टा है, जो अन्तरङ्ग में सच-सच देखा वही तो कहा था उसने । वह बच्चे का पार्थिव शरीर नहीं आत्मा थी, जिसने घटना का पूर्वाभास किया था । उस सच्चाई का पता उन लोगों को जैसे ही घर से निकले वैसे ही चल गया ।

कहते हैं आत्मा तो सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त है । गीता कहती है—

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

—अध्याय २ ।३०,

हे अर्जुन! यह आत्मा तो सबके शरीर में व्याप्त और अवध्य है, इसलिये सम्पूर्ण भूत प्राणियों के निधन पर भी तुझे शोक नहीं होना चाहिए ।

यदि आत्मा सर्वव्यापी है तो सर्वज्ञता की स्थिति भी एक-सी होनी चाहिए । यह भी सत्य है, प्राणियों में वाणी और विचार व्यक्त करने की भाषाएँ अलग-अलग होती हैं पर परावाणी जो अन्तरङ्ग में ही देखती और अन्तरङ्ग में ही सुनती है वह सबकी एक है । मुण्डकोपनिषद् में महर्षि अंगिरा ने शनीक मुनि के पूछने पर पराविद्या का तात्विक विश्लेषण विस्तार से किया है । उसमें उन्होंने बताया है कि आत्माएँ परावाणी से ही सब कुछ ऐसे देखती-सुनती, समझती हैं, जैसे इन स्थूल नेत्रों, कर्ण एवं बुद्धि से देखा-सुना और समझा जाता है ।

अनेक पक्षियों, जीव-जन्तुओं द्वारा इस तरह का भविष्य ज्ञान उपरोक्त तथ्य की पुष्टि करता है । चींटियों, दीमकों को वर्षा का पूर्व ज्ञान हो जाता है । इस दिशा में मकड़ी का ज्ञान इनसे भी बढ़कर है । कोई दुर्घटना होनी होती है तो कुत्तों को उसका पूर्वाभास मिल जाता है । इस तरह की बातें आत्मा की सर्वज्ञता को और पुष्ट करती हैं ।

सन् १९३१ की एक घटना धर्मयुग के सुपरिचित लेखक श्री मदनगोपाल ने दी है, उसमें जीव और मनुष्य रूप दोनों में आत्मा की सर्वज्ञता का सिद्धान्त सत्य समर्थन होता है ।

वहाँ उस वर्ष घोर साम्प्रदायिक दंगे हुये थे । लाखों करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हुई, अग्निकाण्ड, मारकाट, छुरेबाजी के भयङ्कर दृश्य जबलपुर और उसके आस-पास के लोगों को अब भी नहीं भूलते । वहाँ यह बात भी लोग नहीं भूल सकते कि इस घटना से काफी समय पहले से ही नगर के कुत्ते बड़ी भयावनी आवाज में रोया करते थे । बिल्लियाँ भी संगति किया करतीं । एक दिन उक्त सज्जन को इसी कारण रात भर नींद न आई थी । बेचारे झुँझलाये हुए थे, सबेरे का समय था, उसी समय एक भिखारी आया । उसने भिक्षा के लिये आवाज लगाई । श्री मदनगोपाल जी चिल्लाये, भाग जा रे रात भर कुत्ते नहीं सोने देते और अब तू आ गया उन्हीं का सखा । भिखारी ने मुस्कराकर कहा—"बाबू जी, आप क्या समझेंगे, बेचारे कुत्तों की भाषा । यह तो आप लोगों को सावधान कर रहे हैं कि कोई भयंकर घटना घटित होने वाली है, उससे सुरक्षा का कोई उपाय कीजिये ।

साधु चल गया और दूसरे दिन से ही साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हुये कि सारा जबलपुर त्राहि-त्राहि कर उठा । लोग अब भी उक्त घटना की याद करते है और आश्चर्य करते हैं कि कुत्ते-बिल्लियों को भविष्य ज्ञान कैसे हो जाता है ?

यहाँ लोग पूछेंगे उस आत्मा को कैसे पाया जाये । 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में भी ऐसी ही प्रश्न किया गया है कि—"**विज्ञातारमरे केन विज्ञानीयात्**" अर्थात् जो ज्ञाता है (आत्मा) उसे किस प्रकार जाना जायेगा ।

यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है । सब लोग उपरोक्त गीता के चाचाजी, सत्यदेव जी शर्मा, अमित और जबलपुर के कुत्ते-बिल्लियों की तरह भूत-भविष्यत् का ज्ञान क्यों नहीं पा लेते ? उत्तर है कि इन सबने प्रायः मृत्यु या प्रकृति की समीपता की स्थिति में जबकि आत्मा निश्छल और निर्विकार होती है, जब वह राग-द्वेष, काम-क्रोध, भय, मद-मोह से विमुख होती है, तब इस तरह की अनुभूति की । निस्पृह और पवित्र आत्माएँ इस तरह की अनुभूतियाँ हर घड़ी प्राप्त कर सकती हैं । ब्रह्मोपनिषद् साक्षी है—

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतः
स्वरणीषु चाग्निः ।
एवमात्मात्मनि जायतेऽसौ सत्येनैनं तपसा
योऽनुपश्यति ॥ १९ ॥

अर्थात्—जिस प्रकार तिल में तेल, दही में घृत, प्रवाह में पानी, लकड़ी में अग्नि छिपी रहती है, उसी प्रकार आत्मा भी हमारे भीतर छिपी है, वह आत्मा तप और सत्य से प्रकट होती है ।

आत्मा की अमरता कल्पना मात्र नहीं

लेनिनग्राड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एल. लोजिन लोजिनस्की की उपरोक्त विषय में गम्भीर रुचि है, उन्होंने अनेक प्रयोग करके यह जानने का प्रयत्न किया है कि मृत्यु और जीवन में मूलान्तर क्या है और क्या मृत्यु के बाद भी चेतना का अस्तित्व बना रहता है ?

१९६४ में उन्होंने एक प्रयोग किया । मक्के के कीटों को २६९ अर्थात् शून्य से ४ डिग्री ऊपर हीलियम द्रव्य (लिबिम्वड) में जमा दिया । साढ़े छह घण्टे इसी दशा में रखने के बाद उन्होंने ताप देकर उनमें क्रमिक रूप चेतना लाने का प्रयत्न किया । निष्कर्ष यह निकला कि २० में से १३ कीट तो फिर से जीवित हो गये, किन्तु शेष ७ में किसी प्रकार की चेतना लाना सम्भव न हुआ ।

इसी प्रकार का एक और प्रयोग सोवियत संघ के ही दूसरे वैज्ञानिक नेगोवस्की ने किया, इसका विवरण कुछ दिन पहले 'डिस्कवरी' पत्रिका में छपा था । बात यों हुई कि एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

२३ वर्षीय युवक कृषक ब्लादिमीर खारिन एक दिन अपने खेतों पर ट्रेक्टर चला रहा था । एकाएक जोर का बर्फीला तूफान आ गया और ब्लादिमीर खारिन गिर पड़ा । उसके ऊपर बर्फ जमा हो गई । इसी अवस्था में वह ६ घण्टे तक पड़ा रहा । ६ घण्टे बाद उसका शरीर बाहर निकाल कर अस्पताल पहुँचाया गया । डॉक्टरों ने घोषणा की युवक की मृत्यु हो गई है ।

नेगोवस्की ने तब एक प्रयोग किया । उन्होंने मृतक के पाँवों को गर्म पानी में डाला और उसे एड्रेनालिन का इन्जेक्शन देकर कृत्रिम श्वास देना प्रारम्भ किया । शरीर में बाहर से थोड़ा रक्त पहुँचाकर उसे बिस्तर पर लिटाया गया और गर्म बोतलों से सेंक दी गई । उष्णता का संचार होते ही धीरे-धीरे श्वास क्रिया भी चलने लगी । मृतक जीवित हो गया और पूर्ण स्वस्थ होकर काम-काज भी करने लगा ।

इन दोनों घटनाओं के विश्लेषण से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है, मृत्यु है क्या ? साधारणतया हृदय और श्वास गति रुक जाने को मृत्यु कहते हैं, किन्तु अब वैज्ञानिक यह बात नहीं मानते । ऑपरेशन करते समय हृदय-गति रुक जाती है, डॉक्टर मालिश करके उसे फिर प्रारम्भ कर लेते हैं, इन दिनों हृदय बदलने के अनेक प्रयोग हो रहे हैं, इस क्रिया में दूसरा हृदय-प्रतिरोपण करने से पहले, पहला हृदय निकालना आवश्यक होता है । २० अगस्त, १९६८ में जालंधर में हुई एक ताँगा दौड़ में रोशनलाल नामक ताँगे वाले का मोटर एक्सीडेन्ट हो गया । जब तक उसे अस्पताल पहुँचाया जाये उसकी हृदयगति रुक गई और २० मिनट तक उसकी यही अवस्था रही । इसके बाद डॉक्टरों ने कृत्रिम विधि से मालिश द्वारा पुनः हृदय गति में धड़कन पैदा की और रोशनलाल जीवित कर लिया गया । रुकी हुई साँस पुनः प्रारम्भ की जा सकती है, हृदय गति रुकना मृत्यु नहीं । इस तरह मृत्यु के रहस्य, वैज्ञानिकों के लिये और भी रहस्यपूर्ण हो गये हैं ।

लोगों की यह कल्पना कि मनुष्य को ऑक्सीजन, भोजन या पानी नहीं मिले तो उसकी मृत्यु हो जायेगी, भी निराधार सिद्ध हो चुकी है । शरीर को गर्म रखने के लिये यह वस्तुएँ केवल घड़ी की सुई की तरह काम करती हैं । यदि हवा, पानी और भोजन न मिले तो भी मनुष्य जिन्दा रह सकता है, भारतवर्ष में समाधि लगाने वाले योगी इस बात के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं । इस सम्बन्ध में कभी विस्तृत प्रकाश डालेंगे, पर आज यदि कोई योग की यह बात मानने को तैयार न हो तो उसे हम अन्तरिक्ष अभियान के वैज्ञानिकों के पास ले चलना चाहेंगे ।

बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति आदि की दूरी के अनुपात से जो विवरण प्राप्त किये गये हैं, उनसे पता चलता है कि यदि कोई अन्तरिक्ष यात्री यूरेनस नेप्चून जाना चाहे तो उसे ३२ और ६१ वर्ष तो केवल वहाँ जाने और आने में ही लग जायेंगे, इतनी आयु अन्तरिक्ष में गँवाना किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं । इस स्थिति के लिये रसायनज्ञों ने एक उपाय यह निकाला है कि मनुष्य अपने शरीर से निकाले गये परमाणुओं का बार-बार उपयोग कर सके और उसे प्रसुप्त अवस्था में लाया जा सके तो बिना कुछ खाये-पिये, हवा लिये भी मनुष्य इतनी लम्बी अवधि तक जीवित बना रह सकता है । अर्थात् उसके मस्तिष्क के कोश भी अर्द्ध-मूर्छित अवस्था में स्वप्न की चेतना की तरह काम करते रहेंगे, पर उन्हें बाह्य दृष्टि से कोई जानकारी न होगी । वैज्ञानिकों के इस निष्कर्ष से पता चलता है कि जीवन के समान 'सुषुप्ति' भी एक अवस्था है । जीवन और मृत्यु के इस बीच की इस स्थिति के सम्बन्ध में व्यापक खोज की जा रही है और यह निकट भविष्य में ही सम्भव हो जायेगा, जब मृत्यु को भी प्राणी के जीवन की एक सामान्य अवस्था मान लिया जायेगा ।

उदाहरण के लिये सोवियत वैज्ञानिक प्रोफेसर पी.कोप्तरेव ने जल-कीट 'डाफनिया' (जल में पाया जाने वाला एक विशेष कीड़ा) और शैवाल को उन क्षेत्रों से निकाला, जहाँ स्थायी रूप से बर्फ जमी रहती है । हिसाब लगाकर देखा गया है कि इनमें से कुछ जीव २५ हजार वर्ष प्राचीन थे । बर्फ में यह गुण होता है कि उसमें शरीर के कोष मरते नहीं, हिमालय के भालू ६-६ महीने बर्फ में दबे पड़े रहते हैं, फिर बर्फ के हटते ही सूर्य की धूप लगने से उनके शरीर में स्वतः श्वास-प्रश्वास प्रारम्भ हो जाता है और वे इतने दिन बिना किसी आहार, ऑक्सीजन और पानी के भी जीवित हो उठते हैं । डॉ. कोप्तरेव ने भी इसी तरह गर्मी देकर इन २५ हजार वर्ष पूर्व के जीवों को जीवित कर दिया । इतनी लम्बी अवधि तक सुषुप्ति अवस्था में रहना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि चेतना का कभी अन्त नहीं होता । शरीर ही उसे स्वीकार न करे या उसके निवास योग्य न रहे, यह दूसरी बात है ।

अब वैज्ञानिक इस बात का अध्ययन कर रहे हैं कि रासायनिक तत्त्वों का कार्बनिक (आर्गेनिक) पदार्थों से संश्लेषण किस प्रकार हो सकता है । सम्भवतः अन्तरिक्ष यानों में क्लोरेला (माइक्रोस्कोपिक एल्गी, एक प्रकार का पौधा) की नर्सरी से संश्लेषण की क्रिया पूरी की जा सकती है, इससे अचेतन अवस्था में पड़े शरीर अपने शारीरिक उच्छिष्ट से ही उसी प्रकार जीवन बनाये रख सकते हैं, जैसे मनुष्यों और पशुओं द्वारा छोड़ी हुई साँस और मल-मूत्र से पौधे जीवनी शक्ति लेते रहते हैं । यदि यह प्रयोग सफल हो गया तो मनुष्य के शरीर को अचेतन अवस्था में कितने भी वर्ष तक रखकर उसे इच्छानुसार मारा और जिलाया जा सकता है । इस बीच की अवधि में उसे बाहर से न तो भोजन की आवश्यकता होगी, न पानी की और न ऑक्सीजन की ।

इन बातों से उपरोक्त प्रयोगों का विश्लेषण किया जा सकता है । पूर्ण मृत्यु तब होती है, जब मस्तिष्क के कोषों (सेल्स) को इतना आघात पहुँच जाये कि वे सदैव के लिये काम करना बन्द कर दें । हृदय और साँस की क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं, तब भी मस्तिष्क काम करता रहता है । इससे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्विवाद साबित होता है कि चेतना का प्रत्यक्ष सम्बन्ध शरीर से नहीं, मानसिक शक्तियों से है । मस्तिष्क एक ऐसी जटिल प्रणाली है, जिसके बारे में वैज्ञानिक भी हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं, अभी तक बाह्य मस्तिष्क की अधिक से अधिक १७ प्रतिशत जानकारी उपलब्ध की जा सकी है । मध्य-मस्तिष्क (मिडिल ब्रेन) की तो कुल ३ प्रतिशत ही जानकारी हो सकी है । इसीलिये वैज्ञानिकों के लिये मृत्यु अब भी रहस्य बनी हुई है ।

हृदय-गति रुकने से मस्तिष्क को शुद्ध रक्त मिलना बन्द हो जाता है । इससे वह शक्ति-प्रज्ज्वलित कर सकने में असमर्थ होता है । इसी क्रिया के द्वारा मस्तिष्क को शक्ति मिलती है । देखा गया है कि रक्त न मिलने पर भी वह ६ मिनट तक आपातकालीन उपायों के सहारे जीवित बना रह सकता है । वैज्ञानिक इन आपतकालीन सहायताओं का अध्ययन करके मस्तिष्क का सीधा सम्बन्ध अर्गानिक पदार्थों के संश्लेषण से जोड़ने के प्रयत्न में हैं । यदि ऐसा कोई उपाय निकल आया तो योगीजनों की समाधि के समान वैज्ञानिक भी मनुष्य को अर्द्ध-जीवित (सुषुप्ति) अवस्था में सैकड़ों वर्ष तक बनाये रख सकते हैं ।

विज्ञान के लिये जो सम्भावना है, योगियों के लिये वही इच्छा मृत्यु । चेतना की अमरता की परिपूर्ण जानकारी भारतीय तत्त्व-वेत्ताओं ने मानसिक एकाग्रता, ध्यान और समाधि के द्वारा प्राप्त करके ही यह बताया कि—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

—गीता २ ।१३,

आर्थात्—जैसे जीवात्मा की देह में कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है, वैसे ही वह अन्य शरीरों की भी प्राप्ति करता है । धीर पुरुष शरीर में मोहित नहीं होते ।

न जायते म्रियते वा कदाचि—
न्नायं भूत्वाभविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

—गीता २ ।२०,

हे अर्जुन ! यह आत्मा न किसी काल में जन्म लेती है और न मरती है और न यह आत्मा हो करके फिर होने वाली है, यह अजन्मा, नित्य शाश्वत् (अमर) और पुरातन है, शरीर के नाश हो जाने पर भी यह नाश नहीं होती ।

शरीर के कोषों को सुरक्षित रखकर लम्बे समय तक चेतना को अमर बनाये रखा जा सकता है, पर यह केवल तभी सम्भव है, जब मस्तिष्क की आधी चेतना बनी रहे । ऐसा भी हुआ है कि जब मस्तिष्क के एक दो 'सेल' मात्र ही जीवित बने रहे हो और उनसे मृत शरीर को कई महीनों बाद भी पुनर्जीवन जाग गया हो । प्लूटो आदि की लम्बी यात्राओं में भी अन्तरिक्ष यात्री को ऐसे उपकरणों में घेरकर मिटाया जायेगा जो अचेतनावस्था (एनम्बायोसिस) निद्रा का नियन्त्रण और रक्षा करते रहेंगे, क्योंकि वैज्ञानिक जान गये हैं कि चेतना को बाँधा नहीं जा सकता, अधिक से अधिक अवस्था परिवर्तन किया जा सकता है, क्योंकि मृत्यु स्वयं भी एक अवस्था परिवर्तन है, अर्थात् चेतना शरीर से लुप्त होकर भी मानसिक जगत में उसी तरह बनी रह सकती है, जिस तरह स्वप्न या सुषुप्ति की अवस्था में अनुभूतियाँ होती हैं, पर बाह्य इद्रियों का सहयोग न मिलने से स्थूल जानकारियाँ नहीं मिल पातीं । आत्मा तक अपने ही प्रकाश में काम करती है ।

शरीर की बनाट और जीवन का उससे सम्बन्ध इतना जानना ही जीवन की यथार्थ जानकारी नहीं दे सकता, क्योंकि वह अवस्था भी है, और मनोविज्ञान भी । वैज्ञानिकों में से अनेक ऐसे हैं, जहाँ अब यह स्वीकार करने लगे हैं कि चेतना है और वह भी नियमबद्ध होता है । हमें देखना होगा कि क्या हमारा मासिक क्रियायें आत्मा को प्रभावित करती हैं । एक शरीर से दूसरे शरीर में आने-जाने में मनोमय जगत का क्या हाथ है ? यदि हम इन बातों को समझ पायें तो आध्यात्मकि स्तर पर जीवन को शुद्ध, सात्विक बनाने और आत्मा की तप्ति अमरत्व या मुक्ति की आवश्यकता भी अनुभव करने लगेंगे है।

वैज्ञानिकों ने जो प्रयोग किये हैं, वह चेतना के शारीरिक सम्बन्ध तक ही सीमित हैं उसके आगे की लक्ष्य-पूर्ति आध्यात्मिक उपादानों द्वारा ही सम्भव होगी । हमारे लिये यह सबसे बड़े सौभाग्य की बात होगी, यदि हम जीवन की इस अनिवार्य आवश्यकता को समझ जायें और लक्ष्य प्राप्ति के प्रयत्नों में जुट जायें ।

आत्मा शरीर से भिन्न है और स्वतन्त्र भी

वैज्ञानिकों क्षेत्रों में कुछ समय पूर्व तक मनुष्य को एक चलता-फिरता पेड़ कहा जाता था और समझा जाता था कि उसका अस्तित्व शरीर के साथ ही समाप्त हो जाता है । शरीरगत रासायनिक पदार्थों के सम्मिश्रण से जो चेतना उत्पन्न होती है, वही आत्मा है । शरीर का मरण होते ही आत्मा की भी समाप्ति हो जाती है ।

उन दिनों के वैज्ञानिक जीवकोशों की मध्यवर्ती नाभिकीय सत्ता को ही जन्मने, बढ़ने, बुढ़ियाने और मरने के लिए उतरदायी मानते थे, उसी के उभार और ढलान के साथ जीवन-मरण की संगति जोड़ते थे । आधुनिक कायशास्त्र में ऐसी ही विवेचना भी मिलती है ।

कहा जाता रहा है कि मानव शरीर जिन अगणित जीव कोशों से बना है । उनके भीतर एक लिबलिबा पदार्थ पाया जाता है । इसके भीतर जो सारतत्व है, उसे विज्ञान की भाषा में प्रोटोप्लाज्मा कहा जाता है । इस द्रव्य में तैरने वाले नाभिकीय अंश को 'न्यूक्लियस' नाम से जाना जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मरण के सम्बन्ध में शरीर विज्ञानियों का मत है कि जब प्रोटोप्लाज्मा का न्यूक्लियम निर्बल पड़ जाता है तो कोशिकाएँ सूखने लगती हैं, उनका वजन घट जाता है और कार्य क्षमता भी कम हो जाती है । यही बुढ़ापे की पृष्ठभूमि है । स्थिति बिगड़ते-बिगड़ते यहाँ तक पहुँचती है कि शरीर तन्त्र के संचालन में व्यवधान खड़े हो जाते हैं और मृत्यु की घड़ी आ पहुँचती है ।

पर अब वैसी बात नहीं रही । नवीनतम मान्यताओं ने शरीर में समाई हुई, किन्तु उससे सर्वथा भिन्न ऐसी एक स्वतन्त्र सत्ता का प्रत्यक्ष दर्शन किया है जो मरने के उपरान्त भी अपना अस्तित्व बनाये रहती है और शरीर के बिना भी शरीरधारियों जैसे स्वभाव और कर्म का परिचय देती है ।

फ्रांसीसी डॉक्टर हेनरी बाराहुक के निजी परिवार में दो मृत्युएँ हुई । एक बार उनका बच्चा मरा, दूसरी बार पत्नी । दोनों की मृत्यु होने से पूर्व उन्होंने परावर्तित किरणों की हलचल देखने वाले कैमरे फिट कराये । मृत्यु के समय उन यन्त्रों ने बताया कि इन क्षेत्रों में साधारण तरंग प्रवाह में भारी उथल-पुथल उत्पन्न हुई ।

डॉ. एफ.एम. स्ट्रा ने मरण के समय की स्थिति जाँचने के लिए विद्युत तरंगों का आँकलन करने वाले नवआविष्कृत उपकरणों का प्रयोग किया । उन्होंने पाया कि मरते समय मनुष्य शरीर से बाहरी क्षेत्र में कुछ विशेष प्रकार की हलचल मचती है ।

लन्दन के शरीरविज्ञानी डॉ. डब्ल्यू. जे. किल्नर ने अपनी पुस्तक 'दि ह्यूमन एटमोसफियर' में अपने कितने ही मरणकाल की स्थिति पर प्रकाश डालने वाले प्रयोगों का वर्णन किया है । सेन्ट जैम्स अस्पताल में उन्होंने मरणकाल में रोगियों के शरीर में एक आभामण्डल ऊपर उठता और उड़ता देखा, जो प्रायः एक फुट ऊँचा उठने के बाद विलीन हो गया ।

सोवियत विज्ञानी ग्रिश्चेन्को ने एक विशेष जैवप्लाज्मा की खोज की है । यह ठोस, द्रव, गैस और सामान्य प्लाज्मा की चार स्थितियों से भिन्न है । यह पाँचवीं स्थिति है । इसे वे परमाणु संगठनों से भिन्न मानते हैं । उसके अन्तर्गत ऐसे स्वतन्त्र इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन पाये गये हैं, जो सामान्य पदार्थों की स्थिति में भिन्न प्रकार के होते हैं । इस आधार पर जीवसत्ता का एक स्वतन्त्र अस्तित्व बनता है । इसे फिलहाल बायोप्लाज्मा नाम दिया गया है । प्रकारान्तर से यह जीवसत्ता के स्वतन्त्र अस्तित्व जैसी मान्यता है ।

परामनोविज्ञानी प्रो. मुलडोन ने अपने अन्वेषणों का सार संक्षेप 'दि प्रोजेक्शन ऑफ एस्ट्रल बॉडी' में प्रकाशित किया है । उनका कथन है कि—''शरीर के कलेवर में एक स्वतन्त्र चेतना का अस्तित्व है । वह इच्छानुसार इस परिधि से बाहर भी भ्रमण कर सकती है और जान सकती है कि दूरस्थ प्रदेशों में भी कहाँ क्या हो रहा है । स्थूल और सूक्ष्मशरीर परस्पर एक-दूसरे से गुँथे रहने पर भी पृथक्-पृथक् अपनी सत्ता बनाये रहते हैं । वे अपना काम मिल-जुलकर भी करते हैं और स्वतन्त्र रूप में भी ।'' कई घटना प्रसंग भी आत्मा के अस्तित्व सम्बन्धी इन प्रतिपादनों की पुष्टि करते हैं ।

बात सन् १९४४ की है । प्रख्यात मनोविज्ञानी कार्ल जुंग को दिल का दौरा पड़ा । दौरा बहुत भयानक था । किसी प्रकार उन्हें ऑक्सीजन और कपूर के इन्जेक्शनों के सहारे जीवित रखा जा रहा था । इस बीच उन्हें अनुभूति हुई कि प्राण शरीर से निकलकर हजारों मील ऊपर चला गया है । बिना पंखों के ही वे इच्छा मात्र से किसी भी दिशा में उड़ सकते हैं । थोड़ी ही देर में उन्होंने येरुसलम तथा दूसरे नगरों के ऊपर से चक्कर काट लिये । इसके बाद वे शरीर में वापस आ गये । कुछ समय बाद उन्हें अस्पताल से छुट्टी मिल गई ।

जुंग ने इस अनुभूति का विवरण विस्तारपूर्वक अपनी पुस्तक में लिखा है और कहा कि इस घटना के उपरान्त मेरे दृष्टिकोण एवं जीवनक्रम में भारी परिवर्त्तन हुआ है । मृत्यु का भय तो एक प्रकार से पूरी तरह ही निकल गया ।

गुह्यविद्या के विशेषज्ञ प्रो. कीरो अपने युवाकाल तथा आध्यात्मिक रहस्यवाद का मजाक उड़ाते और उसे अन्ध-विश्वास बताते रहे, पर कुछ घटनाएँ उनके जीवन में ऐसी घटीं जिनके कारण उन्हें अपनी पूर्व मान्यताएँ बदलने के लिए विवश होना पड़ा ।

मार्च १८९६ में कीरो दक्षिण अमेरिका में थे । इंग्लैण्ड में उन्हें पिता की भयंकर बीमारी का तार मिला और वे तत्काल चल पड़े । ६००० मील की दूरी पार करने में वायुयान को भी कुछ समय तो लगा ही । पहुँचने पर उन्होंने पिता को मरणासन्न पाया । सारा जोर लगाकर वे इतना ही कह पाये कि ''कुछ आवश्यक आर्थिक कागजात एक सालीसीटर्स फर्म के पास रखे हैं, उन्हें सम्भाल लेना ।'' फर्म का नाम बहुत याद करते रहे पर स्मृति ने साथ नहीं दिया । बता न पाये और प्राण छूट गये ।

प्रायः तीन वर्ष बाद इंग्लैण्ड में एक मित्र से मिलते समय उनके घर में प्रेतात्माओं के आह्वान का आयोजन देखने को मिला । कीरो चुपचाप बैठे देखते रहे । उसी माहौल में उन्हें ऊपर उड़ती हुई एक धुँधली आकृति दीखी । क्रमशः तस्वीर अधिक साफ होती गई वह उनके पिता की थी । वह बोलने भी लगी । इतना ही कहा—मरते समय जिस फर्म का नाम नहीं बता पाया था, वह 'डेविड एएड सन्स' है । बात समाप्त हो गई । आकृति गायब थी । दूसरे दिन कीरो उस फर्म में पहुँचे । सभी कागज उन्हें सुरक्षित मिल गये । उस दिन से उन्हें मृतात्माओं के अस्तित्व पर भरोसा हो गया ।

कीरो ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'टू घोस्ट स्टोरीज' में ऐसे ही अपने ऊपर बीते और दूसरों के साथ घटित हुए विवरण लिखे हैं उनकी सच्चाई में संदेह न होने की बात कही है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक बार वे एक भुतहे मकान में किरायेदार बने । प्रेतात्मा से उन्होंने एक मंजिल उसके लिए छोड़ देने का समझौता कर लिया और आये दिन के भयंकर उत्पातों से छुटकारा पा गये । दिलचस्पी बढ़ने पर वे इस ओर विशेष ध्यान देने लगे । प्रेतात्माओं से सम्पर्क साधने के प्रयत्न करने लगे । इस प्रयास में उन्हें सफलता भी मिली । कितनी ही मृतात्माओं का उनके सम्बन्धियों से वार्त्तालाप कराने में वे माध्यम बने । इस आधार पर उन्होंने कितने ही ऐसे विवरण बताये जो मृतकों के साथ लुप्त हो गये थे, पर बाद में उन जानकारियों को प्राप्त कर सम्बन्धियों ने भारी लाभ उठाये ।

सेन्ट ल्यूकस हास्पिटल के निर्देशक डॉ. शनमेकर डेवकर ने मरणासन्न रोगियों की मन:स्थिति का अनुसन्धान करने में पूरे उन्नीस वर्ष लगाये । इस अवधि में उन्होंने २३०० रोगियों का पर्यवेक्षण किया । जिनमें १४०० ऐसे थे जिनकी मन:स्थिति जानी जा सके । शेष मूर्छित या अस्त-व्यस्त स्तर की ऐसी मनोदशा में थे जो कुछ सही बता सकने के योग्य न थे ।

चिकित्सीय मृत्यु का आधार है—मस्तिष्क में प्राण वायु का न पहुँचना और उस क्षेत्र की हलचलों का समाप्त हो जाना । इसमें हृदय की धड़कन बन्द हो जाना भी सम्मिलित है । इस आधार पर मृतक घोषित किये गये व्यक्तियों में से कुछ ऐसे भी निकले जिनकी चेतना तीन घण्टे बीत जाने के बाद भी लौट आई और वे मृत से जीवित हो गये । यह कैसे हुआ इसका कारण शरीर विज्ञान के आधार पर शोधकर्ताओं को ज्ञात न हो सका । फिर भी उन मृत्यु से वापसी वालों ने अपने सुखद अनुभव सुनाये : इस मध्यान्तर काल में वे भयभीत या उद्विग्न नहीं वरन् अपेक्षाकृत प्रसन्न रहे ।

एटलांटा के एमोरी विश्वविद्यालय के प्रो. माइकेल सेवम ने भी अपनी खोजों में ऐसे लोगों का उल्लेख किया है जो मरने के बाद जी उठे और उस बीच उन पर जो बीती उसका विवरण सुनाते रहे । इनमें से एक भी ऐसा नहीं था जिसने उस बीच किसी प्रकार का त्रास मिलने की बात कही हो । सभी सूक्ष्म शरीर के सहारे वे पक्षी की तरह आकाश में उड़ते रहे और चित्र-विचित्र दृश्य देखते रहे । इस बीच उन्हें सुखद अनुभूतियाँ ही होती रहीं ।

'इन्टर नेशनल एसोसियेसन फॉर नियर डेथ' संस्था के निर्देशक समाजशास्त्री जान आडिट का कहना है कि भौतिक विज्ञानियों की यह मान्यता सही नहीं है कि मरने के साथ ही मनुष्य की सत्ता समाप्त हो जाती है और काया के साथ ही मनुष्य मर जाता है । मरते समय लौट-लौट के जीवन-मरण के झूले में झूलते रहने वालों ने जो अनुभूतियाँ व्यक्त की हैं उनसे प्रकट होता है कि शरीररहित स्थिति में भी जीव किसी ऐसे अदृश्य लोक में विचरण करता है जो आँखों से न देखते हुए भी अपने संसार जैसा ही है । साथ ही अति निकट भी ।

इन अन्वेषणों में से एक भी ऐसा नहीं है जिसे अविश्वस्त कहा जा सके । ऐसे अनेकानेक प्रमाणों के आधार पर अब वैज्ञानिक जगत भी आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकारने के लिए बाधित हो रहा है ।

आत्मा और शरीर की भिन्नता जानें ही नहीं, मानें भी

शरीर और आत्मा की पृथकता को जानते बहुत हैं, पर मानते कोई-कोई ही हैं । मरने के बाद भी जीवन का अस्तित्व बना रहता है, इसे प्रत्येक धर्मावलम्बी मानता है । हिन्दू-धर्म में पुनर्जन्म की मान्यता को पूरी तरह स्वीकार किया गया है । ईसाई, मुसलमान पुनर्जन्म तो नहीं मानते, पर मरणोत्तर-जीवन स्वीकार करते हैं । शरीर न रहने पर भी आत्माओं का बना रहना और बाध्य-लोक में प्रलय के दिन उनके क्रिया-कलाप को उचित-अनुचित ठहराया जाना उनके यहाँ भी स्वीकारा गया है । इन सभी स्थितियों में मृत्यु हो जाने के बाद भी आत्मा का अस्तित्व बना रहने की बात को माना गया है ।

अतीन्द्रिय विज्ञान भी क्रमश: इसी निष्कर्ष की ओर बढ़ रहा है कि कुछ समय पूर्व भौतिक-विज्ञानवेत्ता शरीर से पृथक् कोई स्वतन्त्र आत्मा न होने की जिस बात को जोरों के साथ कहते हैं, अब वह बात कुछ दमदार नहीं रही । पूर्वजन्मों की स्मृतियों वाले बालक उन ईसाई और मुसलमान-परिवारों में भी पाये गये हैं, जिनकी परम्परा पूर्वजन्म स्वीकार न करने की ही रही है । कितने ही बालक सङ्गीत आदि की ऐसी अद्भुत प्रतिभा अतिन्यून आयु में ही प्रदर्शित करते हैं, जिसका मानव मस्तिष्क विकास के स्वाभाविक-विकास के साथ कोई ताल-मेल नहीं खाता । इन अद्भुत उदाहरणों का समाधान—'पूर्वजन्मों की विद्या का अनायास प्रकटीकरण' मानने के अतिरिक्त और किसी प्रकार नहीं होता ।

भूत-प्रेतों के अस्तित्व को विज्ञान-समाज में अन्ध-विश्वास और बहम भर माना जाता रहा है, पर कठोर अन्वेषण की परीक्षा-कसौटी पर खरे उतरने वाले प्रमाण सामने आये हैं, जिनमें भूतात्माओं के अस्तित्व से इन्कार करने की गुञ्जायश नहीं रहती । प्रचलित भूतवाद के ढकोसलों में बहुत कुछ बहम हो सकता है, पर यत्र-तत्र ऐसे भी प्रमाण सामने आते हैं, जिन्हें देखते हुए मरण के उपरान्त भी आत्माओं के किसी रूप में बने रहने और हलचलें करने की बात को स्वीकार करना ही पड़ता है ।

नव-जात शिशुओं में माता का दूध पीने का स्थान ढूँढ़ निकालना आदि कितनी ही ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जिन्हें देखते हुए यही मानना पड़ता है कि पूर्व संचित ज्ञान के बिना यह सब अनायास ही नहीं हो सकता । आनुवंशिकी-विज्ञान में पैतृक-ज्ञान के फलित होने का प्रतिपादन अवश्य है, पर वह भी यहाँ आश्चर्यचकित है कि बिना प्रशिक्षण या बिना आधार के जीवधारियों के बालक कैसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवनोपयोगी रीति-नीति सहज ही विकसित कर लेते हैं? पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक आते-जाते रहने वाले पक्षी किस प्रकार मार्ग की दुर्लभ्य कठिनाइयों को नपे-तुले ढङ्ग से पार करते हैं और कुछ विशेष प्रकार की ईल जैसी मछलियाँ कैसे सहस्रों मील की यात्रा करके प्रणय-प्रजनन के लिए उपयुक्त स्थान पर जातीं और फिर वर्षों में पूरी होने वाली उस लम्बी यात्रा को पूरी करके यथास्थान वापिस लौटती हैं ? प्राणियों के सहजज्ञान की शृङ्खला इतनी विलक्षण है कि वंशानुक्रम की सम्भावनाएँ उसका समाधान कर नहीं पातीं । जीव-विज्ञानी अब यह सोचने लगे हैं कि इस संचित ज्ञान का आधार जीवधारियों के पुनर्जन्म से सम्बन्धित होना चाहिए ।

जो हो, किसी न किसी आधार पर प्राय: हर वर्ग का व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि मृत्यु के बाद ही जीवन का अन्त नहीं हो जाता, वरन् पीछे भी बना रहता है । शरीर के बिना भी जो जीवित रहता है, उसे आत्मा ही कहा जायेगा । इस प्रकार यह मरणोत्तर जीवन की मान्यता आस्तिकों तक ही सीमित नहीं रही, वरन् नास्तिक वर्ग भौतिक प्रमाणों के आधार पर इस तथ्य को क्रमश: स्वीकार करता चला जा रहा है ।

प्रश्न यह है कि जब शरीर से पृथक् आत्मा के अस्तित्व की जानकारी प्राय: सभी को है और हल्के भारी मन से उस तथ्य को किसी न किसी रूप में स्वीकार हो जाना है तो हमारा यह प्रयास क्यों नहीं होता कि आत्मा के ऐसे स्वार्थों की ओर भी ध्यान दिया जाय, जो शरीर से ही जुड़े हुए नहीं हो सकते । शरीर-सुख में इन्द्रिय-जन्य वासनाओं की तृप्ति ही मुख्य है । मन की माँग अहंता के पोषण करने वाली वस्तुओं तथा परिस्थितियों को जुटाने की रहती है । मोटे रूप से वासना और तृष्णा ही शरीर-सुख के दो आधार पाये जाते हैं, किन्तु देखा जाता है कि जिनके पास यह साधन प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं, उनका भी अन्त:करण इन उपलब्धियों से सन्तुष्ट नहीं होता, वरन् बहुत कुछ मिलने पर भी अशान्त, अतृप्त और उद्विग्न ही बना रहता है । अन्तरङ्ग के मर्मस्थल में यह असन्तुष्ट सत्ता कौन है? निस्सन्देह इसे आत्मा ही कहा जायेगा ।

शरीर की माँग—भूख, वासना और तृष्णा के साधन जुटने पर तृप्त होनी चाहिए । होती भी है । भरपेट स्वादिष्ट आहार मिल जाने पर फिर उसकी अधिक मात्रा खाते नहीं बनती ! काम-सेवन आदि की भी एक स्वल्प सीमा है । तृप्ति के बाद उस सन्दर्भ में भी जी ऊब जाता है, यही बात अन्य सब इन्द्रियों के बारे में भी है । तृप्ति के साधन जुट जाने के बाद भी जो घोर अतृप्त पाया जाता है, वह अन्तरात्मा ही है । उसकी आकांक्षाएँ शरीर से भिन्न हैं । जब तक उन्हें पूरा करने के साधन न जुटें, तब तक उसका असन्तुष्ट रहना स्वाभाविक भी है । शरीर और आत्मा की भिन्नता और उनके पारस्परिक सम्बन्धों, स्वार्थों को समझने का नाम ही अध्यात्म है । जब तक यह भिन्नता समझी-स्वीकारी न जाय, तब तक मात्र शरीर का पोषण करने वाले प्रयास ही होते रहते हैं । आत्मा की स्थिति और आवश्यकता समझे बिना उसके लिए कुछ सोचा किया भी कैसे जाय ?

इसे एक मनोवैज्ञानिक चक्रव्यूह ही कहना चाहिए कि हम अपने आप को भूल बैठे हैं । अपने आप को अर्थात् आत्मा को । शरीर प्रत्यक्ष है, आत्मा अप्रत्यक्ष । चमड़े से बनी आँखें और मज्जा-तन्तुओं से बना मस्तिष्क केवल अपने स्तर के शरीर और मन को ही देख समझ पाता है । जब तक चेतना-स्तर इतने तक ही सीमित रहेगा, तब तक शरीर और मन की सुख-सुविधाओं की बात ही सोची जाती रहेगी । उससे आगे बढ़कर इस तथ्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर सकना सम्भव ही न होगा कि हमारी आत्मा का स्वरूप एवं लक्ष्य क्या है और अतिरिक्त प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए क्या किया जाना चाहिए ? क्या किया जा सकता है ?

चिरस्थायी और गहन अन्तराल की तृप्ति को शान्ति कहते हैं और शरीर, मन की आकांक्षा-पूर्ति सुख कहलाती है । लोग सुख के लिए उछल-कूद करते रहते हैं, किन्तु शान्ति के सम्बन्ध में सोचते भी नहीं । फिर वह मिले कैसे ? अशान्त अन्त:करण की जलन, सुख-साधनों की कुछ बूँदों से शान्त नहीं हो सकती । यही कारण है कि धनाधीश, सत्ताधारी और सम्मानित व्यक्ति आन्तरिक दृष्टि से विक्षुब्ध ही बने रहते हैं । सूक्ष्म तत्त्वों के देखने-समझने के लिए एक विशेष दिव्य दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है, अध्यात्म की भाषा में उसे ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं । गायत्री-मन्त्र में इसी दिव्य प्रकाश को सविता का भर्ग मानकर उपास्य ठहराया गया है । यह दिव्य दृष्टि जगे तो शरीर और मन के घेरे से ऊँचे उठकर वस्तुस्थिति को देखना-समझना सम्भव हो सकता है ।

मोटी दृष्टि हमें शरीर और मन की परिधि तक ही सीमित रखती है । स्थूल पदार्थों के चिन्तन तक ही उसकी पहुँच है । आत्म-कल्याण की बात उस दृष्टि से सोची जाय तो पञ्च-तत्वों से बने धर्मोपकरणों का, तीर्थ-मन्दिर, दान, उपवास जैसे साधनों का ही उपयोग करने की ही बात सूझती है ।

आत्म-शान्ति का स्वरूप क्या हो सकता है ? उसकी कल्पना स्वर्ग में आहार, निवास, उपभोग के प्रचुर साधनों की परिधि तक ही कल्पना करती है । मानो मरने के उपरान्त भी आत्मा वर्तमान शरीर को ही धारण किये रहेगी और उन्हीं प्रसाधनों के उपभोग से काम चलेगा । यह बात सूझती ही नहीं कि जब वासना-तृष्णा की साधना-सामग्री इस लोक में तृप्ति न दे सकी तो तथाकथित स्वर्ग में बताई गई सुख-सामग्री से आत्मा का क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? इस चिन्तन को बचपन ही कहना चाहिए कि आत्म-शान्ति की आन्तरिक तृप्ति के सन्दर्भ में भी वासना-तृष्णा के साधन जुटाने वाले तथाकथित स्वर्गीय परिस्थितियों में ही आनन्द और सन्तोष मिलने की बात सोचें ।

आत्मा एक दिव्य चेतना स्फुलिङ्ग है, जिसे भावनात्मक उल्लास के साधनों में ही तृप्ति मिल सकती है । सद्भावनाओं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के प्रेरित सत्प्रवृत्तियों में ही आत्मा की शान्ति का उद्‌गम केन्द्र है । उत्कृष्ट स्तर का चिन्तन जब कार्यरूप में परिणत होता है । तब वह परिस्थिति बनती है, जिसमें आत्मा को शान्ति एवं तृप्ति प्राप्त हो सके । इस प्रकार के आनन्द की आरम्भिक झाँकी स्वाध्याय और सत्सङ्ग में मिल सकती है, जो काय-कलेवर और आत्मा की भिन्नता का, उनके पारस्परिक सम्बन्धों का विवेचन-विश्लेषण कर सके एवं वासना-तृष्णा की सुखलिप्सा से ऊँचे उठकर उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता अपनाकर आन्तरिक उल्लास की उपलब्धि का मार्ग-दर्शन कर सके । विषय-चर्चा से जिस प्रकार कानों को रस मिलता है, मनोरम दृश्य देखकर आँखें जिस प्रकार मुदित होती हैं, उसी प्रकार आत्म-चेतना को उस उद्‌बोधन में प्रसन्नता मिलती है, जिसके आधार पर अन्तःकरण को सद्‌भावनाओं से ओत-प्रोत बनाया जा सके । आत्म-शान्ति का द्वार तब खुलता है, जब सत्प्रवृत्तियों से भरी-पूरी गतिविधियाँ अपनाकर यह अनुभव किया जाता है कि जीवन के स्वरूप और लक्ष्य के अनुरूप गतिविधियाँ अपनाकर अपूर्णता से पूर्णता की ओर कदम बढ़ते चल रहे हैं । उच्च भावनाओं के अनुरूप क्रिया-कलाप जब बन पड़ता है तो जीवन-क्रम का वह स्वरूप बन जाता है, जिसमें आत्मा को शान्ति और तृप्ति प्राप्त हो सके, वह भव-बन्धनों से मुक्त होकर नर से नारायण बन सके ।

शरीर और आत्मा की भिन्नता को जानना उत्तम है, पर पर्याप्त नहीं । उस ज्ञान का लाभ तब है, जब काय-कलेवर के उचित, आवश्यक स्वार्थों तक ही सीमित रहा जाय और अपनी शेष शक्ति को आत्मिक-शान्ति की, आत्मिक-तृप्ति की, आत्मिक-प्रगति की दिशा में नियोजित किया जाय । कहना न होगा कि यह प्रयोजन उत्कृष्ट-चिन्तन और आदर्श-कर्तृत्व अपनाने से ही पूरा हो सकता है । जब आत्मा और शरीर की भिन्नता को उनकी विभिन्न आवश्यकताओं को समझ ही नहीं लिया जाता, वरन् शरीर की तुलना में आत्मा के महत्त्व को स्वीकार करते हुए आत्म-कल्याण के प्रयास में तत्पर हुआ जाता है, तब यह माना जाता है कि आत्म-ज्ञान की दिव्य किरणें अन्तःकरण में झाँकने लगीं और आत्मा का स्वरूप जाना ही नहीं गया, वरन् उसका लक्ष्य भी माना गया ।

आत्मा-परमात्मा की चर्चा वाग्-विलास के लिए आये दिन होती रहती है । उसकी सार्थकता तभी है, जब शरीर गत स्वार्थों को सीमित करके आत्म-कल्याण के लिए आवश्यक रीति-नीति अपनाने की आकुलता उभरने लगे ।

आत्मा किसी लिंग विशेष में रहने के लिए बाधित नहीं

मानवीय संरचना के नर-नारी दो भेद प्रत्यक्ष हैं । इतने पर भी यह विभाजन रेखा ऐसी नहीं है जिसे शाश्वत या सुस्थिर कहा जा सके । आत्मा जाति और लिंग रहित है । परिस्थितियों और संकल्पों के कारण ही वह अपना रंग-रूप गिरगिट की तरह बदलती रहती है । जो आज नर है, वह कभी नारी रहा हो इसमें आश्चर्य नहीं है । इसी प्रकार यह भी हो सकता है कि जो आज नारी है वह भविष्य में नर का चोला पहन ले । नाटकों के पात्र आच्छादन परिधान बदलकर कभी नर, कभी नारी भी बनते रहते हैं । जो कार्य सामयिक हो सकता है, उसका स्थायी रूप से बन पड़ना भी सम्भव है ।

ऐसी कितनी ही पौराणिक गाथाएँ हैं जिनमें एक ही व्यक्ति को नर और नारी की दोनों ही भूमिकाएँ सम्पन्न करते हुए बताया गया है । एक ही शरीर में एक साथ दोनों प्रकार की आकृति होने की बात शिव के अर्द्धनारीश्वर में दृष्टिगोचर होती है । शिखण्डी आकृति से नर और प्रकृति से नारी था । अभी भी जनखे या हिजड़े इसी प्रकार के होते हैं । उनकी जननेंद्रियाँ नपुंसकों या अविकसित मर्दों जैसी होती हैं, पर उनका स्वभाव आचरण नारियों में इतना अधिक मिलता-जुलता होता हैं, कि कई बार तो पहचानना तक कठिन हो जाता है । उसी प्रकार ऐसी अनेक महिलाएँ भी देखी जाती हैं जो शरीर संरचना की दृष्टि से नारी होते हुए भी आचरण सारे मर्दों जैसे करती हैं । उन्हें न नारी जैसे वस्त्र अच्छे लगते हैं और न इस प्रकार का जीवन-यापन करने में कोई उत्साह होता है ।

इन उदाहरणों से प्रकट है कि नर और नारी का विभाजन जीवात्मा की अभिरुचि, आदत या परिस्थिति के अनुरूप होता है । वह चाहे तो उसे प्रयत्नपूर्वक बदल भी सकता है ।

लिंग परिवर्तन की घटनाएँ होती तो पहले भी रहती थीं, पर उन दिनों इसकी कोई खोज-बीन नहीं होती थी और लज्जा का प्रसंग होने के कारण वह गोपनीय भी रखी जाती थी, पर अब वैसी बात नहीं रही । लिंग परिवर्तन की घटनाएँ प्रकाश में आती रहती हैं । वस्तुस्थिति का पर्यवेक्षण करने वाले इसमें कोई छल प्रयोजन भी नहीं देखते, विधाता की विविधता-विचित्रता ही देखते हैं । आये दिन होती रहने वाली ऐसी घटनाओं में से इन्हीं दिनों घटित हुई कुछ घटना इस प्रकार हैं—

खडगपुर बंगाल में एक उन्नीस वर्षीय विद्यार्थी ऑपरेशन द्वारा लड़की बनाया गया । उसके शरीर में दोनों ही जननेन्द्रियाँ थीं, पर मूत्र त्याग वह ऐसे छिद्र से करता था जो लड़कियों में ही होती है । एक दिन उसका पेट फूला तो अस्पताल पहुँचाया गया । मालूम पड़ा कि मूत्राशय की नली पुरुष छिद्र से हटकर नारी अवयव के साथ जुड़ गई है । ऑपरेशन से उसे ठीक किया गया तो वह लड़की बन गया ।

तेलवाड़ा के कैनाल अस्पताल में एक पच्चीस वर्षीय किसान युवक के पेट का ऑपरेशन किया गया । वह दर्द से चिल्लाता रहता था । ऑपरेशन करने पर प्रतीत हुआ कि उसके पेट में गर्भाशय था और मासिक धर्म का रक्त बाहर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न निकल सकने के कारण दर्द होता था । ऑपरेशन करके रास्ता बना दिया गया तो वह ठीक हो गया । पुरुष जननेंद्रिय नाम मात्र की थी सो उसे हटाया नहीं गया । अब वह लड़का—विधिवत् लड़की घोषित कर दिया गया है । ऐसी एक नहीं, अनेक घटनाएँ प्रकाश में आती रहती हैं जो जनसामान्य को चौंकाती हैं, पर ऐसी कोई अद्भुत बात उसमें है नहीं ।

बम्बई के प्लास्टिक सर्जन डॉ. मानेकशा के अस्पताल में दो युवक ऑपरेशन के उपरान्त युवती बने हैं । इनमें से एक मेहाम २३ वर्ष का और फैलिद २२ वर्ष का था । बहुत समय से वे दोनों अपने में नारी स्तर का परिवर्तन होने जैसी हलचलें अनुभव कर रहे थे, फलतः अस्पताल में दाखिल हुए । उनकी मान्यता सही पाई गई । थोड़े अंग परिवर्तन के उपरान्त उनका लिंग बदल गया । एक का नाम मैरिन और दूसरे का फरह रख दिया गया है जो उनके पुराने नामों से ही मिलते-जुलते हैं ।

बनारस के सर सुन्दर लाल अस्पताल में एक नपुंसक स्तर के लड़के को कई छोटे ऑपरेशनों के उपरान्त युवती घोषित कर दिया गया है । लड़के की चाल-ढाल तो लड़कियों जैसी थी, पर छोटा मूत्र मार्ग लड़की जैसा था । अस्पताल के सर्जन फणीन्द्र ने केस अपने हाथ में लिया और शल्य क्रिया द्वारा उसे पूर्ण नारी बना दिया गया ।

आस्ट्रेलिया में ऐसी कितनी ही घटनाएँ प्रकाश में आई हैं और किए गए यौन ऑपरेशनों के उपरान्त वे परिवर्तित लिंग के अनुरूप जीवनक्रम बनाने तथा विवाह करने में सफल रहे हैं ।

लन्दन के पुलिस विभाग में नर के नारी बन जाने का एक नया घटनाक्रम सामने आया है । बजपार्ट नगर का पुलिस अधिकारी बीमारी की लम्बी छुट्टी लेकर अस्पताल में पड़ा रहा । उसे जननेन्द्रियों में अवरोध और सूजन की शिकायत थी । निदान ऑपरेशन हुआ । उसमें नारी जननेंद्रिय उभरकर प्रकट हो गई उसे नारी घोषित किया गया और नाम मेरी दिया गया । पुलिस में उसकी नौकरी बनी रही पर ड्यूटी बाहर न जाकर दफ्तर में ही रहने की दी गई है ।

समलिंगी विवाहों का प्रचलन अब बढ़ रहा है । ऐसे केसों से उनमें से एक का रुझान भिन्न लिंग जैसा पाया गया है । ऐसे लोग इस प्रकार के अनुबन्ध में सन्तोष भी अनुभव करते हैं । न्यूयार्क की एक घटना है— बच्चे को जन्म देकर एक व्यक्ति की पत्नी मर गयी । उस पुरुष की छाती से दूध आने लगा । बच्चे को वह दूध पिलाने भी लगा । स्थिति और भी अधिक ठीक करने के लिए उसने डॉ. लियोवेलियन के अस्पताल में दाखिला लिया और दूध ग्रन्थियों को अधिक जाग्रत करने का ऑपरेशन कराया । अब वह नारी की तरह बच्चे को दूध पिलाता है । पहले की अपेक्षा दूध की मात्रा बढ़ गई है । इस व्यक्ति का लिंग परिवर्तन तो नहीं हुआ, पर अपने बच्चों के लिए माता और पिता दोनों की आवश्यकता पूरी करता रहा ।

इस प्रकार के घटनाक्रमों में नर का नारी बनाने के प्रसंग अधिक देखने को मिलते हैं । इसका अर्थ यह नहीं है कि नारियाँ नर बनती ही नहीं, पर तुलनात्मक दृष्टि से नर के नारी बनने जैसे उदाहरण ही अधिक देखने में आते हैं ।

मनोवैज्ञानिक एवं नृतत्व विज्ञानी इसका कारण यह बताते हैं कि नर के मन पर नारी का सौन्दर्य आकर्षण अधिक छाया रहता है । वह उसकी निकटता के लिए अधिक आतुर पाया जाता है, जबकि नारी में नर के प्रति आकर्षण एक सीमा में ही एवं संयत होता है । गृहस्थ प्रवेश के उपरान्त यह नाममात्र का रह जाता है । वह गृहलक्ष्मी या माता होने में गौरव अनुभव करती है और रमणी-कामिनी की भूमिका अन्यमनस्क भाव से ही निभाती है । कितनी ही विधवाएँ अपना वैधव्य बिना किसी दाग-धब्बे के वर्षों बिता लेती हैं । कितनी ही सधवाओं का दाम्पत्य जीवन उतना सरस, सन्तोषजनक न होते हुए भी पतिव्रत धर्म भली प्रकार निभता रहता है । इससे प्रकट है कि नारी का नर के प्रति न तो उतना आकर्षण होता है और न सतत् चिन्तन, जबकि आम आदमी के सिर पर अवसर न मिलने पर भी कामुक कामनाओं का भूत चढ़ा रहता है । यह ललक ही अचेतन मन में पड़ी रहने पर उसे शिखण्डी स्तर की ओर धकेलते-धकेलते अन्ततः लिंग परिवर्तन जैसी स्थिति तक पहुँचा देती है । यह शरीर परिवर्तन भर है ।

आत्मा का जाति लिंग से ऊपर होने का तथ्य स्पष्ट है । चिन्तन और व्यवहार का अभ्यास ही उसे किसी वर्ग विशेष में रहने का आदी बनाता है । यदि संकल्प उलटे तो परिवर्तन तत्काल न सही देर-सवेर में होने की सम्भावना रहेगी ही । इसी प्रकार लिंग विशेष के आधार पर किसी को वरिष्ठ-कनिष्ठ मानने की भान्यता भी भ्रामक है, यह स्पष्ट हो जाना चाहिए ।

दीप्तिमान आत्मसूर्य की विलक्षण सामर्थ्य

भारतीय मनीषियों ने आत्मा की तुलना सूर्य से की है और जीवात्मा का स्वरूप प्रकाश बिन्दु के रूप में वर्णित किया है । निराकार साधना मे आज्ञाचक्र के स्थान पर, भृकुटि मध्य केन्द्र में सूर्य सदृश तेजस्वी प्रकाश का ध्यान किया जाता है । उच्चस्तरीय अध्यात्म साधनाओं में, ज्योति अवतरण में प्राणावर्षण प्राणायाम में सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाश का ध्यान किया जाता है । सूर्य हमारे जीव जगत का केन्द्र है । सौर परिवार अपने इसी अभिभावक के इर्द-गिर्द परिक्रमा करते हैं । अणु की संरचना भी इसी प्रकार की है कि उसकी तुलना सौर परिवार से की जा सकती है । अणु का नाभिक एक छोटा सूर्य है । दोनों की रीति-नीति एवं क्रिया-पद्धति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एकसमान है । जीव और ब्रह्म की सत्ता भी इसी प्रकार समझी जा सकी है ।

सूर्य देखने में ही छोटा लगता है अन्यथा वह है बहुत बड़ा । धरती पर खड़े होकर देखें तो दिन में सूर्य और रात में चन्द्रमा दोनों ही लगभग एक-सी गोलाई के लगते हैं, पर दोनों के आकार-प्रकार और स्वरूप में बहुत अन्तर है । चन्द्रमा का व्यास २१६० मील है । जबकि सूर्य का घेरा ८,६४०० मील का है । इस व्यास वाले सूर्य के इर्द-गिर्द भी उसकी कई परिधियाँ हैं । दूरबीन से देखने पर सूर्य के इर्द-गिर्द पीले, गुलाबी रगों का एक वलय-सा दिखाई पड़ता है । १०-१५ हजार किलोमीटर की इस पट्टी को सूर्य का वर्ण-मण्डल क्रोमोस्फियर कहते है । लगभग १०,००० डिग्री तापमान के इस क्षेत्र में प्राय: नुकीली ज्वालाएँ उछलती हैं तथा उनकी ऊँचाई १०,००० किलोमीटर तक उभरती देखी गई हैं ।

मानवीय चेतना का अस्तित्व और महत्त्व भी सूर्य के समान ही असीम है । उसका वास्तविक विस्तार विश्व ब्रह्माण्ड के ही समकक्ष है । व्यक्ति का काय-कलेवर सीमित हो सकता है, पर उसका प्रभाव-परिणाम असीम क्षेत्र को आच्छादित करता है । सम्पर्क मे आने वाले प्राणी तथा पदार्थ तो प्रखर व्यक्तित्व की ऊर्जा से प्रभावित होते हैं, उसकी संकल्पशक्ति एवं विचारधारा आकाश में प्रवाहित होकर असीम क्षेत्र पर अपना प्रभाव डालती है ।

अपनी पृथ्वी तक सूर्य के प्रकाश की थोड़ी-सी ही किरणें आ पाती हैं, इसलिए हमे सूर्य के प्रकाश का बहुत छोटा अंश ही दिखाई व समझ पड़ता है । सूर्य प्रकाश की बहुत अधिक मात्रा तो अन्य दिशाओं मे ही प्रवाहित होती रहती है । मनुष्य को भी परमात्मा का स्वल्प सामर्थ्य वाला अंश ही प्राप्त हुआ है । इसे यों भी कहा जा सकता है कि परमात्मा सूर्य के प्रकाश का न्यूनतम अंश ही मनुष्य को, अपने भू-लोक को प्राप्त हुआ है । उसकी समग्र सत्ता जो असीम ब्रह्माण्ड में बिखरी पड़ी है, इतनी अधिक है कि उसे ठीक प्रकार सोच-समझ पाना तो दूर रहा, उसका अनुमान लगा पाना भी अपने छोटे-से मस्तिष्क के लिए असम्भव ही है । इतने पर भी अपनी सत्ता को तो जाना-समझा ही जा सकता है । अपने आत्म-स्वरूप का यदि बोध हो सके तो प्रतीत होगा कि परम चेतना की एक छोटी किरण होते हुए भी मानवीय चेतना कितनी प्रचण्ड है । इस प्रचण्डता का स्वरूप और उपयोग यदि समझा जा सके तो पुरुष से पुरुषोत्तम और नर से नारायण बनने की सम्भावना मूर्तिमान होकर सामने आ सकती है ।

महासूर्य और ध्रुव सूर्य की परिक्रमा करते हुए सौर मण्डल सहित अपना सूर्य ४,३२,००० वर्ष बाद उसी स्थान पर लौट कर आ जाता है । इतने पुराने समय की ग्रह गणना यदि किसी के पास हो तो दूसरी आवृत्ति में भी वह ज्यों ही मिलेगी । उसमें जरा-भी अन्तर नहीं होगा । वर्ष गणना का अभी पूर्णतया सही हिसाब नहीं बैठ सका है । इसी कारण वर्ष और दिन की संगति पूरी तरह ठीक न बैठने पर कोई सर्वांगपूर्ण पंचाग नहीं बन सका है । उसमें जो अन्तर पड़ता है उसे सुधारने और सही-सही गणना करने के लिए ही बार-बार घट-बढ़ करनी पड़ती है । फिर भी वह कभी पूरी नहीं होती और नये सिरे से उसकी गणना ग्रहों की स्थिति देखकर सही करनी पड़ती है । सही हिसाब ४,२३,००० वर्ष बाद ही बैठता है । इसीलिए प्राचीन मनीषियों ने इतनी अवधि का एक युग माना है ।

स्थूल दृष्टि से सूर्य-चन्द्रमा एवं तारक आदि बहुत छोटे दीखते हैं, परन्तु उनका यथार्थ स्वरूप एवं विस्तार विदित होने पर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । सम्पूर्ण सूर्य तो दूर रहा उस पर उठती रहने वाली ज्वालाएँ ही अपने आप में एक आश्चर्य हैं । पिछले दिनों एक विशिष्ट सूर्य ज्वाला देखी गई थी । यह दस-बारह मिनट में ही लगभग तीन लाख मील तक फैल गई और उसके कारण सूर्य की दीप्ति तीस गुनी अधिक हो गई ।

१३ दिसम्बर, १९७२ को भी ऐसा ही एक विस्फोट हुआ था जिसमें सूर्य के पृष्ठ भाग में प्रभामण्डल से भीमकाय बादल निकलते हुए दिखाई दिए । यह विस्फोट पृथ्वी के सम्पूर्ण विस्तार की अपेक्षा २० से ४० गुना तक बड़ा था और उसकी गति प्रति सेकण्ड ९६० किलोमीटर थी । सूर्य में ऐसी ज्वालाएँ उठती रहती हैं और ऐसे विस्फोट भी होते रहते हैं । सन् १९४० में तो ऐसी ज्वालाएँ ४० बार उठती देखी गई थीं । खगोलविदों का मत है कि सूर्य के आलोक का जो क्षेत्र है, वह भी निश्चित और नियमित नहीं है जब ज्वालाएँ उठती हैं तो वह बढ़कर १०० गुना तक विस्तृत हो जाती हैं । सूर्य का वर्णमण्डल एक प्रकाश क्षेत्र ही नहीं चुम्बक क्षेत्र भी है । उसी में तो वह अपने सौर परिवार के ग्रहों को बाँधे-जकड़े है । सौर परिवार के दूरवर्ती प्लेटो आदि ग्रहों तक उसका अत्यन्त थोड़ा-सा प्रकाश पहुँचता है । पृथ्वी पर तो उसका एक बटा दस लाखवाँ हिस्सा ही पहुँचता है, जबकि प्लेटो सूर्य से सर्वाधिक दूरी पर है । वहाँ सूर्य का कितना प्रकाश पहुँचा पाता होगा ? फिर भी उसका चुम्बकत्व प्लेटो पर भी काम करता है और अपनी परिधि के ग्रह पिण्डों को जकड़े रहता है ।

सूर्य प्रकाश का एक बटा दस लाखवाँ हिस्सा ही पृथ्वी तक पहुँच पाता है । शेष तो दूसरी दिशाओं में बिखर जाता है । बिखरकर वह किन दिशाओं में जाता है ? इसका अभी कुछ पता नहीं चल पाया है । सूर्य का किरीट (कोरोना) कितना विस्तृत और कितना प्रभावी है, इसे जानने के लिए कांशेनोग्राफ नामक यन्त्र कुछ ही समय पूर्व विनिर्मित हुआ है । वह अथाह सूर्य सागर की थाह लेने का प्रयास कर रहा है ।

सूर्य और पृथ्वी के सम्बन्ध में और भी रोचक तथ्य पिछले दिनों प्रकाश में आए हैं । खगोलविदों के अनुसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सूर्य भी निरन्तर फैलता और फूलता जा रहा है । सूर्य की तरह ही पृथ्वी का क्षेत्रफल भी निरन्तर बढ़ता हुआ अंकित किया गया है । लन्दन के न्यूकैसेल्स विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के अध्यक्ष प्रो. के. एस. क्रोर ने अपने शोध प्रबन्ध में यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी रहस्यमय ढंग से गुब्बारे की तरह फूलती चली जा रही है । जब वह बनी थी तब उसका जो आदि रूप था, उसकी अपेक्षा वह अब तक लगभग दुगुनी फूल चुकी है और भविष्य में भी उसका यह फुलाव क्रमशः तीव्र ही होता जाने वाला है ।

परमात्मा तो सूर्य की तुलना में असीम और अगणित गुना शक्ति सम्पन्न है । जब सूर्य की सत्ता और महत्ता को ही नहीं समझा जा सकता, तो परमात्मा की चर्चा किस आधार पर की जा सकती है ? आत्मसूर्य को भी यदि ठीक तरह समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि भौतिक ऊर्जा प्रभा बिखेरने वाला सूर्य जितना बड़ा और जितना सशक्त है, आत्मा की सीमा और गरिमा उससे किसी भी प्रकार कम नहीं है । आत्मा जब अपने स्वरूप में अवस्थित होकर शक्ति किरणें बिखेरता है और बड़े कदम उठाता है तो उसका स्वरूप देखते ही बनता है । महामानव, ऋषि, देवदूत और अवतारी आत्माएँ इसी स्थिति की होती हैं । उनकी क्षमता और सामर्थ्य लगती तो अवश्य विचित्र है, पर वह मूलतः हर मनुष्य में समान रूप से होती है । प्रयत्नपूर्वक उसे जो भी चाहे, जितनी भी मात्रा में विकसित कर सकता है ।

बनावट की दृष्टि से मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई विशेष अन्तर नहीं होता । सामान्यतया संरचना सबकी ही एक-सी होती है । हाथ-पैर, कान, नाक, आँख, मस्तिष्क की बनावट एक जैसी होते हुए भी कितने ही विद्वान, प्रतिभावान हो जाते हैं और अपनी उस विशेषता के सहारे क्रमशः प्रगति सोपानों पर चढ़ते जाते हैं, जबकि कितने ही पिछड़ेपन से ग्रस्त रहते, असहाय, दीन, दरिद्र और दुर्बल बने रहते हैं । प्रकृति प्रदत्त भरपूर सुविधाएँ होते हुए भी उनके सम्बन्ध में सही जानकारी एवं प्रयोग का विधान मालूम न होने से अवनति का अभिशाप ही परिणति बनता है । कितने ही ऐसे भी हैं जो प्रतिकूलताओं में भी आगे बढ़ने का मार्ग ढूँढ़ लेते, मिट्टी में से सोना उगा लेते हैं । प्रगति के शिखर पर चढ़े तथा अवगति के गर्त्त में पड़े देशों के बीच भारी अन्तर को देखकर इस सत्य को और भी अच्छी प्रकार परखा जा सकता है । आधुनिक तकनीक से अपरिचित रहने वाली कितनी ही जातियों को आज भी जंगली जीवन ही जीना पड़ रहा है । साधनों के करतलगत हो जाने मात्र से प्रगति सम्भव रही होती तो सभी मनुष्य एवं सभी देश जातियाँ एक जैसी होतीं, उनमें धरती और आसमान जितना अन्तर नहीं दिखायी पड़ता ।

आत्मसत्ता की गौरव गरिमा

मनुष्य ही नहीं अन्यान्य जीवों के लिए भी प्रकृति सम्पदाएँ खुली पड़ी हैं । उन्हें भी खुली छूट थी कि उनका मनमाना उपयोग करें, पर वह प्रवीणता, वह विशेषता अन्य जीव नहीं दर्शा सके, जिसे मनुष्य ने प्रदर्शित किया । मालामाल कर देने वाले हीरे, सोने की खदानें, खनिज सम्पदाएँ—पेट्रोलियम के भण्डार आदि उन जीवों के पैरों के नीचे भू-गर्भ में दबे पड़े हैं, पर उनमें से कोई भी उनका उपयोग न कर सका । पैरों से रौंदे जाने वाले धूल सदृश कणों से परमाणु बम तो मनुष्य ही बना सका है । वे बेचारे तो माचिस की एक तीली का भी निर्माण न कर सके । जो भी मिल जाय कच्चे खा लेने तथा जहाँ-तहाँ प्रकृति के अंचल में सो जाने का उपक्रम मात्र ही वे बना पाते हैं । प्रकृति की अनुकम्पा पर ही उन्हें पूर्णतः आश्रित रहना पड़ता है । करोड़ों वर्षों से वे असहाय, असमर्थों की स्थिति में हैं तथा आगे भी उस दयनीय स्थिति से उन्हें मुक्ति मिलने वाली नहीं है ।

इस दृष्टि से मनुष्य समझदार ही नहीं सौभाग्यशाली भी है । यह सौभाग्य रूपी अनुदान ही है कि उसे बुद्धि रूपी अतिरिक्त तथा बेमिसाल विभूति भी मिली है, जिसके सहयोग से वह पदार्थ के हर घटक का अध्ययन गम्भीरतापूर्वक कर सकता है । न केवल अध्ययन कर सकता है, बल्कि उनका मनमाने ढंग से सदुपयोग-दुरुपयोग भी कर सकता है । उस विलक्षण बुद्धि की जितनी प्रशंसा की जाय कम ही होगी, जिसकी अन्वेषक विशिष्टता ने एक से बढ़कर एक सामर्थ्यों के स्रोत ढूँढ़ निकाले । उनसे इस दुनिया की काया ही पलट गयी । एक सदी पूर्व के एवं आज के संसार में आकाश पाताल जितना अन्तर है, यह वस्तुतः उस अन्वेषक बुद्धि का ही चमत्कार है ।

पर उस विडम्बना पर भी कम आश्चर्य नहीं होता कि धरती से अन्तरिक्ष में छलाँग लगाकर उन्मुक्त आकाश में स्वच्छन्द विचरने वाला मनुष्य अपनी ही सत्ता से आज भी उतना ही अपरिचित है, जितना कि सदियों पूर्व था । अपने स्वरूप एवं सामर्थ्य का यथार्थ ज्ञान न होने से भटकाव ही हाथ लगता है । शरीर विज्ञान, भौतिक विज्ञान, जीव-विज्ञान, मनोविज्ञान जैसी विविध ज्ञान की धाराओं से जो ज्ञान मनुष्य के सन्दर्भ में प्राप्त हुआ है, वह अत्यल्प है । उनसे मानवीय सत्ता की सर्वांग-पूर्ण व्याख्या नहीं की जा सकती । जो ऐसा दम्भ भरते हैं, उन्हें अल्पज्ञ ही कहना चाहिए । इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मैटर की व्याख्या-विवेचना करने वाले भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा जीव-विज्ञान के माध्यम से एक चेतन जीवन की समग्र व्याख्या करना भी सम्भव नहीं है, पर आश्चर्य यह है कि विज्ञान जगत में ऐसा ही उल्टा प्रयास किया जाता है ।

मनुष्य का स्वरूप एवं उसके जीवन का प्रयोजन इतना उथला नहीं है जितना कि प्रायः समझा जाता है । मानवीय व्यक्तित्व के अनेक आयाम हैं । शरीर, मन और बुद्धि से भी ऊँची परतें हैं, 'सोल' आत्मा के रूप में, सबसे सामर्थ्यवान, रहस्यमय तथा विलक्षण आयाम है, जिसकी सम्वेदना और प्रेरणाओं की अनुभूति तो प्रायः हर व्यक्ति को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न्यूनाधिक किसी न किसी रूप में होती रहती है, पर उसके यथार्थ स्वरूप की थोड़ी भी जानकारी नहीं होती । रही होती तो जीवन की दिशा कुछ और ही होती । कमाने-खाने और इसी ढर्रे में खप जाने जितने मात्र में ही अमूल्य जीवन की इतिश्री न हो जाती ।

कहना न होगा कि भौतिक जगत के प्रति सजग होते हुए भी संसार आत्म-विस्मृति के एक भयंकर युग से गुजर रहा है । उस विस्मृति का ही परिणाम है कि मनुष्य-मनुष्य से लड़ रहा है । बुद्धि दूसरों को गिराने एवं मारने में ही अपनी दुर्बुद्धि का ही परिचय दे रही है । साधन-सुविधाओं का अम्बार होते हुए भी मनुष्य की आन्तरिक दरिद्रता, दुःख, अशान्ति एवं असन्तोष की मात्रा दिनों-दिन बढ़ती जा रही है ! मरघट के पिशाचों जैसी उसकी स्थिति हो गयी है । जितने साधन संसार में उपलब्ध हैं, मात्र उतने से ही स्वर्गीय परिस्थितियों का आनन्द उठा सकना सम्भव था, पर उस विस्मृति की विडम्बना को क्या कहा जाय ? जिसके रहते मनुष्य को नारकीय यन्त्रणा सहनी पड़ रही है ! सृष्टि का मुकुटमणि, राजकुमार होते हुए भी उसे दासों जैसी जिन्दगी व्यतीत करनी पड़ रही है । यह दासता वस्तुतः अपने ऊपर मनुष्य ने स्वयं ही थोपी है ।

आत्मविस्मृति का घटाटोप छा जाने का एक कारण और भी है । बुद्धिवादी युग की एक मनोवृत्ति-सी बन गयी है कि जो बाते दार्शनिक तर्कों अथवा वैज्ञानिक तथ्यों के ढाँचे में नहीं आती, उन्हे निरर्थक, अप्रामाणिक ठहरा दिया जाता है । बात इतने ही तक सीमित नहीं रहती, उनकी सत्ता को मानने तक से इन्कार कर दिया जाता है । यह बुद्धिवादी पूर्वाग्रह है, जिसके रहते आत्मसत्ता के स्वरूप जैसे गम्भीर विषयों का रहस्योद्घाटन सम्भव नहीं हो पाता । विश्लेषणात्मक बुद्धि की मोटी पकड़ सीमा के बाहर होते हुए अतीन्द्रिय सामर्थ्य, दूरदर्शन, भविष्य दर्शन, विलक्षण इच्छाशक्ति के प्रमाण अनेक व्यक्तियों को समय-समय पर मिलते रहे हैं, जो आत्म-सत्ता की असीम सामर्थ्य का ही परिचय, प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । इसके बावजूद भी वैज्ञानिक ऐसी किसी अदृश्य सामर्थ्यवान—सूक्ष्म सत्ता के अस्तित्व के प्रति शंकालु बने हुए हैं, जो शरीर, मन तथा बुद्धि की संचालक हैं । इसे पूर्वाग्रह नही तो और क्या कहा जाय ?

पर यदि सत्य की खोज करनी हो तो सत्यान्वेषियों को इस पूर्वाग्रह से मुक्त होना ही होगा । आत्म-सत्ता के अनुसन्धान के लिए नये आधार, नये मापदण्ड तैयार करने होंगे । जिस विज्ञान एवं उसके उपकरणों के माध्यम से शरीर के सूक्ष्म घटकों, केन्द्रों का सही स्वरूप, क्रिया-प्रणाली नहीं ज्ञात हो सकी, मस्तिष्क की शक्ति का सात प्रतिशत ही जाना जा सका, उनसे उस सूक्ष्मतम सत्ता का परिचय कैसे मिल सकता है, जो चैतन्य है, अगोचर है, निराकार है । सम्भव है, सत्य की खोज के लिए निर्धारित सभी स्थूल वैज्ञानिक मापदण्ड जो बुद्धि द्वारा निर्धारित किये गये हैं, उलटने पड़ें और उनके स्थान पर ऐसे आधार खड़े करने पड़ें जो बुद्धि की नहीं मन और अन्तःकरण की उपज हों, जिनका मूलभूत आधार ही सम्वेदनापरक हो ।

आज का युग, विज्ञान एवं मनोविज्ञान की सन्धि वेला के एक नाजुक दौर से गुजर रहा है । एक प्रौढ़ ही चला, दूसरे का बचपन आरम्भ हो रहा है । मनःशास्त्र ने इच्छाओं, आकांक्षाओं, सम्वेदनाओं को व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण प्रेरक तत्वों के रूप में स्वीकार किया है तथा सम्भावना व्यक्त की है कि इनकी व्यक्तित्व गठन में प्रभावी भूमिका हो सकती है, पर आज भी यह अविज्ञात ही है कि एक-सी परिस्थितियाँ एक जैसे दो व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न प्रकार से क्यों प्रभावित करती हैं ? भली-बुरी इच्छाओं, आकांक्षाओं को उत्पन्न करने में किनकी प्रमुख भूमिका है—परिस्थितियों की अथवा मनःस्थिति की ? यदि मनःस्थिति की, तो एक-सी परिस्थितियों में ही वह दो व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न तरह की कैसे विनिर्मित हो जाती है ? आनुवंशिकी घटकों पर टालकर कभी सन्तोष कर लिया जाता तथा यह कहा जाता था कि जन्मजात प्रतिभाओं, विलक्षणताओं के लिए जिम्मेदार आनुवंशिक तत्व हैं, पर उस टालमटोल में अब कोई विशेष दम रहा नहीं । क्योंकि समस्त आनुवंशिक सिद्धान्तों को झुठलाते हुए ऐसे विपरीत प्रमाण भी मिल चुके हैं, जिसका कोई तुक्का उन सिद्धान्तों से नहीं बैठता है । सम्भव है, कल तक जिसे अन्ध-विश्वास कहकर तथाकथित बुद्धिजीवियों द्वारा उपहास उड़ाया जाता रहा, उस कर्मफल सिद्धान्त में ही उपरोक्त रहस्यों के सूत्र विद्यमान हों ।

वास्तविकता तो यह है कि अब तक ऐसी मशीन का निर्माण न हो सका है, जो भावनाओं, सम्वेदनाओं का यथार्थ स्वरूप बता सके । गणित के फार्मूलों, रसायनशास्त्र के नियमों द्वारा स्नेह-प्यार की व्याख्या-विवेचना नहीं की जा सकती । उन्हें किस तरह घटाया, बढ़ाया तथा दिशाबद्ध किया जा सकता है, यह तो बहुत दूर की बात है । ऐसी हालत में उस भौतिक विज्ञान तथा उसकी विभिन्न-शाखा प्रशाखाओं से यह कैसे आशा की जा सकती है कि वे आत्मा के स्वरूप का रहस्योद्घाटन कर सकेंगे? वस्तुतः ऐसा सम्भव भी नहीं है ।

प्रसिद्ध विचारक एलेक्सिस कैरेल का वह कथन जरा भी अत्युक्तिपूर्ण नहीं जान पड़ता कि—"यांत्रिक आविष्कारों की वृद्धि से किसी विशेष लाभ की अब अपेक्षा नहीं करनी चाहिए । जब तक मानवीय सत्ता अविज्ञात बनी रहेगी, उन उपलब्धियों का सही लाभ नहीं उठाते बन पड़ेगा ।" इस बात में किंचित मात्र भी शंका नहीं की जा सकती कि यांत्रिकी, भौतिकी, जैविकी तथा रसायन शास्त्र जैसे अनेकानेक विषयों के अगाध ज्ञान से मानवय जाति के नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास में शांति, सुरक्षा एवं पारस्परिक सौहार्द्र बढ़ाने में थोड़ी भी मदद नहीं मिल सकी है, न आगे मिलने की सम्भावना है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्म-सत्ता का रहस्योद्घाटन युग की एक परम आवश्यकता है । ऐसी आवश्यकता जिस पर मनुष्य जाति का भविष्य अवलम्बित है । मनुष्य अपने को पंचतत्वों से बना शरीर तथा धमाचौकड़ी मचाने तथा विस्फोटक परिस्थितियाँ रचने वाली बुद्धि भर मानता रहा तो भारी भूल होगी । चली आ रही इस मान्यता की परिणति सामने है, नरपशुओं की भाँति एक-दूसरे का अस्तित्व मिटा डालने के लिए हर मनुष्य हाथ बाँधे खड़ा है । उस मान्यता को उलटने से ही इस संकटपूर्ण स्थिति का अन्त होगा । मान्यता भी तब बदलेगी जब मानवीय सत्ता का सही बोध होगा । कहना न होगा इसके लिए ऋषि तुल्य आत्मानुसंधान को उस गहन ज्ञान साधना में प्रवृत्त होना होगा, जिसे 'साइन्स ऑफ सोल'—'आत्म-विज्ञान' के नाम से प्राचीन काल से जाना जाता रहा है । चेतना के विज्ञान के रूप में वह आज भी उतना ही प्रामाणिक एवं उपयोगी है जितना प्राचीनकाल में था । आवश्यकता इतनी भर है कि इस क्षेत्र में उसी गम्भीरता से अनुसन्धान किया जाय जितना कि भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में किया जाता है ।

सच्चे हृदय से आत्मा का उद्बोधन करें

आत्मा के उद्धार के लिए शास्त्रों और उपनिषदों में काफी साधन और ज्ञान पड़ा हुआ है, किन्तु साहित्य का स्वाध्याय कर लेना, उसका ज्ञान बढ़ाकर उपदेश कर लेने से किसी को आत्मसात् नहीं हो जाता । गीताकार का स्पष्ट निर्देश है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमैवैष वृणुते तेन लभ्य स्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥

अर्थात्—यह आत्मा बहुत उपदेश कर लेने से नहीं मिल जाती । बहुत ज्ञान और शास्त्रों के सुन लेने से भी वह प्राप्त नहीं होती । यह आत्मा, आत्मा को वरण करने से ही जानी जा सकती है ।

आत्मा सत्य है, शाश्वत् है और शक्ति का स्वरूप है, पर जब तक वह सांसारिक आत्म-कल्पनाओं से विमुक्त नहीं हो जाती, वह अपने वास्तविक रूप में प्रकट नहीं हो सकती । शास्त्रों का सत्साहित्य स्वाध्याय और ज्ञानसंवर्द्धन भी इस कार्य में सहायक है, पर केवल ज्ञान की प्राप्ति ही पर्याप्त नहीं है। बुद्धिमान् लोग ज्ञान का दुरुपयोग करते हुए भी देखे जाते हैं । ज्ञान के द्वारा यदि आत्मलाभ सम्भव रहा होता तो अनेक पाश्चात्य दार्शनिक बहुत ज्ञानवान् हुए हैं । वे सब आत्मज्ञानी रहे होते और यदि इन देशों में थोड़े-भी आत्मज्ञानी रहे होते तो आज उनकी दशा ही भिन्न होती । भौतिक दृष्टि से समृद्ध बनकर भी बुराइयों का जाल फैलाकर यह देश तब न दूसरों के लिए अभिशाप बनते वरन् स्वयं भी आध्यात्मिक सुखों का रसास्वादन कर रहे होते ।

औरों को उपदेश करने की अपेक्षा अपना उपदेश आप कर लिया जाये, औरों को ज्ञान देने की अपेक्षा स्वयं के ज्ञान को परिपक्व कर लिया जाये, दूसरों को सुधारने की अपेक्षा अपने को ही सुधार लिया जाये तो अपना भी भला हो सकता है और दूसरे लोगों को भी कर्मजनित प्रेरणा देकर प्रभावित किया जा सकता है । लोग यह कम देखते हैं कि आप कहते क्या हैं ? उपदेशक की वार्त्ता का नहीं, उसके व्यक्तिगत जीवन का प्रभाव अधिक होता है ।

आत्मज्ञान की परिपक्वता और गुणों के विकास के लिए आत्म-सम्बोधन का महत्त्व है । सच्चे हृदय से आत्मा का उद्बोधन होता रहे तो मनुष्य अनेक बुराइयों से बचा रह सकता है और आत्म-कल्याण के मार्ग में निष्ठापूर्वक आरूढ़ बना रह सकता है । ईश्वर-भक्ति भी दरअसल आत्म-उद्बोधन का विकसित रूप ही है जो विचार की अपेक्षा अधिक सरल है । किसी विषय को लेकर उसकी गहराई में तन्मय हो जाना और नये-नये तथ्यों की खोज कर लेना सामान्य व्यक्तियों के लिए बहुत कठिन है । कोई थोड़े ही ज्ञान-वान्, अर्चनानिष्ठ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो विचार-रत रहकर किन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर पाते हैं । प्रारम्भिक अवस्था में विचार आत्म-निर्माण में भी बड़ा सहायक होता है, पर जब किसी के लिए यह स्थिति सम्भव न हो तो उसे भावनाओं का आश्रय तो लेना चाहिए परमात्मा के गुणों का रूप, आकृति, दया, करुणा, उदारता और रक्षा आदि के कार्यों का अपने आप मनन, भजन अथवा कीर्तन करना ही भावना का प्रतीक है ; अपेक्षाकृत यह अधिक सरल प्रक्रिया है और इस मार्ग के द्वारा भी अपने आपको सत्य से उस समय तक जोड़े रखा जा सकता है, जब तक सत्यसिद्धि न हो जाये अथवा फिर कभी बुराइयो की ओर आकृष्ट हो जाने का भय शेष न रहे ।

ईश्वर की प्राप्ति के लिए जो महत्त्व ईश्वर को उद्बोधन करने का है । आत्मज्ञान के मुमुक्षुओं के लिए आत्मा के उद्बोधन का भी वही महत्त्व है । जिस प्रकार भगवान् का भक्त यह कहता है—हे ईश्वर! तू सर्वशक्तिमान् है, सर्वव्यापक है, विश्व नियन्ता और सबको धारण करने वाला तू ही है, तूने ही इस सृष्टि की रचना की, आकाश बनाया, समुद्र, पर्वत, नदियाँ, वृक्ष, फल, फूल और तरह-तरह के जीव बनाये हैं । तू परम दयालु है, पर ममतारहित है, तेरे वश में सम्पूर्ण लोकपाल और दिक्पाल हैं फिर भी तू अहंकार रहित है । इस प्रकार की अर्चनाएँ भक्त की भावनाओं को जीवन प्रदान करती हैं, उसकी ईश्वरनिष्ठा बढ़ती है और वह बुरे विचारों से बचता हुआ निरन्तर कल्याण की ओर अग्रसर होता रहता है ।

यह उद्बोधन सच्चे हृदय से आत्मा के लिए किया जाये तो आत्मा की अपनी सम्पूर्ण विशिष्टताएँ हम पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशित करता है और इस प्रकार आत्म-भावना की पुष्टि भी होती रहती है । ऐसी भावनाएँ साधना-काल में, चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते, काम करते हर समय की जा सकती हैं । आत्म-शोधन का यह अनुपम और पूर्ण मनोवैज्ञानिक तरीका है ।

'हे आत्मा ! तू अपनी ओर देख, तेरी शक्तियों और सामर्थ्यों का क्या ठिकाना ? तू अनन्त है, महान् है, कण-कण में तू ही तो समाया हुआ है । जीव-जन्तुओं में कलरव करते हुए पक्षियों में, लहलहाते हुए खेतों में, महकते हुए फूलों में, धरती-आकाश, जल-थल, सर्वत्र तू ही तू विराजमान है, तेरी ही आभा फैल रही है । देख अपने इस विराट् स्वरूप को तो देख । इसे देखकर तू आनन्द से भर जायेगा ।'

'हे जीव ! तू शुद्ध और सौन्दर्ययुक्त है फिर भी धिक्कार है तुझे, जो इन तुच्छ विषय-भोगों की ओर आकर्षित हो रहा है । उनकी स्थिति क्या है, इस पर कभी विचार किया है? क्या तुझे यह मालुम नहीं कि यह तरह-तरह के भोज्य पदार्थ, जिनकी ओर तू ललचाई आँखों से देख रहा है, स्वास्थ्य को गिराने वाले हैं । इन विषय-भोगों के शक्तिक्षय करने वाले स्वरूप को क्या तू अभी तक नहीं पहचान सका, शरीर की नश्वरता का तूने जरा भी ध्यान नहीं दिया—क्या यह तेरे लिए अशोभनीय बात नहीं है ?'

'ऐ जीव ! विचार कर, कितने सौभाग्य से तुझे यह मानव देह उपलब्ध हुई । तुझे यह भी मालूम नहीं कि तू आया कहाँ से ? कहाँ जा रहा है ? कितना अच्छा होता, यदि तू अपने आप को जानने का प्रयत्न करता और इस मनुष्य-जीवन का सदुपयोग करता । उदर-पूर्ति तो असहाय पशु-पक्षी भी कर लेते हैं, बच्चे तो ये जानवर भी पैदा कर लेते हैं । आलस्य और निद्रा में मस्त पड़े रहना व समय को गँवाना तो पशु जानते हैं । तू भी इन्हीं सांसारिक क्रिया-कलापों में सीमाबद्ध रहा तो तेरी विशेषता भी क्या रही ? सुख आखिर कब तक रहेंगे ? शरीर कब तक साथ देगा ? धन कब तक ठहरेगा ? यह तो आने-जाने वाले पदार्थ हैं, इन्हें तो तू त्यागपूर्वक ही भोग, आसक्त न हो, आसक्त होने से लाभ भी क्या ? तू नहीं तो यह पदार्थ ही एक दिन तुझे छोड़ जायेंगे । विचार कर—शरीर नहीं रहा तो धन किसके साथ गया । पद, सौन्दर्य और सांसारिक सुखों को आज तक कौन अपने साथ ले पाया है ? इन्हें तू यहीं तक सीमित रख और शाश्वत् स्वरूप को जानने की इच्छा कर !

"देख तू माया में, अज्ञान में, अविद्या में, रोग-ग्रस्त हो कर अपने स्वरूप से भ्रष्ट हुआ है । अब तुझे अपने आपको पहचानने की इच्छा हुई है तो इसे तू अपना महान् सौभाग्य ही मान । पर यह और जान ले कि यह कार्य इतना आसान नहीं है, तुझे पग-पग पर कठिनाइयों से लड़ना पड़ेगा, बुराइयों को मारना पड़ेगा और मन की दुष्प्रवृत्तियों को मोड़कर सन्मार्ग की ओर चलना-पड़ेगा । पथ दुर्गम है, संघर्ष से भरा है, इनसे लड़ने के लिए तू अपना गांडीव धारण कर, अपने पुरुषार्थ का आह्वान कर, क्योंकि यह अनन्त शक्ति वाला आत्मा केवल साहसी व्यक्तियों को ही उपलब्ध हो पाता है । शूरवीर ही इस पथ का अनुसरण कर पाते हैं ।"

इस प्रकार के विचारों का उद्बोधन निरन्तर चलते रहना चाहिए । संसार में फैले हुए कलुषित विचारों का मन में प्रभाव न पड़े, ऐसा सम्भव नहीं । यह आत्मोपदेश बहुत सरल है और उसे हृदयङ्गम भी किया जा सकता है । प्राप्त ज्ञान का सदुपयोग भी इसी से सम्भव है । आत्मा के स्वरूप की प्रतिष्ठा करने से वैसे गुणों का विकास होने लगता है । जीवात्मा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अपने आपको जिस स्थिति का अनुभव करने लगता है, उसकी मनोदशा का झुकाव जिस तरफ हो जाता है उधर ही उसकी उन्नति होने लगती और अभ्यास होने पर उस स्थिति की पूर्णता को उपलब्ध कर लेता है ।

आत्मा को देखें, खोजें और समझें

ये आत्मापहतपाप्मा विमत्सरो विमृत्युर्विशोको-विजिघत्सोऽपिपास:, सत्य काम: सत्य संकल्प: सोऽन्वेष्टव्य:, स विजितव्य ।

"जो निष्पाप, जरारहित, अमर्त्य, शोक रहित, भूख-प्यास से रहित, सत्य काम, सत्य संकल्प है और जानने योग्य है, उसी आत्मा को जानना और खोजना चाहिए, उसी की जिज्ञासा करनी चाहिए ।"

आत्मा को क्यों खोजना चाहिए और उसकी ही जिज्ञासा क्यों करनी चाहिए ? इसका उत्तर यही है कि संसार का वास्तविक तत्व आत्मा ही है । जो जरा-मरण से रहित, शोक से मुक्त, नित्य और अविनाशी है । उसका ज्ञान हो जाने से मनुष्य उसी की भाँति ही भय, शोक, चिन्ता और मरण धर्म से मुक्त हो जाता है, अजर और अमर होकर संसार के लोगों एवं अनुभवों से ऊपर उठकर चिरअविनाशी पद प्राप्त कर लेता है । इस नाशवान मानव-जीवन की इससे बड़ी और इससे ऊँची उपलब्धि अन्य क्या हो सकती है ?

मनुष्य एक ऐसा आनन्द प्राप्त करना चाहता है जो सत्य, अपरिवर्तनशील और अविनाशी हो । संसार के क्षणभंगुर सुखों का उपभोग करने से उसकी यह प्यास पूरी नहीं होती । बल्कि इन उपभोगों से उसकी प्यास और भी बढ़ जाती है । उसे अन्त में अशांति और असन्तोष का भागी बनना पड़ता है । इन्हीं नश्वर और मिथ्या भोगों में आनन्द की खोज करता-करता वह जरा को प्राप्त करता है और फिर मृत्यु को । सारा बहुमूल्य जीवन योंही व्यर्थ में चला जाता है । इसी अवधि में वांछित आनन्द की निधि रूप यदि आत्मा की खोज कर ली जाय, तब न तो जरा का भय रहे और न मृत्यु का । मनुष्य जीवन में भी उस शाश्वत् आनन्द को पाता रहे और उसके बाद तो वह परमानन्दस्वरूप ही हो जाये ।

हम सब जीवन में नाना प्रकार की सम्पति, नाना प्रकार के पदार्थ, ऐश्वर्य के साधन, उपकरण तथा वैभव आदि एकत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं । इस संग्रह में निश्चय ही एक उद्देश्य होता है । यह पुरुषार्थ योंही किसी पागलपन से प्रेरित होकर नहीं किया जाता और न यह सब संस्कार अथवा अभ्यासवश ही किया जाता है । इसके पीछे एक उद्देश्य, एक मन्तव्य रहता है । वह मन्तव्य क्या होता है ? वह होता है आनन्द की खोज । हम सबको यह भ्रम रहता है कि यदि हम किसी भाँति वैभवशाली बन जायें, हमारे पास धन और सम्पति की बहुतायत हो जाये तो हम अवश्य सुखी हों जायँ, हमारे लिये आनन्द की कमी न रहे, किन्तु क्या हमारा यह उद्देश्य पूरा हो पाता है ? नहीं, निश्चित रूप से नहीं ।

यदि धन, सम्पति और वैभव-विभूति से ही आनन्द के उद्देश्य की पूर्ति हो सकती होती तो इस विशाल संसार में न जाने कितने धन-कुबेर पड़े हैं । ऐसे-ऐसे धनवान इस धराधाम पर मौजूद हैं, जिनके धन-वैभव की कोई गणना कोई परिमाण नहीं है, जिनकी नित्यप्रति करोड़ों की आय है और जिनका आर्थिक साम्राज्य देश-देशान्तरों में फैला पड़ा है । वे सभी सुखी और संतुष्ट होने चाहिए थे, पर देखने में ऐसा आता है कि वे भी अन्य जन-साधारण की भाँति ही आनन्द के लिये लालायित रहते हैं । उस विपुल वैभव के बीच भी रोते-कलपते और शोक मनाते दृष्टिगोचर होते हैं ।

तथापि, इस निरर्थकता को देख-सुन और अनुभव करने के बाद भी मनुष्य इन्हीं वैभवों की ओर ही दौड़ता रहता है । अपने जीवन की लगभग सारी अवधि इन्हीं वंचनाओं की प्राप्ति में लगा देता है । इसके दो कारण हैं । एक तो यह कि रात-दिन इन्हीं को लक्ष्य बनाकर जुटे रहने से, इन्हीं के बीच रहने और इन्हीं का चिन्तन व्यवहार करते रहने से इनके साथ मनुष्य की आसक्ति और ममता का भाव जुड़ जाता है । धीरे-धीरे यह अभ्यास इतना गूढ़ हो जाता है कि जीवन का एक अंग ही बन जाता है ।

मनुष्य इन्हीं उपकरणों, साधनों और सामग्रियों को ही सर्वस्व मान बैठता है । युग-युग का, जन्म-जन्म का अभ्यास छूटना सरल नहीं होता । वह स्वभाव बन जाता है और तब मनुष्य उसकी निस्सारता और हानियों को जानता, मानता हुआ भी उन्हीं की ओर उत्सुक बना रहता है । दूसरी बात यह कि इस सबसे परे जो अविनाशी और चिदानन्दमय आत्म-तत्व है, उससे उसका परिचय नहीं होता । जिसको वह जानता ही नहीं उसके प्रति आकर्षित होने का प्रश्न ही नहीं । आकर्षण तो उसी के प्रति होता है जिस का ज्ञान होता है और जिससे पहचान होती है । सांसारिक वैभव और भोगों से परे भी एक ऐसा सत्य तत्व है जिसे आनन्द का निवास माना गया है । यदि मनुष्य को यह ठीक-ठीक पता चल जाये तो वह आनन्द की प्राप्ति के लिये उसकी ओर भी आकर्षित हो । दो चीजें सामने होने पर ही तो कोई एक को छोड़ कर दूसरी या एक के साथ अन्य का भी चुनाव कर सकता है और तब जो उसके लिये अधिक उपयोगी हो उसे ही ग्रहण कर दूसरी को छोड़ सकता है ।

केवल एक सांसारिक वैभव के सामने होने और सम्भव मानने के कारण मनुष्य उन्हीं को दौड़-दौड़ कर पकड़ता है और उन्हीं में आनन्द की खोज करने का प्रयत्न करता है । असफल होता है, लेकिन फिर उन्हीं को पकड़ता और फिर असफल होता है । आत्म का ज्ञान न होने से यह प्रक्रिया उसके लिए एक विवशता बनी हुई है । यदि आत्मा की प्राप्ति हो जाये तो निश्चय ही उसके इस स्वभाव में परिवर्तन हो जाये और तब उसका उद्देश्य भी पूरा हो जाये ।

नश्वरता संसार का नियम है । इसकी कोई चीज भी स्थिर अथवा अविनाशी नहीं है । इसी नियम के अनुसार उपार्जित किया हुआ वैभव भी संध्या की छाया की तरह नष्ट हो जाता है । आज है, कल नहीं रहता और यदि किसी के पास युक्ति के आधार पर कुछ अधिक समय तक बना भी रहता है तो उसके नाश हो जाने का भय, दुःखी बनाता रहता है । भोग-विलास, जिनमें डूबकर मनुष्य बड़ा आनन्द मनाता है, शीघ्र ही मनुष्य को नष्ट कर स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं ।

यौवन के ढलते और जरा के आते ही संसार के भोग दुर्बल हो जाते हैं । उनका झूठा आनन्द भी ले सकने योग्य मनुष्य नहीं रह पाता, तब उनका ध्यान शूल की तरह शालता है । यदि मनुष्य प्रारम्भ में ही इनको निस्सार मान कर इनका व्यसन न पाल ले, इनसे आसक्ति न जोड़ ले तो बहुत हद तक इस मानसिक दुःख से बच सकता है, पर अज्ञान के कारण वह स्वभावतः ऐसा कर नहीं पाता ।

मनुष्य आनन्द के लिये जिन सांसारिक सम्पदाओं का आधार लेता है, उनमें आनन्द तो क्या पाता है, उल्टे उनके वियोग, अस्थिरता और परिवर्तनशीलता के साथ उनके विनाश की सम्भावना से बेचैन और दुःखी रहता है । सारा जीवन इन जाने वाले पदार्थों को रोकने में ही समाप्त कर देता है और एक दिन स्वयं भी शरीर छोड़कर अनजान दिशा में चला जाता है । जिन पदार्थों को भोला मनुष्य सत्य समझ कर पकड़ता है, वे सब स्वप्न की तरह असत्य सिद्ध होते हैं । सांसारिक भोगों में दीखने वाला आनन्द कृत्रिम प्रकाश की तरह है और तब जीवन में विषाद का घना अन्धकार छा जाता है, जिसमें भटकते हुए ठोकरें खाने के सिवाय कुछ भी शेष नहीं रह जाता ।

यही कारण है कि मनीषियों ने सांसारिक सिद्धियों से परे अविनाशी एवं अपरिवर्तनशील आनन्द की निधान आत्मा को ही खोजने और पाने के महत्त्व पर अपना मत दिया है । आत्मा सत्य है, नित्य है, ज्योति-स्वरूप और आनन्दमय है । उसको पा लेने पर फिर कुछ पाना शेष नहीं रह जाता और जान लेने पर कुछ जानना नहीं रहता । मनुष्य के पुरुषार्थ की सार्थकता सांसारिक सुखों के उपकरण और उपादान संचय करने में नहीं है, बल्कि आत्मा को प्राप्त करने के प्रयत्न में है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह जड़-चेतनमय जितना भी जगत दृष्टिगोचर होता है, इसका अपना अस्तित्व कुछ भी नहीं है । आत्मा के आधार पर ही इसका अस्तित्व निर्भर है । आत्मा ही मानव-जीवन का चरम सत्य है । आत्मा के प्रकाश में ही बाह्य संसार और मानव-जीवन का अस्तित्व प्रतिभासित होता है । आत्मा के पटल पर ही संसार और दृश्य जीवन का छाया नाटक बनता-बिगड़ता रहता है । संसार और कुछ भी तो नहीं, केवल आत्मा की अभिव्यक्ति और उसका ही विस्तार है । आत्मा एक चिरन्तन सत्य है । इससे पृथक् जो कुछ है वह असत्य है, भ्रमपूर्ण है और अग्राह्य है । वेदों में जिस **''असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय''**—का घोष किया गया है, उसका संकेत सांसारिकता से ऊपर उठ कर आत्मा की ओर ही अभियान करने का है, क्योंकि आत्मा ही ज्योति रूप है, आत्मा ही शिव रूप है और वही अमृत रूप भी है । निश्चय ही मनुष्य को ऐसी कल्याणकारी आत्मा को पाने का प्रयत्न करते ही रहना चाहिए ।

आत्म-जिज्ञासा से रहित जीवन भार स्वरूप ही बना रहता है । आत्म-जिज्ञासा से रहित मनुष्य को भय की कल्पनाएँ और पाप की भावनाएँ कभी चैन से नहीं रहने देतीं । यदि सुखी, शांत और संतु जीवन बिताने की कामना है तो जीवन में आत्म-जिज्ञासा को स्थान देना ही होगा । उसकी खोज करनी ही होगी । जितना समय मनुष्य अहंकार के पोषण में लगाता है, सांसारिक उपलब्धियों की लालसा में व्यतीत करता है, यदि उसमें से कुछ निकाल कर आत्मा की खोज में लगाये, तो मंगल-मार्ग पर बहुत कुछ आगे बढ़ सकता है ।

अहंकार के वशीभूत होकर शारीरिक संतुष्टि तक सीमित रहने वाले अपनी भूल को तब समझ पाते हैं, जब जीवन में पतझड़ का समय आ जाता है और शरीर पीले पत्ते की तरह गिर जाने की स्थिति में होता है । उस पटाक्षेप के समय उसे निश्चय ही संसार की असारता, असत्यता और भंगुरता का ज्ञान और आत्मा की चिरंतनता और अविनश्वरता की प्रतीत होती है । तब समय निकल चुका होता है । उस अन्तिम समय में कुछ भी कर सकने का अवसर नहीं रहता । उस समय हाथ मल-मलकर पछताने के सिवाय और कुछ भी शेष नहीं रह जाता । उस समय इस पश्चात्ताप के साथ संसार छोड़ने पर विवश होना पड़ता है कि जिस सत्य की खोज के लिये सुरदुर्लभ मानव-जीवन मिला था, उसकी उपेक्षा कर, हाय हम संसार की तुच्छ बातों में ही लगे रहे ! हमने वह सब कुछ किया, जो नहीं करना था और वह कुछ भी नहीं किया जो कर्त्तव्य था ! उस घड़ी उस आत्मा की उपेक्षा करने वाले व्यक्ति की क्या दशा होती होगी ? उसके हृदय में किस भयानक पछतावे और विवशता की आग जलती होगी, इसे तो वही बतला सकते हैं जिन्होंने उस स्थिति का भोग किया है अथवा जो आगे चलकर एक दिन करेंगे ।

कितना अच्छा हो कि मनुष्य आवश्यकता भर अपने सांसारिक कर्त्तव्य करता रहे और बाकी का समय अध्यात्म मार्ग से आत्मा की खोज करने में भी लगाता रहे, तो उसके लोक-परलोक एक साथ बनते चलें । इस द्विमुखी साधना में जरा-भी कठिनाई नहीं है । आत्म-जिज्ञासु व्यक्ति संसार में रमता हुआ भी उसकी अँधेरी वीथियों में नहीं भटकने पाता । उसकी वह जिज्ञासा उसके साथ रह कर प्रकाश का काम करती रहती है । सांसारिक कर्त्तव्यों के बाद वह उसको उसी प्रकाश मार्ग पर लौटा लाती है, जिसका अनुसरण इस वेद वाक्य को चरितार्थ कर देता है—

''असतो मा सद्गमय''
''तमसो मा ज्योतिर्गमय''
''मृत्योर्माऽमृतं गमय''—

और तब मनुष्य का न केवल वर्तमान जीवन बल्कि भूत भविष्यत् के भी सारे जीवन धन्य हो जाते हैं ।

आत्मा की पुकार सुनें और उसे सार्थक करें

पता नहीं आपने कभी ध्यान दिया या नहीं, अन्तर में जब-तब एक आवाज उठा करती है कि—''अरे तू यह क्या कर रहा है ? क्या इसीलिए तुझे यह सर्व-सम्पन्न शरीर मिला है ? उठ अपना स्वरूप, अपनी शक्ति पहचान और उन अच्छे कामों को कर जिनकी तुझसे अपेक्षा की जा रही है ।''

यह पुकार करने वाला और कोई नहीं होता । परमात्मा ही होता है जो आत्मा-रूप में सबके अन्दर विद्यमान रहता है । अब जो इस आवाज का आदर करते और जाग उठते हैं, वे संसार में श्रेयस्कर कार्य कर दिखलाते हैं, उनका ईश्वर उनकी पूरी सहायता करता है ।

यह आवाज उस समय ही अधिकतर उठा करती है, जब मनुष्य या तो स्वार्थ एवं संकीर्णता की परिसीमा पार करने लगता है अथवा वह काम करता है जो उसे नहीं करना चाहिए । अपनी क्षमताओं की तुलना में छोटा काम करते हुये जब कोई शक्तियों का अपमान करता है, तब भी यह आंतरिक आवाज टोका करती है ।

इसका एकमात्र आशय यही होता है कि ऐ मेरे अंश—मनुष्य, तू ऐसा काम न कर जिससे कि मुझे लज्जा अथवा आत्मग्लानि हो और नहीं वे छोटे-मोटे काम कर, क्योंकि तू अधिक ऊँचे काम करने के लिए नियुक्त किया गया है । ये निम्न अथवा हेय कार्य तेरी क्षमता के अनुरूप नहीं हैं ।

जो आस्तिक एवं आत्मविश्वासी इस परमात्म-पुकार को सुनकर प्रेरित होते हैं, अपनी निहित शक्तियों का आह्वान करते और कटिबद्ध होकर दृढ़तापूर्वक कर्त्तव्यों में तत्पर हो जाते हैं, वे निश्चय यहीं अपनी वर्तमान स्थिति से बहुत आगे बढ़कर चाँद-सितारों की तरह चमक उठते हैं, फिर उनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभियान आर्थिक हो अथवा आध्यात्मिक । इस परमात्म-पुकार का तकाजा है कि जो जहाँ पर है वहाँ पर न रहे । उससे आगे बढ़े और निरन्तर आगे बढ़ता ही जाये । मानवीय विकास एवं उन्नति की न तो कोई सीमा है और न विराम ।

संसार के जितने भी महापुरुष आज जन-साधारण के प्रेरणा केन्द्र एवं प्रकाश स्तम्भ बने हुये हैं उन्होंने इस आंतरिक पुकार की कभी उपेक्षा नहीं की । उन्होंने आवाज सुनी, जागे और तत्काल आयोजन में लग गये, आगे की ओर चल पड़े । ऐसे जाग्रतिवान महान् पुरुषों में से अमेरिका के भूतपूर्व प्रेसीडेन्ट जार्ज वाशिङ्गटन भी एक थे ।

जार्ज वाशिङ्गटन अमेरिका के एक साधारण किसान के पुत्र थे । उनके पिता बहुत ही साधारण स्थिति के व्यक्ति थे । बेटे को हल, फाल, जमीन तथा कुदाल आदि देने के अतिरिक्त उच्च शिक्षा जैसी कोई चीज दे सकने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे । निदान वयस्क होने पर उन्होंने जार्ज वाशिङ्गटन को वे सब चीजें सौंप दीं ।

वाशिङ्गटन भी तो प्रारम्भ से लेकर अब तक उसी वातावरण में पला था । उसकी कल्पना भी उन चीजों, उन कार्यों और उस वातावरण से आगे कैसे जा सकती थी ? खुशी-खुशी उसने हल लिया और पिता की तरह सामान्य रूप से खेती-बारी में लग गया ।

वाशिङ्गटन किसान बन गया, किन्तु उसकी आत्मा उस कार्य में तादात्म्य अनुभव नहीं कर रही थी । इसलिए नहीं कि खेती कोई निकृष्ट कार्य था, बल्कि इस आभास के कारण कि वह उससे भी ऊँचा कोई काम कर सकता है जिसमें राष्ट्र, समाज अथवा संसार का अधिक हित सम्पादित हो सके ।

उसका आभास प्रकाश बना और वह प्रकाश एक दिन, जब वह हल चला रहा था आवाज बनकर उसके अन्तराल में गूँज उठा—"वाशिङ्गटन क्या कर रहा है ? यह खेती का काम तो कोई दूसरा भी कर लेगा । तू जिस उद्देश्य के लिए आया है उसे याद कर । देख देश की वेदी तुझे अपने उद्धार के लिए आह्वान कर रही है ।" हल रुक गया और वाशिङ्गटन अपने उद्देश्य पथ पर अग्रसर हो उठा । महापुरुषत्व और मानवीय महिमा इसी संदेहरहित आत्मविश्वास, आस्था, आकस्मिकता एवं साहस के सुन्दर शिवालय में निवास करती है ।

वाशिङ्गटन ने आवाज सुनी, जागा और अपने से कह उठा—अवश्य ही मैं बड़ा काम करने के लिए इस संसार में आया हूँ । मैं उसे करूँगा, और वह बड़ा काम है देश को विदेशियों की दासता से मुक्त कराना । संसार का कोई अवरोध, जीवन की कोई भी कठिनाई, पथ का कोई संकट और साधनों का कोई भी अभाव मुझे मेरे अभीष्ट लक्ष्य से विचलित नहीं कर सकता । उसका संकल्प बलिदान बनकर उसके रोम-रोम में तद्रूप हो गया ।

प्रयत्न अध्ययन एवं विचार से प्रारम्भ हुआ और तब तक चलता रहा जब तक पूर्ण एवं परिपक्व होकर क्रियात्मक प्रेरणा में परिणित नहीं हो गया ।

अपने इस विकास एवं निर्माण में वाशिङ्गटन को कितने प्रकार की कठिनाइयों से जूझना पड़ा होगा, इसको बतलाया नहीं जा सकता । केवल इस बात से एक धुँधला-सा आभास ही पाया जा सकता है कि एक दीन-हीन किसान के अनपढ़ पुत्र की स्थिति से राष्ट्रोद्धार की महानता तक के दुरूह पथ को पार करना, अपने अध्यवसाय के बल पर संस्कारों एवं कुप्रवृत्तियों को जीतकर जीवन में ही पुनर्जीवन पा लेने से कम कठिन, साथ ही कम श्रेयस्कर नहीं है ।

किन्तु जिन्हें कुछ करना ही है उनके लिए कष्ट, संकट, श्रम, श्रांति अथवा विश्रांति का क्या अर्थ ? वे यदि कुछ जानते हैं तो काम-काम और निःस्वार्थ काम । वाशिङ्गटन ने समागत प्रतिकूलताओं का भी सहर्ष स्वागत करते हुये वही किया और एक दिन आया जब उन्होंने राष्ट्र के दासता पाश काट फेंके और राष्ट्र ने उनकी सेवाओं के मूल्यांकन के रूप में, उसके पास जो राष्ट्रपति को सर्वोच्च सम्मान था वह दिया और आज भी सैकड़ों साल बीत जाने पर उनके नाम, उनकी प्रतिभाओं और उनके स्मारकों को वही सम्मान दिया जाता है ।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन का एक लक्ष्य होता है । वह यह कि वह जो कुछ है, वही नहीं रहना है, उसे जितना भी हो सके आगे बढ़ाना और ऊँचे चढ़ाना है । अपनी वर्तमान परिधि से निकलकर अधिक विस्तृत सीमाओं में प्रवेश करना है । एक कक्षा के बाद दूसरी कक्षा पाना ही है । एक स्तर से उठकर दूसरा स्तर पकड़ना ही है और अन्त में उसे यह सन्तोष लाभ करना ही है कि उसने जीवन की कीड़े-मकोड़ों की तरह एक गड्ढे में पड़े-पड़े नष्ट नहीं किया है । उसने उन्नति एवं विकास किया है । आगे बढ़कर चेतन होने का प्रमाण दिया है और अपने इस विश्वास को प्रकट कर दिया है कि यह सुरदुर्लभ मानव जीवन तृष्णा एवं वासनाओं की वेदी पर वध करने के लिए नहीं बल्कि किसी सदुद्देश्य, उच्च आदर्श की पवित्र वेदिका पर फूल की तरह उत्सर्ग कर देने के लिए है ।

जिसे अपनी निकृष्ट नैतिक स्थिति, जीवन का निम्न स्तर काँटे की तरह नहीं चुभती, जिसकी हीनावस्था उसे तिरस्कृत नहीं करती, जो इस लांछना एवं अपमान को यों ही सहन कर लेता है, उसे यदि मृत मान लिया जाये तो कोई दोष नहीं । जिसमें जरा भी जीवन है, थोड़ी मनुष्यता है वह जीवन के इस अपमान, इस लांछना को सहन नहीं कर सकता । उसके हृदय में वेदना होगी, आत्मग्लानि होगी और परिस्थितियों को धिक्कार, पुरुषार्थ के लिये ललकार कर उठ खड़ा होगा और अडिग संकल्प के साथ सब कुछ बदल कर रख देगा । संसार में ऐसे भी महापुरुष हुये हैं जिन्होंने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असम्भव माने जाने वाले परिवर्तनों को घटित कर के दिखा दिया और उनमें से एक महाकवि कालिदास भी थे ।

लोक-प्रसिद्ध है कि कालिदास एक वज्रमूर्ख लकड़हारे थे । इतने मूर्ख कि जिस डाल पर बैठते थे, उसी को काटते हुये कई बार पथिकों द्वारा उतारे गये । इतने मूर्ख और इतने अज्ञानी कि 'भेंड' कहे और 'भें' कहकर चिढ़ाये जाते । न माँ न बाप, न कोई भाई-बन्धु । यों ही विनोददायक होने से रोटी-लंगोटी मिल जाती थी । अब ऐसे प्रचण्ड मूर्ख के विषय में क्या कभी यह कल्पना की जा सकती थी कि वह एक दिन प्रकांड पण्डित बनकर संसार का कवि-शिरोमणि बनेगा, किन्तु कालिदास ने संसार में न केवल इस कल्पना को ही जन्म दिया, वरन् उसे अतिरूप में चरितार्थ कर के दिखला दिया । लगन एवं पुरुषार्थ की यही महिमा है ।

तत्कालीन विदुषी राजकुमारी विद्योत्तमा से शास्त्रार्थ एवं पांडित्य में पराजित होकर, चिढ़े हुये पण्डित लोग दैवात् विद्योत्तमा का विवाह छल से कालिदास से करा देने में सफल हो गये ।

कालिदास और विद्योत्तमा का परिचय हुआ और प्रथम क्षण में ही उस विदुषी ने मूर्खराज कालिदास को पहचान लिया । उसने 'हाय' करके कपाल पर हाथ मारा और रोते हुये यह कहकर कालिदास को अपने कक्ष से बाहर ढकेल दिया कि—अपने से महान् पति की आकांक्षा रखने वाली मैं तुझ महामूर्ख को पति स्वीकार कर विद्या को अपमानित और अविद्या को आहूत नहीं कर सकती । चला जा यहाँ से । मेरे साथ छल किया गया है ।

कालिदास को धक्का मिला और उसकी आत्मा में एक झटका लगा । आत्म-विभोर कालिदास चौंक कर सहसा जाग उठे । उनकी आत्मा में अचेत पड़े मनुष्य की मूर्छा टूट गई । उनका अपमान हुआ इसकी पीड़ा तो उनके प्राणों तक में कसक ही उठी, किन्तु उससे भी अधिक वेदना विद्योत्तमा के उन आँसुओं को देखकर हुई जिनके पीछे एक उज्ज्वल एवं उच्च दाम्पत्य जीवन की आकांक्षा तड़प रही थी ।

जागरण हो चुका था । कालिदास सोच सके—सम्भव है यह भारतीय ललना दुबारा विवाह न करे और योंही इतने महान् एवं मूल्यवान जीवन को शोक-सन्ताप एवं पश्चात्ताप में जलाकर नष्ट कर डाले । समाज की इतनी बड़ी क्षति केवल इसलिए हो सकती है कि मैं अशिक्षित एवं असंस्कृत हूँ । कितना निसर्ग सुख हो यदि मैं अपने को इसके योग्य बना सकूँ । विचार आते ही अन्तराल से आवाज आई 'क्यों नहीं पुरुषार्थ एवं संकल्प बल से क्या नहीं हो सकता?' कालिदास चले गए और विद्योत्तमा आँखों में आँसू लिए बैठी रही ।

और फिर चार-छह, दस-बारह, अनेकानेक वर्षों तक कालिदास का सम्बन्ध संसार की हर बात से टूट कर जुड़ गया अध्ययन से । दिन और रात, संध्या और प्रातः कब आए और कब गए कुछ पता नहीं । इन दशाब्दियों तक यदि कालिदास को कुछ ज्ञात था तो केवल अपनी एकाग्रता और अध्ययन ।

कालिदास ने अध्यवसाय को तपस्या की सीमा में पहुँचा कर जो कुछ पाया वह लेकर चल दिये । विद्योत्तमा अपने कक्ष में वही वेदना लिए बैठी थी कि सहसा उसने दरवाजे पर थाप के साथ शुद्ध एवं परिमार्जित संस्कृत में सुना—"प्रियतमे द्वारमकपाटं देहि ।।" वह उठी द्वार खोला—देखा—कौन ! मैं महामूर्ख कालिदास! कालिदास मुस्करा उठे । विद्योत्तमा हर्ष विह्वल हो उठी । अब वह मूर्ख कालिदास की पत्नी नहीं महाकवि कालिदास की प्रेरणादायिनी प्राणेश्वरी थी । दोनों के उस पुनर्मिलन ने कालिदास की साधना और विद्योत्तमा की वेदना सफल एवं सार्थक बना दी ।

यह है संकल्पपूर्ण पुरुषार्थ एवं लगन का चमत्कार । जब दीन से दीन और मूर्ख से मूर्ख होने पर भी संसार में लोगों ने सर्वोच्च स्थितियों पर पदार्पण कर पुरुषार्थ की महिमा को प्रकट कर दिया तब कोई कारण नहीं कि हम आप कोई भी अपनी वर्तमान स्थिति से आगे बढ़कर श्रेय प्राप्त नहीं कर सकते ।

आत्मसत्ता का अस्तित्व और वैभव

पदार्थ और प्राण का, जड़ और चेतन का समन्वय ही काल का अस्तित्व बनाये हुए है । वे दोनों पृथक् होते हुए भी परस्पर इतने अधिक गुँथे हुए हैं कि एक के बिना दूसरे की गति नहीं । प्राण निकलते ही शरीर न केवल निश्चेष्ट हो जाता है, वरन् स्वयंमेव सड़ने में जुट पड़ता है और अपना अस्तित्व समाप्त कर लेने के लिए अन्त्येष्टि कर्म में अपनी रही-बची विशेषता होम देता है । यह तो हुई प्राण के अभाव में शरीर की दुर्गति । दूसरा पक्ष भी ऐसा ही है । प्राण-सत्ता आकाश में वायुभूत होकर भले ही घुमड़ती रहे, पर दृश्य जगत में अपने अस्तित्व का परिचय देना या किसी प्रकार का अभीष्ट प्रयोजन पूरा कर सकना सम्भव नहीं होता । प्राण के बिना शरीर का और शरीर के बिना प्राण का प्रत्यक्ष उपयोग नहीं रह जाता । इस तथ्य को देखते हुए दोनों के मध्यवर्ती सम्बन्ध सूत्र को समझा जा सकता है ।

स्थूल और सूक्ष्म का—जड़ और चेतना का यह समन्वय इसी ब्रह्माण्ड में व्यापक रूप से विद्यमान है । पदार्थ की सबसे छोटी इकाई तरंगें हैं । इन कम्पनों के अन्तराल में चेतना का अस्तित्व और अंकुश ढूँढ़ निकाला गया है । उसकी सूझ-बूझ भरी गतिविधियाँ 'इकॉलाजी' विज्ञान के आधार पर सृष्टि सन्तुलन के रूप में पग-पग पर अपना कार्य करती हुई देखी जा सकती हैं । ऐसे और भी अगणित प्रमाण हैं जिसमें पदार्थ जगत् के साथ एक अत्यन्त शक्तिशाली, रहस्यमय एवं वरिष्ठ चेतना जगत गुँथा हुआ देखा जा सकता है । पदार्थ में जिस प्रकार ऊर्जा और गति का अस्तित्व है' उसी प्रकार प्राण में भावना एवं विचारणा का अनेक रूपों में अपने चित्र-विचित्र कृत्य करते हुए देखा जा सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पदार्थ का स्वरूप और व्यवहार समझने पर स्थूल जगत में मनुष्य अपने विभिन्न प्रयोजन पूरे करता रहता है, किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि जीवात्मा स्वयं सचेतन होते हुए भी, चेतना जगत में अपनी मूल सत्ता को अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए भी उस विद्या से अपरिचित ही बना रहता है, जो उसकी अपनी निजी सत्ता के उत्थान-पतन की जिम्मेदार है । शरीर पदार्थ है, अस्तु उसकी सुविधा पदार्थ पर निर्भर समझी जा सकती है । अभीष्ट उपलब्धियों के लिए काम सत्ता की, भौतिकी विद्या की आवश्यकता पड़ती है । इसके बिना उसका काम नहीं चलता, निर्वाह कठिन हो जाता है । ऐसी दशा में भौतिकी का महत्त्व समझा जाना और उसका उपयोग करना उचित ही है, किन्तु समझा यह भी जाना चाहिए कि जीवन की समस्त आवश्यकताएँ भौतिकी द्वारा पदार्थ को उपलब्ध कर लेने से ही तो पूरी नहीं हो जातीं । चेतना का अपना भी कुछ स्वरूप, उद्देश्य, कार्यक्रम, बल-वैभव है । उस सम्बन्ध में अनाड़ी बने रहने पर मात्र शरीर यात्रा ही चलती रहेगी । चेतना की अपनी निजी सामर्थ्य एक प्रकार से सोई ही पड़ी रहेगी, उसका निर्वाहरत पक्ष ही जाग्रत रहेगा, जिसे समग्र चेतना का कठिनाई से शतांश ही कहा जा सकता है । शेष अंश प्रसुप्त, उपेक्षित या अनगढ़ स्थिति में पड़ा रहे तो उसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा ।

अध्यात्म शास्त्र में पग-पग पर एक उद्बोधन-निर्देशन पूरा जोर देकर दिया जाता है कि 'अपने को जानो, उसे उठाओ !' '**आत्मानं विद्धि**'—आत्मा वा अरे ज्ञातव्य जैसे सूत्र संकेतों का आत्मक्षेत्र में प्रवेशार्थी को ध्यानपूर्वक मनन-चिन्तन करना पड़ता है । राजकुमार सिद्धार्थ का जिस क्षण आत्म-बोध उभरा उसी क्षण वे भगवान् बुद्ध बन गये । जिस अश्वतरु के नीचे यह सुयोग बना वह भी 'बोधि वृक्ष' के रूप में श्रद्धास्पद बना, प्रख्यात हुआ और कृत-कृत्य हो गया । आत्मा-ज्ञान की महत्ता, प्रतिक्रिया एवं सिद्धि परिणत का इतना अधिक प्रतिपादन हुआ है कि उससे बढ़कर इस संसार में और कोई बड़ी उपलब्धि मानी ही नहीं गई । गीताकार ने "अपने को ही अपना मित्र और अपने को ही अपना शत्रु बताते हुए कहा है कि अपना उद्धार आप करो अपने को गिराओ मत ।"

सामान्यतया यह कथन कबीर को 'उलटा बाँसी' और बच्चों की 'कौतुक पहेली' जैसी लगती है, क्योंकि अपने को कौन नहीं जानता । हर कोई अपना नाम, पता, वंश, धर्म, आयु, व्यवसाय, वैभव, ज्ञान पद, पराक्रम, कौशल आदि पूछते ही बता सकता है । फिर अपने को 'न जानने' जैसी क्या बात रह गई ? इसके अतिरिक्त जो आत्म-वैभव शेष रह जाता है उसी से अनजान रहने की बात का बार-बार स्मरण कराया जाता है और कहा जाता है कि जिसके लिए 'आत्म-बोध' की बात को इस तरह सिर पर उठाया जाय और उसमें सफल होने पर सामान्य से असामान्य बन जाने का माहात्म्य सुनाया जाता रहे ।

बात की गम्भीरता को समझा जाना चाहिए । हम अपने सम्बन्ध में मात्र उतना ही जानते हैं जितना शरीर निर्वाह, परिपोषण या समाज व्यवहार के लिए दैनिक जीवन में काम आता है । कुशलता पदार्थ सम्बन्ध तक सीमित है । कहा जा चुका है कि यह चेतना पक्ष समग्र चेतना का कठिनाई से शतांश होगा । इसके अतिरिक्त जो आत्म-वैभव शेष रह जाता है । उसी से अनजान रहने की बात का बार-बार स्मरण कराया जाता है और कहा जाता है कि जिसके शतांश से जीवनचर्या का इतना बड़ा सरंजाम ढोया-ढकेला जाता है, उसके शेषांश को भी महत्वपूर्ण समझा जाना चाहिए । उसे उपेक्षा के गर्त से निकाला जाना चाहिए और ऐसा अवसर देना चाहिए कि समान चेतना को अपने क्षेत्र की वे सभी प्रवीणताएँ प्राप्त हो सकें जिनके सहारे मनुष्य वस्तुतः नरपशु जैसे भव-बन्धनों से निकलकर ब्रह्म चेतना के स्वच्छन्द आकाश में विचरता है और वैसा दिव्य अनुभव करता है जिसे स्वर्ग लोक में निवास या जीवन मुक्ति जैसा हाथों-हाथ रसास्वादन किया जा सके ।

उथली साँस लेने वालों के फेफड़ों का एक छोटा भाग काम से आता है और शेष ऐसे ही निष्क्रिय पड़ा रहता है । इसी क्षेत्र में क्या आटे के विषाणु पलते और प्राण संकट उत्पन्न करते हैं । चेतना का निष्क्रिय पक्ष यदि स्तरीय सक्रियता में संलग्न न होगा तो उस अँधेरी कोठरी में ऐसे तत्व पलेंगे जो पतन-पराभव के गर्त में व्यक्तित्व को गिराते रहें और सडाँद उत्पन्न करके उस क्षेत्र को दुर्गन्ध से भरते रहें ।

व्यक्ति चेतना का कार्यक्षेत्र उससे कहीं अधिक व्यापक है जितना कि परिवार, समाज के छोटे दायरों में—बहिरंग जीवन में प्रयुक्त होता है । हाड़-माँस के स्थूल की अपनी हस्ती और क्षमता है, किन्तु इससे भी महत्वपूर्ण और अदृश्य शरीर आत्मा की उपलब्धि है और वे यदि सजग सक्रिय हो सकें तो 'कार्य शरीर' की तुलना में अत्यधिक महत्त्व के काम कर सकते हैं । स्थूल शरीर बोझिल होने के कारण धीमे चलता और जल्दी थकता है, पर सूक्ष्म शरीर का भार न होने से वह प्रकाश से भी अधिक गति के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच सकता है । दूरदर्शन, दूर-श्रवण, जैसी अनेक आश्चर्यजनक घटनाओं के उदाहरण सामने आते रहते हैं । भूत-प्रेतों के अस्तित्व सिद्ध करने वाले प्रमाण मिलते रहते हैं । जीवित रहते हुए तन्त्र योगी अपनी ही एक अदृश्य प्रतिकृति छाया पुरुष के रूप में गढ़ लेते हैं और उससे बिना चेतन की देवमानव जैसे सहायक सेवक का काम लेते हैं । यह सूक्ष्म शरीर के ही चमत्कार हैं । कितने ही स्वप्न अक्षरशः सत्य निकलते हैं और कइयों से महत्त्वपूर्ण संकेत रहते हैं । जाग्रत अवस्था में भी कई बार ऐसे दिवा स्वप्न देखे गये हैं जो किसी सामयिक घटनाक्रम की जानकारी देने वाले सिद्ध हुए ।

अन्तर्मुखी होकर अन्तर्जगत का अवलोकन और उसका परिष्कृतीकरण के लिए योगाभ्यास में कई प्रकार की ध्यान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धारणाएँ कराई जाती हैं । षटचक्र, पंचकोश, तीन ग्रन्थियाँ, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना—उनकी सहायक नाड़ियाँ किस स्तर की हैं और उनकी प्रसुप्त स्थिति दूर हो जाने पर क्या कुछ उपलब्ध हो सकता है इसका सुविस्तृत वर्णन हठयोग—कुण्डलिनी जागरण आदि विद्याओं के अन्तर्गत सुना-समझा जाता रहा है । यह कार्यक्षेत्र वैभव एवं अदृश्य विकृति भण्डार सूक्ष्म शरीर की परिधि में ही आता है । स्थूल शरीर के अवयव तो सर्वविदित हैं । उसकी संरचना में चक्रकोश आदि का कहीं कोई स्थान नहीं है । चक्रवेधन, कुण्डलिनी जागरण, शरीर सत्ता का अभीष्ट परिवर्तन, अचेतन मन की लगाम हाथ में आने पर मानसिक चेतना का इच्छित उपयोग जैसे कितने ही ऐसे काम हैं, जिन्हें सूक्ष्म शरीर को समर्थ बनाने के उपरान्त सहज ही सम्पन्न किया जा सकता है । इन्द्रिय शक्ति से कहीं अधिक प्रखरतासम्पन्न मनुष्य की अतीन्द्रिय सामर्थ्य है । इसे कैसे जगाया-बढ़ाया जाय ? यह सारा प्रकरण सूक्ष्म शरीर में सम्बन्धित है ।

कारणशरीर इन सूक्ष्म से भी अधिक उत्कृष्ट और अधिक रहस्यमय है । जिस प्रकार स्थूलशरीर आधा प्रकृति का और आधा प्राण चेतना के समन्वय से बना है, उसी प्रकार कारण-शरीर आधा मानवीय चेतना और आधा देव चेतना के समन्वय से बना है । अन्तःकरण की सूक्ष्म पर्तें इसी क्षेत्र में हैं । यह जग पड़े तो भीतर से ही देव शक्तियों का उदय हो सकता है । अध्यात्म शास्त्र में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय पंचकोशों को प्रख्यात पंचदेवों का प्रतीक-प्रतिनिधि बताया गया है । इसी शरीर में समस्त लोक, देव ऋषि, तीर्थ सन्निहित माने गये हैं । बहुमूल्य रत्न भण्डारों का खजाना इसी में गढ़ा हुआ बताया गया है । अन्तःकरण ही व्यक्तित्व का मूलभूत स्वरूप है । उसकी स्थिति जैसी भी भली-बुरी होती है, उसी के अनुरूप चिन्तन, चरित्र, सहयोग, वातावरण बनता है और इस प्रकार अपनी ही बढ़ी हुई दुनिया में मनुष्य अपने ढंग का निर्वाह करता है । अन्तःकरण की प्रेरणा से मन, बुद्धि को काम करना पड़ता है । मन के निर्देशन पर काया काम करती है । संक्षेप में बाह्य जीवन का जैसा भी स्वरूप है, उसे अन्तःकरण का प्रतीक प्रतिबिम्ब ही समझा जाना चाहिए । यह अन्तराल ही कारणशरीर है । देव सान्निध्य इसी मिलन कक्ष में शक्य होता है । इष्टदेव का दर्शन—ईश्वर मिलन, स्वर्गानुभूति मुक्ति आनन्द, विभूति वैभव, सिद्धि चमत्कार आदि की जो उत्साह भरी चर्चा अध्यात्म प्रसंगों में होती रहती है, उसका कारण शरीर स्थिति के रूप में भी विवेचन किया जा सकता है ।

स्थूल शरीर की क्षमता प्रखरता के आधार पर मिलने वाली प्रसन्नता, सम्पदा, सफलता जिन्हें प्राप्त है उन्हें उतना और भी जानना चाहिए कि स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से कारणशरीर की सामर्थ्य में उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती चली जा रही है । नीरोग, परिपुष्ट, स्फूर्तिवान, सुन्दर सुडौल शरीर के सहारे जो कुछ हो सकता है, उनसे अत्यधिक अनुपात में समुन्नत सूक्ष्मशरीर और सुसंस्कृत कारणशरीर के माध्यम से उपलब्ध किया जा सकता है । कारणशरीर की भावना को सूक्ष्मशरीर की विचारणा को और स्थूलशरीर की क्रियाशीलता का केन्द्र माना गया है । इन्हें परिष्कृत करने के लिए क्रमशः शक्तियोग की, ज्ञानयोग की, कर्मयोग की साधना की जाती है । उनकी प्रखरता मनुष्य को तेजस्वी, मनस्वी एवं ओजस्वी बनाती है । अध्यात्म क्षेत्र की साधनाएँ विभूतियों को करतलगत कराती हैं ।

आत्मा और शरीर का वास्तविक हित साधन

बाहर के बहुत-से पदार्थों और प्राणियों से हमारी जान-पहचान है । साथ ही यह भी विदित है कि कौन अपना, कौन पराया है ? अपनों को कितना प्यार किया जाना चाहिए और उन्हें कितना लाभ दिया जाना चाहिए ? परायों के प्रति सीमित सद्व्यवहार ही पर्याप्त माना जाता है । इसी नीति को बरतते हुए जिन्दगी व्यतीत हो जाती है ।

किन्तु यह नीति अपने आप के प्रति एक प्रकार से विस्मृत ही कर दी जाती है । यहाँ तक कि जब आत्म-चिन्तन का समय आता है, तब यह भी भुला दिया जाता है कि अपना पराया कौन है ? उनकी सही पहचान भी नहीं रहती और व्यवहार करते समय ठीक उलटा बरताव किया जाता है ।

मनुष्य आत्मा है । उसका आच्छादन अथवा वाहन शरीर है । कपड़ा पुराना हो जाता है, फट जाता है, तब उसका मोह त्यागकर नया बदल लेते हैं । वाहन भी जब जराजीर्ण, काम करने में असमर्थ हो जाते हैं तो उनकी छुट्टी कर दी जाती है । कपड़ों और सवारियों की उतनी देखभाल और साज-सम्भाल की जाती है, जितने के वे अधिकारी हैं । शरीर के प्रति हमारा रवैया यही होना चाहिए । उन्हें स्वच्छ और स्वस्थ बनाये रहने के लिए कर्तव्य पालन भर किया जाना चाहिए ।

'स्व' आत्मा है । वही सगा और सनातन है । शरीर न रहने पर भी वह बना रहता है । सन्मार्ग पर चलने का श्रेय उसी को मिलता है और कुमार्ग पर चलने की भर्त्सना भी उसी की होती है । होनी भी उसी की चाहिए । शस्त्र का गलत उपयोग करने पर दण्ड उसे चलाने वाले को मिलता है, उस उपकरण को नहीं ।

वाहन को चलाने में सावधानी न बरती जाय उसे छुट्टल छोड़ दिया जाय तो दुर्घटना होकर रहेगी । बिना लगाम का घोड़ा कहीं भी जा सकता है और किसी भी राह पर चल सकता है । बिना ब्रेक और हैण्डल की गाड़ी किसी भी खाई या खड्ड में गिर सकती है और अपनी तथा बैठे हुए लोगों की दुर्गति बना सकती है । इन्द्रियों की लिप्साओं, मन की तृष्णाओं की पूर्ति में बिना उचित, अनुचित का विचार किये, कुछ भी चाहने, माँगने और करने दिया जाय तो वे अपनी खाज खुजाने की चेष्टा करेंगी । मन को ममता और आत्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की पूर्ति चाहिए और इन्द्रियों को विलास की आकांक्षा रहती है । यदि विवेक का अंकुश न रहे तो वे अतिवाद पर उतारू हो सकती हैं और नीति, मर्यादा तथा औचित्य का बेतरह उल्लंघन कर सकती हैं । इस अति में शरीर को भी ऐश-शौक का, भर्त्सना और प्रताड़ना का भागी बनना पड़ता है । आत्मा का तो अहित होता ही है ।

मनुष्य जन्म बड़े पुण्य का प्रतिफल है । वह इसलिए मिला है कि उसका सदुपयोग करके आत्मा के कल्याण का प्रयत्न किया जाए । आदर्शों का पालन और लोक-मंगल का सेवा-साधन करने में ही उसका हित है । इन प्रयासों से शरीर को भी स्वस्थ और प्रसन्न रहने का अवसर मिलता है, किन्तु यदि यह भुला दिया जाय कि आत्मा का अपना भी कोई स्वरूप, स्वार्थ एवं उद्देश्य है तो भी अपना आपा मात्र शरीर ही रह जाता है । जब आत्मा को भुला दिया गया तो शरीर के हित साधन का ध्यान भी कहाँ रहेगा । तब इन्द्रियों की लिप्सा पूरी करने में अतिवाद की सीमा तक जा पहुँचने की उच्छृंखलता अपनाई जायेगी और वासना पूर्ति के लिए आत्मा की ही नहीं शरीर की भी दुर्गति बनाई जायेगी ।

मन भी एक इन्द्रिय है उसकी विकृति अहंकार बनकर फूटती है । संग्रह और प्रदर्शन में रस लेती है । फलतः वह नीति और मर्यादाओं का उल्लघंन करते हुए अपराधों में संलग्न होने तक पर उतारू हो जाती है । भले ही उस अहंकार की पूर्ति के लिए दूसरों का उत्पीड़न ही क्यों न करना पड़े । अनावश्यक साज-सज्जा में उपहासास्पद ही क्यों न बनना पड़े ।

जीवन की वास्तविक आवश्यकताएँ थोड़ी ही हैं । उन्हें नित्य के सामान्य श्रम से पूरा किया जा सकता है, किन्तु तृष्णा का कोई अन्त नहीं । यह सूत्र-साधनों को इतनी अधिक मात्रा में संग्रह करना चाहती है, मानो लाख-करोड़ वर्ष जीना हो और उसके लिए असीम मात्रा में एक दिन ही संग्रह करके रख लेने का निश्चय किया गया हो । बात इतने तक भी सीमित नहीं रहती । कुटुम्बियों के लिए भी इतनी सम्पदा संग्रह करने का मन होता कि उन्हें स्वयं श्रम न करना पड़े और उत्तराधिकार के रूप में मिली हुई समृद्धि के बलबूते ही शौक-मौज करते रहें । यह सब बाहरी परिकर परिवार है, जिसके लिए हम मरते-खपते रहते हैं और अपने-आप तक को भूल जाते हैं

आत्मा शब्द तो कई बार मुख से निकलता और कान से सुनाई पड़ता रहता है, पर व्यवहारतः यह नहीं समझ पाते कि शरीर से पृथक् कोई चेतन सत्ता भी अपने भीतर विद्यमान है जो शरीर के न रहने के उपरान्त भी बनी रहती है । उसकी श्रेय साधना ही अपना वास्तविक हित साधन है ।

शरीर का उपयोग ऐसे प्रयोजनों के लिए किया जाना चाहिए, जिनसे आत्मा का वास्तविक हित साधन होता हो । यह बन पड़ने की सम्भावना तभी बन पड़ती है, जब दोनों की पृथकता व्यवहारतः समझें और दोनों का हित साधन जिसमें सम्भव है उस क्रिया-कलाप को अपनाने के लिए संचेष्ट रहें । अहित किसी का भी न होने दें ।

संयम दोनों का ही हित साधन करता है । इन्द्रिय संयम से स्वास्थ्य और सन्तुलन बना रहता है । मानसिक संयम से उद्धत आकांक्षाओं पर अंकुश लगता है, फलतः शान्ति और सन्तोष दोनों ही बने रहते हैं । इस नीति को अपनाने से शरीर का ही नहीं, आत्मा का भी हित साधन होता है । उसे आन्तरिक प्रफुल्लता रहती है और वह उद्देश्य सधता है जिसके लिए बहुमूल्य मानव शरीर धारण करने का सुयोग मिला है ।

आत्मा को स्वर्गीय प्रफुल्लता पाने और भव-बन्धनों से मुक्त होने के लिए ही यह जन्म मिला है । असंयम और उद्धत आचरण करने पर दोनों का ही अहित होता है, जब कि उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श चरित्र का आश्रय लेने पर आत्मा को परमात्मा का दिया हुआ उपहार हर दृष्टि से सार्थक होता है । क्षणिक रसास्वादन के लिए भविष्य को हर दृष्टि से अन्धकारमय बना लेने में कोई बुद्धिमानी नहीं है ।

आत्म-बल जीवन की महानतम सम्पदा

यह भूलना नहीं चाहिए कि प्रगति किसी भी दिशा में क्यों न हो, उसका आधार प्रयत्न और पुरुषार्थ द्वारा उत्पन्न शक्ति ही होती है । शक्ति का उपार्जन एवं संचय, यही वह मार्ग है, जिस पर चलते हुए उन्नति के उच्च-शिखर तक पहुँच सकना सम्भव होता है । इस तथ्य को लोग समझते भी हैं । तद्नुरूप धन-बल, शरीर-बल, बुद्धि-बल, संघ-बल आदि सामर्थ्यों को अपने-अपने ढंग से उपार्जित भी करते हैं । प्रत्यक्ष में यही थोड़े से बल हमारी जानकारी में आते हैं, इसलिये उन्हीं की ओर सर्व-साधारण का ध्यान केन्द्रित रहता है । उन्हीं के उपार्जन में अपनी गति-विधियाँ लगी रहती हैं ।

देखते हैं कि सभी अपने-अपने ढंग से प्रयत्नशील हैं और एक सीमा तक धन, विद्या एवं स्वास्थ्य भी पा लेते हैं । यह उपार्जन दीखता तो है, पर उसके द्वारा प्रगति और सुख-शान्ति का जो परिणाम मिलना चाहिए, वह कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता । यह उपलब्धियाँ जिनके पास हैं, उन्हें भी दुःखी, शोक-संतापग्रस्त, उद्विग्न, पतित और हेय स्थिति में पड़ा देखा जाता है । निर्धनों की अपेक्षा धनी, मूर्खों की अपेक्षा बुद्धिमान, अस्वस्थों की अपेक्षा बलवान् जब अधिक दुःखी, विक्षुब्ध, पतित और घृणित स्थिति में पड़े दीखते हैं तो शक्ति के तत्व-ज्ञान पर ही सन्देह होने लगता है और शंका उत्पन्न होती है कि कहीं 'शक्ति से प्रगति' वाला सिद्धांत ही गलत तो नहीं है । आज लोगों के पास साधन बहुत हैं, उनके द्वारा विलासिता और विडम्बना का थोड़ा मन बहलाव भी कर लेते हैं, पर यह देखा कम ही जाता है कि उनसे ऐसा समर्थ व्यक्तित्व बना हो जो सुखी, समुन्नत,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिपुष्ट एवं वर्चस्वसम्पन्न, प्रतिभाशाली जीवन जी सकने की परिस्थिति उत्पन्न करे ।

इस उलझन का कारण एक ही है कि एक महत्त्वपूर्ण बल जो उन सब का प्राण है, हमारे पास नहीं होता, फलस्वरूप धन, बुद्धि, स्वास्थ्य, संघ आदि की सामर्थ्यें भी क्रमबद्ध जीवन-विकास कर सकने और जो उपलब्ध है, उसका समुचित लाभ एवं आनन्द उठा सकने से वंचित रह जाना पड़ता है । इस सर्वोपरि सर्व-समर्थ बल का नाम है—आत्म-बल । आत्म-बल के अभाव से सारी भौतिक सामर्थ्य तथा उपलब्धियाँ केवल भार बनकर रह जाती हैं । केवल बलवान् होना ही काफी नहीं । बलों का सही दिशा में सदुपयोग होना ही वह कौशल है, जिसके आधार पर समर्थता का लाभ उठाया जा सकता है । अपव्यय अथवा दुरुपयोग से तो बहुमूल्य साधन भी निरर्थक ही नहीं हानिकारक तक बन जाते हैं । अतएव धन, बुद्धि, स्वास्थ्य आदि शक्तियों के ऊपर नियन्त्रण करने और उन्हें सही दिशा में प्रयुक्त करने वाली एक केन्द्रीय समर्थता भी होनी चाहिए । कहना न होगा कि इस समर्थता का नाम—आत्म-बल है ।

आत्म-बल के अभाव में वह विवेक-बुद्धि जाग्रत नहीं होती, जो वासनात्मक इन्द्रिय असंयम पर—तृष्णात्मक, अनियन्त्रित महत्त्वापरक एवं आलस्य, प्रमादात्मक, मानसिक असंयम पर नियन्त्रण कर सके । अन्त:करण में विद्यमान् दैवी और आसुरी शक्तियों में से आसुरी शक्तियों का उभार तीव्र होता है, वे निकृष्ट स्वार्थों की पूर्ति के लिये दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिये प्रेरणा देती रहती हैं, उनके ऊपर नियन्त्रण करना भी बिना आत्म-बल के सम्भव नहीं । इन्द्रियाँ, मन और अन्त:करण में विद्यमान् आसुरी सत्ता दुर्बुद्धि का रूप धारण कर हमारे कठोर परिश्रम द्वारा उपार्जित सामर्थ्यों को अपव्यय एवं दुर्व्यय की ओर धकेल देती है, जब दिशा सही नहीं तो सुख-शांति एवं प्रगति का लक्ष्य कैसे मिले? यही वह विडम्बना है, जो हमारे प्रयास और परिश्रम को निष्फल बना देती है । प्रगति की प्रबल आकांक्षा को पूरा करने के लिये हम अपनी समझ के अनुसार निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं, फिर भी दुर्भाग्यवश खाली हाथ ही रहना पड़ता है ।

इच्छा और प्रयत्न रहते हुए भी लक्ष्य प्राप्त न हो इस पहेली का समाधान करते हुए इस रहस्य को समझना होगा कि भौतिक जीवन के ऊपर एक महान् सत्तावान् आध्यात्मिक जीवन भी है और भौतिक बलों के ऊपर एक आते समर्थ आत्म-बल का भी अस्तित्व है । इन दोनों का समन्वय होना आवश्यक है । भौतिकता के ऊपर आध्यात्मिकता का दबाव एवं प्रकाश रखा जाना चाहिए, अन्यथा एकाकी भौतिक-बल, भौतिक पुरुषार्थ और भौतिक दृष्टिकोण कोई उपयुक्त परिणाम प्रस्तुत न कर सकेगा । रेडियो, पंखा, बल्ब, रिफ्रीजेटर, हीटर, कूलर आदि विद्युत उपकरणों का अपना मूल्य और महत्त्व अवश्य है, पर उनसे लाभ तभी मिलेगा, जब बिजली की धारा उनमें प्रवेश करने लगे । बिजली बन्द हो जाने पर यह सभी बहुमूल्य उपकरण बेकार हो जाते हैं । इसी प्रकार आत्म-बल का नियन्त्रण न रहने पर परिश्रमपूर्वक कमाई गई भौतिक शक्तियाँ एवं सम्पदाएँ वह सत्परिणाम उत्पन्न कर नहीं पाती जो उन्हें करना चाहिये था ।

हमें जानना चाहिए कि मनुष्य केवल शरीर मात्र ही नहीं है । उसमें एक परम तेजस्वी आत्मा भी विद्यमान है । हमें जानना चाहिए कि मनुष्य केवल धन, बुद्धि और स्वास्थ्य के भौतिक बलों से ही सांसारिक सुख, सम्पदा, समृद्धि एवं प्रगति प्राप्त नहीं कर सकता, उसे आत्म-बल की भी आवश्यकता है । आत्मा के अभाव में शरीर की कीमत दो कौड़ी भी नहीं रहती । इसी प्रकार आत्म-बल के अभाव में उपरोक्त तीनों शरीर-बल मात्र खिलवाड़ बनकर रह जाते हैं । वे किसी के पास कितनी ही बड़ी मात्रा में क्यों न हों, उससे सुखानुभूति नहीं मिल सकती । वे केवल भार, तनाव, चिन्तन एवं उद्वेग का कारण बनेंगे और यदि कहीं उनका दुरुपयोग होने लगा, तब तो सर्वनाश की भूमिका ही सामने लाकर खड़ी कर देंगे ।

आत्म-चेतना की विस्मृति मानव-जीवन की एक भयावह भूल है । यों कहने-सुनने को हम आत्मा-आत्मा शब्द बार-बार पढ़ते, सुनते हैं । उसके सम्बन्ध में कौतूहल भरी विवेचनाएँ भी बार-बार सामने आती-जाती हैं, पर वस्तुत: यह अनुभव होता कभी भी नहीं है कि हम आत्मा हैं । अभ्यास और विश्वास यही है कि हम शरीर के रूप में जो कुछ जाने-माने जाते हैं, वही हैं, उतने ही हैं । शरीर भावना इतनी प्रबल एवं परिपक्व हो गई है कि यह अनुभव करना अति कठिन लगता है कि हम शरीर से भिन्न एक परम पवित्र एवं परम समर्थ चेतना केन्द्र हैं । यदि ऐसा अनुभव होने लगे तो सोचने का सारा आधार ही बदल जाय ।

"मैं आत्मा हूँ, शरीर मेरा उपकरण है । मेरा स्वार्थ, आत्मिक स्वार्थ परमार्थ है । उसे शरीर स्वार्थों की वेदी पर बलिदान न करूँगा ।" यह विद्रोह जब सजग विवेक द्वारा आरम्भ होता है तो अन्तरंग में एक भावनात्मक महाक्रांति उठ खड़ी होती है और सोचने तथा करने की पद्धति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिये विवश होना पड़ता है । यही वह मर्मस्थल है जहाँ आत्म-जागरण, आत्म-निर्माण, आत्म-विकास की सम्भावनाएँ मूर्तिमान् होती हैं । यही वह प्रवेश-द्वार है, जहाँ से आत्म-बल की महान् विभूतियों का रत्न-भण्डार जगमगाता हुआ दीखता है ।

जड़ परमाणुओं का बल अब सर्वविदित हो चला है । एक छोटे से अणु का 'नाभिक' जब फट पड़ता है, तब उसकी प्रचण्ड शक्ति का अन्दाज लगता है । अणुबम विस्फोट के समय उत्पन्न होने वाली शक्ति को देख कर नगण्य से अणु की महती शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है । फिर आत्मा तो चेतन है, चेतन में जड़ से असंख्य गुनी शक्ति है । आत्मा के एक कण की शक्ति का अनुमान लगा सकना अपनी पंगु-बुद्धि के लिये सम्भव नहीं । इस शक्ति के बल पर क्या कुछ नहीं हो सकता । एक नई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सृष्टि रची जा सकती है । एक प्रलय ताण्डव प्रस्तुत हो सकता है । परमात्मा का पुत्र आत्मा रूप है, यह पूछने की अपेक्षा यह जानना चाहिए कि वह क्या नहीं है । परमपिता परमात्मा की समस्त शक्तियाँ बीज रूप से मानवीय आत्मा में केन्द्रीभूत हैं । जो उनको समझ, सम्भाल और प्रयोग कर सके, वह एक प्रकार से ईश्वर का ही प्रतिनिधित्व कर सकता है ।

आत्म-ज्ञान के साथ यह मान्यता जगती है कि हमारा स्वरूप और लक्ष्य क्या है ? हमें क्या सोचना और क्या करना चाहिए ? इन प्रश्नों के उत्तर अन्तःकरण में से अनायास ही, स्वयमेव ही उठते हैं । जीवन की खोई हुई पवित्रता प्राप्त करने के लिए, विचारणा को परिष्कृत करने के लिए, गतिविधियों को व्यवस्थित करने के लिए—एक प्रचण्ड साहस, उत्साह एवं उल्लास यदि अन्तरंग में से फूट पड़े तो समझना चाहिए कि आत्म-जागरण एवं आत्मसाक्षात्कार का सौभाग्यशाली शुभ मुहूर्त आ गया । इस विवेक बिन्दु पर खड़ा हुआ व्यक्ति बड़े महत्त्वपूर्ण आश्चर्यचकित करने वाले एवं दुस्साहसपूर्ण निर्णय करता है ।

आत्म-बल का आरम्भिक स्वरूप विवेक के समर्थन में, आत्मा की महत्ता अक्षुण्ण रखने के लिये, वर्तमान गतिविधियों के विरुद्ध उठ खड़े होने के दुस्साहस के रूप में होता है । आगे वह बढ़ते-बढ़ते उस स्थिति को पहुँच जाता है, जिस पर पहुँचे हुओं को योगी-यती, सिद्ध-ऋद्धि, तत्वदर्शी आदि नामों से पुकारते हैं । आत्म-बल की परख आन्तरिक से कई सिद्धियों और चमत्कारों से की जाती है । जो दूसरों को अचम्भे में डाल देने वाले, अद्भुत, असाधारण काम कर दिखाये, उसे आत्म-बल सम्पन्न कहा जाता है । जो अन्तरिक्ष से कोई वस्तुएँ मँगा दे, किन्हीं को गायब कर दे, जो अदृश्य तथ्यों को देख सके, दूरस्थ घटनाओं को जान सके, बिना वाहन सुदूर प्रदेशों में चला जाय, बिना अन्न-जल जी सके, जिस पर शीत, ग्रीष्म आदि का प्रभाव न हो, जो समाधि में मूर्छित रहकर जीवित रहे, जिसके शाप से नाश और आशीर्वाद से उत्कर्ष सम्भव हो सके आदि-आदि चमत्कारी विशेषताओं से युक्त व्यक्ति को अध्यात्म-बल सम्पन्न मानते हैं । यह विशेषताएँ आत्मशक्ति के साधारण से चमत्कार हैं, जो सरकस जैसे कुछ अभ्यास साधन करने से सहज ही उपलब्ध हो सकते हैं । मूल प्रश्न आत्म-बल की उत्पत्ति वाले केन्द्र बिन्दु का है । वह तब उत्पन्न होता है, जब व्यक्ति भौतिक सुख-सुविधाओं को गौण और आध्यात्मिक परमार्थ साधना को प्रथम स्वीकार कर लेता है । मुख्य के लिए गौण की उपेक्षा कर सकने का आदर्श जो अपना लेगा उसी के लिये यह सम्भव होगा कि तृष्णा और वासना को ठुकराकर उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता का समर्थन एवं आचरण कर सके । यह साहस कुछ ऐसी घटनाओं के साथ विकसित होता है, जिन्हें साधारण लौकिक दृष्टि में सुस्साहस ही कहा जा सकता है ।

तुच्छ स्वार्थों की उपेक्षा करने का दुस्साहस जो कर सके, समझना चाहिए कि उसे आत्म-बल के भण्डार की चाबी मिल गई । हीरा किस जेवर में प्रयुक्त किया जाय ? यह पीछे का प्रश्न है । आत्म-बल दूसरों को प्रभावित करने वाली अद्भुत चमत्कारी कला दिखाने में भी प्रयुक्त किया जा सकता है । जिसका शरीर समर्थ है, वह कुछ दिन में सरकस जैसे खेल भी सीख सकता है, पर सरकस शिक्षण स्कूल में प्रवेश करने पर भी दुर्बल, बीमार को कुछ मिलने वाला नहीं है । इसी प्रकार जिसमें आत्म-बल का मूल-तत्व न हो उसे विविध विधि योग साधनाओं का अभ्यास करते रहने पर भी खाली हाथ ही रहना पड़ता है । आत्म-बल बढ़ाने के कई प्रयोग, कई साधन, कई अभ्यास भी हैं, पर ये सब तो हीरे पर खराद चढ़ाने के उपकरण मात्र हैं । हीरा हो ही नहीं तो काँच के टुकड़े पर खराद करने वाली कीमती मशीनें भी उसे असली हीरे का स्थान नहीं दिला सकतीं ।

आत्म-बल का प्रधान लाभ जीवन को सर्वोत्तम सदुपयोग के लिये प्रस्तुत करना है । अपने आपकी समीक्षा कर सकना, अपने से लड़ सकना, अपने को बदल सकना, अपनी गतिविधियों को निकृष्टता की कीचड़ में से निकाल कर उत्कृष्टता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर सकना मानव-जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ और मानवीय चेतना की सबसे बड़ी सफल साधना है । जीवन-क्रम देखने में सामान्य भले ही रहे पर अन्तरंग की उत्कृष्टता को जो समुन्नत कर सके वस्तुतः वही महापुरुष है । पुरुष का महापुरुष के रूप में परिणत हो जाना यही जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति है ।

यहाँ मनोबल और आत्म-बल का अन्तर हमें समझ लेना चाहिए । मनोबल, इच्छा-शक्ति, दृढ़ता, साहस और धैर्य का नाम है । इन गुणों का अपना महत्व है । सांसारिक सफलताएँ इन्हीं विशेषताओं के आधार पर मिलती हैं । मनस्वी लोग कठिनाइयों से डरते नहीं वरन् दूने उत्साह से कष्ट सहते हुए, संघर्ष करते हुए आगे बढ़ते हैं । जबकि दूसरे लोग पग-पग पर निराशा-आशा के, हर्ष-शोक के झूले में झूलते रहते हैं, तब मनोबल सम्पन्न व्यक्ति अविचल भाव से, निर्धारित दिशा में तत्परतापूर्वक गतिशील रहते हैं । साहस के आधार पर बड़े-बड़े कठिन कार्य पूरे होते है ।

परिश्रमी, उद्योगी, पुरुषार्थी असम्भव लगने वाली सफलताएँ प्राप्त कर लेते हैं । उत्साह और स्फूर्ति का चुम्बकीय आकर्षण अनेक दिशाओं से सुविधा-साधन तथा सहयोग खींच कर सामने खड़े कर देते हैं । संसार में छोटे-छोटे मनुष्यों ने अभावों और असुविधाओं को चीरते हुए प्रगति की है, उसमें उनके साहस, श्रम, धैर्य और मनोबल का ही श्रेय है । भौतिक प्रगतियों की कुञ्जी मनोबल ही तो है ।

इन पंक्तियों में मनोबल की नहीं आत्म-बल की चर्चा की जा रही है । मनोबल का अपना महत्त्व है, पर वह है इसी सीमा तक कि किन्हीं कार्यों को सिद्ध करने में प्रयुक्त हो सके । आत्म-बल इससे ऊँची शक्ति है, उसमें साहस और बल तो होता है, पर ऊँचे स्तर का । आदर्शों और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिद्धान्तों पर अड़े रहने, किसी भी प्रलोभन और कष्ट के दबाव में कुमार्ग पर पग न बढ़ाने, अपने आत्म-गौरव के अनुरूप सोचने और करने, दूरवर्ती भविष्य के निर्माण के लिये आज की असुविधाओं को धैर्य और प्रसन्नचित्त से सह सकने की दृढ़ता का नाम आत्म-बल है । जो वासना और सदाचार से भरा, प्रेम और आत्मीयता भरा जीवन जी सकता है, उस महामानव को ही आत्म-बल सम्पन्न कहा जायेगा ।

आत्म-बल, आत्मा की उच्च स्थिति का प्रकाश है । उसके आधार पर किसी की आन्तरिक महानता नापी जा सकती है । जो आत्मिक दृष्टि से जितना महान् है, उसे इस संसार का उतना ही बड़ा सम्पन्न और विभूतिवान् होना चाहिए । ऋषि और मनीषियों के पास यही सम्पदा होती है और वे इसी विभूति के बल पर आत्म-कल्याण का लक्ष्य प्राप्त करते हुए चन्दन वृक्ष की तरह अपने समीपवर्ती लोगों को सुगन्धि सुविधा से लाभान्वित करते रहते हैं ।

मनुष्य शरीर में ईश्वर का अंश उसके आत्म-बल के आधार पर आँका और नापा जा सकता है । जिसमें जितना आत्म-बल हो समझना चाहिए कि उसके व्यक्तित्व में उतनी ही मात्रा में ईश्वर का निवास है । जहाँ ईश्वर है, वहाँ ऐश्वर्य की क्या कमी । दूसरे उसे गरीब एवं अभावग्रस्त समझते हों तो समझें पर वह अपनी विभूतियों का मूल्य समझते हुए, स्वामी रामतीर्थ की तरह अपने को बादशाह ही समझता है । समझता ही नहीं, उसी स्तर की प्रसन्नता एवं संतुष्टि भी अनुभव करता है ।

जिनके प्रकाश से जन-समाज को श्रेय पथ पर चलने का मार्ग-दर्शन मिलता है, जो अपने अनुकरण की प्रेरणा देकर असंख्यों को उठाते, उबारते, बढ़ाते और पार करते हैं, वे आत्म-बल सम्पन्न महामानव ही होते हैं । चरित्र के धनी, करुणा, दया परिपूर्ण हृदय, उदारता और आत्मीयता से ओत-प्रोत व्यक्तित्व आत्म-बल के ही प्रतीक हैं । ऐसे महाभाग देवदूतों की तरह जीवन मुक्ति की तरह जीते हैं । संसार उनकी उपस्थिति से सुगन्धित, सुरभित, समुन्नत और व्यवस्थित होता है । वे अपनी सामर्थ्य से दिशाएँ बदलने और हवाएँ पलटने में समर्थ होते हैं । उन्हें धरती के देवता ही कहा जायेगा, भले ही साधारण गृहस्थ व्यवसायी के रूप में जीवन-यापन करते हों अथवा लोक-सेवी परमार्थी सज्जनों की तरह पुण्य-परमार्थ के प्रयोजनों में संलग्न हों । उनका आशीर्वाद जिन्हें मिल गया वह कृत-कृत्य हो जाता है ।

आत्म-बल वह क्षमता है, जिसका जितना अंश मनुष्य के पास होगा, उतना ही वह अपने विवेक को सजग कर सकने में समर्थ होगा । विवेक ही वह सत्ता है जो धन, बुद्धि, स्वास्थ्य आदि की भौतिक शक्तियों को नियन्त्रण में रखकर उन्हें सन्मार्गगामी बनाती है । सदुद्देश्य और सत्प्रयोजनों में प्रवृत्त करती है । यह प्रयोग ही हमारी भौतिक उपलब्धियों को सार्थक बनाते हैं ।

मनोबल सहित स्वास्थ्य, विद्या और धन सभी का अपना-अपना महत्त्व है, पर यह गाँठ बाँध रखना चाहिए कि संसार की किसी वस्तु का यदि तनिक भी लाभ उठाना हो तो उसे आत्म-बल के नियन्त्रण में रखकर ही यह सम्भव है । वस्तुएँ आध्यात्मिकता के प्रकाश में ही प्रकाशवान और सुखदायक होती हैं, अन्यथा वे भारभूत बनी हुई मनुष्य के कष्टों को ही बढ़ाती रहती हैं ।

शक्ति के स्रोत—आत्मा को मानिए

हमारे पुरखे ज्ञान-विज्ञान में आज के वैज्ञानिकों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रवीण थे, किन्तु वे समझते थे विज्ञान अन्ततोगत्वा मनुष्य की वृत्तियों को पाशविक, भोगवादी ही बनाता है; अतः उन्होंने धर्म और अध्यात्म पर आधारित जीवन की रचना की थी । इस जीवन में प्राण था, शक्ति थी, समुन्नति थी और वह सब कुछ था जिससे मनुष्य का जीवन पूर्ण सुखी, स्वस्थ और सन्तुष्ट कहा जा सकता है ।

आत्मा को ही सब कुछ मानकर अनित्य शरीर के प्रति वैराग्यमूलक मनोवृत्ति धारण कर लेने की शिक्षा देना हमारा उद्देश्य भले ही न हो, किन्तु भौतिक सुख और इन्द्रियों की पराधीनता भी मनुष्य जीवन के लिए नितान्त उपयोगी नहीं कहे जा सकते । आत्म-ज्ञान की आवश्यकता इसलिए है कि उससे सांसारिक विषयों में स्वामित्व और नियंत्रण की शक्ति आती है । भौतिक सुखों की रथ के उन घोड़ों से तुलना की जा सकती है जिनमें यदि आत्म-ज्ञान की लगाम न लगी हो तो वे सवार समेत रथ को किसी विनाश के गड्ढे में ही ले जा पटकेंगे । जगत की सत्ता से विच्छिन्न मनुष्य की सत्ता व्यक्ति-परिच्छिन्न मात्र नहीं है, वह केवल व्यष्टि ही नहीं, वरन् समष्टि भी है । उसमें अनन्त, सत्य, शिव और सौन्दर्य समाहित है, उसे जाने बिना मनुष्य के बाह्यान्तरिक कोई भी प्रयोजन पूरे नहीं होते । आत्म-ज्ञान इसलिए मनुष्य जीवन का प्रमुख लक्ष्य है ।

शरीर के सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगों की स्थूल जानकारी, पदार्थ और गुण-भेद की जानकारी ग्रह-नक्षत्रों से सम्बन्धित गणित और उनके वैज्ञानिक तथ्य जानने से मनुष्य की सुविधाएँ भले ही बढ़ गई हों, पर उसने अपने आप का ज्ञान प्राप्त नहीं किया यही दुःख का प्रधान कारण है । मनुष्य शरीर ही नहीं, वरन् परिस्थितियाँ बताती हैं कि वह कुछ अन्य वस्तु भी है, आत्मा है । इस आत्मा या 'अहंभाव' का ज्ञान प्राप्त किये बिना दुनिया का सारा ज्ञान-विज्ञान अधूरा है । बिना इंजन लगी हुई मोटर की तरह वह ज्ञान किसी तरह का लाभ नहीं दे सकता है ।

आत्मा शक्ति का अनादि स्रोत है । शौर्य, प्रेम और पौरुष की अनन्त शक्ति उसमें भरी हुई है, अतः आत्म-ज्ञान में लगाये हुए समय, श्रम और साधनों को निरर्थक नहीं बताया जा सकता । आत्म-शक्ति को पाकर मनुष्य के सारे अभाव, दुःख-दारिद्रय, सांसारिक आधि-व्याधियाँ समाप्त हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती है । भगवान् कृष्ण ने आत्म-ज्ञानी पुरुष को ही सच्चा ज्ञानी बताते हुये कहा है—

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुज्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥
(गीता १५ ।१०)

अर्थात्—हे अर्जुन ! उस आत्मा को शरीर छोड़कर जाते हुए, शरीर में स्थित हुए, विषयों को भोगते हुए अथवा तीनों गुणों से युक्त हुये भी अज्ञानी लोग नहीं जानते । उस तत्व रूप आत्मा को केवल ज्ञानी ही जानते हैं ।

मनुष्य शरीर नहीं, वरन् वह शरीर का संचालक है । वह मन भी नहीं, क्योंकि मन को प्रेरणा देकर, आदेश देकर किसी भी अच्छे बुरे कर्म में लगाया जाता है । सत्-असत् का ज्ञान देने वाली बुद्धि को भी आत्मा कैसे मानें ? विश्लेषण करने पर पता चलता है यह शरीर इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि पंचभूतों के सत-रज-तम अंश को लेकर बने हैं । पंच-भूत जड़ पदार्थ हैं, अतः आत्मा इनसे भी विलक्षण और शक्तिवान है । वह संचालक है, सूक्ष्मतम है और शक्ति का उत्पादक है, अजर-अमर सर्वव्यापी तत्व है । जो इस तत्व को जानता है, उसके सारे दुःख मिट जाते हैं ।

मानव-जगत का अधिकांश भाग इस कारण अधोगति को प्राप्त हो रहा है कि उसे जो कार्य सम्पादन करना चाहिए, वह नहीं करता । सबसे बड़े दुःख की बात तो यही है कि पूर्ण परिपक्व और बुद्धिमान होकर भी उस मार्ग का अनुसरण नहीं करते, जो कल्याणकारी है और जो जीवन में सुख की वृद्धि कर सकता है । थोड़े से मोह के चक्र में फँसकर नासमझ लोग अयोग्य कार्यों की ओर प्रेरित होते हैं और उन्हें ही सुख का मूल समझकर अपने भीतर सिमटी, दुबकी हुई जो आत्मा बैठी है उसे भूल जाते हैं । इसी ऐश्वर्य और भोग में जीवन की इति-श्री कर देते हैं । कभी गहराई में उतरकर आत्म-तत्व पर विचार नहीं करते । मनुष्य की इस विडम्बना को, इस मूढ़ता को क्या कहें जो बड़ा ज्ञानी होने का दावा करता है, पर जानता खुद को भी नहीं है ।

सारांश यह है कि जड़ पदार्थों के सम्बन्ध में आज लोगों ने खूब उन्नति की है, वहाँ चेतन पदार्थों के सम्बन्ध में वह अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही है । विज्ञान ने भौतिक एव मानसिक जगत को रूपान्तरित कर दिया है इसका प्रभाव मनुष्य पर गम्भीर रूप से पड़ा है, क्योंकि आज जो भी कार्यक्रम बनाये जा रहे हैं उनमें मनुष्य की मूल प्रकृति पर विचार नहीं किया जाता, यही कारण है कि भौतिक विज्ञान तथा रसायन शास्त्र ने परम्परागत जीवन प्रणाली में विक्षिप्त रूप से परिवर्तन ला दिया है । मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति की कसौटी पर ही विषयों का चयन किया जाता तो अधिक बुद्धिमत्ता रहती । आत्म-ज्ञान ही वह प्रक्रिया है जिससे इस समस्या का हल निकाला जा सकता है ।

बाहर की वस्तुओं का ही अवलोकन न कीजिए, यह भी सोचिए कि शरीर के भीतर कैसी विचित्र हलचल चल रही है । आहार पेट में जाता है फिर न जाने कैसे वह रस, रक्त, माँस, अस्थि आदि सप्त धातुओं में परिणत हो जाता है । कितनी हानिकारक वस्तुओं का भक्षण करते हुये मनुष्य जीवित रहता है । वह कौन-सा विलक्षण अमृत तत्व है जो शरीर जैसी महत्त्वपूर्ण मशीनरी को चला रहा है । आप इसे जान जायेंगे तो सारे संसार को जान जायेंगे । उस आत्मा में ही यह सम्पूर्ण विश्व व्यवस्थित है । ब्रह्मोपनिषत् के छठवें अध्याय में शास्त्रकार ने बताया है—

आत्मनोऽन्या गतिर्नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् ।
आत्मनोऽन्यन्हि क्वापि आत्मनोऽन्यतृणं न हि ॥
(ब्र. उ. ६ ।४६)

अर्थात्—"आत्मा से भिन्न गति नहीं है, सब जगत आत्मामय है, आत्मा से विलग कुछ भी नहीं है, आत्मा से भिन्न एक तिनका भी नहीं है ।"

विश्व-व्यापी चैतन्य अनादि तत्व आत्मा को जाने बिना मनुष्य को शान्ति और स्थिरता की उपलब्धि नहीं हो सकती । सफल जीवन जीने के अभिलाषी को इस पर बार-बार विचार करना चाहिए । प्राचीन धर्म-ग्रन्थ, सृष्टि और अध्यात्म की खोज करनी चाहिए । अपने आपको पहचानने के लिए अपनी आत्मा, मनोवृत्तियाँ, स्वभाव तथा विचारों का निरीक्षण करना चाहिए । आत्म-भाव जाग्रत करने के लिए सुन्दर पुस्तकों का स्वाध्याय करना चाहिए ।

आत्मा के साथ जन्म-मरण, सुख-दुःख, भोग-रोग आदि की जो अनेक विलक्षणताएँ विद्यमान हैं, वह मनुष्य को यह सोचने के लिए विवश करती हैं कि खा-पीकर, इन्द्रियों के भोग-भोगकर दिन पूरे कर लेना मात्र जिन्दगी का उद्देश्य नहीं है । रूप और शारीरिक सौन्दर्य की झिलमिली में शरीर और प्राण के अनुपम संयोग की स्थिति को दूषित किया जाना किसी भी तरह भला नहीं है । यह अमूल्य मानव जीवन पाकर भी यदि आत्म-कल्याण न किया जा सका तो न जाने कितने वर्षों तक फिर अनेक कष्ट-साध्य योनियों में भटकना पड़ेगा । जिसे ऐसी बुद्धि मिल जाय, उसे अपने आपको परमात्मा का कृपा-पात्र ही समझना चाहिए । आत्म-ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्य जीवन धन्य हो जाता है ।

मनुष्य दैवी अंशयुक्त है सत्-चित् आनन्द स्वरूप है । निष्फलता, दुःख, रोग-शोक तो निम्न विचारों, दूषित कल्पनाओं तथा भोगवादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप पैदा होते हैं अन्यथा इन अभावों का इस जीवन से क्या प्रयोजन ? अपने अमृतत्व की खोज करने के लिए काम, क्रोध, भय, लोभ, तिरस्कार, शंका तथा द्विविधाओं की कीचड़ से निकलकर हमें सत्य, प्रेम, निश्छलता और पवित्रता का आदर्श अपनाना पड़ेगा । उत्कृष्ट स्वस्थ तथा दिव्य विचारों का वर्णन करना होगा । आत्मा अत्यन्त विशाल और शक्तिशाली है उसे प्राप्त करने के लिये, उसमें विलय होने के लिए हमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी उतना ही निर्मल, हितकारक तथा विस्तृत बनना होगा । जिस दिन ऐसी स्थिति बना लेंगे उस दिन किसी तरह की कमी महसूस नहीं होगी । सारा जीवन शक्ति और सौन्दर्य से भर जायगा । उसे प्राप्त करने पर ही हमारा जीवन सफल होता है, हम अपने भीतर छिपी हुई आत्मा को ढूँढ़ने का प्रयास करें तो वह सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं, जिसकी तलाश में हमें निरन्तर भटकना और जिसके अभाव में सदा दुःखी रहना पड़ता है ।

आत्मा असीम शक्तियों का केन्द्र बिन्दु

मनुष्य अपने सामान्य रूप में एक तुच्छ प्राणी है । वह अन्य बहुत से प्राणियों की अपेक्षा कहीं अधिक निर्बल और अपूर्ण है । मछलियाँ पानी में तैर सकती हैं । पक्षी आकाश में उड़ सकते हैं । बहुत से जानवर बिना किसी साधन अथवा अभ्यास के यों ही पानी में तैर सकते हैं । जल और थल दोनों स्थानों में रह सकते हैं । शक्ति में मनुष्य बहुत से जानवरों की अपेक्षा निर्बल और निस्सहाय है । वह निश्चय ही अपने सामान्य जीवन में बहुत कुछ अपूर्ण है ।

इसके साथ ही ऐसे मनुष्यों के भी उदाहरण और प्रमाण मिलते हैं, जो बिना किसी साधन के हवा में उड़ सकते थे, पानी पर चल सकते थे, अग्नि में सुरक्षित रह सकते थे । यदि खोज की जाये तो आज भी ऐसे अनेक व्यक्ति इस संसार में मिल सकते हैं, जो अपने विलक्षण कार्यों द्वारा सिद्ध पुरुष माने जा सकते हैं । भारत के ऋषि-मुनि तो सिद्ध पुरुष ही नहीं उसके आगे के स्तर के पुरुष थे । उनके एक आशिष वचन से बहुतों का कल्याण और अभिशाप से विनाश मुहूर्त मात्र में घटित हो जाता था । ऐसे आध्यात्मिक पुरुषों की तो भारत में कमी ही नहीं थी, जो अपनी अलौकिक और चमत्कारी शक्ति से आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाते थे ।

अपने सामान्य रूप में जो मनुष्य एक तुच्छ प्राणी से अधिक कुछ नहीं होता, वही मनुष्य आत्मिक शक्तियों के जाग जाने पर अलौकिक, सिद्ध और चमत्कारी पुरुष बन जाता है । मनुष्य की आत्मिक शक्तियों का जागरण आध्यात्मिक साधना द्वारा होता है । जो लोग उस साधना पथ पर जितनी दूर तक चल पाते हैं, उतनी ही उनकी वे सूक्ष्म शक्तियाँ प्रबुद्ध हो जाती हैं, जो आत्म-प्रदेश मे सुप्त पड़ी रहती हैं । ऋषि-मुनि अपने सम्पूर्ण जीवन को आध्यात्मिक साँचे में ढाल कर चलते थे और प्रचण्डतम साधनाएँ करके अलौकिक शक्तियों के स्वामी बन जाते थे । लोक के साथ अपने परलोक तक को कल्याण-कुसुमों से परिपूर्ण कर लिया करते थे । जिस साधना द्वारा मनुष्य की आत्मिक शक्तियाँ प्रबुद्ध होती हैं, वह है अपने शरीर और मन पर नियन्त्रण करना । शरीर पर नियन्त्रण करने का अर्थ है, इन्द्रियों को स्वाधीन करना और मन पर नियन्त्रण करने का आशय है, उसकी चंचलता पर प्रतिबन्ध लगा देना, इसकी वृत्तियों को अपने अनुकूल बना लेना । उसे एकाग्र, एकनिष्ठ और स्थिर बना लेना । मन अध्यात्म-साधना का बहुत बड़ा साधन है । जब यह नियन्त्रित होकर एक दिशा में प्रवाहित अथवा सक्रिय होता है तो उस दिशा की सूक्ष्म सम्पदाओं को खोज निकालना है । मन की गति बहुत सूक्ष्म है, वह स्वयं भी सूक्ष्म होता है । अतएव जब वह भौतिक चांचल्य से मुक्त स्थल से विमुख होकर सूक्ष्म की ओर जाता है, तब अपना सम्बन्ध उस आत्म-प्रदेश से ही स्थापित करता है, जिनमें वे शक्तियाँ सोई रहती हैं, जो अलौकिक कार्य सम्पन्न करने में सक्षम होती हैं । मन का सूक्ष्म शक्तियों से सम्बन्धित होना ही उनका प्रबोधन कहा गया है ।

शरीर और मन पर नियन्त्रण हो जाने से एक सीमा तक मनुष्य का अधिकार प्रकृति पर भी हो जाता है । प्रकृति ही जड़ और चेतन दोनों प्रकार की सृष्टि की संचालिका होती है । साधना द्वारा उस पर अधिकार हो जाने से मनुष्य अपनी अधिकार रेखा तक उसकी प्रक्रिया में नियमों और नियन्त्रण में भी हस्तक्षेप कर सकता है । इस अधिकार के आधार पर ही वह उसके सामान्य नियम का व्यतिक्रमण करके ऐसे कार्य सम्पादित कर दिखाता है, जो चमत्कार अथवा सिद्धियों जैसे विदित होते हैं । मनुष्य यह देखने और जानने में समर्थ हो जाता है कि सृष्टि के सूक्ष्म परिवेश में क्या हो रहा है ? कैसे हो रहा है और उसे किस प्रकार किया जा सकता है तथा क्या होने जा रहा है और उसको किस प्रकार अपनी इच्छा के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है ? इस प्रकार वह विराट् सृष्टि यन्त्र का एक सहायक संचालक-सा बनकर सामान्य लोगों को चमत्कारी, सिद्ध अथवा अलौकिक पुरुष विदित होने लगता है । अलौकिकता और कुछ नहीं प्रकृति के साथ उसके विधान में भागीदार हो जाना भर ही है ।

आत्मा की शक्तियों की कोई सीमा नहीं । वे असीम और अनन्त हैं । शक्ति का निवास सूक्ष्मता में होता है । जो पदार्थ, जो वस्तु जितनी अधिक सूक्ष्म होती जाती है, उसकी शक्ति उतनी ही बढ़ती जाती है । किसी स्थूलतम विशाल-ग्रह में सब मिलाकर जितनी शक्ति होती है, उतनी शक्ति एक परमाणु में भी होती है । अब तो यह तथ्य विश्वास अथवा अनुमान का विषय न रहकर एक वैज्ञानिक सत्य बन चुका है । परमाणु की खोज और उसका प्रयोग कर वैज्ञानिकों ने उसकी प्रचण्ड शक्ति को प्रमाणित कर दिया है । अणु बमों द्वारा परमाणु की शक्ति अब सम्पूर्ण संसार पर प्रकट हो चुकी है । वैज्ञानिक अब इस शक्ति को सृजनात्मक कार्यों में प्रयोग करने की सोच रहे हैं । जब यह सविचार कार्यरूप में परिणत होने लगेगा तो निश्चय ही इस संसार का चित्र ही बदल जायेगा ।

जिस प्रकार एक ग्रह की शक्ति एक अणु में रहती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की शक्ति-पिण्ड में विद्यमान है । यह विराट् ब्रह्माण्ड ईश्वर का प्रकट रूप है और पिण्ड अर्थात् मनुष्य उसका एक अंश है । यहाँ पर मनुष्य का अर्थ भौतिक पिण्ड अथवा शरीर से नहीं है । उसका तात्पर्य आत्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से है, उस आत्मा से जो शरीर में गुप्त रहकर भी चेतना रूप में भासमान होता है । यही वह परमात्मा का अंश माना है, जिसमें उसके अंशी परमात्मा की सारी शक्तियाँ सन्निहित रहती हैं । आत्मा की शक्तियों का प्रबोधन कर लेने का अर्थ है, अपने परमात्मा की शक्तियों का जागरण कर लेना । कहना न होगा कि जिसमें परमात्मा की शक्तियाँ प्रबुद्ध हो जायेंगी, उसके लिये ऐसा कौन-सा कार्य हो सकता है, जो असम्भव अथवा अकरणीय हो । आत्म-शक्ति सम्पन्न व्यक्ति सब कुछ कर सकने में समर्थ होता है । वह प्रकृति के नियमों का व्यतिक्रमण कर सकता है, सृष्टि-विधान में हस्तक्षेप कर सकता है, असम्भव को सम्भव, भाव को अभाव और अभाव को भाव में बदल सकता है । यह आत्मिक शक्ति आध्यात्मिक साधना द्वारा सहज ही प्रबुद्ध की जा सकती है ।

यह मानव जीवन बड़ा ही महान् और महत्त्वपूर्ण है । यही वह अवसर है, जिसका उपयोग कर मनुष्य तुच्छ से विराट् और अणु से विभु बन सकता है । यह वह अवसर है, जिसमें अनन्त शक्तिशालिनी आत्मा का ज्ञान सुलभ हुआ है । आत्मा का विस्तार एवं क्षेत्र अत्यन्त विशाल और महत्त्वपूर्ण है । आत्मा को देख लेने वाले को कुछ देखना शेष नहीं रह जाता और उसको जान लेने पर कुछ जानना नही रहता । निदान बुद्धिमान लोग साधना द्वारा इस आत्मा को ही जानने का प्रयत्न करते हैं । उसे जान लेते हैं और जानकर सर्वदर्शी, सर्वज्ञ और सर्वशक्ति सम्पन्न बनकर जीवन का पूरा-पूरा क्षेत्र प्राप्त कर लेते हैं ।

भारतीय ऋषि-मुनि ऐसे ही बुद्धिमान् लोगों में से थे । उन्होंने पंच भौतिक जीवन में बड़ी-बड़ी साधनाएँ करके, बड़े-बड़े कष्ट उठाकर महान् से महान् त्याग करके आत्म-क्षेत्र में प्रवेश किया था । उन्होंने साधना द्वारा कुण्डलिनी जागरण, ब्रह्म-समाधि आदि योगों को सिद्ध किया । शरीर सीमा से उठकर उच्च भूमिका में और स्थूलता से बढ़कर सूक्ष्म दशा में गये और आत्मा से साक्षात्कार कर उसकी शक्तियों को जगाया और सिद्धि की, उस स्थिति के स्वामी बने जिसे ईश्वरीय स्थिति कहा जा सकता है । उन्होंने उस दिव्य-शक्ति का आग्रहण किया, जिसके आधार पर वे सूक्ष्म जगत में होने वाले क्रिया-कलापों को वैसे ही देख लेने में समर्थ होते थे, जैसे हम अपने चक्षुओं द्वारा भौतिक जगत के सामान्य दृश्यों को देख लेते हैं । यह आत्मिक शक्ति के आँकलन का ही फल होता था कि ऋषि केवल एक दृष्टि अथवा वचन मात्र से ही लोगों का भाग्य और भविष्य अदल-बदल देते थे । धन्य थे वे साधक और उनकी सिद्धियाँ । अपनी उसी आध्यात्मिक साधना के कारण ही वे महानुभाव आज भी मृत्युंजय होकर हमारे बीच अजर रूप से जीवित बने हुए हैं ।

मानव-जीवन पाकर जिसने अपने को आध्यात्मिक साधना से वंचित रखा उसने मानो अपनी ऐसी हानि कर ली, जिसकी क्षतिपूर्ति किसी प्रकार भी नहीं हो सकती । यह बात सही है कि सभी लोग ऋषि-मुनियों जैसी प्रचण्ड साधना करने के न तो योग्य हो सकते हैं और न उनके पास ऐसा अवसर अथवा अवकाश ही होता है । मिट्टी में बीज की तरह मिलकर तप में समाप्त होकर सिद्धि का वैसा प्रयास सबके लिये सम्भव नहीं जैसा कि आप्तपुरुषों ने किया है । तब भी आत्मा को पाने, उसकी शक्ति का आग्रहण करने के लिये जीवन प्रति-जीवन में थोड़ा-थोड़ा प्रयास करते ही चलना चाहिए । इस जीवन में यदि एक साथ सहसा ही तपश्चर्या में निमग्न नहीं हुआ जा सकता तो भी अपने लौकिक कर्त्तव्यों का पालन करते और भौतिक जीवन गति को अक्षुण्ण रखते हुये भी सामान्य साधना तो की ही जा सकती है । इस सामान्य साधना का रूप भक्ति, पूजा, उपासना, अनुष्ठान, जप, ज्ञान, साधना, चिन्तन आदि कुछ भी हो सकता है । हम सब का परम कर्त्तव्य है कि अपनी योग्यता, स्थिति और परिस्थिति के अनुसार इनमें से किसी भी साधना को ग्रहण कर उसमें नियमित रूप से लगे रहें । धीरे-धीरे साधना संचित होती रहेगी और एक दिन किसी न किसी जन्म में पूर्ण होकर अपना सम्पूर्ण फल प्रदान करेगी ।

आध्यात्मिक साधना का स्वरूप कुछ भी हो पर वह सफल तभी होती है, जब श्रद्धा, विश्वास, संयम, साहस, धैर्य और नियमितता आदि तत्वों का अवलम्बन लेकर चला जायेगा । इन गुणों से विहीन साधक साधना का वह उच्च फल नहीं पा सकते, जिसका सम्बन्ध आत्मा और उसकी शक्तियों से होता है । बहुत से लोग तन्त्र-मन्त्र और यन्त्रों के अनुष्ठानों द्वारा कतिपय सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं । किन्तु यह सिद्धियाँ बहुत ही निम्नकोटि की और अवांछनीय होती हैं । उनको यदि आसुरी सिद्धियाँ भी कह दिया जाय तब भी अनुचित न होगा ।

अनाध्यात्मिक मार्ग से प्राप्त की गईं सिद्धियों द्वारा न तो किसी का हित साधन किया जा सकता है और न अपने लिये ही आन्तरिक शांति और सन्तोष की ही प्राप्ति हो सकती है । उन सिद्धियों द्वारा कुछेक ऐसे कौतुक ही किये जा सकते हैं, जो अज्ञानी और निम्न-स्तर के लोगों के लिये आश्चर्य और आतंक के विषय हों । वह साधना जिसका मार्ग विशुद्ध आध्यात्मिक नहीं होता अशिव साधना ही होती है, उससे शिव परिणामों की आशा नहीं की जा सकती ।

साधना का सच्चा उद्देश्य आत्म-लाभ ही है । तथापि अनेक लोग भौतिक लाभों की कामना से पूजा उपासना अथवा अनुष्ठान किया करते हैं । यद्यपि पूजा, उपासना अथवा अनुष्ठान आदि आध्यात्मिक साधना के स्वरूप हैं तथापि इनका उद्देश्य भौतिक लाभ बना लेने से वे भी उसी श्रेणी में पहुँच जाती हैं, जिसमें तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र आदि की साधना होती है । तन्त्र साधना और सकाम उपासना में स्वरूप भेद होते हुए भी वे परिणाम रूप में एक जैसी ही होती हैं । सकाम उपासना भी आत्मिक उन्नति अथवा आत्म-जागरण कर सकने में सर्वथा असमर्थ ही होती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य की शक्तियाँ अनन्त हैं । किन्तु उनका निवास आत्मा में ही है । अध्यात्म साधना द्वारा उनको प्रबुद्ध और प्राप्त किया जा सकता है । आत्मिक शक्तियों का स्वामी मनुष्य क्षुद्र से महान्, अणु से विभु और जीव से ईश्वर बन जाता है । किन्तु यह सम्भव तभी है, जब साधना के किसी भी स्वरूप का आश्रय लेकर निरन्तर धैर्य और निष्काम-भाव से सुयोग्य पुरुषार्थ में संलग्न रहा जाय ।

आत्म-शक्ति का उचित उपयोग

एकाग्रता में दिव्य शक्तियों के भण्डार भरे हुए हैं । सांसारिक जीवन में मन की शक्ति से बड़े-बड़े अद्भुत कर्मों को मनुष्य पूरा करता है । इसी मनःशक्ति को जब बाहर से समेट कर अन्तर्मुखी किया जाता है और असाधारण कठिन परिश्रम द्वारा उसको सुव्यस्थित रूप से आत्म-साधना में लगाया जाता है तो और भी अद्भुत, आश्चर्य-जनक परिणाम उपस्थित होते हैं, जिन्हें ऋद्धि सिद्धि के नाम से पुकारते हैं । निसन्देह आध्यात्मिक साधना के फलस्वरूप कुछ ऐसी विशेष योग्यताएँ प्राप्त होती हैं जो सर्वसाधारण में नहीं देखी जातीं यदि इस प्रकार का विशेष लाभ न होता तो मनुष्य प्राणी जो स्वभावतः वैभव और आनन्द की तलाश करता रहता है । इन्द्रिये भोग को त्यागकर योग की कठोर साधनाओं की ओर आकर्षित न होता । रूखी, नीरस, कठोर, अरुचिकर कष्ट-साध्य साधनाएँ करने को कोई कदापि तैयार न होता यदि उसके फलस्वरूप कोई ऊँचे दर्जे की वस्तु प्राप्त न होती ।

मूर्ख, अपढ़, नशेबाज; हमारी और अधपगले भिखमंगों के लिए यह कहा जा सकता है कि यह लोग बिना मेहनत पेट भरने के लिए जटा रखाये फिरते हैं, परन्तु सबके लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता । विद्या, वैभव, बुद्धि, प्रतिभा और योग्यताओं से सम्पन्न व्यक्ति जब विवेकपूर्वक सांसारिक भोग बिलास से विरत होकर आत्मसाधना में प्रवृत्त होते देखे जाते हैं तो उसमें कुछ विशेष लाभ होना ही साबित होता है । प्राचीनकाल में जितने भी तपस्वी हुए हैं और आज भी जो सच्चे तपस्वी हैं वे विवेक प्रेरित होकर इस मार्ग में आते हैं । उनकी व्यापार बुद्धि ने गंभीरतापूर्वक पूर्वक निर्णय किया है कि भोग की अपेक्षा आत्म-साधना में अधिक लाभ है । लाभ का लोभ ही उन्हें स्थूल वस्तुओं में रस लेने की अपेक्षा सूक्ष्म सम्पदाओं का संचय करने की ओर ले जाता है ।

जो लोग सच्ची लगन और निष्ठा के साथ आध्यात्मिक साधना में प्रवृत्त हैं उनका उत्पादन कार्य अच्छी फसल उत्पन्न करता है । उनमें एक खासतौर की शक्ति बढ़ती है जिसे आत्मबल कहते हैं । यह बल सांसारिक अन्य बातों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है । प्राचीनकाल में राजा विश्वामित्र की समस्त सेना और सम्पदा, तपस्वी वशिष्ठ के आत्मबल के सामने पराजित हो गई तो **"धिक् बलं क्षत्रि बलं; ब्रह्म तेजो बलं बलम् ।"** कहते हुए विश्वामित्र राजपाट छोड़ कर आत्मसाधना के मार्ग पर चल पड़े । राजा की अपेक्षा ऋषि को उन्होंने अधिक बलवान् पाया । सांसारिक बल की अपेक्षा आत्मबल को उन्होंने महान् अनुभव किया । छोटी चीज को छोड़कर लोग बड़ी की ओर बढ़ते हैं । राज त्याग कर विश्वामित्र का योगी होना इसका ज्वलंत प्रमाण है गौतम बुद्ध का चरित्र भी इसी की पुष्टि करता है । जो आत्म-साधना में लीन हैं वे ऊँचे दर्जे के व्यापारी हैं ।

छोटा रोजगार छोड़ करके बड़ी कमाई में लगे हुए हैं । यह कम या पूर्णतः प्रत्यक्ष है यदि वह लाभ सच्चा और ऊँचा न होता तो एक भी विवेकवान व्यक्ति उस झंझट भरे, कठिन मार्ग में प्रवृत न होता ।

अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियों का पातञ्जलि योग दर्शन में वर्णन है । तान्त्रिक साधनाओं द्वारा 'मारण'—आत्मविद्युत के प्रहार से किसी को मार डालना, 'मोहन'—बुद्धि का मोहित करके इच्छानुसार कार्य कराना, 'उच्चाटन'—किसी स्थान कार्य या व्यक्ति से मन उचटा देना द्वेष करा देना, 'वशीकरण'—वश में कर लेना, आज्ञानुवर्ती बना लेना, 'आकर्षण'—किसी को आकर्षित करना, "स्तम्भन"—किसी कार्य की अधूरी अवस्था में छुड़ा देना, रोक देना, जड़ता उत्पन्न कर देना आदि भयंकर सफलतायें मिलती हैं । देवी-देवता तथा प्रेत-पिशाचों की सहायता भी किन्हीं को प्राप्त होती है । इन सब योग्यताओं द्वारा दूसरे व्यक्ति को भौतिक वस्तुओं का हानि लाभ भी पहुँचाया जाता है । अपनी योग्यताओं का प्रदर्शन करके चमत्कार दिखाने, पूजा और कीर्ति भी प्राप्त की जाती है । बदले में धन और भोग लिए जाते हैं । यह सब होता है या हो सकता है, परन्तु याद रखना चाहिए कि यह निषिद्ध मार्ग है । इस क्षण कुछ लाभ भले ही मालूम पड़े, पर अन्त में इसका परिणाम अत्यन्त घातक, भयंकर और कर्म कराने वाले दोनों के लिए दुःखदायक होता है । इस खतरे से हर एक आत्म-साधक को सावधान रहना चाहिए ।

विभिन्न मार्गों से साधक गहरी आत्मसाधना में जब प्रवेश करता है तो उसे असाधारण लाभ और बलों का अपने अन्दर बोध होता है । उसकी योग्यताएँ दिन-दिन निरखती आती हैं । खतरे का यही समय है । यदि उन शक्तियों का उपयोग ठीक न हुआ तो वैसा ही अनिष्ट उत्पन्न होता है जैसा कि मूर्ख बालक दियासलाई की डिब्बी हाथ में लेकर भयंकर अग्निकाण्ड उपस्थित कर सकता है । योग शास्त्र में स्थान-स्थान पर ऋषि-सिद्धियों के प्रलोभन में न फँसने का कठोर आदेश है । कारण यह है कि यदि साधक चमत्कार दिखाने में लग गया तो वाहवाही के लोभ तथा शक्तिमत्ता के अभिमान में नष्ट-भ्रष्ट होकर नष्ट हो जायगा ।

ईश्वर की सृष्टि में सब कार्य सुव्यवस्थापूर्वक चल रहे हैं । कर्म का चक्र ठीक प्रकार से चल रहा है । बोओ और काटो, की अविचल नीति इस सृष्टि से संचालित है । यदि उसमें विघ्न उपस्थित किया जाय तो यह ईश्वरीय शासन में विद्रोह है । "परिश्रम करो और धन कमाओ" । "जितना कमाओ उससे कम खर्च करो" । इन दो सत्य सिद्धों पर जो आरूढ़ है उसे धन के अभाव का कष्ट नहीं हो सकता । किन्तु बहुत से लोग चाहते हैं कि परिश्रम न हो और लाभ बहुत अधिक हो, खर्च मनमाने बढ़ावें और उनको पूरा करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए अंधाधुन्ध रुपया पावें । ऐसे लोग जुआ, दड़ा, सट्टा, फीचर, लाटरी, गढ़ा धन आदि की फिक्र में रहते हैं और ऐसी ही इच्छाओं से प्रेरित होकर योगियों के आस-पास चक्कर काटते हैं । उन्हें तरह-तरह से फुसलाकर अपना मतलब गाँठना चाहते हैं । यदि कोई मूर्ख साधक इनके बहकावे में आकर अपनी आत्म-शक्ति इधर लगाता है तो वह भारी अनर्थ करता है । बिना परिश्रम के आया हुआ धन अनाचार, पाप और पतन का ही कारण बनेगा । बीस अँगुलियों की कमाई से ही मनुष्य का चरित्र ठीक रह सकता है । यदि मुफ्त का माल मिले तो उसका चरित्र और प्रयत्न गिर जायगा । जिस योगी ने किसी को इस प्रकार धन दिलाया उसने उसको नीचे गिराया उसके साथ में भारी पापपूर्ण अनाचार किया । आरोग्य, धन, पद, कीर्ति, विद्या आदि सम्पदाएँ मनुष्य अपने बाहुबल से प्राप्त कर सकता है । भौतिक सम्पदाओं के बढ़ाने में आत्म-शक्ति जैसे उच्च तत्व का व्यय न करना चाहिए । किसी को आधपाव चने दिलाने हों तो उसको दो पैसे दे देना पर्याप्त है । रक्तदान देने की क्या जरूरत ? जिसके प्राणों पर बन रही हो उसके लिए अपने शरीर का रक्त भी दिया जा सकता है । पैसे के जरूरतमन्द को पैसे से, बीमार को दवा-दारू से, भूखे को भोजन से सहायता की जा सकती है, इसके लिए आ म-शक्ति का खर्च करना उचित नहीं । शरीर की सहायता के लिए शरीर से या उसके द्वारा उपजाई हुई सम्पदा दी जा सकती है । आत्म-बल का उसमें प्रयोग करना निष्प्रयोजन है ।

आत्म-शक्ति अपने दुर्गुणों को हटाने और सात्विकता की ओर बढ़ाने में, ईश्वर के प्राप्त होने में, उपयोग होनी चाहिए । दूसरों के मानसिक परिवर्तन में उसका उपयोग किया जा सकता है । यही उचित भी है । 'शक्तिपात' की प्रथा पुरानी है । प्राचीनकाल में सद्गुरु अपने शिष्यों पर 'शक्तिपात' किया करते थे । गोविन्द से गुरु को बड़ा बताया गया है । इतना महत्त्व इसलिए दिया गया है कि गुरु अपनी निजी कमाई को शिष्य के अन्दर इस प्रकार प्रवेश कर देता था कि अज्ञात रूप से उसका मानसिक परिवर्तन हो जाता था । शिष्य का सारा मानसिक तन्त्र एक भारी झटके के कारण चलायमान हो जाता था उसमें एक कंपकंपी-हलचल मच जाती थी । सारा मानसिक तन्त्र उलट-पलट हो जाता था । दीक्षा का यही असली तात्पर्य था ।

दूसरों पर आत्म-शक्ति के उपयोग करने का उचित मार्ग यही है । जिन्हें आत्मबल प्राप्त है, उन्हें दूसरों की सेवा करने के लिए वह करना चाहिए जिससे अन्य व्यक्तियों की आन्तरिक प्रगति में परिवर्तन उपस्थित हो जाय । भ्रान्त और अशुद्ध मार्ग का परित्याग करने और सद्मार्ग को अपनाने की इच्छा और आकांक्षा जाग्रत हो जावे । यह इच्छा, आकांक्षा जितनी दृढ़ एवं श्रद्धान्वित होगी उतनी वह अधिक उन्नति करेगा । इसलिए शक्तिपात द्वारा सत्य को प्राप्त करने की तीव्र लालसा सद्गुरु अपने शिष्यों में जाग्रत किया करते हैं । एक मनुष्य जो दूसरे को दे सकता है उन सब में यही दान सबसे बड़ा है । सद्गुरु अपने शिष्य को यही चीज दे डालता है, इसलिए उसका दर्जा सबसे ऊँचा, गोविन्द के बराबर माना गया है ।

साधनाओं के पश्चात् जिन्हें कुछ आत्मबल प्राप्त हो, उनके लिए हमारी शास्त्रसम्मत सलाह है कि उस शक्ति को वाहवाही लूटने में, किसी को भौतिक वस्तुएँ दिलाने में खर्च न करें । वाहवाही लूटने में इस कष्टसाध्य शक्ति का व्यय करना ऐसा है जैसा नोट जलाकर आग तापना । भौतिक वस्तुएँ तो पुरुषार्थ से कमाई जाती हैं । वस्तुओं का अभाव होने पर मनुष्य अधिक पुरुषार्थ और जागरूकता सीखता है, यदि मुफ्त का माल मिले तो उसकी आत्मिक प्रगति रुक जाती है । इसलिये इस झंझट में भी नहीं पड़ना चाहिए । अभावग्रस्तों को पुरुषार्थ के लिए उत्साहित करना चाहिए और भौतिक वस्तुओं से सहायता करनी-करानी चाहिए । आत्म-शक्ति का दूसरों के लिए एकमात्र उपयोग यही है कि उन्हें पाप के, पतन के, अकर्मण्यता के मार्ग से हटाकर सत्मार्ग की आकुलता उत्पन्न करानी चाहिए । अनुयायियों को हमारी यही सलाह है कि वे विभिन्न मार्गों से जो शक्ति उत्पन्न करें उसे आत्म-कल्याण में तथा दूसरों को ठीक रास्ते पर लाने में खर्च करें । अन्य दिशा में एक भी कदम न उठाएँ ।

परमात्मा की प्रतीक प्रतिनिधि-आत्मसत्ता

जीवात्मा परमात्मा की अंशधर सत्ता है तथा मानवीय काया ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट संरचना एवं इस निखिल ब्रह्माण्ड का एक छोटा रूप है । इस काया को सर्वव्यापी प्रकृति की अनुकृति कहा गया है । ईश्वर का व्यष्टि रूप लघु जगत-माइक्रोकाजम मनुष्य है, जिसके अन्तर्गत विराट का वैभव बीज रूप में प्रसुप्त स्थिति में पड़ा है । प्राचीनकाल के दार्शनिकों, अध्यात्मवादी ऋषि-मनीषियों ने मनुष्य के स्वरूप का विशद् रूप से अध्ययन किया और विवेचन प्रस्तुत किया है । उन्होंने मानव की विशिष्टताओं, श्रेष्ठताओं एवं गुणों को प्रतिष्ठित करने के साथ ही यह भी खोजने का प्रयत्न किया है कि पिण्ड का ब्रह्माण्ड से, मनुष्य का सृष्टि से, लघु जगत्-माइक्रोकाजम का विराट विश्व-माइक्रोकाजम से किस प्रकार का रहस्यपूर्ण एवं गूढ़ सम्बन्ध है ।

ईश्वर की व्याख्या करते हुए सुप्रसिद्ध दार्शनिक ज्योतिविद् राबर्ट जोलर ने अरबी ज्योतिष तत्व के प्राचीनतम ग्रंथ 'द अरेबिक पार्टस' की व्याख्या में कहा है कि सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड का, समष्टि जीवन का मूलभूत आधार तत्व प्रथम अनादि चेतन सत्ता 'मोनेड' परमात्मा है । दिक काल से परे इस सत्य को सब कालों में दार्शनिकों, अध्यात्मवादियों, रहस्यवादियों और संतों ने माना है एवं इसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभिन्न नामों से सम्बोधित किया है । दार्शनिक प्लेटो ने इसे स्वयंभू-'क्रिएचर इटसेल्फ' एवं राबर्ट फ्लड ने 'फर्स्ट फार्म' कहा है । जर्मनी के प्रख्यात् अध्यात्मवेत्ता जेकब बोहम ने इसे 'फ्लेगरेट' के नाम से जाना है, जिसका अर्थ होता है—प्रकाश विस्फोट । उनके मतानुसार मोनेड अर्थात् ईश्वर स्वयं अपनी आहुति देकर इस सृष्टि की रचना करता है ।

कुछ दार्शनिकों ने मोनेड को स्प्लेण्डर, प्रोटियस एवं फेन्स के नाम से जाना है, तो बहुतों ने इसे 'गॉड' कहा है । गुरुग्रन्थ साहब में उसे 'चाँदना' कहा गया है । अन्यों ने इसकी संगति सूर्य से बिठाई है । बाइबिल में परमेश्वर को 'ज्योति' कहा गया है । हजरत मूसा को कोहिनूर पर 'जलवा' रूप में वह दिखाई दिया था । उपनिषद् में उसे 'परम ज्योति' कहा गया है । अध्यात्म शास्त्र में इसी को 'दिव्य आलोक' कहा गया है । 'डिवाइन लाइट' नाम इसी को दिया गया है । 'अरेबिक पार्टस' में उसे ही प्रथम मूल तत्व कहा गया है जिसमें सम्पूर्ण जीव जगत की विराट सत्ता समाविष्ट है । यह प्रथम मूलतत्व ही व्यष्टि और समष्टि में जीव और जगत में उनके मूलाधार रूप में समाया हुआ है । उस एक तत्व से ही जीवन की सभी घटनाएँ एवं अनुभूतियाँ, प्राकृत के समस्त रूप एवं जातियाँ तथा विश्व के सभी दृश्य प्रपंच उद्भूत होते हैं । उसी के अटल दिव्य विधान के अनुसार ही सबका प्रकटीकरण होता है । यही चेतन शक्ति दृश्य-अदृश्य जगत एवं उसके विविध पदार्थों को अपनी मूल एकता से सबको एक साथ माला के मनकों की भाँति बाँधे हुए हैं ।

श्रीमद्भगवद्गीता में इस मोनेड को सर्वोच्च अविनाशी आत्मा कहा गया है । इसका प्रकृति स्वरूप आध्यात्मिक दिव्य चेतना है, जो कि समस्त सृजनात्मक शक्तियों का सृष्टा, सृष्टि का आदि, मध्य और अन्त एवं सूर्य तथा चन्द्रमा में ऊष्मा स्वरूप है । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि एवं व्यष्टित्व आदि इसकी श्रेष्ठ प्रकृति, उच्चस्तरीय अभिव्यक्ति आत्म सत्ता-प्राण शक्ति है जो समस्त संसार में प्राण का संचार करती है ।

गीताकार ने कहा है कि "जिस प्रकार सूर्य सम्पूर्ण पृथ्वी को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार इस जगत का स्वामी ईश्वर समस्त विश्व ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है ।" मोनेड-ईश्वर अपने स्वरूप में एक अखण्ड, अद्वैत, पूर्ण शान्त निराकार एवं निर्गुण सत्ता है । एक से अनेक होने, अनेक रूपों में स्वयं को प्रकट करने के लिए वह संकल्प करता है, ताकि वह अपने अनन्त गुणों एवं स्वरूपों की अभिव्यक्ति कर सके । अपने अव्यक्त स्वरूप को प्रकट करने के लिए उसने स्वयं को तीन सत्ताओं में व्यक्त किया— (१) स्वयं वह-मूल सत्ता-मोनेड (२) विराट् विश्व ब्रहमाण्डीय सत्ता-समष्टि सत्ता एवं (३) लघु जगत सत्ता व्यष्टि सत्ता-मानवीय सत्ता ।

ये तीनों सत्ताएँ एक ही मूल स्रोत से प्रकट होकर दृश्य रूप में भिन्न-भिन्न तीन सत्ताएँ दिखते हुए भी अनिवार्य रूप से मूलत: एक-अखण्ड-अद्वितीय हैं । व्यष्टि मनुष्य एवं समष्टि ब्राह्मी चेतना दोनों समान रूप से एक ही कार्यविधि एवं नियम द्वारा संचालित हैं । सभी संतों ने अपनी रचनाओं में हरमेटिक मैक्सिम सिद्धान्त की पुष्टि की है कि—"वह जो ऊपर है, नीचे की तरह ही है और ये नीचे है, वह ऊपर की तरह ही है ।" अर्थात् जो नियम, विधिविधान, सृष्टि-विश्व-ब्रह्माण्ड में लागू हैं, वही नियम पिण्ड, लघु घटक मनुष्य में भी लागू हैं । मनुष्य एवं सृष्टि के समस्त क्रिया-कलाप समान नियमों से बँधे हुए हैं ।

आत्मसत्ता की महत्ता को सभी अध्यात्मविदों ने एक स्वर से स्वीकारा है और परिष्कृत आत्मा को परमात्मा के समतुल्य माना है । कुरान में उल्लेख आता है कि "मनुष्य धरती पर अल्लाह का प्रतिनिधि है ।

(कुरान-सूरा २ एवं ३५/३५-)

"अल्लाह ने मानव को सर्वश्रेष्ठ आकार प्रदान किया है ।"

(कुरान-सूरा ९५/४, ६४/३, ४०/९६-)

बाइबिल में इस बात का अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है कि "विराट ब्रह्म का सारा रहस्य मानव में निहित है, क्योंकि नर ही नारायण के अति निकट है । सृष्टि में वही परमात्मा का साकार रूप है । मनुष्य ही ईश्वर का जीवन्त मन्दिर है ।

(बाइबिल-जेनेसिस १/२, ६/२७, ५/१, ९/६)

ईसा ने मनुष्य की सेवा को ईश्वर की पूजा के समकक्ष माना था ।

पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रख्यात लेटिन दार्शनिक हेनरी कार्नेलियस एग्रीपा ने अपनी कृति डि आकल्टा फिलॉसाफिया में लिखा है कि मनुष्य की आत्मा एक अलौकिक दिव्य प्रकाश है । इसमें व्यष्टि और समष्टि दोनों समाये हुए हैं । आत्मा वास्तविक रूप में अविकारी, आत्मनिर्भर, सर्वज्ञ एवं सभी शरीरों और भौतिक पदार्थों से परे है । वह भौतिक तत्व से उत्पन्न नहीं हुई है । वस्तुत: आत्मा एक दिव्य मूल तत्व है एवं उसकी उत्पत्ति दिव्य स्रोतों से हुई है ।

ग्रीक दार्शनिक प्लेटो के अनुसार—"मनुष्य की आत्मा ईश्वर से सीधे प्रकट होकर उपयुक्त स्थूल शरीर से जुड़ जाती है । वास्तविक रूप में जीवात्मा का धरती पर जब सर्वप्रथम अवतरण होता है तो वह दिव्य सूक्ष्म शरीर, वायवीय शरीर रूप में अवतरित होकर स्थूल देह में प्रवेश करती है । इस वायवीय सूक्ष्म शरीर को आत्मा का पारलौकिक वाहन (वेहीकल) कहा जाता है । ईश्वर जो चराचर जगत का केन्द्र है, उसी के आदेश से जीवात्मा मनुष्य के हृदय में प्रविष्ट होती है । इस तरह अविनाशी आत्मा पारलौकिक वाहन के माध्यम से स्थूल एवं नाशवान शरीर के भीतर बन्द कर दी जाती है । जब शरीर तथा उसके विभिन्न अंग-अवयव बीमारी अथवा अन्य दोषों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण क्षीण काय जर्जर हो जाते हैं, प्राणशक्ति कमजोर पड़ जाती है, ऊष्मा मंद होती चली जाती है, तब उस स्थिति में जीवात्मा शरीर को छोड़ देती है और शरीर मृत हो जाता है । जीवात्मा सूक्ष्म शरीर के माध्यम से ईश्वर के सामने जाती है । गार्जियन जेनी और डेमन्स भी उसके पीछे-पीछे जाते हैं और उस जीवात्मा के अच्छे-बुरे कर्मों की रिपोर्ट जीवन का लेखा-जोखा ईश्वर के सामने प्रस्तुत करते हैं । जिसके आधार पर ईश्वर अच्छे कर्म करने वाली जीवात्मा को स्वर्ग सुख प्रदान करता और बुरे कर्म करने वाले को नरक में भेजता व दंड देता है ।'' प्लेटो का यह प्रतिपादन भारतीय दर्शन की चित्रगुप्त व यमराज वाली मान्यता से मिलता-जुलता है ।

दार्शनिकों का मत है कि गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का समावेश होने तथा सत्कर्म करने पर ही अशुभ कर्मों का विनाश होता है और भावी जीवन उज्ज्वल एवं सुखमय बनता है । भगवान् महावीर उत्तराध्ययन सूत्र (३/७) में कहते हैं—''अशुभ कर्मों के नाश होने पर ही आत्मा शुद्ध, निर्मल और पवित्र बनती है । जीवात्मा तब जाकर मनुष्य योनि प्राप्त करती है ।''

सोलहवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध दार्शनिक संत गियारडेनो ब्रूनो की मान्यता है कि मनुष्य के अन्दर कोई ऐसा दक्ष रचनात्मक तत्व है, जिसके द्वारा उसके चारों ओर एक विलक्षण शरीर की संरचना सम्पन्न होती है । यह कोई बाहरी नहीं वरन् अन्त:शक्ति है जो भीतर से गढ़ती, उन्हें सुरक्षित रखती और परस्पर विरोधी तत्वों को एकता एवं सामंजस्य के सूत्र में बाँधकर एक साथ रखने की क्षमता रखती है । यह मूलतत्व ही सही अर्थों में मनुष्य है । यही मूलतत्व विशिष्ट दैव तत्व देवशक्ति है, प्रेरक आत्मा है, चैतन्य शक्ति है जो शरीर को चलाती है, उसका संचालन करती है ।

इजिप्ट के मूर्धन्य दार्शनिक हरमेस ट्रिस्मेजिस्टस को वहाँ के निवासी उन्हें अपने ईश्वर 'थोथ' के समतुल्य मानते हैं । हरमेस ने मनुष्य को ईश्वर का एक दिव्य चमत्कार माना है । उनके अनुसार मनुष्य के समान गौरवशाली, मर्यादित एवं श्रद्धास्पद कोई भी प्राणी इस धरती पर नहीं है । ईश्वर ने ही मानवीय काया में प्रवेश किया है । ईश्वर का प्रतिनिधि होने से वह स्वयं में समस्त ईश्वरीय गुणों से अभिपूरित है । मानवीय सत्ता ईश्वरीय नियमों से बँधी हुई है । यही कारण है कि मनुष्य की आँखें निम्नगामिता को छोड़कर सदैव श्रेष्ठता की ओर-परमपिता परमेश्वर की ओर ऊपर उठी रहती हैं । मनुष्य ही है जो सबको प्यार बाँटता और बदले में स्नेह-सहयोग पाता है । उसका आविर्भाव अर्जित सम्पदा एवं प्रतिभा सबके कल्याण के लिए—''**सर्वभूत हिते रत:**'' है ।

प्रख्यात ग्रीक दार्शनिक पिको डेला मिरानडोला के अनुसार ईश्वर ने मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियों के स्वभाव को अपने नियमों द्वारा सीमित एवं नियंत्रित कर दिया है और मनुष्य को विचार करने तथा कर्म करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र रखा है । वह इच्छानुसार सोच सकता है, अपना निर्माण कर सकता है और अपने को गढ़ सकता है । वह चाहे तो कर्मों के माध्यम से निम्नयोनियों में जन्मता और भ्रमण करता रह सकता है एवं चाहे तो दिव्य योनियों में जन्म ले सकता है, बन्धन मुक्त हो सकता है और नर से नारायण बन सकता है । अपने विकास अथवा पतन के लिए मनुष्य स्वयंमेव जिम्मेदार है, क्योंकि वरण की स्वतंत्रता उसे मिली है ।

देवी भागवत् में कहा गया है—

स्वकर्मणा सर्वसिद्धि अमरत्वं लभते ध्रुवम्
सुरत्व च मनुष्यत्वं व राजेन्द्रत्वं लभेन्नर: ।
कर्मणा इन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्र: स्वकर्मणा
कर्मणा च शिवत्वं व गणेशत्वं तथैव च ॥

अर्थात्—''मनुष्य अपने कर्मों और प्रयासों के आधार पर ईश्वर, मनुष्य, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश आदि जो चाहे बन सकता है ।'' कायसत्ता वस्तुत: परमात्मसत्ता का एक लघु संस्करण है । उसके महत्त्व को समझा जाना एवं उसका सदुपयोग श्रेष्ठ कार्यों के निमित्त किया जाना चाहिए ।

आत्मज्ञान—मनुष्य की सर्वोपरि उपलब्धि

इसे एक विडम्बना ही कहना चाहिए कि मनुष्य बाह्य संसार एवं सम्बन्धित वस्तुओं के विषय में अधिकाधिक जानकारियाँ एकत्रित तो करता रहता है, पर स्वयं अपने विषय में अपरिचित बना रहता है । अपने स्वरूप का बोध न होने तथा सांसारिक आकर्षणों में भटकते रहने से अन्तत: भटकाव ही हाथ लगता है । जड़-प्रकृति की खोज साधन-सुविधाओं को उपलब्धि के लिए आवश्यक है, पर उससे भी अधिक जरूरी है उनके उपयोगकर्त्ता सत्ता का स्वरूप जानना ।

मनुष्य क्या है? जीवन का स्वरूप एवं लक्ष्य क्या है ? जीवन के साथ जुड़े संसार एवं प्राप्त विभूतियों का सही उपयोग क्या है? इन प्रश्नों को उपेक्षा के गर्त में डाल देने से एक प्रकार की आत्म-विस्मृति छाई रहती है । अन्त:करण के मूर्च्छित स्थिति में जा पहुँचने से जीवन नीति का गम्भीर निर्धारण नहीं हो पाता । इन्द्रियों की उत्तेजना ही प्रेरणा बनकर रह जाती है । जिस तरह मनुष्येत्तर जीव शरीरान्द्रियों से अभिप्रेरित होकर विभिन्न प्रकार के कर्म करते, पेट और प्रजनन की परिधि में चक्कर काटते रहते हैं, उसी प्रकार का जीवनक्रम मनुष्य का भी बन जाता है । लोक प्रचलित ढर्रे का अनुकरण ही स्वभाव बन जाता है । कटी पतंग और पेड़ से टूटे पत्ते दिशाविहीन स्थिति में इधर-उधर उड़ते और छितराते रहते हैं । जीवन भी मात्र इसी प्रकार दिन काटने के लिए जिया जाता है । उच्चस्तरीय आदर्श सामने न रहने से न तो कोई महत्त्वपूर्ण प्रयास बन पड़ता है और न ही जीवन का वास्तविक आनन्द मिल पाता है । भौतिक सुखाकांक्षा में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भटकती जीवात्मा अशान्ति और असन्तोष की आग में जलती रहती है । रोने-कलपने में ही हारी-थकी जिन्दगी कट जाती है । ऐसा इसलिए होता है कि मनुष्य को अपनी सत्ता का बोध न होने से जीवन लक्ष्य का निर्धारण भी नहीं होने पाता ।

अन्त:ज्ञान की उपयोगिता-उपादेयता बाह्य ज्ञान की तुलना में कहीं अधिक है । सुख-साधनों की अभिवृद्धि की तरह उपभोगकर्त्ता की विवेक दृष्टि का प्रखर होना आवश्यक है अन्यथा भौतिक उपलब्धियों का दुरुपयोग ही बन पड़ेगा और उससे अगणित समस्याएँ उत्पन्न होंगी । मोटर अच्छी होना पर्याप्त नहीं है । ड्राईवर यदि अनाड़ी हुआ तो कितने ही संकटों का सामना करना पड़ सकता है । साधनों की कमी रहते हुए भी जीवन लक्ष्य सामने हो तो अभावों में भी सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट रहा जा सकता है, जबकि अन्त:विवेक के अभाव में साधनों की प्रचुरता से बन्दर के हाथ में तलवार पड़ जाने जैसी स्थिति उत्पन्न होगी जिसने अपने मालिक की नाक पर बैठी मक्खी को उड़ाने के लिए गर्दन ही उड़ा दी थी ।

मनुष्य के लिए खोज का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न कौन-सा हो सकता है, श्वेताश्वेतरोपनिषद् का ऋषि यह स्पष्ट करता है—

"किं कारणं ब्रह्म कुत: स्म जाता जीवाम् केन क्व च सम्प्रतिष्ठा: ।
अधिष्ठिता: केन सुखेतरेषु वर्त्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥"

अर्थात्—हे वेदज्ञ महर्षियो ! इस जगत का प्रधान कारण 'ब्रह्म' कौन है ? हम सभी किससे उत्पन्न हुए हैं, किससे जी रहे हैं तथा किसमें प्रतिष्ठित हैं ? साथ ही किसके अधीन रहकर हम लोग सुख और दु:ख का अनुभव करते हैं ?

इस प्रश्न के उत्तर की अर्थात् आत्मज्ञान की आवश्यकता यदि अनुभव की जा सके तो सर्वप्रथम यह विचार करना होगा हम कौन हैं ? और क्यों जी रहे हैं ? इस तथ्य पर आत्मवेत्ता ऋषियों ने गम्भीर चिन्तन एवं अनुसंधान से जो निष्कर्ष निकाले थे वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है तथा आत्मानुसंधान मे प्रवृत्त होने के इच्छुक जिज्ञासुओं का मार्ग-दर्शन करने में सक्षम हैं ।

अणु की सत्ता की व्याख्या-विवेचना करने वाले वैज्ञानिक उसे सुविस्तृत पदार्थ वैभव का एक छोटा-सा अविच्छिन्न घटक मानते हैं । आत्मा क्या है ? परमात्मा सत्ता का एक छोटा-सा अंश है । अणु की अपनी स्वतन्त्र सत्ता लगती भर है, पर जिस ऊर्जा आवेश के कारण उसका अस्तित्व बना है तथा क्रिया-कलाप चल रहा है, वह व्यापक ऊर्जा तत्व से भिन्न नहीं है । एक ही सूर्य की अनन्त किरण समस्त संसार में फैली रहती हैं । एक ही समुद्र में अनेक लहरें उठती रहती हैं । ऐसा देखने पर प्रतीत होता है कि किरणों एवं नहरों की स्वतन्त्र सत्ता है जो परस्पर एक दूसरे से भिन्न है । पर सत्य की गहराई में जाने पर पता चलता है कि भिन्नता कृत्रिम और एकता वास्तविक है । अलग-अलग बर्तनों में आकाश की कितनी ही स्वतन्त्र सत्ताएँ दिखायी पड़ती हैं, पर तथ्यत: उनका अस्तित्व निखिल आकाशीय सत्ता से भिन्न नहीं है । पानी मे अनेक बुलबुले उठते और विलीन होते रहते हैं । बहती धारा में कितने ही भँवर पड़ते हैं । दीखने में बुलबुले और भँवर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व प्रकट कर रहे होते हैं, पर यथार्थ में वे प्रवाहमान जलधारा की सामयिक हलचलें मात्र हैं । जीवात्मा की स्वतंत्र सत्ता दीखती भर है, पर उसका अस्तित्व एवं स्वरूप विराट् चेतना का ही एक अंश है ।

इस निष्कर्ष के आधार पर ही अध्यात्मवेत्ताओं ने उद्घोष किया कि "हम विश्व चेतना के एक अंश मात्र हैं । समष्टि ही आधारभूत सत्ता है । हम उसकी छोटी चिनगारी भर हैं । व्यष्टि और समष्टि की एकता शाश्वत् है, पृथकता कृत्रिम । सबमें अपने को और अपने में सबको समाया हुआ, देखा, समझा और माना जाय । सबके हित में अपना हित सोचा जाय । परस्पर एक-दूसरे के सुख-दु:ख को अपना ही सुख-दु:ख माना जाय । सबका उत्थान अपना उत्थान और सबका पतन अपना पतन, यह मानकर चलने से सीमित परिधि में सुखी रहने की क्षुद्रता घटती है तथा आत्म-विस्तार की प्रेरणा उठती है । सीमा संकीर्णता से निकलने से व्यक्तिवाद पर अवलम्बित स्वार्थपरता घटती है । मनुष्य विराट् समाज का अपने को एक अभिन्न अंग मानने लगता है । सामूहिक हित सोचने और सामूहिक गतिविधियाँ अपनाने में ही उसे आनन्द आता है !"

अपनापन हर किसी को प्यारा लगता है । यह आत्मीयता जिस भी पदार्थ अथवा प्राणी के साथ जुड़ जाती है, वही परमप्रिय अपने लगते हैं । अपनेपन का दायरा जितना ही छोटा होगा आत्मिक दृष्टि से मनुष्य उतना ही पिछड़ा माना जायेगा । अपने शरीर और परिवार तक सीमित रहने वाला व्यक्ति आत्म-विस्तार का आनन्द नहीं ले पाता । छोटा-सा क्षेत्र ही अपना बनकर रह जाता है । यह क्षेत्र जितना विस्तृत होगा उतनी ही आत्मीयता की परिधि भी बढ़ती जायेगी । सभी अपने लगेंगे और अपना परिवार अत्यन्त सुविस्तृत बन जायेगा । किस व्यक्ति की कितनी आत्मिक प्रगति हुई इसका अनुमान इस आधार पर लगाया जा सकता है कि उसने किस सीमा तक आत्मविस्तार किया है ।

आत्मा-परमात्मा की, जीव-ब्रह्म की व्यष्टि-समष्टि की एकता का दूसरा निष्कर्ष है कि अंशों के सभी गुण सूक्ष्म रूप से अंश में विद्यमान रहते हैं । अस्तु, परमात्मा की समस्त विशेषताएँ एवं सम्भावनाएँ जीवात्मा में मौजूद हैं । साधना द्वारा उन्हें जगाया एवं विकसित किया जा सकता है । आत्मा के परमात्मा स्तर तक जा पहुँचने की पूरी-पूरी सम्भावना है । चिनगारी में दावानल बनने की सभी विशेषताएँ मौजूद रहती हैं । विशाल वृक्ष का ढाँचा बीज के भीतर सन्निहित है । नन्हें से शुक्राणु में प्राणी की आकृति एवं प्रकृति का अधिकांश स्वरूप समाहित रहता है जो नेत्रों से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिखायी नहीं पड़ता । छोटे-से परमाणु में पूरे सौर-मण्डल का नक्शा होता है । इस तथ्य से यह बात स्पष्ट है कि जीव की मूलसत्ता ईश्वर के ही समतुल्य है । इस सम्भावना को साकार करना मनुष्य जीवन में सम्भव है । मनुष्य के रूप में शरीर धारण करने का सुअवसर भी इसीलिए मिला है कि वह अपने महान् लक्ष्य को समझे तथा पूर्णता की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करे । परमात्मा द्वारा दिये गये मनुष्य जीवन रूपी बहुमूल्य उपहार की सार्थकता पूर्णता की प्राप्ति-आत्मज्ञान की उपलब्धि में ही सन्निहित है ।

इस परम लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होते हुए अनुकरणीय, आदर्श एवं पवित्रतम देव जीवन जिया जाय और अपनी शारीरिक, मानसिक एवं भौतिक उपलब्धियों में से न्यूनतम अपने लिए तथा अधिकतम परमार्थ प्रयोजनों में उपयोग किया जाय, यही है ईश्वर प्रदत्त सुरदुर्लभ मानव जीवन का श्रेष्ठतम उपयोग । अन्य जीवधारियों की तुलना में मनुष्य को अतिरिक्त बुद्धि वैभव परमात्मा ने दिया है । ऐसा पक्षपात उसने क्यों किया? इसका उत्तर मनुष्य जीवन के लक्ष्य को समझने पर स्पष्ट हो जाता है । यदि मनुष्य प्राप्त अतिरिक्त अनुदान को व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थों को पूरा करने में प्रयुक्त करता है तो उस उपहार का दुरुपयोग हुआ समझा जाना चाहिए ।

मन और शरीर जीवन रूपी रथ के दो पहिये, दो घोड़े हैं । अन्त:करण को आस्था एवं आकांक्षा के अनुरूप यह दोनों स्वामिभक्त सेवक की भाँति गतिशील रहते हैं । शरीर जड़ है । उसको अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता अथवा इच्छा नहीं है । इन्द्रियाँ भी पंचतत्वों से बनी हैं । मन भी अपनी मर्जी से कुछ नहीं सोचता । अन्त:करण में जैसी भी प्रेरणाएँ उभरती हैं, वह उसी के अनुरूप विचारों का ताना-बाना बुनता है । अन्त:प्रेरणा के निर्देशों का पूरा करना मात्र उसका काम है । सज्जनों का चिन्तन और कर्त्तव्य एक तरह का होता है और दुर्जनों का दूसरी तरह का । इन दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियों में शरीर और मन सर्वथा निर्दोष होते हैं । दोषी अन्त:करण होता है जिसमें जमे संस्कार भली-बुरी प्रेरणाएँ उभारने का कारण बनते हैं ।

आत्मज्ञान का अर्थ है, अन्तरात्मा के गहन स्तर को स्पर्श करना । कुसंस्कारों का परिशोधन करना तथा यह आस्था एवं अनुभूति उत्पन्न करना कि हम सत्-चित-आनन्द परमात्मा सत्ता के अविच्छिन्न अंग है । पूर्णता हमारा लक्ष्य है । आत्मज्ञान की भूमिका में जगा हुआ जीवात्मा संकीर्ण स्वार्थपरता की परिधि को लाँघकर सबमें अपने को और अपने में सबको देखता है । इसलिए वह जो कुछ भी करता एवं सोचता है, वह व्यापक लोकहित मानव मात्र के कल्याण को ध्यान में रखकर उसके हर क्रियाकलाप में आदर्शवादिता ही उभरती, छलकती दिखायी पड़ती है । ऐसे आत्मज्ञानी अभावों एवं संकटों में रहते हुए भी अन्त:करण में सदा असीम आनन्द एवं सन्तोष की अनुभूति करते रहते हैं । यह एक ऐसी स्थिति है जिसके विषय में वृहदारण्यक उपनिषद का ऋषि कहता है—**"आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ।"**

अर्थात्—"वह एक ऐसी पूर्ण चैतन्य आनन्दमय सत्ता है जिसके ज्ञान से सब कुछ जान लिया जाता है । अर्थात् कुछ भी जानने को शेष नहीं रहता ।"

"य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीतिस इदं सर्वमवति"

अर्थात्—आत्मवेत्ता सर्व हो जाता है, क्योंकि दृष्टा का अनुभव ही विश्व का विस्तार है । निद्रा से टूटने पर स्वप्न की स्थिति मिट जाती है । आत्मज्ञान के प्रकाश में यह अनुभव होता है कि संसार की सत्ता आत्मा के बाहर नहीं है । भगवान् बुद्ध आत्मज्ञान होते ही दिव्य-मानव बन गये । यह अन्त:जागरण का ही प्रतिफल था, जिसके कारण उन्हें सबमें आत्मसत्ता का प्रकाश दिखायी पड़ने लगा ।

आत्मज्ञान की चरम उपलब्धि के लिए तत्वदर्शन को समझना जितना आवश्यक है उतना ही साधना का मार्गावलम्बन भी अनिवार्य है ।

आत्मसत्ता में ईश्वर का अवतरण

तिलस्मों से भरी मानवीय काया जिन रहस्यमयी विलक्षणताओं, सहकार व्यवस्थाओं से युक्त है, उसे देखकर सृष्टा की कलाकारिता के प्रति सहज ही नतमस्तक हो जाना पड़ता है । इतना असाधारण शरीर पाकर भी यदि मनुष्य उसे सांसारिक खिलवाड़ में नष्ट कर दे तो उसे चन्दन का वन सूखी लड़कियों के भाव बेच देने वाले मूर्ख लकड़हारे की तरह ही समझा जायेगा । बुद्धिमत्ता इसी में है कि इस महान् उपहार के पीछे अभिव्यक्ति विधाता की आकांक्षा की पहचानकर उसको पूरा किया जाय । जिस किसी ने थोड़ा भी उस पर चिन्तन-मनन किया है, अपने अन्दर विपुल रत्न राशि का भण्डार पाया है, जिसे प्रयुक्त कर वे स्वयं धन्य बने और सहस्रों को कृतार्थ कर गये ।

इसी प्रकार जिज्ञासा के रूप में परमात्मा का एक और दिव्य अनुदान प्रत्येक मनुष्य को मिला हुआ है । यही प्रवृत्ति भावी विकास का आधार बनती है । जिन्होंने भी शाश्वत् सत्य की खोज में अन्त:जिज्ञासा को आत्मगरिमा के बोध की ओर मोड़ा, अपने जीवन को सार्थक बना लिया । सृष्टि के रहस्यों की खोज जिस प्रकार मानवीय जिज्ञासा की ही परिणति है, सभी आविष्कारों का मूल उद्गम केन्द्र वही है, उसी प्रकार अन्तर्जगत के लीला रहस्यों, अपरिमित सामर्थ्यों की कुंजी भी यही है । बुद्ध, ईसा, विवेकानन्द, दयानन्द, गाँधी, सुकरात सभी ने शाश्वत् सत्य के दर्शन को 'स्व पारायण, होकर लक्ष्य बनाया, फलस्वरूप वे लक्ष्य प्राप्ति में सफल भी रहे ।

बहिरंग जगत पर जब एक दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जो अभावग्रस्त, पिछड़ी स्थिति में जी रहे हैं, कुछ ऐसे हैं जो दु:खी हैं, न सुखी । किसी प्रकार यन्त्रवत् जी रहे हैं । कुछ ऐसे हैं जिनकी प्रतिभा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चमकती है । वे ऊँचा सोचते हैं और ऊँचा करते हैं । अपनी साहसिकता के बल पर वे जहाँ भी चलते हैं, सफलताएँ उनके पीछे-पीछे चलती हैं । शरीर की दृष्टि से भिन्नता न होने पर भी देखे जाने वाले इस अन्तर का एकमात्र कारण चेतना की स्थिति में भिन्नता का होना है । यदि पतित व यान्त्रिक स्थिति वाले व्यक्तियों ने भी समुन्नतों की तरह चेतना को सुसंस्कृत बनाने के प्रयास किये होते तो निश्चय ही वहाँ भी प्रगतिशीलता दृष्टिगोचर होती । इस तमिस्रा को निरस्त कर आत्म-जागरण का प्रयास किया गया होता तो स्थिति कुछ और ही होती ।

परन्तु यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है । केवल आत्म-जाग्रति ही पर्याप्त नहीं है, उसे सही मोड़ दिया जाना भी अत्यावश्यक है । दुस्साहस तो डाकुओं में भी होता है और असम्भव को सम्भव कर दिखाने वाले पुरुषार्थियों में भी । यदि साहस को सही दिशा मिल जाये-आत्मचेतना ऊर्ध्वमुखी हो जाये, यह चेतना सत्साहस में बदल जाये, तो इसकी परिणति विधेयात्मक हो सकती है । इसी कारण मात्र शरीर की बलिष्ठता व पराक्रम का होना ही यथेष्ट नहीं है, लक्ष्य विशेष का उससे जुड़ा होना भी इतना ही जरूरी है । एक लक्ष्य के निर्धारित होने पर तथा चेतना के परिष्कृत होने पर मानव को वह पात्रता मिल जाती है कि यह व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना से जोड़कर अजस्र अनुदान पा सके । भौतिक योग्यता बढ़ने पर पारिश्रमिक और पद की वृद्धि होती है । आत्मिक क्षमता बढ़ने पर ब्रह्माण्डीय चेतना के समुद्र से व्यक्ति चेतना को बहुमूल्य उपहार मिलने का क्रम चल पड़ता है । छोटे बैंक यदि रिजर्व बैंक से जुड़े हैं तो आवश्यकतानुसार अपनी क्षमता, जमा पूँजी के आधार पर भारी आदान-प्रदान का लाभ उठा सकते हैं । इसी प्रकार यदि व्यक्ति की आंतरिक समर्थ्य जाग सके तो उसे संव्याप्त ब्रह्मतत्व से ऐसे अनुदान मिल सकते हैं जो उसके स्तर को असंख्य गुना सुसम्पन्न बना सकें ।

आत्म-साधना का अर्थ है—व्यक्तिचेतना के स्तर को इतना परिष्कृत करना कि उस पर ब्रह्मचेतना के अनुग्रह का अवतरण सहज सम्भव हो सके । आत्म-सत्ता का चुम्बकत्व इस अनुदान को सहज आकर्षित कर सकता है, पहले इसकी महत्ता को जानें तो सही । सूक्ष्म जगत की विभूतियों को पकड़ने हेतु जिस सामर्थ्य की आवश्यकता होती है, वह अपने आपको जाने बिना सम्भव नहीं । बिजलीघर की बिजली, हमारे घर के बल्बों में उछल कर नहीं चली आती । इसके लिए सम्बन्ध जोड़ने वाले मध्यवर्ती तार बिछाने पड़ते हैं । ब्रह्माण्डीय चेतना से सम्बन्ध जोड़ने के लिये आदान-प्रदान के जो सूत्र जोड़े जाते हैं, उसके लिये 'आत्मा' रूपी 'सबस्टेशन' को बड़े 'पावर हाउस' से जुड़ सकने योग्य भी बनाया जाता है । इससे कम में आत्मिक उपलब्धियों की सिद्धि सम्भव नहीं ।

इस मार्ग पर बढ़ने के लिये सांसारिक उत्तरदायित्व के निर्वाह की उपेक्षा नहीं करनी पड़ती । उसे करते हुये भी आत्मिक प्रगति जा सकती है । कठिनाई एक ही है कि अपनी दृष्टि में हम मात्र शरीर हैं । इसी कारण अपनी इच्छा, क्रिया, विचारणा भी उस तक ही सीमित रखते हैं, जबकि सोचा यह जाना चाहिये कि शरीर में आत्मा का भी अस्तित्व है । प्रगति का अवसर आत्मा को भी मिलना चाहिए । बाह्य सुविधाओं की तरह यदि आन्तरिक गरिमा का महत्त्व समझा जा सके तो निश्चित रूप से मनुष्य को आत्मिक प्रगति की उपयोगिता समझ में आयेगी ।

आज मानकर यह चला जा रहा है कि शरीर एवं मन तक ही हमारी सत्ता सीमित है । हमें इन्हीं के लिये सुख-साधनों को जुटाने में निरत रहना है । इसी उपहासास्पद अज्ञान का नाम 'माया' है । वस्तुतः जड़ पंचतत्वों से बने इस कलेवर का मूल्य नगण्य है । बुढ़ापा, बीमारी और मौत उसे पानी के बुलबुले की तरह गला देती है । वस्त्रों की तरह वह जल्दी-जल्दी फटता और क्षीण होता रहता है । ऐसे कलेवर की सुसज्जा ही लक्ष्य बन जाय एवं आत्मोत्कर्ष के उद्देश्य को विस्मृत कर दिया जाय तो यह बुद्धिमान कहे जाने वाले मनुष्य को सबसे बड़ी अबुद्धिमत्ता ही होगी । लगभग समस्त मानव समाज आज इसी आत्मप्रवंचना में मूर्च्छित पड़ा है ।

'साधना से सिद्धि' के सिद्धान्त को हृदयंगम करने के पूर्व यह समझना होगा कि आत्म-सत्ता का, जीवन का प्रयोजन क्या है ? दूरदर्शिता का तकाजा है कि हम शरीर और मन रूपी उपकरणों का प्रयोग जानें और उन्हीं प्रयोजनों में तत्पर रहें, जिनके लिये प्राणिजगत का यह सर्वश्रेष्ठ शरीर-सुरदुर्लभ मानव-जीवन उपलब्ध हुआ है । आत्मा वस्तुतः परमात्मा का पवित्र अंश है । वह श्रेष्ठतम उत्कृष्टताओं से परिपूर्ण है । वह लेने की आकांक्षा से दूर प्रेम की उदात्त भावना से परिपूर्ण है । आत्मा को उसी स्तर का होना चाहिए, जिसका कि परमात्मा है । परमेश्वर ने मनुष्य को अपना युवराज चुना ही इसीलिये है कि वह सृष्टि को और सुन्दर, सुसज्जित बना सकें । उसका चिन्तन और कर्त्तव्य इसी दिशा में नियोजित रहना चाहिए । यही है आत्मबोध, यही है आत्मिक जीवनक्रम । इसी को अपनाकर-जीवन में उतारकर हम अपने अवतरण की सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं ।

वस्तुतः आत्मावलम्बी व्यक्ति विवेकयुक्त दूरदर्शिता को ही अपना सम्बल बनाते हैं । उनका मार्ग-दर्शक उनका अपना अन्तःकरण होता है । ओछे लोग जिसे लाभ समझते हैं वह यदि विवेक की कसौटी पर हानि सिद्ध होता है तो भी एकाकी निर्णय ले 'स्वपारायण व्यक्ति' सत्पथ पर अकेले ही चल पड़ते हैं । भले ही उन्मादियों की भीड़ उनका उपहास, असहयोग या विरोध करती रहे वह अपना भाग्य स्वयं निर्मित कर वहाँ जा पहुँचते हैं जहाँ के लिये उनकी आत्मा का अवतरण इस धरती पर हुआ है ।

आत्मबल का अर्थ है ईश्वरीय बल । इसका अर्थ हुआ परमेश्वर की परिधि में आने वाली समस्त शक्तियों और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुओं पर आधिपत्य । आत्मबल उपार्जित व्यक्ति ही शक्ति का अवतार कहा जाता है । मनोगत दुर्भावनाएँ और शरीरगत दुष्प्रवृत्तियों का जो जितना परिशोधन करता चला जाता है, उसी अनुपात से उसका आत्मतेज निखरता चला जाता है । इससे उस तेजस्वी आत्मा का ही नहीं-समस्त संसार का भी कल्याण होता है ।

आत्मबल अभिवृद्धि का दूसरा चिन्ह वहाँ देखा जाता है, जहाँ कोई व्यक्ति मोहान्ध जन-समूह के परामर्शों को उपेक्षा के गर्त में पटकता हुआ आदर्शवादी रीति-नीति अपनाने एकाकी चल पड़ता है । उत्कृष्टता का वरण करने के लिये ललचाते भर रहने वालों में सम्मिलित न होकर वह स्वयं को ऊँचा उठाता है । वह कर गुजरता है, जिसे करने के लिये उसकी अन्तरात्मा उसे सतत् कहती-पुकारती रहती है व जिन कृत्यों के कारण उसे इतिहास में सदैव याद रखा जाता है ।

मनुष्य राजकुमार है और ईश्वर उसका परम पिता । इन दोनों के बीच जो दूरी बनी है, वह अज्ञानान्धकार के कायिक कलेवर के कारण है । इस सम्बन्ध विच्छेद को मिटाकर दोनों का मिलन करा देना ही 'साधना' है । साधना का प्रयोजन है मनुष्य को उसकी गरिमा का बोध कराना एवं कुत्साओं और कुंठाओं की उन जंजीरों को काट डालना जो जीव और ईश्वर के मिलन से बाधा बनकर खड़ी हैं । तपश्चर्याएँ, तितिक्षाएँ, योग-साधनाएँ, प्रायश्चित, उपासना इसी उद्देश्य को पूरा करती हैं, जिसमें जन्म-जन्मान्तरों से सचित कुसंस्कारों का निराकरण किया जाता है एवं देव शक्तियों के अभिवर्द्धन का पथ-प्रशस्त होता है । इन सब दिव्य सामर्थ्यों से युक्त परमसत्ता बीज रूप में मनुष्य में विद्यमान है । दुर्बुद्धि और दुष्प्रवृत्ति रूपी व्यामोह ही उन्हें मूर्च्छित बनाये हुये हैं । वे हट जायें तो मनुष्य में अनायास ही ईश्वर की झाँकी हो सकती है । वह अपने आपको लघु से महान्, आत्मा से परमात्मा, नर से नारायण के रूप में विकसित हुआ प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है । ऋद्धि-सिद्धियों की बात तो गौण है । जो उस सत्ता के साथ अपना सम्बन्ध बना सका, उसे न अपने लिये कुछ अभाव-असन्तोष रहता है, न वह दूसरों को मुक्त हस्त से लुटाने में असमर्थ ही रहता है ।

अन्तरात्मा की विशेषता यही देव तत्व है । यह जिसका जग जाता है, वह दैत्य पक्ष के तर्कों को निरस्त कर देवत्व की ओर बढ़ता चला जाता है । ऐसा व्यक्ति कभी सो नहीं सकता । उसकी माँग, पुकार बढ़ती चली जायेगी । अन्तः में घुसे दानव के साथ उसका मल्लयुद्ध तीव्र ही होता चला जायगा ।

मनुष्य के लिये यह श्रेष्ठ है कि वह अपनी विस्मृत गरिमा को जाने, ईश्वर को अपने अन्तःकरण के आँगन में क्रीड़ा-कल्लोल करने का अवसर दे । सूर्य प्रकाश लिये हमारे द्वार पर खड़ा है । हम अपने दरवाजे व खिड़कियाँ भर खोल दें । ईश्वर से जुड़ने की, देवत्व अभिवर्द्धन की यही पहली अनिवार्य शर्त है । देवमानव जैसी जीवन-नीति के निर्धारण एवं कार्यान्वयन हेतु सत्साहस एवं उत्साह जब उभरने लगे तो इस उमंग भरे उभार को ही व्यक्तिगत जीवन में ईश्वर का अवतरण कहा जाता है ।

इसी तथ्य की गीताकार ने स्पष्ट करते हुए कहा है—**"उद्धरेदात्मनात्मानं"** अपना उद्धार आप करो । अपनी प्रगति का पथ स्वयं प्रशस्त करो । जो माँगना है अपने जीवन देवता से माँगो । बाहर दीखने वाली हर वस्तु का उद्गम केन्द्र अपना ही अन्तरंग है । आत्मदेव की साधना ही जीवन देवता की उपासना है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवत्व का विकास

तथ्यान्वेषियों की दृष्टि में मानव का स्वरूप

मनुष्य क्या है, इस प्रश्न की यथार्थ व्याख्या करना प्राय: कठिन है । तो भी विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों ने अपने-अपने ज्ञान के आधार पर इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है । परिभाषा, जो मनुष्य का समग्र और सही स्वरूप प्रस्तुत करे—दी जाय, इसके पूर्व उन विशेषज्ञों का मत जानना आवश्यक है ।

भौतिक विज्ञान का 'थर्मो-डायनामिक्स' सिद्धान्त मान्यता प्राप्त है । इसके द्वितीय नियम के अनुसार ब्रह्माण्ड की प्रत्येक क्रिया ऊँचे एन्ट्रापी—अव्यवस्था अर्थात् असन्तुलन की ओर चलायमान है, पर जीवित प्राणी इस नियम के अपवाद हैं । उनमें यह क्षमता पायी जाती है कि प्राकृतिक प्रक्रिया के विपरीत चलकर, व्यतिक्रम के स्थान पर सन्तुलन स्थापित कर सकते हैं । इस मान्यता के आधार पर मनुष्य 'एन्ट्रापी रिडयूसर'—अव्यवस्था को दूर करने वाला सृष्टि का श्रेष्ठतम प्राणी है ।

दूसरी परिभाषा रसायनशास्त्रियों ने दी है । उनकी मान्यता है कि विकास की आरम्भिक अवस्था में यह पृथ्वी बंजर रूप में थी । समुद्र का फैलाव और भी अधिक व्यापक क्षेत्र में था । मीथेन, अमोनिया, जल, हाइड्रोजन, सल्फाइड, नाइट्रोजन आदि का वातावरण में बाहुल्य था । बाद में सौर विकिरण, भूमिगत ताप तथा विद्युतमय वातावरण से मुक्त हुआ । प्रकाश तथा रेडियो धर्मी पदार्थों से युक्त भूपृष्ठ को मुक्त किया गया, सूक्ष्म विकिरण ऊर्जा के रूप में विस्तरित हुआ । इन ऊर्जा स्रोतों ने सामान्य अणु संरचना को अधिक जटिल बना दिया सर्वाधिक छोटा अणु कार्बन आपस में सिमटकर एक मजबूत बंध के रूप में परिवर्तित हो गया । प्रत्येक कार्बन अणु में चार बन्ध बने । अन्य जैविक अणु कार्बन से सम्बन्धित हो गए । अन्तत: जैविक अणु अधिक विकसित एवं जटिल होकर क्रियाशील हो गए । इसी आधार पर पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ हुआ और विकासक्रम में उच्चतर प्राणी तथा मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ । अतएव रसायन शास्त्रियों ने मनुष्य की व्याख्या ''कार्बन अणु की जटिल जैविक संरचना'' के रूप में की है ।

जैव रसायनविदों ने रसायनशास्त्रियों से थोड़ा अलग हटकर मनुष्य की व्याख्या की है । उसका मत इस प्रकार है—''छोटे तथा बड़े अणुओं में जीवन तत्व का अभाव है । अपने आप वे गति करने में असमर्थ होते हैं । पर पृथ्वी के शैशव काल में जब अणु अधिक जटिल स्वरूप धारण करने लगता है, तो कुछ जैविक तत्वों का उद्भव अपने आप होता है, जो उन अणुओं को गति देते हैं । उन्हें न्यूक्लिक एसिड कहा जाता है । दूसरे प्रकार के उत्पन्न हुए जैविक अणु प्रोटीन हैं । कुछ प्रोटीनों में उत्प्रेरक गुण पाये जाते हैं, जिन्हें एन्जाइम कहते हैं । विभिन्न प्रकार के न्यूक्लिक एसिड विभिन्न तरह के एंजाइमों का निर्माण करते हैं । जीवन का जटिल स्वरूप इनके सहयोग से प्रकट होता है । इस सिद्धान्त के अनुसार जैव रसायन के विशेषज्ञों ने मनुष्य को न्यूक्लिक एसिड व एन्जाइमों के बीच पारस्परिक क्रियाशील रहने वाला प्राणी कहा है ।

अन्यान्य क्षेत्र के विशेषज्ञों ने भी अपने विषय ज्ञान के आधार पर मनुष्य की परिभाषा विभिन्न रूपों में दी है । जीव विज्ञानियों ने मनुष्य को एककोशीय सम्पिण्ड माना है, तो ज्योतिर्विदों ने उसे तारों के बीज कोष की रचना माना है । मानवशास्त्री कहते हैं कि मनुष्य कुशाग्र दृष्टि, सुविकसित मस्तिष्क, कल्पनाशील मन तथा समर्थ शरीर से युक्त एवं सृष्टि का सुविकसित प्राणी है । पुरातत्ववेत्ताओं की मान्यता है कि मनुष्य संस्कृति का संचायक, नगर का निर्माता, मिट्टी पात्र से लेकर अन्यान्य कलाकृतियों का आविष्कारक, संगीत, कृषि, साहित्य जैसे विषयों का निर्माता है ।

समाजशास्त्रियों के अनुसार वह एक सामाजिक प्राणी समाज का एक अभिन्न घटक तथा उसका निर्माता है । पाश्चात्य मन:शास्त्र को मानने वाले मनुष्य को एक अद्भुत तथा विलक्षण सचेतन जीव मानते हैं, जिसके पास मन और मस्तिष्क जैसे बहुमूल्य घटक प्राप्त हैं । वह मूल प्रवृत्तियों का गुलाम है । सेक्स ही वह प्रेरक तत्व है जिससे उसकी प्रत्येक भली-बुरी गतिविधियाँ संचालित हैं । जिसकी सन्तुष्टि अथवा अतृप्ति पर मानवी विकास अथवा पतन आधारित है । वह सचेतन जीवों का प्रचण्ड शक्ति स्रोत है ।

अर्थशास्त्रियों ने पार्थिव शरीर के रूप में मनुष्य का मूल्यांकन किया है तथा शरीर का विश्लेषण अपने ढंग से प्रस्तुत किया है । वे कहते हैं कि मानव शरीर में फास्फोरस की इतनी मात्रा पायी जाती है कि माचिस की २२० तीलियों के शीर्ष पर एक परत लगायी जा सके । ऐसी ही गणना उन्होंने अन्य घटकों की भी की है । सभी तत्वों की कीमत अर्थशास्त्रियों ने लगभग सत्ताइस रुपये लगायी थी । कुछ व्यक्तियों का आक्षेप है कि कुछ दशकों में महँगाई बेहिसाब बढ़ी है ऐसी स्थिति में मानव शरीर की कीमत भी अधिक आँकी जानी चाहिए । यदि उनकी बात मानली जाय, तो मनुष्य शरीर की कीमत अधिक से अधिक पचास रुपये तक मानी जा सकती है ।

रिश्तों के आधार पर भी मनुष्य का एक स्वरूप प्रकट होता है । एक ही समय में वह किसी का पुत्र, किसी का पिता, एक स्त्री का पति, एक लड़की का भाई, किसी का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोस्त तथा किसी का दुश्मन, कहीं कर्मचारी, किसी का नौकर, किसी का अधिकारी, सम्पत्ति का स्वामी, संरक्षक हो सकता है । प्रकृति एवं अभिरुचि के अनुरूप भी उसका एक रूप है । वह विचारक हो सकता है । कलाकार, गायक, संगीतज्ञ, अभिनयकर्ता, दार्शनिक, अध्यापक, अर्थशास्त्री, कृषक, विशेषज्ञ, वैज्ञानिक, सन्त, दुष्ट, समाज सुधारक, भ्रष्ट, ब्रह्मचारी, व्यभिचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, बालक, युवा, वृद्ध, नर, नारी जैसे अगणित उसके रूप हैं । एक साथ वह एक से अधिक विशेषताओं से युक्त भी हो सकता है । वह बुद्धिमान हो सकता है और मूर्ख भी । बलवान अथवा निर्बल भी हो सकता है । सुन्दर और कुरूप दोनों ही उसके रूप हैं ।

पुरातन तथा आधुनिक मनीषियों एवं दार्शनिकों ने भी मनुष्य की व्याख्या विभिन्न ढंग से की है । पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो ने मनुष्य को एक पंखविहीन द्विपाद के रूप में वर्णन किया है । दार्शनिक सेनेक्रा उसे एक सामाजिक प्राणी मानता है । एल्डुअस हक्सले का कहना है कि—"मनुष्य इन्द्रियों को दासता में जकड़ा एक बुद्धिमान जीव है ।" डार्विन ने जीवविकास की एक उच्च स्थिति के रूप में मनुष्य का वर्णन किया है । फ्रायड मनुष्य को पशु प्रवृत्तियों में जकड़ा, एक जीव मानता है । जान स्टुअर्ट मिल मनुष्य को एक चलता-फिरता नश्वर प्राणी कहता है, जो अन्य जीवों की तुलना में अधिक समझदार तथा सृष्टि के लिए उपयोगी है । बर्ट्रेण्ड रसेल उसे बुद्धिमान किन्तु ध्वंशक जीव मानते हैं ।

भारतीय ऋषियों तथा मनीषियों ने भी मनुष्य तथा मनुष्य जीवन की विवेचना अनेक रूपों में की है । नास्तिकवादी दार्शनिक चार्वाक ने मनुष्य को नश्वर माना है । इस मान्यता के आधार पर ही उन्होंने कहा था—

"यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत् ।"

अर्थात्—"जब तक जियो, सुख से जियो, ऋण लेकर घी पियो । क्योंकि शरीर के भस्मीभूत हो जाने के बाद कौन लौटकर आता है ।"

योग मनोविज्ञानियों के अनुसार "मननात् मनुष्यः" । अर्थात् मनन करने से मनुष्य कहलाता है । शास्त्र कहते हैं—

"मन एवं मनुष्यणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।"

अर्थात्—मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है ।

वैरस्यमत्र विषवत्सुविधाय पश्चादेनं विमोचयति तन्मन एवं बन्धात् ॥

—विवेक चूड़ामणि

अर्थात्—यह मन ही देह आदि सब विषयों में राग की कल्पना करके रस्सी से पशु की तरह पुरुष को बाँधता है फिर इन विषयों से वैराग्य उत्पन्न करके इसको बन्धन मुक्त भी कर सकता है ।

भगवान राम को ऋषि वशिष्ठ ब्रह्म विद्या का उपदेश देते हुए कहते हैं—हे राम! मैं तुम्हें एक रहस्य की बात बताता हूँ—"मनुष्य से बढ़कर इस संसार में और कुछ भी नहीं ।"

मनुष्य क्या है । आत्मज्ञानी कहते हैं—**अहंमात्मानं पराजिग्ये** । मैं अपराजित आत्मा हूँ ।

एक ब्रह्मज्ञानी का उद्घोषण है—

"अहं ब्रह्मास्मि । सोऽहम् सच्चिदानन्दोऽहम् ।"

वह ब्रह्म मैं हूँ । वह मैं हूँ । मैं सत्-चित् और आनन्द से युक्त हूँ ।

'अकर्ताहमभोक्ताहमविकारोऽहमक्रियः ।
शुद्धबोधस्वरूपोऽहं केवलोऽहं सदाशिवः ॥"

—विवेक चूड़ामणि

अर्थात्—मैं अकर्ता-अभोक्ता हूँ, अविकारी हूँ । शुद्ध बोध स्वरूप हूँ । एक हूँ और नित्य कल्याणस्वरूप हूँ ।

नाहमिदं नाहमदोऽप्युत्थोरवभासकं परं शुद्धम् ।
बाह्याभ्यन्तरशून्यं पूर्णं ब्रह्माद्वितीयमेवाहम् ॥

(विवेक चूड़ामणि)

अर्थात्—मैं न यह जगत् हूँ, न वह ईश्वर है, बल्कि इन दोनों का प्रकाशक, बाह्याभ्यन्तर शून्य, पूर्ण, अद्वितीय और शुद्ध परब्रह्म ही हूँ ।

मनुष्य क्या है ? उत्तर एक प्रतिप्रश्न मे सन्निहित है कि मनुष्य क्या नहीं है ? अर्थात् सब कुछ है । बीज रूप में उसके भीतर विकास की असीम सम्भावनाएँ विद्यमान हैं । अपने विषय में जो जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है । वह एक ऐसा अनगढ़ प्राणी है, जो सुगढ़ बन सकता है, नर से नारायण बन सकता है और अधोगामी मार्ग अपनाकर नर पशु, नर-पामर भी बन सकता है । अभीष्ट दिशा मे चल पड़ने की उसे खुली छूट है । शरीर, मन, अन्तःकरण तथा उनसे जुड़ी असामान्य क्षमताएँ सदुद्देश्यों से जुड़कर उसके विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकती हैं और निकृष्ट दिशा में नियोजित होकर पतन-पराभव की ओर ढकेल भी सकती हैं ।

अपने को वह रसायनों का सम्मिश्रण, मूल प्रवृत्तियों का गुलाम, अणुओं का संगठन अथवा चलता-फिरता पौधा भर मानता रहे, यह मनुष्य के लिए शोभा नहीं देता । उचित यही है कि वह मनुष्य जीवन की गरिमा समझे तथा यह माने कि सुरदुर्लभ प्रस्तुत अवसर उसे विशिष्ट प्रयोजन के लिए प्राप्त हुआ है, जिसका सदुपयोग होना चाहिए । श्रेष्ठ मान्यता के अनुरूप ही विचारणा का क्रम चलता और अन्ततः वही आचरण में उतरता है । भौतिक मान्यताओं से ऊपर उठकर ही मनुष्य का सही एवं शाश्वत मूल्यांकन करना विवेक सम्मत है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य कितना स्वतन्त्र ? कितना परतन्त्र ?

एकबार एक मनुष्य ने हजरत अली से पूछा कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है या परतन्त्र । उन्होंने उत्तर दिया—दोनों । उसने पूछा कैसे ? हजरत अली ने इसके उत्तर में उसे अपना एक पैर उठाने को कहा । उस मनुष्य ने एक पैर ऊपर उठा लिया । 'हजरत' ने उससे दूसरा पैर भी उठाने को कहा । इसमें उस व्यक्ति ने असमर्थता व्यक्त की । 'अली' ने उसके आरम्भिक प्रश्न का स्पष्टीकरण किया कि मनुष्य की यही स्थिति है ।

मानवी स्वतन्त्रता की एक सीमा है । प्रत्येक कार्य को कर सकने में मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है । यदि ऐसा होता तो पुरुषार्थ एवं ज्ञान का विकास सम्भव नहीं हो पाता, मनुष्य जड़ हो जाता । स्वतन्त्रता, परतन्त्रता किस प्रकार जीवन में सम्मिश्रित है इसको एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है । एक बड़े पुस्तकालय में पहली कक्षा से लेकर अन्तिम कक्षा तक की पाठ्य पुस्तकें हैं । एक लड़के को पुस्तकालय का अध्यक्ष बना दिया जाता है, उसे सौंपते हुए कहा जाता है कि उसके ही पढ़ने के लिए सभी पुस्तकें हैं । उस पर नियन्त्रण करने वाला कोई नहीं है । यह उसकी इच्छा पर निर्भर करता है कि वह पहले किस पुस्तक को पढ़े । यदि वह आरम्भ पहली कक्षा की पुस्तकों के अध्ययन से करता है तथा इस क्रम में आगे बढ़ता जाता है तो पुस्तकों का सही उपयोग कर सकने में तथा समझ पाने में समर्थ होता है । इस क्रम की अवहेलना करके वह यदि ऊँची कक्षा की पुस्तकों को अध्ययन के लिए उठाता है तो समझ पाना तो दूर रहा, उल्टे दिग्भ्रान्त हो जाता है । जबकि निर्धारित क्रम से अध्ययन करने वाला अपने ज्ञान में अभिवृद्धि करता जाता है । ज्ञान की वृद्धि के साथ उसकी स्वतन्त्रता भी बढ़ती जाती है । अपने श्रम एवं विवेक का प्रयोग करके वह ज्ञानी बन जाता है ।

सृष्टि से प्राप्त साधन पुस्तकालय के तुल्य हैं । इसमें विभिन्न प्रकार की पुस्तकें नहीं हैं । विराट् प्रकृति एक खुली पुस्तक के समान है । जिसमें विभिन्न श्रेणियों के जीव अपने स्तर के अनुरूप उस पुस्तक का अध्ययन करते एवं समझने का प्रयास करते हैं । जीवों की योग्यता में भिन्नता होने के कारण प्रत्येक को भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतीत होती है । सबके अध्ययन के लिए सृष्टि रूपी पुस्तक खुली पड़ी है । एक क्षुद्र जीव अपनी क्षमता के अनुसार उससे उपयोगी ज्ञान एवं सामर्थ्य प्राप्त करता है । उच्चतर जीव अधिक ज्ञान संचित करता है । एक जंगली मनुष्य अपने स्तर से समझने का प्रयास करता है तथा विकसित सभ्य मनुष्य अपने स्तर से । पाठ्य-सामग्री एक होते हुए भी दोनों के अध्ययन एवं उससे मिलने वाले अनुभवों में महान अन्तर है । अपने ज्ञान में वृद्धि करते हुए मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता बढ़ाता जाता है । प्रकृति के जड़ परमाणु अन्य प्राणियों के लिए व्यर्थ हैं जबकि मनुष्य उन्हीं को सुगठित, व्यवस्थित करके अनेकानेक रचनाएँ कर डालता है । अपनी विकसित बुद्धि के कारण नगण्य समझे जाने वाले धूल के कणों में भी असीम शक्ति सामर्थ्य ढूँढ़ निकालता है । उनका सदुपयोग करते हुए स्वतन्त्र जीवन-यापन करता है । स्वतन्त्रता निम्न जीवों में सीमित है जबकि मनुष्य से उसका क्षेत्र बढ़ जाता है । यह स्वतन्त्रता प्रयत्न करने पर बढ़ जाती है । वस्तुतः संसार के आकर्षणों के स्वतन्त्र उपभोग से हटकर जब दुष्प्रवृतियों से स्वतन्त्र होने का जीव प्रयास करता है तो इसे ही मुक्ति कहा गया है । स्वतन्त्रता की यही पराकाष्ठा है ।

मुक्ति को परमपद—जीवन का लक्ष्य माना गया है । इससे अभिप्राय यह है कि मुक्ति एक भौतिक अवस्था नहीं जीवात्मा की एक स्थिति है, जिसमें वह अपने को कर्म, भोग एवं ज्ञान के बन्धनों से मुक्त अनुभव करता है । मानसिक दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा पाना ही मुक्ति है तब सांसारिक बन्धनों का प्रभाव समाप्त हो जाता है । सामान्यतया लोगों के मन में यह भ्रान्ति बनी हुई है कि मुक्ति किसी स्थान विशेष का नाम है जहाँ जीवात्मा को भेज दिया जाता है । ऐसा जानकर उस स्थान विशेष को ढूँढ़ने तथा वहाँ पहुँचने का प्रयत्न करते हैं । फलस्वरूप आन्तरिक दुष्प्रवृत्तियों के परिष्कार तथा आत्म-विकास का प्रयत्न किया नहीं जाता । मान्यता की यह भ्रान्ति तथा मुक्ति का प्रयास उसी प्रकार है, जैसे कोई विद्यार्थी मात्र सर्टीफिकेट प्राप्त करने के लिए भटकता रहे तथा मानसिक विकास के लिए श्रम करना छोड़ दे । वस्तुतः सर्टीफिकेट एक विशिष्ट प्रकार के कागज के मिलने का नाम नहीं वरन् आन्तरिक शक्तियों की विकसित अवस्था का नाम है । विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए उचित श्रम करता है न कि सर्टीफिकेट प्राप्त करने की चिन्ता में अनावश्यक भटकता रहता है । सफलता के साथ सर्टीफिकेट का मिलना तो सुनिश्चित है । मुक्ति की उपलब्धियाँ स्वर्गीय परिस्थितियों के रूप में परिलक्षित होती हैं । यह मिलना तो सुनिश्चित है किन्तु अपने विकास के श्रम-साध्य कार्य को छोड़कर यदि मुक्ति की परिस्थितियों को ढूँढ़ने का प्रयास किया जाय तो असफलता ही हाथ लगेगी ।

मुक्ति का मार्ग बाहर नहीं अन्दर है । यह मार्ग बच्चों के साँप-सीढ़ी के खेल के समान है । सतर्कता एवं विवेक के अभाव में खिलाड़ी को असफलता ही हाथ लगती है । सीढ़ी कभी तो ऊपर ले जाती है । सतर्कता के अभाव में साँप को अवसर मिल जाता है तथा सारे प्रयत्न को नष्ट कर देता है । साँप आलस्य, प्रमाद, लोभ, मोह का परिचायक है, जो मनुष्य की प्रगति को, स्वतन्त्रता की ओर बढ़ने में बाधक है । थोड़ी भी असावधानी बरती गई तो ये बन्धन मनुष्य को जड़क लेते तथा आबद्ध कर लेते हैं । फलस्वरूप मनुष्य इनका गुलाम बनकर किसी प्रकार जीवन के दिन पूरे कर लेता है । भौतिक आकर्षणों में आबद्ध जीवात्मा मुक्ति का आनन्द लेने से वंचित रह जाती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इस मार्ग में अनेक योनियों से होकर गुजरना पड़ता है । कीट से लेकर मनुष्य तक की मध्यवर्ती दशाएँ मुक्त रूपी चोटी पर पहुँचने के लिए विभिन्न मार्ग हैं । भिन्न-भिन्न प्राणी विभिन्न स्टेशनों पर हैं । कुछ प्रयत्नों से आगे बढ़ते तो कुछ नीचे गिरते हैं । संसार चक्र का यही राजमार्ग है । प्राणियों की विभिन्न प्रवृत्तियाँ इस मार्ग में आगे बढ़ने अथवा पीछे हटाने में सहायक होती हैं । ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मुक्ति मार्ग के अवरोध हैं, जो प्राणियों को आगे बढ़ने से रोकते तथा उस श्रेष्ठ आनन्द से सदा वंचित रखते हैं । जबकि परोपकार, दया, करुणा, सेवा की प्रवृत्तियाँ सहायक मानी जाती हैं इनका अवलम्बन लेकर जीव क्रमशः अपना विकास करता जाता है ।

स्वतन्त्रता की पराकाष्ठा ही मुक्ति है । मानव योनि उस परमपद तक पहुँचने का सर्वश्रेष्ठ साधन है । अन्य जीव तो प्रकृति प्रेरणाओं के अनुरूप जीवन-यापन करते तथा मरते-खपते देखे जाते हैं जबकि परमात्मा ने मनुष्य की अतिरिक्त क्षमताओं के साथ विवेक भी दिया है, इसका एकमात्र उद्देश्य है कि वह पशु-प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करते हुए अपने मुक्त स्वरूप को अनुभव कर सके । आन्तरिक दुष्प्रवृत्तियाँ ही भव-बन्धन हैं । यही अन्तरात्मा के स्वरूप के दर्शन से मनुष्य को वंचित रखती हैं । जब मन की दुष्प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं तो जीवात्मा अपने को मुक्त अनुभव करती है तथा अपने शाश्वत दिव्य आलोक के साथ प्रकट होती है । यही है स्वतन्त्रता परतन्त्रता का वास्तविक स्वरूप, जीवात्मा के विकास पराभव का तत्वदर्शन ।

मनुष्य ! तू महान है

मनुष्य से श्रेष्ठ इस संसार में दूसरा कोई अन्य प्राणी नहीं हैं । निश्चय ही यह वरीयता मानव को उसकी दैहिक विशिष्टता के कारण कम अन्तराल की विशालता-विशिष्टता के कारण अधिक मिली है । करुणा, उदारता, साहसिकता, नैतिकता, सुहृदयता, स्नेह-सौजन्य आदि सद्गुणों से ओत-प्रोत मानवी अन्तःकरण अवसर पाकर प्रस्फुटित होता और अन्यान्यों को अपने भाव तरंगों से आप्लावित-आच्छादित करता रहता है । इतर प्राणियों में इसके दर्शन नहीं होते । उच्चस्तरीय विचारणाओं-भावनाओं को गुण, कर्म, स्वभाव में समाहित करने तथा उन्हें व्यवहार के माध्यम से प्रकट कर सकने की क्षमता मनुष्य में ही है । सृष्टा के विश्व उद्यान को अधिकाधिक सुन्दर-समुन्नत बनाने में केवल वही सक्षम है । इसीलिए मनुष्य को ईश्वर का वरिष्ठ राजकुमार कहा और धरती पर उसका उत्तराधिकारी माना गया है ।

मनुष्य जन्म की श्रेष्ठता को प्रायः सभी धर्मों में मनीषियों ने एकमत से स्वीकारा है । सुप्रसिद्ध मानवतावादी विचारक कोरलिस लेमोण्ट ने अपनी पुस्तक ह्यूमैनिज्म ऐज ए फिलासफी में कहा है, विश्व में आश्चर्य अनेक हैं, उनमें सबसे बड़ा आश्चर्य मनुष्य है । प्रकृति की उससे महान कृति इस संसार में दूसरी नहीं । लेमोण्ट का यह कथन वस्तुतः ऋषि प्रणीत उस दार्शनिक प्रतिपादन की ही पुष्टि करता है जिसमें कहा गया है मनुष्य सृष्टा की सुकृति है, एक अनुपम अद्वितीय संरचना है जिसके अंतराल में महान संभावनाओं के बीज सूक्ष्म रूप में विद्यमान हैं । ऐतरेय उपनिषद् (२१३) में जहाँ मानव अपने रचनाकार की—विश्व शक्ति की सुकृति है वहीं शतपथ ब्राह्मण २-५-१ । १ में उसे नारायण के समीप बताया गया है । ऋषि प्रणीत आर्ष ग्रंथों की तरह बाइबिल के जेनेसिस २६ । २७१,५ । १ से ९ । ६ में मनुष्य जन्म की विशिष्टता, अद्वितीयता का विस्तृत वर्णन मिलता है । इसी तरह कुरान के सुरा २ व ३५ में स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य पृथ्वी पर अल्लाह का प्रतिनिधि है । इसी धर्म ग्रंथ के सूरा ९५/४, ६५/३, एवं ४०/९६ में कहा गया है कि अल्लाह ने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ आकार प्रदान किया है । तात्पर्य यह कि अपने सृष्टा की समस्त विभूतियाँ, सूक्ष्मशक्तियाँ बीज रूप में प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर्निहित हैं । इस तथ्य को यदि हृदयंगम किया और उन्हें जाग्रत करने का पुरुषार्थ किया जा सके तो निश्चय ही मनुष्य श्रेष्ठ है ।

मूर्धन्य मनीषी पं. गोपीनाथ कविराज ने अपने एक शोध निबन्ध 'मनुष्यत्व' में इसी तथ्य को प्रति-पादित किया है कि प्राचीन ऋषि प्रणीत शास्त्रों में ही नहीं अन्यान्य देशों के धर्मशास्त्रों में भी इतर-प्राणियों की जीव देह की अपेक्षा मानव देह को अधिक उत्कृष्ट माना गया है ! आचार्य शंकर ने मनुष्यत्व मुमुक्षुत्व एवं महापुरुष संश्रय को अपनी कृति 'विवेक चूड़ामणि' में अति दुर्लभ बताते हुए मनुष्यत्व को प्रथम स्थान प्रदान किया है ।

जैन धर्म में भी मनुष्य जन्म की महत्ता का वर्णन आता है । उनकी मान्यता है कि यह शुभ का लक्षण है क्योंकि इसका उदय शुभ की सिद्धि के लिए है । इस विषय में भगवान महावीर उत्तराध्ययन सूत्र ३/७ में कहते हैं कि जब अशुभ कर्मों का विनाश होता है, तभी आत्मा शुद्ध, निर्मल और पवित्र बनती है और प्राणी मनुष्य योनि को प्राप्त होता है । इसी ग्रंथ के एक अन्य सूत्र १०/४ में तीर्थंकर महावीर कहते हैं संसारी जीवों को मनुष्य का जन्म चिरकाल तक इधर-उधर भटकने के पश्चात् बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है वह उपलब्धता सहज नहीं है । बौद्ध धर्म में इसी तथ्य को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि मानव रूप प्राप्त होने पर सत्य ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है । बुद्धत्व की प्राप्ति इसी शरीर में संभव है । नैतिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास करते हुए निर्वाण स्थिति तक पहुँचना इसी शरीर में बन पड़ता है । विभिन्न धर्मों द्वारा मानव जन्म की श्रेष्ठता सम्भव है, किसी श्रद्धालु को यह सहज स्वीकार्य भले ही हो, किन्तु सत्यान्वेषी बुद्धि उसे तब तक किंचित मात्र भी स्वीकार न करेगी जब तक उसे क्यों का प्रत्युतर तर्क, तथ्य व प्रमाण सम्मत न प्राप्त हो । यह प्राप्ति आवश्यक भी है अन्यथा उपर्युक्त स्वीकारोक्ति अंधश्रद्धा मात्र बनकर रह जायगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस क्यों का विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए महर्षि अरविंद अपनी अनुपम कृति 'द लाइफ डिवाइन' में कहते हैं कि जीवन एक सार्वभौमिक शक्ति का रूप-एक गतिशील प्रेक्षण है । यह उस परम चेतना की सतत् क्रिया अथवा क्रीड़ा-कल्लोल है जो विभिन्न रूपों में क्रियाशील दीखती है ।

यह प्रक्रिया मनुष्य सहित समस्त मानवेतर प्राणियों में समान रूप से गतिमान है । यही कारण है कि सभी जीव नवीन रूप धारण करते हैं । जीवन की निरन्तरता समाप्त नहीं होती । अव्यक्त, व्यवस्थित, मौलिक, निवर्तित अथवा विवर्तित जीवन सर्वत्र है । केवल उसके रूपों एवं व्यवस्थाओं में भिन्नता है । इस दृष्टि से सभी में जन्म, यौवन, वार्द्धक्य एवं मरण आदि अवस्थाएँ एवं उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रिया ही परिलक्षित होती है, परन्तु चेतनात्मक विकास की दृष्टि से मनुष्य वरिष्ठ ठहरता है । उसका मानसिक विकास, संकल्प शक्ति की अद्भुत सामर्थ्य सम्पन्नता, ज्ञान-विज्ञान को जन्म दे सकने वाली विवेक बुद्धि-प्रज्ञा ऐसी विशिष्टताएँ हैं जो इतर प्राणियों में किंचित मात्र भी नहीं देखी जातीं । यह श्रेष्ठता ही मनुष्य को अन्यान्यों से अलग कोटि में रखती हैं । श्री अरविंद के अनुसार शक्ति की अभिव्यक्ति की उच्चता के अनुरूप मानव में समूचा संगठन भी उच्चतम् कोटि का विनिर्मित हुआ है । शारीरिक संरचना, स्नायु संस्थान की एवं अंतःस्रावी विशिष्टताएँ प्राणिक संगठन, मानसिक क्रिया विज्ञान, सूक्ष्म भाव संस्थान आदि अपने आप में अनेक विशेषताएँ लिए हुए हैं ।

जड़ पदार्थ में जीवन अचेतन रूप से क्रियाशील चेतना शक्ति के रूप में संगठित हुआ है । इस प्रक्रिया की त्रिविध अवस्थाएँ हैं—जड़ जीवन, प्राणात्मक जीवन और मानसिक जीवन । इसे अवचेतन, चेतन व आत्मचेतन के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है । निम्नतम वह है, जिसमें स्पन्दन अभी भी जड़ की निद्रा में पूर्णतया अवचेतन है और पूर्णतया यंत्रवत प्रतीत होता हो । उदाहरणार्थ, परमाणविक संरचना में इलेक्ट्रान, प्रोटान आदि कणों की गति । मध्यम स्थिति वह है जिसमें वह एक प्रतिक्रिया के योग्य हो जाता है जो अब भी अधिमानसिक है परन्तु उसकी सीमा पर है जिसको हम चेतना कहते हैं । विभिन्न पादपों एवम् कनिष्ठ मनुष्येत्तर प्राणियों में इस के विविध स्तर दृश्यमान होते हैं । सर्वोच्च स्तर में जीवन मानसिक प्रत्यक्ष के योग्य संवेदन के रूप में चेतन मानसिकता का विकास करता है जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि के विकास का आधार बनता है ।

इस तरह जीवन त्रिविध अवस्थाओं में से गुजरकर गतिमान होता है । अपने प्रारम्भिक स्तर में वह एक विभाजित और अवचेतन संकल्प है । मध्य में मृत्यु, इच्छा एवम् सामर्थ्यहीनता जो कि वातावरण के अनुरूप आत्मा के विस्तार, अधिकार तथा नियंत्रण की ओर अस्तित्व के लिए संघर्ष को प्रेरित करता है । यह पशुओं में पायी जाने वाली उसी स्थिति का वर्णन है जिसका वर्णन डार्विन ने किया है । किन्तु यह मध्यवर्ती स्थिति मात्र है, जिसे डार्विन समग्र मान बैठे इसके पश्चात मानस का परिपक्व स्तर आता है जो मनुष्य की अपनी विशिष्टता है । जैसे-जैसे मानस का अतिमानस की ओर प्रगतिक्रम बढ़ता जाता है अर्थात् विचारणा, भावना में गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का समावेश होता जाता है, उसी अनुपात से आत्मरक्षा और संघर्ष की प्रवृत्तियाँ तिरोहित होती चली जाती हैं उनका स्थान प्रेम, सहयोग और पारस्परिक सेवा-सहायता जैसी सद्प्रवृत्तियाँ ले लेती हैं । क्रमशः यह परिवर्तन अधिकाधिक परिष्कृत, सार्वभौमिक तथा आध्यात्मिक बनता जाता है और मानव को पूर्णता की मंजिल समीप दीखने लगती है । मानवेतर जीवों में इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

डार्विन के संघर्ष का प्रयत्न मध्यवर्ती स्थिति में है न कि सर्वोच्च स्थिति में । मनुष्य इस मध्यवर्ती स्थिति को पार कर चुका है और उस स्थिति में आ गया है जहाँ संघर्ष नहीं सहयोग की भावना प्रबल होती है । जड़ से जीवन श्रेष्ठ है और उससे भी उच्चस्तरीय मानस की परिपक्व अवस्था प्राप्त मानवी चेतना श्रेष्ठ है । जिन्हें अपनी गौरव-गरिमा का ज्ञान नहीं है अथवा जिनकी मानसिक चेतना विकसित नहीं हुई है, उनके लिए शास्त्रोक्त वचन—"मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति" अर्थात् मनुष्य के रूप में पशु के विचरण करने का प्रतिपादन ही सटीक बैठता है ।

मनःतत्व की प्रधानता-परिपक्वता ही वह आधार है जिसके द्वारा अतिमानसिक स्तर तक मनुष्य अपना विकास कर सकता है । तुच्छता से महानता की ओर अग्रसर हो सकता है । चेतना के निम्नतर स्तरों से उच्चतम् आयामों की ओर आरोहण कर सकने की योग्यता के कारण ही उसे सृष्टि का मुकुटमणि कहा गया है । चीन के महान दार्शनिक कन्फ्यूशियस के शब्दों में, मानव इस विश्व का सूत्र है । यदि समाधान कर लिया जाय तो वही सर्वश्रेष्ठ स्थिति होगी । उनके अनुसार मनुष्य ईश्वर से तनिक ही नीचे है । पाश्चात्य चिन्तक पास्कल ने अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहा है कि सृष्टि में मानव जीवन सर्वोत्तम इसलिए माना गया है कि वह मनचाही दिशा में अपना विकास कर सकता है । ख्यातिलब्ध दार्शनिक एल्डुअस हक्सले अपने ग्रंथ—'द पेरीनियल फिलासफी' में उपर्युक्त तथ्य से सहमति व्यक्त करते हुए बताते हैं कि मानव की इसी श्रेष्ठता और गौरव के कारण सांसारिक प्राणियों में उसे प्रधानता तथा आदर प्रदान किया जाता रहा है । अमरीकी समाजशास्त्री अर्नेस्ट कैसिरर ने अपनी कृति 'ऐन एसे ऑन मैन' में कहा है कि ईश्वर ने मानव को अपने ही प्रतिरूप में बनाया है वह अपनी विकास यात्रा पूर्ण करके उसके समरूप हो सकता है ।

निश्चित ही प्रत्येक मानव का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह अपने दिव्य एवम् नैसर्गिक गुणों का पोषण तथा विकास करते हुए जीवन में अपनी श्रेष्ठता को प्रभावित करे । ऐसा होने पर ही वह मानव धर्म को पूर्ण कर सकेगा और इसके समुचित परिपालन से वह गुण सम्वर्द्धन व आत्म-विकास की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपलब्धि कर सकेगा । मानव से महामानव, नर से नारायण बनना उसके लिए संभव है, अभीष्ट भी । वह यह कर पाता है या नहीं, यह परीक्षा विधाता जीवन समर में सब की लेता रहता है ।

स्रष्टा का उत्तराधिकारी महान बनकर रहे

मानवी विकास का वास्तविक स्वरूप निर्धारित करना हो तो यह मानकर नहीं चला जा सकता कि मनुष्य शरीर पाने तक ही उसकी अन्तिम परिधि है । उसे विकासोन्मुख होने के लिए शरीरगत जीवन-यापन को भी सब कुछ न मानकर अपनी सत्ता उस चेतना के साथ जोड़नी पड़ेगी जो इस ब्रह्माण्ड पर अनुशासन करती और अन्तराल को सुविकसित, स्वच्छ बना लेने वालों पर अपनी उच्चस्तरीय अनुकम्पा बरसाती है । साथ ही मनुष्य को इस प्रकार का चिन्तन अपनाने के लिए भी प्रोत्साहित करती है कि उसके अन्तराल में अति महत्त्वपूर्ण क्षमताओं का भी भण्डार भरा पड़ा है जिसे थोड़ा विकसित कर लेने पर वह काया कि दृष्टि से यथावत् रहते हुए भी व्यक्तित्व की दृष्टि से महानतम बन सकता है ।

इस अध्यात्म विकास के तत्वज्ञान के अनुरूप चेतना को विकसित, परिष्कृत, समर्थ, विलक्षण बनाने का द्वार मनुष्य शरीर मिलने के उपरान्त खुलता है । इससे पूर्व तो वह मात्र जीवधारी ही बनकर रहता है । साथ ही प्रकृति का अनुशासन मानने के लिए बाधित रहता है । उसे प्रकृति पर अनुशासन करने, उसे अपने अनुकूल बनाने की विद्या का ज्ञान तक नहीं होता । प्रकृति पर परमात्मा का स्वामित्व है । दूसरा हस्तान्तरण उसके युवराज मनुष्य को उसकी परिपक्वता विकसित होते ही उपलब्ध होने लगता है । यह दूसरी बात है कि वह उस अनुदान का कितनी बुद्धिमत्ता के साथ किन प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त करता है ।

विकास की मानवी परत में उभरते ही उसे आत्मबोध की एक नयी उपलब्धि हस्तगत होती है वह अनुभव करता है कि काय-कलेवर उसका समग्र स्वरूप नहीं वरन् एक वाहन उपकरण आच्छादन मात्र है । उसके भीतर रहने वाली चेतना ही मनुष्य को ऊँचा उठाती, नीचे गिराती है । मनःस्थिति ही परिस्थितियों की जन्मदाता है । मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है । वह प्रकृति की कठपुतली मात्र नहीं है । अन्य प्राणियों की तरह मात्र निर्वाह ही उसकी एकमात्र आवश्यकता नहीं है । वरन् व्यक्तित्व का स्तर उठाकर जीवन सज्जा को—अनेक उपलब्धियों विभूतियों से अलंकृत करना भी एक विशिष्ट उद्देश्य है । जब तक यह विचारणा नहीं उठती तब तक वस्तुतः मनुष्य नर पशु ही रहता है और इन्द्रिय लिप्साओं तथा मानसिक तृष्णाओं तक ही उसकी गतिविधियाँ सीमित रहती हैं, न वह जीवन का महत्त्व समझ पाता है और न उसे चेतना की पृथकता-विशिष्टता सम्बन्धी कुछ ज्ञान होता है ।

विकास की दृष्टि से पेड़ की ऊँचाई एक सीमा तक बढ़ती जाती है । यह सीमा पूरी होने पर उसका फैलाव एवं मोटाई की अभिवृद्धि होती है तथा फूल-फल लदने लगते हैं । योनियों की दृष्टि से हाथी, सिंह, ह्वेल आदि का विस्तार तथा प्रभाव बढ़ा-चढ़ा है, पर शरीर संरचना और मानसिक स्तर की दृष्टि से मनुष्य ही मूर्धन्य है । इसीलिए उसे सृष्टि शिरोमणि कहा जाता है । प्राणि जगत पर उसका अधिकार है । इतना ही नहीं प्रकृति के अनेकानेक रहस्यों की परतें उसने उघाड़ी हैं और एक सीमा तक उस पर आधिपत्य भी प्राप्त किया है । सुख-साधन उसके पास असीम मात्रा में हैं । अस्त्र-शस्त्रों सहित रण-कौशल में उसकी प्रवीणता है । समाज गठन और शासनतन्त्र का निर्माण उसी का अनुपम कौशल है । पदार्थ विज्ञान में उसने असाधारण उन्नति की है । यह सब बातें इस बात का प्रमाण हैं कि प्राणि जगत में उसकी प्रमुखता असंदिग्ध है ।

पेड़ की ऊँचाई पूरी हो जाने पर उसकी प्रगति फल-फूलों की दिशा पकड़ती है । यह बात मनुष्य के सम्बन्ध में भी है, उसका विकास मानसिक और आत्मिक दो दिशाओं में प्रस्फुटित होता है और इन क्षेत्रों की बढ़ी-चढ़ी सफलताओं में अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करता है ।

विकास अविरल गति से चलता है । इससे मानवी सन्दर्भ में भौतिक उन्नति एवं आध्यात्मिक प्रगति के नाम से जाना जाता है । यही उत्कर्ष की दो दिशाएँ हैं । सम्पदाओं से सुसम्पन्न व्यक्ति को अतिमानव कहा गया है और आत्मिक उत्कृष्टता को अतिमानस ।

भौतिक प्रगति में शरीरबल, बुद्धिबल, साधनबल, संगठन बल, अधिकार, कला-कौशल आदि की गणना होती है । ऐसे लोग श्रीमन्त, सामन्त, शासक, विद्वान आदि नामों से जाने जाते हैं । उनकी महत्वाकांक्षा इस दिशा में बढ़ती है कि अधिकाधिक वैभव, क्षेत्र एवं जनसमुदाय पर उनका आधिपत्य हो और अधिकाधिक लोग उनका लोहा मानें, सम्मान प्रदान करें । ऐसे लोग सामान्य क्षेत्र में भी बहुत होते हैं और उन्हें वरिष्ठ कहते हैं । जब वे आर्थिक या शासकीय क्षेत्र में समर्थ होते हैं तो उनकी महत्वाकांक्षा और भी अधिक तीव्र हो जाती है । इतिहास ऐसे लोगों के प्रमाण-उदाहरणों से भरा पड़ा है । हिरण्याक्ष, वृत्रासुर, रावण आदि की चर्चा इसी वर्ग में होती है । पिछले दो महायुद्ध जर्मनी के शासकों की महत्वाकांक्षाओं के कारण ही लड़े गये और उनमें मरने वालों तथा तबाह होने वालों की संख्या करोड़ों तक पहुँची । हिटलर, मुसोलिनी ऐसे ही महत्वाकांक्षी थे । आज भी रूस और अमेरिका पर परस्पर ऐसी ही तैयारियों में संलग्न होने का दोषारापण करते हैं । दार्शनिक नीत्से के शब्दों में यह वर्ग विश्व विजय का स्वप्न देखता है, उसकी पूर्ति के लिए असंख्यों के विनाश में नहीं चूकता । लोग इन्हीं का लोहा मानते हैं और आतंक से भयभीत होकर अथवा चापलूसी में शेर के द्वारा किये शिकार में श्रृंगाल को भी कुछ झूठन मिल जाने का ताना-बाना बुनते हैं । इस वर्ग को तथा उनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्थकों को अतिमानव शब्द से सम्बोधित किया जा सकता है जो महामानव शब्द से सर्वथा प्रतिकूल शब्द है ।

आन्तरिक विकास की अध्यात्म उत्कर्ष की दूसरी दिशा धारा है । उसे योगी अरविन्द के शब्दों में अतिमानस कहा जा सकता है । इसका सर्वसुलभ उपाय है—सज्जनता । जिसे उत्कृष्ट चिन्तन, आदर्शचरित्र और उदार व्यवहार का समन्वय कह सकते हैं । यह सहजीवन का महामानव स्तर है । इसे जो अपनाते हैं वे क्षुद्र प्रयोजनों में निरत नहीं रहते । पेट और प्रजनन का कार्य भी वे निपटाते तो रहते हैं, पर ऐसा नहीं होता कि उन्हीं में अपना सीमा बन्धन बाँध लें । वे लोक कल्याण एवं सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन के सामयिक क्रिया-कलापों को अपने जीवनक्रम में अविच्छिन्न रूप से सम्मिलित करते हैं । इसके लिए निजी आवश्यकताओं में कटौती करनी पड़ती है तो उसे भी करते हैं और कार्य भार तथा विरोधियों का दबाव बढ़ने से जो कठिनाई उठानी पड़ती है उन्हें भी सहन करते हैं । उन्हें सन्त, सुधार, शहीद के नाम से इतिहासकार स्मरण करते हैं । महापुरुषों, महामानव या युग पुरुष के नाम से ऐसे ही लोगों को श्रेय-सम्मान दिया जाता है और उनकी उत्कृष्टता से प्रभावित होकर अगणित व्यक्ति उनका अभिनन्दन-अनुकरण करते हैं ।

इससे भी सूक्ष्म क्षेत्र में उतरने वाले व्यक्ति अपने अन्तराल को अधिकाधिक परिशोधन और परिष्कार करते हैं । कषाय-कल्मषों को सतर्कतापूर्वक बुहारते हैं और क्रिया क्षेत्र में ही नहीं अन्तराल में उठते रहने वाले उतार-चढ़ावों को भी सन्तुलित करते हैं । उनके भीतर पवित्रता और बाहर प्रखरता का समावेश रहता है । ऐसे लोग तप का आश्रय लेकर अपनी प्रसुप्तियों को जगाते और प्रखरताओं को तेजस्वी करते हैं । योग के सहारे आत्मा और परमात्मा के बीच समन्वय का, आदान-प्रदान का पथ प्रशस्त करते हैं । जिनकी तपश्चर्या और योग साधना बलवती होती है उन्हें ऋषि, देवता, अवतार आदि नामों से पुकारते हैं । वे लोक-कल्याण के लिए स्वाध्याय सामग्री विनिर्मित करते हैं और सामयिक समस्याओं के समाधान से सत्संग का ऐसा भाण्डागार विनिर्मित करते हैं जिसमें से अमृत जल भरकर विज्ञजन लोकमानस को परिष्कृत करने में जुट पड़ते हैं । इस आधार पर वे स्वयं दौड़-धूप करने की अपेक्षा दिशा निर्धारण एवं योजना निर्माण की दृष्टि से लोकसेवा की तुलना में कहीं अधिक काम कर गुजरते हैं ।

हर कोई नहीं जानता, पर सूक्ष्मदर्शी जानते हैं कि प्रयत्न प्रयासों से महत्त्व की उपेक्षा न करते हुए सूक्ष्म वातावरण में लोकमानस को किसी भी दिशा में तूफान की तरह उड़ा ले जाने की विशेष सामर्थ्य होती है । सूक्ष्म वातावरण यदि भावनात्मक प्रदूषणों से, दुष्प्रवृत्तियों से भर रहा हो तो उसका प्रभाव समूचे संसार या समुदाय पर पड़ता है । उसमें विकृतियाँ भरती चली जायें तो छूत की बीमारियों की तरह अगणित लोग उससे प्रभावित होते हैं और अच्छी राह छोड़कर कुमार्ग पर घिसटते जाते हैं । इसके विपरीत यदि सूक्ष्म वातावरण को तेजस्वी ऋषि कल्प व्यक्तियों द्वारा भर दिया जाय तो चन्दन के पेड़ की तरह उसका प्रभाव न केवल समीपवर्ती झाड़-झंखाड़ों को सुगन्धित बना देता है वरन् दूर-दूर के वातावरण में मनोरम सुगन्ध की मनोरमा सद्भावना भर देता है ।

ऋषि कल्प व्यक्ति अदृश्य वातावरण पर प्रभाव छोड़ते हैं और अपने तेजस्वी व्यक्तित्व द्वारा समय के अनुपयुक्त प्रवाह को उलटकर सीधा करते हैं । इतने पर भी उनकी कार्यपद्धति हर किसी के समझने की नहीं होती । वे अपनी अतीन्द्रिय क्षमताएँ उभारते हैं और उनके सहारे अनेक असमर्थों को सामर्थ्यवान बनाकर ऐसे लक्ष्यों की पूर्ति करते हैं जिसे ईश्वर की चमत्कारी अनुकम्पा ही कहा जा सके । आत्मबल में अलंकारिक रूप से हजार हाथियों का बल बताया गया है ।

यों लोकसेवी, महामानव यदि अपना व्यक्तित्व निखार कर सामयिक आवश्यकताओं को पूरी करने में सफल होते हैं । अतिमानस का पहला या दूसरा चरण जो भी अपनाया जा सके अपने और समस्त समाज के विश्व ब्रह्माण्ड के उत्कर्ष में सहायक ही होते हैं ।

सांसारिक दृष्टि से चर्मचक्षुओं से अतिमानवों का ही अधिक महत्त्व माना और उल्लेख होता है, पर सच्चाई यह है अतिमानस विनिर्मित करने की दिशाधारा ऐसी है जिसमें अपना ही नहीं, विश्व मानव का ही वास्तविक हित साधन होता है ।

मनुष्य ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति

अनादिकाल से ही मनुष्य को जब से अपनी विशिष्टता, वरिष्ठता और पृथक् अस्तित्व का बोध हुआ, तब से वह अपनी उत्पत्ति एवं विकास की समस्या पर विचार करता रहा है । विश्व के प्राय: सभी धर्मों में प्राणियों के आविर्भाव और मानव के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालने वाली कथाएँ प्रचलित हैं । धर्मशास्त्रों में सामान्यतया यही प्रतिपादित किया गया है कि स्रष्टा ने सब प्राणियों की समकालीन, किन्तु अलग-अलग विकसित रूपों में सृष्टि की थी, बाद में उनकी ही वंशानुवंश परम्परा चलती रही । इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य सभी प्राणियों से सर्वथा पृथक् और श्रेष्ठ है । वेद, उपनिषदों ने 'अमृतस्य पुत्रा:' कहकर उसे स्वयं अपने भाग्य का निर्माता बताया है । उद्भव काल से लेकर अब तक काय-संरचना में भले ही कुछ विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर न हुए हों, परन्तु चेतनात्मक दृष्टि से मनुष्य उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ देवत्व की ओर अग्रसर है ।

वैज्ञानिक मनीषी भी अब उक्त तथ्य की पुष्टि में अनुसंधानरत हैं । यद्यपि विज्ञान के क्षेत्र में अभी भी चार्ल्स डार्विन द्वारा प्रतिपादित विकासवाद का सिद्धान्त-'थ्योरी ऑफ इवॉल्यूशन' ही सर्वत्र मान्यता प्राप्त है, जो मनुष्य के आदि पूर्वज बन्दर को मानता है । विकासवाद का यह सिद्धान्त मानव के मूल गौरव, स्वरूप, स्वभाव, स्तर और आधार पर जिस तरह चोट करता है, उससे मनुष्य प्रकृति के हाथ का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक खिलौना मात्र सिद्ध है । इसी तरह नृवंश-शास्त्रियों का मनुष्य भी अपने पूर्वजों की तुलना में आज अधिक सुसभ्य, सुसंस्कृत, विकसित एवं अच्छी स्थिति में है । यह मान्यता हमें न केवल अहंकारी बनाती है, वरन् अपने पूर्वजों के प्रति अश्रद्धा एवं उपहास की भावना भी पैदा करती है ।

रूस के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक मनीषी प्रिंस क्रोपाटकिन ने डार्विन की विकासवादी मान्यताओं का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया है और उसकी खामियों को अपनी कृति 'म्युचुअल एड' में विस्तारपूर्वक प्रकाशित किया है । उनके अनुसार डार्विन के विकासवाद के पाँच तत्व हैं । इनमें से पहला है—'परिवर्तनों की सर्वत्र विद्यमानता' अर्थात् हर जगह परिवर्तन अव्याहत गति से जारी है । प्रत्येक वस्तु का आयु के हिसाब से परिवर्तन हो रहा है, जिसे ह्रास-वृद्धि तो कह सकते हैं, किन्तु ऐसा परिवर्तन नहीं, जिसमें समुद्र धीरे-धीरे पुच्छल तारा बने, कबूतर, भालू और घोड़ा साँप बन जाय । विकासवादी मान्यता के अनुसार अमीबा से क्रमशः स्पंज, हाइड्रा और फिर विभिन्न सीढ़ियाँ पार करता हुआ मछली, मेढक, साँप, छिपकली, चिड़िया, हाथी, बन्दर आदि से विकसित होता हुआ अन्त में मनुष्य बना । अर्थात् एककोशीय इन्द्रिय चेतना से रहित जीवनक्रम उलट-पलट करते-करते मनुष्य जैसे विकसित प्राणी का प्रादुर्भाव हुआ । यह सिद्धान्त हमें बताता है कि जीव का मूल स्वरूप ही नहीं, उसका स्तर, स्वभाव और आधार भी परिवर्तित होता आया है । विकासवाद की यह व्याख्या बुद्धिसंगत नहीं जान पड़ती । इसे यदि मान भी लिया जाय तो प्रश्न उठता है कि वर्तमान प्राणी जिस स्थिति में है, वह कब तक बनी रहेगी ? विकासवादी सिद्धान्त के अनुसार उनमें परिवर्तन होते-होते अन्ततः वे किस स्थिति में पहुँच जायेंगे और प्रगति की अनन्त प्रक्रिया प्राणियों को कौन-सा स्वरूप प्रदान करेगी ? कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति में जो कुछ भी परिवर्तन होता है, वह नियमित और मर्यादित होता है । उससे एक जाति की दूसरी जाति नहीं बन जाती और न परस्पर का सम्बन्ध ही टूटता है ।

दूसरी बात है अत्युत्पादन की । अत्युत्पादन और उत्पादन में बड़ा अंतर है । अत्युत्पादन नैमित्तिक अर्थात् मानुषीय है और उत्पादन नैसर्गिक । जब तक प्राणियों में अकाल मृत्यु नहीं होती, तब तक ईश्वरीय नियमित उत्पादन होता रहता है, पर जब हिंसा, भूख, युद्ध और प्राकृतिक आपदाओं से जीवों की अकाल मृत्यु होती है, तभी से अत्युत्पादन प्रारम्भ होता है । जब से मनुष्यों ने स्वाभाविक जीवन-निर्वाह करना छोड़ दिया है, तब से सृष्टि में वंशवृद्धि और अकारण मृत्यु का सिलसिला आरम्भ हुआ है, अर्थात् मानव ने मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-वनस्पति आदि सभी को अस्वाभाविक स्थिति में डाल दिया, जिससे प्राणि मात्र अल्पायु हो गये ।

विकासवाद का तीसरा तत्व है—'स्ट्रगल फार एग्जिस्टेन्स' अर्थात् अस्तित्व बनाये रखने के लिए सतत् संघर्ष । डार्विन जिसे प्रगति के लिए अनिवार्य बताते हैं, उसे ही उनके निकट अनुयायी सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. केसलर इस नियम को अपवाद रूप में मानते हैं । उनके अनुसार जीवन संघर्ष का नियम तो प्रकृति में दिखाई देता है, किन्तु वह अपवाद है । उनका कहना है जीवन-संघर्ष की व्याख्या ही गलत ढंग से की गयी है । पारस्परिक संघर्ष की तुलना में पारस्परिक सहयोग के द्वारा प्राणि-जगत और मानव जाति का कहीं अधिक विकास होता है । अपनी कृति 'ओरीजिन ऑफ स्पेशीज' में डार्विन ने स्वयं लिखा है कि प्राणियों का अस्तित्व एक-दूसरे के सहयोग पर निर्भर है । अपनी दूसरी पुस्तक 'द डीसेन्ट ऑफ मैन' में उन्होंने बताया है कि असंख्य प्राणि समुदायों में पृथक्-पृथक् प्राणियों का आपसी संघर्ष समाप्त हो जाता है और संघर्ष का स्थान सहयोग ले लेता है । फलस्वरूप उनका बौद्धिक एवं नैतिक विकास होता है ।

चौथा सिद्धान्त है 'नेचुरल सलेक्शन' का अर्थात् प्रकृति योग्यतम् का चुनाव कर उनकी रक्षा करती है और अन्यों की अपेक्षा करती है, फलस्वरूप वे नष्ट हो जाते हैं । किन्तु गम्भीरतापूर्वक सृष्टि में दृष्टिपात करने पर स्पष्ट हो जाता है कि योग्यों का चुनाव होता ही नहीं । अमीबा जीवों में सबसे छोटा और निर्बल है, पर है सबसे अधिक संख्या में जितने छोटे कीड़े हैं, वे सबके सब संख्या में अधिक हैं । संख्या की दृष्टि से सर्वत्र बहुलता से छाये हुए हैं । मनुष्य को बलिष्ठता में हाथी, घोड़े, शेर आदि ने परास्त कर दिया है । दीर्घजीवन में कछुए बाजी मार ले गये और बुद्धि तथा कला-कौशल में चींटी सबसे आगे है । परिश्रम, संचय, व्यवस्था और कारीगरी में मधुमक्खी का प्रथम स्थान है । ये सभी प्राणी अपने उत्तरवर्ती योग्यों से जब अधिक समर्थ सिद्ध हो रहे हैं, तब कैसे कहा जा सकता है कि योग्यों का चुनाव होता है ।

विकासवाद का पाँचवाँ सिद्धान्त है कि उक्त योग्यता का संतति में संक्रमण होता है । विचारकों के अनुसार, यह भी सही नहीं है, क्योंकि अयोग्यों की संख्या ही संसार में सबसे अधिक है । समूचे विश्व में निर्धन, निर्बल और निर्बुद्धि ही अधिक पाये जाते हैं । ज्ञानी-विद्वान के बच्चों में आप ही आप ज्ञान का संक्रमण नहीं हो जाता । मनुष्य यदि अपनी संतानों को अच्छा बनाने, सुसंस्कार डालने में सावधानी न बरते, तो उनमें अच्छे संस्कार उत्पन्न होना संभव नहीं । अतः यह कैसे कहा जा सकता है कि योग्यों के चुनाव के साथ ही योग्यता का भी संतति में संक्रमण होता है ।

प्रख्यात प्राणिविज्ञानी प्रोफेसर बिलियम वॉटसन की अध्यक्षता में पिछले दिनों आस्ट्रेलिया में मूर्धन्य वैज्ञानिकों का एक सम्मेलन विकासवाद की सत्यता को परखने के लिए आयोजित किया गया । निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए विज्ञानवेत्ताओं ने कहा है डार्विन का विकासवाद तथ्यों से परे और विज्ञान के विरुद्ध है । वस्तुतः मनुष्य जैसा सृष्टि के आरम्भिक काल में था, वैसा ही अब है । बन्दर और मनुष्य के बीच की आकृति का कुछ पता नहीं । अभी तक प्राप्त अस्थि अवशेषों से यह स्पष्ट हो गया है कि मनुष्य की रचना अपने पूर्वजों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसी ही है । प्राणिवेत्ता सिडनी कास्सेट का तो यहाँ तक कहना है कि उन्नति करने के स्थान पर मनुष्य अब अवनति की ओर जा रहा है । उसकी आरम्भिक दशा उन्नत थी और वह देवत्व के अधिक निकट था ।

इस तथ्य की पुष्टि डॉ. वैलेस, प्रोफेसर सोलेस, डॉ कीथशिम्पर, हेकल एवं डॉ. पर्थ जैसे सुविख्यात विज्ञानियों ने भी की है । इनका मत है कि ईश्वर ने हर प्राणी को अपनी स्वतंत्र सत्ता सृष्टि के आरम्भ में ही दी है । अमीबा अभी भी अमीबा है, और बंदर अभी भी बंदर है जो परमशक्ति एक कोशिकीय अमीबा की रचना कर सकती है, वही शक्ति विविध प्रजाति के पशु-पक्षियों और मनुष्यों को अलग-अलग क्यों नहीं सृजित कर सकती ? मनु की संतान मानव ने अपनी लम्बी यात्रा में कई उतार-चढ़ाव देखे होंगे, किन्तु वह और किसी रूप में इस धरती पर आया और आकृति में विकसित होता गया, यह असम्भव है । मनुष्य की मूलसत्ता जिसे ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति कहा जाता है, आरम्भ से ही अपनी मौलिक विशेषताओं को साथ लेकर जन्मी है और अपनी चेतना का क्रमशः विकास करते हुए पूर्णता की ओर अग्रसर है ।

'द ह्यूमन साइकल' नामक अपनी कृति में महर्षि अरविन्द ने कहा है कि अपने विकासक्रम में मनुष्य देवत्व की ओर बढ़ रहा है । वह जीवचेतना से ऊपर उठकर अर्द्धदेवता बन चुका है । बौद्धिक विकास के बाद अब आत्मिक प्रगति का युग आ रहा है । मानव जाति समान हितों के बाहरी कारणों को छोड़कर आध्यात्मिक विकास के फलस्वरूप आन्तरिक एकता का अनुभव करने लगी है । आर्थिक और बौद्धिक दृष्टिकोण के स्थान पर आध्यात्मिक भावना बढ़ती जा रही है । देवत्व ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है और वह उसे प्राप्त होकर रहेगा । क्रमिक विकास का यही सही स्वरूप है ।

मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं

जब किसी के मन में यह विचार आता है कि मनुष्य-जीवन नश्वर है, निरर्थक है, यह शरीर हाड़माँस, रुधिर और चर्म का बना हुआ है, मल-मूत्र आदि के रूप में इसमें नरक भरा हुआ है, तब निश्चय जानिये उसके मन पर अज्ञान का, मोह का घना अन्धकार छाया हुआ है । इस प्रकार का निकृष्ट विचार अवास्तविक है, अनाध्यात्मिक है ।

वास्तविकता यह है कि मनुष्य का जीवन एक सार्थक प्रक्रिया है । उसका शरीर एक पवित्र मन्दिर है । यह मानव-तन ही तो वह साधन, वह उपादान है, जिसकी सहायता से ईश्वर को पाया जाता है । इसे नरक का निवास कहना, इसका अपमान करना है ।

भूल कर भी मन में यह विचार मत आने दीजिये कि मनुष्य हाड़-माँस का एक पुतला है । पाप से उत्पन्न हुआ है और पाप में ही प्रवृत्त रहता है । यह विचार स्वयं ही एक बड़ा पाप है । अपने प्रति निकृष्ट दृष्टिकोण रखने वाला कभी भी उन्नतशील नहीं हो सकता । उन्नति का आधार है अपने प्रति ऊँचा और पवित्र विचार रखना । मनुष्य की वास्तविकता यह है कि वह अखण्ड, अगणित चेतन अणु-परमाणुओं का सजीव तेज-पुंज है । असीम और अक्षय शक्तियों से भरा हुआ है । उसके आन्तरिक कोशों और चक्रों में सारी सिद्धियाँ सोयी हुई हैं । वह ईश्वर का पुत्र और उसका प्रतिनिधि है । संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है—मनुष्य के विषय में महाभारत का यह वाक्य अक्षरशः सत्य और यथार्थ है—"यह रहस्य मैं तुम को बतलाता हूँ कि मनुष्य से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है ।"

बुद्धि और विवेक को मनुष्य में अवस्थित परमात्मा की पावन प्रेरणा ही माना गया है और उसकी चेतन आत्मा तो परमात्मा का ही अंश है । इस स्थिति में मनुष्य जीवन को नश्वर, निरर्थक कहना और शरीर को एक पवित्र मन्दिर न मानकर नरक का निवास कहना मोह के सिवाय और क्या कहा जा सकता है । अपने दिव्य रूप में विश्वास करिये और मानिये कि मनुष्य संसार में पूर्णता का प्रतीक है । वह संसार में सर्वशक्तिमान का मानवीय रूप है । उसकी आत्मा, मन और बुद्धि में विलक्षण चमत्कार छिपे हैं । जिनको सजग और विकसित कर मनुष्य ऐसे-ऐसे काम कर दिखाता है, जिन्हें देखकर विस्मित रह जाना पड़ता है । यह मानव शरीर हाड़-माँस का पुतला नहीं, दैवी भावनाओं, दैवी सम्पदाओं और देवत्व का आवास है । इसके भीतर उल्लास और आनन्द के रूप में ईश्वर की अनिर्वचनीय ज्योति जगमगाती रहती है । इसके प्रति निकृष्ट और तुच्छ विचार रखना अपराध है । इससे बचना ही चाहिए ।

रोग, दोष और पाप आदि मानव जीवन की सहज प्रवृत्तियाँ नहीं हैं । उसका स्वभाव तो शुद्ध, बुद्ध और आनन्दमय है । हीनताओं का आरोपण उस पर तब आ जाता है, जब मनुष्य मानवीय नियमों का उल्लंघन करता है और ऐसे कार्यों में प्रवृत्त हो चलता है, जो कदापि उसके योग्य नहीं होते । ईश्वर द्वारा मनुष्य के निर्माण का एक विशेष और विशिष्ट उद्देश्य है । वह यह कि मनुष्य उसका प्रतिनिधि बनकर संसार में ईश्वरीय नियमों, भावनाओं, ज्ञान और गरिमाओं का सम्पादन करे । सत्य, न्याय, प्रेम और त्याग का आदर्श उपस्थित करे । स्वयं ऊँचा उठे और दूसरों को ऊँचा उठने में सहायक बने । छल, कपट, झूठ, निष्ठुरता, पाखण्ड, स्वार्थ, शोषण आदि विरोधी प्रवृत्तियों का विरोध करे ।

यह संसार अपने आदिम स्वरूप में जड़ता की, क्रीड़ास्थली के सिवाय और कुछ नहीं था । न कहीं ज्ञान था और न सौन्दर्य । ईश्वर को अपनी रचना की यह विडम्बना अच्छी न लगी । उसने अपने निर्माणों के बीच से एक प्राणी चुना और उसे शक्ति से ओत-प्रोत कर संसार के परिमार्जन और उसकी व्यवस्था के लिये प्रेरणा दी । उसे बुद्धि, विवेक और दिव्य चेतना देकर जाग्रत किया । उस प्राणी ने अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

निर्माता और स्वामी ईश्वर का उद्देश्य समझा और संसार को जड़ता की ओर से प्रकाश एवं विकास की ओर बढ़ाया । पाशविक वृत्तियों पर विजय प्राप्त कर सात्विक प्रवृत्तियों का प्रवर्तन किया । ईश्वरीय कृपा का दुरुपयोग करने वाले प्राणियों का दमन कर उन्हें एक अनुशासन में रहने पर विवश किया । स्थायी और कल्याणकारी शांति के लिये धर्म की ध्वजा ऊँची की और इस प्रकार संसार को आनन्द, उत्साह और कल्याण का आवास बनाया । ईश्वर द्वारा इस मंगल कार्य के लिये निर्वाचित प्राणी और कोई नहीं—मनुष्य ही था और आज भी वह उसी ईश्वरीय उद्देश्य को आगे बढ़ाने में लगा हुआ है ।

किन्तु ये मनुष्य वे मनुष्य नहीं हैं, जो मानव-शरीर और मानव-जीवन के प्रति निकृष्ट और निम्नकोटि के विचार रखते हैं । पुरुषार्थ के धनी ये मनुष्य वे मनुष्य ही रहे हैं, जिन्होंने अपने को ईश्वर का पुत्र माना और उस गरिमा को अपने भीतर अनुभव किया । अपनी शक्तियों और उसकी सिद्धियों को विवेक द्वारा समझने का प्रयत्न किया । उन्होंने अन्त:करण में ओत-प्रोत आत्मा से सम्बन्ध स्थापित किया । उसके सन्देश आदेशों पर अमल किया । साधना और संयम द्वारा अपने श्रेष्ठ कर्त्तव्य के योग्य क्षमता उत्पादित की । सद्गुण बढ़ाये और उनको अपने व्यावहारिक जीवन में मूर्तिमान् किया ।

ईश्वर ने मनुष्य को और मनुष्य ने मनुष्य समाज को जन्म दिया । मनुष्यों की संख्या बढ़ी और उसमें निर्बल, निकृष्ट और अयोग्य लोग भी आने लगे । अपनी अयोग्यता की प्रेरणा से उन्होंने संसार में अशांति और असुख का वातावरण पैदा करना प्रारम्भ कर दिया । जिससे सुन्दर संसार असुन्दरता की ओर लौटने लगा । प्रकृति की ओर से उसके अवरोध की प्रेरणा आने लगी । पात्रता के अनुसार मनुष्यों में वह साकार एवं सक्रिय होने लगी । अयोग्य तथा अवांछित के विरुद्ध योग्य और वांछनीय का संघर्ष प्रारम्भ हो गया । सत्य की जीत हुई और संसार पुन: अपने सुन्दर स्वरूप में आ गया । यह प्रक्रिया संसार की एक प्रकृति परम्परा है । जो युगों से चलती आ रही है, चल रही है और चलती रहेगी । अयोग्य और असुन्दर पर योग्य और सुन्दर की सदा विजय होती रहेगी ।

संसार में अयोग्य और असुन्दर के लिये कोई स्थान नहीं है । यह सौन्दर्य, सुयोग्यता और शिवत्व की मातृभूमि है । किसी प्रकार की असुन्दरताएँ यहाँ ठहरने नहीं दी जा सकतीं । उससे ईश्वरीय उद्देश्य और आदेश में बाधा पड़ती है । जो शिव है वही सत्य है और जो सत्य है वही सुन्दर है । इसकी स्थापना और स्थिरता में प्रकृति स्वयं भी सहायक होती है । प्रकृति विज्ञान के अप्रतिम विद्वान और उसकी प्रक्रियाओं के दृष्टा डॉक्टर ई. बी. जेम्स ने प्रकृति की सहायता का वर्णन करते हुए लिखा है—"योग्यतम का चुनाव ही प्रकृति का नियम है । अनुकूलता के प्रति प्रकृति जहाँ दयालु, करुणामयी माता और धात्री है, वहाँ प्रतिकूलताओं के प्रति वह बड़ी क्रूर और अकारुणिका है । अपनी इस सृष्टि में वह अयोग्यताओं को एक क्षण को भी सहन नहीं करती । संसार में झाड़-झंखाड़ हटाने के लिये किसी न किसी रूप में उसकी बुहारी चलती ही रहती है ।"

विश्व-विधात्री प्रकृति प्रतिक्षण अच्छे-बुरे, बलवान्-निर्बल अयोग्य और योग्य को देखती, पहचानती रहती है । वह अपने प्रकोपों अथवा प्रेरित संघर्षों के द्वारा शीघ्र ही निर्बलों और अयोग्यों को अपने आँगन से हटा देती है । उसके नियमों के पालन में परिपुष्ट बने जीव की उसकी इस सृष्टि में निश्चिन्ततापूर्वक रह सकते हैं । निर्बल और असंयमी उसके एक झटके में ही जीवन की परिधि पार कर जाते हैं । योग्य और अयोग्य की निर्वाचिका यह प्रकृति एक योग्य के लिये असंख्यों अयोग्यों को नष्ट कर देने में संकोच नहीं करती । ऐसी न्यायशीला के राज्य में अयोग्यताओं के लिये जरा भी स्थान नहीं है ।"

संसार आनन्द और अमर चेतनाओं का आधार है । यहाँ दु:ख, शोक और अशांति आदि तापकारी तत्वों को कोई स्थान नहीं है । तथापि जो इन संतापों में जलते दिखलाई देते हैं, वे स्वयं अपने विचारों और कार्यों के कारण ही उस स्थिति के भागी बने हुए हैं । आनन्द उन मनुष्यों का अधिकार है, जो अपने को यथार्थ रूप में मनुष्य मानते, उसी के अनुसार आचरण करते हैं । सच्चे मनुष्य ही अपनी शक्तियों को उद्बुद्ध करते और उस ईश्वरीय उद्देश्य को पूरा करने का प्रयत्न करते हैं, जिसके लिये उनका सृजन किया गया है । विपरीतगामियों के भाग्य में सुख-शांति का अंश नहीं होता । स्वयं सुन्दर बनने और संसार को सुन्दर बनाने में हाथ बटाने वाले महाभाग ही वे मानव होते हैं, जिनको परमात्मा का प्रतिनिधि कहा जाता है । हम सब अपने स्वरूप को पहचानें, मोहमयी निद्रा से जागें और उस अमर प्रकाश की ओर बढ़ें जो ब्रह्माण्ड मण्डल में भरा हुआ हमारी प्रतीक्षा कर रहा है । वेद भगवान् का भी तो यही आदेश है—

इच्छन्ति देवा: सुन्वन्तं ।
न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्रा: ।

देवता सत्कर्म करने वाले को ही चाहते हैं । वे सोये पड़े लोगों को प्यार नहीं करते । इसलिये प्रमाद त्याग कर जाग उठो ।

देवता सत्कर्म करने वालों को ही चाहते हैं—इसका स्पष्ट आशय यही है कि जो मानवोचित कार्य करता है, ईश्वरीय उद्देश्य के लिये जीवन-यापन करता है, देवताओं की कृपा उसी पर होती है । देवता सोते हुओं को प्यार नहीं करते अर्थात् उनसे घृणा करते हैं । देवताओं की घृणा का अर्थ है जीवन की सारी दिव्यताओं से वंचित हो जाना । संसार देवत्व से वंचित व्यक्तियों के लिये नहीं है । ऐसे असुर प्रवृत्ति वाले लोग किसी न किसी मिष से इस धरती की गोद से शीघ्र ही उठा दिये जाते हैं । उस समय तक

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी जब तक उन्हें प्रकृति द्वारा बुहार नहीं दिया जाता, उनके लिये शोक-संतापों में जलने के सिवाय और कोई अधिकार नहीं रहता । प्रमाद, आलस्य और अज्ञान त्याग कर जागरण का वरण करो, प्रकाश और पावनता की ओर बढ़ो, जिससे कि मनुष्यता की सिद्धि हो और आत्मा का कल्याण ।

किन्तु यह दिव्य जागरण हो किस प्रकार ? इसका सरल-सा उपाय यही है कि अपने वास्तविक स्वरूप में विश्वास किया जाय । अपने को उस परमपिता परमात्मा का पुत्र और प्रतिनिधि अनुभव किया जाय । अपने प्रति हीन, क्षुद्रता और निकृष्टता की सारी भावनाएँ निकाल फेंकी जायें । ऐसा करते ही आत्मा में सन्निहित प्रकाश का निर्झर फूट उठेगा । सारा जीवन दिव्य-चेतना से भर कर जाग उठेगा । अपनी विशालता, व्यापकता और सुन्दरता का बोध होगा । चारों ओर आनन्द और अमरता का आभास होने लगेगा । जीवत्व से ईश्वरत्व की ओर प्रगति होने लगेगी ।

मनुष्य जब तक अपने को मात्र हाड़-माँस का पुतला समझता और मानव-जीवन को पाप द्वारा उत्पन्न और पाप में प्रवृत्त मानता रहता है । वह अपने ही वैचारिक नरक में पड़ा रहता है । विश्वास के अनुसार ही उसे अन्तःप्रेरणा प्राप्त होती है और वह अकर्त्तव्य कार्यों से चाहता हुआ भी नहीं बच पाता । इसके विपरीत जब उसे अपने ईश्वरीय वंश परम्परा का बोध हो जाता है उसका जीवन, उसका व्यवहार, उसका आचरण और उसकी प्रवृत्तियाँ स्वयं ही उसके अनुसार परिचालित हो उठती हैं । अखण्ड ब्राह्माण्ड में उसे अपना ही विस्तार, अपनी ही व्यापकता और अपनी ही चेतना अनुभासित होने लगती है । इस उच्च स्थिति में अवस्थित मनुष्य कोई भी ऐसा काम करने के लिए प्रेरित नहीं हो सकता, जो ईश्वरीय उद्देश्य के प्रतिकूल अथवा उसका प्रतिबाधक हो । वह जो कुछ करेगा, सत्य, शिव और सुन्दर ही करेगा, जो कुछ सोचेगा कल्याणकारी ही सोचेगा । अस्तु अपने को यथार्थ रूप में देखिये और उसी स्वरूप के अनुसार आचरण कर ईश्वरीय उद्देश्य में सहायक बनकर ईश्वरता के उत्तराधिकारी बनिये । यह जीवन और यह मान्यता इसलिये ही मिली है । इसका और कोई उद्देश्य नहीं है ।

मानवोत्कर्ष का मूलमंत्र-जिज्ञासा

न्यूटन, सेब के एक बाग में बैठे थे । इतने में हवा के झोंके के साथ पेड़ से एक सेब टूटकर नीचे गिरा । मन में यह बात उठी कि कोई वस्तु नीचे ही क्यों गिरती है । उत्पन्न जिज्ञासा ने नयी दिशा में सोचने को बाध्य किया । फलस्वरूप इस तथ्य का उद्घाटन हुआ कि पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है । 'जेम्सवाट' खौलते हुए पानी को देख रहे थे । अचानक एक विचार उनके मस्तिष्क में कौंध गया । पानी से निकलने वाली वाष्प ढक्कन को ऊपर ढकेल रही थी । वाष्प में इतनी शक्ति हो सकती है तो क्या इसका उपयोग अन्य कार्यों के लिए नहीं किया जा सकता । इन विचारों ने 'वाट' को शोध के लिए बाध्य किया । शक्तिशाली भाव का इन्जन जेम्सवाट के जिज्ञासा भरे प्रयत्नों की ही परिणति है । जॉन गिटनबर्ग हीरा खरादने और काटने का व्यवसाय करता था । एक दिन उसने ठप्पों से छपे खेलने वाले ताश के पत्ते देखे जो देखने में भद्दे लगते थे । गिटनबर्ग ने सोचा कि क्या उनकी छपाई सुन्दर एवं अच्छी नहीं हो सकती ? हाथ से बनाये गये लकड़ी के ठप्पों से उसने छपाई का कार्य आरम्भ किया । उसने सन्त क्रिस्टोफट का चित्र लकड़ी पर खोद कर ठप्पा तैयार किया । उससे तैयार होने वाला चित्र इतना आकर्षक एवं सजीव लगता था जिसे देखकर स्थानीय गिर्जाघर के पादरी ने सन्त जॉन के इतिहास पर हाथ से लिखी-पुस्तकें उसे भेंट कीं । गिटनबर्ग ने सन्त जॉन की कथा ६० पृष्ठों में छाप कर तैयार की । जिसमें उसे अत्यधिक श्रम करना पड़ा । गिटनबर्ग द्वारा डाली गयी छापेखाने की नींव ने सम्पूर्ण विश्व में छापने की कला का विकास किया । इस आविष्कार को एक शब्द में गिटनबर्ग की जिज्ञासा का ही परिणाम कहा जा सकता है । छापने के आधुनिकतम यन्त्रों के निर्माण में मौलिक प्रेरणा गिटनबर्ग की ही है ।

'लुई डेगुरे' इंग्लैण्ड का एक चित्रकार था । एक दिन वह शीशे के समक्ष खड़ा होकर अपना चेहरा देख रहा था । एकाएक उसके मस्तिष्क में विचार आया कि क्या बिना चित्र बनाये वस्तुओं का चित्र खींचा जा सकता है ? चित्रकारी छोड़कर वह इस दिशा में खोज के लिए जुट पड़ा, आरम्भिक अनेक कठिनाइयों एवं असफलताओं के पश्चात् वह फोटो चित्रण तकनीक को विकसित करने में सफल हो गया । फोटोग्राफी की नवीनतम विकसित प्रणालियों में भी मौलिक सूझबूझ डेगुरे की ही है ।

इंग्लैण्ड का विलियम फ्रीजग्रीने एक फोटोग्राफर था अपनी स्थिति पर उसे सन्तोष न था । नये आविष्कारों में उसे अभिरुचि थी । आन्तरिक जिज्ञासा ने उसे चल-चित्र की कल्पना दी । चिन्तन और प्रयास कल्पना को साकार रूप देने में लग गये । जिज्ञासा कल्पना तक सीमित नहीं रही वरन् क्रिया में परिणित हुई । चलचित्र का विकास हुआ । 'फ्रीजग्रीने' को चल-चित्र का आविष्कारक माना जाता है । कालान्तर में चल-चित्र में आश्चर्यजनक विकास हुआ । अब उसे विज्ञान के एक विलक्षण चमत्कार के रूप में देखा जाता है ।

'अलेक्जेन्डर ग्राह्म वेल' पुस्तक के अवलोकन में खोया था । पुस्तक सांकेतिक प्रणाली द्वारा समाचार भेजे जाने पर आधारित थी । ग्राह्म के मन में ऐसी संचार व्यवस्था के निर्माण की प्रेरणा उठी जिससे एक स्थान पर बैठा व्यक्ति दूरवर्ती व्यक्तियों से उसी प्रकार बात कर सके जैसे दो व्यक्ति आमने-सामने करते हैं । ग्राह्म का चिन्तन एवं क्रिया-कलाप इसी खोजबीन में लगा रहा । अन्ततः उसे सफलता मिली । स्काटलैण्ड के बोस्टन नगर में पहली टेलीफोन संचार व्यवस्था बनाने में ग्राह्मबेल सफल हुआ । आज सम्पूर्ण विश्व में मनुष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को एक-दूसरे के निकट लाने में—सम्पर्क जोड़ने में यह व्यवस्था कितनी समर्थ सिद्ध हुई है, इस तथ्य से हर कोई भलीभाँति परिचित है ।'

'हेनरी ग्रे' ने अपने शरीर पर ध्यान दिया तो उसे अपना हर अवयव अपने में विशिष्ट जान पड़ा । जिज्ञासा विचारों तक सीमित नहीं रही । सत्य की जानकारी प्राप्त करने—वास्तविकता को जानने के लिए 'ग्रे' ने अनेक मृत मानव शरीरों को चीर डाला । प्रत्येक अंग-प्रत्यंग का बारीकी से अध्ययन किया । मात्र ३२ वर्ष तक जीवित रहने वाले उस युवक ने 'ह्यूमन एनाटमी' के रूप में चिकित्सा जगत को जो दिया, उसे भुलाया नहीं जा सकता ।

भौतिक आविष्कारों के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाय तो एक ही तथ्य हाथ लगता है कि मानवी जिज्ञासा ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का आधार रही है । सृष्टि रहस्यमय है और उसके प्रत्येक घटक अपने में अनेक विचित्रताएँ छिपाये हुए हैं । कौतूहल मानवी स्वभाव है और विकास का आधार भी । रहस्यों का उद्घाटन एवं महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ इसी के बलबूते पर सम्भव हो सकी हैं । पाषाण युग के आदिम मानव ने जिज्ञासा भरे नेत्रों से प्रकृति को देखा और सतत् प्रयत्नों द्वारा नये-नये आविष्कारों को जन्म दिया । वह प्रगति के सोपानों पर चढ़ते हुए पिछड़ेपन को कुचलते हुए सभ्यता की वर्तमान स्थिति तक जा पहुँचा है । जानने-समझने और कुछ अर्जित करने की जिज्ञासा न रही होती तो मनुष्य पाषाण युग की नर-वानर स्थिति में ही पड़ा रहता । अकर्मण्य बना पशु तुल्य ही जीवन व्यतीत करता । प्रकृति भण्डार से असीम सम्पदा न तो प्राप्त कर सकना सम्भव हो पाता, न ही वैज्ञानिक आविष्कारों का सूत्रपात ।

कौतूहल पशुओं में भी होता है, पर वह जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं—आहार, निद्रा और मैथुन जैसे प्रयोजनों तक ही सीमित रहता है । आविष्कारक बुद्धि उनमें नहीं होती । मनुष्य को इस परिधि में सीमित रहना नहीं रुचता । फलस्वरूप वह प्रकृति के रहस्यात्मक जगत में नित नयी छलांग लगाने का प्रयास करता रहता है । उस उत्साह, लगन एवं जिज्ञासा की ही परिणति है कि वह पृथ्वी की सीमाओं को लाँघकर अन्तरिक्ष क्षेत्र में जा पहुँचा । उद्देश्य सदा उपलब्धियों को अर्जित करना नहीं रहा वरन् जिज्ञासा की सन्तुष्टि रही है । चन्द्रमा के धरातल पर पहुँचकर धूल एवं चट्टान के टुकड़े प्राप्त कर लेने से कोई विशिष्ट प्रयोजन नहीं हल हुआ । मात्र अन्तःजिज्ञासा को तृप्ति मिली ।

जिज्ञासा के रूप में परमात्मा का दिव्य अनुदान प्रत्येक मनुष्य को मिला हुआ है । बच्चा पैदा होते ही प्रत्येक वस्तु को जिज्ञासा भरे नेत्रों से देखता है । अभिभावकों के समक्ष क्या एवं क्यों जैसे प्रश्नों की झड़ी लगा देता है । यही प्रवृत्ति उसके भावी विकास का आधार बनती है । तर्क, बुद्धि के अभाव में बच्चों को मूढ़, मूर्ख समझा जाता है । वैज्ञानिकों का चिन्तन नये अनुसन्धानों में निरत रहता है । फलस्वरूप वे अनेकानेक उपलब्धियों से समाज को लाभान्वित करते हैं । मानवी जिज्ञासा की यह भौतिक परिणति हुई, जो एक सीमा तक आवश्यक है, उपयोगी भी । पर जीवनपर्यन्त बनी रहने वाली जिज्ञासा इस बात की परिचायक है कि वह बहिर्जगत की उधेड़-बुन द्वारा मात्र सन्तुष्ट नहीं हो सकती । वह तो सृष्टि के मूलभूत सत्य के साक्षात्कार द्वारा ही शान्त होगी ।

जिन्होंने भी शाश्वत सत्य की खोज में अन्तःजिज्ञासा को मोड़ा, अपने जीवन को सार्थक बना लिया । शान्ति एवं सन्तोष का—प्रसन्नता एवं प्रफुल्लता जैसी उपलब्धियों का लाभ उठाया । उनके जीवन में असन्तोष नहीं रहा । अभावों में भी वे सन्तुष्ट रहे तथा समाज को प्रेरणा एवं प्रकाश देते रहे । वह चाहें बुद्ध हों अथवा ईसा, विवेकानन्द हों या दयानन्द, गान्धी हों अथवा सुकरात—सबने ही उस परम सत्ता के—शाश्वत सत्य के दर्शन को लक्ष्य बनाया । उनकी जिज्ञासा वस्तुओं तक सीमित नहीं रही फलस्वरूप वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल रहे स्वयं शान्ति एवं सन्तुष्टि का आनन्द लिया और दूसरों को भी प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया ।

ईश्वर प्रदत्त जिज्ञासा रूपी दिव्य अनुदान मात्र भौतिक कौतूहलों में उलझा नहीं रहना चाहिए, वरन् जीवन लक्ष्य को समझने एवं प्राप्त करने में नियोजित होना चाहिए । अन्तः जिज्ञासा का समाधान तभी सम्भव है ।

महानता की ओर बढ़ने का साधन—सतोगुण

धर्मशास्त्रों में सृष्टि के विकास का जो विवरण दिया है, उसमें बतलाया गया है कि संसार में सर्वप्रथम खनिज द्रव्य, पत्थर आदि का प्रादुर्भाव हुआ, उसके बाद वनस्पति, पेड़-पौधे आदि उत्पन्न हुए, फिर पशु-वर्ग और अंत में मनुष्यों का आविर्भाव हुआ । विचारकों का मत है कि अभी मनुष्य में मनुष्यत्व के गुणों का विकास थोड़ी ही मात्रा में हुआ है, जैसे-जैसे समय बीतता जायगा उसकी मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ बढ़ती जायेंगी । इसका परिणाम यह होगा कि कुछ हजार वर्ष बाद पृथ्वी पर जो मनुष्य पाये जायेंगे वे आजकल के मुकाबले में देव कहलाने योग्य होंगे । संसार के विकास क्रम में वैसे सैकड़ों सीढ़ियाँ हैं, पर उसके मुख्य विभाग पाँच ही समझने चाहिए ।

सृष्टि का एक नियम यह भी है कि कोई पदार्थ या प्राणी किसी भी श्रेणी अथवा अवस्था में क्यों न दिखलाई पड़े, पर उसमें अन्य सब श्रेणियों के गुण और विशेषताएँ बीज रूप में निहित रहती हैं । यही कारण कि सच्चे आत्मदर्शी व्यक्तियों की दृष्टि में एक छोटे-छोटे कीड़े में भी परमात्मा का अस्तित्व स्पष्ट दिखलायी पड़ता है और वे नीच से नीच चंडाल को पवित्र से पवित्र ब्राह्मण के तुल्य मानते हैं । यही कारण है वेदान्त सिद्धान्त के अनुसार इस संसार में सिवाय ब्रह्म के और कोई तत्व नहीं है । इसका एक-एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अणु परमात्मा का ही अंश है और अन्त में उसी में जाकर लय होगा । बीच की अवस्था में जितना भी अन्तर दिखलायी पड़ता है, वह प्रकृति का विकार है ।

ऊपर जीवतत्व के विकास के सम्बन्ध में जिन पाँच श्रेणियों का जिक्र किया गया है उनके सम्बन्ध में भी यही नियम लागू है, अर्थात् प्रत्येक श्रेणी में अन्य श्रेणियों के भी गुण रहते हैं । इतना ही नहीं प्रत्येक श्रेणी में कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनमें अपनी से भिन्न श्रेणी की विशेषताएँ ही अधिक दिखलायी पड़ती हैं । यह बात मनुष्य पर विशेष लागू होती है क्योंकि इसमें चेतनाशक्ति का विकास ऐसे ढंग से हुआ है कि वह अपने में इच्छानुसार अनेक प्रकार के भले अथवा बुरे परिवर्तन कर सकता है । इसी तथ्य को दृष्टिगोचर रखकर एक विद्वान ने मनुष्य को पाँच श्रेणियों में बाँट कर उनकी पहचान और विशेषताओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । सारांश रूप में उन पाँचों का परिचय इस प्रकार है—

(१) प्रथम श्रेणी में वे बहुत अल्प विकास वाले व्यक्ति आते हैं, जिनका दायरा केवल अपने स्थूल शरीर तक ही सीमित रहता है । इन लोगों को केवल अपने खाने, पीने, सोने आदि का ख्याल रहता है । अपने सिवाय वे संसार में किसी की आवश्यकता को नहीं समझते, चाहे वह उनका निजी से निजी सम्बन्धी ही क्यों न हो । इन पेट-पालू लोगों को खनिज श्रेणी में समझना चाहिए । संसार के अनेक जंगली, वज्रमूर्ख, पागल और परम स्वार्थी व्यक्ति तो इस श्रेणी में आते ही हैं, पर हम बड़े-बड़े धनकुबेरों, विद्वान, पंडितों और साधु-महात्माओं को भी इस श्रेणी में रख सकते हैं यदि वे संसार में दूसरों के भले का ख्याल न करके केवल अपने ही स्वार्थ की पूर्ति में लगे रहते हैं । ऐसे लोग अपने शरीर में अत्यन्त आसक्ति रखते हैं और शरीर के सिवाय उनकी दृष्टि में मनुष्यता, धर्म, आत्मा, परमात्मा का तनिक भी स्थान नहीं होता । इसके परिणामस्वरूप वे संसार के अन्य सब लोगों को विरक्तता और तिरस्कार के भाव से देखते हैं और दूसरे भी उनके प्रति ऐसे ही भाव रखते हैं ।

(२) दूसरी तरह के मनुष्य वे होते हैं जिनके विचारों का दायरा पहली श्रेणी वालों से तनिक बड़ा होता है और वे अपने समस्त कार्यों का उद्देश्य अपना और परिवार का पालन-पोषण करना समझते हैं । ये लोग वनस्पति-वर्ग के कहे जा सकते हैं । जिस प्रकार पेड़ अपनी शाखाओं और पत्रों को पोषण पहुँचाता है, उसी प्रकार अपने बाल-बच्चों का ध्यान रखते हैं, पर अन्य किसी से कोई सरोकार नहीं रखते । अगर अपने परिवार के लाभ के लिये दूसरों को हानि भी पहुँचानी पड़े तो उसमें भी उनको कोई संकोच नहीं होता । जहाँ तक हमारा अनुमान है प्रथम श्रेणी के लोग पाषाणवत् तो संसार में बहुत अधिक नहीं पाये जाते, पर इस दूसरी श्रेणी वालों की संख्या संभवतः सबसे अधिक है । खासकर हमारे देश में ऐसे लोगों की बहुतायत दिखलायी पड़ती है जो अपने 'बाल-बच्चों' के सिवाय और किसी के लिये चिन्ता करना बेकार समझते हैं । ऐसे लोग अपने परिवार के धन, मान, प्रतिष्ठा, उच्चता, कुलीनता आदि का बहुत घमण्ड रखते हैं और अपने संकुचित विचारों के कारण समाज के लिये सर्वथा निरुपयोगी सिद्ध होते हैं ।

(३) इससे आगे पशु-वर्ग के लोगों का नम्बर आता है जिस प्रकार बन्दर, हाथी, हिरण, चींटियाँ, मधुमक्खियाँ समूह बनाकर रहते हैं और आवश्यकता पड़ने पर समूह की रक्षा के लिये मरने-कटने को तैयार हो जाते हैं, उसी प्रकार इस तीसरे श्रेणी के व्यक्तियों का विकास इतना हो जाता है कि अपनी जाति या समाज का ख्याल रखते हैं । पर दूसरी जाति या समाज वालों को वे प्रायः विरोधी की दृष्टि से देखते हैं और उनकी निन्दा, बुराई का एक भी अवसर नहीं जाने देते । इन लोगों को पेट-पालू और कुटुम्ब-पालन लोगों से अधिक विकास वाला समझा जा सकता है, पर जब हमारे साथ में और भी अनेक जातियों के लोग रहते हैं और जिनसे हमारा बराबर काम पड़ता है । वहाँ केवल अपनी जाति के हित और स्वार्थ पर ही दृष्टि रखना प्रशंसनीय बात नहीं समझी जा सकती ।

(४) चौथी श्रेणी में वे लोग आते हैं जिनको हम मनुष्य कह सकते हैं । वे समझते हैं कि हमने जिस स्थान में जन्म लिया है और जहाँ के अन्नजल से हम जीवन धारण कर रहे हैं वहाँ के सभी निवासी हमारे भाई या साथी हैं और उनका हानि-लाभ हमारा ही हानि-लाभ है । वे लोग अपना क्षेत्र समस्त देश को समझते हैं, पर अन्य देश वाले उनकी दृष्टि में 'विदेशी' होते हैं । उनके साथ धोखे, चालाकी या शत्रुता का व्यवहार करना वे बुरा नहीं समझते और आवश्यकता हो तो युद्ध करके उनका नाश कर डालना भी अपना कर्तव्य मानते हैं । फिर भी जहाँ पहली तीन श्रेणी वाले केवल अपने को या थोड़े से लोगों को ही अपना मानते हैं, ये करोड़ों देशवासियों को अपना सम्बन्धी या साथी मानते हैं और उनके हित का ख्याल रखते हैं । इसी श्रेणी के व्यक्ति राष्ट्रों के नेता, संचालक और रक्षक माने जाते हैं । वर्तमान समय में अधिकांश लोगों की दृष्टि में मनुष्य का सबसे ऊँचा सम्माननीय दर्जा यही है ।

(५) पाँचवीं श्रेणी वह है जिसका विकास अभी हुआ नहीं है और जो देश काल की सीमा को त्याग कर मनुष्य मात्र को अपना समझते हैं और सबके हित का समान रूप से ध्यान रखते हैं । वैसे आदर्श के रूप में पहले अनेक भारतीय ऋषि मुनि इस श्रेणी के हो चुके हैं और अब भी टाल्सटाय, गाँधी, रस्किन आदि महानुभाव ऐसे ही विश्व हितैषी हुये हैं । पर इन लोगों की संख्या बहुत ही कम है और सर्वसाधारण उनकी इस विशेषता को भली प्रकार अनुभव भी नहीं करता । इसी लिये हमारा यह कहना कि इस श्रेणी का विकास अभी भविष्य में होना है जब इन विचारों के मनुष्य पर्याप्त संख्या में पायेंगे और उनको आश्चर्य की निगाह से न देखकर वास्तविक मनुष्य ही समझा जायगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह विचार करना ठीक नहीं कि इनमें किसी भी श्रेणी के व्यक्ति में शत-प्रतिशत एक ही प्रकार का विचार पाया जाता है और अन्य सब गुणों से वह सर्वथा होता रहता है । जैसा हम कह चुके हैं यह बात सृष्टि-नियम के विरुद्ध है । इस सम्बन्ध में एक विचारक का कथन है कि "खनिज वर्ग के लोगों में तमोगुण (जड़ता) की अधिकता रहती है और सतोगुण बहुत ही कम अंश में होता है । ऊपर की श्रेणियों में ज्यों-ज्यों आत्म-विकास बढ़ता जाता है उसी के अनुसार उत्तरोत्तर सतोगुण बढ़ता है और तमोगुण कम होता जाता है । परन्तु किसी भी गुण का सर्वथा अभाव किसी भी दशा में किसी व्यक्ति में नहीं होता । फलतः निम्न श्रेणी के लोगों में भी तारतम्य से कुछ न कुछ भाव ऊपर की श्रेणियों के अवश्य रहते हैं । इसी प्रकार ऊपर की श्रेणी वालों में भी तारतम्य से निम्न श्रेणियों के भाव रहते हैं । यद्यपि खनिज-वर्ग के देहवालों में विश्व-प्रेम तक के भाव मौजूद तो रहते हैं परन्तु वे इतने अल्प और अविकसित होते हैं कि प्रत्यक्ष में प्रतीत नहीं हो सकते । इसी तरह देव वर्ग के महापुरुष भी अपने शरीरों से प्रेम रखते हैं, परन्तु उनमें सतोगुण इतना अधिक बढ़ा हुआ रहता है कि किसी शरीर विशेष ही में उनकी आसक्ति नहीं होती । तमोगुण जड़ात्मक है, रजोगुण रागात्मक और क्रियात्मक एवं सतोगुण सुख और ज्ञानात्मक है । सतोगुण से मनुष्य उन्नति करना है और तमोगुण से गिरता है ।" गीताकार ने कहा है—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्य गुण वृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥

अर्थात् सतोगुण का सेवन करने वाले ऊपर को उठते हैं, रजोगुणी बीच में ठहरते हैं और कनिष्ठ तमोगुण का सेवन करने वाले नीचे गिरते हैं । इसलिये प्रत्येक मनुष्य को सात्विक आचरणों से अपने में सतोगुण का विकास करते रहना चाहिए । यही अधम श्रेणी से निकलकर उच्च श्रेणी में पहुँचने का उपाय है ।

महानता के मननीय एवं वरणीय सिद्धान्त

मनःस्थिति परिस्थितियों की जन्मदात्री है । मनुष्य के सुख-दुःख, विकास अथवा पतन के लिए मुख्यतः वही जिम्मेदार है । परिस्थितियों की अपनी स्वतन्त्र सत्ता तो है, पर मनुष्य की प्रगति-अवगति में उनकी नगण्य भूमिका ही होती है । मूलतः कारण वह आन्तरिक स्थिति ही होती है । मन की विलक्षण सामर्थ्य और सम्भावनाओं को देखकर ही ऋषियों ने उसे व्यक्तित्व के प्रत्यक्ष घटकों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना था तथा यहाँ तक कहा था कि मनुष्य का मन ही उसके बन्धन अथवा मुक्ति का कारण है ।

प्रगति की आकांक्षा रखने तथा महानता का मार्ग चयन करने वालों को सर्वप्रथम मन को ही समझाना, सँभालना तथा सुधारना पड़ता है । अनगढ़ रहने पर वह अड़ियल घोड़े की तरह परेशान करता तथा विकास का आर्ग अवरुद्ध करता है । सुगढ़ता प्राप्त करते ही वह सधे घोड़े की सवारी ढोने, भार लादने की तरह इच्छाओं-आकांक्षाओं का सही नियोजन तथा पूर्ण मनोयोग का परिचय देकर अनेक प्रकार से सहयोग देता है । उसका स्तर निकृष्ट हो तो पतन-पराभव का मार्ग स्वयंमेव खुल जाता है । अनियन्त्रित, निरुद्देश्य इच्छाएँ हवा के साथ उड़ने वाले तिनकों की भाँति भटकती रहती हैं । उनसे कोई विशेष प्रयोजन पूरा नहीं हो पाता ।

श्रेय मार्ग का चयन करने तथा महानता का वरण करने की जो आकांक्षा करते हैं, उन्हें साधनात्मक प्रयत्न करना जितना आवश्यक है, उतना ही जरूरी यह भी है कि मन को सही दिशा दें । इच्छाओं, आकांक्षाओं का सही स्वरूप समझें ताकि उनमें से उचित का ही वरण कर सकें । श्रेय मार्ग के पथिक को लक्ष्य ही नहीं अपने चिन्तन का स्वरूप भी निर्धारित करना पड़ता है । कारण कि उत्कृष्ट जीवन की ओर चलने में सर्वाधिक सहायक अथवा बाधक अपना चिन्तन एवं दृष्टिकोण ही होता है ।

फ्रायड से अलग हटकर मनुष्य के विकास की असीम सम्भावनाओं पर दृढ़ विश्वास रखने वाले मनःशास्त्री मैस्लो का कहना है कि व्यक्तित्व विकास के लिए एक विशिष्ट तरह की चिन्तन पद्धति भी अपनानी पड़ती है । मैस्लो ने परमार्थ परायण महापुरुषों के चिन्तन एवं दृष्टिकोण का मनःशास्त्र के आधार पर विश्लेषण किया है । उन्होंने उस आधार पर जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे अति उपयोगी तथा हर व्यक्ति का मार्गदर्शन करने में सक्षम हैं ।

मैस्लो के अनुसार श्रेष्ठ व्यक्तित्व, सहज-स्वभाव के होते हैं । उनमें कृत्रिमता का अभाव पाया जाता है । बाहर एवं भीतर से एक जैसे होते हैं । उनकी भावना, विचारणा एवं क्रिया तीनों ही में एकरूपता पायी जाती है । जैसा विचार करते हैं, हृदय में वैसे ही भाव उठते तथा व्यवहार में उसी स्तर के कृत्य दिखायी पड़ते हैं । उनका स्वभाव स्वच्छन्द होता है । यह स्वच्छन्दता प्रगतिशीलता की, श्रेष्ठ प्रयोजनों की पक्षधर होती है । पर उसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे मर्यादाहीन होते हैं । स्वच्छन्दता से अभिप्रायः उस स्वतन्त्रता से है, जिसके सहारे वे परम्परागत कुरीतियों-रूढ़ियों का विरोध करने तथा तोड़ने में जरा भी नहीं हिचकते । विचारों की सीमित परिधि में रहना उन्हें नहीं रुचता । नित नये एवं प्रगतिशील विचारों का आह्वान करना उनकी विशेषता होती है । समाज एवं देश को वे उपयोगी विचार देते हैं । साथ ही अनुपयोगी के खण्डन में भी वे पीछे नहीं रहते । मौलिकता उनमें कूट-कूटकर भरी रहती है । अन्धानुकरण को वे पिछड़ापन का चिह्न मानते तथा उससे सदा बचते हैं । अपनी राह स्वयं बनाते तथा बिना किसी की परवाह किये एकाकी चल पड़ते हैं । परम्परावादियों के विरोध का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता । अपने मार्ग से, वे संघर्षों के कारण विचलित नहीं होते । संकटों, संघर्षों एवं प्रतिकूलताओं को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वे स्वयं आमन्त्रित करते हैं तथा उन्हें खेल-खिलवाड़ मानकर उनके माध्यम से अपनी शक्ति बढ़ाते हैं ।

ऐसे व्यक्तियों की सबसे बड़ी विशेषता होती है कि वे उन समस्याओं को ही महत्त्व देते तथा उन पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं, जिनमें समाज, देश एवं मानव जाति का हित जुड़ा हो । उनका अहम् विराट् में विसर्जित हो जाता है । अपने 'स्व' एवं उससे जुड़े स्वार्थों पर उनका कड़ा अंकुश रहता है । अपनी परिस्थितियों से वे सन्तुष्ट होते हैं । प्रसिद्ध विचारक कैप्टन शोटोवर कहा करते थे—"इस संसार में हम रुचि तभी लेते हैं, जब हमारी रुचि स्वयं से परितृप्त होकर बाहर निकलने लगे ।" अर्थात् स्वयं की इच्छाएँ अतृप्त हों, तो बाह्य समस्याएँ निरर्थक जान पड़ती हैं । प्रकारान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि अपनी इच्छाओं को विगलित किये बिना समाज एवं संसार की सेवा सम्भव नहीं है ।

मैस्लो की अवधारणा है कि सभी परमार्थी, रचनात्मक प्रवृत्ति के होते हैं । उनमें कलात्मक, वैचारिक तथा वैज्ञानिक स्तर की विशेषताएँ होती हैं । वे वस्तुओं को सदा नये अन्दाज में ग्रहण करते हैं । यही कारण है कि उनके जीवन में एकरूपता की ऊब नहीं पायी जाती । एक ही वस्तु को सदा नये-नये रूप में देखते रहने से उसमें सदा नयापन का आभास होता है । जबकि सामान्य व्यक्तियों में दृष्टिकोण की यह विशेषता नहीं होती ।

कोलिन विल्सन रचित 'न्यू पाथवेज इन साइकालॉजी' में मैस्लो के चिन्तन का निष्कर्ष दिया गया है—"सामान्य लोगों की तुलना में महामानव अधिक प्रसन्नचित्त एवं प्रफुल्लित पाये जाते हैं । यह उनकी सन्तुलित एवं परिष्कृत दृष्टि का ही परिणाम होता है । उनमें यथार्थता को पहचानने एवं ग्रहण करने की भी अद्‌भुत क्षमता पायी जाती है ।" असली-नकली चीजों में विभेद करने की भी इन महामानवों में विलक्षण सामर्थ्य देखी गयी है । ऐसी समर्थ ग्राह्य क्षमता उनमें हर क्षेत्र में विद्यमान पायी गयी है । जिस भी क्षेत्र में उनकी परीक्षा ली गयी, वे अपनी अद्वितीय क्षमता का परिचय देते देखे गये । कला, संगीत, राजनीति तथा अन्यान्य सभी क्षेत्रों में भी वे अग्रणी होते हैं ।

इसी पुस्तक में मैस्लो ने लिखा है कि "स्नेह-सौजन्य की भावना अपेक्षाकृत अन्य लोगों के महामानवों में अधिक होती है । स्नेह-प्यार-करुणा-दया से उनका अन्तःकरण लबालब भरा रहता है ।" आगे वे लिखते हैं—"उनका किसी से बैर नहीं होता, दुष्प्रवृत्तियों से तो वे घृणा करते हैं, पर किसी व्यक्ति विशेष से नहीं । हर व्यक्ति में सर्वोपरि सत्ता का निवास है, इस विश्वास के कारण वे सबसे प्रेम करते हैं, प्रेम बाँटते तथा प्रेम पाते हैं । एकान्त तथा शान्तप्रियता उनके स्वभाव का अंग होता है । सामाजिक एवं नैतिक नियमों का वे उल्लंघन नहीं करते । इन अनुबन्धों को तोड़ना वे अपराध मानते हैं । उनमें सहनशक्ति तथा सामंजस्य की प्रवृत्ति असाधारण रूप से पायी जाती है । उनका स्वभाव विनोदी होता है, पर उसमें उथलापन का अंश कभी नहीं होता । दूसरों की निन्दा, उपहास नहीं करते । प्रायः वे हर व्यक्ति को उठाने का प्रयत्न करते हैं, गिराने का नहीं । चिन्ता, भय, परेशानी, संकट के अवसर तो उनके सामने भी आते रहते हैं, पर उन परिस्थितियों में उनका धैर्य एवं सुन्तुलन देखते बनता है । ऐसे अवसरों पर भी वे निषेधात्मक चिन्तनधारा में नहीं बहते, विधेयात्मक ढंग से ही सोचते तथा हर समस्या का हल शान्तिपूर्ण ढंग से निकालने का प्रयत्न करते हैं ।

मैस्लो, फ्रायड की इस मान्यता का भी खण्डन करते हैं कि 'प्रत्येक मनुष्य की गतिविधियाँ यौन-अभिप्रेरित होती हैं । उनका कहना है कि संसार में अनेक ऐसे सन्तमहापुरुष हुए हैं, जिनका आचरण यौन से पूर्णतः ऊपर उठा हुआ था । उनका यौन-प्रवृति पर पूर्ण नियन्त्रण था । वे किसी ऊँचे लक्ष्य से प्रेरणा एवं शक्ति प्राप्त करते थे । इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान विचारक जार्ज बर्नार्डशा ने भी मैस्लो की इस धारणा का समर्थन करते हुए कहा है—सेक्स से इतर भी श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ मनुष्य के भीतर पायी जाती हैं । समाज, देश एवं संस्कृति के लिए सर्वस्व उत्सर्ग करने वाले त्यागी-बलिदानी, महापुरुषों-सन्तों का जीवन चरित्र इस बात का साक्षी है । स्नेह एवं प्यार का-उच्चस्तरीय आदर्शों के प्रति अटूट निष्ठा का विलक्षण सैलाब उनके हृदय में उमड़ता देखा जाता है । देश की बलिवेदी पर मर मिटने वाले बलिदानियों, समाज के उत्थान के लिये जीवन होम देने वाले समाजसेवियों, आविष्कार में एकनिष्ठ होकर जुटे वैज्ञानिकों की प्रेरक शक्ति सेक्स नहीं, वह महानता होती है, जो उनके भीतर से प्रस्फुटित होती तथा कुछ विशेष प्रचलित ढर्रे से अलग हटकर कुछ करने को अभिप्रेरित करती हैं ।"

अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र की मूर्धन्य प्रतिभा कार्लमार्क्स की कृति 'दास कैपिटेल' की गणना सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों में की गयी है । मनोविज्ञान के आधार पर समाज के नव-निर्माण की विचारधारा मैस्लो ने अपनी पुस्तक 'यूप साइकियन मैनेजमेन्ट' में व्यक्त की है । प्रगतिशील विचार के समर्थकों ने मैस्लो की इस पुस्तक को 'दास कैपिटल' के तुल्य ही माना है । इस पुस्तक में मैस्लो ने महानता वरण करने के कुछ व्यावहारिक सुझाव भी दिये हैं । उनके अनुसार लक्ष्य निर्धारित कर लेने के उपरान्त मनुष्य को कार्यों में छोटे, बड़े का भेद-भाव नहीं करना चाहिए, वरन् उनका स्तर श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करना चाहिए । प्रायः ऊब, नीरसता, अकर्मण्यता का कारण वह चिन्तन ही होता है, जिसमें मनुष्य काम को छोटा मानकर उनमें रस नहीं लेता । सामान्य और असामान्य व्यक्तियों में मौलिक अन्तर यह पाया जाता है कि सामान्य व्यक्ति जिस काम को छोटा मानकर उपेक्षा कर देते अथवा उसे करने में मनोयोग का परिचय नहीं देते, महापुरुष उनमें भी पूरी तल्लीनता, मनोयोग से जुटे दिखायी पड़ते अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर करते देखे जाते हैं । वे काम के प्रतिफल पर नहीं उसके स्तर पर अपना ध्यान केन्द्रित रखते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । यह असाधारण मनोयोग ही अन्ततः श्रेष्ठ परिणामों का भी कारण बनता है ।

मूर्धन्य मनःशास्त्री मैस्लो ने उपर्युक्त विचारों में महानता के सिद्धान्तों तथा महापुरुषों की जिन विशेषताओं का वर्णन-विश्लेषण किया है, वे शाश्वत हैं । अध्यात्म तत्ववेत्ता भी इसी जीवन दर्शन का समर्थन विभिन्न माध्यमों से समय-समय पर करते देखे जाते हैं । इन्हें चर्चा, श्रवण एवं अध्ययन तक सीमित न रखकर सचमुच ही आचरण में उतारने के लिए कटिबद्ध हुआ जा सके, तो देखते ही देखते मानव से महामानव की स्थिति में जा पहुँचने का सौभाग्य इसी जीवन में हर किसी को मिल सकता है ।

मानवी गरिमा से जुड़ी सभ्यता-सुसंस्कारिता

स्रष्टा ने प्राणि जगत में मनुष्य को अनेक विशेषताओं से युक्त बनाया है । उसका शरीर और मस्तिष्क विचित्र है । खड़े होकर चलना, वाणी की अभिव्यक्ति, संगीत से लेकर वैज्ञानिक अनुसंधानों और भावनात्मक सम्बन्धों तक अनेक विशेषताएँ एवं विभूतियाँ उसके साथ जुड़ी हुई हैं । परन्तु विभूतियाँ रहती हैं प्रसुप्त स्थिति में । उन्हें प्रयत्नपूर्वक जाग्रत करना और अभ्यास-स्वभाव में शामिल करना पड़ता है, अन्यथा वे कोयले की खदान में दबे हुए हीरे की तरह अनजान ही पड़ी रहती हैं ।

मनुष्य का सबसे बड़ा सौभाग्य और कौशल यही है कि मानवी गरिमा के साथ जुड़ी हुई विशिष्टताओं को समझे, अपनाये और उनके आधार पर समर्थ, समृद्ध और सुसंस्कारी बनने का श्रेय प्राप्त करे । ऐसे ढेरों उदाहरण मिल जाते हैं जहाँ परिस्थितियों का रोना रोते हुए प्रगति से वंचित रहा गया । इसके विपरीत ऐसों के भी असंख्य उदाहरण मिल जाते हैं, जिन्होंने परिस्थितियों की घोर प्रतिकूलता के रहते अपने सद्गुणों के आधार पर आगे बढ़ने, ऊँचे उठने के कीर्तिमान स्थापित किए ।

प्रगति की आकांक्षा सभी को है । सफलताएँ हर कोई चाहता है । महत्वाकांक्षाएँ सभी के मनों में उठती हैं, परन्तु उनकी आंशिक पूर्ति ही अधिकांश में हो पाती है । तमाम लोग तो उससे वंचित ही रह जाते हैं । यों इस सम्बन्ध में साधनों के अभाव, सहयोग न जुट पाना, परिस्थितियों का प्रतिकूल रहना ही प्रधान कारण बतलाए जाते हैं । परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं हैं । यदि ऐसा रहा होता तो साधन सम्पन्न लोग ही सराहनीय सफलताएँ पाया करते, निर्धनों में से किसी को भी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ नहीं मिलतीं । परन्तु देखा कुछ और ही गया है । सम्पन्नता और सुविधा वाले दुर्व्यसनों में फँसते, आलस्य, प्रमाद का परिचय देते और कुसंगों-दुर्गुणों में ग्रस्त होते देखे जाते हैं । फलस्वरूप वे संचित को गँवा देते हैं और अप्रत्याशित कठिनाइयों में फँसकर दुर्गति के शिकार होते हैं ।

साधनों और परिस्थितियों की प्रत्यक्ष उपयोगिता तो किसी सीमा तक है भी, परन्तु गहरी दृष्टि डालने पर वस्तुस्थिति दूसरी ही दिखती है । मनुष्य के अपने गुण-कर्म-स्वभाव की श्रेष्ठता और निकृष्टता से ही प्रगति-अवगति के आधार बनते हैं । वही अनुकूलता को अपव्यय के आधार पर दुर्गति का निमित्त कारण बना देते हैं और वही प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदल देते हैं । इसलिए विचारशील सदा इसी बात पर जोर देते रहते हैं कि मनुष्य का व्यक्तित्व प्रामाणिक, प्रखर और प्रतिभावान बनाने के लिए, एड़ी चोटी का जोर लगाया जाय । यह सब बन पड़ने पर व्यक्ति ऐसा जीवन्त चुम्बक बन जाता है जो प्रगतिशीलता के तत्वों को खींच-घसीटकर उसे प्रचुर मात्रा में अपने भण्डार में भर सके ।

दार्शनिकों, धर्म-धुरंधरों ने सद्गुणों की गणना अपने-अपने ढंग से की है और उनके प्रतिफल भी अपने-अपने ढंग से समझाये हैं । व्रत, अनुष्ठान, दान, तप, भक्ति, ध्यान, जप आदि के महत्त्व की बढ़ी-चढ़ी चर्चाएँ होती हैं उनके प्रतिफल स्वर्ग मुक्ति स्तर के बताये जाते हैं । ईश्वर दर्शन, ब्रह्म निर्वाण, ऋद्धि सिद्धियों के आकर्षण के पीछे यही उद्देश्य रहता है, कि मनुष्य इन्हें ध्यान में रखते हुए सद्गुणी बने । सभी तत्वदर्शियों ने सद्गुणों की सम्पदा संचित करके ही आत्मिक प्रगति का शुभारम्भ करने के लिए कहा है । योगाभ्यास में यम-नियमों को प्राथमिकता दी गई है । वे और कुछ नहीं, शारीरिक एवं मानसिक सदाशयता के प्रकार हैं । धर्म के दस लक्षण 'मनु' द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं । इन सभी में सद्गुणों पर ही जोर दिया गया है ।

इतना सब होते हुए भी एक प्रश्न बना ही रहता है कि उनका प्रारम्भ किस क्रम से किस प्रकार किया जाय? इसके बिना बात बनती नहीं, क्रमबद्धता का तारतम्य बैठता नहीं । शिक्षा के सर्वांगीण स्वरूप के अन्तर्गत शिक्षार्थी को उच्च कक्षाओं में साहित्य, इतिहास, भूगोल, विज्ञान आदि अनेक विषय पढ़ने पड़ते हैं; किन्तु इन सबसे पहले वर्णमाला का, अक्षरों का, मात्राओं का, गिनती पहाड़ों का ज्ञान तो चाहिए ही । ऐसा कोई 'शार्टकट' नहीं जिसके आधार पर इस प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा करके सीधे हाईस्कूल, कालेज आदि में दाखिला लिया जा सके । ऐसा प्रयास कोई अति उत्साही कर रहा हो तो समझ लेना चाहिए कि उसका समय, परिश्रम और उत्साह सभी व्यर्थ जाने वाले हैं ।

विकास क्रमशः ही सम्भव है । बीज अंकुर बनता है, पौधा पेड़ बनता है और फल-फूलों से लद जाता है । यह सब परिणति बीज बोने की ही है । आध्यात्मिक और भौतिक, उभयपक्षीय प्रगतियों का बीज तत्व है—सभ्यता । यह बहिरंग है । समयानुसार जब यह अंतरंग क्षेत्र में प्रवेश करती है तो 'सुसंस्कारिता' कहलाती है । सिद्धान्त रूप से तो यह भी कहा जाता है कि संस्कारिता को हृदयंगम करने के उपरान्त सभ्यता की रीति-नीति भी व्यवहार में मिलने लगती है । परन्तु प्रत्यक्ष अनुभव यह बतलाता है कि जनसामान्य में,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुसंस्कारिता के प्रति उमंग पैदा करने के लिए सभ्यता के बहिरंग सूत्रों को ही माध्यम बनाना पड़ता है । अध्यात्म का एकमात्र उद्देश्य, चेतना को उत्कृष्टता अपनाने के लिए प्रशिक्षित करना है ।

अन्तरंग जीवन में दूरदर्शी विवेकशीलता, उचित-अनुचित का निर्धारण, आदर्शों के पक्षधर भाव संवेदनाएँ जाग्रत करनी पड़ती हैं । देवत्व इन्हीं के सहारे उभरता है । दिव्य अनुदानों के बरसने का सुयोग इसी आधार पर हस्तगत होता है । इसे सुसंस्कारिता या मानवी संस्कृति कहते हैं । मनुष्य में पाया जाने वाला देवत्व इस पृष्ठभूमि पर उगता और विकसित होता है । चेतनात्मक विकास परिकर का मूल्यांकन इन्हीं मनकों से आँका-नापा जाता है ।

दूसरा पक्ष है, सभ्यता । यह प्रत्यक्ष एवं दृश्यमान है । शारीरिक गतिविधियों एवं पारस्परिक व्यवहार के आधार पर इसकी जानकारी मिलती है । यह आरम्भिक है । क्रिया से चेतना विकसित होती है । इसी से संयम जैसे अध्यात्म निर्धारण में व्रत-उपवास जैसे क्रिया-कलापों को अभ्यास में उतारा जाता है । सभ्यता का अनुसरण करते-करते संस्कृति के भावनात्मक उच्च स्तर तक पहुँचा जाता है ।

चिन्तन और चरित्र अन्तःकरण की सुसंस्कारिता के आधार पर विकसित होता है नीति-धर्म, पुण्य-परमार्थ उसी गहन अन्तराल पर निर्भर है । किन्तु तीसरी धारा व्यवहार है । उसे सम्पर्क में रहने वालों से शिक्षण अनुकरण द्वारा सीखा जाता है । उसमें आदर्शों का गहन पुट तो रहता है, परन्तु सीखते समय अल्पविकसित लोग अथवा बालक उस तत्व ज्ञान को उतनी अच्छी तरह समझ नहीं पाते । केवल अनुकरण-अभ्यास से ही उसे सीखते रहते हैं । सोने उठने, खाने-पीने आदि का अभ्यास भी इसी प्रकार होता है । साँचे में खिलौने ढलते हैं और वातावरण के प्रभाव से उस क्षेत्र में रहने वाले अपना स्वभाव उस तरह का बना लेते हैं । यह धीरे-धीरे विकसित होता चलता है और कालान्तर में चरित्र का अंग बन जाता है । यह अभ्यासक्रम, मानवी गरिमा के अनुरूप होने पर शिष्टाचार और प्रतिकूल-अनगढ़ होने पर अनाचार कहा जाता है ।

शिष्टाचार से कुछ ऊँची स्थिति है—सदाचार । उसमें नीति, मर्यादा एवं मानवी गरिमा के अनुरूप चिन्तन, चरित्र और व्यवहार का ऐसा पुट रहता है जिसके लिए बार-बार सीखने, समझने और सुधारने की आवश्यकता नहीं पड़ती । वह स्वभाव का अंग बन जाता है और क्रिया-कलापों में अनायास ही सम्मिलित रहता है । शालीनता इसी को कहा जाता है । सज्जनता यही है । व्यक्ति इसी आधार पर भीतर से संतुष्ट-प्रफुल्ल रहता है और बाहर से उसे श्रेय, सम्मान, सहयोग मिलते रहने का उपक्रम सहज ही बनता रहता है ।

मनुष्य के साथ जुड़ी विशिष्टतापरक रीति-नीति, शिष्टाचार है । इसे अन्य प्राणी नहीं जानते, परन्तु मनुष्य को इसे आरम्भिक दिनों में ही सीख लेना पड़ता है । जब तक शिशु शारीरिक दृष्टि से अविकसित विवश है, तभी तक उसे यह छूट रहती है कि मल-मूत्र का विसर्जन चाहे जहाँ करे । जैसे ही उन्हें थोड़ा-थोड़ा बोध होता है, शरीर सक्षम होता है, वैसे ही वे यथासम्भव शिष्टाचार अपनाने लगते हैं । पहले बड़े लोग उन्हें सिखाते-समझाते हैं, फिर उस अनुशासन का पालन वे स्वेच्छापूर्वक करने लगते हैं । भूल होने पर जो नाराजी सहनी पड़ती है, उसके कारण भूलों का सुधार होता रहता है । छोटों के साथ, बड़ों के साथ, अपनों और परायों के साथ उन्हें कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह अपने अनुभव, अपनी सूझ-बूझ से भी सीखना पड़ता है और अभिभावक भी सिखाते रहते हैं ।

यह शिक्षण यदि उपयुक्त स्तर का हुआ तो बालक में सभ्यता के लक्षण उभरते हैं और उसे श्रेय, सम्मान, स्नेह, सहयोग दिलाकर उत्साहित करते रहते हैं । यह प्रयास यदि सही दिशा में चलता रहे तो वयस्क होने पर वह सज्जनों की पंक्ति में गिना जाने लगता है । उसे समुचित आदर मिलने लगता है और उसकी सामर्थ्य के अनुरूप उत्तरदायित्व बेहिचक सौंपे जाते हैं । स्वयं को भी यह आत्म-विश्वास होने-लगता है । उत्साह और साहस इसी आधार पर परिपक्व होते हैं । व्यक्ति, अपनी गरिमा का प्रामाणिक परिचय देते हुए मूर्धन्य स्तर तक पहुँचने योग्य बन जाता है । यदि इस प्रक्रिया में गड़बड़ी हुई तो व्यक्ति ढीठ, उद्दण्ड, कटुभाषी, अशिष्ट स्तर का परिचय देने लगता है । अवांछनीयता, प्रमाद और असभ्यों जैसी हेय आदतों का पिटारा बन, उसे साथियों की उपेक्षा और भर्त्सना ही नहीं, प्रताड़ना भी सहनी पड़ती है । अपना अनाचार उलटकर अपने ही ऊपर आक्रमण करता है और उस दुर्गति से अपना मन खिन्न और उद्विग्न रहने लगता है । मन को बहलाने के लिए इस विसंगति का दोषारोपण दूसरों पर करने का प्रयास किया जाता है । यह अनगढ़ स्थिति ऐसी है जो किसी को भी गहरा सम्मान, सहयोग और विश्वास प्राप्त नहीं करने देती ।

व्यवहार को देखकर किसी के चरित्र का अनुमान लगाया जाता है । चरित्र का पर्यवेक्षण करने पर उसकी आस्थाओं, विचारणाओं, भावनाओं और आकांक्षाओं का परिचय मिलता है । यों उच्चस्तरीय विश्लेषण में चिन्तन को प्रधान, चरित्रों को उसका परिपाक और व्यवहार को उसकी अभिव्यक्ति माना जाता है । यह अपने ढंग का विश्लेषण है । परन्तु यह निश्चित है कि व्यवहार ही किसी की आरम्भिक पहचान कराता है । चरित्र और चिन्तन की जानकारी प्राप्त करने में तो बहुत देर लगती है और गहरी खोज-बीन की आवश्यकता पड़ती है । व्यवहार पहली दृष्टि में ही सामने आ जाता है । दुकान में क्या सामान रखा है, इसकी जाँच पड़ताल समयसाध्य है । परन्तु साइनबोर्ड देखकर रास्ता चलता व्यक्ति भी समझ जाता है कि यहाँ क्या रखा और बेचा जाता है? जिसके पास सम्पर्क साधने का पर्याप्त समय नहीं है, ऐसे अधिकांश लोग किसी व्यक्ति के बारे में लगे हुए अनुमान, उसके व्यवहार की थोड़ी भी गतिविधियों को देखकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगाते हैं । इस प्रथम मूल्यांकन के आधार पर अगले मूल्यांकन होते हैं । सम्मान तिरस्कार, विश्वास-अविश्वास का मन इसी आधार पर बनता है ।

कहना न होगा स्वाभाविक, सामान्य अभ्यास में शामिल व्यवहार किसी को बहुत त्रुटिपूर्ण नहीं लगते । अभ्यास में आ जाने के बाद उनकी समीक्षा करने की जरूरत भी समझ में नहीं आती । ऐसे में सुधार तो बन ही कैसे पड़े ? इसी कमजोरी के कारण अधिकांश मनुष्य शिष्टाचार से अनभ्यस्त, अनगढ़, गये-गुजरे और असभ्य स्तर के बने रहते हैं । उसमें किसी को तात्कालिक लाभ भले ही दिखे पर यह निश्चित है कि अशिष्ट व्यक्ति दूसरों की अपेक्षा अपना अहित स्वयं ही अधिक कर लेता है । इसी कारण शिष्टाचार की महत्ता सर्वाधिक बतायी गयी है एवं कहा गया है कि 'मानव' की अनगढ़ता के मिटने एवं सुगढ़ता के विकसित होने की दिशा में यह पहला एवं महत्त्वपूर्ण कदम है ।

मानवी विकास परम्परा के आधारभूत कारण

आदमी शरीर, बुद्धि और साधनों की दृष्टि से क्यों अधिक बलिष्ठ, कुशल और सम्पत्तिवान बनता चला आया ? जबकि अन्य प्राणी करोड़ों वर्ष से अपनी आदिम स्थिति में ही पड़े हुए हैं । प्रगति की दिशा में वे कुछ कदम ही आगे बढ़ सके हैं । प्रकृतिगत परिस्थितियाँ, सुविधा-असुविधा तो प्राय: सभी के लिए एक जैसी हैं, फिर किसी ने उनका लाभ किस कारण उठाया है और कोई क्यों उनसे अनजान-अपरिचित बना रहा ?

इस गुत्थी का समाधान प्रकृति के जैविक एवं भौतिक सिद्धान्तों से नहीं हो सकता । उसका कारण ढूँढ़ने के लिए शरीर संरचना से आगे बढ़कर बौद्धिक एवं भावनात्मक स्तर की परतों को कुरेदना पड़ेगा, जो मनुष्य में अन्यान्य सभी प्राणियों की तुलना में कहीं अधिक उच्चस्तरीय पायी जाती हैं ।

स्तरीय के तात्पर्य कुशलता-तीक्ष्णता से नहीं वरन् उस विशेष दृष्टि से है जिसे बोल-चाल की भाषा में नैतिकता या सामाजिकता कहते हैं । उसी को सज्जनता-सदाशयता के नाम से निरूपित किया जाता है । यही मनुष्य की वह भौतिक विशेषता है जो उसे कार्य-संरचना की दृष्टि में नहीं, कुशलता-क्षमता की दृष्टि से भी नहीं, वरन् दूरदर्शिता एवं नीतिमत्ता की दृष्टि से अलग करती हैं ।

शरीर की दृष्टि से जीवधारियों में हाथी, गैंड़ा, ऊँट, जिराफ, घोड़ा, चीता जैसी अनेक जातियाँ हैं जिन्हें कहीं अधिक बलिष्ठ, विशाल एवं परिपुष्ट कहा जा सकता है । इसी प्रकार घ्राण-शक्ति में क्षुद्र कीटकों से लेकर कुत्ते तक में ऐसी विशेषताएँ पायी जाती हैं जिनके सहारे वे अविकसित होते हुए भी अनेकानेक आवश्यकताओं को पूरा करते और साधन जुटाते रहते हैं । चमगादड़ जैसे स्पर्श-प्रधान प्राणियों की भी कमी नहीं । हिंसक पशु-पक्षी शिकार पकड़ने में जैसे छल-छद्म भरे हथकण्डे अपनाते, चक्रव्यूह रचते हैं उसे देखकर धूर्तों और कूटनीतिज्ञों को भी दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है । बिल्ली, मकड़ी आदि प्राणियों को ऋतु परिवर्तन का, भूकम्प का, प्रकृति दुर्घटनाओं का पूर्वाभास प्राप्त करने की अद्भुत क्षमता होती है । इसी आधार पर ही सम्भावित विपत्ति से बच निकलने और सुरक्षित स्थान तक जा पहुँचने में सफल होते रहते हैं ।

शहद की मक्खी का मधु-संचय, चींटी का सहकारी समाज, दीमकों की वास्तुकला, मकड़ी की तन्तु-विद्या इतनी उच्चस्तरीय है कि मनुष्य के लिए उनका मुकाबला कर सकना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता । बन्दरों की तरह छलाँग लगाना, पक्षियों की तरह उड़ना मछली की तरह डुबकी लगाना उसे कहाँ आता है । ऐसी ही अन्यान्य विशेषताओं के क्षेत्र में मनुष्य दूसरों से पिछड़ा हुआ ही सिद्ध होता है । हिरन, घोड़े और चीते तक के साथ दौड़ने में प्रतिद्वन्द्विता कर सकना उसके लिए कहाँ सम्भव हो सकता है । जुगनू की चमक, मोर सा सौन्दर्य, कोकिल-सा कंठ उसे प्रकृति ने कहाँ दिया ?

इतने पर भी वह प्रगति पथ पर अपने अन्य सभी साथियों को हर प्रतियोगिता में पीछे छोड़ता हुआ आगे बढ़ता चला आया है । आदि काल के विशालकाय प्राणी अतिशय समर्थ होते हुए भी अपने अस्तित्व की रक्षा न कर सके और प्रतिकूलताओं के कुछ ही थपेड़ों से धराशायी हो गये ।

इंगलैण्ड के प्रसिद्ध शरीरशास्त्री एडवर्ड टामसन ने गोरिल्ला और आदमी की शरीर-संरचना पर तुलनात्मक अध्ययन किया तो पाया कि 'एनाटामी' की दृष्टि से दोनों के मध्य कोई बड़ा अन्तर नहीं है । मस्तिष्क एवं वाणी के अवयव भी प्राय: एक जैसे हैं । फिर दोनों के स्तर में जमीन-आसमान जैसा अन्तर क्यों ? इसके उत्तर में उसने इतना ही लिखा है कि आदमी के अन्दर एक मौलिक विशेषता है । वह आत्म-नियंत्रण, सहयोग-सम्पादन एवं दूरगामी परिणामों का समझने की ऐसी चेतनात्मक विशिष्टताओं से सम्पन्न है जिनकी वानर वर्ग के अन्य समुदाय में भारी कमी है । इसी कमी-वेशी ने मनुष्य और अन्य प्राणियों के बीच जमीन-आसमान जैसा अन्तर उपस्थित कर दिया है ।

डार्विन के समकालीन दो और विकासवादी प्रख्यात हुए हैं । एक 'बफन' दूसरे 'लिनीयस' । दोनों ने अपने-अपने ढंग से इस क्षेत्र में भारी शोधें की हैं और वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जीवों के विकास क्रम में जो समय एवं साधनों का योगदान रहा है उसके आधार पर मानवी विकासक्रम को सिद्ध कर सकना शक्य नहीं । मनुष्य की विचित्रता और विलक्षणता उसकी ऐसी बुद्धिमत्ता है जिसे चतुरता की नहीं, शालीनता की ही संज्ञा दी जा सकती है ।

विशालकाय महागज सरीसृप एवं महागरुड़ आकार और पराक्रम की दृष्टि से अपने समय में प्राणी जगत में मूर्धन्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माने जाते थे । चलते-फिरते बुलडोजरों अन्धड़ों की तरह वे जिधर भी निकलते थे कत्लेआम मचाते चले जाते थे । उनका प्रतिद्वन्द्वी भी कोई नहीं था । निर्वाह के साधन भी कम नहीं थे, पर वे समय की गति के साथ दौड़ नहीं सके और अपना अस्तित्व गँवा बैठे । जबकि मनुष्य कितनी ही बार हिम प्रलयों, दुर्भिक्षों, जल-प्रलयों एवं ऐसे ही अन्य व्यापक प्रकृति प्रकोपों को सहन करता हुआ भी सृष्टि का मुकुटमणि बना हुआ है ।

मानवी विशेषताओं में उसकी उदार चेतना को ही प्रमुख माना जा सकता है । उसी के कारण उसकी पशु-प्रवृत्ति, संकीर्ण स्वार्थपरता, सदुद्देश्यों का महत्त्व समझ सकने और उन्हें अपनाने में समर्थ हो सकी । दूसरे प्राणी अपनी शरीर रक्षा को, उसके लिए आवश्यक साधनों को उपलब्ध कराने की इच्छा में ही निमग्न रहते हैं । मनुष्य करता तो यह भी है, पर इतने तक सीमित नहीं रहता । वह आत्म-गौरव की बात सोचता है और मैत्री करुणा के निमित्त किये जाने वाले त्याग, पराक्रम से आनन्द, सन्तोष का रसास्वादन करता है । यह प्रवृत्ति सद्भावना के नाम से जानी जाती है । यही है वह विलक्षणता जिसने निजी प्रतिभा को विकसित करने तथा दूसरों का स्नेह-सहयोग एकत्रित करने में सफलता पायी । यही है वह दैवी अनुकम्पा जिसके कारण मनुष्य को प्रगति के अनेकानेक क्षेत्रों में असाधारण सफलता उपलब्ध हो सकी ।

विकासवाद के प्रणेता डार्विन ने 'ओरीजिन ऑफ स्पेशीज' पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि प्राणियों का अस्तित्व एक-दूसरे के सहयोग के ऊपर निर्भर करता है । अपनी दूसरी पुस्तक 'मनुष्य का अवतरण' में वे लिखते हैं कि असंख्य प्राणि समुदायों में पृथक्-पृथक् प्राणियों का आपसी जीवन-संघर्ष समाप्त हो जाता है । संघर्ष का स्थान सहयोग ले लेता है । फलस्वरूप उनका बौद्धिक एवं नैतिक विकास होता है । उनका कहना है कि योग्यतम की श्रेणी में वे नहीं आते जो सबसे अधिक बलवान अथवा चालाक हैं, बल्कि वे हैं जो अपने समाज के हित के लिए क्या निर्बल, क्या बलवान सभी की शक्ति को इस प्रकार एकत्रित एवं संगठित करना जानते हैं कि वह एक-दूसरे का पोषक हो । जिन समुदायों में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति रखने वाले प्राणियों की जितनी अधिकता होगी वे ही सबसे अधिक उन्नत होंगे और फूले-फलेंगे ।

विकासवाद के सिद्धान्त 'स्ट्रगल फॉर एक्जीसटेंस एण्ड सर्वाईवल ऑफ दी फिटेस्ट' के वास्तविक स्वरूप को डार्विन का उपर्युक्त मत भली-भाँति स्पष्ट करता है । डार्विन के सबसे निकटवर्ती अनुयायी प्रो. केसलर थे । रूस की प्रकृतिवादियों की परिषद् में एक बार व्याख्यान देते हुए उन्होंने कहा—"जीवन संघर्ष का नियम तो प्रकृति में दिखायी तो पड़ता है, किन्तु वह अपवाद है । पारस्परिक सहयोग का नियम ही शाश्वत है । केसलर का कहना था कि डार्विन के जीवन-संघर्ष की व्याख्या गलत ढंग से की गयी । यद्यपि मैं जीवन संघर्ष के नियम से सर्वथा इन्कार नहीं करता । पर मेरा कहना तो यह है कि पारस्परिक संघर्ष की तुलना में पारस्परिक सहयोग के द्वारा प्राणि-संसार और मानव जाति का कहीं अधिक विकास होता है ।"

उक्त सम्मेलन में प्रसिद्ध पक्षी विशेषज्ञ एवं भूगोल शास्त्री साइवर्ट सोफ भी उपस्थित थे । उन्होंने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये—"मुझे डार्विन का ग्रन्थ 'ओरीजन ऑफ स्पेशीज' पढ़ने को मिला । अभी पुस्तक का नया-नया प्रभाव था । जंगलों में घूमना, जीव-जन्तुओं, पक्षियों का अध्ययन करना मेरा शौक था । मैं लम्बे समय तक अपने अध्ययन काल में इस प्रतीक्षा में बैठा रहा कि एक ही जाति के प्राणियों में तीव्र प्रतिस्पर्द्धा एवं संघर्ष देखने को मिलेगा; किन्तु मुझे निराशा ही हाथ लगी ।"

अराजकतावाद (एनार्किज्म) शासन पद्धति के प्रणेता एवं प्रसिद्ध विचारक प्रिंस क्रोपाटकिन का कहना है कि जीवन संघर्ष के प्रत्यक्ष एवं व्यापक पक्षों का गहराई से जब अध्ययन करते हैं तो सबसे पहले पारस्परिक सहयोग के उदाहरण बहुतायत संख्या में सामने आते हैं ।

प्रिंस क्रोपाटकिन अपनी पुस्तक 'म्युचुअल एड' में लिखते हैं कि जो प्राणी सामाजिक जीवन एवं परस्पर सहयोग के लाभ को समझते एवं आचरण करते हैं, वे ही जीवित रहते हैं । जबकि अधिक चालाक एवं होशियार होते हुए भी जिनमें पारस्परिक सहयोग की प्रवृत्ति नहीं होती, उन्हें प्रकृति नष्ट कर देती है ।

प्रिंस क्रोपाटकिन ने प्रशान्त महासागर के द्वीपों में रहने वाले निवासियों—एस्कीमो, रेड इण्डियनों के बीच जाकर भी अध्ययन किया । वे लिखते हैं कि समूह में संगठित रूप से मित्रतापूर्वक रहना इन जातियों का सबसे बड़ा गुण है अन्यथा इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों में उनका अस्तित्व कभी का समाप्त हो गया होता । उनका कहना है कि प्रशांत महासागर के टापू में रहने वाली जाति 'पोलिनेशियन' की अद्भुत एकता के ऊपर तो एक मोटी पुस्तक लिखी जा सकती है । 'फ्यूजियन जाति' की भी यही विशेषता है । वे भी पापुओं की भाँति समुदाय में रहते तथा परिश्रमशील होते हैं । वे हर वस्तु का सम्मिलित उपयोग करते हैं ।

पूर्वी ग्रीनलैंड में तो और भी अधिक कठोरतम संघर्ष जीवित रहने के लिए करना पड़ता है । एस्किमो जाति में एकमात्र जीवन-निर्वाह का साधन मछली पकड़ना है । प्रिंस क्रोपाटकिन आगे लिखते हैं कि एस्किमो लोगों का संगठन साम्यवादी आधार पर हुआ है । शिकार एवं मछलियाँ पकड़ने में उनके हाथ जो कुछ भी आता है, उस पर सम्पूर्ण जाति का अधिकार होता है । उनका विश्वास है कि किसी व्यक्ति विशेष की यदि सम्पत्ति एकत्रित हो जायेगी तो हमारी जातीय एकता छिन्न-भिन्न हो जायेगी । इससे बचाव के लिए उनके बीच एक परम्परा प्रचलित है । जब भी किसी एक व्यक्ति के पास सम्पत्ति एकत्रित हो जाती है वह व्यक्ति अपनी जाति के लोगों को एक बड़े उत्सव में सम्मिलित होने के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आमन्त्रित करता है । सभी मिल-जुलकर खाते एवं नाचते हैं । इसके आयोजन में हुए खर्च के बाद जो धन बचता है, धनी व्यक्ति सभी आमंत्रित लोगों में बाँट देता है । 'डेल' नामक एक विद्वान् जो इस जाति का अध्ययन करने के लिए एक बार यूक्रेन नदी के किनारे गये तो एस्किमो लोगों ने स्वयं उन्हें इस प्रकार के आयोजन में सम्मिलित किया । एक धनी एस्किमो ने अपनी दस बन्दूकें, दस बालदार खाल, दो सौ ऊदबिलाव, पाँच सौ कम्बल जो भी उसकी कुल सम्पत्ति थी—को आमंत्रित सभी व्यक्तियों में बाँट दिया । डेल ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए लिखा है कि—"एस्किमो जाति की यह प्रथा एवं ऐसी उदारता आज भी सभ्य जातियों में नहीं दिखायी पड़ती । निस्सन्देह यही कारण है कि इस दुर्गम क्षेत्र में यह जाति प्रकृति प्रतिकूलताओं में भी जीवित बनी हुई है ।

मानवी प्रगति में उसकी शरीर संरचना, बुद्धिमत्ता, परिस्थितियों की अनुकूलता आदि अन्यान्य कारण भी रहे होंगे किन्तु उन सब में प्रमुख है उसकी सद्‌भावना । इसी के आधार पर उसने स्नेह-सहकार सीखा और हिल-मिलकर रहने, मिल-बाँटकर खाने का आदर्श अपना कर उत्कर्ष के मार्ग पर क्रमिक प्रयाण करते-करते वह आज की स्थिति तक आ पहुँचा है ।

व्यक्तित्व की संरचना एवं विकास के सोपान

व्यक्ति के विविध क्रिया-कलाप जिस उर्जा से संचालित होते हैं, उसका स्रोत निज का व्यक्तित्व है । इसकी परिपक्वता अपरिपक्वता के आधार पर ही आचरण व व्यवहार का सुगढ़ या अनगढ़ होना बन पड़ता है । प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अद्वितीयता भी है । निज के व्यक्तित्व में ही प्रत्येक की अनन्यता निहित होती है ।

मनोवैज्ञानी गार्डन वाकर आलपोर्ट ने अपने अध्ययन 'पर्सनाल्टी ए साइकोलाजिकल इण्टरप्रिटेशन' में इसी तथ्य की स्वीकारोक्ति की है । उनके अनुसार "व्यक्ति सिर्फ समाज की इकाई भर नहीं है । वह स्वयं अपने में पूर्ण भी है एवम् उसकी अपनी मान्यता है । यही कारण है कि व्यक्तियों के औसत के रूप में व्यक्तित्व को नहीं समझा जा सकता ।"

इसकी संरचना एवम् गठन के सम्बन्ध में विभिन्न मनीषियों ने अपने विचारों का प्रकाशन किया है । मार्टनप्रिंस अपनी कृति 'द अन्कांशस' में इसे व्यक्ति की समस्त जैविक, जन्मजात विन्यास, उद्वेग, रुझान एवं मूल प्रवृत्तियों का समूह मानते हैं ।

मनोविज्ञानी सिगमण्ड फ्रायड का 'द एनाटमी ऑफ मेण्टल पर्सनाल्टी' में कहना है कि मानवीय व्यक्तित्व ईड, इगो, एवम् सुपर इगो का समुच्चय है । उन्होंने अपने इस कथन को समझाते हुए बताया है कि ईड मानसिक उर्जा का स्टोर हाउस है । पर इसमें बिखराव है । इगो को इसी के एक विशेष भाग के रूप में स्वीकारते हैं । जो व्यक्ति का बाहरी संसार से सम्बन्ध स्थापित कराने वाला होता है । इन दोनों के परस्पर सम्बन्धों को समझाते हुए उनका कहना है कि 'अहं' में क्रियाशील अनुभव अपना विकास मूल प्रवृत्तियों के रूप में करते हैं । आगे वह कहते हैं कि इगो में जहाँ तर्क व सद्‌बुद्धि का स्थान है वहीं ईड में वासनाओं का । सुपर इगो को वह ईड की एक अभिवृद्धि तथा इगो के उस नवीकरण के रूप में स्वीकारते हैं जो व्यक्ति में नैतिक मर्यादाओं का पोषक है ।

व्यक्तित्व के सम्बन्ध में उपर्युक्त चिन्तकों द्वारा किया गया विवेचन व्यक्ति में जैविक, प्राणिक स्तर की प्रभाविकता तथा अपरिपक्व मानसिकता को स्पष्ट करता है । जबकि यह तथ्य मानवेतर प्राणियों में घटित होता है न कि स्वयं मानव पर । इन अध्येयताओं ने व्यक्तित्व की यह व्याख्या 'पर्सनाल्टी' के आधार पर की है । यह पर्सोना से बना है जिसका मतलब है मुखौटा । मुखौटे का मतलब है जो बाहर दिखायी दे । प्रायः जैविक, प्राणिक क्रिया-कलाप ही बाहर दिखाई देते हैं अतएव इनके द्वारा इन्हीं की प्रधानता स्वीकारना कुछ आश्चर्यजनक नहीं है ।

भारत के प्राचीन ऋषि कहे जाने वाले वैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व की संरचना का सांगोपांग अध्ययन किया था । उनके अनुसार इसका केन्द्रीय आयाम 'आत्मा' है । इसी के गुण और दिव्यता हमारे व्यवहार और चिन्तन में दिखाई पड़नी चाहिए । इसमें आने वाले अवरोधों बाधाओं को समाप्त करके समूचे जीवन को आत्मा के गुणों से अलंकृत करना ही व्यक्तित्व का विकास है । केन्द्रीय आयाम की अवहेलना कर व्यक्तित्व का ठीक-ठीक विकास सम्भव नहीं ।

इस तथ्य को विलियम जेम्स ने न्यूनाधिक रूप से स्वीकारा है । उनके अनुसार व्यक्तित्व के चार सोपान हैं । इसमें पहला सोपान भौतिक है । जिसके अन्तर्गत व्यक्ति के शरीर की बनावट तथा आनुवंशिकता से प्राप्त विशेषताएँ सम्मिलित हैं । इसे उन्होंने मैटेरियल सेल्फ कहा है । दूसरे सोपान को वह सामाजिक व्यक्तित्व या 'सोशलसेल्फ' कहते हैं । इसके विकास का आधार व्यावहारिक जीवन में आवश्यक गुणों का भली प्रकार समावेश करके सामाजिक सम्बन्धों का सुरुचिपूर्ण निर्वाह है ।

तीसरा सोपान है आध्यात्मिक व्यक्तित्व 'स्प्रिचुअल सेल्फ' । जेम्स के अनुसार यह उस समय विकसित होता है जब व्यक्ति आध्यात्मिक विषयों के प्रति जिज्ञासु हो । साथ ही जीवन में एकता, समता, सुचिता का समावेश करे । चौथा सोपान शुद्ध अहं अथवा प्योर इगो का है । दूसरे शब्दों में व्यक्ति जब अपने आत्मस्वरूप का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है और सभी वस्तुओं में अपनी आत्मा का दर्शन करता है तब वह अपने व्यक्तित्व विकास की पूर्णता प्राप्त कर लेता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जेम्स की इस व्याख्या में महत्त्वपूर्ण बिन्दु है व्यक्तित्व के लिए पर्सनालिटी के स्थान पर सेल्फ का प्रयोग । यही कारण है कि वह व्यक्तित्व संरचना को अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट कर सके ।

श्री अरविन्द ने इस ओर भी अधिक उत्तम रीति से समझाने की चेष्टा की है । उनके अनुसार व्यक्तित्व विकास के सोपान चार न होकर छह हैं । इनको उन्होंने भौतिक, प्राणिक, बौद्धिक, चैत्य, आध्यात्मिक एवम् अतिमानसिक कहा । इनमें प्रत्येक का अपना गुण है । भौतिक का गुण है, सफलता । प्राण का गुण है, क्रियाशीलता । बौद्धिक स्तर का गुण है, चिन्तन की प्रखरता । चैत्य का गुण है, अन्तराल की पवित्रता । आध्यात्मिक स्तर का गुण है, क्षुद्रता से उबरकर महानता की ओर बढ़ चलने की अभीप्सा तथा अतिमानसिक स्तर का गुण है, प्रत्यावर्तन, महानता में, स्वराट का विराट में, संकीर्णता का विस्तीर्णता में, स्वार्थपरता का उत्सर्ग में परिवर्तन । इन सभी स्तरों के गुणों का समुच्चय ही यथार्थ में व्यक्तित्व है । इन्हें जीवनक्रम में भली प्रकार व्यवहार में लाना ही विकसित व्यक्तित्व का लक्षण है ।

इस तथ्य को भली प्रकार समझ पाने के बाद ही यह सोचना बन पड़ता है कि कहाँ किस सुधार की जरूरत है । किस स्तर से हम अभी परिचित नहीं हैं अथवा कौन से गुणों को जीवन में समुचित स्थान नहीं मिल पा रहा है । इसे ढूँढ़ना और विकसित करना और भली प्रकार निर्वाह करने की प्रक्रिया को आवश्यक कर्तव्य कर्म कहा जा सकता है ।

इसे उपेक्षित छोड़ देने के कारण ही जीवन में विकृतियों, असफलताओं, परेशानियों की भरमार दिखायी देती है । विभिन्न स्तरों में जो स्तर कमजोर होगा, जहाँ भी गुणों का अभाव होगा वहीं परेशानी समस्या कठिनाई आ खड़ी होगी । इनके निवारण का सही और सटीक उपाय है, उस स्तर के आवश्यक गुणों का विकास ।

प्रसिद्ध दार्शनिक प्रो. एस. एन. दास गुप्त अपनी रचना 'हिन्दू मिस्टीसिज्म' में संसार को व्यक्तित्व निर्माण की प्रयोगशाला मानते हैं । उनके अनुसार इसे ही जीवन का लक्ष्य समझा जा सकता है । दास गुप्त के अनुसार संसार तथा सामाजिक परिवेश नित्यनिरन्तर बदलती परिस्थितियाँ, रोजमर्रा की समस्याएँ, बाधा व्यतिरेक इस काम में हमारी सहायता करते हैं । इनमें से प्रत्येक स्थिति हमें अपने अन्दर झाँकने को बाध्य करती है, साथ ही प्रेरणा प्रदान करती है कि आवश्यक कमी को पूरा किया जाय ।

यही कारण है कि मनोवैज्ञानिक एरिक फ्राम व्यक्तित्व विकास की साधना को गुणों के विकास की साधना का नाम देते हैं । बात भी सही है न्यूनाधिक रूप से दोनों एक-दूसरे के पर्याय ही हैं । इस साधना हेतु श्री अरविन्द ने दो चरण बताए हैं । प्रथम शुद्ध अभीप्सा अर्थात् वही व्यक्ति जीवन में परम शान्ति, आनन्द एवम् प्रकाश पा सकता है जो इसके लिए आवश्यक गुण, दया, करुणा, ममता, सेवा-सहकार जैसे सद्गुणों को चाहे ।

दूसरे चरण के रूप में वह कहते हैं कि हमें निम्न एवम् अवांछनीय प्रवृत्तियों, दोष-दुर्गुणों को त्यागना होगा । वह स्पष्ट करते हैं कि जब तक कोई भी आदमी निम्नता की ओर अपना झुकाव रखता है तब तक चेतना के श्रेष्ठतर पक्ष की ओर अग्रसर नहीं होता है । अतएव उन्नत श्रेष्ठ सफल जीवनक्रम के लिए अच्छा यही है कि जीवन निर्माण के इन दोनों चरणों की पूर्ति में उत्साहपूर्वक जुट पड़ा जाय । ऐसा करने से समूचा जीवन स्वयमेव प्रगति की राह पर वेगपूर्वक बढ़ता चला जाएगा ।

व्यक्तित्व का सर्वांगपूर्ण परिष्कार ही वस्तुतः सही अर्थों में आध्यात्मिक प्रगति का प्रमुख चिह्न है । जो जितना इस दिशा में प्रगति कर पाता है, वह सही अर्थों में उतनी ही निज की, समाज के लिए उपयोगिता प्रमाणित करता है । सिद्धि, विभूति जो भी कुछ है इसी रूप में परिलक्षित होती है । आत्मावलोकन व आत्म-निर्माण विकास की प्रक्रिया द्वारा अपने व्यक्तित्व का परिष्कार हर किसी के लिए संभव है व यह राजमार्ग सभी के लिए खुला है ।

व्यक्तित्व के विकास हेतु निजी प्रयास

मनुष्य में निज की बुद्धि और विचारणा भी है । इसी के बल पर उसने दर्शन, विज्ञान, भाषा आदि की अनेक दिशाधाराएँ खोजी हैं । साहित्यकार, कलाकार, कवि, वैज्ञानिक प्रभृति के लोग निजी चिन्तन के सहारे ही कल्पनाएँ करते, योजनाएँ बनाते हैं । निष्कर्ष निकालते हैं । भूत से शिक्षा ग्रहण करना और भविष्य की परिकल्पनाएँ अपनाना भी अपनी अपनी निजी विशेषताएँ हैं । उन्हीं के आधार पर प्रतिभाएँ ऊँचा उठतीं, आगे बढ़ती हैं या पतन की दिशा में चल पड़ती हैं ।

यह कथन बहुत अंश में सच है कि किसी पेड़ पर दो पत्ते एक जैसे नहीं होते । हर पत्ते की बनावट में अन्तर रहा है । जो पूर्णरूपेण समान हो ऐसी कृति किसी पदार्थ या प्राणी की नहीं देखी जाती । मोटी दृष्टि से एक जैसी दीखने पर भी बारीकी से देखने पर हर किसी में अन्तर पाया जाता है—प्राणियों में भी । भेड़ें एक जैसी लगती हैं, पर उनका पालक हर एक के बीच पाये जाने वाले अन्तर को समझता है । इसी आधार पर वह अपने झुण्ड की एक भेड़ दूसरे झुण्ड में जा पहुँचने पर उसे पहचानता और पकड़ लाता है । यह वैयक्तिक भिन्नता है । प्रकृति ने भी अपनी हर संरचना में अन्तर रखा है । प्राणियों में भी, मनुष्यों में भी । इसके अतिरिक्त रुचि-स्वभाव में भी अन्तर पाया जाता है । हर बात में एक जैसे सिद्ध होने वाले दो व्यक्ति कहीं भी दीख नहीं पड़ते । कुछ न कुछ अन्तर रहता ही है । यह अन्तर ही निजी व्यक्तित्व है । इसका अस्तित्व मालूम पड़ता है, अन्यथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ व्यक्ति तो भीतर और बाहर से सर्वथा एक जैसे रहे ही होते । घनिष्ट मित्रों में भी एकात्मता एक सीमा तक ही रहती है । दाम्पत्य जीवन में—मित्र मण्डल में भी तालमेल बिठाकर ही चलना पड़ता है । समग्र एकता और एकात्मता कदाचित् ही कहीं अपवाद रूप में दीख पड़ती है ।

इस निजी व्यक्तित्व को आमतौर से निजी सम्मान, निजी चिन्तन और निजी निर्णय पुरुषार्थ के आधार पर विकसित किया जाता है । इसमें दूसरों का परामर्श भी किसी सीमा तक काम करता है । साहित्य का भी प्रभाव रहता है । फिल्म अभिनय जैसे दृश्य भी निजी व्यक्तित्व के विकास में सहायता करते हैं । पूर्व-संचित संस्कारों की—वंश परम्परा की भी किसी अंश में भूमिका रहती है । कोई घटना विशेष भी ऐसा मोड़ लेती है कि पिछला उपक्रम बदलता और नई दिशा में चल पड़ने के लिए उत्साह भरता है । व्यक्तित्व निर्माण के लिए प्राय: स्वाध्याय सत्संग का, सघन सम्पर्क का, चिन्तन मनन का सहयोग रहता है । इस क्षेत्र की सशक्तता को नकारा नहीं जा सकता और व्यक्तित्त्व निर्माण के लिए, व्यक्तिगत सम्पर्क की उपेक्षा नहीं की जा सकती । चरित्रवान और क्रियाकुशल व्यक्ति देश की, समाज की सबसे बड़ी आवश्यकता है । यह कार्य प्रधानतया व्यक्ति को सद्गुणों की, सत्प्रवृत्तियों की ओर अग्रसर करने से ही हो सकता है । इसमें उत्कृष्टता का अभ्यास भी साथ में जुड़ा रहना चाहिए ।

प्राचीनकाल में यह कार्य सदाशयता-सम्पन्न परिवारों में होता था । बचपन से ही हर बालक को अपने बड़ों से उस स्तर का प्रशिक्षण मिलता था । पहला शिक्षण बालक परिवार के लोगों से शब्दों को सुनकर ही प्राप्त करता है । अपने को लड़की या लड़का मानने की भिन्नता परिवार के बताने पर ही मान्यता बनती है । खान-पान की, पहनाव-उढ़ाव की, आदतें भी परिवार में जो होता है; उसी को देखकर अपनायी जाती हैं । यह आरम्भ ही क्रमश: अभ्यास में उतरते रहने पर परिपक्व हो जाता है और अपने ढंग का व्यक्तित्व ढल जाता है ।

इसी प्रक्रिया का अगला चरण है—गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली । उसमें प्राचीनकाल में ज्ञान सम्वर्द्धन के साथ-साथ पारिवारिकता का वातावरण भी रहता था । छात्र भी कच्ची आयु से भर्ती होते थे । गीली लकड़ी को आसानी से मोड़ा जा सकता है । गीली मिट्टी से ही कुम्हार मनचाहे पात्र या खिलौने बनाता है । सूखी मिट्टी मुश्किल से ही किसी ढाँचे में ढलती है । सूखी लकड़ी को मोड़ना कठिन पड़ता है । जब ऐसा करना अनिवार्य हो जाता है तो गलाई-ढलाई का कष्टसाध्य तरीका काम में लाना पड़ता है । धनुष तेज आग की भट्ठी में तपाकर नरम किये जाते हैं । इसके बाद ही उसे किसी साँचे में ढाल सकना संभव होता है । कड़े पत्थर से मूर्तियाँ गढ़ना हर किसी के वशबूते का काम नहीं है । इसके लिए छेनी-हथौड़े का संतुलित उपयोग कर सकने वाले मूर्तिकार चाहिए । उसके मस्तिष्क में प्रतिमा की इतनी स्पष्ट परिकल्पना उठनी चाहिए कि गढ़ते समय हाथ सही प्रयोग कर सकें । छेनी-हथौड़े की चोट इस कौशल के साथ पड़ सके कि प्रतिमा बिना विखंडित हुए कल्पना के अनुसार सही आकार-प्रकार की बन सके । उसकी भावभंगिमा वैसी ही रहे जैसी कि बनाने से पूर्व परिकल्पना की गयी थी ।

अपने आप स्वयं को गढ़ने का भी एक तरीका है जिसे साधना विज्ञान के नाम से जाना जाता है । इन दिनों तो उसमें भी भ्रष्टाचार घुस पड़ा है और लोग देवता को रिझा कर अपनी उचित-अनुचित मनोकामना को पूरी कराने के लिए उसका प्रयोग करते हैं । भटकते और निराश होते हैं, किन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य और सिद्धान्त यही है कि अपने प्रयास से अपने व्यक्तित्व को अभीष्ट स्तर का ढाला जाय । इष्टसिद्धि इसी को कहते हैं । साधना से सिद्धि की चर्चा आमतौर से होती रहती है । यह सिद्धिदायिनी साधना और कुछ नहीं केवल अपने मनोबल से अपने व्यक्तित्व को अभीष्ट ढाँचे में ढालने वाले उपाय-उपचारों को अपनाना ही है । ध्यान-धारणा का, तप-तितिक्षा का, योगाभ्यासपरक क्रिया-कृत्यों का वही प्रयोजन है । जो लोग साधना का सही उद्देश्य समझते हैं और उसका उपयोग करते हुए निर्धारित तत्वदर्शन और आचरण-अनुशासन का ध्यान रखते हैं, वे अपने पुरुषार्थ से अपने को बदलने, सुधारने, अभीष्ट ढाँचे में ढालने में समर्थ और सफल हो जाते हैं ।

लाभ और हानि का सही अन्तर समझने वाले को इस निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए कि व्यक्तित्व में शालीनता-सद्भावना का अधिकाधिक समावेश ही सर्वतोमुखी प्रगति का एक मात्र आधार है । गुण, कर्म, स्वभाव की सदाशयता ही किसी को प्रामाणिक बनाती है । जिनका चरित्र, चिन्तन और व्यवहार मानवीय गरिमा के अनुरूप है, जिन्हें उत्कृष्ट आदर्शवादिता अपनाने पर गहरी आस्था है, वे प्रचलन से प्रभावित नहीं होते: वरन् अपनी रीति-नीति एवं दिशाधारा स्वयं निर्धारित करते हैं । इतना ही नहीं उस ऊँचाई पर ले जाने वाले मार्ग पर एकाकी चल पड़ने का साहस भी बटोरते हैं । उन्हें समीपवर्ती वातावरण से एकाकी जूझना पड़ता है, कारण कि पानी के ढलान की तरफ बहने की भाँति ही लोक-प्रवाह में भी पतन की ओर ले जाने वाले—पशुता की ओर लौटाने वाले तत्व ही भरे होते हैं । वे अपने साथ चलने के लिए लोभ और भय बताते हुए दबाव डालते हैं । इन्हें नकारना उच्चस्तरीय साहस है । तिनके, पत्ते और धूलि कण हवा के प्रवाह के साथ उड़ते हैं । पतन की आँधी भी उसी दिशा में उड़ती है जिसके लिए हवा का दबाव बाधित करता है । इस चक्रव्यूह को वेधना हर किसी का काम नहीं है । मनस्वी और तपस्वी ही ऐसा कर पाते हैं, किन्तु जो सामान्यजन श्रद्धापूर्वक इस दिशा में चल पड़ते हैं, वे अपने व्यक्तित्व में देवत्व का उदय कर सकने में निश्चय ही सफल होते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तित्व विकास हेतु संस्कार आयोजन

प्रत्यक्ष शिक्षण के दृश्य प्रयोजनों के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के पुरोधाओं ने ऐसे उपाय भी खोज निकाले थे, जिनके आधार पर अन्तराल की गहराई तक प्रवेश करने और कारण शरीर को प्रभावित करके आस्थाक्षेत्र को परिपक्व किया जा सकता था । उस प्रभाव से विचारणा में उत्कृष्टता का आरोपण होता था तदुपरान्त क्रिया पद्धति में आदर्शवादिता का प्रवाह चल पड़ता था । यह प्रयास 'संस्कार' नाम से जाने जाते हैं । जीवन में सोलह मोड़ आते हैं । इस दृष्टि से संस्कार आयोजनों की संख्या भी सोलह रखी गयी थी । हर मोड़ पर एक संस्कार ।

आज की रीति-नीति में न तो उतने मोड़ रहे हैं और न महँगाई, व्यस्तता, अश्रद्धा आदि के कारण सर्वसाधारण की स्थिति ऐसी रह गयी है कि उन सबको यथाविधि उत्साहपूर्वक सम्पन्न करायें । इसलिए अब घटा-बढ़ाकर उतने कर लिये गये हैं जो अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक समीचीन हैं ।

व्यक्ति मानवी गरिमा के अनुरूप श्रेष्ठता के साथ जुड़ा रहे, इसी निमित्त संस्कार परम्परा का प्रचलन था । किसी समय इनकी संख्या सोलह थी हर किसी को जीवन में सोलह बार इस प्रकार के आयोजन करने पड़ते थे जिनमें सम्बद्ध व्यक्ति को उसके परिजनों, सम्बन्धियों की उपस्थिति में ऐसा बहुत कुछ बताया समझाया जाता था जो उत्कृष्ट आदर्शवादिता को अपनाये रहने के लिए, उल्लास भरी चेतना उभारने के लिए आवश्यक था ।

माता के गर्भ में जीव के स्थिर होने पर पुंसवन नामक संस्कार कराया जाता था, जिसका उद्देश्य था गर्भिणी को उसके शारीरिक, मानसिक दायित्वों को समझाना, उनका पालन करने पर वह अपना स्वास्थ्य और गर्भस्थ शिशु का उज्ज्वल भविष्य बनाने में समुचित भूमिका निभा सकती थी । यह सभी सम्बन्धीजनों की उपस्थिति में होता था, ताकि वे सब भी उस मर्यादा के पालन करने में गर्भिणी को समुचित सहयोग-संरक्षण प्रदान करते रहें ।

इसी प्रकार शिशु के अबोध रहने तक कई संस्कार सम्पन्न हो जाते थे । इनमें से नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ आदि का प्रचलन अभी भी है । अबोध शिशु तो समारोहों के समय उपलब्ध कराये गये मार्ग-दर्शन को समझ नहीं पाता था पर परिवार के सभी सदस्य और सम्बन्धीगण उस मार्गदर्शन को भलीभाँति समझ लेते थे और अभिभावक तथा सम्बन्धीजन मिलजुलकर ऐसी रीति-नीति अपनाते थे जिससे बालक की समग्र प्रगति में इन सभी का समुचित योगदान जुड़ता रहे ।

यज्ञोपवीत के समय तक बालक इतनी समझदारी प्राप्त कर लेता था कि अपने विकास की दिशा-धाराओं के सम्बन्ध में कुछ करने की स्थिति में पहुँच सके । उपनयन को दूसरा जन्म भी कहते हैं, द्विजत्व भी । जन्म-जात रूप से सभी अनगढ़ होते हैं । सुसंस्कारिता तो निजी पारिवारिक प्रयत्न से अर्जित करनी पड़ती है । उसमें सामाजिक वातावरण भी सहभागी होता है । उपनयन के अवसर पर इसी का उहापोह होता है । शिक्षा का उद्देश्य समझाया जाता है और मानवोचित मर्यादाओं का पालन तथा वर्जनाओं का उल्लंघन न करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध किया जाता है यही व्रतबंध हैं, दूसरा जन्म भी ।

यह सब सामूहिक रूप से इसलिए किया जाता था कि अन्य लोग भी इसमें सहयोगी बनें और अपने-अपने कार्य-क्षेत्र में भी इन परम्पराओं के निर्वाह में प्रयत्नशील रहें ।

इसके उपरान्त विवाह संस्कार आता है । इन दिनों उसे क्रीड़ा, विनोद एवं गृह-व्यवस्था पर आधारित माना जाता है । रूप, लावण्य, दहेज आदि को आधार मानकर जोड़ों का चुनाव होता है । हाथ पीले करने और घर बसाने जैसे क्षुद्र-क्षुद्र प्रयोजनों तक ही उसे मान्यता मिल रही है, पर वास्तविकता इससे कहीं अधिक आगे हैं । दो परिवारों का एकजुट होने, दो व्यक्तियों के परस्पर समर्पित होने और मिल-जुल कर ऐसे उद्देश्य पूरे करने की वह विधा है जिसका प्रभाव परिणाम दूरवर्ती हो । समूचे समाज को उनके संयुक्त प्रयास से अनुकरणीय प्रेरणा मिले । परिवार निर्माण की ऐसी उच्चस्तरीय व्यवस्था बने जिससे सर्वतोमुखी प्रगति का द्वार खुले । वधू अपनी ससुराल को और वर अपनी ससुराल को अधिक प्रगतिशील बनाने के लिए प्रभावशाली भूमिका सम्पन्न करें । समय के अनुरूप प्रजनन पर अकुंश लगाने की प्रतिज्ञा भी अब इसी संस्कार में सम्मलित कर दी गयी है । गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित अनेक कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों की शिक्षा भी इसी अवसर पर दी जाती है और उनके परिपालन का वातावरण बनाने के लिए अभीष्ट सहयोग देने की उपस्थितजनों से भी प्रतिज्ञा करायी जाती है । इस माध्यम से प्रशिक्षित हुए सभी उपस्थितजन अपने परिकर में भी वैसा ही निर्धारण करने के लिए प्रोत्साहन प्राप्त करते हैं ।

वानप्रस्थ भी गृहस्थ प्रवेश की तरह ही महत्त्वपूर्ण आश्रम माना गया है । आधा जीवन निजी विकास और परिवार निर्वाह के लिए लगाया जाय । शेष आधे को लोक-निर्माण के लिए उत्सर्ग करने की योजना ध्यान में रहे । यह भारत की देव संस्कृति की अनादि परम्परा है । इसी आधार पर समाज को बड़ी संख्या में सुयोग्य लोकसेवी मिलते थे और उनके निरन्तर लगन भरे प्रयत्नों से व्यक्ति की, समाज की, सर्वजनीन प्रगति का पथ प्रशस्त होता था । शासकीय कर्मचारियों के बिना ही अनेक सृजनात्मक प्रयोजन पूरे होते रहते थे । उस प्रचलन के बन्द हो जाने से समाज को असाधारण क्षति उठानी पड़ रही है । शान्तिकुन्ज के प्रयत्नों से उस महान परम्परा का अब पुनर्जीवन संभव हुआ है ।

इन वानप्रस्थों के लिये वैराग्य लेने या घर छोड़ देने जैसा प्रतिबन्ध नहीं है । परिवार की देखभाल रखने, वहीं से अपना निर्वाह लेने और आधा समय सामाजिक प्रयोजन के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए देते रहने से यह परम्परा निभ जाती है । नये बच्चे उत्पन्न न करना ही ब्रह्मचर्य पालन की आधुनिक परम्परा मानी जा सकती है । इस प्रकार वानप्रस्थ व्रतधारी कार्यकर्ताओं की एक नयी बिरादरी का उदय होने से लोकहित के नवसृजन के अनेक प्रयोजनों के प्रगतिशील होने की संभावना बन पड़ना सुनिश्चित है ।

जन्मदिन और विवाह दिन मनाने के दो वार्षिक संस्कारों को अब संस्कार प्रयोजनों में नया समावेश किया गया है । जन्मदिन पर मनुष्य जीवन की महत्ता का बोध और उसके श्रेष्ठतम् सदुपयोग का नये सिरे से चिन्तन किया जाता है और शेष जीवन को अधिक उत्कृष्ट बनाने के लिए नया संकल्प लिया जाता है । विवाहदिन पर पति-पत्नी दोनों एक प्रकार से विवाह कर्त्तव्यों को पुनः दुहराते हैं और पिछले दिनों यदि कुछ व्यतिरेक होता रहा हो तो उसे आगे न होने देने का प्रायश्चित-पूर्वक प्रण करते हैं । इस प्रकार वैवाहिक पारिवारिक जीवन को नये सिरे से प्रगतिशील बनाने का इस संस्कार के माध्यम से नया शुभारम्भ होता है ।

अन्त्येष्टि संस्कार तो सब लोग अपने अपने ढंग से कर लेते हैं । प्रथा के अनुसार शुद्धि संस्कार भी होते रहते हैं । परिवार वालों का कर्त्तव्य बनता है कि पूर्वजों के प्रति देव मानवों के प्रति वार्षिक श्रद्धाञ्जलि अर्पण करें । कर्मकाण्ड तो तर्पण जैसी सरल प्रक्रिया से पूरा हो जाता है । पर श्राद्ध तब बन पड़ता है जब उनकी आत्मा को शान्ति देने के लिए वृक्षारोपण, प्रौढ़शिक्षा प्रसार जैसे उपयोगी कार्यों को स्मृति के रूप में हर वर्ष किया जाता रहे । यही पूर्वजों का सच्चा श्राद्ध तर्पण हो सकता है ।

प्राचीनकाल में तीर्थों के दिव्य वातावरण में ऋषिकल्प महाप्राणों के सान्निध्य में इन संस्कारों को कराने के लिए लोग जाया करते थे । पर अब वैसी परिस्थितियाँ बहुत ढूँढ़ने पर भी कहीं नहीं दीख पड़तीं । कहीं भी चिह्न पूजा करने की अपेक्षा यही अच्छा है कि संभ्रान्त समुदाय की उपस्थिति में उन संस्कारों को मिल-जुल कर सामूहिक रूप से कर लिया जाय । श्रेष्ठजनों के समुदाय को भी पुरोहित की मान्यता दी जा सकती है ।

व्यक्तित्व की अनगढ़ता मिटाते हैं—अध्यात्म उपचार

भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में सूक्ष्म शक्ति की प्रखरता काम करती देखी जा सकती है । जीवन की गरिमा और सफलता उसके स्थूल वैभव में सन्निहित नहीं है, जैसी कि आम मान्यता है । उसका वर्चस्व सूक्ष्म चिन्तन द्वारा किये गये आत्म-निरीक्षण और आत्म-निर्माण में सन्निहित है । इसी कारण चिन्तन की अनगढ़ता न सिर्फ स्थूल अंगों को प्रभावित करती है, अपितु सूक्ष्म अवयवों पर भी अपना असर डाले बिना नहीं रहती ।

उदाहरण के लिए, उस आम धारणा को लिया जा सकता है, जिसके बारे में मोटेतौर पर यह समझा जाता है कि आहार से रक्त बनता है और रक्त की शक्ति से शरीर में गर्मी और ऊर्जा उत्पन्न होती है, पर बारीकी से देखने पर विदित होता है कि आहार को रुधिर में परिवर्तित करने वाली एक प्रणाली और भी है और वही अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण भी है । स्वचालित नाड़ी संस्थान तथा चेतन-अचेतन द्वारा उनके नियंत्रण-संचालन की बात भी अब मोटी बात ही रह गयी है । मस्तिष्क एवं नाड़ी संस्थान को दिशा, प्रेरणा और सामर्थ्य प्रदान करने वाले केन्द्र और भी सूक्ष्म हैं । उनके निरीक्षण से ज्ञात हुआ है कि शक्ति और अशक्ति के मूल आकार और भी अधिक गहराई में छिपे हुए हैं तथा पिछले दिनों वे प्रायः अविज्ञात ही बने रहे हैं । यह तथ्य तब और अधिक सुस्पष्ट हो जाता है, जब घी-दूध जैसे मोटे बनाने वाले पदार्थों से वंचित व्यक्ति भी मोटे होते चलते हैं और चिकनाई एवं पौष्टिक आहार में डूबे रहने वाले भी दुबले-पतले देखे जाते हैं । ऐसी स्थिति में आहार का स्वास्थ्य पर पड़ने वाला प्रभाव न सिर्फ सिद्ध होता है, वरन् वह अमान्य स्तर का भी प्रमाणित हो जाता है । इसी प्रकार शरीर में चुस्ती, थकान, सर्दी-गर्मी का बाहुल्य कद का छोटा या बड़ा होना, मन्द और तीव्र बुद्धि, हिम्मत व भीरुता, सौन्दर्य एवं कुरूपता जैसी बातें जब स्वास्थ्य के सामान्य नियमों का उल्लंघन करते हुए घटने या बढ़ने लगती हैं, तब भी आश्चर्य होता है कि समुचित सावधानी बरतने पर भी यह अकस्मात् ही क्या व क्यों होने लगता है?

उत्तर मूर्धन्य शरीरशास्त्री एवं मनोविज्ञानी चार्ल्स ग्रिफिथ अपनी पुस्तक-'पिट्यूटरी-दि मास्टर ग्लैण्ड ऑफ दि बॉडी' में देते हैं । वे लिखते हैं कि शरीर में असमान्यताओं का पनपना अथवा महानता का उभरना-यह सब कुछ उन ग्रन्थियों पर आधारित है, जो 'हारमोन' नामक रस स्रवित करती हैं एवं जिनकी नियन्ता पिट्यूटरी नामक एण्डोक्राइन ग्लैण्ड है । उक्त पुस्तक में उन्होंने एक अत्यन्त अभिनव चिन्तन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि विज्ञान इनके रस-स्रावों को नियमित-नियंत्रित करने के लिए विभिन्न प्रकार के उपाय-उपचार ढूँढ़ने में संलग्न है, किन्तु जहाँ तक मेरा विचार है, यह सब आपातकालीन तात्कालिक उपचार मात्र भर है । समग्र चिकित्सा तो तभी संभव है, जब इसके मूल कारण को समझा जाये और विष-वृक्ष के पत्ते तोड़ने की अपेक्षा उसका मूलोच्छेदन करने का प्रयास-पुरुषार्थ किया जाय । उपर्युक्त पंक्तियों में उनका संकेत विकृत चिन्तन की ओर है । इससे स्पष्ट है कि बुरे चिन्तन के बुरे प्रभाव से सूक्ष्म-संस्थान भी सर्वथा अप्रभावित नहीं रहते । यह पाश्चात्य दृष्टिकोण है । प्राच्य चिन्तन के मतानुसार बुरे चिन्तन का बुरा असर पड़ता तो है, पर जब उस उत्पन्न विकृति को शोधने और सुधारने की बारी आती है, तो मात्र दृष्टिकोण का परिष्कार ही पर्याप्त नहीं होता, जैसा कि पश्चिम के मनोविज्ञानी अब मानने लगे हैं कि विचार तंत्र को सही कर लेने मात्र से विकृतियों का उन्मूलन संभव है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर भारतीय अध्यात्म इससे भी गहराई में उतर कर समाधान ढूँढ़ता और कहता है कि जब तक अन्तश्चेतना के उस उद्गम-उत्स का स्पर्श नहीं कर लिया जाय, जिसे साधना क्षेत्र में आस्था, श्रद्धा, भावना, आकांक्षा के नाम से पुकारा जाता है, तब तक बात बनने वाली नहीं । इन दिनों इसके अनेक उदाहरण भी देखे जाते हैं । कई बार रोगी को अच्छी से अच्छी चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने के बावजूद भी परिणाम निराशाजनक सामने आता है और उसकी स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है, पर जब मरीज की आस्था चिकित्सक के प्रति इस स्तर तक सुदृढ़ बना दी जाती है कि उसे गहन विश्वास हो चलता है कि उक्त डॉक्टर का उपचार उसे अवश्य ठीक कर देगा तो दवा के स्थान पर प्लेसिबो (चीनी की गोली) का प्रयोग भी उसे ठीक करने लगता है और बीमार शीघ्रता से स्वास्थ्य लाभ करता दिखायी पड़ने लगता है । यह दवा नहीं श्रद्धा की परिणति है, जिसका चमत्कारी परिणाम, जादुई असर प्रस्तुत करता है ।

विज्ञान आज इसी की उपेक्षा कर रहा है और उथले स्तर के प्रयोग-परीक्षणों में इसका समाधान खोजने की कोशिश कर रहा है । यह ठीक है कि अधिकांश शारीरिक पेचीदिगियाँ 'हारमोन' नामक रस-स्रावों से सम्बन्धित होती हैं, पर यह भी सत्य है कि ऐसी कठिनाइयाँ बाहर से ऐसे रस अथवा इस स्तर के रसायन शरीर के भीतर पहुँचाकर स्थायी रूप से दूर नहीं की जा सकती । यह तो उपचार का मोटा और उथले स्तर का तरीका है । जब भीतर का उपार्जन ही बन्द हो जाय, तो बाहर से पहुँचाई मदद कब तक काम देगी ? बात तब बनती है, जब उत्पादन के केन्द्र स्वत: ही अपने स्रावों को घटा या बढ़ाकर शरीर आवश्यकता की पूर्ति करते रह सकें । उपचार का उद्देश्य तो तभी पूरा हो सकता है, पर स्थूल उपादानों से बने विज्ञान को यह स्थिति हाथ आ नहीं रही है । आये भी कैसे ? कमरे के अन्दर प्रवेश करने वाले द्वार की जगह दीवार को टटोला-टमड़ा जाय, तो भीतर घुसना कैसे सम्भव हो सकता है? विज्ञान के साथ यही विडम्बना जुड़ी हुई है कि उसकी गहराई तक पैठ नहीं हो पा रही है । अगले दिनों अध्यात्म विज्ञान यही सम्पन्न करने जा रहा है । तब न इतनी गम्भीर बीमारियाँ समाज में रहेंगी, न पनपेंगी ।

ओछी भावनाएँ अन्तरात्मा में जमी न हों और क्षुद्रता प्रदान करने वालों पर महानता के संस्कार जम जायें, तो शरीर को ही नहीं, मस्तिष्क को भी बड़ा बनाने वाले हारमोन उत्पन्न होंगे । आने वाले समय में यही होगा, यह होकर रहेगा । इन दिनों स्थूल को अधिक महत्त्व देने के कारण ही शारीरिक-मानसिक विकृतियाँ इतने बड़े पैमाने पर पनपी हैं । आहार-विहार का प्रभाव इसी पर पड़ता है और औषधियों एवं उपकरणों से उपचार इसी का किया जाता है । इससे तनिक गहराई में उतरने पर सूक्ष्म शरीर की सूक्ष्म चेतना काम करती दिखायी पड़ती है । बोलचाल की भाषा में इसे मन अथवा मस्तिष्क कहते हैं । चिन्तन, वातावरण, तर्क, वितर्क, नशा एवं रसायन जैसे तत्वों से इसे प्रभावित-उत्तेजित किया जा सकता है । मनोविज्ञान के माध्यम से इसे ही परिष्कृत, संतुलित किया जाता है ।

तीसरा भाग इन दोनों से ऊपर है, जिसे कारण शरीर, हृदय, अन्त:करण, आत्मचेतना आदि नामों से पुकारते हैं । इसका सम्बन्ध मनुष्य की आस्था, श्रद्धा, आकांक्षा एवं भावना से है । आस्थाओं के आधार पर जीव की अन्तरंग सत्ता का प्रकटीकरण होता है । हारमोन इसी स्तर की स्थिति में प्रभावित होते हैं, इसीलिए यदि उन्हें चाहें तो संचित प्रारब्ध अथवा संगृहीत संस्कार की एक परिणति भी कह सकते हैं । यह संचय इस जन्म का भी हो सकता है और पिछले जन्मों का भी । परिवर्तन एवं उपचार इस स्तर की स्थिति का भी हो सकता है, पर वे प्रयत्न होने उसी प्रकार के चाहिए, जो आन्तरिक सत्ता की गहराई तक प्रवेश कर सकें और अपना प्रभाव उस पृष्ठभूमि तक उतार सकें ।

किन्तु इन दिनों पाश्चात्य मनोविज्ञान सूक्ष्म शरीर की सूक्ष्म भूमिका तक ही अपनी पहुँच बना सका है, इसलिए विज्ञान से तनिक ही ऊपर उठ मनोवैज्ञानिक सुधार-संशोधन के प्रयास करते पाये जाते हैं, जो गहराई में जमी विकृतियों को उखाड़ फेंकने के लिए पर्याप्त नहीं हैं । विचार संशोधन और परिमार्जन से आगे बीमारी होने और बढ़ने की सम्भावना को टाला तो जा सकता है, पर जहाँ प्रश्न कारणसत्ता में समायी विकृति को हटाने-मिटाने का उपस्थित होता है, इस स्तर का प्रयास अपर्याप्त साबित होगा और पुरुषार्थ इतना कठोर करना पड़ेगा कि हम उस भूमिका में पहुँच अन्तस् की उस सत्ता को प्रभावित कर सकें, जिसे समस्त स्थूल शरीर का निमित्त कारण माना जाता है । चूँकि उपचार इसी भूमिका में सम्भव है, अत: प्रधानता भी इसे ही मिलनी चाहिए ।

यह उपचार क्या हो, कैसे हो, यह उतना विस्तार यहाँ नहीं बताया जा सकता किन्तु एक तथ्य स्पष्ट किया जा सकता है कि हमारे ऋषिगणों ने हमारी जीवन जीने की दैनन्दिन प्रक्रिया को इस तरह साधना उपचारों से बाँधा है कि उन्हें जीवन में उतारने वाला कभी कारण शरीर की दृष्टि से व्याधिग्रस्त हो ही नहीं सकता । सिम्पैथेटिक पैरासिम्पैथेटिक सिस्टम इड़ा व पिंगला नाड़ी के रूप में हमारे स्नायु संस्थान का हृदय मानी जाने वाली स्पाइनल कार्ड रूपी कुण्डलिनी शक्ति के चारों ओर विद्यमान रह स्थान-स्थान पर पारस्परिक सम्बन्धों के गुच्छक बनाकर रसस्राव करते रहते हैं । इस पूरे संस्थान को आसन् मुद्रा, बंध, प्राणायाम, हठयोग के विभिन्न उपचार, ध्यान साधनाएँ आदि गहराई तक प्रभावित करते हैं । सूक्ष्म से भी गहरे जाकर नाड़ी गुच्छकों को उत्तेजित कर रसस्रावों द्वारा व्यक्ति का भावकल्प कर देने वाले यह प्रयोग स्वयं में अनूठे व रहस्यमय हैं । यदि इनकी गहराई तक जानकारी न भी हो किन्तु प्रारम्भिक प्रयास उचित मार्ग-दर्शन के साथ किया जा सके तो प्राणाग्नि को उद्दीप्त, प्रज्ज्वलित कर अपना व औरों का हित किया जा सकता है । यह विद्या शास्त्रसम्मत भी है व विज्ञानसम्मत भी । जीने का आनन्द

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेना हो तो सभी को इस दिशा में एक कदम उठाना ही चाहिए ।

व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास अध्यात्म द्वारा ही सम्भव

मनुष्य की समूची प्रगति उसके व्यक्तित्व की उत्कृष्टता पर निर्भर है । यदि व्यक्तित्व ही निकृष्ट या विखण्डित स्तर का हुआ तो व्यावहारिक जीवन में अनेकानेक विकृतियों, असफलताओं का सामना करना पड़ेगा । सारी उपलब्धियों एवं बौद्धिक प्रगति के बावजूद आज जिस तरह मनुष्य अपने को व्यथित, असुरक्षित, उद्विग्न एवं असफल महसूस कर रहा है. उसके मूल में उसके व्यक्तित्व का विखण्डन ही दृष्टिगोचर होता है । मूर्धन्य मनोविदों ने इस समस्या को गम्भीरता से लिया है और व्यक्तित्व को अविभाज्य बनाने के सम्बन्ध में शोध प्रयास भी आरम्भ किये हैं । इस दिशा में उन्हें आंशिक सफलता भी मिली है ।

मनुष्य को व्यक्तित्ववान बनाने के जितने भी पाश्चात्य प्रयत्न हुए हैं वस्तुत: वे सभी मानसिक स्तर तक ही सीमित रहे हैं । जब तक आत्मिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं मिलता, व्यक्ति को अधूरा ही कहा जायेगा । इस तथ्य का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करते हुए सुप्रसिद्ध मनीषी डॉ. आई. वी. सचदेवा ने अपने ग्रन्थ 'योग एण्ड साइको एनालिसिस' में कहा है कि व्यक्तित्व को अखण्डित बना सकना मानसिक स्तर से गहरे जाने पर ही संभव है । जहाँ इसको सर्वांगपूर्ण बनाया और समस्त व्यथाओं से छुटकारा पाया जा सकता है, वह आत्मिक स्तर ही है । जब तक समूचा जीवन इस केन्द्र से संचालित नहीं होता, तब तक इस समस्या के समाधान के लिए किये गये प्रयास वृक्ष की जड़ों को छोड़कर पत्तों को सींचने जैसे ही होंगे । सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान आत्मिक क्षेत्र से ही सम्भव है ।

इस तथ्य का स्वीकरण प्रख्यात मनोविद लारेन्स हाइड ने भी अपनी कृति 'आइसिस एण्ड ओरिसिस' में किया है । उनका कहना है कि मनोवैज्ञानिक विधियों की अपनी सीमाएँ हैं जिनके द्वारा मनोरोगों से ग्रसित रोगियों को इस परिधि में तो लाया जा सकता है, पर व्यक्तित्व विखण्डन जैसी गम्भीर समस्याओं का समाधान इसके द्वारा सम्भव नहीं हो सकता । उनके अनुसार जीवन को आत्म केन्द्रित बनाए बिना किसी भी तरह व्यक्तित्व तथा जीवन के बिखराव की परिसमाप्ति नहीं हो सकती । मनुष्य समाज को आत्म केन्द्रित बनाना भी तभी सम्भव है जब अध्यात्म का सहारा लिया जाय ।

धर्म एवं अध्यात्म का जो स्वरूप इन दिनों संसार के विभिन्न भूभागों में प्रचलित है उसको देखकर मनोवैज्ञानिकों का वैज्ञानिक मन एक वितृष्णा से भर उठता है । वे नहीं सोच पाते कि जो धर्म मनुष्यों को भेड़-बकरियों का झुण्ड समझकर उन्हें दूसरे झुण्ड से अपने झुण्ड में शामिल करने को ही अध्यात्म का सर्वस्व मान बैठे हैं, जिनकी सारी आध्यात्मिकता इसी फेर-बदल या परिवर्तन में सिमट गयी है । उससे भला व्यक्तित्व को सर्वांगपूर्ण कैसे बनाया जा सकता है । धार्मिकों का एक अन्य समुदाय भी है जो बात-बात पर जिहाद छेड़ता और दंगे कराने, काफिर-मारने के नाम पर मनुष्यों की हत्या करने में ही अपनी शान समझता है । इस धर्म बनाम अखाड़े से भी कोई समाधान निकलने वाला नहीं है ।

वस्तुत: आज मानव समाज अध्यात्म के उस स्वरूप की अपेक्षा रखता है, जो प्रथा-परम्पराओं या लोकप्रचलनों पर आधारित न होकर पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक हो । यह कार्यक्षेत्र अध्यात्म मनोविज्ञान का है । वर्तमान समस्याओं का समाधान कर मनस्शास्त्रियों को एक सशक्त आधार प्रदान कर सकना इसी के सहारे सम्भव हो सकेगा ।

अध्यात्म का मनोवैज्ञानिक स्वरूप भारतवर्ष के ऋषि चिंतन की अपनी विशिष्टता है । ऋषि-मनीषी कहे जाने वाले यहाँ के मनोवैज्ञानिकों ने मानव के व्यवहार एवम् अन्तराल का भली-भाँति विश्लेषण कर उसके व्यक्तित्व को परिपूर्ण बनाने तथा जीवन को आत्म-केन्द्रित करने की एक ऐसी प्रणाली विकसित की थी—जिसे अध्यात्म मनोविज्ञान नाम दिया जाना सर्वथा युक्तिसंगत है । इस मनोवैज्ञानिक प्रणाली को सुसम्बद्ध रूप से स्थापित करने का प्रमुख श्रेय महर्षि पतंजलि को है । उन्हें पूर्वात्य मनोविज्ञान के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकारा जा सकता है । सुविख्यात मनोविशारद कार्ल रोजर्स ने इसी प्रणाली से प्रेरणा ग्रहण कर एक 'नॉन डाइरेक्टिव थेरेपी' नामक पद्धति भी विकसित की है । जो पूर्णतया अध्यात्म विज्ञान को अपना आधार मानती है ।

अध्यात्म भी मनोविज्ञान हो सकता है । यह बात मनोविज्ञान के नूतन अध्येताओं को कुछ कौतुक जैसी भी लग सकती है । पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से ऐसा लगना स्वाभाविक भी है । किन्तु अध्यात्म को मनोवैज्ञानिक ढंग से परिभाषित करने पर तथ्य सहज ढंग से समझ में आ सकता है । इस प्रणाली के द्वारा चेतन मन को अचेतन मन में तब तक केन्द्रित करते हैं, जब तक दोनों मिल न जायें । फिर इन दोनों को अति-चेतन में विलय कर दिया जाता है । यह समूची मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया ही अध्यात्म है ।

इस तरह जीवन का संचालन मन:क्षेत्र से न होकर अतिमन के क्षेत्र से होता है । इस स्थिति में हम अपने मन पर उसी तरह अधिकार कर लेते हैं, जैसे अभी शरीर पर है । तभी समूची मानसिक शक्तियों का पूरी तरह सदुपयोग करना भी सम्भव बन पड़ता है । विशृंखलित व्यक्तित्व सहज ढंग से सुसम्बद्ध एवम् अखण्डित हो जाता है ।

व्यक्तित्व के अखण्डित स्वरूप को प्राप्त करने की इस भारतीय प्रणाली की मनोवैज्ञानिक विवेचना अपने समय के उत्कृष्ट चिंतक स्वामी प्रभवानन्द ने अपनी कृति 'हाऊ टू नो गॉड' में गम्भीरतापूर्वक की है । तथ्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया है कि मनोचिकित्सक अपने मरीजों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनो-शारीरिक स्तर तक एक सन्तुलन भर बिठा सकते हैं, पर इसके परे उनकी पहुँच नहीं हो पाती । जबकि इसके परे ही है व्यक्तित्व का उर्ध्वमुखी तथा अखण्डित होना । यह कार्य अध्यात्म करता है । अतएव यह भी कहा जा सकता है कि जहाँ से आधुनिक मनोविज्ञान की परिसमाप्ति होती है, वहीं से अध्यात्म मनोविज्ञान का प्रारम्भ होता है ।

मनोविशारद इरा प्रोगॉफ ने भी अपनी कृति 'साइकोलॉजी ऐज ए रोड टू फिलासफी' में उक्त मत का समर्थन करते हुए बताया है कि कोई भी मनोवैज्ञानिक प्रणाली मानव जाति की सेवा तभी पूरी तरह कर सकती है, जब वह वैयक्तिक दर्शन के रूप में भी उभर सके । यहाँ वैयक्तिक दर्शन से तात्पर्य उस विधा से है जो व्यक्ति के चिन्तन को सँवारे तथा परिष्कृत बनाए ।

आध्यात्म मनोविज्ञान अपने को इस कसौटी पर भी पूरी तरह से खरा सिद्ध करता है । महर्षि पतंजलि के सूत्र न केवल एक सर्वांगपूर्ण मनोवैज्ञानिक पद्धति है, बल्कि सदियों से उसे भारतीय षड्दर्शनों में मुख्य दर्शन के रूप में भी स्वीकारा गया है । यह वैयक्तिक दर्शन की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकने में पूर्णतया सक्षम है ।

यह पद्धति सैद्धान्तिक एवम् व्यावहारिक दोनों ही पक्षों को पूरी तरह से सन्तुष्ट करती है । इसका अवलम्बन जहाँ मूर्धन्य मनोविदों को, प्रयोगों को नयी गति देने वाला सिद्ध होगा, वहीं सामान्यजन इसकी प्रविधियों को व्यवहार में लाकर अपनी समूची मनोव्यथाओं से मुक्ति भी पा सकेंगे । आधुनिक मनश्चिकित्सकों का भी यह पुनीत दायित्व है कि इस पद्धति को अपनाकर व्यवहार में लाकर मानव तथा मानवता का हित सम्पादन करें ।

परिष्कृत कल्याणकारी विचार ही बनते हैं संस्कार

विचार मानव चरित्र के प्रकाशक हैं, पर तब जबकि वे आचरण से घुल-मिल गए हों । मनुष्य का चरित्र विचार और आचार दोनों में मिलकर बनता है । संसार में बहुत से ऐसे लोग पाये जा सकते हैं, जिनके विचार बड़े ही उदात्त, महान व आदर्शपूर्ण होते हैं । लेकिन उनकी क्रियाएँ तदनुरूप नहीं होती । विचार पवित्र हों और कर्म अपावन तो यह सच्चरित्रता नहीं हुई । इसी प्रकार बहुत से लोग ऊपर से बड़े ही सत्यवादी, आदर्शवादी और धर्म-कर्म वाले दीखते हैं, किन्तु उनके भीतर कलुषपूर्ण विचारधारा बहती रहती है । इन्हें भी सच्चे चरित्र वाला नहीं माना जा सकता । सच्चा चरित्रवान वही माना जाएगा और वास्तव में वही होता भी है, जो विचार और आचार दोनों को समान रूप से उच्च पुनीत रखकर चलता हो ।

प्रसिद्ध लोकोक्ति है—"धन चला गया, कुछ नहीं गया । स्वास्थ्य चला गया, कुछ चला गया । चरित्र चला गया, तो समझो सब कुछ गया ।" लोकविख्यात यह कथन शत प्रतिशत सही है । गया हुआ धन वापस आ जाता है । रोज न जाने कितने लोग धनी से निर्धन और निर्धन से धनवान होते रहते हैं । इसी प्रकार रोगों-व्याधियों और चिन्ताओं के प्रभाव से लोगों का स्वास्थ्य बिगड़ता और तदनुरूप उपायों से बनता रहता है । किन्तु गया हुआ चरित्र दुबारा वापस नहीं मिलता । ऐसी बात नहीं कि गिरे हुए चरित्र के लोग अपना परिष्कार नहीं कर सकते । दुष्चरित्र व्यक्ति भी सदाचार, सद्विचार और सत्संग द्वारा चरित्रवान बन सकता है । इसके बावजूद वह अपने उस असंदिग्ध विश्वास को नहीं पा पाता, चरित्रहीनता के कारण जिसे वह खो चुका होता है ।

मनीषी राल्फ लिंटन के ग्रन्थ 'द स्टडी ऑफ मैन' के पृष्ठों में झाँकें तो पता चलता है कि समाज जिसके ऊपर विश्वास नहीं करता, लोग जिसे सन्देह और शंका की दृष्टि से देखते हों, वह व्यक्ति बहुमूल्य होने पर भी निर्मूल्य ही है । यथार्थ चरित्रवान वही है, जो अपने समाज, अपनी आत्मा और अपने परमात्मा की दृष्टि में समान रूप से असंदिग्ध और सन्देह रहित हो । इस प्रकार की मान्य और निःशंक चरित्रमत्ता ही वह आध्यात्मिक स्थिति है जिसके आधार पर सम्मान, सुख, सफलता और आत्म-शान्ति का लाभ होता है ।

जीवन की बहुमूल्य विशिष्टता, सम्पदा, चरित्र निर्माण का आधार संस्कार है । मनोविज्ञानी फ्रांसिस मेरिल के ग्रन्थ 'द सीक्रेट सेल्फ' के अनुसार जिस प्रकार के संस्कारों का संचय हम करते रहते हैं, उसी के अनुरूप हमारा चरित्र बनता-ढलता चला जाता है । संस्कार मनुष्य के उन विचारों के ही प्रौढ़ रूप हैं, जो लम्बे समय तक रहने से मस्तिष्क में अपना स्थायी स्थान बना लेते हैं । यदि सद्विचारों को अपनाकर उनका ही चिन्तन और मनन किया जाता रहे तो संस्कार भी शुभ और सुन्दर बनेंगे । इसके विपरीत यदि असद् विचारों को ग्रहण कर मस्तिष्क में बसाया और मनन किया जाएगा तो संस्कारों के रूप में कूड़ा-करकट ही इकट्ठा होता रहेगा ।

संस्कारों की प्रबलता और महत्ता इसी बात से सिद्ध है कि जहाँ सामान्य विचार क्रियान्वित करने के लिए मनुष्य को स्वयं प्रयत्न करना पड़ता है, वहीं संस्कार उसको यन्त्रवत् संचालित कर देता है । शरीर यन्त्र, जिसके द्वारा सारी क्रियाएँ सम्पादित होती रहती हैं, सामान्य विचारों के आधीन नहीं होता । जबकि इस पर संस्कारों का परिपूर्ण आधिपत्य रहता है । न चाहते हुए भी शरीर यन्त्र संस्कारों की प्रेरणा से हठात् सक्रिय हो उठता है और तदनुसार आचरण कर बैठता है । इन संस्कारों को यदि मानव जीवन का भाग्यविधाता-आचरण का प्रेरक कह दिया जाय तो असंगत न होगा ।

विचारों का निवास चेतन मस्तिष्क और संस्कारों का निवास अवचेतन मस्तिष्क में रहता है । चेतन मस्तिष्क प्रत्यक्ष और अवचेतन मस्तिष्क अप्रत्यक्ष अथवा गुप्त होता है । यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण है कभी-कभी विचारों के विपरीत क्रियाएँ हो जाया करती हैं । मनुष्य देखता है कि उसके विचार अच्छे और सदाशयी हैं, तब भी उसकी क्रियाएँ इन विचारों के विपरीत हो जाया करती हैं । इस रहस्य को न समझ पाने के कारण कभी-कभी वह बड़ा व्यग्र होने लगता है । विचारों के विपरीत कार्य हो जाने का रहस्य यही होता है कि मनुष्य की क्रिया प्रवृत्ति पर संस्कारों का प्रभाव रहता है और गुप्त मन में छिपे रहने से उनका पता नहीं चल पाता । संस्कार विचारों को व्यर्थ कर अपने अनुसार मनुष्य की क्रियाएँ प्रेरित कर दिया करते हैं । जिस तरह पानी के ऊपर दिखने वाले कमल के फूल की जड़-पानी की तलहटी में जमा कीचड़ में छुपी होने के कारण नहीं दीखती, कुछ उसी प्रकार परिणामस्वरूप क्रिया की जड़ अवचेतन मन में छुपी होने के कारण नहीं समझ में आती ।

मानव मन के मर्मज्ञ लिन्डजे का शोध अध्ययन 'थॉट एण्ड पर्सनल्टि' स्पष्ट करता है कि कोई-कोई विचार ही तात्कालिक क्रिया के रूप में परिणत हो पाता है अन्यथा मनुष्य के वे ही विचार क्रिया के रूप में परिणत होते हैं, जो प्रौढ़ होकर संस्कार बन जाते हैं । वे विचार जो जन्म के साथ ही क्रियान्वित हो जाते हैं, प्रायः संस्कारों की जाति के ही होते हैं । संस्कारों से भिन्न तात्कालिक विचार कदाचित् ही क्रिया में बदल जाते हैं, बशर्ते कि वे संस्कार के रूप में परिपक्व न हो गए हों । सन्तुलित तथा प्रौढ़ मस्तिष्क वाले व्यक्ति अपने अवचेतन मन को पहले से ही उपयुक्त बनाए रहते हैं, जो अपने तात्कालिक विचारों को क्रिया रूप में बदल देते हैं । इसका कारण यही है कि उनके संस्कारों और प्रौढ़ विचारों में भिन्नता नहीं होती ।

संस्कारों के अनुरूप मनुष्य का चरित्र बनता है और विचारों के अनुरूप संस्कार । मार्टिनडेले के विचारकोष 'थाट्स इट्स-प्रोजक्शन' के अनुसार विचारों की एक विशेषता यह होती है कि यदि उनके साथ भावनात्मक अनुभूति का समन्वय कर दिया जाय तो वे न केवल तीव्र और प्रभावशाली हो जाते हैं, बल्कि जल्दी ही पककर संस्कारों का रूप धारण कर लेते हैं । किन्हीं विषयों के चिन्तन के साथ यदि मनुष्य की भावनात्मक अनुभूति जुड़ जाती है तो वह विषय उसका प्रिय बन जाता है । यही प्रियता उस विषय को मानव मन पर हर समय प्रतिबिम्बित बनाए रहती है । फलतः उसी विषयों में चिन्तन-मनन की प्रक्रिया भी अबाधगति से चलती रहती है और वह विषय अवचेतन में जा-जाकर संस्कारों का रूप लेता रहता है । इसी नियम के अनुसार प्रायः देखा जाता है कि अनेक लोग, जो कि प्रियता के कारण भोग-वासनाओं को निरन्तर चिन्तन से संस्कारों में सम्मिलित कर लेते हैं, बहुत कुछ पूजा-पाठ, सत्संग और धार्मिक साहित्य का अध्ययन करते रहने पर भी उनसे मुक्त नहीं हो पाते । वे चाहते हैं कि संसार के नश्वर भोग और अकल्याणकर वासनाओं से विरक्त हो जाए, लेकिन उनकी यह चाहत अधूरी बनी रहती है ।

दरअसल विचार जब तक संस्कार नहीं बन जाते, मानव वृत्तियों में परिवर्तन नहीं ला सकते । संस्कार रूप भोग-वासनाओं से छूट सकना तभी सम्भव होता है, जब अखण्ड प्रयत्न द्वारा पूर्व संस्कारों को धूमिल बनाया जाय और वांछनीय विचारों को भावनात्मक अनुभूति के साथ, चिन्तन मनन और विश्वास के साथ संस्कार रूप में प्रौढ़ किया जाय । पुराने संस्कार बदलने के लिए नए संस्कारों की रचना परमावश्यक है ।

यही परिवर्तित संस्कार, परिवर्तित चरित्र को जन्म देते हैं । संस्कारों के बदलाव के लिए यदि धैर्यपूर्वक अटूट प्रयत्न किया जा सके तो चरित्र में परिवर्तन दुःसाध्य नहीं । क्रूर कर्मा अंगुलिमाल का परम कारुणिक भिक्षु में बदल जाने, कामुकता की दुःसह आग में जलते रहने वाले विल्वमंगल के जीवन में ब्रह्मचर्य की, भक्ति भावना की शीतलता प्रवेश करने जैसा चमत्कार हमारे अपने जीवन में हो सकना सहज सम्भव है ।

चरित्र ही वह धुरी है जिस पर मनुष्य का जीवन सुख, शान्ति और मान-सम्मान की अनुकूल दिशा अथवा दुःख-दारिद्रय, अशान्ति-असन्तोष की प्रतिकूल दिशा में गतिमान होता है । जिसने अपने चरित्र का निर्माण आदर्श रूप में कर लिया उसने मानो लौकिक सफलताओं के साथ पारलौकिक सुख-शान्ति की सम्भावनाएँ स्थिर कर लीं ।

तब क्यों न उज्ज्वल चरित्र के लिए उज्ज्वल संस्कारों को कंजूस के धन की तरह बटोरना शुरू कर दे, लेकिन उज्ज्वल संस्कार तो तभी पनप सकेंगे जब उज्ज्वल विचारों को हम ग्रहण करने लगेंगे । अकल्याणकारक दूषित विचारों को एक क्षण के लिए पास न फटकने दें । वेद भगवान का आदेश "आ नो भद्रः क्रतवो यन्तु विश्वतः" (ऋग्वेद १-८९) सब ओर से कल्याणकारी विचार हमारे पास आएँ हमारा जीवन मंत्र बन जायें ।

इस महामंत्र की साधना से कुछ ही समय में शुभ विचारों से एकात्मक अनुभूति जुड़ जाएगी । उनके चिन्तन-मनन की निरन्तरता के फलस्वरूप वे मांगलिक विचार संस्कार बन-बनकर संचित होने लगेंगे जिनका प्रकाश चरित्र की असंख्य रश्मियाँ बनकर फूट निकलेगा । इनके प्रकाश में हमारा अपना भविष्य उज्ज्वल, उदीयमान, उत्कृष्ट बन सकेगा ।

आत्मोत्कर्ष की अवांछनीय उपेक्षा

आँखें बाहर का देखती हैं । वे न अपना स्वरूप देख पाती हैं और न अपनी बनावट के सम्बन्ध में कुछ प्रत्यक्ष अनुभव करती हैं । इसी प्रकार कान बाहर के शब्द सुनते हैं । हृदय की धड़कन, फेफड़ों की श्वसनक्रिया तक उन्हें सुनाई नहीं पड़ती । तत्व से बाहर की वस्तुओं को छूकर उनके सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है, पर इससे छोटी परिधि से बढ़कर बहुत दूर वाले पदार्थों की हलचलों की भी ज्ञानेन्द्रियाँ जानकारी प्राप्त नहीं कर सकतीं । एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सीमित दूरी तक ही उनकी पहुँच और पकड़ है, न वे अति निकट को समझ पाती हैं और न अति दूर को । इन्द्रियाँ पंचतत्वों से ही बनी हैं, इसलिए उनका सम्पर्क और अनुभव भी मात्र पदार्थ जगत के साथ ही बन पाता है । धीरे-धीरे मान्यता भी यही बन जाती है कि पदार्थ जगत ही सब कुछ है । शरीर सम्पर्क चूँकि उन्हीं के साथ रहता है, इसलिए उन्हीं के साथ प्रिय-अप्रिय और उपेक्षा की प्रवृत्ति भी बनती और बढ़ती रहती है । इतने ही छोटे संसार में जीवन जिया जाता है । इतने को ही प्रभावित करने और प्रभावित होने का सिलसिला प्राय: चलता रहता है । इसी परिधि में घूमते हुए आम आदमी कोल्हू के बैल की तरह अपने जीवन वैभव का समापन कर लेता है ।

यह एक प्राणिमात्र के साथ जुड़ा हुआ उपक्रम है । पदार्थों का उत्पादन व उपभोग करते हुए जीवधारी घाटे या नफे का समयाक्षेप करते हैं । इस प्रकृति प्रेरणा से प्रचलित प्रक्रिया के साथ जीवधारी जुड़े रहते हैं और कालक्षेप करते हैं । मनुष्य भी उन्हीं में से एक है ।

स्थूल दृष्टि इतना ही समझ और समझा पाती है कि महत्त्वपूर्ण भाग वह है जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं होता । जिसे इन्द्रियाँ देख, समझ नहीं पातीं । मन-मस्तिष्क को भी ग्यारहवीं इन्द्रिय माना गया है । इसलिये उसकी दौड़-धूप भी बहिरंग क्षेत्र तक ही सीमित रहती है । जो अप्रत्यक्ष है, अतिशय महत्त्वपूर्ण है, वह अविज्ञात-उपेक्षित स्थिति में ही पड़ा रहता है । ऐसी दशा में उसे परिष्कृत समुन्नत बनाने के लिए तो कुछ करते-धरते बन ही कैसे पड़े ?

जानने को तो सभी जानते हैं कि शरीर के भीतर कोई आत्मा भी है, पर यह ज्ञान कहने-सुनने और जानने-अपनाने तक ही सीमाबद्ध होकर रह जाता है । यह अनुभव नहीं किया जाता कि वस्तुत: ऐसा कुछ है भी क्या ? यदि है तो उसकी कुछ क्षमता, उपयोगिता, समर्थता एवं भूमिका भी प्रत्यक्ष जीवन में कुछ है क्या? इसे कोई विरला ही अनुभव कर पाता है । यदि वह अनुभूति बन पड़ी होती तो प्रसुप्तता हटती, चेतना जगती और उस महत्त्वपूर्ण पक्ष की स्थिति का पर्यवेक्षण किया गया होता । उसे अवगति से उबारा गया होता और ऐसा कुछ प्रयास बन पड़ता जिसे आत्मोत्कर्ष के नाम से जाना जाता और उस क्षेत्र के विकसित होने का चमत्कारी प्रतिफल हाथोंहाथ दृष्टिगोचर हो सका होता । पर उस उपेक्षा को क्या कहा जाय जिसके कारण हीरा भी काँच के ढेर में पड़ा रहता है और उसी के साथ तौला बेचा जाता है ।

स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि शरीर कितना ही सुन्दर, समर्थ, कुशल क्यों न हो, उसकी सत्ता और महत्ता अदृश्य आत्म-चेतना पर निर्भर रहती है । देखने में सभी का कायकलेवर प्राय: एक जैसा होता है । अन्तर एक सीमित मात्रा में ही पाया जाता है । इतने पर भी देखने में यह आता है कि एक व्यक्ति गये-गुजरे स्तर का होता है, तो दूसरा सभ्य, समुन्नत और सुसंस्कृत स्तर का जीवन-यापन करता है । एक उपेक्षा का भाजन बना रहता है, हेय समझा और भारभूत माना जाता है । इसके विपरीत दूसरे की प्रतिभा ऐसी होती है जिसके कारण उसकी सर्वत्र सराहना होती, उपयोगिता मानी जाती है । यह अन्तर किसी के शरीर या वैभव पर आधारित नहीं होता, वरन् उसकी उस विशिष्टता पर आधारित रहता है जिसे चेतना कहते हैं जो अदृश्य रहते हुए भी दृश्य का पूरी तरह सूत्र-संचालन करती है ।

यों समझा तो सब कुछ शरीर और साधनों को ही जाता है, पर वस्तुत: ऐसा है नहीं । कठपुतली का तमाशा बाजीगर की अँगुलियों से बँधे हुए तार के सहारे होता है । चेतना ही शरीर से क्रियाएँ और मस्तिष्क से विचारणाएँ सम्पन्न कराती है । प्राणान्त हो जाने पर कायकलेवर के सभी घटक यथावत् रहने पर भी सारी हलचलें समाप्त हो जाती हैं । इतना ही नहीं, कुछ देर रखे रहने पर लाश अपने-अपने घटकों में सड़ने, गलने और बिखरने लगती है । तथ्य स्पष्ट है कि जीवधारियों का जीवन और कुछ नहीं, मात्र प्राण चेतना की उपस्थिति मात्र है । वही 'स्व' है, वही 'अहम्' है वही 'आत्मा' है, उसका अस्तित्व जन्म लेने से पूर्व भी था और मरण के उपरान्त भी अनन्तकाल तक किसी न किसी रूप में बना रहता है । यही है वह तत्व जिसके स्तर के अनुरूप जीवन का उत्थान-पतन अवलम्बित रहता है ।

आश्चर्य इस बात का है कि मनुष्य का चिन्तन और प्रयास मात्र शरीर के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है । उसे पदार्थों और प्राणियों की कायाभार से लगाव होता है । धन संचय ही लक्ष्य स्तर का बनकर आकांक्षाओं पर छाया रहता है । इन्द्रियों मे उठने वाली खुजली जैसी ललक ही अपनी अभिरुचि के अनुरूप साधन जुटाने के लिए मचलती रहती है । कंचन और कामिनी जैसे कुछ ही प्रसंग मनुष्य के प्रिय विषय रहते हैं । प्रदर्शन के लिए आतुर अहंकार ऐसे प्रपंच रचता रहता है जो समयसाध्य, कष्टसाध्य, व्ययसाध्य होते हैं । सोचा जाता है कि सजधज और ठाटबाट से दूसरों को प्रभावित, चमत्कृत किया जा सकेगा । इसी अहंता की आपूर्ति का भारीभरकम ढाँचा खड़ा किया जाता है । यश और मान पाने की लिप्सा उद्विग्न किये रहती है । फिर भी वास्तविकता यह है कि किसी को भी देर तक दूसरों की ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं होती । हर व्यक्ति अपनी ही इच्छाओं, समस्याओं के फेर में इस कदर फँसा रहता है कि दूसरों के सम्बन्ध में नजर उठाकर देख लेने भर की यदाकदा फुरसत निकाल पाता है अन्यथा अपने ही कामों में व्यस्त व्यक्ति दूसरों की शृंगार-सज्जा और सम्पन्नता पर क्यों तो ध्यान देगा और क्यों चमत्कृत, प्रभावित होकर रहेगा ?

इतने पर भी सामान्यजन यही आशा लगाये बैठे रहते हैं कि लोग उन्हें सराहें, बड़ा आदमी मानें । इस दुराशा में ही प्राय: आधी शक्ति खर्च हो जाती है । जिसे यदि उपयोगी दिशा में नियोजित किया गया होता तो चेतना को समुन्नत बनाने का अवसर भी मिलता और ऐसा कुछ पुण्य-परमार्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते बन पड़ता जो लोक-कल्याण के क्षेत्र में अनुकरणीय भूमिका निभा सकना संभव बना देता । उस व्यामोह को क्या कहा जाय जो आत्मचिन्तन के लिये अन्तर्मुखी होने की स्थिति ही नहीं बनने देता ।

वस्तुओं को सँभालने-सजोने की व्यवस्था-बुद्धि सराहनीय मानी जाती है, पर न जाने क्यों वह शरीर और परिवार परिकर तक ही सीमित होकर रह जाती है, बाहर का बिखराव यदि समेटा जा सका होता तो आत्म-निरीक्षण का अवसर मिलता और शरीर के घटक अवयवों को सही स्थिति में रखने की सूझ सूझती । आमाशय, आतें, हृदय, फेफड़े, गुर्दे, रक्त-माँस आदि में इतनी विकृतियाँ भरी रहती हैं कि यदि उन्हें संशोधित स्थिति में रखने की बात सोची गयी होती, तो संयम, अनुशासन साधने मात्र से दुर्बलता और रुग्णता से छुटकारा मिल जाता । जिस काया को अपना स्वरूप समझा जाता है उसे तो सही स्थिति में रहने का अवसर मिलता पर उस बहिर्बुद्धि को क्या कहा जाय जो मात्र सज्जा, लिप्सा और सम्पदा तक ही सीमित रहती है और जिसे अपना माना जाता है, उस काया की अन्त:व्यवस्था को उपेक्षित रखने के कारण रुग्ण रहना और अकाल मृत्यु मरना पड़ता है ।

चेतना की स्वस्थता का स्वरूप है गुण, कर्म, स्वभाव में शालीनता का समुचित समावेश रहना । चिन्तन, चरित्र, व्यवहार में मानवोचित उत्कृष्टता का आभास मिलना । इसी उपलब्धि के आधार पर आत्मसंतोष का और लोकसम्मान का अर्जन बन पड़ता है इतना भर भी यदि हस्तगत न किया जा सके तो समझना चाहिए कि चेतना दलदल में फँसी रही, उसे स्वच्छ वातावरण में रहने का अवसर ही न मिला । यह अभाव इसलिए सहन करना पड़ता है कि आत्मचिन्तन के लिए अन्तर्मुखी होना नहीं आता । समीक्षा करने और आत्मसुधार के लिए प्रयत्नशील होने की बात एक प्रकार से विस्मृत ही रखी जाती रहती है ।

मूर्छा से जाग्रति-आत्मिक प्रगति

शक्ति का प्रचण्ड स्रोत परमाणुओं का समूह मिट्टी धूल बन कर पैरों तले उपेक्षित स्थिति में पड़ा रहता है । एक बड़ा ढेला भी तुच्छ प्रतीत होता है और उसका बाजारू मूल्य छदाम जितना भी नहीं आँका जाता । किन्तु जब थोड़ी गहराई में उतर कर इन ढेले के सब से छोटे-आँखों से न देखे जा सकने जैसे तुच्छ टुकड़े का विश्लेषण किया जाता है तो प्रतीत होता है कि वह न तो तुच्छ है और न निष्क्रिय । उसके भीतर प्रचण्ड हल-चल हो रही है । वह एकाकी नहीं है वरन् इलेक्ट्रोनों का एक समूह साथ लिये हुए है । परमाणु के ये अति तुच्छ घटक इलैक्ट्रोन सौरमण्डल के ग्रहों की गति से अपनी कक्षा पर द्रुतगति से भ्रमण करते हैं । विस्फोट करने पर नन्हा-सा परमाणु प्रचण्ड ऊर्जा और भयावह विकरण उत्पन्न करता है । उसकी विनाशलीला विस्तृत क्षेत्र को मटिया-मेट करके रख देती है । आश्चर्य होता है कि मोटेतौर पर धूलि का एक नगण्य-सा टुकड़ा जो नितान्त उपेक्षणीय प्रतीत होता था अपनी यथार्थ स्थिति कितना महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली था ।

प्रत्येक पदार्थ में अपनी असीम शक्ति भरी हुई है । जसा-सी बारूद विशालकाय चट्टानों को आसमान में उड़ा देती है । माचिस की एक तीली विस्तृत वन प्रदेश को जलाकर खाक कर देने वाली दावानल का रूप बना लेती है । प्रेसर कुकर में कैद जरा-सी भाप और स्टोव में बन्द तनिक-सी हवा जब फटती है तो बन्दूक चलने जैसे उपद्रव खड़े कर देती है । मोटी दृष्टि से पदार्थों की सामर्थ्य का कुछ पता नहीं चलता क्योंकि वह प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती है । जब कभी उसे जाग्रत होने का अवसर मिलता है तब प्रतीत होता है कि इस विश्व में कहीं भी न तो निष्क्रियता है और न अशक्तता । मूर्छना का आवरण ही हर वस्तु को, तुच्छ स्तर की बनाये हुए है । तनिक-सी हलचल उत्पन्न कर देने पर वह आवरण हटता है और सर्वत्र अनन्त शक्ति का समुद्र लहलहाता दीखता है ।

परमाणु से जीवाणु की सत्ता उतनी ही अधिक है जितनी कि एक ढेले की तुलना में जीवित प्राणी की । प्रकृति की जड़ समझी जाने वाली सत्ता का उपयोग करने की दिशा में प्रगति करते हुए ही विज्ञान के भयंकर शक्ति भण्डार हाथ लगा है । अन्तरिक्ष में अनन्त काल से भरा हुआ विद्युत प्रवाह पकड़कर मनुष्य की सेवा में प्रस्तुत कर दिया गया है और उससे श्रम की बचत एवं रोशनी, पंखा, अँगीठी, तार, टेलीफोन, सिनेमा, रेडियो जैसी असंख्य सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं । जड़ परमाणुओं की मूल सत्ता को जगाना और प्रयोग में लाना ही पदार्थ विज्ञान का एकमात्र काम है । उतने भर से मनुष्य की सुविधा एवं क्षमता में निरन्तर वृद्धि होती चली जाती है ।

चेतन जीवाणु की शक्ति जड़ परमाणु की तुलना में असंख्य गुनी अधिक है । प्राणी की क्षमता अनिर्वचनीय है । चेतना वस्तुत: परब्रह्म का एक छोटा घटक है । इस अंश भाग में अपनी मूल सत्ता के समान ही सामर्थ्य है । परमात्मा और आत्मा में इतना ही अन्तर है कि एक विभु है दूसरा अणु; पर मूल सत्ता की दृष्टि से दोनों का गुण, धर्म और सामर्थ्य सूत्र एक है । परमाणु अपने आप में एक सूर्य है । उसका छोटा परिवार भी सौर मण्डल के सदृश ही गतिशील है । अन्तर छोटे बड़े का है । इस छोटेपन को विशालता में विकसित होने की पूरी गुंजायश है । प्रत्येक जीवाणु का नाभिक अपने भीतर एक समूची दुनिया छिपाये बैठा है । उसके उदर में हो रही हलचलों को यदि पूरी तरह देख सकें तो प्रतीत होगा कि एक जीवाणु एक समूचा संसार है और उसमें बीज रूप से वह सब कुछ विद्यमान है जो बाहर की दुनिया में इन्द्रियों अथवा उपकरणों की सहायता से देखा जाना जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असंख्य जीवाणुओं का समूह प्राणी का शरीर है । प्राणियों में भी मनुष्य की संरचना विशिष्ठ है । उसका चेतन संसार और भी अद्‌भुत है । जड़ और चेतन की तुलना इस प्रकार की जा सकती है कि सशक्त रेल इंजन, हवाई जहाज, स्वसंचालित यंत्र भी चेतन मनुष्य के नियन्त्रण में ही अपना कार्य ठीक तरह कर पाते हैं । मानवी बुद्धि कौशल का प्रयोग न हो तो बहुमूल्य और अत्यन्त सामर्थ्यवान समझे जाने वाले यन्त्र भी जहाँ के तहाँ निष्क्रिय पड़े रहेंगे । जड़ के ऊपर चेतन का अनुशासन सर्वविदित है । इतने पर भी मनुष्य की सत्ता का बाजारू मूल्य तनिक-सा है । कितने ही लोग दीन-दयनीय स्थिति में पड़े हुए जिन्दगी की लाश बड़ी कठिनाई से रोते-धोते किसी प्रकार ढोते हैं । न उन्हें अपने आप पर सन्तोष होता है और न अन्य कोई उनसे संतुष्ट रहता है । यह सब व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव के साथ जुड़े हुए चेतना स्तर की गिरावट के कारण है । असहाय और अशक्त कोई मनुष्य तनधारी हो नहीं सकता । दुर्गति तो मूर्छना कराती है । सोयी हुई क्षमता का नाम ही दरिद्रता है । आलस्य और प्रमाद के कारण ही दुर्बलता के अनेक आकार-प्रकार सामने आते हैं । सतत जागरूकता और क्रमबद्ध सक्रियता जहाँ भी होगी वहीं मनुष्य तेजस्वी, ओजस्वी बन कर रह रहा होगा ।

उपेक्षित मिट्टी के ढेले की तरह ही दीन-दुर्बल मनुष्य भी नगण्य समझा जाता है । शक्ति के भाण्डारागार को इस मूर्छना ने ही अपरिचित स्थिति में ले जाकर पटक दिया है और तो और परब्रह्म की भी वैसी ही दुर्गति हुई है । उसकी दिव्य शक्ति पत्ते-पत्ते में लहलहा रही है और प्राणी के भीतर आत्म-सत्ता बनकर ज्योतिर्मय हो रही है फिर भी ईश्वर दर्शन की हमारी प्यास ज्यों की त्यों है । भगवान कहीं दीख नहीं पड़ता । सुदूर तीर्थस्थान की कष्टसाध्य यात्रा करके लोग भगवान का दर्शन करने के लिए जाते हैं और खाली हाथ लौट आते हैं । जिस-तिस विधि से किये जाने वाले विधि-विधान ज्यों-त्यों करके किये जाते रहते हैं फिर भी निराशा ही पल्ले बँधती है । ईश्वर पकड़ में आता नहीं केवल भटकाव ही हाथ लगता है । इसका कारण भी वही मूर्छना है; भगवान है तो सर्वत्र पर पड़ा मूर्छित स्थिति में है । उसे जगाया जा सके और प्रयोग में लाया जा सके तो निश्चित रूप से दैवी-सत्ता का सान्निध्य मिल सकता है और उसके सहयोग भर सहचरत्व से लाभान्वित हुआ जा सकता है ।

सर्वत्र प्रश्न एक ही है जो बहुमूल्य है वह आवरण के पीछे मूर्छित स्थिति में पड़ा है । संभवतः यह इसलिए है कि अविकसित स्तर के लोग उन उपलब्धियों को पाकर असंतुलित न हो बैठे और दुरुपयोग करके सर्वनाश न कर बैठे । जागरूक व्यक्ति ही शक्ति की महत्ता समझते हैं और उन्हीं के द्वारा सदुपयोग बन पड़ता है । अस्तु, अपनी मूर्छा छोड़ने और सम्पर्क क्षेत्र की मूर्छना दूर करना ही प्रगति का प्रथम चरण माना जाता है । अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश करने या विद्यार्थी को अपना पाठ यही से आरम्भ करना होता है । आत्मबोध की प्रक्रिया अपनाकर अन्तरंग में छिपी गरिमा को जगाया जाता है और तत्वबोध से बाह्य जगत में फैले हुए पदार्थों और प्राणियों में सुव्यवस्थित सम्बन्ध साधा जाता है । आत्मज्ञानी उसे कहते हैं जो अपने आपे को सही तरीके से सँभाल सके और सदुद्देश्य में नियोजित कर सके । तत्वज्ञानी उसे कहते हैं जो संसार की यथार्थता और प्राणियों की स्थिति विचित्रता को ठीक तरह पहचान सके । सही रीति का लोक व्यवहार इसी स्थिति में बन पड़ता है । लगता तो ऐसा है मानो आत्म-ज्ञानी लोकव्यवहार को भुला बैठा पर वस्तुतः वही सबसे अधिक क्रियाकुशल होता है । भेड़चाल के साथ पटरी न बिठाने के कारण उसे मूर्ख समझा तो जाता है, पर वस्तुतः वह वैसा होता नहीं ।

सर्वत्र प्रसुप्त स्थिति की घोर तमिस्रा छाई हुई है । निस्तब्ध सन्नाटा छाया हुआ है । शक्ति के प्रचण्ड भाण्डारागार का समुद्र ध्रुव प्रदेश जैसी हिमाच्छादित स्थिति में नितान्त निस्तब्ध बना हुआ है । परमाणु सत्ता-उपेक्षणीय धूल बनकर रह रही है । प्राणियों को जिन्दगी भारी पड़ रही है । मनुष्यों को दीन-दयनीय असहाय स्थिति में अभावों और सन्तापों से दुर्दशाग्रस्त देखा जाता है । यहाँ तक सर्वव्यापी, सर्वसमर्थ परमेश्वर भी अपने विराट् विस्तार में मूर्छाग्रस्त होकर लम्बी चादर ताने हुए सो रहा है । इस व्यापक निस्तब्धता में भटकने वाला जीवात्मा जिधर भी दृष्टि दौड़ाता है, उधर ही निराशा छाई दीखती है । कुछ पाने योग्य दीखता नहीं जो दीखता है, वह भी हाथ नहीं लगता । ऐसी दशा में सिवाय ऊब और खीज के और क्या मिलता है? मिलता तो जाग्रति में है । 'जागा पाता है और सोया खोता है' यह कहावत सुनी तो बहुत बार है, पर उसका प्रभाव तनिक भी नहीं पड़ा । जागने की इच्छा कभी नहीं हुई । जो स्वयं सो रहा है वह अन्यों को किस तरह जगाये ? बिना जगाये मूर्छाग्रस्त वातावरण में कौन क्या पाये ? जागरण आवश्यक है । अपने जगने पर ही मूर्छितों को जगाना और जो जगे हुए हैं उन्हें पहिचानना सम्भव होता है । अध्यात्मयोग इस महान जागरण का ही दूसरा नाम है । उपलब्धियाँ जाग्रतों को ही मिलती है । जो है उसे सँभालना और जो नहीं है उसे पाना मात्र जाग्रति की स्थिति में ही सम्भव है । आत्म-साधना को दूसरे शब्दों में समग्र जागरण का अभिनव प्रयास ही कह सकते हैं । आत्मबोध का प्रथम और तत्वबोध का द्वितीय चरण जब क्रमिक गति से उठता आरम्भ होता है तो उस प्रयास से महान जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकना सम्भव हो जाता है । आत्मिक प्रगति की दिशा में बढ़ने वाला पथिक प्रत्येक कदम पर एक-से-एक बढ़ी-चढ़ी उपलब्धियाँ, ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त करता चला जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रांति निज के अंतराल से आरम्भ होगी

जब हम 'क्रान्ति' शब्द पर विचार करते हैं, तो कई बार हमें भ्रान्ति हो जाती है । हम यह मान बैठते हैं कि क्रान्ति अर्थात्-सामूहिक क्रान्ति । क्रान्ति अर्थात्-सामाजिक क्रान्ति । इस सम्बन्ध में हमारी अब तक की मान्यता यह रही है कि यह सदा सामूहिक अथवा सामाजिक हुआ करती है, किन्तु तनिक गहराई में जाकर यदि चिन्तन करें, तो ज्ञात होगा कि तथ्य सर्वथा विपरीत है, सच्चाई बिल्कुल भिन्न है । क्रान्ति सर्वदा वैयक्तिक होती है । समाज में जो दिखायी पड़ता है, वह तो मात्र परिवर्तन है । यह वैयक्तिक क्रान्ति की ही परिणति है । क्रान्ति सामूहिक कभी होती नहीं । सामूहिक तो मात्र बदलाव होता है ।

समाज-व्यवस्था के विकास से लेकर अब तक के इतिहास का अध्ययन-अवलोकन करें, तो विदित होगा कि अब तक अगणित परिवर्तन, अगणित क्षेत्रों में सम्पन्न हो चुके हैं । अनुसंधान से यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि प्रत्येक के मूल में एक मार्ग-दर्शक सत्ता काम करती रही है । यदि वह सत्ता न होती, तो सम्भवतः वह परिवर्तन भी सम्पन्न न हो पाते । यहाँ ध्यातव्य यह भी है कि ऐतिहासिक क्रान्तियाँ तभी सम्भव हो पायी हैं, जब अगुआई करने वाले व्यक्ति की विचारधारा समाज के लिए ग्राह्य हो अथवा समाज ने उसे स्वीकार किया हो । उदाहरण के लिए, समाज-विकास सम्बन्धी प्रकरण को लिया जा सकता है । जैन-धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के मन में विचार आया कि व्यक्ति एक-दूसरे से अलग-थलग पड़े रहते हैं । इससे उन्हें अनेकानेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है । यदि उन्हें एक स्थान पर किसी प्रकार इकट्ठा किया और बसाया जा सके, तो इससे न केवल वे एक-दूसरे की विचारधारा से अवगत हो सकेंगे, वरन् परस्पर प्रेम-सौहार्द्र को विकसित कर मिलजुलकर अपनी समस्याओं का हल भी ढूँढ सकेंगे । बस उन्होंने अपना उक्त विचार तत्कालीन यायावरों के समक्ष रखा । उन्हें उनके विचार पसन्द आये । उनके स्वयं के विचारों में उथल-पुथल मची, उनका रूपान्तरण हुआ और क्रान्ति हो गई । समाज-निर्माण सम्बन्धी क्रान्ति यदि आदिमकाल में यायावर मनुष्यों के विचारों में परिवर्तन न आया होता, तो ऋषभदेव के उत्कृष्ट विचार भी समाज की स्थापना करने में सर्वथा विफल रहते । यहाँ द्रष्टव्य यह है कि क्रान्ति जैन तीर्थंकर ने नहीं की, उन्होंने तो सिर्फ मार्गदर्शन किया, रास्ता बताया । क्रान्ति का प्रादुर्भाव तो सही अर्थों में हर एक व्यक्ति के अन्तराल में हुआ और वही जब समग्र रूप में सामने आया, तो काया पलट हो गयी, परिवर्तन एवं नवनिर्माण हो गया ।

इसी बात का समर्थन करते हुए विवेकानन्द कहते हैं कि धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्रान्ति भी तभी शक्य है, जब हम उसके लिए तैयार हों । इससे कम में वह सम्भव हो ही नहीं सकती । वे कहते हैं कि आज हमारी मान्यता ही उलटी हो चुकी है । हम सोचते हैं कि इस संसार में सन्त, सुधारक अथवा कोई ऐसे अवतारी पुरुष आयेंगे, जो चमत्कारिक ढंग से दुनिया को बदल कर चले जायेंगे । उनके अनुसार आज समाज की ऐसी भौंडी सोच ही उसे समय की माँग के अनुरूप परिवर्तित नहीं होने देने के मूल में छिपी हुई है ।

यह सत्य है कि समय-समय पर अवतारी पुरुषों का इस धरित्री पर अवतरण होता आया है, पर समय और समाज का मार्ग-दर्शन करना ही उनका एकमेव हेतु रहा है, समाज गलत रास्ते पर चल रहा होता है, तो वे सही पथ-प्रदर्शन करते हैं, किन्तु इसके लिए उपकरण तो व्यक्ति को स्वयं बनना पड़ता है, वे सिद्धान्त बता देते हैं, पर व्यावहारिक जीवन में उसे उतारना तो समाज के हर एक व्यक्ति को ही पड़ता है, तभी युगान्तरकारी परिवर्तन सम्भव होता है । इससे कम में किसी प्रकार की क्रान्ति अथवा परिवर्तन की सहज संकल्पना नहीं की जा सकती । भगवान बुद्ध ने सूत्र दिया- 'अप्प दीपो भव' अपना दीपक आप बनो, दूसरे दीपक के प्रकाश में चलने की कोशिश मत करो, क्योंकि यह दूसरों का अधिक समय तक साथ न दे सकेंगे । सभी ने उनके इस मर्म को समझा और जुट पड़े अपने अन्तस् के दीप को जलाने में । प्रत्येक गृही और शरणागत शिष्यों ने प्रयत्न आरम्भ किया, तो धर्मचक्र प्रवर्तन हो गया, बौद्ध धर्म का विस्तार हो गया और समस्त मध्यपूर्व एशिया इस क्रान्ति से अछूता न रह सका, उसकी कायापलट हो गयी । भगवान महावीर ने कहा- ''अहिंसा परमोधर्मः'' अहिंसा ही सबसे बड़ा धर्म है । लोगों ने इसे अपने जीवन में उतारना आरम्भ कर दिया । बस क्रान्ति हो गयी, जैन धर्म का जन्म हो गया ।

मूर्धन्य मनीषी एवं दार्शनिक बर्ट्रेण्ड रसेल अपनी पुस्तक 'रिवोल्यूशन एण्ड दि सोसायटी' में इसी बात का अनुमोदन करते हुए लिखते हैं कि क्रान्ति सदा व्यक्ति में घटित होती है, समाज में अधिक-से-अधिक तो सुधार ही घट सकता है । वे आगे लिखते हैं कि जो क्रान्ति व्यक्ति में घटती है, वह अध्यात्म कहलाती है । समाज में वह घट नहीं सकती । जो घटती है, वह राजनीति होती है । स्पष्ट है, यदि हमें समाज में धार्मिक परिवर्तन लाना है, तो प्रत्येक के हृदय में उस महाक्रान्ति को जन्म देना होगा, जो परिवर्तन के लिए अभीष्ट है ।

लियो टाल्स्टाय अपनी चर्चित कृति 'समाज निर्माण' के 'नवनिर्माण' अध्याय में लिखते हैं कि समाज सुधार के लिए निश्चय ही संसार में सन्तों और महामानवों का समय-समय पर जन्म होता रहता है, पर वे भी व्यक्तियों द्वारा इस दिशा में प्रयास-पुरुषार्थ के अभाव में ज्यादा कुछ कर नहीं पाते । हाँ यदि लोगों ने पराक्रम करना स्वीकार कर प्रयत्नपूर्वक एक कदम आगे बढ़ाना अंगीकार कर लिया, तो यह सम्भव है कि महापुरुष अपने आत्मबल द्वारा पीछे से धक्का देकर उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दो कदम और आगे बढ़ा दें, किन्तु इसका शुभारम्भ उन्हें स्वयं से करना होगा, यह दायित्व उन्हें स्वयं निबाहना होगा, तभी ऐसा शक्य है । इसके अभावों में उनकी दशा उन लोगों जैसी हो जाती है, जिनके सामने भोजन परोसा रखा रहता है, पर हाथ-पैर न चला सकने की स्थिति में भूखे रह जाते हैं । एक उदाहरण देकर वे इसे और स्पष्ट करते हैं । कहते हैं कि जिस प्रकार साइकिल चलाने सम्बन्धी नियमोपनियम सुन, समझ और सीख लेने भर से ही साइकिल चलाना नहीं आ जाता, अपितु इसके लिए उस पर सवार होना और संतुलन बनाये रखना भी जरूरी होता है । आश्चर्य नहीं, इस क्रम में वह दो-चार बार गिर पड़े और चोट खा बैठे, पर यही गिर पड़ना उसे संतुलन रखना सिखा देता है । ऐसा न हो, तो सवार साइकिल चलाना जिन्दगी भर कभी सीख ही नहीं सकता । चढ़ना और गिर पड़ना उसके लिए स्वाभाविक और जरूरी है, उतना ही जरूरी जितना जीवित रहने के लिए प्राणवायु ।

वे आगे लिखते हैं कि जब मैं यह कहता हूँ योगी, यती, सन्त आदि सभी से उपदेश लेना तो मेरा तात्पर्य मात्र इतना होता है कि जितने साइकिल के ज्ञाता और निष्णात् हों, पूछ सबसे लेना, चलाने का मर्म प्रत्येक से समझ लेना, किन्तु इससे यह मत मान लेना कि साइकिल चलाना आ गया । यह तो सिद्धान्त है । इसे व्यावहारिक रूप तो साइकिल चढ़ कर ही देना पड़ेगा, तभी कोई साइकिल संचालन में कुशल बन सकता है । ठीक इसी प्रकार सन्तों के उपदेश सुनकर कोई सन्त नहीं बन सकता है । जब सन्त को अपने भीतर पैदा करेगा, तभी वह सज्जन कहला सकेगा ।

वर्तमान समय में टालस्टाय की यह बात अक्षरशः लागू होती है । हम यह समझकर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं कि प्रज्ञा का समर्थ अवतार इस पृथ्वी पर आयेगा और अपनी जादू की छड़ी घुमाकर पलभर में संसार को बदल कर रख देगा । कलियुग को क्षण मात्र में सतयुग-प्रज्ञायुग में परिवर्तित कर देगा, पर यह हमारा भ्रम है । यदि किसी ऐसी समर्थ सत्ता का अवतरण हुआ भी, तो भी यंत्र हमें ही बनना पड़ेगा, हाथ-पैर हमें ही चलाने पड़ेंगे, पुरुषार्थ हमें ही करना पड़ेगा । समग्र परिवर्तन तभी सम्भव हो सकेगा । विश्व की बदलती परिस्थितियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उस समर्थ सत्ता का अवतरण हो चुका है और प्रचण्ड विचार-प्रवाह के रूप में समस्त पृथ्वी पर वह छा चुकी है । अब इसके आगे का कार्य हमें करना है, हर एक व्यक्ति को करना है, मनुष्य मात्र को करना है । उस साश्वत चेतना प्रवाह को अपने अन्दर ग्रहण-धारण करना पड़ेग, जो प्रत्येक के अन्तस् में बुद्धपुरुष पैदा कर सके, अवतार-चेतना को जन्म दे सके, ऋषि उत्पन्न कर सके । महाक्रान्ति का सूत्रपात तभी सम्भव है । समग्र परिवर्तन युग-परिवर्तन तभी शक्य हो सकता है, इससे कम में नहीं ।

अचेतन में मानवी गरिमा का उद्गम स्रोत

व्यक्तित्व के उत्थान और पतन का सम्बन्ध एक सीमा तक ही शिक्षा और वातावरण से है, क्योंकि जहाँ से इस प्रकार का परिवर्तन आरम्भ और परिपक्व होता है उसे अचेतन मन का मर्मस्थल कहते हैं । मस्तिष्क का सचेतन भाग जानकारियाँ संग्रह करने और तदनुरूप व्यवस्था बनाने में काम आता है । शिक्षा एवं अनुभव के सहारे इसी भाग को विकसित किया जा सकता है । चतुरता एवं कुशलता जैसी उपलब्धियाँ इसी केन्द्र में पनपती और प्रखर बनती हैं । इतने पर भी जहाँ तक गुण, कर्म, स्वभाव पर आधारित व्यक्तित्व का सम्बन्ध है । यह नहीं कहा जा सकता है कि विद्वान् और बुद्धिमान होने पर भी कोई मनुष्य उस क्षेत्र में उत्कृष्ट एवं सुसंस्कृत सिद्ध हो सकेगा या नहीं । शिक्षा और कुशलता की दृष्टि से सुयोग्य ठहरने वाले व्यक्ति भी दुर्बुद्धि, दुर्भावना एवं दुष्प्रवृत्तियों में लिप्त पाये जाते हैं । जबकि अशिक्षितों और अकुशल समझे जाने वालों में से भी कितने ही आदर्शवादी, सद्गुणी और उदार जीवन जीने तथा लोकमंगल की दृष्टि से महान् प्रयोजन सम्पन्न करते देखे गये हैं ।

तथ्यों पर विचार करने से प्रकट होता है कि अचेतन मस्तिष्क ही अपने क्षेत्र में आदतों की जड़ें गहराई तक जमा लेता है और उन्हीं के सहारे व्यक्तित्व का स्तर उठता-गिरता रहता है । उस क्षेत्र में कारगर परिवर्तन करने से ही ऐसे परिणाम प्रस्तुत हो सकते हैं जिनके सहारे सामान्यों को असामान्य, दुर्बलों को समर्थ और पिछड़ों को अग्रगामी बनाया जा सके ।

व्यक्तित्व को अभीष्ट दिशा में अग्रगामी बनाने के लिए विज्ञान क्षेत्र में मानवी चेतना के अचेतन पक्ष की इन दिनों गहरी कुरेद-बीन की जा रही है और देखा जा रहा है कि मस्तिष्क की उन रहस्यमय परतों को किस प्रकार प्रखर, परिष्कृत, सक्षम एवं मनुष्य को अधिकाधिक समुन्नत बनाने में उन्हें किस प्रकार प्रयुक्त किया जा सकता है ।

कहना न होगा कि व्यक्तित्व मान्यताओं, आदतों, इच्छाओं का समुच्चय मात्र है । वह इन्हीं तीनों के सहारे गढ़ा गया है । इनमें हेर-फेर करने से ही मनुष्य को किसी दिशा में प्रवीण-परिपक्व-तत्पर सफल बनाया जा सकता है । अचेतन को मर्मस्थल एवं अन्तराल कहा गया है । इसे प्रभावित करने में सामान्य परामर्श काम नहीं करता । उसके लिए ऐसे उपाय अपनाने पड़ते हैं जिनकी पहुँच अन्तराल की गहराई तक सम्भव हो सके ।

मस्तिष्क को ग्यारहवीं इन्द्रिय माना गया है और शरीर के अन्यान्य अवयवों की तरह उसे भी अपने ढंग का एक विशेष घटक माना गया है । बुद्धिमानी की गणना लगभग पहलवानों के स्तर से की जा सकती है । बहुत हुआ तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे कलाकारिता, प्रतिभा, प्रवीणता के रूप में प्रतिपादित किया जाता है । इतने भर से महानता की उत्पत्ति नहीं होती । महामानव स्तर का व्यक्तित्व निखारने में सबसे अधिक सहायक यही सामर्थ्य स्रोत होता है जिसे वैज्ञानिक 'अचेतन मन' एवं अध्यात्मवादी 'चित्त' कहते हैं । चित्त का परिष्कृतीकरण इतना बड़ा पराक्रम है कि उसके बदले संसार की हर सफलता उपलब्ध की जा सके ।

व्यक्ति का आज सबसे बड़ा दुर्भाग्य है, स्वयं के बारे में भ्रांतिपूर्ण मान्यता । वस्तुत: मनुष्य वह नहीं है जो उसने मान रखा है । स्काटिश दार्शनिक डेविड ह्यूम कहते हैं "हम अपने मस्तिष्क पर स्वयं की जो आकृति आरोपित कर देते हैं, वह त्रुटिपूर्ण है ।" 'स्व' की वास्तविक अनुभूति जिस विवेक बुद्धि के सहारे होती है, उसे ही इण्ट्यूशन, प्रज्ञा या अन्तर्चक्षु कहते हैं ।

चेतन मन प्रकृति का ज्ञानेन्द्रियों एवं वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा निरीक्षण करता है, जिसके फलस्वरूप विज्ञान का इतना विकास सम्भव हो सका है इसके अतिरिक्त चेतन मन आगमन-निगमन प्रक्रिया से तर्क करता है जिससे शास्त्रों का निर्माण हुआ है ।

अचेतन मन में अन्त:ज्ञान एवं अन्त:प्रेरणाएँ उत्पन्न होती है । इनके द्वारा ही वैज्ञानिक, मनीषी, सन्त नये आविष्कार करने में एवं समाज को नवीन विचार, भावनाएँ आदि भेंट करने में सक्षम होते हैं ।

'सर पीटर मेडावार' नोबुल पुरस्कार विजेता का कथन है "तर्क बुद्धी की पहुँच अचेतन तक नहीं है । तर्क शक्ति के उपयोग की एक मर्यादा है । विभिन्न परीक्षणों एवं निरीक्षणों के संग्रह को सूत्रबद्ध करके सार्थक सिद्धान्तों में परिवर्तित कर देना तर्क शक्ति के परे की बात है । यह कार्य अन्त:प्रेरणा के माध्यम से हुआ करता है ।"

उनका कहना है कि 'सुपरमाइण्ड' मन के ढर्रे में चल रहे चिन्तन से ऊपर की स्थिति है । ढर्रे का चिन्तन 'कण्डीशण्ड', यथास्थिति चिन्तन कहलाता है । इसे ही जाग्रत मन 'चेतन मन' कह सकते हैं । इसे भारतीय अध्यात्म शांत अतिचेतन मन तथा 'न्यूटेस्टामेण्ट' स्वर्ग का साम्राज्य कहता है । यही हमारा वास्तविक 'स्व' है ।

इसे ऐसा समझाया जाये कि यह क्या है, इसकी संरचना क्या है, इसके बजाय यह देखा जाना चाहिए कि यह क्या नहीं है? यह कण्डीशण्ड माइण्ड नहीं, है । इसमें निषेधात्मक चिन्तन को कोई स्थान नहीं इसमें भय, ऐषणा, शंका की कोई जगह नहीं है । यह सदैव प्रसन्नता से युक्त है तथा आत्मिक एवं भौतिक दृष्टि से सबल सम्पन्न जीवन के यह सपने देखता है ।

कण्डीशण्ड मन को हम चित्त या अचेतन कह सकते हैं जो कुसंस्कारों से युक्त है जो रह-रहकर सचेतन पर हावी होते हैं एवं नरपशु का जीवन जीने को बाध्य करते रहते हैं । जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार इसमें भरे पड़े हैं । चित्त का स्वभाव है कि वह स्वचालित जीवन जीता है । अधिकांश का जीवनक्रम इसी प्रकार का होता है जिसका स्वाभाविक एक ही स्वरूप होता है, भोजन एवं प्रजनन । इससे परे, इससे ऊँची भी कोई स्थिति हो सकती है, इस पर किसी का ध्यान ही नहीं जाता ।

चित्त या कण्डीशण्ड मन हमारी मान्यताओं, पूर्वाग्रहों, विश्वास, संस्कारों, शंकाओं, प्रतिक्रियाओं एवं दुराग्रहों का समुच्चय है । ये सारे पक्ष में हमें व्यावहारिक जीवन कष्ट में डालते हैं । यह मनुष्य का वास्तविक 'स्व' या सेल्फ नहीं है । इसलिए यह जरूरी है कि मनुष्य अपनी इस काया से अपने को मुक्त करे इन बन्धनों से स्वयं को निकाल बाहर करे ।

रोजमर्रा का मन आत्मिक प्रगति में सहायक नहीं हो सकता । अपनी समस्त समस्याओं का समाधान ढूँढ़ना हो तो मन को ऊँची स्थिति में ले जाना होगा । वास्तविक अध्यात्म यही है जिसमें मन को अज्ञात उच्चतम स्थिति की ओर मोड़ना होता है ।

सुपरमाइण्ड हर व्यक्ति के अन्दर है, पर यह सोया हुआ है । मनुष्य का सबसे बड़ा पुरुषार्थ यही हो सकता है कि वह इसे जगा ले । अपनी निराशा एवं असीम भ्रम-जंजालों से मुक्ति पाने के लिए मानव ने क्या-क्या प्रयास नहीं किये हैं—विज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शान्ति सम्मेलन, नैतिक विधि-विधान, धर्ममत, दार्शनिक प्रतिपादन सभी मार्गों से व्यक्ति ने अपनी प्रगति का पथ खोजा है, पर ये प्रयत्न गम्भीर एवं आन्तरिक ज्ञान की पिपासा से प्रेरित नहीं थे । जब सुपर मन जागता है तो बाह्य परिस्थितियाँ स्वत: ठीक होती चली जाती हैं । उठी हुई मन:स्थिति बाह्य जीवन की सारी परिस्थितियों को बदलकर रख देती है । वास्तव में परिस्थितियों का उद्गम स्थल अन्त:करण ही है । जैसे-जैसे हमारा स्तर ऊँचा उठता चला जाता है, बहिर्जीवन का स्वरूप भी बदलता चला जाता है एवं परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं । यदि हम अपने दैनिक जीवन में आने वाली परिस्थितियों का नियंत्रक होना चाहते हैं तो हमें मात्र एक चीज सीखनी होगी, वह है अपने 'स्व' पर, 'इनरसेल्फ' पर आधिपत्य ।

जिसका मन ऊँचा उठ गया, सुपर मन बन गया, वह भय से दूर होता चला जाता है । तैत्तिरीयोपनिषद कहता है, "जिसने अन्त: की शरण ले ली, उसे कोई भी भय नहीं प्रभावित कर पाता ।"

एक साधारण व्यक्ति को यह जानकर बड़ा आश्चर्य होता है कि एक और जगत हमारी कामनाओं, ऐषणाओं से परे है । बहुसंख्य व्यक्ति यह नहीं जानते कि हमारी आदतों से संस्कारों से गढ़े मन (चित्त) एवं अति मन के बीच एक क्षीण-सी विभाजन रेखा है । मानव विनिर्मित कल्पनाएँ एवं मान्यताएँ, चिन्तन का जन-प्रचलित ढर्रा ही इस रेखा की एनॉटामी है । यदि इस बैरियर को तोड़ दिया जाये तो अन्त:

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के जगत में प्रवेश कर सकना सम्भव है, उस प्रकाश को पाना शक्य है जो अतिमन को जाग्रति का प्रथम चिह्न है ।

वस्तुत: आदमी का व्यक्तित्व विभाजित है । एक ओर वह सम्पर्क के व्यक्तियों तथा संचित सुख-साधनों में अपनी सुरक्षा समझता है तो दूसरी ओर उनमें उसे खालीपन, एक शून्यता की भी अनुभूति होती है । उसे लगता तो है कि अन्त: में प्रवेश करना चाहिए, यह जानना चाहिए कि वस्तुत: हमारे जीवन का मकसद क्या है, पर इस सम्भावना से वह भयभीत है कि आत्मनिरीक्षण मुझे कहीं निराश न कर दे, मेरा सही स्वरूप न उजागर कर दे । वह घोषणा तो करता है कि वह कुछ बड़ा काम करेगा, पर कर नहीं पाता । वह अपने आपको दूसरों के साथ सम्मिलित तो करना चाहता है पर 'स्व' को भुला व घुला नहीं पाता । रह-रहकर वे ही चिरसंचित संस्कार आड़े आ जाते हैं जो उसके अनगढ़ मन के महत्त्वपूर्ण घटक बन गये हैं । उसकी मुस्कराहट में एक चिन्ता की झलक दिखाई पड़ती है । वह अपनी चिन्ता को दूर करने के लिए स्वयं को विभिन्न गतिविधियों में उलझाता है, पर जब वे समाप्त होने लगती हैं तो सम्भावित नीरवता उसे भयभीत कर देती है ।

आज का व्यक्ति अत्यधिक भयभीत है । उसका तनाव उसे अस्थायी उत्तेजनाजनक सुखों में शरण लेने को बाध्य करता है, पर धीरे-धीरे भटकाव उसे वापस उसी स्थान पर बल्कि आत्मिक प्रगति के मार्ग पर कुछ पीछे ले आता है ।

फ्रायड का कथन है, "सचेतन बुद्धिमुक्त मस्तिष्क की तुलना में अचेतन अत्यधिक समर्थ, सुदृढ़ और दूरगामी परिणाम प्रस्तुत कर सकने वाला है और लोक व्यवहार में विचार शक्ति का महत्त्व कितना ही क्यों न हो, व्यक्तित्व का स्वरूप बनाये रखने तथा निखारने में अचेतन कार्य-क्षमता ही प्रभावी सिद्ध होती है ।"

मनोविज्ञानी प्रिंसहार्न का कथन है-"भौतिक सफलताएँ चातुर्य पर निर्भर हैं, किन्तु मनुष्य का असामान्य एवं प्रतिभा सम्पन्न होना पूर्णतया उसके सचेतन पर निर्भर है । महामानवों को साधारण स्थिति से उबारने और ऊँचा उछालने में उनके पुरुषार्थ का उतना योगदान नहीं रहा जितना अन्तरंग से उमड़ने वाली प्रेरणा एवं आस्था का ।"

ये सारे प्रतिपादन एक ही तथ्य का समर्थन करते हैं कि साधना और कुछ नहीं अचेतन का परिष्कार एवं स्व का आभार है । इस पुरुषार्थ में जिसने अपने को खपा दिया उसने आत्मोत्थान की प्रगति की दिशा में कुछ चरण आगे बढ़ाये । व्यक्तित्व का विकास इसी कटहरे से आरम्भ होता है और चलते-चलते अतिमन की स्थिति में व्यक्ति को महामानवों की श्रेणी में पहुँचाता है । साधना इसी आपे की की जाती है । वेदान्त में जिस देव की उपासना के गुणगान लिखे हैं, वह यही देवाधिदेव आत्मदेव है । इसके लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं । वह अपने ही भीतर बैठा-प्रसुप्त की स्थिति में है । आवश्यकता इसे जगाने भर की है । साधना-पुरुषार्थ इसी निमित्त नियोजित है ।

मनस-एक कल्पवृक्ष

कहा जाता है कि स्वर्ग में एक कल्पवृक्ष है । उसके नीचे जो भी देवता बैठते हैं, उन सभी की कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं । कल्पनाओं को, इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है, कल्पवृक्ष । वह देवलोक में ही उगा और स्थिर रहा है । उसको पातालवासी दैत्य-नाग अपने यहाँ ले जाने का प्रयत्न करते रहे पर उनकी इच्छा पूर्ण हुई ही नहीं । कल्पवृक्ष टस से मस नहीं हुआ । वहाँ के वातावरण की उसे कल्पना जानकारी थी, इसलिए वहाँ जाने या रहने के लिए वह तैयार ही नहीं हुआ ।

कल्पवृक्ष क्या है ? इसका यथार्थ ज्ञान करने के लिए हमें यह समझना चाहिए कि वह कोई पेड़ नहीं है । पेड़ों के लिए तो अपनी धरती ही उपयुक्त है, स्वर्ग या पाताल में ऐसी भूमि नहीं है जिनमें पेड़-पौधे उग सकें और न ही सम्भव है कि किसी पेड़ के नीचे बैठने भर से लोगों की इच्छाएँ पूरी हो जाया करें । यदि ऐसा हुआ होता तो किसी को पात्रता, योग्यता बढ़ाने और पराक्रम करने, साधन जुटाने की क्या आवश्यकता पड़ती । फिर तो बिना योग्यता, बिना परिश्रम के ही लोग अपने-अपने मनोरथ पूरे कर ले जाया करते, यह असम्भव है । कल्पवृक्ष एक अलंकारिक शब्द है जिसका अर्थ है कल्पनाओं, कामनाओं को पूरा करने का केन्द्र एवं तरीका । मनुष्य का जीवन ही कल्पवृक्ष है । उसकी जड़ें, तना, टहनियाँ, पत्ता, फल-फूल सभी ऐसे हैं कि उनका यदि ठीक तरह उपयोग किया जाय तो व्यक्ति के मन में ऐसी ही कल्पनाएँ, कामनाएँ उठेंगी जो उचित परिश्रम करने और अनुरूप व्यक्तित्व निखारने के उपरान्त सहज ही पूरी हो सकती हैं । श्रम से क्या नहीं हो सकता ? प्रयास की उपयुक्तता क्या सम्भव करके दिखा नहीं सकती । संसार में ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने असम्भव को सम्भव करके दिखाया । यह कोई जादू चमत्कार नहीं है । देव-दानवों की सहायता से भी ऐसा नहीं बन पड़ता, किन्तु पुरुषार्थी गंगा को स्वर्ग से उतार कर भागीरथ की तरह जमीन पर ला सकते हैं, अर्जुन की तरह जमीन में तीर मारकर पानी को उछाल कर भीष्म की प्यास बुझा सकते हैं । अगस्त की तरह समुद्र सोख सकते हैं । हनुमान की तरह पर्वत उखाड़ सकते हैं । नल-नील की तरह समुद्र पर सेतु बना सकते हैं । मनुष्य की सामर्थ्य असीम है । जिस प्रकार परमाणुओं में अनन्त शक्ति का भण्डार भरा है और उनके विस्फोट होते ही तहलका मच सकता है । उसी प्रकार मनुष्यों में से प्रत्येक में वह सामर्थ्य भरी पड़ी है जिसके सहारे कठिन से कठिन कार्य सरल हो सकते हैं ।

जीवन के प्रत्येक घटक में ऐसी ऊर्जा भरी पड़ी है कि उसे जिस भी दिशा में बढ़ा दिया जाय उसी दिशा में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तूफानी गति से बढ़ चलने का उपक्रम बन सकता है । यह निश्चय करना मनुष्य का अपना काम है कि उसे किस दिशा में मोड़े और बढ़ाये । वह चाहे तो उसे दुष्ट, दुरात्मा, नीच, पापी और पाखण्डी के रूप में अपने को अग्रसर कर सकता है और उस सन्दर्भ में भी इतनी सफलता प्राप्त कर सकता है जिसे देख-सुनकर रोमाञ्च हो उठे । वह चाहे तो, उत्कृष्टता को भी इस सीमा तक धारण कर सकता है कि उसे शत-शत नमन करना पड़े और असंख्यों को भावभरी प्रेरणा तथा दिशा मिले ।

हमारी अपनी कल्पनाएँ दुष्ट और भ्रष्ट भी हो सकती हैं, आकांक्षाएँ निकृष्ट भी हो सकती हैं । पराक्रम से किसी हद तक उसे कार्यान्वित भी किया जा सकता है, पर अन्ततः उनका बुरा परिणाम होना निश्चित है । कुकर्म नरक की कीचड़ में ही घसीट ले जाते हैं । स्वर्ग में अवस्थिति कल्पवृक्ष का लाभ उन्हें ही मिलता है, जिनका लक्ष्य-प्रयोजन उच्चस्तरीय हो, जो ऊँचा सोचे और आदर्शों को अपनाये ।

व्यक्तित्व रूपी सिक्के के दो पहलू

निजी स्वभाव, स्तर और पराक्रम में उत्कृष्टता का समावेश अभिवर्द्धन करना आवश्यक है, क्योंकि निजी व्यक्तित्व ही वह चुम्बकत्व है, जिससे आकर्षित होकर दूसरों का सहयोग मिलता है और अनुकूल वातावरण विनिर्मित होता है । अपना स्वभाव क्रोधी हो तो प्रतिक्रिया ऐसी ही बनती रहेगी कि दूसरे भी दुर्व्यवहार करें और प्रतिशोध लें । आवेशग्रस्त व्यक्ति का स्वभाव, व्यवहार सज्जनों को भी खिन्न-विपन्न बना देता है । वे उसका बदला न भी लें तो भी उपेक्षा अवश्य अपनाते हैं । बचकर रहने एवं रखने का प्रयास करते हैं । ऐसी दशा में सहयोग, परामर्श, स्नेह तो मिल ही नहीं पाता और उस आधार पर किसी प्रकार का लाभ उठा सकने का सुयोग तो बनता ही नहीं । इसके विपरीत आदर्शवादी चिन्तन, चरित्र और व्यवहार ऐसी परिणति उत्पन्न करते हैं कि पराये भी अपनों जैसा बरताव करने लगें । सज्जनता की सद्भावना अनेक को अनायास ही आकर्षित करती है और सम्मान, सहयोग के व्यवहार में अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करती है ।

महामानवों में यह विशेषता रही है कि वे अपने चरित्र को, स्वभाव को ऐसा बनाते हैं, जिसके प्रति सहज सद्भाव उपजे । अपने व्यक्तित्व का चुम्बकत्व उसी स्तर के लोगों को खींच बुलाता है और स्वभावतः ऐसा सहयोगी मण्डल बन जाता है जो सत्प्रवृत्तियों में संलग्न रहता दिखाई पड़े, एक-दूसरे को ऊँचा उठावे, आगे बढ़ावे, सत्परामर्श दे, प्रशंसा करे और ऊँचा उठाने वाले प्रयासों का सुयोग बिठाये । इस प्रकार अपनी उत्कृष्टता दूसरों की श्रेष्ठता को उभारती है, निकट लाती है और उस समन्वय का प्रभाव यह होता है कि उस मण्डली का प्रत्येक सदस्य लाभ में रहता है । अधिक नफे में वह रहता है, जिसने श्रेष्ठता सँजोने में पहल की थी । कारण यह कि उसकी व्रतशीलता संकल्प रूप में परिणत होती और सुस्थिर रहती है । जिस दिशा में तेज हवा प्रवाहित होती है, उसी ओर उस क्षेत्र में बिखरे हुए तिनके, पत्ते भी उड़ने लगते हैं । स्वभाव की विशिष्टता अपने लिए सहयोग की बहुलता अनायास ही एकत्रित करती रहती है । महापुरुषों का सफल जीवन मूलतः इसी तथ्य पर आधारित रहा है । उनके विकास, परिष्कार में यही निमित्त कारण आधारभूत रहे हैं । उत्कर्ष के अनेक कारणों में जहाँ अपना पराक्रम, पुरुषार्थ महती भूमिका निभाता रहा है, वहाँ यह भी बड़ा कारण रहा है कि संभ्रान्त सहयोगियों के प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से उस उत्थान में येन-केन प्रकारेण सहकार मिलते रहे हैं ।

व्यक्तित्व की उत्कृष्टता का प्रथम प्रतिफल आन्तरिक संतोष है । संतोषी सुखी भी रहता है और प्रसन्न-उल्लसित भी । जिसे आन्तरिक संतोष है, उसे भीतर से शक्ति मिलती है और वह एकाकी चलकर अपने बलबूते भी बहुत कुछ कर सकता है । आदर्शों का अवलम्बन करने से उसका चिन्तन सही रहता है और कार्य करने की दिशाधारा में सौमनस्य बना रहता है । गलत मार्ग पर उसके कदम प्रायः उठते ही नहीं । उठते भी हैं तो तुरन्त वापस लौट आते हैं । गलती को सुधारने में देर नहीं लगती । इसमें झिझकने, संकोच या विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । भूल करना मनुष्य की अपूर्णता के कारण होता ही रहता है, पर महानता इसमें है कि भूल को देर तक अपनाये न रहा जाय । उसे समझ लेने के साथ-साथ सुधार भी लिया जाय । भूल करने पर जो अप्रतिष्ठा होती है, वह स्वीकार करने या सुधारने पर धुल भी जल्दी ही जाती है । सज्जनों की तरह भूल सुधारने वाले उदारचेता भी सम्मान पाते हैं और उनकी नीयत पर, ईमानदारी पर जो संदेह उठने की बात उभरती थी, उसका सफाया हो जाता है । अकर्म करने और फिर उसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर हठपूर्वक अड़ जाने से व्यक्ति गिरता है । उसकी सद्भावना पर हर किसी को अविश्वास उठने लगता है । भूल करना बुरी बात है, पर उससे भी बुरी बात यह है कि अपनी गलती को दूसरे पर थोपते हुए स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के लिए दुराग्रह अपनाया जाय । ऐसे दुराग्रही के सामने पड़कर कोई झगड़ा भले ही मोल न ले, किन्तु उसकी अविश्वसनीयता सुनिश्चित हो जाती है । हठवादी अपने पक्ष को अनुचित होते हुए भी उचित सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, पर वे उसमें सफल नहीं हो पाते । यथार्थता को देर तक नहीं छिपाया जा सकता । प्रशंसा तो छिप भी सकती है, पर निन्दा हजार छिद्रों से होकर प्रकट होती है । उसे कोई पचा नहीं सकता । हींग की गन्ध कपूर लपेटने पर भी छिपती नहीं ।

मनुष्य को गिराने वाले वस्तुतः उसके दुर्गुण ही होते हैं । इन दुर्गुणों में कुछ तो अनुपयुक्त वातावरण में रहने के कारण देखादेखी उपजते हैं । संगति का प्रभाव पड़ना सुनिश्चित है । प्रतिभावान व्यक्तित्व चाहे भले हों या बुरे,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्पर्क क्षेत्र का अपना प्रभाव छोड़ते हैं, नशेबाज, जुआरी, शेखीखोर, लफंगे, बचकाने, कामुक प्रकृति के व्यक्ति सम्पर्क में आने वालों में से अधिकांश को अपने जैसा बना लेते हैं । यही बात सुसंगति के बारे में भी है । सज्जनों के सम्पर्क में रहने से अनायास ही सत्प्रवृत्तियों की छाप पड़ती है और वे धीरे-धीरे साथियों को भी अपने जैसा बना लेती हैं । जिस वातावरण में दुष्प्रवृत्तियों का बोलबाला है उसके साथ यदि मनोयोगपूर्वक जुड़े रहा जाय तो उन दोषों की छाप पड़े बिना नहीं रह सकती । यही बात सत्प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में भी लागू होती है । छोटे बच्चों पर पारिवारिक वातावरण का गहरा असर पड़ता है । इसे सभी जानते हैं, पर यह भी भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि बड़ी आयु में भी प्रभावशाली लोग दुर्बल मनवालों को अपनी चपेट में ले लेते हैं । इस सम्बन्ध में किशोर अवस्था भी बहुत संवेदनशील होती है ।

संगति के अतिरिक्त व्यक्तित्व को अपने ढाँचे में ढालने वाली दूसरी स्थिति है— उदारता या संकीर्णता की । उदार व्यक्ति दूसरे के प्रति आत्मीयता, ममता, सद्भावना, सहकारिता का भाव रखता है । उनके गुणों को देखता है और प्रशंसापरक अभिव्यक्ति ही प्रकट करता है । यह उदारता अपने साथ श्रम, समय, मनोयोग तो ले जाती है, पर बदले में जो लेकर लौटती है, वह अपेक्षाकृत कहीं अधिक मूल्य का होता है । उदारचेता घाटे में नहीं रहते । वे अपनी सेवा-सद्भावना को बीज की तरह बोते और फसल की तरह काटते हैं ।

अनुदार व्यक्ति संकीर्ण स्वार्थपरता में निमग्न रहते हैं । हर समय यही सोचते हैं कि दूसरों से किस प्रकार किस स्तर का, कितना लाभ उठाया जाय इसके लिए वे अनैतिक आधार अपनाने में भी नहीं चूकते । इस प्रसंग में छल-प्रपंच रचते भी उन्हें देर नहीं लगती । मायाचार से तात्कालिक लाभ तो मिल जाते हैं, क्योंकि दूसरे लोग उसे समझ नहीं पाते, धोखे में रहते हैं, इसलिए आसानी से ठगी में आ जाते हैं, पर एक सोने का अंडा रोज देने वाली मुर्गी का पेट चीरने वाले की तरह अपनी विश्वसनीयता खो बैठने के उपरान्त सदा के लिए अपनी साख गँवा बैठते हैं । फिर साधारण काम में, साधारण बात में भी उनका कोई विश्वास नहीं करता । जिसे ठगा गया है उसकी चर्चा दूर-दूर तक फैलती है और अन्य लोग जिसका सीधा वास्ता नहीं पड़ा था, वे भी सावधान हो जाते हैं । एक को ठगकर हजारों की दृष्टि में अपनी साख गँवा बैठते हैं । ऐसी दशा में सहयोग मिलना तो दूर, कोई बात सुनने तक के लिए तैयार नहीं होता । यह स्थिति ऐसी है जिसमें आत्मधिक्कार और आत्मप्रताड़ना की दुहरी मार अपने को सहनी पड़ती है । प्रपंचकों की यह आन्तरिक दुर्दशा ही उनके बहिरंग जीवन को ऐसा बना देती है कि कोई उनका सच्चा मित्र नहीं रह जाता । जो भी सम्पर्क बनाता है, वह यही सोचता रहता है कि मेरे साथ भी कोई घात तो घटित नहीं हो जायेगी । यह स्थिति ऐसी है, जिसमें बार-बार आदमी को अपने स्थान और व्यवसाय बदलने पड़ते हैं । ऐसे व्यक्ति कोई महत्त्वपूर्ण सफलता तो पा ही नहीं सकते । संकीर्ण स्वार्थपरता हर किसी के भविष्य को अंधकारमय बनाती है । व्यक्तित्व के ये दो पहलू हैं । यह मानव पर है कि उत्कृष्टता का वह अवलम्बन लेता है या चिर संस्कारजन्य निकृष्टता का ।

व्यक्तित्व विकास का शुभारम्भ आचरण से

मनुष्य की योग्यता, क्षमता और प्रतिभा का सही मूल्यांकन सामाजिक स्तर पर ही किया जा सकता है । कौन कितनी योग साधना जप-तप करता है, यह सब कुछ उसके व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित है, पर सामाजिक जीवन को कितना शिष्ट, सुसंस्कृत एवं सुव्यवस्थित बनाया गया, इस आधार पर ही उसके व्यक्तित्व की प्रभाव परिधि और सुविकसित स्तर को आँका जा सकना संभव है ।

सुप्रसिद्ध समाज मनोविज्ञानी सी. एच. कूली ने 'ह्यूमन, नेचर एण्ड द सोशल ऑर्डर' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने चेहरे और वेश विन्यास को दर्पण में देखकर सचेत हो उठता है और उसे सँजोने-सँभालने में अनवरत लगा रहता है, उसी प्रकार उसकी इच्छा, आकांक्षा विचारणा और भावनाओं को भी सामाजिक शिष्टाचार के आइने में परिलक्षित होते देखा जा सकता है । श्री कूली ने व्यक्ति की बाह्य एवं व्यावहारिक गतिविधियों के आधार पर ही व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की आशा अपेक्षा व्यक्त की है । मानवी व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाली इन गतिविधियों को तीन वर्गों में बाँटा गया है— (१) 'वैल्यू' (२) पोटेन्सी (३) ऐक्टिविटी । वैल्यू का अभिप्राय व्यक्ति के शैक्षिक स्तर से होता है कि वह कितनी उच्च शिक्षा ग्रहण कर चुका है । 'पोटेन्सी' को प्रतिभा के नाम से जाना जाता है और 'ऐक्टिविटी' का अर्थ व्यक्ति के क्रिया-कलापों से होता है । उनके कथनानुसार व्यक्ति ने भले ही कितनी ऊँची शिक्षा प्राप्त क्यों न की हो, किन्तु उसकी योग्यता-क्षमता गिरों को उठाने और उठों को आगे बढ़ाने वाली प्रतिभा के स्वरूप में विकसित न हो सकी तथा सामाजिक सद्व्यवहार में नहीं उतरी तो वह व्यर्थ-निरर्थक ही साबित होगी । अपने व्यावहारिक क्रिया-कलापों के माध्यम से दूसरों को प्रभावित करके सन्मार्ग पर प्रेरित कर सकने वाली प्रतिभा को उन्होंने 'सब्जैक्टिव पब्लिक आइडैन्टिटी' के नाम से सम्बोधित किया है । दूसरे शब्दों में इसी को लोक श्रद्धा अर्जित करने और जन सहयोग प्राप्त करने की शक्ति-सामर्थ्य के नाम से भी निरूपित किया गया है । वस्तुतः यह सामाजिक शिष्टाचार की ही परिणति है जो मानवी व्यक्तित्व को सब प्रकार से प्रखर एवं परिष्कृत बनाती चली जाती है ।

अमेरिका के ख्याति लब्ध मनःचिकित्सक हैरी स्टैक सुलीवान ने बालकों की मनोदशा पर लम्बे समय से विशद्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्ययन अनुसंधान किया है तदुपरान्त वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि बच्चा जन्म से कोई बुराई लेकर नहीं आता बल्कि पारिवारिक एवं सामाजिक शिष्टता और अशिष्टता के माहौल को देखकर ही वह भला-बुरा बनता है । घर तथा स्कूल के सम्पर्क-व्यवहार में आकर ही उसमें सुसंस्कारिता, कुसंस्कारिता के बीज आरोपित होते चले जाते हैं, जो श्रेष्ठ अथवा निम्न स्तर के व्यक्तित्व की आधारशिला रखते हैं । उन्होंने मानवी व्यक्तित्व के दो स्वरूप बताये हैं एक एक्सट्रोवर्ट और दूसरा इन्ट्रोवर्ट । अन्य शब्दों में इन्हीं को बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी व्यक्तित्व कहा जाता है । मनुष्य की बाह्य गतिविधियों को देखकर ही अन्दर की उत्कृष्टता-निकृष्टता का अनुमान आसानी से लग जाता है । उन्होंने 'ऐक्सट्रोवर्ट' स्तर के व्यक्तित्व को ही सामाजिकता का दर्जा दिया है । क्योंकि इसी के सहारे जनसमूह के हितसाधन को ध्यान में रखते हुए शिष्टता का अनुशासन निभता और व्यक्तित्व प्रभावशाली बनता है । ऐसा व्यक्ति सदैव आशा-उत्साह की जीवनचर्या बिताता है । इन्ट्रोवर्ट को उन्होंने संकोची, स्वार्थी और संकीर्ण स्तर का बताया है । जो सदैव अपनी ही प्रगति-उन्नति का ताना-बाना बुनता रहता है ।

मानवी प्रगति के इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि जहाँ अगणित व्यक्ति किसी प्रकार जीते-मरते रहते हैं वहीं कुछ ऐसे भी होते हैं, जो सामाजिक नियमानुशासनों का परिपालन करते हुए अपने व्यक्तित्व को निखारते और महामानव स्तर तक के कार्य कर दिखाते हैं । पिछड़े और प्रगतिशील लोगों का शारीरिक ढाँचा तो एक जैसा होता है, पर उनकी व्यावहारिक गतिविधियों में जमीन-आसमान जितना अन्तर रहता है । यह अन्तर ही यह बताता है कि कौन साधारण मानव है और कौन महामानव ।

व्यक्तित्व परिष्कार का मूलभूत आधार

शारीरिक एवम् मानसिक दृष्टि से संयमित एवम् सन्तुलित व्यक्तित्व ही सुखी एवम् सफल जीवन का आधार बनता है । कार्ल, गुस्तेव, जुंग आदि आधुनिक मनोवैज्ञानिक इसी को 'मैच्योर पर्सनालिटी' कहते हैं । इसको परिभाषित करते हुए इन मनस्शास्त्रियों का मानना है कि चिन्तन की दृष्टि से प्रौढ़ और स्वस्थ व्यक्तित्व उसी का माना जाना चाहिए जो समस्त परिस्थितियों में शान्त होकर कार्य करे । इस तरह ऐसा व्यक्ति भली प्रकार समंजित होता है और उसमें भावात्मक तथा सामाजिक परिपक्वता होती है ।

व्यक्तित्व का गठन विचारों पर निर्भर है । चिन्तन मन को ही नहीं शरीर को भी प्रभावित करता है । मनोकायिक गड़बड़ियाँ चिन्तन की गिरावट का ही परिणाम हैं । इस बात को प्रायः सभी मनोवैज्ञानिक एकमत से स्वीकार करते हैं । चिन्तन की उत्कृष्टता को अपनाने तथा उसे व्यावहारिक जगत में उतारने से ही भावात्मक तथा सामाजिक समंजन प्राप्त हो सकना सम्भव है ।

इस प्रकार के समंजन की सरल किन्तु सक्षम प्रक्रिया बता पाने में आधुनिक मनःशास्त्री असमर्थ पाये जाते हैं । इस विषय पर वे आपसी खींचतान के अतिरिक्त कुछ उपादेय दे पाने में अक्षम ही दिखाई देते हैं । मनोविज्ञान की जाह्नवी का गोमुख सदृश उद्गम स्थल उपनिषद् है । इनमें विशेषतया श्वेताश्वर उपनिषद् में ऋषियों ने इस प्रकार के भावात्मक एवम् सामाजिक समंजन स्थापित करने, रागद्वेष आदि विरोधी भावों से ऊपर उठने हेतु एक पूर्णतया सक्षम सशक्त प्रक्रिया उद्धृत की है जिसे 'उपासना' कहते हैं ।

निःसन्देह उपासना श्रेष्ठ चिन्तन एवम् उत्कृष्ट व्यक्तित्व के निर्माण का सशक्त माध्यम है । मन की बनावट कुछ ऐसी है, वह चिन्तन के लिए आधार ढूँढ़ता है । जैसा माध्यम होगा उसी स्तर का चिन्तन चल पड़ेगा । तदनुरूप क्रिया-कलाप होंगे । निम्नस्तरीय चिन्तन वाले व्यक्ति के क्रिया-कलाप भी घटिया होना स्वाभाविक है । ऐसा व्यक्ति अपने जैसे दुराचारी-अनाचारी व्यक्ति विनिर्मित करने में ही सहायक सिद्ध होगा, जबकि उच्चस्तरीय चिन्तन करने वाले सन्त-मनीषी महात्माओं के चिन्तन के अनुरूप उनके क्रिया-कलाप भी उत्कृष्ट कोटि के होते हैं । तदनुरूप उनके सान्निध्य में रहने वाले व्यक्तियों का व्यक्तित्व भी उसी साँचे में ढलकर सुघड़ स्वरूप प्राप्त करता है ।

वर्तमान समय में श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्तियों का अभाव है । बहुलता हेय, गए-गुजरों की है । इनसे सामाजिक समंजन की अपेक्षा करना एक विडम्बना है । इन परिस्थितियों में समस्या यह खड़ी होती है कि मानवी व्यक्तित्व को श्रेष्ठ कैसे बनाया जाय? विचार करने पर एक ही रास्ता दिखाई पड़ता है 'उपासना का अवलम्बन' ।

उपासना से जुड़ी आदर्शवादी मान्यताएँ एवम् प्रेरणाएँ ही चिन्तन को श्रेष्ठ एवम् व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बना सकने में समर्थ हो सकती हैं । उपासना की समग्रता एवम् उसके मनोवैज्ञानिक प्रभावों को भली भाँति समझा जा सके तो व्यक्तित्व निर्माण का सबल आधार मिल सकता है । उपासना का लक्ष्य है व्यक्तित्व का परिष्कार । इसके निर्धारण से उससे जुड़े आदर्शों एवम् उच्चस्तरीय सिद्धान्तों द्वारा उपासक को श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है । उपास्य में तन्मय होने का अभिप्राय है, उच्चस्तरीय आदर्शों एवम् सिद्धान्तों में लीन हो जाना और उसके अनुरूप आचरण करना । उपासना द्वारा निर्माण की यह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया चलती रहती है । इसमें तन्मयता की पराकाष्ठा उपास्य और उपासक के बीच विभेद को समाप्त कर देती है । द्वैत से उठकर अद्वैत की स्थिति हो जाती है । परमहंस रामकृष्ण देव का सर्वत्र काली का दर्शन करना, महाप्रभु चैतन्य का कृष्ण से एकाकार हो जाना, स्वामी रामतीर्थ का ब्रह्मभाव में प्रतिष्ठित हो अपने अस्तित्व को भूल जाना, उपासना की तन्मयता एवम् उसकी प्रतिक्रियाओं का प्रभाव है । यह असामान्य स्थिति न भी हो तो भी उपासक के विचारों का परिशोधन, परिष्कृतीकरण होता जाता है । भाव-संवेदनाओं में आदर्शवादिता जुड़ने लगती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपासना निराकार की करें या साकार की । इष्ट निर्धारण क्या हो ? यह व्यक्तिगत अभिरुचि एवम् मनःस्थिति के ऊपर निर्भर करता है । चिन्तन को लक्ष्य की ओर नियोजित किए रखने के लिए साकार अथवा निराकार कोई भी अवलम्बन लिया जा सकता है । यह आवश्यक है और उपयोगी भी । इस प्रक्रिया के साथ जुड़े चिन्तन प्रवाह में आदर्शवादिता का जितना अधिक पुट होगा, उसी स्तर की सफलता प्राप्त होगी । इष्ट से तादात्म्य और उससे मिलने वाले दिव्य अनुदानों से वह आधार बन जाता है जिससे उपासक अपने चिन्तन एवम् गतिविधियों को श्रेष्ठता की ओर मोड़ सके ।

आधुनिक मनोविज्ञान ने जिन नए तथ्यों का उदघाटन किया है वे आध्यात्मिक मूल्यों की पुष्टि करते हैं । चिन्तन को व्यक्तित्व का मूल आधार माना जाने लगा है । इस सन्दर्भ में हुए शोध प्रयास यह स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य का जैसा आदर्श होगा उसी के अनुरूप उसका व्यक्तित्व विनिर्मित होगा । आदर्श यदि श्रेष्ठ एवम् उत्कृष्ट है तो चिन्तन एवम् गतिविधियों में श्रेष्ठता एवम् उत्कृष्टता समायेगी । इसके विपरीत निकृष्ट आदर्श निम्नगामी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देंगे, हेय व्यक्तित्व गढ़ेंगे । उपासना में इष्ट निर्धारण परोक्ष रूप से श्रेष्ठ आदर्शों की प्रतिष्ठापना है । जिसके निकट आने पर तादात्म्य स्थापित करने वाला भी उसी के अनुरूप ढलता-बनता चला जाता है ।

एरिक फ्रॉम, हैरी स्टैक सुलीवान एवम् डॉ० हेनरी लिडलहर का मानना है कि हम शारीरिक एवम् मानसिक स्वास्थ्य को किसी दिव्य सत्ता, देवदूत अथवा सर्वव्यापी चेतना से एकत्व स्थापित करके निश्चयपूर्वक सुधार सकते हैं । उनका कहना हैं कि हम जिस प्रकार की सत्ता का चिन्तन करते हैं उससे हमारा सम्पर्क उसी प्रकार स्थापित हो जाता है जिस प्रकार माइक्रोवेव्स द्वारा संसार के विविध रेडियो स्टेशनों से सम्पर्क हो जाता है। दिव्य सत्ताओं से सम्पर्क एवं उनसे मिलने वाली प्रेरणाओं से आध्यात्मिक ही नहीं शारीरिक मानसिक लाभ भी प्राप्त किये जा सकते हैं । प्रत्येक मनुष्य का मस्तिष्क वायरलेस के रिसीवर की तरह ही है । जो हर समय भले बुरे विचारों को ग्रहण करता रहता है मन में किस प्रकार के विचार उत्पन्न होंगे यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम किससे अपना सम्पर्क जोड़ रहे हैं ।

परिष्कृत एवम् परिपक्व विचार आस-पास के वातावरण को भी तदनुरूप बनाने में सहायक होते हैं । प्रख्यात विचारक अपटॉन सिंक्लेयर अपनी पुस्तक 'मेंटल रेडियो' में स्पष्ट करते हैं कि उपासना व्यक्तित्व निर्माण की एक समग्र प्रक्रिया है जिसका अवलम्बन लेने वाला स्वयम् श्रेष्ठ बनता तथा अन्यों को भी प्रभावित करता है । वह अपने विचारों का प्रसार अभौतिक माध्यमों से अन्य लोगों तक कर सकता है । इसमें व्यक्ति एवं वातावरण को अनुवर्ती बनाने के सभी तत्व विद्यमान है

प्रसिद्ध मनःशास्त्री जुंग उपासना को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार सभी धर्मों में प्रचलित उपासनाऐं मानव के स्वास्थ्य एवं सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक हैं । उनकी मान्यता के अनुसार संसार के सभी मानसिक चिकित्सक मिलकर भी जितने रोगियों को आरोग्य नहीं प्रदान कर पाते जितना कि छोटी से छोटी धार्मिक उपासनाएँ कर देती हैं ।

व्यक्तित्व के अधःपतन एवम् चिन्तन चरित्र व्यवहार की त्रिवेणी में बढ़ते जा रहे प्रदूषण को रोकने तथा इसको परिशोधन कर निर्मल परिष्कृत एवम् उर्ध्वगामी बनाने में उपासना की आवश्यकता ही नहीं अनिवार्यता भी है । पुरातन काल के ऋषियों तथा आधुनिक काल के सन्तों ने इसका अवलम्बन कर स्वयम् के व्यक्तित्व को सुघड़ बनाने के साथ ही समूची मानव जाति के समक्ष प्रकाश संकेतक के रूप में स्वयम् को उभारा । आज भी भावनात्मक एवं सामाजिक समंजन सर्वतोमुखी परिष्कार एवं समग्र प्रगति के सभी आधार इसमें विद्यमान हैं । समस्याओं की जटिलता से उबरने तथा अपने व्यक्तित्व को गढ़ने के लिए यह राजमार्ग ही सर्वाधिक उपयुक्त है ।

भावनात्मक परिष्कार ही एकमात्र समाधान

भावनाएँ ही मनुष्य को ऊँचा उठाती और नीचा गिराती हैं । हम अपने विकास के आरम्भिक समय में भावनात्मक उन्नति कर चर्मोत्कर्ष पर पहुँचे पर अब उसी का दिन-दिन ह्रास होने के कारण नीचे गिरते जा रहे हैं । पूर्व का हमारा भावनात्मक आरोहण अब अवरोहण बन चुका है । सम्वेदना की दृष्टि से हम एकदम निम्न बिन्दु पर पहुंच चुके हैं । यही हमारी सबसे बड़ी बिड़म्बना है ।

व्यक्ति के भाव क्षेत्र के परिष्कार के साथ-साथ जैसे-जैसे उसका प्रसार विस्तार होता है । व्यक्ति में तदनुरूप परोपकारिता एवं सेवा सहयोग की वृत्ति भी बढ़ती जाती है और वृत्ति की परिधि का विस्तार भी होता जाता है । जब इसकी व्यापकता क्षुद्रता की सीमा लाँघकर विराट स्तर तक पहुँचती है तो व्यक्ति को महान बनाती और महामानव, देवमानव, भूसुर, देवता जैसी उपाधियों से अंलकृत करती है इसका प्रारम्भ परिवार स्तर से होता है । जब मनुष्य अपने सुख दुख को परिवार का सुख दुख और परिवार की कष्ट कठिनाई को अपना समझने लगे अर्थात् अपना अस्तित्व परिवार से पृथक न मानकर शरीर और उसके अंग अवयव की तरह अविच्छिन्न रूप से जुड़ा महसूस करने लगे तो इसे परोपकारिता की दिशा में प्रथम चरण कहा जा सकता है और भाव विस्तार की प्रथम अभिव्यक्ति

नृतत्ववेत्ताओं का कहना है कि यदि मनुष्य की भावना का इतना विकास न हुआ होता, तो आज उसका अस्तित्व सुरक्षित न रह पाता और संघर्षरत स्थिति में कब का समाप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो गया होता । कारण कि मानव की आरम्भिक स्थिति और जंगली जंतुओं के स्तर में कोई बहुत भारी अन्तर रहा होगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता । आज जो बड़ा अन्तर दिखायी पड़ रहा है, वह तो क्रमिक प्रगति और परिष्कृत भाव-चेतना का परिणाम है । जब आज की विकसित बुद्धि की स्थिति में भी मानव संघर्षशीलता से बाज नहीं आता और तनिक-से हक की होड़ में मरने-मारने पर उतारू हो जाता है, तो आरम्भ की अविकसित अवस्था में वह कैसा खूँखार रहा होगा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है । आये दिन तब छोटे-छोटे कुनवों में युद्ध और मार-काट मचते होंगे तथा रक्त की नदियाँ बहती होंगी । समय बीतने के साथ-साथ रोज-रोज की लड़ाइयों से उकता कर वे किसी ऐसी युक्ति की तलाश के लिए विवश हुए होंगे, जो उन्हें कुछ शांति दे सकें , अनावश्यक संघर्ष से बचा सके और कुछ ऐसा हस्तगत करा सके, जिससे पारिवारिक कटुता में कमी आये । मानव विज्ञानी मानते हैं कि इसका सबसे उत्तम उपाय उन्हें यही प्रतीत हुआ होगा कि दूसरे कि कठिनाइयों में, दु:ख और दर्द में कुछ अपनत्व प्रदर्शित किया जाय, सहयोग दिया जाय और स्वयं पर विपत्ति आने पर उन्हें याद किया जाय, उनकी मदद ली जाय ।

नृतत्वशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य में भाव विकास का यह प्रथम सोपान था । इससे स्वतंत्र परिवारों का परस्पर मिलन-समागम सम्भव हुआ और धीरे-धीरे कर यही समुदाय का रूप धारण करता चला गया । ऐसे अलग-अलग समुदायों को अपनी-अपनी विशिष्टताएँ और पहचान थीं । जब उन्हें एक दूसरे के बारे में पता चला, तो वे पारस्परिक आदान-प्रदान द्वारा अपनी-अपनी विशेषज्ञता का लाभ एक-दूसरे को देने पर सहमत हो गये । समाज-निर्माण की यह आदिम रूपरेखा थी । कालान्तर में इसी से सभ्य समाज का जन्म हुआ । जब समाज का पूर्ण विकास हुआ, तो मानव ने विभिन्न क्षेत्रों में आपसी आदान-प्रदान की रीति-नीति अपनायी । परिवार के बाहर भी स्नेह-प्रेम, सहयोग-सहकार घनिष्ट होने लगे । संवेदना और सहानुभूति की परिधि बढ़ी, तो पहले का संकुचित परिवार और बड़ा बना और फिर धीरे-धीरे विकसित करते हुए वह एक वृहत्तर परिवार बन गया । यों संरचना और संगठन की दृष्टि से था तो वह समाज ही, पर आचरण और व्यवहार की दृष्टि से, आत्मीयता और अनुराग की दृष्टि से उसे एक वृहद् परिवार ही कहना समीचीन होगा, एक ऐसा परिवार जिसमें उसकी समग्र उन्नति के लिए सभी का सम्पूर्ण विकास अभीष्ट था । कार्ल मार्क्स के शब्दों में कहा जाय, तो इसे "वन फॉर ऑल, एण्ड ऑल फॉर वन" की नीति का विकास कहना चाहिए । भावनाओं की दृष्टि से आदमी की यह और उन्नत स्थिति थी ।

फिर राष्ट्र और विश्व राष्ट्र का विकास हुआ । भूभाग की दृष्टि से सभी की अपनी-अपनी सीमाएँ तो थीं, पर सब के भाव-क्षेत्र ऐसी सीमाओं से सर्वथा मुक्त थे । यही वह काल था, जब "आत्मवत् सर्वभूतेषु" एवं "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सूत्र-सिद्धांत दिये गये । यह प्रतिपादन सिद्धान्त मात्र बनकर नहीं रह गये, वरन् आचार-व्यवहार में दूध-पानी की तरह घुले-मिले थे । आन्तरिक उत्कर्ष की दृष्टि से मनुष्य का यह चरम विकास था, जिसमें भाव-संवेदनाएँ अपना अधिकतम विस्तार प्राप्त कर चुकी थीं । इसी भाव उत्कृष्टता के कारण युगों में इसे सर्वश्रेष्ठ सतयुग कहा गया । फिर धीरे-धीरे इसकी उदात्तता घटती गयी । भाव-विस्तार में कमी आयी और शनैः-शनैः उसमें अनुदात्त तत्वों के समावेश से उसका स्तर क्रमशः गिरता गया । हम उस सर्वोच्च स्थिति से लगातार नीचे गिरते गये । आत्मीयता की हमारी परिधि संकीर्ण होने लगी और घटते-घटते इतनी घट गयी कि रूखेपन से भरा मध्यकाल का सामंतवादी युग आ पहुँचा । साम्राज्य विस्तार के इस काल में आक्रामकता का इतना विस्तार हुआ कि अपने और परायेपन का भेद घृणित रूप धारण करने लगा । यहीं से "जिसकी लाठी तिसकी भैंस" का पृष्ठपोषण करने वाली लूट-खसोट की नीति का उद्भव हुआ । साम्राज्यवादी शासक विस्तारवादी ललक की पूर्ति के लिए आक्रमण-प्रत्याक्रमण के घात-प्रतिघात में निरत रहने लगे । नीति-अनीति का विचार छोड़ जिन्हें जो सूझता, वही करते और जो हाथ लगता, उसी को बड़ी मछली की तरह निगल जाते । फिर अगले शिकार के लिए आगे बढ़ते । इस क्रम में भारत को अनेक विदेशी आक्रांताओं के आक्रमण और उत्पीड़न झेलने पड़े । भारतीय राजे-महाराजे भी स्वयं इस शरीरगत प्रवृत्ति और मनोगत वृत्ति से अछूते न रह सके । उनमें भी इस बात की प्रतिस्पर्द्धा छिड़ी रहती कि किस प्रकार दूसरे की सम्पन्नता हड़पकर अपनी विपन्नता घटायी और सामर्थ्य बढ़ायी जाय । यह राजतंत्र का जमाना था ।

फिर लोकतंत्र का प्रादुर्भाव हुआ, किंतु हमारा भावनात्मक पतन अब भी नहीं रुका । हम और नीचे गिरे । समय के साथ-साथ यह गिरावट और बढ़ती गयी और आज स्थिति यह है कि समाज पर स्वार्थान्धता इस कदर हावी है कि उस ललक को पूरा करने के लिए वह किसी भी सीमा तक जाने में जरा भी संकोच नहीं करता । जब व्यक्ति की उद्दाम लिप्सा पराकाष्ठा को लाँघकर कुत्सित बन जाती है, जब व्यक्ति अपना आतंक जमाने और वर्चस्व स्थापित करने के लिए दूसरों के न्यायोचित अधिकार को भी छीनने से नहीं हिचकता, तो सदा इन दिनों जैसी ही स्थिति पैदा होती है । ऐसे ही लोगों को भर्तृहरि ने मानवो की सबसे निचली और चौथी कोटि में रखा है । उन्हें कोई विशेष नाम तो नहीं दिया, सिर्फ यह कहकर छोड़ दिया कि-"**ते के न जानीमहे**" ।

यहाँ प्रश्न यह है कि आखिर यह स्थिति पैदा ही क्यों हुई ? हमारा अध:पतन क्यों हुआ ? उत्तर जेम्स डिल्लेट फ्रीमैन अपने ग्रन्थ 'दि हिलटॉप हर्ट' में देते हैं. । वे कहते हैं कि यह ठीक है कि हम कभी चेतनात्मक विकास की सर्वोच्च अवस्था में थे और यह भी सत्य है कि आज हम विनाश के कगार पर है, किंतु यह भी तथ्यपूर्ण है कि उक्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दशा सदा-सर्वदा आज जैसी बनी नहीं रह सकेगी । उनका विचार है कि मानव समेत यह दुनिया परिवर्तनशील है । यहाँ जैसा सम्प्रति है, कल भी सब कुछ वैसा ही बना रहेगा, ऐसा नहीं हो सकता और कल का संसार एवं परसों का विश्व दोनों एक जैसे होंगे यह भी नहीं कहा जा सकता । यहाँ सब कुछ क्षण-क्षण में बदल रहा है, भले ही यह बदलाव अदृश्य स्तर का इतना न्यून और सूक्ष्म हो, जिसे देखा व अनुभव नहीं किया जा सके । इतने पर भी तथ्य यथावत् बना रहता है और परिवर्तन चलता रहता है । यह परिवर्तन सूक्ष्म अणु से लेकर विराट् ब्रह्माण्ड तक में समान रूप से जारी है । आदमी में भी चल रहा है । वे कहते हैं कि आधुनिक मानव इस परिवर्तन का अंतिम प्रतिफल नहीं है, वरन् विकास-यात्रा का निर्माण विशेष है । होमोसेपियन्स (आधुनिक मानव) के प्रकटीकरण के साथ यह परिवर्तन-प्रक्रिया अवरुद्ध हो जायेगी, उसकी विकास यात्रा बंद हो जायेगी, ऐसा कहना अनुचित होगा । तो फिर आगामी युग के व्यक्ति कैसे होंगे? उत्तर देते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि निश्चय ही उनका बाहरी ढाँचा वर्तमान लोगों जैसा ही होगा, पर मानसिक संरचना सर्वथा भिन्न होगी । मनुष्य अब चेतना के धरातल पर विकास करेगा । उसकी शारीरिक प्रगति पूरी हो चुकी । अब आगे जो उत्कर्ष सम्पन्न होगा, वह विशुद्ध रूप से मानसिक स्तर पर होगा । चिन्तनशील प्राणी होने के नाते उस क्षेत्र में अभी भी उन्नयन की काफी कुछ गुजायश शेष है । ऐसे में आने वाले समय की मानव-जाति को प्रज्ञा सम्पन्न मान लिया जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी ।

दूसरे ढंग से विचार करें, तो ज्ञात होगा कि हमारी गति-प्रगति चक्रीय है । चक्र के प्रत्येक बिंदु से गुजरना हमारी नियति है । इस क्रम में इसके शीर्ष पर कभी हम उत्कृष्टता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करते हुए स्थित थे, तो आज अधःबिंदु पर पड़े-पड़े उस गौरव गाथा को याद करके ही संतोष करना पड़ रहा है । अर्ध्व से अधः की यात्रा आसान है । इसमें मात्र गिरना पड़ता है, पर निम्न से उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित होने के लिए पराक्रम करना पड़ता है, बल लगाना पड़ता है । तिनका हवा के सहारे आकाश चूमने लगता है । पतंग को भी गगनचुम्बी ऊँचाई छूने के लिए वायु की आवश्यकता पड़ती है । पानी को कई मंजिल ऊपर चढ़ाना हो तो पम्प चाहिए । वायुयान, रॉकेट, उपग्रह सभी को ऊपर उठने के लिए अतिरिक्त बल की आवश्यकता पड़ती है । मनुष्य भी बिना पुरुषार्थ के अपनी उन्नति के शीर्षस्थ बिंदु पर अधिष्ठान नहीं कर सकेगा । इसके प्रयास के साथ-साथ परिष्कार की भूमिका भी सम्पन्न होनी चाहिए, तभी वह भावनात्मक विकास की उच्चतम मंजिल तक पहुँचने में सफल हो सकेगा ।

व्यक्तित्व का सर्वांगपूर्ण जादुई कायाकल्प

मनुष्य की समूची अन्तर्निहित क्षमताएँ एक-एक करके जीवनक्रम का अंग बनें, इस हेतु जरूरी है कि अनुपयोग के कारण धूल गर्द में पड़ी जंग खा रही मानसिक चेतना सही ढंग से सन्तुलित रूप से क्रियाशील हो । उपयोग की कुशलता न मालूम होने पर अनाड़ी चालक नयी से नयी मोटर को खड्ड में गिराता तथा अपने साथ औरों की भी जान गँवाता है । कारतूस और राइफल में शेर और हाथी मारने की सामर्थ्य होते हुए भी बेवकूफ निशानेबाज से चिड़िया मारना भी नहीं बन पड़ता । इतना ही नहीं राइफल के धक्के से खुद ही लुढ़क कर गिर पड़ता है । मन की जादुई ताकत उपयोग के कौशल के अभाव में निष्क्रिय पड़ी रहती अथवा आधे-अधूरे ढंग से अभिव्यक्त हो पाती है ।

यों मन का वैभव अपार है । विचारक, गुह्यवेत्ता, मनोविज्ञान के आचार्य सभी अपने शोध अनुभवों के आधार पर एकमत से इस सत्य को स्वीकार करते हैं । इसके बाद भी तथ्य यही है कि आज का आदमी अपने को संकटों से घिरा, परेशानी में फँसा असहाय सा अनुभव कर रहा है । उसे न तो निकल भागने की कोई राह सूझ रही है और न ही उलझनों को सुलझाने के कोई समाधान ।

कारण कि मानसिक चेतना अपने सुधरे-सँवरे रूप में ही अपने रत्न उछालता है । ऐसी ही दशा में ये विभूतियाँ चरित्र के गलियारे से चलकर व्यवहार के दरवाजे से बाहर निकलती हैं और बरबस सभी का मन मोह लेती हैं । इसमें सफल जन व्यक्तित्वसम्पन्न कहलाते और प्रतिभावानों की श्रेणी में गिने जाते हैं । सभी के पास मन होते हुए भी ऐसों की गिनती अँगुलियों पर गिने जाने लायक भर है । 'होल ब्रेन थिंकिंग' के रचनाकार मनःशास्त्री 'जैक्यूलिन वन्डर व प्रिंसिला दोनोवान' ने अपनी इसी पुस्तक में कारण को समझाने की चेष्टा की है । उनके अनुसार बेतरतीब और अस्त-व्यस्त होने के कारण हमारे मन का मात्र एक छोटा सा भाग सही ढंग से क्रियाशील रहता है । बाकी की प्रभाविकता अल्प या न्यून होती है ।

मनोवैज्ञानिक स्पेरी ने समूचे मन में निहित विभूतियो को दो वर्गों में बाँटा है-आदर्श प्रधान और यथार्थ प्रधान । आदर्श प्रधान वर्ग में कल्पना, रचना, संवेदना, अनुभूति, बहुआयामी चिन्तन, दूरगामी योजना बनाना, चेहरे आकार के माध्यम से व्यक्तित्व की गहरी परतों में प्रवेश, दर्शन, विविध कलाओं में कुशलता, साहित्य में विशेषज्ञता आदि की गणना की जाती है । जबकि यथार्थोन्मुख वर्ग में विविध भाषाओं के ज्ञान, तार्किक और विश्लेषक चिन्तन, तंत्र व संगठन, गणित करने, सन्तुलन बिठाने, द्विआयामीय चिन्तन, गणितीय आकलन तथा सामान्य बौद्धिक क्षमताएँ आती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस सबके बाद भी मन में बिखराव तथा सन्तुलन के अभाव के कारण व्यक्ति मूढ़ता के चंगुल में फंसा बुद्धू बना रहता है । इतना ही रहे-तब भी ठीक है । असन्तुलन की बढ़ती दर अनेक समस्याओं को जन्म देती और विघटन के नए-नए स्वाँग खड़े करती है । अमेरिकन मनोवेत्ता ह्वी.एच. मार्क एवं एफ. आर. इरविन ने 'वायलेन्स एण्ड ब्रेन' में इस असन्तुलन से दो स्थितियों का पनपना स्वीकारा है । पहली स्थिति में क्षमताओं के कपाट बंद होते और मनुष्य अपने को निस्तेज व शक्तिहीन पाता है । दूसरी दशा शक्तियों के अनियंत्रित बहाव की है । ऐसे में इनका सुनियोजित उपयोग कर पाना असम्भव होता है । आक्रामकता और उन्माद इसी दशा में जन्म लेते और बढ़ते हैं ।

पिछले दिनों फिलीपाइन्स के मनीला स्थित 'एशियन इन्स्टीट्यूट आफ मैनेजमेण्ट' ने इस सम्बन्ध में एक विस्तृत सर्वेक्षण किया था । जिसकी रिपोर्ट 'टाइम' पत्रिका में प्रकाशित हुई । प्रकाशित विवरण के अनुसार समाज में अधिकांशतया दो तरह के लोग हैं । पहले उपर्युक्त असन्तुलित, दूसरे वे जो मन के यथार्थोन्मुख हिस्से का थोड़ा बहुत उपयोग करते, बाकी भाग को निठल्ला छोड़ देते हैं । बढ़ती जा रही यथार्थवादी प्रवृत्ति, पनपता बुद्धिवाद, धन-शक्ति के पीछे भागमदौड़ का यही कारण है । उपर्युक्त पत्रिका का यह मानना है कि पश्चिमी जन-जीवन पर यथार्थवादी चिन्तन हावी हो गया है । जबकि पूर्व विशेषतया भारत के सांस्कृतिक चिन्तन से ऐसे संकेत मिलते हैं कि यहाँ की सभ्यता ने आदर्शवादी जीवनप्रणाली पर बल दिया है । यही नहीं यहाँ के निवासियों ने चिन्तन में यथार्थ और आदर्श के सन्तुलन को अपनाया होगा अन्यथा एक व्यक्ति से एक साथ आध्यात्मिक और वैज्ञानिक गवेषणाएँ सम्भव न बन पड़तीं ।

आज भी ऐसा ही सन्तुलन जरूरी हो गया है । पश्चिम के ख्यातिनामा भविष्यवेत्ता जॉन नेयाविट 'मेगाच्वाइसेज' में लिखते हैं धरती की सभ्यता एक बार पुनः पुराने ऋषि नेतृत्व का अनुगमन करेगी । ऐसा अनुगमन जिसमें मानवी मन चिन्तन के स्तर यथार्थ व आदर्श के मध्य सामंजस्य बिठाने और व्यवहार में उसे लागू कर पाने में समर्थ होगा । स्वाभाविक है ऐसे युग में वही टिक सकेगा जो इसे कर्तव्य के रूप में पहचान कर निर्वाह कर सके ।

एशियन इन्स्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेण्ट मनीला ने इस ओर पहला किन्तु प्रभावी कदम उठाया है । उसने प्रबन्धकों को प्रशिक्षण देते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि उन्हें समूचे मन का सन्तुलित रीति से उपयोग करना आये । ताकि वे भावी समय में अधिक उपयोगी साबित हो सकें । भावी समय में उपयोगिता के आधार पर कार्यक्रम बनाने के कारण इस योजना का नाम ही ''भावी समय के प्रबन्धकों का प्रशिक्षण'' रखा गया है ।

हमारी अपनी उपयोगिता भी भावी युग में असंदिग्ध हो । इसके लिए उपर्युक्त नीति ही उचित रहेगी । मानसिक क्षमता को जगाने और सन्तुलित उपयोग करने का कौशल बताते हुए एफ. टी. मिखेलोव का 'द रिडिल आफ सेल्फ' में मानना है कि सर्वप्रथम हम अपनी चेतना में समाई शक्तियों के प्रति जागरूक हों । इनके प्रति विश्वास जमायें । साथ ही यह समझें कि प्रत्यक्ष-यथार्थ का उपयोग आदर्श के लिए है । आदर्श को व्यवहार में उतार लाना ही सार्थक है ।

इसके लिए काम बदलने अथवा दोनों ही प्रकार के कामों का दैनिक जीवन में समावेश करने को मनोविज्ञान ने प्रभावी माना है । उदाहरण के लिए, दैनिक कामों में सेवा, सत्साहित्य अध्ययन का भी समावेश किया जाय । इससे यथार्थ परायण जीवन में बढ़ती जा रही तार्किकता, विश्लेषक चिन्तन के साथ सोई पड़ी आदर्शवादी संवेदना, कल्पना जगेगी । इतना ही नहीं अनुभूति का भी विस्तार होगा । यथार्थवादी चिन्तन और जीवन में आदर्शों का समावेश सूखे पड़े पतझड़ वाले वन में बसन्त की तरह नवजीवन को सँवार लाने वाला सिद्ध होगा ।

मानसिक चेतना के दोनों पक्षों को उभारें । यह उभर सकें ऐसी जीवन प्रणाली गठित करें । इस तरह उपजे सन्तुलन से चेतना के क्षेत्र में समाई रहस्यमयी शक्तियाँ पूर्ण प्रखरता के साथ जीवन में उतरेंगी और समूचे व्यक्तित्व का जादुई रीति से कायाकल्प होता दीख पड़ेगा । प्रतिभावानों के भावी युग में स्वयं अपना भी विशिष्ट स्थान होगा ।

परिपक्व और परिष्कृत व्यक्तित्व के सूत्र

परिपक्व व्यक्तित्व प्रौढ़ता प्राप्त करने में समय ले जाते हैं । बरगद और खजूर से फल प्राप्त करने में काफी लम्बी अवधि तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है । खाद, पानी की तरह मनुष्य को भी सुविकसित होने में अनुभव और अभ्यास चाहिए । अनुभव दूसरों को देख-समझ कर या उनके परामर्श सिखावन के सहारे भी प्राप्त हो सकते हैं अभ्यास तो स्वयं अपने को ही करना पड़ता है । संगीतकार, कलाकार, साहित्यकार आदि बनने के लिए उन प्रसंगों के सिद्धान्त समझ लेना भर काफी नहीं है जो समझा है उसको क्रियारूप में उतारना पड़ता है । सो भी एक दो बार भी नहीं कई बार भी नहीं—ढेरों बार लगातार उसे करते रहने पर भी वैसी रुचि बनती और आदत पड़ती है । जीवनक्रम को अमुक ढर्रे में ढालने के लिए उस प्रक्रिया में होकर असंख्य बार गुजारना पड़ता है अन्यथा एक दो बार के अभ्यास तो बालू का महल बनाने की तरह मात्र तात्कालिक मनोरंजन करता है । जरा-सी तेज हवा चलते ही इधर-तिधर बिखरकर समाप्त हो जाता है ।

यहाँ एक बात और भी स्मरण रखने योग्य है कि हर वस्तु को पकने के लिए अभीष्ट तापमान की आवश्यकता पड़ती है । अण्डे से बच्चा तब निकलता है जब उसे उपयुक्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समय तक उपयुक्त गर्मी उपलब्ध हो चुकी होती है । भ्रूण को पकाने में भी उदरदरी की ऊर्जा काम करती है । भोजन पकने पर भी वही सिद्धान्त लागू होता है । कुम्हार के आवे से लेकर लुहार की भट्टी तक में जो कुछ बनता है उसमें निर्माताओं का कौशल ही सब कुछ नहीं कर लेता । उसके लिए पकाने वाली भट्टी में उपयुक्त स्तर की गर्मी भी होनी चाहिए । मनुष्य को भी ऐसे जीवनक्रम के साथ पाला पड़ना चाहिए जो कठिनाइयों से भरा हो, जिसमें अवरोधों से जूझने, अभीष्ट साधन जुटाने और प्रतिकूलताओं को अनुकूलता में बदलने के लिए प्रबल पराक्रम और अनवरत संघर्ष करना पड़े । रगड़ से गर्मी उत्पन्न होने का सिद्धान्त सभी को विदित है । विकास के लिए जिस गर्मी की आवश्यकता है वे भी प्रतिकूलता के साथ गुथ पड़ने और मल्ल युद्ध करने पर ही उत्पन्न होती है ।

जिन्हें संघर्ष नहीं करने पड़े, जिन्होंने सदा सुविधाएँ और अनुकूलताएँ ही देखी हैं जिन्हें प्रशंसा और सहायता की कमी नहीं रही, उनकी सफलताएँ चिरस्थायी नहीं हो सकती, वे तभी तक ठहरती हैं जब तक कि किसी अवरोध या आक्रमण से वास्ता नहीं पड़ता । कमजोर रस्सियों से बँधे छप्पर एक ही अन्धड़ में यहाँ से वहाँ जा पहुँचते हैं । उनके अन्जर-पन्जर जहाँ-तहाँ छितरते देखे जाते हैं, किन्तु मजबूत ईंट गारे से बनी, ढली छतें प्रचण्ड तूफानों का सामना करते हुए भी जहाँ की तहाँ बनी रहती हैं । फसल तभी पकती है जब उनके ऊपर से एक अच्छी खासी गर्मी गुजर जाती है ।

जिन्हें प्रौढ़ता में गौरव प्रतीत होता है । वे जानबूझकर विपरीतताओं से जूझने का अभ्यास करते हैं । आड़ों की कार्यपद्धति यही है । पर्वतारोही, तैराक, प्रतियोगिताओं में उतरने वाले ऐसी ही तैयारियों में संलग्न रहते और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की गौरव गाथा से यशस्वी बनते हैं । तपस्वी जीवन में उन कठिनाइयों को आमन्त्रित किया जाता जो देव जीवन में प्रवेश करते समय, प्रस्तुत वातावरण से भिन्न प्रकार का आचरण करने से प्रस्तुत होती हैं । इसके बाद उन कठिनाइयों का सिलसिला आरम्भ होता है जो उत्कृष्टता के उपार्जन करने के लिए मूल्य चुकाने के रूप में स्वेच्छापूर्वक वरण करनी होती हैं ।

'दि स्टडी ऑफ पर्सनालिटी' ग्रन्थ में विद्वान लेखक एच. ब्राण्ड लिखते हैं—"व्यक्तित्व के विकास में कितने ही साधनों तथा सहयोगियों की आवश्यकता पड़ती है । वे बाहर से जुटाये जाते हैं । पर इस सन्दर्भ में एक आवश्यकता ऐसी है जिसकी पूर्ति स्वयं ही करनी पड़ती है । चरित्र ही वह विभूति है जिसके सहारे दूसरों को आकर्षित करना, प्रशंसक बनाना तथा साथी-सहयोगी बनने के लिए सहमत किया जा सकता है । वजन हर वस्तु का अपना होता है । दूसरे लोग तो उसकी नाप-तौल भर करते हैं । रूई का हलका और पत्थर का भारी होना उसका अपना निजी गुण है । इसी प्रकार चरित्र के रूप में अपना वजन घटाना या बढ़ाना हर किसी के अपने हाथ की बात है ।

चरित्र आत्म-संयम से आरम्भ होकर लोकसेवा में तत्पर रहने की उदारता तक विकसित होता चला जाता है । आमतौर से चरित्रवान उन्हें कहते हैं जो दुर्व्यसनों और दुर्गुणों से बचे रहते हैं । परिश्रमपूर्वक कमाते और सन्तोष के साथ गुजारा करते हैं । यह चरित्र की प्रथम कक्षा है । संयमी ही अपनी क्षमताओं का अपव्यय रोक सकते हैं और उस बचत के बलबूते निजी तथा सर्वजनीन सत्प्रवृत्तियों के उत्कर्ष में कुछ कर सकने में समर्थ हो सकते हैं । अपव्ययी असंयमी के लिए तो अपनी ही समस्याएँ-अनाचरण की प्रतिक्रियाएँ ही इतनी भारी पड़ती हैं जिन्हें सुलझना, समेटना पहाड़ जैसा भारी पड़ता है ।

चरित्र का प्रथम सोपान संयम है । पुरुषार्थ को उपार्जन और संयम की बचत माना जाता है । इन दोनों को अपनाने से ही व्यक्तित्व का धनी बना जा सकता है । इसके बाद यह प्रसंग आता है कि इस सम्पन्नता का कहाँ उपयोग किया जाय ? इसका उत्तर एक ही है पीड़ा और पतन से जन-समुदाय को उबारने वाले सत्प्रयोजनों का संक्षेप में यह लोकसेवी का उदारता का मूलभूत स्वरूप है । चरित्रवान संयमी-सादगीप्रिय सज्जन तो होते ही हैं साथ ही उनकी विभूतियों का अधिकांश उपयोग जनसेवा के कल्याणकारी प्रयोजनों में होता रहता है । चरित्रवान जिस प्रकार अपव्यय को रोकने में आत्मनियन्त्रण करता है उसी प्रकार उपभोग के सम्बन्ध में भी कड़ाई बरतते और रोकथाम लगाते देखी जा सकती है । जो इतना कर पाने योग्य विवेक विकसित कर लेगा उसमें उतनी सूझ समझ भी उठेगी कि प्रतिभा एवं सम्पदा का सर्वश्रेष्ठ उपयोग सत्प्रवृत्ति सम्बर्द्धन में ही हो सके हैं । इस प्रकार समग्र चरित्र निष्ठा मर्यादाओं के पालन तथा सेवापरायण होने की दो कसौटियों पर जाँची-परखी जा सकती है ।

मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि व्यक्तित्व समीपवर्ती सामाजिक ढाँचे का एक घटक मात्र है । वह वही सीखता है जो सीखने के लिए सामने बिखरा पड़ा है । वही खाता है जो समीप में उगता और पकता है । अपनी मर्जी का उगाना और पकाना तर्क के माध्यम से शक्य सिद्ध किया जा सकता है । इतने पर भी वह सरल नहीं है । इनके लिए भी जानकारी, अनुभव, अभ्यास चाहिए और वैसा कर गुजरने के साधन उपलब्ध रहने चाहिए । यदि कोई इतना सरंजाम जुटा सकता है तो भी इसके लिए यह शक्य होगा कि अपने अनुरूप वातावरण बनाये और उसके सहारे अपना काम चलाये । ऐसा कर सकना किसी-किसी मनस्वी के लिए कभी-कभी ही सम्भव होता है । आमतौर से सामाजिक ढाँचे का कुम्हार ही लोगों को बर्तनों की तरह अपने चाक पर बनाता और अवे में पकाता रहता है ।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रयास यह होना चाहिए कि सामाजिक वातावरण वैसा बनाया जाय जैसा कि वर्तमान या भावी पीढ़ी को ढालना, ढाला जाना है । यह कार्य बड़े लोगों का है । बड़े से तात्पर्य है, वे जो समाज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को प्रभावित कर सके, उसे उपयुक्त बनाने वाले परिवर्तन का दबाव डाल सके । दबाव डालने वाला प्रवाह उत्पन्न कर सके ।

इतने पर भी व्यक्तिगत प्रयास का द्वार बन्द नहीं हो जाता । छोटा इच्छित समाज बनाया जा सकता है अथवा जहाँ ऐसा वातावरण मौजूद है वहाँ जा पहुँचने का परिवर्तन किया जा सकता है । पक्षी चुनकर अपना घोंसला बनाते हैं । इसी प्रकार अच्छे मनुष्य चुन-चुन कर एक स्वतन्त्र मण्डली खड़ी की जा सकती है । यह अपना निजी सृजन है जो छोटा होते हुए भी व्यक्तित्व के निर्माण में असाधारण भूमिका निभा सकता है । इसी प्रकार यह भी हो सकता है कि श्रेष्ठता का वातावरण ढूँढ लिया जाय और वर्तमान निवास सम्पर्क एवं व्यवसाय को बदलकर वहाँ रहने लग जाय । ऐसी कई शिक्षण संस्थाएँ होती हैं, कई लोकसेवी आश्रम संगठन भी होते हैं जिसमें रहने या खपने का अवसर प्राप्त कर लेना सरलतापूर्वक सम्भव हो सकता है ।

इस प्रकार हो या उस प्रकार व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक वातावरण के योगदान को झुठलाया नहीं जा सकता, उसे अनुकूल बनाने के लिए बड़े लोग बड़े पैमाने पर काम करें और समूचे ढर्रे को श्रेष्ठ परम्पराओं के अनुरूप बदलें बनायें । दूसरी ओर इच्छुकों को अपने निजी प्रयास अपनी मित्र मण्डली गढ़ने अथवा जैसी-वैसी अनुकूलता है वहाँ जा पहुँचने का प्रयास करना चाहिए । बड़े लोग बड़े पैमाने पर नहर बनाते हैं अथवा छोटे लोग छोटे प्रयत्नों से छोटे कुएँ बनाते हैं यह बात दूसरी है, पर हर हालत में प्यास बुझाने के लिए पानी का प्रबन्ध तो करना ही पड़ेगा । प्रगतिशीलता यदि पनपेगी तो उसके लिए सामाजिक पर्यावरण की अनुकूलता उपलब्ध करने का प्रयत्न तो करना ही होगा ।

यहाँ यह और स्मरण रखने योग्य है कि व्यक्तित्वों को प्रभावित करने में बड़ी भूमिका छोटे परिवार की होती है । छोटे परिवार का तात्पर्य है वह समुदाय जिसके साथ खाने का एवं विभिन्न प्रयोजनों के लिए सम्पर्क साधने का अवसर मिलता है ।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ 'दी इन्टर परसनल थ्योरी आफ साइकोमैट्री' में विद्वान् लेखक ने लिखा है, "श्रेष्ठ व्यक्तित्व के विकास में मनुष्य के सामाजिक घेरे का बहुत बड़ा हाथ रहता है । जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त सदा सीखने की ही प्रक्रिया जारी रहती है । यह सब कुछ कोई अकेलेपन में नहीं कर सकता । शरीर यात्रा में प्रयुक्त होने वाली आदतें भी उसने प्रकृति के वातावरण से टकरा-टकरा कर ही सीखी हैं । समाज का प्रभाव प्रकृति से किसी प्रकार कम नहीं है । जिन लोगों के साथ घनिष्टता रहती है उनसे कई प्रकार की सुविधाओं का आदान-प्रदान ही नहीं होता, उस सम्पर्क से स्वभाव भी बनता-बदलता है । संगति के प्रभाव से भलों का बुरा और बुरों का भला बन जाना आये दिन देखा जाता है ।"

सामाजिक परिस्थितियाँ किसे कैसी मिलती हैं । इसमें कुछ तो पूर्व निर्धारित ही होती हैं पर वह सर्वथा छाया ही रहे ऐसी कोई विवशता भी नहीं है । अपरिपक्व रहने तक की अवधि में ही परावलम्बन रहता है । उन्हीं दिनों पूर्व निर्धारित वातावरण में घिरे रहने की विवशता रहती है । जैसे-जैसे स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास की वय आरम्भ होती है वैसे-वैसे अपनी इच्छानुरूप मैत्री सम्पर्क बनाने की सुविधा मिलने लगती है । कुटुम्ब परिवार की तरह मैत्री परिवार के साथ आदान-प्रदान चल पड़ता है । यह स्वनिर्मित-इच्छाओं के अनुरूप होने के कारण और भी अधिक प्रभावी होता है ।

मैत्री परिवार अपनी इच्छानुरूप अपनी खोज घनिष्टता एवं क्रिया-प्रक्रिया के आधार पर बनाता है । किसने किस प्रकार का मैत्री परिवार बनाया और किस प्रकार का प्रभाव समेटा यह उसके अपने चुनाव एवं प्रयास पर निर्भर है । वातावरण के पूर्व निर्धारित रहने वाली बात एक अंश तक ही सही है । समाज की परिस्थितियाँ मनुष्य को ढालती हैं, यह बात ही एक सीमा तक ही सही बैठती है । इससे भी अधिक प्रबल तथ्य यह है कि निजी आकांक्षा के अनुरूप भले बुरे मैत्री परिवार बनते हैं और उन्हीं के उत्थान और पतन का सरंजाम जुटाने वाले प्रभाव अधिक कारगर सिद्ध होते रहते हैं । जहाँ कुटुम्ब परिवार की स्थिति को विवशता कहा जाता है वहाँ इस बात की भी जानकारी होनी चाहिए कि अपने प्रयासों से मैत्री परिवार का गठन करने किसी भी भले-बुरे समाज में से अपनी इच्छा का समाज खोजा और सृजा जा सकता है । समाज के दबाव से मनुष्य बनता है । इस प्रतिपादन में इतना और जोड़ा जाना चाहिए कि "समाज के समुद्र में सभी प्रकार के तत्व हैं और उसमें से कोई भी, कहीं भी-अपने अनुरूप निजी समाज इच्छानुरूप निर्मित कर सकता है ।"

व्यक्तित्वों को विकसित करने वाला वातावरण बनाना, समाज के मूर्धन्य व्यक्ति का काम है पर वैसा न बन पड़ने पर भी हर मनुष्य अपने भावी प्रयास से अपनी वह परिपक्वता विकसित कर सकता है जिसे प्रतिभा या प्रखरता का नाम दिया जा सके ।

वृत्तियों का परिभार्जन, व्यक्तित्व का उदात्तीकरण

स्वच्छ दीखने के दो तरीके हैं—अस्वच्छता को ढक देना या उसे साफ कर देना । आवरण चढ़ाने से अन्तर इतना ही आयेगा कि निहित गन्दगी बाह्य दृष्टि से ओझल बनी रहेगी । इतने पर भी उसकी सत्ता अपने स्थान पर यथावत् रहती और मौका पाते ही, आवरण हटते ही अपना परिचय पूर्ववत् देने लगती है ।

मनुष्य की यह आम आकांक्षा होती है कि वह दूसरों की नजरों में सम्मानित दीखे और सुसंस्कृत कहलाये । इसके लिए एकमात्र तरीका यही है कि व्यक्तित्व का रूपान्तरण हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उसे इतना प्रामाणिक, प्रखर और परिष्कृत बनाया जाय कि सौरभ बिखेरने वाले फूलों की ओर जिस प्रकार भौंरे खिंचते चले आते हैं, वैसे ही लोगों की श्रद्धा और सहायता अनायास मिलती चले । यह किंचित कठिन प्रक्रिया है । इन दिनों लोग पुरुषार्थ प्रधान ऐसे कार्यों से प्रायः बचना चाहते और किसी ऐसे सरल संस्करण की तलाश में रहते हैं, जो आसान हो एवं सुविधाजनक भी, साथ ही देखने में भी ऐसा न लगे, जिससे जल्द ही उसके असल की नकल होने का अनुमान लगता हो । व्यक्तित्व के सन्दर्भ में ऐसा उपाय यही हो सकता है कि बुराई पर आकर्षक पर्दा डाल दिया जाय और सज्जन एवं सरल होने का प्रदर्शन किया जाय । ऐसे में कई बार व्यक्तित्व की पहचान में धोखा हो जाता है और बुरे के अच्छे होने का भ्रम होने लगता है ।

मानवी व्यक्तित्व के तीन पक्ष हैं—भावना, विचारणा और व्यवहार । इसमें से व्यवहार शारीरिक प्रवृत्ति है, जबकि विचारणा मानसिक वृत्ति है । इन दोनों का सम्बन्ध स्नायु तंत्र से है, किन्तु भाव-संस्कार का सम्बन्ध स्नायु संस्थान से नहीं होता, वह चेतना का विषय है, अतएव उसको परिष्कृत करने की जरूरत पड़ती है । यही कारण है कि जब ईर्ष्या, राग, द्वेष, घृणा आदि संवेगात्मक तत्वों के नियंत्रण की बात आती है, तो शरीर विज्ञानी और मनोविज्ञानी स्वयं को असहाय महसूस करने लगते और यह बता पाने में असमर्थ साबित होते हैं कि शरीर मन के किन हिस्सों द्वारा किस प्रकार इनका संचालन-उत्पादन होता है । अब तक मन के सम्बन्ध में काफी शोधें मनोविज्ञान क्षेत्र में हो चुकी हैं और मस्तिष्क के बारे में भी अगणित अनुसंधान शरीरशास्त्री कर चुके और कर रहे हैं, पर उक्त दोनों विधाओं के विशेषज्ञ यह सुनिश्चित कर पाने में एक प्रकार से विफल ही रहे हैं कि आखिर मन-मस्तिष्क में से कहाँ किस अंग में ठीक-ठीक इनकी अवस्थिति है ? जबकि अध्यात्मवेत्ता इनका अवस्थान- स्थान भी बताते और उन्हें प्रभावित करने की पद्धति भी सुझाते हैं, कहते हैं इनका यदि उदात्तीकरण हो जाय, तो हर किसी के लिए ईर्ष्या को उत्फुल्लता में, राग को विराग में, द्वेष को सहयोग में और घृणा को प्रेम में बदल पाना सम्भव हो जायगा । इसका तात्पर्य यह हुआ कि नियंत्रण की प्रणाली स्थूल शरीर के ज्ञान-तन्तुओं की क्रियाओं तक ही सीमित है । इसके आगे जो कुछ होता है, वह प्राकृतिक और संस्कारगत है एवं चेतना से सम्बद्ध है । इसका उदात्तीकरण अथवा शोधन ही हो सकता है, रूपान्तरण का इसके लिए अन्य कोई दूसरा तरीका नहीं । इस प्रकार नियंत्रण और रूपांतरण-बदलाव की यह दो पद्धतियाँ हैं । हम, इन दोनों को भली-भाँति समझें और एक के स्थान पर दूसरे को प्रयुक्त न करें । दोनों की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं । नियन्त्रण के क्षेत्र में शोधन को न लायें और शोधन की जगह नियंत्रण का प्रयोग न करें । यह यदि सही-सही सम्पन्न हुआ, तो फिर शोधन के उपरान्त नियंत्रण की आवश्यकता नहीं रह जायगी इतना सुनिश्चित है ।

देखा गया है कि व्यक्ति व्यावहारिक जीवन में स्वयं को बदलना चाहता है, बुराइयों को छोड़ना चाहता है, वासनाओं को त्यागना चाहता है, आदतों को परिवर्तित करना चाहता है, किन्तु लाख कोशिशों के बावजूद उसे असफलता ही हाथ लगती है । तात्कालिक सफलता तो इसमें मिलती देखी गयी है, पर वह चिरस्थायी नहीं होती । कारण की तलाश करने पर यही ज्ञात होता है कि जो प्रयास किये गये, वह कायिक अथवा मानसिक स्तर के उथली परत मात्र के थे । इस स्तर पर मात्र नियंत्रण ही सम्भव है, रूपान्तरण नहीं । जहाँ नियंत्रण होगा, वहाँ उसके हटने-घटने की सम्भावना भी बनी रहेगी । ऐसी स्थिति में दुष्प्रवृत्तियों को बार-बार सिर उठाने का अवसर मिलता रहता है । इसलिए सुधार-संशोधन सम्बन्धी नियंत्रण की पद्धति अपूर्ण एवं अधूरी है । इसकी तुलना में यदि उदात्तीकरण को अपनाया गया, तो इससे सम्पूर्ण एवं चिरकालिक रूपान्तरण होता तथा समस्या का स्थायी समाधान मिलता । कारण कि हमारी अधिकांश प्रवृत्तियों का सम्बन्ध संस्कार-चेतना से है । जब उसका परिमार्जन किया जाता है, तो उससे सम्बन्धित समस्त चेष्टाओं का उदात्तीकरण हो जाता है । शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान इतनी गहराई में उतरकर वास्तविक निमित्त को नहीं समझ पाने के कारण ही बार-बार विफल रहते देखे जाते हैं ।

कायशास्त्र के बारे में शरीरवेत्ता स्खलन को रोक लेना ही सर्वोपरि मानते और उतने से ही ब्रह्मचर्य की अखण्डता स्वीकार लेते हैं । मनःशास्त्री उस पर दमन के द्वारा विजय प्राप्त करने की बात कहते हैं । ज्ञातव्य है कि कुचलने का यह तरीका हर जगह सफल नहीं होता । 'काम' स्वयं में एक प्रचण्ड ऊर्जा है । शक्तिशाली ऊर्जा को बहुत समय तक दमित-नियंत्रित नहीं किया जा सकता । यदि किया गया तो ऐसी विस्फोटक स्थिति पैदा होगी, जो व्यक्ति को सनकी, उन्मादी, पागल स्तर का बना देगी । इसलिए उस ऊर्जा का रूपान्तरण होना चाहिए । यह रूपान्तरण किस प्रकार का, कैसा हो ? मनोवेत्ता यह बता पाने में नाकामयाब रहे, जबकि अध्यात्मवादियों के पास इसका सुनिश्चित उत्तर है । उनका कहना है कि यदि इस वासना के आवेग को सात्विक भावना में, ईश्वरीय अनुराग में बदल दिया गया, तो फिर 'काम' के सताने का सवाल ही पैदा नहीं होगा । इसके अतिरिक्त मनोविज्ञानियों के काम-दमन का प्रतिवाद करते हुए वे कहते हैं कि इस रीति से मन प्रत्यक्ष न सही परोक्ष रूप से बराबर उस ओर ही लगा रहता है और जिसका अनवरत स्मरण हो रहा हो, उस ओर से मन भला कैसे हट सकता है ? निश्चय ही इस नियंत्रण के माध्यम से काम-विकार का उद्दीपन ही होता रहता है । इस सूक्ष्मशास्त्र को न समझ पाने के कारण ही मनोविज्ञान का यह सूत्र कारगर न हो सका । अध्यात्म में इसकी दिशा मोड़ कर ईश्वरोन्मुख कर दिया जाता है । इसलिए सामान्यजन में जो ऊर्जा काम-विकार उत्पन्न करने में खर्च होती रहती है, वही शक्ति भगवद्परायण व्यक्ति में स्वतः ही रूपान्तरित होकर उच्चस्तरीय बनती रहती है, अतएव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वहाँ वासना के सताने की बात तो दूर उसकी स्मृति तक नहीं उभरती । यही वास्तविक रूपान्तरण है ।

उदात्तीकरण और नियंत्रण के बीच उपर्युक्त अन्तर और उनकी सीमाओं को समझ लेने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि शारीरिक स्तर पर जो हमारी चेष्टाएँ और क्रियाएँ होती हैं तथा मानसिक स्तर पर जैसा हमारा चिंतन होता है, वह सब विशुद्धत: उन्हीं-उन्हीं स्तरों से सम्बन्धित होते हों ऐसा नहीं कहा जा सकता । उनका न्यूनाधिक लगाव भाव-संस्थान की संस्कार-चेतना से भी होता है । इसलिए मानवी चेष्टाओं को शुद्ध करने की जहाँ बात आती है, वहाँ उसके चित्तगत संस्कारों को भी ध्यान में रखना होगा ? कारण कि मनुष्य ८४ लाख योनियों की लम्बी यात्रा के उपरांत यह शरीर धारण करता है, इसलिए चित्त में उनके भी सूक्ष्म संस्कार विद्यमान रहते हैं । जिस-जिस योनि के जैसे-जैसे संस्कार मानवी अन्तराल में जमे रहते हैं, वैसी ही उनमें प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं । इस आधार पर व्यक्तित्व भेद की व्याख्या भी अत्यन्त सरल हो जाती है और यह बताया जा सकना शक्य हो जाता है कि यदि किसी में क्रोध, किसी में घृणा, किसी में प्रेम तत्व प्रबल है, तो ऐसा क्यों है ? मनोविज्ञान की इस सम्बन्ध में जो व्याख्याएँ हैं, वह अत्यधिक दुरूह हैं और अधूरी भी, क्योंकि व्यवहार की व्याख्या वहाँ परिस्थिति के आधार पर की जाती है । यदि किसी व्यक्ति में घृणा की अधिकता है, तो इस बारे में उसका कहना है कि चूँकि उसे ऐसे किसी वातावरण में रहना पड़ा हो, जहाँ तिरस्कार, अपमान, घृणा बड़े पैमाने पर मिला हो, अथवा बचपन में माता-पिता, भाई-बहिन से फटकार मिलती रही हो, तो इसका परिणाम उसमें घृणा की उत्पत्ति के रूप में सामने आ सकता है । प्रेम, भय, क्रोध जैसी मानवी प्रवृत्तियों की व्याख्या, व्यवहार मनोविज्ञानी इसी प्रकार करते और कहते हैं कि परिस्थिति और समाज से वह जैसा कुछ सीखता है, वैसा ही बनता और विकसित होता चला जाता है । चूँकि व्यक्ति को समाज में पग-पग पर इन मनोवैज्ञानिक तत्वों से पाला पड़ता है, अत: उसमें ये सभी तत्व विकसित हो जाते हैं । घृणा-प्रेम के सन्दर्भ में व्यवहार मनोविज्ञान का यही निष्कर्ष है । इसके आगे उसके पास और कोई समाधान नहीं, किन्तु मानवी व्यवहार इतना सरल कहाँ ? वह इतनी जटिलताओं से भरा हुआ है कि केवल परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में उसकी न तो व्याख्या हो सकती है, न हल हो सकता है, किन्तु यदि उसे क्रमश: व्यवहार जगत से विचार जगत, विचार जगत से भाव और संस्कार जगत तक ले जायें और चिंतन करें कि ऐसा व्यवहार हुआ, तो इसका कारण क्या है ? तो अन्तत: हम संस्कार जगत के उस मूल बिन्दु पर पहुँचेंगे, जहाँ आकर मानवी आचरण को एक परिभाषा, सर्वांगपूर्ण व्याख्या तथा सर्वांगपूर्ण समाधान मिल जाता है । जब व्यवहार का उद्‌गम ज्ञात हो जाय, तो आदतों को बदल पाना सरल हो जाता है ।

वस्तुत: हम जो कुछ भीतर हैं, वही बाहर अभिव्यक्त करते रहते हैं । हमारी संस्कार-चेतना शुद्ध अथवा मलिन जैसी होती है, आदतों के द्वारा, आचरण के द्वारा वह उन्हीं रूपों में प्रकट और प्रत्यक्ष होती रहती है इसी से स्वभाव का निर्माण होता है । प्रकृति यदि हेय और निम्नस्तरीय है, तो इसके लिए भी अंतराल की वह भूमि ही जिम्मेदार है और वह यदि उच्चस्तरीय है, तो उसका भी निमित्त वही है । व्यक्तित्व का सारा ढाँचा उसी से निर्मित है, अत: व्यक्तित्व को बदलने के लिए उसे उत्कृष्ट बनाने के लिए हमें उसी संस्थान को परिमार्जित और परिष्कृत करना होगा । इसके लिए एकमात्र उपचार आध्यात्मिक ही है । जप, तप, व्रत, उपवास, ध्यान आदि कुछ ऐसे साधन हैं, जिनका यदि नियमित अभ्यास किया जाता रहे, तो यह उस अपरिष्कृत आन्तरिक भूमि पर सुनिश्चित असर डालते और गन्दगी को आवृत्त करने की बजाय निकाल बाहर करते हैं । आचरण सम्बन्धी अस्वच्छता को दबाने की तुलना में मिटाना ही उत्तम होगा । रूपान्तरण और उदात्तीकरण का यही एकमात्र आधार है । व्यक्तित्वसम्पन्न इसी के द्वारा बना जा सकता है । अपनाया इसे ही जाना चाहिए ।

हीनाचार परीतात्मा

क्रिया की प्रतिक्रिया होती है । असंयम बरतने पर रुग्णता घेरती है । कटुवचन बोलने से शत्रुता बढ़ती है । अपव्यय से दारिद्र आता है, नशा पीने से खुमारी आती है । विष खाने से मृत्यु होती है । पुरुषार्थी प्रगति करते हैं । आलसी असफल रहते हैं । दर्पण में अपनी ही छवि दीखती है । कुएँ में अपनी ही आवाज प्रतिध्वनित होती है ।

अनाचार बरतने की प्रतिक्रिया विपत्ति के रूप में सामने आती है । लोग इस मोटी बात को न जाने क्यों भूल जाते हैं । अनाचार करते हुए सुख की आशा की जाती है । यह लघुदृष्टि है । तुरन्त के लाभ को देखकर उस पर टूट पड़ना और पीछे के परिणाम को न देखना अदूरदर्शिता ही है । अदूरदर्शी तात्कालिक प्रसन्नता को देखते हैं और आटे की गोली के लोभ में प्राण गँवाने वाली मछली की तरह अपनी दुर्गति कराते हैं । ऐसी अनाचारपरक भूल न करने के लिए शास्त्रकार ने सर्वसाधारण को सचेत किया है ।

व्रजत्यध: प्रयात्युच्चैर्नर स्वैरेव चेष्टितै: ।
अध: कूपस्य खनक ऊर्ध्व प्रासादकारक: ॥

मनुष्य अपने ही कामों से नीचे चला जाता है और ऊपर चढ़ जाता है । कुएँ को खोदने वाला नीचे की ओर उतरता जाता है और प्रासाद को बनाने वाला ऊपर की ओर चढ़ता जाता है ।

दुराचाररतो लोके गर्हणीय: पुमान्भवेत् ।

दुराचारी व्यक्ति व्याधियों से अभिभूत हो जाया करता है अर्थात् उसे बहुत से रोग घेर लिया करते हैं, वह सदा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही अल्प आयु वाला होता है और हमेशा दु:खों के भोगने वाला रहा करता है ।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहित: ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेवमाप्नुयात् ॥

कठ १ । २ । २४

दुराचारी, अशान्तचित्त और असंयमी मनुष्य तत्वज्ञान की बातें करते रहने पर भी उन परमेश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते ।

आचार: परमो धर्म: सर्वेषामिति निश्चय: ।
हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह विनश्यति ॥
नैनं तपांसि न ब्रह्म नाग्निहोत्र न दक्षिणा: ।
हीनाचारमितो पुष्टं तारयन्ति कथंचन ॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दित: ।
दु:खभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥
आचारात्फलते धर्ममाचारात्फलते धनम् ।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

वशिष्ठ स्मृति १६६ से १७२

श्रेष्ठ आचरण ही धर्म का प्रथम आधार है । यह सब प्रकार निश्चित है । पाप आचरण करने वाला परलोक में दुर्गतिग्रस्त होता है ।। ६६ ।।

दुराचारी को तप, वेद, अग्निहोत्र, दक्षिणा आदि कोई भी तार नहीं सकता ।। १६७ ।।

दुराचारी की सर्वत्र निंदा होती है । वह दु:खों का भागी, अल्पायु और रोगी होता है ।। १७१ ।।

सदाचारी का ही धर्म फलता है । उसी का धन फलता है । उसी को श्रेय प्राप्त होता है और आचरण यदि भ्रष्ट हो जाय तो मनुष्य को मार डालता है ।। १७२ ।।

दरिद्रो यस्त्वसंतुष्ट: कृपणो योऽजतेन्द्रिय: ।
गुणेष्वसक्तधीरासौ गुणसंगो विपर्यय: ॥

—महायोग विज्ञान

जो असन्तुष्ट है, वही दरिद्र है । जो अजितेंद्रिय है, वह दीन कृपण है । जो वासनाओं में आसक्त है वही असमर्थ पराधीन है ।

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्क: सदाऽशुचि: ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥

कठ वल्ली ३ मं ७ ।

जो अविवेकी, अव्यवस्थित और कुकर्मों में निरत रहता है वह परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता, भव बन्धनों में ही पड़ा रहता है ।

आत्मिक प्रगति के चार सोपान

भारतीय मनोविज्ञान व्यक्तित्व का बड़ा गहराई से विश्लेषण कर उसकी विभिन्न परतों का रहस्योद्घाटन करता एवं उन्हें विकसित कर आत्मिक प्रगति का पथ बताता है । इन्हीं परतों को प्रकारान्तर से पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक जेम्स ने अपनी सुविधानुसार चार भागों में विभक्त कर उन्हें मैटेरियल सेल्फ, सोशल सेल्फ, स्प्रिचुअल सेल्फ तथा प्योरईगो अथवा सुपरमेण्टल नाम दिया है ।

उनके मतानुसार प्रथम चरण भौतिक व्यक्तित्व (मटेरियल सेल्फ) आनुवंशिकता, आहार-विहार, श्रम तथा अनुकूलता, सुविधा आदि पर निर्भर है । इसकी उपमा वृक्ष-पादपों से दी जा सकती है । दूसरा चरण है, सामाजिक व्यक्तित्व अथवा सोशल सेल्फ । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । उसकी प्रगति-अवगति में सम्बद्ध व्यक्तियों तथा प्रस्तुत परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है । जिनके साथ रहना पड़ता है वे अपनी छाप छोड़ते हैं । समूह की गतिविधियाँ भी प्रभावित किए बिना नहीं रहतीं । इन्हीं थपेड़ों से डूबते, उतरते व्यक्तित्व का स्वरूप बनता, ढलता चला जाता है ।

तीसरा सोपान आध्यात्मिक है । इसे स्प्रिचुअल सेल्फ कहते हैं । अन्त:चिन्तन, दृष्टिकोण मान्यता, अभिरुचि के अनुरूप यह स्तर बनता है । इस निर्माण में बाहरी व्यक्तियों का योगदान कम और अपना निज का प्रयास ही प्रमुख रहता है ।

चौथा सोपान शुद्ध अहम् है—इसे प्योरईगो सुपरा-मेन्टल कहते हैं । यह आत्मा है । तीन प्रारम्भिक भूमिकाओं को पार करते हुए जब व्यक्ति कषाय-कल्मषों से रहित होकर सच्चिदानन्द स्तर का बनता है तब उसे अपने भीतर विराजमान विश्वात्मा के दर्शन होते हैं । आत्मा जब विश्वात्मा के साथ एकात्म होता है तो फिर उस निर्मलता में वैसी ही अनुभूतियाँ होती हैं—हर उतार-चढ़ावों के प्रभाव से बचना और सत्यं शिवं सुन्दरं का प्रत्यक्ष करना सहज सम्भव होता है ।

योगी अरविन्द ने अपने वर्गीकरण में प्राय: इसी से मिलता-जुलता प्रतिपादन किया है । वे निचली भूमिकाओं को क्रमश: (१) भौतिक-फिजीकल (२) बौद्धिक मेन्टल (३) चैत्य-साइकिक (४) अतिमानसिक सुपर मेन्टल—इनमें से वे अन्तिम चतुर्थ को मनुष्य में रहने वाले परमात्मा की संज्ञा देते हैं ।

आत्मिक प्रगति का अर्थ है—निचली सीढ़ियों से क्रमश: कदम उठाते हुए अन्त:गन्तव्य उच्च शिखर पर जा पहुँचना । दूसरे शब्दों में इसी प्रक्रिया को इस प्रकार समझा जा सकता है कि निचले स्तरों का परित्याग करते हुए अगले को ग्रहण करते चलना । यात्रा इसी प्रकार सम्पन्न होती है । पिछले कदम अपना स्थान छोड़कर अगले स्थान पर पैर जमाता है और प्रक्रिया अनवरत क्रम से चलती हुई पिछला कदम अगले स्थान पर रखती हुई लक्ष्य तक पहुँचती है । जीवन विकास के सम्बन्ध में भी यही बात है ।

नवजात शिशु के लिए जो कपड़े बने थे वे उसके एक दो वर्ष का होते ही बदल देने पड़ते हैं । दो वर्ष की आयु में बने कपड़े पाँच वर्ष की आयु का होने पर निरर्थक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो जाते हैं और बदलकर नये बनाने पड़ते हैं । यही सिलसिला प्रौढ़ता आने तक चलता ही रहता है । बालकों और वयोवृद्धों की पोशाक में इतना अन्तर होता है कि सहसा विश्वास नहीं होता कि नवजात शिशु के वयोवृद्ध होने पर जो अक्ल, सूरत, पोशाक, आदत, दृष्टि एवं क्रिया-कलाप में जो अन्तर पड़ता है उसकी तुलना की जा सकती है या नहीं ।

प्रगति के साथ परिवर्तन की अनिवार्यता जुड़ी हुई है । छोटा कर्मचारी जब पदोन्नति करते-करते बड़ा अफसर बनता है तो उसका रुतवा और उत्तरदायित्व सभी बदल जाता है । यही परिवर्तन आत्मिक प्रगति पथ पर चलते हुए व्यक्तित्व की अन्त:भूमिकाओं में भी होता रहता है । छोटी योनियों में जो आदतें निर्वाह का आधार बनकर रह रही थीं, वे मनुष्य स्तर तक पहुँचते-पहुँचते नितान्त धूमिल हो जाती हैं । मानवी गरिमा के साथ जुड़े हुए सन्दर्भ अपनी वरिष्ठता सिद्ध करते हैं और उन्हें पदच्युत करते चलते हैं, जो आज की स्थिति में शोभा नहीं देते । फिर मनुष्य जब महामानव बनने की दिशा में प्रयास करेगा तो उसे वह सब भी छोड़ना पड़ेगा जो सामान्य मनुष्य के लिए भले ही कामचलाऊ रहा हो पर उच्चस्तर पर पहुँचने वाले के लिए उपयुक्त नहीं रह जाता ।

मैटीरियल सैल्फ—भौतिक व्यक्तित्व—इन्द्रिय प्रधान होता है उसे शरीर सुख भर में रुचि होती है । पशुओं की अन्त:प्रेरणा पेट भरने और प्रजनन का सरंजाम जुटाने पर भी उत्तेजना देती है । ठीक यही बात काय भूमिका से निर्वाह करने वाले मनुष्यों की होती है, वे स्वादेन्द्रिय जननेन्द्रिय की पूर्ति के लिए वैभव, प्रयास एवं चिन्तन नियोजित किये रहते हैं और उसी स्तर का ताना-बाना बुनते रहते हैं । नेत्र, कण और त्वचा के भी अपने-अपने रस हैं । उनकी उमंगें भी अपने-अपने ढंग से रसों की फरमाइशें करती हैं । उस अवधि में महत्त्व उन्हीं का होता है—उन्हीं की पूर्ति से तुष्टि होती है । अतएव व्यक्तित्व इन्द्रियपरायण रहता है । इसके लिए वह साथी कुटुम्बियों का भी ध्यान नहीं रखता और अपनी इच्छापूर्ति के सामने किसी को भी नहीं गिनता । नशेबाज, चटोरे, व्यसनी, व्यभिचारी इसी प्रकार के होते हैं वे अपने आश्रितों और सम्बन्धों की आवश्यकताओं की उपेक्षा करते हुए अपना ही मनोरथ पूरा करते रहते हैं । ऐसे लोग दूसरों के शोषण उत्पीड़न तक की परवाह न करते हुए—निन्दा, स्तुति का विचार न करते हुए नग्न-निर्लज्जों की तरह अपनी मनमर्जी बरतने और उल्लू सीधा करने में निरत रहते हैं ।

सोशल सेल्फ—सामाजिक व्यक्तित्व—दूसरा स्तर है । इसमें सहयोग देने और लेने की व्यवहार बुद्धि रहती है । हिल-मिलकर रहने, मिल-बाँटकर खाने और साथी-सहचरों के साथ रहने की—हँसने-हँसाने की आदत विकसित होती है । दूसरों की तुलना में अपनी वरिष्ठता सिद्ध करने के लिए ठाट-बाट, प्रदर्शन, फैशन, शेखीखोरी, पद, बड़प्पन, वाहवाही की रुचि उभरती है और उन्हीं के लिए तरह-तरह की विडम्बनाएँ रचने में मन ललचाता रहता है ।

इन्द्रिय लिप्सा की तुलना में इस भूमिका के व्यक्ति मनोरंजन प्रधान होते हैं । अस्तु, वे अनुपयुक्त मार्ग पर चलते-चलते मनोविकार भी बहुत संचय कर लेते हैं । जबकि शरीर भूमिका वाले आहार-विहार से व्यतिक्रम करते हुए दुर्बलता, रुग्णता जैसे अभिशापों का ही भार वहन करते हैं । मानसिक व्यक्तित्व वाले चिन्तनशील होते हैं । उनमें से अनेक विज्ञान बुद्धिमान भी बन जाते हैं जबकि शरीर भूमिका वाले असंयमी या उद्धत प्रकृति की शरीर सिंचन भर को सब कुछ मानकर विलासी स्तर की दिनचर्या बनाते और उसी में समय गुजारते हैं । मानसिक व्यक्ति में यश, पद और बड़प्पन की आकांक्षाएँ उभरती रहती हैं और लोकेषणा में उनका मन बेतरह रमता है इसके लिए उन्हें छद्म का आश्रय लेना पड़ता है । जबकि शरीर भूमिका वाली धक्केशाही से ही अपना प्रयोजन पूरा कर लेते हैं ।

स्प्रिचुअल सैल्फ-आत्मकेन्द्रित-व्यक्तित्व, यों शरीर और मन परायण लोगों की तरह क्षुद्र प्रयोजनों में तो नहीं रमता और मात्र बहिर्मुखी धूम धमाली में ही नहीं खोया रहता, फिर भी इतनी कमी तो रह ही जाती है कि 'स्व' को ही प्रधानता दी जाय और परमार्थ के सम्बन्ध में उदासीन रहा जाय । तथाकथित सन्त प्रकृति के लोगों में से अधिकांश इसी प्रकृति के होते हैं । उन्हें अपने लिए स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि आदि की अपेक्षा रहती है और अन्तर्मुखी होने पर भी अभिलाषा एक ही रहती है कि अपना स्वार्थ सिद्ध कैसे हो ? उद्देश्य का स्तर तो ऊँचा होता है पर संकीर्ण सीमा बन्धन टूटता नहीं । ऐसे लोग कई बार अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों की नैतिकता का भी निर्वाह नहीं करते और आश्रितों को असहाय छोड़कर तथाकथित वैरागियों की पंक्ति में जा बैठते हैं ।

अध्यात्म का अर्थ आत्म-विज्ञान को हृदयंगम करना और आत्म-विस्तार की गतिविधियों का केन्द्रबिन्दु बनाकर चलना होता है । न कि स्वकेन्द्रित हो जाना । फिर भी इस भूमिका में जगे हुए लोगों में से दीन-दुनिया की बात सोचना छोड़कर अपनी निराली दुनिया गढ़ते हैं और उसी से तादात्म्य बनकर खोये-खोये से रहते हैं । वैराग्य के नाम पर जो उदासी, पलायनवादिता एवं निष्क्रियता पायी जाती है उसके लिए यही भूमिका उत्तरदायी है । यह पिछली दो की तुलना में उत्कृष्टता की पक्षधर होते हुए भी मनुष्य को व्यवहार क्षेत्र में न सही—भावना क्षेत्र में एकाकी बनाती चली जाती है । वे अनासक्त परमहंस तो हो सकते हैं किन्तु सहृदय नहीं । वस्तुत: यह सहृदयता ही भगवद् भक्ति है जिसे तथाकथित ज्ञानवान उपेक्षा की दृष्टि से ही देखते रहते हैं ।

आत्मिक प्रगति का चौथा सोपान ही अन्तिम है । उसी को परम लक्ष्य कहा गया है । इसमें अपने आपे का विस्तार समष्टि के लिए करना पड़ता है । सरिता समुद्र में, ईंधन आग में, पतंगा दीपक में आत्म विसर्जन करता है । बीज को भूमि में शरणागत होते-शुक्राणु को डिम्बकोष में समर्पित होते देखकर प्रत्यक्षदर्शी आत्म-हत्या जैसी दुर्घटना अनुभव कर सकते हैं किन्तु दूरदर्शी जानते हैं कि आत्म-समर्पण की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रक्रिया यदि महानता के साथ—महान प्रयोजन के साथ जुड़ जाय तो उसकी परिणति कितनी महान होती है । उस परम पुरुषार्थ का प्रतिफल काया-कल्प जैसा होता है । क्षुद्र से महान, नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम, आत्मा से परमात्मा बनने का सुयोग आत्म-विस्तार के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है । सच्चा आत्म-विकास इसी स्तर पर पहुँचने से होता है ।

भगवान बुद्ध का मरण काल आने पर उनके शिष्यों ने पूछा, "आप तो मुक्त हो चले कदाचित् अब जन्म-मरण के चक्र में नहीं घूमेंगे और फिर वापस नहीं आयेंगे ? इस पर तथागत ने अपने पथराये नेत्र खोले और समूचा साहस समेटकर एक-एक शब्द धीरे-धीरे कहते हुए कहा, "मैं तब तक जन्म-मरण के चक्र में ही स्वेच्छापूर्वक परिभ्रमण करता रहूँगा जब तक कि इस विश्व का एक भी प्राणी भव-बन्धन से बँधा रहेगा । सभी को मुक्त बनाने के उपरान्त ही मैं अपनी मुक्ति की बात सोचूँगा ।"

तथागत की यह व्रतशीलता ठीक उसी आर्य परम्परा के अनुरूप है जिसमें "**नत्वहं कामये राज्यं...**" में प्राणियों के अविनाश को ही जीवन का परम लक्ष्य आत्मा को मिल सकने वाला सर्वोपरि आनन्द कहा गया है । उदारमना दूसरों का दुःख बढ़ाते और अपना सुख बाँटते देखे गये हैं । इस निर्धारण के पीछे उनकी वही दृष्टि काम करती है जिसे आत्मवेत्ता प्रगति की चतुर्थ भूमिका कहते हैं । सुपरामेन्टल, प्योरईगो का प्रमाण परिचय इसी भूमिका में पहुँचने पर मिलता है ।

गीता में शरणागति—समर्पण शब्दों में आत्मिक प्रगति की चरम स्थिति का वर्णन किया गया है । प्रत्याहार, ध्यान धारणा और समाधि में जिस लय विसर्जन की चर्चा होती है वह और कुछ नहीं मात्र स्व को पर में, स्वार्थ को परमार्थ में विसर्जित करने की अन्तर्दृष्टि का ही निरूपण है । वेदान्त में जिस अद्वैत को पूर्णता का प्रतीक माना गया है उसी को एक सूफी सन्त इस प्रकार कहता है—"अपनी खुदी मिटादे तेरा खुदा मिलेगा ।" भक्त ने इसी भावानुभूति को व्यक्त करते हुए कहा है—"तेरा तुझको सौंपते क्या लागे है मेरा ।"

योगी अरविन्द ने सुपरामेन्टल की उपलब्धि को ही योग का परम लक्ष्य माना है, वे इसके लिए समर्पण भाव-भूमिका को अपनाने पर जोर देते हैं और कहते हैं "समस्त विभूतियाँ इसी क्षेत्र में रहती हैं । व्यक्ति और समाज का आध्यात्मिक हित साधन कर सकने वाले तत्व इसी क्षेत्र में सन्निहित हैं ।"

सुपरमेन्टल की वेदान्त भूमिका में व्यक्ति अपने स्व को विसर्जित करता है और ब्रह्माण्डीय चेतना का अपने आपको अविच्छिन्न घटक अनुभव करता है । ईश्वर के साथ तादात्म्य होने का अर्थ अपने आपको विश्व चेतना में घुला देना । विश्व-चेतना अर्थात् उत्कृष्ट आदर्शवादिता से भरी-पूरी व्यापकता । इसी ब्रह्मलोक में प्रवेश करने वाला जीवन लाभ पाता और कृतकृत्य बनता है ।

वैचारिक क्रान्ति बनाम आत्मोन्नति

हर कोई स्वतन्त्र रहना चाहता है । ढूँढ़ने-खोजने पर भी ऐसा न मिलेगा, जिसे बन्धन में रहना अच्छा लगता हो । परिवर्तनों की समूची कड़ी के पीछे किसी न किसी रूप में यही चाहत छुपी है । इन परिवर्तनों को क्रान्ति का नाम भी दिया गया है । इनमें से पहले नम्बर पर है, वैज्ञानिक क्रान्ति । इसके तहत आदमी के हाथ-पैरों एवं दिमाग के क्रिया-कलापों की स्थानापन्न मशीनें ढूँढ निकाली गयीं । इन तकनीकी सुविधाओं को सभी तक पहुँचाने हेतु एक और क्रान्ति हुई जिसे औद्योगिक क्रान्ति कहा गया । इनके द्वारा यह आशा बाँधी गयी थी कि मनुष्य को तमाम कामों की उलझनों से छुटकारा मिल जाएगा ।

मनोवैज्ञानिक एरिक फ्रॉम ने अपनी रचना 'एस्केप फ्रॉम फ्रीडम' में इसी तथ्य को और अधिक स्पष्ट किया है उनके अनुसार सारे बदलाव चाहे वे राजनीतिक हों या औद्योगिक अथवा वैज्ञानिक सभी का मकसद स्वतन्त्रता व सक्षमता को पाना रहा है । स्वतन्त्र होना मनुष्य की मूलभूत वृत्ति है । इसी के लिए उसने व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से तरह-तरह के प्रयास किए हैं ।

इनमें पूरी तरह सफल न होने का कारण है, इसे बाहरी तत्व मान लेना । जबकि यह बाहरी न होकर आन्तरिक है । प्रख्यात विचारक जॉन डीवी अपनी किताब 'फ्रीडम एण्ड कल्चर' में कहते हैं, स्वतन्त्रता व सक्षमता एक-दूसरे से बहुत घनिष्टतापूर्वक जुड़े हैं । शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक ताकत का सही व समुचित उपयोग तभी बन पड़ता है जब इनका संचालन स्व अर्थात् आत्मा के विधान से हो । इसके अभाव में इन सामर्थ्यों का जखीरा आदमी को उस पशु के रूप में बदल देता है जो दूसरों की तबाही के साथ खुद को भी तबाह कर लेता है ।

श्री डीवी अपने इसी अध्ययन में बताते हैं कि स्वतन्त्र होने के लिए किए जाने वाले उपायों का असली क्षेत्र स्वयं का अन्तराल है । इसमें जरूरी फेर-बदल कर ठीक करने वाली क्रान्ति ही हमें सही माने में स्वतन्त्रता दिला सकती है । डीवी के इस कथन में भगवद्गीता के १६वें अध्याय की विषयवस्तु तथा छान्दोग्य व बृहदारण्यक उपनिषद में बताये देवासुर संग्राम की झलक देखी जा सकती है । इनमें यह बताया गया है कि अन्दर के असुरत्व को परास्त कर आत्मा का राज्य स्थापित करना वास्तविक क्रान्ति है ।

पर आधुनिक चिन्तन संसार में केवल बाहरी बदलाव लाकर समाज में सुख-शान्ति, स्वतन्त्रता को स्थापित करने में जुटा हुआ है । इन प्रयासों व परिणामों को देखने से साफ होता है कि इनका आधार स्वतन्त्रता न होकर स्वच्छन्दता है इससे जुड़ने पर सक्षमता निर्माण के स्थान पर ध्वंस ही करती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता एक-सी लगने पर भी पूरी तरह विरोधी हैं । पहले में व्यक्ति और समूह आत्मा को जीवन का केन्द्र मानता हुआ ऊँचे उद्देश्यों एवं आदर्शों के लिए जीता है । दूसरे में जीवन के आधार सुख-भोग भर रह जाते हैं । इनमें किसी तरह की विघ्न-बाधा बर्दाश्त नहीं होती । ऐसी दशा में व्यक्ति और समाज दोनों ही साधन-सुविधाओं की बढ़ोत्तरी को सब कुछ मान बैठते हैं ।

आजकल क्रान्ति अथवा बदलाव का दायरा इसी सीमा में सिकुड़ गया है । इस तरह के प्रयास संसार को पूरी तरह बदलने पर जोर देते हैं, पर भोग-सामग्रियों को जैसे का तैसा रखना चाहते हैं । फलतः शान्ति दूर भागती है और **''अशान्तस्य कुतः सुखम्''** के तथ्य के अनुरूप वास्तविक सुख का नामोनिशान नहीं रह जाता । इतने पर भी स्वतन्त्रता के आभासी स्वछन्दता को पाने के लिए साधना, गतिविधियाँ, क्रिया-कलाप लगातार बढ़ते जा रहे हैं ।

इन क्रिया-कलापों में जुटे लोगों की स्थिति कुछ वैसी है, जैसे कोई नदी के किनारे खड़ा होकर इसलिए परेशान हो कि नदी ठहर जाय । नदी नहीं ठहरती, इसलिए वह दुःखी है । क्योंकि उसकी धारणा है कि नदी ठहर जाय तो मैं सुखी हो सकता हूँ । जबकि असलियत यह है कि सुखी होना मन की स्थिति पर निर्भर है न कि नदी के ठहरने पर । इसी तथ्य को बताते हुए एरिक फ्रॉम का कहना है कि स्वतन्त्रता की समस्या मनोवैज्ञानिक है न कि भौतिक ।

स्वतन्त्रता के नाम पर स्वच्छन्दता के लिए किए जा रहे इन परिवर्तनों तथा तरह-तरह के प्रयासों ने समाज में असुरक्षा व अनिश्चितता का माहौल पैदा किया है । यही मानसिकता व्यावहारिक धरातल पर हिंसा व अपराध के रूप में दिखायी पड़ती है । इसको समझाते हुए मनोवैज्ञानिक जॉन गाल्टुंग का कहना है कि प्रत्येक वह काम जो मनो-सामाजिक विकास तथा जीवन-बोध में बाधा पैदा करे, उसे अपराध की ही श्रेणी में रखा जाएगा ।

इस तरह के क्रिया-कलापों की पैदाइश का कारण स्वच्छन्दता है । आवश्यकता इस भ्रम को दूर करने की है । सही कहा जाय तो यह पशुओं का गुण-धर्म है । उन्हें यह मालूम नहीं कि स्वतन्त्र होना हमारी ही कोई अवस्था है अथवा किन्हीं वस्तुओं का गुण है अथवा यह कहा जाय कि उन्हें इस पर विचार करने के लिए रुचि अथवा समय नहीं । वह सहज ही इसे वस्तुओं में अथवा इस पर निर्भर मानकर देखा-देखी उन्हें जुटाने में समय और ताकत खपाता चला जाता है । चाहे उसे बार-बार धक्के क्यों न लगें, जीवन ही संकट में क्यों न दिखाई देने लगे । उसमें न सृजन की भावना होती है न भावी कल्याण की चिन्ता ।

आज स्थिति कुछ ऐसी ही है । डॉ. एरिक फ्राम के शब्दों में, बौद्धिक व तकनीकी प्रगति की दृष्टि से मानव भले इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ रहा हो, पर भावनाओं की दृष्टि से वह अभी भी पाषाण युगीन है । बर्ट्रेण्ड रसेल ने इसी को व्यक्त करते हुए 'अथारिटी एण्ड इण्डिविजुअल' में कहा है कि उन्नत भावनाओं की उपेक्षा से हृदय का स्रोत लगातार सूखता जा रहा है । इसको बनाए रखने के लिए जरूरी है, मानवीय स्वतन्त्रता का स्थापन ।

श्री अरविन्द का 'आइडियल आफ ह्यूमन यूनिटी' में इसकी उपलब्धि के बारे में कहना है कि यह न तो वैज्ञानिक क्रांति से मिलेगी, न औद्योगिक क्रान्ति से । राजनीतिक क्रान्ति भी इसके लिए काफी नहीं है । सही माने में इसका पाना तभी सम्भव है जब मानसिकता में बदलाव आए, विचारों में परिवर्तन हो । इसके लिए अपेक्षित है, वैचारिक क्रान्ति ।

इस क्रान्ति का क्षेत्र है, मनुष्य का मन और साधन है, सद्विचार । इस कल्याणकारी क्रान्ति की शुरूआत व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही स्तरों पर करनी होगी । इसमें जुट पड़ने का मतलब है आदर्श परायण जीवन जीने के लिए जुट पड़ना । आदर्शवादी जीवन शैली का तात्पर्य है शारीरिक और मानसिक शक्तियों का सदुपयोग, सेवा, सहायता, कर्त्तव्य परायणता के निर्वाह में करना न कि सुख-भोग में । जीवन सही ढंग से आत्मा का यन्त्र बन सके । इसके विविध क्रियाकलापों में पवित्रता, प्रखरता, सदाशयता आदि गुण स्थान पा सकें । इसके लिए बिना रुके प्रयत्न करना होगा । जैसे-जैसे मानसिकता में उच्चचिन्तन का शासन स्थापित होता जायगा, क्रान्ति की गति बढ़ती जाएगी । बढ़ती गति के साथ इसका प्रभाव क्षेत्र भी बढ़ेगा, जिससे व्यक्ति और समाज दोनों अपना खोया सौन्दर्य पा सकेंगे और इसी के साथ प्राप्त होगी, मुक्ति ।

जीवन लक्ष्य की प्राप्ति दूरदर्शी दृष्टिकोण से

मनुष्य का अवतरण—ईश्वरीय अवतार धारण का ही छोटा स्वरूप है । ईश्वर अवतार लेता है, धर्म के संस्थापन और अधर्म के निराकरण के लिए, साधुता का परित्राण और दुष्कृतों का शमन करने के लिए । भगवान की लीलाएँ इसी का ताना-बाना बुनने के लिए बनती चलती हैं। अवतार निरुद्देश्य हास-विलास के लिए नहीं होते । वे अतिरिक्त ईश्वरीय शक्ति लेकर निजी मोद-प्रमोद के लिए नहीं आते वरन् उस सामर्थ्य का उपयोग सृष्टि सन्तुलन के लिए ही करते हैं । मनुष्य निश्चित रूप से एक छोटा अवतार है । सृष्टि के समस्त प्राणियों की तुलना में उसे जो अतिरिक्त मिला है, उसे विशुद्ध रूप से दिव्य प्रयोजनों के लिए दी गई अमानत पूँजी ही समझा जाना चाहिए । जिस प्रकार हम अवतारी देवदूतों को असाधारण क्षमताओं से भरा-पूरा देखते हैं ठीक उसी प्रकार जीव-जगत के समस्त सदस्य मनुष्य को धरती पर विचरण करने वाले देव सम्पदा सम्पन्न सत्ता के रूप में देख समझ-सकते हैं । यह असाधारण अनुदान उसे अकारण ही नहीं मिला होता । उसके पीछे निश्चित रूप से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर प्रदत्त महान् कर्त्तव्य और महान् उत्तरदायित्व जुड़े होते हैं ।

माया उसी भ्रान्ति का नाम है जो आत्मा के स्वरूप, कर्तव्य और लक्ष्य को भुला देती है । वासना और तृष्णा के हेय आकर्षणों में फँसा देती है । लोभ और मोह के भवबन्धनों में बाँध देती है । माया के जाल-जंजाल से छुटकारा पाकर जीवन के स्वरूप, संसार के व्यक्तियों तथा पदार्थों के साथ अपने सम्बन्धों का यथार्थता के आधार पर निर्धारण् करना ही मुक्ति है । मुक्ति को परम पुरुषार्थ माना गया है । उसमें लोक-प्रवाह से उलटी दिशा में सोचने और चलने का साहसिक पराक्रम करना पड़ता है । अपना चिन्तन और कर्तृत्व लोगों के अनुकरण या परामर्श पर निर्धारित न रहने देकर विवेक भरी दूरदर्शिता के सहारे निश्चित करना पड़ता है । जो ऐसा कर सके समझना चाहिए कि वह जीवित रहते हुए भी मोक्ष का महान् अनुदान प्राप्त कर सकने में सफल हो गया ।

आमतौर से लोगों का सारा चिन्तन—सारा कर्तृत्व शरीर और मन की आकांक्षाएँ पूरी करने में ही लगता है । पेट और प्रजनन के लिए ही जीते हैं । इन्द्रियजन्य वासनाओं की पूर्ति और मनोगत तृष्णाओं को जुटाने के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं । आकांक्षा की धुरी लोभ और मोह के पहियों के सहारे ही घूमती है । यही है मानव-जीवन का घृणित और भ्रमित स्वरूप । इसका दुष्परिणाम जीवनकाल में हर घड़ी भुगतना पड़ता है । शोक-संताप, अभाव, दारिद्रय, क्लेश-कलह की ठोकरें पग-पग पर लगती हैं । शरीर को रोग और मन को उद्वेग घेरे रहते हैं । जिनको सुखी बनाने की बात सोची गई थी वे भी क्षणिक लिप्सा की ललक में पाते कम और खोते बहुत हैं । भोग भोगने की लिप्साएँ तो पूरी नहीं हो पातीं उलटे स्वयं ही जरा-जर्जर होकर रोते-कलपते, जलते-गलते रहते हैं । माया का, भ्रमग्रस्तता का यही स्वाभाविक परिणाम है, जिसे दुनियादार लोग शोक-सन्ताप ग्रसित होकर निरन्तर सहन करते रहते हैं । सुख की आशा करते चलते जरूर हैं, पर दुःख, निराशा के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगता नहीं । यही है मायाग्रस्त जीवन का निरूपण और विश्लेषण ।

समाज के प्रति हर मनुष्य का प्रचण्ड कर्त्तव्य है । वस्तुतः इसी के लिए मनुष्य का जन्म हुआ है । संसार को सुखी, समुन्नत और सुन्दर बनाने के लिए अपनी अधिकाधिक क्षमताएँ और विभूतियाँ लगानी चाहिए । यही तो मानव-जीवन के दिव्य अवतरण का एकमात्र उद्देश्य है । पर होता यह है कि इन्द्रियजन्य लिप्सा, वासना, मनोगत अहंता, तृष्णा की पूर्ति में ही अधिकांश क्षमता समाप्त हो जाती है । रही बची परिवार की संख्या बढ़ाने और उन्हें अमीर उमराव स्तर का बनाने के लिए ताना-बाना बुनने में चुक जाती है । शारीरिक श्रम, मानसिक चिन्तन एवं आर्थिक उपार्जन से जो कुछ मिलता है वह शरीर, मन और परिवार के लिए ही कम पड़ता है । अभाव अनुभव होता रहता है और अधिक कमाकर उसकी पूर्ति की उद्विग्नता छाई रहती है । ऐसी दशा में जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिए, लोकमंगल के लिए कुछ करना सम्भव ही नहीं हो पाता है ।

इस विडम्बनाग्रस्त जीवन जंजाल में अन्तरात्मा के मनोस्थल सदा कराहते रहते हैं । मनुष्य अपने आपको खोया-खोया-सा, किंकर्तव्यविमूढ़-सा अनुभव करता है । निर्वाह के आवश्यक साधन रहते हुए भी ऐसा लगता है मानो वह मरघट में रहकर अशान्त जीवन जी रहा हो न कहीं चैन, न शान्ति, न सन्तोष । खीज और बेचैनी छोटे-छोटे कारणों के सहारे बेहिसाब उठती रहती है । भीतर ही भीतर कोई काटता, कचोंटता रहता है । जिसकी प्रतिक्रिया बाहरी जीवन में पग-पग पर झल्लाहट के रूप में प्रकट होती है । मायाग्रस्त जीवन की यही दुःखद प्रतिक्रिया है । इस अन्तर्व्यथा से बचने के लिए कितने ही लोग गम गलत करने के लिए नशे पीते हैं—कभी भड़काने वाले मनोरंजनगृहों का चक्कर काटते हैं, कभी घर छोड़कर तीर्थयात्रा, सैर-सपाटे के लिए निकलते हैं, कभी ताश, शतरंज जैसे व्यसनों में भीतरी कसक को भुलाने का प्रयत्न करते हैं, पर वे सभी साधन मृग तृष्णावत् लगते हैं । एक की निस्सारता अनुभव करने के बाद दूसरे पर भटकना पड़ता है, पर प्रयोजन कुछ सिद्ध नहीं होता । बाहर से सुख-साधन कितने ही बढ़े-चढ़े क्यों न हों—भीतर की जलन-ज्वाला को शान्त करने में बेपानी की बूँद अपर्याप्त ही लगती रहती है ।

हम भ्रान्तियों से भरा-पूरा मायाग्रस्त जीवन जीते हैं । शरीर, मन, परिवार, समाज, भगवान किसी के भी प्रति हमारा दृष्टिकोण सही नहीं है । किसी भी क्षेत्र में सही रीति-नीति नहीं अपनायी जा सकी, इसका एकमात्र कारण आत्मा और संसार के साथ अपने सम्बन्धों को ठीक तरह न समझ पाना ही है । इस भ्रान्ति को सुधारना मायाग्रस्त मनःस्थिति को बदलना और लोक-व्यवहार की रीति-नीति का पुनःनिर्धारण करना यही है, अध्यात्म-दर्शन का उद्देश्य । उसे जितना प्राप्त किया जा सके, उतना ही सुख-शान्ति का जीवन जिया जा सकता है ।

भाव-चेतना को प्रभावित करे ऐसी विधा की खोज हो

एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को तर्क, प्रमाण, विचार, परामर्श आदि आदि देकर प्रभावित कर सकता है, इसकी जानकारी सभी को है । अध्यापक अपने छात्रों के मस्तिष्क को विकसित करते हैं । पहलवान अपने शागिर्दों को कुश्ती, कसरत सिखाकर बलवान बनाते हैं । वक्ता, लेखक विचारों से हलचल उत्पन्न करते और लोगों के सोचने के तरीके के परिवर्तन करते हैं । नर-नारी के बीच शारीरिक आकर्षण भी काम करता है और प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने रौब-दौब, आतंक का भी उपयोग करते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपर्युक्त प्रभाव प्रक्रिया का स्तर उथला ही रहता है । अध्यापक गणित, इतिहास, भाषा, भूगोल आदि की जानकारी करा देने पर अपने कर्त्तव्य से छुट्टी पा लेते हैं । वे चिन्तन की शैली, आकांक्षा और दिशा नहीं बदल सकते । अखाड़े के पहलवान शागिर्दों की माँस-पेशियाँ मजबूत कर सकते हैं, उनमें मनोबल उत्पन्न नहीं कर सकते ।

इसी प्रकार लेखक, वक्ता, नेता, प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपनी तेजस्विता के सम्मोहन से तत्काल तो कुछ भी सोचने-करने को आवेश उत्पन्न कर सकते हैं, पर वह क्षणिक होता है और उथला रहता है । वह नशा उतरते ही लोग अपने पुराने ढर्रे पर आ जाते हैं और वह कृत्रिम उत्साह अपनी क्षणिक चमक दिखा कर तिरोहित हो जाता है । कारण स्पष्ट है जो शिक्षण दिया गया था वह अन्त:करण की गहराई तक प्रवेश न कर सका, केवल उथले बौद्धिक स्तर तक टकरा कर बिखर गया । उस टकराहट की प्रतिक्रिया जितनी देर रह सकती थी उतनी देर रही और इसके बाद व्यक्ति की वही संस्कारगत स्थिति आ गई ।

मनुष्य का समग्र व्यक्तित्व विकसित एवं परिवर्तित करने से ही उसकी गरिमा और महत्ता बढ़ सकती है । महामानव ही इस विश्व की सच्ची सम्पत्ति होते हैं । कोई देश और समाज उन्हीं के कारण गौरवशाली बनते हैं और उन्हीं के अभाव में पतन के गर्त में गिरते चले जाते हैं । राष्ट्रीय सम्पदा का मूल्यांकन, धन के आधार पर नहीं मनस्वी, तेजस्वी और आत्मबल सम्पन्न प्रतिभा के आधार पर ही किया जाना चाहिए । वे यदि उद्भूत नहीं तो विपुल सम्पदा सम्पन्न होते हुए भी कोई समाज दरिद्र ही रहेगा । उसकी वह आर्थिक उन्नति भी ठोस प्रगति की दिशा में कुछ अधिक सहायता न कर सकेगी ।

उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों का निर्माण कैसे हो ? इसके लिए उसी स्तर के साँचे चाहिए । टकसाल के साँचे जैसे होते हैं वैसे ही सिक्के ढलते चले जाते हैं । बुद्ध के अनुगामी ढाई लाख व्यक्तियों ने संसार भर में सत्य अहिंसा का संदेश पहुँचाया था । गाँधी के अनुचर स्वतंत्रता संग्राम में एक से एक बढ़े-चढ़े अनुदान लेकर आगे आये । यह प्रेरणा बौद्धिक आधार पर नहीं, भावना स्तर पर दी जाती है और इनको देने के लिए वैसा ही आत्म-शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व चाहिए । आज आवश्यकता ऐसी ही हस्तियों की है जो अपने आत्मबल से जनसाधारण के भावस्तर को विकसित और परिष्कृत कर सकें । विज्ञान इस संभावना को स्वीकार करता है कि अदृश्य शक्ति प्रवाह के द्वारा भी मानवीय चेतना को अभीष्ट दिशा में मोड़ा या ढाला जा सकता है ।

मानव मस्तिष्क की अन्तस्त्वचिका के भीतर एक विशेष प्रकार की तंत्रिकाएँ पायी जाती हैं, उनका समूह भावात्मक मस्तिष्क कहलाता है । भय, क्रोध, शोक, चिन्ता, अवसाद, हर्ष, संतोष, प्रेम, त्याग, संयम और कामोद्वेग जैसी प्रवृत्तियाँ इसी भाग से सम्बन्धित हैं । इनका स्वरूप बहुत कुछ वंश परम्परा से उत्तराधिकार में मिला था, कुछ वातावरण एवं संगति में और कुछ व्यक्तिगत चिन्तन की दिशा के आधार पर विकसित होता है । अविकसित और विकसित प्राणियों का यों मानसिक अन्तर कुछ तो बुद्धि के आधार पर भी होता है पर मुख्य अन्तर यह भावात्मक ही है । भावनाओं के आवेश में ही मस्तिष्क उत्तेजित और सक्रिय होता है । इन दोनों की बिखरी हुई दिशाओं को एक केन्द्र पर एकत्रित करने और क्रियाशील बनाने का श्रेय इस भावात्मक मस्तिष्क केन्द्र को ही है ।

येल विश्वविद्यालय के न्यूरोलोजिस्ट डॉ. जोसे डैलगेडो ने ऐसे विद्युत रेडियो उपकरणों का आविष्कार किया है जिनके आधार पर बिना शल्य-चिकित्सा के ही रेडियो किरणों द्वारा मस्तिष्क के किसी भाग से सम्पर्क बनाना और उसे प्रभावित कर सकना सम्भव हो सके । भावनात्मक मस्तिष्क की तंत्रिकाओं और कोशिकाओं को शरीर के आर-पार जा सकने वाली किरणों के द्वारा वहाँ के असंतुलन को मिलाया जा सकेगा । विशेष प्रकार का भावावेश उत्पन्न किया जा सकेगा । यह किरणें 'क्ष' किरणों से मिलती-जुलती हैं जिन्हें शरीर के आरपार जाने में मस्तिष्क की कठोर खोपड़ी में भी कोई बड़ी बाधा नहीं पहुँचती ।

अब तक भावनाओं का समाधान भावनाओं से ही किया जाता रहा है । क्रोध को विनय से, घृणा को प्रेम से, असंतोष को उपलब्धियों से शमन किया जाता रहा है । इसके लिये सामने वाले व्यक्ति को अपनी वाणी, व्यवहार और क्रिया द्वारा असंतुलित व्यक्ति को वैसा विश्वास दिलाकर उस उद्वेग का समाधान करना पड़ता था जिसके अभाव में उसे असंतुलित होना पड़ा । इतनी लम्बी प्रक्रिया के बाद तब कहीं उत्तेजित व्यक्ति सामान्य स्थिति में आता था । उसके समाधान के लिए व्यक्ति विशेष को माध्यम बना कर अथवा वातावरण को बदलकर मनोविकार ग्रस्त मनुष्य की शान्ति सम्भव की जाती थी । उचित ही नहीं अनुचित समाधान भी प्रस्तुत करने पड़ते थे । पर अब उपर्युक्त वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण यह कठिन प्रक्रिया सरल हो गई । रेडियो विद्युतधाराएँ आवेशग्रस्त मस्तिष्कीय खण्ड का शमन कर दिया करेंगी और मनुष्य चिकित्सक के इशारे पर अपने भाव-संस्थान में आवश्यक परिवर्तन कर लिया करेगा । इस सफलता के कारण न केवल भावनात्मक रुग्ण ग्रन्थियों को खोला जा सकेगा वरन् उनमें उपयोगी ऐसे भाव बीज भी जमाये जा सकेंगे जो उसे किसी दिशा विशेष में चलने के लिये आवश्यक रुचि एवं स्फूर्ति पैदा कर सकें ।

मानवीय मस्तिष्क पर इलेक्ट्रोनिक नियमन की इस प्रक्रिया पर विज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य बहुत तेजी से चल रहा है और प्रगति भी काफी भी हुई है । दो दशक पूर्व स्विट्जरलैण्ड के विज्ञानी डॉ. डब्ल्यू. आर. हेस ने इस दिशा में प्रयास आरम्भ किया, उन्होंने जीवित प्राणी के मस्तिष्क में एक सुई घुसेड़ कर उसके माध्यम से विविध स्तरों की विद्युत तरंगें पहुँचाई थीं और उनके प्रभाव का अध्ययन किया था ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्होंने पाया कि चेतन और अचेतन मस्तिष्क के भागों में विभिन्न स्तर के जो चेतन केन्द्र बने हुए हैं उनसे सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है और उन केन्द्रों को उत्तेजित करके उसी स्तर की विचारणा से प्राणी को ओत-प्रोत किया जा सकता है ।

इसके बाद अमरीकी मस्तिष्क विद्या विशारद डॉ. जेम्स ओल्डस् ने इस कार्य को और आगे बढ़ाया । उन्होंने मानवी मस्तिष्क को हाथ में लिया जबकि पूर्ववत् स्विस विज्ञानी वैसे प्रयोग अन्य प्राणियों पर करते रहे । भूख, भय, इच्छा, कामुकता, क्रोध, पीड़ा, निराशा, उत्साह जैसे मस्तिष्क क्षेत्र तो पहले भी मालूम थे पर उनके केन्द्रीय कण उन्होंने ढूँढ़े और इस खोज के बाद उन्होंने वह पद्धति खोजी जिसके अनुसार उस केन्द्र तक बाह्य प्रभाव को पहुँचाया जा सकना सम्भव हो सके । इसमें सबसे बड़ी बाधा खोपड़ी को चारों ओर से जकड़ी हुई कपाल अस्थियों की थी । यह अस्थियाँ सिर की केवल सर्दी-गर्मी चोट आघात आदि से ही रक्षा नहीं करती वरन् बाहरी विद्युत प्रभावों को भी भीतर जाने से रोकती हैं । विचारों की बिजली अति सूक्ष्म होने से भीतर प्रवेश कर सकती है । एक संकल्पशील व्यक्ति के विचार दूसरे व्यक्ति पर आरोपित करने का सफल प्रयोग तो जर्मनी के डा. शेक्सर पहले ही कर चुके थे । मैस्मरेजम हिप्नोटिज्म आविष्कारों ने उनमें इसी तथ्य को प्रत्यक्ष किया था । पर यह तो प्रश्न विचार तरंगों का नहीं, विद्युत तरंगों के प्रवेश का था, इसमें कपाल अस्थियाँ प्रधान रूप से अवरोध उत्पन्न कर रही थीं । इसलिए उन्होंने चोर रास्ते से प्रवेश किया रेडियो प्रभावित रसायनों को रक्त में मिलाकर और उस प्रभावित रक्त में विद्युत तरंगें पहुँचाकर नया रास्ता खोज लिया गया और अमुक केन्द्र को उत्तेजित करने के लिए अमुक स्तर की विद्युत का प्रयोग करने की पद्धति का निर्धारण कर लिया गया ।

यह प्रयत्न और भी अधिक तेज कर दिये गये हैं और वह सरलता खोजी जा रही है जिसमें जिसे प्रभावित करना हो उसके सहयोग की आवश्यकता न रहे । अभी तो यह कार्य तभी हो सकता है जब व्यक्ति पर लोहपट्टी बँधवाने और औषधालय सेवन के लिए सहायता हो । बाँधकर बलात्कारपूर्वक तो यह किया नहीं जा सकता । यदि व्यक्ति अपने ऊपर इस प्रकार का प्रभाव डलवाने के लिए सहमत न हो तब तो सारी योजना ही निरस्त हो जायगी । अस्तु शोध के चरण इस दिशा में चल रहे हैं कि मनुष्य को पता भी न चले और परोक्ष रूप से उसे बौद्धिक पराधीनता के पास से मजबूती से जकड़ा जा सके ।

प्रकृति की शक्तियों को वशवर्ती करने में बहुत बड़ी मात्रा में सफलता प्राप्त कर लेने के बाद अब चेतना की स्वतंत्रता को विज्ञान की मुट्ठी में कैद करने के लिये अन्वेषण गतिविधियाँ तीव्र कर दी गई हैं और विज्ञान क्षेत्र में समुन्नत देश गुप-चुप इस दौड़ में परस्पर बाजी मारने के लिये खुले हुये हैं । अन्तरिक्ष पर नियन्त्रण करने से भी बढ़कर यह आविष्कार होगा ।

इस दिशा में संतोषजनक सफलता मिलती है तो फिर युद्ध का सबसे बड़ा माध्यम यही होगा एक अणु बम, हाइड्रोजन बम जैसे अस्त्र को बेकार समझकर त्याग दिया जायेगा क्योंकि उससे शत्रु देश विनाश के साथ-साथ विश्वव्यापी वातावरण में विकरण उत्पन्न होने से मित्र देशों को भी खतरा उपस्थित होता है । फिर उसमें कई तरह के खतरे और झंझट भी हैं । खर्चीली तो वह प्रक्रिया है ही उसकी सुरक्षा के लिए भी कम चिन्ता नहीं करनी पड़ती ।

प्रगति जिस चरण में पहुँची है उसे देखते हुए मिशिगन विश्वविद्यालय अमेरिका के इस सन्दर्भ में संलग्न विज्ञानी डॉ. ओटोशिमल ने घोषणा की है कि अब हमारे हाथ में मानव मस्तिष्क को नियन्त्रित करने की शक्ति आ गयी है, पर आशा की जानी चाहिए कि उसका प्रयोग केवल अच्छाई के लिए ही होगा किन्तु साथ ही इस खतरे को भी ध्यान में रखना होगा कि इस नव-उपार्जित शक्ति का प्रयोग निजी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति एवं राष्ट्रीय विस्तारवाद के लिये भी किया जा सकता है । यदि ऐसा किया गया तो यह आविष्कार संसार का सबसे अधिक विघातक अस्त्र सिद्ध होगा ।

कुछ दिन अमरीका प्रतिरक्षा विभाग के एक गधे पर यह प्रयोग किया गया था और उसे उपकरणों से प्रभावित करके अकेला छोड़ा गया था । उसे जिधर चलने और जो करने के लिए निर्देश किया उसने वही सब कर दिखाया ।

इस अन्वेषण के आधार पर कई उपयोगी चमत्कार अमेरिका के मेयोक्लिनिक नेकनाडा के मोन्ट्रियल न्यूरोलोजिकल इन्स्टीट्यूट ने तथा नार्वे के गुस्टाड मेन्टल हास्पिटल ने दिखाये हैं । रोगी को खुशी-खुशी बिना डरे आपरेशन करा लेने के लिए इस आधार पर तैयार करने में आश्चर्यजनक सफलता पायी गयी है । एक प्रयोग में तो एक १८ वर्ष से अन्धी चली आयी महिला को उसका मस्तिष्कीय दृष्टि संस्थान उत्तेजित करके देख सकने की शक्ति ही प्रदान कर दी । यह इस अन्वेषण का उपयोगी पक्ष है । निसन्देह इन आविष्कारों का उपयोग मानवी सुविधाओं की वृद्धि भी कर सकता है पर खतरा तो उस दिशा से है जिस पर कि आज के विश्व राजनेता धृष्टतापूर्वक चलते हुए एक-दूसरे से बाजी मारने में तुले हुये हैं और तथाकथित शत्रु पक्ष को सर्वथा अपंग बनाने की बात सोच रहे हैं ।

अवांछनीय दृष्टिकोण लेकर किया हुआ इस आविष्कार का उपयोग किसी भी अधिनायकवादी के हाथ में चक्रवर्ती विजय सौंप सकता है । इस क्षेत्र में प्रगति सम्पन्न देश अपने विरोधी या असहयोगियों की जनता तथा सैन्य शक्ति में निराशा, भीरुता एवं भयाक्रांत मनःस्थिति व्यापक रूप से उत्पन्न कर सकता है और उस व्यामोह में फँसे हुये विशाल जनसमाज को मुट्ठी भर लोग अपने काबू में रखने और इशारे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर चलने के लिये विवश कर सकते हैं । गुलामी के बंधनों में जकड़ने के अब तक के प्रयासों में यह सबसे घृणित प्रयास होगा । जब आदमी सोचने की निजी क्षमता ही खो बैठा तो फिर उसका 'अपना-पन' तो कुछ रहा ही नहीं, तब उसे जीवित होते हुए भी मृतकों की तरह कहीं भी खींचा-घसीटा जाता रहेगा । ऐसे शक्ति सम्पन्न लोगों के चंगुल से तो मुक्त होने की भी फिर कोई आशा न रहेगी ।

भौतिक विज्ञान मनुष्य के मस्तिष्क तक ही पहुँच सकता है । क्योंकि मस्तिष्क भी शरीर का ही एक अंग होने से उसे भी भौतिक क्षेत्र में सम्मिलित रखा गया है । मन को छठी या ग्यारहवीं इन्द्रिय ही माना गया है । वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा मस्तिष्कों को प्रभावित करने की विधि लगभग खोज निकाली गई है और वह निकट भविष्य में सामने आ भी रही है । इसका भला-बुरा प्रभाव जल्द ही देखने के लिये मिल जायगा ।

पर भाव क्षेत्र फिर भी सूना ही पड़ा रहेगा । वह भौतिक विज्ञान की परिधि से बाहर है क्योंकि अन्तरात्मा विशुद्ध चेतना का अंश है उसे प्रभावित, परिणत और परिष्कृत करने में केवल आत्मसत्ताऐं ही समर्थ हो सकती है ।

आज आत्मसत्ता की दुर्बलता के कारण भौतिकवादी असुर सत्ता संसार की समस्त सम्पदाओं पर हावी होती जा रही है । मस्तिष्क की स्वतन्त्र चिन्तन शैली पर भी उसका दाँत है और आश्चर्य नहीं कि वह भी उसकी पकड़ में आ जाय । ऐसी विषम घड़ियों में इस बात की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है कि आत्मसत्ता का पक्ष इतना प्रबल हो कि उसके द्वारा संसार की भाव-चेतना को उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर किया जा सके । ऐसा हो सका तो भौतिक विज्ञान और उसकी समस्त उपलब्धियों को विश्व कल्याण में नियोजित किया जा सकेगा । यदि ऐसा न हो सका तो भौतिक विज्ञान के बढ़ते हुये चरण मनुष्य को एक मशीन मात्र बनाकर छोड़ेंगे और कुछ सत्ताधारियों की कठपुतली बनकर समस्त मनुष्य समाज को सबसे बुरी पराधीनता-मस्तिष्कीय गुलामी के निविड़ बंधनों में बाँधकर दयनीय स्थिति में जीना पड़ेगा ऐसे विषम समय में आत्मविज्ञान पक्ष को अधिक समर्थ और अधिक सक्रिय होने की आवश्यकता है ।

प्रज्ञा के अवलम्बन से महानता के पथ पर अग्रगमन

महामानवों की यशोगाथा के मूल में तथ्य क्या है ? इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि बुद्ध, गाँधी, ईसा, लिंकन, ताओ आदि की उपलब्धियाँ आत्मिक क्षेत्र की कही जा सकती हैं पर साथ ही इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनके क्रिया-कलापों से लोकहित के अनेकानेक सत्कार्य भी जुड़े हुए थे जिन्हें भौतिक उपलब्धियाँ ही कहा जायेगा ।

प्रयोजन कहने का यह है कि सफलताएँ चाहे किसी भी क्षेत्र की क्यों न हों, व्यक्ति के अपने अन्तराल पर निर्भर हैं । उसी से सत्प्रवृत्तियाँ पनपती हैं । उन्हें जड़ भी कहा जा सकता है । तना, टहनी, पत्र, पुष्प, फल उसी जड़ की उपलब्धियाँ पाईं । कदाचित् उसने भौतिक क्षेत्र चुना होता तो अपनी आत्मिक विशेषताओं के आधार पर उनमें भी सफल होकर रहा गया होता ।

तथ्यत: दोनों ही क्षेत्रों को अलग मानना ही गलती है । ऋद्धि के साथ सिद्धि जुड़ी हुई है और सिद्धि के साथ ऋद्धि । आन्तरिक विशिष्टता ही आत्मिक क्षेत्र की प्रगति बनती है । फिर भी अराधे अध्यात्म से कहीं सफलता नहीं मिलती । आत्म-परिष्कार और लोकमंगल के दोनों ही प्रयोजन व्यक्तित्व की, आन्तरिक विशिष्टता की अपेक्षा करते हैं । साथ ही वे दोनों ही क्षेत्र में सहगमन करते हुए आगे बढ़ते हैं । विवाद तो सदुपयोग का पृथक फलितार्थ उत्पन्न करता है ।

आत्मिक प्रगति के साथ भौतिक अभ्युदय भी जुड़ा हुआ है । भौतिक अभ्युदय यदि खरा है तो उसमें आत्मिक गुणों का गहरा पुट होना ही चाहिए । दोनों प्रगतियाँ साथ-साथ चलती हैं । बुद्ध, गाँधी आध्यात्मिक व्यक्ति थे, फिर भी उनके साथ लोकमंगल के सुविस्तृत साधन जुड़े रहे । उनसे लोक-कल्याण का कार्य भी बहुत हुआ और उन कार्यों के लिए जितने साधनों की, जितने सहयोग की आवश्यकता थी उसमें भी कमी नहीं रही । इसी को कहते हैं, अन्योन्याश्रय सम्बन्ध । महामानवों की सफलताओं के मूल में भले ही देवी-देवता का नाम दिया जाय, वरदान-आशीर्वाद समझा जाय अथवा अन्तराल के क्षेत्र में की गयी कृषि का सौ-गुना होकर लौटने वाला प्रतिफल ।

महामानवों के जीवन को एक प्रयोगशाला समझा जा सकता है जिसमें आन्तरिक विभूतियों के उत्पादन का भाव-भरा प्रयास प्राण-पण से चलता है । उसमें जब जितनी प्रखरता पनपती है उसी अनुपात से अन्त:क्षेत्र में विभूतियाँ भी प्रस्फुटित होती गईं और उसी आधार पर वे सफलताएँ भी हस्तगत होती जाती हैं जिसे भौतिक प्रगति समझा जाता है । यह बात दूसरी है कि उन उपलब्धियों का उपयोग स्वार्थ के लिए नहीं वे परमार्थ के लिए करते हैं ।

यह बताना जरूरी है कि किसी को वास्तविक सफलता अभीष्ट हो तो उसे क्या करना चाहिए ? इसी प्रकार सर्वप्रथम अपने अन्तराल में मुँह डालकर अपना आन्तरिक परिमार्जन और परिष्कार करना चाहिए । यह जिससे जितना बन पड़ेगा उसे उतनी ही महत्त्वपूर्ण सफलताओं का श्रेय मिलेगा । इस सन्दर्भ में इस भ्रम जंजाल से छुटकारा पाया जाना चाहिए कि कोई मात्र साधनों के सहारे, चतुरता के बलबूते यों उपचारों को आगे रखकर किसी ठोस प्रगति का अधिकारी बन सकता है । ऐसा न भौतिक क्षेत्र में, न अध्यात्म क्षेत्र में सम्भव है । सर्वतोमुखी उत्कर्ष मनुष्य के दृष्टिकोण, स्वभाव,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन्तन एवं चरित्र पर निर्भर है । शक्तियों का उद्‌गम स्रोत वही है ।

बहिर्मुखी लोक-व्यवहार को अन्तर्मुखी आत्म-विकास में जो संलग्न करता है, उसे परिष्कृत दृष्टिकोण के नाम से जाना जा सकता है । आर्ष साहित्य में उसका उल्लेख 'प्रज्ञा' के रूप में हुआ है । प्रज्ञा को देवदृष्टि भी कहते हैं, उसी को ज्ञान-चक्षु भी कहते हैं । साधनाओं के माध्यम से उसी का उन्नयन किया जाता है । देवताओं की प्रतिमाओं में कई बार उनके तीन नेत्र दिखाये जाते हैं । शिव और शक्ति की प्रतिमाओं में यह आँकन विशेष रूप से होता है । शिव द्वारा तीसरा नेत्र खोलकर कामदेव को जला देने की कथा प्रसिद्ध है । संजय को दिव्यदृष्टि प्राप्त थी उसने घर बैठे ही महाभारत का दृश्य देखा और धृतराष्ट्र को उसका विवरण सुनाया था । दिव्य-दर्शियों के द्वारा घटित हुई यह घटनाएँ तथ्य का संकेत करती हैं कि वह शक्ति सामान्य नहीं असामान्य है । उनमें कितनी ही ऋद्धि-सिद्धियाँ भी जुड़ी हुई हैं ।

दिव्य दृष्टि ही प्रज्ञा है । उसकी विशेषता एक ही है कि जहाँ सर्व-साधारण को स्वार्थ ही सब कुछ दीखता है । शरीरगत सुविधाओं का संचय और उपभोग ही सब कुछ लगता है वहाँ प्रज्ञावान को आत्मा के दर्शन होते हैं, परमात्मा के आह्वान मार्ग वाले संकेत मिलते हैं । विश्व के महामानव उसे अपने इर्द-गिर्द विचरते दीखते हैं । वे अनुभव करते हैं कि परमार्थ क्षेत्र में प्रवेश करके उन्होंने कुछ भी गलती नहीं की । लिप्सा-लालसाओं के दलदल में कीचड़ खाकर जीने वालों की तुलना में वे अपनी राह बदलने में सफल हुए । फलतः जीवनभर आत्म-सन्तोष और आन्तरिक उल्लास का लाभ लेते रहे । जनसाधारण की दृष्टि में उनका स्थान ऊँचा और सम्मानजनक रहा । सत्पुरुषों का सहयोग, अनुग्रह बरसा जिसके सहारे ऐसे प्रयोजन पूरे करते रहने की सुविधा मिलती चली गयी । दिवंगत अदृश्य महा-पुरुष उन्हें अपनी जीवन-गाथा फिल्म चित्र की तरह दिखाते हुए यह भी बताते रहे हैं कि परमार्थ पक्ष अपनाकर हमने खोया कम और पाया ज्यादा । दूसरे लोग शरीर समाप्त होने के साथ ही अपनी सत्ता का समापन कर देते हैं पर महा-पुरुष हैं जो यश-शरीर से जीवित रहते हैं और अनेक का अद्यावधि मार्गदर्शन करते हैं भविष्य में भी करते रहेंगे । अमर स्तर की पदवी वे इसी कारण प्राप्त करते हैं ।

यह अदृश्य दर्शन उन्हें प्रज्ञा के सहारे ही मिलता है । चोर-चालाकों की दुनिया सामने रहने पर भी उद्देश्य जैसी लगती रही । सतयुगी वातावरण आँखों के आगे तैरता रहता है । भले ही उसे बीते कितना ही लम्बा समय गुजर गया हो पर दिव्य-दृष्टि यही दिखाती रहती है कि उसी युग में हम रह रहे हैं । वैसा ही वातावरण अपने इर्द-गिर्द है । वैसा ही अपने लिए भी विद्यमान है, भले ही वह औरों के लिए अतीत की बात बन गई हो । इस उपलब्धि को प्रज्ञा का ही चमत्कार कह सकते हैं ।

भ्रान्तियों से यह संसार और जीवन भरा पड़ा है । दिशा भूल करा देने वाली भूल-भुलैयों की कमी नहीं । अनेकानेक गोरखधन्धे ऐसे हैं जिसमें चिन्तन उलझकर रह जाता है और कहीं से कहीं जा पहुँचता है । इस भ्रम की अनुभूति इसलिए नहीं होती है कि सम्पर्क क्षेत्र के अन्य लोग भी तो उसी प्रकार सोचते, करते और चलते दिखाई देते हैं । इन सबसे अपने को अलग छाँट लेना असामान्य बुद्धि का ही काम है । इसी को शास्त्रकारों ने प्रज्ञा कहा है ।

इस चिन्तन-क्षेत्र की विभूति को उच्चस्तरीय दैवी-वरदान माना गया है । भगवान किसी पर वस्तुतः प्रसन्न होते हैं तो उसे यही वरदान प्रदान करते हैं । सामान्य अनुदान तो मनुष्य जीवन है । उसकी संरचना समस्त प्राणियों को मिले । काय, कलेवर की तुलना में अद्‌भुत और अनुपम है । अन्य प्राणी तो अपनी काया से जीवन निर्वाह भर कर पाते हैं पर मनुष्य पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है । अपने योगदान से विश्व वसुधा को सुरम्य एवं समुन्नत बना सकता है । यह मौलिक अन्तर प्रज्ञा के भाव और अभाव से ही आरम्भ होता है अन्यथा मनुष्य शरीर में भी कितनें ही नर-वानर विचरते देखे जाते हैं ।

प्रज्ञा नीर-क्षीर विवेक का उपक्रम आरम्भ करती है । साथ ही इतना साहस भी प्रदान करती है कि उत्कृष्टता के उच्च शिखर पर अकेला चढ़-दौड़ने का बल और साहस प्रदान कर सके । दुनिया एक ओर और प्रज्ञावान एक ओर होने पर भी वह अपना मार्ग नया बना सकता है और बिना किसी के समर्थन-सहयोग की आशा किये अपना मार्ग स्वयं ही बना सकता है और उस पर चल भी सकता है । अदृश्य जगत की इस उपलब्धि को एक महान वरदान कहा जा सकता है क्योंकि इस प्रकार की मनःस्थिति बनने के उपरान्त ही उस प्रकार के संकल्प उठते और प्रयास चलते हैं जिन्हें अपनाने पर महानता की दिशा अपनाना और उस पर चलते हुए लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव हो सके ।

प्रज्ञा के अभाव में व्यक्ति के पास मन और बुद्धि ही शेष रह जाते हैं । वे दोनों ही दर्पण की तरह हैं । उन पर सामने प्रस्तुत दृश्य ही प्रतिबिम्बित होते हैं । सामने जो कुछ है सो प्रत्यक्ष है । वासना, विलासिता, अहंता, संकीर्ण स्वार्थपरता जैसी हेय प्रवृत्तियाँ ही सब लोग अपनाये हुए दीखते हैं उन्हीं का 'अक्स' मन पर उतरता है । वह मनचली कुकल्पनाओं में विचरने लगता है । आकांक्षाएँ भड़कती हैं । बुद्धि भी वाहन की तरह उन्हीं का समर्थन करने लगती है । फलतः क्रिया-कृत्यों की योजनाएँ बनती हैं और उनके कार्यान्वित होने का क्रम चल पड़ता है । बहुमत का दबाव अल्पमत को अपनी ओर घसीट ले जाता है । फलतः उसी प्रकार का जीवनक्रम बन पड़ता है जैसा कि नर-वानरों का समुदाय अपनी उचक-मचक में निरत रहता है ।

बहाव की दिशा में तिनके, पत्ते से लेकर टूटे पेड़ और मरे हुए हाथी तक बहते चले जाते हैं । उस प्रतिरोध रहित समूह को अन्ततः खारे समुद्र के ऐसे गर्त में गिरना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ता है जिसमें जाकर सड़, गल जाने और समाप्त होने के अतिरिक्त और कोई नियति नहीं ।

इस स्थिति से उभारने में मात्र प्रज्ञा ही सहायता करती है । वह मछली जैसा शौर्य, पराक्रम प्रदान करती है जो धारा की विपरीत दिशा में छरछराती हुई उलटी तैर सके । संकीर्ण स्वार्थपरता के प्रवाह में बहने से अपने को बचा लेना आत्मक्षेत्र का परम पुरुषार्थ माना गया । इसका माहात्म्य सुनकर कई व्यक्ति पूजा-पाठ कर और गृहत्यागी तो बनते देखे गये हैं, पर उनका मन तो प्रलोभनों में ही रमता रहता है । अहंता की पूर्ति के लिए देखते-देखते आत्मिक गरिमा समाप्त हो जाती है और भीतर कुछ बाहर कुछ का उपहासास्पद प्रपंच रचकर खड़ा हो जाता है । इस जाल-जंजाल में उलझने पर माया मिली न राम वाली उक्ति चरितार्थ होती है ।

प्रज्ञा आन्तरिक दुर्बलताओं से जूझती है । संचित कुसंस्कारी दबाव से लड़ती है । वातावरण के गुरुत्वाकर्षण द्वारा अधोगमन के संकट से उबारती है । साथ ही आदर्शवादी कंटकाकीर्ण मार्ग पर अनवरत गति से चलते रहने का साहस प्रदान करती है । आत्मापमानों और आघातों को सहन करते जाने, उन्हें अपनी शालीनता पर न हावी होने देना, वह भी अपने आप में अलौकिक कार्य है । प्रज्ञा ही है जो इन सबके लिए आवश्यक सरंजाम जुटाती हैं ।

सम्पदा एवं महानता में से एक का चयन

प्रगतिशीलता का अर्थ यदि सम्पन्नता किया जायेगा और उसके साथ चिन्तन की श्रेष्ठता को न जोड़ा जायेगा तो फिर लक्ष्य यही बन जायेगा कि भौतिक समृद्धि के मनचाहे उपयोग में आकर्षण की अधिकता रहती है । यदि उस पर भावनात्मक उत्कृष्टता का अंकुश न रहे, तो फिर समृद्धि को किसी भी प्रकार उपार्जित किया जाय। समृद्धि की उत्कण्ठा ऐसी आतुरता उत्पन्न करेगी कि उसे धर्म-मर्यादाओं का स्मरण दिलाने से भी नियन्त्रित न किया जा सकेगा और वह कुछ भी, किसी भी उपाय से कर गुजरने, अनीति और उच्छृंखलता बरतने तक में प्रवृत्त होती दिखाई पड़ेगी । ऐसी प्रगति व्यक्ति को दुर्गुणी और समाज को अनाचारी बना देगी । कहना न होगा कि प्रकृति और चेतना के शाश्वत नियम इस प्रकार के अनुपयुक्त मार्ग से उपार्जित सम्पदा को सहन न करेंगे, फलतः सर्वत्र संकट, विग्रह और विनाश के दृश्य उपस्थित होंगे ।

जीव-चेतना के साथ जुड़ी हुई जिस प्रगति, आकांक्षा की चर्चा की जाती है, उसे सुसंस्कृत दृष्टिकोण एवं शालीनता युक्त चरित्र के रूप में ही मान्यता दी जा सकती है । उसी के माध्यम से व्यक्ति की विशिष्टता बढ़ती है । व्यक्तित्व की विशिष्टता एक शक्तिशाली चुम्बक है, जिसके आकर्षण से उपयोगी साधन-सामग्री उतनी मात्रा में सहज ही उपार्जित होती रहती है, जितनी कि निर्वाह के लिए आवश्यक है । इससे अधिक मात्रा का उपार्जन एवं उपयोग व्यक्ति में अनेक दुर्व्यसन उत्पन्न करेगा और समाज में अपराधी दुष्प्रवृत्तियों को जन्म देगा । दूरदर्शी विवेकशील सदा से यही कहते रहे हैं कि यदि भौतिक उपार्जन अधिक मात्रा में होता है, तो भी उसका उपयोग औसत नागरिक-स्तर का ही किया जाना चाहिए । उसे संग्रह में, कुटुम्बियों में, मुफ्त बाँटने में बर्बाद न करके लोकोपयोगी कार्य में खर्च कर दिया जाय । लालच इस नीतियुक्त दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करता । फलतः बढ़ी हुई सम्पदा, प्रगति दीखते हुए भी सुखद प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं करती । यही कारण है कि उत्कृष्टता का अंकुश न रहने पर समृद्धि सर्वत्र दुष्परिणाम ही उत्पन्न करती देखी गयी है । भले ही उसके अधिपति कुछ समय तक विलासी, संग्रही के रूप में अपने अहंकार का प्रदर्शन करते फिरें ।

यह कठिनाई भावनात्मक प्रगति में नहीं है । दृष्टिकोण में उत्कृष्टता, विचारणा में दूरदर्शिता और गतिविधियों में शालीनता का समावेश बढ़ता चले तो क्रमशः व्यक्तित्व का वजन बढ़ता जायेगा । ऐसा व्यक्ति अपनी आँखों में, समूचे समुदाय की आँखों में वजनदार बनता जायेगा । जिसका जितना मूल्यांकन किया जाता , उसे उसी स्तर के प्रतिफल, अनुदार, एवं उपहार भी मिलते रहते हैं । व्यक्तित्ववानों की अपनी क्षमताएँ विकसित होती हैं और उनके सहारे उपयुक्त निर्वाह की साधन-सामग्री सहज ही उपार्जित की जा सकती है । इसके विपरीत संकीर्ण-स्वार्थपरता में निमग्न व्यक्ति प्रायः अनुदान असामाजिक और कई बार अपराधी प्रवृत्ति के भी होते हैं । ऐसे लोगों का मूल्य सर्वसाधारण की दृष्टि में गिर जाता है । फलतः वे दूसरे की सहानुभूति, सहायता, आत्मीयता से वंचित रहने पर उपार्जन उपयोग भी एक सीमा तक ही कर पाते हैं । उसकी छीन-झपट का एक नया सिलसिला चल पड़ता है । फलतः कड़ुवे-मीठे आक्रमण करने वाले, अपने-विरानों से चमड़ी बचाना तक कठिन हो जाता है ।

गुण-अवगुण की कतिपय कसौटियाँ पार करने के उपरान्त इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होता है कि एकांगी समृद्धि चमकीले साँप की तरह लगती तो आकर्षक है, पर वे अपने विष-दंश से असीम हानि पहुँचाती हैं । इसके विपरीत व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बनाने का लक्ष्य निर्धारित करने पर घाटा तो इतना ही हो सकता है कि निर्वाह के अनिवार्य साधनों से सन्तुष्ट रहना पड़े और ठाट-बाट में धनवानों जैसा सरंजाम न जुट सके । इतने पर भी इस मार्ग पर चलते हुए जो सन्तोष और सम्मान मिलता है उसका वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्य कुछ कम नहीं है ।

वे दिन बहुत पीछे रह गये जब सम्पन्नताजन्य ठाट-बाट को, अपव्यय को, देखकर लोग अमीरों को ईश्वर का प्यारा, भाग्यवान्, बुद्धिमान मानते और नत-मस्तक होते थे । अब मूल्यांकन की कसौटियों में जमीन-आसमान जितना अन्तर आ गया है । इन दिनों समाजवादी, साम्यवादी, चिन्तन व्यवहार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में भले ही बहतर पाया हो, अर्थ-दर्शन के रूप में वह पूरी तरह लोक-समर्थन प्राप्त कर रहा है । उस मान्यता के अनुरूप अधिक संग्रही, अधिक विलासी, अधिक अपव्ययी लोग नीतिवान् नहीं समझे जाते । अस्तु उन पर 'अनीति की कमाई, विलास की उड़ाई' की उक्ति के अनुरूप तरह-तरह के लांछन लगाये जाते हैं । वैभव की चकाचौंध तो अभी भी है और उसे लोग झपटना, हड़पना तो अभी भी चाहते हैं किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि, वैभववानों की प्रशंसा एवं प्रभावों के दिन लद गये । उन पर हर कोई अनीति उपार्जन का लांछन लगाता है, भले ही वह अनुचित ही क्यों न हो ? पुरातन काल में अपना-अपना भाग्य कहकर सन्तोष कर लिया जाता था, पर अब तो ईर्ष्या के उभार का मौसम है । साम्यवादी प्रतिपादन ने ऐसी ही लोक-दृष्टि का विस्तार किया है और वह अधिकांश जन-समुदाय के गले उतर गई है । अपराधी को दण्ड देने के प्रचलन में, सम्पन्नों को कोसने, लांछित करने, गरमा-गरम चर्चा तो होती ही हैं । साथ ही अपहरण के सफल-असफल उपाय भी दिमागों में चलते एवं जब तब क्रियान्वित भी होते रहते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि लोगों के बीच बड़ी हुई आर्थिक असमानता ने अपराधी दुष्प्रवृत्तियों को इन दिनों अत्यधिक बढ़ावा दिया है । विश्लेषण करने पर इसी नतीजे पर पहुँचना पड़ता है कि दूसरों को प्रभावित करने, उनसे इज्जत पाने का सपना सर्वथा निरर्थक निकला, उल्टे तीन हानियाँ हुईं, पैसा गया, प्रामाणिकता घटी, संकट बढ़ा और दुर्गुणी दुर्व्यसनों का ऐसा भार अकारण ही लद गया जो व्यक्तित्व का मूल्य गिराता और मनःसंस्थान पर तनाव उत्पन्न करने वाले जंजालों से जकड़ता है ।

संचय को उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ना या भोगना उसी हालत में उसी मात्रा में उचित है, जितने से उनके वयस्क होने तक का गुजारा एवं स्वावलम्बन का आधार खड़ा हो सके । ब्याज-भाड़े की कमाई बैठे-बैठे खाते रहने का प्रबन्ध करना, मुफ्त का माल अनगढ़ पीढ़ी पर छोड़कर चले जाना, उनका हित-साधन नहीं है और न दुलार का परिचय देने वाला तरीका । यह तो विनाश का मार्ग है, जिस पर अभिभावक अनजाने ही दुलार के नाम पर अपनी सन्तान को धकेलते हैं ।

यही सब है, उन सफलताओं की परिणति, जिन्हें भौतिक सम्पदा कहते हैं । विद्या, बुद्धि, प्रतिभा, कला का पदासीन या प्रतापी होने का लाभ तभी है, जब उनके साथ शालीनता का अनुशासन जकड़ा रहे । उसकी पकड़ ढीली होते ही यह सभी विभूतियाँ अनुपयुक्त मार्ग पर चल पड़ती हैं । दुर्बलों को दबोचने और उनसे अपना उल्लू सीधा करने के काम आती हैं ।

मात्र वैभव बड़प्पन का मार्ग तो बारूद का खेल खेलने की तरह है । उसमें फुलझड़ी उड़ती तो दीखती है, पर चिन्गारी से जलने और पैसे की बर्बादी होने की हानि भी स्पष्टतः सामने खड़ी रहती है । वैभव का उपार्जन एक बात है और उसके उत्पादन एवं उपयोग में शालीनता का समावेश होना-सर्वथा दूसरी । सम्पदा तो दुधारी तलवार है । यदि उसका अभ्यास एवं प्रयोग सही न हुआ तो उसका होना, न होने से भी अधिक महँगा पड़ेगा । अविवेकी के हाथ में पड़ा हुआ वैभव तो बन्दर के हाथ में तलवार के समान है, जिसने मक्खी मारने का लाभ सोचने पर भी मालिक की नाक काटकर हानि पहुँचायी थी ।

इन तथ्यों पर विचार करते हुए हमें शान्त चित्त से निष्पक्ष न्यायाधीश जैसे विवेक का उपयोग करते हुए यह देखना होगा कि सम्पदा को प्रमुखता दी जाय या महानता को ? निश्चय ही दूरदर्शिता का फैसला महानता की गरिमा स्वीकारने और उसे उपलब्ध करने के प्रयास में जुट पड़ने का ही होगा ।

समझदारों की दिग्भ्रान्त प्रज्ञा

इस संसार में जड़ के साथ चेतन भी गुँथा हुआ है । काम करती तो काया ही दीखती है, पर वस्तुतः उसके पीछे सचेतन की शक्ति काम कर रही होती है । प्राण निकल जाय तो अच्छी-खासी काया निर्जीव हो जाती है । कुछ करना-धरना तो दूर मरते ही सड़ने-गलने का क्रम आरम्भ हो जाता है और जो कलेवर दीख पड़ता था उसका कुछ ही क्षणों में अन्त हो जाता है । यह सब बताता है कि जड़ शरीर तभी तक सक्रिय रह सकता है जब तक कि उसके साथ ईश्वरी चेतना जुड़ी रहती है । दोनों के पृथक होते ही समूचे खेल का अन्त हो जाता है ।

एकाकी चेतना का स्वतः अस्तित्व तो है । उसकी निराकार सत्ता सर्वत्र समायी हुई है । साकार होती तो किसी एक स्थान पर एक नाम रूप के बन्धन में बँधकर रहना पड़ता और वह ससीम बनकर रह जाती । इसलिए उसे भी अपनी इच्छित गतिविधियाँ चलाने के लिए किन्हीं शरीर कलेवरों का आश्रय लेना पड़ता है । इस प्रकार इसका प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करना सम्भव है । निराकार तो प्रकृति की लेसर, अल्ट्रावायलेट गामा तथा एक्स किरणें आदि अनेक किरणें काम करती हैं, पर उनको समझ सकना खुली आँखों से नहीं, वरन् किन्हीं सूक्ष्म उपकरणों के सहारे ही सम्भव हो पाता है । गाड़ी के दो पहिए मिलजुल कर ही काम चलाते हैं । इसी प्रकार इस संसार की विविधि गतिविधियाँ विशेषतया प्राणि समुदाय की इच्छित हलचलों के पीछे अदृश्य सत्ता ही काम करती है, जिसे ईश्वर आदि नामों से जाना जाता है ।

विराट् ब्रह्माण्ड में संव्याप्त सत्ता को विराट् ब्रह्म या परमात्मा कहते हैं । वही सर्वव्यापी, न्यायकर्ता, सत्, चित्, आनन्द आदि विशेषणों से जाना जाता है । उसी का एक छोटा अंश जीवधारियों के भीतर काम करता है । मनुष्य में इस अंश का स्तर ऊँचा भी है और अधिक भी है । इसलिए उसके अन्तराल में अनेक विभूतियों की सत्ता प्रसुप्त रूप में विद्यमान रहती हैं । यह अपने निजी पुरुषार्थ के ऊपर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवलम्बित है कि उसे विकसित किया जाय या ऐसे ही उपेक्षित रूप में गयी-गुजरी स्थिति में वहीं पड़ी रहने दिया जाय ।

इस सम्मिश्रण का जहाँ भी अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत स्वरूप दिखाई पड़ता है, उसे प्रतिभा कहते हैं । सद्-उद्देश्य के लिए प्रयुक्त किये जाने पर यही प्रतिभा देव स्तर की बन जाती है और अपना परिचय महामानवों जैसा देती है । किन्तु साथ ही यदि मनुष्य अपनी उपलब्ध स्वतन्त्रता का उपयोग अनुचित कामों में करने लगे तो वह दुरुपयोग ही दैत्य बन जाता है । दैत्य अपने और अपने सम्पर्क वालों के लिए विपत्ति का कारण ही बनते हैं जबकि देवता पग-पग पर अपनी शालीनता और उदारता का परिचय देते हुए अपने प्रभाव क्षेत्र में सुख-शान्ति एवं प्रगति का वातावरण बनाते रहते हैं । दैत्य स्तर के अभ्यास बन जाने पर तो पतन और पराभव ही बन पड़ता है । उसमें तात्कालिक लाभ दीखते हुए भी अन्ततः दुर्गुणों का दुष्परिणाम ही भुगतता है ।

सृष्टि के नियम में कर्म और फल के बीच कुछ समय लगने का विधान है । बीज बोने पर उससे वृक्ष बनने में कुछ समय लग जाता है । गर्भाधान के कई मास बाद बच्चा उत्पन्न होता है । आज का दूध कल कहीं जाकर दही बनता है । अभक्ष्य खा लेने पर दस्त-उल्टी आदि होने का सिलसिला कुछ समय बाद आरम्भ होता है । मनुष्यों में यह बाल बुद्धि देखी जाती है कि वे तत्काल कर्मफल चाहते हैं । देर लगने पर अधीर हो जाते हैं और यह चाहते हैं कि हथेली पर सरसों जमे । कल तक उसमें पौधे जमने की प्रतीक्षा न करनी पड़े । उतावली आतुरता उत्पन्न करती है और मनःस्थिति प्रायः अर्द्ध-विक्षिप्त की सी बना देती है जिसमें तात्कालिक लाभ भर दीख पड़ता है, चाहे वह कितना ही क्षणिक या दुःखदायी ही क्यों न हो । वह विवेकवान दूरदर्शिता न जाने कहाँ चली जाती है जिसे अपनाकर विद्यार्थी विद्वान, दुबले पहलवान, मंद बुद्धि विद्वान, निर्धन और पिछड़े धनवान बनते हैं । यह एक ही मनुष्य की प्रधान भूल है जिसके कारण वह अपने जीवन का उद्देश्य, स्वरूप और वरिष्ठता तक भूल जाता है । मार्ग से भटककर झाड़-झंखाड़ों में मारा-मारा फिरता है । इस भूल को देखकर कई बार यह भी स्वीकारना पड़ता है कि मनुष्य वस्तुतः ईश्वर की सन्तान भी है या नहीं, वरन् वह डार्विन के कथनानुसार बन्दर की अनगढ़ औलाद ही तो नहीं है ।

यह व्यंग्य-उपहास मनुष्य के अचिन्त्य चिन्तन का है । इसी के कारण उसके चरित्र और व्यवहार में भ्रष्टता घुस पड़ती है और तरह-तरह के आक्षेप, उलाहना लगने शुरू होते हैं । दुष्ट चिन्तन ही भ्रष्ट आचरण का निमित्त बनता है और इसी के कारण अनेक अवांछनीयताएँ उसके सिर पर लद लेती हैं । कहना न होगा कि कर्मफल भोगे बिना किसी को छुटकारा नहीं । भले ही वह भटकाव के कारण ही क्यों न बन पड़ा हो । चारे के लोभ में चिड़ियाँ और मछलियाँ बहेलियों के हाथ पड़ती और अपनी जान गँवाती देखी गयी हैं । जो बोया है वही तो काटना पड़ेगा । भले ही पीछे सतर्कता बरती गयी हो या समझदारी से काम लिया गया हो ।

यही है भ्रान्ति, विकृति और विपत्ति का केन्द्र । इसके भँवर में फँसकर अधिकांश लोग गर्हित गतिविधियाँ अपनाते और दुर्गति के भाजन बनते हैं । यदि इस भूल से बचा जा सके तो मनुष्य को ईश्वर का उत्तराधिकारी, ज्येष्ठ राजकुमार कहने में किसी को क्यों आपत्ति हो ? फिर उसकी प्रवृत्ति स्वार्थी बनकर आनन्द का रसास्वादन करते रहने में क्यों किसी प्रकार बाधक बने ? क्यों उसे वासना, तृष्णा और अहंता के लौह पाशों में जकड़ जाने पर बन्दीगृह के कैदी जैसी विडम्बनाएँ सहनी पड़ें ? क्यों मरघट में रहने वाले व्यक्तियों जैसा नीरस-निष्ठुर और हेय जीवन जीना पड़े ? क्यों डरती-डराती और रोती-रुलाती जिन्दगी जीनी पड़े ?

इस संसार में अन्धकार भी है और प्रकाश भी । स्वर्ग भी है और नरक भी, पतन भी है और उत्थान भी, त्रास भी है और आनन्द भी । इन दोनों में से जिसे चाहे मनुष्य इच्छानुसार चुन सकता है । कुछ भी करने की सभी को छूट है, पर प्रतिबंध इतना ही है कि कृत्य के प्रतिफल से बचा नहीं जा सकता । सृष्टा के निर्धारित क्रम को तोड़ा नहीं जा सकता । करने की छूट होते हुए भी उसे परिणाम भुगतने के लिए सर्वथा बाधित रहना पड़ता है । यह दूसरी बात है कि इस प्रक्रिया के पकने में कुछ विलम्ब लगता है । मुकदमा दायर होने और सजा मिलने में अपने न्यायाधीश भी तो ढेरों समय लगा लेते हैं । ईश्वर का कार्य क्षेत्र तो और भी अधिक विस्तृत है । उनके न्याय करने में यदि देर लग जाती है तो मनुष्य को धैर्य खोने की आवश्यकता नहीं है और न यह अनुमान लगाने की कि वहाँ अन्धेरगर्दी चलती है । चतुरता के बलबूते अपने यहाँ तो भी अनेक अपराधी दण्ड पाने से बच जाते हैं, पर सर्वव्यापी और सर्वसाक्षी न्यायाधीश के न्याय तुलना में बहुत करके किसी को ऐसे अवसर नहीं मिलते । इस वास्तविकता से असहमत रहने के कारण ही लोग अक्सर नास्तिक बन जाते हैं । कर्मफल की मान्यता का उपहास उड़ाते हुए स्वेच्छाचार बरतते हैं । यह समझ तो तभी आती है जब समयानुसार क्रिया की प्रतिक्रिया सामने आ खड़ी होती है ।

यहाँ प्रसंग इस बात का चल रहा है कि ईश्वर और जीवन आपस में अविच्छिन्न होकर रह रहे हैं । अत्यन्त सघन भाव और अविच्छिन्न साथी-सहचर की तरह । स्थिति को देखते हुए इस बात की पूरी गुंजायश है कि समर्थ बीज से उपजा समर्थ बालक अभीष्ट सहयोग प्राप्त कर सके और अभावग्रस्तता की दुःखदायी स्थिति से सरलतापूर्वक छूट सके । पर प्रचलित विडम्बनाओं में से एक यह भी है कि नितान्त निकट रहते हुए भी परिचय ऐसा बना लिया गया है मानो एक-दूसरे से नितान्त अपरिचित हैं । कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि विशालकाय नगरों में एक ही बड़े भवन की चारदीवारी में रहने वाले किरायेदार एक-दूसरे से परिचित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक नहीं होते । हम अपने शरीर के भीतरी अवयवों को भी पूरी तरह कहाँ समझ पाते हैं । शरीर में समाये विषाणुओं का पता नहीं चलता और यह भी नहीं बन पड़ता कि उनके कारण उत्पन्न होने वाले खतरों को समझ सकें और समय रहते कुछ उपाय-उपचार कर सकें । समझदार कहे जाने वाले मनुष्य को इस भुलक्कड़पन को देखते हुए उसे नासमझ कहा जाय तो कुछ भी अनुचित न होगा । स्वस्थ दीखने वाले भी इस अस्वस्थता से जकड़े हुए हैं । घुन लगी लकड़ी की तरह भीतर ही भीतर पोले हो रहे हैं । स्थिति इतनी बदतर है कि अणु से लेकर विराट् विभु के कण-कण में एक अत्यन्त सुव्यवस्था के संव्याप्त होने पर भी अपनी अक्ल यहीं धोखा देती रहती है कि इस खेत का कोई बोने वाला या रखवाला नहीं है । चाहे जो करने और चाहे जो पाने की मनमानी करते रहने में कोई हर्ज नहीं । आम प्रचलन में इन दिनों ऐसी ही सोच की भरमार है ।

यदि सृष्टा के नियामक सत्ता के सम्बन्ध में संव्याप्त यह भ्रान्ति मानवमन में से निर्मूल की जा सके तो वह प्रखर प्रज्ञा रूपी उस अनुदान से लाभ उठाने लगता है जो उसे दूरदर्शी, विवेकशील, प्रखर प्रज्ञासम्पन्न बनाता है । फिर अपने ही कृत्यों पर भी अपनी दृष्टि एक न्यायाधीश की तरह हो जाती है । अपने विराट् से जुड़े होने की गरिमा का भान होते ही नासमझी रूपी कषाय-कल्मष मिट जाते हैं । वस्तुतः सही अर्थों में आस्तिक वही है जो अपनी विवेक-दृष्टि को जगा लेता है । आने वाला युग ऐसा ही प्रखर प्रज्ञा सम्पन्न मनीषा का होगा ।

सम्पन्नता नहीं, महानता का वरण करें

हर प्रतिभावान व्यक्ति को अपना गौरव बढ़ाने, दिखाने की महत्वाकांक्षा होती है । प्राणी मात्र में पेट-प्रजनन की आकांक्षा पायी जाती है, पर मनुष्य की एक और उमंग है, अपने को अन्यान्यों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ, वरिष्ठ सिद्ध करने की । इसको महत्वाकांक्षा कहते हैं । हर प्राणवान व्यक्ति में महत्वाकांक्षा पायी जाती है । ऐसे कम ही होते हैं जो पेट भरने, तन ढकने भर से सन्तुष्ट हो जायें । आत्म-प्रदर्शन के लिए कोई प्रयत्न न करें ।

तन ढकने के लिए कुछ गज कपड़ा लपेट लेने से काम चल सकता है, किन्तु देखा जाता है कि चित्र-विचित्र फैशन वाले कितने ही जोड़े नयी-नयी किस्म के सजाकर लोग तैयार रखते हैं और उन्हें अदलते-बदलते रहते हैं । महिलाएँ, सभी अंगों को जेवरों से सजाती हैं, केश विन्यास के अपने अनोखे तौर-तरीके हैं । इस सबका एक ही प्रयोजन है कि दूसरे लोगों का देखने के लिए आकर्षण बढ़े । उस आधार पर उस सजधज वाले को विशिष्ट स्तर का माना जाने लगे । स्वाभाविक सुन्दरता को कई गुना बढ़ाकर दिखाने के लिए कितने ही शृंगार साधन चेहरे से लेकर अन्य अंगों तक पोते जाते हैं । इस सम्बन्ध में महिलाएँ पुरुषों से कहीं आगे हैं । इस साज-सज्जा में कितना धन, कितना समय लगता है । फैशन पुराना पड़ने पर नया अपनाया जाता है ताकि जो विन्यास निगाह से उतर चुका, उसके स्थान पर नया धारण करने में लोगों की दृष्टि गढ़े । कलाकारिता और सम्पन्नता की चकाचौंध आँखों में गढ़े । यह उस मानसिक ललक का प्रतिफल है जो अपने को दूसरों से बढ़-चढ़कर प्रदर्शित करना चाहती है । सम्पन्न लोग आवश्यकता से अधिक बड़े मकान बनाते हैं । किले, बँगले कीमती साज-सज्जा से सजाये जाते हैं । वाहन, नौकर आदि आवश्यकता से अधिक संख्या में रखते हैं । प्रीतिभोज, जलपान आदि के ठाट आये दिन बनते हैं और भी कई प्रकार के खर्चीले व्यसन अपनाये जाते हैं । इन सबका कारण एक ही है कि उनका वैभव बढ़ा-चढ़ा माना जाय और उस आधार पर अपने को अन्यों की तुलना में सौभाग्यवान माना जाय । यह आडम्बर बड़प्पन की विडम्बना ही रचना है । यदि वह न होता तो थोड़े साधनों से काम चल सकता था । कम समय और कम धन खर्चने से काम चल सकता था । उस बचत को अन्य उपयोगी कामों में लगाया जा सकता था जिससे अपना या दूसरों का भला होता ।

प्रतिस्पर्द्धाओं के आयोजन आये दिन रचे जाते देखे जाते हैं । मोट दौड़, घुड़दौड़, पर्वतारोहण जैसे जोखिम भरे कामों में लोग इसलिए सम्मिलित होते हैं कि विजयी की साहसिकता चर्चा का विषय बने । अपने-अपने ढंग के कीर्तिमान स्थापित करने के लिए क्या-क्या कष्ट उठाते और दुस्साहस दिखाते हैं । इसकी चर्चा पत्रिकाओं में पढ़ी और शौक से सुनी जाती है । इन कार्यों में इतना साहस किसलिए दिखाया जाता है ? इतना धन और समय किसलिए खर्च किया जाता है ? इसका उत्तर एक ही है, बड़प्पन की महत्वाकांक्षा । जो वस्तुतः बड़े काम नहीं कर पाते वे झूठी प्रशंसा कराने के लिए चाटुकारों को खरीदते और उनके द्वारा प्रशंसा के पुल बाँधने वाले छद्म रचते हैं । कितने ही तो इसी बात की रोटी खाते हैं कि प्रसिद्धि के लोभियों को खुश करने के लिए तिल का ताड़ बनायें और नगाड़े बजायें । बहुधा युद्ध भी इसी निमित्त लड़े जाते थे । दास-दासियों के झुण्ड भी इसीलिए पाले जाते थे कि उनका बड़प्पन चर्चा का विषय बने । विवाह-शादियों में भी इसी निमित्त बढ़-चढ़ कर धूमधाम जुटाई जाती थी । कुत्तों से लेकर शेर पालने तक का शौक इसीलिए अपनाया जाता था कि उनका नाम चर्चा का विषय बने ।

विचार करने पर प्रतीत होता है कि इस प्रकार के शौकीन अपनी अहंता भर का पोषण करते हैं । दूसरे उन्हें बड़ा मानने ऐसा होते नहीं देखा जाता । हर आदमी अपने कामों में व्यस्त है, उसे ऐसी विडम्बनाएँ ध्यानपूर्वक देखने की फुरसत ही कहाँ होती है, फिर एक नहीं अनेक ऐसे ही ढकोसले रचते हैं । उन्हें कौन भाग्यवान, श्रीमान मानता है ? उलटे यही कहा जाता है कि बेईमानी की कमाई बेरहमी से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उड़ाई जा रही है । ढकोसले खड़े करके झूठी वाहवाही लूटी जा रही है । असलियत देर तक छिपती कहाँ है ?

गरीबों द्वारा अमीरी का स्वाँग बनाया जाना कितना बचकाना लगता है । धोबी से किराये पर कपड़े लेकर बारात में अकड़ते हुए चलना जानकारों की दृष्टि में कितना भौंड़ा लगता है । इसी कुचक्र में कितने ही लोग कर्जदार बन जाते हैं और बाप-दादों की संचित पूँजी स्वाहा कर बैठते हैं । कम आमदनी वाले पर अमीरी का ढकोसला बनाने का चस्का चढ़ता है तो उन्हें इसका जुगाड़ जुटाने के लिए अनीति पर उतरना पड़ता है । फिजूलखर्ची आदमी को ईमानदार नहीं रहने देती । गड्ढा भरने के लिए उन्हें कुकर्मों की राह अपनानी पड़ती है । ऐसे लोगों की वस्तुस्थिति प्रकट हुए बिना नहीं रहती । जो लोग वास्तविकता से परिचित होते जाते हैं, वे सम्मान देने के स्थान पर घृणा करने लगते हैं । उनका साथी सहयोगी भी कोई नहीं रहता क्योंकि साथियों को भी ऐसे ही कुचक्रों में निरत मान लिया जाता है ।

अमीरी का ढकोसला खड़ा करके बचकाने लोग बड़प्पन पाने का प्रयत्न करते हैं, पर उन्हें उसमें सफलता नहीं मिलती । ढोल की पोल खुले बिना नहीं रहती । कोई अनपढ़, विद्वान होने की डींग हाँके तो कुछ ही देर के वार्तालाप में कलई खुल जाती है, फिर अब अमीरी के आधार पर बड़प्पन का रौब जमाने का समय भी चला गया । कोई समय रहा होगा जब सामन्तों की तूती बोलती थी । उनके आतंक से भयभीत लोग लम्बा सलाम झुकाते थे, पर अब लोगों का साहस खुला है । निकृष्टता की घृणास्पद शब्दों में ही आलोचना की जाती है, साम्यवादी विचारधारा ने अमीरों के प्रति आक्रोश उत्पन्न किया है । उनकी कटु आलोचना भी होती है और खुलेआम बेईमान बताया जाता है । कहा जाता है कि निष्ठुर ही धनवान बन सकते हैं अन्यथा यदि अधिक आमदनी थी तो उसे दूसरे जरूरतमंदों को दिया जाना चाहिए था । लोकोपयोगी कामों में लगाया जाना चाहिए था। जो उस ओर से मुँह फेरे रहते रहे और अपव्यय की आतिशबाजी जलाने में शान अनुभव करते हैं, उन पर अनुपयुक्तता का लांछन तो लगेगा ही । स्वार्थी एवं निष्ठुर भी कहा ही जायेगा ।

विवेक बुद्धि ने बड़प्पन का ढकोसला रचने को बचकानापन कहकर अमान्य ठहरा दिया है । दूरदर्शिता और शालीनता का प्रतिपादन यह है कि मनुष्य अपने व्यक्तित्व को उत्कृष्ट आदर्शवादिता से सुसम्पन्न करे और अपने गुण, कर्म, स्वभाव में महानता का समावेश करे । प्रामाणिक बनकर रहे । दृष्टिकोण को ऊँचा रखे और उदारता बरते । सादा जीवन उच्च विचार की नीति अपनाये । औसत नागरिक स्तर का निर्वाह करे ताकि अधिक उपार्जन बन पड़ने पर बचत वाले साधनों को दूसरों की सेवा-सहायता में लगा सके ।

अमीरी की विडम्बना और फिजूलखर्ची की क्षुद्रता को जोड़कर बड़प्पन पाने की अभिलाषा पूरी करने के इच्छुकों को निराश ही होना पड़ता है । उत्पीड़न का आतंक भी किसी के मन में आदर भरा स्थान नहीं बना सकता । यह तो हो सकता है कि भीतर घोर घृणा भरी हो, पर लालच या भय से आक्रान्त होकर जीभ से प्रशंसा के शब्द निकलवा लिए जायें, पर छद्म देर तक छिपा नहीं रहता । अवसर मिलते ही यथार्थता अपना स्वरूप प्रकट कर देती है । जो हेय है वह हेय ही रहेगा । तथ्यों को देर तक झुठलाया नहीं जा सकता । भ्रष्ट चरित्र और दुष्ट आचरण वाले न यशस्वी बन सकते हैं और न प्रतिष्ठा पा सकते हैं । इतना होते हुए भी लोग इसी राह पर चलते देखे गये हैं । अनेक का चिन्तन अभी भी यही बना हुआ है कि पाखण्डों के सहारे वे बड़प्पन पा सकते हैं और उसे देर तक स्थिर रख सकते हैं । यदि यह भ्रान्ति मिट गयी होती तो लोग बड़प्पन के स्थान पर महानता पसंद करते । सीधा और सरल मार्ग चुनते, वह प्राप्त करते जिसे पाने की उनकी आन्तरिक अभिलाषा थी । ओछे आधार अपनाकर बटोरा गया बड़प्पन तिनकों से बनाये गये महल की तरह हवा के एक ही झोंके में उड़कर कहीं से कहीं जा पहुँचता है ।

महानता शाश्वत है और स्थिर भी । व्यक्तित्व को आदर्शों से ओत-प्रोत करके हर किसी की दृष्टि में प्रामाणिक बना जा सकता है । प्रामाणिकता ही मानवी गरिमा है इसके लिए गुण, कर्म, स्वभाव के चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को ऐसा बनाना पड़ता है जो उत्कृष्टता की कसौटी पर खरा सिद्ध हो सके । यही वह विभूति है जिसके आधार पर आत्म-संतोष, जन-सम्मान, अजस्र सहयोग का प्रतिफल हाथोंहाथ मिलता है । समझदारी तक का तकाजा एक ही है कि अपने क्रियाकृत्यों में ईमानदारी का समावेश रखा जाय । कर्तव्यों के प्रति जिम्मेदारी निबाही जाय । प्रलोभनों और दबावों के आगे न झुकने का साहस दिखाया जाय ।

व्यक्तिगत रूप से कोई धनवान, विद्वान, बलवान, प्रतिभावान, कला कुशल, चतुर आदि विशेषताओं से सम्पन्न हो सकता है । दूसरों की तुलना में अपने को अधिक शक्ति-सामर्थ्य का धनी सिद्ध कर सकता है, पर साथ ही यह भी निश्चित है कि इन सम्पदाओं का दुरुपयोग बन पड़ने का खतरा भी बना ही रहेगा । साथ ही ईर्ष्यालुओं के आघातों आक्रमणों की सम्भावना भी बनी रहेगी । चोर और आक्रमणकारी कुचक्री भी अपनी घात लगाते रहेंगे । चापलूसों, चाटुकारों द्वारा प्रशंसा का लालच दिखाकर हितैषी बनने और दल-दल में फँसा देने की सम्भावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता । ऐसी दशा में आशंकाएँ, अशुभ सम्भावनाएँ बनी ही रहेंगी । उनके कारण चित्त पर उद्विग्नता भी चढ़ी ही रहेगी ।

बड़प्पन के साथ जुड़े हुए खतरों को समझना चाहिए और अशान्त मनःस्थिति में जो दुर्गति होती है उसका भी ध्यान रखना चाहिए । इस प्रकार का कोई जोखिम महानता का मार्ग अपनाने में नहीं है । उसकी गरिमा अन्तःकरण को प्रसन्न और उल्लसित रखती है, साथ ही दूसरों का जो उपकार बन पड़ता है उसकी प्रतिक्रिया भी मंगलमय ही होती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । चरित्रनिष्ठा और लोकमंगल में संलग्नता इन दो आधारों को अपनाकर कोई भी व्यक्ति अपनी उत्कृष्टता के आधार पर सर्वसाधारण के सन्मुख ऐसे आदर्श प्रस्तुत कर सकता है जिनसे प्रेरणा पाकर उन्हें भी श्रेष्ठ सज्जन बनने का अवसर मिल सके ।

आवश्यक नहीं कि महानता का मार्ग अपनाने के लिए धनवान या विद्वान बनना आवश्यक हो । इसके लिए चतुरता या समर्थता भी आवश्यक नहीं । सज्जनता की रीति-नीति अपनाना हर किसी के लिए हर परिस्थिति में सम्भव है । अन्त:करण सद्भावना से उदारता से ओत-प्रोत हो तो सम्पर्क क्षेत्र में सेवा-सहायता करने, उदारता बरतने के अवसर अनायास ही मिलते रहते हैं । श्रम, समय लगाकर भी सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन के लिए कुछ न कुछ करते रह सकना सुगम सम्भव हो सकता है । सज्जनता अपनाकर दूसरों के सामने यह तथ्य प्रस्तुत किया जा सकता है कि मर्यादाओं का परिपालन, वर्जनाएँ न तोड़ने का अनुशासन पालने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए । दूसरे लोग समुचित प्रत्युत्तर न दें तो भी अपनी ओर से एकांगी शालीनता बरती जा सकती है और वातावरण में उत्कृष्टता की सुगन्ध भरी जा सकती है । अपना कल्याण साधते हुए दूसरों को भी उसी दिशा में अग्रसर किया जा सकता है ।

महत्वाकांक्षाएँ तभी श्रेयस्कर हो सकती हैं जब उनके साथ पुण्य परमार्थ की भावना को संजोये रखा जा सके । महानता के मार्ग पर हर कोई चल सकता है और सच्चे अर्थों में विभूतिवान, सौभाग्यवान बन सकता है । इसे मूर्खता ही कहना चाहिए कि लोग बड़प्पन की मृगतृष्णा में भटकें और महानता की, उत्कृष्टता की उपेक्षा करें ।

सर्वांगीण प्रगति का एक ही मार्ग

शरीर और प्राण मिलकर जीवन बनता है । इन दोनों में से एक भी विलग हो जाय तो जीवन का अन्त ही समझना चाहिए । गाड़ी के दो पहिए मिलकर सन्तुलन बनाते और गति देते हैं । इनमें से एक को भी टूटा-फूटा, अस्त-व्यस्त नहीं होना चाहिए, अन्यथा प्राण को भूत-प्रेत की तरह अदृश्य रूप से आकाश में, लोक-लोकान्तरों में परिभ्रमण करना पड़ेगा । शरीर की कोई अन्त्येष्टि न करेगा तो वह स्वयं ही सड़-गल जायेगा ।

दैनिक अनुभव में शरीर ही आता है । आत्मा को उसी के साथ गुँथा रहना पड़ता है । इसका प्रतिफल यह होता है कि आत्मा अपने आपको शरीर ही समझने लगता है और इसकी आवश्यकताओं से लेकर इच्छाओं तक को पूरा करने के लिए संलग्न रहता है । दूसरा पक्ष चेतना का, आत्मा का रह जाता है । उसके प्रत्यक्ष न होने के कारण उधर प्राय: ध्यान ही नहीं जाता, फलत: ऐसा कुछ सोचते, करते 'नहीं बन पड़ता' जो आत्मा की समर्थता एवं प्रखरता के निमित्त आवश्यक है । यह पक्ष उपेक्षित बना रहने पर अर्द्धांग पक्षाघात पीड़ित जैसी स्थिति बन जाती है । जीवन का स्वरूप और चिन्तन कर्तव्य सभी में उद्देश्यहीनता घुस पड़ती है । जीवन प्रवाह कीट-पतंगों जैसा, पशु पक्षियों जैसा बन जाता है । उसमें पेट-प्रजनन की ही ललक छायी रहती है । वही कुछ बन पड़ता है, जो शरीर के निमित्त ही काम आए । भूख की, कामुकता की, वासना-तृष्णा, अहंता की पूर्ति कर सके ।

लोभ, मोह और प्रशंसा, अहंता की ललक ही ऐसे व्यक्तियों पर अहर्निशि छायी रहती है । इन्हीं ललक लिप्साओं को भव-बंधन कहते हैं । इसी से जकड़ा हुआ प्राणी हथकड़ी, बेड़ी के रूप में पहने हुए बन्दी की तरह जेलखाने की सीमित परिधि में मौत के दिन पूरे करता रहता है । इन परिस्थितियों में संकीर्ण स्वार्थपरता की पूर्ति ही लक्ष्य बन जाती है । समूचा चिन्तन और प्रयास इसी हेतु नियोजित रहता है । ऐसी दशा में आत्मा के सम्बन्ध में कुछ विचार करते ही नहीं बन पड़ता । उपेक्षित की पुकार कौन सुने ? जिसे उसकी आवश्यकताओं से वंचित रखा गया हो, उपेक्षित, तिरस्कृत किया गया हो, पोषण से वंचित रखा गया हो दुर्बल तो होगा ही । अशक्तता की स्थिति में उसकी वाणी भी क्षीण हो जायेगी । कड़क कर अपनी आवश्यकता बताने और शिकायत सुनाने की स्थिति भी न रहेगी । फलत: आत्मा की सत्ता होते हुए भी उसे जब कुछ कहने लायक, परामर्श देने लायक तक की स्थिति में न रहने दिया गया हो तो समझना चाहिए कि उसके वर्चस्व का निखरना सम्भव ही नहीं रहा । शरीर के निमित्त ही अंग, अवयवों की, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियाएं की विविध विधि हलचलें होती रहेंगी । ऐसी दशा में यदि जीवनचर्या पर संकीर्ण स्वार्थपरता ही छायी रहे और उसकी पूर्ति के लिए सुविधा सम्पन्नता बढ़ाने, उसका उचित-अनुचित उपयोग करने की नशेबाजों जैसी खुमारी छायी रहे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

आत्म-विस्मृति ही वह दुर्भाग्य भरी दुर्दशा है, जिसके कारण मनुष्य अपने सुरदुर्लभ जीवन की गरिमा, जिम्मेदारी, सम्भावना आदि सभी कुछ भूल जाता है । भूल-भुलैयों में भटका हुआ मनुष्य मृगतृष्णा में भटकने वाले हिरण का उदाहरण बनता है । भेड़ों के झुण्ड में पले सिंह शावक की उसी स्तर पर मिमियाने और घास खाने की कहानी प्रसिद्ध है । उसका उद्धार तब हुआ था, जब उसे पानी में परछाई देखने और दूसरे सिंह द्वारा वर्तमान रीति-नीति बदल डालने के लिए समझाते हुए सहमत किया गया था । भृंग कीट की कथा भी इसी से मिलती-जुलती है । भृंग द्वारा पकड़ा गया कीड़ा उसका निरन्तर गुंजन सुनकर मोहित हो जाता है । वह तन्मयता इतनी बढ़ जाती है कि मन ही नहीं शरीर भी उसी साँचे में ढल जाता है । कालान्तर में कीट, भृंग ही बन जाता है । यों यह उदाहरण भक्त के भगवान बनने और उसके लिए साधना उपक्रम अपनाने पर भी लागू हो सकता है । पर वस्तुत: वैसा होता नहीं । अपने को शरीर मात्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझने और उसी की सेवा शुश्रूषा में निरन्तर लगे रहने के कारण आत्मा की स्थिति भी अन्य अंग-अवयवों की भाँति एक सामान्य घटक जैसी रह जाती है । उसका उपयोग इतना ही रहता है कि उसके बने रहने पर शरीर भी जीवित बना रहा । मनमर्जी की कर सकने के लिए जिस शक्ति सामर्थ्य की आवश्यकता है उसे उपलब्ध कराता रहे ।

होना यह चाहिए कि जिस प्रकार शरीर की विभिन्न इच्छा, आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है । उसी प्रकार जीवन व्यवसाय के वरिष्ठ साझीदार को भी लाभांशों में से उसके भाग को निकाला और दिया जाय । पर होता यह है कि काय-पक्ष ही सब कुछ झपट निगल लेता है । आत्मा को निराशा और अभावग्रस्तता की स्थिति में रहना पड़ता है । ऐसी दशा में उसका दिन-दिन दुर्बल होते जाना स्वाभाविक है । नियन्त्रण ढीला पड़ जाने पर काया को पदार्थ सम्पदा के साथ खुल कर खेलने की छूट मिलेगी, उच्छृंखलता अपनाकर धृष्टता को परिपक्व करने से अराजकता जैसी स्थिति उत्पन्न करेगी ही, यही है मनुष्य का पतन-पराभव । इसी स्थिति में दुष्टता और भ्रष्टता पनपती है, क्रिया की प्रतिक्रिया होनी अवश्यम्भावी है । चिन्तन और चरित्र यदि गए-गुजरे स्तर का हो तो उसका प्रतिफल दुःखद, संकटग्रस्त एवं विनाशकारी होगा ही । उन दुष्परिणामों को कर्ता स्वयं तो भोगता ही है, साथ ही अपने सम्बद्ध परिकर को भी उसी दल-दल में घसीट ले जाता है । नाव की तली में छेद हो जाने पर उसमें बैठे सभी यात्री मँझधार में डूबते हैं । स्वार्थी, विलासी, कुकर्मी स्वयं तो आत्मप्रताड़ना, लोकभर्त्सना, दैवी दण्ड विधान की आग में जलता ही है, साथ ही अपने परिवार को, सम्बन्धी, स्वजनों, मित्रों को भी अपने जाल-जंजाल में फँसा कर अपनी तरह दुर्गति भुगतने के लिए बाधित करता है । नशेबाजी क्रिया की प्रतिक्रिया ऐसी ही होती है । बहुप्रजनन में व्यस्त व्यक्ति भी अदूरदर्शिता के कारण अपना, पत्नी का, बच्चों का भविष्य बिगाड़ते हैं । बीमारों का परिकर भी त्रास पाता रहता है । राजदण्ड की पकड़ में आये हुए व्यक्ति स्वयं तो जेल भुगतते ही हैं साथ ही परिवार को चिन्ता में, बदनामी में, कर्जदारी में डुबो जाते हैं । आत्मा की उपेक्षा करके उसकी भागीदारी देने में बेईमानी बरतने वाले भी इसी प्रकार पतन के गर्त में गिरते हैं और साथ ही अपने प्रभाव क्षेत्र में भी निकृष्टता का सम्बर्द्धन करते हुए उन्हें भी कुचक्र में फँसाते हैं ।

यह है संक्षिप्त विश्लेषण उस वस्तुस्थिति का जो साधन सम्पन्नता रहते हुए भी व्यक्तित्व को, प्रतिभाओं को, ऊँचा उठने के स्थान पर पतोन्मुख बनाती और उसकी दुःखद प्रतिक्रिया से समूचा वातावरण विकृत, दुर्गन्धित करती है । इसे आत्मिक दुर्बलता भी कह सकते हैं, क्योंकि आदर्शों को अपनाने की, दृष्टिकोण में उत्कृष्टता भरने की, कार्यपद्धति को दूरदर्शी विवेकशीलता के अनुरूप बनाने की महती आवश्यकताओं को यही पूरा कर सकती है । सत्प्रवृत्तियाँ आत्मिक क्षेत्र से ही उभरती हैं । सन्मार्ग पर ले चलने वाला प्रकाश उसी केन्द्र से उपलब्ध होता है । यदि समुद्र के बीच में खड़ा हुआ यह प्रकाश स्तम्भ बुझ जाय तो फिर उस क्षेत्र में चलने वाले जलयान चट्टानों से टकराकर दुर्घटनाग्रस्त होंगे ही ।

विचारशीलों को इस तथ्य के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए, क्योंकि इससे प्रत्येक के व्यक्तिगत जीवन का उत्थान-पतन तो जुड़ा हुआ है ही, साथ ही यह भी निश्चित है कि हर व्यक्ति अपना भला-बुरा प्रभाव समाज पर छोड़ता है । विशेषतया सुगन्ध की अपेक्षा दुर्गंध का विस्तार भी अधिक होता है और प्रभाव भी अधिक पड़ता है । एक नशेबाज, जुआरी, व्यभिचारी, दुर्व्यसनी, कुकर्मी अनेक संगी-साथी बना सकने में सहज सफल होता है । बेल आगे-आगे पसरती जाती है लहरें एक दूसरे को आगे धकेलती हैं और उनकी हलचल किनारे पर पहुँच कर रुकती है । अनुकरणप्रिय सामान्यजनों में आदर्शवाद का अनुकरण करने की क्षमता हल्की-सी होती है । पर वे कुप्रचलनों को सहज ही पकड़ते हैं । दूषित साहित्य का अवांछनीय एवं फिल्मों अभिनयों का प्रभाव जितनी तेजी से पशु प्रवृत्तियों को भड़काता है, उतनी तीव्रता सत्साहित्य में नहीं होती । गीता पढ़कर उतने आत्मज्ञानी नहीं बने, जितने कि अश्लील दृश्य, अभिनय से प्रभावित होकर कामुक अनाचार अपनाने में प्रवृत्त हुए हैं । एक सन्त सज्जन कम ही अपने जैसे बना पाते हैं । महामानवों को अपने जैसे साथी उत्तराधिकारी विनिर्मित करने में एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता है । पर खल मण्डली की विरादरी बरसाती मेढ़कों की तरह देखते-देखते तेजी से बढ़ती है । कुकुरमत्तों की फसल और मक्खी-मच्छरों का परिवार भी तेजी से बढ़ता है । पर हाथी की वंश वृद्धि अत्यन्त धीमी गति से होती है ।

समाज में छाया हुआ अनाचार, असन्तोष, पतन-पराभव का मात्र एक ही कारण है कि जनसाधारण की आत्मचेतना मूर्छित हो गई है और उसका स्थान शरीरगत लिप्सा-लालसा ने ले लिया । यदि स्थिति बदलना हो तो उलटे को उलट कर सीधा करना होगा । चिन्तन में आदर्शों का समावेश करना होगा और दृष्टिकोण में उत्कृष्टता की प्रतिष्ठापना करनी होगी । व्यवहार में सज्जनता का पुट लाना और स्वार्थ पर अंकुश लगाते हुए पुण्य-परमार्थ की प्रवृत्ति जगानी होगी, इसी आधार पर व्यक्तित्वों को उभारना और सत्प्रयोजनों को सफल बना सकने वाली प्रतिभा को निखारना पड़ेगा । संक्षेप में यही है, आत्मिक प्रगति । इसी के साथ मानवी गरिमा जुड़ी हुई है । यही सद्गुण सम्पन्न महामानवों की विरादरी उत्पन्न करती है । इसी तत्वज्ञान को अपनाकर प्राचीनकाल में साधु-ब्राह्मणों का विशाल समुदाय संकल्पपूर्वक सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन की महती लोक साधना में लगा था । उसी आधार पर सतयुग का स्वर्णिमकाल विनिर्मित हुआ था । उन दिनों यह भारत भूमि देवमानवों की जन्मदात्री और "स्वर्गादपि गरीयसी" कहलाती थी । यहाँ के निवासियों ने असाधारण स्तर की सेवा-साधना करके जनसम्पर्क और जनसहयोग अर्जित किया था । जगद्गुरु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और चक्रवर्ती के ऊँचे पदों पर उन्हें इसी सेवा साधना के बदले बिठाया गया था ।

पुरातन काल की वैयक्तिक और सामाजिक गरिमा का विकास-विस्तार मात्र एक ही आधार पर सम्भव हुआ था कि यहाँ अध्यात्मवाद को मान्यता दी गयी थी । आज जितना ध्यान भौतिक विज्ञान के आविष्कारों और उसके द्वारा विनिर्मित उपकरणों को भोगने पर है, पुरातन काल में उतना ही ध्यान चेतना स्तर ऊँचा उठाने पर भी दिया जाता था । भावनाओं, मान्यताओं, आकांक्षाओं, उमंगों की प्रत्येक लहर में आदर्शों की ऊर्जा भरी रहती थी, फलतः हर किसी का मन ऊँचा सोचता था । हर शरीर आदर्शों को क्रियान्वित करने में तल्लीन रहता था । उस महान परम्परा का परित्याग करके ही हम आज अनेकानेक संकटों एवं उलझनों में फँसे हैं । उसी परम्परा को पुनः जीवन में अंगीकार कर हम उत्थान का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं ।

बुद्धि नहीं, भावना प्रधान

मनीषियों के वचन एवम् धर्मग्रन्थ मनुष्य को विचार करने का आधार प्रदान कर सकते हैं । विचारों को दिशा प्रदान करने में इनका स्थान महत्त्वपूर्ण है । तीक्ष्ण बुद्धि, भौतिक प्रगति एवम् प्रतिभा के विकास में विभिन्न समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने में योगदान दे सकती है, पर वह आधार प्रदान कर सकना इसके लिए असम्भव है जिसे अपनाने से कोई भी सद्गुण सम्पन्न बन जाए । महानता को अपनाना तथा इसके पथ पर आगे बढ़ सकना जिससे सम्भव है, वह है भाव भरा उत्कृष्ट चिन्तन । इसका उद्गम क्षेत्र है, परिष्कृत अन्तराल । श्रेष्ठता की ओर बढ़ पाने योग्य मनोबल जुटाना उदात्त भावनाओं की ही देन है ।

बुद्धि भी उपयोगी है । इसका अपना महत्त्व है । इससे योग्यता, प्रतिभा का विकास होता है । भौतिक प्रगति का आधार विनिर्मित होता है । अब तक के भौतिकता के विकास मे, समृद्धि में बुद्धि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है । लेकिन इसके साथ यह भी एक सत्य है कि बुद्धि द्वारा जो भी विकास हुआ है उसका अस्तित्व भावनाओं के बल पर ही कायम है । यदि मनुष्य भावना शून्य होता तो प्रगति-समृद्धि कभी की गायब हो गई होती । अन्तःकरण की इन समुज्ज्वल भावनाओं ने मालाकार के सदृश सम्पूर्ण मानव जाति को एकता के सूत्र में पिरो रखा है । सहयोग-सहकार का गुण इन्हीं की देन है । एक-दूसरे के सुख-दुःख में शामिल होना, आपत्ति-संकट में सहायता करना तथा प्राणि मात्र के बीच सद्भाव की जो प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है उसका एकमात्र कारण उदार भावनाएँ ही हैं ।

यही वह आधार हैं जिसका आश्रय लेकर वसुधैव कुटुम्बकम् की कल्पना साकार हो सकती है । इसी के द्वारा मनुष्य संकीर्ण स्वार्थपरता की बेड़ियों को काट सकता है । उत्कृष्ट भावनाओं के अभाव में एकांगी बुद्धि निपट स्वार्थी हो अनेकानेक समस्याओं की जनक ही सिद्ध हो सकेगी, पारस्परिक कलह सामाजिक विग्रह ही खड़े होंगे । उदात्त भावनाओं का आश्रय लेकर ही बुद्धि की प्रखरता मानव मानवता के हित में अनेकानेक नूतन अन्वेषण कर सकेगी और न केवल व्यक्तिगत उत्थान अपितु राष्ट्रीय, सामाजिक प्रगति-कल्याण में सहयोगी सिद्ध होगी । भाव सम्वेदनाओं के अभाव में अकेली बुद्धि चाहे जितनी प्रखर और तीक्ष्ण क्यों न हो विभिन्न जटिलताएँ ही पैदा कर सकेगी । इनकी महत्ता को जानने के कारण ही सभी चिन्तकों, धर्मग्रन्थों ने हृदय की शुद्धि एवम् अन्तःकरण के परिष्कार पर बल दिया है । साधना-उपासना की विभिन्न विधियों क्रिया पद्धतियों का आधार परिष्कृत अन्तराल ही है ।

कोई भी व्यक्ति मानव मानवता के हित के लिए कोई महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकने में तभी सक्षम हो पाता है जबकि उसका हृदय विशाल हो । इसके अभाव में करने की तो बात दूर इस बारे में सोचना भी सम्भव नहीं बन पड़ता है । सन्त, ऋषि, महापुरुष अपने अन्तराल की इसी उत्कृष्टता व विशालता के कारण ही महानता के पथ पर चल कर मानव जाति के कल्याण हेतु कुछ करने में सक्षम हो सके । भावनाओं के द्वारा ही मानव के हृदय की पीड़ा व्यथा को जाना समझा और उसके निराकरण हेतु प्रयत्न कर सके । मनुज के अन्तरंग की आस्थाओं का स्पर्श कर पाना और उसकी गतिविधियों में आवश्यक परिवर्तन कर सकना भावनाशील पुरुष के लिए ही सम्भव है । बुद्धि का क्षेत्र वैचारिक जगत ही है । क्षणिक प्रभाव पैदा करना विचारणाओं की गाँठों को सुलझाने का आधार तो विचार हो सकते हैं । पर जिससे मनुष्य के जीवन में आमूलचूल विधेयात्मक परिवर्तन परिवर्द्धन किया जा सके वह बुद्धि से नहीं अपितु भावनाओं से ही सम्भव है ।

मात्र बुद्धि ने मनुष्य की प्रकृति बदली है । ऐसे प्रमाण नहीं मिलते हैं जबकि भावनाशील महापुरुषों ने अपने परिष्कृत अन्तःकरण के कारण दुराचारी पातकी व्यक्तियों को न केवल प्रभावित ही किया अपितु उनके जीवन को पूरी तरह से परिवर्तित कर दिया और पहले के कुकर्मी व्यक्ति अपने परवर्ती जीवन में सन्त-भक्त हो गए । जघाई, मघाई, जैसे डाकुओं का सुधार चैतन्य देव की उदात्त भावनाओं के कारण ही हो सका । श्री गिरीश चन्द्र घोष जैसे शराबी, व्यसनी व्यक्ति भी परमहंस रामकृष्ण के सम्पर्क में आकर सन्त बन गए । इसी तरह एक नहीं अनेक ऐसे उदाहरण मिल जायेंगे जिनमें अनेक व्यक्तियों ने तत्कालीन महामानवों के सम्पर्क में आकर अपने जीवन को धन्य बनाया । इनमें उनके विचारों की शक्ति नहीं अपितु भावनाओं की उत्कृष्टता ही प्रधान कारण रही । जबकि कोरे बुद्धिवादी, भावसम्वेदना से शून्य व्यक्तियों ने संसार का विकास कम विनाश ही अधिक किया है । हिटलर, चंगेजखाँ, तैमूरलंग, मुसोलिनी कम बुद्धिमान नहीं थे । परन्तु इस एकांगी बौद्धिक प्रखरता ने उनके अन्दर लिप्सा-स्वार्थ, संकीर्णता ही पैदा की और मानव जाति को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विकास के पथ से सैकड़ों वर्ष पीछे कर दिया । वस्तुत: मनुष्य को सद्गुण सम्पन्न बनाने उसके व्यक्तित्व को सहयोग सद्भाव से अलंकृत करने में एकांगी बौद्धिकता उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती । इसे भाव सम्वेदनाओं द्वारा ही अलंकृत कर सकना सम्भव है ।

सभी धर्म-सम्प्रदाय, सन्त-महात्मा एक स्वर से हृदय की शुद्धता, पवित्रता, विशालता की महिमा का गायन करते हैं । इन सब का एकमात्र उपदेश है आत्मोत्कर्ष की आधारशिला, हृदय की विशालता । श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे "जिसका हृदय छोटे से शिशु जैसा निश्छल और पवित्र है वह शीघ्र ही परमात्मा को पा सकेगा ।"

बुद्धिवादियों की एक कमी है वह तुरन्त हो सकने वाले लाभ को ध्यान में रखते हैं । महानता और श्रेष्ठता के कष्टमय कंटकाकीर्ण पथ से विरत होने की ही सोचते हैं । तर्क से परे महानता के मार्ग पर चल सकना परिष्कृत अन्तराल वालों के लिए ही सम्भव है । परिष्कृत अन्तराल ऐसे निर्मल सरोवर की तरह है जिसमें सूर्य के सदृश परमसत्ता का बिम्ब चमकता है ।

बौद्धिकता से जीवन सम्बन्धी सुख-सुविधाओं का अम्बार तो लगाया जा सकता है पर चेतना की ऊँचाइयों को पा सकना भावनाशील के लिए ही सम्भव है । हृदय शून्य व्यक्ति भौतिक जीवन में वह कितना ही सक्षम क्यों न हो आत्मिकी के क्षेत्र में पूरी तरह से अक्षम ही सिद्ध होगा । जबकि अल्पबुद्धि वाला भावनाशील व्यक्ति भी ईश्वर सान्निध्य पा सकता है । संत रैदास, कबीर, दादू आदि के जीवन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं ।

आज बुद्धि की प्रखरता की कोई कमी नहीं परन्तु भावनाओं से शून्य होने के कारण उच्चकोटि के बुद्धिवादी अधिकांश वैज्ञानिक मानवता के विनाश की सामग्री जुटाने में लगे हैं । इस बुद्धिवाद को दिशा देना तभी सम्भव है जब उत्कृष्ट भावनाओं तथा बुद्धि का सुनियोजित सामंजस्य स्थापित हो सके ।

भावनाशीलता को अपनाकर व्यावहारिक जीवन में क्रियान्वित करके ही निज के व्यक्तित्व को सेवा, दया, करुणा प्रेम से अलंकृत करना तथा कोरे बुद्धिवाद को दिशा प्रदान कर मानव-जाति को एक सूत्र में पिरोकर "वसुधैव कुटुम्बकम्" के स्वप्न को साकार करने के प्रयत्न कर सकना सम्भव है । उत्कृष्ट तथा उज्ज्वल भावनाएँ ही मानव की गरिमा महानता की उपलब्धि का सबल आधार हैं ?

भाव सम्वेदना ही एकमात्र विकल्प

काँच को हथौड़े से तोड़ा जाय, तो वह छर-छर होकर बिखर तो सकता है, पर सही जगह से इच्छित स्तर के टुकड़ों में विभाजित न हो सकेगा । चट्टानों में छेद करना हो, तो सिर्फ हीरे की नोक वाला बरमा ही काम आता है । पहाड़ में सुरंगें निकालने के लिए डायनामाइट की जरूरत पड़ती है । कुदालों से खोदते-तोड़ते रहने पर तो सफलता संदिग्ध ही बनी रहेगी ।

वर्तमान में संव्याप्त असंख्य अवांछनीयताओं से जूझने में प्रचलित उपाय पर्याप्त नहीं हैं । दरिद्रता को सभी संकटों की एकमात्र जड़ बताने से तो बात नहीं बनती । समाधान तो तब हो, जब सर्वसाधारण को मनचाही सम्पदाओं से सराबोर कर देने का कोई सीधा मार्ग बन सके । यह तो सम्भव नहीं दीखता । इसी प्रकार यह भी दुष्कर प्रतीत होता है कि उच्च शिक्षित-चतुर कहलाने वाला व्यक्ति अपनी विशिष्टताओं का दुरुपयोग न करेगा और उपार्जित योग्यता का लाभ सर्वसाधारण तक पहुँचा सकेगा । प्रपंचों से भरीपूरी गतिविधियाँ अपनाकर जन-साधारण के लिए अनेक कठिनाइयाँ खड़ी न करेगा । सम्पदा के द्वारा मिलने वाली सुविधाओं से कोई इनकार नहीं कर सकता, पर यह विश्वास कर सकना कठिन है कि जो पाया गया, उसका सदुपयोग ही बन पड़ेगा । उसके कारण दुर्व्यसनों का, आतंकवादी, अनाचार का जमघट तो नहीं लग जायेगा ?

वर्तमान कठिनाइयों के निराकरण हेतु आमतौर से सम्पदा, सत्ता और प्रतिभा के सहारे ही निराकरण की आशा की जाती है, इन्हीं तीनों का मुँह जोहा जाता है । इतने पर भी इनके द्वारा जो पिछले दिनों बन पड़ा है, उसका लेखा-जोखा लेने पर निराशा ही हाथ लगती है । प्रतीत होता है कि जब भी, जहाँ भी वे अतिरिक्त मात्रा में संचित होती हैं वहीं एक प्रकार का उन्माद उत्पन्न कर देती हैं । उस अधपगलायी मनोदशा के लोग सुविधा-सम्वर्द्धन के नाम पर उद्धत आचरण करने पर उतारू हो जाते हैं और मनमानी करने लगते हैं । अपने-अपनों के लाभ के लिए उनकी उपलब्धियाँ खपती रहती हैं । प्रदर्शन के रूप में ही यदा-कदा उनका उपयोग ऐसे कार्यों में लग पाता है, जिससे सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन में कदाचित् कुछ योगदान मिल सके ।

सच तो यह है कि समर्थता का जखीरा हाथ लगने पर तथाकथित बलिष्ठों ने घटाटोप की तरह छाये हुए संकट और विग्रह खड़े किये हैं । प्रदूषण उगलने वाले कारखाने सम्पन्न लोगों ने ही लगाये हैं । उन्हीं ने बेरोजगारी और बेकारी का अनुपात बढ़ाया है । आतंक, आक्रमण और अनाचार में संलग्न बलिष्ठ लोग ही होते हैं । युद्धोन्माद उत्पन्न करना खर्चीले माध्यमों के सहारे उन्हीं के द्वारा बन पड़ता है । प्रतिभा के धनी कहे जाने वाले वैज्ञानिकों ने ही मृत्यु किरणों जैसे आविष्कार किये हैं । कामुकता को धरती से आसमान तक उछाल देने में तथाकथित कलाकारों की ही संरचनाएँ काम करती हैं । अनास्थाओं को जन्म देने का श्रेय बुद्धिवादी कहे जाने वालों के ही पल्ले बँधा है । नशेबाजी को घर-घर तक पहुँचाने में चतुरता के धनी लोग ही अपने स्वेच्छाचार का परिचय दे रहे हैं । इस प्रकार आकलन करने पर प्रतीत होता है कि मूर्धन्यों, बलिष्ठों, सम्पन्न और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिभाशालियों की छोटी-सी चौकड़ी ने अनर्थ थोड़े समय में खड़े किये हैं ।

यहाँ साधन-सम्पन्नता की निन्दा नहीं की जा रही है और न दुर्बलता के सिर पर शालीनता का सेहरा बाँधा जा रहा है । कहा इतना भर जा रहा है कि पिछड़ेपन को हटाने-मिटाने का एकमात्र यही उपाय नहीं है ।

इस तथ्य को हजार बार समझा और लाख बार समझाया जाना चाहिए कि मन:स्थिति ही परिस्थितियों की जन्मदात्री है । इसलिए यदि परिस्थितियों की विपन्नता को सचमुच ही सुधारना हो, तो जन-समुदाय की मन:स्थिति में दूरदर्शी विवेकशीलता को उगाया, उभारा और गहराई तक समाविष्ट किया जाय । यहाँ यह बात भी ध्यान रखने की है कि मन:क्षेत्र एवं बुद्धि संस्थान भी स्वतन्त्र नहीं है, उन्हें भावनाओं, आकांक्षाओं, मान्यताओं के आधार पर अपनी दिशा-धारा विनिर्मित करनी होती है । उनका आदर्शवादी उत्कृष्ट स्वरूप अन्त:करण में भावसम्वेदना बनकर रहता है । यही है वह सूत्र, जिसके परिष्कृत होने पर कोई व्यक्ति ऋषिकल्प, देवमानव बन सकता है । यह एक ही तत्व इतना समर्थ है कि अन्यान्य असमर्थताएँ बने रहने पर भी मात्र अकेली विभूति के सहारे न केवल अपना, वरन् समूचे संसार की शालीनता का पक्षधर काया-कल्प किया जा सकता है । इक्कीसवीं सदी के साथ जुड़े उज्ज्वल भविष्य का यदि कोई सुनिश्चित आधार है, तो वह एक ही है कि जन-जन की भाव-संवेदनाओं को उत्कृष्ट, आदर्श, उदात्त बनाया जाय । इस सदाशयता की अभिवृद्धि इस स्तर तक होनी चाहिए कि सब अपने और अपने को सबका मानने की आस्था उभरती और परिपक्व होती रहे ।

सम्पदा संसार में इस अनुपात में ही विनिर्मित हुई है कि उसे मिल-बाँटकर खाने की नीति अपनाकर सभी औसत नागरिक स्तर का जीवन जी सकें । साथ ही बढ़े हुए पुरुषार्थ के आधार पर जो कुछ अतिरिक्त अर्जन कर सकें, उसे पिछड़े हुओं को बढ़ाने, गिरते हुओं को उठाने एवं समुन्नतों को सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्द्धन हेतु प्रोत्साहित कर सकें ।

अनावश्यक सम्पन्नता की ललक ही बेकाबू होने पर उन अनर्थकारी संरचनाओं में प्रवृत्त होती है, जिनके कारण अनेकानेक रंग-रूप वाले अनाचारों को व्यापक, विस्तृत और प्रचण्ड होते हुए देखा जा रहा है । लिप्साओं में किसी प्रकार कटौती करते बन पड़े, तो ही वह जुझारूपन उभर सकता है, जो अवांछनीयताओं से गुँथे और पटकनी देकर परास्त कर सके । जिन अभावों से लोग संत्रस्त दीखते हैं उनसे निपटने की प्रतिभा उनमें उभारी जाय, ताकि वे अपने पैरों खड़े होकर-दौड़कर स्पर्द्धा जीतते देखे जा सकें । आर्थिक अनुदान देने की मनाही नहीं है और न यह कहा जा रहा है कि गिरों को उठाने में सहयोग देने में कोताही बरती जानी चाहिए । मात्र इतना भर सुझाया जा रहा है कि मनुष्य अपने आप में समग्र और समर्थ है । यदि उसका आत्म-विश्वास एवं पुरुषार्थ जगाया जा सके, तो इतना कुछ बन सकता है, जिसके रहते याचना का तो प्रश्न ही नहीं उठता, इतना बचा रहता है जिसे अभावों और अव्यवस्थाओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में लगाया जा सके ।

इक्कीसवीं सदी भाव-सम्वेदनाओं के उभरने-उभारने की अवधि है । हमें इस उपेक्षित क्षेत्र को ही हरा-भरा बनाने में निष्ठावान माली की भूमिका निभानी चाहिए । यह विश्व-उद्यान इसी आधार पर हरा-भरा, फला-फूला एवं सुषमा सम्पन्न बन सकेगा । आश्चर्य नहीं कि वह स्वर्ग लोक वाले नन्दन-वन की समता कर सके ।

भाव सम्वेदना की चमत्कारी शक्ति

मानवी काया में अनेक अंग-अवयव हैं । वे सभी अपनी हलचलों से शरीर यात्रा के साधन भर जुटाते और जड़तत्वों से विनिर्मित समझे जाते हैं । हृदय ही शरीर का एक ऐसा अवयव है जिसकी स्थिति सर्वथा भिन्न एवं उच्चस्तरीय है । इसका सम्बन्ध मात्र रक्ताभिसंचरण से ही नहीं वरन् करुणा की भाव-सम्वेदनाओं के साथ अध्यात्म विभूतियों के साथ भी जुड़ा हुआ है । रक्त फेंकने वाली यह थैली यों तो सभी के सीने में विद्यमान है, पर जिस अर्थ में हृदय का उल्लेख होता है वह करुणा और मैत्री की भाव-सम्वेदना ही है । इसके अभाव में मनुष्य को हृदयहीन कहा और आततायी माना जाता है । देवताओं का वैभव जिस आधार पर बना और बढ़ा है उसे सहृदयता ही कह सकते हैं । इस विश्व में जो कुछ अभिनन्दनीय और अनुकरणीय है, उस सबका उद्भव सहृदयता की पृष्ठभूमि पर ही सम्भव हुआ है ।

अध्यात्मवेत्ताओं ने चेतना की उच्चस्तरीय विभूतियों में से मस्तिष्क को बुद्धि का और हृदय को भावना का केन्द्र माना है । जड़ शरीर के साथ चेतना का समीकरण करने वाले इन दो अवयवों का अपना विशेष स्थान है । इसलिए आत्मिक प्रगति के प्रयोजनों में समय-समय पर इनका विशेष उपयोग होता रहता है । ध्यान-धारणा की साधनाएँ प्राय: इन्हीं दो केन्द्रों के इर्द-गिर्द घूमती रहती हैं ।

इतने पर भी सूक्ष्म संस्थानों में हृदय का महत्त्व सर्वोपरि है । सामान्य वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर तो यह आकुंचन-प्रकुंचन या 'लप-डप' करता हुआ रक्त से भरी थैली मात्र जान पड़ता है, जो शरीर के विभिन्न अंगों को रक्त भेजता, अशुद्ध रक्त को एकत्रित एवं परिशोधित करता मात्र प्रतीत होता है । जीवविज्ञानी इसी सीमा तक हृदय का महत्त्व स्वीकार करते रहे हैं और कहते रहे हैं कि यह संस्थान शरीर में रक्त संचार की भूमिका सम्पन्न करता है । पर यह तो इसका स्थूल पक्ष है । आध्यात्मिक प्रतिपादनों में इस संस्थान को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है । योगियों ने इस अंग को चेतना का केन्द्र माना है । गीताकार ने इसे ही आत्मा का निवास स्थल बताया है । तीन शरीरों से बनी मानवी काया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में सबसे महत्त्वपूर्ण शरीर 'कारण शरीर' को बताया गया है । इसे जाग्रत एवं विकसित कर लेने पर मनुष्य ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी बन जाता है । अध्यात्मवेत्ताओं द्वारा इस क्षेत्र को विकसित करने के लिए अत्यधिक जोर दिया गया है जो अकारण नहीं है । इस आग्रह के पीछे ठोस वैज्ञानिक आधार हैं जिन्हें समझा और उनका लाभ उठाया जा सके तो मनुष्य का व्यक्तित्व एवं उसकी सामर्थ्य कई गुना अधिक प्रखर हो सकती है ।

धड़कते हृदय एवं उससे निकलने वाली ध्वनि तरंगों में भाव सम्वेदनाओं की आत्मीयता की सघनता हो तो उसका चमत्कारी प्रभाव परिणाम दिखायी पड़ता है । दूसरों को प्रभावित करने, अनुकूल बनाने तथा श्रेष्ठ मार्ग पर बढ़ने के लिए प्रेरित करने में भाव सम्वेदनाओं की ही प्रमुख भूमिका होती है । ऋषि-मनीषियों, संत, महात्माओं, महापुरुषों में यह विशेषता देखने को मिलती है कि वे अन्त:करण की महानता द्वारा ही दूसरों को अनुवर्ती बनाते हैं । अन्यों को श्रेष्ठ जीवन जीने, परमार्थ प्रयोजनों में जुटने को बाध्य करते हैं । आध्यात्मिक क्षेत्र में हृदय की महत्ता, उसमें उठने वाली भाव सम्वेदनाओं की उपयोगिता को बहुत पहले से ही स्वीकार किया जाता रहा है ।

इस तथ्य को अब वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा भी मान्यता मिल रही है । सामान्यतया माताएँ नवजात शिशुओं को अपने बायें वक्षस्थल से चिपकाये रहती हैं । इसका कारण दाहिने हाथ का कामों से व्यस्त रहना माना जा सकता है, पर वास्तविक कारण यह नहीं है । सर्वेक्षणकर्ता वैज्ञानिकों का कहना है कि बायें हाथ से काम करने वाली महिलाएँ भी अपने शिशुओं को बायीं गोद में ही लिये रहती हैं । पुरातत्व संग्रहालयों में संकलित मूर्तियों, प्राचीन तैल चित्रों में उन चित्रों, कलाकृतियों का अध्ययन किया गया जिनमें नवजात शिशु को माँ के साथ चित्रित किया गया है । निष्कर्षों में पाया गया कि अस्सी प्रतिशत महिलाएँ अपने शिशुओं को बायें सीने से चिपकाये हुए हैं । इसे चित्रकारी की परम्परागत विशेषता कहकर नहीं टाला जा सकता ।

इस सन्दर्भ में कार्नेल विश्वविद्यालय, अमेरिका के मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने नये तथ्यों का रहस्योद्घाटन किया है । सुप्रसिद्ध मानवशास्त्री डॉ. ली. साल्क ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में बताया है कि माताओं द्वारा अपने शिशुओं को बायीं ओर चिपकाये रहने के विशेष कारण हैं । हृदय बायीं ओर अवस्थित होता है । जाने-अनजाने माँ अपने बच्चे को उसका अधिक से अधिक सामीप्य देना चाहती है । मातृ-हृदय की धड़कन के साथ भाव-सम्वेदनाएँ भी तरंगित होतीं और उभरती रहती हैं । उनके आदान-प्रदान से वे स्वयं तो संतोष की अनुभूति करती ही हैं, बच्चे के ऊपर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है । हृदय की ध्वनि तरंगों को सुनकर बच्चा एक अनिर्वचनीय आनन्द में डूबा रहता है । इस सम्बन्ध में डॉ. डिस्पाण्ड मॉरिस ने महत्त्वपूर्ण खोजें की हैं । अपनी अनुसंधानपूर्णकृति 'द इन्टिमे८२१२ बिहैवियर एण्ड द नेकेड पथ' में उन्होंने कहा है कि हृदय की ध्वनि ही एकमात्र वह शाश्वत ध्वनि है जिसे शिशु गर्भावस्था में सुनता है । माँ के गर्भ से बाह्य संसार में आने पर वह विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ सुनकर परेशान रहता है और पूर्व परिचित ध्वनि की आस लगाये रहता है । माँ जब उसे गोदी में लेती है तो उसे सुखद अनुभूति होती है । देखा गया है कि रोते हुए बच्चों को सीने से चिपकाते ही वे चुप हो जाते हैं । माँ के धड़कते हुए संवेदनशील हृदय की ही यह प्रतिक्रिया है जिसकी सुखद ध्वनि तरंगों को सुनते ही बच्चे रोना बन्द कर देते हैं ।

इस तथ्य को परीक्षण की कसौटी पर कसने के लिए अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ. ली साल्क ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर कुछ अन्य प्रयोग किये जिसके आश्चर्यजनक परिणाम निकले । यह परिणाम मातृ हृदय के साथ जुड़ी संवेदनशीलता की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं । वैज्ञानिकों ने इस प्रयोग में जब मातृ हृदय की धड़कन की ध्वनि को टेप करके रोते हुए नवजात शिशुओं को सुनाया तो उन्होंने रोना बन्द कर दिया । उनके मुख-मण्डल पर शान्ति एवं प्रसन्नता के भाव उभरने लगे । इससे निष्कर्ष निकाला गया कि माताओं के धड़कते हृदय के साथ उनकी सुकोमल वात्सल्य भावनाएँ भी जुड़ी रहती हैं । इस ध्वनि से पूर्व परिचित होने के कारण शिशु सहज ही आकर्षित हो जाते हैं । ध्वनि तरंगों में घुली भाव-सम्वेदनाएँ बच्चे के हृदय को उद्वेलित करतीं और सुखद प्रभाव डालती हैं ।

यह तो प्रकृति प्रदत्त मातृ हृदय के साथ जुड़ी भाव सम्वेदनाओं का समान्य पक्ष रहा जिसका लाभ बच्चे सहज ही उठाते रहते हैं । असामान्य पक्ष की सामर्थ्य एवं सम्भावनाएँ अनन्त हैं । कारण शरीर में विद्यमान भाव-सम्वेदनाओं को, आत्मीयता को उभारा-उछाला जा सके, तो उससे न केवल मनुष्य जाति को एकता, स्नेह, सौहार्द्र के सूत्र में बाँधा जा सकता है, वरन् जीव-जन्तुओं, पशु-पक्षियों एवं पेड़-पौधों को भी वांछित दिशा में मोड़ा-मरोड़ा तथा वशवर्ती बनाया जा सकता है ।

कैलीफोर्निया के विलक्षण संत लूथर बरबैक अपनी भाव साधना में इतने सिद्ध-हस्त हो गये थे कि प्रकृति के कण-कण से वे प्यार करने लगे और प्यार बाँटने लगे । उनकी सहृदयता से प्रभावित होकर वनस्पतियों को भी अपने गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्तन लाने को मजबूर होना पड़ा । उनके बगीचे में जो भी वृक्ष-वनस्पति हैं, उनसे वे पुत्रवत् आत्मीयता रखते हैं । इससे उनके बगीचे में काँटे रहित गुलाब उगते हैं और दिन में कुमुदिनी खिलती है । अखरोट के वृक्ष जो ३२ वर्ष में फल देने योग्य होते हैं, १७ वर्ष में ही फलने-फूलने लगते हैं । यह सब भावनाओं का, आत्मीयता का ही चमत्कार है ।

इस दृष्टि से शरीर के अन्य अंगों की तुलना में हृदय का महत्त्व कहीं अधिक है । सामान्य बोलचाल के प्रसंगों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सबसे प्रिय वस्तु व्यक्ति का सम्बन्ध हृदय से जोड़ने के पीछे यही कारण है । प्रार्थना, उपासना, साधना में भावनाओं का महत्त्व प्रतिपादित करने, उन्हें विकसित करने पर जोर देने के पीछे यही मनोवैज्ञानिक आधार है कि परमात्मा द्वारा दिये गये भावसूत्रों में ही मनुष्य को बाँधा जा सकता है । भाव-सम्वेदनाओं से भरपूर व्यक्ति असंख्य को अपना बना लेते और सहयोग करने के लिए विवश कर देते हैं । वस्तुत: यह भावनाओं का ही खेल है । मनुष्य को एकता के सूत्र में बाँधने के अन्य प्रयत्नों की सफलता तब तक संदिग्ध ही बनी रहेगी जब तक कि भाव-सम्वेदनाओं की सहृदयता को विकसित करने की उपेक्षा होती रहेगी । मनुष्य जीवन का सौभाग्य और आनन्द सहृदयता-आत्मीयता के सहारे ही उपलब्ध होता है ।

तृप्ति-तुष्टि—शान्ति

प्रत्येक प्राणियों की आवश्यकताएँ सीमित हैं । जीवधारियों की संरचना इस प्रकार हुई है कि इनका कौशल और स्वभाव स्थानीय परिस्थितियों और वस्तुओं के साथ तालमेल बिठाकर तृप्त हो जाता है । अभावजन्य असंतुष्टि के कारण उसका मानसिक स्तर उद्विग्नता ग्रस्त नहीं रहता शरीरगत क्षुधाएँ उचित सीमा तक सरलतापूर्वक पूरी होती रहें तो फिर उस हैरानी की जरूरत नहीं पड़ती जो चैन से नहीं बैठने देती । मानसिक विकास हर प्राणी का इतना ही हुआ है कि वह साधन जुटाने और आत्म-रक्षा की दृष्टि से प्रतिरक्षा की आवश्यक व्यवस्था बनाता रहे । अधिकांश प्राणी यह सब कर भी लेते हैं । यही कारण है कि बचे हुए समय में प्रसन्न मुद्रा में बने रहते हैं और बचा समय विनोद, मनोरंजन में कुदकने-फुदकने, यात्रा पर निकलने में खर्च करते हैं । आमतौर से पेट-प्रजनन तक ही उनकी शारीरिक, मानसिक आवश्यकताएँ रहती हैं । स्वार्थों की खींच-तान में कभी-कभी वे लड़-झगड़ भी बैठते हैं । इसी प्रकार उनका समय पूरा हो जाता है । असमर्थ हो जाने पर उस कचरा शरीर को हिंस्र प्राणी अपना आहार भी बना लेते हैं । यही है साधारण नियति अधिकांश जीवधारियों की ।

मनुष्य की स्थिति कुछ विचित्र है । उसे औचित्य की सीमा में रहना, मर्यादाओं का अनुबन्ध पालना स्वीकार नहीं । चंचलता, उद्विग्नता, आपाधापी, अहमन्यता, दूसरों पर हावी होना जैसे अनावश्यक किन्तु आकर्षक लगने वाले कार्यों में उसकी विशेष रुचि बढ़ी-चढ़ी मात्रा में रहती है । यह अतिवाद ही उसे अमर्यादित एवं अनैतिक स्थिति अपनाने के लिए बाधित करता है । यही वह ललक, लिप्सा, लालसा है जिसे इच्छित मात्रा में पूरा कर सकने के लिए उसका चिंतन उद्विग्न आकांक्षाओं से भरा रहता है । जो चाहा गया है उसका बहुत छोटा अंश ही पुरुषार्थ की सीमा और परिस्थितियों की अनुकूलता को देखते हुए कार्यान्वित हो पाता है । होना तो यह चाहिए कि पूरी करने की सारी विधि-व्यवस्थाएँ ठीक प्रकार से सम्पन्न हो सकें । तृष्णा के भड़क जाने पर व्यक्ति की स्थिति अतृप्त उन्मादी जैसी हो जाती है । मानसिक सन्तुलन खो बैठता है । धर्मोन्माद, युद्धोन्माद के कारण अनेकानेक दुर्घटनाएँ आये दिन घटित होते देखी गयी हैं । ठीक इसी प्रकार लिप्सा, लालसा, वासना, तृष्णा, प्रशंसा की पूर्ति के लिए भी लोग इस कदर बेतहासा भाग-दौड़ करते हैं कि उनका स्वस्थ चिन्तन ही अस्त-व्यस्त हो जाता है । हविश के मारे लोग उन्मादियों की तरह स्वार्थ सिद्धि के लिए उस सीमा तक आगे बढ़ जाते हैं जहाँ अनाचार के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं रहता । ऐसे व्यक्ति अनर्थ ही सोचते और अनर्थ ही करते हैं ।

संसार में साधन इतने सीमित हैं कि उन्हें मिल बाँटकर खाते हुए सभी लोग सामान्य स्तर का गुजारा कर सकते हैं । इस साम्यवादी आचार पद्धति को अपनाकर सभी लोग चैन से रह सकते हैं, चैन से रहने दे सकते हैं । न आपस में प्रतिद्वन्द्विता-प्रतिस्पर्द्धा उभरती है और न ईर्ष्या द्वेष का दौर चलता है । न कुछ आदमियों को बड़े बनने और शेष को गयी-गुजरी स्थिति में रहने के लिए विवश होना होगा । दीवार उठाने के लिए कहीं मिट्टी खोदनी पड़ती है और गड्ढा बनाना पड़ता है । अमीरी की साधन सुविधा बढ़ी-चढ़ी होने का परिणाम दुहरी हानि पहुँचना है । एक यह कि वैभव का सरंजाम साधारणजनों को आकर्षित करता है और उसे पाने के लिए वे भी लालायित होते हैं । पुरुषार्थ, प्रज्ञा, परिस्थिति, कौशल हर आदमी नहीं जुटा पाता । इसलिए इतने बढ़े-चढ़े साधन तो नहीं मिल पाते पर ईर्ष्या. द्वेष की आग सहज ही भड़कने लगती है । जिसे शान्त करने के लिए उसे कुछ उपद्रव करने की, नीचा दिखाने की सूझ सूझती है । इससे उभयपक्षीय आक्रोश उभरता है । इसके अतिरिक्त दूसरी कठिनाई यह है कि जिसे असाधारण सुविधाएँ मिलने लगती हैं उसे अधिक पाने की लिप्सा असाधारण रूप से भड़कती है । जितना वैभव उसे मिल चुका है वह सर्वसाधारण की तुलना में कहीं अधिक होने पर भी यह प्रतीत होता है कि जितना चाहता था उसकी तुलना में कम मिला है । इसे पाने के लिए वह आतुरता से अधिकाधिक पाने के लिए वह क्रिया पद्धति अपनाता है जो समूचे वातावरण को विक्षुब्ध कर देती है ।

इसलिए वैयक्तिक और सामाजिक सुस्थिरता के लिए आवश्यक है कि हर किसी के मन में ऐसा चिन्तन बोया-उगाया जाय जो भौतिक पदार्थों और सुविधाओं की सीमित आकांक्षा करे । सीमित बटोरे और उनका सीमित ही उपयोग करे । यह मध्यवर्ती प्रचलन ही ऐसा है जिससे कामना या चेष्टा बढ़ने न पाये । इसका प्रतिफल यह होगा कि अमीरी घटने से गरीबी भी घटेगी । ज्वार ऊँचा उठता है तो समुद्र में उससे सटा हुआ भाटा नीचे जाता है । जिससे जलाशयों में पानी समतल रहता है । उछाल नहीं आते उनका पानी भी स्वच्छ रहता है और जल जन्तु भी प्रसन्नता भरा जीवन-यापन करते हैं । यही स्थिति समाज की भी होनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए । व्यवस्था भी इसी स्तर की बननी चाहिए कि अमीरी बटोरने का अवसर किसी को न मिले अन्यथा उनके सम्पर्क में आने वाले अपने को निर्धन अनुभव करेंगे और उसका कारण अमीरी को समझते हुए किसी न किसी प्रकार आक्रोश व्यक्त करेंगे । यह आक्रोश कितने स्थानों से कितने प्रकारों से फूटेगा, यह नहीं कहा जा सकता है । इसलिए दर्शन, धर्म, तर्क, तथ्य, उदाहरण, प्रमाण एकत्रित करके लोकचिन्तन को इस प्रकार विनिर्मित किया जाना चाहिए कि किसी की महत्वाकांक्षा न भड़के । यह एक विशेष प्रकार का मानसिक ज्वर है । जो आक्रान्त को तो उद्वेलित करता ही है साथ ही अपनी छूत से उस सम्पर्क परिकर में रहने वालों को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहता ।

वित्तेषणा की तरह ही दूसरी महत्वाकांक्षा है लोकेषणा । लोग अपेक्षाकृत अधिक सम्मान पाना चाहते हैं, प्रतिष्ठा के अधिकाधिक भूखे रहते हैं । यह सद्गुणों और सेवा भावनाओं के आधार पर अपनी गरिमा का परिचय देता है और बदले में कृतज्ञता के रूप में सद्भाव पाता है तो वह उचित है किन्तु यदि अपना अमीरी, चतुरता या आतंकवादिता, सुन्दरता, ठाठ-बाट आदि दिखाकर ऐसी चेष्टा की गई है कि इस आडम्बर में दूसरों की आँखें चौंधिया जाएँ और वे तिल का ताड़ समझने लगें तो इस प्रयास के विभिन्न रचे गये समस्त जाल-जंजाल जादूगरी या बाजीगरी स्तर के होंगे । उनकी तात्कालिक प्रतिक्रिया कुछ भी क्यों न हो पर वास्तविकता जल्दी ही प्रकट हो जाती है कि वाहवाही लूटने को यह बानग बनाया गया है । इससे क्षुद्रता प्रकट होती है और अवमूल्यन होता है । प्रसिद्धि लूटने के लिए जो भी आडम्बर रचे जाते हैं, रचनाकार को जादूगर, बाजीगर, विदूषक स्तर का ठहराया जाता है । क्योंकि ऐसे आडम्बर बड़े लोग रचते रहते हैं । शरीर का, चेहरे का सौन्दर्य बढ़ा-चढ़ा दिखाने के लिए कई महिलाएँ अनेक शृंगार प्रसाधनों से अपने को अधिक आकर्षक दिखाने का प्रयत्न करती हैं । इससे कोई अजनबी भर चौंक सकता है । विचारशील आदमी को वस्तुस्थिति समझने में देर नहीं लगती । कलई जल्दी ही धुँधली पड़ जाती है । ढोल की पोल हर किसी को समझ में आती है । बड़प्पन के लिए उछलकूद करने वाले बेढंगे मेढकों की चाल से हर कोई परिचित हो जाते हैं । पदवी, प्रतिष्ठा, सम्मान पाने के लिए कई व्यक्ति संस्थाओं के पदाधिकारी बनने के निमित्त लालायित फिरते हैं । इसके लिए जोड़-तोड़ भिड़ाते रहते हैं । किन्हीं को सफलता मिल जाती है कई असफल रहते हैं किन्तु इतना हर किसी को विदित हो जाता है कि यह उथला आदमी है । गम्भीरता के साथ विनयशीलता जुड़ी रहनी चाहिए । जो नम्र, ऋजु, विनयशील, सुसंस्कृत, शालीन नहीं है उसी का अहंकार नामवरी कमाने के लिए शेखीखोरी करता है । कुछ रिश्वत, उपहार देकर प्रलोभनों से बहकाकर अपना प्रयोजन पूरा कराता है । ऐसे लोग आमतौर से उपहासास्पद बनते हैं । उनकी उद्धतता पग-पग पर पकड़ में आती रहती है और कभी सामने कभी पीठ पीछे हँसी उड़ती रहती है । इससे मुँहसाये कुछ सुनने-सुनाने पर वस्तुतः उनकी यह मनोवृत्ति दर्पण की तरह नंगी हो जाती है । तब शान्ति के समय वह सोचता है कि यदि विनयशीलता, नम्रता, ऋजुता, शालीनता अपनायी गयी होती तो सम्मान भी अधिक मिलता और वह चिरस्थायी भी रहता । जिस प्रकार लूटपाट से उड़ाई हुई वस्तु को छिपकर ही उपयोग करना पड़ता है । सबके सामने उपयोग करने में बात खुल जाने और पकड़े जाने का भय रहता है । इसी प्रकार प्रशंसा के लिए लालायित व्यक्ति द्वारा रचे गये षड्यन्त्र, कुचक्र हाथों हाथ प्रकट होते जाते हैं और जो भी वस्तु-स्थिति समझ पाते हैं उन सभी के मन में उनके प्रति तिरस्कार के भाव बढ़ते हैं ।

शास्त्रकारों ने वित्तेषणा, लोकेषणा, पुत्रेषणा को त्रिविध अनैतिक आवेश कहा है । वे ज्वर पीड़ित की तरह आवेश, उन्माद उत्पन्न करते हैं । इन व्यथाओं से ग्रसित व्यक्ति अपने चिन्तन, चरित्र, व्यवहार और क्रिया-कलाप को सज्जनोचित नहीं कर पाता, फलतः न उसे सन्तोष मिलता है और न अभीष्ट उपलब्धियों का सहकार प्राप्त कर लेने का श्रेय सौभाग्य ही । वह अनेक गुना घाटे में रहता है । चिन्तन को कुचक्र रचकर दूषित करता है । मिथ्याचार की रचना कर चरित्र बिगाड़ता है और उल्लू सीधा करने की फिराक में रहकर व्यवहार को भी भौंडा बना लेता है ।

तीसरी ऐषणा है पुत्रेषणा । जिसे बोलचाल की भाषा में कामान्धता या परिवार के प्रति कर्तव्य की सीमा में न रहकर उन्हीं के लिए विलास वैभव जुटाते रहने और मरते खपते रहने की लालसा कहते हैं । समय और सामर्थ्य हर मनुष्य के पास सीमित है । यदि कोई परिवार में अत्यधिक लिप्त हो जाता है । उन्हीं के लिए अपनी सारी कमाई लगाता है । समय को उसी में खपाता है । चिन्तन पर वह थोड़े लोग ही छाये रहते हैं तो समझना चाहिए कि जीवन का महत्त्वपूर्ण अंश इसी जंजाल में नियोजित हो गया । औचित्य की सीमा में रहकर कर्तव्यपालन मात्र से भी काम नहीं चलता । ऐसी दशा में आत्मोत्कर्ष और लोकमंगल के लिए जिन उत्तरदायित्वों को हाथ में लेना चाहिए था, उस सन्दर्भ में कुछ बन ही नहीं पड़ता । सादा जीवन उच्च विचार का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । उच्च विचारों को हृदयंगम और कार्यान्वित कर सकना मात्र उन्हीं के लिए सम्भव है जो अपने निजी जीवन में सादगी का, सन्तोष का, संयम का, सद्भावना का समुचित समावेश कर पाते हैं । जिनके लिए अपने ऊपर इतना नियन्त्रण करना कठिन है जो लिप्सा, तृष्णा, वासना, अहंता के उद्धत प्रदर्शन के अनावश्यक संघर्ष में ही अपने को खपा देते हैं और पीछे उसका दुःखद दुष्परिणाम भोगते रहते हैं ।

तृप्ति, तुष्टि और शान्ति जीवन की तीन बड़ी उपलब्धियाँ मानी गयी हैं । तृप्ति लिप्सा से होती है । लिप्सा का तात्पर्य है शरीर की आवश्यकताएँ, इन्द्रियजन्य वासनाएँ । उनका समाधान औसत नागरिक के स्तर पर अपना काम चलाने वाले विवेक को अपनाने से होता है अन्यथा चटोरेपन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के कुचक्र में पड़कर लोभ और भोग की रटन्त हर घड़ी लगी रहती है । भले ही उन भोगों का दूरदर्शितापूर्ण उपयोग कर सकने की क्षमता अपने में नहीं ही हो ।

तुष्टि सीमित परिवार को सद्गुणी, शिष्ट एवं सुसंस्कारी बनाने से होती है । इसके लिए अपने आपको अनुकरणीय उदाहरण बनाना पड़ता है । मर्यादाओं से बाहर का पक्षपात करने से, अनावश्यक लाड़ लड़ाने से, उत्तराधिकार में विपुल सम्पत्ति छोड़ मरने की आकांक्षा अतृप्ति उत्पन्न करती है । इसलिए विश्व परिवार का दृष्टिकोण विकसित करते हुए समूचे समाज को कुटुम्ब मानकर चलना चाहिए, जो छोटा-सा अपना परिवार है उसके प्रत्येक सदस्य को स्वावलम्बी, सुसंस्कारी भर बनाने की बात सोचना चाहिए । जिनसे इतना बन पड़ता है उन्हें तृप्ति की प्रसन्नता भी अनुभव होती है ।

शान्ति उन्हें मिलती है जिन्हें बड़प्पन बटोरने, सस्ते वाहवाही कमाने, बड़े पद पर आसीन होने या लोगों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करके अपनी विशिष्टता की छाप छोड़ने की अभिलाषा शान्त हो जाती है । नम्रता, विनयशीलता, सज्जनता का स्वभाव बना लेने में ही शान्ति का आभास होता है । अपने दृष्टिकोण, स्वभाव और कार्यक्रम उच्चस्तरीय बना लेने पर कोई भी व्यक्ति प्रचुर परिणाम में तृप्ति, तुष्टि और शान्ति का अजस्र आनन्द लाभ करता रह सकता है ।

हमारा अन्तःकरण पवित्र बने

संसार में समय-समय पर जो भी समाज सुधारक और महापुरुष हुये हैं उन सबने मानव-समाज में सुख-शान्ति तथा सुव्यवस्था बनाये रखने के लिये इस बात पर अधिक बल दिया है कि लोगों के अन्तःकरण निर्मल एवं पवित्र बनें । महात्मा बुद्ध, महावीर, नानक, कबीर, रामतीर्थ, विवेकानन्द, सुकरात, ईसामसीह प्रभृति महापुरुषों ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये व्यापक जन-क्रान्तियाँ कीं । सामाजिक-उत्थान का आधार भी यही है कि अधिकाधिक लोग पवित्र अन्तःकरण वाले हों ।

मनुष्य के विचार क्षेत्र में एक शक्ति काम करती है जो सदैव उसके अच्छे-बुरे कर्मों की विवेचना किया करती है । जीवात्मा के भले-बुरे कर्मों की साक्षी देने वाली प्रवृत्ति का नाम ही अन्तःकरण है । दूसरे शब्दों में इसे विवेक बुद्धि कह सकते हैं । परमात्मा की मंगलमय वाणी, उनका सान्निध्य सुख प्राप्त करने का यही पुनीत स्थल है । अपने-आप में ही इतनी महान सत्ता विद्यमान होते हुए भी लोग दुःखी एवं व्याधिग्रस्त क्यों हैं, यह विचारणीय बात है ।

मनुष्य के अन्तःकरण में आसुरी और दैवी दोनों शक्तियाँ कार्य करती हैं । दुष्प्रवृत्तियाँ आसुरी प्रकृति के लोगों में होती हैं और सद्प्रवृत्तियाँ दिव्य स्वभाव के लोगों में पाई जाती हैं। विचारवान, दूरदर्शी एवं आदर्शवादी लोगों का जब किसी राष्ट्र में बाहुल्य होता है तो वहाँ सुख-समृद्धि की परिस्थितियाँ आते देर नहीं लगती, किन्तु यदि दुष्ट-दुराचारी अन्तःकरण के नर-पिशाचों की ही अधिकता बनी रही तो मानव-समाज नारकीय यंत्रणाओं में ही फँसा रहेगा । सदाचारी व्यक्ति सुखद परिस्थितियों का निर्माण करते हैं पर अपवित्र अन्तःकरण के व्यक्ति औरों को पीड़ा ही दे सकते हैं ।

युग परिवर्तन के लिये ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो अपने चरित्र और व्यक्तित्व द्वारा जन-साधारण का मार्ग-दर्शन करते हुये उन्हें सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे सकें । उपदेश देकर अथवा गीता, रामायण, वेद, शास्त्र आदि कोई विशिष्ट धार्मिक पुस्तक के द्वारा भी किसी को थोड़ी देर तक तो उत्साह दिलाया जा सकता है किन्तु दुष्प्रवृत्तियों के जाग्रत होते ही वह उत्साह ठण्डा पड़ जाता है । लोग फिर पहले जैसा जीवनक्रम अपना लेते हैं ।

कहने का असर उतना व्यापक एवं प्रभावशील नहीं होता जितना कर दिखाने का । चोर, बदमाश, उठाईगीरों को किसी स्कूल कालेज में चोरी, बदमाशी का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता । दुराचार अच्छी बात है यह किसी पुस्तक में लिखा नहीं मिलेगा । फिर भी हजारों की संख्या में लोग इन कुत्सित कर्मों को करते हैं । इसका कारण बुरे लोगों के बुरे चरित्र को देखकर प्राप्त हुई बुरी निष्ठा है, जिससे प्रभावित होकर दूसरे लोग भी बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं ।

यही बात सदाचार के क्षेत्र में भी लागू होती है । लोग सदाचार और सद्प्रवृत्तियों का भी वैसे ही निष्ठापूर्वक अनुकरण करते हैं जैसे दुष्ट-दुराचारी दुष्प्रवृत्तियों का । पिछले दिनों जब भारत में चीनी आक्रमण हुआ तो राष्ट्र रक्षार्थ अपना सब कुछ न्योछावर कर देने की बाढ़-सी आ गई थी । बच्चे, अपंग, अपाहिज तथा भिखारी भी इस काम में पीछे नहीं रहे । उत्कृष्ट ईमानदारी के समाचार, अपने को खतरे में डालकर औरों को बचाने के दृष्टान्त आये दिन समाचार-पत्रों में छपा करते हैं । इनसे भी लोगों को वैसी ही प्रेरणा मिलती है जैसे बुराइयों से बुरे कर्मों को प्रोत्साहन मिलता है ।

सुख सभी को अभीष्ट है पर यह कम ही लोग जानते हैं कि सच्चा सुख कहाँ है । यह सुख अन्यत्र नहीं हमारी भावनाओं में ही सन्निहित है । पर हम उसे ढूँढ़े भी तो । सुख प्राप्ति के लिये अन्तःकरण की पवित्रता आवश्यक है । उसकी प्राप्ति एवं अभिवृद्धि के लिये अपने भीतर के अवगुण देखना ढूँढ़ना और उनमें आवश्यक हेर-फेर करना होता है । जब कोई व्यक्ति गम्भीरतापूर्वक आत्म-निरीक्षण करता है तो उसे अपने दोष दुर्गुण सहज ही दिखाई देने लगते हैं । विचार-शील मनुष्य ऐसे प्रयत्न करता है कि वह बुराइयों से बचा रहे क्योंकि वे ही उसके लक्ष्य सिद्धि के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती है ।

असत्य के स्थान पर सत्य को, द्वेष भाव के स्थान आत्मीयता को, आलस्य व प्रमाद के स्थान पर कर्म-शीलता व सरलता को, भोग के स्थान पर त्याग-भावना की प्रतिष्ठापना कर देने पर मनुष्य कुविचारों और कुकर्मों से बच सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्त:करण की निर्मलता में विक्षेप पैदा करने वाली आसुरी प्रवृत्तियाँ ही मनुष्य को कुकर्मों की ओर प्रेरित करती रहती हैं । यदि इनसे बचने का प्रयत्न किया जाय तो मनुष्य सहज ही में अपना जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकता है ।

सुख प्राप्ति के उपाय बताते हुये स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है "दयाशील अन्त:करण प्रत्यक्ष स्वर्ग है ।" दया मनुष्य का वह सद्गुण है जो अन्त:करण की स्वाभाविक निर्मलता बनाये रखता है । दयावान् व्यक्ति सब में अपनी ही आत्मा निहारता, स्वार्थ के तुच्छ आवरण को तोड़कर समष्टि में फूट पड़ता है । तुच्छ न रहकर महानता की ओर अग्रसर होता है । सुख का अनन्त स्रोत इसी में है कि मनुष्य अपने आपको विश्वात्मा में घुला दे । संकीर्ण मनोवृत्तियाँ पतन और दु:ख का कारण होती हैं । दयावान् अन्त:करण में इन्हीं दिव्य भावनाओं के बाहुल्य से मनुष्य को स्वर्ग जैसी रसानुभूति होती है ।

परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान पाने के लिये ऋषियों ने अन्त:करण की शुद्धि पर विशेष बल दिया है । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने निष्काम कर्मयोग की महत्ता प्रतिपादित की है । ताकि मनुष्य विषयासक्ति से बचा रहकर अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सतत् प्रयत्नशील बना रहे । अनुपयुक्त कामनाओं के बाहुल्य से आन्तरिक मलिनता का उदय होता है । ऐसे तमसाछन्न अन्त:करण को इतना समय कहाँ मिलता है कि वह महाविराट के साथ सान्निध्य और उससे प्राप्त होने वाले असीम दु:ख की कल्पना कर सके ! सन्तकवि तुलसीदास की वाणी में अवतरित हुये भगवान राम ने स्वयं कहा है:—

निर्मल जन जो सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

मुझे वही प्राप्त कर सकता है जिसका अन्त:करण निर्मल हो । छल और कपट परमात्मा को प्रिय नहीं फिर इनके रहते उनकी प्राप्ति कैसे सम्भव हो सकती है ।

मैले शीशे में सूर्य की किरणों का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता । उसी प्रकार जिनका अन्त:करण मलिन और अपवित्र है उनके हृदय में ईश्वरीय प्रकाश का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता । इसलिये उनकी प्राप्ति के लिये अपने अन्त:करण को पवित्र बनाइये । आपको औरों के हित साधन में भी प्रवृत्त होना है सो विशाल अन्त:करण धारण कीजिये । जीवन लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उसे स्वच्छ और निर्मल बनाइये । तभी मानव-जीवन की सार्थकता है ।

अन्त:करण की निर्मलता मनुष्य की बाह्य गतिविधियों में सहिष्णु भाव, मुखाकृति में सौम्यता और व्यवहार में उदारमना होने से परिलक्षित होती है । जिनका अन्त:करण पवित्र और विशाल होता है उन्हें कभी मित्रों का अभाव न रहेगा । आप दूसरों से यदि सम्मान और सहयोग पाना चाहते हैं तो इसका एक ही उपाय है, अपना अन्त:करण छलरहित बनाइये । उज्ज्वल व्यक्तित्व की यही परख है कि व्यक्ति की अन्तरात्मा कितनी पवित्र है ।

धरती में देवत्व का विकास और दनुजता का विनाश हो इसके लिये पवित्र अन्तकरण के व्यक्तियों की अधिकता होना आवश्यक है । देवत्व के विकास का प्रथम सोपान मानव का निर्मल अन्त:करण ही माना गया है । इसके बिना अणु से विभु, लघु से महान बनने की अभिलाषा अधूरी ही बनी रहेगी । अपवित्र अन्त:करण बना रहा तो दिव्य दृष्टि का उदय होना असम्भव है । आन्तरिक निर्मलता एवं पवित्रता में वह शक्ति है । जो अन्य साधनों के अभाव में भी जीवन लक्ष्य की प्राप्ति करा सके ।

अन्त:करण को अशुद्ध वासनाओं से बचाइये । उसकी पवित्रता पर किसी भय या प्रलोभन का कुठाराघात न होने दीजिये । पापी अन्त:करण की यन्त्रणा ही वह नरक है जो जीवित व्यक्ति को प्रतिक्षण पश्चाताप की आग में जलाती रहती है । ऐसा व्यक्ति न तो स्वयं चैन पाता है न दूसरों को ही शांतिपूर्वक रहने देता है । अशांति का कारण प्रतारणापूर्ण पापी अन्त:करण ही हुआ करता है । यदि उसे कुत्सित प्रवचनों से बचाया जा सके तो सर्वत्र ही मंगलदायक परिस्थितियाँ दिखायी देने लगेंगी ।

मानस तीर्थों का वर्णन करते हुए महर्षि अगस्त्य ने पवित्र अन्त:करण को सब तीर्थों का राजा कहा:—

सत्य तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रिय निग्रह: ।
सर्व भूत दया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च ॥
दान तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते ।
ब्रह्मचर्य परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥
ज्ञानं तीर्थं, धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनस: परा ॥

"सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियों पर नियंत्रण करना भी तीर्थ है । सब प्राणियों पर दयाभाव, जीवन की सरलता ये भी तीर्थ हैं । दान तीर्थ है, मन का संयम तीर्थ है । संतोष और ब्रह्मचर्य का पालन ये उत्तम तीर्थ हैं । प्रिय वचन बोलना भी तीर्थ है । ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है, तप को भी तीर्थ ही माना गया है किन्तु अन्त:करण की शुद्धि तो इन सब का तीर्थराज है ।"

इसमें संदेह नहीं कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख आधार आन्तरिक निर्मलता है जिससे व्यक्ति में अच्छे कर्मों की निष्ठा जाग्रत होती है । सत्कर्मों से दूसरे लोगों में भी सद्भावनाएँ जाग्रत होती हैं । यदि आप दूसरों से सद्कामनाओं की, निश्छल-आत्मीयता की अपेक्षा रखते हैं तो आपको भी दूसरों के प्रति अपना अन्त:करण निर्मल और पवित्र बनाना पड़ेगा ।

दूसरे लोग कदाचित् आपके साथ ईर्ष्या द्वेष रखते हों, किसी कारण आपके साथ उनका मनोमालिन्य चल रहा हो तो भी आप अपनी आन्तरिक निर्मलता बनाये रखिये । उनके प्रति शिष्ट एवं सदाचार का ही प्रदर्शन कीजिये । इससे आप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी सरलता बनाये रख सकेंगे । इसी आन्तरिक सदाचार की रक्षा की पुष्टि करते हुये तपस्वी वाल्मीकि ने लिखा है:-

न परः पापमादत्ते परेषां पाप कर्मणाम् ।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्ताश्चारित्र-भूषणाः ॥

"श्रेष्ठ पुरुष पापाचारियों के पाप नहीं ग्रहण करते। उन्हें अपराधी मानकर उनसे बदला भी नहीं लेते । इस उत्तम सदाचार की रक्षा करना धर्म है क्योंकि सदाचार ही सत्पुरुषों का भूषण है ।"

आप यदि ईर्ष्या-द्वेष की, आलस्य और प्रमाद, वासना और अहंकार की तुच्छ आँधी में भटक रहे हैं तो एक क्षण रुक कर शान्तिपूर्वक विचार कीजिये । अपने विवेक को जाग्रत कीजिये । विश्वास कीजिये । यदि दूसरों को पीड़ित करके आप कुछ सफलता पा भी लें तो इससे आपका भला होना सम्भव नहीं । इसके बदले तो आपको पश्चाताप की आन्तरिक यन्त्रणाएँ ही मिलेंगी । इनसे तो लोक-परलोक सभी कुछ बिगड़ने वाला है ।

उचित यही है कि अन्तःकरण की दैवी शक्ति को जाग्रत कीजिये और देवत्व के विकास में निष्ठापूर्वक लग जाइये । हजारों-करोड़ों जन्मों के पश्चात् मिले मनुष्य शरीर को पाप परिताप की भट्टी में झोंक देना बुद्धिमानी नहीं । इससे तो आप जीवन लक्ष्य से दूर ही होते चले जायेंगे । आज आपको जो सुअवसर मिला है उसका सदुपयोग कीजिये । अमूल्य मानव जीवन की सार्थकता इसी में है कि हम अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति में प्रयत्नशील हों । इसके लिये सर्वप्रथम हमें अपने अन्तःकरण को ही निर्मल और पवित्र बनाना पड़ेगा ।

सामर्थ्य-सम्पदा से भरापूरा मानवी अन्तराल

अदृश्य सूक्ष्म शक्तियों का ज्ञान न होने से मनुष्य उनका लाभ नहीं उठा पाता । शरीर बल, बुद्धि बल तथा अन्यान्य भौतिक सम्पदाएँ जो प्रत्यक्ष दिखायी पड़ती हैं, प्रायः उन्हें ही करतलगत करने का प्रयास किया जाता है । शरीर और उससे जुड़ी इन्द्रियों की बनावट ही ऐसी है कि मनुष्य दृश्य अथवा प्रत्यक्ष लाभ देने वाले घटकों को ही अधिक महत्त्व देता है । फलतः उनसे सीमित ही लाभ उठा पाता है । इतने पर भी प्रकृति एवं चेतना से समन्वित सर्वांगपूर्ण काय संरचना में सन्निहित सूक्ष्म शक्ति स्रोतों का महत्त्व कम नहीं हो पाता । उनकी गरिमा एवं सामर्थ्य यथावत् है ।

शरीर एवं बुद्धि की तुलना में मन अधिक सूक्ष्म, विलक्षण एवं सामर्थ्यवान् है । जीवन पर प्रमुख रूप से यही छाया रहता है । इसी कारण मनःसंस्थान को मनुष्य के व्यक्तित्व का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक माना गया है । पर उसकी क्षमता का विकास बिरले कर पाते तथा बिरले ही उससे लाभ उठा पाते हैं । व्यक्तित्व के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं समर्थ घटक उच्चचेतन मन के उपेक्षित पड़े रहने से ही अधिकांश व्यक्तियों का जीवन व्यर्थ भटकाव में व्यतीत होता है । शरीर एवं बुद्धि से समर्थ होते हुए भी वे अपने जीवन हो सही दिशा एवं प्रेरणा देने में प्रायः असमर्थ सिद्ध होते हैं ।

भारतीय ऋषियों की पहुँच प्रकृति एवं चेतना की गहन परतों तक थी । उन्होंने भौतिक जगत एवं उससे जुड़े उपादानों को उतना ही महत्त्व दिया जितना कि शरीर व्यापार को गतिशील रखने के लिए आवश्यक था । शरीर और बुद्धि का मन न केवल संचालक है, वरन् मनुष्य के उत्थान-पतन का कारण भी है, यह वे भली-भाँति जानते थे । तभी उनका यह उद्घोष था—"जीव के बन्धन और मोक्ष के विधान में मन ही प्रधान कारण है ।" यदि उसका सुधार, सम्भाल एवं विकास कर लिया जाय तथा उसकी शक्ति को जीवन लक्ष्य की दिशा में नियोजित कर लिया जाय तो मनुष्य के लिए कुछ भी असम्भव न रह जाय । यही कारण था कि उनकी अधिकांश चेष्टाएँ- जप, तप की प्रक्रियाएँ मानसिक परिष्कार, शोधन, अभिवर्द्धन एवं विकास के लिए चला करती थीं । अतिमानवी शक्तियों का प्राकट्य भी उस युग में इसी कारण सम्भव हो सका था ।

मनःशास्त्री भी अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि व्यक्तित्व की उत्कृष्टता-निकृष्टता का केन्द्रबिन्दु मानसिक चेतना के गहन अन्तराल में सन्निहित है । मनःसंस्थान की इस सबसे गहरी अन्तिम परत को उन्होंने 'सुपरचेतन' कहा है । सुपर इसलिए कि उसकी मूल प्रवृत्ति मात्र उत्कृष्टता से ही भरपूर है । उसे यदि अपने वास्तविक रूप में रहने दिया जाय, अवांछनीयताओं के घेरे में जकड़ा न जाय तो वहाँ से अनायास ही ऊँचे उठने, आगे बढ़ने की ऐसी प्रेरणाएँ मिलेंगी जिन्हें आदर्शवादी या उच्चस्तरीय ही देखा जा सके । प्रकारान्तर से 'सुपर चेतन' को ईश्वर के समतुल्य ही माना जा सकता है । वेदान्त में जिसे परिष्कृत अन्तःकरण माना जाता है उसी को विज्ञान की भाषा में 'सुपरचेतन' कहते हैं ।

मनोविज्ञान के अनुसार मानव मन के तीन स्तर होते हैं जिन्हें क्रमशः अचेतन मन-अनकान्शासमाइन्ड, अवचेतन मन-सबकान्शास माइण्ड तथा चैतन्य मन-कान्शास माइण्ड के नाम से सम्बोधित किया जाता है । इससे आगे उच्चस्तरीय विकसित परत को अतिचेतन सुपर कान्शास या सुपर माइन्ड कहा जाता है । अचेतन से अवचेतन और अवचेतन से चेतन मन को प्रेरणा और प्रकाश मिलता है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि कारण से सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म से स्थूल शरीर प्रेरित होता तथा प्राण ऊर्जा प्राप्त करता है ।

महर्षि अरविंद के अनुसार सुपर चेतन उच्चतम कोटि की आध्यात्मिक चेतना है । उनका कहना है कि उच्चतर मन, प्रकाशित मन, संबुद्ध मन और ओवर माइण्ड से भी ऊपर सुपर माइण्ड का स्तर है । यह मन का ऐसा उच्चतम सोपान है जिसका उपयोग अभी तक विरले लोग ही कर सके हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्धि के धरातल से ऊपर उठकर मन के उच्चतम सोपान अतिमन पर पहुँचकर ही मनुष्य सर्वज्ञ बन सकता है ।

वस्तुत: सूक्ष्मातिसूक्ष्म कहे जाने वाले मन का अस्तित्व अब मात्र कोरी कल्पना नहीं रह गया है । राकफेलर यूनिवर्सिटी, न्यूयार्क के प्रख्यात न्यूरोसाइंटिस्ट जोनाथन विन्सन ने कई वर्षों के लगातार अथक प्रयास और श्रमसाध्य अनुसंधान करने के पश्चात् मानव मस्तिष्क में मन के निवास स्थान को खोज निकालने में सफलता पाई है । उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ब्रेन एण्ड साइक' में लिखा है कि मन का निवास स्थान 'लिम्बिक सिस्टम' के भीतर होता है । यह तंत्र ही मन का प्रधान कार्यालय है, जो यह निर्णय करता है कि किन स्मृतियों, घटनाओं, आँकड़ों तथा किन बातों को सुरक्षित रखना है और किन्हें विस्मृति के गर्त में धकेलना है । उनके अनुसार अचेतन की परत मन के हृदय केन्द्र में स्थित होती है । यह मानसिक अनुभवों को अपने अन्दर संकलित-संग्रहीत करता रहता है और अपनी अभिव्यक्ति योजनाबद्ध तरीके से समयानुसार सांकेतिक भाषा में प्रकट करता रहता है । विन्सन का कहना है कि अचेतन से भी असंख्य गुनी उच्चस्तरीय सम्भावनाओं से भरा-पूरा सुपर-चेतन है । उसको नये सिरे से समझा-खोजा और उसके अभ्युदय का अभिनव प्रयास किया जाना चाहिए ।

मनोविज्ञानी, नीतिशास्त्री, तत्वविज्ञानी, समाज-शास्त्री आदि सभी इस मिले-जुले निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि पतन पराभव से छूटने और वरिष्ठता, उत्कृष्टता उपलब्ध करने के लिए अतिमन की सुपर-चेतन की उच्चस्तरीय परतें खोजी-कुरेदी जानी चाहिए । पैरासाइकोलाजी, सुपर साइकोलाजी, मेटाफिजिक्स आदि माध्यमों से पिछले दिनों अचेतन की महत्ता बखानी जाती रही है और जगाने, उभारने के लिए तरह-तरह के प्रयोग-परीक्षणों की चर्चा होती रही है । दूर दर्शन, दूर श्रवण, विचार सम्प्रेषण, प्राण प्रत्यावर्तन, भविष्य ज्ञान जैसे कितने ही कला-कौशल इस सन्दर्भ में खोजे और परखे गये हैं । इस दिशा में प्रयास चालू रखते हुए भी मूर्धन्य स्तर के मनीषी इस बात पर जोर दे रहे हैं कि चेतना के उस उच्चतर परत की कुरेदबीन की जानी चाहिए, जिस क्षेत्र की उपलब्धियाँ व्यक्ति और समाज में उच्चस्तरीय परम्पराओं का समावेश और नये युग का नया सूत्रपात कर सकने में समर्थ हो सकती है ।

प्रख्यात मन:शास्त्री कॉलिन विल्सन का कहना है कि मन की परतों को समझने में कुछ गलती हुई है । दृश्य पक्ष चेतन से क्रिया-कलापों के रूप में सामने आता है, जो बहिर्मुखी इन्द्रियों का प्राय: पक्षधर रहता है । इन्द्रियों की रुझान उपभोग में होती है । वह चेतन मन को भी अपने अनुरूप खींचती है । फ्रायड ने यह देखकर ही प्रतिपादित किया था कि मनुष्य अन्य पशुओं की तरह मूल प्रवृत्तियों का गुलाम तथा इन्द्रियों का दास है । पर विल्सन का मत है कि अदृश्य पक्ष अचेतन तथा सुपर चेतन की चमत्कारी सामर्थ्य से अपरिचित होने तथा उपयोग में न आने के कारण ही ऐसा सोचा जाता है । बोध हो सके तो मनुष्य अपनी हर विकृत इच्छा आकांक्षा तथा उनसे संचालित होने वाले अवांछनीय क्रिया-कलापों पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है ।

प्रचलित फ्रायडवादी मनोविज्ञान से अलग सुपर साइकॉलाजी का प्रतिपादन करने वालों में अमरीकी मनोवैज्ञानिक अब्राहम मैस्लो का नाम प्रमुख है । उनका मत है कि मनुष्य के अन्तराल में सुपर चेतन केन्द्र का अस्तित्व विद्यमान है जो प्रसुप्त पड़ा है । इस प्रसुप्ति का कारण है उस केन्द्र से उठने वाली दिव्य प्रेरणाओं की उपेक्षा । इस केन्द्र से दिव्य प्रेरणाएँ कभी न कभी उभरती हैं, पर अचेतन का अभ्यस्त स्वभाव उन्हें दबा देता तथा व्यवहार में आने से रोक देता है । यदि उन्हें सुना और तदनुरूप क्रिया-कलाप अपनाया जा सके तो मनुष्य अपनी सामर्थ्य को कई गुना बढ़ा सकता है । मैस्लो से ही मिलता-जुलता प्रतिपादन प्रसिद्ध विद्वान मित्या कगाजोव का भी है । उनके अनुसार श्रेष्ठता की भावना का उद्भव ही मानवी विकास का सही अर्थों में कारण बनता है । ऐसी सम्भावनाएँ सुपर चेतन से समय-समय पर निस्सृत होती रहती हैं जिसे अधिकांश व्यक्ति प्राय: अनसुनी कर देते हैं । फलत: व्यक्तित्व विकास की सम्भावनाएँ धूमिल पड़ी रहती हैं ।

'साइकॉलाजी आफ इन्ट्यूशन' नामक अपनी पुस्तक में एमिली मारकाल्ट ने कहा है कि उच्चचेतन मन शरीर एवं व्यक्तित्व का अति सूक्ष्म एवं उच्चस्तरीय भाग है । ज्ञानेन्द्रियों और तर्क बुद्धि से जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं उससे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण समाधान सुपर चेतन मन की सहायता से मिल सकता है । इस तंत्र को उजागर कर लेने का अर्थ है एक ऐसे देवता का साथ पा लेना जो उपयोगी सलाह ही नहीं देता वरन् महत्त्वपूर्ण सहायता भी करता है ।

प्रख्यात मनोविश्लेषक जुंग कहते हैं कि मात्र अचेतन ही सब कुछ नहीं है, वरन् इससे भी आगे की परत 'उच्चचेतन' का भी अलग अस्तित्व है । आदर्शवादी प्रेरणाएँ एवं उमंगें वहीं से उठती हैं । अचेतन तो अभ्यस्त आदतों का संग्रह-समुच्चय भर है । वे बुद्धि एवं साहसिकता से भी अधिक अग्रणी संकल्प शक्ति का गुणगान करते हैं और कहते हैं कि व्यक्तित्व को विनिर्मित करने में मनुष्य के विश्वासों का ही प्रमुख योगदान रहता है ।

एडलर के मतानुसार अचेतन की सुदृढ़ता देखते हुए उसके सुधार सन्दर्भ में किसी को निराश नहीं होना चाहिए । स्वसंचित संकल्प, आत्मविश्वास और आदर्शों के प्रति आस्थावान बनने से उन मूल प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन कर सकना सम्भव है जिन्हें चिरसंचित, दुराग्रही एवं अपरिवर्तनशील माना जाता है ।"

मन:शास्त्री विलियम मैक्डूगल कहते हैं कि "अचेतन से भी ऊँची परत 'अतिचेतन' या 'उच्च चेतन' की अभी जानकारी भर मिली है । अगले दिनों उसे अच्छी तरह जाना समझा जा सकेगा और यह कहा जायगा कि सामान्य जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रम का सूत्र संचालन करने वाले अचेतन की कुंजी इस 'अतिचेतन' के पास ही है । अगले दिनों जब उच्चचेतन का स्वरूप और उपयोग ठीक प्रकार समझा जा सकेगा तब व्यक्तित्वों में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के सम्बन्ध में वैसी कठिनाई न रहेगी जैसी आज है ।"

मानवी अन्तराल में सन्निहित उच्चचेतना की महत्ता एवं उसकी महान सम्भावनाओं का प्रतिपादन विभिन्न मनीषियों ने अपने-अपने ढंग से किया है । जर्मन दार्शनिक फ्रेडरिक नीत्शे ने घोषणा की थी कि "स्वयं से परे हटकर स्वयं को देखना ही वस्तुतः सही ज्ञान की प्राप्ति है ।" पर क्या यह संभव है ? क्या हम स्वयं को अपने शरीर चिन्तन की परिधि से निकाल बाहर कर सकते हैं ? जो शान्त चुपचाप खड़ा हो हमारी हर गतिविधि, हर परिस्थिति का अवलोकन करता रहे ? वस्तुतः यह क्षमता हमारे भीतर है- जिसे हम 'सुपरमाइन्ड' कहते हैं जो एक लाइट हाउस की तरह दूर-दूर तक अपनी घुमावदार किरणें छोड़ता रहता है, पर स्वयं शान्त बिना विचलित हुए खड़ा रहता है ।

दार्शनिक हेनरी वर्सो का कथन है कि "समय की जटिलताओं को न सुविधा सम्वर्द्धन से सुलझाया जाय और न दाँव-पेंच से । प्रवीण बुद्धि कौशल ही पतन-पराभव का निराकरण कर सकेगा । प्रस्तुत जटिलताओं और विभीषिकाओं का समाधान पाने के लिए उस 'महाप्रज्ञा' को जगाने की आवश्यकता है जो अन्तःकरण की गहराई में बसती है और ईश्वरीय प्रेरणाओं से मनुष्य को अवगत कराती है ।

'मैन द अननोन' और 'रिफ्लेक्शन आफ लाइफ' के नोबुल पुरस्कार प्राप्त लेखक अलेक्सिस कैरेल ने कई स्थानों पर एक ही बात को दुहराया है कि प्रकृति के दोहन से भी बड़ा संसाधनों का क्षेत्र अन्तःकरण की गरिमा उभारने का है । उस उपेक्षित क्षेत्र को नये सिरे से समझा एवं समुन्नत बनाया जाना चाहिए । विचार बुद्धि की उपयोगिता कितनी ही क्यों न हो पर वह रहेगी सीमित ही । मनुष्य के उच्च चेतन का विकास होने पर ही समस्याओं के समाधान और अभ्युदय उत्थान का आधार खड़ा होगा । विश्व मनीषा को अपना ध्यान एक ही केन्द्र पर एकत्रित करना चाहिए कि मनुष्य को सहृदय बनाने के लिए उसकी प्रसुप्त उच्च चेतना को किस प्रकार जाग्रत किया जाय ?

'ह्वाइट मेक्स ए लाइफ सिग्नीफिकेण्ट' पुस्तक में सुप्रसिद्ध मनःशास्त्री विलियम मोक्स ने मनुष्य की सुपर चेतन परतों पर प्रकाश डाला है । उनका कहना है कि मनुष्य के भीतर अतिमानवी सामर्थ्य विद्यमान है जिन्हें करतलगत कर सकना सम्भव है । इसका आरम्भिक क्रियात्मक चरण है ढर्रे की गतिविधियों को उलटने तथा सूझ-बूझ से भरी दूरदर्शितायुक्त महानता के मार्ग का अवलम्बन करने के लिए संकल्पों को परिपुष्ट तथा दृढ़ करना । इच्छाशक्ति-संकल्प शक्ति की प्रबलता पशुवत् अभ्यस्त स्वभावों से छुटकारा पाने तथा आत्मविजय प्राप्त करने का प्रमुख आधार है । इसका सम्पादन तथा अभिवर्द्धन निरन्तर के अभ्यास से ही सम्भव है ।

बाह्य परिस्थितियों एवं बुद्धि वैभव को ही सब कुछ मानने की अपेक्षा भीतर झाँका जा सके तो मालूम होगा कि कितनी ही प्रकार की सूक्ष्म शक्तियाँ अपने ही अन्दर मौजूद हैं जितना प्रायः सदुपयोग नहीं हो पाता । आत्मविस्मृति के कारण इच्छाओं, आकांक्षाओं का सुनियोजन नहीं हो पाता । वे मात्र सामान्य प्रयोजन पूरा करने तक रह जाती हैं । सुपर चेतन की दिव्य प्रेरणाओं के अनुरूप उन्हें गतिशील किया जा सके तो महानता को वरण कर सकना हर व्यक्ति के लिए सुगम हो सकता है ।

अन्तराल के उच्चस्तर का विकास

आत्मा के ऊपर तीन परिधान लिपटे हुए हैं । जिस प्रकार बनियान, कुर्ता, कोट एक के बाद एक पहनकर सुसज्जा बनाई जाती है उसी प्रकार काया के ऊपर भी तीन शरीर चढ़े हैं । एक स्थूल शरीर है जो प्रत्यक्ष जाता है और इच्छानुसार कार्यों में लगाया जाता है । दूसरी गहरी परत सूक्ष्म शरीर की है, यह प्राणमय है । मरने के बाद यह कुहासे के रूप में बिखर जाती है । हृदयस्थ स्थान में ज्योतिवत् ध्यान करते हुए दिखायी देती है । शरीर के इर्द-गिर्द तेजोवलय के रूप में छायी रहती है । तीसरा शरीर कारण शरीर है । इसका स्थान अन्तःकरण चतुष्टय है । मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का समुच्चय इसी के साथ जुड़ा हुआ है । यों आकांक्षा, मान्यता, प्रेरणा, उमंग इसी में उठती है । पर एक शब्द में इसकी प्रमुखता को देखते हुए भावना प्रधान कहा जा सकता है । उसकी स्थिति प्रधानतया भाव संवेदनाओं से ही जानी जाती है ।

जीव-जन्तु, पशु-पक्षी स्थूल शरीर प्रधान होते हैं । वे काया की आवश्यकता एवं इच्छा पूरी करने में लगे रहते हैं । पेट भरने के लिए उनकी शारीरिक क्रियाएँ होती हैं और प्रजनन का ताना-बाना बुनने में उनका मन काम करता रहता है । इसके अतिरिक्त सुरक्षा की व्यवस्था बनाने में भी अपनी बुद्धिमत्ता का उपयोग करते हैं । शत्रुओं से आत्म-रक्षा के लिए जितने बन पड़ते हैं, कौशल अपनाते हैं । झाड़ियों में रहने से लेकर गुफाओं में छिपने और झुण्ड बनाकर रहने की प्रवृत्ति आत्मरक्षा से ही सम्बन्धित है । प्रजनन के लिए घोंसले, खोह, कोतर आदि का प्रबन्ध उन्हें करना पड़ता है ।

मनुष्य भी इन्हीं कार्यों में अपनी काया की अधिकांश श्रमशक्ति को इन्हीं प्रयोजनों में जुटाये रहते हैं । गुजारे के लिए उत्पादन का श्रम करना पड़ता है । कामुकता बेचैन करती है तो जोड़ा बनाता है, विवाह करता है और उस समागम का प्रतिफल सन्तानोत्पादन के रूप में सामने आता है । बच्चों की असमर्थता को देखते हुए अभिभावक ही उसकी देखभाल तब तक करते हैं जब तक कि वह शारीरिक, मानसिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं हो जाता । यह उपर्युक्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोनों ही व्यस्त रखने वाले कार्य "पेट और प्रजनन" की परिधि में आते हैं । स्थूल शरीर को उत्पादनजन्य लोभ अपनाना होता है । कामुकता का फलितार्थ विवाह और सन्तान के रूप में सम्मुख आता है । यह सभी नवागन्तुक अपने प्रभाव और प्रयत्न से उत्पन्न किये गये होते हैं इसलिए इनके प्रति ममता जुड़ती है । ममता अपने प्रियजन की अनेकानेक आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए आतुरता प्रकट करती है, यही मोह है । मनुष्य का स्तर जब तक शरीर प्रधान-पशु स्तर का रहता है तब तक उसे लोभ और मोह की ललक, लगन छायी रहती है ।

इसके अतिरिक्त मनुष्य बुद्धिमान होने के कारण अपने निजी व्यक्तित्व के बारे में भी विचार करने लगता है । जबकि पशुओं में उस स्तर का चिन्तन स्वल्प मात्रा में ही उभरता है । मनुष्य की शरीरगत प्रवृत्तियों में एक अहंकार भी है । इसे मानसिक चेतना का उद्भव भी कह सकते हैं । इन्द्रिय भोगों की वासना और उपभोग सामग्री की तृष्णा इन दोनों का बाहुल्य तो रहता ही है । पर साथ ही मानसिक विकास के रूप में निज के व्यक्ति की कल्पना भी प्रखर होती है । स्वाभिमान जगता है । अहंता प्रकट होती है । इसकी दो कामनाएँ हैं— एक यह कि अपना स्तर दूसरों से बढ़ा-चढ़ा सिद्ध करना । दूसरा सम्मान उपलब्ध करना । यह किस प्रकार सम्भव हो, इसके लिए शरीर की परिधि में अपनी सत्ता सीमित रखने वालों के लिए स्वकृत्य के रूप में ठाठ-बाट बढ़ाने का उपाय-उपचार समझ में आता है । वस्त्र, आभूषण, शृंगार, साधन, ठाठ-बाट, अमीरी जताने वाले साधनों का एकत्रीकरण यह इस स्तर के कौतुक हैं जिनमें समय, श्रम और साधन खर्च करते हुए भी इसलिए प्रवृत्त होना पड़ता है कि अपने से पिछड़ी स्थिति के लोग तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने के उपरान्त यह विचार करें कि अमुक व्यक्ति हमारी तुलना में अधिक वैभववान होने के कारण बड़प्पन का अधिकारी है । मोटी बुद्धि अपने से अधिक समृद्ध को ही बड़ा मान लेती है । उससे दबती, झेंपती है । सौभाग्यवान समझती और सम्मान करती है । इसे पाने के लिए शरीर चेतना आतुर रहती है । वह बलवान, सम्पन्न, सुन्दर, पदाधिकारी आदि बनने के लिए कुछ न कुछ चेष्टाएँ करती रहती है । वैसा यदि सचमुच नहीं बन पड़ता तो उसका आडम्बर बनाती है । विडम्बना एवं प्रवंचना रचती है ताकि स्वल्प बुद्धि वाले उसका रहस्य न जान सकें और आँखें चौंधिया जाने से बड़प्पन का गौरव प्रदान करने लगें । यह उथले दर्जे का बड़प्पन है । इसे पाने के लिए लोग विवाह शादियों में अन्धाधुंध अपव्यय करने, कर्मकाण्डों का प्रदर्शन करने, सभा, सोसायटियों के अधिकारी बनने आदि के प्रपंच रचते रहते हैं । इस कौतुक के सहारे वे अपना सांसारिक मूल्य दूसरों के मूल्य की तुलना में अधिक सिद्ध करने में किसी कदर सफल भी हो जाते हैं । शारीरिक क्षेत्र की तुलना में मानसिक झलक की मात्रा अधिक है । शरीर तो अन्न, वस्त्र और निवास की आवश्यकताएँ पूरी हो जाने पर तृप्त हो जाता है । पर मन को कामुकता की, अन्यान्य इंद्रियों की ललक बुझानी पड़ती है और उसके लिए विवाह, संतान, परिवार को अपने साथ जोड़कर उनकी आवश्यकताओं को भी अपनी आवश्यकता मानना पड़ता है । बात ममता की पूर्ति तक ही सीमित नहीं रहती । मोह से अधिक अभीष्ट, सुविधा सम्पादन का क्रम बैठ जाने पर भी मन शान्त नहीं होता । विकसित मस्तिष्क पर अहंकार का उन्माद होता है और साधारण होते हुए भी असाधारण आडम्बर बनाकर अपनी वरिष्ठता का ढिंढोरा पीटना चाहता है । लोगों की दृष्टि में अधिक वैभववान सिद्ध होना चाहता है । इसके लिए खर्चीला ठाट-बाठ तो बनाना ही पड़ता है । उसके लिए ढेरों समय एवं साधनों का अपव्यय करना आवश्यक हो जाता है । इतना ही नहीं कई बार उद्धत आचरण अपनाकर अपनी आतंकवादी प्रखण्डता प्रकट करने के लिए अनाचार तक अपनाना पड़ता है ।

इससे कुछ कदम आगे बढ़कर कारण शरीर में एक जाग्रति भरी हलचल उत्पन्न होती है, वह है सम्मान की, स्नेह सद्भाव की आकांक्षा । जिस प्रकार स्थूल शरीर से सूक्ष्म और सूक्ष्म से कारण शरीर का स्तर ऊँचा है उसी प्रकार इन तीनों शरीरों की आकांक्षाएँ भी क्रमशः अधिक समयसाध्य, श्रमसाध्य एवं बुद्धिसाध्य हैं । स्थूल शरीर की आवश्यकताएँ सामान्य प्रयास से ही पूरी हो जाती हैं । पेट और प्रजनन की व्यवस्था पशु, पक्षी, कीड़े-मकोड़े तक आसानी से बना लेते हैं । थोड़ा-सा ही चिन्तन और परिश्रम करने से उनके साधन बन जाते हैं । अहंता के नाम पर अन्य प्राणी तो अपनी बलिष्ठता दिखाने के लिए आक्रमण भर करते हैं । आतंक भर मचाते हैं पर मनुष्य को इसके लिए आकुलता भी रहती है और आतुरता भी । जिसे स्नेह नहीं मिला समझना चाहिए कि उसका जीवन नीरस, निर्जीव, रूखा, कर्कश रह गया । इसी प्रकार जिसे सम्मान नहीं मिला उसे ऊँचा उठने के लिए जो आधार, अवसर मिलना चाहिए था वही छिन गया । इन दोनों के न मिलने या छिन जाने के कारण शरीर की उर्वरता एवं गरिमा ही पलायन कर जाती है । पेट, प्रजनन से भी बड़ी भूख, अन्तरात्मा को स्नेह, सम्मान की रहती है, पर उसे प्राप्त करने के लिए स्तर के अनुरूप पुरुषार्थ करना पड़ता है । पेट भरने के लिए मेहनत करनी पड़ती है । कामुकता की बेल को समेटने के लिए सुविस्तृत ताना-बाना बुनना पड़ता है । जब स्थूल और सूक्ष्म शरीर अपनी इच्छाएँ पूरी करने के लिए समुचित श्रमशीलता एवं तन्मय, तत्परता चाहते हैं, व्यस्त किये रहते हैं तो कोई कारण नहीं कि काया का सर्वोच्च स्तर जो माँगता है वह बिना कुछ किये अनायास ही न मिल जाय । उसके लिए और भी बढ़ा-चढ़ा वैभव उपार्जित करना होता है ।

कारण शरीर की बलिष्ठता भाव सम्वेदना है । ठीक उसी तरह जैसे शरीर में बल और मन में बुद्धि का होना आवश्यक है । पशु भाव रहित होते हैं । उनमें मैत्री, करुणा मुदिता, सेवा, सहानुभूति, उदारता जैसी गरिमामयी भाव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संवेदनाएँ कदाचित् ही नगण्य मात्रा में होती हैं । उन्हें स्वार्थ ही सूझता है । कष्ट होते हैं तो अपने ऊपर संकट आने पर ही थोड़ी अनुभूति होती है । किन्तु मनुष्य का दर्जा कहीं ऊँचा है । वह "आत्मवत् सर्वभूतेषु" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" स्तर की भाव संवेदना सँजोये रहता है । यही कारण है कि उसके अन्तराल में करुणा और उदारता का उद्गम उभरता है । दूसरों का दु:ख बँटा लेने की और अपना सुख बाँटने की उमंग उठती रहती है । इसी परमार्थ परायणता के मूल्य पर दूसरों का सहयोग एवं श्रद्धा, सम्मान खरीदा जाता है । उदारता भरी सेवा-साधना ही विचारशील लोगों के अन्तराल में शालीनता प्रदर्शित करने वालों के प्रति श्रद्धा उभारती है और साथ ही सम्मान और सहयोग की भी वर्षा करती है । उसमें स्थायित्व भी होता है । आदर्शवादियों के चरित्र एवं व्यवहार का अनुकरण, अभिनन्दन किया जाता है । भाव संवेदना ही आत्मीयता, ममता, मित्रता की जड़ें मजबूत करती हैं । जिनका अन्त:करण ऊसर, बंजर की तरह भावनात्मक उर्वरता से रहित है उस पर न तो सहयोग सम्मान के मेघ बरसते हैं और न सेवा उदारता के उपवन उगते, सुरक्षित फूल खिलते हैं । निष्ठुर, स्वार्थ परायण, सहानुभूति संवेदनारहित व्यक्ति के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि उसका अन्त:करण भाव संवेदनाओं की उस उर्वरता में सम्पन्न नहीं हो पाया, जिसके कारण व्यक्तिगत स्नेह और समूहगत सम्मान की अमृत वर्षा होती है । व्यक्तित्व को दैवी अनुकम्पा और अन्तरंग सन्तोष एवं उल्लास के निरन्तर भरे रहती है ।

शरीरगत आवश्यकताएँ पशु भी पूरी करते हैं । मानसिक तृष्णाओं को चतुर लोग पूरा कर लेते हैं पर मानवी गरिमा इसमें है कि उसके अन्त:करण में भावनाएँ उमँगें, स्वयं विनम्र, निष्काम एवं संयमी, अपरिग्रही रहें । अपनी क्षमताओं को सदाशयता के सम्वर्द्धन में समर्पित करें । देवमानवों का कारण शरीर इसी आधार पर विकसित होता है । इसी उपलब्ध विशेषता के कारण वे महामानव, नर नारायण एवं पुरुष-पुरुषोत्तम बनते हैं ।

अन्त:करण का विकास और उज्ज्वल भविष्य

मन:शास्त्री अब इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि व्यक्तित्व की उत्कृष्टता-निकृष्टता का केन्द्रबिन्दु उसके अन्तराल का स्तर ही है । मन:संस्थान की इस सबसे गहरी-अन्तिम परत को 'सुपर चेतन' कहा गया है । सुपर इसलिए कि उसकी मूल प्रवृत्ति मात्र उत्कृष्टता से ही भरपूर है । उसे यदि अपने वास्तविक स्वरूप में रहने दिया जाय, अवांछनीयताओं के घेरे में जकड़ा न जाय तो वहाँ से अनायास ही ऊँचे उठने, ऊँचे बढ़ने की ऐसी प्रेरणाएँ मिलेंगी जिन्हें आदर्शवादी या उच्चस्तरीय ही देखा जा सके । प्रकारान्तर से 'सुपर चेतन' को 'ईश्वर' के समतुल्य ही माना जा सकता है । वेदान्त दर्शन में 'अयमात्मा ब्रह्म', 'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'चिदानन्दोहम्', शिवोऽहम्', 'तत्व-मसि' आदि सूत्रों में जिस आत्मा को परमतत्व परमात्मा माना है, वह परिष्कृत अन्त:करण ही है । उसी को विज्ञान की भाषा में सुपर चेतन कहते हैं ।

इसी परत को विकसित करने के लिए भक्तियोग का आश्रय लिया जाता है । कर्मयोग में शरीर, ज्ञानयोग में मस्तिष्क और भक्तियोग में अन्त:करण की साधना की जाती है । अन्त:करण को ब्रह्मा, मन:संस्थान को विष्णु और काय-कलेवर को रुद्र की उपमा दी गई है । यही तीनों व्यक्तिगत त्रिदेव हैं जिनके वरदान-अभिशाप पर उत्थान-पतन की सारी सम्भावनाएँ अवलम्बित हैं ।

मनोविज्ञानी मन:संस्थान को अत्यधिक महत्त्व देते हैं और उसे अचेतन से भी कहीं अधिक उच्चस्तरीय मानते हैं । कार्य-कौशल से लोक-व्यवहार बनता है । बुद्धि वैभव से उपयुक्त निर्णय होते हैं । किन्तु अन्त:करण तो समूचे व्यक्तित्व का ही अधिष्ठाता है । उसकी परिष्कृत स्थिति ही सामान्य स्थिति के मनुष्य को महामानव, ऋषि, देवात्मा, देवदूत स्तर तक पहुँचाने में समर्थ होती है । अपने ही भीतर विद्यमान इस देवलोक का माहात्म्य अध्यात्मवेत्ता सदा से ही बताते और उसकी अनुकम्पा उपलब्ध करके जीवन लाभ लेने वाले विभिन्न प्रतिपादनों द्वारा समझाते रहे हैं । सिद्धान्त और प्रयोग दोनों ही इन प्रयोजनों के लिए उन्होंने गढ़े-परखे और प्रचलित किये हैं ।

मनोविज्ञानी, नीतिशास्त्री, तत्व-विज्ञानी, समाजशास्त्री, भौतिकवादी सभी इस मिले-जुले निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि पतन-पराभव से छूटने और वरिष्ठता, उत्कृष्टता उपलब्ध करने के लिए 'सुपर चेतन' की उच्चस्तरीय परतें खोजी, कुरेदी जानी चाहिए । 'पैरा साइकॉलाजी-मैटाफिजिक्स' आदि माध्यमों से पिछले दिनों अचेतन की महत्ता बखानी जाती रही है और उसे जगाने, उभारने के लिए तरह-तरह के प्रयोगों की चर्चा होती रही है । दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, विचार-संचालन, प्राण-प्रत्यावर्तन, भविष्य-ज्ञान जैसे कितने ही कला-कौशल इस सन्दर्भ में खोजे और परखे गये हैं । इस दिशा में प्रयास चालू रखते हुए भी मूर्धन्य स्तर के मनीषी इस बात पर जोर दे रहे हैं कि अचेतन में भी असंख्य गुनी उच्चस्तरीय सम्भावनाओं से भरे-पूरे सुपर-चेतन को नये सिरे से समझा-खोजा और उसके अभ्युदय का अभिनव प्रयास किया जाय । वे मानने लगे हैं कि उस क्षेत्र की उपलब्धियाँ व्यक्ति और समाज में उच्चस्तरीय परम्पराओं का समावेश और नये युग का नया सूत्रपात कर सकने में समर्थ हो सकती हैं ।

'एमिली मारकाल्ट' ने अपनी 'साइकोलाजी ऑफ इन्ट्यूशन' नामक पुस्तक में अन्त:करण की चर्चा करते हुए कहा है, "यह शरीर एवं व्यक्तित्व की चेतना का अति सूक्ष्म एवं उच्चस्तरीय भाग है । ज्ञानेन्द्रियों और तर्क बुद्धि से जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं उनसे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण समाधान उच्चचेतन मन की सहायता से मिल सकता है । इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तन्त्र को उजागर कर लेने का अर्थ है एक ऐसे देवता का साथ पा लेना जो उपयोगी सलाह ही नहीं देता, महत्त्वपूर्ण सहायता भी करता है ।

'हम्फ्री' अपनी पुस्तक 'वेस्टर्न ए प्रोच टू मैन' में कहते हैं कि बुद्धि वैभव के माध्यम से अब तक संसार की जो सेवा हुई है उसकी तुलना में उच्चचेतन की सहायता से थोड़े से लोगों ने जो कार्य किया है उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती । एक महामानव हजार प्रवक्ताओं से बढ़कर होता है । इसी प्रकार एक महा-मनस्वी के द्वारा बनाया गया वातावरण हजारों अधिकारियों तथा अध्यापकों की तुलना में अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध होता है । मनीषियों का कर्तव्य है कि जिस प्रकार प्रकृति के रहस्यों की खोज कर सुविधा, सम्पन्नता की वृद्धि हो गयी है उसी प्रकार वे अन्तराल की उत्कृष्टता को खोजने, बढ़ाने तथा लाभान्वित होने के लिए जनसाधारण का पथ-प्रशस्त करें ।

'जुंग' कहते हैं कि मात्र अचेतन ही सब कुछ नहीं है वरन् इससे भी आगे की परत 'उच्च चेतन' का भी अलग अस्तित्व है । आदर्शवादी प्रेरणाएँ एवं उमंगें वहीं से उठती हैं । अचेतन तो अभ्यस्त आदतों का संग्रह-समुच्चय भर है । वे बुद्धि एवं साहसिकता से भी अग्रिणी संकल्प शक्ति का गुणगान करते हैं और कहते हैं कि व्यक्तित्व को विनिर्मित करने में मनुष्य के विश्वासों का ही प्रमुख योगदान रहता है ।

'एडलर' के मतानुसार अचेतन की सुदृढ़ता देखते हुए उसके सुधार सन्दर्भ में किसी को निराश नहीं होना चाहिए । स्वसंचित संकल्प, आत्म-विश्वास और आदर्शों के प्रति आस्थावान बनने से उन मूल प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन कर सकना सम्भव है, जिन्हें चिरसंचित, दुराग्रही एवं अपरिवर्तनशील माना जाता है ।

विलियम मैकडूगल कहते हैं, अचेतन से भी ऊँची परत 'अतिचेतन' या 'उच्चचेतन' की अभी जानकारी भर मिली है । अगले दिनों उसे अधिक अच्छी तरह जाना समझा जा सकेगा और यह कहा जायगा कि सामान्य जीवन-क्रम का सूत्र संचालन करने वाले अचेतन की कुंजी इस 'अतिचेतन' के पास ही है । अगले दिनों जब उच्चचेतन का स्वरूप और उपयोग ठीक प्रकार समझा जा सकेगा तब व्यक्तित्वों में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के सम्बन्ध में वैसी कठिनाई न रहेगी जैसी आज है ।

प्लूटो लिखते हैं "जब हमारा शुद्धीकृत 'स्व' से साक्षात्कार होता है तब हमें अपने स्वरूप का, अपने त्रिआयामीय विस्तार का भान होता है । इस स्थिति में आने पर व्यक्ति परमतत्व से एकरूप हो जाता है एवं उसे किसी प्रकार के मार्गदर्शन, हाथ पकड़कर राह दिखाने वाले की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

'फ्रीडरिक नीत्से' ने घोषणा की थी कि "स्वयं से परे हटकर स्वयं को देखना ही वस्तुतः सही ज्ञान की प्राप्ति है ।" क्या यह सम्भव है ? क्या हम स्वयं को अपने शरीर चिन्तन की परिधि से निकाल बाहर कर सकते हैं । जो शान्त चुपचाप खड़ा हो हमारी हर गतिविधि, हर परिस्थिति का अवलोकन करता रहे । वस्तुतः यह हमारे भीतर है, जिसे हम 'सुपर माइन्ड' कहते हैं जो एक लाइट हाउस की तरह दूर-दूर तक अपनी घुमावदार किरणें (रिवार्ल्विंग बीम) छोड़ता रहता है । हिमखण्डों, तूफानों से जहाजों को बचाता है, पर स्वयं शान्त बिना विचलित हुए खड़ा रहता है ।

दार्शनिक 'हेनरी बर्सो' का कथन है, "समय की जटिलताओं को न सुविधा सम्वर्द्धन से सुलझाया जाय और न दाँव-पेच से । प्रवीण बुद्धि कौशल ही पतन-पराभव का निराकरण कर सकेगा । प्रस्तुत जटिलताओं और विभीषिकाओं पर समाधान पाने के लिए उस 'महाप्रज्ञा' के जगाने की आवश्यकता है जो अन्तःकरण की गहराई में बसती है और ईश्वरीय प्रेरणाओं से मनुष्य को अवगत कराती है ।

'मार्टिन ट्रिनबी' ने लिखा है, विचार बुद्धि की उपयोगिता कितनी ही क्यों न हो पर वह रहेगी अपर्याप्त ही । चेतना ही पूर्णता का केन्द्र-मस्तिष्क नहीं अन्तःकरण है । अब तक प्रकृति को खोजा और पाया, दोहा गया है । अब परमात्मा की खोज और उसको पाने की बारी है । ऐसा सम्पर्क सधने के लिए एकमात्र स्थान मानवी अन्तःकरण है । सहृदयता इसी केन्द्र में बसती है ।

हेनरी गाल्डर ने अपने ग्रन्थ, 'एवोल्यूशन एण्ड मैन्सल्पेस इन नेचर' में लिखा है, "विकास की दिशा में किये जा रहे प्रयास में एक कड़ी और जुड़नी चाहिए कि मनुष्य के हृदय की विशालता एवं गहराई को भी बढ़ाया जाय । वस्तुओं का लाभ जिसे उठाना है उसकी अन्तःचेतना यदि निष्कृष्टता परायण रही तो सम्पदा का दुरुपयोग ही होगा । सम्पदा कितनी ही क्यों न बढ़े पर यह ध्यान तो रहे कि उपभोक्ता की गरिमा ही साधनों का सत्परिणाम प्रस्तुत कर सकती है ।"

'पियरेल चाल्ड्रन' अपनी पुस्तक 'दि फिनोमिना आफ मैन' में लिखते हैं, विग्रहों को सहकार में, खीज को मुस्कान में बदलने का एक ही तरीका है कि मनुष्य के वर्तमान चिन्तन और रुझान में भारी परिवर्तित किया जाय । यह महान कार्य सामान्य प्रयासों से सम्भव नहीं उसके लिए अन्तःकरण को टटोलने और उसमें ईश्वर प्रदत्त महानता को उभारने की आवश्यकता पड़ेगी । परिस्थितियों से जुड़ी हुई विभिन्नता का परिशोधन सहृदय उगाने एवं जगाने से ही सम्भव हो सकता है । सभी प्रख्यात भौतिकीविद मनीषी इस बात पर जोर देते रहे हैं कि कब सहृदयता उभारने के लिए मानवी अन्तःकरण में नयी तैयारी के साथ नयी कृषि की जानी चाहिए । इस क्षेत्र की उपार्जित फसल से ही मनुष्य की शारीरिक,मानसिक और आत्मिक भूख बुझेगी ।

'मैन द अननौन' और रिफ्लेक्शन आफ लाइफ' के नोबुल पुरस्कार प्राप्त लेखक अलेक्सिस कैरेल ने कई स्थानों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर इस एक ही बात को दुहराया है कि प्रकृति दोहन से भी बड़ा क्षेत्र अन्तःकरण की गरिमा उभारने का है । उस उपेक्षित क्षेत्र को नये सिरे से समझा एवं समुन्नत बनाया जाना चाहिए । मनुष्य के उच्चचेतन का विकास होने पर ही समस्याओं के समाधान और अभ्युदय का आधार खड़ा हो सकेगा । विश्व मनीषा को अपना ध्यान एक ही केन्द्र पर एकत्रित करना चाहिए कि मनुष्य को सहृदय बनाने के लिए उसकी प्रसुप्त अन्तःचेतना को किस प्रकार जागृत किया जाय ।

असंख्य प्रतिपादनों में से कुछ की झाँकी ऊपर की पंक्तियों में करने के उपरान्त इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि व्यक्ति और समाज को वर्तमान से उबारने और उज्ज्वल भविष्य के निकट पहुँचाने के लिए मानवी अन्तरात्मा को समझा और जगाया जाना उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार सामान्य जीवन में निर्वाह के साधन जुटाना ।

महानता भीतर से उभरती है, ऊपर से नहीं टपकती

आदिकाल से मानवी व्यक्तित्व दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों के लिये चिन्तन का विषय रहा है । पूर्वार्त्त मनोविज्ञान इसकी संरचना विकास के स्वरूप एवं लक्ष्य प्राप्ति की सम्भावनाओं पर पाश्चात्य चिन्तकों से अलग विचार प्रकट करता रहा है । जहाँ पाश्चात्य विद्वानों ने व्यक्तित्व की प्रौढ़ता-परिपक्वता पर नहीं के बराबर विचार व्यक्त किये हैं, वहाँ भारतीय विद्वान व्यक्तित्व को ब्रह्म का ही एक अंश मानकर उसके विकास की असीम सम्भावनाएँ बताते हैं । प्रवृत्तियों पर ही केन्द्रित पाश्चात्य मनोविज्ञान के अध्येताओं में से कुछ विद्वान ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने इस विषय पर ढर्रे से अलग चिन्तन किया है । ऐसे विद्वानों में आलपोर्ट, मेस्लोव, एडलर, जुंग, काण्ट एवं ग्रीन का नाम लिया जा सकता है ।

श्री जी. डब्ल्यू आलपोर्ट परिपक्व व्यक्तित्व की तीन स्थितियाँ बताते हैं । आत्मविस्तार के लिये सतत् क्रियाशील बने रहना, आत्मकेन्द्रित रहकर ही लक्ष्य प्राप्ति का प्रयास करना, जीवन आदर्शों से परिचित बने रहकर प्रतिक्षण उनका ध्यान बनाये रखना ।

अपनी पुस्तक 'पर्सनालिटी' में वे लिखते हैं कि परिपक्व एवं प्रौढ़ व्यक्तित्व का धनी व्यक्ति अहं केन्द्रित, स्वार्थी नहीं होता । वह परमार्थ के कार्यों में, सब के कल्याण के कार्यों में समान रूप से रस लेता है । दूसरों के कार्यों में अभिरुचि का होना व्यक्ति के लिये उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि स्वयं के कार्यों में । महानता ही प्रौढ़ता का पर्यायवाची मानी जा सकती है । यह क्रमिक रूप से उभरने, विकसित होने लगती है, ज्यों-ज्यों व्यक्ति का आपा विस्तृत होता चला जाता है ।

आत्म-केन्द्रित स्थिति से विद्वान लेखक का तात्पर्य है-बाह्य परिस्थितियों से अप्रभावित बने रहकर आत्मचिन्तन में रस लेना, अपने आपको-अपने लक्ष्य को अधिक अच्छी तरह जानने का प्रयास करना । ऐसी स्थिति में व्यक्ति परमार्थरत रहते हुए भी लोक-प्रवाह से नहीं बहता । सदैव स्वयं को व अन्यों को गिराने वाले परामर्शों से बचाता एवं लक्ष्य का बोध कराता रहता है । अन्तिम है जीवन आदर्शों का सदैव ध्यान रख अपने आपको कभी दिग्भ्रान्त न होने देना । प्रौढ़ व्यक्ति की सारी चेष्टाएँ एवं चिन्तन आदर्शों से ही अभिप्रेरित एवं संचालित होती है ।

प्रसिद्ध नीतिशास्त्री ग्रीन महोदय ने मनुष्य की नैतिक प्रगति के दो प्रमुख लक्षण बतलाये हैं- सामञ्जस्य एवं व्यापकता । इनके जीवनक्रम में समाविष्ट कर मनुष्य अधिकाधिक महान बनता जाता है । वे कहते हैं, "महानता के लक्ष्य को प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति के जीवन में विभिन्न क्रियाओं में सामञ्जस्य रहना अनिवार्य है । उसके स्वयं के सिद्धान्तों एवं आचरण के मध्य विरोध नहीं होना चाहिए । कथनी-करनी में एकरूपता हो । ऐसा तो हो सकता है कि परस्पर विरोधी दीखने वाले नियम मन के विकास के स्तर हों, तब उन्हें विरोधी नहीं कहा जा सकता ।" व्यापकता, नैतिकता का शाश्वत सिद्धान्त है । मनुष्य के आचरण का उद्देश्य जितना व्यापक होता है उतने ही अंशों में वह महान् होता है । वैयक्तिक लाभ की अपेक्षा पारिवारिक हित ही अधिक श्रेष्ठ है । परिवार की अपेक्षा गाँव, गाँव की अपेक्षा जिला, प्रदेश, राष्ट्र एवं समस्त मानव समाज के कल्याण का लक्ष्य अधिक महत्त्वपूर्ण है । जिस व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य सम्पूर्ण मानव-समाज का हित साधन करना है, नैतिक दृष्टि से वह संसार का सबसे महान व्यक्ति है. संकीर्ण मनुष्य में न तो सामञ्जस्य ही होता है और न ही व्यापकता । वह नैतिकता की दृष्टि से हेय समझा जाता है ।

नैतिक जीवन का लक्ष्य वैयक्तिक सुखों से ऊपर सामाजिक हितों के कार्यों में भाग लेना है । ऐसा करने से व्यक्ति अपने को एक महान संज्ञा का अंग अनुभव करने लगता है । यह अनुभूति ही उस महानता के पथ पर बढ़ने के लिए प्रेरणा देती रहती है और व्यक्ति सामाजिक एवं आध्यात्मिक इच्छाओं की तृप्ति में आनन्दित होता है । धीरे-धीरे वह 'स्व' की पूर्णता की अनुभूति करने लगता है । मानव के नैतिक आदर्श का विकास अनायास नहीं हो जाता । यह धीरे-धीरे होता है, बीज से वृक्ष बनने की तरह यह लम्बे समय तक चलने वाली प्रक्रिया है । सांसारिक जीवन में कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि उसने अन्तिम नैतिक आदर्श की उपलब्धि कर ली । एक स्तर पर पहुँचने पर उसे अगले स्तर पर चलने की अन्तःप्रेरणा मिलती है । इसी प्रकार उसके कर्तव्य एवं आदर्श भी उसके विकास के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं ।

कार्ल जुंग ने मानवी विकास की वास्तविकता और उत्कृष्टता को व्यक्ति की अन्तर्मुखी चेतना के साथ जोड़ा है । वे कहते हैं "बहिर्मुखी चिन्तन अविकसित व्यक्तित्व का परिचायक है । छोटे प्राणीमात्र परिस्थितिजन्य सम्वेदनाओं से ही प्रभावित होते हैं और उन्हीं के साथ तालमेल बिठाने,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बदलने या बढ़ाने में लगे रहते हैं । उन्हें आत्म-चिन्तन की न तो आवश्यकता अनुभव होती है और न ही उस क्षेत्र में प्रवेश करने का अनुभव अभ्यास । अतएव उनके लिए यह समझना कठिन पड़ता है कि अपना चिन्तन, स्वभाव, दिशा निर्धारण या कार्य प्रयास भी कठिनाइयों का कारण, अनुकूलता में अवरोध बना सकता है । आत्म-समीक्षा कर सकने के क्षेत्र में जो भी पिछड़े होंगे, वे मात्र परिस्थितियों से उलझे रहेंगे । अपने प्रवाह में हेर-फेर करने की बात वे विवेक-पूर्वक नहीं सोच सकेंगे । ऐसी दशा में उनकी सफलता उसी सीमा तक की होगी जितनी कि अनुकूलता शक्य हो सके ।''

प्रगतिशीलों की विशेषता रही है कि वे मन:स्थिति के महत्त्व को भी स्वीकार करते हैं और परिस्थितियों के लिए उसे भी एक बड़ी सीमा तक निमित्त कारण स्वीकार करते हैं । ऐसे लोग अपने को सुधारने का समर्थ बनाने पर भी उतना ही ध्यान देते हैं जितना कि परिस्थितियाँ उलझने में । आत्म-समीक्षा, आत्मनिर्माण, आत्मविश्वास और आन्तरिक उल्लास ही वे विभूतियाँ हैं, जो मनुष्य को सच्चे अर्थों में प्रगतिशील बनाती और अभीष्ट सफलता के मार्ग पर द्रुतगति से अग्रसर करती हैं जबकि बहुर्मुखी व्यक्ति परिस्थितियों के झकोरों में तिनके की तरह इधर-उधर अनिश्चित दिशा में भटकते रहते हैं ।

नीतिशास्त्री एच. ए. मरे ने 'एक्सप्रोलेशन इन पर्सनालटी' में लिखा है- ''व्यक्तित्व के विकास के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने रुझान को अपने से हटाकर दूसरों की ओर ले जाय । कारण कि समाज में सभी व्यक्ति एक-दूसरे से जुड़े हैं और सामाजिक समस्याएँ वास्तव में व्यक्ति की समस्याएँ हैं । इसी को परोपकार या परसेवा, दूसरों के प्रति सहानुभूति आदि नामों से कहा गया है । सामाजिक अभिरुचि जागृत होते ही व्यक्ति की बुद्धि भी विकसित होने लगती है ।''

बुद्धिमता एक बात है और विवेकशीलता या दूर दर्शिता दूसरी । बुद्धि के निर्णय स्वार्थपरक होते हैं । इसे यह देखना होता है कि अपनी भौतिक आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति होती है या नहीं । यदि होती हो तो ही उसे अपनाया जाय । बुद्धिमत्ता का दूसरा चरण यह है कि अनुकूलता प्राप्त करने के लिए जल्दी किस तरह हो सकती है और परिमाण में उसे किस प्रकार अधिक मात्रा में हस्तगत किया जाता है । यह दोनों ही आधार ऐसे हैं जो नीति निष्ठा की परवाह नहीं करते, गुंजाइश दीखते ही उसे उखाड़ फेंकने में भी संकोच नहीं करते । दूसरों को इस निर्णय या प्रयास से क्या लाभ-हानि पहुँचती है, उस ओर से भी वही आँखें बंद किये रहती हैं बुद्धिमत्ता प्रत्येक प्राणी में पायी जाती है । आहार खोजने, ऋतु प्रभाव के अनुकूल सुविधा ढूँढ़ने, आत्म रक्षा के उपाय खोजने, प्रजनन का ताना-बाना बुनने में वे सभी प्रवीण होते हैं । इन कार्यों में परिस्थिति की विषमता से टकराने में उनकी छोटी-सी चेतना कितना बड़ा काम करती है यह देखते ही बनता है । हिंस्र पशु तो जीवधारियों को शिकार बनाने में उनकी बुद्धि से भी जूझते हैं जब कि शाकाहारियों को सीधी-सादी वनस्पतियों से ही पाला पड़ता है । यही कारण है कि माँसाहारी शाकाहारियों का यही चमत्कार है जो मनुष्यों में उनकी स्थिति के अनुरूप और भी अधिक पाया जाता है । संक्षेप में बुद्धिमत्ता को स्वार्थ साधन की सहधर्मिणी कह सकते हैं ।

बुद्धिमता मात्र शरीर सुविधा के लिए अपनी तीक्ष्णता द्वारा अधिक सुविधा साधन इकट्ठे कर सकती है । उसके द्वारा उपार्जित सभी उपलब्धियाँ उसी स्तर की हो सकती हैं । इस प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति अधिक बलवान, वैभववान भर हो सकता है । इतने पर भी उसे असामान्य स्तर की प्रगति के लिए सामान्य नीति-मर्यादा का उल्लंघन करके अपनी तीव्रता को ऐसा बनाना पड़ेगा । जिसे पराक्रम स्तर को चमत्कारी-असाधारण कहा जा सके । इस प्रयास में उसे नीति मर्यादाओं को उतनी ही अधिक अपेक्षा-अवज्ञा भी करनी पड़ेगी ।

इतने भर से कोई व्यक्ति श्रेष्ठता अपनाकर श्रद्धास्पद नहीं बन सकेगा और सर्वजनीन हित साधन के लिए महत्त्वपूर्ण कर सकने की न तो मन:स्थिति में ही रहेगा, न परिस्थिति ही हाथ लगेगी । ऐसी दशा में उन सद्गुणों और सद्भावों को व्यवहार में उतारने का कभी अभ्यास ही नहीं मिलेगा जो विवेकशीलता को जानकारी मात्र न रहने देकर व्यक्तित्व का अविच्छिन्न अंग बनाते हैं । सदाशयता ऐसी ही स्थिति का नाम है जो सद्भावों के सद्व्यवहारों में परिणत होने के कारण ही विकसित एवं परिपुष्ट होती है । कहना न होगा कि विवेकशील दूरदर्शिता ही वह उच्चस्तरीय भावशक्ति है जो दूसरों पर आसाधारण छाप छोड़ती और अपनी निजी सत्प्रवृत्तियों को उभारने में सफल होती है । इतनी सफल जिसे गरिमाशील व्यक्तित्व की अधिष्ठात्री भी कहा जा सके ।

अब्राहम मॉस्लोव ने मानव समाज को दो भागों में विभक्त किया है । वे निर्वाह चक्र में परिभ्रमण करने वाले मनुष्य शरीरधारियों को 'निडिपेण्डेन्ट' वर्ग में गिनते हैं और आदर्शवादिता के पक्षधर लोगों की गणना 'सेल्फ एक्चुअलाइजेशन' श्रेणी में करते हैं । दोनों की विभाजन रेखा जो उन्होंने बनाई है, वह इस प्रकार है, जो सुविधा-साधनों के उपार्जन में संलग्न रहने और उन्हीं के उपयोग संचय में मोद मनाते हैं । व्यथाएँ भी जिन्हें वहीं सताती हैं, जिन्हें शरीर पीड़ा, धन हानि या अपमान के रूप में जाना और कष्ट माना जाता है । उन्हें निर्वाह चेतना वाले 'नीड डिपेण्डेन्ट' स्तर का कहा जायेगा ।

आदर्शवादी अथवा 'सेल्फ एक्चुअलाइजेशन' वर्ग के वे हैं जिनकी आकांक्षाएँ एवं प्रवृत्तियाँ महानता के उच्चस्तरीय निर्धारणों के साथ जुड़ी होती हैं । ऐसे लोग पूर्वाग्रहों की परवाह न करके सत्य और तथ्य को खोजते तथा उसी निष्कर्ष को अपनाते हैं । वे सफलता को आदर्शवादिता की दृढ़ता के रूप देखते हैं न कि लाभ-हानि का बही-खाता देखकर ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वे सादगी अपनाते, विनम्र रहते और सज्जनोचित व्यवहार का स्वभाव बनाते हैं । वे कर्तव्य को प्रधान और अधिकार को गौण मानते हैं । मित्रता केवल उन्हीं से करते हैं जिन्हें प्रामाणिक, दूरदर्शी एवं उदार हृदय जाना जा सके । आत्म-निर्भरता उनमें कूट-कूट कर भरी होती है । वे दूसरों के सहयोग का स्वागत तो करते हैं पर उसको प्रधान मानकर कोई योजना नहीं बनाते । कठिनाइयों में संतुलन नहीं गँवाते और दूरदर्शिता सूझबूझ का परिचय देते हैं । वे आशावादी होते हैं तथा ईमानदारी का किसी परिस्थिति में परित्याग नहीं करते ।

निर्वाह चक्र में संलग्न व्यक्ति सम्पन्न तो हो सकते हैं और दूसरों की तुलना में अधिक कुशल पुरुषार्थी होने का गर्व भी कर सकते हैं किन्तु उनके पल्ले न आत्म-संतोष पड़ता है और न आत्म-विकास का वह लाभ ही उठा पाते हैं जिसके कारण लोग श्रद्धास्पद बनते-मानवता की महती सेवा करते हैं तथा इतिहास के पृष्ठों पर अपने प्रकाश भरे अविस्मरणीय चरण चिह्न छोड़ते हैं ।

ज्ञान का आदि स्रोत-जिज्ञासा

सत्य की उपलब्धि अथवा वैज्ञानिक आविष्कारों को जन्म देने में दार्शनिक एवं वैज्ञानिक चिन्तन का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है । 'अथऽतो ब्रह्म जिज्ञासा' से सृष्टि के नियामक सत्ता की खोज आरम्भ होती है तथा आत्मसाक्षात्कार तक का कारण बनती है । श्वेताश्वेतर उपनिषद् के उपाख्यान की शुरुआत जिज्ञासा से युक्त प्रश्नों से होती है । **''कि कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाय केन क्वचि सम्प्रतिष्ठाः । अधिष्ठिता केन सुखेतरेषु वर्ता-महे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ।''** अर्थात हे महर्षियों । इस जगत का मुख्य कारण 'ब्रह्म' कौन है, हम लोग किससे उत्पन्न हुए हैं, किससे जी रहे हैं और किसमें पूर्णतः अवस्थित है तथा किसके अधीन रहकर हम लोग सुख-दुःख की निश्चित व्यवस्थानुसार जीवन व्यतीत कर रहे हैं ।

आनन्दमय अमृत की कामना सहज जिज्ञासा की कारण बनी । विषय भोगों की क्षणभंगुरता ने मनुष्य को शाश्वत आनन्द की प्राप्ति के लिए अभिप्रेरित किया । बहिर्मुखी चेष्टाओं तथा विषयों के भोग से अतृप्ति तथा असन्तुष्टि ही हाथ लगी । आनन्द के अन्तःस्रोत ने मनुष्य को आत्म-अन्वेषण के लिए अभिमुख किया । परमानन्द से युक्त अपनी ही आत्म-सत्ता है, जिस दिन यह बोध हुआ, मानव को आध्यात्मिक खोज की दिशा में आगे बढ़ने का एक महत्त्वपूर्ण सम्बल हाथ लग गया । साधन शरीर और मन है तथा साध्य भीतर बैठा है, जिसका विराट् स्वरूप में चारों ओर विद्यमान है, यह ज्ञान होते ही मनुष्य ने सोचा बाहर भटकने से विषयाकर्षणों में अपनी सामर्थ्य गँवाने से क्या लाभ ? अन्तःस्रोत को ही कुरेदा-उभारा जाय तथा उसके अगणित अनुदानों को ही समेटकर अपनी झोली भरली जाय, इस चिन्तन ने आत्म-विज्ञान को जन्म दिया ।

आत्म-जिज्ञासा आत्म-विकास की दिशा में बढ़ने की प्राथमिक शर्त है । आत्मा की स्थिति दृष्टा की है जिसका अवचेतन अनुभव मनुष्य को निरन्तर होता तो रहता है । पर बाह्य अनुभवों की विविधता के कारण वह अपने पूर्ण शाश्वत स्वरूप को जान नहीं पाती । आत्मानुसन्धान में प्रवृत्त होकर जिस अन्तिम गन्तव्य तक प्राचीन तत्ववेत्ता पहुँचे थे, वह एक ऐसी पूर्ण आनन्दमय सत्ता है जिसके ज्ञान से सब कुछ जान लिया जाता है । आत्मज्ञान की उसी परम स्थिति का वर्णन वृहदारण्यक उपनिषद् में है, **'आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्व विदितम।'**-२ । ४। ५ अर्थात- 'इस आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, मनन एवं विज्ञान से इस सबका ज्ञान हो जाता है ।'

वह ज्ञान ज्ञाता से भिन्न किसी श्रेय का नहीं वरन् स्वयं की सत्ता का है । वस्तुतः ज्ञाता ही श्रेय है । वह ज्ञान स्वरूप है । वहाँ द्वैत की कोई सीमा नहीं है । निर्मल, निश्चल, निर्विकल्प आत्मचेतना की वह दिव्यानन्दमयी सत्ता अद्वैत है उस दिव्य सत्ता के प्रकाश की अनुभूति ही भारतीय तत्व दर्शन का लक्ष्य रहा है ।

''भासिरतः भारतः'' । प्रकाश या ज्योति में जो रत रहे, वह भारत तथा प्रकाश की खोज में रत रहने की प्रवृत्ति वाला भारतीय कहलाता था । भारतीय तत्ववेत्ताओं का उद्घोष था, **'तत् त्वम् असि इति जानम् ज्ञानम् ।'** जिज्ञासु तुम स्वयं ही वह सत्य हो, जिसे जानने की तुम्हें जिज्ञासा है ।'' वह ज्ञान ही तत्वज्ञान है । कोई भी साधक जिस सत्य के प्रकाश को पाने की आकांक्षा रखता है, वह उसकी आत्मचेतना का ही प्रकाश है । जिसमें यह बोध हो जाता है वह उस प्रकाश का दर्शन करने में सफल हो जाता है तथा अपने को कृतकृत्य मानता है ।

वृहदारण्यकोपनिषद् का उद्घोष है कि आत्मवेत्ता सर्ववेत्ता हो जाता है, **'य एवं वेदाहं ब्रह्मस्मीति से इदं सर्वं भवति ।'** इसी सत्य का बोध कराता है । दृष्टा आत्मसत्ता का अनुभव ही विश्व का विस्तार है । जिस प्रकार चैतन्य अवस्था की प्रसुप्त वासनाएँ निद्रावस्था में अवसर पाते ही अपने अनुरूप स्वप्न की सृष्टि कर लेती हैं, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरों के अनुभवों के संचित संस्कारों द्वारा अनुकूल वासनाओं के उभार होने पर जीवों को संसार के आकर्षण, विषयभोग वास्तविक जान पड़ते हैं । पर निद्रा के टूटते ही स्वप्न की सृष्टि मिटते देरी नहीं लगती, ऐसे ही अज्ञान के नष्ट होने पर संसार विषयक भ्रान्तियाँ भी मिट जाती हैं । जाग्रत व्यक्ति को यह बोध रहता है कि स्वप्न का संसार उसके स्वयं के मन की उपज है, इसी प्रकार अज्ञान से मुक्त होने पर भी यह बोध हो जाता है कि संसार की सत्ता आत्म-सत्ता से बाहर नहीं है उसकी ही प्रतिबिम्ब है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तु एवं संसार के अस्तित्व का प्रमाण चेतन व्यक्ति की अनुभूतियाँ हैं । एक वर्णान्ध व्यक्ति को संसार विभिन्न रंगों का नहीं दिखाई पड़ता । जिस प्रकार नेत्रों की अक्षमता से दर्शन शक्ति लुप्त हो जाती है उसी प्रकार त्वचा की असमर्थता से स्पर्श शक्ति भी लुप्त हो जाती है । स्वादेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय की क्षमताएँ नष्ट हो जाने पर स्वाद, गन्ध तथा ध्वनि की अनुभूति नहीं हो पाती । देखने, सुनने, स्पर्श करने, स्वाद लेने तथा सूँघने की पाँचों इन्द्रियाँ किसी भी चेतन प्राणी में नहीं होतीं तो संसार की विविध रूपाकृतियों के अस्तित्व का प्रमाण क्या होता ? पर उल्लेखनीय बात यह भी है कि इन्द्रियों की अनुभूतियाँ भी दृष्टा- आत्मसत्ता के अस्तित्व से ही होती हैं । शरीर से उस सत्ता के तिरोहित होते ही कोई भी इन्द्रिय काम नहीं कर पातीं जबकि उनका रूप यथावत् बना रहता है ।

मूलतः अनुभूतियाँ दृष्टा आत्मा को होती हैं, इन्द्रियाँ तो मात्र माध्यम हैं । देखने की प्रक्रिया में प्रकाशित वस्तु से विकीर्ण प्रकाश नेत्र की पुतली में प्रवेश करता है, जहाँ से प्रतिबिम्बन क्रिया का प्रभाव स्नायु तन्त्र की नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क में ले जाया जाता है । यहाँ वस्तु के रूप को मनुष्य अनुभव करता है । पर यह क्रिया यांत्रिक फोटोग्राफी जैसी नहीं है । दृष्टा को दृश्य की अनुभूति एक चेतन क्रिया है जो मात्र रूप को ही आभास नहीं कराती वरन् विभिन्न प्रकार के भावों को भी जन्म देती है । चेतन मनुष्य सुन्दर दृश्यों से आह्लादित होता, अरुचिकर से दुःखी एवं भयभीत होता है । ये प्रतिक्रियाएँ फोटोग्राफी के कैमरे में नहीं होती ।

अस्तु ! ज्ञान का, अनुभूतियों का अस्तित्व ज्ञाता की सत्ता के बाहर नहीं, भीतर है । प्रायः बाह्य वस्तु के स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना का कारण चेतन मनुष्य के शरीर को निरपेक्ष सत्ता मान लेना है । जिसमें चैतन्य को शरीर के भीतर की वस्तु मानकर तथा शरीर की इन्द्रियों से बाहर की भौतिक वस्तुओं के स्वतन्त्र अस्तित्व का विचार किया जाता है । यह एक भ्रान्ति है जिसके रहते सत्य के निकट पहुँच पाना सम्भव नहीं हो पाता । पृथ्वी पर खड़े होकर सिर की ओर ऊपर तथा पैरों की ओर नीचे का भाग समझा जाता है पर असीम अन्तरिक्ष में न कहीं ऊपर है न कहीं कुछ नीचे । दिशाओं की मान्यता भी इसी प्रकार है । शरीर भी एक भौतिक वस्तु है तथा उसका अस्तित्व भी दृष्टा-आत्मा के अनुभव पर आधारित है फिर बाह्य एवं भीतर का प्रश्न नहीं रह जाता । जहाँ तक भी हम कल्पना अथवा चिन्तन करते हैं, वहाँ तक आत्मा ही है । अनुभूतियों का केन्द्र वहीं है ।

जगत को माया मात्र कहकर उसके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि सांसारिक ज्ञान की उपेक्षा भी एक प्रकार से आत्मप्रवंचना ही है । संसार की दृश्यमान सत्ता को स्वीकार करते हुए भी शाश्वत सत्य तक पहुँचने के लिये उसी ज्ञान का सहारा लेना होगा जो अन्तः से उद्भूत होता है, जिज्ञासा के रूप में जिसे जाना जाता है । आत्मानुसन्धान द्वारा ही परम सत्य के निकट पहुँचा जा सकता है, यह एक चिरन्तन सत्य है ।

सत्य को खोजें और उसे ही प्राप्त करें

मनुष्य हर समय कुछ खोजता रहता है । पर वह उसे पा नहीं रहा है । उसकी दिन-रात की दौड़-धूप, परिश्रम, पुरुषार्थ, सब बेकार जा रहा है । वह जो कुछ खोज रहा है, वह निश्चय ही उसे मिल नहीं रहा है ।

यदि मनुष्य से यह पूछा जाये कि वह क्या खोज रहा है तो शायद वह इसका ठीक उत्तर भी न दे पाये । क्योंकि उसे स्वयं ही पता नहीं है कि वह किस चीज की तलाश में है । वह क्या चाहता है ? इस प्रश्न के उत्तर में अनेक लोग अनेक बातें कहेंगे । कोई कहेगा वह रोजी तलाश कर रहा है, कोई धन-दौलत के लिये अपने को व्यस्त बतलायेगा तो कोई प्रेम की खोज करता रहेगा । उत्तर अलग-अलग होने पर भी सारे मनुष्यों की खोज का लक्ष्य एक ही है, जिसे वे स्वयं ही नहीं जानते ।

निश्चय ही सारे मनुष्यों की खोज का लक्ष्य एक ऐसी शांति ही है जो उनके जीवन में स्थिरता एवं आनन्द का समावेश कर सके । एकमात्र इसी स्थायी सुख-शान्ति की खोज ही मनुष्यों का लक्ष्य बना हुआ है । किन्तु वे इसे जानते नहीं और इसी अज्ञानता के कारण वे उसे पा नहीं रहे हैं ।

मनुष्य अज्ञानता के कारण अपने लक्ष्य की खोज भौतिक पदार्थों तथा साधनों में कर रहा है जहाँ कि उसका मिल सकना असम्भव है । मनुष्य की सुख-शांति का लक्ष्य बाह्य पदार्थों में नहीं है । उसकी स्थायी सुख-शांति का निवास उसकी आत्मा में है । अस्तु, मनुष्य को सुख-शांति की खोज अपनी आत्मा में ही करनी चाहिये । जब तक वह बाह्य से अन्तराभिमुख होकर आत्मा की ओर उन्मुख नहीं होगा, अपने लक्ष्य में सफल न हो सकेगा । उसका बहुमूल्य मानव-जीवन यों ही अटकने-भटकने में समाप्त हो जायेगा ।

परमात्मा का प्रतिबिम्ब--उसका अंश होने के कारण आत्मा शाश्वत है, सत्य है । सत्य का आधार लिये बिना कोई भी आत्मा तक नहीं पहुँच सकता । आत्म-साक्षात्कार करने के लिये मनुष्य को जीवन में सत्य की स्थापना करनी होगी । अपने चारों ओर अन्दर-बाहर बिखरे पड़े सत्य की खोज करनी होगी उसे पाना होगा । सत्य के दर्शन ही एक प्रकार से आत्मा का दर्शन है ।

सत्य क्या है यह जाने बिना उसकी खोज का ठीक प्रयत्न ही कैसे किया जा सकता है । सत्य के स्वरूप के विषय में हर मनुष्य अपनी एक अलग धारणा रखता है । पर उसके विषय में भी वह पूरी तरह से आश्वस्त एवं निश्चित नहीं होता । उसकी यह अनिश्चितता ही इस बात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का प्रमाण है कि उसने सत्य के विषय में जो धारणा बनाई है अथवा जिस बात को सत्य समझ रहा है वह वास्तविक सत्य नहीं है ।

सत्य के लिये कोई अध्ययन करता है । गुरु एवं उपदेशक के पास जाता है, मनन एवं चिन्तन करता है किन्तु किसी भी प्रकार से सत्य के दर्शन नहीं कर पाता । अज्ञानतावश वह किसी भी मनभाई अथवा जी में जम जाने वाली बात को ही सत्य समझ लेता है । किन्तु कुछ समय बाद उससे भी अधिक जमने वाली बात उसके पूर्व सत्य को उखाड़ कर फेंक देती है और उसके स्थान पर अपना अधिकार जमा लेती है । इस प्रकार जीवन भर मनुष्य अपने निर्धारित सत्यों में परिवर्तन करता रहता है । वह सत्य हो नहीं सकता जिसमें परिवर्तन सम्भव हो सके । सत्य सदा अटल तथा एक रूप ही रहता है ।

अनिश्चय के साथ मनुष्य में सत्य स्वीकार करने का साहस भी नहीं होता । वह सत्य को उसी रूप में स्वीकार करना चाहता है जिस रूप में वह उसे प्रिय हो । अपने अल्पज्ञान के आधार पर वह सत्य का जो चित्र बनाना चाहता है अथवा बनाया करता है उसके अतिरिक्त वह सत्य को और किसी रूप में स्वीकार करने को कदापि तैयार न होगा ।

यदि मनुष्य से कहा जाये कि स्त्री-पुत्र, धन-दौलत आदि में मिलने वाला सुख असत्य है उसे त्याग देने पर शाश्वत सत्य के दर्शन हो जायेंगे तो वह शायद ही इसे मानने और इसके अतिरिक्त किसी सुख को स्वीकार करने को तैयार हो सके । मनुष्य अच्छी तरह जानता है और अनुभव भी करता रहता है कि भौतिक वस्तुओं में वह जिस सत्य, जिस सुख का आभास पा रहा है वह निश्चय ही अवास्तविक है किन्तु फिर भी वह उसको त्यागने अथवा उसके विषय में अपना भ्रम दूर करने के लिये तैयार न होगा । उसे यह भय रहता है कि किसी शाश्वत सत्य की स्वीकृति में कहीं उसका यह अवास्तविक सत्य भी न चला जाये और तब वह बिलकुल खाली हाथ रह जाये । इस प्रकार का भय एवं अवास्तविक सत्य के प्रति मोह रखने वाला कभी शाश्वत सत्य के दर्शन कर सके यह असम्भव है ।

यदि किसी से ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, मोह आदि विकारों को त्याग देने के लिये कहा जाये तो वह यही कहेगा कि यह सब मनुष्य से जन्म लेती है, मनुष्य इन सामयिक सत्यों से मुक्त नहीं हो सकता । ऐसे-ऐसे सत्य विरोधी विकारों में विश्वास रखने वाला मनुष्य भला उस शाश्वत सत्य को कैसे पा सकता है जिससे उसकी लक्ष्य सिद्धि हो सके और वह एक स्थिर सुख-शांति की उपलब्धि कर सके ?

सत्य के प्रति भयभीत अथवा अनिश्चित रहने वाला कभी भी सत्य को नहीं पा सकता । सत्य भय एवं अनिश्चय से सर्वदा परे है । मस्तिष्क में ईर्ष्या, द्वेष, भय तथा मोह की विकृति लेकर अथवा यह सत्य है वह सत्य नहीं है, यह सत्य है वह सत्य नहीं था, आदि की भ्रान्त धारणाओं में भटकने वाला सत्य की खोज में यों ही भटकता-भटकता जीवन समाप्त कर देगा और सत्य की छाया मात्र भी नहीं पा सकता ।

वास्तविक सत्य की खोज के लिये आन्तरिक एवं बाह्य सारी विडम्बनाओं को त्यागना होगा । सत्य के लिये हृदय में एक सदा सजग उत्सुकता को उत्पन्न करना होगा और सत्य कड़ुआ हो अथवा मधुर उसे स्वीकार करने का साहस संचय करना होगा । धर्म अथवा धर्मगुरुओं के आधार पर जिस सत्य की धारणा बना रखी है, उसे बदलने के लिये तैयार रहना होगा । एक कुम्भकार जिस प्रकार मिट्टी से मनमानी आकृतियों की रचना करता रहता है उसी प्रकार सत्य का स्वरूप स्वयं गढ़ लेने से सत्य को नहीं पाया जा सकता । नित्य, महान, विस्तृत तथा देशकाल की सीमा से परे सत्य को मनुष्य अपनी कल्पना के आधार पर निर्धारित नहीं कर सकता । ईर्ष्या, द्वेष मोह आदि दुर्गुणों से विकृत हृदयों में सत्य की ज्योति न जल सकती है और न जलायी जा सकती है । सत्यान्वेषण के लिये मस्तिष्क को निर्द्वन्द्व एवं निर्विकार बनाना ही होगा ।

सत्य की खोज के लिये लोग पुस्तकों का सहारा लेते हैं, उपदेशकों तथा धर्मगुरुओं पर निर्भर होकर आशा करते हैं कि उन्हें सत्य का साक्षात्कार करा देंगे । ऐसी आशा करने वाले अपने ध्येय में सफल नहीं हो सकते । ग्रन्थ एवं धर्म गुरु सत्यान्वेषण का मार्गनिर्देश तो कर सकते हैं किन्तु सत्य को हथेली पर नहीं रख सकते । उसे पाने के लिये तो मनुष्य को स्वयं ही प्रयत्न एवं साहस करना होगा । सत्य की प्राप्ति आत्मप्रयासों से ही की जा सकती है । दूसरों के आधार पर सत्य पा लेने की आशा करने वाले जिन्दगी भर मरु-मरीचिका में ही भटकते रहते हैं । जो स्वयं ही साहस एवं श्रम नहीं कर सकता, उसे सत्यान्वेषण की इच्छा अपने मस्तिष्क से निकाल ही देनी चाहिए । पूर्ण न हो सकने वाली आकांक्षाओं का पालना अपने जीवन को कंटकाकीर्ण बनाना है ।

यदि किसी में सत्यान्वेषण की सच्ची जिज्ञासा है, तो उसे अपने जीवन की सारी विकृतियों को दूर करना ही होगा । सत्य पाने के लिये सत्य की तरह ही निर्मल एवं निर्द्वन्द्व बनना पड़ेगा । सत्य परमात्म-स्वरूप और परमात्मा सत्य स्वरूप है । सत्य तथा परमात्मा एक ही परमतत्व के दो परिचायक शब्द हैं । सत्य एवं परमात्मा के बीच अन्तर नहीं किया जा सकता । उस परम तत्व को पाने के लिये उसी की तरह विस्तृत एवं विशाल बनना होगा । क्षुद्र स्वार्थ की सीमाएँ तोड़कर अपने को व्यापक बनाना होगा । जिस प्रकार सचराचर जगत में परमात्मा का प्रेम समान रूप से तरंगित होता है, सत्यान्वेषी को भी अपने प्रेम का प्रसार उस सीमा तक करना होगा । जिस दिन मनुष्य अपनी स्वार्थ पूर्ण परिधि से निकलकर सत्य की तरह ही व्यापक हो जायेगा, उसी दिन उस शाश्वत सत्य के दर्शन पा लेगा जो उसके ध्येय सच्ची सुख-शांति का एकाकी तथा अविचल आधार है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि मनुष्य सत्य की तरह निर्मल एवं निर्विकार होना चाहता है तो उसे अपनी आत्मा के मुक्त होने में सहायक बनना होगा जो बन्धन तोड़कर अपने अंशी परमात्मा की तरह ही व्यापक एवं विस्तृत होने का प्रयत्न कर रही है । मनुष्य का विस्तार उसकी आत्मा की मुक्ति तथा विस्तार के अनुपात से होता है । जितनी जिसकी आत्मा बन्धनरहित तथा विस्तृत होती जायेगी वह स्वयं भी उसी अनुपात से विस्तार पाता जायेगा । भ्रमवश अपने को शरीर समझने वाला मनुष्य यथार्थ में आत्मा ही है । अपने सत्य स्वरूप आत्मा पर अपना ध्यान तथा सत्यान्वेषण का प्रयास केन्द्रित कर देने से सत्य का रहस्य स्वयं उद्घाटित होने लगता है ।

आत्मा आप से केवल इतनी अपेक्षा करती है कि आप उसके प्रति श्रद्धालु एवं आस्थावान बने रहें । अन्य अनित्य वस्तुओं की तुलना में उसका अपमान अथवा अवहेलना न करें । मनुष्य मन प्राण अथवा शरीर की तुलना में जब आत्मा को हेय समझने लगता है तब वह दुःखी हो जाती है और उसकी मुक्ति का प्रयास मन्द पड़ जाता है । अपने प्रति श्रद्धालु एवं आस्थावान व्यक्तियों को आत्मा शीघ्र ही दर्शन दिया करती है ।

संसार में बरतते हुये अन्दर से उससे विरक्त एवं निर्मोही रहकर जो व्यक्ति मुख्य रूप से आत्मा तक ही केन्द्रित हो जाते हैं वे उससे एकता प्राप्त कर शांत, गम्भीर एवं उपद्रव रहित हो जाते हैं । मनुष्य की निर्द्वन्द्व एवं उपद्रव रहित स्थिति ही वह शाश्वत सत्य है जिसकी खोज में मनुष्य भटक रहा है और जो उसके लक्ष्य सुख-शांति का अविचल आधार है ।

आत्मा तक केन्द्रित होने का अर्थ ठीक से समझ लेना होगा नहीं तो आत्म में लीनता के भ्रम में मनुष्य घोर स्वार्थी बन सकता है । आत्मा तक केन्द्रित होने का यही अर्थ है कि मनुष्य, मन, प्राण एवं शरीर से परे अपने उस स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करे जो व्यापक, विस्तृत एवं निरुपद्रव है । अपने मन प्राण तथा शरीर के पोषण में लगा रहना ही आत्मा के प्रति केन्द्रीयता मानना भारी भूल होगी ।

मनुष्य सत्य की खोज कर रहा है और वह सत्य परमात्मा के अंश आत्मा में निहित है और जो मनुष्य का सच्चा एवं शाश्वत स्वरूप है । निरुपद्रव आत्मा का साक्षात्कार ही सत्य है और उसी सत्य में मनुष्य का लक्ष्य, सच्ची सुख शान्ति निहित है ।

सत्य ही हमें स्वर्ग तक पहुँचाता है महाभारत के उद्योग पर्व में लिखा है—

''सत्य स्वर्गस्य सोपान पारावारस्नौरिव ।''

अर्थात् जिस प्रकार नाव का आश्रय व्यक्ति को समुद्र पार करा देता है, उसी प्रकार सत्य व्यक्ति को संसार-सागर से पार कर स्वर्ग तक पहुँचा देता है ।

यह एक सारपूर्ण सिद्धान्त है । सत्य का मार्ग देखने और चलने में कठिन और दुरूह प्रतीत होता है किन्तु सत्य जैसा मार्ग दूसरा नहीं । एक असत्य को छिपाने के लिए लाख असत्य बोलने पड़ते हैं, नमक-मिर्च लगाना पड़ता है । मस्तिष्क को विभिन्न प्रकार की कसरत करनी पड़ती है तो भी सत्य छिपाने में छिप नहीं पाता । एक दिन असत्य खुलता ही है और तब असत्यवादी सबका विश्वास भी खो बैठता है और अपना सम्मान भी । उसे किसी का सहयोग नहीं प्राप्त होता ।

सत्य ही हमें स्वर्ग तक पहुँचाता है

असत्य का मार्ग पकड़कर लोग थोड़े दिनों तक लाभ अर्जित कर सकते हैं, अपनी और इज्जत बढ़ा सकते हैं, अपनी शान-शौकत जताकर लोगों को थोड़े दिन तक उल्लू बना सकते हैं । किन्तु रामलीला के नकली रावण को जैसे ही दियासलाई लगती है, विशालकाय रावण थोड़ी ही देर में जलकर भस्म हो जाता है । वैसे ही असत्य का अनावरण एक-न-एक दिन होता ही है । **''सत्यमेव जयते नानृतम''** ।

सत्य-साधना कठिन इसलिए प्रतीत होती है कि उसमें असत्य की चमक-दमक नहीं है । सत्य संयम है, व्रत है । सत्य सारे साधनों की आधारशिला है । कोई भी साधना कितनी ही ऊँची क्यों न हो, बिना सत्य-साधना के सफल नहीं हो सकती । आध्यात्मिक प्रगति के लिए सत्य का अवलम्बन करने पर अन्य साधनों की आवश्यकता नहीं रहती । ईमानदारी, सहिष्णुता, उदारता, भयहीनता आदि गुण सत्य के सहचर हैं । सत्य-पथ का पथिक न कभी अशान्त होता है । न शोक करता है, न संताप करता है । यह सब असत्य-परायणों के लिए ही निश्चित है । सत्यपरायण के लिए लोक में शांति एवं सम्मान तथा परलोक में स्वर्ग सुरक्षित रखा है, जिसे वह अधिकारपूर्वक प्राप्त करता है । सत्य का अनुसरण करने वाला क्या भौतिक और क्या आध्यात्मिक किसी भी क्षेत्र में असफल नहीं होता । सत्य बोलने, सत्य के अनुरूप सोचने और सत्य से स्वीकृत कर्म करने से ही मनुष्य सत्य-स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर सकता है ।

भारतीय धर्म में सत्य को परमात्मा का स्वरूप माना है । सत्य को नारायण कहा गया है । सत्य-नारायण व्रत एवं कथा यह चिर-प्रचलित है । यह सत्य-नारायण कोई व्यक्ति या देवता नहीं है वरन् सच्चाई को अन्तःकरण, मस्तिष्क और व्यवहार में प्रतिष्ठापित करने की प्रगाढ़ आस्था ही है । जो सत्य-निष्ठ है वही सत्य-नारायण भगवान का समीपवर्ती साधक है । स्वर्ग और मुक्ति, सिद्धि और समृद्धि तो उसके करतलगत ही हैं ।

सत्य शाश्वत होता है । मानवीय नियमों की भाँति वे बदले और संशोधित नहीं किये जा सकते । सत्य ही व्यक्ति के जीवन में बल एवं प्रकाश उत्पन्न करता है । सत्य के आधार पर समाज की शक्ति और क्षमता निखरती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असत्य का आश्रय लेने पर व्यक्ति और समाज का अध:पतन होता है ।

असत्य का त्याग करना जीवन में आनन्द और विकास के बीज बोने के समान है । 'सत्यं शिवं सुन्दरम्', सत्य ही शिव है-कल्याणकारी है और वही सुन्दर है । असत्य का आचरण हर प्रकार से अमांगलिक होता है । मनीषियों ने सत्य को मनुष्य के हृदय में रहने वाला ईश्वर बताया है । सत्य ही वह सार्वकालिक और सार्वदेशिक तथ्य है जो सूर्य के समान हर स्थल पर समान रूप से चमकता है ।

आनन्द और उसका उद्‌गम स्थान

सुख की आकांक्षा हममें से हर एक को स्वभावत: ही होती है और सभी चाहते हैं कि निरन्तर सुख-साधन उपलब्ध होते रहें । पर देखा जाता है कि इस आकांक्षा की पूर्ति कोई बिरले ही कर पाते हैं । क्योंकि हम यह ढूँढ़ नहीं पाते कि आनन्द का उद्‌गम स्थान कहाँ है ? जब तक यह पता न हो कि वस्तु कहाँ मिलेगी तब तक अनुमान से जहाँ-तहाँ खोजने फिरने से क्या लाभ ? आनन्द की तलाश हम वस्तुओं और साधनों में करते हैं, पर वे बेचारे जड़ पदार्थ जब स्वयं ही चेतनाहीन हैं तो हमें सुख कहाँ से प्रदान करें ? आनन्द का उद्‌गम स्थान चेतन, आत्मा एवं ब्रह्म है । यदि उसी का सान्निध्य प्राप्त किया जा सके तो सुख प्राप्ति की समस्या सहज ही हल हो सकती है ।

स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति ठाट, बाट, विषय-भोग, अहंकार, अधिकार आदि जिन कार्यों में लोग आम-तौर से प्रसन्न रहते हैं उनके बारे में गम्भीरता से विचार किया जाय तो दूसरा ही गुल खिलता है । कोई स्त्री बहुत रूपवती है, उसके प्रति बड़ा मोह और आकर्षण लगता है, पर जब उस शरीर में रहने वाली जीवात्मा अपने से कटुवचन बोले, दुर्व्यवहार करे, शत्रुता रखे तो वह आकर्षण कहाँ रहेगा ? मर जाने पर बहुत सुन्दर और प्रिय लगने वाले शरीर भी नष्ट करने और दूर हटाने पड़ते हैं । इससे सिद्ध हुआ कि रूप यौवन का आकर्षण धोखा है । सन्तोष तो उसके भीतर रहने वाला सूक्ष्म सत्ता के उन्मुख या विमुख होने पर निर्भर है । अपने कुरूप स्वजन, स्त्री-बच्चे भी सच्चा प्रेम होने पर कितने प्रिय लगते हैं ? पर पड़ोसी के सुन्दर घरवालों के प्रति भी अपना कोई आकर्षण नहीं होता । इससे प्रतीत होता है कि रूपवान शरीरों के सान्निध्य में सुख प्राप्ति की मान्यता मिथ्या है । प्रेम, आत्मीयता तथा सद्‌भावना के आधार पर ही वह आकर्षण, आनन्ददायक एवं सफल हो सकता है । आत्मीयता की, गृहिणी और रमणी की दृष्टि से जब किसी रूपसी को देखा जाता है तो ही उसमें आकर्षण पैदा होता है अन्यथा शत्रुता रखने वाली रूपवती से कहाँ किसी को आकर्षण होता है ? रूप में झलकने वाला आकर्षण इस बात पर निर्भर है कि उसे रमणी की मोह-मयी दृष्टि से देखा गया या नहीं ।

इसी प्रकार धन-सम्पत्ति का आकर्षण भी ममता के ऊपर ही निर्भर है । जब तक वह अपने अधिकार में है तभी तक आनन्ददायक रहती है । जो जेवर, चाँदी, सोना, मकान, मोटर जमीन-जायदाद आदि आज अपने हैं और प्राणप्रिय लगते हैं वे यदि बेच देने पर या छिन जाने पर या किसी अन्य कारण से पराये हो जाते हैं तो उनमें फिर कुछ भी आकर्षण नहीं रहता है। पीछे वे टूटते-फूटते, नष्ट होते रहें तो इससे किसी को कोई दु:ख नहीं होता । कल तो जिस चीज को जरा-सी आँच आने पर अपना जी तिल-मिला उठता था आज वहीं विरानी होने पर उपेक्षापूर्ण बनी हुई है । इसका कारण अपनेपन की भावना का समाप्त होना ही है । इससे सिद्ध होता है कि जो अपना है वही प्रिय है । वस्तुओं में नहीं भाव में आकर्षण है ।

मिर्च खटाई एक को प्रिय, दूसरे को अप्रिय लगती है । स्वाद मिर्च खटाई में नहीं, अपनी पसंदगी में मानना पड़ेगा । नदी, वन पर्वतों के प्राकृतिक दृश्य मनोहर नहीं होते, अपनी सौन्दर्य पारखी दृष्टि के अनुरूप ही वे सुन्दर लगते हैं । जिस वन के सौन्दर्य पर यात्री लोग मुग्ध होते हैं, उसके चित्र उतारते हैं, प्रशंसा करते-करते नहीं थकते, उन्हीं वनों को वहाँ के निवासी असुविधाजनक मानते हैं और सोचते हैं कि यहाँ से कहीं अन्यत्र सुविधा की जगह जाकर रहा जाय । उन्हें शहरों में आकर्षण और वनों में कुरूपता लगती है । जंगल काटने वालों को वही सुन्दर उपवन एक व्यापार क्षेत्र मात्र प्रतीत होता है । नाव खेने वालों को, मछली पकड़ने वालों को नदी तालाब एक खेत या कारखाने मात्र दीखते हैं । उनके सौन्दर्य का उन्हें आभास भी नहीं होता ।

देवता विश्वास और भावना के आधार पर फल देते हैं । जिनमें श्रद्धा नहीं उनके लिए देव-मन्दिरों में प्रतिष्ठापित प्रतिमाएँ पत्थर का एक छोटा खिलौना मात्र हैं । तीर्थों, देव-मंदिरों, ऐतिहासिक स्थानों में भावना उल्लसित करने वाला वातावरण केवल उन्हीं को मिलता है जिनके मन में उस प्रकार की भावनाएँ विद्यमान हैं अन्यथा साधारण दृष्टि से वे स्थान भी अन्य मामूली जगहों की तरह ही हैं । वहाँ के निवासी तो उन स्थानों को बिल्कुल साधारण सी वस्तु समझते हैं । गंगा भी एक मामूली नदी मात्र है । भावना के बिना इसका पवित्रता प्रदान करने वाला गुण कहाँ टिक पाता है ?

इस दृष्टि से विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि जड़ पदार्थों में वस्तुत: कुछ भी आकर्षण, कुछ भी लाभ, कुछ भी आनन्ददायक तत्व नहीं है जो कुछ आकर्षण और यहाँ दिखाई पड़ता है उसका आधार केवल चेतन है । कहीं तो हमारा अपना चेतन किन्हीं वस्तुओं को अपना मान कर उन्हें प्यार करने पर उन्हें प्रिय समझने लगता है और कहीं दूसरों का चेतन अपनी उत्कृष्ट प्रवृत्तियों का परिचय देकर हमें उल्लास और आह्लाद से ओत-प्रोत कर देता है । जड़ पदार्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो केवल सुविधा के स्थूल उपकरण मात्र हैं । हम उनके पीछे पागल न बनें वरन् चेतन का महत्त्व समझें, उसका सही मूल्यांकन करें, उसी की समीपता और उपलब्धि का प्रयत्न करें ।

चेतना का अजस्र भण्डार अपने भीतर भरा हुआ है । उसका जितना सम्मिश्रण जिस वस्तु में कर देंगे वह उतनी ही सुन्दर दीखने लगेगी, प्रिय लगने लगेगी । ऐसी दशा में हम संसार के बाहरी पदार्थों के पीछे क्यों भागे ? प्रिय की प्राप्ति के लिए इधर-उधर क्यों मारे-मारे फिरें ? जब अपनी भावना पर ही वस्तुओं का प्रिय लगना निर्भर है तो जो उपयोगी आवश्यक और उपलब्ध वस्तुएँ हों उन्हीं से अपनापन क्यों न करने लगें ? उन्हें ही आत्मीयता की दृष्टि से देख कर प्रिय मात्र क्यों न बना लें । सन्तोष का यही मार्ग है । प्रिय किसे मानना, किसे न मानना यही असंतोष का कारण है । जो प्राप्त नहीं है, जो दूर है, जो स्वप्नलोक में लटका हुआ है, उसके प्रति ममता का आरोपण करके मनुष्य असन्तुष्ट और खिन्न रहता है । किन्तु जब वह उपलब्ध वस्तुओं को अच्छी, उचित, पर्याप्त और सुविधाजनक मान लेता है तो अभावग्रस्त दीखने वाला व्यक्ति भी बहुत सुखी और सन्तुष्ट बन जाता है ।

प्रत्येक पदार्थ में चेतन ब्रह्म की सूक्ष्म सत्ता मौजूद है । उसी को हम जब ममतामय दृष्टिकोण के साथ देखते हैं तो सौन्दर्य और आनन्द का आभास होने लगता है । वस्तुतः यह स्थूल जगत जड़ मात्र है । जड़ में न तो जीवन है और न आनन्द । उसको महत्त्व क्यों दें और क्यों उसके सान्निध्य, सान्निध्य के पीछे पागल बनें ? जब भावना ही एकमात्र आनन्द का उद्गम है तो उसको परिष्कार करके संसार के समस्त जड़-चेतन को आत्मीयता की भावना के साथ क्यों न देखा करें, जिससे यह सब कुछ आनन्दमय ही आनन्दमय प्रतीत होने लगे ।

चेतन सत्ता का अवतरण : व्यक्तित्व में परिवर्तन

दैवी चेतना के बारे में कहा जाता है कि वह जब जिसमें उतरती है, उसके जीवन को बदल कर रख देती है, उसे प्रसन्नता-प्रफुल्लता से भरकर प्रत्यक्ष स्वर्ग का आनन्द लाभ देती है । स्वभाव और आचरण में ऐसा परिवर्तन ला देती है, मानो मनुष्य शरीर में वह कोई देव पुरुष हो ।

विश्वविख्यात कवि राबर्ट लुई स्टीवेंसन के बारे में मान्यता है कि जीवन के उतरार्द्ध में उनमें ऐसी ही चेतना का अवतरण हुआ था । इससे पूर्व वह एक ऐसे व्यक्तित्व थे, जिनके जीवन में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, अविश्वास के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं । यही उनकी वैयक्तिक सम्पत्ति थी । जो कोई उनसे मिलने आता, उन्हें भी इसके अतिरिक्त और कुछ प्राप्त न होता । आत्मीयता दिखाना और मधुर बोलना तो जैसे उन्होंने सीखा ही नहीं था । उनके इस व्यवहार से पड़ोसी, परिचित, मित्र ही नहीं सगे-सम्बन्धी भी कन्नी काटने लगे थे, जिससे उनका जीवन एक तरह से नीरस, उबाऊ व एकाकी बन गया था । मन की स्थिति का शरीर पर भी प्रभाव पड़ा । शरीर-स्वास्थ्य बिगड़ने लगा । इस क्रम में एक समय ऐसा आया, जब वे क्षय रोगी-से दिखाई पड़ने लगे, वजन भी कम हो गया व भूख भी गायब हो गयी । पड़ोसी उनके विषय में अटकलें लगाते हुए कहते—स्टीवेंसन अब मुश्किल से कुछ महीनों का मेहमान है, पता नहीं कब क्या हो जाय ?

स्टीवेंसन अपनी इस स्थिति से भलीभाँति परिचित थे । स्वयं को परिवर्तित करना चाहते थे, पर कर नहीं पा रहे थे और निराशा, हताशा की स्थिति में जीवन गुजार रहे थे । जब उनकी यह दशा एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सक मित्र ने देखी, तो सलाह दी कि आप कहीं अन्यत्र चले जायें और नये सिरे से नयी जिन्दगी की शुरूआत करें । ईश्वर आप की सहायता अवश्य करेंगे, पर एक बात का स्मरण रखें "परम सत्ता केवल उन्हीं की सहायता करती है, जो अपनी सहायता आप करते हैं ।" स्टीवेंसन को सुझाव जँच गया वह वहाँ से दूर और नितांत अपरिचित समोआ द्वीप में चले गये ।

प्रथम दिन और प्रथम अभ्यास उन्होंने वहाँ प्रेम का किया । जो कोई मिलता उसके लिए हाथ नमस्कार के लिए उठ जाता । कोई घर आ गया, तो बिना चाय पिये जा नहीं सकता, भले ही वह मजदूर ही क्यों न हो । छोटे बच्चे रात बेचैनी में काटते । सबेरा होते ही उनका द्वार खटखटाते और बाहर से ही पूछते-यार लुई! तुम अब तक सोये पड़े हो । हम सब कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं । बाहर आओ, देखो न कितने लोग आ गये हैं । स्टीवेंसन अँगड़ाई लेते बाहर आते और बच्चों से ऐसे घुल-मिल जाते कि उन्हें पता भी नहीं चलता कि और भी स्त्री, पुरुष, वृद्ध वहाँ आ पहुँचे हैं । लुई उन सब को शिक्षाप्रद कहानियाँ और महापुरुषों की जीवनियाँ सुनाते । उसका प्रभाव यह होता कि दिन भर वहाँ भीड़ जुटी रहती । स्टीवेंसन उन्हीं में व्यस्त प्रेम बाँटते रहते और अपनी कमियों-बुराइयों को निकालने का संकल्प दृढ़ करते । इस मध्य उनके स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक परिवर्तन आया । अब जो कोई उन्हें देखता, वह यही कहता कि यह स्वयं स्टीवेंसन नहीं उनके शरीर में किसी प्रत्यक्ष दैवी सत्ता का प्राकट्य है । स्वयं लुई का भी ऐसा ही विचार था । वे कहते जब मैं कोई कार्य आरम्भ करता हूँ तो ऐसा लगता है, मानो कोई मेरी सहायता कर रहा हो । जब मैं किसी विषय पर सोचना आरम्भ करता हूँ तो उसमें गहराई तक उतरता चला जाता हूँ । ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई मेरे मस्तिष्क में तत्व सम्बन्धी विषय की क्रमबद्ध जानकारी भरता जा रहा हो । वे इस बात को स्वीकार करते थे कि ज्ञान और व्यवहार में इस प्रकार की कोई विशेषता उनमें पहले नहीं थी । पता नहीं यहाँ आने के थोड़े दिन पश्चात् यह क्यों होने लगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुत: यह दैवी सत्ता का चमत्कार है । यह सत्य है कि जब दैवी चेतना का किसी में अवतरण होता है, तो उसके व्यक्तित्व का सर्वांगपूर्ण कायाकल्प कर देती है ।

ब्रह्माण्ड का पंचकोशी शरीर

ब्रह्माण्ड को परम सत्ता का शरीर रूप माना गया है एवं इसमें संव्याप्त चेतन सत्ताओं को उसी का एक घटक माना जाता है । मान्यता है कि जिस प्रकार सारे वृक्ष की सत्ता एक बीज में, मानवी सत्ता शुक्राणु में तथा पदार्थ की सत्ता अणु में छिपी होती है । उसी प्रकार इस निखिल ब्रह्माण्ड का संक्षिप्त संस्करण हर चेतन सत्ता में देखा जा सकता है । मानवी चेतन सत्ता के सूक्ष्म शरीर में पाँच कोश अवस्थित बताये गए हैं । आप्त वचनों के अनुसार क्रमश: अन्नमय कोश से विकसित होते-होते चेतना का ऊर्ध्वारोहण होता जाता है एवं आनन्दमय कोश की स्थिति में वह मुक्ति की स्थिति में पहुँच जाता है ।

योगीराज अरविन्द ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से सारे ब्रह्माण्ड के विकास में व्यष्टि सत्ता का विकास मानते हुए समष्टि के भी पाँच भाग किए हैं । उनके अनुसार वनस्पति जगत एक विशेष योनि है जिसे हम ब्रह्माण्ड का अन्नमय कोश कह सकते हैं । प्राणी जगत इससे ऊँची योनि है जिसे ब्रह्माण्ड का प्राणमय कोश नाम दिया गया है । मनुष्य के अवतरण के रूप में मनोमय कोश विकसित हुआ है । सृष्टि के विकास की दृष्टि से सोचा जाय तो अभी तीन ही कोश सक्रिय हैं । चौथा विज्ञानमय कोश उन्होंने अतिमानस की सत्ता के रूप में माना है जिसका अवतरण होना बाकी है । अन्तिम आनन्दमय कोश ब्रह्माण्ड के पूर्ण विकास की स्थिति होगी, मानव में देवत्व तथा धरती पर स्वर्ग का वातावरण होने से सतयुगी परिस्थितियाँ होंगी ।

वस्तुत: योगीराज की विकासवाद की यह परिभाषा अपने में विलक्षण है एवं विज्ञानसम्मत है । पौधे-वनस्पति, पशु-पक्षी, मनुष्य ये तीनों इस जगत में एक साथ आए, किन्तु उनका स्तर अलग-अलग था । मनुष्य स्वभावत: शाकाहारी है । उदर पूर्ति वह वनस्पति समुदाय से करता है । ब्रह्माण्ड के प्रथम कोश-अन्नमय कोश के रूप में इस प्रकार वनस्पति जगत ने स्थान लिया । पादप-वनस्पतियों में चेतना होते हुए भी हलचल नहीं होती, इसी कारण वे प्रारम्भिक योनि के स्तर पर माने गए ।

प्राणियों में चेतना है तथा हलचल भी । दैनन्दिन जीवन के उदरपूर्णा एवं प्रजनन सम्बन्धी क्रिया-कलाप भी वे चलाते रहते हैं । प्राण-विद्युत का स्थूल नियोजन भर कर पाने वाले इन जीवों—पशु-पक्षियों को ब्रह्माण्ड का प्राणमय कोश माना गया । इससे ऊँची स्थिति तक वे पहुँच नहीं पाते ।

श्री अरविन्द के अनुसार मानवीय चेतना के अन्तराल में ही ब्राह्मी चेतना की परम सत्ता से अतिमानस का अवतरण होगा, तब सभी मनुष्य देवपुरुष होंगे । उनकी भावनाएँ उदात्त होंगी, वे संकीर्ण स्वार्थपरता, कुतर्कवाद, द्वेष-कलह, मनोविकारों से मुक्त होंगे एवं अन्तत: मोक्ष का द्वार खोलेंगे जो आनन्दमय कोश की स्थिति होगी ।

सूक्ष्मीकरण प्रकरण में व्यष्टि सत्ता की चर्चा के अन्तर्गत पाँच वीरभद्रों के रूप में पाँच कोशों की चर्चा स्थान-स्थान पर की गई है । ये हर व्यक्ति के अन्तराल में प्रसुप्त पड़ी चेतन जगत के भाण्डागार की बहुमूल्य निधि है, जिनकी जाग्रति हेतु साधना पुरुषार्थ का अवलम्बन लिया जाता है । अभी हम चेतना के बोध के तीन आयामों को ही जान पाये हैं । समष्टिगत स्तर पर ब्राह्मी चेतना के पाँच आयामों की जानकारी इसी कारण हमें विलक्षण लगने लगती है । योगी दिव्य दृष्टि सम्पन्न होते हैं । योगीराज अरविन्द ने मानवीय विकास की जिन पाँच योनियों का वर्णन ब्रह्माण्डीय पंचकोशों के रूप में किया है, वह एक अभूतपूर्व किन्तु यथार्थ प्रतिपादन है । जिस दिन मानव अतिचेतन, अतिमानस की स्थिति को प्राप्त कर लेगा, वह चतुर्थ आयाम में पहुँच जाएगा । प्रस्तुत सन्धिकाल मानवीय सत्ता के अति मानवीय सत्ता में हस्तान्तरित होने का संक्रान्ति काल है । आनन्दमय कोश की स्थिति, मानव में देवत्व के जागरण की स्थिति इसी का उत्तरार्द्ध है जो नियन्ता द्वारा निर्धारित मानव के विकास का चरम बिन्दु है ।

प्राणशक्ति का उदात्तीकरण

सामान्यतया चेतना हर जीवधारी में होती है, पर उनमें उसका स्तर इतना निम्न होता है कि वे बस अपना जीवन शकट ही किसी प्रकार खींचते, चलाते रह पाते हैं । सामान्य स्थिति में मनुष्यों में भी इसका स्तर कोई बहुत ऊँचा नहीं होता । उतना ही होता है, जिससे कि वह जीवन की आवश्यकताओं, समस्याओं व कठिनाइयों का किसी प्रकार हल निकाल सकें । इस स्थिति में इससे अधिक वह और कुछ नहीं कर पाता, किन्तु इसी चेतना को जब परिष्कृत और परिमार्जित कर लिया जाता है, तो स्वयं वह इतना सशक्त और समर्थ बन जाती है, जिसे बन्दूक में भरी बारूद कहा जा सके । फिर उसे जिस भी दिशा में लक्ष्य कर छोड़ा जाता है, वहीं सफलता हस्तगत करती है ।

वस्तुत: चेतना है क्या ? बोलचाल की भाषा, दर्शन एवं मनोविज्ञान में इसका प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है । अँग्रेज दार्शनिक लॉक ने मानवीय सूझबूझ नामक निबन्ध में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए मानवीय मस्तिष्क से गुजरने वाली घटनाओं के बोध को चेतना नाम दिया है और कहा है कि बोधगम्यता विचारणा, आकांक्षा, विवेकशीलता, जैसी मानसिक अवस्थाओं को समयानुरूप अनुभव करने की क्षमता चेतन सत्ता ही रखती है ।

वेब्स्टर ने इसे इन्द्रियों का बोध और मस्तिष्क की कार्य प्रणाली को समझने की क्षमता रखने वाला तंत्र बताया है । हेलेक का कहना है कि चेतना की कोई परिभाषा नहीं दी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जा सकती और न इसे किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला में ही सिद्ध किया जा सकता है, जबकि मौड्सले की अवधारणा है कि मन:संस्थान की क्रियाप्रणाली पूर्णत: स्वतंत्र नहीं है । इसमें १० प्रतिशत हस्तक्षेप चेतना का रहता है । सर थामस रीड ने तो इसे मनोद्रेशा की भाँति ही अनुभवशील बताया है और कहा है कि उसी की तरह यह परिवर्तनशील भी होती है ।

शरीरविज्ञानियों द्वारा किये गये परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि मनुष्य की स्वादेन्द्रिय इतना अधिक संवेदनशील होती है कि कुचला सत्व (स्ट्रिक्नीन) का एक भाग यदि १० लाख भाग पानी के साथ मिला दिया जाय, तो भी वह उसका स्वाद सुगमतापूर्वक अनुभव कर लेती है । इसी प्रकार कान की श्रवण सीमा २० से २० हजार हर्टज होती है, जबकि दृष्टि सीमा का निम्न स्तर ४५० खरब और उच्चतम स्तर ७५० खरब सेकण्ड है । स्थूल अंगों की क्षमता के रूप में यह तो चेतना के एक छोटे से स्वरूप की दर्शन-झाँकी हुई । इसकी सीमा भी अपरिमित होती है । जहाँ पर स्थूल इन्द्रियाँ काम करना बन्द कर देती हैं, वहीं से चेतना के परिष्कृत-विकसित स्वरूप का प्रारम्भ होता है. इसे परिमार्जित कैसे किया जाय? इसके लिए अध्यात्म विज्ञान में योग साधनाओं का निर्धारण है, जिनके माध्यम से व्यष्टि चेतना को प्रखर-परिष्कृत बनाया जाता है ।

जर्मनी के जीवविज्ञानी अर्नेस्ट हैनरिक हैकेल ने चेतना को दो स्तरों में विभक्त किया है—एक पाशविक और दूसरी मानवीय । दोनों में अन्तर स्पष्ट करते हुए हेकेल ने बताया है कि पाशविक चेतना को अन्य किसी दूसरे प्राणी में हस्तांतरित करने की बात तो दूर जानवर स्वयं भी उसे समझने में सक्षम नहीं है । पाशविक चेतना शरीर प्रधान होती है, अत: उसे इन्स्टिंक्ट कहते हैं, जबकि मानवीय चेतना मन प्रधान होने के कारण रीजन (विवेक) कहलाती है ।

मूर्धन्य शरीर शास्त्री प्रो. एल्म गेट्स के अनुसार सामान्य मनुष्य में मस्तिष्क की ९० प्रतिशत चेतन शक्ति अवचेतन रूप में दबी पड़ी रहती है । मात्र १० प्रतिशत से ही जीवन व्यापार चलता है । यदि चेतना के इस बड़े भाग का भी किसी प्रकार उन्नयन-जागरण सम्भव हो सका, तो बहुत सारे ऐसे कार्य किये जा सकेंगे, जो समाज और संसार के लिए प्रगति का द्वार खोल सकें ।

प्रख्यात गणितज्ञ डब्ल्यू.आर. हेमिल्टन एक बार अपनी पत्नी के साथ डबलिन वेधशाला घूमने को गये । इसी बीच अचानक उनके मस्तिष्क में एक ऐसी स्फुरणा हुई जिसके फलस्वरूप क्वाटर-नियन का प्रसिद्ध सिद्धान्त संसार को मिला जिसे आज गणित क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जा रहा है । वस्तुत: यह चेतना की परिष्कृति का ही परिणाम है । जब यह सिलसिला चल पड़ता है, तो मस्तिष्क में ऐसे नये-नये तथ्य अनायास कौंध पड़ते हैं जिनकी पहले कल्पना तक नहीं की गई थी । प्रखर प्राण चेतना एक दिव्य अनुदान है जिसकी प्राप्ति हेतु किया गया पुरुषार्थ निश्चित ही फलित होता है ।

चेतना को अन्तर्मुखी बनाएँ

व्यक्तित्व गठन का तात्पर्य है अपने समूचे जीवन-क्रम को सँवारना । यह तभी सम्भव है, जब जिन्दगी के प्रत्येक हिस्से को ध्यान से देखा जाय । कहाँ पर कौन कमी है—इस पर गौर किया जाय । तभी इन कमियों को दूर कर पाना सम्भव बन पड़ेगा ।

सामान्यत: हमें अपने दोष दिखाई नहीं पड़ते । हमें अपने चिन्तन के सामने, मार्क्स गाँधी फीके लगते हैं । स्वयं की चरित्रनिष्ठा विवेकानन्द, दयानन्द से बढ़कर आँकी जाती है । व्यावहारिक क्रिया-कलापों के सामने राम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर बौने लगते हैं । अपने में कहीं कोई दोष दिखाई नहीं पड़ता । भूले-भटके कोई-कोई कमियाँ दिखाने का प्रयास भी करे तो उसे ईर्ष्यालु या शत्रु की संज्ञा प्रदान की जाती है । परिणाम यह होता है कि हमारा समूचा व्यक्तित्व भौंड़ा बनकर रह जाता है ।

अपने दोष देखने की जगह दूसरों की कमियाँ देखने में रस मिलता है । अच्छी से अच्छी चीज में कोई न कोई कमी खटकती है । यहाँ तक कि परमात्मा में दोष निकाल लिया जाता है । अपने शक्ति व समय की खपत इसी में होती रहती है ।

पर-छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति संसार में कहीं सुन्दरता नहीं देखने देती । महापुरुषों, समाजसेवियों, लोकनायकों आदि के दर्शन कराकर, उनकी महानता की चर्चा करने पर चित्त खिन्न हो जाता है । यही नहीं मौका पाकर उनके दोष गिनाने शुरू कर देते हैं । उन्हें भी अहंकारी, स्वार्थी आदि अवगुणों से ग्रसित कहकर दोषी सिद्ध कर दिया जाता है ।

सृष्टि में गुण है और दोष भी । हर स्थान, हर पदार्थ, हर व्यक्ति में किसी न किसी मात्रा में ये दोनों रहते हैं । यही कहा जाय तो दोनों की ही अपने-अपने स्थान पर उपयोगिता भी है । जो एक स्थान पर गुण है वही दूसरे स्थान पर दोष हो सकता है । संसार में दुग्ध, फल, मेवा जैसी पोषक चीजें हैं तो जहर जैसी मारक भी । प्रत्यक्ष में पोषक वस्तुएँ गुणवान लगती हैं, जहर जैसी चीजों में दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं, किन्तु वास्तविकता इससे अलग है । अधिक खा लेने पर पोषक मारक में बदल जाती है और संखिया आदि जहरीली चीजों को औषधि के रूप में प्रयुक्त कर किसी की जान भी बचाई जा सकती है । पर यह काम तभी सम्भव है, जब उपयोग करने वाला उनको विवेकसम्मत ढंग से प्रयोग में लाए ।

संसार में शायद हीं ऐसा कोई प्रमाण मिले कि किसी व्यक्ति ने दूषित दृष्टिकोण और परनिन्दा की वृत्ति को पाले रखकर जीवन में कोई सफलता पाई हो । विश्व का इतिहास इस बात की अनेक गवाहियों से भरा पड़ा है कि घोर निन्दा,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आलोचना और विरोध होने पर भी जिन सत्पुरुषों ने किसी की निन्दा नहीं की और गुण ग्राहिका वृत्ति में विश्वास बनाए रखा, उन्होंने अपने साथ दूसरों का भी कल्याण किया ।

आवश्यकता बाहर के दोषों को न देखकर अपने में निहित कमियों-बुराइयों को निहारने की है । मनोविज्ञान ने इस प्रक्रिया को आत्म-निरीक्षण का नाम दिया है । दर्शन की भाषा में यह महत्त्वपूर्ण विशेषता है जो केवल मानव को मिली है । मनुष्य आत्मचेतन है, जबकि पशु सिर्फ चेतन । इसका मतलब है कि आदमी के पास वह सामर्थ्य है, जिसके द्वारा अपने को जान सकता है । स्वयं अपने दोष-दुर्गुणों को जानकर उन्हें दूर कर सकता है, जबकि पशु इन्द्रिय सम्वेदनों द्वारा बाहरी चीजों के बारे में तो जान सकते हैं, पर स्वयं को जानना उनके बस की बात नहीं है ।

इस विशिष्ट सामर्थ्य की गरिमा तभी है, जब उसका उपयोग कर स्वयं को निहारा जाय । दोष-दुर्गुणों, विकृतियों को देख-समझ कर उन्हें उखाड़ फेंका जाय ।

मनोवैज्ञानिक जे.एस. लैशले ने अपने शोध निबन्ध 'द बिहैविअरिस्टिक इन्टरप्रिटेशन ऑफ कांशसनेस' में इस आत्म-निरीक्षण की प्रक्रिया को दो चरणों में समझा है । पहला अपने व्यावहारिक क्रिया-कलापों का अध्ययन । इसको पहले नम्बर पर रखने का कारण यह है कि हमारी दृष्टि स्वाभाविक बहिर्मुखी है । शुरू-शुरू में यह सम्भव नहीं कि अन्दर गोता लगाकर कमियाँ टटोली जायँ । यदि नित्यप्रति व्यावहारिक गतिविधियों का बारीकी से अध्ययन किया जाय तो मालूम होगा कि स्वयं द्वारा किए गए क्रिया-कलापों में लगभग ३०-४० प्रतिशत ऐसे बचकाने हैं जो स्वयं की गरिमा के अनुकूल नहीं हैं ।

इनको सम्हालने के लिए स्वयं के चिन्तन को निहारना होगा । यह प्रक्रिया का दूसरा चरण है । कठिन होने के बावजूद इसकी जरूरत है । बिना इसके काम नहीं चलता । व्यवहार के बीज चिन्तन में मौजूद रहते हैं । अपने सोच-विचार के तौर-तरीके पर ध्यान देना होगा । जैसे-जैसे दृष्टि अन्तर्मुखी होगी, पता चलेगा कि हमारा बहुत सारा समय निरुपयोगी चीजों को सोचने में चला जाता है । कभी किसी की बुराई सोचते हैं । कभी बिना मतलब की कल्पनाएँ करते हैं । इनमें कोई तारतम्य नहीं । मानसिक ऊर्जा की यों ही बर्बादी होती रहती है । दूसरों की बुराइयाँ उन्हें परेशान करने के तौर-तरीके सोचने की जगह चिन्तन को सुसम्बद्ध करना होगा ।

मनःशास्त्री आर. अर्नहेम का 'द क्रिएटिव प्रॉसेस' में मानना है कि आत्म-निरीक्षण का क्रम तब तक अधूरा है, जब तक इसके साथ आत्म-सुधार की विधि न जुड़ी हो । इसका मतलब है ईर्ष्या, डाह, द्वेष आदि तमाम दोषों को हटाकर इसमें सत्प्रवृत्तियों की पूरी फसल उगाना । यह काम ठीक किसान जैसा है । वह खेत में बुवाई के पहले से खरपतवार निकालना शुरू करता है और फसल उग जाने के बाद भी अपना यह निराई का कार्यक्रम नहीं छोड़ता । प्रक्रिया के इस पहलू में लगभग ऐसा ही करना होता है । व्यावहारिक जीवनक्रम में दया, करुणा, सेवा, सहृदयता का किस स्तर पर कैसे समावेश हो । इसके लिए चिन्तन के स्तर पर पूरी योजना तैयार करनी होगी । प्रयत्नपूर्वक इन्हें व्यवहार में उतारने के प्रयास करने होंगे ।

जैसे-जैसे इनका अभ्यासक्रम शुरू होगा अपने दोष साफ-साफ दिखाई पड़ने लगेंगे । स्थिति बिल्कुल बदल जाएगी । जहाँ पहले दूसरों के दोष दिखाई देते थे और अपने गुण, वहाँ अब दूसरों में गुण दिखाई देने लगेंगे और अपने में दोष ।

मानवीय चेतना की रहस्यमय परतें

खोपड़ी की पिटारी में रखे हुए लिबलिबे भूरे पदार्थ की हलचलों को मन या मस्तिष्क कहते हैं । सोचने-विचारने का काम इसी मशीन से चलता है । विभिन्न प्रकार की जानकारियाँ एवं स्मृतियाँ इसी क्षेत्र में रहती हैं । तर्क, ऊहापोह, विश्लेषण, निर्धारण करने वाला तंत्र बुद्धि कहलाता है । मन तो मात्र इच्छा या कल्पना करता रहता है । इन्हीं दोनों के समन्वय से बनने वाली स्थिति को बुद्धिमत्ता कहते हैं । बाजारू सफलताएँ इसी के आधार पर मिलती हैं । व्यवहार का निर्धारण एवं उसकी उलट-पुलट के लिए इसी संस्थान में सन्निहित अनुभव एवं चातुर्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाते, प्रतिस्पर्द्धा जीतते तथा अवरोधों से जीतने, सफलता का पथ प्रशस्त करने में अपना कमाल दिखाते हैं ।

मस्तिष्कीय कौशल की विशिष्टता सर्वविदित है । अस्तु, उसे समुन्नत बनाने के लिए प्रयत्न भी सर्वत्र किये जाते हैं । स्कूली शिक्षा का प्रधान उद्देश्य यही है । उसके माध्यम से वस्तुओं का स्वरूप एवं लोक-व्यवहार के अनेक पक्षों को समझने-समझाने का प्रयत्न किया जाता है । सम्पर्क, परामर्श, घटनाक्रमों का निकटवर्ती पर्यवेक्षण इस प्रयोजन में विशेष रूप से काम आता है । इस संदर्भ में मस्तिष्कीय कोशिकाओं की संरचना भी तीक्ष्णता को न्यूनाधिक करती रहती है । समुन्नत मस्तिष्क व्यक्तियों का सहयोग अर्जित करने से लेकर अभीष्ट सफलताएँ उपलब्ध करने में अपने चमत्कार आये दिन दिखाता रहता है । आमतौर से इसी प्रतिभा के आधार पर मनुष्य का बाजारू मूल्यांकन होता और श्रेय मिलता है ।

किन्तु समझा जाना चाहिए कि यह लोक-व्यवहार में काम आने वाला, व्यक्ति की प्रवीणता निखारने वाला मस्तिष्कीय तंत्र बहुत कुछ होते हुए भी सब कुछ नहीं है । उसके भीतर दो और परतें हैं जिनमें से एक को अचेतन और दूसरी को अतिचेतन कहते हैं । इन तीनों परतों में ही मनुष्य का समूचा व्यक्तित्व समाया है । अध्यात्म की भाषा में इन्हीं तीनों को स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर कहते हैं । इनका समन्वय ही समग्र व्यक्तित्व है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाजारू व्यक्तित्व ही आमतौर से देखा जाता और खरीदा-बेचा जाता है । इतने पर भी इस रहस्य से अवगत होना ही चाहिए कि चेतना की गहराई में उतरने पर ही बहुमूल्य उपलब्धियाँ प्राप्त की जाती हैं । धरती पर रेत, मिट्टी बिखरा पड़ा है, पर गहराई में खोदने पर जीवन-प्राण समझा जाने वाला जल मिल जाता है और भी अधिक खोदने पर बहुमूल्य खनिज पदार्थ एवं तेल हाथ लगते हैं । समुद्र की ऊपरी सतह पर तो शैवाल, समुद्रफेन आदि तैरते रहते हैं । मोती तो गहराई में उतरकर ही हस्तगत होते हैं । नारियल की जटा तथा खोपड़ा तोड़ने के उपरान्त ही गिरी हाथ लगती है । ईंधन बरामदे में, कपड़े कोठरी में और जेवर तिजोरी में रहते हैं । इसी प्रकार चेतना की उथली परत बुद्धिमत्ता कहलाती है, किन्तु उससे भीतर उतरने पर अचेतन मन का चमत्कार देखने को मिलता है ।

आदतों का अपना महत्त्व है । मनुष्य का सारा ढर्रा उसी के आधार पर चलता है । गुण, कर्म, स्वभाव में इन आदतों का ही आधिपत्य दृष्टिगोचर होता है । तर्क का अपना महत्त्व है । विषय को समझने और विचार बदलने के लिए अध्ययन परामर्श से भी काम चल जाता है, किन्तु आदतों को क्या कहा जाय, वे इतनी हठीली होती हैं कि किसी बात का औचित्य या अनौचित्य स्वीकार कर लेने पर भी तदनुरूप परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं होतीं । नशेबाजी की आदत इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । शराब की हानियों को समझते हुए भी—उसे छोड़ने की आवश्यकता अनुभव करते हुए भी नशेबाज एक प्रकार से अपने आप को विवश, असहाय अनुभव करता है और अनुभव करता है कोई भूत-पिशाच उससे बलपूर्वक उस काम को करा रहा है । इसी हठीली परत को अचेतन कहते हैं । अध्यात्म की भाषा में इसे 'चित्त' कहते हैं । चित् अर्थात् चिन्तन का परिपक्व अभ्यास ।

शरीर की अन्तरंग क्रियाएँ इसी चित्त-अचेतन के द्वारा गतिशील रहती हैं । माँसपेशियों का अकुंचन-प्रकुंचन, रक्त का आवागमन, पलकों का निमेष-उन्मेष, फेफड़ों का श्वास-प्रश्वास, ग्रहण, विसर्जन, शयन, जागरण आदि शरीर की अभ्यस्त गतिविधियों का संचालन यह चित्त ही सोते-जागते करता रहता है और मनुष्य को उनके होने न होने तक का अनुभव नहीं होता । न केवल शरीर संचालन में वरन् सोचने तथा काम करने के ढर्रे में भी इसी की प्रेरणाएँ काम करती हैं । घोड़ा अस्तबल में जा घुसता है और कबूतर दरवे में । वे यह नहीं सोचते कि इस बंधन में स्वतः प्रवेश करने से क्या लाभ ? आदतों को नफा-नुकसान से कोई मतलब नहीं होता, वे जिस ढाँचे में ढल जाती हैं, उसी ढर्रे को अपनाये रहने का हठ करती हैं । इन आदतों को डालने में लम्बा समय लगता है फिर उन्हें उखाड़ना तो और भी अधिक कठिन पड़ता है ।

जो हो, इस तथ्य को स्वीकार किया ही जाना चाहिए कि व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बनाने की यदि किसी को वास्तविक इच्छा हो तो उसे अपने अचेतन से जूझने की साहसिकता सँजोनी चाहिए । क्योंकि आमतौर से अभ्यस्त आदतें वैसी घटिया स्तर की होती हैं, जिन्हें पशु प्रवृत्तियाँ कहा जा सके । आधुनिक मनोविज्ञानी भ्रमवश इन्हीं कुसंस्कारों को मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्ति मानने लगे हैं और उनके सुधार परिष्कार की बात सोचने की अपेक्षा उल्टा समर्थन, पोषण, प्रोत्साहन करने लगे हैं ।

मनुष्य को सृष्टि के आदि से लेकर अब तक की लम्बी जीवन यात्रा में अनेकानेक ऐसी परिस्थितियों में रहना पड़ा है, जिन्हें मानवीय सभ्यता की दृष्टि से हेय ही कहा जा सकता है । बच्चे को छोटी चड्डी या फ्रॉक पर्याप्त होती है, पर वयस्क होने पर तो उसे पूरी पोशाक चाहिए । क्षुद्र योनियों को क्षुद्र परिस्थितियों में रहने पर जिस स्तर का जीवन जीना पड़ता है, उसकी संग्रहीत आदतें मनुष्य जन्म में प्रवेश करते ही समाप्त नहीं हो जातीं वरन् सभ्यता अपनाने का दबाव पड़ने पर भी अन्तराल के अँधेरे कोंतरों में छिपकर बैठी रहती हैं । नीति-मर्यादा के मानवीय अनुबन्धों को तोड़-फोड़कर अभ्यस्त स्वेच्छाचारिता को अपनाने के लिए वे अवसर पाते ही उछाल लगाती और करामात दिखाती रहती हैं । मानवीय गरिमा के साथ उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्त्तव्य की विशिष्टता जुड़ी हुई है । उसे समझने-समझाने में भी कोई बड़ी कठिनाई नहीं होती । उपदेश पग-पग पर नीति के एवं उदारता के समर्थन में सुने जाते हैं । उन्हें स्वीकारने में भी किसी को कोई आपत्ति ही होगी, किन्तु कठिनाई तब पड़ती है, जब निकृष्ट परिस्थितियों से गुजरते-गुजरते जो आदतें अन्तरंग की गहराई में घुस गई हैं उन्हें सुधारने, बदलने की बात सोची जाती है ।

अचेतन एक पूरा तिलस्म है । उसे खुलकर खेलने का अवसर नहीं मिलता तो छद्म अपनाता है और अनेकानेक बहाने गढ़कर मन की मौज बरतने के लिए दाँवपेंच लड़ाता है । वस्तुतः हर मनुष्य के भीतर एक अच्छा-खासा महाभारत खड़ा रहता है । पशु प्रवृत्तियाँ अपना हठ नहीं छोड़तीं और मानवीय गरिमा अपने आप को पतित पराजित स्थिति में रहने के लिए सहमत नहीं होतीं । दो साँड़ों के युद्ध में जिस प्रकार खेत में उगे पौधे नष्ट होते रहते हैं, दो पाटों के बीच जिस प्रकार अनाज पिसता रहता है, दो तलवार ठूँसने पर जिस प्रकार म्यान फटता रहता है, उसी प्रकार इस अन्तर्द्वन्द्व में जीवन प्रगति का भी दिवाला पिटता रहता है । सारी शक्ति तो इस अन्तःकलह में ही चुक जाती है । फिर उत्कृष्टता की दिशा में चलने और उस क्षेत्र में कुछ पराक्रम, पुरुषार्थ करने का सुयोग कैसे बने ? उच्चस्तरीय प्रगति की आकांक्षा हर किसी के भीतर रहती है, पर उसका साधन तभी बन सकता है, जब अचेतन को कुसंस्कारिता से मुक्ति दिलाने और सुसंस्कारिता के ढाँचे में ढालने के लिए कोई कहने लायक कदम उठाया जा सके ।

अध्यात्म, तत्व ज्ञान और साधना-विधान का प्राथमिक ढाँचा इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सजा गया है कि उस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपचार से अन्त:चेतना के अभ्यासों को बदलने, सुधारने एवं ढालने की प्रक्रिया चल पड़े । वस्तुत: यही परम पुरुषार्थ है । उपेक्षा के गर्त में गिराये हुए अचेतन का यदि सही मूल्यांकन किया जा सके और उसे मानवी गरिमा के अनुरूप आदतें अपनाने के लिए सहमत किया जा सके तो समझना चाहिए कि सर्वतोमुखी प्रगति के द्वार खुल गये । एक ऐसा समर्थ साथी मिल गया जिसकी सहायता से आसमान तक ऊँचा उठ सकना सम्भव हो सके । परिष्कृत अचेतन को यदि अंगद-हनुमान की, नल-नील की, भीम-अर्जुन की उपमा दी जाय तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी । जिन दैवी विभूतियों का ऋद्धि-सिद्धियों के नाम से चमत्कारी वर्णन होता रहता है, उसे संक्षेप में अचेतन की उभरी हुई विशिष्टता ही समझा जाना चाहिए ।

साधना मार्ग के सम्बन्ध में फैली हुई यह भ्रान्ति निरर्थक है कि यह प्रक्रिया देवी-देवताओं को चंगुल में फँसाकर उनसे चमत्कारी सिद्धि-वरदान झटक लेने के लिए प्रयुक्त की जाती है । वस्तुत: उस माध्यम से अचेतन और उच्च चेतन की रहस्यमय परतों को परिष्कृत-समुन्नत किया जाता है । इसी क्षेत्र में अगणित अतीन्द्रिय क्षमताएँ और व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बना देने वाली विभूतियाँ छिपी पड़ी हैं । उनका जागरण-उन्नयन होने से मनुष्य अपेक्षाकृत अधिक समुन्नत-सुसंस्कृत बनता है और देवोपम बनने की दिशा में द्रुतगति से अग्रसर होता है । साधना विज्ञान में मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान और उनकी विलक्षणताओं के प्रकटीकरण की अनुभूत विधि-व्यवस्था का परिपूर्ण समावेश है ।

'लोअर सेल्फ' या 'स्व' की परिधि से ऊपर की ओर की यात्रा ही अन्तर्जगत की यात्रा है, आंतरिक प्रगति का सच्चा मार्ग है । केवल इस अनुभूति मात्र का उठना कि कुछ बिल्कुल अलग, रोजमर्रा के स्वरूप से विभिन्न मेरे भीतर कुछ है—सारे व्यक्तित्व को बदलकर रख देता है । जब क्रिया-कलाप भी उसी दिशा में नियोजित होने लगते हैं तो महामानव, देवमानव, सुपरमैन की परिधि में मनुष्य प्रवेश कर जाता है ।

हमारा चिन्तन दु:खदविरोधी परिस्थितियों से न प्रभावित होकर मन के भीतर में उभर कर आना चाहिए । वस्तुत: जो कुछ भी सुन्दर है, शिव है, शुभ है वह मानवीय स्थिति में नहीं, अतिमानवीय स्थिति में ही करतलगत हो सकता है । केवल एक ही परिस्थिति ऐसी हो सकती है जिसमें स्थायी सुख-शान्ति, अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति हो । वह अतिमानस के स्तर पर बनती है, जिसे 'कास्मिक गुडनेस' 'सुपर कांशसस्टेज' कहा जा सकता है । हर धर्म, पंथ, मत ने ही यही मूल दर्शन सबको सिखाया है कि परम तत्व को पाने के लिए भौतिक मन, 'लोअर सेल्फ' से ऊँचे उठो । ऊँचाई से सब कुछ स्पष्ट दिखाई देने लगता है ।

सप्तआयामीय चेतन सत्ता

मनुष्य की मूल प्रकृति आध्यात्मिक है । उसका मूल्यांकन खगोलकीय पिण्डों या पार्थिव वस्तुओं की तरह लम्बाई, चौड़ाई ऊँचाई आदि के त्रिआयामीय मापों द्वारा नहीं किया जा सकता । वह घनीभूत चेतना का पुंज है जिसकी एक से एक बढ़कर उच्चस्तरीय परतें हैं । गीता में वर्णित कीर्ति, श्री बाक, स्मृति, मेधा, धृति एवं क्षमा जैसी दिव्यविभूतियों का वह स्वामी है । उसकी चेतना बहुआयामीय है जिसे दिक्काल की सीमा में भी नहीं बाँधा जा सकता ।

भौतिक अनुभवों एवं उपलब्धियों से भी बढ़कर उच्चस्तरीय चेतनात्मक अनुभूतियों का भाण्डागार मानवीय अन्तराल में भरा पड़ा है । साधना द्वारा अपनी चेतना का जो व्यक्ति जिस सीमा तक विकास कर लेता है, उसी अनुपात से वह आत्मिक प्रगति के उच्च सोपानों पर आगे बढ़ता और दिव्य क्षमताएँ अर्जित करता जाता है । योग एवं तप के द्विविध साधना उपक्रमों के आधार पर विकसित होती हुई चेतना अपनी अन्तिम स्थिति को पहुँच जाती है, जिसे ही पूर्णता की निर्वाण की प्राप्ति कहा जाता है । नर का नारायण में, मनुष्य का देवत्व में परिवर्तन भी ।

ब्रह्म विज्ञान में चेतना के सात आयामों की चर्चा की गई है । उन्हें सात लोक भी कहा जाता है । गायत्री मंत्र के साथ प्राणायाम करते समय सात व्याहृतियों का उच्चारण किया जाता है । भू: भुव:, स्व:, मह: जन:, तप:, सत्यम्-यह सात व्याहृतियाँ सात लोकों की परिचायक हैं । इनकी चर्चा इस सन्दर्भ में होती है कि प्रगति पथ पर अग्रसर होते हुए हमें अगले आयामों में पदार्पण करना चाहिए । तीन लोक भौतिक हैं—भू: भुव: स्व: । इन्हें धरती, पाताल और आकाश भी कहते हैं । भौतिकी इसी सीमा में अपनी हलचलें जारी रखती है । अगले चार लोक सूक्ष्म हैं । चौथा भौतिकी और आत्मिकी का मध्यवर्ती क्षेत्र है । पाँचवाँ, छठा एवं सातवाँ लोक विशुद्ध चेतनात्मक है । इन्हें पदार्थ सत्ता से ऊपर माना गया है । इसे और भी अच्छी तरह समझना हो तो भू:, भुव: स्व: को सामान्य जगत, तप: को चमत्कारिक सूक्ष्म जगत एवं जन:, मह: सत्यम् को देवलोक कह सकते हैं । मनुष्य सामान्य जगत में रहते हैं । सिद्ध पुरुषों का कार्यक्षेत्र सूक्ष्म जगत है । देवता उस देवलोक में रहते हैं, जिनकी संरचना जन: मह:, सत्यम् तत्वों के आधार पर की गई है ।

प्राय: समझा जाता है कि उक्त सातों लोक ग्रह-नक्षत्रों की तरह वस्तु विशेष हैं और उनका स्थान कहीं सुनिश्चित है । वस्तुत: ऐसा है नहीं । यह लोक अपने ही चेतन जगत की गहरी परतें हैं । इनमें क्रमश: प्रवेश करते चलने पर चक्रव्यूह को वेधन करते हुए परम लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव हो सकता है । इस प्रगतिक्रम में सशक्तता बढ़ती चलती है और अंतिम चरण पर पहुँचा हुआ मनुष्य ही सर्व-समर्थ बन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता है । इसी को आत्मा की परमात्मा में परिणति कह सकते हैं ।

महायोग विज्ञान के अनुसार सात लोक आकाश में ढूँढ़ना व्यर्थ है । वे किसी ग्रह-नक्षत्र के रूप में नहीं, वरन् आत्मसत्ता में सप्तचक्रों के रूप में विद्यमान हैं । भू: लोक मूलाधार में, भुव: लोक स्वाधिष्ठान में, स्व:लोक मणिपूरक में, मह:लोक हृदय में, जन:लोक कंठ में, तप:लोक ललाट में तथा सत्य लोक ब्रह्मरंध्र में विद्यमान हैं । इनकी जाग्रति ही चेतन सत्ता के सप्तआयामों के, सप्तविभूतियों के रूप में, भौतिक और आत्मिक सफलताओं के रूप में दैवी अनुग्रह बनकर उभरती है ।

अध्यात्मशास्त्रों में वर्णित सात लोकों, सप्तऋषियों, सप्तप्राणों की व्याख्या-विवेचना पाश्चात्य अध्यात्मवेत्ताओं ने अपने ढंग से की है । उनकी स्थापना में ब्रह्माण्ड और पिण्ड को तत्सम माना गया है और चेतना के आयामों को सात लोकों की संज्ञा दी गई है । प्रथम भौतिक शरीर को वे 'फिजिकल बॉडी' कहते हैं जो पंच भौतिक तत्वों से बना है । इसे इन्द्रियगम्य भी कहते हैं जिसमें मात्र शरीरगत अनुभूतियाँ ही विकसित हो पाती हैं । इससे आगे उच्चस्तरीय परत 'इथरिक बॉडी' है जो अदृश्य एवं सूक्ष्म चेतन स्वरूप है । इच्छा, आकांक्षा, भाव, सम्वेदना इस शरीर के जागरण की विशेषताएँ हैं । 'एस्ट्रल बॉडी, सूक्ष्मतम, दिव्यस्वरूप सुव्यवस्थित विचारणाओं का तर्क शक्ति का केन्द्र है । सामान्यजनों से लेकर सभ्य-सुसंस्कृत नागरिकों तक को इसी स्थिति में विकसित हुआ देखा जा सकता है ।

किन्तु इससे ऊँची परतें दिव्य-क्षमताओं से सम्पन्न अन्तराल की गहराई में छिपी रहती हैं । 'मेंटल बॉडी' को प्रतिभा का केन्द्र माना जाता है । मनसतत्व की प्रबलता वाले इस क्षेत्र का विकास कला-सौन्दर्य विज्ञान एवं उच्चस्तरीय कल्पनाओं के विकास की स्थिति है । मनीषी, विचारक, कवि, कलाकार, वैज्ञानिक इसी भावलोक में विचरण करते हैं । समस्त सांसारिक, भौतिक उपलब्धि, श्रेय-सम्मान इसी मानस-शरीर के विकास की परिणति हैं । इससे आगे की विकसित अवस्था स्प्रिचुअल बॉडी कहलाती है । इस पाँचवें आयाम में अतीन्द्रिय क्षमताएँ सन्निहित मानी जाती हैं । भविष्य कथन, दूरश्रवण दूरानुभूति, पूर्व बोध आदि चमत्कारी दिव्य अनुभूतियाँ इसी से सम्बन्धित हैं । छटा आयाम-'कास्मिक बॉडी' अर्थात् देव शरीर है । इसके विकसित हो जाने पर मानवीय अन्त:करण देवत्व से ओतप्रोत हो जाता है । सातवें स्तर 'बॉडी लेस बॉडी' तक पहुँचा हुआ साधक ब्रह्म से सम्बन्ध स्थापित कर उस जैसा ही बन जाता है । वेदान्त की अद्वैत स्थिति यही है । सृष्टि संतुलन बिठाने एवं लोक-मंगल के लिए जीने वाली अवतारी आत्माएँ सातवें शरीर में पहुँची आत्माएँ होती हैं । वे निर्विकार, निर्लिप्त एवं निस्पृह बने रहकर अनेकानेकों को अपने साथ तारती देखी जाती हैं ।

अनुसंधानकर्त्ता परामनोवेत्ताओं एवं गुह्य विज्ञानियों का कहना है कि चेतना के विभिन्न आयाम वस्तुत: अपनी ही आत्म-सत्ता के सूक्ष्म केन्द्रों में सन्निहित हैं । उनके अनुसार निम्नस्तरीय कायिक चेतना का सम्बन्ध मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र से है, तो मणिपूरक का अतीन्द्रिय चेतना से । अनाहत चक्र को साइकोकाइनेसिस का केन्द्र माना जाता है । विशुद्ध एवं आज्ञा चक्र दिक्काल से परे वैश्वचेतना से संयुक्त अति समर्थ परतें हैं तथा सहस्रार सुपर चेतना का आधार है ।

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक डॉ. हरबर्ट के अनुसार उक्त तथ्य यह रहस्य उद्घाटित करते हैं कि चेतना के कितने ही धरातल अथवा रहस्यमय अनुभूतियों के आयाम हैं । वर्तमान भौतिक जीवन से परे भी जीवन सातत्य विद्यमान है जो उच्च आयामों को अपने अंदर समाविष्ट रखता है । जैसे-जैसे चेतना का विस्तार एवं परिष्कार होता जाता है, वह ऊर्ध्वारोहण करती जाती है और दिव्य क्षमताओं के द्वार खुलते जाते हैं । उनके अनुसार सत्कर्मों के आधार पर ही अनुभूतियों का एवं भविष्य का निर्धारण होता है ।

वस्तुत: अभी हम जिन अनुभवों के चेतना के धरातल पर निवास कर रहे हैं, वह द्विआयामीय या त्रिआयामीय हैं । सत्य का अनुभव भी हम इन्हीं आधारों पर करते हैं । गुह्यविज्ञानी एडगर केसी का कहना है कि जब हम तीसरे आयाम को ही भली-भाँति नहीं जानते जिसमें हम सभी निवास कर रहे हैं, तो फिर उच्च आयामों को कैसे जान सकते हैं? उनके अनुसार चौथा आयाम सद्भावना का, सद्विचारणा का है, परन्तु यह कहाँ से आरम्भ होता, कहाँ पर समाप्त होता और किधर प्रक्षेपित या प्रयुक्त होता है, कहा नहीं जा सकता । यह अन्तहीन है । चार दशक पूर्व मनीषी प्रवर आइन्स्टीन ने विश्व-ब्रह्माण्ड में संव्याप्त अनेक आयामों की सम्भावना व्यक्त की थी और कहा था कि जब मनुष्य चतुर्थ आयाम के तथ्यों को कार्यरूप में परिणत करने लगेगा, तब उसका ज्ञानबोध अब की तुलना में अनेक गुना अधिक बढ़ जायेगा । साथ ही ऐसी शक्ति हस्तगत होगी जिसे चमत्कारिक कहा जा सके ।

उच्चस्तरीय आयामों में पाँचवाँ, छठा एवं सातवाँ आयाम पदार्थ सत्ता से परे है । ये विशुद्ध रूप से चेतना से सम्बन्धित हैं, किन्तु यदि चतुर्थ आयाम की जानकारी एवं प्रभाव-परिणाम से ही हम अवगत हो सकें तो हमारे सम्पूर्ण बोध क्षेत्र में उथल-पुथल मच जायेगी । जिन व्यक्तियों को अभी हम अपना मान बैठे हैं, वे भी पराये दीखने लगेंगे अथवा पराये भी अपने हो जायेंगे । व्यक्ति एवं वस्तु के प्रति वर्तमान मोह का दुराग्रह टूट जाने और पदार्थ एवं जीव का वास्तविक स्वरूप विदित होने पर उन भ्रम जंजाल से छुटकारा मिल सकेगा जिसमें सामान्यतया हम सभी आबद्ध रहते हैं । चेतना का उच्चस्तरीय विकास कर लेने पर हमें उस तत्वदर्शन की सत्यता का भी बोध होगा जिसमें ऋषियों

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने आत्मवत् सर्वभूतेषु की 'सर्वंखिल्विदं ब्रह्म' की कल्पना की है' ।

चेतनात्मक परिष्कार की दैवी प्रक्रिया

हर विचारक को कुछ शरीरचर्या के लिए करना चाहिए और कुछ आत्म-कल्याण के लिए । दोनों की व्यवस्था समान रूप से करते रहने पर ही बात बनती है । अकेले शरीर पर उसके सुविधा-साधनों पर ही ध्यान रखा जाय तो आत्मा भूखी मरेगी और लोक-परलोक दोनों ही बिगड़ेंगे । आत्म-कल्याण की बात को प्रधानता देने पर भी रोटी, कपड़े का प्रबंध तो करना ही होता है । इसलिए समन्वित जीवन जीना ही श्रेयस्कर है । दोनों पक्षों पर समान रूप से ध्यान रखने की आवश्यकता है । प्रत्यक्ष शरीर को समुन्नत, सुसंस्कृत, प्रगतिशील बनाया जाय और अन्तःकरण में श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा को समुचित स्थान दिया जाय । पुण्य-परमार्थ के लिए तत्परता, तन्मयता अपनाने पर दोनों ही जीवन पक्ष सुविकसित स्तर अपनाये रहते हैं ।

मनुष्य को दो सम्पदाएँ उपलब्ध हैं—एक समय, दूसरा साधन-धन-वैभव । इन दोनों में से न्यायतः जीवन के दोनों पक्षों के लिए आधा-आधा उपयोग करना चाहिए, पर वातावरण, प्रचलन और आदत से जकड़ा हुआ व्यक्ति प्रायः स्वास्थ्य साधना में ही लगा रहता है । आत्मिक आवश्यकताओं की बात भूल जाता है । व्यस्तता के दिनों में तो कुछ पता नहीं चलता, पर जब गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाता है कि आत्मा के साथ अन्याय बरता गया । यह भूल उस समय और भी अधिक स्पष्ट होती है, जब मरण समय निकट आता है और परमात्मा के दरबार में जाने की तैयारी होती है । वहाँ मात्र एक ही प्रश्न पूछा जाता है कि विश्व का सबसे बड़ा अनुदान-मनुष्य जन्म, जिस प्रयोजन के लिए मिला था, उसका उपयोग सौंपे गये उत्तरदायित्वों के निर्वाह में हुआ या नहीं? न करने वाले दुर्गति के गर्त में पड़ते है और भविष्य में जो और भी अधिक अनुदान मिल सकने सम्भव थे उनसे वंचित रहते हैं । सृष्टि के समस्त प्राणी भगवान् को समान रूप से प्रिय हैं । उसे किसी के साथ पक्षपात नहीं । मनुष्य के साथ भी नहीं । यह सुरदुर्लभ धरोहर इसलिए सौंपी गई है कि उसके व्यक्तित्व को परिष्कृत करते हुए पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त किया जाय । साथ ही स्रष्टा के विश्व उद्यान को अधिकाधिक सुरम्य, समुन्नत, सुसंस्कृत बनाते हुए परमार्थरत रहा जाय । अनुकम्पा का प्रतिदान परमार्थपरायण के रूप में प्रस्तुत किया जाय । सेवा-साधना ही एकमात्र यह उपाय है जिससे आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण की दोनों आवश्यकताएँ पूरी होती हैं । आत्मा और परमात्मा को समान रूप से तुष्टि, तृप्ति और शान्ति मिलती है । शरीर यात्रा तो जीवन रहने के लिए अनिवार्य रूप से करनी पड़ती है । उपेक्षा, आत्मिक कर्त्तव्यों की ही होती रहती है । इस भूल का दण्ड ही पीड़ा और पतन के रूप में निरन्तर सताता रहता है । इस एकपक्षीय समर्थन की अनीति से जो बच सके, वे ही बुद्धिमान हैं । सद्गति उन्हीं के हिस्से में आती है ।

जीवन सम्पदा के सदुपयोग की रूपरेखा बनानी चाहिए । समय और साधन की उपलब्धियों का किन प्रयोजनों में किस प्रकार नियोजन किया जाय, इसका मनन-चिन्तन हर दूरदर्शी को अति गम्भीरतापूर्वक करना चाहिए । शरीर यात्रा थोड़े से शारीरिक, मानसिक प्रयत्न से चल सकती है । परिवार को स्वावलम्बी और सुसंस्कारी बनाने का प्रयास भी निर्वाह क्रम के साथ-साथ ही चलता रहता है । यह दोनों कार्य इतने भारी नहीं हैं उन्हीं के लिए सारी जीवन सम्पदा पूरी तरह खप जाय । आत्मा और परमात्मा के संतोष हेतु भी कुछ किया ही जाना चाहिए । इसी दिशा में समुचित प्रेरणा प्राप्त करने के लिए ही पूजा-अर्चना के क्रियाकृत्य किये जाते हैं, अन्यथा इस समदर्शी को किसी से मनुहार, उपहार प्राप्त करने की और क्या अपेक्षा हो सकती है । भजन का सीधा-सा शब्दार्थ सेवा-साधना ही है । उसकी उपेक्षा करके न कोई भगवद् भक्त बन सकता है और न कर्त्तव्य, उत्तरदायित्वों के परिपालक का श्रेय अर्जित कर सकता है ।

सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन के लिए किया गया परोपकार उच्चकोटि का ब्रह्म यज्ञ है । इसके अतिरिक्त दुर्घटनाग्रस्तों, अपंग-असमर्थों की सेवा सहायता करते रहना भी पुण्य है । इन कार्यों के लिए हर उदारचेता को अपने समय, श्रम का बड़ा भाग सेवा-धर्म के निर्वाह हेतु लगाते रहना चाहिए । कमाई गई आजीविका में से भी एक अंशदान इसके लिए लगाते रहना चाहिए । जो इस देव अंश को नहीं निकालता, सारा समय स्वार्थ साधन के लिए लगाता है, पेट-प्रजनन की बात ही सोचता रहता है, जिसकी कमाई अपने या अपनों के लिए ही खर्च होती रहती है, उसे शास्त्रकारों की भाषा में 'चोर' कहा है । हमें मिल-बाँट कर खाना चाहिए । अपने सुख बाँटने और दूसरों के दुःख बँटाने के लिए तत्पर रहना चाहिए । इससे कम में शालीनता से गौरव गरिमा का निर्वाह होता नहीं । कहा गया है कि सेवा धर्म के परिपालन में जो लगाया जाता है वह प्रकारान्तर से हजार गुना हो वापस लौटता है । इन दिनों अगणित कठिनाइयों, समस्याओं और विपदाओं में फँसी मानवता को उबारने के लिए हर भावनाशील का कर्त्तव्य है कि वह चुप न बैठे, कुछ न कुछ परमार्थ प्रयास किसी न किसी रूप में करता ही रहे । अशिक्षा, दरिद्रता, रुग्णता, पिछड़ेपन तथा बढ़ते अनाचार के माहौल में ऐसा कुछ किया ही जाना चाहिए, जिससे जनसाधारण को मानवीय स्तर पर बने रहने का अवसर मिले ।

व्यस्तता और दरिद्रता के रहते हुए भी कोई व्यक्ति आठ घण्टे परिश्रम में निर्वाह के लायक उपार्जन कर सकता है । सात घंटा विश्राम के लिए पर्याप्त हैं । पाँच घण्टे में नित्य कार्य तथा अन्य सामयिक कार्यों से निपटा जा सकता है । बीस घण्टे के परिश्रम से निर्वाह की आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं । शेष चार घण्टे ऐसे बचते हैं जिन्हें आत्मा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और परमात्मा को प्रसन्नता देने वाले परमार्थ प्रयोजनों में खर्च किया जा सकता है ।

समाज में अनेक विसंगतियाँ और विभीषिकाएँ एकता और समता का सिद्धान्त न अपनाये जाने के कारण उपन्न हुई हैं । बहुप्रजनन ने हर क्षेत्र में विसंगतियों के आडम्बर लगा दिये हैं । अपव्यय की आदत, अनाचार अपनाने के लिए विवश करती है । सुव्यवस्था का अनुशासन न मानने से खाद्य संकट, ऊर्जा संकट, गर्मी की अभिवृद्धि अपनी विकरालता प्रकट करती है । खर्चीली शादियाँ, दरिद्र और बेईमान बनने के लिए बाधित करती हैं । अनावश्यक महत्त्वाकांक्षाओं से प्रेरित व्यक्ति अहंकार प्रदर्शन के साधन जुटाने में हैरान रहते और हैरान करते हैं । यदि औसत नागरिक स्तर का जीवनयापन करने की प्रथा चल पड़े तो नरक जैसा बना वातावरण स्वर्ग जैसी सुख-शान्ति से भरापूरा बन सकता है । गरीबी, अमीरी की खाई इसीलिए चौड़ी होती जाती है कि लिप्सा और अनुदारता सामान्यजनों का शोषण करने में लगे रहते हैं । अपराधों का प्रवाह भी इसी विवेकहीनता के उद्गम से उभरता है । यदि व्यक्ति को सुसंस्कृत और समाज को सुव्यवस्थित बनाने के लिए प्रबल प्रयत्न चल पड़े तो अगणित समस्याओं की जड़ें कट जायें और सद्भाव-सहयोग के आधार पर सभी लोग मिल-बाँट कर खा सकें और हँसती-हँसाती जिन्दगी जी सकें ।

प्रदूषण से लेकर चित्र-विचित्र असंतुलनों का एक ही कारण है मनुष्य का दुश्चिन्तन और आचरण । अनेक संकटों के अनेक उपाय खोजने में परेशान होने की अपेक्षा एक ही उपाय से समस्त संकटों का निराकरण हो सकता है कि सर्वत्र शालीनता को मान्यता मिले और लोग आत्मवत् सर्वभूतेषु का आदर्श व्यावहारिक जीवन में उतारें । कड़ा परिश्रम करें और उत्पादन, अनुशासन, सदुपयोग के आधार पर जीवनचर्या अपनाने के लिए सहमत हों । अशिक्षा, अस्वस्थता, अभावग्रस्तता, अव्यवस्था जैसे अनेक कारणों को इसी आधार पर हल किया जा सकता है कि मानवीय गरिमा के अनुरूप हर व्यक्ति अपने को ढाले । जियो और जीने दो की नीति को अपनाने में आनाकानी न करे । विनाश नहीं विकास हर किसी की दृष्टि में रहे । जीवन जीने की कला को अपनाने और अनौचित्य का साहसपूर्वक परित्याग करने का पराक्रम अपनाया जाय । डरने और डराने का अवसर ही न आने दिया जाय । सहयोग के लिए हर किसी के हाथ बढ़ें और संघर्ष उत्पन्न करने वाली गुत्थियों को सुलझाने के लिए मिलजुल कर प्रबल प्रयास करें ।

कहा जाता है कि साधनों के अभाव से प्रगति का रथ रुकता है । उन्हें उपलब्ध करने के लिए टैक्स लगाने, ऋण लेने जैसी सूझें ही सूझती हैं । पिछड़ों को अनुदान देने से काम चल जायेगा । ऐसी मान्यता योजना बनती और योजना चलती है, पर यह भुला दिया जाता है कि व्यक्ति अपने आप में अजस्र शक्तियों का भाण्डागार है । उसे उत्पादन और उपयोग में सदाशयता का समावेश सिखा दिया जाय तो इतने भर से साधनों के पर्वत खड़े हो सकते हैं या कम साधनों में मात्र सदाशयता के आधार पर बड़े काम सम्भव हो सकते हैं । यदि विलासिता और अहमन्यता के उद्धत अपव्यय पर अंकुश लग सके तो निर्वाह से बची हुई पूँजी तथा कुशलता इतनी अधिक मात्रा में शेष रह जाती है कि सभी उचित आवश्यकताओं की पूर्ति उतने भर से हो सके । संघर्ष का विकल्प सहयोग मान लिया जाय तो न अभाव का कोई कारण रह जायेगा और न संकटों से जूझने के लिए सामर्थ्य का अनावश्यक अपव्यय करना पड़ेगा । सम्पदा मनुष्य के श्रम और कौशल में से उपजती है । प्रसन्नता और प्रगति के लिए शालीनता और सुव्यवस्था का नियोजन पर्याप्त है । साधनों की ओर लालायित न रहकर यदि मानवीय क्षमताओं का अभिवर्द्धन और सुनियोजन हो सके तो इतने पर भी युग की समस्याएँ सुलझ जायेंगी और आवश्यकताएँ पूरी होने के मार्ग में कहीं कोई बाधा न रहेगी ।

गायत्री परिवार के अकिंचन प्रयत्न कितने अधिक सत्परिणाम उत्पन्न कर रहे हैं, इसे देखते हुए अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि चेतनात्मक परिष्कार का प्रवाह बह चले तो वह सब कुछ हस्तगत हो सकेगा जिसकी सतयुग के नाम से चर्चा की जाती है ।

विकसित चेतना की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ

साधारणतया मनुष्य को अपने निकट परिकर की तथा सम्बन्धित वस्तुओं और घटनाओं की ही जानकारी रहती है । वर्तमान से अधिक भविष्य तथा विगत जन्मों की घटनाओं का उसे ज्ञान नहीं होता । वह एक सीमित दिशा में देख, सुन, समझ, सोच सकता है । यों उसका सम्बन्ध असीम सत्ता से है, किन्तु इसकी भी जानकारी प्रत्येक मनुष्य को कहाँ रहती है । कुछ ऐसी घटनाएँ दैनिक जीवन में यदा-कदा घट जाती हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि मनुष्य में कोई विलक्षण शक्ति कार्य करती है जो भूत, भविष्य, वर्तमान में झाँकने की शक्ति रखती है । जिसके आधार पर मनुष्य को त्रिकालदर्शी होने तथा पूर्वाभ्यास, भविष्य दर्शन, भविष्य कथन करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है । कितने ही व्यक्तियों में यह अनायास उभरती है । कितने ही प्रयत्नपूर्वक उसे विकसित कर लेते हैं ।

पृथ्वी की ऊपरी परत को देखने से तो ऐसा लगता है कि उसमें घास-पात, वृक्ष, वनस्पति उगाने भर की क्षमता है, किन्तु उसकी गहराई में खोदने पर बहुमूल्य रत्नराशि मीठे बल का अगाध महासागर तथा अनेक प्रकार की बहुमूल्य खनिज सम्पदा छिपी पड़ी मिलती है । ठीक इसी प्रकार शरीर की दृश्य श्रम शक्ति और मनन-चिन्तन की शक्ति से भी परे गहराई में जाने पर उन क्षमताओं का अस्तित्व सामने आता है, जिन्हें अतीन्द्रिय क्षमता अथवा दैवी अनुकम्पा के नाम से जाना जाता है । वस्तुतः वह व्यक्ति की अविज्ञात उच्चस्तरीय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामर्थ्य ही है, जिसे प्रयत्नपूर्वक जाग्रत किया और बढ़ाया जा सकता है । इन समस्त अलौकिक क्षमताओं के केन्द्र व्यक्ति के मस्तिष्क में विद्यमान हैं जो चेतना से सम्बन्धित हैं तथा अति सूक्ष्म हैं । ये व्यष्टि सत्ता को समष्टि से जोड़ते हैं ।

प्रयत्नपूर्वक अतीन्द्रिय क्षमता विकसित कर लेना एक विज्ञानसम्मत प्रक्रिया है, किन्तु जब यह शक्ति स्वयमेव उभरती है और भूत-भविष्य की घटनाओं की जानकारी सामने आती है, तब अनायास कोई विज्ञानसम्मत समाधान नहीं सूझ पड़ता । अतः चमत्कार मानने पर लोगों को विवश होना पड़ता है, जबकि होता यह है कि किन्हीं व्यक्तियों के पास पूर्व संचित ऐसे संस्कार होते हैं जो परिस्थितियोंवश अनायास ही उभर आते हैं । वर्षा के दिनों में ऐसे कितने ही पौधे घास-पात के रूप में उपज पड़ते हैं, क्योंकि उनके बीज जमीन में पहले से ही दबे पड़े रहते हैं । यही बात उन व्यक्तियों पर लागू होती है, जो बिना किसी प्रकार की अध्यात्म साधनाएँ किये अलौकिक क्षमताओं का परिचय देने लगते हैं ।

पिछले दिनों इस क्षेत्र में काफी शोध अनुसंधान हुआ है और उन प्रयासों के फलस्वरूप उपयोगी निष्कर्ष भी सामने आये हैं । परामनोविज्ञान, मेटाफिजिक्स, साइकोसाइबरनेटिक्स, साइकोकाइनेसिस जैसी कितनी ही चेतनात्मक विधाएँ अब रेडियो, इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान आदि की तरह विकसित हो रही हैं । अचेतन मन, सुपर माइण्ड आदि की सामर्थ्य के सम्बन्ध में जैसे-जैसे जानकारियों के परत खुल रहे हैं वैसे स्पष्ट होता जा रहा है कि साधारण-सा लगने वाला मनुष्य असीम-अनन्त शक्तियों, क्षमताओं का भण्डार है । कठिनाई मात्र इतनी भर है कि उसकी अधिकांश अंतःशक्तियाँ प्रसुप्त, अविज्ञात स्थिति में पड़ी हैं, जिन्हें अब तक जाग्रत होने का उसने अवसर ही नहीं प्रदान किया । जन्म-जन्मान्तरों के अथवा वर्तमान जीवन में एकत्रित कषाय-कल्मषों की मोटी परत को हटाना यदि सम्भव बन पड़े तो हम में से हर कोई अतीन्द्रिय सामर्थ्यों का पुंज दृष्टिगोचर होगा ।

पाश्चात्य परामनोविज्ञानियों ने अतीन्द्रिय क्षमताओं को चार मुख्य भागों में विभक्त किया है—(१) परोक्ष दर्शन अर्थात् वस्तुओं और घटनाओं की वह जानकारी जो ज्ञान प्राप्ति के सामान्य आधारों के बिना ही उपलब्ध हो जाती है । (२) भविष्य ज्ञान-बिना किसी मान्य आधार के भविष्य के गर्भ में झाँककर घटनाओं को घटित होने से पूर्व जान लेना । (३) भूतकालिक ज्ञान । (रिट्रोकोग्नीशन) बिना किसी साधन के अविज्ञात भूतकालीन घटनाओं की जानकारी । (४) टेलीपैथी, अथवा विचार सम्प्रेषण बिना किसी आधार अथवा यंत्र के अपने विचार दूसरों के पास पहुँचाना तथा दूसरों के विचार ग्रहण करना । इनके अतिरिक्त भी साइकोकाइनेसिस, हिप्नोसिस साइकिक फोटोग्राफी डाउसिंग, 'आईलेस' । साइट, वायोरेपर्ट जैसी अनकानेक विधाएँ हैं जो दर्शाती हैं कि अतीन्द्रिय सामर्थ्य का, ई. एस. पी. का क्षेत्र कितना बड़ा है ।

शास्त्रकारों ने इसका आधार विज्ञान-मय कोष को माना और उसे विशिष्ट क्षमता सम्पन्न बताया है । जिसका केन्द्र अचेतन मन है । इसका आधार प्राण विद्युत को माना गया है । यह एक ऐसा चुम्बक है जो सांसारिक जीवन में प्राणोत्पादक शक्ति एवं प्रतिभा के रूप में दृष्टिगोचर होता है । उनका कहना है कि इस तत्व को यदि अधिक सक्षम बनाया जा सके तो कितनी ही विशेषताएँ उत्पन्न हो सकती हैं, जिनसे व्यक्तित्व में असाधारण परिवर्तन सम्भव है । इस ऊर्जा में वह शक्ति है जो सूक्ष्म जगत के प्रवाहों को अपनी ओर मोड़ सकने और उसके सम्पर्क से कई महत्त्वपूर्ण कार्य सिद्ध कर सकने की सामर्थ्य रखती है । विज्ञानमय कोष को सजाने, उसे परिष्कृत, परिमार्जित करने के उपाय-उपचारों का आधार लेकर अतीन्द्रिय क्षमताओं का विकास किया जाना सम्भव है, वैज्ञानिक भी अब इस तथ्य को स्वीकारने लगे हैं ।

इस संदर्भ में अमेरिकी मनोवैज्ञानिक डॉ. नेलसन बोल्ट का कथन है कि मनुष्य के अन्दर एक बलवती आत्म-चेतना रहती है, जिसे जिजीविषा या प्राणधात्री शक्ति कह सकते हैं । यह न केवल रोग निरोधन अथवा अस्तित्व संरक्षण के अविज्ञात साधन जुटाती है वरन् चेतना जगत में चल रही उन हलचलों का पता लगा लेती है जो संकट या विपत्ति बनकर अपने या अपनों से सम्बन्धित परिजनों पर आ सकती है । सुख-सुविधा जैसी परिस्थितियों के संकेत अविज्ञात से भले ही न मिलें, किन्तु अनिष्ट की आशंका या अस्तित्व के संकट की सूचना अविज्ञात के अंचल से मिलती रहती है । इससे यह सिद्ध होता है कि दृश्य जगत से परे कोई परम चेतन सत्ता विश्व ब्रह्माण्ड की सन्तुलन व्यवस्था, क्रमबद्धता बनाए हुए है और उसका संचालन संरक्षण सतत् करती रहती है ।

सुविख्यात परामनोविज्ञानी डॉ. हैराल्ड के अनुसार यह आवश्यक नहीं कि पूर्वाभास के संकेत स्वप्न, तन्द्रा या निद्रावस्था में ही मिलते हों । अपितु जाग्रत और चेतन अवस्था में भी कितनी ही बार मनुष्यों को ही नहीं वरन् पशु-पक्षियों तथा अन्य जीवधारियों तक को संकटों से बचने, जीवन रक्षा के संकेत प्रकृति से मिलते रहते हैं, जिनका सामयिक परिस्थितियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता । पूर्वाभास के सम्बन्ध में दो व्यक्तियों की परस्पर सघन आत्मीयता का बहुत बड़ा हाथ रहता है । जर्मन मनःशास्त्री डॉ. हेमबुक ने अपने शोध निष्कर्षों में इस बात का उल्लेख किया है कि अतीन्द्रिय क्षमता शक्ति पुरुषों की अपेक्षा नारियों में अधिक पाई जाती है, क्योंकि उनके स्वभाव में कोमलता हृदय में करुणा, दया, ममता, उदारता जैसे सद्गुणों का बाहुल्य रहता है । इसी कारण नारियों को अध्यात्म क्षेत्र में अधिक शीघ्र सफलता भी मिलती है ।

योगशास्त्रों में वर्णित है कि सतत् साधना एवं योगाभ्यास करते-करते मनुष्य में दिव्य शक्तियों का प्रादुर्भाव होने लगता है, जिन्हें सिद्धियों के नाम से जाना जाता है । दिव्य दर्शन, दिव्य श्रवण, दूरदृष्टि, भूत-भविष्य कथन, महिमा,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व आदि अनेक सिद्धियों का उल्लेख है । वैज्ञानिक आधारों के अभाव में अब तक इन्हें कल्पित माना जाता था, किन्तु अनेकानेक घटनाक्रमों, सिद्धि अवस्था को प्राप्त महामानवों, ऋषिकल्प व्यक्तियों का विश्लेषण-परीक्षण करने पर वैज्ञानिकों ने पाया है कि अतीन्द्रिय सामर्थ्य केवल कहने-सुनने तक सीमित नहीं है, वरन् यह तथ्यपूर्ण और विज्ञानसम्मत प्रक्रिया है । मनोनिग्रह योग-साधना की विविध प्रक्रियाएँ अपनाकर इन्हें उभारा जा सकता है और उसके द्वारा विश्व-ब्रह्माण्ड में संव्याप्त परम चेतना से तादात्म्य स्थापित कर लाभान्वित हुआ जा सकता है।

चेतना का सर्वोच्च आयाम एवं उसकी प्राप्ति

मानव जीवन को स्रष्टा का सर्वोत्तम उपहार कहा गया है । इस निर्माण में परमात्मा ने अपना सारा कला-कौशल सँजो दिया है । प्राणियों में इसके समकक्ष और कोई नहीं है । उसे विशिष्ट काया, मन, बुद्धि, प्रतिभा, सुविधा सभी कुछ उपलब्ध हैं । विकास क्रम में भी वह समस्त जीवधारियों से आगे है । इतना सब कुछ होने पर भी अभी मनुष्य का विकास अधूरा रह गया है । उसके पास जो बुद्धि-वैभव है वह जीवन को सुव्यवस्थित रखने, चेतना के उच्चतम स्थिति तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त नहीं है । सामान्य बुद्धि के रहते वह सृष्टि के मुकुटमणि के शीर्षस्थ पद से सम्मानित नहीं हो सकता । मन के जिस धरातल पर वह आज खड़ा है उससे भी अधिक उच्चस्तरीय चेतना की परतें उसके अन्तराल में विद्यमान हैं, जिन्हें अब तक कुरेदा नहीं गया है । पूर्णता की प्राप्ति के लिए उसे मन के उच्चतर धरातल-अतिमानसिक चेतना की ओर छलाँग लगाना होगा जिस पर पहुँच कर मनुष्य सर्वज्ञ बन जाता है । मानव से अतिमानव, महामानव, पुरुष से पुरुषोत्तम बनना, यही उसके विकास की अगली मंजिल है ।

परमेश्वर के दस या चौबीस अवतारों की मान्यता में मत्स्य, कच्छप, बाराह, नृसिंह, वामन से लेकर क्रमशः कलाओं का बढ़ते जाना और मर्यादा पुरुषोत्तम राम को बारह कलाओं वाला, पूर्ण पुरुष कृष्ण को सोलह कलाओं वाला माना जाना यही बताता है कि अवतारों में भी विकास क्रम के अनुरूप स्तर बढ़ता चला आया है । बुद्ध को बीस कलाओं का तथा उनके उत्तरार्द्ध निष्कलंक, प्रज्ञावतार को चौबीस कलाओं वाला निरूपति किया गया है। समस्त कलाएँ चौंसठ मानी गई हैं । उनमें से अवतारों का विकास अभी आंशिक रूप में ही हुआ है । जो होना शेष है उसमें अभी यह प्रगतिशीलता का क्रम चलता ही रहेगा ।

मनुष्य के बारे में भी यही बात है । आदिम काल में उसकी काया भले ही अधिक परिपुष्ट रही हो पर वह चेतना की दृष्टि से निश्चय ही पिछड़ा हुआ रहा होगा । अब उसकी समझदारी, साधन सम्पन्नता और कला के रूप में प्रकट होने वाली भाव-सम्वेदना पहले की अपेक्षा कहीं अधिक है । यह प्रगति क्रम भविष्य में भी तब तक चलता रहेगा जब तक कि पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचने की बात बन न जाय ।

मानव की सर्वतोमुखी प्रगति का कल्पना चित्र जो आप्त-पुरुषों ने खींचा है, उसे एक शब्द में देवता कहा गया है । यही उसकी विकसित अवस्था है । वैदिक ऋषि का उद्घोष है—**कृधि मा देववन्तम्** । अर्थात् विकास में हमें दिव्यता उपलब्ध करनी है, देवता बनना है । दिव्यता का मूर्धन्य स्वरूप देवताओं में मिलता है । कहते हैं कि देवता स्वर्ग में रहते हैं । वे श्वेत वर्ण होते हैं तथा अजर अर्थात जरारहित प्रौढ़ परिपक्व रहते हैं । वे अमृत पीते और अमर रहते हैं । काया से प्रौढ़, सुन्दर, युवा, स्वस्थ, परिपुष्ट एवं सौन्दर्य सज्जित होते हैं । उनका व्यक्तित्व धवल, प्रखर एवं परिपक्व होता है । वे समूचे अन्तरिक्ष में उड़ते और कहीं भी जा पहुँचने की क्षमता रखते हैं । श्रेष्ठता का समर्थन सहयोग करना उनका रुचिकर विषय और स्वभाव होता है ।

मनुष्यों में जिनकी भावनाएँ सदा दूसरों को समुन्नत, सुसंस्कृत देखने को उमंगती रहें, जिनकी गतिविधियाँ सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्द्धन में निरत रहें उन्हें देव स्वभाव का अधिष्ठाता कहा जा सकता है । सद्भाव सम्पन्न, उदार, सेवाभावी, परमार्थ परायण व्यक्ति इसी वर्ग में गिने जा सकते हैं । जिनकी आत्मिक विभूतियाँ, भौतिक सम्पत्तियाँ, उत्कृष्टता की समर्थक आदर्शवादिता में सहयोगरत हों, उन्हें देव-प्रकृति का कहा जा सकता है । दैवी ज्योति से सम्पन्न ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्रभा से देदीप्यमान आत्माओं की संज्ञा ही देव है । दिव्यता की इसी कोटि में पहुँचने पर आत्मा मानवीय उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँची मानी जा सकती है, जबकि भौतिक विकासवादियों की मान्यता है कि वर्तमान मनुष्य विकास की चरम अवस्था है । उनकी भौतिकवादी बुद्धिमत्ता यह स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है कि इसके आगे भी मानवी विकास और परिष्कार की सम्भावनाएँ विद्यमान हैं और वह अपनी वर्तमान प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करके महामानव बन सकता है ।

श्री अरविन्द ने विकासवाद का समाधान वेदान्त के आधार पर प्रस्तुत करते हुए कहा है कि मनुष्य ही वह चिंतनशील प्रयोगशाला है जिसमें से प्रकृति अतिमानव अथवा देवता उत्पन्न करने में लगी है, किन्तु मनुष्य स्वयं सोचने, विचारने और निर्णय करने की क्षमता वाला प्राणी है । उसे विवेक बुद्धि का अनुपम उपहार जो मिला है, अतः उसका उपयोग करते हुए उसे अगले विकास की प्रक्रिया के साथ सहयोग करना पड़ेगा । पंचभौतिक तत्वों से जीवन, जीवन से मन उत्पन्न हो चुके हैं । अब मन के भीतर से अतिमन-सुपरमाइण्ड प्रकट होने वाला है । उसके विकास का यही अगला सोपान है । प्रकृति उसे इसी सोपान पर ले जाने के लिए प्रयास कर रही है । ईश्वरीय करुणा का भी यही संकेत है । अपने सावित्री महाकाव्य में उन्होंने कहा है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य के भीतर विश्वभर की सम्भावनाएँ उसी प्रकार प्रतीक्षा में हैं, जैसे बीज में छिपा हुआ वृक्ष अपने विकास की प्रतीक्षा करता है । अतिमानवीय चेतना मनुष्य के अन्तराल में छिपी हुई है और वह अब प्रकट होने के समीप है । मनुष्य यदि सावधानी-पूर्वक उस चेतना को ग्रहण करने का प्रयास करे तो सुपर-चेतना अवश्य अवतीर्ण होगी और मानव अपनी समस्त समस्याओं का समाधान अपने आप पा लेगा ।

श्री अरविन्द का विकासवादी सिद्धान्त विज्ञान पर नहीं, अध्यात्म पर आधारित है । चेतना के उच्चस्तरीय सोपानों को उन्होंने चार भागों में विभक्त किया है । वे हैं— क्रमशः उच्चतर मन, प्रकाशित मन, सम्बद्ध मन और ओवरमाइण्ड । सुपरमाइण्ड का स्तर ओवरमाइण्ड से ऊपर है । ये चेतना के ऐसे आयाम हैं जिन्हें अब तक बिरले लोग ही कुरेद सके हैं और उनमें छिपी शक्तियों का लाभ उठा सके हैं । इन्हें प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव को निर्मल बनाये, परिष्कृत करे । विचारणा, भादना, सम्वेदना में उत्कृष्टता का समावेश करके ही महानता का वरण किया जा सकता है । अरविन्द के अनुसार अतिमानसी धरातल की ओर बढ़ने की पहली शर्त यह है कि मन को शान्त किया जाय और साथ ही सर्वतोभावेन ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाया जाय । इसी को उन्होंने इवोल्यूशन और इन्वाल्यूशन की प्रक्रिया के नाम से सम्बोधित किया है । इवोल्यूशन अर्थात् आरोह में मनुष्य अपनी चेतना को परिष्कृत करके प्रयत्नपूर्वक ऊपर को उठाता है । आत्म-विकास की साधना, उपासना के विविध विधि उपचारों का सृजन इसीलिए हुआ है । दूसरी प्रक्रिया इन्वाल्यूशन-अवरोह में अतिमानवी विकास के लिए योगमार्ग का आश्रय लेकर भागवत करुणा का आह्वान करना पड़ता है । सच्चे अर्थों में अध्यात्म जीवी-नाष्टिक बीइंग होने का यही राजमार्ग है । इस अध्यात्म जीविता को प्राप्त करना ही व्यक्तित्व की पूर्णता है, वही उसका पूर्ण विकास भी है । यही मनुष्य में देवत्व की कल्पना है ।

सुपरमैन अर्थात् उत्कृष्ट मानव की कल्पना अरविन्द से पूर्व विभिन्न पाश्चात्य दार्शनिकों-मनीषियों ने भी अपने-अपने ढंग से की थी । प्रख्यात दार्शनिक शोपनहावर का यदि वह जीनियस प्रतिभासम्पन्न पुरुष था तो कार्लाइल का 'वीरपुरुष' हीरो तथा दार्शनिक वेगनर का 'शीजेफ्रेड' एवं शिलर का 'कार्लूमर' था । दार्शनिक गेटे ने पूर्ण पुरुष का वर्णन देवता तुल्य शांत भाव वाले 'गोज' के रूप में किया है, जिसने अपने समस्त अव्यवस्थित मनोभावों, भावातिरेकों, मनोविकारों, मनोवेगों, दुष्प्रवृत्तियों को नियंत्रित एवं परिष्कृत कर लिया है । अपने चरित्र को विशिष्ट बना लिया और सृजनात्मक हो गया है । ऐसा महामानव जीवन को बिना किसी अमर्ष-रोष के स्वीकार करता है ।

'सुपरमैन' वस्तुतः जर्मन शब्द अबरमेन्श्च का रूपान्तरण है । जिसका शाब्दिक अर्थ है 'ओवरमैन' अतिमानव । इसको सर्वप्रथम विवादास्पद जर्मन दार्शनिक फ्रेडरिक नीत्शे ने अपनी दार्शनिक विचारधारा में प्रयुक्त किया था । इस परिकल्पना को उसने गेटे की रचनाओं से ग्रहण किया था । परन्तु चूँकि उस पर डार्विन के विकासवाद के 'सरबाइवल ऑफ दी फिटेस्ट' का भूत सवार था, अतः उसने इसे एक अलग ही विशिष्ट श्रेणी प्रदान की । एक को शासक एवं अन्यान्यों को शासित बताया । इसका वृहद् वर्णन ओर्टेगा वाइगैसेट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द रिवोल्ट ऑफ दी मासेज' में किया है ।

नीत्शे ने अपनी पुस्तक 'दस स्पेक जरथुस्त्र' में कहा है कि मनुष्य के अन्दर अतिमानव का अस्तित्व विद्यमान है और वह सूर्य की भाँति काले बादलों को चीरकर बाहर आने की प्रतीक्षा में है । जरथुस्त्र के माध्यम से उसने कहा है कि— सुपरमैन क्या है ? यह मैं बताता हूँ । मनुष्य जो कुछ है उस पर विजय पाना ही अतिमानव बनना है । क्या तुममें यह क्षमता है कि उस पर विजय प्राप्त कर सको ? नीत्शे का अतिमानव नैतिक, अनैतिक, सदाचार, दुराचार का सम्मिश्रण एवं क्रूरता की प्रतिमूर्ति था जो सभी को मारपीट और दबा कर रखना तथा उन पर शक्तिपूर्वक आधिपत्य करना चाहता था । इसके इस दर्शन ने ही नाजी तानाशाह हिटलर को जन्म दिया और समूचे जर्मनी को ऐसे आवेश से भर दिया कि वे लोग अपने समुदाय को अति श्रेष्ठ मानने और समस्त विश्व पर शासन स्थापित करने की तैयारी करने लगे थे ।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रख्यात् रहस्यवेत्ता जे. जी. गिचेल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'थियोसोफिया पैक्टिका' में उत्कृष्ट मानव का चित्र खींचा है । उन्होंने उसे पूर्ण पुरुष (परफेक्ट मैन) कहा है । उनके अनुसार मनुष्य अपनी अन्तरात्मा के जितने नजदीक पहुँचता जाता है और उसमें गहराई तक प्रवेश करता जाता है, उसी अनुपात से वह दिव्यता की ओर अग्रसर होता जाता है । आत्मा की अनन्त गहराइयों में पहुँचने पर ही ईश्वर के दर्शन होते हैं और तभी मनुष्य पूर्णता को प्राप्त करता है । उन्होंने मानवी काया में पाँच ऐसे केन्द्रों का वर्णन किया जिनमें देवता, अवतारों, ईश्वर और आत्मा का निवास माना गया है । इनमें से किसी एक अथवा सभी केन्द्रों को जाग्रत करके तदनुरूप मानव से महामानव बना जा सकता है । उनकी यह मान्यता प्रकारान्तर से तैत्तरीय उपनिषद् की उस आख्यायिका से मिलती है, जिसमें पंचकोश अनावरण का उपदेश किया गया है ।

ख्याति प्राप्त ब्रिटिश लेखक जार्ज बर्नार्ड शा ने अपनी पुस्तक 'मैन एण्ड सुपरमैन' में मानवीय विकास के दर्शन का प्रतिपादन किया है जो उसे दिव्यता की ओर ले जाता है । अरविंद के समकालीन दार्शनिक मार्टिन हेडेगर ने भी मनुष्य में देवत्व की कल्पना की है । अरविन्द जिसे नास्टिक बीइंग-अध्यात्म जीवी कहते हैं, हेडेगर ने उसे आथेन्टिक बीइंग अर्थात् प्रामाणिक जीव कहा है । उनके अनुसार पृथ्वी का रूपान्तरण ही मनुष्य के सामने एकमात्र उपाय है । उर्दू के प्रसिद्ध शायर मुहम्मद इकबाल ने अपनी रचना 'असरारे खुदी' और 'बाले जिबरील' में अतिमानव की कल्पना की है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्होंने इसके माध्यम से मनुष्य को आध्यात्मिक विकास की ओर बढ़ने को अभिप्रेरित किया है । मनुष्य की पूर्ण विकसित अवस्था को उन्होंने 'नायबे इलाही' की संज्ञा दी है ।

सुप्रसिद्ध दार्शनिक गुरजिएफ की गणना सिद्ध एवं संत पुरुषों में की जाती है । उन्होंने भी अध्यात्मजीवी के रूप में दिव्य-मानव का वर्णन किया है । उनका कहना है कि मनुष्य को चाहिए कि सबसे पहले वह अपने आपको पहचाने और अपना आध्यात्मिक विकास करके पूर्णता प्राप्त करे । उन्हीं के शिष्य पी. डी. औस्पेंकी ने इसी सम्भावना को अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ए न्यू माडेल ऑफ दी यूनिवर्स' में विशद् रूप में गूढ़ तर्कों के माध्यम से सिद्ध किया है ।

वस्तुत: मनुष्य की चेतन क्षमता असामान्य एवं अनन्त है । वह जैसा सोचता और करता है, वैसा ही बन जाता है । उसकी विचारणा और कार्य करने की क्रिया पद्धति ने उसे इस वैज्ञानिक युग तक पहुँचाया है । अपनी अपूर्णता को पूर्ण करने के सभी साधन स्रष्टा ने उसे बीज रूप में सौंपे हैं । देव-मानव बनना ही उसका लक्ष्य है । इस लक्ष्य को प्राप्त करने वाले अध्यात्मजीवी अति-मानव के लक्षण क्या होंगे ? इस संदर्भ में विभिन्न मनीषियों के अपने-अपने अनुमान अलग-अलग हैं । किसी का कहना है कि वह दानवी शक्तिसम्पन्न दीर्घजीवन जीने वाला होगा तो किसी का मानना है कि वह अमर हो जायेगा । अन्यों की धारणा है कि वह स्वेच्छामृत्यु का वरण करेगा । इस बारे में श्री अरविंद की अपनी पृथक् धारणा थी कि वह अमरता के लोक से आकर पृथ्वी पर स्वर्ग बसाने वाला अमरता का साकार रूप होगा । अपने प्रत्येक कार्य के पीछे वह प्रेरणाप्रद पद चिह्न छोड़ जायेगा जो भविष्य में आने वाली पीढ़ी के लिए मार्ग-दर्शक आधार स्तम्भ सिद्ध होंगे । ऐसे व्यक्ति की व्यष्टिगत चेतना समष्टिगत चेतना से एकाकार हो जायेगी और वह अपने में सबको तथा सबमें अपने को देखने वाला तथा समस्त प्राणियों का हित साधन करने वाला बन जायेगा, तब उसके भीतर न ईर्ष्या होगी, न द्वेष, न कीर्ति की कामना और न ही प्रभुत्व जमाने, शासन करने का लोभ होगा । वह स्वयं तो मुक्त होगा ही, अपनी नाव पर बिठाकर अन्य असंख्यों को भी भवसागर से पार लगायेगा, पूर्णता तक पहुँचायेगा ।

मानवीय विशेषता में उसके अतिचेतन स्तर सुप्रामेण्टल को ही दैवी विभूति माना गया है । वह उसे प्रचुर परिमाण में उपलब्ध भी है, पर कषाय कल्मषों से आच्छादित होने के कारण प्रसुप्त स्थिति में पड़ी है । अन्त:चेतना की इस उत्कृष्टता को ऋषियों, महामानवों, सिद्ध पुरुषों में से प्रत्येक को किसी न किसी प्रकार अर्जित करना ही पड़ा है ।

बलिष्ठता के लिए व्यायाम, विद्वता के लिए अध्ययन, उपार्जन के लिए पराक्रम की जिस प्रकार आवश्यकता है, उसी प्रकार नर से नारायण, मानव से अतिमानव-देवमानव बनने के लिए उच्चस्तरीय योग साधना का स्वरूप समझने तथा उनका सही रूप में प्रयोग करने की दिशा में कदम बढ़ाना अनिवार्य है ।

मानवीय मन में निहित सुपरचेतन

मानव मन की क्षमता असीम एवं विलक्षण है । उसकी चेतन, अचेतन, सुपरचेतन, समष्टिगत मन जैसी अनेक उथली गहरी परतें हैं, जो जन्म-जन्मान्तरों के भले-बुरे संस्कारों से लेकर अतीन्द्रिय क्षमताओं, दिव्य विभूतियों तक के भाण्डागार अपने भीतर समेटे रहती हैं । इन्हें जानने, कुरेदने और परिशोधित कर लेने वाला मनुष्य पशु-प्रवृत्तियों से ऊँचे उठकर देव स्तर तक सहज ही जा पहुँचता है । इसके विपरीत मन की भोंडी और उथली परतों से ही संचालित व्यक्तियों की गणना नर-पशुओं में की जाती है जो अपनी तुच्छता के कारण गुण, कर्म, स्वभाव एवं चिंतन, चरित्र, व्यवहार की दृष्टि से पग-पग पर घृणित और पतित सिद्ध होते रहते हैं । यही कारण है कि अध्यात्मवेत्ताओं एवं मन: शास्त्रियों ने मनश्चेतना के परिष्कार पर बहुत अधिक जोर दिया है और उसके लिए विविध विधि उपाय उपचारों का सृजन किया है । वस्तुत: आत्मा का संदेश और ईश्वर का प्रकाश परिष्कृत निर्मल मन पर ही उतरता है ।

विकसित व्यक्तित्व और प्रखर प्रतिभा की प्रशंसा सर्वत्र कही, सुनी जाती है । यह और कुछ नहीं केवल परिष्कृत मन के विकास की व्यक्तिगत जीवन में दीख पड़ने वाली झाँकी मात्र है । सुगठित चरित्रनिष्ठा, मनस्विता, दूरदर्शिता, प्रगतिशीलता, तत्परता एवं साहसिकता, सुव्यवस्था के रूप में हम केवल परिष्कृत मन की प्रौढ़ता के ही दर्शन करते हैं । त्याग, बलिदान, सेवा, तप-साधना की कष्टसाध्य प्रक्रिया को अपनाने में कितने ही व्यक्ति असाधारण आनन्द संतोष एवं गर्व अनुभव करते हैं । यह सब परिशोधित उच्चस्तरीय मन की ही देन है ।

चेतन मन की उथली परत के नीचे अचेतन मन होता है । इसके दो भाग हैं—अतीन्द्रिय मन और समष्टिगत मन । अचेतन मन के यह दोनों भाग कितने महत्त्वपूर्ण हैं, इसे मनस्वी और मन:क्षेत्र की साधना करने वाले लोग ही जान सकते हैं । चेतन मन के स्वरूप और प्रभाव से सभी परिचित हैं । इसके प्रभावी बने रहने पर मनुष्य में स्वार्थवादी एवं इन्द्रियपरायण अहंता जग पड़ती है और उसकी ललक, वासना, तृष्णा की पशु चेष्टाओं में ही भटकती रहती है । फ्रायड सरीखे मनोविज्ञानी इसी भटकाव को मनुष्य की मूल प्रवृत्ति मान बैठे हैं । ये यह नहीं सोच सके कि उनके निष्कर्ष मानवी महानता को पतनोन्मुख बनाने का कितना घातक परिणाम प्रस्तुत करेंगे । मनीषी इसे सुयोग्य, बनाने के लिए अध्ययन, अनुभव, परामर्श, चिन्तन-मनन आदि उपक्रमों को अपनाने पर बल देते हैं ।

उथले स्तर की मन:विकृतियों को ही समग्र मानसिक चेतना मान बैठने वाले मनोवैज्ञानिक ही यह कह सकते हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि—"पशुप्रवृत्तियों के दमन से मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है । इसलिए उन्हें खुला खेलने देना चाहिए और नैतिकता, अनैतिकता, मर्यादा, उच्छृंखलता का विचार नहीं करना चाहिए ।" यह प्रतिपादन वस्तुत: मनुष्य के घृणित और वीभत्स स्तर की ही वकालत है और उसे पशु एवं पिशाच बनाने का निर्लज्ज प्रोत्साहन है । यदि यह बात सच रही होती तो मानवीय संस्कृति का जो विकास अब तक हो सका है, वह कदापि सम्भव न रहा होता । फिर आदर्शवादिता और उत्कृष्टता के लिए संयम और सद्भाव के लिए मनुष्य चरित्र में कोई स्थान ही न रहा होता । वास्तविकता तो यह है कि नैतिक भावनाओं का उन्नयन मन को अत्यन्त सबल एवं उत्पादक बना देता है और ऐसे आनन्द, संतोष से भर देता है जिसकी तुलना में कामवासना सरीखी पशु प्रवृत्तियों का तुष्टीकरण तुच्छतम् ही प्रतीत होता है ।

अचेतन मन की गरिमा और सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए आधुनिक मनोवेत्ता गम्भीरतापूर्वक अनुसंधानरत हैं । इस क्षेत्र में मन:साक्षी जितने गहरे उतरते जाते हैं, उतना ही यह अनुभव करते हैं कि इस रत्नागार में छिपी बहुमूल्य सम्पदा इतनी अपार और असीम है जिसकी कल्पना तक कर सकना कठिन है । इसके गहन स्तर अतीन्द्रिय मन में वे समस्त सम्भावनाएँ विद्यमान हैं जिनका योगी, तपस्वी तथा सिद्ध पुरुषों के चमत्कारों तथा सिद्ध साधकों के संदर्भ में वर्णन किया जाता है । परोक्ष जगत में जिन अलौकिकताओं और अतिमानवीय उपलब्धियों की चर्चा होती रहती है, उनका बीज मूल इस अचेतन मन में ही प्रसुप्त स्तर पर पड़ा रहता है । जो इसे जाग्रत कर लेते हैं, वे उस अद्भुत् को भी प्रत्यक्ष करते रहते हैं जो साधारणतया असम्भव और अप्रत्याशित समझा जाता है ।

इस संदर्भ में सरओलिवर लॉज, मेडम ब्लैवेस्टस्की प्रभृति तत्ववेत्ताओं ने गहन अध्ययन, अनुसंधान किया है । विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में परामनोविज्ञानी औकल्ट साइंस, पैरासाइकोलॉजी, मेटाफिजिक्स आदि के अंतर्गत अतीन्द्रिय विज्ञान में शोध कर रहे हैं । दूरदर्शन, दूरश्रवण, परोक्षानुभूति, भविष्यकथन, परकाया प्रवेश जैसे कितने ही प्रयोग प्रत्यक्ष प्रयोगशालाओं में होते हैं । मैस्मेरेज्म, हिप्नोटिज्म को अब टोना-टोटका नहीं माना जाता, वरन् उसके आधार को विज्ञान सम्मत स्वीकार कर लिया गया है । कितने ही व्यक्ति समय-समय पर प्रकाश में आते रहते हैं जो मनुष्य में अलौकिकताओं की सम्भावनाओं को हर कसौटी पर प्रमाणित कर सकें । यह सारी परिधि अतीन्द्रिय मन की अद्भुत शक्ति सामर्थ्य पर ही प्रकाश डालती है ।

अतीन्द्रिय मन के सम्बन्ध में कभी यही सोचा जाता था कि यह दैवी अनुग्रह का वरदान-चमत्कार है । पर अब यह स्पष्ट हो चला है कि मंत्रों और देवताओं के माध्यम से जो कुछ प्राप्त किया जाता है, वह वस्तुत: कहीं बाहर से नहीं आता, वरन् भीतर से ही उदय होता है । देवता यदि हैं तो उनका निकटतम देवस्थान अपना अतीन्द्रिय मन ही है । मंत्रों में, साधना-अनुष्ठानों में अलौकिक शक्ति मानी जाती है, उसके उद्गम स्थल अचेतन मन की यही उच्चस्तरीय परत है । मंत्र, देवता या साधना विधान किसी के लिए फलप्रद होते हैं, किसी के लिए नहीं । इसका एकमात्र कारण साधक के अतीन्द्रिय मन की परिस्थितियों का ऊँचा-नीचा स्तर ही है । अलौकिकताओं का ध्रुव केन्द्र यही मर्मस्थल है । ब्रह्मबिन्दु इसी को कहते हैं । भूतकाल का ऋषिकालीन इतिहास इसी ब्रह्मविद्या की महत्ता से भरा पड़ा है ।

अतीन्द्रिय मन से उच्चस्तरीय परत को समष्टि मन या सुपरचेतन मन कहते हैं । दूसरे शब्दों में इसे विश्वात्मा कहते हैं । प्राणि मात्र में एक ही दिव्य ज्योति विभिन्न रंग-रूपों और आकार-प्रकारों में जल रही है । सामूहिकता, सद्भावना, प्रेम, उदारता, सेवा, संयम, करुणा, ममता जैसी उच्च प्रवृत्तियाँ इसी स्तर के प्रस्फुरण से विकसित होती हैं । तुच्छ से नर पशु को महामानव के रूप में परिणत कर देने का श्रेय इसी मन:स्तर को है । अनीति की ओर बढ़ते कदमों को यही अन्त:प्रेरणा रोकती है । त्याग और बलिदान के लिए साहस इसी स्तर की हलचलों से जाग्रत होता है । अतीन्द्रिय और समष्टि मन की अन्त:स्फुरणाओं के प्रभाव से ही व्यक्ति ऋषि, द्रष्टा, तत्वज्ञानी, देवदूत एवं अवतारी बनता है । समष्टिमन का प्रभाव ही समाज सेवा, लोकमंगल एवं चरित्र निर्माण के रूप में देखा जाता है और अतीन्द्रिय मन की विभूतियों का सौन्दर्य अतिमानवों-देवदूतों के रूप में यत्र-तत्र बिखरा हुआ देखा जा सकता है । महर्षि अरविन्द ने मानसिक चेतना के इसी स्तर की भूरि-भूरि प्रशंसा की है ।

प्रख्यात पाश्चात्य मन:शास्त्री जुंग ने भी समष्टि मन की क्षमता पर बहुत प्रकाश डाला है । उनका कहना है कि इसी की प्रेरणा से वे सभी गतिविधियाँ उत्पन्न होती हैं जिनके आधार पर मनुष्य और समाज का सराहनीय रूप बनता है । वस्तुत: यही मूल प्रवृत्ति है और इसी ने मनुष्य में विचारशीलता, सहकारिता एवं आदर्शवादिता की प्रवृत्तियाँ विकसित करके उसे आज की समुन्नत स्थिति तक पहुँचाया है । देवत्व यही है । सतोगुण से अर्जित आत्मबल यही है । वातावरण की गन्दगी मन पर जमते रहने पर एक गंदगी की परत भी जमती रहती है, पर उसके उन्मूलन में भी दैवी प्रवृत्ति निरन्तर संलग्न रहती है । समुद्र मंथन का अंतर्द्वन्द्व यही है । सद्गुरु की शिक्षा एवं आत्मप्रेरणा के रूप में इसी संशोधन परिष्कार को आत्मवेत्ता चित्रित करते रहे हैं । समष्टिगत आकांक्षाओं के प्रतिकूल उच्छृंखलता एवं अनैतिक आचरण करने वालों को न केवल राजसत्ता द्वारा—सामाजिक घृणा द्वारा दण्ड मिलता है, वरन् आत्मप्रताड़ना द्वारा अनेक शारीरिक, मानसिक रोगों की उत्पत्ति भी होती है । यही तथ्य अब दिनों-दिन अधिकतम स्पष्ट होते चले जा रहे हैं और उच्छृंखलतावादी मनोवैज्ञानिक प्रतिपादनों की निरर्थकता स्वयं सिद्ध बनती चली जा रही है ।

अब वह दिन दूर नहीं रहा जब, अतीन्द्रिय विज्ञान के शोधकर्ता मनुष्य की महान् महत्ता को अब की अपेक्षा सहस्रों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुनी अधिक अद्भुत सिद्ध कर सकेंगे । तब प्रकृति के नहीं, वरन् चेतना जगत के एक से एक बढ़कर महत्त्वपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन मात्र मानवी शरीर एवं मन रूपी यंत्र से ही सरल सम्भव हो सकेगा और मनुष्य पशु प्रवृत्तियों से ऊँचा उठकर देव स्तर तक जा पहुँचेगा ।

हम दर्शक नहीं, द्रष्टा बनें

इस संसार के महामानवों और महापुरुषों के संदर्भ में विचार करने से ज्ञात होता है कि उनका स्तर सदा सामान्य से ऊँचा रहा है । उनके चिन्तन, चरित्र व व्यवहार नितान्त असाधारण रहे हैं । उनके दृष्टिकोण में उच्च आदर्शवादिता का समावेश रहा है । यदि ऐसा न होता, तो सम्भवत: वे महामानवों की श्रेणी में न आ पाते और इतिहास पुरुष न बन पाते । इस असाधारण स्तर के विकास में उनके द्रष्टा भाव की ही प्रमुख भूमिका होती है । यदि वे द्रष्टा न होते तो काल के प्रवाह में न जाने कब, कहाँ खो जाते, कुछ पता न चलता, किन्तु जब वे द्रष्टा बनने का साहस सँजोते हैं, तो उनका द्रष्टापन सदा उन्हें आगे बढ़ाता ही चलता है और अन्तत: कालपुरुष बनाकर अविस्मरणीय लोगों की पंक्ति में ला खड़ा कर देता है ।

यहाँ 'द्रष्टा' का तात्पर्य सिद्ध पुरुषों से कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए और न यही समझा जाना चाहिए कि द्रष्टा मात्र ऐसे ही व्यक्ति होते हैं । दृष्टा एक सामान्य व्यक्ति भी तो हो सकता है, जो सतत् आत्म-निरीक्षण कर अपनी कमियों को घटाने-मिटाने का निरन्तर प्रयास करता हो । इस प्रकार द्रष्टा का सामान्य अर्थ 'देखने वाला' अथवा दर्शक माना जा सकता है, किन्तु दर्शक और दृष्टा में जमीन-आसमान जितना अन्तर है । यह सम्भव है कि भाषाकोश अथवा शब्दकोश में यह अन्तर न किया गया हो, किन्तु भाव की दृष्टि से इनमें उतना ही अन्तर है, जितना दिन व रात में । दर्शक की दृष्टि सदा दूसरों पर होती है, लेकिन द्रष्टा की आँखें हमेशा स्वयं पर टिकी होती हैं । इस प्रकार जब हम 'दर्शक' कहते हैं तो अभिप्राय वैसे व्यक्ति से होता है, जो दूसरों को देख रहा हो, पर जब द्रष्टा कहा जाता है, तो अर्थ किसी आत्म-निरीक्षक से होता है ।

रूस के मूर्धन्य मनीषी मैक्सिम गोर्गी ने अपनी कृति 'मानव और महामानव' में इसी आशय का मन्तव्य प्रकट करते हुए कहा है कि मनुष्य की तीन श्रेणियाँ हैं—दृश्य, दर्शक और द्रष्टा । वे अपनी उक्त रचना में लिखते हैं कि 'दृश्य' सबसे निम्न कोटि का मनुष्य है । उसे दिखावे में, आडम्बर में रस आता है । वह कहते हैं कि जो व्यक्ति दृश्य बन गया, समझना चाहिए कि वह जड़ वस्तु बन गया और जड़ में आत्मा नहीं होती, अस्तु इनकी स्थिति भी लगभग वैसी ही बन जाती है यद्यपि देखने-सुनने में तो सचेतन मनुष्य जान पड़ते हैं, पर इनकी अवस्था बाजीगर के इशारे पर नाचने वाले कठपुतली जैसी ही होती है । कोई अबोध बालक इन पुतलों को सजीव मान सकता है, पर वास्तविकता वैसी कहाँ होती है? वह तो काठ के निर्जीव खिलौने भर होते हैं, जो दृश्य बनकर लोगों का मनोरंजन करते हैं । अत: जिन्होंने दृश्य बनने को कौतुक रचा, समझना चाहिए कि उन्होंने स्वयं को खो दिया, अपनी सत्ता खो दी और आत्मा खो दी । फिल्मों में काम करने वाला व्यक्ति कोई और होता है, पर अभिनय किसी और का करता है । रंगमंच के रंगकर्मियों का भी यही हाल है । यह सब अपनी स्वतंत्र सत्ता को खो देते हैं, आत्मा को खो देते हैं और दृश्य बन जाते हैं । अतएव इनमें आत्मा को ढूँढ़ पाना कठिन है । इनमें श्रेष्ठ दीखने का अभिनय भर होता है, उत्कृष्ट बनने का प्रयत्न पुरुषार्थ नहीं । इसीलिए पात्र दृश्य बनकर रह जाते हैं, द्रष्टा नहीं बन पाते ।

विवेकानन्द ने एक बार कहा था कि भारतवर्ष में यदि द्रष्टा पुरुष पैदा करने हों, तो उनके अन्दर के दर्शक को मिटाना पड़ेगा और यह सत्य है कि बिना दर्शक का विसर्जन किये, द्रष्टा का सृजन सर्वथा असम्भव है । यहाँ गोर्की और इनके विचार काफी मिलते-जुलते हैं । गोर्की का मानना है कि जहाँ दृश्य होगा, वहाँ निश्चय ही दर्शक होगा, अर्थात् दृश्य और दर्शक एक दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि दृश्य बिना दर्शक पैदा हो ही नहीं सकते और दर्शक के अभाव में दृश्य की महत्ता ही समाप्त हो जाती है, किन्तु इस सम्भावना से वे इन्कार करते हैं कि जहाँ दृश्य हो, वहाँ दर्शक न हो ऐसा हो ही नहीं सकता । यह बात और है कि दर्शक कम हों, पर होंगे अवश्य । जहाँ रामलीला-रासलीला होती है, सिनेमा-नाटक होते हैं, वहाँ उन्हें देखने वाले भी मौजूद रहते हैं । यदि इनका मंचन न हो, तो दर्शक भी वहाँ इकट्ठे न होंगे । इस प्रकार गोर्की के अनुसार दृश्य ही वह मूलभूत कारण है, जो द्रष्टा बनने के रास्ते में रोड़े अटकाता है । यदि दृश्य को समाप्त कर दिया जाय, तो दर्शक भी स्वत: ही समाप्त हो जायेंगे और फिर जो उत्पन्न होंगे वे द्रष्टा होंगे । यहाँ दृश्य का तात्पर्य बनावटीपन से, आडम्बर से है यदि इसे छोड़ लोग साधारण जीवनक्रम अपना लें, तो रूसी लेखक के अनुसार लक्ष्य प्राप्ति की काफी कठिनाइयाँ हल हो जायेंगी ।

प्रख्यात अँग्रेज विचारक बट्रैण्ड रसेल ने अपनी पुस्तक 'ह्वाट डज बैड लक मीन ?' में लिखते हैं कि आज की व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं में से अधिकांश का आधारभूत कारण यही है कि वर्तमान में हमने स्वयं के अन्दर झाँकना बन्द कर दिया है । अब हम अन्दर की वजाय बाहर झाँकना अधिक पसन्द करते हैं । हमारी इसी बाह्य दृष्टि ने इन दिनों अपनी विपत्तियाँ खड़ी कर दी हैं । इनका समापन भी तभी सम्भव हो सकेगा, जब हम अन्तर्दृष्टि विकसित कर सकेंगे । वे लिखते हैं कि इससे कम में कदाचित् इनका हल शक्य न हो सके ।

इस स्थान पर विद्वान अँग्रेज दार्शनिक और विख्यात रूसी लेखक की मान्यताओं में काफी साम्य दिखाई पड़ता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । रूसी ग्रन्थकार ने भी तीन प्रकार के मनुष्यों में सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ तीसरी कोटि के मनुष्यों को ही माना है और इस बात पर बल दिया है कि वर्तमान समस्याओं का आत्यन्तिक हल इसी में है कि हम दर्शक नहीं, दृष्टा बनें । यहाँ दर्शक और द्रष्टा में एक मूलभूत अन्तर है । दोनों ही कहीं न कहीं खोये होते हैं, पर उनका स्थान भिन्न-भिन्न होता है । दर्शक रेडियो, टी. वी., सभा-सम्मेलन, भाषण, सम्भाषण, वाद-विवाद, वार्त्तालाप, मेले-ठेले आदि को देखने-सुनने में अपने को भूल जाते, सुध-बुध खो बैठते हैं । जब तक यह कौतुक चलते रहते हैं, तब तक वह अपनी आत्मसत्ता को भूले रहता है और आत्मविहीन जड़वत्, प्रतीत होता है, किन्तु द्रष्टा! वह खोता तो जरूर है, मगर स्वयं में, अपने अन्तराल में, अपने अन्तःकरण में । इसमें डुबकी लगाकर वह अपनी कमियों, अपनी त्रुटियों को हटाने-मिटाने का प्रयत्न करता है । इस प्रकार यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि दर्शन यदि आत्म-विस्मरण की अवस्था है, तो द्रष्टापन आत्म-स्मरण की ।

अब यहाँ एक प्रश्न उभरता है कि द्रष्टा बना कैसे जाय ? क्या कुछ जप ध्यान कर लेने मात्र से ही व्यक्ति द्रष्टा कहलाने का अधिकारी हो जाता है? रूसी मनीषी का कहना है कि नहीं, इतने ही से कोई द्रष्टा नहीं बन सकता । वे कहते हैं कि द्रष्टा के भीतर का भाव ही यही है कि वह अपने अन्तस् में डुबकी लगाये और अपनी उन कमजोरियों को ढूँढ-ढूँढ कर बाहर निकाले, जो उसके द्रष्टापन को प्रकट होने देने में बाधक हैं । स्पष्ट है—द्रष्टा के लिए अपना निज का स्रष्टा होना भी आवश्यक है, उसे अपना सृजन कर अनगढ़ता को सुगढ़ता में बदलना भी अनिवार्य है, तभी वह यह सम्बोधन प्राप्त कर सकता है । यदि वह भी आत्म-सृजन के संदर्भ जनसामान्यों जैसा ही बना रहा, तो असामान्य अथवा साधारण कहलाने का विशेषण कैसे प्राप्त कर सकेगा ? निश्चय ही द्रष्टा के लिए स्रष्टा होना भी उतना ही अनिवार्य है, जितना जीवन के लिए प्राणवायु । इसी प्रक्रिया से मानव महामानव बनते और नर-नारायण की भूसुर की पंक्ति में जा खड़े होने की गौरव गरिमा अर्जित करते हैं ।

देव मानव बनने का आह्वान

नृतत्ववेत्ताओं ने विविध पर्यवेक्षणों और उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि आदि मानव वनमानुष स्तर का था । उसमें पशुप्रवृत्तियों का ही बाहुल्य था, रहन-सहन और क्रिया-कलाप भी उसी स्तर का वह निज का उपार्जन कुछ भी नहीं करता था । प्रकृति के अनुदानों पर पशु-पक्षियों की तरह अपना निर्वाह करता था । प्रगति की दिशा में उसके कुछ चरण और बढे तो पुरुषार्थ परायण हुआ । कृषि, पशुपालन जैसे उद्योग सीखे । वस्त्र, निवास, अग्नि प्रज्ज्वलन जैसी विधि व्यवस्थाओं से अवगत हो गया । बोलना सीख गया और अपने-अपने समुदायों के प्रथा-प्रचलनों से अभ्यस्त हो गया । भौतिक प्रगति इसी दिशा में गतिशील होती चली आई है । विज्ञान, यंत्रीकरण, अर्थ-शास्त्र एवं शासन तंत्र की उपलब्धियों के सहारे वह वहाँ पहुँचा है जहाँ आज है । उसके सामने सुविधा-साधनों का बाहुल्य है । यह दूसरी बात है कि अपने व्यक्तित्व को घटिया बनाये रहकर वह उनका सही समुचित उपयोग न कर सके । मानवीय प्रगति का यही लेखा-जोखा है । मनुष्यों में से कुछ उद्दण्ड, अत्याचारी, छली, आक्रामक, विलासी, अहंकारी बन गये हैं और कुछ को अपनी नासमझी, कुशलता, प्रतिभा के अभाव में गई-गुजरी स्थिति में रहना पड़ रहा है । मनुष्य को बंदर की औलाद इसीलिए कहा जाता है कि उसकी भावना और विचारणा, पेट और प्रजनन के लिए वह मरता खटता रहता है । बहुत हुआ तो ठाठ-बाट बनाता, हर्ष जताता और आक्रामक बनकर अपनी विशिष्टता सिद्ध करता है । जो इतना नहीं कर पाते, वे परिस्थितियों की प्रतिकूलता और भाग्य की विपरीतता को कोसते हुए दिन गुजारते हैं । मनुष्यों में से अधिकांश इन्हीं आदि मानव, वन मनुष्य या धूर्त शृंगाल प्रकृति के देखे जाते हैं । जनसंख्या की विपुलता ने न लोगों को निज की गौरव-गरिमा प्रदान की है और न समाज को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने में ही कोई योगदान दिया है । चकाचौंध उत्पन्न करने वाली विडम्बना तो चारों ओर बिखरी अवश्य दिखाई पड़ती है, पर उसकी परिणिति प्रतिक्रियाओं को देखते हुए निराशा ही होती है और असमंजस होता है कि जिसे ईश्वर का युवराज, प्राणीवर्ग में शिरोमणि, देव मानव आदि नामों से सम्मानित किया गया है, क्या वह यही है जिसे लोभ, मोह, स्वार्थ, शान, तृष्णा और अहंता के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं ?

प्रकृति परायणता की सीमा इतनी ही है । जीवधारी अपने लिए ही जीते हैं । अपनी ही आवश्यकता जुटाते और अपनी प्रसन्नता, अनुकूलता सँजोने में निरत रहते हैं । प्रकृति परायण रहकर मनुष्य भी उसी गई-गुजरी मनःस्थिति में रह सकता है जिसमें कि अन्य जीवधारी मरते और मारते हैं । गिरते और मारते और गिराते हैं ।

मानवी गरिमा का उज्ज्वल स्वरूप विकसित, प्रस्फुटित तब होता है, जब वह उत्कृष्ट आदर्शवादिता के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ता है । अपने चिन्तन, चरित्र, व्यवहार और प्रयास को अभिनन्दनीय, अनुकरणीय बनाता है । इसी ढाँचे में उसे ढालने के लिए ऋषियों ने शास्त्रों की रचना की है । अध्यात्म दर्शन का ढाँचा खड़ा हो गया है । योग-तप के अनेकानेक विधान बनाये हैं । ईश्वर भक्ति के अनेकानेक उपचार कर्मकाण्डों का सृजन किया है । इन आत्मोत्कर्ष की अनेकानेक विधि-व्यवस्थाओं का मूलभूत उद्देश्य एक ही है कि मनुष्य इसी जीवन में स्वर्ग, मुक्ति और सिद्धि प्राप्त करे । यह तीनों ही किसी अन्य लोक से सम्बन्धित या जादू, चमत्कार जैसा नहीं है, वरन् उन्हें व्यक्ति की महानता के रूप में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । दृष्टिकोण का परिष्कार ही 'स्वर्ग' है । दुष्प्रवृत्तियों से छूट निकलना मुक्ति और अभिनन्दनीय स्तर पर जीवनचर्या को बनाये रहना 'सिद्धि' । आत्मोत्कर्ष के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतना करना ही पर्याप्त है । इससे कम में उस प्रयोजनों की पूर्ति होती नहीं । इससे अधिक और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है । ऋषियों, मुनियों, योगियों, तपस्वियों, सिद्ध पुरुषों, महामानवों को इसी आत्मिक प्रगति प्रयास में संलग्न पाया गया है । उन्होंने आकाशवासी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जो कुछ किया वह वस्तुत: अपने ही भीतर के देवत्व को जगाने के लिए किया था । शाप और वरदान भीतर से ही उभरते हैं । वे आसमान से नहीं बरसते । मनुष्य को सुनिश्चित रूप से अपने भाग्य का निर्माता कहा गया है । वह इसके लिए प्रबल प्रयास भी करता है । अपने आपको अधिकाधिक पवित्र, परिष्कृत, प्रामाणिक एवं प्रतिभावान बनाता है । समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को अपने स्वभाव में सम्मिलित कर लेता है । अन्त:करण और बाह्यचरण में जब समानरूप से उत्कृष्टता का समावेश हो जाता है तो सामान्य शरीर में रहते हुए भी व्यक्ति देवमानव की गरिमा उपलब्ध कर लेता है । ऐसे लोगों के लिए देवमानव नाम दिया जाना सर्वथा उपयुक्त है । देवता अशरीर होते हैं इसलिए उनके साथ प्रत्यक्ष घुलन-मिलन नहीं हो सकता है, पर देवमानवों को सन्त, सुधारक और शहीदों के रूप में प्रत्यक्ष भी देखा जा सकता है । परिचित परिकर में उनकी संख्या कम हो तो भी इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों से उन्हें जीवन्त-जाज्वल्यमान देखा जा सकता है । ऐसे नर देव-पुरुष पुरुषोत्तम होते तो कम ही हैं, पर उनका सर्वथा अभाव किसी भी युग में नहीं होता । सतयुग में ऐसे ही लोगों का बाहुल्य था । भारत भूमि के तैतीस कोटि निवासी संसार भर में तैतीस कोटि देवताओं के नाम से प्रख्यात हैं । जिस धरती पर वे जन्मते-पलते थे, वह स्वर्गादपि गरीयसी हो जाती थी । उनके क्रिया-कलाप से वातावरण इतना दिव्य बन जाता था कि उसे सतयुग नाम दिया जाना उपयुक्त ही जँचता था । यह समय लम्बी अवधि तक बना रहा । इनके शरीर भर प्रकृति प्रदत्त थे, पर उनके अन्त:करण में देवत्व कूट-कूट कर भरा था । डिब्बी के भीतर जो वस्तु रखी है, उसी के आधार पर उसका मूल्यांकन होता है । जिनकी अन्तरात्मा प्रामणिकता, शालीनता, सेवा और परमार्थ परायणता से सराबोर हैं, उन्हें देवतुल्य ही नहीं, वरन् उनसे बढ़कर भी माना जा सकता है । देवता अप्रत्यक्ष होते हैं । मनुहार करने और उपहार देने पर पसीजते हैं । इसके उपरान्त ही उनके अनुदान-वरदान साधकों पर बरसते हैं, किन्तु देव मानवों की कृपा-अनुकम्पा अहेतुकी होती है और बिना याचना की प्रतीक्षा किये मेघमाला की तरह बरसती और बसन्त की तरह शोभा, सुषमा से सर्वत्र उल्लास बिखेरती है ।

भारत देव भूमि है । स्वर्गलोक के अस्तित्व को चुनौती दिये बिना यह कहा जा सकता है कि उसका प्रत्यक्ष दर्शन करना हो तो ऐसे महामानवों की उपस्थिति अभी भी जहाँ तहाँ देखी जा सकती है । सतयुग में तो वे साधु और ब्राह्मण के रूप में एक विकसित समुदाय के रूप में ही इस धरित्री की शोभा सुषमा, संस्कृति एवं समृद्धि का सम्वर्द्धन करते थे ।

आज मनुष्य की व्यक्तिगत और सामूहिक समस्याएँ बेतरह उलझ गई हैं । साधन-सामग्री घट गई हो सो बात नहीं । विज्ञान और कौशल ने साधनों का अतिशय विस्तार किया है, किन्तु व्यक्तित्व की दृष्टि से समुदाय अतिशय बौना हो गया है । कुछ उत्पीड़क हैं, कुछ उत्पीड़ित, कुछ शोषक हैं, कुछ शोषित । कुछ पर्वत की चोटी पर बैठे हैं तो कुछ खाई में गिरकर कराह रहे हैं । इस विषमता को समता के रूप में परिणित करने के लिए देवमानवों के अतिरिक्त और कोई समर्थ नहीं हो सकता ।

पौराणिक कथानकों में अधर्म के उन्मूलन और धर्म के संस्थापन के निमित्त अवतारों का प्रकटीकरण होता रहा है । इस अलंकारिक प्रतिपादन का व्यावहारिक स्वरूप यह हो सकता है कि प्रामाणिकता और परमार्थ परायणता की पक्षधर उदारता सामान्य लोगों जैसी गतिविधियों से उबारकर देव-प्रयोजनों मे जुट जाने का एकाकी साहस करने की प्रेरणा देती है । सद्भावनापूर्वक अपनाई गयी है । उच्चस्तरीय निर्धारण को पूरी करने में कर्त्ता की अन्तरात्मा और देवी शक्तियों की अनुकम्पा समान रूप में संयुक्त रूप से काम करती है और जो परिणाम सामने आते हैं, वे चमत्कारी स्तर के होते हैं । परमार्थी पुरोहितों को ही ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता है । वस्तुत: वे ही समाज का स्तर परिस्थितियों का प्रवाह और उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने के लिए आगे बढ़ते और सफल होकर रहते हैं । समय की पुकार है कि ऐसे उदार चेता उभरें । अपने इर्द-गिर्द के भव-बन्धनों की पकड़ से अपने को उबारें और साथ ही जन-कल्याण की उन प्रवृत्तियों में जुटें जिन्हें प्रकारान्तर से अधर्म का उन्मूलन और धर्म का संस्थापन भी कहा जा सकता है । परिस्थितियों की माँग इतनी प्रबल है कि इससे बच निकलने के लिए कोई बहाना नहीं ढूँढ़ा जाना चाहिए । सतयुग का माहौल बनाने के लिए भावनाशीलों को संकल्पपूर्वक आगे आना चाहिए । आज की परिस्थितियों में इस रीति-नीति को अपनाये जाने की नितान्त आवश्यकता है ।

साधु और ब्राह्मणों को भूसुर—पृथ्वी के देवता कहा जाता है । वे अपनी योग्यता, श्रमशीलता, सम्पदा का न्यूनतम अंश अपने निर्वाह के लिए रखते हैं और शेष को अन्यान्यों को उठाने, बढ़ाने में खर्च करने के लिए अवसर तलाशते रहते हैं । किसी के निवेदन की प्रतीक्षा नहीं करते । बादलों की तरह बिना बुलाये ही सर्वत्र पहुँचते हैं और हर किसी को समुन्नत-सुसंस्कृत बनाने के लिए प्रयत्न करते हैं । ऐसे ही देवमानवों की संख्या बढ़ने से धरती का वातावरण स्वर्गोपम बनता है ।

लोकसेवियों की जिस जमाने में कमी पड़ती है, उन दिनों विकास का स्तर घट जाता है । जन-साधारण का भावनात्मक परिष्कार-दृष्टिकोण का उदात्तीकरण नितान्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यक है । इस कार्य को वेतनभोगी, विलासी, स्वार्थी एवं घटिया स्तर के लोग नहीं कर सकते । भले ही वे क्रिया-कौशल में पारंगत अथवा ऊँचे पदाधिकारी ही क्यों न हों । परामर्श उनका माना जाता है जिनके प्रति सहज श्रद्धा होती है । यह विभूति हर किसी को अनायास ही नहीं मिलती । इसके लिए मात्र सेवाभावना ही उच्चस्तरीय नहीं होनी चाहिए, वरन् चरित्रनिष्ठा, आदर्शवादिता भी ऐसी होनी चाहिए जिसे हर कसौटी पर खरा पाया जा सके और जिसे अनुकरणीय तथा अभिनन्दनीय ठहराया जा सके ।

शेष मंजिल पूरी करने का नया उपक्रम

उपयोगी सम्पदाओं की संख्या अगणित है । संसार के बाजार में जिस ग्राहक को जो रुचता है, वह मूल्य देकर खरीदता है । इसमें कुछ खरी होती हैं, कुछ खोटी, कुछ चमकीली होती हैं, कुछ उपयोगी, कुछ नशीली होती हैं, कुछ विषैली । साथ ही कुछ ऐसी भी होती हैं, जिन्हें प्राप्त करने पर इस मण्डी में आना सच्चे अर्थों में सार्थक होता है ।

मनुष्य जन्म का सर्वोपरि लाभ है—व्यक्तित्व का निर्माण । सफलताओं में उसी को सर्वोच्च स्तर का कहा जा सकता है । अलंकारिक रूप से इसी को कल्पवृक्ष कहा गया है । जिसने यह कमा लिया, उसकी तुलना में सभी वैभववान छोटे पड़ते हैं । इतिहास के पृष्ठ साधनसम्पन्नों की भी जिस-जिस प्रसंग में चर्चा करते हैं, पर जिनका भाव भरा गुणगान और अभिनन्दन होता है, वे महामानव वर्ग के ही होते हैं । यों चर्चा तो उनके द्वारा प्रस्तुत कार्यों की ही होती है । उल्लेख तो घटनाओं का ही हो सकता है, पर वस्तुस्थिति यह है कि उनका व्यक्तित्व ही पारस पत्थर होता है । वह जिस भी लौह खण्ड को छूता है उसे ही स्वर्णिम बनाकर रख देता है ।

अध्यात्म दर्शन में अनेक सिद्धियों और उपलब्धियों का वर्णन है । वे बड़ी आकर्षक और आनन्ददायक प्रतीत होती हैं । उन्हें जिन्होंने पाया, वे स्वय गौरवान्वित हुए और अनेक को लाभान्वित करने में समर्थ रहे । समझा यह जाता है कि यह सिद्धियाँ किसी देवी-देवता के द्वारा दी गई हैं । मन्त्रोपचार के सहारे उपलब्ध हुई हैं, पर वास्तविकता दूसरी ही होती है । मनुष्य जान या अनजान में व्यक्तित्व में उत्कृष्टता का समावेश करता है और उसी अनुपात में अपना मूल्य बढ़ाता है । यही है वह आधार जिससे मानवीय गरिमा आँकी जाती है । यही है वह हुण्डी जिसे किसी भी दुकान पर भुनाया जा सकता है । व्यक्तित्व पुरुषार्थ से मिला, सिद्धि पुरुषों ने दिया अथवा प्रारब्धवश हाथ आया, यह बात दूसरी है, किन्तु इतना निश्चित है कि महान् सफलताओं के अधिकारी मात्र महामानव ही रहे हैं । महामानव का अर्थ शक्ति और सम्पन्नता का धनी नहीं, वरन् व्यक्तित्व का वैभव है । जिसके होने पर सहयोग और अभीष्ट साधनों की कमी नहीं रहती ।

लगता ऐसा है मानो साधनों के सहारे मनुष्य ऊँचे उठते और आगे बढ़ते हैं । यह भ्रम इसलिए होता है कि साधन और सफलता यही दो प्रकट रूप से सामने दीखते हैं । कर्त्ता की प्रतिभा और प्रखरता तो बुद्धिगम्य होती है । वह आँखों से नहीं दीखती । इसलिए स्थूल दृष्टि से सफलताओं का आधार साधन-सुविधाओं तथा परिस्थितियों को समझा जाने लगता है । किन्तु थोड़ी गहराई तक उतरने पर दूसरे ही तथ्य सामने आते हैं । प्रमुखता व्यक्तित्व की विदित होती है । उसे एक जीवन्त चुम्बक कह सकते हैं, जो दूसरों के सहयोग से संचित करने में अनायास ही सफल होता चलता है । परिस्थितियों के अनुकूलन में कोई जादू काम नहीं करता । दूरदर्शी चिन्तन तथा व्यवस्थित पुरुषार्थ के सहारे अपनाई गई गतिविधियाँ ही प्रतिकूलताओं को मोड़ती-मरोड़ती तथा उन्हें अनुकूलता में बदलती देखी जाती हैं । परोक्ष को न समझ पाने वाले ही परिस्थितियों के गुण गाते हैं । जो तथ्यों तक पहुँचते हैं, उन्हें यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होती कि प्रगति का आधार प्रतिभावान व्यक्तित्व ही होता है ।

व्यक्तित्व अर्थात्—गुण, कर्म, स्वभाव का समुच्चय, दृष्टिकोण का स्तर, सुसंस्कारी व्यवहार, आकांक्षाओं का प्रवाह, साहस और उत्साह, अनुशासन का अभ्यास । इन्हीं विशेषताओं के समन्वय को उत्कृष्ट व्यक्तित्व कहते हैं । जिसने अपने को इन विभूतियों से सुसज्जित कर लिया, समझना चाहिए कि उसे आत्मिक ऋद्धियों और भौतिक सिद्धियों के रहस्यमय सूत्र हाथ लग गये । उपासना, तपश्चर्या, योगसाधना आदि के नाम से जानी जाने वाली क्रिया-प्रक्रियाओं का उद्देश्य एक ही है, साधक के अन्तरंग और बहिरंग को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालना । जो उपासना इस प्रयोजन को जिस सीमा तक पूरा कर रही होगी । उसके चमत्कार भी उसी अनुपात से उपलब्ध हो रहे होंगे । इस लोक-मान्यता को उपहासास्पद भ्रान्ति ही मानना चाहिए कि मनुहार और उपहार के भूखे देवताओं को छुट-पुट टन्ट-घन्ट से फुसलाया और उन्हें हर कामनाओं को पूरी करने के लिए मनाया जा सकता है ।

उपासना के फलस्वरूप साधक को सिद्ध बन जाने की प्रक्रिया यों जादू जैसी अटपटी लगती है, पर उसके पीछे सारतत्व इतना ही है कि उपासना से अन्तराल में जन्में कुसंस्कारी कषाय-कल्मष कटते हैं । पशु प्रवृत्तियों से जो जितना हलका होता है, वह आत्मिक प्रगति के राजमार्ग पर उतनी ही तीव्रगति से चलता और उतनी ही निश्चिन्ततापूर्वक चरम लक्ष्य तक पहुँचता है । सन्तों और सिद्ध पुरुषों में पाई जाने वाली प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विशेषताओं का आधार एक ही है— उनके चिन्तन और चरित्र की उत्कृष्टता । इस मूल तत्व की अवज्ञा करके किसी को भी उस प्रखरता का लाभ नहीं मिल सकता, जिसके साथ अगणित विभूतियाँ, विशेषताएँ एवं समर्थताएँ जुड़ी रहती हैं ।

जिसने इतिहास को धन्य और अपने को कृत-कृत्य बनाया उसकी गतिविधियों और सफलताओं का उतना महत्त्व नहीं है, जितना कि व्यक्तित्व का, उत्कृष्टता एवं प्रखरता का ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि वे इन विशिष्टताओं से रहित रहे होते और ज्यों-त्यों सफलताएँ पाने का ताना-बाना बुनते रहते तो उनके पुरुषार्थ भर को सराहा जाता । उस श्रद्धा और सम्मान से वंचित ही बने रहते जो महामानवों का वास्तविक बल एवं धन होता है । दैवी अनुग्रह, लोकसम्मान एवं आत्मसन्तोष की तीन विभूतियाँ ही मनुष्य जीवन की सफलता सिद्ध करने वाले प्रतीक चिह्न हैं । इन तीनों को प्राप्त करना मात्र सुसंस्कारी प्रतिभाओं के लिए ही सम्भव होता है । शेष तो मकड़ी का जाला बुनते और उसी में उलझते, सुलझते, रोते, कलपते रहते हैं ।

सांसारिक क्षेत्र में सफलताएँ पाने वाले भी उस स्तर की विशेषताएँ अपने अभ्यास में समाविष्ट किये रहते हैं, जो उन प्रयोजनों के लिए आवश्यक हैं । ठगी, चोरी करने वाले अपराधी, आतंकवादी तक अपने ढंग की चतुरता में प्रवीण होते हैं । डाकू, हत्यारा बनने के लिए दुर्दान्त साहस चाहिए । व्यवसाय में लाभ कमाने वाले उतने ही होते हैं, जो उस प्रयोजन में काम आने वाले श्रम, मनोयोग सँजोये रहते हैं । इसके अभाव में घाटा होने और दिवालिया बनने की शिकायतें आये दिन देखने को मिलती रहती हैं ।

व्यवस्था बुद्धि और दूरदर्शिता रहने पर ही नेतृत्व करने का अवसर मिल सकता है । परीक्षा में अच्छे नम्बरों से वे ही उत्तीर्ण होते हैं जो अध्ययन में तन्मयता नियोजित किये होते हैं । स्वस्थता और बलिष्ठता संयमी लोगों के ही भाग्य में बदी होती है । अपव्यय से बचने वाले ही धनी हो सकते हैं । हर क्षेत्र से सफलताएँ प्राप्त करने वालों के सौभाग्य का कारण ढूँढ़ा जाय तो एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि उसने अपने स्तर की विशेषताएँ मनोयोगपूर्वक अर्जित कीं, फलतः सहयोगियों की सहायता से वे क्रमशः आगे बढ़े और सफलता के उच्च शिखर तक पहुँचे ।

बात चाहे सामान्य जीवन की सुख-शान्ति की हो, चाहे विशिष्ट सफलताओं की हर हालत में उन स्तरों की विशेषताओं की आवश्यकता पड़ेगी । असफल, पिछड़े, तिरस्कृत और संकटग्रस्त लोगों में कई तो दैवी दुर्विपाक के सताये हुए भी हो सकते हैं, पर अधिकांश के स्वभाव में छिछोरापन भरा पाया जायेगा । दुर्गुणी ही विपत्ति में फँसते हैं । आलसी ही पराजित होते हैं । साहसहीनों को पराभव का मुँह देखना पड़ता है ।

यों कहने को तो सर्वत्र बेरोजगारी का ही दौर दीखता है । अनेक नौकरी के लिए भटकते और रोजगार के लिए तरसते देखे जाते हैं, किन्तु यथार्थता यह है कि हर क्षेत्र में अभी भी असंख्य के खप जाने की गुञ्जायश और माँग है । कुशलता और पुरुषार्थ परायणता रहने पर कोई भी निठल्ला नहीं रह सकता । एक नहीं तो दूसरा काम मिल सकता है । हर क्षेत्र में सुयोग्यों और सज्जनों की भारी माँग है । ऐसों के लिए सर्वत्र भारी माँग है । बेरोजगारी, आलस, प्रमाद और अहंकार के समन्वय का ही नाम है अन्यथा हर पराक्रमी हर स्थिति में अपनी और अपने आश्रितों की पेट भरने से लेकर अन्यान्य जिम्मेदारियाँ निभाने से भली प्रकार सफल हो सकता है ।

प्रगति और अवगति का चक्र व्यक्तित्व की धुरी पर भ्रमण करता है । आन्तरिक पिछड़ापन ही बाह्य जीवन में दरिद्रता और अवमानना का त्रास सहता है । जिन्हें अभ्युदय और उत्कर्ष से अभिरुचि हो, जो श्रेय, सम्मान और सन्तोष चाहते हों, उनके लिए सुनिश्चित राजमार्ग एक ही है, वे व्यक्तित्व को परिष्कृत करने पर अपना पूरा ध्यान एकत्रित करें । स्वभाव और व्यवहार में घुसी हुई अवांछनीयताओं को ध्यानपूर्वक खोजें और उन्हें उखाड़कर मान्यताओं और आदतों की नये सिरे से स्थापना करने का प्रयास करें । यह एक दिन का काम नहीं है । जोश दिखाने, प्रतिज्ञा करने भर से यह प्रयोजन पूरा नहीं होता । आदतें ऐसी ढीठ होती हैं कि प्रतिरोध का दबाव जरा-सा ढीला होने पर उभरकर फिर ऊपर आ जाती हैं और सुधार मनोरथ को आँधी-तूफान की तरह हावी होकर उखाड़ फेंकती हैं । बार-बार ऐसी असफलता मिलने पर तो हिम्मत ही टूट जाती है और सुधार प्रयत्नों से निराश होकर पुराने ढर्रे पर ही विवशतापूर्वक घिसटना पड़ता है ।

इस कठिनाई से कैसे बचा जाय? व्यक्तित्व निर्माण का प्रयोजन कैसे पूरा किया जाय? इसका उत्तर एक ही है—"उपयुक्त वातावरण की तलाश और उसमें लम्बे समय तक रहने का प्रयास ।" यह अभीष्ट सफलता का सरलतम मार्ग है । ढर्रे पर लुढ़कना किसी के लिए भी सरल पड़ता है, प्रवाह में कोई भी बह सकता है । नदी की धार में उखड़े हुए विशालकाय वृक्ष बिना किसी सहारे तैराक की तरह द्रुतगति से बहते चले जाते हैं । हवा के रुख में तिनके और पत्ते अनायास ही उड़ते हैं । नमी वाली जमीनों में अपने आप ही घास उगी रहती है । प्रवाह की सामर्थ्य असीम है । वातावरण के प्रभाव को अत्यन्त प्रचण्ड माना जाना चाहिए । इतना प्रचण्ड कि उसके माध्यम से एक प्रकृति के मनुष्य को दूसरी प्रकृति का बनाया जा सके ।

गुरुकुल, आरण्यकों, तीर्थ-कल्पों में निवास करने वाले जो पढ़ते-सुनते थे उसका उतना महत्त्व नहीं था जितना कि आँख-कान और मन-बुद्धि के सहारे उपलब्ध होने वाले आदर्शवादी व्यवहार प्रचलन का । चिन्तन को प्रभावित और चरित्र को परिष्कृत करने में भी उस वातावरण का प्रयोग हो सकता है जो अवांछनीय स्तर का होने पर सम्पर्क में आने वालों को पतन और पराभव के गर्त में धकेल सकता है ।

इन दिनों और सब कुछ सुलभ है, पर उच्चस्तरीय वातावरण का एक प्रकार से सर्वत्र अभाव ही दीखता है । साधन और चातुर्य बढ़ जाने से ढकोसला किसी भी स्तर का खड़ा किया जा सकता है, पर प्राण तो वास्तविकता में होता है । उसके अभाव में वह क्षमता उत्पन्न ही नहीं हो सकती जो अन्तराल को प्रभावित करने और व्यक्तित्व को बदलने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

के लिए आवश्यक है । बाजार में अनेक स्टाल बड़ी सजधज के साथ लगे हैं । इनमें धर्म और अध्यात्म के चमकीले बोर्डों वाले भी कम नहीं हैं । योगाश्रमों की धूम है । धर्म स्थान पुराने भी कम नहीं, अब हर साल और नये-नये बनते जा रहे हैं । मन्दिरों की भव्यता में प्रतिस्पर्द्धा लगी हुई है । इन गहन विषयों पर अनगढ़ लोग भी प्रवचन करते और लम्बी-चौडी डींगे हाँकते देखे जाते हैं । कलेवर की दृष्टि से धर्माडम्बर किसी अन्य से पीछे नहीं । इतने पर भी प्रभावी वातावरण का अभाव अभी भी जहाँ का तहाँ है । सुविधा सम्पन्न धर्म स्थान, होटलों के काम करते देखे जाते हैं, पर उच्चस्तरीय आत्माओं का निवास न होने के कारण वहाँ भी ऐसा कुछ नहीं दीखता, जिसमें अनगढ़ों को भी ढलने-बदलने का अवसर मिले । इस अभाव के रहते उस ऊर्जा की कमी खटकती ही रहेगी, जिससे धान पकते और अण्डों से चूजे निकलते हैं ।

अपने समय की महत्ती आवश्यकता प्रखरतासम्पन्न व्यक्तियों की है । स्वार्थ सिद्धि की दृष्टि से भी यह नितान्त आवश्यक है । परमार्थ तो उसके बिना हो ही नहीं सकता । वैयक्तिक प्रगति के लिए प्रतिभा चाहिए । आर्थिक, सामाजिक बौद्धिक, पारिवारिक, राष्ट्रीय वे ही हो सके हैं जिनकी निजी क्षमता में गुण, कर्म, स्वभाव की वरिष्ठता विद्यमान हो । इसके अभाव में तो भीड़ बढ़ाने वाले नरपशुओं की संख्या की वृद्धि ही होती चली जाती है । धरती का भार बढ़ाने वाले, अपने और दूसरों के लिए समस्याएँ उत्पन्न करने वालों की कहीं भी कमी नहीं है । आवश्यकता ऐसों की है जो अपने पैरों पर स्वयं ही मजबूती से खड़े न हों, वरन् दूसरों को भी सहारा देने, ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने और पार लगाने में समर्थ हो सकें ।

नीत्से ने अतिमानव को आवश्यकता बताई थी और कहा था संसार को सुव्यवस्थित बनाने में इस उत्पादन की महती आवश्यकता है । हिटलर ने उसका फूहड़ प्रयोग किया था । दृष्टि लड़खड़ा जाने और उद्देश्य में निकृष्टता घुस पड़ने से वह देव के स्थान पर दैत्य उत्पन्न करने लगा और विधातक बना और बदनाम हुआ । योगी अरविन्द की कल्पना का अतिमानस देव स्तर का है । प्राचीनकाल के देवमानव काया की दृष्टि से मनुष्य और भावना की दृष्टि से देव थे । उनकी सहज स्वाभाविक गतिविधियों ने जन्म भूमि स्वर्गोपम बनाई थी । इन चन्दन वृक्षों ने समस्त विश्व उद्यान को सुगन्ध और सौन्दर्य से भर दिया था । नवयुग में जिस उपार्जन उत्पादन की निर्माण-उत्थान की चर्चा है, उसमें सदृश्यता सम्पन्न प्रखर और कुशल व्यक्तित्वों का निर्माण ही प्रथम है । उन्हीं के सहारे प्रगति के अनेकानेक प्रयोजनों का सही रीति से सही दिशा में अग्रगामी बनाया जाना सम्भव हो सकेगा ।

अखण्ड ज्योति परिजनों का आधा निर्माण हो चुका, आधा ही शेष है । आधी मंजिल चल चुके, पर आधी दूरी ही करनी है । परिष्कृत दृष्टिकोण से समस्याओं पर विचार करने की पद्धति का जहाँ तक सम्बन्ध था उसे परिजन उपलब्ध कर चुके हैं । पत्रिका के पृष्ठों पर चित्र विचित्र लेखों का संग्रह सम्पादन करने और गुलदस्ता सजाने का प्रयत्न नहीं हुआ है । वरन् युगान्तरीय चेतना के रूप में जिस आलोक की आवश्यकता थी, उसे ही सँजोने का प्रयत्न किया गया है । उसके सारगर्भित और मार्मिक होने की बात सभी ने एक स्वर से स्वीकार की है । जिसने उन्हें मनोयोगपूर्वक पढ़ा है, उसने पाया है कि उसमें अपनाये जाने योग्य बहुत कुछ है । जो प्रस्तुत प्रतिपादन को क्रियान्वित नहीं कर सके, उसने भी कथन को अनुपयुक्त नहीं ठहराया, वरन् उसे व्यवहार में न उतार सकने की अपनी दुर्बलता भर स्वीकार की है ।

विगत पचपन वर्षों से चल रहा प्रशिक्षण, प्रतिपादन परिजनों के बौद्धिक और भावना तन्त्र को प्रभावित करता रहा है । इसे आधी मंजिल पार कर लेना कह सकते हैं । शेष इतना ही रह गया है । उपयुक्त वातावरण में संचित कुसंस्कारों का परिशोधन और शालीनता की सत्यप्रवृत्तियों का अभ्यास-अभिवर्धन सम्भव बनाया जाय । इसके लिए इतना ही करना शेष था कि देव परिवार बसाने के लिए सुनियोजित आधार पर खड़ा किया जाय । उसको चलाने वाली गतिविधियों का स्वरूप ऐसा हो जिसे अपनाने पर बिना प्रयत्न के ही स्वभाव और अभ्यास का परिवर्तन क्रम बिना किसी दबाव एवं प्रयत्न के सहज गति से स्वयमेव चलने लगे । गायत्री नगर इसी उद्देश्य के लिए बनाया गया है । इमारत की प्रथम आवश्यकता कलेवर खड़ा होने की बात बन गई । अब प्रवृत्तियों और गतिविधियों का चल पड़ना दूसरा चरण है । इस आरण्यक में ऐसों को रहने के लिए बुलाया गया है जो अपनी संचित सुसंस्कारिता को कार्यरूप में परिणित करने की साधना करते हुए आत्मोत्कर्ष के चरम लक्ष्य तक पहुँचें । साथ ही उस प्रयोजन की पूर्ति भी करें जो जाग्रत आत्माओं को सृजनशिल्पियों के रूप में अग्रिम पंक्ति में खड़े होकर करनी है ।

हम महान् ईश्वर के महान् पुत्र हैं

पुत्र से पिता के स्वरूप का आभास मिल जाता है । पुत्र पिता का प्रतिनिधि माना गया है । प्रतिनिधित्व का आशय है, उसी रीति-नीति का प्रतिपादन करना जो प्रधान की हो । जो प्रतिनिधि ऐसा नहीं करते, वे विद्रोही ही माने जाते हैं ।

मनुष्य का अस्तित्व उसका अपना मूल अस्तित्व नहीं है । वह किसी एक महानतम अस्तित्व का अंश है, उसका प्रतिनिधि है । वह महानतम अस्तित्व क्या है ? परमात्मा ! परमात्मा ही वह सर्वोच्च प्रधान है, जिसकी इच्छा से मानव-जीवन अस्तित्व में आया है । उसकी ही इच्छा के फलस्वरूप वह पृथ्वी पर उसका प्रतिनिधि बनकर अवतरित हुआ है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य में परमात्मा के सारे गुण बीज रूप में वर्तमान हैं । इस बात की साक्षी उसकी वह उन्नति और विकास है, जो अब तक मनुष्य ने किया है और करता जा रहा है ।

तथापि एक समान ईश्वर का अंश होने पर भी सारे मनुष्य समान रूप से उन्नति और विकास नहीं कर पाते । कुछ तो उन्नति के उच्चतर सोपान चढ़ते चले जाते हैं और दूसरे यथा-स्थान पड़े कालचक्र में निर्जीव जैसे घूमते रहते हैं । इस अन्तर का प्रमुख कारण यही है कि यथा-स्थान स्थगित रहने वाले व्यक्ति अपने उस अस्तित्व से अनभिज्ञ बने रहते हैं, जिसका सम्बन्ध ईश्वरीय प्रतिनिधित्व से है । वे अपने अज्ञान के कारण न तो यह अनुभव करते हैं और न विश्वास कि वे ईश्वर के पुत्र हैं और संसार में उसके प्रतिनिधि ।

जिनको अपनी पैतृक महानता का बोध होता है, उसकी शक्ति, सामर्थ्य और गरिमा के प्रति आत्मीयता होती है, वह स्वभावत: उसी के अनुसार अपनी गतिविधि निर्धारित करता है । उसे इस बात का आग्रह करता है कि कहीं ऐसा न हो कि उसका कोई काम उसकी पैतृक महिमा में ऋणात्मक तत्व का काम करे । ऐसा शीलवान पुत्र पैतृक मर्यादा के अनुसार व्यवहार करता है और उसी के अनुरूप उन्नत होता है ।

अपनी पैतृक मर्यादा से अबोध व्यक्ति जीवन की दीन स्थिति से उठने की प्रेरणा कदाचित् ही पाते हैं । साधारण जीवों की तरह सुख-दु:ख का भोग भोगते और मरकर चले जाते हैं । अपने इस अज्ञान के कारण वे उस महनीय स्थिति से वंचित रह जाते हैं, ईश्वर के पुत्र होने के कारण जिसके वे सहज अधिकारी होते हैं ।

ईश्वर का पुत्र और प्रतिनिधि होने के नाते हर मनुष्य सत्-चित् और आनन्द का सहज अधिकारी है । अपने इस अधिकार को प्राप्त करने के लिये, उसे यह विश्वास जगाना ही होगा कि वह ईश्वर का पुत्र है । उस ईश्वर का पुत्र जिसकी शक्ति अपार है । जो सर्वशक्तिमान् और निखिल ब्रह्माण्डों का स्वामी है, जिसके संकेत से सृष्टि की रचना उसका पालन और प्रलय होता है । जो सार्वकालिक और सार्वदेशीय है । जो अणु-अणु में आदि, मध्य और अन्त रूप में ओत-प्रोत है । मेरा जन्म और जीवन उसके ही अधीन उसकी सत्ता का ही एक अंश है । हमारे कर्म और वैचारिक क्रियाओं में उसकी प्रेरणा और चेतना प्रतिबन्धित होती है ।

इस दिव्य विश्वास के स्थिर होते ही मनुष्य में आत्मगौरव की स्फुरणा होगी और वह अपने को ईश्वर का उचित प्रतिनिधि प्रकट करने को प्रयत्न करने लगेगा । प्रतिनिधित्व का प्रकटन गुणों के सिवाय और किसी उपाय से नहीं हो सकता । गुणों का विकास होते ही मनुष्य का अस्तित्व विस्तृत होगा और वह ईश्वर की सारी सम्पदाओं का स्वामित्व पाने लगेगा । दीनता-हीनता और दरिद्रता का कलुष हटने और हृदय में सुख-शांति और सन्तोष की सम्पन्नता का समावेश होने लगेगा । जीवन धन्य बन जायेगा ।

यदि आप में दैन्य और दरिद्र का अंश शेष है ! आप सत्, चित् और आनन्द के अपने अधिकार से वंचित हैं, तो निश्चय ही आप अज्ञान के कारण अपनी पैतृक गरिमा को भूले हुए हैं । अपने को एक सामान्य प्राणी समझकर जी रहे हैं । विश्वास करिये आप सामान्य प्राणी मात्र नहीं हैं । आप ईश्वर के पुत्र और संसार में उसके प्रतिनिधि हैं । सोचिये, समझिये, मानिये और कहिये कि आप सर्वशक्तिमान ईश्वर के पुत्र हैं । यह विश्वास, स्वीकृति आपमें वे सारे गुण और सारी शक्तियाँ जगा देंगी, जो ईश्वर में हैं और जो अंश रूप में आपके भीतर सोई पड़ी हैं ।

जिस प्रकार किसी वनस्पति की विशेषताएँ, उसका गुण-दोष और खाद, उसकी जड़, तने, शाखा, छाल, माँस यहाँ तक फूल, फल, पत्ती आदि प्रत्येक अंश में ओत-प्रोत होते हैं, उसी प्रकार निश्चय ही ईश्वर के सारे गुण, सारी विशेषताएँ आप में हैं, उसका अंश, उसका पुत्र और उसका प्रतिनिधि होने के नाते ओत-प्रोत हैं । उनमें विश्वास करिये, उन्हें जगाइये और अपनी प्रकृत पदवी के स्वामी बन जाइये ।

उत्तराधिकार का बोध होते ही मनुष्य को अपनी पैतृक सम्पत्ति से आत्मीयता हो जाती है । वह उन्हें अपनी समझने लगता है । अपने में ईश्वरतत्व का बोध होते ही आपको सृष्टि का विस्तार, सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा का सौन्दर्य और नक्षत्रों की ज्योति अपनी लगेगी । वायु की गति, जल का रस और पृथ्वी की गन्ध आपको अपनी सम्पत्ति लगेगी । आपको अनुभव होगा कि यह सारी सृष्टि आप में और आप अपने अधिकार सत्-चित् आनन्द के अधिकारी बन जायेंगे ।

अधिकार के साथ कर्त्तव्य का योग स्वाभाविक है । जहाँ अधिकार है, वहाँ कर्त्तव्य भी है । जिस प्रकार आप ईश्वरीय अधिकार के पात्र हैं, उसी प्रकार ईश्वरीय कर्त्तव्य का दायित्व भी आपके कन्धों पर है । अधिकार और कर्त्तव्यों के क्रम मे कर्त्तव्य का स्थान पहले है । कर्त्तव्य के आधार पर ही अधिकार की प्राप्ति होती है और उसकी चरितार्थता भी कर्त्तव्य पर निर्भर है । केवल यह बौद्धिक विश्वास कि हम ईश्वर के पुत्र हैं, उसके अंश और प्रतिनिधि हैं—ईश्वरीय अधिकार का स्वामी न बना देगा । उसके लिये निश्चय ही ईश्वरीय कर्त्तव्य का पालन करते हुए अपने विश्वास की वास्तविकता प्रमाणित करनी ही होगी । अस्तु, अधिकारों की भाँति अपने उससे ईश्वरीय कर्त्तव्य का बोध कर लेना भी आवश्यक है । बोध होने पर ही उसके पालन में सुविधा हो सकेगी ।

ईश्वर ने सृष्टि रचना करने तक ही अपने कर्त्तव्य को सीमित नहीं रखा । उसने अपनी इस सृष्टि का पालन भी अपने कर्त्तव्यों में सम्मिलित किया हुआ है । इसी कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए उसने विविध प्रकार की वनस्पतियाँ, विविध प्रकार के अन्न, वायु और अग्नि आदि साधन उत्पन्न किए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साथ ही जीवों को जीवन रक्षा और उसके साथ आनन्द अनुभूति की चेतना भी अनुग्रह की है । उसकी इस कृपा के आधार पर ही जीव-मात्र संसार में आनन्दपूर्वक जी रहे हैं ।

ईश्वर के इस कर्त्तव्य के अनुसार उसके प्रतिनिधि मनुष्य पर भी यह कर्त्तव्य आता है कि वह सृष्टि पालन और उसके संचालन में अपने परमप्रभु, अपने परमपिता के साथ योगदान करने की विधि इसके सिवाय क्या हो सकती है कि वह ऐसे काम करे, जिनसे संसार की प्रगति हो और उसमें सुख-शांति का समावेश हो । यह मन्तव्य तभी पूरा हो सकता है, जब मनुष्य स्वयं अपने को उदात्त और आदर्श-चरित्र वाला बनाये । वह मानवीय संयम का पालन और ईश्वरीय नियमों का निर्वाह करे । यह नियम और संयम उसके दिये धर्म में पूरी तरह वर्णित हैं । धर्म का पालन करते रहने से ईश्वरीय कर्त्तव्य का पालन होता चलेगा ।

केवल अपने सुख, अपने मंगल और अपने कल्याण में व्यस्त, उसका ही ध्यान रखने वाले लोग ईश्वरीय कर्त्तव्य से विमुख रहते हैं । अपना मंगल और अपना कल्याण भी वांछनीय है, लेकिन सबके साथ मिलकर, एकाकी नहीं । अपने हित तक बँधे रहने वाले बहुधा स्वार्थी हो जाते हैं । स्वार्थ और ईश्वरीय कर्त्तव्य में विरोध है । जो स्वार्थी होगा, वह कर्त्तव्य विमुख ही चलता रहेगा । ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की । एक से एक बढ़कर आनन्ददायक पदार्थों का निर्माण किया । वह निखिल ब्रह्माण्डों के प्रत्येक अणु का स्वामी है, पर क्या वह उनका उपयोग स्वयं करता है ? नहीं वह उनका उपयोग स्वयं नहीं करता है । उसने सारी सम्पदाएँ और साधन अपने बच्चों के लिये ही सुरक्षित कर दिए हैं । वह अपने आप में महान् त्यागी और परोपकारी है ।

इसी प्रकार हम मनुष्यों का भी कर्त्तव्य है कि हम परोपकारी और परमार्थी बनें । हमारे पास जो भी बल, बुद्धि, विद्या, धन-सम्पत्ति आदि उस प्रभु के दिए हुए पदार्थ हैं, उनका एक अंश परोपकार और परमार्थ में लगायें । ऐसा कभी न सोचें कि यह सब तो मेरा है, मैं ही इसका उपभोग करूँगा । गरीबों, असहायों और आवश्यकता-ग्रस्तों की सहायता करना, दुःखी और अपाहिजों की सेवा करना ईश्वरीय कर्त्तव्य है, जो पूरा करना ही चाहिए । ईश्वर अपने विरचित जीव-मात्र से प्रेम करता है । उसके पुत्र उसके प्रतिनिधि मनुष्य का भी कर्त्तव्य है कि वह सृष्टि के सारे जीवों से प्रेम करे ।

ईश्वरीय कर्त्तव्य के पालन की प्रेरणा, सामर्थ्य और क्षमता लाने के लिए मनुष्य को चाहिये कि वह संसार की नश्वर और भ्रामक वासनाओं से दूर रहे । उनसे सुरक्षित रहकर अपनी शक्ति और स्वरूप की पहचाने । निकृष्ट भोग-वासनाएँ पाशविक प्रवृत्ति की द्योतक हैं, ईश्वरीय कर्त्तव्य की नहीं । ईश्वरीय कर्त्तव्य का द्योतन तो आत्मसंयम, आत्म-विकास और आत्म-विस्तार से ही होता है । यदि हमारे हृदयों में यह धारणा दृढ़ हो जाये कि हम उस परम पवित्र महान् और सर्वोपरि सत्ताधर ईश्वर के पुत्र और संसार में उसके प्रतिनिधि हैं तो संसार की निकृष्ट वासनाओं और तुच्छ भोगों से विरक्ति हो जाना आसान हो जाये । जब तक अपने उच्च-स्वरूप का विश्वास नहीं होता, मनुष्य निम्नता की ओर झुकता रहता है ।

कितना ही शक्तिशाली और कितना ही उच्चपद वाला क्यों न हो, किन्तु मनुष्य अपने आत्म-स्वरूप को तब तक नहीं पहचान पाता, जब तक वह विषय-वासनाओं के अन्धकार से निकलकर अपने स्वरूप का दर्शन आत्मा के प्रकाश में नहीं करता । मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह वासना से निकलकर अध्यात्म के प्रकाश में आये और देखे, विचार करे व उसके फलस्वरूप अनुभव भी कि वह कितना विशाल, कितना महान् और कितना प्रचुर है । उसका स्वरूप ठीक वैसा ही है, जैसा कि उसके परमपिता परमात्मा का । इस प्रकार की ईश्वरीय अनुभूति होते ही मनुष्य अपने को सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वोपकारी और सर्वसम्पन्न पायेगा । उसकी सारी क्षुद्रताएँ, सारी दीनताएँ और सारी निकृष्टताएँ आपसे-आप स्खलित हो जायेंगी और वह अपने को सच्चिदानन्द स्थिति में पाकर शुद्ध और बुद्ध बन जायेगा ।

मनुष्य का वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्द ही है । अपनी सांसारिक निकृष्टताओं के कारण ही वह इस स्वरूप को भूले है । अपने में आत्म-श्रद्धा और आस्था का विकास करिये । मिथ्या में निकलकर सत्य में आइये । जीवत्व से ईश्वरत्व की ओर बढ़िये । ईश्वर का पुत्र उसका प्रतिनिधि होने में विश्वास करिये । ईश्वरीय कर्त्तव्यों को पालन करने के लिये धर्म को धारण करिये । उपकारी और परमार्थी बनकर सत्य, सेवा त्याग और आत्मीयता के भाव जगाइये । निश्चय ही आप अपना वह अधिकार और स्वत्व पा लेंगे, जो ईश्वर में सन्निहित है और जिसकी सत्ता—सत्+आनन्द=सच्चिदानन्द है ।

दिव्य अनुकम्पा का मखौल तो न हो

दैवी विशेष अनुकम्पा के रूप में मनुष्य को दो असाधारण विभूतियाँ उपलब्ध हुई हैं—एक अन्य प्राणियों की तुलना में अद्भुत कही जा सकने योग्य शारीरिक संरचना, दूसरी आलौकिक चिन्तन चेतना वाली बुद्धिमता । इन दोनों को तिरस्कृत, उपेक्षित पड़ा रहने दिया जाय, तो कचरा भर बनकर रह जाती है और कूड़े के ढेर में बुहार फेंकी जाती है, पर यदि उनका अभिवर्द्धन और सुनियोजन बन पड़े, तो इतने भर से उत्पन्न हुए चमत्कारों को ऋद्धि-सिद्धि जैसे नामों से जाना जा सकता है । लोगों के असंख्यों एक से एक बढ़कर प्रगति प्रयोजन साक्षी रूप में प्रस्तुत किये जा सकते है ।

पिछड़ेपन की दुर्गति सहते हुए तिरस्कृत और अभावग्रस्त वे लोग रह जाते हैं जो इन उपलब्धियों की ओर ध्यान नहीं देते, उन्हें ऐसे ही अनगढ़ स्थिति में पड़े रहने पर तो तेज धार वाले चाकू को भी जंग खा जाती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्यमनस्क, आलसी बुद्धि रहते हुए भी उसे प्रखर बनाने और लाभ उठाने की स्थिति तक नहीं पहुँच पाते । इसी प्रकार जिनने पुरुषार्थ प्रयोग का अभ्यास नहीं किया है, उनको पेट भरने के भी लाले पड़े रहते हैं ।

भगवान ने दो साधारण उपहार देकर अपनी उदारता में कहीं कोई कोर-कसर नहीं रखी । इतने पर भी इस सम्बन्ध में मनुष्य की समझदारी पर विश्वास करते हुए यह छूट भी दी है कि अनुदान का वह चाहे जैसा भला-बुरा उपयोग करें । कर्त्तव्य की दृष्टि से स्वतंत्रता प्रदान करते हुए भी नियन्ता ने उसकी परिणति उत्पन्न करने का काम अपने हाथ में रखा है । कोई स्वेच्छापूर्वक विषपान भी बेरोक-टोक के कर सकता है, पर उसके परिणाम-मरण से नहीं बच सकता कोई चाहे तो आग से झुलसने का दुस्साहस भी कर सकता है, पर उसके कारण जलने-झुलसने की प्रक्रिया से नहीं बच सकता । यदि इतना भी अंकुश न रखा गया तो उपलब्धियों को मटियामेट ही नहीं, ऐसें कामों में भी प्रयुक्त किया जाता, जिसके दुष्परिणाम अपने साथ अपने लिए ही नहीं, सम्पर्क में आने वाले अन्यान्य अनेक का भी अहित करते । कर्मफल की सुनिश्चित विद्या को मानवीय कृत्यों के साथ जुड़े रखने पर ही मनुष्य को यह अवसर दिया गया है कि वह अनर्थ और उत्कर्ष में से किसी एक को स्वेच्छापूर्वक अपना ले ।

देखा जाता है कि वस्तुस्थिति की सही समीक्षा कर सकने वाले, दूरगामी भटकावों को ध्यान में रखकर अपनी रीति-नीति एवं दिशाधारा का निर्धारण कर सकने वाले ही सदुपयोग की बात सोच पाते हैं । उन्हीं के लिए ऊर्ध्वगमन-अभ्युदय का तारतम्य बिठा सकना सम्भव होता है, अन्यथा पतन के गर्त में खिसक पड़ने के लिए तो पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति भी सहायता हेतु हर घड़ी तैयार रहती है फल पेड़ से टूटने पर सीधा जमीन पर ही गिरता है । पानी ढलान की ओर ही बहता है । मनुष्य भी अपनी बिरादरी के अन्यान्य पशुओं की तरह पेट-प्रजनन की परिधि में ही सीमाबद्ध होकर रह जाता है । पेट की भूख बुझाने के लिए आहार जुटाने भर में अधिकांश समय बिता देता है । परिवार बटोरता, बढ़ाता है तो वह अतिरिक्त उत्पादन भी कंधे पर लाद लेता है । कंगारू को पेट के ऊपर जमी हुई थैली में जने हुए बच्चों की एक पूरी कम्पनी हर घड़ी लादे फिरना पड़ता है ।

उसे प्रकृति का कौतुक-कौतूहल ही समझा जाना चाहिए कि बैठे-बैठाये प्राणी पर वह यदा-कदा कामुकता का बुखार चढ़ा देती है । उसी उन्माद से प्रेरित होकर यौनाचार की राई-रत्ती जैसी विडम्बना के फेर में पड़कर प्रजनन कृत्य में जुट जाता है । ऐसे उत्तरदायित्वों में बँधता है, जिसकी जंजीरें, उसे जीवन भर कसे रहती हैं । मदारी के बन्दर जैसे कौतुक करते रहने में जिन्दगी गुजार देने के लिए यह कौतुक ही प्रधान बन्धन बनता है, जिसे यौनाचार नाम से जाना जाता है । प्रकृति यह कठिन कार्य प्राणियों पर इसलिए लादती है कि उसकी वंश-बुद्धि जैसी खिलवाड़ यथावत् चलती रहे । मरण की विद्या निश्चित कर देने के बाद उसके लिए यह मजबूरी ही थी, कि नया उत्पादन जारी रखे, अन्यथा बूढ़ों के मरते रहने पर नये उत्पन्न न होने की दिशा में यहाँ सुनसान ही बढ़ता जाता ।

भूख रोज लगती है, जबकि कामुक उन्माद एक विशेष मानसिकता उभार लेने पर ही पनपती है । इस उन्माद के रहते हुए विभुक्षा और कामेच्छा का प्रयोजन एक ही है कि मनुष्य जाल-जंजाल में फँसा हुआ वैसा ही कौतुक-कौतूहल करता रहे जैसे कि पिंजड़े में फँसा हुआ चूहा असाधारण रूप से उछल-कूद करता रहता है । बुभुक्षा का बढ़ा हुआ रूप लोभ-लिप्सा और वासना के फलस्वरूप लदी हुई ललक को तृष्णा कहते हैं । देखा जाता है कि इन्हीं दो प्रयोजनों में भगवान् की वे दोनों ही महती अनुकम्पाएँ खप जाती हैं, जो उसे अन्य प्राणियों की तुलना में अतिरिक्त अनुग्रह के रूप में मिली थीं ।

नशा पीने पर कभी-कभी मनुष्य आपे से बाहर हो जाता है और ऐसे कृत्य करने लगता है, जिसे बोल-चाल की भाषा में 'पगलाना' कहते हैं । उन्मादी ऐसे ही विलक्षण वचन बोलते, आचरण करते देखे गये हैं । इस पगलाने का नाम है—अहंकार का प्रदर्शन । अपने को औरों की तुलना में अधिक सम्पन्न, अधिक सुन्दर, अधिक प्रतिभावन, सौभाग्यशाली सिद्ध करने के लिए अपने मुँह शेखी बघारने से लेकर दूसरों के मुँह प्रशंसा सुनने जैसे उद्धत आचरण करने के लिए भी कई लोग कई बार इतने आकुल-व्याकुल हो जाते हैं कि उनके लिए घर फूँक तमाशा देखना ही एकमात्र समाधान सूझ पड़ता है । ठाट-बाट रचने वाले और उस मद में ढेरों समय, साधन और वैभव खपा देने वाले अपने को कुछ भी कहें या समझें पर वस्तुतः हैं वे विदूषक जैसे आचरण में निरत-पगलाये हुए हैं ।

क्या दैवी अवलम्बन-अनुकम्पा का उपयोग यही है, जिसे आम आदमी लिप्सा, लालसा, अहंता, के निर्मित खर्चता रहता है ? क्या इससे अच्छा उपयोग और कुछ सम्भव नहीं हो सकता था ? यह प्रश्न आज के मानव को देखकर रह-रह कर मन में उठता है ।

विश्व व्यवस्था की संचालक सत्ता की अदालत में अगले दिनों यह अभियोग प्रस्तुत किया जा सकता है कि या तो वह मनुष्य के अधिकार-अनुदान में अभिवृद्धि करके उसके साथ पक्षपात करता या फिर अन्य जीवों को निरर्थक, उपेक्षित समझकर उन्हें ऐसे ही गई-गुजरी स्थिति में पड़ा रहने देता । दोनों ही परिस्थितियों में यह अत्याचार नहीं तो कम से कम अन्याय तो कहा ही जायेगा ।

बड़ों पर छोटा आक्षेप भी चर्चा का विषय बनता है और उस पर रोष, असंतोष प्रकट किया जाता है । ईश्वर को सबसे बड़ा, सृष्टि का सृजेता, व्यवस्थापक एवं नियामक अधिपति माना जाता है । कम से कम मनुष्य को तो यह शोभा नहीं देता कि अपनी कमजोरियों, त्रुटियों को परे रख

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह उस सत्ता पर लांछन लगाए जिसने उसे बनाया, विविधता-विशिष्टताओं से सुशोभित किया है । भगवान् की नहीं, नये इंसान को बनाने की आवश्यकता है जो अगले दिनों ही पूरी होने वाली है । इक्कीसवीं सदी देवमानवों की नयी पीढ़ी लेकर आने वाली है जो तर्क पर नहीं, श्रद्धा-सद्भावना की आधारशिला पर विनिर्मित होगी ।

महामानवों की टकसाल ऐसे बनेगी

भावी समय की नूतन सामाजिक संरचना को गढ़ने और तदनुरूप ढलने में तत्पर व्यक्ति आज की सामयिक आवश्यकता है । इस अनिवार्य माँग को पूरा करने का दायित्व शिक्षण तन्त्र पर है । इसी की जिम्मेदारी है कि वह समाज की वर्तमान और भविष्य की जरूरतों के अनुरूप व्यक्तियों के अन्दर से व्यक्तित्व को उभारे, ताकि वह आज के और आने वाले समय में आदर्शवादी उपयोगिता की कसौटी पर खरा सिद्ध हो सके । प्रचलित शिक्षण व्यवस्था की छानबीन करने पर हर किसी को यह सहज बोध हो जाएगा कि इस सम्बन्ध में यह असफल प्राय: है । इसकी दशा उस निठल्ले कारखाने की-सी है जिस पर कच्चे लोहे से उत्तम कोटि की मशीनें बनाने की जिम्मेदारी है । पर निकम्मेपन के कारण अधिकांश लोहा पड़ा जंग खाता सड़ता रहता है । जो मशीनें बनकर निकलती हैं वह उपयोगी और कारगर सिद्धि नहीं हो पा रहीं । यह स्थिति एकदेशीय नहीं सार्वभौमिक है ।

अमेरिकन मनीषी इवान इलिच ने अपनी कृति 'डिस्कूलिंग सोसाइटी' में स्थिति का खुलासा करने की कोशिश की है । उनके अनुसार संस्थाओं के दड़बे में बन्द शिक्षण प्रकिया अपनी परिणति भौतिकवादी प्रदूषण, समाजिक ध्रुवीकरण, मनोवैज्ञानिक और भावनाशून्यता के रूप में कर रही है । इन सबके प्रधानतया दो कारण हैं— पहला इसे एक खास आयु वर्ग की सीमा में समेट देना । दूसरा अन्य व्यापारों की भाँति शिक्षण का व्यापारीकरण कर देना । इसी का प्रतिफल है कि शिक्षा जन-जन तक, द्वार-द्वार तक नहीं पहुँच पा रही । व्यापारीकरण के कारण लोक-शिक्षण की परम्परा निर्जीव प्राय: हो गई है । दिमाग को कम्प्यूटर मानकर उसमें जानकारियाँ तो घुसेड़ी जा रही हैं, पर मानवीय व्यवहार गढ़ पाने में असमर्थता है । परिणाम आज की सामाजिक दशा है । जहाँ अपने को शिक्षित कहने वाला व्यक्ति स्वयं के ज्ञानवान और विद्वान होने का दावा तो करता है, पर ज्ञान इतना भी नहीं है कि स्वयं में क्या है ? स्वयं के प्रति और समाज के प्रति क्या दायित्व है ? उन्हें किस कौशल व तत्परता से पूरा किया जाय ? शिक्षा देने वाले और शिक्षा लेने वाले दोनों की एक सी दशा है ।

कारगर उपचार एक ही है लोकशिक्षण का एक नया तंत्र विकसित करना । जहाँ शिक्षा कैद मुक्त हो सार्वभौमिक हो और श्री इलिच के शब्दों में कहें तो व्यक्तित्वों के गढ़ने की टकसाल हो । ऐसी टकसाल जहाँ से ढले सिक्के आज और कल सोलह आने खरे साबित हों । इसी कारण वह ढालने वाले प्रशिक्षक में दो गुणों की अनिवार्यता बताते हैं । उन्हीं के भावों में प्रशिक्षक कुम्हार की तरह, प्रशिक्षक वैद्य की तरह । कबीर ने भी गुरु को कुम्हार सम्बोधन दिया है । ऐसा कुम्हार जो मिट्टी के लौंदे को समय के अनुरूप समाजहित में क्षेत्र की समस्याओं के निदान हेतु भिन्न-भिन्न रूप देने में तत्पर रहता है । उसे पकाता, मजबूती प्रदान करता है और जनहित में समर्पित करता है । श्री रामकृष्ण गुरु को वैद्य के अनुरूप होने पर बल देते हैं । ऐसा वैद्य जो मानव, व्यक्ति और समूह की आन्तरिक और बाह्य संरचना व क्रियाविधियों में निष्णात् हो । बिगड़े को सँवारने, बिखरे को समेटने नवजीवन संचार करने में माहिर हो ।

आज की स्थिति में इस तंत्र को विकसित करने की तकनीकें प्रयोगवादी भारत के प्राचीन सफल प्रयोगों से सीखनी होंगी । अतीत के झरोखों से झाँकने पर साफ दिखाई देता है कि शिक्षण का यह तंत्र कुछ ऐसा ही विकसित रहा है । प्रागैतिहासिक काल में चतुर्दिक फैले, महर्षि अगस्त्य की वेद पुरी, भारद्वाज की प्रयाग स्थिति प्रशिक्षणशाला, महर्षि विश्वामित्र का सिद्धाश्रम आदि ने समय की माँगों को पूरा किया । वेदपुरी में महर्षि अगस्त्य के प्रशिक्षण की प्रखरता की सराहना करते हुए आदि कवि बाल्मीकि कहते हैं—अनीतिकारी आसुरी शक्तियाँ उस दिशा से भय खाती थीं । राक्षसों को अगस्त्य की दिशा से इतना खौफ था कि वे उधर पैर रखने का साहस नहीं करते थे । दस हजार छात्रों वाली भारद्वाज की प्रशिक्षणशाला जन को जाग्रत और कर्त्तव्यनिष्ठा के लिए सचेत करने वाली प्रहरी तैयार करती रहती । सिद्धाश्रम को केन्द्र बनाकर उपयुक्त पात्रों को प्रशिक्षित कर विश्वामित्र ने अनीतियों के विरुद्ध व्यूह रचना की । रामराज्य की सतयुगी परिस्थितियाँ इन्हीं प्रशिक्षणशालाओं की उर्वरता और प्रशिक्षकों के चमत्कारी व्यक्तित्व गढ़ने में महारत का परिणाम था । इन तीनों के यहाँ स्वयं जाकर श्रीराम ने सतयुग के विस्तार की तकनीक और सहायता प्राप्त की ।

बीच के समय ने भी भारत को सोने की चिड़िया, स्वर्ण भूमि कहलाने का सौभाग्य ऐसे ही विश्वविद्यालयों ने प्रदान किया था । गान्धार स्थित तक्षशिला, राजगिरि के समीप नालन्दा, भागलपुर स्थित विक्रमशिला, काठियावाड़ के वल्लभी विश्वविद्यालयों ने अपने समय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । चाणक्य की दुर्द्धर्ष प्रखरता तक्षशिला से उपजी थी । यहीं के स्नातक उनके प्रथम सहयोगी थे, जिनके सम्मिलित प्रयासों से जन-जाग्रत की लहर फैली और विशाल भारत की अभिनव समाज संरचना अपना पूर्ण सौन्दर्य प्रकट कर सकी । विचारक्रान्ति के अग्रदूत कुमारिल भट्ट नालन्दा में गढ़े गए, जिनकी रखी मजबूत नींव पर शंकराचार्य ने सांस्कृतिक क्रान्ति की भव्यता विनिर्मित की । चोल सम्राट् देवपाल के समय विक्रमशिला से गढ़े हुए परिव्राजकों ने भारत ही क्यों सुदूर बर्मा, मलाया आदि जगहों पर जा जीवन विद्या का प्रसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया । पाँचवीं से आठवीं शती तक वल्लभी के स्नातकों ने काठियावाड़ ही क्यों समूचे भारत की जन चेतना को जीवन्त और सचेत रखा । यहाँ के प्रशिक्षक व्यक्तित्वों को ढालने में इतने माहिर थे कि अन्य देशों के लोग भी यहाँ दाखिले के लिए तरसते थे ।

यही क्यों उज्जयिनी, कांचीपुरम् अमरावती, औदन्तपुरी आदि स्थानों में ऐसी ही कार्यशालाएँ थीं जहाँ से साधारण व्यक्ति असाधारण प्रखर बनकर निकलते थे । वह स्वयं के साथ देश-समाज के लिए उपयोगिता की कसौटी पर खरे सिद्ध होते । नेशनल कालेज की स्थापना के पीछे श्री अरविन्द का यही उद्देश्य था और बहुत कुछ पूरा भी हुआ । बंगाल की भूमि ने ऐसी ही प्रशिक्षण संस्थाओं के बल पर नररत्नों की झड़ी लगा दी । काशी विद्यापीठ की भूमिका भी कुछ ऐसी ही थी । बाबू सम्पूर्णानन्द, आचार्य जुगलकिशोर लालबहादुर शास्त्री, राजाराम शास्त्री, भगवान दास यहीं तरासे और निखारे गए थे । यहीं के उत्पादकों ने राजा महेन्द्र प्रताप का प्रेम महाविद्यालय, प्रयाग विद्यापीठ आदि स्थानों पर जाकर अपने जैसे अनेक बनाए ।

वर्तमान के क्षण सन्निकट उज्ज्वल भविष्य के लिए अतीत के इतिहास के इन प्रभावकारी प्रयोगों को दुहराने के लिए बेतरह आकुल हैं । कम समय में भावी समय को आदर्शवादी परिस्थितियों, व्यक्तित्वों के गढ़ने, तराशने की भारी जिम्मेदारी आ पड़ने से यह व्याकुलता निरन्तर त्वरित गति से बढ़ती जा रही है । ब्रिटिश मनीषी अरनाल्ड टायनबी ने एक स्थान पर संकेत किया था कि मानवता एक महान् संस्कृति को अपने गर्भ में धारण कर चुकी है जिसके प्रकट होने पर समूचा विश्व स्वर्ग राज्य के रूप में बदल जाएगा । प्रकट होने के क्षण आ पहुँचे हैं । उन क्षणों की महत्ता बताते हुए श्री अरविन्द ने इसे देवमुहूर्त घोषित किया है । वह कहते हैं—"वह समय निकट है जब सत्य दुनिया पर शासन करेगा । उसके लिए हम स्वयं को तैयार करें ।"

यह तैयारी ही प्रशिक्षण है, जिसके द्वारा संस्कृत व्यक्तियों का वह समूह तैयार किया जा सके जो नवयुग की संस्कृति के अनुरूप अपने को सिद्ध कर सके । श्री इलिच ऐसे व्यक्ति को कहते हैं डपिमेथियन । अर्थात् वह जो अपने अन्दर के प्रकाश को प्रकट करने के लिए उतारू है, प्रकट कर रहा है । सारा जन-समूह एक साथ एक जगह प्रशिक्षण हो सके यह सम्भव नहीं । नीति यही रहेगी कि यदि पहाड़ ईसा के पास न पहुँचे तो ईसा पहाड़ के पास पहुँचेगा । अर्थात् घर-घर पहुँच कर मनुष्य को उसके गढ़ने-निखारने में सहायता पहुँचानी होगी । इन सहायता पहुँचाने वाले प्रशिक्षकों को विशेष वर्ग को गढ़ने के लिए वेदपुरी, सिद्धाश्रम वल्लभी, तक्षशिला की भूमिका गायत्री तीर्थ स्थित आरण्यक निभा रहा है । गढ़ने का उत्कृष्ट कौशल चाणक्य और कुमारिलभट्ट की वह नयी पीढ़ी तैयार करेगी जो वर्तमान और भविष्य की जरूरतों को पूरा कर सके । प्रशिक्षित दूसरों को प्रशिक्षण दें । क्रम की निरन्तरता एक चिरस्थाई और मजबूत शिक्षण तन्त्र की रचना करेगी । जहाँ से विश्वहित, समाजहित के साथ व्यक्ति की क्षेत्र विशेष की उलझनें सुलझेंगी । प्रतियोगिता और संघर्ष को त्याग कर, सारी बहानेबाजी भुलाकर नूतन सृजित शिक्षण तन्त्र स्वयं को जोड़े प्रशिक्षकों का महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाने को तैयार हो । नूतन इतिहास के सृजन का यह कार्य युगों तक भुलाया न जा सकेगा ।

कैसे होते हैं व्यक्तित्वसम्पन्न महामानव ?

व्यक्तित्व क्या है ? मोटे तौर पर तो इसका अर्थ बाह्य आकार-प्रकार और शारीरिक संरचना से लगाया जाता है । जो देखने में जितना मोटा-तगड़ा, लम्बा लगता है, उसे उतना ही उच्च व्यक्तित्व का समझा जाता है । अँग्रेजी में इसे 'जाइण्ट पर्सनैलिटी' कहते हैं, पर क्या मनुष्य का वास्तविक व्यक्तित्व सचमुच शारीरिक संगठना ही है ? विचार करने पर ज्ञात होता है कि बात ऐसी है नहीं । यदि व्यक्तित्व का मापदण्ड शरीर-संरचना को माना जाय, जब तो पहलवान और जंगलों में रहने वाले कबीले के लोग ही भारी-भरकम व्यक्तित्व वाले साबित होंगे, जबकि मानवोचित गुणों की दृष्टि से उनका अन्तराल लगभग शुष्क होता है । जब मानवोचित गुण ही नहीं, तो उन्हें उस श्रेणी में कैसे रखा जा सकता है ? वस्तुतः अन्तःकरण की उत्कृष्टता ही व्यक्तित्व का वास्तविक मापदण्ड है । जिसका जितना अन्तस् उदात्त होता है, वह उतना ही उच्च व्यक्तित्व वाला कहलाता है ।

अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को वंश परम्परा द्वारा निर्धारित होने की बात बताई है उनका कहना है कि व्यक्तित्वों में विभिन्नता वंशपरम्परा के कारण है । किन्तु वाटसन प्रभृति व्यवहार मनोविज्ञानी सांख्ययोग का समर्थन करते हुए वातावरण को ही व्यक्तित्व का प्रधान निर्धारक मानते हैं । सांख्य योग ने इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहा है—संचित कर्मों की अपनी महत्ता है, किन्तु व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में अपनी इच्छानुसार परिवर्तन लाता है । शरीर का ढाँचा, रूप-रंग, पारिवारिक परिस्थिति, सामाजिक सम्बन्ध तथा आर्थिक अवस्था को मनुष्य अपने पुरुषार्थ से बदल सकता है । वर्तमान जीवन में ही उनमें व्यक्ति स्वयं बहुत कुछ परिवर्तन लाता है । अच्छाई अथवा बुराई को श्रेय अथवा प्रेय को व्यक्ति स्वयं ही अपनाता एवं उससे सम्बन्धित योग्यता विकसित करता है । इसी को गीता ने आसुरी और दैवी सम्पदा वाले दो व्यक्तित्वों में विभाजित किया है । आसुरी प्रवृत्ति वाले लोभ, मोह, अहंकार के दलदल में फँसकर वासना, तृष्णा एवं अहंता की पूर्ति में और धँसते जाते हैं, इन आसुरी सम्पत्ति को जानकर भी व्यक्ति उससे दूर नहीं हो पाता वह चाहे तो इन्हें क्षण भर में तोड़ सकता है, किन्तु अभ्यासवश तोड़ नहीं पाता । वहीं दैवी सम्पदा वाले उदात्त दृष्टिकोण एवं विस्तृत आत्मीयता अपनाकर अपने चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार में उत्कृष्टता का समावेश करते हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फलस्वरूप गुण, कर्म, स्वभाव की कसौटी में खरा सिद्ध हो कर आत्म-सन्तोष एवं लोक-सम्मान प्राप्त करते हैं ।

गीता में व्यक्तित्व को और स्पष्ट करते हुए कहा है कि सत्व, रजस् एवं तमस गुणों के आधार पर तीन भागों में बाँटा गया है । सात्विक व्यक्ति चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार में प्रत्येक क्रिया-कलाप में आयु, बुद्धि बल, स्वास्थ्य, सुख आदि को बढ़ाने वाले तत्वों का समावेश करता है । किसी भी कार्य को पूरी तत्परता एवं तन्मयतापपूर्वक जिम्मेदारी अनुभव करते हुए सम्पादित करता है, फलतः वह एकाग्रता, जीवट एवं प्रतिभा की दृष्टि से सम्पन्न होता हुआ प्रखर बनता है और समाज का अनिवार्य अंग सिद्ध होता है । राजसिक प्रकृति वाले मनुष्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव में ऐसे तत्वों का समावेश करता है, जिसमें लोभ, मोह एवं अहंकार का सम्पुट होता है, फलतः विकृत चिन्तन एवं संकीर्ण स्वार्थपरता दृष्टिकोण में सम्मिलित होने के कारण अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं । तामसिक प्रकृति वाले व्यक्ति अपना व्यक्तित्व इतना घटिया एवं निकृष्ट बना डालते हैं, जिसे मानवोचित गरिमा के विपरीत ही कह सकते हैं । ऐसे लोगों को नरतन धारी नरपशु की संज्ञा दे सकते हैं जिनके प्रत्येक क्रियाकलाप में पशुप्रवृत्ति की बू आती है । उत्कृष्ट चिंतन एवं आदर्शवाद दृष्टिकोण अपनाना तो जैसे इन्होंने सीखा ही न हो ! सामान्य जीव-जन्तुओं की तरह पेट भरने और प्रजनन के कौतुक का रसास्वादन करने के लिए जीवित रहते हैं उन्हें न मर्यादाओं के प्रति श्रद्धा होती है और न वर्जनाओं से बचने की ललक । अंकुश और नियंत्रण के अवरोधों से बाधित होकर ही वे अनुचित को अपनाने से रुक पाते हैं । स्वच्छंदता और क्षमता रहने की स्थिति में मर्यादा पालन में कोई उत्साह नहीं रहता । अज्ञान तथा भ्रमवश अपने कर्त्तव्यों को छोड़ बैठते हैं । दूसरे के कष्टों को ध्यान में न रखते हुए उनके समस्त कार्य होते हैं । उनकी बुद्धि विपरीत दिशा में ही कार्य करती है और वे सदैव उल्टा ही सोचते हैं ।

ये थे व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न आयाम एवं सामयिक परिस्थितियों की आवश्यकता एवं उस काल में विज्ञानियों का दृष्टिकोण जो इस प्रगति क्रम में विशिष्ट व्यक्तित्व लिये हुए लोगों के समूह की भविष्यवाणी करता है । ये भिन्न-भिन्न निष्कर्ष निकालते हुए निर्धारित करते हैं कि आने वाले दिनों में व्यक्तित्व की क्या परिभाषा होनी चाहिए । अथवा मनुष्य को अपना व्यक्तित्व किस रूप में विकसित करना चाहिए ।

निर्णय एक ही बनता है कि किसी व्यक्ति की बाह्य सफलता एवं भौतिक समृद्धि को देखकर उसके व्यक्तित्व को नहीं जाना जा सकता । इसकी एक ही कसौटी है कि चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में अधिकाधिक शालीनता का समावेश किया गया या नहीं । अंतरंग एवं बहिरंग प्रामाणिकता एवं प्रखरता से भरा-पूरा है या नहीं । अगले दिनों व्यक्तित्व की यही परिभाषा बनने वाली है । सज्जनता, सद्भावना, श्रमशीलता, मितव्ययता, स्वच्छता, सहकारिता, अनुशासनप्रियता जैसे सद्गुणों को धारण करने वाले ही अपने व्यक्तित्व को प्रखर एवं तेजस्वी बना पाते हैं उन्हीं की कृति युगों-युगों तक अमर रहती है । इस आधार पर वे गिरों को उठाने, उठों को चलाने, चलतों को दौड़ाने एवं दौड़तों को उछालने जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न कर सकने में सफल होते हैं । साथ ही ऐसे व्यक्तित्व वाले लोग समाज के खेत में पुण्य-परमार्थ के बीज बिखेर कर फसल को अपने लिए ही नहीं, वरन् समाज के लिए काटते और विश्व वसुधा को लाभान्वित करते हैं । इन्हें ही कुशल नाविक की संज्ञा दी जाती है । ऐसे लोग अपनी नाव पर अनेक को बिठाकर इस पार से उस पार पहुँचा देते हैं । आने वाले समय में यही परिभाषा रहेगी व्यक्तित्व की और यही कसौटी भी । इसके आधार पर ही इक्कीसवीं सदी में उज्ज्वल भविष्य का निर्माण सम्भव हो सकेगा ।

नीतिशास्त्रियों की दृष्टि में विकसित व्यक्तित्व

व्यक्तित्व की संरचना एवं विकास एक लम्बे समय से शोध का विषय रहा है । मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, दर्शन एवं विज्ञान—हर क्षेत्र के विद्वानों ने समय-समय पर अपने मन्तव्य प्रकट किए हैं तथा सामाजिक परिवेश में इसके विकास की सम्भावनाओं का अध्ययन किया है । विकसित व्यक्तित्व कैसे स्वयं को ऊँचा उठाकर लोक-सम्मान का पात्र बनता है तथा परिस्थितियों की अनुकूलता-प्रतिकूलता कैसे उसे प्रभावित करती है, इस पर जितना अध्ययन नीतिशास्त्र की विधा के अन्तर्गत किया गया है, उतना अन्य किसी भी विषय के मूर्धन्यों द्वारा नहीं हुआ ।

विश्वविख्यात नीतिशास्त्री मनीषियों ने विकसित व्यक्तित्व को ही महामानव की संज्ञा दी है । इसके लिए वे परिस्थितियों को महत्त्व नहीं देते वरन् उत्कृष्ट मनःस्थिति का होना आवश्यक मानते हैं । उनके मूल्यांकन की कसौटी से किसे खोटा कहाँ जाय, इस पर तो प्रकाश नहीं डाला गया, लेकिन खरा होने के कारण बताते हुए इसी लक्ष्य का उन्होंने समर्थन किया है कि जिसका दृष्टिकोण जितना परिष्कृत होगा, जिसमें आदर्शों के प्रति जितनी दृढ़ निष्ठा होगी, वह उसी अनुपात में श्रेष्ठ-जनों की बिरादरी में सम्मिलित होता और सम्मान पाता चला जाएगा ।

ऐसी श्रेष्ठतावादी मान्यताओं को प्राधान्य देने वाले कतिपय विद्वानों में 'अब्राहम मेस्लोव' का प्रमुख स्थान है । उन्होंने अपने जीवन-काल में महानता अर्जित करने वाले, लोक-सम्मान पाने वाले महापुरुषों के व्यक्तित्व का बड़ी गहराई से अध्ययन किया । मानव मात्र को समर्पित लिंकन एवं गाँधी जैसे व्यक्तियों का उदाहरण देते हुए वे उन्हें क्षमता सम्पन्न, प्रतिभा से भरा-पूरा, भावना सम्पन्न 'एनरीच्ड व्यक्तित्व' मानते हैं । ऐसे महामानवों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि "ऐसे व्यक्ति कभी-कभी ही जन्म लेते हैं तथा अपनी शारीरिक इच्छाओं-आकांक्षाओं को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उच्चस्तरीय जरूरतों के आगे न्यौछावर कर देते हैं । छोटी-छोटी जरूरतों का पूरा न होना उनके पक्के व्यक्तित्व को हिला नहीं पाता । सामान्य प्रलोभन उन्हें डिगा नहीं पाते ।'' आगे वे कहते हैं—''किसी भी सामान्य अथवा असमान्य व्यक्ति का बहिरंग में प्रकट होने वाला व्यवहार सिर्फ 'मोटिवेशन' जैसी मनोवैज्ञानिक वृत्ति के आधार पर ही नहीं समझाया जा सकता ।'' लड़ाई के मैदान में कोई भी व्यक्ति क्यों हँसते-हँसते प्राणों को त्याग देता है ? कौन से कारण ऐसे हैं जो समाज सेवियों, देश प्रेमियों को कष्ट उठाने के लिए प्रेरित कर देते हैं ? इनका उत्तर देते हुये वे कहते हैं कि—''ये व्यक्तित्व ऊँचे उठे हुये व्यक्तित्व होते हैं जो 'स्व' की गरिमा को पहचानकर अपने अन्तः का विस्तार कर सकने में सफल होते हैं ।''

''ऐसे व्यक्ति देखने में तो सामान्य ही होते हैं, पर इनका चिन्तन स्तर ऊँचा होता है । स्वयं कष्ट सहते हुये सिद्धान्तों के प्रति अटूट निष्ठा उन्हें कुछ उच्चस्तरीय आनन्द की अनुभूति होती है''—ऐसा मेस्लोव का मत है । मात्र पेट और प्रजनन के लिये जीने वाले एवं सिद्धान्तों के प्रति समर्पित व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए उन्होंने लिंकन जैसे चालीस व्यक्तित्वों की तलाश की जिनमें से कुछ ऐतिहासिक व कुछ जीवित थे ।

उन्होंने पाया कि इन सबमें विधेयात्मक चिन्तन की प्रमुखता थी । इनका व्यक्तित्व आशावादिता से सम्पन्न था जो उन्हें विपरीत परिस्थितियों में भी मनःस्थिति को विचलित नहीं होने देता था । कुछ जीवित व्यक्तियों को मेस्लोव ने कोर्सेफॉक टेस्ट से भी गुजारा । सारी स्थिति का पर्यवेक्षण कर उन्होंने महामानव, जिन्हें उन्होंने 'सेल्फ एक्चुअलाजिंग' व्यक्ति सम्बोधन दिया है के ये लक्षण बताये हैं—

(१) वस्तुस्थिति को स्पष्ट समझकर उसके साथ अधिक आरामदेह सम्बन्ध स्थापित कर पाना उनकी विशेषता होती है । ऐसे व्यक्ति कभी पूर्वाग्रहों से ग्रसित नहीं होते । वे परिस्थिति को यथास्थिति देख-समझकर बिना उससे विचलित हुए अपने कार्य का स्वरूप निर्धारित करते हैं । कोई भी शंका या अड़चन किसी काम में आने पर वे उसे एक सुखद चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं, उससे डरते नहीं ।

(२) स्वयं या अन्य किसी व्यक्ति को उसकी स्वभाव की विचित्रताओं के बावजूद स्वीकार करना, यह विशेषता महान् व्यक्तित्वों में ही पाई जाती है । अतिवादियों जैसी 'पूर्णपुरुष' की तलाश या अपेक्षा उन्हें नहीं रहती वे न तो अतिवादी होते हैं, न निरपेक्षतावादी और न पूर्णतावादी । मानव को कमजोरियों का पुतला मानकर उस पर दुःखी न होकर वे उन्हें सुधारने का प्रयास करते हैं । स्वयं की जिन्दगी में निरन्तर आते रहने वाले कठिन संघर्ष उन्हें व्यथित नहीं करते ।

(३) वे अपनी बाह्य एवं आन्तरिक जिन्दगी में सरल एवं बनावट से रहित होते हैं । अन्दर एवं बाहर से एक, अभिव्यक्ति में सन्तुलन स्पष्ट होने के कारण उन्हें स्वयं तो तनाव होता नहीं, साथ ही औरों के लिए भी दोष के पात्र नहीं बनते । इसे उन्होंने 'स्पान्टेनिटी' का गुण कहा है ।

(४) ये व्यक्ति कोलाहल से दूर फिर भी समाज के प्रत्यक्ष सम्पर्क में रहते हैं । समाज की समस्याओं व उनको सुलझाने के लिए विकल्प इनके चिन्तन में सतत् चलते रहते हैं, पर फिर भी एकान्तवास इन्हें अधिक प्रिय होता है ।

(५) इनकी इच्छाएँ कभी भी स्वार्थपरक न होकर उद्देश्यपरक होती हैं । स्वार्थ परमार्थ में बदल जाता है । अपनी समस्याओं को वे समाज की समस्याओं के आगे भूल जाते हैं ।

(६) ऐसे लोगों को स्वसंचालित, स्वतंत्र वातावरण के निर्माता कहा जा सकता है । स्वयं में दृढ़ होने के कारण व अपने चारों ओर एक स्वतंत्र वातावरण का निर्माण कर सकने में सफल होते हैं । ये अपने मनस्वी होने का परिचय, श्रेष्ठ वातावरण का स्वयं अपने बलबूते सृजन करके देते हैं ।

(७) हमेशा जवानों जैसी मस्ती, ताजगी एवं उत्साह युक्त होने के कारण उन्हें कर्माधिक्य के बावजूद थकान नहीं होती ।

(८) वे प्रकृति से अधिक समीप होते हैं एवं उसमें व्याप्त सौंदर्य को सामान्य आदमी से अधिक पैनेपन से समझते एवं अनुभव करते हैं ।

(९) वे मानवता से असीम प्यार करते हैं । मानव की सहज स्वाभाविक बुराइयों को देखकर भी इनका स्नेह कम नहीं होता । बुराई की वृत्ति से तो घृणा करते हैं, पर बुरे व्यक्ति से नहीं । चूँकि ये सभी से गहरा स्नेह रखते हैं, अतएव इन्हें भी प्रत्युत्तर में सभी से सौहार्द, स्नेह मिलता है ।

(१०) अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए किसी प्रकार की सौदेबाजी इन्हें मंजूर नहीं । ऐसे हर काम में ईमानदार होते हैं । सफलता प्राप्ति के लिए अनैतिकता का सहारा नहीं लेते, न ही मित्रता का गला घोटते हैं ।

(११) विनोदप्रियता उनके स्वभाव का अंग होती है । गम्भीर से गम्भीर अवसरों पर अपनी सहज विनोद प्रियता से ये वातावरण को हल्का बनाये रखते हैं । इनके व्यंग्य बाणों में कटुता एवं दूसरों का उपहास नहीं, बल्कि स्वाभाविक एवं शिक्षण, मस्ती और हल्कापन निहित होता है ।

(१२) सर्जनात्मकता इनकी मूल प्रवृत्ति होती है । वे ध्वंस की नहीं निर्माण की योजनाएँ बनाते हैं । सृजन के लिए तोड़-फोड़ करनी पड़े तो बात दूसरी है । मैसलोव ने जिनका अध्ययन किया, उनमें इन मौलिक गुणों की प्रधानता पायी । हर महामानव इन गुणों से सम्पन्न था ।

महामनीषी जे. एम. ग्राहम ने अपनी पुस्तक 'पर्सनालटी' में व्यक्तित्व के स्वरूप, विशेषताओं एवं विकास की सम्भावनाओं पर विस्तृत प्रकाश डाला है । वे कहते हैं कि— ''व्यक्तित्व से अभिप्राय एक ऐसी सर्वांगपूर्ण जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पद्धति से है जो सच्ची मैत्री भावना, स्नेह, सद्भाव एवं सुन्दर अनुभवों से भरा हुआ हो तथा जिसमें व्यक्ति को यह सन्तोष हो कि उसने जीवन के श्रेष्ठतम आदर्शों और विश्वासों के अनुकूल आचरण किया हो । सज्जनता, विनयशीलता, शिष्टता, उदारता, सरलता और दृढ़ आत्म-विश्वास, श्रेष्ठ व्यक्तित्व के आवश्यक तत्व हैं । उत्कृष्ट व्यक्तित्वसम्पन्न व्यक्ति महत्त्वाकांक्षाओं के पीछे नहीं दौडते । उनमें दूसरों के प्रति असीम सद्भावना भरी होती है तथा सभी के सुख-दु:ख के साथी होते हैं ।''

'दी गेन ऑफ परसनालिटी' ग्रन्थ में नीतिशास्त्री डब्ल्यू. सी. लूसमोर ने विकसित व्यक्तित्व की व्याख्या करते हुए उसे तीन हिस्से में बाँटा है । एक को विवेक, दूसरे को पराक्रम और तीसरे को साहचर्य नाम दिया है । उनकी और अधिक व्याख्या करते हुए वे कहते हैं—''आदर्श व्यक्ति सदैव चिन्तनशील होता है । चिन्तन-मनन के बिना कोई मनुष्य अपने लिए स्थिर, नैतिक सिद्धान्त का निर्धारण नहीं कर पाता और समाज की दिशाधारा के प्रवाह में बह जाता है । नैतिक सिद्धान्तों के निश्चय निर्धारण के लिए ज्ञानोपार्जन अत्यावश्यक है । ज्ञानार्जन के लिए व्यक्ति को चिन्तनशील-विवेकशील होना चाहिए । सिद्धान्तों को व्यावहारिक जीवन में उपयोग करते समय सतत् चिन्तन आवश्यक है ।''

''चिन्तन जीवन का सैद्धान्तिक पक्ष है । जीवन का व्यावहारिक पक्ष—चिन्तन श्रेष्ठ कार्यों के रूप में परिलक्षित होता है । विचार मन्थन से जो सिद्धान्त निर्धारित हों उनको सत्यता की कसौटी के लिए व्यावहारिक क्षेत्र में उतारना होता है । उच्च आदर्शों व नैतिक सिद्धान्तों का व्यवहार में आना ही नैतिक जीवन है । सिद्धान्तों के कार्यान्वयन के लिए क्रियाशीलता-गतिशीलता नैतिक जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है । संसार के सभी महापुरुष जीवन भर क्रियाशील रहे, अनवरत श्रम-साधना करते रहे हैं । शारीरिक व मानसिक श्रम में सन्तुलन रख निरन्तर लगे रहकर उन्होंने महानता अर्जित की । गाँधी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं । व्यक्तिवादी संकीर्ण चिन्तन सर्वथा एकांगी है । आदर्श व्यक्ति आत्म-कल्याण की साधना के साथ-साथ समाज की भी भलाई करता है । वह समाज के लोगों से सहानुभूति रखता और उन्हें अपने उत्कृष्ट विचारों एवं श्रेष्ठ व्यवहार से निरन्तर ऊँचा उठाने का प्रयास करता है ।''

वे कहते हैं कि—''क्रिया और विचार नैतिक जीवन के व्यायाम और संगीत हैं । एकान्त के समय जीवन के कार्यों की समीक्षा की जाती है और एकान्त में प्राप्त सिद्धान्तों की सामाजिक जीवन में परख होती है ।'' इस प्रसंग में ''एसेआन सोसाइटी एण्ड सालीट्यूड'' मे इमर्सन महाशय का कथन भी उल्लेखनीय है—

''हमारे विचार तो एकान्त में उद्भूत हों, परन्तु हमारी क्रियाओं का क्षेत्र समान ही हो । जब हम अपने विचारों को स्वतंत्र रखते हैं और अपने संसर्ग के लोगो के प्रति सहानुभूति नहीं खोते, तो हम आदर्श जीवन को चरितार्थ करते हैं ।''

''मध्यम मार्ग का अनुसरण करने वाला आदर्शवादी, व्यक्तिवादी नहीं होता, उसके चिन्तन और कर्त्तव्य में साम्य होता है । मनुष्य को अपने गुण और अवगुणों का बोध तभी होता है, जब समाज के लोगों के सम्पर्क में आता है । बाह्य जीवन में वह सामान्य मनुष्यों की भाँति रहता है । आदर्श व्यक्ति का मस्तिष्क स्वतंत्र विचार के जगत में विचरण करता है, पर हृदय संसार के सामान्य लोगों के साथ बहता है ।''

इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध नीतिशास्त्री विद्वान् एफ. एच. ब्रेडले ने कहा है—''मनुष्य अपने व्यक्तित्व को समाज में जितना हो अधिक घुला-मिला देता है, उतना ही अधिक उसको नैतिक रूप से विकसित मानना चाहिए । वस्तुत: सामाजिकता से पृथक् मनुष्य की नैतिकता का मूल्य एवं उपयोगिता ही नहीं है । प्रत्येक मनुष्य को सर्वप्रथम अपने आचरण में नैतिकता का समावेश करना चाहिए एवं सामान्य जीवनयापन की रीति-नीति को इसके लिए सर्वोत्तम मानना चाहिए । नैतिक जीवन का विकास करने के लिए संकुचित-संकीर्ण नियम अथवा विचारधारा की अपेक्षा व्यापक उदार नियमों को अपनाना अधिक उत्तम है चाहे वे व्यापक नियम अपने देश, धर्म समाज के हों अथवा किसी अन्य के द्वारा प्रतिपादित ।''

नीतिशास्त्रियों द्वारा की गयी यह व्याख्या पूर्णत: भारतीय अध्यात्म शास्त्र के उन प्रतिपादनों से मेल खाती है, जिन्हें पूर्वार्त्त मनोविज्ञान के नाम से जाना जाता है । आज महामानवों की उत्पत्ति-महानता के बीजांकुरों के विकास हेतु ऐसे ही विचारों के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता भी है ।

देवत्त्व है अंतिम लक्ष्य जिसका, वह है मनुष्य

मनुष्य वस्तुत: कैसा है ? क्या है ? उसकी मूलभूत जन्म-जात प्रवृत्तियाँ क्या हैं ? मनोविज्ञानियों, तत्ववेत्ताओं के लिए यह लम्बे समय से शोध का विषय रहा है । नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शन एवं विज्ञान आदि विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों ने समय-समय पर इस संदर्भ में अपने-अपने मन्तव्य प्रकट किये हैं । साथ ही सामाजिक परिवेश में उसके व्यक्तित्व-विकास की सम्भावनाओं का अध्ययन किया है कि किस प्रकार वह अपने स्वभाव-संस्कार का परिष्कार, परिमार्जन करके स्वयं को ऊँचा उठाकर दिव्यता का वरण करता है ।

अध्यात्मवेत्ताओं का कहना है कि मनुष्य के स्वभाव को जानने से पूर्व उसके उद्गम स्रोत को जानना आवश्यक है । मानवीय अन्त:करण की संरचना दैवी तत्वों से मिलकर हुई है । वह स्वयं ईश्वर का ज्येष्ठ पुत्र युवराज है और उसकी विश्व वाटिका को समुन्नत-सुविकसित करने के लिए एक कुशल माली की भूमिका निभाने आया है । उसका जन्मजात स्वभाव भी इस भूमिका का निर्वाह कर सकने के सर्वथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपयुक्त है । शरीर, मन:तंत्र और भावनाओं-सद्प्रेरणाओं का क्रीड़ा-स्थल अन्त:करण का त्रिविध संस्थान ऐसी दिव्य क्षमताओं और विभूतियों से भरा-पूरा मिला है, जिससे वह जीवन सम्पदा को सार्थक बनाने वाली उच्चस्तरीय भूमिका निभा सके ।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस संदर्भ में भ्रान्त धारणाएँ ही प्रस्तुत की हैं और उसके स्वभाव को हेय स्तर का ठहराया है । कहा है कि जन्मजात रूप से उसे पशु प्रवृत्तियाँ ही मिली हैं । उनकी पूर्ति से ही उसे चैन पड़ता है । वही उसे करना चाहिए । इन तथाकथित अन्वेषणकर्त्ताओं में डार्विन जैसे विकासवादियों का कहना है कि समुद्र में अमीबा जैसे एक कोशीय प्राणियों के रूप में जीवन उत्पन्न हुआ, उसी से विभिन्न प्रकार के प्राणी विकसित हुए । उसी विकास शृंखला में से बन्दर की औलाद के रूप में मानव जीवन प्रकाश में आया । पशु-प्रवृत्तियों के इन विश्लेषणकर्त्ताओं ने यह कहा है कि सभी जानवर स्वार्थ प्रधान हैं । जहाँ अवसर मिलता है, वहाँ आक्रमण करने में नहीं चूकते । यौन स्वेच्छाचार उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है । खतरे की स्थिति में लड़ने या भाग खड़े होने की दोनों ही नीतियाँ अपनाते हैं । चूँकि मनुष्य भी एक तरह का विकसित पशु है, इसलिए उसके स्वभाव में भी यही प्रवृत्तियाँ भरी रहती हैं । इस प्रतिपादन के अनुसार मनुष्य चोर-उचक्का, व्यभिचारी, आक्रमणकारी, स्वार्थी बनता है तो यह उसकी स्वाभाविकता कही जायेगी ।

इंग्लैण्ड के दार्शनिक हॉब्स ने मनुष्य को बहुत बड़ा स्वार्थी प्राणी माना है । उनका कथन है कि मनुष्य-मनुष्य के लिए भेड़िये के समान है, यदि उसे मनमानी बरतने की, स्वेच्छागामी होने की छूट मिल जाय तो अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए वह दूसरे का गला घोंट सकता है । उनके अनुसार मनुष्य हिंसक स्वभाव का होने के कारण ही अपने लिए राज्य-प्रशासन एवं विभिन्न नियमों, कानूनों की व्यवस्था करता है, जिससे उसे ऐसा कुछ करने में दंड पाने का भय बना रहे । प्रतिकार के भय से ही वह दूसरों पर आक्रमण नहीं करता अन्यथा जहाँ इसकी सम्भावना नहीं होती, वहाँ उद्दण्डता बरतने, दूसरों को सताने, उन्हें विनष्ट करने का दुष्कृत्य क्यों करता ?

आधुनिक मनोविज्ञान के प्रवर्त्तक सिगमंड फ्रायड ने भी मनुष्य को स्वार्थी कहा है । उनके अनुसार मनुष्य का जीवन अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए है । दूसरों के प्रति प्रेम और उदारता मात्र दिखाने के लिए है । जो व्यक्ति अपने अन्तर्मन में जितना अधिक स्वार्थी होता है, वह उदारता का उतना ही आडम्बर फैलाकर संसार में प्रसिद्धि पाने की चेष्टा करता है । सुख प्राप्ति की कामना को ही उन्होंने सब कामों का मूल स्रोत बताया है । उनके अनुसार दान, पुण्य, परमार्थ इसलिए किये जाते हैं जिससे कीर्ति बढ़े या आर्थिक लाभ हो । लोगों की दानी व्यक्ति पर श्रद्धा जमी रहे । फ्रायड का सम्पूर्ण मनोविज्ञान वासना-तृप्ति के इर्दगिर्द ही चक्कर काटता है । इसी को उसने मनुष्य की मूल प्रवृत्ति माना है । जब उसे खेलने की खुली छूट मिल जाती है तो मनुष्य स्वस्थ रहता है अन्यथा दमित और अतृप्त वासना से अनेकानेक मनोविकारों का उदय होता है । इस प्रकार फ्रायडवादी प्रतिपादन के हिसाब से नीतिवादी-आदर्शवादी उत्कृष्टता की जड़ कट जाती है और मनुष्य नर-पशुओं की श्रेणी में जा खड़ा होता है ।

विकासवादी एवं फ्रायडवादी प्रतिपादकों की उपरोक्त मान्यताओं से हटकर मानवीय स्वभाव की दिव्यता पर दृढ़ विश्वास रखने वाले मन:शास्त्रियों एवं अध्यात्मवेत्ताओं का कहना है कि मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ सन्तान है । 'वह पूर्ण से उत्पन्न हुआ, पूर्णता युक्त है और अन्त में पूर्ण होकर ही रहेगा ।' इस श्रुति प्रतिपादन के अनुसार ही उसका स्वभाव एवं मूलवृत्तियाँ भी होनी चाहिए । फ्रायड द्वारा प्रतिपादित स्वभाव को इन्होंने मनुष्य के वास्तविक स्वभाव का विकृत रूप बताया है ।

अध्यात्मविज्ञानियों के अनुसार मूलत: मानवीय अन्त:करण की संरचना दिव्य तत्वों से हुई है । स्नेह, सौजन्य, सद्भाव, पराक्रम, उल्लास, ऊर्ध्वगमन सत्प्रवृत्तियाँ ही उसमें भरी पड़ी हैं । इस क्षेत्र से जीवन-क्रम को श्रेष्ठ बनाने तथा महानता के पथ पर अग्रसर होने की ही अदृश्य प्रेरणाएँ उठा करती हैं । सामान्यतया इसे अनसुनी करते रहने पर अन्त:करण की दैवी चेतना प्रसुप्त पड़ जाती है और दुष्प्रवृत्तियों को जीवन सत्ता में प्रवेश करने की छूट मिल जाती है । इस क्षेत्र में निकृष्टताओं की भरमार होते रहने पर वही धीरे-धीरे स्वभाव का अंग बन जाती है । कालान्तर में यही प्रवृत्तियाँ संस्कार का रूप धारण कर लेती हैं और उनके दबाव से मनुष्य दुष्कर्मों की ओर आकृष्ट होता है । जन्म-जन्मान्तरों तक यही पशुवत् संस्कार मानवीय चेतना पर छाये रहते हैं । उनकी जड़ें मन की अचेतन परतों में गहराई तक जमी रहती हैं । ऐसी स्थिति में अन्त:करण में सद्प्रेरणाएँ उभरती तो हैं, किन्तु उस पर छायी मलीनता उन्हें कोई विशेष प्रतिफल प्रस्तुत नहीं करने देती । अन्त:करण की दैवी सत्ता पर कुसंस्कार हावी रहते हैं और मनुष्य को श्रेष्ठता के, महानता के मार्ग पर बढ़ने में भारी अवरोध खड़ा करते हैं । कठोपनिषद् में ऋषि कहते हैं **''प्रमाद्यन्तम् वित्तमोहेन-मूढ़म्''** अर्थात् सत्ता, सम्पत्ति के मोह में मनुष्य अपनी दिक् स्थिति भूल गया है । लगातार भ्रमित हो पथ अवरुद्ध होने का अर्थ है 'मृत्यु' । अत: उपनिषदकार संदेश देता है—कि मनुष्य पुरुषार्थ करे पर वैभव में न खो जाय । वह साध्य की अनुभूति करे । साध्य है अपना दिव्य स्वरूप-सत्-चित् एवं आनन्द ।

प्रख्यात मनोवैज्ञानिक कार्ल जुंग ने प्रकारान्तर से भारतीय अध्यात्म का ही समर्थन किया है । उन्होंने अपनी पुस्तक 'टू एसे ऑन एनालिटीकल साइकोलॉजी' में कहा है कि मनुष्य स्वभावत: दिव्यता का पक्षधर है । अपने जीवन का परम लक्ष्य वह आत्मोत्कर्ष को मानता है । इस दिव्यता की प्राप्ति के लिए वह किसी प्रतीक या देव शक्ति को अपना माध्यम बनाता है । भावनाओं के आरोपण एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रद्धा-विश्वास की प्रगाढ़ता से ही आत्म-दर्शन की उपलब्धि होती है । अपने प्रेम-पात्र को वह अपने हृदय में विराजमान पाता है । इसकी उपलब्धि होने पर उसकी स्वार्थपरता समाप्त हो जाती है और वह लोकमंगल के कार्यों में निरत हो जाता है । आत्मज्ञान होने पर तथाकथित फ्रायडवादी मूलवृत्तियों का सर्वनाश हो जाता है, मनुष्य अपनी वैयक्तिक इच्छाओं की तनिक भी परवाह नहीं करता, समष्टिगत हित-साधन ही उसका उद्देश्य बन जाता है ।

मनोविज्ञानी होमरलेन ने भी मानवीय स्वभाव को दैविक माना है । यूनान के तत्ववेत्ता प्लेटो के अनुसार मनुष्य दूसरों की सेवा अपने दिव्य स्वभाव के कारण ही करता है । उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक' में कहा है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है । उसकी प्रवृत्ति सदैव दूसरों की सेवा सहायता करने की रहती है । यह अलग बात है कि किसी में सेवा के भाव की बहुलता रहती है तो किसी में इसकी न्यूनता देखी जाती है । वस्तुत: यह भिन्नता मनुष्य के व्यक्तित्व के साथ जुड़ी हुई है । प्राय: अल्पविकसित मनुष्य ही इन्द्रिय सुखों की ओर दौड़ता है और स्वार्थ पूर्ति में बाधा पड़ने पर दूसरों को सताता है । जिस व्यक्ति का स्वभाव विकसित हो जाता है, वह विषय सुख से नहीं वरन् तत्व चिंतन एवं परमार्थ परायणता से तृप्ति पाता है । उचित शिक्षा एवं विद्या के द्वारा ही मनुष्य पशु प्रवृत्तियों से छुटकारा पाता और अपने अंदर निहित दिव्यता के दर्शन करता है ।

फ्रांस के प्रख्यात दार्शनिक रूसो ने 'इमील' नामक पुस्तक में कहा है कि मनुष्य का जन्मजात स्वभाव दैविक है । वह देवताओं की सन्तान है । उसमें जो दुष्प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं, वे समाज के वातावरण के सम्पर्क से ग्रहण की हुई होती हैं । उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने प्रतिपादित किया है कि शिशु के आरम्भिक काल से ही उसे यदि उचित शिक्षा दी जाय, अच्छा वातावरण प्रदान किया जाय तो उसकी दैवी सम्पत्ति उत्तरोत्तर विकसित होती जायगी और आगे चलकर वह अपनी सेवा से संसार को सुखी-समुन्नत बना देगा ।

हालैंड के महान् तत्ववेत्ता स्पिनोजा ने भी मनुष्य के वास्तविक स्वभाव को दिव्यता से परिपूर्ण बताया है । उनके अनुसार आत्मा-परमात्मा का अंशधर है । सम्पूर्ण संसार में जहाँ तक दृष्टि फैलाई जाय, उसी के गुणों का फैलाव है । चराचर जगत में वही व्याप्त है और फिर मनुष्य तो उसका साकार रूप है, क्योंकि आत्मा ही परमात्मा का प्रतीक प्रतिनिधि है । अत: उसके स्वभाव का पुण्य एवं पवित्रमय होना सुनिश्चित है । जब वह अपने से विचलित होता है, तभी वह स्वार्थी, दम्भी, कामी और क्रोधी बन जाता है । उसके पतन-पराभव का यही मुख्य कारण है । अपने स्वरूप को जान लेने पर समस्त दुष्प्रवृत्तियाँ, विषय-लोलुपता समाप्त हो जाती हैं ।

प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक इमेनुअल काण्ट का कहना है कि विवेक बुद्धि की उपस्थिति मानवीय स्वभाव में दिव्यता का सबसे बड़ा प्रमाण है । यदि ऐसा न होता तो धर्म, अधर्म, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, भला-बुरा निर्णय करने वाली विवेकशील बुद्धिमत्ता न रही होती । श्रेय-प्रेय का निर्णय करने की भावना मन में न आती । इन उत्कृष्ट भावनाओं का मन में आना ही मनुष्य के दैवी स्वभाव को सिद्ध करता है । उचित-अनुचित का निराकरण विवेक बुद्धि के सहारे से ही बन पड़ता है । उचित व्यवहार दैवी स्वभाव के अनुकूल और अनुचित व्यवहार उसके प्रतिकूल है । यह स्वभाव मनुष्य को स्वार्थी नहीं, वरन् सबके प्रति सद्व्यवहार करने, सद्भाव बरतने के लिए बाध्य करता है । कान्ट का कहना है कि उसी सिद्धान्त के अनुसार आचरण करो जो सबके लिए अनुकरणीय बन सके ।

पिछले दिनों ढर्रे पर चले आ रहे चिन्तन एवं मनुष्य के प्रवृत्तिमूलक प्रतिपादन के विपरीत जो नया वर्ग मनोवैज्ञानिकों का उभरकर आया है, उनमें अमेरिका के मनोवैज्ञानिक अब्राहम मैस्लो का नाम वरिष्ठों में लिया जाता है । अपने प्रतिपादन में उन्होंने कहा है कि "हर व्यक्ति में सर्वोपरि सत्ता का निवास है । समस्त प्राणियों से प्यार-करुणा, दया आदि का भाव रखना उसका मौलिक स्वभाव है । यदि ऐसा न होता तो जितने भी महापुरुष हुए हैं, अथवा जिन्होंने अपना परिष्कार परिमार्जन करके ऊँचा उठने में सफलता पाई है, वे परमार्थी, परोपकारी एवं रचनात्मक प्रवृत्ति के नहीं होते । वे प्रेम बाँटते और प्रेम पाते हैं । वे जिस भी अवांछनीयता पर टूट पड़ते हैं, उसे मिटाकर रख देते हैं ।"

इस तथ्य को अन्य सभी मन:शास्त्री स्वीकार करते हैं कि विवेक बुद्धि मानव स्वभाव की सबसे बड़ी दैवी विशेषता है । विवेक एवं मनोबल मिलकर प्रवृत्तियों को बदल देने में सक्षम हैं । कुछ सहज वृत्तियाँ जो मनुष्य में जन्मजात रूप में पाई जाती हैं, उनका परिशोधन-परिष्कार करके मानव से महामानव, देवमानव बना जा सकता है । इस संदर्भ में प्रसिद्ध व्यावहारिक मनोविज्ञानवेत्ता डॉ. वाट्सन का कथन उल्लेखनीय है । वे कहते हैं कि— "मनुष्य को ऐसी नैसर्गिक विशेषताएँ मिली हुई हैं कि वह उचित-अनुचित, लाभ-हानि का विचार कर सकता है और विचार मन्थन से युक्तिसंगत औचित्यपूर्ण निष्कर्ष निकाल कर उन्हें ग्रहण कर सकता है । इसी बुद्धिमता, दूरदर्शिता या विवेकशीलता के आधार पर प्रवृत्तियों को विकसित एवं परिष्कृत करके मानव-जीवन को उत्कृष्ट बनाया जा सकता है ।"

वस्तुत: सामान्य मनुष्य से महामानव स्तर तक वे ही पहुँचे हैं, जिन्होंने अपनी प्रवृत्तियों को शोधित एवं परिष्कृत कर लिया । अत: मूलप्रवृत्तियों को औचित्य एवं विवेक की कसौटी पर कसकर ही अपनाने में मानव-जीवन की सार्थकता है । यही अध्यात्म की, भारतीय मनोविज्ञान की विशेषता रही है कि उसने देवत्व को मुख्य माना है- विकासवाद की चरम सीमा को महामानव बनना माना है । यही वास्तविक मानवीय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रगति का स्वरूप है, वह नहीं जो पारम्परिक पाश्चात्य मनोविज्ञानवेत्ता सदा से कहते चले आ रहे हैं ।

आस्तिकता बढ़े तो देवत्व विकसित हो सके

जिनके साथ भी अपना सम्पर्क बने उनमें आस्तिकता के बीजांकुर बोने चाहिए और उपासना के लिए कुछ नियमित समय लगाने की प्रेरणा करनी चाहिए । भावनात्मक उत्कृष्टता, चारित्रिक निर्मलता और परमार्थ-परक उदारता जैसी सत्प्रवृत्तियाँ बहुत करके आस्तिकता की आस्था पर निर्भर रहती हैं । यह आस्था जितनी निर्बल होगी व्यक्तित्व उतना ही घटिया रहेगा और जितना यह आधार परिपक्व, परिपुष्ट होगा उतना ही साहस, धैर्य, विवेक, संयम एवं वर्चस्व बढ़ता चला जायगा । व्यक्ति के आन्तरिक विकास से आस्तिकता का असँधारण योग होता रहता है । आस्तिकता एक तत्व-दर्शन है और उपासना उसकी प्रयोग पद्धति, सिद्धान्त और व्यवहार, थ्योरी और प्रेक्टिस । इनको मिलाकर ही एक समग्र संस्कार प्रक्रिया बनती है । इसलिए आस्तिकता के प्रति आस्थावान् के लिए उपासना भी एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाती है ।

आज आस्तिकता का जो विकृत रूप देखने को मिलता है, उसी के कारण लोग उससे मुँह विचकाने लगे हैं और उपासना की जो टन्ट-घन्ट चल रही है उसके उथलेपन को समझकर लोग उसे आडम्बर मात्र मानने लगे हैं, पर वस्तुत: ऐसी बात है नहीं । वास्तविक आस्तिकता और वास्तविक उपासना की उपयोगिता इतनी अधिक है कि उसे हर कीमत पर उपलब्ध किया जाना चाहिए ।

आस्तिकता एक तत्व दर्शन है । ईश्वर की सर्वव्यापी, न्यायकारी, समदर्शी और नियम व्यवस्था को कड़ाई के साथ स्थिर रखने वाली सत्ता मानना चाहिए और यह विश्वास किया जाना चाहिए कि उसने हमें इस विश्व को अधिक सुन्दर, सुविकसित एवं सुव्यवस्थित बनाने के लिये अपने साथी सहायक के रूप में भेजा है । अन्य प्राणियों की तुलना में उसने हमें अनेक विशेषताएँ और विभूतियाँ, वासना, तृष्णा बढ़ाते चलने के लिये नहीं वरन् इसलिए दी हैं कि उन्हें एक दैवी सार्वजनिक धरोहर समझें और जीवन निर्वाह में न्यूनतम उपयोग करने के बाद उसका अधिकांश भाग अपने से पिछड़े हुओं को ऊँचा उठाने में खर्च करते रहें । यही मान्यता सच्ची आस्तिकता का आधार, मूल तत्व-दर्शन है ।

ईश्वर भक्ति का अर्थ है—अपने अन्तरंग की प्रेम प्रवृत्ति का, आत्मीयता, उदारता और सेवा भावना का अधिकाधिक विकास अभ्यास । ईश्वर को एक उदात्त सत्ता मानकर उससे अनन्य प्रेम करें, उसे आत्म-समर्पण करें, यही भक्ति भावना का सच्चा स्वरूप है । ध्यान, पूजा की सुविधा के लिए ईश्वर की छवियाँ (प्रतिमाएँ) बनाई और प्रयुक्त की जा सकती हैं, पर वस्तुत: मनुष्य की ईश्वर की अनुभूति उदात्त भावना, आदर्शवादिता, उत्कृष्टता, देव-वृत्ति, निर्मल चरित्र, सहृदयता एवं उदार सेवा भावना जैसे सद्गुणों में ही सन्निहित रहती है । अन्तरंग में ईश्वरीय सत्ता कितनी विकसित हुई इसका अनुमान अपनी सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों की मात्रा माप कर ही किया जा सकता है । जो जितना भद्र और सज्जन है, वह उतना ही ईश्वर भक्त गिना जायगा ।

उपासना का अर्थ है—समीप बैठना । हँसना, बोलना, मिलना-जुलना, बात-चीत करना, स्पर्श और आलिंगन करना, सबका निकटतम समीपता से बँध जाना । उपासना के समय नाम कुछ भी जपा जाय, ध्यान किसी भी रूप का किया जाय, इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं । नामोच्चारण की दृष्टि से गायत्री महामन्त्र सर्वश्रेष्ठ है । उससे बड़ा सार्थक और सदुद्देश्य मन्त्र दूसरा हो नहीं सकता । उसकी शब्द प्रक्रिया का वैज्ञानिक गुम्फन भी ऐसा है कि अनायास ही सूक्ष्म और कारण शरीरों के शक्ति-स्रोत खुलने लगते हैं । हर दृष्टि से उसकी महिमा और उपयोगिता बहुत है । साकार उपासना वाले माता के रूप में और निराकर वाले प्रात:काल के उदीयमान सूर्य के रूप में भगवान् का ध्यान कर सकते हैं । हमारा व्यक्तिगत अनुभव और वैज्ञानिक चिन्तन हर किसी को इसी जप, ध्यान में उत्साह देने को विवश करता है, पर यह अनिवार्य नहीं । यदि कोई अन्य उपासना पद्धति पर अपनी अटूट आस्था जमा चुका है तो वह उसके अनुसार भी पूजा-प्रक्रिया चला सकता है, पर भावना निश्चित रूप से एक ही रहनी चाहिए । हम उपासना कर रहे हैं—अर्थात् परमेश्वर के अति निकट बैठे हुए उससे उसी स्तर का प्रेमालाप एवं वार्तालाप कर रहे हैं, जो आत्मा और परमात्मा के महान् गौरव के अनुरूप है ।

अपने आवरण और उपकरण प्रभु चरणों पर समर्पित करना और उस अनुदान के प्रतिपादन में विवेक और साहस का वरदान पाना, यही उपासना काल की भावनात्मक स्थिति होनी चाहिए । चूँकि परमेश्वर नियम और विधानों में बँधा हुआ है, इसलिये जो अपने कर्म पुरुषार्थ से सम्बन्धित दण्ड पुरस्कार हैं, उनमें न्यूनाधिकता करने के लिए या सांसारिक सुविधाएँ बढ़ाने या मनोकामनाएँ पूर्ण करने के लिए की गई प्रार्थना ओछे दर्ज की, भिखमंगों के लिए ही उपयुक्त हो सकती है, आत्मा के गौरव अनुरूप नहीं । कई बार कष्ट हमें बुरे तो लगते हैं पर उनमें भी प्रारब्ध भोगने का समाधान एवं सुधरने और प्रबल पुरुषार्थ का संकेत छिपा रहता है । हम सांसारिक अभावों और असुविधाओं की बात अपने कर्म कौशल पर छोड़ दें और उपासना काल में यही भावना प्रदीप्त रखें कि हमारा अन्तरंग जो इतना दीन दरिद्र हो गया है फिर समुन्नत और सुसम्पन्न बने । हम कामना-वासना और अहंकार का प्रत्येक कण प्रभु के चरणों में समर्पित करें, उसी के इशारों पर कठपुतली की तरह नाचने और उसी की फूँक से वंशी की तरह बजने को तत्पर हों । यह आकांक्षा ही भगवान् की सही प्रार्थना है । यह वरदान यदि मिल गया, धैर्य, साहस, विवेक एवं कर्त्तव्य पालन के प्रति निष्ठा यदि उत्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो जाती है तो समझना चाहिए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चारों पदार्थ, चारों वरदान उपलब्ध हो गये ।

आस्तिकता में आस्था और उपासना में अभिरुचि बढ़ने लगे तो समझना चाहिए ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त होने का शुभारम्भ, श्रीगणेश हो गया । शरीर देने के साथ ही निर्वाह उपार्जन की बुद्धि हर प्राणि को देकर भगवान् ने हर प्राणी को समान सुविधाएँ प्रदान कर दी हैं और उपलब्ध साधनों का सदुपयोग-दुरुपयोग करके सुख-दुःख का, दण्ड पुरस्कार स्वयं पाते रहने के लिए हर प्राणी को स्वतन्त्र छोड़ दिया गया है । सांसारिक भौतिक जीवन में ईश्वर का अनुदान सबको समान रूप से प्राप्त है । जो प्राप्त करना शेष है, जिसके लिये उपासना की जाती है, वह है 'आत्मिक प्रकाश ।' हम सबसे अधिक पिछड़े हुए और अभावग्रस्त इसी क्षेत्र में हैं । अपने स्वरूप और कर्त्तव्य को भुला देने के कारण हमने अपने अन्तरग की भारी दुर्गति की है । सच तो यह है कि बुद्धि-कौशल बढ़ा हुआ होने पर भी भावना और व्यवस्था की दृष्टि से हम गये बीते समझे जाने वाले जीव-जन्तुओं से भी पिछड़े हुए हैं । इसी अभाव को दूर करने और इसी कमी को पूरी करने के लिए ईश्वर की समीपता-उपासना की आवश्यकता पड़ती है । चन्दन के पेड़ के समीप उगे पौधे जिस तरह सुगन्धित हो जाते हैं, उसी प्रकार ईश्वर के पास बैठ कर हम भी नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम, अणु से विभु एवं लघु से महान् बनने की ओर अग्रसर हों, ईश्वरीय महानताओं को अपने भीतर धारण करें, उपासना इसीलिए की जाती है । तथ्य को समझ, अभीष्ट प्रयोजन को सामने रखकर हम थोड़ी देर भी भावपूर्ण उपासना करते रहें तो उसका प्रतिफल हमारी आत्मिक प्रगति के रूप में निस्संदेह दीखने लगेगा ।

हमें इसी उत्कृष्ट स्तर की आस्तिकता और उपासना का प्रसार करना है । व्यक्ति निर्माण पर युग-निर्माण आधारित है और व्यक्ति के आन्तरिक उत्कर्ष से उपासना युक्त आस्तिकता एक अत्यधिक प्रभावशाली माध्यम है । इसलिए जहाँ भी अपना प्रभाव पहुँच सकता है, १५ मिनट उपासना के लिए लगाते रहने की प्रेरणा हर किसी को देनी चाहिए । उपासना के कर्म-काण्ड पर हम अपनी गायत्री की पुस्तकों में लिख चुके हैं । सन् ६८ अप्रैल की अखण्ड-ज्योति इस सन्दर्भ में एक विशेषांक ही था । आठ आने भेज कर अभी भी उसे प्राप्त किया जा सकता है । उस विधि से न सही अन्य विधियों से भी पूजा की जा सकती है, पर महत्त्व ईश्वर के स्वरूप, क्रिया-कलाप के सम्बन्ध में वास्तविकता को जानने का और उपासना के प्रयोजनों को समझने का है । हमें इसी को सिखाना-समझाना है ।

आज की प्रचलित मान्यताओं के अनुसार ईश्वर एक व्यक्ति है जो प्रशंसा, पूजा पाने के लिए आतुर, व्याकुल रहता है । जो उसका नाम जप दे, पूजा अर्चा कर दे, नैवेद्य मिष्ठान खिला दे उससे बहुत प्रसन्न हो जाता है और देखते-देखते सब पाप क्षमा कर देता है तथा बात की बात में वांछनीय-अवांछनीय मनोकामनाएँ पूरी कर देता है । यह मान्यताएँ अज्ञानमूलक ही नहीं अनैतिक भी हैं । यदि यह बातें सच होतीं तो संसार में सर्वत्र अव्यवस्था व्याप्त हो जाती और यहाँ कोई कायदा-कानून जीवित न रहता, पूजा अर्चा कर देना, नैवेद्य प्रसाद चढ़ा देना, कुछ मन्त्र जप देना, पुस्तकों के पाठ या स्तवन गा देना अति सरल और बिना खर्च के काम हैं । इनमें आत्म-निर्माण जैसा कष्ट-साध्य झंझट भी नहीं है । हमारे गुण, कर्म, स्वभाव चाहे कैसे ही निकृष्ट बने रहें, पर ईश्वर को खुश करने वाले उपरोक्त बाल-मनोरंजन करके उसके सारे नियम-कानून तोड़ कर पापों का दण्ड न देने के लिए, मनमानी भौतिक कामनाएँ पूरी करने के लिए उसे रजामन्द किया जा सकता है । यदि यही वास्तविकता होती तो आत्मसुधार, पुण्य-परमार्थ लोकमंगल, तप, साधन, चरित्र-निर्माण जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य निरर्थक ही सिद्ध होते और पुरुषार्थ करके प्रगति करने का सिद्धान्त ही गलत हो जाता । फिर ईश्वर को अन्यायी, खुशामद पसन्द और अपनी कर्म फल व्यवस्था को आप ही तोड़ने वाला, अन्धेर नगरी का बेवकूफ राजा कहा जाता और उसकी गरिमा को कलंक लग जाता । वर्तमान ईश्वरवाद पर पंडावाद बुरी तरह हावी है । छुट-पुट, टन्ट-घन्ट लोग कर देते हैं, पर घुमा फिरा कर उसका लाभ पंडा-पुजारियों को ब्रह्मभोज एवं दान-दक्षिण के रूप में ही मिलता रहता है । कितना धन और श्रम निरर्थक जाता है वर्तमान विकृत आस्तिकता के नाम पर ? इसे सम्भाला सुधारा जाना चाहिए और प्राचीनकाल की भाँति आज के जन-मानस में भी आस्तिकता और उपासना के महान् प्रयोजन की स्थापना करनी चाहिए । व्यक्ति को सच्चे अर्थों में आस्तिक आस्था रखने एवं भावपूर्ण उपासना करने के लिए तत्पर करना चाहिए ।

दो माला गायत्री मन्त्र की और एक सत्सकंल्प पाठ करने वाले अपने परिवार के साधकों की एक शृंखला प्रति दिन २४ लक्ष गायत्री जप करने में संलग्न है । वह इस युग का बहुत-बहुत बड़ा अनुष्ठान है । नियत संख्या पूरी हो चुकी पर अभी उसे और भी अधिक बढ़ाये जाने की गुंजायश है । जो इस शृंखला में सम्मिलित हो सकें उन्हें उसमें जोड़ना चाहिए अन्यथा सर्व-साधारण को जप ध्यान की सामान्य उपासना पद्धति के साथ उपरोक्त भावनाओं को जोड़ कर आस्तिकता की जड़ें मजबूत बनानी चाहिए । यह परिपक्व आस्तिकता ही व्यक्ति के दोष-दुर्गुणों को, दुर्बुद्धि और दुर्भावना को हटाने-सुधारने में समर्थ होगी । अपनी भारत भूमि सदा से आस्तिकों और देवताओं की क्रीड़ास्थली रही है । उसके प्राचीन रूप को पुनः दृश्यमान बनाने के लिए हमें सच्ची आस्तिकता की प्रतिष्ठापना के लिए प्राण-प्रण से प्रयत्न करना चाहिए ।

उपासना के साथ 'साधना' भी अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है, यह भूल नहीं जाना चाहिए । आस्तिकता को जीवन व्यवहार में कैसे जोड़ा जाय इसी प्रयोग पद्धति का नाम 'साधना' है । दोनों परस्पर आश्रित हैं । उपासना के बिना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

साधना और साधना के बिना उपासना अधूरी है । अस्तु, जहाँ कहीं आस्तिकता और उपासना की प्रतिष्ठापना की जाय, वहाँ साधना का प्रशिक्षण भी भुलाया न जाय ।

प्रात:काल चारपाई पर से उठते ही 'हर दिन नया जन्म-हर रात नई मौत' की भावना हृदयंगम करनी चाहिए । आज का दिन हर दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट बनाना है । इसकी योजना प्रात:काल चारपाई पर बैठे-बैठे ही बना लेनी चाहिए । शरीर में आलस्य, असंयम के दुर्गुण न आने दिये जायेंगे, दिन भर सक्रिय रहा जायगा और एक भी इन्द्रिय असंयम बरतने का अवसर न दिया जायगा । इस संकल्प को बार-बार दुहराना चाहिए और निश्चय करना चाहिए कि उस दिशा में पूरी-पूरी सतर्कता और कड़ाई बरतेंगे । दिन भर का समय विभाजन एवम् कार्यक्रम सबेरे ही बना लिया जाय और उसके पालन में पूरी कड़ाई की जाय तो वह दिन शरीर की दृष्टि से सफल बन जायगा ।

मन के दुर्गुणों में अशुद्ध चिन्तन, क्रोध, लोभ, तृष्णा, वासना, संकीर्णता, कृपणता, निष्ठुरता, अव्यवस्था जैसे दोष मुख्य हैं । इनके प्रबल होने का मुख्य अवसर कब आ सकता है ? यह विचार करके उस समय विरोधी विचारों से इन कुविचारों को काटने की पूर्ण योजना बना लेनी चाहिए । गीता में अपने आप में लड़ने को ही धर्म युद्ध कहा गया है । अर्जुन की तरह अपने को भी इन अर्न्तद्वन्द्वों से निपटने और केवल सद्भावनाओं, सत्प्रवृत्तियों को ही मन में प्रवेश करने देने की तैयारी मानसिक तपश्चर्या है । दिन भर शरीर और मन को कुपथगामी होने से रोकते रहना और सत्प्रवृत्तियों का अभ्यास बढ़ाते चलना यही जीवन साधना है । हर घड़ी इस सतर्कता में संलग्न रहने वाला सच्चे अर्थों में तपस्वी एवं योगी है । यह कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग की सम्मिलित साधना हमें हर किसी को सिखानी चाहिए । हमारी देवभूमि इसी प्रक्रिया से पुन: देवताओं का विकास स्थान बन सकेगी ।

इस जीवन साधना का अन्तिम भाग है सोते समय अपने दिन भर के कार्यों का लेखा-जोखा और जो भूलें हुई हों उनका प्रायश्चित करना । ईश्वर से क्षमा माँगकर निश्चिन्त हो जाने का सिद्धान्त गलत है । अपनी संस्कृति में पग-पग पर पापों के प्रायश्चित का विधान है ताकि दण्ड मिलने और सुधार में सक्रियता आने की बात स्मरण बनी रहे ।

अपनी भूलों के लिए एक दंड संहिता बना लेनी चाहिए (१) भोजन का एक अंश जप्त कर लेना, (२) पूरा या अधूरा उपवास, (३) सोने के पूर्व कुछ घण्टे बैठकर या खड़े होकर काटना, (४) मौन, (५) आँखों पर पट्टी बाँधकर रहना, (६) कान पकड़ कर उठक-बैठक, (७) चाँटे मारना, मुर्गा बनना, (८) खड़े रहना या दूसरे तरह के शरीर दण्ड, (९) जुर्माने में धन दान, (१०) अस्वाद भोजन एवं ब्रह्मचर्य की अवधि बढ़ाना आदि दण्ड दैनिक भूलों के बदले में अपने को दिये जा सकते हैं ।

रात को सोते समय संसार की वस्तुएँ संसार में छोड़ कर, एक दिन का नाटक समाप्त करके—निर्लोभ, निर्मोह मनोभूमि की वैराग्य भावनाओं के साथ निश्चिन्तता पूर्वक निद्रा देवी की गोद में चले जाना और अनुभव करना कि मृत्यु भी एक प्रकार की नींद ही है । उससे जीवन की अविच्छिन्नता में कोई अन्तर नहीं आता । पिछले जन्मों और अगले जन्मों की लम्बी शृंखला में ही वर्तमान जीवन एक बीच की छोटी-सी कड़ी मात्र है । इसलिये वर्तमान जीवन यात्रा की सुविधाओं-असुविधाओं को बहुत महत्त्व न देते हुए उस महान् जीवन को, जिसमें असंख्य जन्म जुड़े हैं, शान्तिमय बनाने की प्रक्रिया को पूरा करने में प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

जागते समय शरीर और मन को कुमार्गगामी न होने देने की सतर्कता, सोते समय दिन भर का निरीक्षण, प्रायश्चित और वैराग्य भावना के साथ निद्रा माता की गोद में जाना, जीवन साधना का यह महत्त्वपूर्ण प्रयोग हर मनुष्य की दिनचर्या में प्रवेश कर सके इसका प्रयोग अपने सम्पर्क क्षेत्र में ही हमें आरम्भ करना चाहिए ।

आस्तिकता अभिवर्द्धन के साथ अपनी युग-निर्माण योजना का मूल तथ्य जुड़ा हुआ है और जनसम्पर्क जितना बढ़ता जाय, घनिष्टता जितनी सघन होती जाय उसी क्रम से लोगों को आस्तिक उपासना एवं जीवंन की तपश्चर्या में संलग्न होने की प्रेरणा करते चलना चाहिए । देव प्रवृत्ति बढ़ाने के साथ-साथ ही सतयुग का प्रकाश बढ़ेगा और हमारी विपन्नताएँ सम्पन्नता में परिणत होंगी ।

नर से नारायण बनने की दिशा पकड़ें

मनुष्य देखने में एक इकाई प्रतीत होता है, पर उसके व्यक्तित्व का तनिक बारीकी से पर्यवेक्षण किया जाय तो सहज ही पता चलेगा कि उसके तीन विभाग हैं । तीनों का समन्वय और अभिवर्द्धन ही समग्र प्रगति का आधारभूत कारण बनता है । पेड़ में जड़ें, तना और पत्र-पल्लव यही तीन भाग प्रमुख हैं जो मिल-जुल कर उसकी प्रगति का सर्वतोमुखी सरंजाम जुटाते हैं । इसी प्रकार मानवीय सत्ता भी (१) पदार्थ परक, (२) चिन्तन परक, (३) व्यवहारपरक इन तीन भागों में बँटी है । इन तीनों की समन्वयात्मक प्रगति को देखकर यह समझा जा सकता है कि व्यक्तित्व आगे बढ़ा, ऊँचा उठा और प्रगति पथ पर आगे चल पड़ा । पैर, धड़ और सिर के तीनों ही भाग मिलकर एक समूचे शरीर को समग्र बना पाते हैं ।

पदार्थपरक जीवन का तात्पर्य यह है कि निर्वाह की आवश्यक सुविधा-सामग्री उपलब्ध हो । परिश्रम और कौशल ऐसा हो, जिसके सहारे अपना और आश्रितों का गुजारा भली प्रकार चलता रहे । इस प्रयास में शरीर और मन को इतना प्रयास करना पड़ता है, कि दोनों की क्षमता तीक्ष्ण होती चले । यह प्रयास ईमानदारी भरा और न्यायोचित होना चाहिए अन्यथा अनावश्यक आवश्यकताएँ बढ़ा लेना 'प्रदर्शन अधिक-परिश्रम कम' वाली नीति अपनाते ही मनुष्य को अनीति पर उतारू

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होना पड़ता है । ऐसा पैसा कमाने वाले के लिए खर्चने वाले के लिए और सम्पर्क क्षेत्र के लिए दुष्प्रभाव छोड़ता है और इस आधार पर जो कमाया या खाया दिखाया गया था उसकी तुलना में अन्तःक्षेत्र का कोसना और परिचितों की घृणा इतनी भारी पड़ती है, जिसे गरीबी से भी महँगा कहा जा सके ।

इसलिए स्थूल जीवन का प्रत्यक्ष स्वरूप सादा जीवन उच्च विचार की नीति पर निर्धारित रहना चाहिए । शरीर का उचित सम्मान करें और पुष्ट बनायें । बात यहीं तक सीमित रहनी चाहिए । अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए परिवार को सुसंस्कारी और स्वावलम्बी बनाना चाहिए । जो परिवार के प्रति, शरीर के प्रति अत्यधिक आकर्षित रहते हैं, उन्हें वासना, तृष्णा और अहंता के तीनों ही कुकर्म बुरी तरह घेरते हैं और सामान्य जीवन को ऐसा बना देते हैं, जिससे आरोग्य, संतुलन निर्वाह, सम्मान और प्रतिभा विकास में निरन्तर अवरोध पड़ता है । इन विपन्न परिस्थितियों में मनुष्य न सुखी रह सकता है, न संतुष्ट । उसे दुर्बलता, रुग्णता और भर्त्सना का शिकार होना पड़ता है । ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि भौतिक जीवन को सुव्यवस्थित रखें । उसे नशेबाजी जैसे दुर्व्यसनों से आलस्य और प्रमाद से, अनीति उपार्जन से निरन्तर बचा कर रखें । ऐसा जीवन सहज ही ऊँचा उठेगा और आगे बढ़ेगा । चमड़ी काली, कुरूप होने पर भी वह अपने चरित्र के कारण सुन्दर, सम्माननीय और अनुकरणीय बनकर रहेगा ।

जीवन का दूसरा पक्ष है चिन्तन, बौद्धिक विचारशील । इसके लिए स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन और मनन चारों की आवश्यकता है । स्कूली शिक्षा जहाँ तक सम्भव हो, वहाँ तक प्राप्त करनी चाहिये, पर नौकरी लक्ष्य न रखा जाय, तो ही अच्छा है, क्योंकि भविष्य में हर शिक्षित को नौकरी नहीं ही मिलने वाली है । उपार्जन के लिए यथा सम्भव पैतृक धन्धे को ही विकसित करने की योजना सरल पड़ती, पर यदि वैसा सम्भव न हो, तो दूसरे उद्योग की बात सोची जा सकती है । शिक्षा का उद्देश्य जीवनोपयोगी, समाजोपयोगी ज्ञान का सम्वर्द्धन है । इसके सहारे मनुष्य बुद्धिमान बनता है । इसलिए स्कूली शिक्षा के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है, पर साथ ही यह भी सोचते रहना चाहिए कि आर्थिक, वैयक्तिक, सामाजिक क्षेत्रों का उपयुक्त निर्वाह करने के लिए स्कूली पढ़ाई के अतिरिक्त भी और बहुत कुछ सीखना चाहिये । इसके लिए समस्याओं का समाधान करने वाली पुस्तकों का स्वाध्याय, प्रामाणिक और दूरदर्शी व्यक्तियों के सान्निध्य-परामर्श का अवसर भी ढूँढ़ते रहना चाहिए । इसके अतिरिक्त प्रस्तुत समस्याओं तथा प्रचलनों के औचित्य-अनौचित्य के सम्बन्ध में पूर्वाग्रह रहित विचार मंथन स्वयं भी करना चाहिए और लोगों का अन्धानुकरण करने की अपेक्षा जो दूरदर्शी विवेकशीलता की कसौटी पर खरा उतरता हो, उसी को स्वीकार करना चाहिए । सही निष्कर्ष तक पहुँचना ही पर्याप्त नहीं, उसे कार्यान्वित करने के उपयुक्त साहस एवं पराक्रम भी संचित करना चाहिए ।

बहुमत जिस ढर्रे पर अपनी गाड़ी चलाता है, वह न तो बुद्धिसंगत है और न अनुकरणीय । हमें स्वतंत्र चिन्तन का अवलम्बन करना चाहिए और विवेकशीलता को साहसपूर्वक अपनाना चाहिये । आदर्शों के सम्बन्ध में कौन क्या कहता है, इसे सुन तो लेना चाहिए, पर किसी के भी कथन परामर्श को अपनी स्वतंत्र विचारशीलता पर छोड़ कर अपनाना नहीं चाहिये ।

अपने आपे के सम्बन्ध में कुछ तथ्य ऐसे हैं, जिन्हें समझना ही पर्याप्त न होगा, वरन् उसके आधार पर दिशा धारा भी निर्धारित करनी चाहिए ।

मनुष्य जन्म, स्रष्टा की सर्वोपरि कलाकृति है । जो सुविधाएँ मनुष्य को मिली हैं, वे अन्य किसी प्राणी को नहीं मिलीं । यह उपलब्धियाँ धरोहर की तरह हैं, ताकि आत्मशोधन करके पूर्णता का लक्ष्य उपलब्ध किया जाय । साथ ही स्रष्टा के इस विश्व उद्यान को अधिक सुन्दर-समुन्नत बनाकर कर्त्ता के श्रम को सार्थक किया जाय । इसी इच्छा से उसने हमें मनुष्य जन्म दिया है । आमतौर से लोग आत्मा और शरीर के अन्तर को भूल जाते हैं और समस्त क्षमताओं को मात्र शरीर की, उससे सम्बन्धित भोगों की, उचित-अनुचित आकांक्षाएँ पूरा करने में खपा देते हैं । ऐसी दशा में वह अवसर ही नहीं मिलता जिसमें आत्मकल्याण और लोकमंगल के जीवन लक्ष्य पर विचार कर सकें । यदि यह विचार बन पड़े, तो मनुष्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव को मानवीय गरिमा के अनुरूप बनाये, चिन्तन में उत्कृष्टता का समावेश करे और क्रिया-कलापों में सज्जनता, शालीनता का बढ़-चढ़ कर समावेश करे । हमारा चिन्तन जितना स्वार्थ के निमित्त लगता है उतना ही परमार्थ प्रयोजन में भी लगना चाहिए । विशेषतया अपनी विचार क्षमता का उच्चस्तरीय उपयोग करें । समझें कि मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा करता है । जैसा करता है, वैसी ही परिस्थितियाँ बन जाती हैं और तदनुरूप भला-बुरा भोगना पड़ता है । इसलिए विचार संयम को समुचित महत्त्व दिया जाय । कुविचारों को काटने के लिए सद्विचारों की, श्रेष्ठ उदाहरणों की एक समर्थ सेना पहले से ही जुटा रखी जाय, जो कुविचारों का आक्रमण होते ही उन्हें निरस्त करने के लिए जुट पड़ें । जिस पर फल-फूलों से लदा उद्यान विनिर्मित करने के लिए चतुर माली जैसा पराक्रम करना पड़ता है । भय से सतर्क रहना पड़ता है । वैसे ही अपने सद्विचारों की फुलवारी उगाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए । भय, निराशा, क्रोध, अहंकार, आलस्य, पाप, अपराध जैसे अचिन्त्य चिन्तन से जूझने के लिए हर समय कटिबद्ध रहा जाय । एक जागरूक प्रहरी का उत्तरदायित्व भली प्रकार निबाहा जाय ।

उच्चस्तरीय विचारों के चिन्तन-मनन से उन्हें अपनाने और कार्यान्वित करने के प्रयास में जब भी अवसर हो समय लगाना चाहिए और उसे आत्म-शोधन की साधना मानकर चलना चाहिए, जो ईश्वर उपासना के ही समतुल्य है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन की तीसरी परत है समाजपरक । हम व्यक्तिगत रूप से गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से कितने पवित्र परिष्कृत हो सकें, इसकी परीक्षा दूसरों के प्रति अपने द्वारा किये गये व्यवहार को देखकर ही परखी जा सकती है । स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है । कितनों के ही सहयोग से हमें निर्वाह एवं प्रगति के अवसर मिलते हैं । यदि वे उपलब्ध न हुए होते, तो दुर्बलकाय मनुष्य का अपने बलबूते जीवित रह सकना भी सम्भव नहीं । अब तक जितनी भी प्रगति मनुष्य ने या समाज ने की है, उसमें एक-दूसरे का स्नेह-सहयोग भी प्रधान कारण रहा है । मछली पानी में जीवित रहती है और मनुष्य समाज के बीच रहकर अपना निर्वाह करता है । इसलिए उसका परम पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है कि समस्त क्षमताएँ स्वार्थ के लिए ही न गँवा दें । कम में अपना गुजारा करते हुए अपना समय, श्रम, ज्ञान, वैभव प्रभाव आदि का उपयोग लोक-मंगल के लिए करें । इसके बिना किसी की प्रामाणिकता, पवित्रता और प्रखरता की परीक्षा नहीं होती । पानी में प्रवेश करके ही यह सिद्ध किया जा सकता है, कि किसे कैसा आता है, किसे नहीं । इसी प्रकार मनुष्य का व्यक्तित्व कितना पवित्र एवं उदात्त है कि इसकी परख एक ही आधार पर होती है कि उसका व्यवहार अन्यान्यों के प्रति कितना उदार एवं उदात्त है । मधुर भाषण, शिष्टाचार, ईमानदारी, वचन का पालन, समय का परिपालन लेन-देन में सफाई रखने जैसे सिद्धांतों को अपनाकर दूसरों के साथ सद्व्यवहार किया जाय । सत्प्रवृत्तियों को ऊँचा उठाने में कुछ कमी न रहने दी जाय ।

इस उदात्त व्यवहार का एक पक्ष यह भी है कि, अनीति के, कुरीतियों के, अवांछनीयताओं के प्रति संघर्ष किया जाय, उन्हें सहन न किया जाय । अनीति सहना प्रकारान्तर से दुष्ट-दुराचारियों को प्रोत्साहन देना है । इसलिए अवांछनीयताओं के विरुद्ध यथासम्भव संघर्ष जारी रखना चाहिए । असहयोग, विरोध और संघर्ष के लिए यदि भले लोग तत्पर रहें, तो मुट्ठी भर बुरे आदमियों का इतना दुस्साहस न बढ़े जितना कि इन दिनों निरन्तर बढ़ता चला जाता है ।

आत्मोन्नति का मार्ग सरल है । इसके लिए किसी असाधारण पराक्रम की आवश्यकता नहीं है और न गुह्य कर्मकाण्डों का आश्रय लेना अनिवार्य है । शक्ति के महान् भाण्डागार परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध सुदृढ़ बना लेने से काम चल सकता है । उसका उपाय एक ही है कि हम अपनी पात्रता इतनी विकसित करें कि उनकी निरन्तर हर किसी पर बरसने वाली अनुकम्पा को धारण किया जा सके । रात भर वर्षा होते रहने पर भी हम उतना ही पानी प्राप्त कर सकते हैं, जितना कि अपना बर्तन होता है ।

मनुष्य नर से नारायण बन सकता है, इसी जन्म में । महामानव, ऋषि, देवता इसी स्तर के होते हैं । उनमें से प्रत्येक को अपना ध्यान आत्म-सत्ता की उत्कृष्टता पर केन्द्रित करना पड़ा है । अन्तरंग क्षेत्र के चिन्तन और चरित्र को कसौटियों पर खरा-खोटा सिद्ध करना पड़ा है । इतना जो भी कर सकेगा उसके अन्तराल में इतनी स्फुरणा निश्चित रूप से जागेगी, कि अपनी तृष्णा अहंता में कटौती करके बचे हुए साधनों को स्रष्टा के विश्व उद्यान को स्वच्छ, सुन्दर और समुन्नत बनाने के लिए नियोजित करें । प्राचीनकाल में आध्यात्मिक उत्कृष्टता की संचित सम्पदा बढ़ाने वाले साधु-ब्राह्मण समुदाय की जीवनचर्या इसी प्रकार की होती थी, कि जिसकी शोभा-सुषमा पर जन-सहयोग, लोक-सम्मान और दैवी अनुग्रह अनवरत रूप से बरसता रहे । वे निजी महत्त्वाकांक्षाओं को पैरों तले कुचलते थे । आत्मसंयम में कुछ उठा न रखते थे । इतना किये बिना किसी के पास ईश्वर अभ्यर्थना के लिए कुछ बचेगा ही नहीं ।

ईश्वर के दरबार में चापलूसी, खुशामदखोरी, पूजा-अर्चन, छुटपुट व्यवहार या काय-कष्ट काम नहीं देते । इन विडम्बनाओं के बल पर उसे बहलाया-फुसलाया नहीं जा सकता । जिस प्रकार आग में ईंधन अपने को समर्पित करके तदनुरूप बन जाता है । उसी प्रकार दैवी गुण, कर्म, स्वभाव को चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में नियोजित करने के उपरान्त हम ईश्वर अनुग्रह के सहज ही अधिकारी बन जाते हैं और जीवन लक्ष्य की पूर्ति में अकारण प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती । उचित यही है, कि हम अपना स्तर ऊँचा उठाने और नर से नारायण बनने की सफलता प्राप्त करें ।

परिमार्जित व्यक्तित्व बनाम साधना सिद्धि

ब्रह्ममुहूर्त को साधना का काल माना गया है । घटती-मिटती, हटती तमिस्र और तेजी से दौड़ते आ रहे नव प्रभात के क्षणों में अर्जित की गई ओजस्विता और प्रखरता की सिद्धियाँ नए दिन के, नए प्रभात का आनन्द सौ गुना बढ़ा देती हैं । जब ब्रह्मवेला की व्यापकता युगों के दायरे में फैल गई है । उस समय जबकि बुद्धिवाद की घटती निशा और भाव सम्वेदनाओं का प्रभात अपने मिलन बिन्दु पर आ पहुँचे हों, जीवन साधना में सक्रियता और तन्यमता अधिक हो जाती है ।

प्रत्येक साधना का एक ही परिणाम है—सिद्धि । जीवन साधना भी इसका अपवाद नहीं है । सिद्धियाँ यह बताती हैं कि साधना सही क्रम में और ठीक दिशा में गतिमान है । यदि इन्हें साधना की प्रामाणिकता का मान दण्ड माना गया हो तो आश्चर्य क्या ? जीवन-साधना के मानदण्डों के रूप में हमने चित्र-विचित्र ख्याल बना रखे हैं । ख्यालों के अनुरूप ख्वाब देखे जाते हैं, सपने सँजोए जाते हैं । सिद्धियाँ क्या हैं ? इस प्रश्न के बारे में अधिकांश के जवाब होंगे—पानी पर चलना, आग पर दौड़ना, आकाश में उड़ना और न जाने कितनी ऐसी अनेक विलक्षण बातें सुनने को मिलेंगी ।

यदि यही प्रश्न लेकर हम ऋषिप्रणीत शास्त्रों के पास जायँ तो प्राप्त होने वाला उत्तर यह साफ कर देता है, कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिद्धियाँ व्यक्तित्व विकास की सफल प्रक्रिया के चिह्न हैं । ये क्या हैं ? और कितने हैं ? के उत्तर में महर्षि कपिल अपने सांख्य दर्शन के तीसरे अध्याय के ४४ वें सूत्र में कहते हैं **''ऊहादिभिः सिद्धिरष्टधा ''** । इन आठों का और खुलासा करने पर मालूम होता है—पहली सिद्धि है, ऊह—अर्थात् युक्तिपूर्ण चुनाव की योग्यता । जिसे भले और बुरे में भले को चुनकर भलाई की राह पर चलना आ गया समझना चाहिए कि उसे यह पहली सिद्धि मिल गई ।

दूसरी है—शब्द । इसका अभिप्राय प्रज्ञ-पुरुष के उन संकेतों से है जो सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित करते हैं । तीसरी है—स्वाध्याय । इसका तात्पर्य उन पुस्तकों का अध्ययन है जो अपने को समझने मे सहायक हो, जिसकी मदद से स्वयं के चिन्तन, चरित्र त्र व्यवहार को सुधारा जा सके । चौथी का नाम है सुहृत प्राप्ति अथवा सत्संग । ऐसे लोगों का संग जो हमें समय की पहचान कराएँ । हमारे मनोबल को मजबूत बनाएँ जिससे जीवन साधना अविराम चलती रहे । पाँचवीं सिद्धि है—दान । अर्थात् अपने समय का कुछ भाग स्वयं के अनुभवों को दूसरों को बताने व उन्हें सन्मार्ग की ओर मोड़ने में लगाना । अपने प्रयत्नों से स्वाध्याय और सत्संग की प्रक्रिया को वह तेजी देना जिससे दूसरे अनेक व्यक्ति जीवन साधना को अपना सकें । स्वयं के व्यक्तित्व को परिपक्व बना सके ।

महर्षि इन पाँच को प्राथमिक सिद्धियाँ मानते हैं । जिस किसी को ये पाँच सिद्धियाँ मिल जाती हैं, उसे अगली तीन प्राप्त होती हैं जिन्हें वह चरम और परम बताते हैं । इन तीन में पहली है भौतिक दुःख विघात । जो जीवन जीने की कला में निष्णात् हो गया । जिसे कम में गुजारा करना, मेल प्रेम से रहना आ गया उसे किस बात का दुःख ? दूसरी है दैविक दुःखविघात । इसका सम्बन्ध चिन्तन की चमक से है । साफ सुथरा चिन्तन, सुधरी सोच, उन्नत कल्पनाएँ हर किसी को कहीं भी प्रमुदित बनाए रख सकती हैं । अन्तिम सिद्धि वह है जिसे प्राप्त होने पर मनुष्य सिद्ध बनता है । इसका नाम है आध्यात्मिक दुःख हानि । ऐसी स्थिति में जाग्रत भाव चेतना-समूचे व्यक्तित्व को अपने प्लावन से ओत-प्रोत कर देती है । व्यक्ति सम्वेदनशील, सक्रिय और प्रामाणिक बन जाता है ।

सांख्यकार कपिल स्वयं इन्हीं सिद्धियों को अर्जित कर श्रेष्ठ सिद्ध बने थे । उन्हें सर्वोत्तम सिद्ध करार करते हुए गीताकार कहते हैं **''सिद्धानां कपिलो मुनिः ।''** श्री रामकृष्ण इसका तात्पर्य बताते हुए कहते हैं जो जितना नरम हो जिसकी भाव श्रद्धा जितनी अधिक जाग्रत हो, वह उतना ही बड़ा सिद्ध । कुछ भी हो इसका एक ही अर्थ है परिपक्व व्यक्तित्व का स्वामी होना जो जीवन की चरम परिणति है ।

मनोविद अभय कुमार मजूमदार अपने अध्ययन 'द सांख्य कनसेप्शन ऑफ पर्सोनालिटी' में उपरोक्त तथ्य को प्रामाणिक ठहराते हैं । उनके अनुसार आज के मानव की सारी परेशानियों की जड़ है—उसका दिग्भ्रान्त हो जाना । इसका एक ही कारण है— उसका उलझा और बँटा-बिखरा व्यक्तित्व । यदि इसे सांख्यकार के अनुरूप गढ़ लिया जाय, सँवारने-सुधारने में तत्परता बरती जाए तो न केवल एक को वरन् समूची मानव जाति की परेशानियों का निदान तेजी से होता दिखाई पड़ने लगेगा ।

सुविख्यात मनीषी प्रो. पीथम. ए. सोरोकिन ने अपने ग्रन्थ 'द वेज एण्ड पावर्स ऑफ लव एण्ड रिकौन्स ट्रक्शन ऑफ ह्यूमैनिटी' में ''व्यक्तित्ववान कैसे करेंगे मानवता की नूतन संरचना ?'' विषय को अच्छी तरह समझाने का सफल प्रयास किया है । उन्होंने मानवीय व्यक्तित्व को तीन श्रेणियों में बाँटा है—सब ह्यूमैन, ह्यूमेन एवम् सुपर ह्यूमैन । पहले प्रकार के उप मानव जिनकी प्रकृति निष्ठुर है, समस्याओं को पनपाते और बढ़ाते हैं । दूसरे तरह के मानवीय व्यक्तित्व वालों के अन्दर सम्वेदना तो होती है, पर साहस नहीं होता । इसके अभाव में वे समस्याओं से दुःखी परेशान भर रहते हैं । उसके निदान के लिए आगे कदम बढ़ाने की हिम्मत नहीं जुटा पाते ।

तीसरे अति मानवीय व्यक्तित्व वाले सम्वेदनाओं और साहस दोनों के धनी होते हैं । इनके अन्दर की बेचैनी साहस से मिलकर कुछ कर गुजरने को विवश करती है । यथार्थ में यही व्यक्तित्व की परिपक्वता का स्तर है । सोरोकिन के अनुसार ऐसों के भीतर मानव मात्र के लिए प्रेम उफनता है । इन्हीं के द्वारा नूतन मानवता की संरचना सम्पन्न होती है ।

इस संरचना को सम्पन्न करने की घड़ी अब जा पहुँची है । आवश्यकता है कि अग्रदूत जीवन साधना में प्रवृत्त हो आठों सिद्धियाँ अर्जित करें । भावी समय व्यक्तित्ववानों का होगा । वही अपनी सार्थकता साबित कर सकेंगे जो प्रामाणिकता की कसौटी पर खरे सिद्ध हुए हैं । बीतते और आते युगों की ब्रह्मवेला के क्षण यों ही बर्बाद करने के लिए नहीं हैं । स्वयं को, गढ़े, अन्तराल की भाव श्रद्धा को जाग्रत-विकसित करें । दूसरों को वैसा कर सकने में सहायक सिद्ध हों । जो इन दिनों न कर सके, उन्हें सारी उम्र हाथ मलकर पछताना पड़ेगा ।

तमेव विद्वान न विभाय मृत्योः

विशालकाय वृक्ष का सारा वैभव उसके सूक्ष्मतम घटक बीज में निहित है । अनुकूल वातावरण पाते ही ये विशेषताएँ प्रकट होने लगती हैं । जीव एवं परब्रह्म के मध्य का तारतम्य भी कुछ इसी प्रकार का है । परब्रह्म की समस्त विशेषताएँ बीज रूप में अविनाशी अंश जीव में समाई हुई है । एक ही ज्योति ज्वाला के अनेकानेक स्फुल्लिंगों को जीव के अन्दर प्रकाशित होते देखा जा सकता है । इसीलिये उपनिषदकार ने कहा है कि ''वह है तो एक नियमिक सत्ता, लेकिन उसे लोग भिन्न-भिन्न रूपों में जानते-समझते है ।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पेड़-पादपों में जीवन तो है, पर विकसित चेतना नहीं है । प्रकृति से उपलब्ध सम्पदा मात्र से ही वे सन्तुष्ट रह कर जीवित भर बने रहते हैं । मनुष्य की स्थिति वृक्ष-वनस्पतियों तथा अन्यान्य जीवों से इस सम्बन्ध में भिन्न है । उस परम सत्ता का ही एक अंग होते हुए भी उसके अन्दर वह सामर्थ्य है कि बिना प्रकृति के सहयोग के भी विकास की ओर अग्रसर हो सके । इच्छा, आकांक्षा, बुद्धि के अतिरिक्त संकल्प शक्ति के रूप में उसे एक ऐसी प्रचण्ड शक्ति सामर्थ्य प्राप्त है, जिसके सहयोग से वह न केवल प्रकृति को अपने अनुकूल बना सकता है, वरन् अपनी चेतना को उच्चतम सोपानों तक पहुँचा सकता है । यह एक सच्चाई है कि जिसकी चेतना जितनी अधिक विकसित होगी उतनी ही उसकी संकल्प-शक्ति भी प्रखर होगी । यह अतिरिक्त वरदान निस्सन्देह जीवों में एकमात्र मनुष्य को ही मिला हुआ है । वैदिक ऋचाओं का उद्घोष है **"अयं खलु क्रतुमयः पुरुषः"** अर्थात्—"यह पुरुष अपनी विचारणाओं की ही प्रतिमूर्ति है"— अपने विचारों एवं भावनाओं से ही बनता है । जैसा सोचता और जिस प्रकार का संकल्प करता है वैसा ही बन जाता है ।

जीव की संकल्प शक्ति तथा उसके विकास में योगदान पर गीताकार का कथन है—

"श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।"

अर्थात्—यह पुरुष श्रद्धामय है, जैसी इसकी आस्थाएँ होती हैं यह वैसा ही बन जाता है । दूसरे शब्दों में पुरुष के बनने में आन्तरिक संकल्प शक्ति ही काम करती है जिसकी अभिव्यक्ति गीता में श्रद्धा के रूप में की गयी है ।

वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य स्वामी रामानुज का कहना है कि "जीवात्मा की स्थिति घड़ी की कमानी की तरह होती है । बाह्य मल विक्षेपों के कारण वह शान्त पड़ी रहती है, किन्तु उसके प्रसार विस्तार की प्रबल सम्भावना है ।" योगीराज अरविन्द मनुष्य की गयी-गुजरी-दीन-हीन स्थिति में पड़े रहने का कारण स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि— "प्रबल अभीप्सा का न होना ही बन्धनों का कारण है । संकल्प शक्ति को उभरने तथा कुछ विशेष कर-गुजरने का अवसर भी इसीलिए नहीं मिल पाता ।"

भोगाशक्तियों के बन्धन मनुष्य को इस तरह जकड़े रहते हैं कि उसकी मूल सत्ता को अपनी विशेषताओं के साथ प्रकट होने का अवसर ही नहीं मिल पाता । इस विषय में स्थिति से बचने का तरीका क्या हो ? जीव ब्राह्मी सत्ता को अपने भीतर उजागर कैसे करे ? जीव ब्रह्म की एकता, अभिन्नता का पारम्परिक दिव्य आदान-प्रदान की अनुभूति का आनन्द कैसे प्राप्त हो ? संसार में रहते हुए भी उसके मल विक्षेपों से आसक्ति बन्धनों से कैसे बचा जाय ?

ईशावास्योपनिषद् इसका समाधान प्रस्तुत करता है । "संसार के प्रति कैसी दृष्टि हो इसका उल्लेख—**ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित्जगत्यां जगत्**"— के रूप में करते हुए उपनिषदकार कहता है कि वह तो सर्वव्यापी है । जीव संसार के हर कण में प्रतिक्षण उसकी अनुभूति करे ।

यह स्पष्ट है कि जब तक शरीर है और इस संसार में रहना है, कर्मों का परित्याग सम्भव नहीं है । उनसे चाहते हुए भी छुटकारा पाया नहीं जा सकता । कर्मासक्ति से मुक्ति पाने का साधन है— निस्पृह होकर सत्कर्म करते रहना । श्रुति कहती है— कुर्वेन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः— कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा रखो ।

संसार एवं उसके आकर्षणों के स्वरूप का अलंकारिक वर्णन उपनिषदों में है । उपनिषद् के अनुसार यह जगत सुवर्ण के पात्र के सदृश है जिसने सत्य को ढक रखा है । जो आकर्षणों के आवरण को चीरकर सत्य के साक्षात्कार के लिए प्रवृत्त होते हैं, वे सफल भी होते हैं, पर उनकी संख्या अधिक है जो संसार के आर्कषणों में भटक जाते हैं तथा मूल लक्ष्य को भी भूल बैठते हैं । शास्त्रकारों ने अनात्म शरीर में आत्म भाव रखने तथा सांसारिक आकर्षणों को वास्तविक मान बैठने को अविद्या कहा है । इसी का दूसरा नाम माया है । मनीषियों ने माया अर्थात् "वह जो नहीं है" को एक प्रबल शक्ति माना है तथा उसके चंगुल से बचने का सुझाव दिया है । विषयाक्ति से मनुष्य अपने शाश्वत् स्वरूप को भूल बैठता है । उतना ही वह आत्मा के प्रकाश से भी दूर होता जाता है । ऐसे व्यक्तियों की निन्दा करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता ।
तांस्ते प्रेत्यभिगच्छन्ति ये के चात्महनोजनाः ॥

अर्थात— "जो भोगेच्छाओं को प्रबल करके आत्मा का हनन करते हैं, वे आत्महन्ता मरकर उन लोकों को जाते हैं जो आसुरी हैं और अंधतमिस्रा से ढके हुए हैं ।

चराचर में संव्याप्त उस परम सत्ता की सतत् अनुभूति ही योगत्रयी का तात्विक लक्ष्य है । इसी अनुभूति को साकार करने में विभिन्न पथों का अवलम्बन लिया जाता है । जप, ध्यान, धारणा और समाधि की उच्चस्तरीय-साधनाओं का भी अन्तिम लक्ष्य यही है । "विराट् सत्ता की आत्म-सत्ता में अनुभूति ।"

पर अद्वैत की चरम अनुभूति मात्र सैद्धान्तिक चर्चा भर बनकर न रह जाय, इसलिए साधना द्वैत से आरम्भ करनी पड़ती है । अहम् ब्रह्मास्मि, सोऽहम्, तत्वमसि, सच्चिदानन्दोहम्, वस्तुतः अद्वैत अनुभूतियों के उद्घोष हैं, पर इस स्थिति तक पहुँचने के लिए साधना का आरम्भ भक्ति भावना से करना पड़ता है अन्यथा शाश्वत् अनुभूतियों के अभाव में सत्य की मात्र वैचारिक स्वीकारोक्ति तो अहम् को घोषित करती है । आत्म प्रवंचना की यह स्थिति साधक को ले डूबती है । स्वसम्मोहन के एक ऐसे आवरण से घिर जाता है, जिससे प्रायः निकलते नहीं बनता । आत्मिक प्रगति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है । लक्ष्य प्राप्ति से वह भटक जाता है ।

"अहम् ब्रह्मास्मि" को स्वीकार करने पर "सर्वखल्विदं ब्रह्म" पर आशंका प्रकट करने वाले साधक सत्य से उतने ही अपरिचित हैं जितना कि सामान्य व्यक्ति । वास्तविकता में तो एक साथ दोनों ही को स्वीकार करना तथा अनुभूति में उतारने का प्रयत्न करना पड़ता है ।

दार्शनिक सिद्धान्तों का सही स्वरूप समझने से लक्ष्य प्राप्ति की ओर बढ़ने का सैद्धान्तिक आधार बन जाता है । इससे आगे का चरण विभिन्न साधनाओं से शुरू होता है । उनमें अपनी श्रद्धा भावना का जितना ही अधिक अभिसिंचन किया जायेगा, उतनी ही सफलता मिलेगी । कहा जा चुका है कि जीव में बीज-रूपेण ब्रह्म बनने की सभी सम्भावनाएँ विद्यमान हैं । अभिव्यक्ति के लिए जीवात्मा छटपटाती भी रहती है, पर अभीष्ट स्तर का पोषण न मिल पाने तथा विकास के लिए प्रचण्ड संकल्प शक्ति न जुट पाने से ही वह दीन-हीन, गई-गुजरी स्थिति में पड़ी रहती है । इससे निकलने के लिए क्या कमर कसकर तैयार हो जाने का नाम ही साधना पुरुषार्थ है, परम पुरुषार्थ इसे ही कहा गया है । जीवात्मा अपने इष्ट से विलग रहकर छटपटाती रहती है । यह बेचैनी उस परम सत्ता से मिलकर ही मिटती है । जितना समर्थ वह है उतना ही जीव भी बन सकता है, बशर्ते कि अपने को उसकी सत्ता में घुला मिला दे । यही है आत्मतत्व का जीवन दर्शन—बंधनमुक्ति जिसका अलंकारिक वर्णन विभिन्न रूपों में शास्त्रों में किया गया है । इस आत्मतत्व को जान लेने पर मनुष्य मृत्यु से भी भयभीत नहीं होता । यह सिद्धि साधना की सबसे बड़ी साधना है, ऐसा विद्वानों का मत है ।

देवत्व का विकास एवं योग सिद्धि

परमसत्ता से सम्पर्क, सान्निध्य स्थापित करने की एक विशेष प्रक्रिया होती है । चूँकि इसका काम दो सत्ताओं को परस्पर जोड़ना है, इसलिए इसका नाम 'योग' और इस प्रक्रिया को पूरा कर सकने वाली क्षमता का 'योगशक्ति' रखा गया । इसकी अनेकानेक शाखाएँ हैं, पर हर एक का लक्ष्य एक ही है—चिन्तन, चेतना को परिष्कृत कर विचार-बुद्धि को सुस्थिर रखना और आत्म-सत्ता को परमात्म-सत्ता से एकाकार करना ।

'योग' शब्द का अर्थ-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । जिस 'योग' का जो विशेष अर्थ उद्देश्य होता है, उसका संकेत करने वाला शब्द आगे जोड़ दिया जाता है । जैसे भक्तियोग का अर्थ है—ब्रह्मसत्ता से, भक्तिभाव से जुड़े रहने की जीवन पद्धति । ज्ञानयोग का अर्थ है—ज्ञान साधना द्वारा सर्वव्यापी सत्ता की अखण्ड अनुभूति । मंत्रयोग अर्थात् मन्त्र जप द्वारा आत्मचेतना का ब्रह्म चेतना से समरसता प्राप्त करने का प्रयास । कर्मयोग को प्रखर कर्मनिष्ठा, एक जीवन साधना कहा गया है । हठयोग यानी पूर्ण स्वस्थता के लिए की जाने वाली विशिष्ट शारीरिक, मानसिक क्रियाओं का साग्रह अभ्यास ।

भगवद्गीता में योग और योगी के स्वरूप का जहाँ कहीं भी उल्लेख हुआ है, वहाँ योग के ऐसे ही लक्षणों का संकेत-निर्देश हुआ है, जो आत्मचेतना को ब्रह्मचेतना से जोड़ने पर आनन्द-उल्लास, सक्रियता-स्फूर्ति, कर्मनिष्ठा-चरित्रनिष्ठा के रूप में प्रत्यक्ष देखे जाते हैं । साधक के व्यक्तित्व में उस प्रकाश की ये अभिव्यक्तियाँ ही योग सफलता के चिन्ह हैं । इसी तथ्य को गीता में भिन्न-भिन्न ढंग से प्रतिपादित किया गया है, यथा-**'समत्वं योग उच्यते**, अर्थात् समत्व बुद्धि, सुसंतुलित मनःस्थिति ही योग है । **'योग संन्यस्त कर्माणम्'**, अर्थात् संन्यस्त भाव से निर्लिप्त एवं उत्साहपूर्ण रहकर काम करना योग है **"ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनम्'**-समदर्शी बुद्धि से सर्वत्र परमात्मा को देखने वाले व्यक्ति योग युक्त होते हैं **'योगः कर्मसु कौशलम्'**—कर्म-कौशल या उत्कृष्ट कर्मनिष्ठा ही योग है । **'योगिनः कर्म कुर्वन्ति संग त्यक्तत्वात्मशुद्धये'**-योगी वह है, जो आत्मशुद्धि के लिए मोहासक्ति छोड़ कर कर्म करता है । **'नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्ववित्**—तत्ववेत्ता जानता है कि आत्मसत्ता स्वयं स्थूल कर्म नहीं करती, कर्म तो इन्द्रियादिक द्वारा आत्मचेतना की उपस्थिति में सम्पन्न हो रहे हैं अतः उनमें सफलता-विफलता से असन्तुलित हो उठने जैसी कोई बात नहीं । **'योगयुक्तो विशुद्धात्मा'**—योगयुक्त व्यक्ति की आत्मसत्ता विशुद्ध, प्रखर हो जाती है । **'समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि'**-समाधि स्थिति की तरह स्थिर, अविचल बुद्धि होने पर ही योगस्थिति प्राप्त होती है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अंतरंग चेतना का परिष्कार ही समस्त योग-साधनाओं का वास्तविक अभीष्ट है और इस परिष्कार में निरन्तर प्रवृत्त रहने की क्षमता ही योगशक्ति है । योग शक्ति का यह स्वरूप स्पष्ट हो जाने पर यह परिणाम भी उतना ही स्पष्ट हो जाता है कि योगशक्ति व्यक्तित्व का विकास करती है, उसकी संकीर्णताओं को नष्ट कर उसे प्रखर-परिष्कृत बना देती है ।

यही देवत्व-शक्ति के विकास की अवस्था है । यह शक्ति आत्मपरिष्कार के साथ आती और व्यक्तित्व की प्रखरता के साथ बढ़ती जाती है । यह परिष्कृति ही योगशक्ति है । कुण्डलिनी जागरण और ऊर्ध्वारोहण इसी का दूसरा नाम है । इसके उपरान्त क्रियाशीलता, स्फूर्ति, उत्फुल्लता तथा आनन्द का अजस्र स्रोत फूट पड़ता है । आत्मसत्ता अधिकाधिक विशुद्ध, प्रखर, विस्तृत, विराट् होती चली जाती है, जिसकी चरम परिणति ब्रह्मसत्ता से पूर्ण तादात्म्य के रूप में सामने आती है । यही मोक्ष-मिलन, विलय-विसर्जन है—क्षुद्र सत्ता और महत् सत्ता का महायोग है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सृष्टि का उद्देश्य

श्री अरविन्द विकास में विश्वास रखते हैं । उनके अनुसार सृष्टि का एक ध्येय है और मानव एक उद्देश्य की ओर प्रगति कर रहा है । विकास की संक्षिप्त कहानी यों कही जा सकती है कि पहले सब जड़ था । एक स्थिति पर जड़ में जीवन आया । जो मृत दीख पड़ता था, वह जीवित हो गया । इस प्रकार वनस्पति जगत् की सृष्टि हुई । जड़ जगत में जीवन या प्राण आया; अथवा यह कहना अधिक उचित होगा कि जड़ में प्राण जाग्रत हुआ । जड़ जगत् में प्राण, मन और आत्मा सुषुप्त अवस्था में रहते हैं ।

कुछ काल और सृष्टि के गर्भ में बीता और एक 'प्रारम्भिक मन' की उत्पत्ति हुई । पशु ने जन्म लिया । जब प्रारम्भिक मन का जागरण हुआ तो वनस्पति का पशु रूप हो गया । यहाँ बुद्धि भी है और उच्चकोटि के पशुओं में कुछ-कुछ विचार करने की शक्ति भी है । इन्द्रिय-ज्ञान की प्रवृत्ति ने वास्तविक मन को जन्म दिया अर्थात् मन का विकास हुआ । उसमें विचार और विवेक आया । तब मनुष्य ने जन्म लिया । मन विकसित होने पर पशु परिवर्तित हुआ और मनुष्य प्रकट हुआ । मनुष्य का मन पूर्णतया जाग्रत है और वह अपना विकास स्वयं कर सकता है । यही मानव की विशेषता है । विकास की इसी विशिष्ट स्थिति के कारण मानव कृष्ण, बुद्ध, ईसा जैसे गौरव के पद तक विकसित हुआ है और उसने जीवन का महान् वास्तविक तत्व खोजा है ।

श्री अरविन्द का कहना है कि जिस प्रकार मिट्टी और पत्थर में से पौधा उत्पन्न हुआ है, पौधे में से पशु और पशु में से मनुष्य प्रकट हुआ है, उसी प्रकार मानव में से भी एक दिन दिव्य मानव अवश्य प्रकट होगा । केवल वही वस्तु प्रकट हो सकती है, जो कि किसी रूप में पहले थी । केवल स्वरूप का रूपान्तर हो जाता है । नास्ति में से कुछ नहीं हो सकता । मिट्टी में पौधा छिपा हुआ है, पौधे में पशु छिपा है और पशु में मनुष्य छिपा है, इसी प्रकार मनुष्य में भी दिव्य मानव छिपा है ।

पशु से मानव का विकास होने में लाखों वर्ष लगे होंगे । पशु ने मानव होने के लिए कोई ज्ञानपूर्वक प्रयत्न नहीं किया था । पशु को यह ज्ञात भी नहीं था कि वह मानव होने जा रहा है । उसे अपने इस विकास का ज्ञान नहीं था । उसके अज्ञान में ही यह विकास हो गया । एक दिन आया और पशु ने अपने आप को मानव पाया ।

सहस्रों शताब्दियों में वनस्पति में से पशु आया । वनस्पति को इस विकास का ज्ञान नहीं था । वनस्पति ने इस विकास के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया । इसी प्रकार जड़ मिट्टी में से वनस्पति अगणित वर्षों में उत्पन्न हुई । जड़ को इस परिवर्तन का ज्ञान नहीं था । जड़ ने इस परिवर्तन के लिए कोई प्रयत्न भी नहीं किया था ।

देवत्व के लिए प्रयत्न

इस प्रकार अब तक परिवर्तन स्वयं हुआ था । प्रकृति ने ही इस परिवर्तन को किया था । उसने जड़, वस्तु, वनस्पति और पशु को इस विकास में सहायता दी थी, क्योंकि वे अपना विकास स्वयं करने में असमर्थ थे, किन्तु मानव की यह विशेषता है कि वह अपना विकास स्वयं कर सकता है । प्रकृति ने मानव को विकास का सामर्थ्य दिया है । अतएव अब विकास मनुष्य के प्रयत्न से होगा । मानव को स्वयं प्रयत्न करके दिव्य मानव बनना है । हाँ, प्रकृति इसमें सहायता अवश्य करेगी । पिछले परिवर्तन और इस परिवर्तन में यह महान् अन्तर होगा ।

दिव्य जीवन प्राप्त करना ही सृष्टि का उद्देश्य है । वर्तमान मानव और दिव्य मानव में बहुत अन्तर होगा । न्यूनाधिक रूप से उतना ही अन्तर समझा जा सकता है जितना पशु और मनुष्य में है । जिस प्रकार पशु यह अनुमान नहीं कर सकता था कि नवीन विकास अर्थात् मानव कैसा होगा, उसका कैसा ज्ञान होगा, कैसी शक्ति होगी, उसी प्रकार वर्तमान मानव भी दिव्य मानव के ज्ञान, उसकी योग्यता, उसकी सामर्थ्य और उसकी शक्ति का उचित अनुमान नहीं कर सकता है । पशु में भी थोड़ा बहुत विचार और विवेक पाया जाता है, पर मानव में और उसमें बड़ा अन्तर है । उसी प्रकार मानव और दिव्य मानव में बड़ा अन्तर होगा ।

प्रकृति स्वयं विकास में प्रयत्नशील है । सृष्टि का स्वयं विकास हो रहा है । मानव का भी विकास हो रहा है । विकास ही इस सृष्टि का विषय है, केवल हमें अपने प्रयत्नों द्वारा ईश्वर के उस महान् कार्य में सहायता पहुँचानी है ताकि विकास शीघ्र हो जाये । अभी तक विकास पर्दे के भीतर हो रहा था, पर अब ज्ञानपूर्वक एवं प्रकट रूप से होगा । परिणाम यह होगा कि विकास का समय कम हो जायेगा । जो काम पहले लाखों वर्षों में हुआ था, वह सदियों में ही हो जायेगा । मानव शनैः-शनैः विकास करके दिव्य जीवन की प्राप्ति करेगा । दिव्य-जीवन की प्राप्ति होने पर अज्ञान नष्ट हो जाता है, केवल प्रकाश और ज्ञान ही रहता है । दिव्य मानव प्रकाश में रहता है और प्रकाश से प्रकाश की ओर गति करता है । दिव्य जीवन की प्रगति के पश्चात् मनुष्य की प्रकृति बदल भी जायेगी, उसकी निम्न प्रवृत्तियाँ भी ऊर्ध्व प्रवृत्तियों में परिवर्तित हो जायेगी । मनुष्य का मन, प्राण, शरीर, सब परिवर्तित हो जाएँगे । रोग व वृद्धावस्था के लिए स्थान न रहेगा, यहाँ तक कि मृत्यु पर भी नियन्त्रण हो जायेगा ।

प्रश्न यह है कि हम इस पूर्ण विकास के पथिक बनने के लिए क्या करें ? इसके लिए सबसे मुख्य बात तो यह है कि हम पूर्ण अभीप्सा तथा श्रद्धा के साथ दिव्य जीवन की कामना करें । अपनी निम्न प्रवृत्तियों को उच्च प्रवृत्तियों से स्थानान्तरित करने का प्रयास करते हुए भगवान् के हाथों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने को सौंप दें । वह अवश्य हमें उच्च से उच्चतर स्थिति को ले जाता रहेगा ।

पूर्णता की ओर अग्रसर हम सब

पूर्णता को प्राप्त करना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है । न केवल चेतन समुदाय, अपितु सृष्टि का प्रत्येक कण इसके लिये लालायित और गतिशील है । भौतिक जीवन में जिसके पास स्वल्प सम्पदा है वह और अधिक की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है, पर जो धनाढ्य हैं उन्हें भी संतोष नहीं । उसी के परिमाण में वह और अधिक प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील दिखाई देता है, बड़े-बड़े सम्राट् तक अपनी इस अपूर्णता को पाटने के लिए आपाधापी मचाते और दूसरे साम्राज्यों की लूटपाट करते पाये जाते हैं, तो लगता है सृष्टि का हर प्राणी साधनों की दृष्टि से अपूर्ण है । इस दिशा में पूर्णता प्राप्त करने की हुड़क हर किसी में चढ़ी बैठी दिखाई देती है ।

इतिहास का विद्यार्थी अपने आपको गणित या विज्ञान में शून्य पाता है तो वह अपने आपको अपूर्ण अनुभव करता है । भूगोल का चप्पा-चप्पा छान डालने वाले को संगीत के स्वर बेचैन कर देते हैं, उसे अपना ज्ञान थोथा दिखाई देने लगता है । बड़े-बड़े चतुर वकील और बैरिस्टरों को जब रुग्णता के कारण डाक्टरों की शरण में जाना पड़ता है तो उनका अपने ज्ञान का अभिमान चकनाचूर हो जाता है । बौद्धिक दृष्टि से हर प्राणी सीमित है और हर कोई अगाध ज्ञान का पण्डित बनने को तत्पर दिखाई देता है ।

नदियाँ अपनी अपूर्णता को दूर करने के लिए सागर की ओर भागती हैं । वृक्ष आकाश छूने दौड़ते हैं । धरती स्वयं भी अपने आपको नचाती हुई न जाने किस गन्तव्य की ओर अधर आकाश में भागी जा रही है । अपूर्णता की इस दौड़ में समूचा सौरमण्डल और उससे परे का अदृश्य संसार भी सम्मिलत है । पूर्णता प्राप्ति की बेचैनी न होती तो सम्भवत: विश्व ब्रह्माण्ड में रत्ती भर की सक्रियता न होती, सर्वत्र नीरव सुनसान पड़ा होता, न समुद्र उबलता, न मेघ बरसते, न वृक्ष उगते, न तारागण चमकते और न ही वे विराट् की प्रदक्षिणा में मारे-मारे घूमते ।

जीवन की सार्थकता पूर्णता प्राप्ति में है, इसका तात्पर्य यह हुआ कि अभी हम अपूर्ण हैं, असत्य हैं, अन्धकार में हैं । हमारे सामने मृत्यु मुँह बाये खड़ी है । अन्धकार, असत्य और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए हम प्रकाश, सत्य और अमरता की ओर अग्रसर होना चाहते हैं । पर ऐसा हो नहीं पाता । हर कोई अपने आपको अशक्त और असहाय पाता है, अज्ञान के अन्धकार में हाथ-पैर पटकता रहता है ।

इस अपूर्णता पर जब कभी विचार जाता है, तब एक ही तथ्य सामने आता है और वह है 'परमात्मा' अर्थात् एक ऐसी सर्वोपरि सर्वशक्तिमान सत्ता जिसके लिए कुछ भी अपूर्ण नहीं है । वह सर्वज्ञ है, सर्वव्यापी, सर्वदृष्टा, नियामक और एकमात्र अपनी इच्छा से सम्पूर्ण सृष्टि में संचरण कर सकने की क्षमता से ओतप्रोत है ।

वरन् भारतीय दर्शन पूर्णता से पूर्णता की उत्पत्ति मानता है । श्रुति कहती है—

पूर्णमद: पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अर्थात् पूर्ण परब्रह्म परमात्मा से पूर्ण जगत-पूर्ण मानव की उत्पत्ति हुई । पूर्ण से पूर्ण निकाल देने पर पूर्ण ही शेष रह जाता है ।

नदी का एक किनारा समुद्र से जुड़ा रहता है और दूसरा किनारा उससे दूर होता है । दूर होते हुए भी नदी समुद्र से अलग नहीं । नदी को जल समुद्र द्वारा प्राप्त होता है और पुन: समुद्र में मिल जाता है । जगत उस पूर्ण ब्रह्म से अलग नहीं । मनुष्य उसी पूर्ण ब्रह्म से उत्पन्न हुआ, इसलिए अपने में स्वयं पूर्ण है । यदि इस पूर्णता का भान नहीं होता, यदि मनुष्य कष्ट और दु:खों से त्राण नहीं पाता तो इसका मात्र कारण उसका अज्ञान और अहंकार में पड़े रहना ही हो सकता है । इतने पर भी पूर्णता हर मनुष्य की आन्तरिक अभिलाषा है और वह नैसर्गिक रूप से हर किसी में विद्यमान रहती है ।

क्षुद्रता की परिधि को तो तोड़कर पूर्णता प्राप्त कर लेना हर किसी के लिए सम्भव है । मनुष्य की चेतन सत्ता में वह क्षमता मौजूद है जिसके सहारे वह अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को विकसित कर उनका उपयोग करते हुए देवोपम जीवन जी सकता है, षट्चक्रों एवं पंचकोषों में समाहित विलक्षण क्षमताओं-सिद्धियों का स्वामी बन सकता है । यह क्षमता उसने खो दी है । मात्र जीवन निर्वाह क्रम पूरा होते रहने भर का लाभ उस क्षमता से उठा सकना सम्भव होता है । यह उस प्रचंड क्षमता का एक स्वल्प अंश मात्र है, जबकि क्षमता की दृष्टि से वह उतना ही परिपूर्ण है जितना कि उसका सृजेता । इस चरम लक्ष्य की ओर ज्ञात-अज्ञात रूप से हर कोई अग्रसर है ।

प्रगति और पूर्णता का लक्ष्य बिन्दु 'देवत्व'

विकास इस सृष्टि की सुनियोजित व्यवस्था है । पदार्थ और प्राणी अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुरूप, अपने-अपने ढंग से विकास कर रहे हैं । सृष्टा एक से बहुत हुआ यह उसका विकास विस्तार है । सृष्टि के आरम्भ में थोड़ा-सा घनीभूत पदार्थ था, उसी में अन्त:स्फुरणा हुई और फट पड़ा । फटने पर अनेकों नीहारिकाएँ और ग्रह-उपग्रह जैसी इकाइयाँ बनीं । बनने भर से काम नहीं चला वे सभी घटक गतिशील हो गए । प्रगतिशील क्यों ? किस प्रयोजन के लिए ? किस दिशा में ? इनका समन्वित उत्तर एक ही है, विकास विस्तार के लिए । सभी ग्रह-पिण्ड यहाँ तक कि समूचा ब्रह्माण्ड आगे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ने के लिए द्रुतगति से आगे और आगे, अधिक आगे अनवरत क्रम से बढ़ता ही चला जा रहा है । यह बात सृष्टि संरचना से सम्बन्धित है कि गति अन्ततः चक्र के रूप में परिवर्तित हो जाती है ।

स्रष्टा की चेतना का विकास भी इसी क्रम से हो रहा है । वह स्वयं सीमित रहने में सन्तुष्ट न रह सका और असीम होने के लिए मचल पड़ा । विश्व चेतना ने अपने को अनेक प्राणि घटकों में विभाजित किया और संख्या विस्तार देखते-देखते असीम हो गया, पर इतने से भी बात बनी नहीं । इन प्रत्येक प्राण घटकों में प्राणियों ने अपने उद्‌गम केन्द्र की मूलभूत आकांक्षा को अपनाया और वे भी विकास क्रम को अपनाते हुए एक सुनियोजित योजना के अंग बन गए । जो कार्य प्राणी कर रहे हैं, वही पदार्थ सम्पदा में भी हो रहा है । पृथ्वी अपने आरंभ काल में हर दृष्टि से अनगढ़, अविकसित, अस्थिर, मन्दगति और वैभवों, हलचलों से रहित थी, अब उसकी वह स्थिति नहीं रही । आज की और आदिम पृथ्वी के स्तर में आकाश-पाताल जितना अन्तर है । यह बात आदिम प्राणी और आज के प्राणी में देखी जा सकती है । स्वयं मनुष्य का आदिम काल कैसा अनगढ़ था और वह आज किस स्तर तक आ पहुँचा इसे देखते हुए विकासक्रम की अदम्य अभिलाषा एवं प्रक्रिया का दर्शन भली-भाँति किया जा सकता है ।

न केवल प्राणि और पदार्थ के मूल स्वरूप में वरन् उनसे उत्पन्न होने वाले अनेकानेक सम्मिश्रणों में भी यही प्रगतिक्रम अनवरत गति से चल रहा है । शिक्षा, चिकित्सा, विज्ञान, व्यवसाय, कला, कौशल, नीति, विग्रह, उपार्जन, उपभोग आदि के तरीकों में असाधारण प्रगति हुई है । विकास विस्तार की, सुविधा-साधनों की दृष्टि से हम पूर्वजों से कहीं आगे हैं और यह मानने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि भावी पीढ़ियाँ हमसे कहीं अधिक बुद्धिमान तथा सुविधा सम्पन्न होंगी । गतिचक्र तो प्रगति की दिशा में चलता ही रहेगा ।

चिन्ता और अवरोध का प्रसंग तब आता है, जब गति अपने सामान्य क्रम से विचलित होकर अगति या दुर्गति का, मूढ़ता या उच्छृंखलता का रूप धारण करती है । कभी मंगल और बृहस्पति के मध्य में वर्तमान ग्रह-पिण्डों के अतिरिक्त कोई विशालकाय ग्रह-पिण्ड भ्रमण करता था, उसे ऊब सूझी । अपनी कक्षा का अतिक्रमण करके अनिर्णीत मार्ग पर चल पड़ा । फलतः किसी अन्य ग्रह से जा टकराया, दोनों चूर-चूर हो गए । स्वयं भी मरा और दूसरे को भी ले बैठा । दोनों का चूरा आज भी क्षुद्र ग्रह खण्डों के रूप में अपनी कक्षा बनाए परिभ्रमण कर रहा है । उस पूर्ण ग्रह के सदस्यों को फिर कभी-कभी अपने पूर्वजों की परम्परा का स्मरण हो आता है और छोटे हुए होते भी वैसी उच्छृंखलता बरतने लगते हैं । ये टुकड़े पृथ्वी, चन्द्रमा आदि पर आये दिन उल्काओं के रूप में बरसते रहते हैं । वायुमण्डल में प्रवेश होते ही वे स्वयं तो जल-भुनकर समाप्त होते ही रहते हैं, पर साथ ही जहाँ गिरते हैं, उस धरातल को भी भारी क्षति पहुँचाए बिना नहीं रहते ।

ऐसे व्यक्तिक्रम यदा-कदा न केवल प्रकृति पदार्थों में वरन् मनुष्यों के वैयक्तिक एवं सामूहिक जीवन में भी उत्पन्न होते रहते हैं । भूकम्प, ज्वालामुखी, उल्कापात, चक्रवात, तूफान जैसी प्रकृति दुर्घटनाओं से कितना संकट एवं विनाश प्रस्तुत होता है, यह सभी जानते हैं । शासनों एवं समाजों में भी इतिहास के अनेक अवसरों पर ऐसे ही विग्रह खड़े हुए हैं और उनके कारण सभी को भारी संकटों का सामना करना पड़ा है । हिमप्रलय जैसे कई भयानक अवसर धरती के इतिहास में आये हैं और उनने संचित सभ्यता एवं प्रगति पर वज्रपात जैसा प्रहार करके ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की है जिसे उपलब्धियों को समाप्त करके नये सिरे से प्रारम्भ करने जैसा उपक्रम कहा जा सकता है ।

ऐसे ही व्यतिक्रम समाजों, देशों के राज्यों में आते रहे हैं । जापान और जर्मनी की पिछली लड़ाइयों में कितना कुछ सहन करना पड़ा और चलते हुए विकास क्रम में कितना व्यवधान उत्पन्न हो गया इसे इतिहास का हर विद्यार्थी जानता है । सभ्यताओं के, शासनों के उत्थान-पतन के इतिहास भी ऐसे ही हैं । यदि प्रवाह समस्वरतापूर्वक चलते रहे तो प्रगति क्रम उससे कहीं आगे होता जहाँ कि आज किसी प्रकार पहुँच सका है ।

यदि आत्म-निरीक्षण के क्षेत्र में उतरा जा सके तो प्रतीत होगा कि उस अदृश्य जगत में अपने लिए विनाश और विकास की असीम साधन-सामग्री और अनन्त सम्भावनाओं के भाण्डागार भरे पड़े हैं । उत्थान के लिए आमतौर से बाहरी उपलब्धियों को ही सफलता कहा जाता है और उनके हस्तगत होने को ही सौभाग्य मानकर सराहा जाता है, पर वास्तविकता कुछ और ही है । सौभाग्य ऊपर से नहीं टपकता भीतर से उभरता है । पेड़ों को फल-फूलों से लदा देखकर कोई यह भी सोच सकता है कि यह ऊपर आसमान से टपककर पेड़ से चिपक गए होंगे, पर यथार्थता यह है कि जमीन में दबी जड़ें खुराक खींचती और पतली नलिकाओं द्वारा पेड़ के हर अवयव तक पहुँचाकर उसे हरा-भरा, परिपुष्ट एवं फल-फूलों से लदा हुआ बनाती हैं । भले ही वे आवरण के पीछे छिपी हुई अपनी गतिविधियाँ गुपचुप रीति से सम्पन्न करती रहती हों ।

गीताकार ने उत्थान और पतन के तथ्यों का रहस्योद्‌घाटन करते हुए कहा है कि 'अपने आप ही अपना उत्थान करना चाहिए । अपने को गिराना नहीं चाहिए ।' इसका तात्पर्य यह हुआ कि व्यक्ति स्वयं ही अपने उत्कर्ष-अपकर्ष का पूरी तरह जिम्मेदार है । इस सन्दर्भ में और भी खुलासा करते हुए शास्त्रकार ने कहा है—"मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु है । यहाँ चेतना के अनगढ़ और सुगढ़ होने की परस्पर विरोधी प्रतिक्रियाओं की ओर ही किया गया संकेत समझा जाना चाहिए । ईश्वर की अनुकम्पा, दैवी सहायता की बात सोचनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो तो भी उस उक्ति को ध्यान में रखा जाना चाहिए जिसमें कहा गया है कि 'ईश्वर केवल उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं ।'

काया से प्रौढ़, सुन्दर, युवा होना यह बताता है कि उनके व्यक्तित्व का बाह्य स्वरूप अशक्तता, रुग्णता आदि से मुक्त स्वस्थ, परिपुष्ट एवं सौन्दर्य सज्जित होना चाहिए । प्रौढ़ता संयम पर और सुन्दरता सुरुचि पर निर्भर है । यह गुण जहाँ भी होंगे, व्यक्ति स्वस्थ और सुन्दर लगेगा भले ही उसके अवयवों की प्रकृतिगत रचना कैसी भी क्यों न हो ? हब्शी लोग भी पारखियों की दृष्टि में कुरूप नहीं होते । श्वेत कलेवर भी यहाँ प्रतीकात्मक ही है । कालिमा, कलुष की, तमिस्र की प्रतीक मानी गई है । इस आधार पर उसे हेय ठहराया जाता है अन्यथा आँखों की पुतली को काले रंग की होने के कारण कौन कुरूप या हेय ठहराने की धृष्टता करेगा ? भगवान् राम और कृष्ण काले रंग के बताए जाते हैं । शंकर की छवि भी इसी प्रकार की है । पृथ्वी को धारण करने वाले तथा समुद्र मंथन की भूमिका निभाने वाले शेष भगवान् का रंग भी काला था । केश सौन्दर्य सज्जा में अग्रणी माने जाते हैं, उनकी सराहना कालेपन के आधार पर ही होती है । इन तथ्यों पर ध्यान रखने पर देवताओं का श्वेत वर्ण कहा जाना उज्ज्वल, धवल, निष्कलंक व्यक्तित्व का प्रतीक ही समझा जा सकता है ।

देवताओं का बहिरंग जिस रूप में प्रतिपादित किया गया है उसमें उनके धवल, प्रखर एवं परिपक्व व्यक्तित्व का ही आभास मिलता है । देवता शब्द का मोटा अर्थ है 'देनेवाला' । जिसकी भावनाएँ सदा दूसरों को समुन्नत, सुसंस्कृत देखने को उमंगती रहें, जिनकी गतिविधियाँ सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन में निरत रहें उन्हें देवस्वभाव का अधिष्ठाता कहा जा सकता है । सद्भावसम्पन्न, उदार, सेवाभावी, परमार्थ परायण व्यक्ति इसी वर्ग में गिने जा सकते हैं । जिनकी आत्मिक विभूतियाँ और भौतिक सम्पत्तियाँ उत्कृष्टा की समर्थक आदर्शवादिता में सहयोगरत हों उन्हें देव प्रकृति का कहा जा सकता है । देवताओं के जो चित्र खींचे गए हैं उनमें उनकी आकृति, प्रकृति का विश्लेषण करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि वे जनसामान्य की अपेक्षा क्रियाशीलता, विचारणा एवं भाव सम्वेदनाओं की दृष्टि से कहीं अधिक उच्चस्तरीय रहे होंगे । ऐसे लोग जहाँ भी रहेंगे वहीं सुख-शांति एवं प्रगति का हँसता-हँसाता, खिलता-खिलाता वातावरण प्रस्तुत करेंगे । ऐसा वातावरण ही स्वर्ग है ।

इन पंक्तियों में यह निरूपित किया गया है कि मनुष्य का समग्र विकास देवता के रूप में होना चाहिए । यह उत्कर्ष की चरमसीमा है । 'देवत्व' ही वह वैभव है जिसकी परिणति अनेकानेक ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में प्रकट परिलक्षित होती है । देवत्व को अमृत, पारस, कल्पवृक्ष, ब्रह्मास्त्र आदि नामों से पुकारा जाता है । इन नामों में इस बात का संकेत है कि 'देवत्व' की विभूतियों से सम्पन्न व्यक्ति किस प्रकार लोहे जैसी अनगढ़ परिस्थितियों से घिरा रहने पर भी किस तरह देवत्व का पारस छूकर बहुमूल्य सोने की तरह सम्मानास्पद हो सकता है । उसका यश शरीर अमृत पीने वालों की तरह इतिहास के पृष्ठों पर अमिट रह सकता है । लोकसम्मान एवं जन-सहयोग की असीम मात्रा उपलब्ध करने के कारण वह कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर मनोकामना पूर्ण कराने वालों की तरह किस तरह प्रचुर साधन सम्पन्न हो सकता है । पवित्र और प्रखर व्यक्तित्व ही इन्द्र वज्र की—ब्रह्मास्त्र की कोटि में आते हैं । वे जिस भी अवांछनीयता पर टूट पड़ते हैं, उसे निस्सार करके रख देते हैं । ये समूची फलश्रुतियाँ उत्कृष्ट व्यक्तित्वों के मूल्य एवं प्रभाव की ओर-पूर्णता के लक्ष्य बिन्दु 'देवत्व' के स्वरूप की ओर ही इंगित कर देती हैं ।

कैसे हो मानव में देवत्व का उदय ?

युग परिवर्तन की सम्भावना के साथ जिस उज्ज्वल भविष्य का चित्रण किया जाता है, उसमें 'मनुष्य में देवत्व का उदय' प्रमुख आधार है । मनुष्य में देवत्व के उदय की यह सम्भावना विचार विज्ञान एवं ब्रह्मविद्या की परिधि में आती है । आत्मिकी यही बताती है कि मनःस्थिति ही सब कुछ है । इसी को परिष्कृत कर देवोपम परिस्थितियाँ बनायी जा सकती हैं । देवत्व के उदय के बाद प्रसुप्त के जागरण के बाद मनुष्य अन्य मानवों से ऊपर उठ जाता है और असाधारण विशेषताओं तथा क्षमताओं में सम्पन्न बन जाता है । ऐसे लोग महामानव, सिद्ध पुरुष, ऋषि, देवात्मा आदि नामों से पुकारे जाते रहे हैं । इन्हें ही विज्ञान की भाषा में अतिमानव, या सुपर मैन कहा गया है । महामानव के पूर्ण पुरुष के समग्र व्यक्तित्व के विकास की, मानव के सुसंस्कृत एवं सुविकसित संस्करण की आवश्यकता को समझते हुए चिरकाल से ही इस संदर्भ में प्रयास होते रहे हैं ।

व्यक्तित्व का परिष्कार अध्यात्म जगत का परम पुरुषार्थ माना गया है । इससे बड़ी सफलता मनुष्य की दूसरी हो नहीं सकती । किसी समाज की समय की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि महामानवों-अतिमानवों को उत्पन्न करने की दृष्टि से उसे सराहा और स्मरण रखा जाय । जनसंख्या की दृष्टि से इस धरती पर इन दिनों प्रायः ६०० करोड़ के लगभग मनुष्य बसते हैं और यह आबादी अगले ६-७ वर्षों में १००० करोड़ तक पहुँचने वाली है । इस अभिवृद्धि से धरती का भार बढ़ने और व्यवस्था का संतुलन बिगड़ने के अतिरिक्त और कुछ मिलने की आशा नहीं है । किंतु कभी बुद्ध, महावीर, कुमार जीव, चाणक्य, शंकराचार्य, रामकृष्ण, विवेकानंद, दयानंद, गुरु गोविन्द सिंह, तिलक, गाँधी, सुभाष जैसे व्यक्तियों को जन्म देकर भारत भूमि यशस्वी बनी । प्राचीनकाल के ऋषि-मनीषियों ने समस्त भूमंडल में प्रगति, समृद्धि एवं संस्कृति का आलोक फैलाया था । संसार के इतिहास में ईसा, अरस्तु, सेंटपाल, लिंकन, वाशिंगटन, लूथर, लेनिन, कागावा, मेजिनी जैसे महामानव थोड़े से ही उत्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुए हैं और उन्होंने अपने समय का इतिहास स्वर्णाक्षरों से चमकाया है ।

भारत में किसी समय ऐसे ही समुन्नत व्यक्तित्वों का बाहुल्य था । वे देवमानव-महामानव कहे जाते थे । विश्व-वसुंधरा में उनकी प्रतिष्ठा जगद्गुरु, चक्रवर्ती महाप्राज्ञ एवं सृजेता, प्रणेता के रूप में होती थी । उन नररत्नों ने निवास भूमि को 'स्वर्गादपिगरीयसी' बनाया था । उत्पादन, वैभव एवं वातावरण से यह समूचा देश ही तीर्थ बनाया और उसे वसुधा के हर कोने में बसने वालों ने शत्-शत् नमन किया था । ऐसे मनीषीगणों-महामानवों की कमी होते जाना समूची मानव-जाति की विपन्नता का कारण बनता है ।

मनुष्य को समुन्नत-पूर्ण विकसित-अतिमानव किस प्रकार बनाया जाय और उसके निर्माण में किन उपायों को काम में लाया जाय ? इस सम्बन्ध में विचारकों-दार्शनिकों ने अपने चिंतन के अनुसार अलग-अलग स्वरूप बनाया है । परिस्थितियों के दबाव को प्रमुखता देने वाले जर्मन दार्शनिक नीत्से, व्यक्ति की निरंकुश सत्ता का प्रतिपादन करने वाले एनार्किस्ट, मस्तिष्क की गलाई-ढलाई को ही प्रमुख मानने वाले साम्यवादी, रसायन-औषधियों एवं इलेक्ट्रोडों से मस्तिष्क को प्रभावित करने में विश्वास करने वाले आयुर्वैज्ञानिक, कृत्रिम संसर्ग पद्धति द्वारा उच्चवंश की उत्पत्ति का प्रतिपादन करने वाले दार्शनिक, जेनेटिक इंजीनियरिंग के माध्यम से मानव की नयी कलम लगाकर उच्च विकसित अति मानव का स्वरूप बनाने वाले वैज्ञानिक, चेतना के अतिमानस में उच्चस्तरीय अध्यात्म योग द्वारा अवतरित होने के पक्षधर योगी अरविंद के प्रतिपादन एवं भारतीय अध्यात्म की ब्रह्मविद्या परक व्याख्या मानव में देवत्व के उदय की सम्भावनाओं के अलग-अलग पक्ष हैं । इन विचारक पक्षों को पाँच भागों में बाँट सकते हैं—

पहला-पदार्थ विज्ञान-पक्ष है जो मनुष्य को एक पदार्थ पिण्ड मानता है और उसे अन्य वस्तुओं की तरह कृत्रिम उपायों, जेनेटिक यांत्रिकी, नियोग पद्धति या अन्य भौतिक पद्धतियों द्वारा शरीर व मन का विकास जैसे अनेक वैज्ञानिक उपाय-उपचारों के माध्यम से अधिक सामर्थ्यवान बनाना चाहता है ।

दूसरा पक्ष-समाज शास्त्रियों का है जो शिक्षा, वातावरण, प्रचलन की दिशाधारा में सुधार-परिवर्तन लाने की उपयोगिता पर जोर देता है । साथ ही व्यक्ति की गतिविधियों पर तब तक समाज-अनुशासन में कड़ाई बरतने पर जोर देता है, जब तक कि वह स्वयं सभ्य, सुसंस्कृत नागरिक एवं विचारक की भूमिका निभाने के लिए अपना उत्तरदायित्व आप न सम्भालने लगे ।

तीसरा वर्ग- मनःशास्त्रियों का है जो मानवीय सत्ता को मनःसंस्थान की कठपुतली मानता है और कहता है कि लोकमानस को नये सिरे से बदला जाय । इसके लिए 'ब्रेनवाशिंग' जैसी दबाव भरी पद्धतियों से लेकर अचेतन मस्तिष्क पर आक्रमण करके उसे उपयोगी रीति-नीति अपनाने के लिए विवश किया जाय ।

चौथा वर्ग शासन तंत्र का है । इसमें प्रजाजनों को शासन की निर्धारित नीति को अपनाने और उसके द्वारा मान्य विचारधारा को हृदयंगम करने के लिए बाधित करने की आवश्यकता बतायी गयी है । इस वर्ग का कहना है कि लोकरुचि को मान्यता न दी जाय । मौलिक अधिकारों के नाम पर मनुष्य को कुछ भी करने की छूट न दी जाय । उसकी स्वतंत्रता को सीमित किया जाय, निर्धारित निर्देशों को न मानने पर कठोर दंड दिया जाय । अर्थव्यवस्था भी अब शासन तंत्र के अंतर्गत ही आती है । उत्पादन, वितरण एवं उपभोग पर शासन अपना अकुश और भी कड़ा रखना चाहता है । एनार्किज्म, अधिनायकवाद, कम्यूनिज्म एवं अन्य शासन व्यवस्थाएँ इसी के अंतर्गत आती हैं ।

पाँचवाँ वर्ग अध्यात्म का है जो उच्चस्तरीय तत्वदर्शन जन-जन के मन में बसाने के लिए धर्मतंत्र को परिष्कृत करने एवं उसके द्वारा ऋषि-महामानव स्तर के उदारचेता व्यक्तियों द्वारा प्रभावी लोक शिक्षण की आवश्यकता पर बल देता है । कुसंस्कारिता के समाधान एवं देवोपम व्यक्तित्वों के विकास के लिए योग, दर्शन एवं तप साधना को उपाय-उपचार के रूप में प्रस्तुत करता है । सूक्ष्म जगत एवं परोक्ष विद्या का आश्रय लेने पर आत्मिकी का अधिक आग्रह है ।

सुसंतति निर्माण की दिशा में सोचने और खोजने वालों ने कई स्तर के चिंतन और प्रयत्न किये हैं । इसके लिए वंश परम्परा को बदलने की बात कइयों ने सोची है और नियोग प्रथा को उत्तम माना है । यों तो प्राचीनकाल में संतानोत्पादन में असमर्थ रहने पर ही नियोग होते थे, पर ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं कि विवाहिताओं और अविवाहिताओं ने विशिष्टतायुक्त पुरुषों के माध्यम से सुसंतति प्राप्त करने के प्रयत्न किये । व्यास द्वारा पाण्डु । धृतराष्ट्र और विदुर के रूप में तीन रानियों से संतानोत्पादन करना इसी प्रयास का एक प्रमाण है । दाम्पत्य क्रम का यदि स्तर ऊँचा-नीचा हो तो प्रजनन के लिए बाहरी सहयोग की बात भी सोची गयी । ईसा, कबीर, मकरध्वज, घटोत्कच, सत्यकाम आदि की कथा-गाथायें ऐसी हैं जिनमें बीज और भूमि में से एक प्रबल होने मात्र से काम चल गया ।

दाम्पत्य जीवन की सुव्यवस्था रहने पर तो स्वायंभू मनु और शतरूपा रानी द्वारा कई जन्मों में देवदूत स्तर की संतानों को जन्म देने का प्रसंग सामने आता है । लव-कुश, प्रद्युम्न, शकुंतला पुत्र भरत की विशिष्टता उनके माता-पिता के साथ-साथ वातावरण की विशेषता भी सिद्ध करती है । बाल्मीकि और कण्व के आश्रय-संरक्षण एवं मार्ग-दर्शन में पलने पर विशिष्टता उत्पन्न की जा सकी थी ।

'किराये की कोख' तथा टेस्टट्यूब बेबी एवं कृत्रिम गर्भाधान जैसे प्रयोग वैज्ञानिक क्षेत्र में इन दिनों तेजी से चले हैं । पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान की तरह मनुष्यों के सम्बन्ध में भी यही बात सोची जा रही है कि विशिष्ट व्यक्तियों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वंश परम्परा का लाभ मनुष्य जाति को भी देने के लिए उनके शुक्राणुओं का शीतलीकरण करके 'स्पर्म बैंक' बना लिया जाय ताकि मरने के उपरांत भी आवश्यकतानुसार उनकी कृषि की जा सके ।

वनस्पतियों में उनके गुणसूत्रों की कलमें लगाने और नयी जाति के पेड़-पौधे उत्पन्न करने में वैज्ञानिकों को सफलता मिली है । पशु-पक्षियों के कुछ प्रयोग पहले से होते रहे हैं और अब तो इस क्षेत्र में भारी सफलता मिली है । खच्चर की वर्णशंकर जाति पहले से ही विद्यमान है और पशुओं में गाय, बकरी, भेड़, खरगोश आदि को इस प्रकार के प्रयोगों में अग्रणी रखा जा सकता है । इस प्रकार गुणसूत्रों में कलम लगाकर उनकी वंश परम्परा को इतना बदला गया है कि वे कुछ पीढ़ियों के उपरांत कुछ से कुछ बन गये हैं । सोचा जा रहा है कि क्यों न मनुष्य के शुक्राणुओं में वैसा ही परिष्कार-परिवर्तन किया जाय जिसमें भावी पीढ़ियाँ आज की अपेक्षा अधिक सुयोग्य और अधिक सम्पुन्नत स्तर की बन सकें ।

इस संदर्भ में देवत्व का आश्रय लेकर अति मानवीय संतान उत्पन्न करना सम्भव है, प्राचीनकाल में यह परीक्षण किया गया था । कुन्ती ने सूर्य, इन्द्र, पवन, यम, अश्विनी कुमार देवताओं का आह्वान करके विशिष्ट स्तर की संतान—पाँच पांडवों को उत्पन्न किया था । पवन पुत्र हनुमान के पुत्र मकरध्वज को भी इसी प्रकार की साधना की परिणति कहा जा सकता है । द्रौपदी के बारे में कहा जाता है कि वे यज्ञाग्नि से प्रकट हुई थीं । दैवी प्रजनन के इस प्रयोग को प्रत्यक्ष की साक्षी न मिलने से उन्हें जानकारी के संकलन भर तक सीमित रखा जा सकता है ।

औषधि उपचार से बूढ़े को जवान बनाने के निमित्त कायाकल्प प्रयोगों की खोजबीन होती रही है । नीरोग, समर्थ और दीर्घ-जीवी होने पर भी मनुष्य विशालकाय अजगरों की तरह चमकीले, फुर्तीले, गर्वीले, विषैले हो सकते हैं, पर उनसे किसी का क्या बनेगा, जब तक कि चेतना के क्षेत्र में परिष्कार-विकास न हो ? इसी तरह मस्तिष्क पर रासायनिक एवं विद्युतीय प्रभाव डालकर उसकी प्रकृति बदलने का प्रयत्न भी इस प्रयोजन के लिए किया जाता रहा है । पशुओं के मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड लगाकर उनके स्वभाव में तब तक ही परिवर्तन सम्भव हो सकते हैं, जब तक कि विद्युतीय प्रभाव बना रहे । जैसे ही प्रभाव हटा वैसे ही वे प्राणी फिर अपनी पिछली स्थिति में लौट आये । चूहे की बिल्ली पर आक्रमण करने और बिल्ली को चूहे से डरने की आदत बदली तो गयी, पर प्रभाव हटते ही पुरानी स्थिति फिर लौट आयी । यही बात रासायनिक पदार्थों के सम्बन्ध में भी है । बेहोश करने से लेकर उत्तेजित करने तक में कई नशीले पदार्थ चमत्कारी प्रभाव डालते हैं, किंतु खुमारी हटते ही वह स्थिति दूर हो जाती है । मस्तिष्क को विशिष्ट प्रकृति में ढालने के वैज्ञानिक प्रयोग होते रहे हैं और मनोवैज्ञानिकों ने 'ब्रेनवाशिंग' के लिए दबाव देकर सिखाने की सरकस में प्रयुक्त होने वाली पद्धति की मनुष्यों पर भी प्रयोग करने की चेष्टा की है । कुछ लोग बदले भी हैं, किंतु शेष ने अपनी मौलिकता पर किये गये इस प्रहार को जोर जबर्दस्ती माना है और परिस्थिति बदलते ही उस प्रहार का कसकर बदला लिया है ।

प्रशिक्षण एवं वातावरण के दबाव से प्रवृत्तियों में सुधार के वैज्ञानिक प्रयोग बड़े पैमाने पर चले हैं । आदिवासियों का जहाँ भी अस्तित्व था, वहाँ समर्थों ने उनके विनाश में कुछ उठा न रखा, पर अब जब वे थोड़ी संख्या में रह गये हैं तो सुधारने, सभ्य बनाने के प्रयत्न जोरों से चल पड़े हैं । ऐसे देशों में इन वनवासियों की प्रकृति एवं प्रवृत्ति बदलने के लिए बहुत प्रयत्न एवं धन खर्च किया जा रहा है, किंतु सफलता इतनी धीमी गति से मिल रही है कि कई बार तो हतोत्साहित तक होना पड़ता है । भारत में भी ऐसे वर्गों का पिछड़ापन दूर करने के लिए हर उपाय अपनाया गया है, किंतु सहयोग न मिलने के कारण सुधारकों को उदास होना पड़ रहा है । यहाँ मनुष्य की चिर संचित मूल प्रवृत्ति सबसे बड़ी बाधा बनकर सामने आ खड़ी होती है ।

भौतिक स्तर के इन प्रयोगों से शारीरिक अथवा मस्तिष्कीय सामर्थ्य बढ़ी तो है, पर उससे नरपिशाचों की दूसरी बिरादरी उत्पन्न हो गयी । दुर्बल स्तर के ऐसे चांडाल वे थे जिन्हें अपराधी, अनगढ़ कहा जाता था । दूसरे वे दानव वर्ग के थे जो साधन संपन्न बन गये । अंतर मात्र परिस्थितियों और योग्यताओं का है । विश्व-व्यवस्था की दृष्टि से दोनों ही अवांछनीय सिद्ध होते हैं । साम्यवाद ने अर्थ को प्रधानता दी और उसे समस्त समस्याओं का समाधान बताया । परीक्षण की कसौटी पर वह समाधान गलत निकला । अमेरिका एवं योरोपीय देशों की सम्पन्नता चरम सीमा पर पहुँची, वे अपनी समर्थता, सम्पन्नता एवं चतुरता तो अन्यों की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ा सके, पर उस प्रगति से उनका व्यक्तित्व परिष्कृत न हुआ, न समाज को कोई कहने लायक उपलब्धि मिल सकी ।

भौतिक प्रयत्नों द्वारा मानवीय प्रकृति को बदलकर उसे अतिमानव बनाने के स्तर का प्रयत्न मात्र सदा यथार्थ भावना से ही किये गये हों, ऐसी बात नहीं है । खोज को राजनीतिक षड्यंत्र के रूप में भी आगे बढ़ाया गया है । सत्ताधारियों ने प्रजा को इस प्रकार मानसिक दृष्टि से उद्वेलित किया या अपंग बना दिया है जिससे कि वे सदा आदेश मानें, विद्रोह तक की बात न सोचें । अपनी प्रजा और शत्रु देशों पर अधिकार करने के उपरांत वहाँ के नागरिकों को ऐसे ही ढाँचे में ढाल लेने की बात सोची गयी । यदि ऐसी सफलता मिल सके तो वे सदा सर्वदा के लिए अपनी मनमानी चलाते रहने के लिए निश्चिंत हो सकते थे

जर्मन दार्शनिक फ्रेडरिक नीत्से का प्रतिपादन कुछ इसी तरह का है । उसने 'सुपरमैन' अतिमानव की अपने ढंग से विचित्र व्याख्या की और कहा कि जर्मन जाति की मौलिक विशेषता को उभारा जाये और उसी को परिष्कृत करके समस्त विश्व पर शासन कर सकने योग्य बनाया जाये । अतिमानव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्तर तक विकसित करने के लिए किस प्रकार उस समुदाय को विशेष सुविधा मिले, इस संदर्भ में बहुत कुछ कहा गया है । साथ ही निम्न वर्ग को समाप्त कर देने की वकालत की है । हिटलर, हिमलर, गोबल्स जैसे व्यक्ति उन्हीं प्रतिपादनों का प्रतीक प्रतिनिधि बनकर उभरे । जर्मन नस्ल ही उनके लिए श्रेष्ठ मानव बन सकने योग्य थी । उसे विश्व विजयी बनाने के लिए हिटलर ने आक्रमणों का ताँता लगा दिया । अवरोध समझे जाने वाले यहूदी इसी कुचक्र में निर्दोष होते हुए भी बेतरह कुचले गये ।

इस प्रकार मानवीय उत्कृष्टता बढ़ाने के निमित्त जो भी उपाय-उपचार सोचे और अपनाये जाते रहे हैं, उनमें यह मानकर चला गया है कि जो कुछ किया जाना है वह शरीर और मन का होता है, जबकि यथार्थता यह है कि मानवीय सत्ता का मूल स्वरूप चेतना है । जो कुछ किया जाना है चेतना का स्तर उठाने वाला होना चाहिए । उनके बिना मात्र कायिक-मानसिक विकास होने से तो चतुर, चालाक एवं उद्दंड रावण, कुंभकरण, हरिण्यकशिपु, भस्मासुर, वृत्रासुर जैसे विशालकाय दैत्यों की बिरादरी ही पनपाने का प्रयत्न चल पड़ेगा और सुंद-उपसुन्द की तरह वह दानवी पीढ़ी यादवी कलह करेगी और परस्पर लड़-मरकर ही समाप्त हो जायेगी ।

मनुष्य में देवत्व के उदय की बात सोचनी है और उसके सहारे उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण करना है तो मानवीय चेतना में सदाशयता के आदर्शवादिता के संवर्द्धन का उपाय खोजना होगा । चिंतन चरित्र एवं व्यवहार में—गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता को समाविष्ट करने वाले उपाय-उपचारों का आश्रय लेना पड़ेगा । इस संदर्भ में श्री अरविंद का चिंतन परमपूज्य गुरुदेव की तरह का ही है । दोनों ने ही अतिमानव की नहीं 'अतिमानस' की आवश्यकता पर बल दिया है और उसके लिए समर्पण योग को अपनाने का मार्ग बताया है । गीता में समर्पण और शरणागति पर जोर दिया गया है । इसका तात्पर्य है— भौतिक अहंता युक्त 'अहम्' का विराट् ब्रह्म में, विश्व मानव में विसर्जन को ही व्यक्ति का समाज को समर्पण कह सकते हैं । संकीर्णपरता को छोड़ कर वसुधैव कुटुम्बकम् और आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना से आत्मसत्ता को सरावोर कर लेना ही अंत:करण की वह उच्च भूमिका है जिसमें मनुष्य आदर्शों के लिए लोक मंगल के लिए जीता है । तब उसे संकीर्ण स्वार्थपरता के साथ जुड़ी हुई वासना, तृष्णा और अहंता के विविध भव बंधनों से सहज ही छुटकारा मिल जाता है । यही जीवन मुक्ति है । स्नेह-सहकार से युक्त उदात्त दृष्टिकोण ही स्वर्ग है । स्वर्ग किसी क्षेत्र का नाम नहीं, वरन् अंत:करण की उत्कृष्ट स्थिति भर है । जो उसमें प्रवेश कर सके, वह देवता, जहाँ देवता रहें, वह स्वर्ग । दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है ।

संक्षेप में इसे अंत:करण का, आत्मसत्ता का उत्कर्ष कह सकते हैं, इसके लिए ब्रह्मविद्या और तपश्चर्या का आश्रय लेना पड़ता है । उच्चस्तरीय आस्थाओं, आकांक्षाओं, भाव-सम्वेदनाओं का विकास ब्रह्मविद्या का तत्वदर्शन हृदयंगम करने पर सम्भव होता है । पशुप्रवृत्तियों के संचित कुसंस्कारों को गलाने में तपश्चर्या की आग ही काम देती है । कषाय-कल्मषों का कचरा गलाकर अनगढ़ आदतों को महानता के ढाँचे में ढाल सकने में साधनात्मक ऊर्जा का उच्च तापमान ही समर्थ होता है । यही है चिरपुरातन और चिरसनातन मनुष्य में देवत्व के उदय की प्रक्रिया ।

धरती देवताओं की क्रीड़ाभूमि

देवमान्यता और देव पूजा की भावना से भारतीय जन मानस पूरी तरह भरा हुआ है । उनकी कृपा की सभी आकांक्षा करते और रोष से डरते हैं । यही कारण है कि समय-समय पर उनकी पूजा-उपासना छोटे या बड़े रूप में साकार या निराकार रूप में होती रहती है । माना जाता है कि वे स्वर्ग नामक ऊर्ध्ववर्ती लोक में रहते हैं और आमंत्रित करने पर मनुष्यों की सहायता के लिए दौड़ आते हैं ।

इस संदर्भ में अनेक देशों, दर्शनों में विभिन्न मन्तव्य हैं । उनमें से एक यह है कि मनुष्य की अन्तरात्मा में देव और दैत्य दोनों पक्षों का निवास है । दोनों ही मनुष्य को अपनी-अपनी ओर खींचते रहते हैं । वह जिसे प्रिय समझता है, उसी की गोद में जा बैठता है । इस तरह वह अपने भविष्य को बुरा या भला स्वयं ही बनाता है । आधे मन से एक का, आधे मन से दूसरे का समर्थन करने से अन्तर्द्वन्द्व खड़ा होता है । फलत: शारीरिक और मानसिक स्वस्थता गड़बड़ाती है । दैत्य नरक में घसीट ले जाता है और देव उसे स्वर्ग गमन में सहायता करता है ।

समाजशास्त्रियों का मत है कि मनुष्य में ही तीन वर्ग के लोग हैं । देव, पशु और पिशाच तीनों की आकृति तो एक जैसी होती है, पर प्रकृति में अन्तर रहता है । देव सत्प्रयोजनों में निरत रहते हैं । पशुओं को स्वार्थ साधने में ही रस आता है और पिशाच ध्वंस करते एवं त्रास देते रहते हैं ।

पुराणों की कथाओं के अनुसार देवता और मनुष्य इसी लोक में घुल-मिलकर रहते थे, एक दूसरे का सहयोग भी करते थे और विग्रह भी खड़े करते थे । अर्जुन एवं दशरथ देवताओं के पक्ष में लड़ने के लिए गये थे और रावण, मेघनाथ ने कुबेर का वैभव छीन लिया था, काल को खाट की पाटी से बाँध लिया था । नारद जब चाहते थे, तब विष्णु जी से वार्त्ता समाधान करने के लिए देवलोक जा पहुँचते थे ।

एक प्रकरण ऐसा भी आता है कि गुरु बृहस्पति ने देवताओं की विलासप्रियता से रुष्ट होकर उन्हें शाप दिया था कि तुम लोग अमर तो रहोगे, पर देवलोक में सन्तानोत्पादन न कर सकोगे । फलत: किसी देवता की उसके बाद कोई संतान नहीं हुई । मेनका को विश्वामित्र से सम्पर्क साधने आना पड़ता और उनसे उसे शकुन्तला पुत्री प्राप्त हुई जो कण्व ऋषि के आश्रम में पली । उर्वशी अर्जुन से विवाह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना चाहती थी, पर अर्जुन की संयमशीलता के कारण बात बनी नहीं ।

कुन्ती को इस विषय में सफलता मिल गई । उसने पाँचों पांडव देवाराधन के आधार पर तीन अपने और दो माद्री के गर्भ में प्राप्त किये । वे देवताओं की संतान माने गये हैं । एक उपाख्यान ऐसा भी आता है कि दिति और अदिति नामक महिलाओं से देव और दैत्य उत्पन्न हुए । ईसा का जन्म तो कुमारी मरियम के पेट से हुआ था, पर उनके पिता स्वर्गस्थ परमात्मा थे ।

देवताओं को जब सन्तानोत्पादन की आवश्यकता हुई तब उन्हें मनुष्य लोकवासियों के साथ ही सम्पर्क साधना पड़ा है । शिवजी पृथ्वी पर आये, कैलाश पर्वत पर रहे । राजा हिमाचल की कन्या पार्वती के साथ उनका विवाह हुआ और उन्हीं से दो पुत्र प्राप्त हुए ।

अवतारों को जन्म धारण करने के लिए पृथ्वी पर ही आना पड़ा है । उनमें से अधिकांश मनुष्य माता पिता के संयोग से ही जन्मे हैं । राम के अनन्य सहायक हनुमान को पवन पुत्र माना जाता है ।

डार्विन ने मनुष्य के विकासवाद की कड़ी मनुष्य के पूर्वज बन्दर के साथ जोड़ी है, पर वे भी यहाँ मौन हैं कि इतना अद्‌भुत मस्तिष्क उसे किस परम्परा के आधार पर मिला । मानवीय मस्तिष्क गुह्य विद्याओं का भण्डार है । उसमें जीवन निर्वाह की कल्पना और चतुरता का विकास भौतिक अनुभवों से उपलब्ध हुआ है, पर आदर्शों के प्रति त्याग-बलिदान करने की प्रवृत्ति प्राणि परम्परा में नहीं आती, वह दैवी विभूति है इसी प्रकार अतीन्द्रिय क्षमताओं के सम्बन्ध में अभी जितनी जानकारी प्राप्त हो सकी है, वह भी कम चमत्कारी नहीं है । फिर भविष्य में जिन विशेषताओं के हस्तगत होने की आशा की जाती है, वे उसी स्तर की है जैसी कि ऋषियों को देवताओं के अनुग्रह से उपलब्ध होती थीं । मानवीय मस्तिष्क ने संसार में हलचल मचा दी है । ज्ञान और विज्ञान के अनेकानेक प्रसंगों में चमत्कार उपलब्ध किये हैं, पर विशेषज्ञों के अनुसार यह सब मस्तिष्क के सात प्रतिशत भाग का चमत्कार है । ९३ प्रतिशत तो गुह्य भाग ऐसा है जिसे जगा लिए जाने पर मनुष्य देवताओं के समतुल्य इसी शरीर में रहते हुए बन सकता है ।

लुप्त प्राय: संस्कृतियों के ध्वंसावशेष ऐसे मिले हैं जिनसे प्रतीत होता है कि मनुष्य अब की अपेक्षा भूतकाल में कहीं अधिक सुविकसित और सुसंस्कृत रहा है । दक्षिण अमेरिका में ऐसी अनेक अन्तर्ग्रही वेधशालाएँ पाई गई हैं, जो उच्च लोकों के साथ धरती के सम्बन्ध जुड़े रहने की बात की भी पुष्टि करती हैं । ईस्टर द्वीप की विशालकाय प्रतिमाओं के सम्बन्ध में भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे मनुष्य के साधनों से कब किस प्रकार बन सकी होंगी? बात तो पिरामिडों तक के सम्बन्ध में ऐसी ही कही जाती है ।

जर्मनी के वैज्ञानिक 'ऐरिकवान डैनिकेन' ने अपनी शोध पुस्तकों में विश्व भ्रमण के वर्णनों का उल्लेख करते हुए यह सिद्ध किया है कि मनुष्यों और देवताओं के बीच ११ अगस्त सन् १३४ ईसा से पूर्व तक घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं और वे इस धरती को अधिक सुसम्पन्न बनाने के लिए ऐसे काम करते रहे हैं, जो केवल मनुष्यों के तत्कालीन ज्ञान और साधनों के अनुसार किसी प्रकार सम्भव नहीं थे । इस बात को अब प्राय: ५००० वर्ष होने को आये हैं जिसमें देवता और मनुष्यों के सम्बन्ध शिथिल हो गये । इसका कारण धरती निवासी मनुष्यों के आचार व्यवहार एवं विश्वास में निकृष्टता की मात्रा बढ़ जाना है ।

पृथ्वी पर जिस प्रकार अन्तर्ग्रही शक्तियाँ उत्तरी ध्रुव पर उतरती हैं । उसी प्रकार मानवीय मस्तिष्क के ब्रह्मरंध केन्द्र की संरचना है । उसमें ब्रह्माण्डीय चेतना के अभीष्ट अंशों को आकर्षित और प्रतिष्ठित किया जा सकता है । उसी भाव को सक्षम बनाने के लिए ध्यानयोग की साधना की जाती है ।

श्री कृष्ण ने अपनी ही आकृति प्रकृति का पुत्र प्रद्युम्न पैदा किया था । अर्जुन ने महापराक्रमी अभिमन्यु को जन्म दिया था । अनेक ऋषियों ने भी अपने ही योग्यता के समतुल्य बालक जने थे, इसमें मात्र मानवीय रज-वीर्य ही नहीं वरन् आह्वान किया हुआ दैवी अंश भी सम्मिलित था । अब लोग कामुकता प्रधान हो गये हैं और उच्चस्तरीय दैवी विशेषताओं वाली नई पीढ़ी विनिर्मित करने का विशेष प्रयास नहीं करते अन्यथा इस भारत भूमि पर जन्मे ३३ कोटि देवताओं जैसी हर नई पीढ़ी का निर्माण हो सकता है । इसके लिए आवश्यक यह है कि मानवीय काय कलेवर में देवत्व की मात्रा का निरन्तर अभिवर्द्धन किया जाय ।

मानवीय सभ्यता का नवोन्मेष सुनिश्चित

इस धरित्री पर मानव रूपी जीव कब अवतरित हुआ, इस पर विकासवादियों से लेकर पुरातत्वविदों ने अपने-अपने समर्थन में ढेरों प्रतिपादन प्रस्तुत किये हैं । कुछ का कथन है कि पहले कभी जीवन योग्य परिस्थितियाँ इस ग्रह पर नहीं थीं । यहाँ का वातावरण जीवन योग्य विनिर्मित होने पर अन्य ग्रहों से देहधारी आये और उन्होंने मानव जाति को जन्म दिया । क्षुद्र अमीबा से, क्रमिक गति से विकसित होकर मानव इस स्थिति में पहुँचा है, यह विकासवादियों का मत है । आर्ष मान्यता अपने स्थान पर है कि मनुष्य प्रारम्भ से ही ईश्वर की एक श्रेष्ठ कलाकृति के रूप में जन्मा व उसी ने सभ्यता के विकास क्रम को आज की स्थिति में पहुँचाया ।

अब फ्यूचरॉण्टालाजिस्टो (भविष्यविज्ञानियों) की एक नयी पीढ़ी उभरकर आ रही है जो कहती है कि यह पृथ्वी अब रहने योग्य रही नहीं । मनुष्य के विकास की अन्धाधुन्ध गति एवं संसाधन दोहन की स्वार्थपरता की नीति में ऐसी परिस्थितियों को जन्म दे दिया है कि आवास हेतु मनुष्य को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्य ग्रहों पर निवास का कोई विकल्प सोचना पड़ेगा । इसके लिए वे अन्तरिक्षीय बस्तियों के बजाय ग्रहों को अधिक उपयुक्त मानते हैं व कहते हैं कि पृथ्वी की तरह ही वहाँ का वातावरण बदला जाना भी सम्भव है ।

'यूटोपिया' की इस मृग मरीचिका में उलझने के स्थान पर अच्छा होगा कि हम यह विचार करें कि देव-संस्कृति की आदर्शवादी मान्यताओं को देने वाली, उसी के आधार पर विकास की इस स्थिति में पहुँचने मानव जाति इसी ग्रह को सुव्यवस्थित सुरम्य बनाए । जनसंख्या विस्फोट एवं युद्धोन्माद की विकृति मन:स्थिति अध्यात्म मान्यताओं के अवलम्बन से बदली भी जा सकती है एवं कोई जरूरी नहीं कि इस ग्रह का अन्त वैसा हो जैसा कि निराशावादी स्वरों में वैज्ञानिक बताते हैं । यदि मन:स्थिति ऐसी ही रही तो क्या वह अन्यान्य ग्रहों को भी वैसा नहीं बना देगा, जो उसने पृथ्वी के साथ किया है, यह भी एक सोचने योग्य प्रश्न है ?

ऐसा अनुमान है कि लगभग पचास करोड़ वर्षों पूर्व इस धरती पर जीवन का उद्‌गम हुआ था, लेकिन चौदह करोड़ वर्षों तक की ही जानकारी संकलित फॉसिल्स आदि के आधार पर प्राप्त कर पाये हैं । चट्टानों पर पाये गये कंकालों के निशान से उनकी आयु का पता चलता है एवं यह जानकारी मिलती है कि उस काल का मनुष्य पूर्णत: विकसित एवं सभ्यता की पराकाष्ठा पर था । उस समय जो यहाँ के मूल निवासी थे, अन्य ग्रहों से आदान-प्रदान कर स्वयं को सुविकसित बनाया ।

सुप्रसिद्ध विद्वान लेखक 'एरिक वान डेनिकेन' ने इस तथ्य को प्रतिपादित करने के लिए मनुष्य मूलत: देव पुत्र है, सहस्रों मील यात्रा कर अनेक प्रमाण एकत्र किए व चित्रों के माध्यम से पुस्तकें प्रकाशित कीं । उन्होंने 'चेरियट्स ऑफ गॉड्स,' 'द एन्शीएण्ट गॉड्स' नामक पुस्तकों में यही प्रमाणित किया है कि अन्तरिक्ष यान पर सवार होकर मनुष्य सुनियोजित क्रम से इस ग्रह पर आया और उसने सभ्यता का विकास कर अपनी सन्तानें यहाँ छोड़ दीं । वे इसे एक सुनिश्चित तथ्य मानते हैं कि मानव देवताओं की सन्तति है—प्रारम्भ से ही श्रेष्ठ रही है, कालान्तर में उसी भले ही वर्तमान स्वरूप ले लिया हो । एक परिकल्पना प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं कि जहाँ स्तर युग की परिस्थितियाँ हों, वहाँ जब ये देव पुत्र उतरे तो उनके डीलडौल, सुविकसित यान एवं अन्यान्य उपलब्धियों को देखकर देवता ही समझा गया । उनके यान, प्रक्षेपास्त्र तथा अन्य विकसित वैज्ञानिक उपकरण यहाँ के निवासियों को मनुष्य की दैवी शक्ति के प्रतीक ही लगे । इस कल्पना के आधार पर उन्होंने सुदूर अतीत में झाँकते हुए लिखा है कि अब से कुछ हजार वर्ष पूर्व इस तरह की घटनाएँ निश्चित रूप से पृथ्वी पर भी घटित हुई होंगी और अन्य ग्रहों पर निवास करने वाले लोग, जिनका उल्लेख देवताओं के रूप में किया जाता है । भारत, पश्चिम एशिया, अमेरिका तथा मिस्र आदि देशों में उतरे होंगे और वहाँ के निवासियों ने उनको देवता कहकर सम्बोधित किया होगा ।

अनेक उदाहरणों तथा पौराणिक कथाओं का विश्लेषण कर लेखक डोनिकेन ने यह सिद्ध किया है कि भारतीय धर्म के अनुसार ब्रह्मा तथा मनु के नेतृत्व में सुमेरु पर्वत और सागर में दूसरे ग्रहों से देवताओं का अवतरण हुआ । मिस्र बेबीलोन आदि देशों में नूह, जर्मनों में ट्यूटनों के अनुसार मनस इत्यादि आदि पुरुषों का अवतरण इसी प्रकार अन्य ग्रहों से देवताओं का आगमन हुआ । एनीबिसेण्ट ने अपनी पुस्तक 'थियोसॉफी एण्ड रिलीजन' में लिखा है कि आर्यों का अस्तित्व पृथ्वी पर दस लाख वर्षों से है । भूगर्भशास्त्रियों और पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार भी आर्यों के समान, मेधावी और प्रतिभासम्पन्न जाति के प्रमाण इससे अधिक पुराने समय से पहले के नहीं मिलते । प्रश्न उठता है कि दस लाख वर्ष पूर्व क्या मनुष्य एकदम सभ्य, सुसंस्कृत तथा मेधावी हो उठा?

भारतीय धर्मग्रन्थों में पिछड़े, असभ्य या कम सभ्य लोगों के बीच इस प्रकार की अतिमानवीय क्षमता वाले असाधारण पुरुषों के आने और उनसे सम्पर्क स्थापित करने के अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं । इन विवरणों का विश्लेषण करते हुए सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो. हार्क्सटेवर ने लिखा है कि "अन्य ग्रहों से जब देवता इस पृथ्वी पर आये तो उन्होंने अपने ज्ञान तथा पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य जैसे सर्वगुण सम्पन्न प्राणी की सहायता से पृथ्वी के गर्भ में विभिन्न स्थानों, मूल्यवान खनिज भण्डारों को ढूँढ निकाला । भारत में उन्होंने भील, काले, गोरे आदि जातियों को प्रशिक्षित किया तथा द्रौणाचार्य, भीम जैसे प्रशिक्षित व्यक्तियों को दिव्यास्त्र प्रदान किये । महाभारत में उल्लेख आता है कि अर्जुन को दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए हिमालय की यात्रा करनी पड़ी और भगवान् शंकर को प्रसन्न करना पड़ा था ।" इस विवरण की गवेषणा करते हुए प्रो. हार्म्स टेनर ने लिखा है कि "प्रशिक्षित पृथ्वीवासियों को दिव्यास्त्र देते समय देवतागण उन्हें सतर्क कर देते थे कि इनका उपयोग केवल संकट काल में ही किया जाए । इतना ही नहीं देवता लोग अपने आपको तथा दिव्यास्त्रों को साधारण मनुष्यों से दूर ही रखते थे ।"

ज्ञान के धीरे-धीरे विकास होने की मान्यता के स्थान पर प्रशिक्षण और अभ्यास द्वारा उसके अर्जन की सम्भावना पर प्रकाश डालते हुए डा. ई. आ. एलाड ने लिखा है कि— "ज्ञान का आकस्मिक स्फोट या क्रमश: विकास नहीं होता । आरम्भ में उसका बीजारोपण करना ही पड़ता है जो प्रशिक्षण द्वारा ही सम्भव है । बाद में अभ्यास से उसे विकसित किया जा सकता है ।" इस सिद्धान्त की पुष्टि में डा. एलाड का कथन है कि— "यदि एक मनुष्य के बालक को यदि मानव समाज से अलग कर दिया जाए, जंगल में छोड़ दिया जाए अथवा किसी ऐसे स्थान पर इस ढंग से उसका पालन किया जाए कि मनुष्यों से उसका सम्पर्क ही न हो तो वह मनुष्यों जैसा व्यवहार कर ही नहीं सकेगा ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राचीन इतिहास के कई उदाहरण भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं । जिस समय यूरोप के लोग पाषाण युग की भूमिका में थे उस समय अर्थात् अब से करीब १० हजार वर्ष पूर्व मिस्रवासी सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँच गये थे । इसी तरह जिस समय यूनानी लोग कांस्य युग में थे उस समय इटालियन कांस्ययुग में प्रवेश कर चुके थे । इस तरह के अनेकानेक उदाहरण देते हुए डा. जॉन्स बोसन ने लिखा है कि— ''यदि मनुष्य जाति का इतिहास क्रमशः विकसित हुआ है तो क्या कारण है कि चीनी लोग ईसा के पूर्व ही बारूद और कपास का उपयोग करना जानते थे, जबकि पृथ्वी के अधिकांश भागों में रहने वाले लोग वृक्ष की छालों और पत्थर तथा लोहे के औजारों से ही अपना काम चलाते थे ।''

इस तरह के उदाहरणों और प्रमाणों के आधार पर यह तथ्य प्रमाणित किया गया है कि प्राचीनकाल में अन्य ग्रहों से आने वाले देवताओं ने अपने क्षेत्र के लोगों को न केवल तकनीकी ज्ञान से परिचित कराया, बल्कि उन्हें मानसिक शक्ति के प्रयोगों और चमत्कारों से भी अवगत कराया । इस आधार पर वे प्रमाणित करते हैं कि मन्त्र, योग, तप आदि द्वारा अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का पृथ्वीवासी इस प्रकार विकास कर सकें कि वे अष्टसिद्धियों और नवनिधियों के स्वामी बनें । ऋषि-मुनियों द्वारा शाप और वरदान देने तथा उनके पूरे होने का उल्लेख भी प्राचीन ग्रन्थों में आता है । यह शब्द शक्ति का ही चमत्कार है । अब वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा भी यह सिद्ध हो चुका है कि शब्द किसी भी पदार्थ के माध्यम से गतिवान हो सकता है तथा उसके लिए स्थान और काल की सीमाएँ कोई बाधा नहीं पहुँचाती

अब जबकि मनुष्य ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में चरमोन्नति के शिखर पर पहुँच गया है तो उसके द्वारा अर्जित उपलब्धियों के दो ही परिणाम सम्भावित हैं । एक तो यह कि वह इन उपलब्धियों का उपयोग अपने आपको अधिक सुखी, सम्पन्न और शान्त-सन्तुलित बनाने में करे तथा दूसरा यहाँ कि इन उपलब्धियों के उपयोग द्वारा सामूहिक आत्मघात का आयोजन कर डाले । परिस्थितियों का जो अवलोकन और विश्लेषण कर पाने में समर्थ है, वे दूसरी सम्भावना को ही अधिक बलवती बताते हैं ।

सम्भव है जैसे प्राचीनकाल में पृथ्वी पर किन्हीं अन्य लोकों से पधारे देवताओं अथवा विकसित, उन्नत सभ्यता के स्वामी मेधावी व्यक्तियों ने मानव जाति को प्रगति पथ पर बढ़ाया था, उसी प्रकार फिर किन्हीं और ग्रहों, अन्तरिक्ष में विद्यमान अनेकानेक सौर मण्डलों की नीहारिकाओं में बसी सभ्यताओं से उन्नत मेधा के प्राणी आएँ, धरती के असन्तुलन को सन्तुलन में बदलें । यहाँ की व्यवस्था में हस्तक्षेप करें व समझदारी की ओर अग्रसर होने के लिये मानव को विवश कर दें । पृथ्वी पर जिस प्रकार दो राष्ट्र लड़ते हैं और कोई तीसरा देश शान्ति स्थापना के लिए मध्यस्थता करता है । अथवा दो व्यक्तियों की लड़ाई में तीसरा समझदार व्यक्ति बीच बचाव करता है अथवा किसी अशान्त और असन्तुलित और आत्मघात करने के लिए उतारू व्यक्ति को कोई बुद्धिमान व्यक्ति समझा-बुझाकर सही रास्ते पर लाता है, उसी प्रकार अन्य ग्रहों के विकसित प्राणी जिन्हें देवता ही कहा जाना चाहिए हस्तक्षेप करेंगे और मनुष्य को और अधिक उन्नत बनायेंगे सन् १९८२ में अमेरिका के बोस्टन शहर में विश्वविख्यात वैज्ञानिकों और चिन्तकों का एक सम्मेलन हुआ था जिसमें इस विषय पर विचार किया गया था कि अन्य लोकों के प्राणियों से सम्पर्क स्थापित होने पर क्या प्रभाव या परिवर्तन सम्भावित है ।

कुछ भी हो तथ्य अपने स्थान पर है कि मनुष्य समझदारी के बल पर ही आगे बढ़ा है एवं जिम्मेदारी के निर्वाह में अनौचित्य का समावेश होने पर प्रस्तुत परिस्थितियों ने जन्म लिया है । मेधावी, प्रतिभासम्पन्न अपने लोक में अभी भी हैं । हम कहीं और स्थान तलाशें इससे अच्छा होगा कि मानवीय चिन्तन को परिष्कृत कर इस ग्रह की सभ्यता का ही कायाकल्प करें । देव संस्कृति के मूल्यों की अवधारणा, अध्यात्म मान्यताओं का अवलम्बन, आदर्शवाद की पक्षधर स्थापनाओं के द्वारा वह लक्ष्य प्राप्त कर सकना सम्भव है जिसे धरती पर स्वर्ग कहकर पुकारा गया है । यह स्मरणीय है कि यह मनःस्थिति से ही उद्भूत होगा, साधन-सामग्री की प्रचुरता एवं वैभव द्वारा नहीं । यह समय समीप है, ऐसा दिव्यदर्शियों का अभिमत भी है ।

योगी अरविन्द का अति-मानस और धरती पर स्वर्ग

श्री अरविन्द के दर्शन की विशिष्टता यह है कि वे किसी अतिवादी मार्ग पर चलकर लक्ष्य तक पहुँचने को गलत मानते हैं और बुद्ध दर्शन पर ही विश्वास करते हैं, जिन्होंने हर क्षेत्र में मध्यम मार्ग को ही औचित्यपूर्ण बताया है, जैसा कि उनके दर्शन से स्पष्ट होता है । महर्षि अरविन्द योग एवं भोग दोनों की समन्वयात्मक मध्य स्थिति को ही सही मानते व अपनाने पर जोर देते हैं । इसी में पूर्वार्द्ध और पाश्चात्य दोनों जगत का हित साधन है । उनके विचार में योग के लिए घर-संसार छोड़ना जरूरी नहीं है । वे दैनन्दिन कर्म को ही योग मानते हैं और गीता के ''योगःकर्मसु कौशलम्'' सूत्र का समर्थन करते हैं उनका मानना है कि योग साधना जिस तन्मयता से मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघरों में भिन्न रूपों में चलती है, उसी तत्परता व लगन से वह ऑफिस-कारखानों में दैनिक दिनचर्या के साथ भी चलती रह सकती है । आवश्यकता है सिर्फ इसमें रस लेने की, अभिरुचि अन्तः से पैदा करने की ।

अरविन्द-दर्शन की सबसे बड़ी खासियत यही है कि उन्होंने अपनी कल्पना में आध्यात्मिक जीवन को पूरी मनुष्य जाति के लिए सम्भव बताया है और कहा है कि यह शक्ति हर व्यक्ति के अन्दर विद्यमान है और प्रयत्नपूर्वक उसे प्रकट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया जा सकता है । उन्होंने अपने दर्शन में न सिर्फ इसी सम्भावना को अभिव्यक्त किया है, वरन् इससे भी आगे की बात कही है कि सम्पूर्ण पृथ्वी को अतिमानवीय अतिमानस से अभिपूरित किया जा सकता है, सम्पूर्ण मानव जाति को अध्यात्मजीवी जाति के रूप में परिणत कर देव-स्तर तक पहुँचाया जा सकता है । फिर वह इसी मानव शरीर में, इसी लोक में उन समस्त सुखों व आनन्द को भोग सकेगा, जिसे अभी धरती पर अलभ्य, स्वर्ग में उपलभ्य माना जाता है । इस तथ्य का उद्घाटन उन्होंने अपने महाकाव्य 'सावित्री' में किया है । उसमें उन्होंने दावा किया है कि यह रूपान्तरण आयेगा और अवश्य आयेगा, परंतु यह कोई दैवी चमत्कार के रूप में घटित नहीं होगा न ही आकस्मिक रूप में आयेगा, वरन् इसकी प्रगति धीमे-धीमे होगी । वे कहते हैं कि— "मनुष्य का रूपान्तरण अवश्यभावी है, वह होकर रहेगा और मनुष्य अध्यात्मजीवी अवश्य बनेगा । परम चेतना के भीतर जो अद्भुत शक्तियाँ छिपी हैं, उसका प्रकटीकरण मानव में होकर रहेगा ।" महर्षि अरविन्द ने इसी जीवन को दिव्य जीवन की संज्ञा दी है ।

वस्तुत: यह कोरी कल्पना नहीं, अपितु एक ऐसा सर्वांगपूर्ण जीवन दर्शन है जो आत्मिकी के मूलभूत सूत्रों से जनसाधारण को परिचित कराता है । यह दर्शन यह सिखाता है कि अध्यात्म कायरों का नहीं, हिम्मत वालों, जीवट वालों के लिये है । अध्यात्म का अवलम्बन किसी को पराश्रित, निठल्ला नहीं बनाता, बल्कि उसे नर मानव से देव मानव बनाता, ऊँचे सोपानों पर चढ़ाता है ।

योगीराज अरविन्द का 'अतिमानस' वस्तुत: भगवद्-चेतना का ही पर्याय है जो कि कालक्रम में निकट भविष्य में प्रकट होने वाला है । यह विकास की अन्तिम स्थिति होगी । चरम विकास का अन्तिम सोपान । इससे पूर्व मन के चार निम्न सोपानों का योगीराज ने उल्लेख किया है, उच्चतर मन, प्रकाशित मन, संबुद्ध मन तथा ओवर माइण्ड । अतिमानस इन सभी से ऊपर की व अन्तिम स्थिति है ।

अरविन्द कहते हैं कि आज जो गहन अन्धकार मानवीय बुद्धि के सामने अज्ञानवश छाया हुआ है, उसे दूर कर पाना मानव के वश की बात नहीं । जब कभी यह धुँधलका छँटेगा तो वहाँ कोई चिन्तक अथवा विचारक नहीं होगा, होगा सिर्फ एक दृष्टा मानव-आत्म दृष्टा । फिर उसके लिए कुछ भी जानना, समझना असम्भव न होगा । योगीराज के अनुसार ज्ञान का अरुणोदय बुद्धि के अवसान के बाद ही होता है । अगले दिनों यही क्रम चलेगा और इससे अति मानव की उत्पत्ति होगी ।

बुद्धि के धरातल से ऊपर उठने के बाद मनुष्य में तीन प्रकार के रूपान्तरण का उल्लेख श्री अरविन्द ने अपने दर्शन में किया है— चैत्तिक, आध्यात्मिक और अतिमानसिक । अहं के विसर्जन को उन्होंने चैत्तिक अथवा 'साइकिक' रूपान्तरण कहा है । ज्ञान के अवतरण को आध्यात्मिक परिवर्तन के अन्तर्गत रखा, जबकि आरोह-अवरोह के अवलम्बन द्वारा अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति को उन्होंने अतिमानसिक उत्थान बताया है । सम्भवत: यही धरातल तैत्तिरीयोपनिषद् का विज्ञानमय कोश है ।

यद्यपि श्री अरविन्द ने इस रूपान्तरण-प्रक्रिया की पूर्णता की कोई निश्चित अवधि नहीं बतायी है, किन्तु यह उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि आरम्भ में यह रूपान्तरण स्वल्प लोगों को प्राप्त होगा । बाद में यही लोग समाज की धुरी साबित होंगे, जिसके गिर्द सारा समाज, सारा विश्व परिभ्रमण करेगा और अन्तत: उसका भी रूपान्तरण हो जायेगा ।

यह तो उन्होंने भविष्य-दर्शन के आधार पर कहा है, पर वस्तुत: श्री अरविन्द के योग का मूल उद्देश्य क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने एक बार कहा था—"पूर्ण योग उस शक्ति को, उस प्रकाश को, उस चेतना को, उस वास्तविकता को पृथ्वी पर अवतरित करता है, जो पार्थिव चेतना को ऊपर उठा सके, उसे सामान्य से असामान्य बना सके और जो कुछ भी इस धरित्री पर है, उसे पूर्ण रूप से परिवर्तित कर सके । एक ऐसा देवोपम वातावरण बनाने में समर्थ हो, जो धरती पर ही स्वर्ग की अनुभूति करा सके ।"

वे कहते हैं कि "किसी अन्य लोक की झलकी प्राप्त करना, ज्योति दर्शन होना, कोई आध्यात्मिक अनुभूति होना, 'स्व' की स्थिति से ऊपर उठ जाना, सार्वभौम आत्मा का अनुभव होना, यह तो हमारी आत्मिक प्रगति के आरम्भिक सोपान भर हैं । प्राचीन योगी इसी को इति श्री मानकर स्वर्ग-मुक्ति की कल्पना करते थे, यही उनका परम लक्ष्य होता था" ।

"पर हमारा उद्देश्य तो इससे बहुत ऊँचा है । हम चाहते हैं कि महत् चेतना, बाह्री चेतना को उतारकर शरीर स्तर तक लाया जाय, जिससे हममें सार्वभौमता पूर्ण रूप से संव्याप्त हो सके । यदि यह प्रथम शर्त ही पूरी न हो सकी, तो रूपान्तरण का पहला ही अनुबन्ध अधूरा रह जायेगा ।"

रूपान्तरण की इस प्रक्रिया में प्रकृति मानव से महामानव, नर से नारायण, क्षुद्र से महान् बनाने के लिए अपने-ताने-बाने बुनने लगी है, मगर श्री अरविन्द का विचार है कि चूँकि मनुष्य इस सृष्टि का सबसे श्रेष्ठ प्राणी है, उसमें सोचने-समझने की क्षमता है, अस्तु अगले विकास-क्रम में उसे प्रकृति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना पड़ेगा, तभी ऐसा संभव हो सकेगा । उनका कहना है कि अब तक की विकास-प्रक्रिया में पदार्थ से जीवन एवं जीवन से मन प्रादुर्भूत हो चुके हैं । अब अतिमन की बारी है, जो मन के भीतर अन्तर्निहित है । विकास के अगले क्रम में मनुष्य को इसी सोपान पर पहुँचना है ।

वे आगे कहते हैं कि बुद्धि की क्रिया-प्रतिक्रिया मनुष्य बहुत देख चुका । अब उसे ऊँचा उठाने में बुद्धि असमर्थ है, किन्तु फिर भी यदि मनुष्य उसी पर निर्भर रहा, तो फिर सम्भव है कि आगे उसका अस्तित्व ही न बच पाये । उनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विश्वास है कि प्रकृति की ओर से बुद्धि मानव को सहायक के रूप में प्रदान की गयी थी, परन्तु यह उसका दुर्भाग्य ही है कि वह बुद्धि को ही अपना सर्वस्व मान बैठा और आज वही बुद्धि उसे पतन-पराभव के गर्त में धकेल रही है । वे कहते हैं कि यदि मनुष्य को अपना अस्तित्व बचाना है तो उसे अतिमन, अतिमानस को अपने अन्तःकरण में उतारना ही पड़ेगा । यही उसका दैवी अनुग्रह का अगला पड़ाव है और संकेत भी । बुद्धि का आश्रय छोड़कर प्रज्ञा में प्रवेश करना ही अब मनुष्य के लिये अभीष्ट है एवं यह उसे करना ही पड़ेगा ।

इस संदर्भ में अरविन्द-दर्शन की सबसे अधिक समानता पियरे टेलहार्ड द चार्डिन के चिन्तन के रूप में देखी जाती है । अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि फिनोमिना ऑफ मैन' में अनेक सम्भाव्यताओं के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानवीय विकास की अगली पद-यात्रा चेतना की ओर होगी और समाज अध्यात्मजीवी बनेगा, जिसमें न तो पारस्परिक विद्वेष होगा, न आपसी वैमनस्य । वह अपनी समस्त विपत्तियों, समस्त समस्याओं-संघर्षों से मुक्त होकर रहेगा, किन्तु टेलहार्ड का विश्वास है कि यह सब कुछ विज्ञान ही सम्पन्न करेगा, जबकि श्री अरविन्द इसका प्रतिवाद करते हैं । उनके विचार में विज्ञान में वह सामर्थ्य नहीं कि वह समाज को बदल सके, रूपान्तरण अध्यात्म ही कर सकने में समर्थ है, ऐसा वे मानते हैं ।

'मैन दि अननोन' एवं 'रिफ्लेक्शन्स ऑन लाइफ' के बहुचर्चित लेखक अलेक्सिस कैरेल की मूर्धन्य वैज्ञानिकों में गणना है । अनेकानेक तथ्यों-आँकड़ों के आधार पर वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि मानवीय सभ्यता बड़ी तेजी से विनाश की ओर अग्रसर हो रही है और यह सर्वनाश अब सिर्फ बुद्धि पर निर्भर रहकर नहीं टाला जा सकता । यहाँ पर वे भी योगी अरविन्द के स्वर-में-स्वर मिलाकर बोलते हैं कि यदि आगे विनाश को रोकना है, तो मनुष्य को बुद्धि से आगे का विकास करना पड़ेगा; उसे आत्मा और चेतना की ओर लौटना पड़ेगा और उन देवोपम गुणों को फिर से अपने अन्दर प्रतिष्ठापित करना होगा, जो कभी धर्म और अध्यात्म के साथ पुष्पित-पल्लवित हुए थे ।

कुछ बिन्दुओं पर नीत्से की भी श्री अरविन्द के साथ समानता देखी जा सकती है । कहा जाता है कि महर्षि से पूर्व सुपर मैन की कल्पना नीत्से ने ही की थी, किन्तु दोनों की इस सम्बन्ध में अवधारणा में जमीन-आसमान का अन्तर है, किन्तु एक अन्य स्थान पर दोनों का मतैक्य स्पष्ट झलकता है । योगिराज ने अब तक की विकास-यात्रा को अतिमानस के अवतरण की तैयारी मात्र कहा है; जबकि नीत्से का कथन भी इसी से मिलता-जुलता है । उसने स्वीकारा है कि अब तक का सम्पूर्ण मानवीय इतिहास सुपरमैन के पदार्पण की पूर्व तैयारी भर है । नीत्से ने इस बात को बार-बार दोहराया है कि मनुष्य का विकास अधूरा है और उसका अतिक्रमण होना ही है ।

हेनरी बर्सो और मार्टिन हेडेगर की तरह प्रसिद्ध उर्दू शायर मुहम्मद इकबाल ने भी मानवीय बुद्धि को विकास का रोड़ा कहा है और सम्पूर्ण मनुष्य जाति को उससे आगे बढ़ने का संदेश दिया है । उनकी निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है— "गुजर जा अक्ल से आगे कि यह चिरागे-राह है, मंजिल नहीं है ।" और कहना न होगा कि अरविन्द के भी लगभग यही शब्द हैं ।

एक पूर्ण मनुष्य की कल्पना करते हुए कबीर कहते थे—"पाछे पाछे हिर फिरैं कहत कबीर कबीर" । यह उक्ति पूर्णतः परिपूर्ण रूप से विकसित मानव पर चरितार्थ होती है । इकबाल ने, अध्यात्मवादी विकास की परिकल्पना कर मुहम्मद साहब के 'तखल्लकुबी अखलाक अल्लाह' अर्थात् "देवत्व को धारण करो" का पुरजोर समर्थन किया है । स्वयं वे कहते हैं— "खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तदबीर के पहले खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता ! तेरी रजा क्या है ।" यही वह पूर्ण मनुष्य है जिसे अरविन्द ने अध्यात्मजीवी महामानव कहा है और मार्टिन हेडेगर ने 'आथेंटिक बिइंग' । इकबाल ने इसी को 'नायबे इलाही' की संज्ञा दी है ।

वस्तुतः आने वाला समय मनुष्य के चरम विकास, परिस्थितियों के आमूलचूल परिवर्तन का युग है । दार्शनिक, दूरद्रष्टा मनीषी यह कहते ही आ रहे हैं, हमें अपनी भूमिका पहचाननी व निभानी भर है ।

मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण

सभी धर्म पुराणों में स्वर्ग की सुखद परिस्थितियों का सुविस्तृत वर्णन है । वहाँ रहने वाले देवताओं का ऐसा आकर्षक उल्लेख है जिसे पढ़ने से प्रतीत होता है कि यदि मनुष्य को उस स्थिति में रहने, उस स्तर तक पहुँचने का अवसर मिले तो उसकी चरम मनोवांछा-मनोकामना पूर्ण हो सकती है । यह धारणा सर्वथा कपोल, कल्पित नहीं हो सकती । इसके पीछे कुछ आधार अवश्य है । मरने के बाद किसी अदृश्य-अविज्ञात-लोक में वैसी परिस्थिति मिलती होगी, ऐसा मात्र श्रद्धा के आधार पर ही सोचा जा सकता है । उसके अस्तित्व का बुद्धिवादी प्रत्यक्ष प्रमाण परिचय नहीं मिलता । ऐसी दशा में भूत और भविष्य पर दृष्टि डालनी होगी और सोचना होगा क्या कभी वैसी परिस्थितियाँ ऐसे क्षेत्रों में रही हैं, जिनका प्रमाण परिचय मिल सके ? क्या वैसी सुखद सम्भावना है जिसमें मनुष्य को उस स्थिति में रहने का अवसर मिल सके । काम किसी अदृश्य लोक की कल्पना से न चलेगा । क्योंकि ब्रह्माण्ड विज्ञान की अद्यावधि खोजों में वैसा कुछ अता-पता नहीं चलता । भविष्य की आशा भी कम है, क्योंकि ग्रह-नक्षत्र जितनी दूर हैं वहाँ तक धरती के वातावरण में पली हुई चेतना का पहुँच सकना अति कठिन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । फिर उन वर्णित परिस्थितियों के कहीं होने की बात तो गले जरा भी नहीं उतरती । ऐसी दशा में यदि देवताओं के स्वर्ग को तथ्याधारित अन्वेषण करना हो तो चिर अतीत के इतिहास पृष्ठ पलटने पड़ेंगे जिसमें मनुष्य में देवत्व के उदय एवं धरती पर स्वर्ग के अवतरण की परिस्थिति उन दिनों बनी होने का उल्लेख है । रामराज्य सतयुग की धारणाएँ उसी स्तर की हैं । तब मनुष्यों की मन:स्थिति देवताओं जैसी थी और परिस्थिति स्वर्ग जैसी ।

क्या वैसे समय, वातावरण का पुन: वर्तमान जनसमुदाय को रसास्वादन करने का अवसर मिल सकता है । इस प्रश्न का उत्तर 'दूरदर्शी विवेकशीलता' 'हाँ' में देती है और कहती है कि वैसा नितान्त सम्भव है, किन्तु उसके लिए पुण्यात्मा होने की वही शर्त पूरी करनी पड़ेगी जिसमें संयम और परमार्थ के दो कदम उठाते हुए लक्ष्य तक पहुँचने की अनिवार्यता है । भूतकाल में यदि सतयुग रहा होगा या भविष्य में प्रज्ञा युग विनिर्मित होगा तो उसके लिए मनुष्य को वही रीति-नीति अपनानी होगी, वही दिशाधारा ग्रहण करनी होगी जिसे व्यवहृत करने पर पौराणिक स्वर्ग में पहुँच सकना सम्भव होता है ।

आज की खोज अब से उद्विग्न मनुष्य उस सुखद सम्भावना का रसास्वादन करने के लिए सहज लालायित हो सकता है यदि उसे विश्वास हो सके कि वैसा कभी सम्भव रहा है या हो सकता है । इस सन्दर्भ में पौराणिक या ऐतिहासिक प्रतिपादनों की एक बार उपेक्षा करने में भी दूरदर्शी विवेकशीलता के आधार पर यह सुनिश्चित विश्वास हो सकता है कि वैसा नितान्त सम्भव है । गणितीय आधार पर अध्यात्म विज्ञान और उसकी स्वर्ग मुक्ति, सिद्धि जैसी उपलब्धियों पर उसी प्रकार विश्वास किया जा सकता है जैसा कि भौतिक विज्ञान में, सुविधा साधन के क्षेत्र में प्रत्यक्ष कर दिखाया । गणित ही भौतिक विज्ञान का आधार है । उसी के सहारे अध्यात्म विज्ञान की उन विभूतियों के हाथ लगने पर भी विश्वास किया जा सकता है जिसमें सतयुग की पुनरावृत्ति का होना नितान्त सम्भव दीखता है, जिसमें मन:स्थिति और परिस्थिति के उच्चस्तरीय बनने पर उस परोक्ष प्रत्यक्ष में परिणति हो सकने की बात विश्वास योग्य दीखती है ।

मन:स्थिति ही परिस्थिति को जन्म देती है यह तथ्य मानवीय संरचना और मन:शास्त्र के सुनिश्चित सिद्धान्तों के सहारे हस्तामलकवत सिद्ध हो चली । अब वह मान्यता झीनी होती जा रही है जिसमें परिस्थिति की अनुकूलता से मन:क्षेत्र की प्रसन्नता मिलने की आशा की जाती है । सुविधाएँ मात्र शरीर को थोड़ा-गुद-गुदा सकती हैं । मन:क्षेत्र तो उस वातावरण में सन्तोष की साँस लेता है जिसमें आदर्श, सिद्धान्तों, मर्यादाओं और कर्त्तव्यों का परिपालन होता है । मानवीय गरिमा उत्कृष्टता पर अवलम्बित है । वह जहाँ भी, जितनी भी, जब भी उपलब्ध होगी, मनुष्य उतना ही सन्तुष्ट, प्रसन्न रहेगा । उतना ही स्वभाव और व्यवहार की दृष्टि से विशिष्ट होगा । व्यक्तित्व का स्तर इसी विशिष्टता के आधार पर आँका जाता है । यही है वह सार संक्षेप जिसे उच्चस्तरीय मन:स्थिति कहा जा सकता है । यह हस्तगत हो तो उन परिस्थिति के उपलब्ध होने में सन्देह न रहेगा जिसे पुरातन भाषा में बन्धन-मुक्ति या स्वर्गीय उल्लास के रूप में अलंकारिक वर्णनों के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

इसे प्राप्त करने की आकांक्षा यदि सचमुच ही जगे और जीवन की सार्थकता देखने का उत्साह यदि वस्तुत: उठे तो पुण्य अपनाने व पाप छोड़ने के रूप में उसका मूल्य चुकाना होगा । सभी जानते हैं कि प्रत्यक्ष पाप क्रिया-कृत्यों के रूप में शरीर द्वारा किये जाते हैं, पर यह दृश्य प्रवंचना है । शरीर जड़ है उसका प्रेरक मन है । इसलिए कठपुतली के नृत्य में बाजीगरी का कौशल काम करता माना होगा । मन:क्षेत्र की उत्कृष्टता, दूरदर्शी विवेकशीलता ही पुण्य निर्झरिणी का उद्गम स्रोत है । वहाँ विषाक्तता रहेगी तो जीवन व्यवहार का स्वरूप भी हेय स्तर का बनेगा । शरीर को दोष न देकर विज्ञजन सदा किसी के पाप-पुण्य की, उत्थान-पतन की विवेचना उसकी आस्था-आकांक्षाओं की बातें अन्तराल के साथ जोड़ते हैं । स्वर्ग-नरक के सन्दर्भ में यदि पाप छोड़ने और पुण्य अपनाने की आवश्यकता प्रतीत हो तो उसका व्यावहारिक रूप एक ही हो सकता है । अवांछनीय चिन्तन से विरत होने और उत्कृष्टता की सदाशयता अपनाने का साहस करना होगा । यही तत्व दर्शन का पुरातन निर्धारण रहा है, इसी को अध्यात्म विज्ञान के आधार पर वर्तमान प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर भी सर्वथा खरा उतरते देखा जा सकता है ।

पाप को अपराधों के रूप में और पुण्य को परमार्थ के रूप में दृश्यमान देखा जा सकता है, पर कुरेदने पर तथ्य दूसरे ही सामने आते हैं । पाप कर्म मात्र भ्रान्तियों के परिणाम हैं । दुर्बुद्धि जब उचित को अनुचित और अनुचित को उचित सुझा देती है, तभी मनुष्य सदाशयता का राजमार्ग छोड़कर पतन-पराभव के लुभावने गर्त में गिरने की ओर कदम बढ़ाता है । इसी प्रकार यदि विवेक जीवित रहे तो दूरगामी सत्परिणामों की सुखद सम्भावनाओं के सुनहरे चित्र सामने प्रस्तुत करता रहेगा और चिन्तन तथा चरित्र को एक कदम भी कुमार्ग पर न चलने देगा । मानसिक सन्तुलन सौमनस्य यदि बन पड़े तो उस क्षेत्र में विवेकशील दूरदर्शिता का ही साम्राज्य होगा और फिर मान्यताओं, आकांक्षाओं, विचारणाओं का प्रवाह उस दिशा में बह चलेगा जिसमें कृत्यों की पवित्रता प्रखरता के अतिरिक्त और कुछ बन पड़ने की सम्भावना ही नहीं है । पुण्य-पथ इसी को कहते हैं । पापों से आत्यन्तिक निवृत्ति इसी अवलम्बन के सहारे मिलती है । नरक से निवृत्ति और स्वर्ग सोपान में प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि यही है । उस शुभारम्भ-संकल्प और व्रत धारणा की बात बन पड़े तो समझना चाहिए कि पुण्यात्माओं को मिलने वाला स्वर्ग सहज सम्भव होगा । उस स्तर पर पहुँचने वाला या तो देवता बन जाता है अथवा देवताओं को उस क्षेत्र में रहने का अवसर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलता है । प्रतिपादन दो प्रकार होते हुए भी एक ही तथ्य यथास्थान, यथावत् बना रहता है ।

आँखों की बनावट कुछ विचित्र है, बाहर का कूड़ाकरकट देखती है भीतर की रत्न-राशि का पता ही नहीं चलता । हाथ भी विलक्षण हैं, धूलि मिट्टी में सने रहते हैं, पर भीतर की गन्दगी बुहारने का नाम नहीं लेते । मनःसंस्थान का क्या कहना दुनिया भर के संकटों से जूझता है, पर न जाने क्यों यह नहीं सूझता कि चेतना पर चढ़े कुसंस्कारों से छुटकारा पाने के साथ-साथ समस्त समस्याओं के समाधान का भी सहज हल ढूँढ़ा जाय । दोष तो दुष्प्रवृत्तियों को दिया जाता है, पर यह कोई बिरले ही जानते हैं कि तथ्यतः वह दुर्बुद्धि का अभिशाप भर है । भ्रान्तियाँ ही विकृतियाँ बनती हैं और विकृतियाँ प्रतिकूल परिस्थितियों के रूप में बदलकर अन्ततः विभीषिकाओं की विकरालता बनकर नग्न नृत्य करती हैं । यदि तथ्य तक पहुँचा जा सके तो एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि नरक से उबरने और स्वर्ग तक पहुँचने के लिए जिस पुण्य-परमार्थ की आवश्यकता होती है, उसका शुभारम्भ उन भ्रान्तियों से छुटकारा पाने के रूप में करना होता है जो अन्तराल, व्यक्तित्व, पराक्रम एवं वातावरण को विपन्न बनाने के लिए एकमात्र उत्तरदायी हैं ।

काम की बात वहाँ आकर टिकती है जहाँ सुखद सम्भावनाओं को साकार करने के लिए मनःक्षेत्र को निर्भ्रान्त, मान्यताओं का परिमार्जित, आदतों को विवेकसम्मत बनाने के लिए प्रचण्ड साहस जुटाना पड़ता है । व्यक्ति हो या समाज-राहत पाने का यही एकमात्र उपाय है कि समूचे विचार तन्त्र की एक बार नये सिरे से सफाई, धुलाई की जाय और अनुपयोगिता बहुत बढ़ गई हो तो उसे गलाने और नये ढाँचे में ढालने की हिम्मत सँजोई जाय । युग को इसी महती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इन दिनों महाकाल ने विचारक्रान्ति का, प्रज्ञा अभियान का, ज्ञान यज्ञ के नियोजन का, लोकमानस के परिष्कार का सन्देश भेजा है । इसे अपनाया जा सके तो नदियों में बहने वाली विषाक्तता का परिशोधन एक काया-कल्प उपचार का सुयोग सहज ही बन सकता है ।

मनुष्य प्रायः साढ़े पाँच फुट ऊँचा, डेढ़ सौ पौण्ड भारी, दाड़ी-मूँछ वाला—सोता, खाता, बोलता, लिखता, सजता, अकड़ता देखता भर है । वस्तुतः उसकी मूल सत्ता श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा के त्रिविध तत्व से विनिर्मित एक अदृश्य इकाई है, जिसे प्रकारान्तर से मान्यताओं और आदतों का पुंज कह सकते हैं । चेतना को निकृष्टता की सड़ी कीचड़ से उबारा जा सके । उत्कृष्टता की पुष्पवाटिका में बिठाया जा सके तो समझना चाहिए वह चमत्कार हो गया जिसे दार्शनिक आत्मसाक्षात्कार, ईश्वर दर्शन-धार्मिक स्वर्ग मुक्ति का जीवन लक्ष्य कवि हृदय, काया-कल्प और बुद्धिवादी समग्र क्रान्ति के नाम से पुकारते हैं । वस्तुतः इसका मूलभूत स्वरूप इतना ही है कि अवांछनीय मान्यताओं का एक बार पूरी तरह परिशोधन कर लिया जाय । जो विवक और औचित्य की कसौटी पर खरी उतरें उन्हें सम्मानपूर्वक, सुरक्षित रखा जाय, यथास्थान प्रतिष्ठित किया जाय साथ ही भ्रमजंजाल के मकड़ी जाल को साहस के साथ लम्बी झाड़-बुहार करके कूड़े के ढेर में पटक दिया जाय । इतना किये बिना उस दिव्य विचारणा की पुनः प्राण-प्रतिष्ठा हो नहीं सकेगी जो मानवीय गरिमा को जीवन्त रखती-व्यवहार से स्नेह-सौजन्य भरती तथा वातावरण को सम्पन्नता, प्रसन्नता से भर देने में पूरी तरह समर्थ है ।

लोकमानस के परिशोधन, परिष्कृतीकरण का महत्त्व इतना बड़ा है कि उसे सामयिक समाधान और उज्ज्वल भविष्य के अवतरण का सुसम्बद्ध कार्यक्रम कहा जा सकता है । दूसरे श्रेष्ठ कामों की आवश्यकता, उपयोगिता अपने स्थान पर बनी रहे, वे प्रयास अपने ढंग से चलते रहें, पर साथ ही इस उपेक्षित पक्ष को भी उभरने का अवसर दिया जाय जिसके माध्यम से समय के प्रवाह को पतन के गर्त में गिरने से रोका जा सकता है । विनाश को रोकने और विकास को गतिशील बनाने का यही मार्ग है ।

इस महत्त्वपूर्ण, कठिन किन्तु समय से निपटने के लिए नितान्त आवश्यक कार्य को करे कौन? उस उत्तर-दायित्व को वहन करने के लिए कन्धा किनका बढ़े? इसका उत्तर तलाशने के लिए युग मनीषा की ओर ही दृष्टि जाती है । वह उभरे तो ही प्रवाह पलटे । हम बदलेंगे, युग बदलेगा का सत्य और तथ्य जन-जन के गले उतारने युगान्तरीय चेतना को लोक मान्यता में सम्मिलित करने का कठिन काम और किसी के बूते का है नहीं । भागीरथ, दधीचि, बुद्ध, शंकर, गाँधी, विवेकानन्द जैसी प्रतिभाएँ उसे अपने ही क्षेत्र से निकालनी और सुविस्तृत कार्यक्षेत्र में खपानी पड़ेंगी ।

स्वर्ग क्या ? मुक्ति कैसे ?

व्यक्तिगत स्वर्ग और मुक्ति की बात सोचना अब हमे छोड़ देना चाहिए और समझना चाहिए कि इन्हें विखण्डित नहीं किया जा सकता । इनकी उपलब्धि कितनी ही मन्द गति से क्यों न हो, मिलेगी एक साथ ही । स्वर्ग मिलने की सम्भावना तभी है, जब जिस समाज में अपना रहना है, वह समुन्नत हो । निकृष्ट व्यक्तियों के साथ निकृष्ट वातावरण में रहते हुए हम अपना चरित्र एवं मानसिक सन्तुलन बनाये नहीं रह सकते । दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया सज्जनों पर भी होती है । फलस्वरूप वे अपनी उत्कृष्टता बनाये नहीं रह सकते । ऐसी दशा में कोई व्यक्ति सन्त या सज्जन ही क्यों न हो स्वर्ग की प्राप्ति न कर सकेगा । डाकुओं के बीच धनी का निर्वाह नहीं हो सकता, उसे कभी भी कोई दबोच लेगा । उत्कृष्टता यों उत्पन्न तो हरेक में हो सकती है, पर उसका पोषण और अभिवर्द्धन परिस्थितियों के खाद पानी से ही होगा । अकेले सुधरने से ही काम नहीं चलेगा, दूसरों को सुधारते हुए अपना सुधार सम्भव है । दूसरों को तारने का उपक्रम करते हुए हम भी तर सकते हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई देश पराधीन हो तो उसका एक भी नागरिक स्वाधीन नहीं हो सकता, स्वतन्त्रता पूरे देश को मिलेगी तभी उसका आम नागरिक भी स्वतन्त्र कहला सकेगा । दोष-दुर्गुणों से, कषाय-कल्मषों से, स्वार्थ और संकीर्णता से छुटकारा पाना ही मुक्ति है । लोभ और मोह को ही भवबन्धन कहा गया है । केवल ईश्वर से डरें और कर्त्तव्य पालन पर अडिग रहें तो फिर हमें किसी से भी डरने की आवश्यकता न पड़ेगी । जिसने कायरता को जीत लिया उसे समर्थ, स्वतन्त्र और निर्भय कहा जा सकता है । प्रलोभनों के आगे न झुकें, अनीति के आगे अधिक आपत्ति आने के डर से घुटने न टेकें, अनौचित्य को अस्वीकृत कर केवल विवेकसंगत और न्याय समर्थित को ही अंगीकार करें तो समझना चाहिए कि आत्मिक प्रगति को अवरुद्ध करने वाले असुरों पर विजय प्राप्त कर ली । आध्यात्मिक भाषा में मुक्ति का यही अर्थ है । जहाँ भगवान् और भक्त दो ही रह जाएँ, व्यक्ति और आदर्श दो का ही अस्तित्व हो, अवांछनीय प्रवृत्तियों के घुस पड़ने की जहाँ सम्भावना न हो, ऐसी मनःस्थिति को ही जीवन मुक्ति कहते हैं । यही मानव जीवन का परम लक्ष्य है ।

किन्तु यह मुक्ति भी एकाकी नहीं हो सकती, जिस प्रकार सारे देश को विदेशी गुलामी से मुक्त कराया जाता है, उसी प्रकार समस्त मानव समाज को निकृष्ट-चिन्तन व अवांछनीय कर्त्तव्य से विरत करना होगा अन्यथा एक कषाय-कल्मष दूसरे पर आच्छादित हुए बिना न रहेंगे । सूखी लकड़ी के साथ-साथ गीली लकड़ी भी जल जाती है । छूत की महामारी शुद्ध रक्त वालों को भी चपेट में ले लेती है तात्पर्य यह है कि कुछ ही मनुष्य सन्त बनकर मुक्ति के अधिकारी बन जाएँ-यह नहीं हो सकेगा ।

भगवान् बुद्ध ने इस तथ्य को समझा था, वे कहते थे— "संसार के समस्त प्राणियों के मुक्त हो जाने के उपरान्त ही मुझे मुक्ति मिलेगी । तब तक मैं बार-बार जन्म लेता और मरता रहूँगा । मुक्ति के लिये प्रयत्नशील तो रहूँगा, पर वह सर्वजनीन होगी, मेरे अकेले के लिए नहीं ।"

ऋषि ने ठीक ही कहा है, मुझे राज्य, सुख, स्वर्ग और मुक्ति आदि की कामना नहीं, दुःख-तप्त प्राणियों के कष्ट निवारण की ही कामना है ।"

स्वर्ग उत्कृष्ट चिन्तन का नाम है और मुक्ति आन्तरिक दुर्बलताओं से छूटना । यह विभूतियाँ समस्त मानव-समाज को उपलब्ध हो सकें, तभी व्यक्ति विशेष का कल्याण सम्भव होगा ।

त्याग से जीवन-मुक्ति

त्याग संसार का सर्वोपरि धर्म है, जिस पर समस्त सृष्टि-क्रम चल रहा है । त्याग धरती का अमोघ विधान है । "जो प्राप्त है, उसे छोड़ते रहो और आगे का वरण करो ।" यह त्याग मंत्र संसार और यहाँ के पदार्थों को नित्य निरन्तर विकास तथा परिवर्तन की ओर अग्रसर करता आ रहा है । इसी से प्रेरित होकर संसार का प्रत्येक पदार्थ पद-पद पर त्याग का नैवेद्य चढ़ाता हुआ अपने विकास-पथ पर आगे बढ़ रहा है । पेड़, पौधे, पशु, पक्षी तक भी किसी न किसी रूप में संसार की यज्ञशाला में अपने त्याग की आहुति देते रहते हैं । नदी, सरोवर, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र कोई भी तो स्थिर नहीं है, प्रत्येक क्षण में प्राप्त स्थिति का त्याग करके नवीन का वरण करते ही रहते हैं ।

संसार का नियम ही प्राप्त का त्याग करना और नवीन का वरण करते रहना है । इस नियम को जीवन का अंग बनाकर जीवन पथ पर चलते रहने में ही मनुष्य का कल्याण निहित है । लेने और देने, पाने और छोड़ने के विश्व-नियम को आत्मसात् करने में ही व्यक्ति का विकास निहित है, किन्तु जब मनुष्य सृष्टि के इन स्वरों में आवाज मिला कर नहीं गाता तो उसका जीवन गीत बेसुरा हो जाता है । लेने और देने की प्रक्रिया में मनुष्य सन्तुलन एवं सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता तो जीवन में विषम स्थिति पैदा हो जाती है, क्योंकि यह सृष्टि के नियम के साथ की जाने वाली असंगतता है ।

जब हम कहते हैं 'नहीं छोड़ेंगे' 'यह हमारा है ।' "ऐसे ही रखेंगे ।" "ऐसे ही रहेंगे ।" और संसार का नियम कहता है, "जो प्राप्त किया है उसका त्याग करो, नवीन का वरण करो," तो इन विरोध प्रणालियों से मनुष्य का जीवन संघर्ष का केन्द्र बन जाता है । एक ओर मनुष्य की सीमित सत्ता दूसरी ओर अमोघ विश्व नियम । अन्ततः जल्दी ही मनुष्य को परास्त होना पड़ता है । जिसे वह अपना बना कर, अपनेपन की सीमा में सँजोकर रखना चाहता है, उसे ही छीन लिया जाता है । जिसे मनुष्य छोड़ना नहीं चाहता उसे भी बरबस छोड़ना पड़ता है । धन, दौलत, ऐश्वर्य, समृद्धि, स्त्री-बेटे, सम्बन्धी जिन्हें मनुष्य अपने समझता है उन्हें भी छोड़ना पड़ता है और तो और यह देह जिसे वह अपनी मानकर चलता है, वह भी एक दिन विश्व नियम के मृत्युकरों द्वारा छीन ली जाती है ।

प्राप्त का त्याग, लेकर देने का नियम, त्याग का विधान अपार शक्तिशाली है, यह सब पर लागू होता है । यह बात अलग है कि मनुष्य इसे कैसे अपनाता है । स्वेच्छा से अथवा बरबस । इतना अवश्य है कि स्वेच्छा से किया जाने वाला त्याग मनुष्य को सन्तोष एवं शान्ति प्रदान करता है, तो बरबस कराये गये त्याग में उसे दुःख, क्लान्ति, अशान्ति, क्लेश का अनुभव होता है ।

वेद के तत्वदर्शी ऋषि ने कहा है—"**तेन त्यक्तेन भुंजीथा मागृधः**" अर्थात्—"हे मनुष्य, तेरे पास जो कुछ है उसका त्याग करते रहना तथा जो सहज ही प्राप्त है, उसी को लेकर सन्तुष्ट रहना, संग्रह मत करना, लोभ न करना ।"

हाँ, तो इस विश्व नियम के स्वरों में स्वर मिला कर जीवन गीत गाने पर मनुष्य का जीवन एक मधुर गीत बन जाता है जिसमें मुक्ति, उल्लास, आनन्द, सुख, शान्ति की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वर लहरियाँ गूँज उठती हैं । जिस तरह सामाजिक नियमों के अनुसार चलते रहने पर व्यक्ति अपने आप में स्वतन्त्र बन्धन रहित जीवन बिता सकता है, उसी तरह विश्व नियम के अनुकूल चलने पर भी मनुष्य जीवन के स्वाभाविक अधिकारों का पात्र बन जाता है । समाज के नियमों का उल्लंघन करने पर मनुष्य जिस तरह दण्ड एवं यन्त्रणाओं का भागी बनता है, उसी तरह विश्व नियम के विरुद्ध चलने पर मनुष्य अपने आप में ही बन्धन, जड़ता, आत्मिक क्लेश, अशान्ति एवं असंतोष का भागी बनता है ।

त्याग में मुक्ति है, स्वाधीनता है और त्याग ही अन्य प्रकार की प्राप्ति का आधार है । नीड़ में आबद्ध पक्षी शावक जब उन्मुक्त हो आकाश और धरती के विशाल प्रांगण में निकल पड़ता है तो सीमित से असीमित, क्षुद्र से महान् को प्राप्त करता है, तब वह सर्वत्र ही गति कर सकता है, उसके पंख नीड़ के संकीर्ण आवरण में बद्ध नहीं रहते, वह जी चाहे जितना उन्मुक्त हो सकता है ।

त्याग ही प्राप्ति का आधार है । एक का त्याग दूसरे की प्राप्ति का वरदान है । जो त्याग नहीं कर सकता उससे प्राप्त करने का अधिकार छिन जाता है । गर्भ आवृत्त शिशु अपनी माँ के प्यार, दुलार, वात्सल्य को सम्पूर्ण भाव से नहीं प्राप्त कर सकता, किन्तु ज्यों ही वह आवरण का त्याग कर भूमिष्ठ होता है तो पूर्णतर भाव से माँ को प्राप्त कर लेता है । इस प्राप्ति के साथ-साथ क्षुद्र संकीर्ण नाड़ी तथा गर्भ के बन्धनों से मुक्त हो वह विराट भूमा की छाया में, विश्व-प्रांगण में प्रवेश करता है ।

त्यागविहीन संग्रह अपनी जड़ता की जंजीरों में मनुष्य को जकड़कर बन्धन में डालता है, तो संग्रहविहीन त्याग भी मनुष्य को रिक्तता और शून्यता की ओर अग्रसर करता है, जहाँ जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता । हम संग्रह को लें, इसलिए कि त्याग कर सकें, दे सकें । हम त्याग करें, उत्सर्ग करें, क्योंकि हमने लिया है और आगे लेने के लिए स्थान रिक्त करना है । यह है— हमारे जीवन का मूल मंत्र । बिना संग्रह के त्याग नहीं हो सकता तो बिना त्याग के संग्रह भी निषिद्ध है, अपूर्ण है ।

शास्त्रकार ने भी यज्ञावशिष्ट को मुक्ति का आधार बताया है । त्यागमय भोग में ही जीवन की पूर्णता चरितार्थ होती है । केवल भोग ही भोग हो और त्याग न हो तो वह जीवन के लिए बन्धन बन जायेगा । जब भोग की आसक्ति मनुष्य को जकड़ लेती है तो वह दिनोंदिन विपत्ति और पतन की ओर अग्रसर होता जाता है ।

प्राप्ति और त्याग, लेने और देने का सामंजस्य हो, एक दूसरे को प्रभावशाली बनाकर मनुष्य का मुक्ति-पथ प्रशस्त करते हैं । वृक्ष अपनी जड़ों द्वारा उपयोगी सामग्री लेता है, उसका उपभोग करता है, पत्तियों द्वारा आकाश में आवश्यक तत्वों का संग्रह करता है, इसलिए कि फल, फूल, पत्तियाँ, लकड़ी, छाया, गंध आदि के रूप में संसार को कुछ दे सके । यदि वह ग्रहण नहीं करेगा तो दे भी नहीं सकेगा । इसी तरह नदी चारों ओर का पानी, अन्य नदी, नालों को अपने अंक में समेटती हुई नित्य निरन्तर आगे बढ़ती है, मार्ग के प्रदेशों को सरसब्ज शीतल तृप्त करती है और अन्त में विराट समुद्र को अगाध बनाये रखने के लिए निशेष: हो जाती है । मेघ बहुत जल समुद्र से अपने अंक में ले उड़ते हैं, किन्तु वे ही धरती पर आकर बूँद-बूँद के रूप में झर पड़ते हैं, धरती की प्यास बुझाते हैं । धरती माता मनुष्य से पर्याप्त श्रम, अन्न, जल, खाद आदि लेती है, किन्तु अपार अन्न राशि और लहलहाते खेतों का उपहार प्रदान करती है ।

माता-पिता, समाज, धर्म, संस्कृति, जन्मभूमि मानवता से हम बहुत कुछ लेते हैं । हमारा प्रौढ़ व्यक्तित्व, समृद्ध जीवन, प्रतिभा इसी का तो परिणाम का है । हम भी इन ऋणों को अनन्त गुने रूप में लौटाने के लिए तत्पर होंगे, उसी दिन से हमारी मुक्ति यात्रा आरम्भ हो जायेगी । शास्त्रकार ने कहा है—सौ हाथों से ले, हजारों हाथों से दान कर । हमें भी जीवन में प्राप्त अपनी शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता का पूरा-पूरा उपयोग कर विश्व को निरन्तर देते रहने का पुनीत यज्ञ प्रारम्भ कर देना है, तभी जीवन की सार्थकता हो सकेगी ।

सही अर्थों में जीवन्मुक्ति की परिभाषा

अद्वैत कहते हैं—एकात्मा को । जब दो सत्ताओं का विलय-विसर्जन एक में हो जाता है, तो यह अद्वैत की स्थिति कहलाती है । भक्त का भगवान् में, नर का नारायण में आत्मा का परमात्मा में मिलन-संयोग ही एकात्मता की स्थिति है । यह स्थिति प्राणी, पदार्थ और प्रकृति में समान रूप से पायी जाती है, जो आवश्यक और उपयोगी भी है ।

सूर्य, प्रकाश बाँटने में कभी भेद-भाव नहीं करता । वह यह नहीं सोचता कि अमुक व्यक्ति महान् है या क्षुद्र, ऊँच है या नीच, राजा है या रंक, वरन् सभी को समान रूप से प्रकाश प्रदान करता है । इसी प्रकार स्थान-भेद भी उसमें नहीं पाया जाता । यह नहीं विचारता कि कौन स्थान अच्छा है और कौन खराब, कौन गन्दा है और कौन स्वच्छ, अपितु समदृष्टी भाव से हर वातावरण पर रोशनी बिखेरता है । यह समता भाव ही अद्वैत की स्थिति है । जिस दिन सूर्य संकीर्ण और कृपण बनकर ताप और प्रकाश देना संसार को बन्द कर देगा, उसी दिन वह जलकर भस्म हो जायेगा । उसकी प्रचण्ड ऊर्जा उसे ही जलाकर राख कर देगी । पर ऐसा होता अब तक देखा नहीं गया । वह संसार-सृष्टि की आवश्यकता को समझते हुए निरंतर जलता रहकर अपनी ऊर्जा का अजस्र अनुदान लुटाता रहता है ।

हवा जब बहती रहती है, तो वह सुगंधित, सुरभित बनी रहती है, किन्तु जब वह एक कमरे में बन्द होकर सीमित-संकुचित हो जाती है, तो सीलनयुक्त बदबूदार बन जाती है । वायु का द्वैत भाव जाग्रत होकर जैसे ही औरों की उपेक्षा आरम्भ करता है, उन्हें अपनी शीतलता व सुख

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से वंचित करता है, वैसे ही हाथोंहाथ इसका दुष्परिणाम भी उसे भुगतना पड़ता है । वह दूषित हो जाती है ।

परमाणु के मूल कण यदि उससे विलग रहना चाहें, तो क्या यह सम्भव है ? इस स्थिति में तो वे अपना अस्तित्व भी सुरक्षित नहीं रख सकेंगे । वस्तुतः मिलकर रहने में, अद्वैत भाव में ही सब की सुरक्षा है । बूँद समुद्र-सरोवर के लिए है । उनके साथ एकाकार रहने में ही उसका श्रेय, सौभाग्य और जीवन है । पत्थर यदि इमारत की नीम में लगने के लिए तैयार न हो, तो वह कौड़ी मोल का रह जाता है । ऐसे रोड़े तो यत्र-तत्र हजारों पड़े रहते और नित्य कुचले-रौंदे जाते रहते हैं, पर वे ही जब भवन, अट्टालिकाओं में प्रयुक्त होते हैं, तो हजारों लाखों के बन जाते हैं । यह एकात्मता का परिणाम है । पत्थर अपने पृथक् अस्तित्व रखते हुए भी इमारत बनकर रहते हैं । यह अद्वैत का लाभ है । इसी को अनेकता में एकता कहा गया है ।

यह एकता और एकात्मता न सिर्फ प्रकृति और पदार्थ के लिए आवश्यक है, वरन् मनुष्य के लिए भी समान रूप से जरूरी है । मनुष्य समाज में रहता है, वह उसकी रचना करता और उन्नति-प्रगति की बात सोचता है । बदले में समाज भी उसकी देख-रेख, शिक्षा-दीक्षा, जीवन-यापन आदि का प्रबन्ध करता है । प्रकारान्तर से इसमें भी एकत्व का भाव है । मनुष्य यदि स्वयं की ही चिन्ता करने लगे और समाज की परवाह करना छोड़ दे, उसमें पृथक् हो जाय, तो क्या वह जिन्दा रह सकेगा ? फिर उसे भोजन, वस्त्र, शिक्षा, साधन कौन देगा ? जीवन की अन्य अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति में उसकी मदद कौन करेगा? निस्संदेह इसके लिए उसे समाज का अभिन्न अंग बनकर रहना पड़ेगा । परस्पर शरीर और मस्तिष्क का सम्बन्ध अनुभव करना पड़ेगा । जैसे ही उसके मन में व्यक्ति और समाज के अस्तित्व के प्रति दो पृथक भाव पैदा होंगे, उसका जीवन संकट में पड़ जायेगा । इससे बचने का एक ही उपाय है कि वह समाज में घुल-मिल कर रहे, उसे अपने शरीर का एक भाग समझे और उसी के अनुरूप उसके अभ्युदय व विकास की बात सोचे । इसी में उसकी स्वयं की गति-प्रगित और समाज का कल्याण है, अन्यथा जिस दिन उसमें सड़न पैदा हुई, व्यक्ति अपने को भी सुरक्षित नहीं रख पायेगा, उससे प्रभावित होगा और विनाश के गर्त में समा जायेगा ।

अद्वैत का अर्थ है— अहंकार नाश । जब तक व्यक्ति अपने अहं को नहीं मिटाता, तब तक उससे द्वैत भाव का परित्याग नहीं बन पड़ता । इस स्थिति में दूसरों के प्रति स्नेह-श्रद्धा का विकास नहीं हो पाने के कारण सामने वाला व्यक्ति सदा तुच्छ जान पड़ता है । उपेक्षा भाव भरा रहने के कारण समाज में घुलना-मिलना भी सम्भव नहीं हो पाता, फलतः ऐसा कोई कार्य नहीं बन पड़ता, जिससे उसे समाज का शुभचिन्तक कहा जा सके । पर जैसे-जैसे उसका अहं गलता जाता है, सेवा कार्यों के प्रति रुचि बढ़ने लगती है, वह तदनुरूप प्रवृत्ति अपनाने लगता है । जनता में जनार्दन की, विराट ब्रह्म की झाँकी होने लगती है और वह उनसे ऐक्य का अनुभव करने लगता है ।

अद्वैत अर्थात् प्रेम । यह प्रेम ही वह माध्यम है, जो एक को अनेक से जोड़ता है, दूसरों में अपनत्व का अनुभव कराता एवं परायेपन का भाव मिटाता है । जिस दिन मनुष्य प्रेम तत्व का परित्याग कर देगा उस दिन से सारा संसार उसके लिए नीरस, अरुचिकर, उबाऊ प्रतीत होने लगेगा । यहाँ तक कि घर-परिवार से, स्नेही-कुटुम्बियों के प्रति भी रुचि समाप्त हो जायेगी और उसका स्वयं का जीवन ही भारभूत बन जायेगा । फिर उससे समाज के लिए तो क्या, अपने लिए भी कुछ करते-धरते न बन पड़ेगा और समाज में रहते हुए भी एकाकीपन अनुभव करेगा । यह स्थिति प्रेम के विकास से ही समाप्त हो सकती है । तभी व्यक्ति स्वार्थ के सीमित दायरे से निकलकर अपना आत्म-विस्तार कर सकता और समाज से, विराट ब्रह्म से गहन तादात्म्य अनुभव करता है । ऐसी दशा में सारे लोग उसे स्वजन और समस्त विश्व अपना परिवार महसूस होता है । फिर उससे जो कार्य बन पड़ता है, उसमें अपने-परायेपन का कुछ भेद-भाव होता ही नहीं । समस्त कार्य अपने निजी जान पड़ते हैं और वैसी ही तत्परता व निष्ठा से वह उसे पूरा करता है । महापुरुषों, महामानवों में यही विशेषता होती है । वे इतना प्यार लुटाते और स्नेह बाँटते हैं कि सारा संसार ही उनका अपना बन जाता है । वे स्वयं में उनकी और उन में स्वयं की अनुभूति करने लगते हैं । यही समर्पण, विलय, विसर्जन है । आत्मसत्ता का विराट ब्रह्म सत्ता से एकाकार । इसी स्थिति में कार्य उच्चकोटि के बन पड़ते हैं ।

प्राचीन चीन में चित्रकारों को जब किसी वृक्ष, गुल्म या झाड़ी का चित्र बनाना होता था, तो वे उसके निकट तब तक बैठे रहते थे, जब तक उसकी अनुभूति न हो जाती । जब वे स्वयं अपने को उसके साथ एकाकार अनुभव करने लगते, तभी तस्वीर बनाना आरम्भ करते थे । इस अवस्था में जो भावाभिव्यक्ति होती, वह ऐसी सजीव होती, मानो साक्षात् उस गुल्म को उखाड़ कर कागज पर रख दिया गया हो ।

अद्वैत भाव की इसी स्थिति में सच्ची सेवा भी बन पड़ती है । जब तक व्यक्ति दूसरे की पीड़ा व वेदना की स्वयं अनुभूति नहीं कर लेता, तब तक उसके अन्दर वह कसक भी पैदा नहीं हो पाती कि उससे किसी की सहायता बन पड़े । ऐसा मनुष्य जाति से गहन एकात्मता का अहसास करने पर ही सम्भव है और यह स्थिति तभी उत्पन्न हो सकती है, जब हमारे अन्दर प्रेम का विकास हो—समाजप्रेम, राष्ट्रप्रेम, विश्व-प्रेम तथा मानव-प्रेम । इससे कम में मन का तार मन व मानवता से जुड़ ही नहीं सकता, अपनत्व का अनुभव हो ही नहीं सकता । इसीलिए ऋषियों ने भी इसकी आवश्यकता को समझते हुए इसे विकसित करने का निर्देश किया है—

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निश्चय ही, स्नेह-सौजन्य के विकास से ही परायेपन और द्वैत भाव का पलायन हो सकता है । नदी अपने भीतर कितने ही प्रवाहों को उदारतापूर्वक समेटकर समभाव हो जाती है । यदि वह इनसे घृणा करे और इनके मिलन-समागम पर आपत्ति करने लगे, तो उसका स्वयं का अस्तित्व भी खतरे में पड़ सकता है, असमय सूख सकती है । अतः नदी की गति प्रवाहों को अपने में समन्वित कर लेने और प्रवाहों का विकास नदी से आत्मसात् हो जाने में ही है । इसी को द्वैत भाव का नाश और अद्वैत में अवस्थित होना कहा गया है । कार्लमार्क्स के शब्दों में— "वन फॉर ऑल एण्ड ऑल फॉर वन" की यही स्थिति है । स्वर्ग-मुक्ति का आनन्द इसी में है । मनुष्य-समाज का यही चरम लक्ष्य है ।

विवेक के अवलम्बन से बंधनमुक्ति

मनुष्य को सहज रूप में स्वच्छंदता प्राप्त है । सोचने और करने के लिए वह बाधित नहीं है । कोई दूसरा इसके लिए विवश नहीं कर सकता, किन्तु ईश्वरप्रदत्त एक मार्ग-दर्शक सदा उसके साथ रहता है जो औचित्य की दिशा में इंगित करता रहता है । इतने पर भी अंदर की इच्छा शक्ति की प्रबलता और भी अधिक है, वह चाहे तो विवेक के संकेतों की अवेहलना भी कर सकती है । विवेक को यदि सक्षम और सक्रिय रखा जा सके, तो वह इतना समर्थ रह सकता है कि कुत्सित इच्छाओं का दमन कर सके, साथ ही सरल, सौम्य और नीरोग जीवन जी सके ।

इन दिनों मनुष्य की कुत्साएँ दो दिशाओं में भड़की हैं, जिसे वासना और तृष्णा कह सकते हैं । तृष्णा के वशीभूत होकर मनुष्य धनी बनना चाहता है । सही अर्थशास्त्र अपनाने पर कमाई का एक अंश में उन श्रमिकों को भी भागीदार रखना पड़ता है, जिनके पसीने से वह उपार्जन सम्भव हो सका । साथ में मुनाफे का उतना ही अंश रखना उचित है तो लागत से बहुत अधिक बढ़ कर न हो । फिर साथ ही पिछड़े लोग रह जाते हैं जिनकी परिस्थितियाँ दुर्बल सही और गुजारे का, प्रगति का समुचित साधन न प्राप्त कर सके । अभावग्रस्त रहकर अनेकानेक कठिनाइयाँ सहन करते हैं । इस वर्ग को मात्र परामर्श की ही नहीं, साधनों की भी आवश्यकता पड़ती है । उनका भी अंश उस कमाई में है, जिसे संतोषजनक या औसत भारतीय से अधिक कहा जा सकता है ।

अधिक कमाई के दो ही उपयोग हो सकते हैं— सुविधा संवर्द्धन एवं अहंकार प्रदर्शन । वासना और अहंता से ही तृष्णा की अतिवादिता अपनाकर जो कमाया है, उसे लगाया जा सकता है । बड़प्पन की यही निशानियाँ मानी जाती हैं । जो दूसरे नहीं उपयोग कर सकते, उसे अपने पास पाकर मनुष्य का अहंकार बढ़ता है । वह अपने को अपेक्षाकृत चतुर, भाग्यवान, गौरवशाली अनुभव करता है ।

अहंता की अभिवृद्धि किसी समय में लोगों को प्रभावित करती थी, उसका बड़प्पन स्वीकारा जाता था । अमीरी को पुण्यफल का प्रताप माना जाता था । तब लोग अपनी अमीरी का प्रदर्शन करने के लिए ऐसे खर्चीले काम करते थे, जिनके आधार पर उनका बड़प्पन स्वीकारा जा सके और अमीरी का सम्मान किया जा सके ।

किन्तु अब समय ने पलटा खाया है । सम्पन्न लोगों के बारे में जनसाधारण का दृष्टिकोण बदल गया है । अधिकांश लोगों की चोरी, मुनाफाखोरी और श्रमिकों के शोषण के सहारे सम्पन्नता बढ़ती है, ऐसा माना जाता है । ऐसा न भी हो तो पिछला समाज यह अपेक्षा करता है कि उनकी उन्नति में यदि सम्पन्नों ने श्रम या व्यवसाय के निमित्त सहयोग दिया होता, तो उनकी स्थिति इतनी बुरी न होती । यह आरोप किसी सीमा तक सही भी है । यदि पूँजी का एकत्रीकरण न हो और उसे बहुतों को समुचित पारिश्रमिक देने में लगा दिया जाय, तो कुछ आश्रय मिलने पर निश्चय ही गरीबी का अनुपात घट सकता है ।

एक हद तक यह भी सही है कि आलसी, अव्यवस्थित और दुर्व्यसनी लोग अपनी आजीविका को अस्त-व्यस्त करके उतने कष्ट सहते हैं जितने कि सुव्यवस्थित क्रम अपनाने पर उन्हें न सहने पड़ते, किन्तु लोगों में आत्म-निरीक्षण की दृष्टि कम और दोषारोपण की आदत अधिक है, इससे अमीरों को ही गरीबी का जन्मदाता कहा जाता है और कहा जाता है कि ऊँची मीनार खड़ी करने के लिए कहीं-न-कहीं उतना ही गहरा गड्ढा बनाना पड़ता है । अमीरी तभी जमा होती है जब अनेक को अनावश्यक रूप से गरीब बना देती है ।

कहा जाता है कि प्रतिभा और तत्परता के सहारे सम्पदा कमाई जाती है, पर उन्हें एकाकी क्यों माना जाय ? जब अध्यापक और चिकित्सक अपनी योग्यता का लाभ अनेक को मिलने देते हैं, तो प्रतिभाशाली और कौशलता के धनी उन विशेषताओं को जन-साधारण के हित में करें, तो एकाकी धनवान होने की अपेक्षा उससे अनेक की सम्पन्नता में अभिवृद्धि कर सकते हैं ।

तृष्णा को इसलिए बुरा कहा गया है कि वह अपनी उपलब्धियों को, एकाकी उपयोग को सीमित कर लेती है । यदि उसे इस दोष से बचाया जा सके, तो उसका स्वरूप बढ़े-चढ़े लोकमंगल के रूप में विकसित हो सकता है, जिस महत्त्वाकांक्षा में अनेक का हित साधन होता हो, उसे सराहा ही जायगा ।

प्रशंसा प्राप्त करने के लिए जो अपव्ययी ठाट-बाट जुटाया जाता है, उससे उपार्जित धन एक प्रकार से निरर्थक चला जाता है । मूल उद्देश्य अहंकार उभरकर ऊपर आ जाता है और प्रतीत होता है कि यह सब बड़प्पन जताने के लिए किया जाता है । अपना बड़प्पन प्रकारान्तर से दूसरों का अपमान है, उन्हें छोटा सिद्ध करता है । यदि उसके स्थान पर नम्रता की द्योतक सादगी अपनाई जाय, तो उससे दूसरों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को सम्मान मिलता है और इनके बदले जो छाप ग्रहण की जाती है उसमें अपेक्षाकृत अधिक सौजन्य और सद्भाव जुड़ा होता है । यदि वह प्रदर्शन में लगने वाला धन सार्वजनिक हित साधन के सेवा कार्यों में लगाया जाय, तो जितने यश की आशा की गई थी, उससे कहीं अधिक मात्रा में बिना प्रयत्न के ही मिल जाता है ।

वासना का अर्थ है—उपभोग । यह संयम से ठीक उलटा है । संयम द्वारा शक्तियों का संचय होता है और उस आधार पर शरीर जीवन भर सुदृढ़ बना रहता है । इसके विपरीत असंयमी अपनी स्वास्थ्य सम्पदा और बुद्धि-वैभव को धीरे-धीरे चुकाता चला जाता है । खजाना खाली हो जाने पर जिस प्रकार व्यवसायी को दिवालिया बनना पड़ता है, उसी प्रकार कायिक सुस्थिरता भी वासना के फूटे बर्तन से होकर टपक जाती है । सुन्दरता, सुदृढ़ता का ही दूसरा नाम है । कुरूपता काया की भीतरी शक्ति के जर्जर हो जाने का ही दूसरा नाम है । ऐसे व्यक्ति वस्तुतः दुर्बल होते हैं । यह दुर्बलता ही कुरूपता के रूप में प्रकट होती है । उसकी मात्रा बढ़ जाने पर स्थिति ऐसी बन जाती है कि काया का भार वहन करना भी कठिन पड़ता है, उसके लिए दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है । बात-बात में जब दूसरे का सहारा तकना पड़े, तो सेवा करने वाले भी खीजने लगते हैं । विवशता में जो सेवा करनी पड़ती है, वह भार रूप हो जाती है, भारभूत लगती है । ऐसी सेवा लेते हुए कृतज्ञता का भाव उत्पन्न नहीं होता, वरन् अपने ऊपर खीज आती है । अवज्ञापूर्वक की गई सेवा सुहाती नहीं, वरन् कंटक की तरह चुभती है ।

बढ़ी हुई दुर्बलता का नाम ही रुग्णता है । शारीरिक अवयव या तो उपयोगी बनकर रहते हैं या अनुपयोगी । जब उनकी स्थिति अनुपयोगी स्तर की होती है, तो पीड़ा, कसक, सूजन आदि के रूप में अपना परिचय देते हैं कि निरर्थकता की स्थिति में अपना काम समेट लेने की उत्सुकता और आतुरता प्रकट कर रहे हैं । जर्जरता ही रुग्णता है । रुग्णता मरण की पूर्वावस्था है । दुर्बल मरता है, पर घिसट-घिसट कर । इसके विपरीत जिसकी जीवनी शक्ति बनी हुई है, वह प्राण त्याग भी सरलतापूर्वक कर लेता है, उसका मरण काल अधिक लम्बा और अधिक कष्ट-कारक नहीं होता ।

यह सब शरीर और मन को विसंगतियों में डाल देने का ही परिणाम है । वासना, तृष्णा और अहंता इसी असंयम के रूप हैं । निश्चित ही मन ही मनुष्य है । यदि हम यह तथ्य समझ सकें, नित्य आत्मावलोकन कर सकें तो बंधनमुक्त मोक्ष की स्वर्गोपम मनःस्थिति में रहकर जीवन का वास्तविक आनन्द ले सकते हैं, जिसके कि हम हकदार हैं ।

भवबन्धनों से मुक्ति, मोक्षसिद्धि

साधना का तात्पर्य है, साध लेना, पशु प्रशिक्षक यही करते रहते हैं । अनगढ़ और उच्छृंखल पशुओं को वे एक रीति-नीति सिखाते हैं । उनको अभ्यस्त बनाते हैं और उस स्थिति तक पहुँचाते हैं जिसमें उस असंस्कृत प्राणी को उपयोगी समझा जा सके । उसके बढ़े हुए स्तर का मूल्यांकन हो सके । पालने वाला अपने को लाभान्वित हुआ देख सके । सिखाने वाला भी अपने प्रयास की सार्थकता देखते हुए प्रसन्न हो सके ।

समझा यह जाता है कि भक्त भगवान् को साधता है । उसको मूर्ख समझते हुए उसकी गलतियाँ निकालता रहता है । तरह तरह के उलाहने देता है । साथ ही गिड़गिड़ा कर नाक रगड़कर खीसे निपोरकर अपना उचित-अनुचित उल्लू सीधा करने के लिए जाल-जंजाल बुनता है । प्रशंसा के पुल बाँधता है । छिटपुट भेंट चढ़ाकर उसे फुसलाने का प्रयत्न करता है । समझा जाता है कि सामान्य लोगों से व्यावहारिक जगत में आदान-प्रदान के आधार पर ही लेन-देन चलता है, पर ईश्वर या देवता ऐसे हैं जिन्हें वाणी की वाचालता तथा शारीरिक मानसिक उचक-मचक करने भर से वशवर्ती किया जा सकता है । यह दार्शनिक भूल मनुष्य को प्रकारान्तर से प्रच्छन्न, नास्तिक बना देती है । एक नास्तिक वह है जो प्रत्यक्षवाद के आधार पर ईश्वर की सत्ता स्पष्ट दृष्टिगोचर न होने पर उसकी मान्यता से इनकार करते हैं । दूसरे प्रच्छन्न नास्तिक वे हैं जो उससे पक्षपात की, मुफ्त में लम्बी-चौड़ी मनोकामनाओं की पूर्ति चाहते रहते हैं । मनुष्य विधि व्यवस्थाओं को तोड़ता-छोड़ता रहता है, पर ईश्वर के लिए यह सम्भव नहीं कि अपनी बनाई कर्मफल व्यवस्था का स्वयं उल्लंघन करे या दूसरों को ऐसा करने के लिए उत्साहित करे, तथाकथित भक्त लोग ऐसी ही आशाएँ किया करते हैं । अन्ततः उन्हें निराश होना पड़ता है । इस निराशा की खीज और थकान से वे या तो साधना विधान को मिथ्या बताते हैं या ईश्वर के निष्ठुर होने की मान्यता बनाते हैं ।

आवश्यकता है भ्रान्तियों से निकलने और यथार्थता को अपनाने की । इस दिशा में मान्यताओं को अग्रगामी बनाते हुए हमें सोचना होगा कि जीवन साधना ही आध्यात्मिक स्वस्थता और बलिष्ठता है । इसी के बदले प्रत्यक्ष जीवन में बिना मरण की प्रतीक्षा किये स्वर्ग, मुक्ति और तृप्ति का रसास्वादन करते रहा जा सकता है । उन लाभों को उपलब्ध किया जा सकता है, जिनका उल्लेख अध्यात्म विद्या की महत्ता बताते हुए, शास्त्रकारों ने विस्तारपूर्वक किया है । सच्चे सन्त भक्तों का इतिहास भी विद्यमान है । खोजने पर प्रतीत होता है कि पूजा पाठ भले ही उनका न्यूनाधिक रहा हो, पर उन्होंने जीवन साधना के क्षेत्र में परिपूर्ण जागरूकता बरती । इसमें व्यतिक्रम नहीं होने दिया । न आदर्श की अवज्ञा की और न उपेक्षा बरती । भाव-संवेदनाओं में श्रद्धा, विचार, बुद्धि में प्रज्ञा और लोक-व्यवहार में शालीन सद्भावना की निष्ठा अपनाकर कोई भी सच्चे अर्थों में जीवन देवता का सच्चा साधक बन सकता है । उसका उपहार वरदान भी उसे हाथों हाथ मिलता चलता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषियों मनीषियों, सन्त-सुधारकों और वातावरण में ऊर्जा आभा भर देने वाले महामानवों की अनेकानेक साक्षियाँ विश्व इतिहास में भरी पड़ी हैं । इनमें से प्रत्येक को हर कसौटी पर जाँच-परख कर देखा जा सकता है कि उनमें से हर एक को अपना व्यक्तित्व उत्कृष्टता की कसौटी पर खरा सिद्ध करना पड़ा है । इससे कम में किसी को भी न आत्मा की प्राप्ति ही हो सकी, न परमात्मा की । न ऐसों का लोक बना और न परलोक । पूजा को शृंगार माना जाता रहा है । स्वास्थ्य वास्तविक सुन्दरता है । ऊपर से वस्त्राभूषणों से, प्रसाधन सामग्रियों से उसे सजाया भी जा सकता है । इसे सोना सुगन्ध का मिश्रण बन पड़ा माना जा सकता है । जीवन साधना समग्र स्वस्थता है । उसके ऊपर पूजा-पाठ का शृंगार भी सजाया जाय तो शोभा और भी अधिक बढ़ेगी, किन्तु यह नहीं माना जाना चाहिए कि मात्र शृंगार साधनों के सहारे सुन्दरता बढ़ती है । किसी जीर्ण-जर्जर, रुग्ण या मृत शरीर पर शृंगार सामग्री चढ़ा लीं जाय तो भी कुछ प्रयोजन कहाँ सधता है ? उससे तो उपहास ही होगा । इसके विपरीत यदि कोई हृष्ट-पुष्ट पहलवान मात्र लँगोट पहनकर अखाड़े में उतरता है तो भी उसकी शोभा बन जाती है । ठीक इसी प्रकार जीवन को सुसंस्कृत बना लेने वाले यदि पूजा-अर्चा के लिए कम समय निकाल पाते हैं तो भी काम चल जाता है ।

अध्यात्म विज्ञानी-तत्वदर्शी को अपने दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन आरम्भ करना पड़ता है । उसे सोचना होता है कि मनुष्य जीवन की बहुमूल्य धरोहर का इस प्रकार उपयोग करना है जिससे शरीर निर्वाह और लोक व्यवहार भी चलता रहे, पर साथ ही आत्मिक अपूर्णता को पूरी करने का चरम लक्ष्य भी प्राप्त हो सके । ईश्वर के दरबार में पहुँचने पर सीना तानकर यह कहा जा सके कि जो अमानत जिस प्रयोजन के लिए सौंपी गई थी उसे उसी हेतु सही रूप में प्रयुक्त किया गया ।

इस मार्ग में सबसे बड़े व्यवधान तीन हैं । इन्हीं को रावण, कुम्भकरण, मेघनाथ कहा गया है । यही देवी भागवत के महिषासुर, मधुकैटभ, रक्तबीज हैं । कंस, दुर्योधन, जरासंघ भी यही हैं । यह प्रायः साथ लगे रहते हैं और पीछा नहीं छोड़ते । इन्हीं के कारण मनुष्य पतन और पराभव के गर्त में गिरता है । पशु, प्रेत और पिशाच की जिन्दगी जीता है । नर वानर और पामर इन्हीं के चंगुल में फँसे हुए लोगों को देखा जाता है । वे हैं (१) लोभ, (२) मोह, (३) अहंकार । वासना, तृष्णा और लिप्सा इन्हीं के कारण उत्पन्न होती हैं ।

लोभ विजय के लिए सादा जीवन उच्च विचार का सिद्धान्त अपनाना पड़ता है । औसत नागरिक स्तर के निर्वाह में संतोष करना पड़ता है । ईमानदारी और परिश्रम की कमाई पर निर्भर रहना पड़ता है । लालची के लिए अनीति अपनाये बिना अपनी तृष्णा की पूर्ति कर सकना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं होता । संसार में इतनी ही सम्पन्नता उपजती है कि उससे हर किसी को जीवन धारण भर की सुविधा मिल सके । जो अधिक विलासी खर्च करेगा, वह प्रकारान्तर से दूसरों को उतना ही अभावग्रस्त रहने के लिए बाधित करेगा । इसीलिए शास्त्रकारों ने परिग्रह को पाप बताया है । विलासी, संग्रही और अपव्ययी की भी ऐसी ही निन्दा की है ।

अधिक कमाया जा सकता है, पर उसमें से निजी निर्वाह में सीमित व्यय करके शेष बचत को गिरों को उठाने, उठों को उछालने और सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन मे लगाया जाना चाहिए । राजा जनक, हर्षवर्द्धन जैसे उदाहरणों की कमी नहीं । मितव्ययी अनेकों दुर्व्यसनों और अनाचारों से बचता है । ऐसी हविश उसे सताती नहीं, जिसके लिए अनाचार पर उतारू होना पड़े । साधु-ब्राह्मणों की यही परम्परा रही है । सज्जनों की शालीनता भी इसी आधार पर फलती-फूलती है, अन्यथा लालची को अपना सारा समय, श्रम कौशल इसी निमित्त खपाते रहना पड़ता है । उस पर व्यस्तता छाई रहती है । जीवन लक्ष्य के पूर्ति कराने वाली परमार्थ परायणता अपनाने के लिए उसका न मन होता है और न कुछ करते बन पड़ता है । इसलिए जीवन साधना के इस प्रथम अवरोध को नियंत्रित करने वाला दृष्टिकोण कर जीवन साधना के साधक को अपनाना ही चाहिए ।

मोह वस्तुओं से भी होता है और व्यक्तियों से भी । छोटे दायरे में आत्मीयता को सीमाबद्ध करना ही मोह है । इसके रहते हृदय की विशालता चरितार्थ हो ही नहीं पाती । अपना शरीर और परिवार ही सब कुछ दीख पड़ता है । उन्हीं के लिए मरने-खपने के झँझट में फँसे रहना पड़ता है । "आत्मवत् सर्वभूतेषु और "वसुधैव कुटुम्बकम्" के दो आत्मवादी सिद्धान्त हैं । इनमें से एक को भी मोहग्रस्त कार्यान्वित नहीं कर सकता । इसलिए अपने में सब को और सब में अपने को देखने की दृष्टि विकसित करना जीवन यज्ञ के लिए आवश्यक माना गया है ।

परिवार छोटे से छोटा रखा जाय । पूर्ववर्ती अभिभावकों, बड़ों और आश्रितों के ऋण चुकाने की ही व्यवस्था नहीं बन पाती तो नए अतिथि क्यों न्यौत बुलाये जायें ? समय को, परिस्थितियों को देखते हुए अनावश्यक बच्चे उत्पन्न करना और परिवार का भार बढ़ाना परले सिरे की भूल है । समान विचारों के साथी सहयोगी मिलें तो विवाह करने में हर्ज नहीं, पर वह एक दूसरे की सहायता सेवा करते हुए प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिए ही की जानी चाहिए । इस घोर महँगाई और उत्पादन की कमी को देखते हुए जनसंख्या का भार बढ़ाना प्रत्यक्ष विपत्ति मोल लेने के समान है । परिवार को स्वावलम्बी और सुसंस्कारी बनाना ही पर्याप्त है । औलाद के लिए विपुल सम्पदा उत्तराधिकार में छोड़ मरने की भूल तो किसी को करनी ही नहीं चाहिए । मुफ्त का माल किसी को भी हजम नहीं होता । वह दुर्बुद्धि और दुर्गुण ही उत्पन्न करता है । संतान पर यह भार लदेगा तो उसका अपकार ही होगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पारिवारिक उत्तरदायित्वों को निबाहा जाना चाहिए उस कीचड़ में इतनी गहराई तक नहीं फँसना चाहिए कि उबर सकना सम्भव ही न हो सके । मोह को भवबन्धनों में से प्रमुख माना गया है । उस संकीर्ण दायरे में जकड़े हुए लोग लोकमंगल का कर्त्तव्य पालन कर ही नहीं पाते । जिन्हें सभी के प्रति पारिवारिकता का भाव अपनाने का अवसर मिलता है, उनके लिए हर किसी को आत्मीय मानने का, सभी की सेवा-सहायता करने का आनन्द मिलता है ।

अहंकार मोटे अर्थों में घमंड समझा जाता है । अकड़ कर उद्धत अशिष्ट व्यवहार करने, क्रोध-ग्रस्त रहने को अहंकार माना जाता है, पर वस्तुत: वह है अधिक सूक्ष्म और व्यापक । आत्म-प्रदर्शन में ठाटबाट में बढ़-चढ़ कर अपनी बड़ाई का रौब जमाना अहंकार का वास्तविक स्वरूप है । फैशन, सज-धज, शृंगार, ठाट-बाट, अपव्यय, शेखी, बड़प्पन आदि अहंकार के स्वरूप हैं । लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए, बड़प्पन जताने के लिए शेखीखोरी के लिए लोग ढेरों समय, श्रम और पैसा गँवाते हैं । गह भी एक प्रकार का नशा है जिसमें अपने को भले ही मजा आता हो, पर हर विचारशील को इसमें क्षुद्रता की, बचकानेपन की ही गंध आती है । इस विडम्बना के लिए चित्र-विचित्र रचनाएँ रचनी पड़ती हैं । ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न करने में भी अहंता की ही प्रमुख भूमिका रहती है । कलह और विग्रह भी प्राय: इसी कारण उत्पन्न होते हैं । अहंकार को आत्मघाती शत्रु माना गया है । ऐसे लोगों से आत्म-साधना तो बन ही नहीं पाती । उन पर उद्दण्डता का भूत और चढ़ा रहता है जो दूसरों को गिराने, नीचा दिखाने की ही ललक उठाती रहती है । अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करने में ही ऐसे लोग लगे रहते हैं । इन परिस्थितियों में आत्मोत्कर्ष और आत्म-परिष्कार का आधार कैसे बन पड़े ?

लोभ, मोह और अहंकार के तीन भारी पत्थर जिसने सिर पर लाद रखे हों उसके लिए जीवन साधना की लम्बी और ऊँची मंजिल पर चल सकना, चढ़ सकना असम्भव हो जाता है । भले ही कोई कितने ही पूजा-पाठ करते रहें, जिन्हें तथ्यान्वेषी बनना है उन्हें इन तीन शत्रुओं से अपना पीछा छुड़ाना ही चाहिए ।

हलकी वस्तुएँ पानी पर तैरती हैं, किन्तु भारी होने पर डूब जाती हैं । जो लोभ, मोह और अहंकार के भारी पत्थर अपनी पीठ पर लादे हुए हैं, उन्हें भव सागर में डूबना ही पड़ेगा । जिन्हें तैरना है, उन्हें इन तीनों भारों को उतारने का प्रयत्न करना चाहिए ।

अनेकानेक दोष-दुर्गुणों, कषाय-कल्मषों का वर्गीकरण-विभाजन करने पर उनकी संख्या सैकड़ों, हजारों हो सकती है, पर उनके मूल उद्गम तीन ही हैं—लोभ, मोह और अहंकार । इन्हीं भवबन्धनों से मनुष्य के स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर कैद में पड़े हैं । अन्त:करण पर इन्हीं के कषाय-कल्मषों का आवरण छाया रहता है । इनका उन्मूलन किए बिना आत्मा को उस स्वतंत्रता का लाभ नहीं मिल सकता, जिसे मोक्ष कहते हैं इन तीनों पर कड़ी नजर रखी जाय । इन्हें अपना संयुक्त शत्रु माना जाय । इनसे पीछा छुड़ाने के लिए हर दिन नियमित रूप से प्रयास जारी रखा जाय । एकदम तो सब कुछ सही हो जाना तो कठिन है पर उन्हें नित्यप्रति यथासम्भव घटाते-हटाते चलने की प्रक्रिया जारी रखने पर सुधार क्रम में सफलता मिलती ही चलती है और एक दिन ऐसा भी आता है, जब इनसे पूरी तरह छुटकारा पाकर पूरी तरह बन्धन मुक्त हुआ जा सके । यही जीवन्मुक्ति है, मोक्ष है ।

सच्चिदानन्द की आस्था और अनुभूति

परमात्मा का सच्चिदानन्द स्वरूप कहा गया है । उस विराट् का ही एक अंश होने से जीवात्मा भी उन्हीं गुणों से सुशोभित है । सत्, चित्, आनन्द ये तीनों मिलकर कारण शरीर का ढाँचा बनाते हैं । सत् अर्थात् शाश्वत, अजर, अमर और अविनाशी स्वरूप । चित् अर्थात् चेतना—दिव्य गुणों से सुसज्जित, उच्चस्तरीय आदर्शों-आस्थाओं से युक्त । आनन्द अर्थात् भाव सम्वेदनाओं, सरसता, मृदुलता से सिक्त अन्त:करण । आशा, उत्साह, संतोष के परस्पर समन्वय पर आधारित जीवनक्रम । आत्मा का सहज स्वभाव है ऊँचा उठना, अपने विराट् स्वरूप की स्वयं को प्रतिभूति बनाने के लिए इन्हीं गुणों से स्वयं को समृद्ध करना तथा अन्तत: समस्त आवरणों को हटाते हुए अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करना । परिष्कृत जीवात्मा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आध्यात्मिक पुरुषार्थ करती है एवं जीव-ब्रह्म सम्मिलन से नि:सृत परमानन्द की स्थिति को प्राप्त करती है ।

इस आत्म-गरिमा से अपरिचित मनुष्य भटकता है । यह विस्मृति अनेकानेक समस्याओं को जन्म देती है । इन्हें ही माया के आवरण-मनुष्य के विभ्रम कहा जा सकता है । ये ही रोग-शोकों के रूप में अन्तत: बाहर प्रकट होते हैं ।

सच्चिदानन्द का पहला चरण है 'सत्' । 'सत्' मनुष्य को जीवन के क्षणभंगुर होने का बोध कराता है । हम अजर, अमर, अविनाशी हैं । पंचतत्वों से बनी इस काया अवयवों के बिखर जाने पर भी हमारी सत्ता बनी ही रहेगी । यह बोध बना रहे तो भटकाव से बचा जा सकता है ।

सत् की अनुभूति व्यक्ति को यह विचार करने पर विवश करती है कि यह शरीर मरण-धर्मा है, परन्तु आत्मा कभी नष्ट नहीं होती । वह तो एक सतत् प्रवाह है । आत्मा का स्वास्थ्य ही मानव की समस्त सफलताओं का प्राण है, यह तभी सम्भव है कि जब मानव अपने वर्तमान जीवन को श्रेष्ठ, उदार तथा उदात्त भावनाओं से युक्त करने का प्रयास करता है । सत् परायण व्यक्ति आशावादी होता है । अपने कर्मों के फल के लिए वह उद्विग्न नहीं होता । स्वार्थ के लिए नहीं, परमार्थ के लिए जीता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत् में आस्था रखने वाला व्यक्ति सृष्टि को चलाने वाली बुद्धिमान, उद्देश्यपूर्ण व्यवस्था में दृढ़ विश्वास रखता है । वह जानता है कि विधि-विधानों, नियमों के अनुरूप चलने वाली इस सृष्टि की व्यवस्था में किसी तरह की अनुशासनहीनता, अनियंत्रण, अदूरदर्शिता का स्थान नहीं है । कर्मफल से पूर्णत: अवगत यह व्यक्ति अपनी समस्त गतिविधियों का निर्धारण सुघड़तापूर्वक करता है । वह जानता है कि आत्मा कभी नहीं बदलती । बदलता तो यह चोला है । फिर उसके लिए व्यर्थ मोह क्यों करना? अनावश्यक संग्रह एवं उपभोगों में स्वयं को लीन करना इस सृष्टि के मुकुटमणि मानव के लिए कतई शोभनीय है । ऐसा चिन्तन प्रखर होने पर स्वयं को ऊँचा उठा हुआ पाता है । आत्मिक प्रगति के विभिन्न सोपानों को पार करता हुआ वह अपने लक्ष्य तक जा पहुँचता है ।

अन्त:करण की दूसरी विशेषता है 'चित्' । उच्चस्तरीय आस्थाओं, मान्यताओं एवं आदर्शों से युक्त व्यक्ति 'चित्' परायण कहलाता है । 'चित्' अर्थात् स्वयं के विषय में उत्कृष्टतापूर्ण मान्यता, अपने लक्ष्य के प्रति चेतनता, सजगता । ये वे निष्ठाएँ हैं जो मनुष्य की जीवन यात्रा की रूपरेखा बनाती हैं । देवत्व में आस्था, आदर्शवादी उत्कृष्टता में अटूट विश्वास, सर्वोच्च सत्ता के प्रति समर्पण भाव 'चित्' के परिष्कृत स्वरूप हैं ।

ऐसे व्यक्ति लोकसेवी का, समर्पित व्यक्ति का जीवन जीते हैं । आदर्शों की बलिवेदी पर वे अपने समस्त स्वार्थों को होम देते हैं । उनकी सारी मान्यताएँ चिन्तन का खाका, व्यक्तित्व का ढाँचा इस तरह विनिर्मित होता है कि सम्पर्क में आया व्यक्ति भी उच्चस्तरीय जीवन की ओर अभिमुख हो जाता है । शहीद, समाज सुधारक, लोकसेवी, सन्त, सामान्य, पर जीवट के धनी व्यक्ति इसी श्रेणी में आते हैं । वे जो जीवन जीते हैं, आदर्शों रूपी ईश्वर को समर्पित होता है । अपनी निष्ठाओं के आधार पर वे स्वयं तो उच्च प्रगतिशीलता की भूमिका को प्राप्त होते ही हैं, सहज श्रद्धा व जन-सम्मान के भी पात्र बनते हैं । अध्यात्म उनके भीतर से प्रस्फुटित होता रहता है । क्रियाओं में, विचारणा में, भाव सम्वेदनाओं में प्रभु स्वयं आदर्शों के रूप में प्रतिभासित होते रहते हैं । ऐसे व्यक्ति अहंकार से कोसों दूर होते हैं । लोकेषणा से दूर वे जनसेवा को ही, उदारता-करुणा विस्तार को ही अपना परम लक्ष्य मानते हैं, इसी को उपासना कहते हैं ।

'चित्' एक ऐसा गुण है जो परिष्कृत स्वरूप में व्यक्ति को महामानव बना देता है, पर जब यही विकृति की ओर अग्रसर हो जाता है, तो अनेकानेक समस्याओं, मानसिक असन्तुलनों एवं शारीरिक सन्तापों को जन्म देता है । आदर्शवादिता से निष्ठा हटते ही पतन तेजी से होता है । दृष्टि बहिर्मुखी होने के कारण स्वयं के विषय में मान्यताएँ गरिमायुक्त नहीं रहतीं । श्रेष्ठ चिन्तन का अभाव एवं उत्कृष्टता के प्रति अनास्था अन्तत: उद्दण्डता को जन्म देती है । विकृत चिन्तन से सद्विचारों की अपेक्षा नहीं की जा सकती । सिद्धान्तों के प्रति अपनी दिव्यताओं के प्रति अनास्था मनुष्य को एकांगी, स्वार्थी एवं अहंकारी बना देती है ।

सच्चिदानन्द का तीसरा व अन्तिम पक्ष है 'आनन्द' । इसके बिना आत्मा की परिपूर्ण व्याख्या सम्भव नहीं जीवात्मा का लक्ष्य ही आनन्द है । इसे परिष्कृत भाषा में कहा गया है । **''रसो वै स:''**—वह परमात्मा रस से आनन्द से परिपूर्ण है । इस रस को प्राप्त करने के लिए विभिन्न मार्गों से साधक पुरुषार्थ करता है एवं सन्तोष का आनन्द लेता है । इस रस का अन्तरंग पक्ष है—भाव सम्वेदनाओं से लबालव अन्त:करण । करुणा, दया, सेवा-भावना, भक्तिभाव रस के परिष्कृत स्वरूप हैं । जब इनका विकास सहज स्वभाविक रूप से होता है, तो ये व्यक्ति को भावनात्मक दृष्टि से ऊँचा उठाते हैं । ऐसे महामानव विश्व मानवता की सेवार्थ अपने जीवन की आहुति दे देते हैं । इन्द्रियों से प्राप्त होने वाला आनन्द क्षणिक है, ऐसी मान्यता रखने वाले ये महापुरुष अपनी क्षमताओं का पूरा उपयोग उच्च उद्देश्यों की ओर नियोजित करने में करते हैं । जमा करने में नहीं, वितरण में विश्वास रखते हैं । परस्पर सौहार्द्र की वृद्धि ही उनका लक्ष्य होता है । उन्हें सद्विचारों, सद्भावनाओं एवं सत्कर्मों में रस आता है । यह अक्षुण्ण आनन्द उन्हें जिस ऊँचाई तक ले जाता है, उसे पाकर भौतिक आकर्षण उन्हें प्रभावित कर नहीं पाता ।

चेतना पर माया, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्स के जो आवरण पड़े हैं, इनके कारण जीव इस उद्गम स्रोत तक पहुँच नहीं पाता । प्यास निरन्तर बनी रहती है । कस्तूरी अपनी नाभि में लिये हिरन जिस प्रकार सुगन्ध की खोज में मारा-मारा फिरता है, उसी प्रकार जीव आनन्द की खोज में विविध योजनाएँ बनाता, कल्पना करता एवं अथक् प्रयत्न करता है । यह पुरुषार्थ असफल, असमाधानकारक ही होता है । अन्त:करण की गहन परतों में छिपे आनन्द के स्रोत की खोज बाह्य जगत में चलने के कारण भटकाव, थकान, अशांति, निराशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता ।

आनन्द की मिठास और भी गहन है । इसकी विकृति वासना, तृष्णा, अहंता के रूप में बाहर परिलक्षित होती है । आनन्द की प्रतिच्छाया होने के कारण वासना आकर्षक एवं लुभावनी लगती है । विषयों के सेवन में मन लगने लगता है तो व्यक्ति विलासी, प्रमादी, आलसी होता चला जाता है, जिह्वा का असंयम, कामेन्द्रियों का उपभोग, संग्रह का लोभ अनेकानेक मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों को जन्म देता है ।

विषयों के सेवन में जब इतनी तृप्ति एवं तुष्टि मनुष्य को मिलती है तो उसके मूल स्रोत में कितनी मिठास होगी, यह कल्पना मात्र से ही हृदय पुलकित हो उठता है । भगवान् रसमय है । इस रस को आत्म-सत्ता के रूप में ईश्वर ने मनुष्य को धरोहर बनाकर दिया है । यह रस भौतिक नहीं आत्मिक है । इसे अन्त:करण के उल्लास, सन्तोष, शांति जैसी दिव्य सम्वेदनाओं के रूप में अनुभव किया जाता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भक्तिरस की धाराएँ ऐसे ही अन्तःकरण में बहती हैं । ये ही कभी मीरा, कभी चैतन्य एवं कभी रामकृष्ण परमहंस जैसी विभूतियों के रूप में प्रकट होती हैं । सर्वोच्च सत्ता, परमब्रह्म से, मिलन संयोग की स्थिति ऐसी ही जाग्रति पर आती है ।

सत्, चित्, आनन्द की अनुभूति एवं सुनियोजित सद्गति व्यक्ति को कहीं का कहीं पहुँचा देती है । इसी अनुभूति का अभाव भटकाव को जन्म देता है । कारण शरीर की इन तीन धाराओं को, उनके उद्देश्य को एवं विकृति के दुष्परिणामों को जानना आवश्यक है । समस्त व्याधियों के मूल में जो बीज है, वह है व्यक्ति की स्वयं के मरण-धर्मा होने की अनुभूति न होना, आदर्शवादी, उत्कृष्टता में विश्वास का अभाव तथा आनन्द की प्राप्ति हेतु बाह्य जगत में भटकाव । मनुष्य आत्म-गरिमा से यदि परिचित होने का प्रयास करे, तो वह जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि-रसानुभूति का आनन्द ले सकती है । समस्त विकारों से मुक्ति मिल जाती है जब व्यक्ति स्वयं की अजरता, अमरता पर चिंतन करता है । नश्वर शरीर के लिए वह अपनी क्षमताएँ नष्ट नहीं करता, वरन् सत् की खोज, चित् की स्वीकारोक्ति व आनन्द की अनुभूति में अपने जीवन का सदुपयोग कर परम लक्ष्य को प्राप्त करता है ।

आत्मा में परमात्मा का अवतरण

आत्मा की व्याख्या दार्शनिक अपने-अपने ढंग से करते रहे हैं । डेकार्ट कहते हैं—हर व्यक्ति अपने आत्मिक अस्तित्व का साक्षी स्वयं है । वह सोचता है—मैं सोचता हूँ, मैं बोलता हूँ, मैं सुखी हूँ , मैं दुःखी हूँ । अपने आपे की जो अनुभूति और समीक्षा कर सकता है, वही आत्मा है । काण्ट का कथन है—आत्मा का अस्तित्व यदि प्रत्यक्षवाद के अनुसार प्रमाणित न हो सके तो वह विश्वास नैतिकता की रक्षा दृष्टि से भी नितान्त आवश्यक है ।

अरस्तू शरीर को आत्मा का आकार मानते थे और आत्मा को मोम और शरीर को मोमबत्ती का उदाहरण देकर समझाते थे । सुकरात ने मरते समय अपने शिष्यों को आत्मा सम्बन्धी अपने विचारों को विस्तारपूर्वक दुहराया था । वे कहते थे—"सम्वेदनाओं को धारण किये रहने वाली सत्ता को मोटेतौर से आत्मा समझा जा सकता है । दार्शनिक लुक्रेटियस का मत जैनधर्म की उन मान्यताओं से मिलता है, जिसमें इस पृथ्वी के प्रत्येक कण में आत्मा का अस्तित्व माना गया है । वैसी ही मान्यता वेदान्त दर्शन की भी है । मेविलियम जेम्स का कथन है कि शरीरगत चेतना की नवीनतम व्याख्याएँ लगभग वहीं जा पहुँचती हैं, जिसका प्रतिपादन आत्मवादी अपने ढंग से करते रहे हैं और उसका पृथक् अस्तित्व मानते रहे हैं ।

तत्वदर्शियों के अनुसार इस सृष्टि के सात लोक हैं । वे ऊपर-नीचे नहीं हैं और न किसी नक्षत्र में अलग-अलग बस्तियों की तरह बसे हुए हैं, वरन् स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम, अतिसूक्ष्म के स्तर पर अधिकाधिक अदृश्य होते चले गये हैं । वे परस्पर एक दूसरे में प्रविष्ट होकर रह रहे हैं । यह सूक्ष्म लोक जिन पदार्थों से बने हैं, वे अपने सम्पर्क में आने वाले भौतिक पदार्थों से अधिक सूक्ष्म हैं इसलिए न यन्त्रों की पकड़ में आते हैं और न इन्द्रिय अनुभूतियों के सहारे जाने जा सकते हैं । इन्हें अनुभव करने का आधार विकसित आत्मचेतना ही हो सकती है ।

मरणोत्तर जीवन पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थों में सी. डब्ल्यू. लैड वीटर की 'दि अदर साइड ऑफ डैथ' और श्रीमती ऐनी वीसेन्ट की 'लाइफ आफ्टर डैथ' अधिक प्रख्यात है । उन्होंने भौतिक जगत के अन्तराल में विद्यमान सूक्ष्मलोक के अस्तित्व पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है और कहा है कि उसमें आत्माएँ सूक्ष्म शरीर में उसी प्रकार निवास करती हैं जैसे कि हम लोग स्थूल शरीर से इस प्रत्यक्ष संसार में जीवनयापन करते हैं । मैडम ब्लैवैटस्की, कर्चल आटक्रीट आदि ने भी इस संदर्भ में अपनी मान्यताओं का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है ।

सात लोकों की तरह आत्मा के भी सात शरीर हैं । स्थूल शरीर को क्रिया लोक कह सकते हैं । सूक्ष्म शरीर को विचार लोक और कारण शरीर को भावना लोक । यह मोटी तीन परतें हैं, पर यदि इनका बारीकी से विश्लेषण किया जाय तो वे तीन न रह कर सात हो जाती हैं । इनके विभिन्न नाम हैं । इनमें से प्रत्येक परत अधिक शक्तिशाली और अधिक सम्वेदनशील है । हम स्थूल से सूक्ष्म की परतों में जितना अधिक प्रवेश करते हैं उतना ही अधिक गहरी सशक्ता का समुद्र लहलहाता दीखता है ।

चेतना के विकास का लक्षण यही है कि ससीम से आगे बढ़कर असीम में प्रवेश करें । चिन्तन की दृष्टि से इसे आत्म-विस्तार कह सकते हैं । संकीर्ण स्वार्थपरता की परिधि तोड़ कर "-आत्मवत् सर्वभूतेषु" की मान्यता बना लेने वालों का आचरण विश्व नागरिक जैसा होता है और वे परमार्थ प्रयोजनों को ही वास्तविक स्वार्थ साधन मानते हैं । वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से ओत-प्रोत होकर वे अपना क्रिया-कलाप इस स्तर का बनाते हैं जिसके आधार पर लोक-मंगल के महान् प्रयोजनों में अपनी क्षमता संलग्न रह सके । यह आत्म-विकास या आत्म विस्तार हुआ । अध्यात्मवादी इसी दिशा में प्रत्यनशील रहते और आगे बढ़ते हैं ।

बात जानने तक ही सीमित नहीं है सूक्ष्म प्रकृति पर जितनी मात्रा में आधिपत्य होता जाता है उसी अनुपात से उसकी विचित्र शक्तियों का उपयोग करने का अधिकार भी मिल जाता है । जिस प्रकार स्थूल सम्पत्ति का लाभ किसी दूसरे को दिया जा सकता है, उसी प्रकार सूक्ष्म जगत की विभूतियों से भी अपने प्रिय पात्रों को लाभान्वित क़िया जा सकता है । यह सामर्थ्य वरदान की शक्ति कहलाती है । इसी प्रकार कुपित स्थिति में अपनी मानसिक चेतना का प्रहार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करके किसी की हानि भी की जा सकती है । इसे शाप की शक्ति कहते हैं । अभिशप्त व्यक्तियों अथवा पदार्थों की दुर्गति होने के कितने ही उदाहरण समय-समय पर मिलते रहते हैं ।

ब्रह्म चेतना में प्रवेश करके हम उच्चस्तरीय, अतिमानवीय उत्कृष्ट भाव चिन्तन उपलब्ध कर सकते हैं । इस आधार पर मनुष्य को उन श्रद्धा सम्वेदनाओं का अनुदान मिलता है, जिन्हें देव स्तर की कहा जाता है । इस अवतरण में व्यक्ति अधिकाधिक पवित्र एवं सुसंस्कृत बनता जाता है । आत्मीयता का विस्तार होने से संकीर्ण स्वार्थ-परता झड़ने लगती है और उसके स्थान पर "सब को अपने में और अपने को सब में" देखने का दृष्टिकोण विकसित होता है । ऐसी स्थिति में दूसरों के दु:खों को बँटा लेने और अपने सुखों को बाँट देने की नीति अपनाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जाता । दया, करुणा, उदारता जैसी सद्भावनाएँ अन्त:करण में उपजती हैं और सद्भावनाओं का विस्तार होने, लोक-मंगल के प्रति अधिकाधिक रुचि बढ़ने, परमार्थ परायण सेवा-सहकारिता चरितार्थ करने में रस लेने की प्रवृत्ति स्वयमेव बढ़ती चली जाती है । ऐसे व्यक्तियों में सहृदयता, सज्जनता, आदर्शवादी चरित्रनिष्ठा भरती और बढ़ती चली जाती है । सत्प्रयोजनों को अपनाने में एकाकी बढ़ चलने का शौर्य, साहस विकसित होता है । अनीति अपनाने वाली दुनिया का बहुमत एक ओर और उसकी नीति-निष्ठा एकाकी अपने स्थान पर अंगद के पैर की तरह अड़ी रह सकती है । अविवेक का अन्धकार उसे प्रभावित नहीं करता । कौन क्या कहता है, उसे इसकी तनिक भी परवाह नहीं होती । ईमान और भगवान् का अनुकूल रहना उसे अपने क्रिया-कलाप को अपनाने में पर्याप्त प्रतीत होता है, अन्य लोग समर्थन करते हैं या विरोध इसकी उसे रत्ती भर भी चिन्ता नहीं रहती । ब्रह्मपरायण व्यक्ति की आत्मचेतना में उच्चस्तरीय सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ती और भरती चली जाती हैं । अति मानव में यही विशेषताएँ होती हैं । देवात्माओं में यही गुण पाये जाते हैं ।

मनुष्य अन्य प्राणियों से ऊँचा अपनी शरीर रचना अथवा बुद्धिकौशल के कारण नहीं बना है । उसकी प्रगति का मूल कारण सहकारिता-सद्भावना एवं उदार चरित्रनिष्ठा जैसी सद्भावनाओं में सन्निहित है । इन्हीं विशेषताओं के कारण उनके लिए परिवार समाज एवं शासन की संरचना करना सम्भव हुआ । सामूहिक प्रयत्नों का ही फल है कि शिक्षा, चिकित्सा, व्यवस्था, उत्पादन, व्यवसाय, विज्ञान जैसी उपलब्धियाँ सम्भव हो सकीं । पारस्परिक आदान-प्रदान की विशेषता ने पूर्वजों के अनुभवों से अगली पीढ़ियों को लाभान्वित किया है । उपार्जन का लाभ सबने मिल-जुल कर उठाया है । स्वार्थपरता, लिप्सा और उच्छृंखलता को नैतिक अनुशासन के सहारे कुचला और उदार सहकारिता को कष्ट सहकर भी स्वीकार किया है । मानवीय प्रगति के यही आधार हैं । ऐसी ही उत्कृष्ट भाव सम्वेदनाओं को मानवता कहा जाता है ।

शरीर, बल और बुद्धि कौशल की दृष्टि से अन्य प्राणी भी अपनी-अपनी स्थिति और आवश्यकता के अनुरूप पर्याप्त सामर्थ्य सम्पन्न है । हाथी, व्हेल और सिंह की तुलना में मनुष्य का शरीर बल तुच्छ है । हिंसक पशुओं की आक्रमण चतुरता और शाकाहारियों की आत्म-रक्षण कुशलता के दाँव-पेचों को देखकर लगता है कि उस क्षेत्र में उनका बुद्धि वैभव मनुष्य से पीछे नहीं आगे ही है । ऋतु प्रभावों एवं क्षुधा पिपासा जैसी शारीरिक आवश्यकताओं को सहन करने की तितिक्षा शक्ति अपेक्षाकृत पशुओं में अधिक है । बन्दर की तरह पेड़ पर चढ़ना, हिरन की तरह कुलाँचे भरना, पक्षियों की तरह आकाश में उड़ना, मनुष्य से कहाँ बन पड़ता है । चींटी, दीमक, मकड़ी, मधुमक्खी जैसे छोटे कीड़ों में ऐसी कितनी ही विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो मनुष्य को शायद कभी भी उपलब्ध न हो सकेंगी । कितने ही पक्षी अपने नियत समय पर हजारों मील लम्बी यात्राओं पर निकलते हैं और बिना राह भूले अभीष्ट स्थानों पर प्रवास की अवधि पूरी करके अपने पूर्व स्थान पर वापिस आ जाते हैं । मनुष्य इन विशेषताओं की दृष्टि से काफी पीछे है । फिर अन्य प्राणी क्यों प्रगति पथ पर आगे न बढ़ सके और मनुष्य क्यों सृष्टि का मुकुट-मणि बन गया ? इस प्रश्न का एक ही उत्तर है—उसकी सद्भाव सम्पन्नता, आत्मिक उत्कृष्टता ।

अध्यात्म विज्ञान का, ब्रह्म-विद्या का, एकमात्र लक्ष्य इस सद्भाव सम्पदा की मात्रा बढ़ाते चलना है । ईश्वर का अधिकाधिक सघन सम्पर्क इसी प्रयोजन के लिए अभीष्ट होता है । ईश्वर प्राप्ति के लिए की जाने वाली विविध साधनाएँ किस मात्रा में सफल हो रही हैं इसकी एकमात्र कसौटी यही है कि उस व्यक्ति के अन्त:करण में निर्मलता एवं कोमल सम्वेदनाओं का परिमाण कितना बढ़ा, यदि भीतरी स्वार्थपरता और निष्ठुरता यथावत् बनी रहे तो समझना चाहिए कि ईश्वर प्राप्ति के लिए किये जाने वाले साधनात्मक प्रयत्नों का कोई परिणाम नहीं निकला । मनुष्य की श्रेष्ठता का यदि आधार ढूँढ़ा जाये तो वह उसकी उन प्रदीप्त सद्भावनाओं में ही देखा जा सकता है, जो अपनी प्रखरता के कारण सत्प्रवृत्तियों में परिणत हुए बिना रह ही नहीं सकती । ब्रह्म के असंख्य क्रिया-कलाप हैं, पर जब परमात्म चेतना का आत्मचेतना के साथ सम्बन्ध होता है तो बिजली के दोनों तार छूने पर चिनगारियाँ निकलने की तरह उस श्रेष्ठता के ही लक्षण प्रकट होते हैं जिन्हें उत्कृष्ट आदर्शवादिता कहा जाता है । पशु और मनुष्य के बीच इसी विशेषता के अभिवर्द्धन का अन्तर होता है । इसे अतिरिक्त ईश्वरीय अनुग्रह या अनुदान कह सकते हैं ।

बुद्धि कौशल ने सद्भावों को बढ़ाया या सद्भावों से बुद्धि कौशल बढ़ा इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ते समय बुद्धि चमत्कार का पक्ष लेने को जी करता है, क्योंकि प्रत्यक्ष उपयोग उसी का अधिक होता है । सुविधा साधनों के उपार्जन अभिवर्द्धन में बुद्धि ही अग्रिम मोर्चे पर खड़ी दीखती है, इसलिए उसको प्रमुखता दी जाय । ऐसा जी करता है, किन्तु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक गम्भीरता से चिन्तन करने पर तथ्य सर्वथा उलट जाते हैं । जितनी गहराई में उतरते हैं, उतनी ही यह सच्चाई सामने आती है कि मनुष्य की मौलिक विशेषता सद्भावना है, इसीलिए उसकी इस प्रधान महत्ता को मनुष्यता का नाम दिया जाता रहा है ।

सच्चे ब्रह्मपरायण की सत्ता सन्त, सज्जन, परमार्थ परायण ब्राह्मण, आदर्श के मूर्तिमान प्रतीक ऋषि, युग साधना में निरत महामानव, लोक-मंगल के लिए अपना सर्वस्व लुटा देने वाले भू सुर के रूप में अपनी प्रखर उत्कृष्टता का परिचय देती है । विडम्बना रचने वाले और भ्रम जंजालों में उलझे रहने वालों की बात दूसरी है, वे चित्र-विचित्र कर्मकाण्डों में स्तवन उपहारी से ईश्वर को प्रसन्न करने और उससे तरह-तरह की मनोकामनाएँ पूरी कराने के ताने-बाने बुनते रहते हैं । इन दिनों अन्य क्षेत्रों में फैले हुए बुद्धि विभ्रम की तरह अध्यात्य क्षेत्र में भी ऐसी ही विडम्बना चरम सीमा पर पहुँची हुई है और लोग ईश्वर को अपनी चालबाजियों में फुसला लेने के लिए नित नये जाल बुनते रहते हैं । इस बाल-बुद्धि से किसे कितना प्रतिफल मिलता है इसे तो वे ही जानें, पर तथ्य यह है कि यथार्थवादी ईश्वर भक्ति का परिणाम एक ही है अन्त:करण की सद्भाव सम्पदा का अधिकाधिक विस्तार और परिष्कार । यह वैभव जिन्हें भी प्राप्त होता है वे देव मानव होकर जीते हैं । अपने समीपवर्ती वातावरण को स्वर्ग तुल्य सुख-शांति से घिरा-भरा बनाते हैं । स्वयं असीम आत्म सन्तोष और सघन जन-सम्मान प्राप्त करते हैं । समस्त विश्व उनकी कृतियों का कृतज्ञ रहता है । जनमानस को उनके द्वारा प्रबल प्रेरणा प्राप्त होती हैं और सामयिक विकृतियों के समाधान में वे आशातीत योगदान देते हैं । जीवन को सच्चे अर्थों में धन्य बनाने की यही सफल साधना है ।

ऐसे व्यक्तियों की चेतना मलआवरण विक्षेपों से रहित होकर जो निर्मलता प्राप्त करती है उससे ब्रह्म-चेतना को यथेच्छ मात्रा अपने में धारण कर लेना सम्भव हो जाता है । इस सम्पदा का परिचय देवात्माओं के ऐसे महान् कृत्यों द्वारा मिलता है जिन्हें सामान्य स्तर के व्यक्ति असामान्य, असम्भव और चमत्कारी मानते हैं । कभी-कभी वे भौतिक क्षेत्र में भी अपनी विशिष्टता के ऐसे परिचय देते हैं जिन्हें ऋद्धि-सिद्धि की विशिष्टता कहा जा सके ।

अन्तरात्मा में बढ़ती हुई विवेकशीलता जब दूरदर्शिता अपनाने और दृष्टिकोण को परिष्कृत करने मे सफल होने लगे तो जानना चाहिए ब्रह्म चेतना का अवतरण हो रहा है और मनुष्य आत्मिक प्रगति की दिशा में निश्चित रूप से बढ़ रहा है । ऐसे व्यक्तियों की इच्छा, आकांक्षाएँ, वासना, तृष्णा की क्षुद्रता से ऊपर उठती ही है । उन्हें लोभ, मोह की कीचड़ में सड़ते रहने की दयनीय दुर्दशा असहय हो उठती है । पेट और प्रजनन तक जीवन सम्पदा को नियोजित किये रहने में उन्हें घाटा ही घाटा दीखता है अस्तु, वे अपनी गति-विधियों का नये सिरे से निर्धारण करते हैं । विश्व-मानव की सेवा साधना में ही उन्हें जीवन सम्पदा की सार्थकता दीखती है अस्तु, निर्वाह की आवश्कताओं को सीमित करते हैं । सादगी से रहते हैं । मितव्ययता बरतते हैं । परिवार के पिछले उत्तरदायित्वों के निर्वाह में ही जब कमी रह जाती है तो नये बच्चे-कच्चे पैदा करते जाने की मूर्खता तो उनसे बन ही नहीं पड़ती । भौतिक एषणाओं को निग्रहीत करने के उपरान्त ही इतनी कुछ सामर्थ बच सकती है जिसके सहारे आत्मिक प्रगति के लिए, ईश्वर प्राप्ति के लिए, अनिवार्य रूप से आवश्यक आदर्शवादी परमार्थ परायणता को अपनाया जाना सम्भव हो सके । सच्ची ईश्वर भक्ति इसी प्रकार किसी सच्चे भक्त पर अवतरित होती है और जीवन की दिशाधारा बदल डालने के रूप में अपने अस्तित्व का परिचय देती है ।

जीवात्मा, महात्मा,देवात्मा और परमात्मा

मानवीय प्रगति के अनेक प्रशंसनीय प्रयासों में एक पिछड़ापन बहुत ही अखरने वाला और अशोभनीय है कि शरीर और मन रूपी वाहनों, उपकरणों एवं सेवकों की गुलामी उस पर पूर्ववत् लदी रहे । क्षुद्रप्राणियों को ऊँचा उठा कर उसने भोजन, वस्त्र और निवास की सुव्यवस्था के लिए कला और विज्ञान के उच्चस्तरों तक अपनी पहुँच पहुँचाती है तो फिर यह दयनीय स्थिति क्यों रहे, जिसमें शरीर और मन की लिप्साएँ ही उस पर अधिकार जमाये रहे और अपनी मन-मर्जी से उसी प्रकार नचाती रहे जिस प्रकार कठपुतली को बाजीगर नचाता है ।

अपनी सम्पत्ति, अपनी प्रजा और अपने उपकरण औजारों एवं हथियारों का उपयोग जब स्वयं ही ठीक प्रकार किया जाने लगे तो समझना चाहिए कि अल्पवयस्कता दूर हो गई और प्रौढ़ता आ गई । नावालिगों को न वोट देने का अधिकार होता है न वे कहीं कोई उत्तरदायी पद प्राप्त कर सकते हैं, अपनी निज़ की सम्पत्ति भी बेच नहीं सकते और न उसके दिये गये वचनों का कोई कानूनी मूल्य माना जाता है । चेतनात्मक दृष्टि से अविकसित और अपरिपक्व व्यक्ति वे हैं जिन्हें अभी तक अपनी प्रशासनिक जिम्मेदारी निबाहने का अनुभव अभ्यास नहीं हो पाया । बड़ी उम्र के भी ऐसे अविकसित और विक्षिप्त लोग होते हैं जो बच्चों की तरह सोचते और उन्हीं के जैसे आचरण करते हैं । इन्हें भी अप्रामाणिक माना जाता है और नागरिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है । जिस की क्रियाएँ, विचारणाएँ और आकांक्षाएँ चेतना की प्रौढ़ता से प्रभावित एवं संचालित रहती हैं, समझना चाहिए कि वे वयस्क हो चुके और अपने प्रशासनिक कुशलता का परिचय दे रहे हैं । इनकी चेतना पर इन्द्रियलिप्सा का अधिकार है, अहंकार प्रदर्शन के लिए जिनका मस्तिष्क उच्छृंखल आतुरता का बेरोक-टोक परिचय दे रहा है, समझना चाहिए यहाँ वन्य पशुओं को पूरी छूट मिली हुई है । हाथी को अंकुश के सहारे, घोड़े को लगाम के सहारे, ऊँट को नकेल और बैल को रस्सी के सहारे सही रास्ते पर चलाया जाता है । यदि यह नियन्त्रण न हो तो इन पशुओं के पालनकर्ता भारी घाटा और भारी जोखिम उठावेंगे । ठीक इसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार अविकसित चेतना जब वासनाओं और तृष्णाओं को कुछ करते रहने की छूट दे देते हैं उन पर अंकुश रखने में असमर्थता प्रकट करती है तो समझना चाहिए कि यही दुर्गति के अतिरिक्त और कुछ होना नहीं है ।

चेतना का स्तर जब भी विकसित होता है तो उसका प्रमाण आत्मानुशासन के रूप में दृष्टिगोचर होने लगता है, तब इन्द्रियाँ मचलना बन्द कर देती हैं और आज्ञाकारी सेवक की तरह शासन के निर्देशों का अक्षरशः पालन करने में अपनी तत्परता दिखाती हैं । शरीर की हर क्रिया अभीष्ट उद्देश्यों के लिए होती है और समय का उपयोग निर्धारित दिनचर्या के अनुरूप होने लगता है । शरीर में आलस्य और मन में प्रमाद छाया रहना चेतना की अर्द्ध मूर्छित स्थिति में ही सम्भव होता है यह अर्द्ध मृतक स्थिति है । आलसी अपनी बहुमूल्य क्रियाशक्ति को ऐसे ही नष्ट करते रहते हैं और उसके सहारे जिस गगनचुम्बी प्रगति तक पहुँच सकना नितान्त सरल था, उससे वंचित रह जाते हैं ।

प्रमादी और भी अधिक घाटे में रहते हैं । शरीर कोल्हू के बैल की तरह चलता रहता है, पर वह सब बेगार भुगतने एवं भार ढोने की तरह होता है, फलतः कर्म कौशल के उत्साह भरे आलोक की झाँकी नहीं मिलती । किसी कार्य को पूरे मनोयोग के-उमंग और उत्साह के साथ न किया जाय तो उसमें विद्रूप अधूरापन ही परिलक्षित होता रहेगा । ऐसे कर्मों को कुकर्म तो नहीं, पर अकर्म अवश्य ही कहा जायेगा । वे काने, कुबडे, लँगड़े, लूले और कुरूप होते हैं उनसे कर्त्ता को श्रेय प्राप्त होना तो दूर उलटे उपहासास्पद बनना पड़ता है ।

मस्तिष्क जब अशिक्षित, अनियन्त्रित और अविकसित होता है, तब निरर्थक और भार-भूत संग्रह के लिए मचलता है यह उसकी बाल-क्रीड़ा तृष्णा के नाम से जानी जाती है । इस भौतिक संग्रह में बड़प्पन की मान्यता और अन्यान्य लोगों का ध्यान आकर्षित करके वाह-वाही लूटने की दृष्टि से ही तरह-तरह के ठाट-बाट बनाये और उद्धत प्रदर्शन किये जाते हैं । इतनी कठिनाई से, नीति-अनीति की परवाह किये बिना, इतने जोखिम उठाकर जो सम्पदा कमाई गई थी उसे इस तरह अपव्यय में होली की तरह फूँकने के सरंजाम किये जाते देखकर तथाकथित बुद्धिमत्ता को यथार्थता की कसौटी पर मूर्खता ही ठहराना पड़ता है, किन्तु अनगढ़ मन तो ऐसी ही बाल-क्रीड़ाओं में निरत रहते हुए प्रसन्न रहता है । उसकी अपनी समझ में इस निरर्थकता की बात आती नहीं । अविकसित चेतना में इतनी क्षमता होती नहीं कि मन पर अंकुश रखे, उसे ऐषणाओं की निरर्थकता समझाये और उनके विचार शक्ति को मुक्ति दिला कर किसी ऐसी महत्त्वपूर्ण दिशा में अग्रसर करे जिस पर चलने से जीवनोद्देश्य की पूर्ति होती हो और उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना बनती हो ।

राग, द्वेष, ईर्ष्या, आवेश, चिन्ता, खीज, निराशा, अधीरता, दीनता-हीनता, दुष्टता, भ्रष्टता, लिप्सा, उद्विग्नता जैसे ज्वार-भाटे और आँधी-तूफान जिनके मस्तिष्क में उठते रहते, उनकी मनःस्थिति नितान्त अस्थिर एवं अव्यवस्थित रहती है । ऐसे लोग अपने ही बुने मकड़ी के जाले में आप उलझे रहते हैं । समस्याओं और उलझनों के इतने बड़े पहाड़ गढ़ लेते हैं जिन्हें सुलझाना असम्भव ही बना रहता है । अधीरता देर तक किसी काम में दृढ़ता-पूर्वक जमे नहीं रहने देती, फलतः अनेक आरम्भ और हर प्रयास में असफलता का इतिहास जीवन पुस्तिका पृष्ठों पर लिखता जाता है । स्पष्ट है कि अनेकों कठिन परिस्थितियों में जूझने में उतनी शक्ति खर्च नहीं होती जितनी कि अकेली विकृति मनःस्थिति के गोरखधन्धे में उलझे रहने में नष्ट होती है । मस्तिष्क को यदि रचनात्मक चिन्तन और निर्धारित प्रयोजन को पूरा करने में नियोजित किया जा सके तो सही दिशा में धीरे-धीरे, किन्तु अनवरत गति से चलने वाले कछुए की तरह बाजी मारी जा सकती है और अस्त-व्यस्त उछल-कूद करते फिरने वाले सामर्थ्यवान् खरगोशों को प्रतिस्पर्द्धा में हराया जा सकता है ।

उच्चस्तरीय आदर्शों को प्राप्त करने के लिए मन को नियोजित कर सकना और उसे बलपूर्वक अभीष्ट लक्ष्य में नियोजित किये रहना प्रौढ़ चेतना का ही काम है, उसी में यह सामर्थ्य है कि इन्द्रियों को विलासी लिप्सा से विरत रहने को फौजी आदेश देने और उनका पालन कराने में सफल हो सके । आलस्य शरीर की जड़ता और प्रमाद मन की जड़ता है । इसे उलटकर चित् शक्ति का अनुशासन स्थापित करना आन्तरिक प्रगल्भता के अतिरिक्त और किसी आधार पर सम्भव नहीं हो सकता ।

शरीर और मन प्रकृति तत्वों से बने हैं, उन्हें अपने सजातीय भौतिक पदार्थों का ही परिचय है और उनके संस्पर्श से जो लिप्सा, सम्वेदना की अनुभूति होती है उतने भर का अनुभव है । अस्तु, उनका दौड़-दौड़ कर पदार्थों एवं शरीरों में अपनी रुचि, उत्सुकता एवं ललक का परिचय देना स्वाभाविक है । मर्त्यलोक के निवासी-भवबन्धनों से जकड़े हुए मायाग्रस्त जीवधारी के लिए इतना ही सम्भव है वह इस दल-दल में से अपने को निकालने की न आवश्यकता समझता है और न उसके लिए प्रयत्न ही करता है । ऊँची बात सोच सकना और महत्त्वपूर्ण निर्णय करना दूरदर्शिता और विवेकशीलता का उदय होने पर ही सम्भव है । यह दोनों विशेषताएँ गर्मी और रोशनी की तरह हैं जो चेतना को सूर्योदय के साथ-साथ ही प्रस्फुटित होती हैं । अध्यात्म शास्त्र का प्रतिपादन ब्रह्मलोक से होता है । यह ऊपर आकाश है । ईश्वर को उसका केन्द्र माना गया है और कहा गया है कि परमात्म-सत्ता के साथ घनिष्टता उत्पन्न करने वाली, आदान-प्रदान का द्वार खोलने वाली उपासना को अपनाने से ही चेतना की परतों पर दिव्य अवतरण सम्भव होता है ।

यह ब्रह्मलोक क्या है ? निश्चय ही यह कोई ग्रह-नक्षत्र या स्थान विशेष नहीं है । अपने ब्रह्माण्ड में ब्रह्मलोक नामक किसी क्षेत्र का परिचय अब तक न प्राप्त किया जा सका है और न भविष्य में वैसी आशा है । चेतना की परतों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भौतिक क्षेत्र विशेष के रूप में आलंकारिक रूप से चित्रण करना तो कलाकारिता है, पर उस कवि कल्पना की यथार्थता के साथ संगति बिठाना गलत है ।

ब्रह्म लोक आस्थाओं का एक सघन परत है जिसमें उच्चस्तरीय आकांक्षाएँ उमँगती रहती हैं । उन हिलोरों को उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व के रूप में समुद्री लहरों जैसा परिचय देते देखा जा सकता है । ब्रह्मलोक में परमात्म सत्ता का साम्राज्य है । परमात्मा को देखना हो तो उसकी प्रतिमा विराट् ब्रह्म के रूप में हर घड़ी दृश्यमान है । सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों के द्वारा विश्व-मानव की सेवा साधना की जा सकती है और उसका प्रतिफल महानात्मा के रूप में असीम श्रेय सहित प्राप्त किया जा सकता है । अपने भौतिक साधनों को जितने अधिक अनुपात से ब्रह्मार्पित किया जा सके उसी अनुपात से साकार उपासना का अधिक उच्चस्तरीय प्रतिफल प्राप्त किया जा सकता है । संसार के अवतारी महामानवों का उज्ज्वल यश और प्रकाश स्वयं धन्य बनता और दूसरों को धन्य बनाता है यह लोकसाधना की तपश्चर्या का ही प्रतिफल है ।

अगोचर, अचिन्त्य ब्रह्म निराकार है, वह उच्चस्तरीय आदर्शवादी—अति मानवीय उमंगों के रूप में अनुभव किया जाता है । आत्मभाव का विस्तार होने पर अपना आत्मा सब में समाया दीखता है फलतः दूसरों के दुःख अपने दुःख और दूसरों का सुख अपना सुख बन जाता है । तब विश्वहित में ही अपनाहित सन्निहित दीखता है । ईश्वर जितना उदार, जितना निर्मल है उसी स्तर पर जा पहुँचने की अदम्य उत्कंठा को ईश्वर भक्ति कहा गया है । उपासना प्रक्रिया का उद्देश्य इसी सम्वेदना को उभारना और परिपुष्ट करना है । भगवान् को व्यक्ति विशेष मानकर उसे प्रशंसा और उपहार देकर प्रसन्न करने की बात तो मात्र अबोध बालक ही सोच सकते हैं । प्रौढ़ावस्था में यह स्थित उपहासास्पद मानी जाती है । विकसित दृष्टिकोण में ईश्वर प्राप्ति के प्रयासों में चेतना को अतिमानव स्तर पर विकसित करना ही एकमात्र लक्ष्य रह जाता है । इस प्रयास में सफल साधकों को देवात्मा कहते हैं । परमात्मा का मिलन देवात्मा स्तर की पहुँची हुई पृष्ठभूमि पर ही सम्भव होता है । दूध और पानी सजातीय और समान कण भार के होने से परस्पर घुल-मिल जाते हैं, पर तेल मिलता नहीं तैरता है । बालू मिला देने पर वह नीचे बैठ जाती है । गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से जिसने अपने मनःक्षेत्र को अतिमानस और व्यक्तित्व को अतिमानव स्तर पर विकसित कर लिया है, वह ईश्वरीय चेतना के साथ सहज ही आदान-प्रदान करता रह सकता है । उस विकास क्रम के सर्वोच्च स्तर पर पहुँचने वाली चेतना ही परमात्मा बन जाती है । ऐसी स्थिति में न केवल उसकी वैयक्तिक संकीर्ण स्वार्थपरता का अन्त हो जाता है, वरन् शक्ति और सामर्थ्य को क्षेत्र में उसकी स्वल्पता और क्षुद्रता का अन्त होकर रहता है । विशाल समुद्र में मिल जाने वाली बूँद अपनी तुच्छता खो बैठती है और बदले में सागर जैसी विशालता उपलब्ध करती है । उच्च भूमिका में विकसित भूमिका को भूमा, प्रज्ञा, तत्व दृष्टि से प्राप्त कर लेना ही उपासना का उद्देश्य है । इस सफलता का परिचय क्षुद्रता के परित्याग और महानता के वरदान की परख से जाना जा सकता है । जिसमें जितनी ईश्वरीय अन्तर्दृष्टि होगी उसका ब्रह्मवर्चस भी उतना ही प्रचण्ड होगा । फलतः उसकी सत्ता अपने समय के अति महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों को सिद्ध कर रही होगी । अवतारों को इसी रूप में देखा जा सकता है । यह चित्शक्ति की, चेतना की प्रखरता और प्रचण्डता की ही उपलब्धि है ।

आत्मा, महात्मा और परमात्मा का विकास क्रम

महात्मा वह है जिसके सामान्य शरीर में असामान्य आत्मा निवास करती है । काया की वेश-भूषा और चित्र-विचित्र आवरणों का धारण, महात्मा होने का न तो आधार है और न लक्षण । सामान्य वेष और सामान्य रहन-सहन के बीच आत्मा को महानता के स्तर तक पहुँचाया जाना सम्भव है और पहुँचाया जाता भी रहा है ।

मर्यादाओं से आबद्ध रहकर नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करते रहना, उद्धत आचरणों से बचना, शील और सौजन्य को निबाहना यह मनुष्यता का आवश्यक उत्तरदायित्व है । जिन्होंने अपने भीतर आत्मा को समझा है और उसकी गौरव गरिमा को ध्यान में रखा है, उसे संयम, सदाचार और कर्तव्यनिष्ठा से जुड़ा हुआ शालीन जीवन जीना ही पड़ेगा ।

महात्मा की गरिमा इससे अगली मंजिल है । महान् का अर्थ है विशाल, व्यापक । जो आत्मा अपने शारीरिक, मानसिक और पारिवारिक कर्त्तव्यों से आगे बढ़कर विश्व मानव के उत्तरदायित्वों को वहन करने के लिये अग्रसर होता है, मानवीय कर्त्तव्यों से आगे के देव कर्त्तव्यों को वहन करने के लिये तत्पर होता है, वह महात्मा है । महात्मा अपने लिये नहीं सोचता, विराट् के लिये सोचता है । अपने लिए नहीं करता, विराट् के लिए करता है । अपने लिए जीवित नहीं रहता, विराट् के लिए जीता है ।

अपना शरीर हर छिद्र से मलीनता निस्तृत करता है पर इसलिये कौन उसे घृणास्पद और त्याज्य ठहराता है कि इसमें गंदगी विद्यमान है । घृणा की आवश्यकता नहीं समझी जाती और शरीर को स्वच्छ करने पर ही ध्यान रहता है । अपनी ही तरह दूसरों की विविध मलीनताओं के रहते जो हेय, घृणास्पद, पतित और त्याज्य नहीं ठहराता वरन् अपनी सहज ममता से प्रेरित होकर उसे निर्मल बनाने के लिये श्रम करता है, वह महात्मा है । अपना छोटा बच्चा दिनभर गलती करता रहता है । उसका बहिष्कार नहीं करते और देख भाल, डाँट डपट, तोड़-फोड़ के अवसरों की रोकथाम करके जितना सम्भव होता है उस क्षति का बचाव करते हैं । इस पर भी जो हानि होती रहती है, उसे सहन करते हैं । छोटे बालकों और अभिभावकों के बीच यह चिर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतीत से चला आ रहा है । दिग्भ्रान्त जन-समाज के अनाचरणों के प्रति आक्रोश उत्पन्न किये बिना जो धैर्य और शान्तिपूर्वक विग्रह की रोकथाम पर ध्यान देता है, उस उदारमना व्यक्ति को महात्मा कहना चाहिए ।

हम अपने और अपने प्रियजनों के दु:खों से दु:खी होते हैं । इस क्षेत्र में सुख संवर्द्धन का प्रयत्न करते हैं । हमें अपना सुख, यश, वैभव, उत्कर्ष प्रिय लगता है और जिन्हें अपना समझते हैं उन्हें भी इसी सुखद स्थिति में रखने के लिए प्रयत्न करते हैं । यह परिधि जब बड़ी हो जाती है और प्यार, दुलार का, ममता-आत्मीयता का क्षेत्र बढ़ जाता है तो वैसी ही अनुभूति हर किसी के साथ जुड़ जाती है । दूसरों का कष्ट अपना कष्ट लगता है, अपने को सुखी बनाने के लिये जिस प्रकार अपना स्वभाव और चिन्तन सक्रिय रहता है, वैसी ही सक्रियता यदि जनसाधारण के लिये विकसित हो चले तो समझना चाहिए कि आत्मा ने महात्मा का रूप धारण कर लिया । परायों में जब अपनापन प्रतिभाषित होने लगे तो समझना चाहिए कि दिव्य नेत्र खुल गये । जिसकी अहंता ग्रीष्म की हिम बनकर पिघल जाय, जो पवन जैसा सक्रिय और आकाश जैसा शान्त दिखाई पड़े, समझना चाहिए यह महात्मा का ही विग्रह है ।

जब तक 'स्व', 'पर' का ऊहापोह चलता रहता है, तब तक आत्मा और महात्मा का प्रेम-प्रसंग, आदान-प्रदान, परिहास-मनुहार चल रहा समझा जाना चाहिए । जब द्वैत की समाप्ति हो जाय और केवल एक ही शेष रहे 'स्व', 'पर' का अन्तर सोचने की गुंजायश ही न रहे, तब समझना चाहिए उसी काय कलेवर में परमात्मा का अवतार हो गया । देवत्व विकास का यह सर्वोच्च सोपान है । इस परम अवस्था की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का एकमेव लक्ष्य और उद्देश्य होना चाहिए ।

सत्, चित् और आनन्द

ईसा से एक जगह पूछा गया कि क्या आपने ईश्वर देखा है ? उन्होंने "हाँ" में उत्तर दिया । जब पूछा गया कि हमें भी दिखा सकते हैं ? इसका उत्तर भी उन्होंने हाँ में ही दिया । फिर शुभ कार्य में विलम्ब क्यों ? उपस्थितजनों की उत्सुकता बढ़ती गयी ।

ईसा ने एक माता की गोदी से छोटा-सा शिशु उठा लिया और उसे कंधे पर बिठाकर उपस्थितिजनों से कहा कि "यही ईश्वर है । जिसमें निकृष्टता ने प्रवेश न किया हो, जो सदय, सरल और निष्पाप है, उसे ईश्वर की ही अनुकृति मानना चाहिए । आनंद वस्तुत: बच्चों में ही निहित है ।" बालक हममें से हर किसी के इर्द-गिर्द पाये जाते हैं । कइयों के तो अपने ही बच्चे कई होते हैं । फिर परिवार के, पड़ोसियों के, सम्बन्धी, परिचितों और अपरिचितों के बच्चे भी खेलते हुए समीप आ पहुँचते हैं या उनकी ओर तनिक-सी दुलार भरी दृष्टि से देखते हुए अपने पास बुलाया जाता है, उन्हें अपनी सद्भावना, उपेक्षा, अवज्ञान, अपमान आदि का पहली दृष्टि से ही पता चल जाता है और वे तदनुरूप प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगते हैं ।

बच्चे आरम्भ में जल्दी बोल नहीं पाते और कमजोर शरीर होने के कारण कोई बड़ा परिश्रम भी नहीं कर पाते । इतने पर भी उनकी समझ असाधारण स्तर की होती है । परिवार के लोगों द्वारा बोले जाने वाले शब्दों की नकल करना, उनका भावार्थ समझना तेजी से आरम्भ करते हैं और तीन वर्ष के होते-होते वार्त्तालाप में समर्थ हो जाते हैं । यह बड़ों की तुलना में किसी प्रकार कम समझदारी का चिन्ह नहीं है ।

बच्चा जन्मजात सत्यवादी होता है, उसके पास कोई ऐसा दुराव नहीं होता, जिसे वह छिपाना चाहे । बच्चा अपरिग्रही होता है । पेट भर जाने पर वह शेष भोजन को जहाँ का तहाँ छोड़ देता है । उसे पीछे के लिए सुरक्षित रखने की बात नहीं सूझती, चतुर-श्रमशील होता है । वह छोटी आयु में भी कुछ न कुछ हलचल किये बिना नहीं रह सकता । उसकी विभिन्न हलचलों के पीछे श्रमशीलता का उत्साह काम करता है । मात्र इतना नहीं समझ पाता कि क्या करने का क्या लाभ मिलता है ? फिर भी वह परिश्रम का अपने को अभ्यस्त बनाता है । वो जब तक जागता रहता है, तब तक कुछ न कुछ किये बिना रहता नहीं ।

बच्चा भेदभाव नहीं करता और न द्वेष की गाँठ बाँधता है । आपस में लड़ना और फिर दूसरे ही क्षण एक हो जाना उसका स्वभाव है । जातिगत, धर्म आदि के कारण बच्चे किसी को विराना नहीं मानते । बच्चा कुछ करना ही चाहता, समझना भी चाहता है । खिलौने आदि वह इसीलिये तोड़ता रहता है कि यह जान सके कि उनके भीतर क्या है ? जो काम दूसरे करते हैं उसकी नकल बनाने का प्रयत्न अपनी सामर्थ्यानुसार करता है । जानना और करना यह दोनों ही कार्य इसे इतने अधिक प्रिय हैं कि वह इसके लिये छोटी आयु में भी सामर्थ्य भर प्रयत्न करता रहता है । यह सभी गुण ऐसे हैं, जिन्हे बड़े भी बच्चों से सीख सकते हैं साथ ही उनकी कोमलता तथा निश्छलता से उत्पन्न प्रसन्नता का सान्निध्य लाभ कर सकते हैं ।

मनुष्यों के तथा अन्य जीवों, पशु-पक्षियों के बच्चे तक मनुष्य के लिये एक उच्चस्तरीय मनोरंजन का आहार बनते हैं । स्वयं भावना प्रधान होने से अपने सम्पर्क में आने वालों की भी भावना जगाते हैं । शाहजहाँ ने जेल में दिन गुजारते हुए भी अपने लिये इच्छित काम माँगा, तो उसने 'बच्चों' को पढ़ाने का श्रम सर्वोत्तम माना और वही माँगा । उस व्यवस्था के बीच दिन गुजारते हुए जेल का कठिन जीवन भी सरल बना लिया । आवश्यक नहीं कि बच्चे अपनी ही संतान हों । किन्ही के भी बालकों को निश्छल दुलार देने से उनको ही नहीं, उनके सम्बन्धियों को भी अच्छा लगता है । मनोरंजन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का यह अच्छा-खासा माध्यम है, जिसे हर कहीं सहज ही प्राप्त किया जा सकता है ।

मित्रता के साथ जुड़ी आत्मीयता किसी को भी प्राणप्रिय बना देती है । दाम्पत्य जीवन को दो शरीर एक मन बना देने की क्षमता मात्र सघन मित्रता में ही है । यह परिवार के सदस्यों के बीच तो एक व्यवस्था के अन्तर्गत रहने और एक दूसरे के साथ आदान-प्रदान होने से भी चलती रहती है, पर विचारों की समानता का और पारस्परिक आदान-प्रदान एवं सहयोग से भी उसका बड़ा सम्बन्ध है । मित्रों की समीपता कितना अधिक आकर्षण पैदा करती है, इसे सभी जानते हैं । इसी भावना को भड़काकर कई लफंगे तथाकथित मित्र का सर्वनाश तक करते देखे गये हैं, पर इतना तो निश्चित रूप से होता है कि मित्रता उस स्तर की घनिष्टता बढ़ाती है, जिसके कारण निकटता का अवसर मिलने तक से चित्त प्रफुल्लित हो जाता है ।

कामुकता की दुष्प्रवृत्ति भी साथी को जाल में फँसाने के लिये मित्रता का ही लबादा ओढ़ती है अन्यथा उसका थोड़ा परिचय अश्लीलता की दुष्प्रवृत्ति के अतिरिक्त और कुछ रह ही नहीं जाता ।

संगीत भावनाओं को तरंगित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण मनोरंजन है, किन्तु शर्त यही जुड़ी हुई है कि उसमें कुसंस्कारिता भड़काने वाला विष न घोला गया हो । भक्तिरस के आस्वादन में संगीत के साथ नृत्य भी जुड़ने से वह संकीर्तन बन जाता है । आदर्शवादिता का पक्षधर संगीत सहगान में सम्मिलित होने वाले को सरसता प्रदान करता है । यदि वाद्य यंत्रों का प्रबन्ध न हो, तो भी मात्र कण्ठ के सहारे सम्वेदनाओं का स्पर्श करने वाले गीत एकाकी भी गुन-गुनाये जा सकते हैं ।

जिन क्षेत्रों में विकसित स्तर के मनोरंजनों की पहुँच नहीं हुई है । वहाँ भी लोकगीत और लोकनृत्य ही सर्वसाधारण के मनोरंजन का प्रधान साधन है, । उस पुरातन परम्परा से इस प्रगति युग में भी नये-नये प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं ।

जिस प्रकार अवसाद, निराशा और खिन्नता का निमित्त कारण बनता है, उसी प्रकार उल्लास को उभारने से मनुष्य की चेतना को नवजीवन मिलता है । समुद्र में भाटा आने पर उसकी जो क्षति प्रतीत होती है, उसकी पूर्ति उछलते हुए पानी के रूप में आने वाले ज्वार कर देते हैं । अस्त-व्यस्त जीवन में आने वाली खिन्नता की आपूर्ति करने में मनोरंजन का सहारा लेना पड़ता है । यह उचित ही है । कृष्ण पक्ष में बढ़ते हुए अन्धकार की भरपाई शुक्ल पक्ष में बढ़ती चन्द्र किरणों से ही होती है । रात्रि के अन्धकार में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उसका अन्त दिनमान के उदय होने पर हो जाता है । खिन्न, अप्रसन्न करने वाले दबावों की क्षतिपूर्ति के लिये मनोरंजन का सहारा लेना पड़ता है । उसे उपलब्ध करने में कहीं कोई कठिनाई नहीं है । मात्र अड़चन एक ही रहती है—सहज स्वाभाविक सरसता की, जो प्रचुरता से सर्वत्र विद्यमान है । लोग उससे अपरिचित बने रहते हैं और किस प्रकार आनन्दमय परिस्थितियों में जीवनयापन किया जा सकता है, उसे भूल जाते हैं ।

परमात्मा के अनेक नामों में से एक अति महत्त्वपूर्ण है—'सच्चिदानन्द ।' 'सत्' अर्थात् यथार्थता । यथार्थता का बोध अर्थात् जो कुछ हमें आवश्यक है वह परिपूर्ण मात्रा में जन्मजात रूप से ही विद्यमान है । मानवीय चुम्बक अपने सजातीय कणों को संसार भर में कहीं से भी अपने लिये प्रसन्नता का वातावरण बना लेने में समर्थ है । दूसरा नाम है—'चित्' चेतन । मनुष्य अपने आप को जड़ शरीर मानता तो है, पर वस्तुतः वह वैसा है नहीं । चेतना ही उसका स्वरूप है और उसी के साथ कठिन और जटिल से जटिल उलझनों का उत्पादन एवं समाधान जुड़ा हुआ है । व्यक्ति अपने ऊपर लदी हुई अवांछनीयताओं से छुटकारा प्राप्त कर ले, तो मूर्छना की स्थिति में जो भूलें निरन्तर होती रहती हैं और जिसके कारण असंख्य त्रास सहने पड़ते हैं, उनमें से किसी की भी आवश्यकता न रहे ।

सत्, चित् के उपरान्त महाचेतना का तीसरा विशिष्ट गुण है-आनन्द । उसे आनन्द से रहना चाहिए और अपने सम्पर्क क्षेत्र को निरन्तर आनन्द से सरावोर रखना चाहिए । यह सम्भव भी है और सरल भी । इसके लिये खर्चीले साधन जुटाने की आवश्यकता नहीं है और न ऐसे अवलम्बन ढूँढ़ने हैं, जो क्षण भर के लिये बिजली की चमक दिखाकर घने काले बादलों के बीच विलीन हो जायेगा । खरीदे हुए उपकरण, अवलम्बन ऐसे हैं, जिनसे इतनी ही आशा की जा सकती है कि अपने को ही नहीं अपने सम्पर्क में आने वालों को भी प्रसन्नता से भर दें । चन्दन जब सम्पर्क क्षेत्र को महका देता है, तो कोई कारण नहीं कि प्रज्ञावान मनुष्य निरन्तर आनन्दविभोर स्थिति को न बनाये रखे ।

अभाव का अन्त नहीं । इस पृथ्वी के समूचे साधन एक व्यक्ति की तृष्णा बुझाने के लिये भी अपर्याप्त हैं । यदि उन्हीं की ललक सँजोये रखी गयी तो समझना चाहिए कि अनाचार पर उतरना पड़ेगा और जो उपलब्ध है वह अपर्याप्त एवं नीरस लगेगा । चयन पूरी तरह अपने हाथ है । स्वयं दुःखी रहना, दूसरों को दुःख देना और सम्पर्क क्षेत्र में दुःख भरा वातावरण छोड़ जाना यह भी अपने हाथ की बात है । इस भीतरी जीवन को बाहर के स्वल्प साधनों से देर तक प्रसन्न नहीं बनाये रखा जा सकेगा । प्रसन्नता का अनन्त स्रोत तो अपने भीतर है । कस्तूरी के मृग की तरह भ्रम में नही पड़ना चाहिये, वरन् वह जहाँ है, वहीं उसे खोजना चाहिए । अपना दृष्टिकोण, चरित्र, चिन्तन, व्यवहार यदि बदल जाय तो संसार की व्यथा और कुरूपता को पलायन करते देर न लगेगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतःस्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रात:काल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुन: एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्राय: ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org